समर्पण

जिनकी अनन्त प्रेरणा, असीम स्नेह एवं सौहार्द्र
के फलस्वरूप इस पुस्तक की रचना संभव
हो सकी है उन्हीं ममतामयी विमला
मामोरिया के कर कमलों में यह
भेंट सस्नेह समर्पित है

चतुर्भुज मामोरिया

डा० मामोरिया की अन्य रचनायें :

1. Agricultural Problems of India, Fourth Ed. 1964.
२. आर्थिक और वाणिज्य भूगोल, तृतीय संस्करण, १९६४.
३. भारत की भौगोलिक समीक्षा, प्रथम संस्करण, १९६५
४. भारत का आर्थिक भूगोल, प्रथम संस्करण, १९६५.
५. मानव भूगोल (प्रेस में)

प्राक्कथन

मुझको डा० मामोरिया के भारत के बृहत् भूगोल नामक पुस्तक के प्रकाशन का स्वागत करते हुये अत्यधिक हर्ष होता है। लेखक ने आर्थिक भूगोल से सम्बन्धित अनेक विषयों की पुस्तकों का प्रकाशन करवा लिया है अतः उनका परिचय देने की आवश्यकता नहीं है किन्तु प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये वे इसलिये अत्यधिक बधाई के पात्र हैं कि अभी तक हिन्दी में भारत के भूगोल पर इतनी महत्वपूर्ण एवं विस्तृत पुस्तक का प्रकाशन नहीं हुआ है। पुस्तक का कलेवर १००० पृष्ठों से अधिक का है और मैं कह सकता हूँ कि इससे उच्चतर शिक्षा को प्राप्त करने वाले विद्यार्थी लाभान्वित होंगे और हिन्दी-साहित्य की भी अभिवृद्धि होगी। पुस्तक में भूगर्भ तत्वों से लेकर अर्थशास्त्रीय तथा मानवीय सभी तत्वों को अत्यन्त व्यापकता किन्तु सरलता से प्रस्तुत किया गया है अस्तु इसको भारतीय भूगोल के ज्ञान का बृहत्-कोष (Encyclopaedia) कहा जा सकता है। भूगर्भ सम्बन्धी तत्वों के इसमें सूक्ष्म, किन्तु प्राकृतिक भूगोल को ध्यान में रखते हुये अत्यन्त स्पष्ट एवं सुबोध ढंग से लिखा गया है। देश की खनिज सम्पदा, जलवायु मिट्टी आदि तथा विकास योजनाओं को बहुत ही सुरुचिपूर्ण ढंग से लिखा गया है। कृषि, वन, धातु एवं अन्य उद्योगों का अध्ययन अत्यन्त व्यापक ढंग से किया गया है। साथ ही इसमें मनुष्यों एवं जनसंख्या की समस्याओं का इतने रोचक ढंग से वर्णन तथा व्याख्या की गई है जो सम्भवतः अन्यत्र नहीं मिलेगी। पुस्तक नवीनतम आँकड़ों और अनेक चित्रों तथा मानचित्रों से सुसज्जित है। इसलिये इसमें कोई अन्योक्ति नहीं होगी, यदि मैं कहूँ की उच्चतर शिक्षार्थियों को इस एक ही पुस्तक में सारी सामग्री सुविधा से प्राप्त हो जावेगी। भारत के भूगोल पर इस प्रकार की अधिकार-पूर्ण एवं विस्तृत पुस्तक के प्रकाशन से भारत संबंधित ज्ञान में व्यापक वृद्धि हुई है। इस पुस्तक से केवल पाठन का स्तर ही नहीं बढ़ेगा अपितु शीघ्र ही इसको राष्ट्रीय साहित्य में उपयुक्त स्थान प्राप्त होगा ऐसी मेरी मान्यता है।

मैं लेखक को फिर एक बार अपना साधुवाद प्रस्तुत करता हूँ कि उन्होंने इस महत्वपूर्ण पुस्तक को प्रकाशित किया क्योंकि मैं जानता हूँ कि शीघ्र ही यह पुस्तक हिन्दी साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी।

डा० के० पी० रोड़े
एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (ज्यूरिच)
अध्यक्ष, भूगर्भशास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय

उदयपुर,
१२ अक्टूबर, १९६०

प्रथम संस्करण पर दो शब्द

प्रत्येक देशवासी एवं उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को अपने देश के भौतिक, आर्थिक एवं वाणिज्य और मानव भूगोल सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्यों से परिचित होना आवश्यक है। इस ज्ञानोपार्जन के लिए उच्च स्तर की प्रामाणिक पुस्तकों का होना वांछनीय है। किन्तु दुख का विषय है कि इस विज्ञान की आवश्यकता होते हुए भी कतिपय विद्वानों का छोड़ कर किसी ने भी इस अभाव को पूरा करने का सन्तोषजनक प्रयास नहीं किया है। यदि किसी ने भारत के केवल भौतिक भूगोल पर ही ध्यान केन्द्रित किया है तो किसी ने अनावश्यक रूप से आर्थिक दशाओं को प्रधानता दी है जिससे पुस्तक की विषय रचना एकांगी हो गई है। फलतः भूगोल, अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य के स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों को आवश्यक विषय सामग्री के एकत्रित करने हेतु इधर-उधर भटकना पड़ता है अथवा अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित पुस्तकों का सहारा लेना पड़ता है। भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण ये पुस्तकें उच्च स्तर की होते हुए भी उनके लिए ग्राह्य नहीं होतीं। विद्यार्थी समुदाय एवं अन्य जिज्ञासुओं के लिए—जो अपने देश सम्बन्धी विभिन्न भौतिक परिस्थितियों और उनका देशवासियों के आर्थिक क्रिया-कलाप पर पड़ने वाले प्रभावों से परिचित होना चाहते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन प्रकृतिदत्त एवं मानव सुलभ परिस्थितियों पर भारतीय मानव ने किस प्रकार तथा कहाँ तक विजय प्राप्त की है? नैसर्गिक स्रोतों का किस प्रकार विदोहन किया गया है? एवं देश के आर्थिक और औद्योगिक आयोजन और विकास में उन्होंने किस प्रकार योगदान दिया है? आदि महत्वपूर्ण बातों को जानना चाहते हैं—उनके लिए ही इस पुस्तक की रचना की गई है। इसकी रचना में—विषय सामग्री को देखते हुए—कितना परिश्रम एवं समय लगा होगा इसका अनुमान विज्ञ पाठक स्वयं ही कर सकते हैं। मैंने केवल प्रयास मात्र किया है कि हिन्दी भारती को एक उच्च कोटि की पुस्तक 'भारत के भूगोल' पर दे सकूँ—इसमें मुझे कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय मैं विद्वानों एवं पाठकों पर छोड़ता हूँ।

पुस्तक को पूर्ण रूप से प्रामाणिक, उच्च स्तरीय एवं विश्वसनीय बनाने हेतु विषय सामग्री का चयन विभिन्न लेखों, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, राजकीय प्रकाशनों एवं अन्य उपलब्ध हिन्दी-अँग्रेजी के ग्रन्थों के आधार पर किया गया है लेखक उन सबका हृदय से आभार प्रदर्शन करता है। विषय का प्रतिपादन सरल भाषा में इस ढंग से किया गया है कि साधारण पाठक भी विषय को समझ सके। पुस्तक में यथा शक्ति नवीनतम आँकड़े और सूचनायें देने का प्रयास किया गया है जिससे पाठक-वृन्द विभिन्न विकासों की प्रवृत्ति अथवा वर्तमान स्थिति का सही अनुमान लगा सकें। पाठ्यसामग्री को अत्यधिक लाभदायक एवं ग्राह्य बनाने हेतु अध्यायों का क्रम इस प्रकार रखा गया है कि उनका समन्वय एक दूसरे से हो जाता है और पाठक को एक वैज्ञानिक एवं सरल ढंग से विषय का ज्ञान हो जाता है। भूगोल विषय पर उत्तम

पुस्तक वही हो सकती है जिसमें सही एवं चित्ताकर्षक चित्रों और मानचित्रों का भली-भाँति समावेश किया गया हो। इस दृष्टि से यह प्रकाशन लाभदायक सिद्ध होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत की भौतिक अवस्था सम्बन्धी विभिन्न रूपों, जलवायु दशाओं, कृषि, वन, मिट्टी एवं खनिज सम्पत्ति आदि के दिग्दर्शन से लगा कर वृहत् उद्योगों, परिवहन के विभिन्न स्वरूपों, व्यापार एवं भारत के मानव भूगोल सम्बन्धी समस्याओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में केवल यही कहा जा सकता है कि जो कुछ अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा वह सब तो इस पुस्तक में मिलेगा ही, किन्तु जो इसमे मिलेगा वह कही नहीं मिलेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी जगत में इस पुस्तक का स्वागत किया जायगा और यह पुस्तक सामाजिक विज्ञानों की वृद्धि मे एक ठोस देन होगी।

इस पुस्तक के प्रणयन एवं प्रकाशन में मेरे सुहृदय प्रकाशक श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल ने जस तत्परता, रुचि और लगन का परिचय दिया है उसके लिए मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ। पांडुलिपि एवं मानचित्र आदि की व्यवस्था करने के लिए मुझे जो सहयोग श्री राधेकृष्ण रावत, श्री जानकीलाल न्याती, कुमारी रजनीबाला मामोरिया, श्री रणजीत स्वरूपिया और श्री लक्ष्मणसिंह बोल्या से मिला है वह स्तुत्य है। जिन असंख्य मित्रों को कृपा एवं विद्यार्थी समाज के आग्रह से यह पुस्तक शीघ्र ही समाप्त की जा सकी उसके लिए मैं विशेष ऋणी हूँ। अन्त में मुझे अपनी संगिनी श्रीमती विमला से जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है, केवल हृदय ही अनुभव कर सकता है।

पुस्तक को आगामी संस्करण में अधिक उपादेय बनाने हेतु जो भी सुझाव मिलेंगे उनका सहर्ष स्वागत किया जायगा।

किमधिकम्—

चतुर्भुज मामोरिया

मामोरिया कुटीर,
उदयपुर

द्वितीय संस्करण पर दो शब्द

पुस्तक का पूर्णतः संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण अध्यापक बंधुओं एवं विद्यार्थी समाज के सम्मुख रखते हुए मुझे हर्ष होता है। जिस उदार वृत्ति से प्रथम संस्करण को पाठकों द्वारा अपनाया गया उससे उत्साहित होकर ही पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। संशोधन करने में यथाशक्ति आद्यतन आंकड़ों और सूचनाओं का समावेश किया गया है। अनेक अध्यायों को नये ढंग से लिखा गया है। पुस्तक में द्वितीय खंड के अन्तर्गत राजनीतिक क्षेत्रों का संक्षिप्त वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है। अन्त में भारत चीन विवाद पर भी एक अध्याय प्रस्तुत किया गया है। मानचित्रों को सर्वे ऑफ इण्डिया के मानचित्रों के आधार पर तैयार करा कर पुस्तक में व्यवहृत किया गया है।

पुस्तक के इस रूप में प्रकाशन के लिए श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल धन्यवाद के पात्र हैं। जिन मित्रों एवं अध्यापक बन्धुओं से पुस्तक के सुधार के सम्बन्ध में रचनात्मक सुधार प्राप्त हुए हैं उन्हें भी धन्यवाद देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पुस्तक को आगामी संस्करण में और भी अधिक लाभदायक बनाने हेतु सुझाव अपेक्षित हैं।

आशा है यह नवीन संस्करण भूगोल जगत में अधिक मान्यता प्राप्त कर सकेगा।

उदयपुर
१ जनवरी, १९६५

चतुर्भुज मामोरिया

विषय-सूची

खण्ड : १

भौतिक और आर्थिक भूगोल

खण्ड २

राजनीतिक भारत

खंड १

भौतिक एवं आर्थिक भूगोल

अध्याय १

भारत का विस्तार, स्थिति, सीमा आदि

देश का नामकरण

हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों के अनुसार (विशेषत: **विष्णु पुराण**) पृथ्वी के उस भू-भाग को जो हिमाद्रि, हिमावंत या हिमालय पर्वत से लगाकर सेतुबंध (वर्तमान हिन्द महासागर) तक फैला है उसमें **भारती** सन्तति बसती है और इस देश को **भारत** या **भारतवर्ष** कहा गया है।

उत्तरंयत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तत् भारतं नाम, भारती यत्र सन्ततिः॥

—विष्णु पुराण

प्राचीन काल में आर्यों की **भरत** नाम की शाखा ने अनार्यों और दूसरे आर्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इसी शाखा के नाम पर इस देश का नाम **भारतवर्ष** पड़ गया। वैदिक आर्यों ने उत्तर-पश्चिम की ओर बहने वाली नदी को **सिंधु** (Sindhu) कहकर पुकारा। बाद में ईरानियों ने इसे ही **हिंदू** (Hindu) नदी की संज्ञा दी और इस देश को **हिंदुस्तान** कहा। यूनानियों ने इसी नदी को **इन्डोस** (Indos) और रूमानियों ने **इंडस** (Indus) और इस देश को **इंडिया** कहा। यही देश आज विश्व में **भारत** के नाम से विख्यात है।[1]

स्थिति एवं विस्तार—भारत की आकृति पूर्णतः त्रिभुजाकार न होकर चतुष्कोणीय है जो केवल दक्षिणी भागों को छोड़कर, अन्य सभी ओर प्रकृति द्वारा इतनी अच्छी तरह परिसीमित है जितना संभवत: कोई अन्य देश नहीं।[2] यह पूर्णतः उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। यह महान देश विषुवत् रेखा के उत्तर में ८° ४′ २८″ से ३७° १७′ ५३″ उत्तरी अक्षांस और ६८°७′ तथा ९७°२४′४७″ पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है।[3] कर्क रेखा इसके मध्य से होकर निकलती है जो देश को महाद्वीपीय और उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में विभाजित करती है। ८२½° पूर्वी देशान्तर देश के लगभग मध्य से होकर निकलता है। उससे पूर्व और पश्चिम के भागों के बीच में समय में प्रति देशान्तर ४ मिनट का अन्तर रहता है। दक्षिण का भाग शनैः शनैः संकड़ा होता गया है और कुमारी अन्तरीप में एक बिंदु का आकार हो जाता

---

1. *Majumdar, R. C.,* The Vedic Age, 1957, p. 105; and *Sen, G. E.,* Cultural Unity of India, 1954, p. 9.

2. *Stamp, L. D.* and *Glimour, S. C.,* Chisholm's Handbook of Commercial Geography, 1954, p. 554.

3. National Atlas of India, 1957

है । इसका धुर दक्षिणी भाग विषुवत् रेखा से केवल ८०० किलोमीटर दूर पड़ता है। अतः इसका दक्षिणी भाग उष्ण कटिबन्ध में और उत्तरी भाग शीतोष्ण कटिबन्ध में है।

यह एशिया महाद्वीप के दक्षिण के तीन बड़े प्रायद्वीपों में से मध्य का प्रायद्वीप है जिसका आकार त्रिभुजाकार-सा है। उत्तर से दक्षिण तक यह ३,२२० किलो-मीटर (२,००० मील) और पूर्व से पश्चिम २,७३५ किलोमीटर (१,८५० मील) के विस्तार में फैला है। इसका क्षेत्रफल ३२,८२,०१६ वर्ग किलोमीटर (१२·६१ लाख वर्ग मील) और जनसंख्या ४३·९ करोड़ है। क्षेत्रफल की दृष्टि से रूस को छोड़कर यह शेष यूरोप के बराबर है। यह विश्व का सातवाँ बड़ा देश है, जो क्षेत्रफल की दृष्टि से इंगलैंड का १२ गुना, जापान का ८ गुना, कनाडा का एक-तिहाई और रूस का एक-सातवाँ भाग है।

स्थिति—भारत की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह पूर्वी गोलार्द्ध के प्रायः

चित्र १. विश्व के मानचित्र पर भारत की स्थिति

मध्य में स्थित है। यह हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित है जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम को जाने वाले व्यापारिक मार्ग निकलते हैं। यहाँ से पूर्व और दक्षिण-पूर्व में

मार्ग चीन, जापान और आस्ट्रेलिया को, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रीका को और दक्षिण में लंका, सुदूरपूर्व, इंडोनेशिया, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को जाते हैं। इस प्रकार भारत पश्चिमी कला-कौशल-प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिए एक शृंखला का काम करता है। अपनी ऐसी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण ही सुदूर अतीत में भी भारत का सम्पर्क तत्कालीन सभ्य संसार से था। उस समय प्रमुख व्यापारिक स्थल मार्गों का केन्द्र भारत ही था। पूर्व की ओर चीन, अनाम, थाईलैंड, कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बाली आदि देशों तक तथा पश्चिम की ओर अरब, फारस, मिश्र, यूनान और रोम तक भारतीय व्यापारियों के जहाज विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुयें (गर्म मसाले, मोती, हीरा, जवाहिरात, सोना, रेशमी और सूती वस्त्र आदि) जाया करते थे। दक्षिण भारत के चोल, पांडव, पालव आदि राज्यों ने तो पूर्वी देशों में अपने उपनिवेश तक स्थापित किए थे, जहाँ भारतीय संस्कृति के चिन्ह अब भी उपलब्ध होते हैं।

यद्यपि उत्तर की ओर हिमालय की ऊँची श्रेणियों द्वारा रूस और एशिया के अन्य देशों से अलग है किन्तु वायु मार्गों की दृष्टि से भी भारत की स्थिति उत्तम कही जा सकती है। पश्चिमी देशों से सुदूर पूर्व को जाने वाले वायुयान भारत-भूमि से ही होकर निकलते हैं—दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता-अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं, जिन पर पश्चिमी और पूर्वी देशों को जाने वाली वायु सेवायें ठहरती हैं।

सीमायें—भारत की सीमा दो प्रकार की है: कृत्रिम और प्राकृतिक। उत्तर में हिमालय की विशाल दीवाल इसको रूस और मध्य एशिया के अनेक देशों से अलग करती है। इस ओर कुछ दर्रे हैं किन्तु वे अधिक ऊँचाई के कारण सदैव बर्फ से ढके रहते हैं अतः भारत और इन देशों के बीच व्यापार सम्बन्ध स्थल की ओर से प्रायः नहीं सा है। केवल उत्तर-पश्चिमी भाग में (जो अब पाकिस्तान का अंग है) अनेक नीचे दर्रे हैं जिनमें होकर प्राचीन काल में आर्य, मंगोल, तुर्क, हूण, आदि अनेक जातियाँ देश में घुसीं और उनमें से बहुत सी यहीं स्थायी रूप से बस गईं। पूर्व की ओर हिमालय की श्रेणियाँ नीची हैं किन्तु सघन वनों और गहरी तंग घाटियों के कारण भारत और ब्रह्मा के बीच अधिक आना-जाना नहीं हो पाता। पश्चिम की ओर पश्चिमी पाकिस्तान है। इन देशों के बीच में कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है। पश्चिमी और पूर्वी पंजाब के बीच सतलज और रावी नदियाँ कृत्रिम सीमा बनाती हैं। अमृतसर जिले में रावी नदी और दक्षिण की ओर मुड़कर फिरोजपुर जिले में सतलज नदी इसकी सीमा बनाती है।

इस प्रकार भारत की स्थलीय सीमा पर उत्तर में नेपाल और चीन देश हैं पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान तथा पूरब में पूर्वी पाकिस्तान और ब्रह्मा देश हैं। काश्मीर की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान की सीमा भी देश को छूती है। भारत की सम्पूर्ण स्थल सीमा १५२६० किलोमीटर (६,४२५ मील) लम्बी है।

भारत और चीन के बीच की सीमा रेखा को **मैकमोहन रेखा** कहते हैं। यह रेखा सन् १९१४ में शिमला में एक त्रिदलीय सम्मेलन में (जिसमें भारत, चीन और तिब्बत के दूत उपस्थित थे) निर्धारित की गई है। यह भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा रेखा है जो २६४० मील से अधिक लंबी है। कुछ स्थानों पर नदियों ने और कुछ स्थानों पर हिमालय पर्वत की चोटियों ने इसे प्राकृतिक रूप से निर्धारित किया

है। सीमा के पास के इलाके पहाड़ी और बर्फीले होने के कारण बहुत ही कम बसे हैं।

यह सीमा रेखा तीन स्पष्ट भागों में विभक्त है :

(क) **पश्चिमी क्षेत्र**—इसका दो-तिहाई भाग तिब्बत और काश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में है। यह सीमा १८४२ में काश्मीर राज्य के प्रतिनिधि और तिब्बत के दलाई-लामा तथा चीन सम्राट् के प्रतिनिधियों की एक संधि के अनुसार तय की गई थी। यह सीमा रेखा लगभग १,७७० किलोमीटर (१,१०० मील) लंबी है जो भारत, चीन और अफगानिस्तान के मिलन-बिंदु से आरंभ होती है और जम्मू-काश्मीर राज्य को तिब्बत और सिक्यांग से अलग करती है।

(ख) **मध्य क्षेत्र**—इसकी सीमा पंजाब, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के राज्यों को तिब्बत से अलग करती है। यह सीमा रेखा हिमालय के जल-विभाजक द्वारा अंकित है। इसको सामान्य संधियों और परम्परागत स्वीकृति से मान्य माना गया है। इस रेखा का उल्लेख अप्रेल १९५४ में भारत-चीन समझौते में किया गया है।

(ग) **पूर्वी क्षेत्र**—सिक्किम और तिब्बत में एक प्राकृतिक सीमा है जो जल-विभाजक के सहारे फैली है। यह सीमा भूटान से पूरब की ओर भारत-चीन-ब्रह्मा की सीमा के संगम तक लगभग २२५ किलोमीटर (१४० मील) फैली है। इसका निर्धारण १९१३-१४ के त्रिदलीय सम्मेलन में किया गया था।

दक्षिण की ओर हिंदमहासागर इसकी दक्षिणी सीमा बनाता है जो तीन ओर विशाल भूखंडों द्वारा घिरा है। इसके उत्तर में दक्षिणी एशिया की छत है, पश्चिम में अफ्रीका महाद्वीप की दीवाल है और पूरब में ब्रह्मा, मलाया तथा इंडोनेशिया आदि द्वीप सूमहों की सीमा है। इस महासागर का पश्चिमी भाग अरब सागर तथा पूर्वी भाग बंगाल की खाड़ी कहलाता है।

तट रेखा एवं द्वीप आदि—भारत की तट रेखा की लंबाई ६,०४९ किलोमीटर (३,५३५ मील) है, किन्तु यह बहुत ही कम कटी-फटी है, तटीय भागों में समुद्र छिछला है। पश्चिमी तट पर उत्तरी भाग में **कच्छ** तथा **खंभात की खाड़ी है**। यह दोनों खाड़ियाँ पोताश्रयों के लिए उपयुक्त दशायें प्रस्तुत करती हैं। दक्षिणी पूर्वी तट पर **मनार की खाड़ी** और **पाक** जलडमरूमध्य हैं जो लंका को भारत के भू-खंड से अलग करते हैं। दक्षिणी-पश्चिमी तट और पूर्वी तट के निकट अनेक लैगून झीलें हैं (कोचीन, पुलीकट, चिल्का झील आदि)।

भारत की तट रेखा के निकट द्वीपों का अभाव मिलता है। **कच्छ** की खाड़ी के निकट कुछ छोटे द्वीप मिलते हैं और खंभात की खाड़ी के निकट ड्यू तथा नर्मदा के मुहाने के निकट भी कुछ छोटे द्वीप हैं। इनमें मछुए ही अधिक रहते हैं। बम्बई स्वयं **सालसेट** द्वीप पर स्थित है। इसके निकट ही **एलीफेन्टा** द्वीप है। पश्चिमी तट से लगभग ६० कि० मी० पर **लकदीप, अमीनदीवी** और **मिनीकाय** द्वीप हैं। लंका और भारत के बीच **पाम्बन द्वीप** हैं। रामेश्वरम् भी एक द्वीप पर स्थित है। तूतीकोरिन के निकट **हेयर द्वीप** हैं। पुलीकट झील और समद्र के बीच **हरिकोटा द्वीप** और चिलका तथा समुद्र के बीच **पारिकुद** झील हैं। गंगा और कृष्णा के डेल्टा के

निकट भी अनेक छोटे-छोटे द्वीप मिलते हैं। बंगाल की खाड़ी में कलकत्ता से १,२५० कि० मी० दूर अंडमान और नीकोबार द्वीप समूह हैं।

तट के निकट समुद्र के छिछले होने तथा कम कटे-फटे होने से उत्तम प्राकृतिक पोताश्रयों का भी अभाव मिलता है। बम्बई, कांधला और कोचीन पश्चिमी तट पर प्राकृतिक बन्दरगाह हैं। पूर्वी तट पर विशाखापट्टनम, कलकता एवं मद्रास के बन्दरगाह कृत्रिम हैं। समुद्र तट के सपाट होने का एक प्रभाव यह पड़ा है कि भारतीय अच्छे नाविक नहीं बन सके हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होगा कि भारत की विशिष्ट भौगोलिक सीमाओं ने इस देश को एक अखंड भौगोलिक इकाई का रूप प्रदान किया है। तीन ओर अभेद्य पर्वतीय दीवाल और एक ओर असीम महासागर ने इसे घेर कर एक सुरक्षित गढ़ सा बना दिया है।

भारत की विशेषतायें—भारत की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार व्यक्त की जा सकती हैं—

(१) सम्पूर्ण देश विषुवत् रेखा के उत्तर में एशिया महाद्वीप के मध्य में हिंद महासागर के सिरे पर स्थित है अतः यहाँ की जलवायु पर सामुद्रिक हवाओं का विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। इन्हीं के कारण यह मानसूनी देश है।

(२) केवल पाकिस्तान के साथ लगी सीमा को छोड़ कर सारे उत्तरी भारत और दक्षिण की सीमा प्राकृतिक है। उत्तर की ओर हिमालय ने भारतीय संस्कृति, जलवायु तथा मानव जीवन को सभी प्रकार से सुरक्षित रखा है। इसकी विशाल जल वाहिनियों के कारण ही यह विश्व का सर्वोत्तम उपजाऊ और धन-धान्य पूर्ण देश बन पाया है। दक्षिण की ओर समुद्र ने इसे विश्व के अन्य देशों से संबंधित होने का सौभाग्य प्रदान किया है।

(३) भारत का कुल क्षेत्रफल सम्पूर्ण पृथ्वी का लगभग २·२ प्रतिशत है। किन्तु यहाँ पृथ्वी की जनसंख्या का लगभग $\frac{१}{६}$ भाग (लगभग १५ प्रतिशत) है; अतः यह देश संसार के घने-बसे देशों में से है। भारत की जनसंख्या उत्तरी और दक्षिणी अमरीका की सम्मिलित जनसंख्या (४१$\frac{१}{२}$ करोड़) से कुछ अधिक, और अफ्रीका की जनसंख्या (२६ करोड़) की लगभग पौने दो गुनी से कुछ अधिक है। यह रूस की २ गुनी, सं० रा० अमरीका की २·६ गुनी और इङ्गलैंड की लगभग ६ गुनी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विश्व के प्रत्येक ६ व्यक्तियों में से एक व्यक्ति भारतवासी है।

(४) विश्व का सर्वोच्च पर्वत हिमालय भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित है जिसमें विश्व की प्रथम चार ऊँची चोटियाँ माऊंट एवरेस्ट (८,८४८ मीटर), गॉड-विन आस्टिन (८,६११ मीटर), कंचनजंघा (८,५८५ मीटर) और धौलागिरि (८,१६७ मीटर) हैं।

इनसे विश्व की महान् नदियाँ निकलकर भारत को एक लहलहाता देश बनाने का सौभाग्य देती हैं। इन्हीं पर्वतों ने भारत को उत्तर की ओर के आक्रमणों तथा शीत वायु के झोंकों से बचाया है।

(५) भारत के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस देश का लगभग समस्त भू-भाग ऐसा है जो भारतवासियों द्वारा

उपयोग में ले लिया गया है जबकि अन्य देशों के साथ यह बात लागू नहीं है। रूस, कनाडा, जापान, आस्ट्रेलिया और साइबेरिया आदि अनेक ऐसे देश हैं जिनके भाग पहाड़ी होने के कारण अथवा बर्फ से ढके होने से मानव उपयोग में नहीं आ सके हैं।

(६) उत्तर से दक्षिण तक अधिक विस्तार होने के कारण देश की प्राकृतिक अवस्था में बड़ी भिन्नता पाई जाती है। कहीं गगनचुम्बी पर्वत मिलते हैं जो अधिकांश समय तक बर्फ से ढके रहते हैं तो कहीं नदियों की गहरी और उपजाऊ घाटियाँ। कहीं पठार हैं तो कहीं लहलहाते खेत। नदियों की भी यहाँ अधिकता है अतः देश धन-धान्य से परिपूर्ण है। कपास, तम्बाकू और चावल के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में दूसरा है। चमड़े और लाख के उत्पादन में भारत सर्व-प्रथम स्थिति में है। यहाँ विश्व में सबसे अधिक चाय, तिलहन, गन्ना पैदा किया जाता है। यहाँ के वनों में ४,००० से भी अधिक किस्म की लकड़ियाँ मिलती हैं। अभ्रक, मैंगनीज और कच्चे लोहे के उत्पादन में भी भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है।

(७) जलवायु संबंधी विषमतायें भी भारत में उपलब्ध हैं। चेरापूँजी जैसे अत्यधिक वर्षा वाले भाग और प० राजस्थान जैसे शुष्क मरुस्थलीय प्रदेश, बंगाल की जल-पूर्ण भूमि और पंजाब के अर्द्ध-शुष्क बलुही मैदान तथा पश्चिमी घाट के अधिक वर्षा वाले भाग और दकन के वृष्टि-छाया के प्रदेश सभी इस विषमता के सूचक हैं। इन विषमताओं का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश के आर्थिक और मानवीय जीवन पर पड़ा है।

(८) यहाँ कई धर्मों और जाति के लोग पाये जाते हैं। पारसी, सिक्ख, ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध तथा जंगली जातियाँ सभी मिलती हैं। कहा जाता है कि प्रति २४० कि० मी० के अन्तर पर भाषा, रहन-सहन और रीति, रिवाजों में भी अन्तर हो जाता है। देश भर में २२५ भाषायें बोली जाती हैं जिनमें १४ भाषायें मुख्य हैं। इसी कारण देश में असंख्य मन्दिर, मस्जिदें, गिरजाघर और गुरुद्वारे पाये जाते हैं। जैन और बौद्ध धर्म का जन्म गंगा की घाटी में ही हुआ है।

विश्व के सुन्दरतम भवन निर्माण के नमूने भारत में ही हैं। आगरा का ताजमहल, फतहपुर सीकरी के महल, मैसूर में सबसे ऊँची एक ही पत्थर की बनी गोमतेश्वर की मूर्ति, खजुराहो, कोणार्क, मदुराई और कांचीवरम के भव्य मन्दिर, दिल्ली का कुतुबमीनार, रामेश्वरम का सबसे लम्बा मन्दिर का दालान (१२०० मीटर तथा विश्व का सबसे लम्बा प्लेटफार्म सोनपुर (६३० मीटर) में है तथा सबसे बड़ा गुम्बज बीजापुर में है। भारत की वैदिक संस्कृति विश्व की संस्कृतियों में सबसे पुरानी है तथा यहीं सभ्यता का प्रकाश सबसे पहले फैला था।

क्या भारत एक महाद्वीप है ?

उपरोक्त विशेषताओं के कारण अनेक विद्वानों द्वारा भारत को प्रायः एक उप-महाद्वीप की संज्ञा दी गई है। उनके इस कथन के मुख्य आधार निम्नांकित हैं :—

(१) भारत का क्षेत्रफल बहुत बड़ा है—विश्व का लगभग ३ प्रतिशत।

(२) भारत की जनसंख्या भी अधिक है—विश्व की लगभग १६ प्रतिशत।

(३) भारत और पाकिस्तान मिलकर उत्तर की ओर एक ऐसी प्राकृतिक सीमा से घिरे हुए हैं कि जिसके कारण प्राचीन काल में इनका सम्पर्क उत्तरी देशों से स्थलीय मार्गों के कारण कम हो सका।

(४) भारत के भीतर भी भौतिक परिस्थितियों संबंधी अनेक अवरोध पाये जाते हैं—यथा पहाड़, पठार, नदियाँ, मरुस्थल, बीहड़ और जंगल आदि—जिनके फलस्वरूप उत्तर और दक्षिण तथा पश्चिम और पूर्व के बीच निवासियों की भाषाओं, बोलियों, वेश-भूषा, खान-पान एवं रहन-सहन में भारी अन्तर पाया जाता है।

उन भूगोल-वेत्ताओं के अनुसार भारत में पहले कभी भी राजनीतिक एकता नहीं रही। समूचे देश का नाम भी एक नहीं रहा। उत्तरी भारत को **आर्यावर्त** और दक्षिण भारत **दक्षिण-पथ** कहलाता था और यहाँ पर विभिन्न संस्कृतियों एवं विरोधी धर्मों का विकास हुआ है।

किन्तु यह कथन सत्य नहीं है। भारत जैसे विशाल देश का क्षेत्रफल लाखों वर्ग किलोमीटर में फैला है। अतः प्राकृतिक दशा, जलवायु, वनस्पति, निवासियों के रंग-रूप, बोल-चाल, खान-पान, रहन-सहन और रीति-रिवाज में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक ही है। उत्तर में विस्तृत मैदान हैं तो दक्षिण में ऊबड़-खाबड़ भूमि। कहीं लहलहाते खेत दृष्टिगोचर होते हैं तो कहीं जलविहीन मरुस्थल। कहीं जनसंख्या भूमि के अनुपात में अधिक है तो कहीं बहुत ही बिरली। किन्तु इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत एक विशेष प्रकार की संस्कृति द्वारा बंधा है। सर्वत्र देश में मूलभूत एकता दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण देश जलवायु की दृष्टि से सामान्यतः एक गर्म देश है जहाँ ऋतुओं का एक ही क्रम पाया जाता है। समूचे देश पर मानसूनों का प्रभाव एक सा ही पड़ता है। कृषि पूरे देश का एक राष्ट्रीय उद्योग है। कृषि के तरीके भी एक से ही हैं। चाहे कृषक हिन्दू हो या मुस्लिम, सूखा पड़ने पर दोनों को ही समान रूप से इसका फल भुगतना पड़ता है। यहाँ के निवासियों का दृष्टिकोण सदैव आध्यात्मिक रहा है। यहाँ के निवासियों के विचार स्वातंत्र्य के कारण ही कभी-कभी विभिन्न विचार-धारायें दिखाई पड़ती हैं किन्तु वह भी प्रायः पूरे देश में। फलतः भारत को एक महान देश कहना ही अधिक उपयुक्त है जिस प्रकार कि रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्राजील तथा चीन आदि देशों को उनकी विभिन्नताओं के होने पर भी हम केवल देश ही कहते हैं उप-महाद्वीप नहीं। अतः भारत भी एक देश है। केवल अंग्रेज भूगोलवेत्ताओं ने ही इस बात पर जोर दिया कि भारत एक उप-महाद्वीप है। उनके ऐसा मानने का मुख्य कारण अंग्रेज सरकार की फूट डालने की नीति थी जिसके आधार पर ही अंततः भारत का विभाजन हुआ है।

अनेकता में एकता

उपर्युक्त विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में मौलिक एकता है। यह एक इकाई है। "अनेकता में एकता" (Unity among Diversity) भारतीय संस्कृति का विशिष्ट तत्व है। शताब्दियों से भारत एक देश रहा है। प्रकृति ने भी इसे स्वाभाविक रूप से ही एक पृथक इकाई बनाया है जैसा कि इस प्रार्थना से स्पष्ट होगा:—

"गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिंकुरू ॥"

देश के चारों कोनों में स्थापित देवालय हमारी एकता प्रदर्शित करते हैं। हमारे धार्मिक स्थान उत्तर में अमरनाथ से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम् तक फैले हैं। जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने अपने चारों मठों की स्थापना उत्तर (बद्रीनाथ), दक्षिण (रामेश्वरम्), पूर्व (जगन्नाथ) और पश्चिम (द्वारका) के चारों छोरों पर करके देश की एकता को सुदृढ़ बनाया है। भारत के विभिन्न प्रदेश इस देश के शरीर के विभिन्न अंग हैं और किसी भी अंग का अलग होना अस्वाभाविक ही लगता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय सम्राटों की आकाँक्षा चक्रवर्ती बनकर संपूर्ण भारत पर राज्य करने की रही है। चाणक्य ने इसी प्रकार के सार्वभौमिक राज्य का स्वप्न चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में साकार करने का प्रयत्न किया था। राजसूयज्ञ और अश्वमेध यज्ञ भी इस राजनीतिक एकता के चिन्ह थे। अशोक, समुद्रगुप्त, अकबर प्रभृति सम्राटों ने पूरे भारत पर अपनी सत्ता स्थापित कर देश की एकता को बनाया है। अंग्रेजी शासन काल में भी केन्द्रीय सरकार ने देश को राजनीतिक एकता दी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की जो राजनीतिक एकता बनी है वह स्तुत्य है।

भारत का सांस्कृतिक जीवन भी इसकी मूलभूत एकता का प्रतीक है। यह अत्यंत प्राचीन काल से ही अनेकों जातियों और धर्मावलम्बियों की संगमस्थली रही है। विभिन्न जातियों के आगमन, अनेक सभ्यताओं के सम्पर्क और विभिन्न विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान से भारतीय संस्कृति बनती गई पर उसकी मूल आत्मा में अन्तर नहीं आ पाया। प्राचीन काल से ही ऋषियों, और मनीषियों ने भारतीय सांस्कृतिक जीवन की विभिन्न धाराओं को एकता प्रदान की है जिसके मूल में भारतीयों की उच्च धार्मिक वृत्ति रही है।

इस प्रकार यद्यपि भारत अपने बाहरी जीवन में अनेक प्रकार की विभिन्नता लिए हुए है किन्तु उसकी तह में हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक एक आंतरिक एकता है।

महाकवि **रवीन्द्रनाथ टैगोर** के शब्दों में :

"हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य, हेथाय द्राविड़ चीन।
शक हूण दल, पाठान मोगल, एक देह हलो लीन॥

अर्थात् यहाँ आर्य हैं, अनार्य हैं, यहाँ द्राविड़ और चीनी लोग हैं। शक, हूण, मुगल, पठान और न जाने कितनी अन्य जातियों के लोग यहां आए हैं—और इस देश की देह में मिलकर मानो लीन हो गये हैं।

प्रो० डोडवल के शब्दों में, "भारतीय संस्कृति एक विशाल महासागर के समान है जिसमें अनेक दिशाओं से आकर विभिन्न जातियाँ और धर्म रूपी नदियाँ आकर विलीन होती हैं।" यही कारण है कि भारत में विभिन्न विचारों का सुन्दर समन्वय हुआ है और हमारी संस्कृति एक मिली-जुली संस्कृति कही जाती है।

डा० सिद्धालंकार के शब्दों में, "यहाँ अनेक संस्कृतियाँ इस प्रकार मिश्रित हो गई हैं कि आज यह कहना अत्यंत कठिन है कि संस्कृति का कौन सा रूप इसका अपना है और कौन सा पराया। मानव-शास्त्र की दृष्टि से भारत में विभिन्न नृ-वंश एवं प्रजातियाँ आपस में आदान-प्रदान द्वारा आत्म-विलय करती रही हैं

जिसमें उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व समाप्त होकर एक नया ही व्यक्तित्व प्रकट हो गया है।"

अंत में कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल देश की भौतिक संरचना, और वनस्पति एवं जलवायु में अंतर होने के कारण एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में होने वाली उपज, पशु-पक्षी, मानव के रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान, एवं रीति-रिवाज आदि में अत्यधिक विषमता पाई जाती है किन्तु सभी एक विशेष संस्कृति से बंधे हैं। वास्तव में **यह एक बड़ा देश है। जादू की पिटारी है, रंग-बिरंगे पशु-पक्षियों का पिंजड़ा है तथा प्रकृति और पुरुष का अजायबघर है जिसकी समता विश्व के किसी अन्य देश से करना संभव नहीं है।**

भारत सदैव से ही एक अखंड भौगोलिक इकाई रहा है जिसमें पश्चिम की ओर से आने वाले आक्रमणकारी अपनी विदेशी संस्कृति को लेकर यहाँ आये और भारतीय संस्कृति में आत्मसात हो गये किन्तु देश के सभी भागों में एक-सूत्रता मिलती है। चाहे कोई हिन्दू हो या मुस्लिम, सिख हो या ईसाई, बंगाली हो या मद्रासी भारत सभी के लिए पवित्र मातृभूमि है जिस पर सभी को गर्व है।

अध्याय २

भारत की भौतिक आकृतियाँ

(PHYSICAL FEATURES)

भारत एक विशाल भूखंड है जिसका धरातल सभी जगह बनावट में समान नहीं है। इसमें कहीं ऊंचे गगनचुम्बी पर्वत हैं तो कहीं विस्तृत मैदान और कहीं कठोर भूमि वाले पठार; किन्हीं भागों में उष्ण रेत के मरुस्थल पाये जाते हैं तो कहीं सघन वन। भारत के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का १०.७% पर्वतीय भाग (जो समुद्र के धरातल से २,१३५ मीटर से अधिक ऊँचे हैं); १८.६% पहाड़ियाँ (जो ३०५ से २,१३५ मीटर तक ऊँची हैं); २७.७% पठारी क्षेत्र (जो ३०५ से ९१५ मीटर ऊँचे हैं) और ४३% भूभाग मैदानी है।[1]
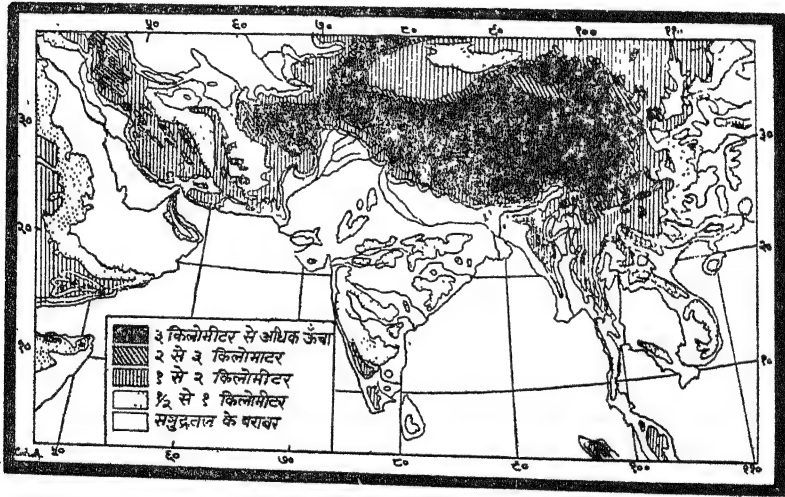
चित्र २. भारत और उसके निकटवर्ती देशों का धरातल

१९५१ के जनगणना आयुक्त के अनुसार भारत के ६ विभिन्न क्षेत्रों में इन विभिन्न भौतिक अवस्थाओं का वितरण इस प्रकार है[2]:—

---

१. विश्व के सम्पूर्ण धरातल पर १२% पर्वत; १४% पहाड़ियाँ; ३३% पठार और ४१% मैदान फैले हैं।

2. Census of India, Vol. I, Pt. I. A, 1953, p. 8.

क्षेत्र	सम्पूर्ण क्षेत्रफल (लाख एकड़ में)	पर्वत	पहाड़ियाँ	पठार	मैदान
१. उत्तरी भारत	७२६	७६	४१	३४	५७२
२. पूर्वी भारत	१,६७५	१४५	५२१	२०४	८०४
३. दक्षिणी भारत	१,०७५	४	२७८	२८६	५०६
४. पश्चिमी भारत	६५७	—	१६८	२८४	४७६
५. मध्य भारत	१,८५२	—	३३३	१,१२५	३६५
६. उत्तर-पश्चिमी भारत	१,२२६	६७	८८	३००	७४२
योग (जम्मू काश्मीर सहित)	८,१२६	८७३	१,५०६	२,२४८	३,४६८

भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत को तीन भौतिक विभागों में बाँटा जा सकता है जो अपनी भौतिक एवं भूगर्भिक विशेषताओं में एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं। भारत को इन तीन भू-विभागों में से जहाँ प्रथम दो विभागों के अपने मौलिक आधार हैं, वहाँ प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषतायें भी हैं जो भूगर्भ विज्ञान के प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग की देन हैं और तब से प्रत्येक भाग स्वतन्त्र रूप से अपने मार्ग का अनुसरण करता आया है।[3]

भारत के भौतिक विभाग

(क) हिमालय का पहाड़ी प्रदेश, जो भारत की उत्तरी एवं पूर्वी सीमा निर्धारित करता है।

(ख) सतलज और गंगा का मैदान जो उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों के मध्य में स्थित है और जो सतलज नदी की घाटी से लगाकर आसाम में ब्रह्मपुत्रा की घाटी तक फैला है।

(ग) प्रायद्वीप और त्रिभुजाकार पठार।

भौतिक भूभागों की प्रधान विशेषताएँ—प्रायद्वीपीय पठार और हिमालय पहाड़ी प्रदेश में निम्न विभिन्नताएँ पाई जाती हैं[4] :—

(१) दक्षिणी पठार सदैव से ही कठोर भू-भाग रहा है। पृथ्वी के धरातल का यह वह भाग है जो कैम्ब्रियन युग (Cambrian-Period) से कभी भी स्थायी रूप से समुद्र के नीचे नहीं गया। यद्यपि कहीं-कहीं या अस्थायी रूप से ऐसा हो गया है क्योंकि कैम्ब्रियन-युग के पश्चात् इस भाग के अंतरंग में कहीं भी सामुद्रिक तल-पदार्थ (marine sediment) नहीं पाये जाते। इसके विपरीत हिमालय पर्वत प्रदेश अपने इतिहास के अधिकांश समय में समुद्र में डूबा रहा है और क्रमागत सामुद्रिक तल-पदार्थों से ढकता रहा है जो सभी महान् भूगर्भिक युगों की विशेषता है।

3. *D. N. Wadia*, Geology of India, 1939, p, 1.
4. *D. N. Wadia*, Ibid, pp. 1-3.

(२) दक्षिणी पठार पृथ्वी की ऊपरी-सतह के ऐसे स्थिर भाग को प्रकट

चित्र ३. भारत का भौतिक स्वरूप

करता है जिस पर कभी भी पर्वत-निर्माण क्रिया (Mountain Building movement) का प्रभाव नहीं पड़ा है। दूसरों शब्दों में, यह ऐसी कठोर चट्टानी सतह का

बना है जो एक दृढ़ एवं अगतिशील नींव पर आधारित है और जो कि उन सभी अतीत काल से होने वाली भू-क्रान्तियों में अविचल रहा है, जिन्होंने बार-बार पृथ्वी के धरातल को परिवर्तित कर दिया है। इसके विपरीत हिमालय पर्वत प्रदेश पृथ्वी की सतह के कमजोर और लचीले भाग से उत्पन्न हुए हैं जिसमें समय-समय पर टूट-फूट तथा कुरूपता (deformation) होती रहती है। चट्टानों के मोड़ (Rock-folds), ऊँची-नीची दरारें (faults), तथा दबे हुए प्रहार-स्थल (thrust-plains) यहाँ इतनी अधिकता में पाये जाते हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि यह असंख्य विस्फोटों और भू-क्रान्तियों का स्थान रहा है।

(३) दक्षिणी पठार और हिमालय पहाड़ी प्रदेश के उभड़े हुए धरातल में अन्तर उपर्युक्त दोनों असमानताओं के परिणामस्वरूप है। प्रायद्वीप के पर्वत वास्तविक अर्थ में पर्वत नहीं हैं, अपितु पठार के कुछ ऐसे प्रमुख भाग हैं जो एक या अन्य कारणों से मौसमी क्षति (weathering) के विनाशकारी प्रभाव से बच रहे हैं (Relict Mts.) जिसने कि प्रस्तुत भूमि के अन्य निकटवर्ती भागों को काट दिया है। यहाँ की नदियों की घाटियाँ चौरस एवं उथली हैं जिनमें नाम मात्र का ढाल है क्योंकि उसकी धारायें भूमि को काटती हुई अपने अन्तिम आधार-स्तर (base level) तक पहुँच गई हैं।

इसके विपरीत हिमालय प्रदेश के पर्वत वास्तविक पर्वत हैं (Tectonic Mts.)। इनकी नदियाँ उन द्रुतगामी पर्वतीय झरनों की धारायें हैं जो अभी अपनी अपरिपक्व अवस्था में है। वे अपने मार्ग में पड़ने वाली सभी असमानताओं को काटने तथा प्रवाह मार्ग को गहरा करने के निरन्तर प्रयत्न में लगी हुई हैं।

(क) उत्तरी पर्वतीय प्रदेश (Northern Mountain Wall)

हिमालय का पहाड़ी प्रदेश उत्तरी पहाड़ भारत की उत्तरी सीमा में पश्चिम से पूर्व की ओर २,४०० कि० मी० की लम्बाई में एक तलवार के आकार में फैले हैं। इनकी चौड़ाई १६० से ४०० कि० मी० तथा औसत ऊँचाई ६,००० मीटर है। ये पर्वत उस विशाल पर्वत प्रणाली के—जिसे **पामीर की गाँठ** (Pamir Knot) कहते हैं—भाग हैं जो मध्य एशिया से मध्य यूरोप तक फैली है। इस श्रेणी के दक्षिणी पूर्वी भाग हिमालय पर्वत कहलाते हैं। इन पर्वतों ने भारत को समस्त एशिया से प्रायः पृथक-सा कर दिया है।

हिमालय का भौगोलिक वर्गीकरण

ये पर्वत कई पर्वत श्रेणियों से मिलकर बने हैं जो एक दूसरे के समानान्तर फैली हुई हैं। मुख्य हिमालय चार श्रेणियों से बने हैं :—

(१) **महा या मध्य हिमालय** (Great or Central Himalayas)—यह सबसे उत्तर की श्रेणी है। यह सिन्धु नदी के मोड़ के पास से ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ तक २,४०० कि० मी० तक टेढ़ी रेखा की भाँति फैली हुई है। इसकी चौड़ाई २५ कि० मी० और औसत ऊँचाई ६,००० मीटर है। केवल इसी पर्वत श्रेणी में ४० ऐसी ज्ञात चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई ७,००० मीटर से अधिक है और २७३ ऐसी अज्ञात चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई ६१ हजार मीटर से अधिक है। हमारे देश की सबसे ऊँची चोटियाँ इसी भाग में हैं। मुख्य चोटियाँ ये हैं—माउंट एवरेस्ट या गौरीशंकर

(८,८४८ मीटर), नन्दादेवी (७,६९३ मीटर), नंगा पर्वत (८,०९८ मीटर), गोसाईं थान (८,२७८ मीटर), कंचनजंघा (८,५८५ मीटर), और धौलागिर (८,१६७ मीटर)। ये सभी चोटियाँ वर्ष के अधिकांश भाग में बर्फ से जमी रहती हैं। किंगडन वार्ड के अनुसार यह श्रेणी पूर्व में चीन तक विस्तृत है। सालवीन, मीकांग और यांग्टसी नदियों के उद्गम इसी श्रेणी में हैं। किन्तु वाडिया और मैसन के अनुसार यह श्रेणी दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। इस श्रेणी का ढाल सिंधु और सांपू की संकड़ी घाटियों की ओर साधारण है किन्तु दक्षिण में यह तीव्र है अतः चौड़ी घाटियाँ कम मिलती हैं। सिंधु, सतलज और दिहांग नदियों की घाटियाँ बड़ी सकड़ी हैं। श्रेणी के मध्यवर्ती भाग से गंगा, जमुना और उनकी सहायक नदियाँ निकलती हैं। हिमालय पर्वत के गर्भ भाग में ग्रेनाइट, नीस और शिष्ट शिलाओं का आधिक्य है जो बहुत ही प्राचीन चट्टानें हैं।

(२) **लघु या बाहरी हिमालय श्रेणी** (Lesser or Outer Himalayas)—यह श्रेणी उत्तरी श्रेणी के दक्षिण में उसी के समानान्तर फैली हुई हैं। यह ८० से १०० कि०मी० चौड़ी है। इस श्रेणी की औसत ऊँचाई १,८२८ से ३,००० मीटर और अधिकतम ऊँचाई ४,५०० मीटर है। इसमें कई छोटी-छोटी श्रेणियाँ हैं जिनकी अनेक भुजाएँ (Spurs) हैं। भारत के प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान शिमला, मंसूरी, नैनीताल और
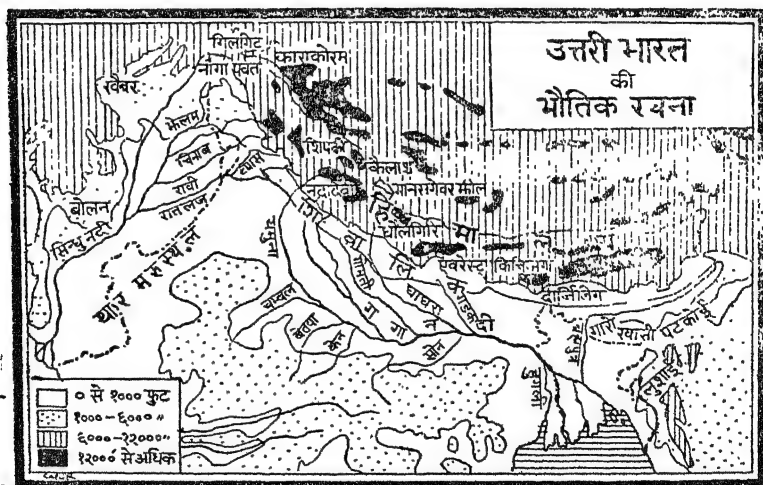
चित्र ४. उत्तरी भारत की भौतिक रचना

दार्जिलिंग आदि इसी श्रेणी के निचले भागों पर हैं। इस श्रेणी में स्लेट, चूने के पत्थर, क्वार्टज् और अन्य शिलाओं की अधिकता पाई जाती है। इनमें शिलामूल अवशेष बिल्कुल नहीं मिलते।

(३) **उप-हिमालय या शिवालिक श्रेणी** (Sub Himalayas or Siwaliks)—यह पर्वत श्रेणी उपरोक्त दोनों श्रेणियों के दक्षिण में है। ये पंजाब में पोटवार बेसिन के दक्षिण से आरम्भ होकर पूर्व की ओर कोसी नदी तक फैली है। यह हिमा-

लय का सबसे नवीन भाग है। इसको लघु हिमालय से अलग करने वाली घाटियों को पश्चिम में **दून** (Doon)[५] और पूर्व में **द्वार** (Duars) कहते हैं। इसकी चौड़ाई ८ से ४८ कि० मी० और औसत ऊँचाई १,२२० मीटर के लगभग है। बड़े मैदान की भाँति यह श्रेणी भी चिकनी मिट्टी, बालू और कंकड़ की बनी है। इसका सम्पूर्ण भाग दलदल और वनाच्छादित है।

(४) **ट्रान्स हिमालय** (Trans-Himalayas)—कुछ भूगोलवेत्ता हिमालय की एक चौथी श्रेणी और स्वीकार करते हैं। यह श्रेणी ट्रांस-हिमालय के नाम से पुकारी जाती है। सन् १९०६ ई० में **स्वेन हेडिन** (Seven Hedin) ने इसकी खोज की थी। यह श्रेणी अपने मध्य में २२५ कि० मी० चौड़ी है तथा पूर्व और पश्चिम की ओर अपने सिरों पर ४० कि० मी० चौड़ी है। इसकी कुल लम्बाई ९६५ कि० मी० है। यह ३,१००से ३,७०० मीटर ऊँची है। यह श्रेणी बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों तथा उत्तर की ओर से भूमि से घिरे हुए जलाशयों में गिरने वाली नदियों के लिए जल-विभाजक का कार्य करती है। इस श्रेणी में कई दर्रे हैं जिनकी औसत ऊँचाई ५,२०० मीटर है परन्तु इनमें से डिंगला दर्रे की ऊँचाई ५,७९५ मीटर से भी अधिक है।

कराकोरम पर्वत-श्रेणी (Karkoram Range)—कराकोरम पर्वत-श्रेणी किस प्रकार फैली हुई है, यह तो आज भी विवादास्पद है परन्तु **स्वेन हेडिन** ने इसे **एशिया की रीढ़** (Back-Bone of High Asia) कहा है। इस पर्वत श्रेणी का आधा दक्षिणी भाग **श्योक नदी** की घाटी तक लगभग ८० कि० मी० चौड़ा है और औसत ऊँचाई ३,१०० मीटर है। यह ऊँचाई शेष उत्तरी भाग के लिए भी मानी जा सकती है। कराकोरम के शिखर से दक्षिण की ओर जो प्रमुख पहाड़ियाँ निकलती हैं उनमें **हरमोश, माशरबूम** (Masherbum) और **सासिर** हैं। इनमें से हरमोश पहाड़ी लद्दाख श्रेणी को जोड़ती है और सासिर कैलाश श्रेणी को। माशरबूम पहाड़ी बालतोरो ग्लेशियर की घाटी द्वारा कराकोरम श्रेणी से अलग हो गई है। इस पहाड़ी में माशरबूम की ऊँची चोटी स्थित है और यह प्रमुख श्रेणी के समानान्तर फैली हुई है। उत्तर श्रेणी की मुख्य पहाड़ियाँ **अगहिल** पहाड़ी और कराकोरम जल-विभाजक हैं। यह बड़ी ही ध्यान देने योग्य बात है कि नैपाल हिमालय की तरह कराकोरम में भी हिमालय की कुछ बहुत ही ऊँची चोटियाँ पाई जाती हैं—जैसे K^2 (८,६११ मीटर) और **माशरबूम** (७,७२१ मीटर) हैं। **एलिंग कंगरी** श्रेणी, जो सदा बर्फ से ढकी रहती है, कराकोरम के दक्षिण की ओर फैली है।

जान्सकर पर्वत श्रेणी (Zanskar Range)—यह पर्वत श्रेणी हिमालय की उत्तरी शाखा है और यह उत्तर में लद्दाख श्रेणी और दक्षिण में महा-हिमालय के बीच स्थित है। इसमें **डास** और **जान्सकर** दो बड़ी नदियाँ बहती हैं। कामेत जो ७,८७३ मीटर ऊँची है, इसकी सबसे प्रसिद्ध चोटी है। इस श्रेणी में कई दर्रे हैं। उनमें से कुछ प्रसिद्ध दर्रे हैं : **दर्मा** ५,४८१ मीटर, **किंगरी बिंगरी** ५,५७७ मीटर, **शाल शाल** ४९३८ मीटर और **नीति** ५,३८९ मीटर हैं।

---

५. सबसे प्रसिद्ध देहरादून है। अन्य 'दून' या घाटियाँ कुमायूँ में कोटादून, पतलीदून, कोठरीदून, चुम्बीदून और कियार्दादून हैं।

जल विभाजक और हिमालय की ऊँची चोटियाँ—यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि हिमालय की सबसे ऊँची चोटियाँ भारत और तिब्बत के बीच जल विभाजक के दक्षिण की ओर हैं और मैदान से लगभग १६० कि० मी० दूर हैं। जल विभाजक की औसत ऊँचाई ५,४९० मीटर से अधिक है परन्तु भारत और तिब्बत के बीच मार्ग समुद्र तल से लगभग ४,८८० मीटर की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

हिमालय की शाखायें (Of-Shoots of the Himalayas)

यदि कोई व्यक्ति बाँस के टुकड़े को दबाये तो उसे अनुभव होगा कि वह टेन्जेन्ट (Tangentially) के अनुरूप फटता है और जो टुकड़े उससे अलग होते हैं वे अपनी मूल दिशा (originality) बनाये रखते हैं। ठीक यही बात हिमालय में भी देखी जाती है। जहाँ कहीं श्रेणी का केन्द्रीय बिन्दु अपनी दिशा बदलता है अथवा जहाँ कहीं नदी इसे आड़े रूप में काटती है वहाँ एक नई शाखा मूल दिशा की ओर निकली हुई पाई जाती है। जहाँ कहीं इस प्रकार शाखायें फूटती हैं छोटी श्रेणी पहले
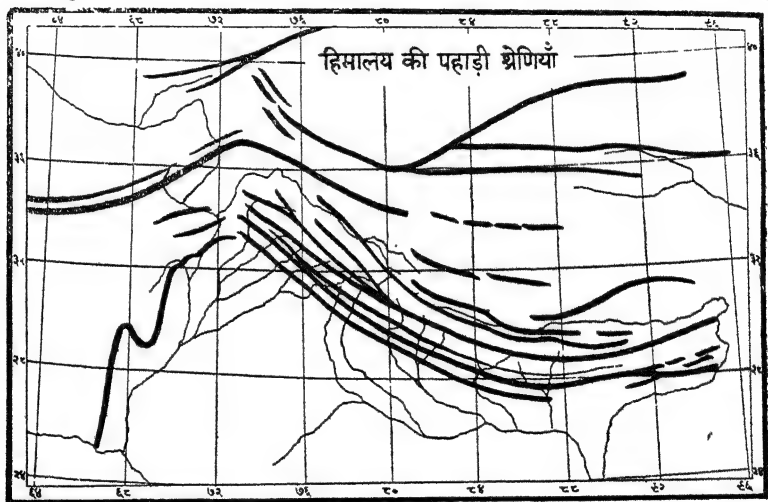
चित्र ५. हिमालय की पहाड़ी श्रेणियाँ

उस दिशा की ओर जाती है जिसे बड़ी श्रेणी छोड़ देती है। धीरे-धीरे वह अपनी दिशा बदल देती है और अन्त में बड़ी श्रेणी के अनुरूप उसके समानान्तर चलती है। उस बिन्दु से जहाँ सतलज महा-हिमालय को काटती है **पीर पंजाल** की नवीन श्रेणी महा-हिमालय के दक्षिण में पश्चिम की ओर निकल जाती है। इसी तरह जहाँ अलकनंदा, बद्रीनाथ के मंदिर के चरण धोती हुई महा-हिमालय को पार करती है वह मूल श्रेणी के दक्षिण **धोलाधार** नामक प्रसिद्ध श्रेणी पश्चिम को फट जाती है। जहाँ काली गंडक धवलागिरि के समीप महाहिमालय को काटती है वहाँ **नगतीबा श्रेणी** पश्चिम को निकल जाती है और धौलाधार से जाकर मिल जाती है। कुमायूँ जिले में लगभग १६० कि० मी० तक यह श्रेणी लगातार चली गई है और बीच में कहीं भी कटी हुई नहीं है। इसलिए यह अलकनंदा और पिन्डर को इसके समानान्तर बहने को बाध्य कर देती है। केवल हरद्वार के उत्तर में यह इसे पार कर पाती है।

गुरला मान्धाता के नीचे करनाली नदी इसको (महा-हिमालय को) पार करती है और वहीं जान्सकर श्रेणी बन जाती है जो उसके उत्तर की ओर जाती है और जिसके ऊपर कामेत चोटी स्थित है।

हिमालय का प्रादेशिक वर्गीकरण (Regional Classification of the Himalayas)

सिडनी बुर्राड ने महान् हिमालय का वर्गीकरण चार खण्डों में किया है :—

(क) **पंजाब हिमालय** (Punjab Himalayas)—सिन्ध नदी से लगाकर सतलज नदी तक ५६२ कि०मी० की लम्बाई में फैले हैं। सतलज के पश्चिम की ओर इसकी ऊँचाई कम होती जाती है किन्तु पूर्व की ओर ६७०५ मीटर से भी अधिक ऊँची **केदारनाथ** तथा **बद्रीनाथ** आदि चोटियाँ हैं। इस श्रेणी के उत्तरी ढाल निर्जन, ऊबड़-खाबड़ और सूखे हैं जिसके बीच में पठार और कुछ झीलें अवस्थित हैं किन्तु दक्षिणी ढाल सर्वत्र ही सघन वनों से आच्छादित हैं। ये हिमालय अधिक शुष्क है अत: यहाँ हिम-रेखा भी अधिक ऊँचाई पर पाई जाती है।

(ख) **कुमायूँ हिमालय** (Kumaon Himalayas)का विस्तार सतलज नदी से काली नदी तक ३२० कि०मी० है। इसी श्रेणी में उत्तर प्रदेश के मुख्य जिले अल्मोड़ा, गढ़वाल तथा नैनीताल स्थित हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बहुत पहले इस प्रदेश में ३६० झीलें थीं; उन्हीं के सूख जाने से यहाँ कुछ उपजाऊ भाग बन गये हैं। इस भाग की मुख्य ऊँची चोटियाँ **बद्रीनाथ** (७३१८ मी०), **केदारनाथ** (६,९४० मी०), **त्रिशूल** (७,१२० मी०), **माना** (७,२७३ मीटर), **गंगोत्री** (६,६१३ मीटर) और **शिवलिंग** (६,६३२ मीटर) हैं। भागीरथी और जमुना आदि नदियों के उद्गम स्थान यहीं हैं।

(ग) **नेपाल हिमालय** (Nepal Himalayas)—यह ८०० कि०मी०के विस्तार में काली नदी और तिस्ता नदी के बीच में फैले हैं। इसी भाग में भारत की सबसे ऊँची चोटियाँ अवस्थित हैं। **कंचनचंघा** (८,५८५ मी०) **मकालू** (८,४७० मीटर)और एवरेस्ट (८,८४८ मीटर) आदि।

(घ) **आसाम हिमालय** (Assam Himalayas)—यह तिस्ता नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक ७५० कि० मी० की लम्बाई में फैले हैं। इस श्रेणी का ढाल मैदान की ओर बड़ा तेज है किन्तु पश्चिम की ओर क्रमश: धीमा होता गया है। इसकी मुख्य चोटियाँ **कुला काँगड़ी**(७,५५४ मीटर), **चुमल हारी**(७,३१५ मीटर), **काबरू**(७,३२० मीटर) **जांगसांगला** (७,३४० मीटर) और **पौहुनी** (७०१५ मीटर) हैं।

हिमालय की ऊँची चोटियाँ (Himalayan Peaks)

हिमालय की ऊँची चोटियों की स्थिति और उनका ज्ञान भूगोलवेत्ता, अन्वेषक और आपरीक्षण करने वाले सबके लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। नदियों का मार्ग तथा कम महत्व के धरातली रूप इनके सन्दर्भ से भली प्रकार प्रकट किये जा सकते हैं। **सर सिडनी बुर्राड** ने हिमालय की चोटियों को उनकी ऊँचाई के अनुसार पाँच भागों में बाँटा है :—[६]

---

6. *J. Banerjee*, "The Glory of the Himalayas" in Himalaya, Vol. I., No. 1, (1952), p. 17.

(१) प्रथम श्रेणी की वे चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई ८,५४० मीटर से अधिक हैं। ये निम्न हैं :—

एवरेस्ट की चोटी	(नेपाल हिमालय)	८,८४८ मीटर
K^2	(कराकोरम)	८,६११ मीटर
कंचनजंघा	(नेपाल हिमालय)	८,५८५ मीटर

एवरेस्ट की चोटी—यह हिमालय की सबसे ऊँची चोटी है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई ८,८४८ मीटर है। धरातल का यह सबसे ऊँचा बिन्दु है। यह नेपाल

चित्र ६. माउंट एवरेस्ट का दृश्य

हिमालय में स्थित है। सन् १८५६ में सर एन्ड्रयू वॉग ने उसके पहले के भारत के मुख्य आपरीक्षणकर्त्ता (Surveyor General) सर जार्ज एवरेस्ट के नाम पर इसका उपरोक्त नाम रखा। तिब्बत में इस चोटी को चोमोलुंग्मा कहते हैं। आधुनिक समय में इस चोटी को विजय करने के लिये मनुष्य ने कई प्रयत्य किये हैं। इसी प्रयत्न में कई लोगों ने अपने प्राण तक गंवा दिये। वस्तुतः ऐसे ऊँचे पर्वतों पर चढ़ना बड़ा ही दुष्कर होता है किन्तु सन् १९५३ में तेनसिंह और हिलैरी नामक दो व्यक्तियों ने इसे

पददलित कर ही दिया। ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ने का सर्वाधिक अनुकूल समय १ मई से जून के प्रथम भाग तक रहता है।

K² या गोडविन आस्टीन (K² or Mount Godwin Austin)—यह कराकोरम की सबसे ऊँची चोटी है और काश्मीर को चीनी तुर्किस्तान से अलग करती है। एवरेस्ट पर्वत शिखर के बाद संसार की यह दूसरी बड़ी चोटी है। समुद्र-तल से इसकी ऊँचाई ८,६११ मीटर है। इस चोटी को सन् १९०९ ई० में एब्रुजी के ड्यूक ने विजय किया था।

कंचनजंघा (Kanchanjunga)—यह हिमालय की तीसरी बड़ी चोटी है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई ८,५८५ मीटर है। यह पूर्व हिमालय में सिक्किम और नेपाल की सीमा पर स्थित है। इसकी हिम-मंडित सुन्दर धवल चोटियाँ दार्जिलिंग से दिखाई पड़ती हैं। इस चोटी का दृश्य—जो उष्ण वनस्पति के प्रदेश से प्रारम्भ होकर सदा ढके रहने वाले हिम क्षेत्र तक समाया हुआ है—संसार में सर्वाधिक सुन्दर और अद्वितीय माना गया है। यह पर्वत भारत और तिब्बत के बीच जल विभाजक के बहुत अधिक दक्षिण की ओर स्थित है। अतः इससे निकलने वाली समस्त नदियाँ—उत्तरी ढाल की भी—भारत के मैदान में बहती हैं।

(२) दूसरी श्रेणी की वे पर्वत चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई ८,२३५ मीटर और ८,५४० मीटर के बीच में हैं। ये चोटियाँ निम्न हैं :—

E¹	(नैपाल हिमालय)	८,४९९ मीटर।
कंचनजंघा II	(नैपाल हिमालय)	८,४७३ ,,
मेकालू	(नैपाल हिमालय)	८,४७० ,,

(३) तीसरी श्रेणी की वे चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई ७,९३० मीटर से ८,५४० मीटर के बीच में हैं। ऐसी चोटियाँ १२ हैं :—

धौलागिरी (Dhaulagiri)	(नैपाल हिमालय)	८१६७	मीटर
चो यू (Cho Ovu)	,,	८,१५२	,,
कुटंग I (Kutang I)	,,	८,१३४	,,
नंगा पर्वत I (Nanga Parbat I)	(पंजाब हिमालय)	८,१२६	,,
अन्नपूर्णा I (Annapurna I)	(नैपाल हिमालय)	८,०७३	,,
गेशरब्रुम I (Gasherbrum I)	(कराकोरम)	८,०६८	,,
ब्रोड पीक (Broad Peak)	,,	८,०४५	,,
गेशरब्रुम II (Gasherbrum II)	,,	८,०३३	,,
अन्नपूर्णा II (Annapurna II)	(नैपाल हिमालय)	७,९३०	,,
गेशरब्रुम III (Gasherbrum III)	,,	७,९३५	,,
गेशरब्रुम IV (Gasherbrum IV)	(कराकोरम)	७,९४०	,,
गोसांईथान (Gosainthan)	(नैपाल हिमालय)	७,९१३	,,

(४) चौथी श्रेणी की वे चोटियाँ हैं जो ७,६२५ मीटर और ७,९३० मीट

के बीच ऊँची हैं। सर सिडनी बुर्राड ने ऐसी ३१ चोटियाँ गिनाई हैं किन्तु यहाँ नीचे कुछ मुख्य चोटियों के नाम ही दिये जा रहे हैं :—

पूर्वी माशरब्रुम	(कराकोरम)	७,८२१ मीटर
नंदा देवी	(कूमायूँ हिमालय)	७,८१७ ,,
पश्चिमी माशरब्रुम	(कराकोरम)	७,८०५ ,,
नंगा पर्वत II	(पंजाब हिमालय)	७,७८४ ,,
कामेत	(जान्सकर श्रेणी)	७,८२२ ,,
नमचा बरवा	(आसाम हिमालय)	७,८२० ,,

(५) पाँचवी श्रेणी की वे चोटियाँ हैं जो समुद्रतल से ७,२०० से ७,५०० मीटर के बीच ऊँची हैं। ऐसी लगभग ३६ ज्ञात चोटियाँ है। कुछ चोटियाँ ऐसी भी हैं जो ७,३२० मीटर से कम ऊँची हैं। ऐसी कुछ प्रमुख चोटियों के नाम और ऊँचाई इस प्रकार हैं :—

गंगोत्री	(कूमायूँ हिमालय)	६,६१४ ,,
गौरीशंकर	(नैपाल हिमालय)	७,२१४ ,,
कैलाश	(कैलाश)	६,७०८ ,,
केदारनाथ	(कूमायूँ हिमालय)	६,७१४ ,,
पूर्वी त्रिशूल	,, ,,	६,८०३ ,,
पश्चिमी त्रिशूल	,, ,,	७,१२० ,,

नये पर्वत होने के कारण हिमालय पर्वत की प्रायः सभी चोटियाँ बहुत ऊँची हैं। इनकी तुलना उत्तरी अमरीका, दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, तथा आलपस की चोटियों से की जा सकती है। निम्न तालिका में विश्व के प्रमुख पर्वतों की चोटियाँ बताई गई हैं :—

अकनकैगुवा	(एन्डीज)	७,०३५ मीटर
इलाम्पू	(,,)	६,७१० ,,
चिम्ब्राजो	(,,)	६,१०० ,,
माऊंट मैकिनले	(अलास्का)	६,२१७ ,,
माऊंट लोगन	(रॉकीज)	५,८०० ,,
कोटोपैक्सी	(एन्डीज)	५,७९५ ,,
किलीमांजरों	(अफ्रीका)	५,८९५ ,,
डैमावन्ड	(ईरान)	५,७८५ ,,
एलबुर्ज	(काकेशस)	५,६३२ ,,
माऊँट ब्लैंक	(यूरोप)	४,८०४ ,,
माऊंट कुक	(न्यूजीलैंड)	३,७६३ ,,

यह जानकर आश्चर्य होगा कि हिमालय की लगभग १४० चोटियाँ आलपस की उच्चतम चोटी माऊंट ब्लैंक से अधिक ऊँची हैं।

हिमालय की घाटियाँ (Himalayan Valleys)

ऊपर यह बताया जा चुका है कि हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ घाटियों द्वारा एक दूसरे से अलग करदी गई हैं। कहीं-कहीं ये श्रेणियाँ समुद्र तल से ६१५ मीटर की ऊंचाई पर ही अलग हो गई हैं अतः घाटियों से लगा कर (जहाँ कि उष्ण कटिबन्धीय तापक्रम पाये जाते हैं) चोटियों तक (जो सदा हिम से आच्छादित रहती हैं) संसार की उष्ण कटिबन्ध से ध्रुव तक समस्त प्रकार की वनस्पतियाँ देखी जाती हैं।
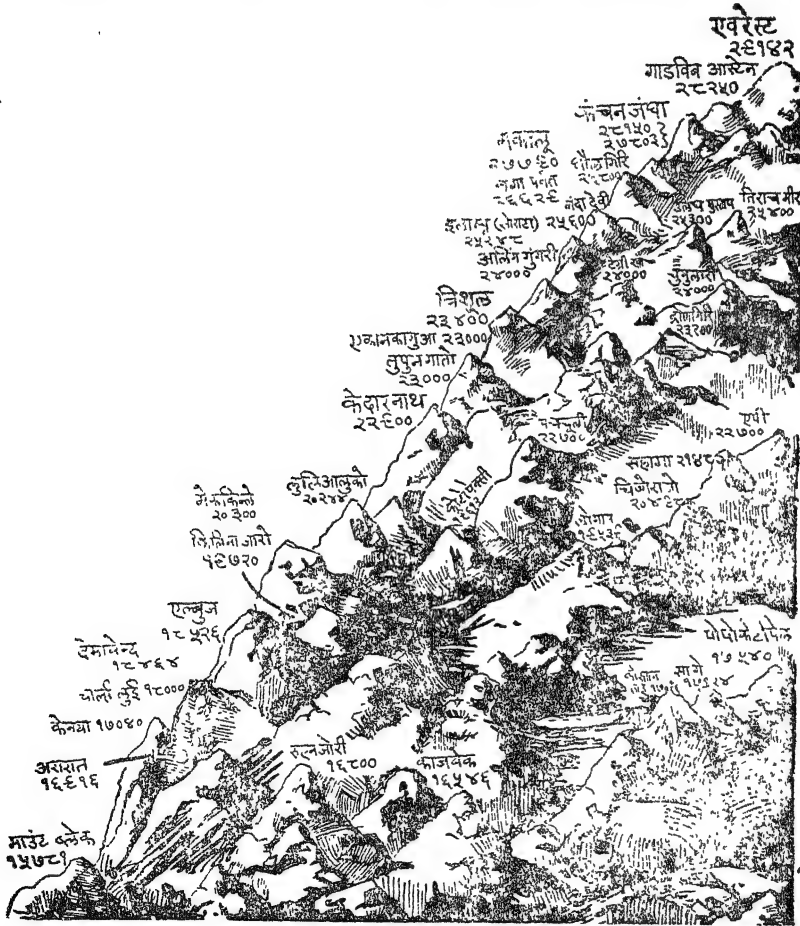
चित्र ७. प्रमुख पर्वतों की चोटियों की तुलनात्मक ऊँचाई (फीटों में)

इन घाटियों से हिमालय की कुछ ऊँची चोटियों का बड़ा ही रमणीय दृश्य दिखाई पड़ता है। इस सम्बन्ध में दो घाटियों का उल्लेख कर देना युक्तिसंगत होगा। पहली **काश्मीर की घाटी** और दूसरी नैपाल में **काठमांडू की घाटी**। ये दोनों घाटियाँ बहुत ही लम्बी, चौड़ी और उपजाऊ हैं। काश्मीर की घाटी के सम्बन्ध में तो यह बताया

जाता है कि प्रारम्भ में यहाँ एक बहुत बड़ी झील थी जो कि आधुनिक समय में सूख गई है। काश्मीर की प्रसिद्ध वूलर और डल झीलें इसी बड़ी झील के अवशेष चिन्ह बताये जाते हैं।

हिमालय की अधिकांश घाटियाँ V आकृति की हैं। इन घाटियों में नदी का जल धीरे-धीरे ऊपर की ओर पहाड़ काटता रहता है। प्रायः प्रत्येक ओर से कोई न कोई नदी ऊपर की ओर अपना मार्ग चौड़ा करती रहती है। कहीं-कहीं दोनों ओर से आई हुई नदियाँ एक दूसरे में मिल जाती हैं। ऐसे ही स्थानों से पहाड़ों को पार

चित्र ८. काश्मीर घाटी

किया जा सकता है। पहाड़ों से ऊपरी ढालों पर जहाँ नितान्त बर्फ जमी रहती है प्रायः चौड़े आकार वाली (U-shaped) घाटियाँ मिलती हैं। ऐसी घाटियों में चलना कठिन होता है। ये ही घाटियाँ हिम नदियों के प्राचीन और वर्तमान मार्ग हैं।

हिमालय के हिमागार (Himalayan Glaciers)

जैसा कि ऊपर कहा गया है हिमालय पर्वत लगभग ६० किलोमीटर ऊँचे हैं। इसके ऊँचे भाग सर्वदा बर्फ से जमे रहते है। इन्हीं भागों से बड़े-बड़े बर्फ के टुकड़े अपना भार न सम्हाल सकने के कारण टूट-टूट कर नीचे की घाटियों की ओर बढ़ते हैं। इन्हें हिमानी या हिमागार कहते हैं। हिमालय की दक्षिणी ढालें अधिक ढलुआँ हैं अतः इस ओर हिमानी २,३६० मीटर तक फिसल आती हैं किन्तु तिब्बत की ओर ढाल कम होने के कारण ये ४,५०० मीटर तक फिसल आती हैं। नैपाल हिमालय में हिमरेखा (Snow-line) की ऊँचाई ४,५०० मीटर, कुमायूँ हिमालय में ५,२०० मीटर, पंजाब हिमालय में ५,१८५ मीटर, असम हिमालय पर ४,४२० मीटर, और कश्मीर हिमालय पर ६,००० मीटर है। उत्तरी पश्चिमी हिमालय में हिमरेखा के ऊँचे होने का मुख्य कारण आर्द्रता का कम होना तथा पूर्वी हिमालय पर आर्द्रता का अधिक होना है।

हिमालय प्रदेश में हिमागारों की प्रचुरता है। प्रायः सभी बड़ी-बड़ी नदियों के उद्‌गम स्थान हिमागारों में हैं। ध्रुव प्रदेश को छोड़कर कराकोरम पर्वत के कुछ हिमागार तो संसार के सबसे बड़े हिमागारों में गिने जाते हैं।

नीचे की तालिका में इस प्रदेश के कुछ मुख्य हिमागारों की तुलनात्मक लम्बाई, ऊँचाई आदि बताई गयी है[7]:—

हिमागार	लम्बाई कि० मी० में	ऊँचाई फीट में	किस्म
		कराकोरम	
१. हिस्पार (Hispar)	६१	१०,५००	लम्बवत् (Longitudinal)
२. बतुरा (Batura)	५७	८,०३०	
३. सासाईनी (Sasaini)	१५७	८,०००	आडा (Transverse)
४. मोहिल यज (Mouahil Yaz)	२७	६,५००	
५. यज गिल (Yaz ghil)	२७	१०,४००	
६. खुरडोपिन (Khurdopin)	३६	६,०००	
७. विरजी रेव	३६	११,३२०	
	बालटिस्तान-लद्दाख		
बियाफो (Biafo)	५६	१०,३६०	लम्बवत्
बालटोरो (Baltoro)	५७	११,५८०	,,
सियाचिन (Siachen)	७२	१२,१५०	,,
पुन्मेह (Punmeh)	२७	११,६००	आडा
रिमो (Rımo)	४०	१६,३५०	,,
	उ० प० काश्मीर के	**हिमागार**	
हिनार्ची (Hinarche)		८,०००	आडा
बार्ची (Barche)		१०,०००	लम्बवत्
मिनापिन (Minapin)		८,०००	आडा

अधिकांश हिमागारों की लम्बाई चार पाँच कि०मी० ही होती है। इनकी दैनिक गति किनारों पर-३-४" तथा बीच में १ फुट तक होती है। बड़े-बड़े हिमागारों की चौड़ाई १·६ से ३$\frac{3}{5}$ कि० मी० तक होती है। इन हिमागारों में बर्फ की मोटाई भी बहुत होती है। **बालतोरो** में बर्फ की मोटाई १२० मीटर, जैमू में १६५ मीटर और **फैंडचैको** में ५४० मीटर है। फैंडचैको हिमागार प्रतिदिन १$\frac{1}{2}$ फुट और जैमू (Zemu) ६" की गति से आगे बढ़ता है। **पिंडारी** हिमागार नीचे की तरफ ६·४" और ऊपर की ओर १०" की दैनिक गति से बहता है जिसकी तुलना आल्पस के मर-डी-ग्लेस (Mer-de-Glace) हिमागार से की जा सकती है जिसकी दैनिक गति २४" है।

हिमालय के इन हिमागारों के पिघलने से ही भारत की बड़ी नदियों को जल

7. *D. N. Wadia,* Geology of India, p. 16.

प्राप्त होता है। गंगा, जमुना आदि नदियाँ गंगोत्री और यमुनोत्री आदि हिमागारों से ही निकलती हैं। **डा० बनर्जी** के अनुसार हिमालय से निकलने वाली नदियों को दिसम्बर से जून तक ६०% जल इन हिमागारों से प्राप्त होता है और जुलाई से नवम्बर तक ३५% और शेष ४०% जल निचले ढालों पर होने वाली वर्षा से प्राप्त होता है। हिमालय पर प्रति वर्ष बर्फ के रूप में जो वर्षा होती है उसमें से केवल १८% ही नदियों को मिलता है शेष ८२% वाष्पीकरण की क्रिया द्वारा उड़ जाता है। हिमालय पर स्थित प्रति वर्गमील क्षेत्र के बर्फ और हिमागारों से हमारी नदियों के लिए प्रतिवर्ष ४१० एकड़-फीट जल मिल सकता है।

भारत में पूर्वकालीन हिमयुग (Periods of Glaciation in India)

पृथ्वी के धरातल पर पूर्वकाल में एक के बाद एक अनेक हिमयुग आये हैं। भारत में भी हिमयुग रहा है किन्तु यहाँ सभी हिमयुगों के चिन्ह नहीं मिलते। किन्तु यह निश्चित है कि भारत में ऐसे युग समय-समय पर आये हैं जब वर्तमान काल की अपेक्षा जलवायु अधिक ठंढा था और हिम नदियाँ काफी नीचे तक उतर आईं थीं। यहाँ मुख्यतः तीन हिमयुग आये हैं—क्रमशः धारवाड़, गोंडवाना और प्रातिनूतन-युग (Pleistoscene)।

धारवाड़ हिमयुग के चिन्ह दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं। श्री फुट की खोजों के अनुसार दक्षिण में कालद्रुग सपिंड़ (Kaldrug Conglomerate) की अस्टीलाओं पर हिमावरण के कारण हुए अनेक खरोंच (scratches) के चिन्ह पाये जाते हैं। ये चिन्ह धारवाड़ हिमयुग के ही प्रतीत होते हैं और भारत में हिमावरण के सबसे प्राचीन प्रमाण हैं।

धारवाड़ के अतिरिक्त **गोंडवाना हिमयुग** के चिन्ह भी कई स्थानों पर मिलते हैं। निम्न गोंडवाना युग में (Lower Gondwana Period) उड़ीसा की तलचर शिलाओं (Talchir Series) में हिमावरण के चिन्ह स्पष्टतः प्रतीत होते हैं। इन शिलाओं के निम्न भागों में गंडाश्म के पात्र (Boulder-beds) पाये जाते हैं जो इस काल के हिमयुग को प्रमाणित करते हैं। गोदावरी नदी की घाटी में विंध्याचल के चूने के पत्थरों पर भी हिमानियों की खरोंच के चिन्ह पाये जाते हैं। ऐसे ही प्रमाण राजस्थान, मध्यप्रदेश, शिमला, हजारा और साल्ट रेंज प्रदेशों में भी उपलब्ध हुए हैं। इसी हिमयुग के गंडाश्म के पात्र अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में भी पाये गये हैं।

पोटवार क्षेत्र में हिमनदी द्वारा संचित ऐसी सामग्री पाई गई है जिसमें ऐसे शिलाखंड पाये गये हैं जिनका इस प्रदेश की भू-संरचना से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। इन्हें हिमनदी ही बहुत दूर से बहा कर लाई है। इन शिलाखंडों को विदेशी रोड़े (Erractic Blocks) कहते हैं। प्रायः एक श्रेणी या टीले में २० या उससे अधिक प्रकार की चट्टानों के टुकड़े पाये जाते है। जब हिम नदियाँ पिघलने लगीं तो ये रोड़े यहीं जमा हो गये। हिम नदियों के घर्षण और अपक्षरण की क्रियाओं द्वारा ये रोड़े घिसकर गोल हो गये और इनमें खरोंचे पड़ गई।

उत्तरी कश्मीर में **श्री मिडिलमिस** के अनुसार हिमानियाँ २,७४५ मीटर घाटी में नीचे उतर कर पिघलने लगीं, इसके फलस्वरूप यहाँ हिमानियों के चिन्ह पाये जाते हैं। डलहौजी प्रदेश में हिम के पिघलने की सीमा मामूल में १,५५० मीटर,

धरमशाला के निकट ६१५ मीटर और पंगी घाटी में २,२८७ मीटर अनुमान की गई है। हिमालय पर्वत की घाटियों में हिमानियों के प्राचीन अस्तित्व को कई चिन्हों द्वारा पहचाना जाता है। इनकी घाटियों में हिमानी की प्रक्रिया से अर्द्ध गोल-रंगमंच (amphitheatre-like) के समान धंसे हुए गड्ढे सिर्क (Cirque) पाये जाते हैं तथा घाटियों में तीक्ष्ण मोड़ नहीं पाये जाते। परस्पर शिला बाहुओं (Spurs) का अभाव पाया जाता है तथा घिस कर क्षीण हो गई शिला बाहुओं में ढलुआँ त्रिकोण-तल पाये जाते हैं। घाटी का कटाव U आकार का होता है तथा धरातल की भूमि ढालू होते हुए भी समतल न होकर सीढ़ियों की पंक्ति के रूप में पाई जाती है। सहायक घाटियों के प्रवेश द्वार प्रमुख-प्रमुख घाटियों के तल से ऊँचे टंगे से प्रतीत होते है।

भारत का सबसे अंतिम हिमयुग **प्रातिनूतन हिमयुग** है। यह हिमयुग विश्व-व्यापी था और इसी का प्रभाव सबसे अधिक भी रहा है। भारत में भी यद्यपि इसका प्रभाव उत्तर भारत में ही अधिक रहा है किन्तु दक्षिण भारत का जलवायु भी इसके फलस्वरूप अधिक ठंढा हो गया था। दक्षिणी भारत के नीलगिरी पर्वत में हिमालय-प्रदेशीय जंतुओं का पाया जाना इसको प्रमाणित करता है। यह हिमयुग निरंतर न होकर रुक-रुक कर हुआ है।

हिमालय की नदियाँ

ऐसा माना जाता है कि हिमालय की नदियाँ—ब्रह्मपुत्र, सतलज और सिन्धु—हिमालय पर्वत के उत्थान के पूर्व भी विद्यमान थीं। ये तीनों नदियाँ हिमालय की ऊँची चोटियों से दूर तिब्बत की ओर से निकलती है। हिमालय के क्रमिक उत्थान से इनका ढाल उत्तरोत्तर बढ़ता गया। फलतः उनकी अपक्षरण शक्ति भी बराबर बढ़ती गई। यही कारण है कि ये नदियाँ हिमालय पर्वत श्रेणियों के पार अपना प्रारंभिक मार्ग बनाये रखने में सफल हुई है।

डा० चिब्बर के अनुसार हिमालय की नदियाँ चार भागों में बाँटी जा सकती हैं :—

(१) हिमालय के उत्थान के पूर्व की नदियाँ—ब्रह्मपुत्र, सतलज और सिंध, आदि।
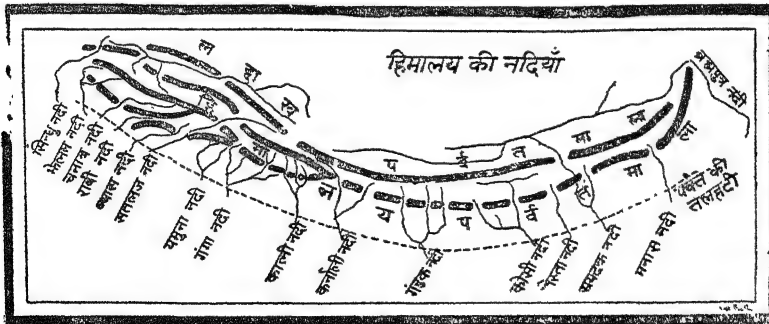
चित्र ९. हिमालय की नदियाँ

(२) महा-हिमालय की नदियाँ, जैसे गंगा, काली, घाघरा, गंडक और तिस्ता

आदि। ये नदियाँ मध्य मायोसीन युग (Mid-Miocene) के बाद अर्थात हिमालय के दूसरे-उत्थान के बाद उत्पन्न हुई मानी गई हैं।

(३) लघु-हिमालय की नदियाँ, जैसे व्यास, रावी, चिनाब और झेलम आदि।

(४) शिवालिक की नदियाँ, जैसे हिंडन ओर देहरादून के समीप सेलानी।

हिमालय से निकलने वाली २३ प्रमुख नदियाँ हैं जिनका सम्बन्ध तीन बड़ी नदी प्रणालियों से है। **ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली** में ब्रह्मपुत्र, लुहित, दियावंग, सुबन्सरी. मनास, सनकोश, रैडाक और तिस्ता नदियाँ सम्मिलित हैं। **गंगानदी प्रवाह प्रणाली** कोसी, भागमती, राप्ती, गंडक, करनाली, रामगंगा, गोमती, खोह, काली या शारदा, जमुना और गंगा आदि नदियों से मिल कर बनी हैं। **सिन्धु प्रणाली** में सतलज, व्यास, चिनाब, झेलम, रावी और सिन्ध नदियाँ सम्मिलित हैं।

हिमालय की कुछ नदियों ने हिमालय के आर-पार गहरी घाटियों का निर्माण किया है। ऐसी नदियों में सिन्धु, सतलज, अरुण और ब्रह्मपुत्र हैं। ये बहुत दूर तक हिमालय की प्रधान श्रेणी के साथ-साथ बहती हैं और अनुकूल अवस्था पाकर श्रेणी को पार कर मैदान की ओर आती हैं। इन सबमें सिन्धु नदी की घाटी मुख्य है। यह गिलगित के पास ५,४३० मीटर गहरी है।

नीचे की तालिका इन तीनों नदियों की प्रणालियों की विशेषताओं को प्रकट करती हैं[८] :—

प्रणाली	प्रवाह क्षेत्र (Catchment area) (वर्गमील)	साधारण वर्षा वार्षिक (इंचों में)	वाष्पीकरण और सोखने की क्रिया द्वारा जल की क्षति (इंचों में)	वार्षिक जल प्रवाह (Run-off) (इंचों में)	दस लाख एकड़ फीट में जल प्रवाह[९] (वार्षिक)
सिन्धु-प्रणाली	१३६,६७३	२१·८६	१३·०२	८·८४	६४·४३
गंगा प्रणाली	३७६,८१२	४३·७६	२४·००	१९·७६	३९७·०९
ब्रह्मपुत्र प्रणाली	१९५,४६०	४८·११	१८·४७	२९·३४	३०८·९५

इन नदियों के प्रवाह में बहुत बड़ी जलराशि हिम तथा हिमागारों के पिघलने से प्राप्त होती है।

हिमालय पर्वत की नदियों की विशेषताएँ

(१) हिमालय पर्वत से निकलने वाली प्रायः सभी नदियों में तीन खंड हैं: पहाड़ी खंड, मैदानी खंड और डेल्टा खंड। ये नदियाँ भारत की भूमि को न केवल सींचती ही हैं किन्तु ये नावें चलाने योग्य भी हैं।

---

8. *S. K. Banerjee,* "Snow Glacier Fields of Himalayas", in the Himalaya, Op. Cit., p. 26.

९. एक एकड़ फुट से आशय जल की उस राशि से है जो एक एकड़ क्षेत्र को एक फुट की गहराई तक घेर लेता है।

(२) हिमालय की कई नदियाँ तो हिमालय पर्वत से भी पुरानी हैं जिसका अर्थ यह है कि जब हिमालय पर्वत का अस्तित्व भी नहीं था तब भी सिन्धु, सतलज, गंडक ओर कोसी आदि नदियाँ बहती थीं। हिमालय पर्वत के निकलने के फल-स्वरूप ये नदियाँ भी इन पर्वतों में अधिक गहरी घाटियों में बहने लगीं। सिन्धु ६,१०० मीटर गहरी कंदराओं में, सतलज, गंडक और कोसी ६१० से १,२२० मीटर गहरी घाटियों में बहती है जिनकी चौड़ाई ९ से २७ कि० मी० है।

(३) ये नदियाँ हिमालय पर्वत के दोनों ढालों का पानी लेकर सागर में गिरती हैं। अधिक वर्षा और बर्फ के कारण इन नदियों में सदैव पानी भरा रहता है अतएव इनका उपयोग सिंचाई के लिए नहरें निकालने में किया गया है।

(४) हिमालय की कई बड़ी-बड़ी नदियों ने छोटी-छोटी नदियों के पानी को अपने में मिला लिया है। उदाहरण के लिए गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि नदियों ने कई छोटी नदियों के पानी को, जो तिब्बत में बहती हैं, अपने में हड़प लिया है।

हिमालय की झीलें (The Himalayan Lakes)

हिमालय में कई झीलें बहुत अधिक ऊँचाई पर पाई जाती हैं। भारत की सबसे ऊँची हिमानी-निर्मित झील गढ़वाल हिमालय में देवताल के समीप है, जो ५,४९० मीटर की ऊँचाई पर है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध **मानसरोवर** झील भी ४,५८० मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इसकी आकृति अंडाकार है। यह लगभग ३०० वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैली हुई है। इसकी अधिकतम गहराई ३० मीटर है। इसी के समीप **राकस ताल** भी इसी ऊँचाई पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल २७० वर्ग कि० मी० है। यह दोनों ही मीठे पानी की झीलें हैं।

मानसरोवर से जब हम पवित्र कैलाश पर्वत के ग्लेशियर पर चढ़ते हैं तो हम डोलमा दर्रे के सिरे पर पहुँच जाते हैं। यहीं पर एक छोटी **गोरीकुन्ड** नामक झील स्थित है। यह संसार की दूसरी ऐसी झील है जो सबसे अधिक ऊँचाई पर पाई जाती है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई ५,४९० मीटर है। संसार की सबसे ऊँची झील तिब्बत की **टिसो सिकुरू** झील है जो ५,४९५ मीटर ऊँची है। गोरीकुन्ड झील लगभग ९० मीटर लम्बी और ४५ मीटर चौड़ी है। इसकी ऊपरी सतह सदा बर्फ से ढकी रहती है। दूसरी प्रमुख झीलें जो ४,५७५ मीटर या १५,००० फीट से ऊपर स्थित हैं इस प्रकार हैं :—

झील	ऊँचाई
१. टिसो जिलेंग (Tso Zillang)	१५, १२५ फीट
२. टेंगरीनोर या नेमचो (Tengrinor or Namcho)	१५, १९० ,,
३. तासी भूप (Tashi Bhup)	१५, २८९ ,,
४. टिसो टिग्रू (Tso Tigu)	१५, २८५ ,,
५. सेच्ची गेटाई (Schi Gatai)	१६, २४० ,,
६. एन्टीलोप झील (Antilope Lake)	१६, ४७० ,,

७. टिसो होरपा (Tso Horpa)	१७. ३६० फीट
८. लोकपाल भील या हेमकुण्ड (Lokpal Lake or Hemkund)	१५, ००० ,,

हिमालय की अधिकांश भीलों की उत्पत्ति तीन प्रकार से हुई है :---

(१) कई भीलों का विकास मुख्य नदियों के मार्ग में सहायक नदियों द्वारा बनाये गए कांप मैदानों के अवरोध स्वरूप हुआ है। इन मैदानों द्वारा जल बाँध के रूप में रुक कर भीलों का रूप बन जाता है।

(२) कुछ भीलों का निर्माण नदी-पात्र के कुछ भागों के तीव्रगति से ऊँचा उठ जाने से हुआ है जबकि नदियों का उपक्षरण धीमी गति से हुआ है।

(३) कई भीलों की उत्पत्ति हिमानियों द्वारा चट्टानों में रगड़ लगने से बने गड्ढों में जल भर जाने से हुई है।

हिमालय के दर्रे (Himalayan Passes)

हिमालय पर्वत की श्रेणियों को पार करने के लिये इसमें कई दर्रे हैं। उत्तरी पहाड़ों में **मालकन्द का दर्रा** (१,६०२ मीटर) है जिससे होकर चितराल को मार्ग जाता है। **बोरोघेल के दर्रे** (३,७५० मीटर) द्वारा काशगर और मध्य एशिया जाने का
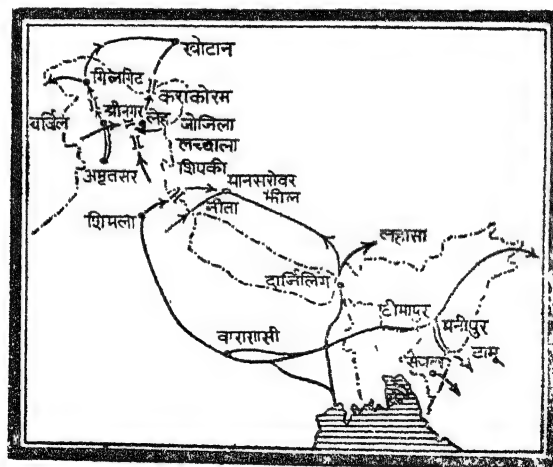
चित्र १०. हिमालय पर्वत के कुछ प्रमुख दर्रे

मार्ग है। **जोजिला दर्रा** (३,४४५ मीटर) श्रीनगर से लेह का रास्ता है। वहाँ से करा-कोरम दर्रे (५,४२५ मीटर) होकर यारकन्द को रास्ता जाता है। **शिपकी दर्रे** से शिमला से तिब्बत जाने का मार्ग है। **माना** और **नीति** दर्रों में होकर भारतीय यात्री मानसरोवर भील और कैलाश की घाटी के दर्शन करने जाते हैं। **जेलेप्ला** और **नाथूला** दर्रों द्वारा दार्जिलिंग और चुम्बी होकर तिब्बत को जाते हैं। पश्चिमी हिमालय

10. *D. N. Wadia*, Op. Cit., p. 21.

(१) तिब्बती पठार—यह काश्मीर राज्य के उत्तरी पूर्वी भाग में एक शुष्क ठंढा प्रदेश है जो तिब्बत के पठार का ही एक अंग है। इसके ऊँचे प्रदेश को एशिया का मृतक भाग कहते हैं। इस भाग में कराकोरम पर्वत श्रेणी रीढ़ की भाँति फैली है। इस प्रदेश की सामान्य ऊँचाई ६,७०६ मीटर है। यहाँ की सम्पूर्ण भूमि कड़ी नवीन चट्टानों से बनी है तथा अधिक ऊँचाई के कारण यहाँ अनेक हिमनद पाये जाते है जिनसे अधिकांश नदियों का जन्म हुआ है। इस प्रदेश का ढाल उत्तर-पश्चिम को है।
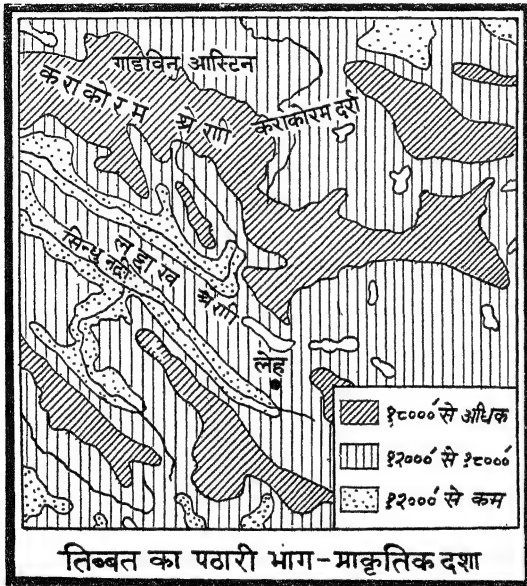
चित्र १५. तिब्बत का पठारी भाग

यह प्रदेश अधिक ऊँचाई पर होने के कारण बड़ा ठंढा है। शीतकाल में तापक्रम हिमांक बिन्दु से भी नीचे पहुँच जाते हैं। जनवरी का औसत तापक्रम ८° सें० ग्रेड रहता है। किन्तु गर्मी में तापक्रम १६° सें० ग्रेड तक रहता है। यह भाग हिमालय की वृष्टि छाया में पड़ने के कारण शुष्क है; वर्षा बहुत ही कम और वह भी हिमपात के रूप में होती है। वर्षा के आधे समय प्रायः सब जगह बर्फ जमी रहती है और ३,६५८ मीटर के ऊपर के स्थानों में तो प्रायः वर्ष भर ही बर्फ रहती है। इसलिये यहाँ की जलवायु मलेरिया के लिये बिल्कुल प्रतिकूल है। फलस्वरूप यहाँ के निवासी स्वस्थ और सुगठित होते हैं। वर्षा १२ सें० मीटर से भी कम है।

यह एक उजाड़-बीहड़ प्रदेश है जहाँ शीत कटिबन्धीय झाड़ियों का आधिक्य पाया जाता है। लद्दाख की घाटियों में भी सेफेदा और वेद के वृक्ष अधिक मिलते हैं ...का प्रयोग ईंधन और मकान आदि बनाने में किया जाता है। लद्दाख में पशुओं नैपा ...ख्या अधिक है। प्रति व्यक्ति पीछे लगभग ३ पशु हैं। इन पशुओं में भेड़ें, बकरियाँ

आदि ही प्रमुख हैं। घोड़े, याक और योमो सामान ढोने वाले पशु भी काफी संख्या में पाये जाते हैं जबकि भेड़, बकरियों से ऊन, दूध, मांस, आदि उपलब्ध होता है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—लद्दाख का क्षेत्रफल और जनसंख्या केवल ८८,००० है जो घाटियों के २४० ग्रामों में बसी है। लद्दाख के अधिकांश स्थान-खालसी, सुशपोल, नुरूला, नीमू, छिशोद, हेमिश आदि-सिन्धु नदी की घाटी में ही बसे हैं। यह घाटी **चर्गो दर्रे** ५,६२८ मीटर द्वारा चुशूल घाटी से सम्बन्धित है। नुब्रा घाटी लेह की सिन्धु घाटी से **खारदंग** और **दीगर** दर्रो द्वारा सम्बन्धित है। लेह और खारगिल के बीच **फतला दर्रा** ४१०५ मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इन दर्रो के चारों ओर विशाल तथा भयावने पहाड़ हैं। काश्मीर और तिब्बत के बीच व्यापारिक मार्ग **कराकोरम** दर्रे में होकर जाता है। यहाँ आवागमन की सुविधा बहुत ही कम है, केवल पगडंडियों पर ही आना-जाना है।

लद्दाख के निवासी भारत-ईरानी और भारत-मंगोल हैं। पहली जाति के लोग **बाल्टी** कहलाते है जो इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। यह अधिकांशतः करगिल तहसील में बसे हैं। दूसरी जाति के लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं तथा लद्दाख तहसील में

चित्र १६. हेमिस गुफा का मठ

रहते हैं। बाल्टियों की भाषा ईरानी वर्णमाला पर और लद्दाखियों की लद्दाखी वर्णमाला के ऊपर आधारित है। लद्दाख में लगभग १५ बड़े मठ बौद्धों के है जिसमें प्रसिद्ध **हेमिस गुफा** का मठ है। इसमें लगभग १५० लामा रहते हैं।

लद्दाख जल और विद्युत शक्ति के साधनों से भरपूर है। शियोक, सिन्धु, वाका छू, सुरू, द्रास, जसंकार जैसी बड़ी नदियों के अतिरिक्त यहाँ बर्फीले नद भी पाये जाते हैं जिनका उपयोग सिंचाई और विद्युत् उत्पादन के लिये किया जा सकता है।

लद्दाख के लगभग ४१,००० एकड़ भूमि पर खेती की जाती है। कम वर्षा होने के कारण यहाँ की कृषि का मुख्य आधार यहाँ के छोटे-छोटे नाले और नदियाँ ही हैं। जौ यहाँ की मुख्य फसल है जो ४,०१२ मीटर की ऊँचाई पर और गेहूँ तथा आलू कम ऊँचाई पर पैदा किये जाते हैं। अच्छी किस्म का जीरा द्रास घाटी में पैदा किया जाता है। लद्दाख के उद्यान क्षेत्रों में ३,६५८ मीटर की ऊँचाई तक सेब, खुबानी और अखरोट के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं।

चित्र १७. एक लद्दाखी परिवार

लद्दाख की कुछ नमकीन झीलों से नमक और सुहागा प्राप्त किया जाता है। सिन्धु और शियोक नदी की तलहटी में सोना प्राप्त किया जाता है।

लोहा, खड़िया, मिट्टी, गन्धक, और अनेक प्रकार की मिट्टियाँ भी यहाँ भारी मात्रा में पाई जाती हैं। किन्तु पूर्ण रूप से निकाली नहीं जातीं। पहाड़ी भागों में भेड़ों से ऊन और ऊन की बलदार खालें प्राप्त की जाती हैं। बालों से टोपियाँ बनाई जाती हैं। यहाँ नम्दे, लोइयाँ, कम्बल और अन्य दूसरी वस्तुयें भी कुटीर उद्योग पर बनाई जाती हैं। लेह यहाँ का मुख्य नगर है।

(२) पश्चिमी हिमालय प्रदेश—इसका विस्तार पामीर की गाँठ से लगाकर नैपाल की पश्चिमी सीमा तक है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से काश्मीर-हिमालय आता है

तथा पूर्वी सीमा सतलज की घाटी द्वारा निर्धारित की गई है। इस प्रदेश में काश्मीर और जम्मू राज्य सम्मिलित हैं। यह सम्पूर्ण प्रदेश लगभग पहाड़ी है और तीन क्षेत्रों में बँटा हुआ है। उत्तर में तिब्बत और अर्द्ध-तिब्बतीय भाग और दक्षिण में काश्मीर की घाटी का मध्य भाग और जम्मू का समतल भाग। इस प्रदेश का क्षेत्रफल २४०, २९९ किलोमीटर है और जनसंख्या ४४ लाख के लगभग है।

प्राकृतिक दशायें—पश्चिमी हिमालय प्रदेश की श्रेणियाँ उत्तर पश्चिम से दक्षिण-पूर्व दिशा में फैली हैं जिनके बीच-बीच में अनेक विस्तृत घाटियां पाई जाती हैं। इनमें बहने वाली नदियों ने पर्वत श्रेणियों में काफी गहरी घाटियों का निर्माण किया है। हिमालय की ५ समानान्तर श्रेणियाँ यहाँ फैली हैं—**जास्कर श्रेणी,**
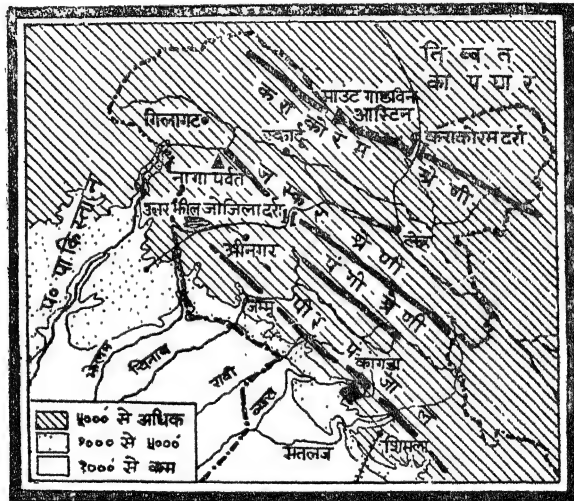
चित्र १८. लद्दाख और कराकोरम श्रेणी

पंगी श्रेणी और **पीरपंजाल श्रेणी** लद्दाख और कराकोरम श्रेणी। जास्कर श्रेणी में **जोजिला का दर्रा** है। इसी में होकर द्रास और जस्कर नदियाँ बहती हैं। अन्य मुख्य दर्रे **धर्मा, किंगरी, शालशाल** और **नाता** हैं। इस भाग की सभी नदियाँ एक विस्तृत भूभाग को घेरे हैं। अधिक ऊँचाई पर होने के कारण अनेक हिमनद यहाँ पाये जाते हैं जिनसे पंजाब की नदियाँ निकली हैं।

यह प्रदेश उत्तर की ओर लगभग ६ महीने बर्फ से ढका रहता है। औसत तापक्रम १° सें० ग्रेड रहता है। सर्दी में वर्षा बर्फ के रूप में होती है। दक्षिण की ओर वर्षा पूर्वी भाग में ९० सें० मीटर और पश्चिमी भाग में ७१ सें० मीटर तक होती है। प्रायः गहरी घाटियों में वर्षा का औसत बहुत ही कम रहता है। वार्षिक वर्षा का औसत ५० सें० मीटर होता है।

बाहरी निम्न श्रेणियों पर छुटपुट शुष्क झाड़ियाँ और भीतरी श्रेणी पर १,५२४ मीटर से ३,६५८ मीटर की ऊँचाई तक चीड़ और सनोवर, स्प्रूस, बीच और फर के वृक्ष पाये जाते हैं। अधिक ऊँचाई पर हिम की चादर बिछी रहती है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—काश्मीर की घाटी यहाँ का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण भाग है जो पीर पंजाल और मुख्य हिमालय के बीच में स्थित है। यह एक बड़ा विस्तृत मैदान है जो १३७ किलोमीटर लम्बा और ४० किलोमीटर चौड़ा है। झेलम के बाढ़ के मैदान में समुद्रतल से इसकी ऊँचाई ५,६१५ मीटर है। यहाँ जलवायु महा-द्वीपीय प्रकार की है। जाड़ा अत्यन्त ही ठंढा होता है। जाड़े की वर्षा औसत ६५ सें० मीटर रहती है। घाटी के पहाड़ी भाग वनस्पति से ढके रहते हैं। साधारण ढालों को सीढ़ीनुमा काटकर फलदार वृक्ष उगाये जाते हैं। इन ढालों पर सेव, खुबानी, नास-पाती, अंगूर, अखरोट, शहतूत, आड़ू आदि अधिक पैदा किये जाते हैं। नदी तट के समीप की भूमि कृषि के लिये सर्वोत्तम है। इसी महत्व के कारण यहाँ चावल और शहतूत उगाया जाता है। चावल की फसल को खूब खाद देकर सींचा जाता है। धान के अतिरिक्त जाड़े की ऋतु में निचले स्थानों पर कपास, तम्बाकू, ज्वार, बाजरा, मक्का और बसन्त ऋतु में गेहूँ, जौ, और मटर पैदा किया जाता है। कारेवां (Karewan) पर शुष्क फसलें और कृषि योग्य बनाई गई नर्म दलदल भूमियों पर

चित्र १९. काश्मीर के कुटीर उद्योग की कुछ प्रमुख वस्तुएँ

राई और सरसों बोई जाती है। कम उपजाऊ पथरीली भूमियों पर गेहूँ (Buck wheat) और मक्का २,४३८ मीटर के नीचे बोया जाता है। काश्मीर में कुल बोई गई भूमि का केवल ४३% भाग सींचा जाता है और १०% भाग पर एक से अधिक फसलें बोई जाती हैं।

तैरते हुए द्वीप काश्मीर में खेती के अन्य आकर्षण हैं। यहाँ के किसान लकड़ी के लट्ठे से डूंडे बनाकर उन पर मिट्टी और खाद डालकर सब्जी और फूल पैदा करते है। इसके अतिरिक्त यहाँ झीलों के छिछले तटों पर पानी में विलों के पेड़ लगाकर और बीच की भूमि में झील की मिट्टी और कीचड़ डालकर नई भूमि तैयार कर लेते हैं। यह नई भूमि फल, तरकारी और अन्य फसलों के लिये काम में लाई जाती है। छोटी-छोटी क्यारियों में केशर भी बोई जाती है।

पशु-पालन और रेशम के कीड़े पालना यहाँ के निवासियों के दो मुख्य उद्यम हैं। भेड़ बकरियाँ विशेष रूप से पायी जाती हैं जिनसे दूध, माँस और ऊन तथा चमड़ा प्राप्त होता है। लकड़ी पर खुदाई का काम, मिट्टी-कुट्टी का काम, चाँदी के बरतन बनाने का काम, लम्बादा बनाना, रेशम और ऊन का कपड़ा बुनना, कसीदा निकालना और शाल दुशाले बनाना यहाँ के अन्य प्रमुख कुटीर उद्योग हैं। यहाँ जरी और पश्मीने का काम भी बहुत किया जाता है।
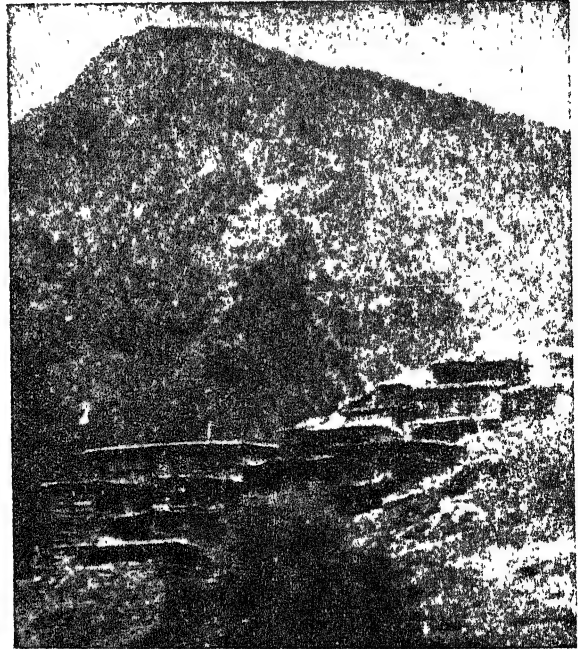
चित्र २०. हिमालय पर्वत के ढालों पर बसा एक गांव

श्रीनगर यहाँ का मुख्य औद्योगिक केन्द्र है जहाँ ऊनी और रेशमी कपड़े बनाये

जाते हैं। पर्यटन व्यवसाय भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। सैलानियों के लिये **गुलमर्ग, पहलगाँव, खिलिनमर्ग, ली नगर** और **अमरनाथ** प्रमुख आकर्षण स्थान हैं। यहाँ खनिज व्यवसाय विशेष महत्व नहीं रखता।

झेलम से जल विद्युत उत्पन्न की जाती है जो श्रीनगर के रेशम के कारखानों में काम आती है। रियाँसी जिले में थोड़ा 'एन्थ्रासाईट' जाति का उत्तम कोयला पाया जाता है।

इस घाटी का महत्व इसकी स्थिति से भी है। यह हिमालय के मार्गों के एक आधार का काम करती है। यह घाटी बहुत ही घनी बसी हुई है। अनंतनाग में बोई गई भूमि के अनुपात में जनसंख्या का घनत्व अधिक है। यह ३०३ व्यक्ति प्रति वर्ग मील पड़ता है जबकि नीचे घाटी में यह केवल १० है।

यहाँ के निवासी हृष्ट-पुष्ट गेहुयें रंग के साहसी, ईमानदार किन्तु दरिद्र होते हैं। अधिकांश निवासी मुस्लिम हैं जिनकी भाषा **डोगरा** और **काश्मीरी** है। इस प्रदेश में यातायात की विशेष असुविधा है। श्रीनगर से मैदान तक सड़क जाती है आगे पक्की सड़कों का अभाव है।

यहाँ के निवासी अधिकतर गड़रिये हैं। काश्मीर के अधिकतर आबाद गाँव प्रायः उच्च भूमियों पर जल की सुविधा के अनुसार बनाये गये हैं। यहाँ के मकान पास-पास और लम्बोत्तर आकार के होते हैं। घाटी में जहाँ सीढ़ीनुमा खेती की जाती है वहाँ जनसंख्या बहुत ही बिखरी हुई मिलती है।

(३) मध्य हिमालय प्रदेश

यह प्रदेश पश्चिम में सतलज की घाटी से लगाकर पूर्व में अरूणा नदी तक फैला है। इसके अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश के कूमायूँ डिवीजन और देहरादून, टिहरी गढ़वाल और सहारनपुर जिले तथा नेपाल के पर्वतीय भाग सम्मिलित हैं। इसके दक्षिण में गंगा का मैदान तथा उत्तर में तिब्बत का पठार है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल ४७,६७७ वर्गमील और आबादी ९२ लाख है। आबादी का घनत्व १९३ प्रति वर्गमील है।
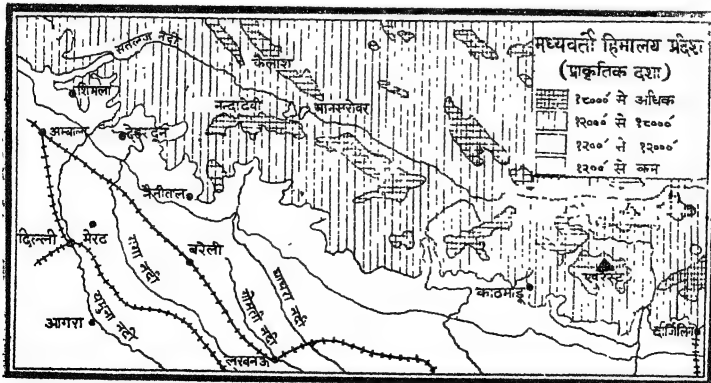
चित्र २१. मध्यवर्ती हिमालय प्रदेश

प्राकृतिक दशायें—इस प्रदेश में पर्वत पश्चिम से पूर्व की ओर फैले हैं। इनकी औसत चौडाई १६० किलोमीटर है। उत्तर की ओर मुख्य हिमालय श्रेणी है जिसमें **एवरेस्ट, गोसाई थान, अन्नपूर्ण, धौलागिरी,** और **नन्दा देवी** आदि प्रमुख नदियाँ मिलती हैं। अनेक हिमनद भी यहाँ पाये जाते हैं। इस श्रेणी के दक्षिण में लघु हिमालय श्रेणी में **काठमांडू की** विस्तृत घाटी पाई जाती है जो समुद्र के धरातल से लगभग १,५२४ मीटर ऊँची है। इसके भी दक्षिण में शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ मिलती हैं इनमें भी बड़ी-बड़ी घाटियाँ और चौरस मैदान मिलते हैं जिन्हें पश्चिम में **'दून'** और पूर्व में **'द्वार'** कहते हैं।

साधारण रूपरेखा में यह प्रदेश भी काश्मीर के समान है। यहाँ की पर्वतीय जलवायु ऊँचाई के अनुसार बहुत ही विपरीत होती जाती है। यहाँ गर्मी का तापक्रम २१° से० ग्रेड तक रहता है। किन्तु शीतकाल में बर्फ गिरता है। गर्मियों में शिमला, नैनीताल, देहरादून, मंसूरी, चकराता आदि प्रमुख हवाखोरी के स्थान बन जाते हैं। कांगड़ा घाटी में धोलाधर के पास २५० सें० मी० वर्षा होती है। किन्तु कुछ ही उत्तर की ओर कूलू की घाटी में यह औसत ७५ से १०० सें० मीटर ही रहता है। सतलज मार्ग बहुत ही शुष्क है और स्पीति घाटी में जो कुछ थोड़ी सी वर्षा होती है वह हिम के रूप में होती है। शिमला का औसत १७५ से० मी० है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—यहाँ के अधिकतर लोग कृपक हैं। ९४ प्रतिशत व्यक्ति कृषि से ही अपना जीवन-यापन करते हैं। उत्तर की ओर पशुपालन और काफिला व्यापार (Caravan trading) का दिनों-दिन महत्व बढ़ता जा रहा है। १५ प्रतिशत भाग पर जंगल हैं जिनसे बाँस, लकड़ी और भाबर घास मिलती है। यहाँ ढालों पर १,५२४ मीटर की ऊँचाई तक साखू, देवदार और बाँस तथा उसके ऊपर ३,३५३ मीटर की ऊँचाई तक फर, सरो और चीड़ के वृक्ष तथा ३,९६२ मीटर से ऊपर बर्फ जमी रहती है। यहाँ के खेत सीढ़ीनुमा होते हैं। जहाँ ढाल तीव्र होता है वहाँ खेत विलिपर्ड टेबल से बड़े नहीं होते परन्तु जहाँ भूमि कम कटी-फटी है वहाँ खेतों का आकार बड़ा होता है। कम ऊँचे ढालों पर फल उगाये जाते हैं। खनिजों में यहाँ स्लेट, एन्टीमनी, जस्ता और ताँबा मुख्य हैं। मन्डी जिले में जल विद्युत भी उत्पन्न की जाती है।

इस भाग में आबादी बहुत ही घनी है। दक्षिण की ओर **दून** में यह घनत्व और भी अधिक है। यहाँ आबादी केन्द्रित न होकर छितरी हुई है। दो तिहाई लोग ५०० व्यक्तियों के समूह में रहते हैं। मकान प्रायः लकड़ी तथा पत्थर के बने होते हैं। शिमला और डलहौजी के अतिरिक्त शहरी आबादी नगण्य है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री आदि हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान हैं।

यहाँ के लोगों के मुख्य उद्यम पशु पालना, खेती करना तथा कुलीगिरी करना है। पिछले कुछ समय से यहाँ लकड़ी चीरने, तख्ते और फर्नीचर बनाने का उद्योग भी किया जाता है। पशुपालन के अन्तर्गत भेड़ बकरियाँ पाल कर उनसे ऊन, माँस और दूध प्राप्त किया जाता है।

यहाँ आवागमन की सुविधायें निचले भागों में अच्छी हैं। शिमला, देहरादून और काठगोदाम रेल मार्ग हैं तथा प्रसिद्ध कस्बों तक मोटर चलाने योग्य सड़कें पाई जाती हैं। अधिक ऊँचे भागों में आना जाना टट्टुओं द्वारा होता है।

कृषि भी इस प्रदेश का प्रमुख धन्धा है। कृषि की यहाँ बड़े ही विस्तृत ढंग से व्यवस्था की जाती है। प्रायः समस्त पहाड़ी ढाल सीढ़ीनुमा खेतों से ढके रहते हैं। कुछ स्थानों पर तो ऐसे खेत १८२० मीटर की ऊँचाई तक देखे जाते हैं। जहाँ

चित्र २१. गढ़वाली चरवाहे

७५ से १०० से० मी० वर्षा होती है उन भागों में शुष्क फसलें बोई जाती है। गेहूँ, मक्का, चना, सरसों, जौ, मोटे अनाज और घास बहुतायत से उगाई जाती है। धान की खेती देहरादून व हिमाचल प्रदेश में की जाती है। पहाड़ी ढालों पर जीवांश युक्त मिट्टियों में चाय पैदा की जाती है। कांगड़ा जिले में गेहूँ, राई, जौ, तिलहन, मक्का और चावल पैदा किये जाते हैं। यहाँ चाय और आलू भी पैदा किये जाते हैं।

(४) पूर्वी हिमालय प्रदेश (Eastern Himalayan Region)

यह प्रदेश नैपाल में अरुणा नदी से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ तक फैला है। इसके अन्तर्गत नैपाल, सिक्किम, भूटान, व आसाम के उत्तरी भाग हैं। हिमालय पर्वत इस प्रदेश में पश्चिम से पूर्व तथा पूर्व में उत्तर-पूर्व की ओर फैले हैं।

प्राकृतिक दशायें—इस प्रदेश में हिमालय की श्रेणियाँ अपेक्षतया पास-पास और समानान्तर हैं अतः ऊँचाई एक दम बढ़ती गई है और ढाल बड़े ऊँचे हैं। घाटियाँ इन श्रेणियों पर लुप्त प्रायः हो गई हैं। उत्तर की ओर ये श्रेणियाँ ६,०९६ मीटर ऊँची हैं तथा अन्य श्रेणियाँ पूर्व की ओर काफी नीची हैं।

ऊँचाई के कारण इस प्रदेश की जलवायु ठंढी है। सर्दी में तापक्रम हिमांक

बिन्दु तक पहुँच जाता है किन्तु गर्मियों में यह १६०° सें० ग्रेड तक रहता है। पहाड़ी ढालों पर वर्षा का औसत अधिक है। यह २५० सें० मीटर है। बंगाल की खाड़ी

चित्र २२. टेहरी गढ़वाल में सीढ़ीदार खेत

के मानसूनों से यहाँ पूर्वी नैपाल और सिक्किम में अधिक वर्षा होती है। पूर्वी भाग में भी २५° सें० मीटर से अधिक वर्षा हो जाती है। जाड़े में वर्षा हिमपात के रूप में होती है।

अधिक वर्षा के कारण पहाड़ी ढालों पर सघन वन पाये जाते हैं। १,५२४ से २,७४३ मीटर की ऊँचाई तक ओक व साल के वृक्ष तथा ३,६४८ मीटर की ऊँचाई तक सनोबर, देवदार, चीड़ आदि के नुकीली पत्ती वाले सदा बहार वन मिलते हैं। इसके ऊपर ४,८७७ मीटर तक पहाड़ी और शीत कटिबन्धीय घासें तथा झाड़ियाँ मिलती हैं। इससे ऊपर हिमावरण रहता है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—इस प्रदेश की जनसंख्या कम है। जनसंख्या का औसत घनत्व ३० व्यक्ति प्रति वर्गमील का है। पहाड़ी ढालों पर यत्र-तत्र बिखरे हुए छोटे-छोटे गाँव मिलते हैं जिनमें अलग-अलग स्थानों पर झोंपड़ियाँ स्थित हैं। यहाँ के अधिकांश निवासी **नैपाली, गोरखा, लैपचा** और **भूटानी** हैं जिनका सम्बन्ध मंगोल जाति से है। पहाड़ी वातावरण में रहने के कारण ये बड़े हृष्ट पुष्ट, मेहनती और ईमानदार होते हैं। अधिकांश निवासी ढालों पर पशु चरा कर तथा भेड़ बकरियाँ पाल कर, वनों से लकड़ियाँ काट कर तथा कुलीगिरी और पथप्रदर्शन करके अपना पेट पालते हैं।

खेती अधिकतर पहाड़ों के बीच समतल घाटियों अथवा छोटे मैदानों व

निचले पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेतों में की जाती हैं। इनमें धान और मोटे अनाज बोये जाते हैं। पहाड़ी ढालों पर ही चाय के बागान पाये जाते हैं। पश्चिमी भागों में फलों के बगीचे भी मिलते है। यहाँ खनिज पदार्थों का अभाव है। लकड़ी सम्बन्धी
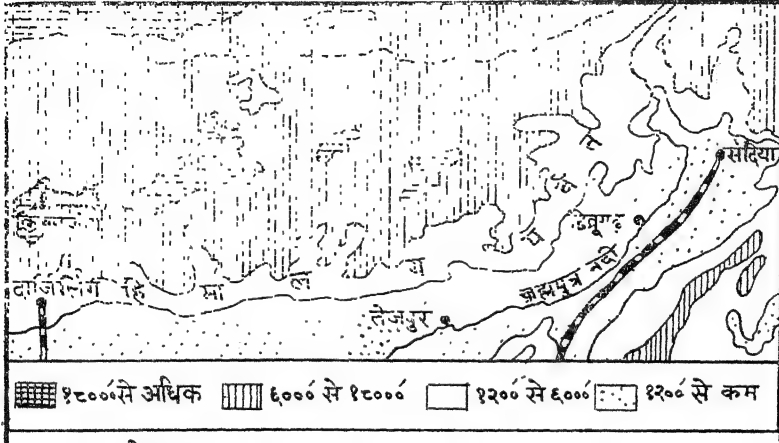
पूर्वी हिमालय प्रदेश (प्राकृतिक दशा)

चित्र २३. पूर्वी हिमालय प्रदेश

उद्योग के विकास की सुविधायें प्राप्त हैं किन्तु आवागमन की असुविधा इसके मार्ग में प्रमुख कठिनाई है। दार्जिलिंग यहाँ का प्रमुख पहाड़ी नगर है जहाँ तक पहाड़ी रेल जाती है। नैपाल की राजधानी **काठमांडू** सिक्किम की राजधानी **गंगटोक** व भूटान की राजधानी **पुनखा** इसी प्रदेश में है।

(५) भाबर तराई प्रदेश (Bhabar-Tarai Region)

हिमालय और गंगा के मैदान के बीच में दो समानान्तर पट्टियाँ आगई हैं। एक पट्टी जो मैदान के पास है, समतल और दलदली है। यह लम्बी मोटी घास से ढकी है। उत्तरी बंगाल में इस पट्टी को **तराई** या **दुआर** के नाम से पुकारते हैं। दूसरी पट्टी में पहाड़ियों की श्रृंखला और उप-हिमालय के निम्न ढाल आगये हैं।

प्राकृतिक दशायें—यह भाग मुख्यत: पथरीला और दलदल है जिसमें नदियों द्वारा बहाकर लाये गये बड़े-बड़े कंकड़ों का जमाव पाया जाता है। इनके बीच-बीच में कहीं-कहीं छोटे बालू व मिट्टी के कण भी मिलते हैं। इस प्रदेश की जलवायु प्राय: गर्म और तर होती है। गर्मियों के औसत तापक्रम २३° सें० ग्रेड से २७° सें० ग्रेड तक और शीतकाल में १० सें० ग्रेड तक रहता है। वर्षा की मात्रा पूर्व में लगभग २५० सें० मीटर और पश्चिम में घट कर १०० से० मीटर तक रह जाती है। वर्षा बंगाल की खाड़ी के मानसून से होती है। वनों में साल एवं अन्य वृक्ष पाये जाते हैं। कहीं-कहीं लम्बी सवाना घास भी पैदा होती है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण इस प्रदेश का आर्थिक विकास नहीं हो पाया है। उद्योग धन्धों में यह बहुत ही पिछड़ा हुआ

है। फिर भी यहाँ धान साफ करने और शक्कर बनाने की मिलें पाई जाती हैं। लकड़ी से सम्बन्धित उद्योग तथा शराब और शोरा बनाने के भी यहाँ कारखाने हैं।

यहाँ सम्पूर्ण भाग अस्वास्थ्यकर जलवायु और भूकम्पों से प्रभावित होने के कारण आबादी से अछूता था। किन्तु अब तराई में दलदलों को साफ किया जाकर खेती की जाती है। भूतपूर्व सरकारी कर्मचारियों, भूमिहीन किसानों और शरणार्थियों को आबाद किये जाने से दक्षिणी भाग अब बस गया है। भामर के अन्दर साल के घने जंगल पाये जाते हैं। यद्यपि जलपाई गुड़ी जिले में आबादी का औसत ३०० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। फिर भी तराई की जनसंख्या नितान्त ही कम है। वनों के भीतरी भागों में थारू नामक जाति रहती है। पीलीभीत, सहारनपुर, खेरी, बहराइच, मोतीहारी और जलपाईगुड़ी इस प्रदेश के प्रमुख शहर हैं। ये सब गंगा के मैदान के ऊपरी भाग हैं और रेल द्वारा जुड़े हुए हैं।

(६) उत्तरी पूर्वी पहाड़ी प्रदेश (North Eastern Hilly Region)

इस प्रदेश में हिमालय की पूर्वी शाखायें आगई हैं जो बंगाल की सीमा से पूरे आसाम में फैली हुई हैं। इस पहाड़ी सिलसिले में खासी, जैन्तिया, गारो, पटकोई, नागा और लुशाई की पहाड़ियाँ तथा शिलांग का पठार मुख्य हैं। यह पर्वतीय प्रदेश धनुषाकार रूप में फैला है। इस प्रदेश में आसाम का अधिकांश भाग और मनीपुर सम्मिलित हैं।

प्राकृतिक दशायें—इस प्रदेश की औसत ऊँचाई १,८२८ मीटर है। उत्तर पूर्व से दक्षिण पूर्व तक धनुषाकार रूप में पटकोई, नागा और लुशाई की पहाड़ियाँ फैली हैं। ये पहाड़ियाँ तृतीय युग में बनी हैं। इनमें शेल, चूने के पत्थर तथा बालू के पत्थर मुख्य हैं। इन्हीं चट्टानों में पेट्रोलियम पाया जाता है। ब्रह्मपुत्र की घाटी के दक्षिण की ओर पूर्व से पश्चिम नागा पहाड़ियों से समकोण बनाती हुई खासी, जैन्तिया व गारो की पहाड़ियाँ फैली हैं। ये बहुत ही प्राचीन काल की बनी हैं। इनमें धारवाड़, क्वार्टजाइट और शिष्ट आदि चट्टानें पाई जाती हैं।

चित्र २४. पूर्वी पंजाब का मैदान

इस प्रदेश में तापक्रम कभी भी १०° सें० ग्रेड से नीचे नहीं जाता। ग्रीष्म ऋतु में औसत तापक्रम २६° सें० ग्रेड और शीत ऋतु में १०° सें० ग्रेड तक रहते हैं। बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसून से यहाँ बड़ी घनघोर वर्षा होती है। चेरीपूंजी का वार्षिक औसत १,०८८ सें० मीटर हैं। किन्तु इसके वृष्टि-छाया वाले भाग का औसत १५० सें० मीटर से भी कम है। मानसून की एक शाखा सुरमा

घाटी से होकर नागा, पटकोई, लुशाई आदि पहाड़ियों पर भी घनघोर वर्षा कर देती है। सारे पर्वतीय भाग की वर्षा का औसत ५१८ सें० मीटर है।

अधिक वर्षा होने के कारण यहाँ सदा बहार वन पाये जाते हैं। नीचे ढालों पर उष्ण कटिबन्धीय वन मिलते हैं। १,५२४ मीटर से ऊँचे भागों में देवदार आदि के वृक्ष और उनसे भी ऊपर झाड़ियाँ, घास आदि पैदा होती हैं। निचले दलदली भागों में दुर्गम झाड़ियों और ऊँची घासों का आधिक्य मिलता है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—अस्वास्थ्यकर जलवायु और पहाड़ी प्रकृति के कारण यह प्रदेश आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। यहाँ मुख्यतः

चित्र २५. कोन्याक नागा लोग

वन्य जातियाँ **झूमिंग प्रणाली** द्वारा खेती करती हैं जिससे जंगलों के कई भाग जला दिये जाने से नष्ट हो गये हैं। इन खेतों में धान, जूट आदि फसलें पैदा की जाती हैं। मनीपुर में उपजाऊ भूमि पाई जाती है अन्यथा सर्वत्र ही भारी वर्षा के कारण फसलें और मिट्टी दोनों ही भूमि से साफ हो जाती हैं। पहाड़ियों पर घटिया किस्म की कपास तथा सन्तरे आदि के वृक्ष भी लगाये जाते हैं। पहाड़ी ढालों पर असंख्य चाय के बगीचे भी लगाये जाते हैं। शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं। अब इस प्रदेश का उत्तरोत्तर विकास किया जा रहा है। विषम परिस्थितियों के कारण यहाँ आबादी बहुत छितरी हुई मिलती है। यहाँ कुछ छोटी वन्य जातियाँ ही निवास करती हैं। **नागा, अभोर, चिन्स** और **चिनलोक** यहाँ की मुख्य जातियाँ हैं। एक घाटी से दूसरी घाटी को आने जाने की कठिनाई के कारण यहाँ के लोगों के रीति रिवाज और बोलियों में बड़ा अन्तर पाया जाता है। यहाँ के गाँव प्रायः झरनों

के समीप पहाड़ी के बाहर निकले हुए भागों पर बसे होते हैं। इस समूचे प्रदेश की आबादी का घनत्व ५० से ६० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। यह औसत पहाड़ियों में

चित्र २६. आसाम में एक आदिवासी गाँव

६६, मिजों में २४ और नागा पहाड़ियों में ४८ व्यक्ति प्रति वर्गमील पड़ता है। जबकि इसके विपरीत त्रिपुरा और मनीपुर में औसत क्रमशः २८३ और ९० है।

यहाँ के निवासियों की अपनी विशेष संस्कृति एवं सभ्यता है। **नागा लोग** अनेक प्रकार के सूती वस्त्र एवं पत्थर, बाँस, लकड़ी व हाथी दाँत के बने हुए आभूषणों का प्रयोग करते हैं। पुरुष प्रायः कृषि कार्य करते हैं और स्त्रियाँ लेन-देन या व्यापार करती हैं।

इस प्रदेश की अवनति का मुख्य कारण आवागमन के साधनों का अभाव है। तंग सड़कें या पगडंडियाँ ही अधिक हैं। **इम्फाल, शिलांग, गोहाटी** यहाँ के प्रमुख नगर हैं।

अध्याय ३

भौतिक आकृतियाँ (क्रमशः)
उत्तरी और दक्षिणी नदियों के मैदान

सतलज-गंगा का मैदान (Sutlej-Ganga Plain)

प्रायद्वीप और बाहरी प्रायद्वीप के बीच में ये मैदान भूमि की पपड़ी के अवगमन (Depression) को सूचित करते हैं जो प्लीस्टोसीन तथा आधुनिक कालों में बने हुए अवसादों (Sediments) द्वारा पाट दिया गया है। ये बालू और मिट्टी की तहों के बने हैं। हिमालय पर्वत के दक्षिण में भारतवर्ष का ही नहीं संसार का सबसे अधिक उपजाऊ और घनी जनसंख्या वाला भाग सतलज-गंगा का विस्तृत मैदान है। इसका क्षेत्रफल ७ लाख वर्ग कि० मी० है। यह मैदान पूर्व में १४५ कि० मी० से लगा कर पश्चिम में ४८० कि० मी० चौड़ा है तथा १५० कि० मी० की लम्बाई में धनुष के आकार में फैला है। इस मैदान का ढाल बड़ा समतल है अतः ऊँचे भाग बहुत ही कम हैं। अरावली पर्वत श्रेणी को छोड़ कर कोई भी भाग समुद्र तल से १५० मीटर से अधिक ऊँचा नहीं है। इस मैदान की गहराई भी काफी है। इस मैदान के धरातल की कांप मिट्टी की मोटाई यद्यपि अभी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुई है परन्तु भूमि में खुदाई के कुछ प्रयोगों से प्रकट हुआ है कि इसकी मोटाई पृथ्वी की ऊपरी सतह से ४०० मीटर तक तथा समुद्री-सतह से ३,०५० मीटर नीचे तक है। पातालतोड़ कुओं की खुदाई के लिए जितने भी छिद्र किये गये वे सब पथरीली चट्टानों तक पहुँचने में असफल रहे हैं यहाँ तक कि उनकी काँप मिट्टी की अंतिम तह तक भी पहुँचने का कोई चिन्ह नहीं पाया गया है। **श्री ओल्डहम** (Oldham) के अनुसार इस मिट्टी की मोटाई उसकी उत्तरी सीमा के निकट ४५७ मीटर है। **बुर्राड** के मतानुसार मसूरी के दक्षिण की दरार घाटी ३२ कि० मी० गहरी है। दिल्ली व राजमहल की पहाड़ियों के मध्य इसकी मोटाई सर्वाधिक है। राजस्थान व राजमहल तथा आसाम के मध्य यह उथली है। इसकी नीचे की सतह न तो समतल प्रतीत होती है और न एक सार ही वरन् वह असमान व ऊँची नीची है। इसके नीचे दक्षिणी पठार के उत्तरी किनारे तथा हिमालय पर्वत के दक्षिणी किनारे छिपे हैं। इस मैदान में सिन्ध का बड़ा भाग (पश्चिमी पाकिस्तान), उत्तरी राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, उड़ीसा और पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल व आसाम का आधा भाग सम्मिलित है।

यह मैदान सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना है। यह मैदान वास्तव में पहाड़ों की धूल है।[1] अतः यह बहुत ही उपजाऊ है। इस मैदान के बीच में अरावली पर्वत आ जाने के कारण सिन्धु और उसकी सहायक

---

1. *T. W. Holderness*, Peoples and Problems of India, p. 34

नदियाँ (झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज) पश्चिम में और गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ (जमुना, गंडक, घाघरा, गोमती, सरयू, सोन) तथा ब्रह्मपुत्र पूर्व में बहती हैं। अरावली पर्वत इन दोनों नदियों के झुण्डों के बीच में जल-विभाजक का काम करता है। अतः इसी मैदान का पश्चिमी और पूर्वी भाग क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी मैदान कहलाते हैं। पश्चिमी मैदान का ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर है और पूर्वी मैदान का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है।

(क) **पश्चिमी मैदान** (Western Plains)—पश्चिमी मैदान का अधिकांश भाग (जिसमें पश्चिमी पंजाब और सिन्ध सम्मिलित हैं) अब पाकिस्तान में चला गया है। इस भाग में मिट्टी के टीले अधिक पाये जाते हैं। कहीं-कहीं इन टीलों के बीच में नीची जमीन भी मिलती है जिसे **तल्ली** कहते हैं। वर्षा के दिनों में यह तल्लियाँ पानी से भर कर एक तरह की झीलें बन जाती हैं इन्हें **'ढाँढ़'** कहते हैं। पश्चिमी मैदान अधिकतर सूखा है अतः सिंचाई के साधनों की प्रचुरता है।

(ख) **पूर्वी मैदान** (Eastern Plains)—इस मैदान का पूर्वी भाग ही वास्तव में मुख्य मैदान है। इस मैदान की गहराई बहुत अधिक है। प्रति वर्ष गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई बारीक कांप मिट्टी की तहें जमती जाती हैं अतः हजारों फीट की गहराई तक खुदाई करने पर भी पुरानी चट्टानों का पता नहीं चलता। गंगा के मैदान को धरातल की ऊँचाई निचाई के विचार से दो भागों में बाँटा गया है: बाँगर और खादर। बाँगर (Bangar) वह जमीन कहलाती है जो कुछ ऊँची होती है और जिसे नदियों ने बहुत पहिले बनाया था। **खादर** (Khadir) उस नीची भूमि को कहते हैं जिसमें नदियाँ अब भी बहती हैं और अपने साथ लाई हुई मिट्टी को जमा करती जा रही हैं।

बाँगर और खादर—गंगा का सारा मैदान इस बाँगर और खादर नामक ऊँची नीची जमीन से बना हुआ है। बाँगर की ऊँचाई कहीं-कहीं ३० मीटर है लेकिन ऊँचाई में इस तरह उतार और चढ़ाव है कि सरसरी दृष्टि से देखने पर बांगर और खादर में बहुत ही कम अन्तर दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि इस मैदान में धरातल का उतार चढ़ाव समुद्री लहरों की तरह लहराता हुआ मालूम होता है।

बांगर के मैदान उत्तर प्रदेश में बहुत पाये जाते हैं। लेकिन खादर की बहुतायत बिहार और बंगाल में विशेष रूप से है। पंजाब की तरह उत्तर प्रदेश में भी कहीं-कहीं बालू के ढेर पाये जाते हैं जिन्हें 'भूड़' कहते हैं। यह **भूड़** (Bhoors) पुराने जमाने में पानी के बहाव से बन गये थे लेकिन सिंधु के मैदान की तरह हवा द्वारा बने हुए वालू के टीले गंगा के मैदान में नहीं मिलते क्योंकि इस मैदान में बालू और सूखी मिट्टी कम पाई जाती है। बाँगर की पुरानी जमीन में कहीं-कहीं कंकड़ अधिक पाये जाते हैं। यह कंकड़ चूने वाली मिट्टी के जम जाने से बने हैं। इनका फैलाव बिहार में (तिरहुत जिले में) अधिक है।

गंगा नदी का डेल्टा लगभग १·३ लाख वर्ग कि० मी० में फैला हुआ है। इसका धरातल समुद्र की सतह से बहुत ही कम ऊँचा है अतः समुद्र में उठने वाले ज्वार इसके अधिकांश भाग को पानी से ढक लेते है और इसलिये यह भाग अधिक दलदल बना रहता है। इस डेल्टा के ऊपरी भाग में कहीं-कहीं कुछ टीले या नदियों के **पुराने किनारे चर्स** (Chars) भी पाये जाते हैं अतः लोग गाँव बनाकर इन्हीं पर

बस गये हैं। नीची भूमि को **बिल** (Bil) कहते हैं। इसमें जूट धोने के लिए पर्याप्त जल मिल जाता है।
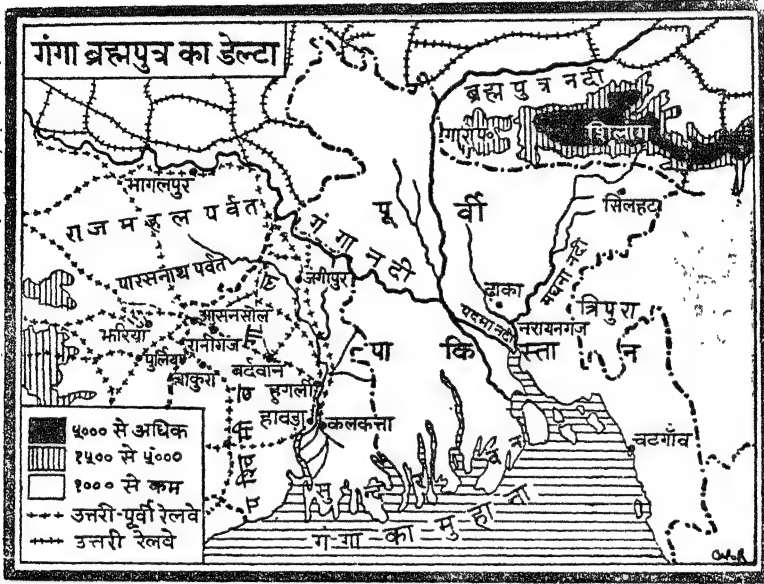
चित्र २७. गंगा ब्रह्मपुत्र का डेल्टा

ब्रह्मपुत्र का मैदान—गंगा के डेल्टा के उत्तर-पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान मिलता है। यह गारो और हिमालय पहाड़ के बीच में फैला हुआ एक लम्बा और पतला मैदान है जिसमें ब्रह्मपुत्र नदी की बाढ़ का पानी पहाड़ से लाई हुई बारीक मिट्टी को हर जगह फैला देता है। पानी में मिली हुई मिट्टी की मात्रा इतनी होती है कि पानी के बहाव में जरा सी रुकावट पड़ने पर ढेरों मिट्टी इकट्ठी हो जाती है और पानी का बहाव इधर उधर हो जाता है। यही कारण है कि ब्रह्मपुत्र नदी में द्वीप बहुत पाये जाते हैं। ब्रह्मपुत्र की घाटी में चावल, जूट तथा चाय पैदा की जाती है।

भाबर प्रदेश (Bhabbar)—जहाँ हिमालय पर्वत और सतलज गंगा का मैदान मिलते हैं वहाँ हिमालय पर्वत से निकलने वाली असंख्य धाराओं ने अपने साथ पहाड़ से टूट कर गिरे हुए पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े काफी गहराई तक जमा कर दिये हैं। इन कंकड़-पत्थरों से ढका हुआ भाग **भाबर** कहलाता है। इस तरह के पथरीले ढाल हिमालय के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले हुये हैं। यह प्रदेश ८ कि०मी० तक चौड़ा है। इस ढाल को पार करते समय केवल बड़ी-बड़ी नदियों का पानी ही ऊपर रहता है। छोटी-छोटी धाराओं का पानी इन्हीं कंकड़ों के ढेर के नीचे मिट जाता है। इससे इस प्रदेश में लम्बी जड़ों वाले बड़े-बड़े पेड़ तो अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु छोटे पौधों और खेतों तथा जनसंख्या का प्रायः अभाव है।

तराई प्रदेश (Tarai)—भाबर प्रदेश के अधिक आगे जाकर भाबर के नीचे नीचे बहने वाला पानी ऊपर धरातल पर प्रगट हो जाता है। इससे बड़े-बड़े दलदल हो गये हैं। इन दलदलों में ऊँची घास, घने पेड़ और असंख्य जंगली जानवर पाये

जाते हैं। इन भयानक जंगलों में मलेरिया के कारण जनसंख्या अधिक नहीं है। इस रोग ग्रस्त प्रदेश को **तराई** कहते है। अधिक पश्चिम में वर्षा कम होने के कारण सिन्ध के मैदान और हिमालय के ढालों के बीच में भाबर तो बहुत है पर तराई का अभाव है। भाबर की अपेक्षा तराई का प्रदेश अधिक चौड़ा है। आजकल उत्तर प्रदेश की सरकार इस भाग को साफ कर मशीनों द्वारा सामूहिक खेती करवा रही है। तराई को प्राय: 'No-man's Land' कहते है।

बड़े मैदान की उत्पत्ति

हिमालय पर्वत की रचना के कारण उसके और प्रायद्वीपीय भारत के मध्य में एक गहरी खाई बन गई जिसमें टेथिस सागर का कुछ अवशिष्ट जल खाड़ियों के रूप में भरा हुआ रह गया। इनमें से उपर्युक्त खाई के पश्चिम की ओर के टेथिस सागर के अवशेष को **सिंध की खाड़ी** (Gulf of Sind) और पूर्व की ओर के अवशेष को **पूर्वी खाड़ी** (Eastern Gulf) के नाम से पहचाना जाता है। इन दोनों को वह उच्च प्रदेश अलग करता था जो अब दिल्ली और कालका के बीच में है। इन खाड़ियों को वर्तमान अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के वे उत्तरी भाग कहे जा सकते हैं जो अब नष्ट हो चुके हैं। हिमालय पर से निकलने वाली आरम्भिक नदियों ने हिमालय पर से पत्थर, कंकड़, रेती और मिट्टी ला-लाकर और इन्हे इन खाड़ियों के तल प्रदेश पर क्रमश: जमाकर धीरे-धीरे इनके स्थान पर भूमि की रचना करके इन खाड़ियों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार नव-सर्जित हिमालय की आरम्भिक नदियों द्वारा जो मिट्टी का एक बडा समतल प्रदेश हिमालय और प्रायद्वीपीय भारत के मध्य में बना वही आज सिन्धु-सतलज-गंगा का मैदानी प्रदेश कहलाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है लगभग पौने दो लाख वर्ष पूर्व हिमालय के उत्थान के कारण नष्ट होने से इसके द्वारा बहने वाला हिमालय की तलैटी का जल अनेक नदियों के रूप में दक्षिण की ओर बहने लगा। पंजाब और उत्तर प्रदेश का सीमान्त इस घटना के स्वरूप कुछ ऊँचा उठा जिसके परिणाम-स्वरूप हिमालय के पूर्व भाग का जल जो पहले इण्डोब्रह्म (Indo-brahma) नदी के प्रवाह के साथ पश्चिम की ओर जाता था, अब इस अवरोध के कारण उस दिशा में जाने के बदले दक्षिण-पूर्व की ओर ब्रह्मपुत्र, गण्डक, घाघरा, गंगा, जमुना आदि नदियों के रूप में बहने लगा और इस प्रकार इन नदियों की उत्पत्ति हुई। उस समय बंगाल का अस्तित्व नहीं था। इन नदियों ने मिट्टी पाट-पाट कर बाद में बंगाल के भू-पृष्ठ का निर्माण किया है। उपर्युक्त प्राकृतिक अवरोध के कारण पश्चिम की ओर का इण्डोब्रह्म नदी का जल व्यास, सतलज, चिनाब, झेलम, सरस्वती और सिन्धु नदी के रूप में दक्षिण पश्चिम की ओर प्रवाहित होने लगा। उस समय बंगाल की भाँति सिन्ध, पश्चिम राजस्थान और उत्तरी गुजरात का अस्तित्व भी नहीं था--ये प्रदेश उस समय समुद्र के गर्भ में थे किन्तु इन नदियों ने मिट्टी बिछा-बिछा कर बाद में इन प्रदेशों की सृष्टि की।

प्रसिद्ध भूगर्भवेत्ता श्री **एडवर्ड स्विस** के मतानुसार यह मैदान प्रायद्वीप की कठोर भूमि (resistant mass) के सामने उस अग्रिम समुद्र के रूप (fore-deep) में है जहाँ से टिथिस सागर के तल की मिट्टी दक्षिण की ओर फेंक दी गई थी और जो प्रायद्वीप के सामने जम गई है। **सिडनी बुर्राड** के मत के अनुसार यह मैदान एक दरार घाटी के रूप में है जहाँ पर कि विस्फुटित दरार के समय भूमि की सतह धरातल से

नीची चली गई। इस विस्फुटित दरार की बनावट—जो प्रायः १,८७४ कि०मी० लम्बी और सैकड़ों मीटर गहरी है—इसी मत के अनुसार हिमालय पर्वत श्रेणियों के उत्थान से संबंधित है किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। भूगर्भ-शास्त्रियों का मत तो यही है कि यह मैदान भूमि की ऊपरी सतह में साधारण गहराई का एक समुद्र था जो वहाँ की नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी के जमा होने से वर्तमान मैदान के रूप में परिवर्तित हो गया।

बड़े मैदान का महत्व

इस मैदान का विस्तार बहुत है। यह भारत के लगभग एक तिहाई क्षेत्रफल को घेरे हुए है और सम्पूर्ण देश की लगभग ४४ प्रतिशत जनसंख्या यहाँ रहती है। यद्यपि भौगोलिक तथा आर्थिक दृष्टि से यह प्रदेश भारत का सर्वोत्तम भाग है किन्तु भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से इसका महत्व अधिक नहीं है। क्योंकि यह भारत का नवीनतम भाग है और इसकी बनावट सरल है। अतः इस भाग में खनिज पदार्थ का नितान्त अभाव है। किन्तु भूमि समतल होने और रेल मार्गों व नदियों का जाल बिछा होने के कारण इसी भाग में देश के बड़े-बड़े व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र हैं तथा जनसंख्या भी घनी है। सिन्धु, सतलज, गगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना होने और उन्हीं से सिंचित होने के कारण यह मैदान **पर्वतों की देन** कहलाता है। इस मैदान की कुछ मुख्य विशेषतायें ये हैं :—

(१) भारत के शेष भाग की तरह इस विशाल मैदान की जलवायु भी गरम है और इसको अनेक नदियाँ सींचती हैं। अतः गरम जलवायु और अनेक नदियों के कारण यह मैदान बड़ा उपजाऊ है।

(२) यह मैदान बड़ा चौरस है अतः यहाँ नदियाँ बड़ी धीरे-धीरे बहती हैं अतः इनका पानी आसानी से मिट्टी में समाकर अच्छी तरह भूमि को सींच देता है। इसी कारण इस मैदान में नदियों के भाग में कुएँ आसानी से खोदे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन नदियों में बहुत दूर तक नावें भी चलाई जाती हैं। भूमि चौरस होने के कारण यहाँ रेल मार्ग और सड़कें सुगमता से बनाई जा सकी हैं।

(३) पहाड़ों से आने वाली सैंकड़ों नदियाँ अपने साथ महीन रेत और मिट्टी ले आती हैं। बरसात के मौसम में बाढ़ के समय नदियाँ इस मिट्टी को मैदान में बिछा देती हैं और उसके बहुत बड़े भागों को नई और उपजाऊ मिट्टी की तह से ढक देती हैं। यह कार्य लाखों वर्षों से होता आया है जिससे यह उपजाऊ मिट्टी अब बहुत गहरी हो गई है अतः इस पर बिना खाद के ही उत्तम फसलें तैयार हो जाती हैं।

(४) इसी मैदान की चौरस भूमि सभ्यता की जन्म भूमि रही है। प्राचीन समय में झुण्ड के झुण्ड आक्रमणकारी मध्य एशिया से यहाँ आकर बड़ी बड़ी नदियों की घाटियों में बस गये। जब नदियों ने अपना मार्ग बदला तब मनुष्यों को भी उनके साथ साथ चलना पड़ा। इस प्रकार सारे मैदान पर आजकल केवल बड़े बड़े नगर और गाँव ही दिखाई नहीं देते परन्तु पुरानी बस्तियों के खण्डहर, टूटे-फूटे किले और उजाड़ नगरों की पंक्तियाँ भी देख पड़ती हैं।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि भारत का यह मैदान एक विशाल और विस्तृत खेत है। शताब्दियों से नदियाँ इस खेत पर माली का काम कर रही हैं। इन

मालियों ने धरती को एक-सा कर दिया है जिससे उसे सींचना और जोतना सुगम हो गया है। उन्होंने मिट्टी को खूब मिला दिया है जिसके कारण वह अधिक गहरी और उपजाऊ हो गई है। उन्होंने उसे ढीला और मुलायम कर दिया है जिससे पौधे अपनी जड़ें सुगमतापूर्वक फैला सकते हैं। वे उसे तर रखते हैं और इसलिये पौधों को अपने लिये भोजन मिल जाता है।

उत्तरी मैदान के प्राकृतिक खंड

इस मैदान को निम्न प्राकृतिक खंडों में बाँटा जाता है :—

(१) पंजाब का मैदान (Punjab Plain's Regian)—इस मैदान के अन्तर्गत व्यास और रावी नदी का मैदान तथा सतलज नदी के दक्षिण का वह विशाल क्षेत्र आता है जो पूर्व में जमुना के प्रवाह क्षेत्र तक और दक्षिण में थार मरुस्थल की उत्तरी सीमाओं तक फैला हुआ है। इसके उत्तर पूर्व में शिवालिक श्रेणियाँ उत्तर-

चित्र २८. पूर्वी पंजाब का मैदान
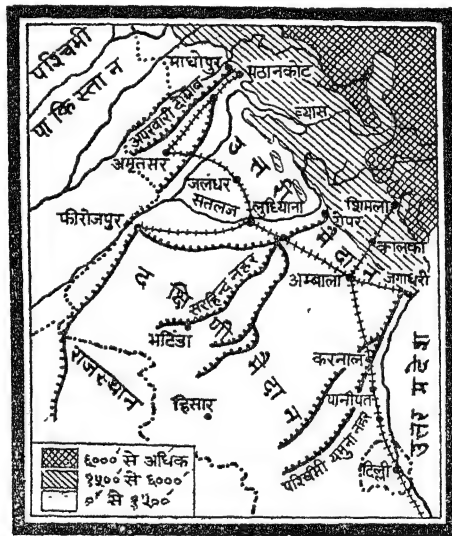
पश्चिम से दक्षिण-पूर्व में फैली हैं किन्तु पश्चिम की ओर पाकिस्तान के मैदान से अलग हो गया है। इस मैदान के दक्षिण-पूर्व में अरावली शृंखला की कुछ पहाड़ियाँ बिखरी हुई दृष्टिगोचर होती हैं अन्यथा समस्त मैदान कच्छारी मिट्टी से बना है। उत्तर की ओर शिवालिक की पहाड़ियाँ हैं जो भूमि के अत्यधिक कटाव के कारण प्रायः नंगी हो गई हैं। रोपड़ नगर के समीप भूमि के कटाव की तीव्रता को अच्छी तरह देखा जा सकता है।

प्राकृतिक दशायें—यह मैदान सामान्यतः समुद्र के धरातल से १८३ मीटर से ४२६ मीटर तक ऊँचा है। इसका ढाल दक्षिण पश्चिम और दक्षिण-पूर्व को है। इस मैदान का निर्माण अनेक नदियों द्वारा किया गया है जिसमें मुख्य सतलज, व्यास

तथा रावी नदियाँ हैं। मैदान के धरातल की ऊपरी मिट्टी अधिक नवीन और उपजाऊ है किन्तु दक्षिण की मिट्टी कुछ बलुई और पुरानी व कम उपजाऊ है।

उत्तर की ओर स्थित होने से यह मैदान जाड़ों में बहुत ठंढा (औसत तापक्रम १६° सें० ग्रेड से कम) हो जाता है। जाड़ों में प्रायः पाला पड़ता है। किन्तु गर्मी का उच्च तापक्रम ४३° सें० ग्रेड तक तथा औसत तापक्रम ३५° सें० ग्रेड तक रहते हैं। ग्रीष्म में पहाड़ी भागों को छोड़कर समस्त मैदान गर्म रहता है। वर्षा उत्तर और पूर्व की ओर बढ़ती जाती है। उत्तरी भाग में १०० से० मीटर तक किन्तु दक्षिण पश्चिम में ३८ से० मीटर तक ही होती है। जाड़ों में चक्रवात द्वारा भी अच्छी वर्षा हो जाती है। वर्षा का औसत ५० से ७६ से० मीटर रहता है किन्तु यह औसत प्रति वर्ष बदलता रहता है।

वनों का इस प्रदेश में अभाव सा है। इसका कारण कृषि की प्रधानता तथा वर्षा की न्यूनता है। दक्षिण में कटीले वन मिलते हैं किन्तु उत्तर की ओर पहाड़ी ढालों पर मुलायम लकड़ी के वन पाये जाते हैं।

मानवीय और आर्थिक दशायें—बिस्त दो-आब कृषि की दृष्टि से इस प्रदेश का सबसे उत्तम क्षेत्र है। यहाँ नहरों द्वारा सिंचाई की सुविधा प्राप्त है। किन्तु उत्तरी पश्चिमी भाग में या तो दलदली क्षेत्र है या **चोस** (chos)। इस भाग में भूमि के कटाव और रेत के फैलाव के कारण बहुत अधिक अच्छी भूमि नष्ट होती जा रही है किन्तु सरकार के प्रयत्नों से वृक्षारोपण द्वारा अब भूमि के कटाव को बहुत हद तक रोक दिया गया है। मक्का, बाजरा, गेहूँ और गन्ना इस क्षेत्र की मुख्य फसलें हैं। उपजाऊ भूमि और जल की सुविधा के कारण जगह जगह गाँव बसे हुए हैं।

सरहिन्द या हरियाना (सतलज-जमुना दोआब) क्षेत्र में मिट्टी हल्की है और सर्वत्र कुओं द्वारा सिंचाई होती है। दक्षिणी पश्चिमी भाग में जल तल बहुत ही नीचा है किन्तु रेतीली दोमट मिट्टी में शुष्कता को सहने की अपार शक्ति है अतः फसलें कदाचित ही नष्ट होती हैं। चना, गेहूँ, जौ, और ज्वार बाजरा यहाँ के महत्वपूर्ण अनाज हैं। गाँव यहाँ प्रायः बहुत बड़े होते हैं।

हिसार में जल तल बहुत गहरा है। वर्षा भी अनिश्चित और कम होती है। किसानों के पास खेत आवश्यकता से बड़े हैं। खेत प्रायः ७·५ से १० एकड़ और कहीं-कहीं तो ६० एकड़ तक पाये जाते हैं। जलाशयों के अभाव में यहाँ गाँव बड़े हैं और अपनी आवश्यकता तलाबों से पूरी करते हैं। यहाँ अधिकतर गेहूँ, जौ, बाजरा और राई बोयी जाती है। पशु-पालन यहाँ का महत्वपूर्ण धन्धा है। हिसार या हरियाना या गुड़गाँव की गायें अपनी उत्तम जाति के लिए समस्त भारत में प्रसिद्ध हैं। भैंस तथा बकरियाँ भी यहाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं।

यहाँ के अधिकतर भागों में सिंचाई की अत्यधिक आवश्यकता रहती है। पश्चिमी जमुना नहर, सरहिन्द नहर, पूर्वी नहर और ऊपरी दोआब नहर लगभग ४५ लाख एकड़ भूमि को सींचती है। सिंचाई के द्वारा यहाँ लम्बे रेशे वाली कपास, गेहूँ, गन्ना तथा चावल पैदा किया जाता है। सतलज नदी के ऊपर भाखरा नांगल बाँध योजना कार्यान्वित की गई है।

इस प्रदेश में खनिज सम्पत्ति का अभाव है। अतः अधिकांशतः कृषि और वन सम्पत्ति से सम्बन्धित उद्योगों का ही अधिक विकास हुआ है। **सूती कपड़े की मिलें**

अमृतसर, लुधियाना और भिवानी में हैं। चीनी के कारखाने हमीरा, फागवाड़ा व जगाधरी आदि में है। लुधियाना में ऊनी वस्त्र उद्योग अच्छी तरह विकसित है और यहाँ चद्दर, शाल, दुशाले आदि बनाये जाते हैं। अमृतसर में ऊनी कपड़ों का कारखाना है। यहाँ कालीन और शाल दुशाले खूब बनाये जाते हैं। जगाधरी में कागज तथा वनस्पति घी बनाने के कारखाने हैं। सोनीपत, फरीदाबाद, बहादुरगढ़ और लुधियाना में साइकिल बनाने के कारखाने हैं। लुधियाना, गोविन्दगढ़ व जालंधर में इंजीनियरिंग उद्योग, अमृतसर और लुधियाना में रेशमी वस्त्र उद्योग और बटाला व जालंधर में खेल का सामान बनाने के अनेक कारखाने है। अमृतसर और अम्बाला में काँच का सामान तैयार किया जाता है। गेहूँ का आटा पीसने, मैदा बनाने, मोजे बनियान, चीनी, मिट्टी के बरतन, हाथ करघों का कपड़ा आदि बनाने के कुटीर उद्योग समस्त मैदानी भाग में बिखरे हुये हैं।

इस प्रदेश में आबादी का घनत्व ४४० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। पहाड़ी तथा शुष्क भागों की अपेक्षा मैदानी भागों में उपजाऊ भूमि और सिचाई की सुविधा होने से आबादी का घनत्व अधिक है। बिस्त के दोआब में जालंधर और होशियारपुर जिलों की आबादी का औसत: क्रमश: ७६१ और ४८६ है, इनमें शिवालिक के कम घने भाग भी सम्मिलित हैं) सतलज की घाटी में भी आबादी का औसत अधिक है। लुधियाना में ६११ व्यक्ति प्रति वर्गमील का औसत है जबकि दक्षिण के शुष्क हिसार जिले में यह औसत १६४ और उत्तरी पहाड़ी भाग में ६८ ही है। यहाँ लोग मुख्यत: छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं। घर झोंपड़ियों के रूप में रहते हैं जो मिट्टी और फूस की बनी होती हैं। झोपडियों की छतें चपटी होती हैं जो यहाँ की शुष्क जलवायु को प्रकट करती हैं। सामान्यत: गाँव के चारों ओर दीवार अथवा खाई बनी रहती है जिससे पशु चराने वालों और लुटेरों से रक्षा हो सके। गाँव में घुसने के एक या कुछ ही द्वार होते हैं।

गाँव के निवासी आर्य जाति के हैं। पंजाबी लोग लम्बे, चौड़े, गोरे और हृष्ट पुष्ट होते हैं। ये अधिकतर सैनिक जीवन या इंजीनियरिंग उद्योगों में रुचि रखते हैं। कृषि इन लोगों का मुख्य उद्यम है किन्तु कुछ लोग व्यापार में भी लगे हैं। यहाँ की भाषा गुरुमुखी (पंजाबी) और हिन्दी है। अधिकाँश पंजाबी लोग सिक्ख धर्म के अनुयायी हैं। अमृतसर, जालंधर, अम्बाला, पटियाला, चंडीगढ़, रोहतक, भटिंडा, हिसार, पानीपत आदि अनेक प्रसिद्ध औद्योगिक नगर हैं।

(२) गंगा का ऊपरी मैदानी प्रदेश (Upper Ganges Plain's Region)

यह उप-हिमालय की पेटी और मध्य भारत के अग्र प्रदेश के ढालों के बीच में स्थित है। उत्तर में शिवालिक की पहाड़ियाँ और दक्षिण में बुन्देलखण्ड का पठारी भाग में तथा दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम में मालवा के पठार और अरावली पर्वत के कटे-फटे भाग ही इस प्रदेश की सीमा बनाते हैं। मोटे तौर पर १०० से० मीटर वाली वर्षा रेखा इस प्रदेश की सीमा रेखा मानी जा सकती है। इसमें पश्चिमी यू० पी० का दो तिहाई भाग सम्मिलित है। किन्तु उत्तर के पहाड़ी जिले जैसे देहरादून, गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल तथा दक्षिण में प्रायद्वीपीय अग्र भाग के जिले जैसे झाँसी, बाँदा और हमीरपुर जिले सम्मिलित नहीं हैं।

प्राकृतिक दशाएँ—इस प्रदेश का लगभग आधा भाग गंगा जमुना के दोआब

के बीच में स्थित है। समस्त मैदान उपजाऊ कच्छार का बना हुआ एक अवसरहीन प्रदेश है। उत्तर में थोड़ा तराई का भाग और पश्चिम में भूड़ भूमि आगई है।
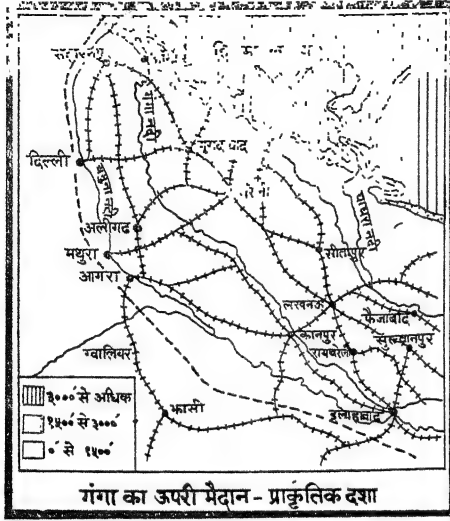
चित्र २९. गंगा का ऊपरी मैदान

सामान्यतः इस मैदान की ऊँचाई १०५ मीटर से ३२८ मीटर तक है। यह मैदान गंगा, जमुना, रामगंगा, घाघरा तथा उनकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई कीचड़ और बालू मिट्टी से बना है। इसका ढाल उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर है और सारा मैदान समतल है। इस प्रदेश में अनेक प्रकार की मिट्टियाँ हैं। एक ओर पश्चिम में भारी ऊसर चीका मिट्टी मिलती है तो दूसरी ओर शुष्क भागों में नमकीन रेत पाई जाती है। कहीं-कहीं बलुही भूड़ और कहीं दोमट मिट्टी भी मिलती है। किन्तु खादर की मटियार चीका मिट्टी चावल की खेती के लिए सबसे उत्तम है।

यहाँ का औसत तापमान जनवरी में १३° से १८° सें० ग्रेड और मई में ३२° से ३५° सें० ग्रेड रहता है। वार्षिक तापान्तर ४०° सें० ग्रेड भी अधिक रहता है। उत्तरी पश्चिमी भाग में जाड़े की मौसम विशेष महत्व की होती है। जनवरी में रात्रि को पाला पड़ता है और फरवरी मार्च में ओलों की वर्षा होती है। फलस्वरूप कभी-कभी रबी की फसल को भारी क्षति पहुँचती है। सुदूर उत्तरी पश्चिमी भागों में जाड़ों में वर्षा (जनवरी में ५ सें० मीटर) होती है। यह सहारनपुर और मुजफ्फरनगर जिलों में गेहूँ की फसल के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध होती है। उत्तरी भागों में जहाँ वर्षा लगभग ३८ सें० मी० हो जाती है बिना सिंचाई के गेहूँ पैदा किया जाता है। उत्तरी पूर्वी भाग में वर्षा की मात्रा १२७ सें० मीटर तक पहुँच जाती है। किन्तु दक्षिण पश्चिम से घट कर ७५ सें० मीटर ही रह जाती है। यह वर्षा बंगाल की खाड़ी के मानसून से होती है। वर्षा का औसत २५ से १०० सें० मीटर का है।

इस प्रदेश में कृषि की प्रधानता से जंगलों का अभाव है। पहाड़ी ढालों पर साखू, सागौन आदि वृक्ष मिलते हैं। खनिज पदार्थों का यहाँ नितान्त अभाव है। कृषि इस भाग का प्रमुख व्यवसाय है परन्तु पश्चिमी जिलों में बिना सिंचाई के काम नहीं

चलता। समस्त प्रदेश में बोई जाने वाली फसलों में केवल ३६% फसलें ही सिंचित भूमि पर बोई जाती हैं। दोआब में यह औसत ५०% और मेरठ में ५७% है। इस भाग में नल कूपों का आधिक्य है। ये नल गंगा के दोनों ओर दोआब की उच्च भूमि पर स्थित हैं जहाँ नहरों द्वारा सिंचाई सम्भव नहीं है। अत: मुरादाबाद, बिजनौर, बुलन्दशहर और बाँदा जिलों में जहाँ भूड मिट्टी आगई है इनका बड़ा महत्व है। प्रत्येक नल कूप से लगभग ३०० एकड़ भूमि सींची जाती है। नहरों द्वारा भी यहाँ बड़े पैमाने पर सिंचाई होती है। उत्तर प्रदेश की कुल १२३ लाख एकड़ सिंचित भूमि में से अधिकतर इसी प्रदेश में है। यहाँ की प्रमुख नहरें—पूर्वी जमुना नहर, ऊपरी गंगा नहर और निचली गंगा नहर है। ये तीनों नहरें दोआब के लगभग ५०% भाग को सींचती हैं। आगरा व शारदा नहरों द्वारा ५१ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है। इसके अतिरिक्त दक्षिण प्रायद्वीप के अग्र प्रदेश के गाँवों में तालाबों द्वारा भी खूब सिंचाई की जाती है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—सिंचाई की सुविधाओं के कारण इस प्रदेश में खेतीहर भूमि का औसत अधिक है। यहाँ का औसत लगभग ५६ प्रतिशत है। यहाँ के खेत बसन्त की फसल के बाद तथा ग्रीष्म के महीनों के अलावा कभी पड़त नहीं रहते। यह भूमि पर आवादी के अत्यधिक भार का सूचक है। जंगलों का इस प्रदेश में लगभग अभाव सा है। जंगल केवल तराई अथवा नदियों के किनारे तक ही सीमित हैं। यहाँ की बोई गई कुल भूमि के तीन चौथाई भाग में गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, चना, व मक्का आदि फसलें बोई जाती हैं। चावल के अतिरिक्त अन्य सब फसलें पश्चिम के शुष्क भाग में पैदा की जाती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मात्रा में तम्बाकू और तिलहन की भी खेती की जाती है। इस प्रदेश में भारत के किसी भी भाग से अपेक्षतया अधिक पशु पाले जाते हैं। जाड़ों की वर्षा और उत्तम कृषि के कारण सहारनपुर, मुज्जफरनगर और मेरठ में बोई गई भूमि के ६०% से भी अधिक भाग में चारे की फसलें पैदा की जाती हैं। अलीगढ़ और आगरा दुग्ध उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये हैं। वंजर भूमि की कमी के कारण भेड़ व बकरियाँ कम पाई जाती हैं। यहाँ के खेत बहुत छोटे है। समस्त राज्य में ८१% से भी अधिक खेत ५ एकड़ से कम के हैं।

यद्यपि इस प्रदेश में खनिज पदार्थों का अभाव पाया जाता है किन्तु ऊपरी गंगा नहर से जल विद्युत प्राप्त हो जाने के कारण इसका उपयोग उत्तर में सहारनपुर से लगाकर दक्षिण में आगरा तक औद्योगिक कार्यों के लिये किया जाता है। रूहेलखण्ड में शारदा नहर के अन्तर्गत खातिया शक्ति गृह की भी स्थापना की गई है।

यहाँ के अधिकांश उद्योग कृषि पर आधारित हैं। कानपुर और दिल्ली इस क्षेत्र के सबसे बड़े एवं प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं। सूती, ऊनी कपड़ा, काँच, चीनी, कागज, चमड़ा आदि के अनेक व्यवसाय यहाँ विकसित हैं। चीनी की मिलें मेरठ, बरेली, शाहजहाँपुर, सहारनपुर तथा रामपुर में हैं। बरेली व पीलीभीत में लकड़ी का उद्योग केन्द्रित है। सूती कपड़े की मिलें कानपुर, हाथरस, मोदी नगर, लखनऊ, आगरा व दिल्ली में हैं। चमड़ा उद्योग कानपुर व आगरा में तथा काँच की वस्तुएँ बनाने का उद्योग फिरोजाबाद, बहजोई, शिकोहाबाद, सासनी तथा नैनी में केन्द्रित हैं। मुरादाबाद में कलईदार बर्तन, अलीगढ़ में ताँबे, छुरियाँ व चाकू आदि, मेरठ में कैंची, लखनऊ में चिकन, सहारनपुर में कागज तथा बरेली में दियासलाई बनाने का उद्योग किया जाता है।

इस प्रदेश का क्षेत्रफल ६०,५५६ वर्गमील और आबादी ३८०·३७ लाख है। प्रति वर्गमील आबादी का घनत्व ६२८ है। अधिकतर भाग में मिट्टी उपजाऊ है और वर्षा भी अच्छी होती है फिर भी भूमि पर आबादी का घनत्व ६०० से ८०० के बीच है। विभिन्न जिलों में आबादी का घनत्व इस प्रकार है—रामपुर में ६०७, कानपुर में ८२३, बरेली में ७६८, आगरा में ८०७, अलीगढ़ में ७६५, मेरठ में ६८२, इलाहाबाद में ७३२ और लखनऊ में ७१५ है। सुदूर उत्तर और दक्षिण में पशु संख्या अधिक और जनसंख्या कम है।

साधारणतः ६०% जनसंख्या ५,००० से भी कम आबादी वाले गाँवों में रहती है। अधिकतर गाँव नदियों के समीप बसे हैं। गाँव की झोंपड़ियाँ मिट्टी और फूस से बनी होती हैं, गाँव के आस-पास नीम, पीपल व आम के कुञ्ज पाये जाते हैं। सुदूर उत्तर तथा शुष्क भागों में मलेरियाप्रद जलवायु और अनुपयुक्त भूमि के कारण गाँव छोटे और पिछड़े हुए पाये जाते हैं। गहरी खेती वाले भागों खेतों और मकानों के बीच जगह के लिये बड़ी प्रतिस्पर्धा दृष्टिगोचर होती है। ऐसे भागों में आबादी का घनत्व ६०० व्यक्ति प्रति एकड़ तक पाया जाता है। सुदूर पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में मकानों की छतें चपटी होती हैं। सुदूर पूर्व में झोंपड़ियाँ मिट्टी की बनी होती हैं।

गाँवों के साथ-साथ यहाँ ५,००० से १०,००० आबादी वाले अनेक नगर हैं। इनकी संख्या कोई ३०० के लगभग है जिनकी कुल आबादी २० लाख के लगभग है। कुछ नगर धार्मिक केन्द्र अथवा पुरानी राजधानियाँ हैं जैसे मथुरा, दिल्ली, कन्नौज, इलाहाबाद, लखनऊ और आगरा। कुछ नगर कृषि की मंडियाँ और कुछ औद्योगिक केन्द्र हैं जैसे मेरठ, बरेली, कानपुर, मुरादाबाद व सहारनपुर आदि। अन्य प्रसिद्ध नगर रामपुर, अलीगढ़, इटावा और बुलन्दशहर हैं।

(३) गंगा का मध्य मैदानी प्रदेश (Middle Ganges Plain's Region)

यह प्रदेश अति आर्द्र बंगाल एवं गंगा के डेल्टा प्रदेश और अर्ध-शुष्क पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बीच में एक संयोजक के रूप में है। यह प्रदेश लगभग ३४० कि० मी० लम्बा है। गंगा नदी इसमें पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। इसके उत्तर में हिमालय की निचली पहाड़ियाँ और दक्षिण में दक्षिणी पठार के निकले हुए भाग हैं। इस प्रदेश में गंगा के उत्तर की ओर का समस्त बिहार और दक्षिण की ओर गंगा के समीप ही गया, पटना, शाहबाद तथा अन्य जिलों के भाग और यू० पी० में इलाहाबाद के पूर्व का भाग शामिल है। इसका क्षेत्रफल ७४,३४७ वर्गमील और जनसंख्या ४७६·६ लाख है। यह प्रदेश ऊपरी गंगा के मैदान के शुष्क दोआब और आर्द्र निम्न गंगा के मैदान के बीच का एक अन्तरिम क्षेत्र है।

प्राकृतिक दशायें—यह प्रदेश एक लम्बा चौड़ा मैदान है जिसकी ऊँचाई १५२ मीटर से भी कम है। इस मैदान में गंगा और उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं। ये सब नदियाँ हिमालय से आने के कारण बड़ी मात्रा में अपने साथ मिट्टी बहा लाकर घाटियों में जमा कर देती हैं। इन नदियों के मार्ग बदल देने से मैदान में यत्र-तत्र अनेक छिछली झीलें और दलदल पाये जाते हैं। कहीं-कहीं निम्न भूमियों के कारण भी ऐसी झीलें पाई जाती हैं। अब ये दलदल किसी प्रकार सुखा लिये गये हैं और वहाँ खेती की जाने लगी है।

इस प्रदेश की जलवायु विषम कम है। जाड़ों में अधिकतम और न्यूनतम तापक्रम क्रमशः २९° सें० ग्रेड और १०° सें० ग्रेड रहते हैं। गर्मी में जब गरम 'लू'
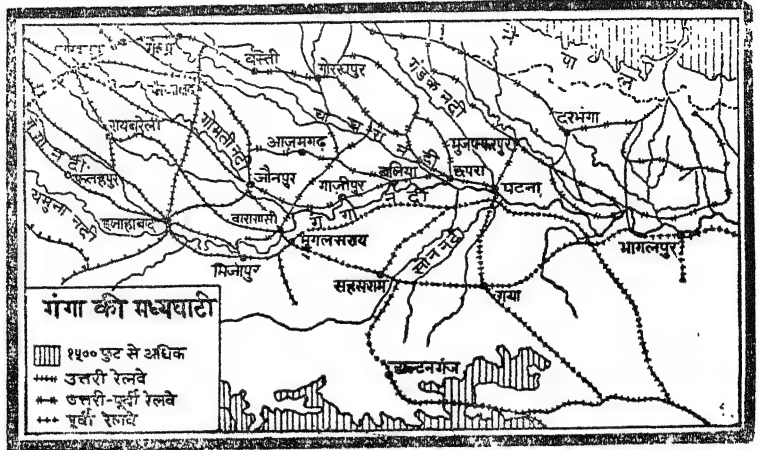
चित्र ३०. गंगा का मध्य मैदान

चलती है तो तापक्रम ३७° सें० ग्रेड तक हो जाता है। इस भाग में वर्षा बंगाल की खाड़ी के मानसून से होती है। वर्षा की मात्रा हिमालय से गंगा की ओर कम होती जाती है। वर्षा पश्चिम में १०० सें० मीटर और उत्तर में पूर्णिया जिले में १५० सें० मीटर तक होती है। कभी-कभी यह प्रदेश वर्षा के अभाव में अकाल-ग्रस्त हो जाता है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—इस प्रदेश का अधिकतर भाग बांगड़ (Bangar) क्षेत्र है। गंगा के दक्षिण में कच्छार का जमाव कम है। वस्तुतः यह पठारी भाग है जो बहुत ही ऊबड़-खाबड़ है। यह पश्चिम में १३७ कि० मी० चौड़ा है पूर्व में राजमहल की पहाड़ियाँ सीधी गंगा के पास चली गई हैं।

यहाँ की समस्त भूमि का ७५% कृषि योग्य, १३% बेकार और शेष १२% कृषि के लिये अलभ्य है। उत्तर की ओर तराई को छोड़ कर अन्य भागों में जंगलों का अभाव है। तराई में साल के वृक्ष और लम्बी मोटी घास पैदा होती है। इस प्रदेश में सिंचाई की सुविधाओं का अधिक विकास नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण पर्याप्त वर्षा का होना है। किन्तु दुर्भिक्ष के कारण कभी-कभी सिंचाई की आवश्यकता पड़ जाती है। सोन नहर सोन नदी गंगा नदी के दक्षिणी भाग की ओर पटना व गया जिलों में निकाली गई है। पश्चिमोत्तर भाग में नल कूपों द्वारा सिंचाई की जाती है। बिहार की कोसी योजना की समाप्ति पर ५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी।

इस प्रदेश में उत्पन्न की जाने वाली फसलों में चावल का विशेष स्थान है। चावल के बाद गेहूँ और जौ का स्थान है। फसलों के सापेक्षिक महत्व का अन्तर १०० सें० मी० वर्षा वाली रेखा के समीप स्पष्ट देखा जाता है। उदाहरणतः फैजाबाद में गेहूँ का क्षेत्र चावल के क्षेत्र की तुलना में आधा है। किन्तु पूर्व की ओर गोरखपुर, तिरहुत, पटना और भागलपुर में गेहूँ का औसत १२ से १५ प्रतिशत

ही रह जाता है। ज्वार, बाजरा और कपास की फसलों का लगभग कोई महत्व नहीं है। परन्तु काफी बड़े भाग में तम्बाकू और तिलहन की खेती होती है। इलाहाबाद में चावल की फसल ही महत्वपूर्ण है। पूर्वी भाग में जूट और गन्ना प्रचुरता से बोया जाता है। गन्ने के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र गोरखपुर, देवरिया, चम्पारन और भागलपुर जिले हैं।

यह प्रदेश खनिज पदार्थों में धनी नहीं है। मध्यवर्ती भाग में सारन, मुज्जफरपुर आदि जिलों में शोरा और मुंघेर के निकट अभ्रक और चीनी मिट्टी प्राप्त की जाती है। वाराणसी के दक्षिणी भागों में सिलिका बालू मिट्टी भी मिलती है।

इस भाग में अधिकांशतः उद्योग कृषि उत्पादनों पर ही निर्भर हैं। इसी कारण गोरखपुर, छपरा, चम्पारन, बक्सर डेअरी आन-सोन, और मुज्जफरपुर में चीनी का उद्योग केन्द्रित है। मुंघेर में सिगरेट वनाने का कारखाना तथा भागलपुर, पटना और वाराणसी में रेशम और सूती वस्त्र बनाने का उद्योग किया जाता हैं। उत्तरी पूर्वी भाग में धान कूटने और तेल पेरने का उद्योग भी विकसित हुआ है।

इस प्रदेश की आबादी का घनत्व बहुत ऊँचा है। यहाँ के २३ जिलों में से बहराइच और पूर्णिया जिलों में ही घनत्व कम है क्योंकि इनका बहुत सारा भाग तराई में आ गया है और जलवायु भी मलेरियाप्रद है। इनका घनत्व क्रमशः ५१० और ५२४ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। साधारणतः इस प्रदेश में आबादी का घनत्व ६०० से ९७५ व्यक्ति प्रति वर्गमील के बीच में है। बालिया, दरभंगा, सारन और मुज्जफरपुर का एक पूरा क्षेत्र १०,२२४ वर्ग मील है जिसमें आबादी का घनत्व १,०१२ से १,१८२ तक पाया जाता है। इसमें कुछ शहरी आबादी भी शामिल है। किन्तु यहाँ बड़े-बड़े शहर कम और दूर-दूर हैं। यहाँ शहरों की संख्या कुल १३ ही है जिनमें ५०,००० से ऊपर जनसंख्या है। यहाँ की कुल ४½ करोड़ जनसख्या में से करीब १२ लाख लोग ही शहरों में रहते हैं। जनसंख्या का अधिकतर भाग ५०० से १,००० आबादी वाले गाँवों में रहता है। बिहार के मैदानी भाग के गाँव एक प्रकार से झोंपड़ियों के समूह हैं जो कृषि पर निर्भर हैं। यहाँ के साधारण घर मिट्टी के बने होते हैं। इनकी छतें फूस अथवा बाँस की होती हैं। जमींदार तथा धनी वर्ग के लोग ऊँचे स्थानों पर ईंट के पक्के मकानों में रहते हैं। यहाँ भूमि पर आबादी का दबाव इतना अधिक है कि प्रति वर्ष यहाँ के लोग बेकारी के मौसम में आसाम के बगीचों व बंगाल की गोदियों में काम करने जाते हैं।

इस प्रदेश में अनेक ऐतिहासिक नगर स्थित हैं। कुछ बहुत ही प्राचीन स्थान यहाँ हैं। मिथिला राज्य, पाटलीपुत्र, वैशाली के खंडहर, कुसीनगर, बौद्ध गया, सारनाथ आदि स्थान महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित हैं। वाराणसी, अयोध्या, फैजाबाद, गोरखपुर, पटना, मुघेर, मुज्जफरपुर, और दरभंगा प्रसिद्ध नगर हैं। इस प्रदेश में यातायात के मार्गों का बड़ा विकास हुआ है।

(४) गंगा का निचला मैदान (The Lower Ganges Plain's Region)

इसका विस्तार गंगा और ब्रह्मपुत्र के डेल्टे में है। इसके उत्तर में पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले में निम्न हिमालय प्रदेश और दक्षिण में बंगाल की खाड़ी है। इसके दक्षिणी भाग के पश्चिम में छोटा नागपुर पठार के पूर्वी भाग है। इसका क्षेत्रफल २८,३३३ वर्गमील और आबादी २४० लाख है।

प्राकृतिक दशाएँ—यह प्रदेश अत्यन्त समतल है जो कहीं भी ४५ मीटर से ऊँचा नहीं है। दक्षिणी भाग जहाँ गंगा कई धाराओं में बँट जाती है, १५ मीटर से भी कम ऊँचा है। इस भाग में हुगली, भागीरथी, बंसलोई, मयूराक्षी व दामोदर नदियाँ बहती हैं। उत्तर का पुराना मैदान डुआर कहलाता है। इसके बीच-बीच में कुछ पहाड़ियाँ आगई हैं जिन्हें भरिंड कहते हैं। ये झाड़ियों से घिरी हैं। दक्षिण की ओर गंगा का पुराना डेल्टा है। इसमें विस्तृत दलदल पाये जाते हैं। पश्चिम की ओर प्रायद्वीप की कठोर चट्टानें पाई जाती हैं। इस ओर पठार से निकलकर अजय, दामोदर और रूपनारायण नदियाँ आकर हुगली में मिलती हैं।

यहाँ की जलवायु एक दम आर्द्र है। नमी के कारण ग्रीष्म में गर्मी विशेष तीव्र नहीं होती है। ठंढी मौसम अपेक्षतया बहुत छोटी होती है। वर्षा का औसत १२७ से १५२ सें० मीटर के बीच रहता है। वर्षा की मात्रा उत्तर की ओर बढ़ती जाती है। मार्च और अप्रैल में यहाँ नोरवेस्टर्स द्वारा भारी वर्षा होती है। जूट तथा ऑस चावल के लिये यह वर्षा बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। जाड़े का औसत तापक्रम १८ सें० ग्रेड और गर्मी का औसत तापक्रम ३२° सें० ग्रेड रहता है किन्तु समुद्र की निकटता के कारण तापक्रम का अन्तर अधिक नहीं बढ़ने पाता। यह दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ता जाता है।

मानवीय और आर्थिक दशाएँ—यहाँ की कुल भूमि के १५% भाग पर कृषि होती है। यहाँ बोई जाने वाली फसलों में जूट और चावल का विशेष स्थान है। इसके अतिरिक्त तम्बाकू, गन्ना और चाय भी बोई जाती है। केला, सुपारी, कटहल और आम के वृक्ष भी खूब मिलते हैं। डेल्टा में सुन्दरवन मिलते हैं। मुर्शिदाबाद, मालदा और वीरभूमि में रेशम के कीड़े पाले जाते हैं।

दामोदर घाटी खनिज पदार्थों का भंडार है। इस घाटी में देश का १००% ताँबा और काइनाईट, ८३%, लोहा, ८०% कोयला, ७०% क्रोमाइट और अभ्रक, ४५% चीनी मिट्टी, २०% चूने का पत्थर और ५% अग्नि-मिट्टी मिलती है।

औद्योगिक दृष्टि से यह प्रदेश महत्वपूर्ण है। यहाँ अनेक कुटीर उद्योग धन्धे किये जाते हैं जिनमें मुख्य रेशमी कपड़ा वनाना, धान कूटना, खिलोने बनाना तथा तेल निकालना मुख्य है। यहाँ दो मुख्य औद्योगिक क्षेत्र हैं। पहला क्षेत्र हुगली का है जिसमें १०० के लगभग जूट की मिलें हैं। चौबीस परगना क्षेत्र, सौदपुर व श्रीरामपुर में सूती कपड़े; रानीगंज व टीटागढ़ में कागज बनाने की मिलें; मुर्शिदाबाद, बाँकुड़ा में रेशमी कपड़े के उद्योग केन्द्रित हैं। दूसरा क्षेत्र रानीगंज का है। इसमें इंजीनियरिंग, काँच, चीनी मिट्टी के बरतन तथा लोहे और इस्पात के कारखाने हैं। चितरंजन में एन्जिन तथा दुर्गापुर हीरापुर में और कुल्टी में इस्पात तथा कलकत्ता के निकट रासायनिक पदार्थ और मोटरें बनाई जाती हैं।

यहाँ की जनसंख्या पूर्णतः बंगला भाषा-भाषी है। यहाँ की कुल आबादी का २४ प्रतिशत भाग शहरों में रहता है। इस शहरी आबादी का भी आधा भाग हुगली औद्योगिक क्षेत्र में रहता है। कलकत्ता में १० वर्गमील के अन्दर लगभग २५ लाख मनुष्य रहते हैं। हुगली-भागीरथी क्षेत्र में ३,००० वर्गमील में १ करोड़ व्यक्ति रहते हैं। गाँवों में आबादी का घनत्व २,००० व्यक्ति प्रति वर्गमील पड़ता है। यहाँ के गाँवों में घर मिट्टी के बने होते हैं तथा छतें फूस की छायी रहती हैं। कलकत्ता, हावड़ा, बर्दवान, मिदनापुर, मुर्शिदाबाद यहाँ के प्रमुख नगर हैं जो रेल मार्गों तथा

सड़कों द्वारा आपस में जुड़े हैं। नदियों और नहरों का उपयोग आने-जाने के लिए अधिक किया जाता है।

चित्र ३१. बंगाल के गाँव का एक घर

(५) ब्रह्मपुत्र घाटी का प्रदेश (Brahamputra Region)

यह प्रदेश पूर्व से पश्चिम की ओर एक पतले मैदान के रूप में उत्तरी-पूर्वी भारत में फैला है। इसके उत्तर में हिमालय की श्रेणियाँ, पूर्व में पटकोई की पहाड़ियाँ, तथा दक्षिण में खासी, गारो और जयन्तिया की पहाड़ियाँ हैं। पश्चिम की ओर यह गंगा के डेल्टा से सम्बन्धित है। यह घाटी ८०५ किलोमीटर लम्बी और ६४ से ९७ किलोमीटर चौड़ी है।

प्राकृतिक दशायें—इस घाटी में ब्रह्मपुत्र और उसकी अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं। अतः इस प्रदेश की रचना इन्हीं नदियों द्वारा लाई गई बालू मिट्टी से हुई है। इन नदियों में बाढ़ें अधिक आने के कारण ब्रह्मपुत्र नदी कई शाखाओं में बँट जाती है और नदी के मार्ग में इन अवरोधों के फलस्वरूप अनेक द्वीप बन जाते हैं जिनके कारण नावें चलाना दुष्कर हो जाता है। बाढ़ के मैदान के दोनों ओर समतल मैदान पाये जाते हैं।

इस प्रदेश का जलवायु सामान्यतः आर्द्र और गर्म है। जाड़े का औसत तापक्रम १६° सें० ग्रेड और गर्मियों का औसत तापक्रम २९° सें० ग्रेड तक रहता है।

चित्र ३२. ब्रह्मपुत्र की घाटी

निचले मैदान की अपेक्षा घाटी अधिक ठंढी रहती है क्योंकि अप्रेल के बाद ही आकाश मेघाच्छन्न होने लगता है। वर्षा यहाँ बंगाल की खाड़ी के मानसूनों से ही होती है। इसका औसत २०० सें० मीटर से ऊपर रहता है। दक्षिण के कुछ भाग वृष्टि छाया में पड़ने के कारण कम वर्षा प्राप्त करते हैं।
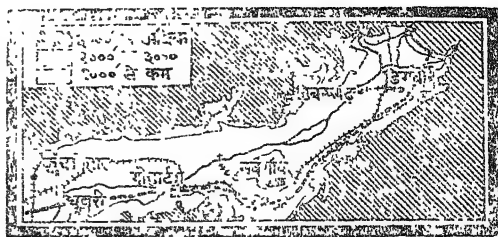
ऊँचे तापक्रम और अधिक वर्षा के कारण यहाँ घनी-प्राकृतिक वनस्पति मिलती है। लगभग १·६% भाग पर वन प्रदेश फैले हैं। साल और नरकुल के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं तथा निचले भाग में दलदली झीलें।

इस प्रदेश से भारत का ६०% मिट्टी का तेल प्राप्त किया जाता है। यहाँ पर यह लखीमपुर, नहारकटिया, डिगबोई, नामदांग के निकट से प्राप्त किया जाता है।

मानवीय और आर्थिक दशाएँ—चावल यहाँ की मुख्य फसल है। इसके बाद चाय और जूट का स्थान है। चाय के बाग नदी के साधारण ढालों पर पाये जाते हैं। अब विद्युत शक्ति घाटी का महत्वपूर्ण प्राकृतिक साधन है।

इस प्रदेश का क्षेत्रफल २१,०७१ वर्ग मील और आबादी ६६·६ लाख है। गंगा के निचले मैदान की अपेक्षा यहाँ आबादी का घनत्व कम है। यहाँ आबादी का अधिकतर जमाव घाटी के पश्चिमी सिरे पर हुआ है। गोलपारा और कामरूप जिले में आबादी का घनत्व क्रमशः २७८ और ३८८ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। इसके विपरीत धरांग में प्रति वर्गमील आबादी के घनत्व का मुख्य कारण बेकार भूमि की अधिकता है। यहाँ के कुल क्षेत्रफल का लगभग आधा भाग बेकार है और केवल एक चौथाई भाग में ही कृषि होती है। इसके अतिरिक्त बहुत सा भाग घने जंगलों दलदलों और बाढ़ के मैदान की झीलों से घिरा हुआ है। यहाँ अधिकतर आबादी प्रायः नदी उत्तलों के समीप छुट पुटे झोंपड़ियों में रहती है। गाँवों की संख्या कम है। झोंपड़ियों के चारों ओर बाँस, खजूर तथा फलों के वृक्ष लगे होते हैं। ढालू भूमि में आलू, कपास और तिलहन भी बोये जाते हैं।

इस प्रदेश में यद्यपि बड़े उद्योगों का विकास नहीं हुआ है किन्तु कुटीर उद्योग बहुत ही प्रचलित हैं। रेशमी व सूती कपड़े बुनना यहाँ का प्रमुख कुटीर उद्योग है। धुबरी में दियासलाई बनाने का कारखाना है। गोहाटी नगर में आटा पीसने, तेल पेरने, सूत कातने, पीतल व मिट्टी के बरतन बनाने का काम किया जाता है। अन्य भागों में धान कूटने, लकड़ी चीरने और तेल पेरने की मिलें हैं। डिगबोई में मिट्टी का तेल साफ किया जाता है।

यहाँ अधिकतर लोग घने आबाद बंगाल, बिहार और नैपाल से चाय के बागों व खेतों में काम करने आते हैं। फलस्वरूप आसाम की आबादी बढ़ गई है और

बेकार पड़त भूमि भी उपयोग में लाई गई है। भूमि सुधार के कारण कई बस्तियाँ बसाना भी सम्भव हुआ है। यहाँ की आबादी का ५ प्रतिशत नगरों में रहता है। और केवल २ लाख व्यक्ति ही १० हजार से अधिक आबादी वाले नगरों में रहते हैं। इस प्रदेश के मुख्य नगर धुबरी, गोहाटी, तेजपुर, सादिया, शिवसागर, और डिब्रूगढ़ हैं।

इस प्रदेश में रेलमार्ग उत्तरी भाग को पश्चिमी बंगाल से जोड़ते हैं। ब्रह्मपुत्र नदी में गोहाटी तक बड़े जहाज जाते हैं।

समुद्र तटीय मैदान (Coastal Plains)

दक्षिणी प्रायद्वीप के पूर्वी और पश्चिमी और पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों और समुद्र के बीच में समुद्र तटीय मैदान स्थित हैं। ये मैदान या तो समुद्र की क्रिया द्वारा बने हैं या नदियों द्वारा लाई गई कीचड़ मिट्टी द्वारा। ये मैदान क्रमशः पश्चिमी समुद्र तटीय मैदान और पूर्वी समुद्रतटीय मैदान कहलाते हैं।

(क) पश्चिमी तटीय मैदान (Western Coastal Plain)—यह मैदान प्रायद्वीप के पश्चिम में खंभात की खाड़ी से लगाकर कुमारी अंतरीप तक फैले हैं। इनकी औसत चौड़ाई ६४ कि० मी० है। नर्मदा और ताप्ती के मुहानों के निकट यह ८० कि० मी० चौड़ा है, इस तटीय मैदान में बहने वाली नदियां छोटी और तीव्रगामी हैं अतः इनके द्वारा पश्चिमी घाटों पर होने वाली वर्षा का जल व्यर्थ ही समुद्र में बहकर चला जाता है। तीव्रगामी होने के कारण इनके द्वारा मिट्टी भी अधिक नहीं जमाई जाती। दक्षिणी भाग में लम्बे और संकरे अनूप (Lagoons) पाये जाते हैं जो नदियों के बहने पर बालू के जम जाने से बने हैं। इन अनूपों में सैकड़ों मीलों तक नौकागमन सम्भव है। कोचीन का बदरगाह ऐसे ही अनूप पर स्थित है। इन अनूपों में मछलियाँ भी पकड़ी जातो हैं। पश्चिमी मैदान उत्तर की ओर चौड़ा होकर नर्मदा-ताप्ती का मैदान बनाता हुआ गुजरात तक चला गया है। सौराष्ट्र के तटीय मैदान तथा कच्छ पैनीप्लेन के मुख्य उदाहरण हैं। मैदान के उत्तरी भाग को कोंकन और दक्षिणी भाग को मलाबार कहते हैं। इनमें उत्तम जलवायु और उपजाऊ मिट्टी के कारण अधिक जनसंख्या पाई जाती है। भारत का पश्चिमी तट प्रधानतः महाद्वीपीय ढाल असाधारण रूप से सीधा है और विभंग के परिणाम को सूचित करता है।

पश्चिमी तटीय मैदान के प्राकृतिक खंड

इस मैदानी भाग में निम्न प्राकृतिक खंड हैं :—

(१) कच्छ, काठियावाड़ और गुजरात प्रदेश (Kutch, Kathiawar & Gujarat Region)

यह प्रदेश दक्षिण के प्रायद्वीप का उत्तरी पश्चिमी भाग है। इसमें कच्छ, काठियावाड़ तथा गुजरात सम्मिलित हैं। इसके उत्तर पश्चिम में सिंध नदी का डेल्टा; दक्षिण में ताप्ती की घाटी; उत्तर में थार का मरुस्थल, पूर्व में लावा मिट्टी का पठारी भाग तथा पश्चिम में अरब सागर है।

प्राकृतिक दशायें—इस प्रदेश का अधिकांश भाग १८३ मीटर से भी नीचा है किन्तु बीच-बीच में अनेक छोटी मोटी पहाड़ियाँ हैं जो ३०५ मीटर तक ऊँची हैं। इसका प्राचीन भाग पुरानी चट्टानों से बना है। कच्छ का भाग नग्न और चट्टानी है

जो तीन ओर दलदलों तथा एक ओर समुद्र से घिरा है। यहाँ वृक्ष कदाचित ही दिखाई पड़ते हैं। समस्त प्रदेश नमकीन और कृषि के सर्वथा अयोग्य है। यहाँ ग्रीष्म कालीन तापक्रम का औसत ३२° सें० ग्रेड तक रहता है। कर्क रेखा के समीप होने से शीत ऋतु का औसत भी २७° सें० ग्रेड तक रहता है। वर्षा की मात्रा ३० से ३८ सें० मीटर तक होती है। पशु पालन यहाँ का मुख्य धन्धा है।

चित्र ३३. कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात का मैदान

काठियावाड़ का प्रायद्वीप लावा से बना है किन्तु इसके मध्य में गिरनार और मांडव की पहाड़ियाँ हैं जो वनों से ढकी हैं। शेष भाग चट्टानी और अनुपजाऊ है। नदियाँ इन्हीं पहाड़ों से निकल कर चारों ओर बहतो हैं। यहाँ वर्षा का औसत तटीय भागों में ३८ से ५१ सें० मीटर तक होता है किन्तु दक्षिणी भागों में ६३ से० मीटर तथा मध्यवर्ती भागों में १०० सें० मी० तक होता है। अतः कृषि मुख्यतः पठार की तलैटियों में अथवा नदियों के किनारे पर की जाती है। गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि खाद्यान्न यहाँ पैदा किये जाते हैं।

सौराष्ट्र के पूर्व की ओर गुजरात का भाग है जो प्रायः समतल है। वर्षा की कमी के कारण यहाँ रेतीली व अनुपजाऊ मिट्टी पाई जाती है। पूर्व की ओर छोटी पहाड़ियों पर झाड़ियाँ पाई जाती हैं। साबरमती यहाँ की मुख्य नदी है। उत्तरी गुजरात में वर्षा की मात्रा ५१ सें० मी० तक होती है। इसके दक्षिण की ओर मध्य गुजरात में मिट्टी कुछ अधिक उपजाऊ है तथा जलवायु भी अपेक्षतया आर्द्र है। वर्षा ७६ सें० मीटर तक होती है। नदी तटों पर चावल तथा अन्य भागों में कपास व बाजरा उत्पन्न किया जाता है। पूर्वी भाग में कटीले जंगल पाये जाते हैं। दक्षिणी गुजरात में निचला मैदानी भाग नर्मदा, ताप्ती और माही नदियों द्वारा बना है। तट के निकट क्षारयुक्त मिट्टी की एक संकरी पट्टी है जो अनुपजाऊ है। इस पेटी

हैं। अधिकांश निवासियों की भाषा गुजराती है। अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा, भावनगर, भडौंच, मोरवी, राजकोट आदि बड़े नगर हैं। इस प्रदेश में अनेक बन्दरगाह है। कांडला, भावनगर, वेदी, ओखा तथा नवलखी मुख्य हैं।

यहाँ आवागमन के मार्गों की ठीक सुविधा है। पश्चिमी रेलवे प्रदेश के मुख्य भागों को दिल्ली से जोड़ती है। ऊँचे भागों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में कच्ची सड़कों द्वारा आना जाना होता है। तटीय भागों में नावों का भी उपयोग किया जाता है।

(२) कोंकन प्रदेश (Konkan Region)

चित्र ३४. कोंकन प्रदेश

यह प्रदेश अरब सागर और पश्चिमी घाट के शिखर के बीच एक संकीर्ण पेटी है। उत्तर में नर्मदा और ताप्ती के डेल्टाओं के कारण यह पेटी चौड़ी हो गई है। यह प्रदेश दमन गंगा से लगाकर गोआ तक फैला है। इसके उत्तर की ओर दक्षिणी गुजरात, दक्षिण की ओर मलाबार तटीय प्रदेश तथा पूर्व में पश्चिमी घाट और पश्चिम में अरब सागर हैं।

प्राकृतिक दशायें—पश्चिमी घाट से निकल कर आने वाली अनेक नदियों ने रेतीले समुद्रतट से भीतर की ओर मिट्टी बिछाकर चौरस मैदान की रचना की है। किन्तु तटीय मैदान के पूर्व की ओर पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल आ गये हैं जो ३०५ मीटर से अधिक ऊँचे नहीं हैं। घाट के समीप नदियों ने कच्छधारी शंकुओं का निर्माण किया है। तटों के निकट लहरों ने बालुका स्तूप खड़े कर दिये हैं। बालुका स्तूपों के कारण नदियाँ समुद्र तक नहीं पहुँच पाती हैं। परिणामस्वरूप जल प्रायः चारों ओर फैल जाता है जिससे छिछली लैगून भीलें बन जाती हैं। यहाँ दलदली भूमियाँ भी पाई जाती हैं। तटों के समीप भूमि बलुही होने से कृषि के अयोग्य है। अतः यहाँ कृषि के स्थान पर मछलियाँ पकड़ने का कार्य किया जाता है। किनारों पर नारियल व केले के पेड़ बहुतायत से पाये जाते हैं।

इस प्रदेश की जलवायु उष्ण और आर्द्र है। ग्रीष्म में तापक्रम ३२° सें० ग्रेड तक और जाड़ों में २९° सें० ग्रेड तक रहते हैं। वार्षिक तापान्तर ५° सें० ग्रेड से अधिक नहीं बढ़ते। वर्षा ग्रीष्म ऋतु में अरब सागर के मानसूनों द्वारा होती है। पश्चिमी घाटों

पर वर्षा की मात्रा अधिक होती है किन्तु उत्तर से दक्षिण की ओर मात्रा घटती जाती है। वर्षा का औसत सूरत में १०६ सें० मी०, बम्बई में २०३ सें० मी० और रत्नागिरी में २५४ सें० मीटर तक रहता है। वार्षिक वर्षा का औसत २०३ सें० मीटर से अधिक रहता है।

पश्चिमी और पूर्वी भागों की ओर लगभग २५% भाग पर वन पाये जाते हैं। साधारणतः यहाँ मानसूनी वन मिलते हैं किन्तु कुछ भागों में उष्ण कटिबन्धीय वन भी मिलते है। तटीय भागों में नारियल और सुपारी तथा केले के कुज भी मिलते हैं।

यहाँ खनिज पदार्थों का अभाव पाया जाता है। केवल थोड़ा सा बाक्साइट व क्रोमाइट दक्षिणी भाग में मिलता है। समुद्र के निकट नमक बनाने के लिये उपयुक्त जलवायु की दशायें पाई जाती हैं। यहाँ की नदियाँ छोटी और तेज बहने वाली होने के कारण जलविद्युत शक्ति के लिये उपयोगी हैं।

मानवीय और आर्थिक दशायें—इस प्रदेश का मुख्य उद्योग कृषि है। कृषि के अन्तर्गत धान और सब्जियों तथा फलों की खेती विस्तृत रूप से की जाती है। धान के खेतों के किनारे किनारे नारियल, सुपारी के वृक्ष लगाये जाते हैं। आम, केले, कटहल, काजू, अंगूर आदि फल खूब पैदा होते हैं। नारियल के लिये हिममा, केले के लिये बसई; पान के लिये नागरबेल; काजू के लिये मालवरण और बेंगुली; आम के लिये हापूस और पामरी तथा सुपारी के लिये श्रीवर्धन किस्म अच्छी है।

समुद्र तट के निकटवर्ती भागों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मछलियाँ पकड़ने के मुख्य केन्द्र डरसा, बसई, बसेवाँ, अलीबाग, मालवरम, बेगुली आदि हैं। तट के निकट भयन्दर, ऊरन, वडाला, अलीवाल और बेंगुली में नमक भी बनाया जाता है।

यहाँ सूती कपड़े का उद्योग सबसे अधिक विकसित है। बम्बई, और सूरत इसके मुख्य केन्द्र हैं। बम्बई में सूती कपड़े के कारखानों के अतिरिक्त ऊनी व रेशमी कपड़े, कागज, चीनी, वनस्पति घी, रसायन, साइकिलें, मोटर, काँच आदि की वस्तुएँ भी बनाई जाती हैं। पनवेल में औषधियाँ तैयार करने और अम्बरनाथ में दियासलाई बनाने का कारखाना है। बम्बई और पूना में फिल्में भी बनाई जाती है।

इस प्रदेश की आबादी घनी है। यहाँ के अधिकांश निवासी मराठा हैं जो बड़े हृष्ट-पुष्ट, छोटे कद के और कुछ श्याम वर्ण के होते हैं। ये अधिकतर कोंकणी भाषा बोलते हैं। अधिकांश जनसंख्या खेती में लगी हुई है।

इस प्रदेश का धरातल असमान होने के कारण दक्षिणी भाग में आवागमन के मार्ग पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाये हैं। रेलमार्गों का यहाँ अभाव है। किन्तु सड़कों की व्यवस्था अच्छी है। अधिकतर आना जाना सड़कों द्वारा ही होता है। बम्बई देश के भीतरी भागों से उत्तर की ओर थाल घाट और दक्षिण की ओर भोर घाट दर्रों द्वारा मिला है। पश्चिम, मध्य और दक्षिण रेलवे बम्बई को क्रमशः उत्तरी, मध्य व पूर्वी ओर दक्षिणी भारत से जोड़ती है। तट के निकट नावों द्वारा आना जाना होता है। इस प्रदेश के मुख्य बन्दरगाह बम्बई, अलीबाग, मालवरम, श्रीवर्धन, रत्नागिरी और बेंगुली हैं।

(३) मलाबार प्रदेश (Malabar Region)

यह प्रदेश पश्चिमी तट पर गोआ से लेकर कुमारी अंतरीप तक एक लम्बी

संकरी पट्टी के रूप में फैला है जो साधारणतः ६४ से ८० किलोमीटर चौड़ी है। इसके पश्चिम की ओर अरब सागर, पूर्व में पश्चिमी घाट, नीलगिरी, अनामलाई और इलायची की पहाड़ियाँ हैं। नीलगिरी के दक्षिण की ओर पाल घाट के दर्रे द्वारा यह मध्य दकन और पूर्वीय तटीय भागों से मिला है।

प्राकृतिक दशायें—यह प्रदेश भी कोंकन से बहुत ही मिलता-जुलता है। यह सम्पूर्ण मैदानी क्षेत्र है जो नदियों द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी से बने हैं। इसके तीन भाग हैं— (१) तटीय भागों में समुद्री लहरों द्वारा लाई गई बालू की मिट्टी का पतला क्षेत्र फैला है जिसमें अधिकांशतः दलदल पाये जाते हैं। भीतर की ओर बालू का स्तूपों से रुक कर छिछले लैगून बन गये हैं। इस भाग में नारियल के कुँजों की अधिकता है। कालीमिर्च, सुपारी व गरममसाले भी यहाँ खूब पैदा किये जाते हैं।

चित्र ३५. मलाबार प्रदेश

(ख) रेतीले मैदान के पूर्वी भाग में उपजाऊ कांप मिट्टी के मैदान हैं जो अपेक्षाकृत चौड़े हैं। नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना होने के कारण यह भाग बड़ा उपजाऊ है किन्तु कहीं कहीं मैदान के बीच में कड़ी चट्टानें भी पाई जाती हैं।

(ग) इस मैदान के पूर्व की ओर पहाड़ी भाग है जो पुरानी चट्टानों से बने हैं। अतः इसकी मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है।

यह प्रदेश समुद्र के निकट होने के कारण अत्यन्त नम है। यहाँ के तापक्रम ही अधिक ऊँचे नहीं बढ़ते। ग्रीष्म में तापक्रम का औसत ३२° सें ग्रेड तथा जाड़ों में २३° सें० ग्रेड तक रहता है। वार्षिक तापान्तर २° से ५° सें० ग्रेड तक रहता है। यह वर्षा अप्रेल से आरंभ होकर नवम्बर तक होती रहती है। उत्तरी भागों में पहाड़ी ढालों पर ३७५ सें० मी० तक वर्षा होती है किन्तु वर्षा का औसत २५० सें० मी० तक होता है।

इस प्रदेश का १/४ भाग वनों से ढका है। ऊँचे तापक्रम और अधिक वर्षा के कारण यहाँ सघन वन सदाबहार श्रेणी के होते हैं। सागौन, चंदन, एबोनी, रोजवुड आदि के वृक्ष मुख्य हैं। कहीं-कहीं मिश्रित वन भी मिलते हैं। इन वनों से इमारती लकड़ियाँ, चन्दन, शहद, मोम, रबड़, बाँस, जड़ी बूटियाँ आदि प्राप्त की जाती हैं।

मलाबार प्रदेश के तटीय भागों में आणविक खनिज-मोनोजाइट, जिरकन, थोरियम आदि तथा भीतरी भागों में चीनी-मिट्टी, चूना और ग्रेफाइट पाया जाता है।

मानवीय एवं आर्थिक दशायें—मलाबार प्रदेश मुख्यतः कृषि प्रधान है। कृषि उद्योग में लगभग ५०% जनसंख्या लगी है। उपजाऊ कांप और दोमट मिट्टी में अनेक फसलें पैदा की जाती हैं। मैदानी भाग में नारियल, सुपारी, काली मिर्च, काजू, और पहाड़ी भागों पर सोंठ, गरम मसाले, इलायची तथा रबड़ पैदा किया जाता है। अनेक भागों में कहवा और चाय के उद्यान हैं। तट के निकट मछलियाँ भी पकड़ी जाती हैं।

इस प्रदेश में तेज बहने वाली नदियाँ अधिक हैं। अतः अनेक स्थानों पर बांध बना कर सिंचाई के लिए नदियों से नहरें निकाली गई हैं। इनसे जलविद्युत शक्ति का उत्पादन भी किया जाता है। पल्लीवासल प्रमुख विद्युत योजना है।

मलाबार प्रदेश का औद्योगिक विकास काफी तेजी से हो रहा है। त्रिवेन्द्रम, अलवाये, पुन्नालूर, कोजीखोड़ यहाँ के प्रमुख औद्योगिक नगर हैं। त्रिवेन्द्रम में सूती कपड़ों का कारखाना, नारियल का तेल, साबुन, साइकिल के ट्यूब, काँच तथा रासायनिक पदार्थ बनाने के कारखाने हैं। पुन्नालूर में कागज तथा अलवाये में अल्यूमीनियम बनाने के कारखाने हैं। कुटीर उद्योग में नारियल के रेशे से जटायें, रस्सियाँ, फर्श पोश, टोकरियाँ आदि बनाई जाती हैं। सबसे अधिक नारियल का तेल भी इसी प्रदेश से मिलता है। इन उद्योगों के अतिरिक्त यहाँ नकली रेशम, चीनी मिट्टी के बरतन, रासायनिक पदार्थ, प्लाईवुड व खाद आदि बनाने के उद्योग भी पाये जाते हैं।

यह प्रदेश भारत के अन्यन्त घने बसे भागों में से है। केरल में जनसंख्या का औसत घनत्व १,१२५ व्यक्ति प्रतिवर्ग मील का है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय रूप से यह घनत्व २,००० से ४,००० व्यक्तियों तक पहुँच जाता है। निम्न खेतिहर भागों में औसत २,२५० और पहाड़ी तलैहटियों में १,००० व्यक्ति प्रति वर्गमील पाये जाते हैं। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है जो पास-पास फैले हैं। तट के सहारे लम्बाई में जनसंख्या दूर तक फैली है।

यहाँ की जनसंख्या में २५% ईसाई तथा ६०% हिन्दू धर्म को मानने वाले हैं। इस प्रदेश में तेलगू, मलयालम, कनारी, कोंकणी आदि भाषायें बोली जाती हैं।

आवागमन के मार्गों की इस प्रदेश में सुविधा है। रेल मार्गों द्वारा मंगलौर, कोजीखोड़, कोचीन आदि नगर मद्रास से तथा क्विलोन, त्रिवेन्द्रम अन्य रेल मार्ग से शैनकोटा के दर्रे द्वारा पूर्वी भागों से जुड़े हैं। पक्की सड़कें भी पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। तट के निकट नावों और स्टीमरों द्वारा आना जाना होता है। तटीय भाग लैगूनों द्वारा एक दूसरे से जुड़े हैं अतः आने जाने में बड़ी सुविधा रहती है।

मंगलौर, कोजीखोड़, कोचीन, त्रिवेन्द्रम, अलप्पी, क्विलोन, माही आदि मुख्य बन्दरगाह हैं।

(ख) पूर्वी तटीय मैदान (Eastern Coastal Plain)—पश्चिमी तटीय मैदान की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। इसकी औसत चौड़ाई १६१ से ४८३ कि० मीटर है। यह गंगा के मुहाने से कुमारी अंतरीप तक फैले हैं। यह मैदान दो भागों में बाँटा जा सकता है : निचला भाग जिसमें नदियों के डेल्टा हैं और ऊपरी भाग जो अधिकांशतः नदियों के ऊपरी मार्ग में हैं। निचला भाग पूर्णतः कांप मिट्टी का बना है जो महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों ने पठार के ऊपरी भागों से

लाकर बिछा दी है। इसके समुद्र निकटवर्ती भागों पर बालू के ढेरों की लम्बी शृंखला मिलती है जो लहरों द्वारा मैदान पर बन गई है। इन ढेरों द्वारा घिरी हुई **चिलका** और **पालीकट** छिछली झीलें बन गई हैं। ऊपरी भाग अंशतः काँप मिट्टी का अवशिष्ट मैदान है जो उभरे हुए भूभाग के क्षयीकरण द्वारा बना है। यह मैदान कहीं-कहीं नदियों को हल्की उपजाऊ मिट्टी से ढँका है तथा शेष भागों में पुरानी चट्टानें स्पष्टतः दिखाई पड़ती हैं। इस सम्पूर्ण तट को **कोरोमंडल तट** कहते हैं। उत्तरी भाग को **उत्तरी सरकार** और दक्षिणी भाग को **पयानघाट** कहते हैं।

इन तटीय भागों में उपजाऊ मिट्टी तथा जल की पर्याप्त मात्रा मिलने से चावल, गन्ना, जूट अधिक पैदा किया जाता है तथा जनसंख्या भी घनी पाई जाती है।

पूर्वी तट को आधुनिक रूप जुरासिक काल में मिला माना जाता है क्योंकि इस तट में जुरासिक अवसाद मिलते हैं। इस तट में क्रिटेशियन और मायोसीन कालों में समुद्री अतिक्रमण हुए हैं। ये अतिक्रमण स्थल और समुद्र के आपेक्षिक कल के दीर्घ कालीन रूपान्तरों को सूचित करते हैं।

पूर्वी तटीय मैदान के प्राकृतिक खंड

इस मैदान के निम्न प्राकृतिक खंड किये गए हैं—

(१) कर्नाटक अथवा तामिलनाड प्रदेश (Karnatak or Tamilnad Region)

इस प्रदेश के अन्तर्गत दक्षिणी प्रायद्वीप के पूर्वी तटीय मैदान का दक्षिणी भाग है जिसमें तामिल भाषा-भाषी लोग रहते हैं। यह मैदान पश्चिमी तटीय मैदानों की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। इसका विस्तार उत्तर में नैलोर से लगाकर दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक है। इसके पश्चिम और पश्चिमोत्तर भाग में नीलगिरी तथा इलायची की पहाड़ियाँ तथा पूर्व और दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा मनार की खाड़ी हैं।

प्राकृतिक दशायें—यह प्रदेश मुख्यतः मैदानी है किन्तु पश्चिम में छोटी-छोटी पहाड़ियों और पश्चिमी घाट की मलय पर्वत श्रेणी है। भूतल की रचना की दृष्टि से इस प्रदेश के दो भाग किये जा सकते हैं—

(क) **पूर्वी तटीय मैदान**—साधारणतः समुद्र के धरातल से ९१ मीटर ऊँचा है। इस सम्पूर्ण मैदान को कारोमण्डल तट कहा जाता है। यह मैदान मुख्यतः पेरियर, पालर, कावेरी, पेनार नदियों द्वारा लाई हुई काँप मिट्टी से बने हैं। इनके बीच में कहीं-कहीं नवीन पर्तदार चट्टानें भी मिलती हैं।

(ख) **तटीय मैदान** के पश्चिमी भाग में प्राचीन काल की बनी कड़ी चट्टानें मिलती हैं। इनमें नीलगिरी, अनामलाई, इलायची व पालनी आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वी घाट की कटी-फटी पहाड़ियों के रूप में पंचमलाई, शिवाराय, जबादी आदि की पहाड़ियाँ दक्षिण से उत्तर व पूर्व-पश्चिम में फैली हैं।

इस प्रदेश का तापक्रम वर्ष भर ही ऊँचा रहता है। जनवरी का औसत तापक्रम २३° सें० ग्रेड तक और मई का तापक्रम ३२ सें० ग्रेड तक रहता

चित्र ३६. कर्नाटक या तामिलनाड

है। वार्षिक तापान्तर ७° से ११° सें० ग्रेड तक रहता है। भीतरी भागों में यह और भी अधिक हो जाता है। यहाँ दक्षिण पश्चिम मानसून से बहुत ही कम वर्षा होती है क्योंकि ये मानसून पूर्वी भागों तक पहुँचते पहुँचते सूख जाते हैं। इसी कारण जून से सितम्बर तक वर्षा की मात्रा कम होती है। अधिकांश वर्षा लौटते हुए उत्तरी-पूर्वी मानसूनों से अक्टूबर से दिसम्बर तक होती है। जनवरी से जून तक मौसम शुष्क रहता है किन्तु अप्रेल-मई में छोटे-छोटे तूफान आते हैं जिनसे आम्र वर्षा हो जाती है। वर्षा का औसत साधारणतः ५० से १०० सें० मीटर तक है किन्तु पश्चिमी भागों में ६३ सें० मी० तक तथा पूर्वी भागों में १०० सें० मीटर से भी अधिक होती है। पहाड़ी भाग के वृष्टि छाया में भारत के मुख्य अकाल क्षेत्र रायलसीमा स्थित हैं। अकाल के प्रभाव को दूर करने के लिये ही यहाँ नहरों और तालाबों का आधिक्य पाया जाता है। मैटूर बाँध की नहरें, पेरियर, पालर, पायोनी, चियार और कावेरी डेल्टा की नहरें तथा असंख्य तालाब सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण हैं।

तटीय मैदानी भाग की प्राकृतिक वनस्पति तो साफ करदी गई है पर ऊँचे भागों में लगभग २४% भाग पर वन पाये जाते हैं। नीलगिरी और कोयम्बटूर के पूर्वी ढालों पर शीशम और चीड़ के वृक्ष तथा चंदन के वृक्ष मिलते हैं। शुष्क ढालों पर भेड़ेंभी चराई जाती हैं।

आवागमन और यातायात की सुविधायें इस प्रदेश में काफी विकसित हैं। मद्रास, तूतीकोरन, कडुालोर, नागापट्टम, तिरुचिरापल्ली, सलेम, मदुराई, कोयम्बटूर और तंजौर यहाँ के प्रमुख नगर हैं जो एक दूसरे से दक्षिणी रेलमार्ग द्वारा जुड़े हैं। तटीय भागों में बकिंघम नहर द्वारा आवागमन होता है।

(२) उत्तरी सरकार या कलिंग प्रदेश (Northern Circar or Kaling Region)

यह दक्षिणी प्रायद्वीप के पूर्वी तटीय क्षेत्र का उत्तरी भाग है। इसका विस्तार कृष्णा नदी के डेल्टा से पूर्वी तट के सहारे है। इसके पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में पठारी भाग, पूर्व की ओर पूर्वी घाट की पहाड़ियाँ हैं। इसमें गोदावरी, कृष्णा, गंतूर, विशाखापट्टम और नैलोर जिले हैं।

प्राकृतिक दशाएँ—यद्यपि साधारणतः यह प्रदेश मैदानी है जो गोदावरी, कृष्णा और महानदी द्वारा लाई गई मिट्टी से बना है किन्तु बीच-बीच में प्राचीन कठोर चट्टानों के कारण यह विच्छिन्न हो गया है। तटीय मैदान ९७ से १२९ किलोमीटर चौड़ा है। नदियों की घाटियों में यह कुछ और अधिक चौड़ा हो गया है। उत्तर की ओर अनेक छोटी-छोटी पहाड़ियाँ केलिकोंड़ा, नल्लामलाई, उदयगिरी आदि
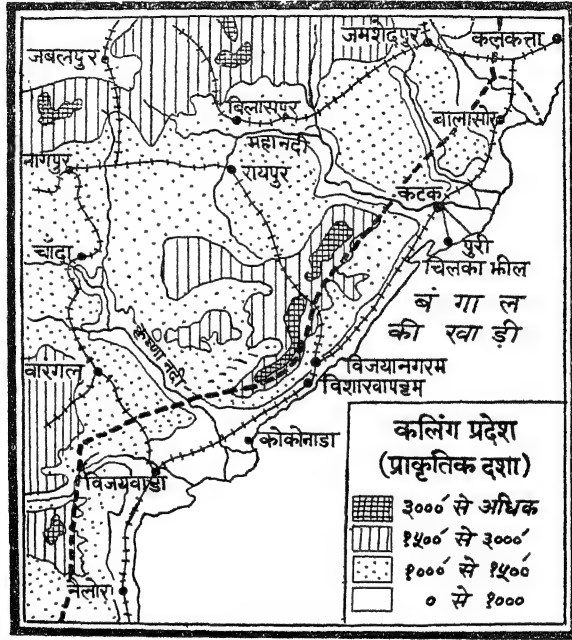
चित्र ३७. कलिंग प्रदेश (प्राकृतिक दशा)

हैं। मैदानी भाग नवीन प्रस्तरीभूत चट्टानों और कच्छारी मिट्टी का बना है। किन्तु पहाड़ी भाग की संरचना प्राचीन मणिभीय चट्टानों से हुई है। तट के सहारे बलुही मिट्टी का क्षेत्र पाया जाता है जो हवाओं के साथ-साथ उड़ कर कभी-कभी निकटवर्ती क्षेत्रों के खेतों को हानि पहुँचाती है। तट के निकट कुछ लैगून झीलें भी मिलती हैं जिनमें चिल्का झील प्रमुख है।

इस प्रदेश का तापक्रम सदा ऊँचा रहता है। ग्रीष्मकालीन औसत तापक्रम २९° सें० ग्रे० और शीतकालीन तापक्रम २३ सें० ग्रेड तक रहता है। अतः तापक्रमांतर ५° सें० ग्रेड से अधिक नहीं बढ़ता। वर्षा ग्रीष्म ऋतु में मानसूनी हवाओं द्वारा होती है। उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ने पर वर्षा कम होती जाती है। उत्तरी भागों में १५२ सें० मीटर तक तथा दक्षिणी भागों में ८८ सें० मीटर तक वर्षा होती है। कुछ वर्षा शीतकाल में लौटते हुए मानसूनों से कृष्णा व गोदावरी नदियों के डेल्टा में हो जाती है। केवल पहाड़ी भागों पर वन प्रदेश पाये जाते हैं।

पूर्वी मैदान के लगभग २/३ भाग में खेती की जाती है किन्तु पश्चिमी भाग

में ५०% में ही होती है। तटीय क्षेत्रों में और मैदानी भागों में धान की खेती की जाती है। धान की साधारणतः दो फसलें होती हैं। पश्चिम की ओर कठोर भूमि और कम वर्षा होने से गेहूँ अधिक बोया जाता है। बिना सिंचाई वाले भागों में ज्वार, बाजरा, कुम्बू, रागी, चोलम आदि मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं। दक्षिणी पूर्वी भाग में कपास पैदा किया जाता है। गन्ना, तम्बाकू, मूँगफली, रेंडी आदि अन्य फसलें भी यहाँ पैदा की जाती हैं। पश्चिमी भाग में चाय और पूर्वी रेतीले भाग में नारियल के कुंज मिलते हैं।

खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से यह प्रदेश अधिक धनी नहीं है फिर भी यहाँ उत्तम जाति का लोहा, अभ्रक, ताँबा, चूने का पत्थर, लिगनाइट कोयला और सोना आदि प्राप्त किया जाता है। तट के निकट नमक बनाने के अनेक कारखाने स्थित हैं। मनार की खाड़ी के निकट मोती भी निकाले जाते हैं।

जल विद्युत शक्ति का यहाँ अच्छा विकास हुआ है! पायकारा, मैटूर तथा पापानासम यहाँ की मुख्य योजनायें हैं। इसी शक्ति की उपलब्धता के कारण यहाँ अनेक उद्योगों का विकास हो गया है। कोयम्बटूर, तूतीकोरन, मद्रास, मदुराई, तंजौर रामनाथपुरम आदि स्थानों पर सूती कपड़े तथा शक्कर के कारखाने हैं। दालमिया-पुरम, तिरुनलवैली और मधुकराई में सीमेन्ट बनाने के कारखाने है। इनके अतिरिक्त मद्रास में चमड़े की वस्तुऐं, सिगार, सिगरेट, इंजीनियरिंग, मोटर कार, मोटर साइकिलें और रासायनिक पदार्थ बनाने के कारखाने हैं।

यह प्रदेश काफी घना बसा है। यहाँ का औसत ५०० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। कहीं कहीं पर औसत २,००० व्यक्ति का है। कावेरी का डेल्टा तो बहुत ही घना बसा है। तंजौर जिले के डेल्टाई भाग में आबादी का घनत्व ८०० और कुंभकोनम ताल्लुका में ग्रामीण क्षेत्र का घनत्व १,१०४ व्यक्ति है। कावेरी डेल्टा के पश्चिमी भागों में तालाबों के पास जनसंख्या का केन्द्रीयकरण अधिक है किन्तु पूर्व की ओर जहाँ तालाब कम हैं, गाँव छोटे और बिखरे हुए हैं। इस प्रदेश में मुख्यतः द्राविड़ जाति के लोग रहते हैं जो तामिल-भाषा बोलते हैं। नीलगिरी पहाड़ियों पर टोड़ा नामक आदि-वासी भी पाये जाते हैं।

घाट के पहाड़ों से साल, शीशम आदि मिलते हैं। पहाड़ी ढालों पर चरागाह भी पाये जाते हैं तथा तट के निकट एवं डेल्टा के दलदली भागों में मैंग्रोव के दलदली वन पाये जाते हैं।

आर्थिक एवं मानवीय दशायें—यहाँ की लगभग एक-तिहाई भूमि कृषि के अयोग्य है। चावल यहाँ की मुख्य फसल है। कटक के समीप कृषि क्षेत्र के ८०% भाग पर चावल बोया जाता है। ज्वार बाजरा कहीं भी नहीं बोया जाता। दक्षिण की ओर गंजाम जिले में वर्षा की कमी के कारण ५४% चावल और १२% भाग में ज्वार बाजरा पैदा किया जाता है। दक्षिण की ओर तट के समीप उत्तरोत्तर वर्षा कम होती जाती है। फलतः चावल का क्षेत्र घटता जाता है और ज्वार बाजरा का क्षेत्र बढ़ता जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ गन्ना, कपास, मसाले, तिलहन और मूँगफली भी पैदा किया जाता है।

कृषि के लिये प्रायः सिंचाई का सहारा लिया जाता है। गोदावरी, कृष्णा, और महानदी के डेल्टा की सिंचाई नहरें इनमें मुख्य हैं। रामपदसागर तथा हीराकुड

योजना बहुमुखी योजनायें हैं। विशाखापट्टनम जिले में मैंगनीज, नैलोर व गोदावरी जिलों में अभ्रक तथा वारंगल जिले में कोयला प्राप्त होता है। इमारती पत्थर, लैट-राइट, नमक और चूने का पत्थर अन्य प्राप्त किये जाने वाले खनिज हैं।

यहाँ उद्योगों का विकास अधिक नहीं हो पाया है। कटक व भुवनेश्वर में सूती कपड़े के कारखाने, विजयवाड़ा और कृष्णा में सीमेन्ट के कारखाने, विशाखापट्टनम में जलयान बनाने का कारखाना है। राजमहेन्द्री में कागज, चितबलशाह तथा नाली-मारलां में जूट तथा विजयवाड़ा, पीठापुरम और हासपेट में चीनी बनाने के कार-खाने हैं।

इस प्रदेश में जनसंख्या घनी है। प्रति वर्गमील जनसंख्या का औसत घनत्व ४३३ व्यक्ति है। आन्ध्र और उड़ीसा में डेल्टाओं को छोड़कर कोई भी भाग घना आबाद नहीं हैं। अधिकांश निवासी हिन्दू हैं जो उड़िया और तेलगू भाषा बोलते हैं।

यहाँ आवागमन के मार्गों का अच्छा विकास पाया जाता है। विजयनगर और विजयवाड़ा से रेलमार्ग इस प्रदेश के भीतरी भागों को जाते हैं। गंतूर, विजय-नगर और कटक मुख्य रेलवे जंकशन है। तटीय भागों में जल यातायात का महत्व अधिक है। विशाखापट्टनम, कलिंग, मछलीपट्टम, गोपालपुर, काकोनाडा और चित्रापुर यहाँ के प्रमुख बन्दरगाह हैं।

अध्याय ४

भारत की भौतिक आकृतियाँ (क्रमशः)

दक्षिणी प्रायद्वीप (Deccan Peninsula)

प्रायद्वीपीय भारत सतलज और गंगा के दक्षिण में फैले हुए उस भूभाग का नाम है जो तीन ओर समुद्र से घिरा है तथा राजस्थान से कन्याकुमारी अंतरीप और गुजरात से पश्चिमी बंगाल तक विस्तृत है। इसका आकार त्रिभुजाकार है। पठार के उत्तर में विंध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ियाँ, पश्चिम में पश्चिमी घाट, और पूर्व में निम्न पूर्वी घाट हैं। इस प्रायद्वीप की औसत ऊँचाई ४८७ से ७६२ मीटर तक है।[1]

चित्र ३८. दक्षिणी भारत—प्राकृतिक रचना

प्रायद्वीप के अंतर्गत द० पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश, मद्रास, आन्ध्र के पश्चिमी भाग, द० बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मैसूर आदि राज्य हैं।

1. *Chisholm's*, Handbook of Commercial Geography, 1957, p. 573.

यह प्रायद्वीप भारत का प्राचीनतम भाग है जो मौसमी क्षति की क्रियाओं द्वारा क्षरण होता रहा है। यह अनेक छोटे-मोटे पठारों में विभाजित है—उत्तर में बिहार में रांची जिले में छोटा नागपुर का पठार, दक्षिण में दकन का मुख्य पठार, आदि। इस प्रायद्वीप का धरातल बहुत कम चपटा है। यह साधारणत: टीलेदार या लहरदार है। यह प्राचीनतम कठोर चट्टानों का बना है।

नर्मदा नदी जिस घाटी में होकर बहती है वह सम्पूर्ण प्रायद्वीप को दो असमान भागों में बांट देती है। उत्तर के भाग को मालवा का पठार और दक्षिण के भाग को दकन ट्रैप कहते हैं।

(१) मालवा का पठार (Malwa Plateau)—मालवा का पठार स्थान-स्थान पर नदियों के प्रवाह के कारण टूटा है। इस भाग में बघेलखंड और बुन्देलखंड में नदियों द्वारा निर्मित बड़े-बड़े बीहड़ खड्ड पाये जाते हैं जिनके कारण अधिकांश भूमि खेती के अयोग्य हो गई है। शेष भाग में भूमि काफी समतल और उपजाऊ है। इस पठार का ढाल गगा की घाटी की ओर है। मालवा पठार के इस लहरदार प्रदेश में कहीं-कहीं साधारण ऊँचाई की पहाड़ियाँ भी मिलती हैं—जैसे ग्वालियर की पहाड़ियाँ किन्तु इन सबमें मुख्य विंध्याचल हैं। यह पर्वत गुजरात से प्रारम्भ होकर मध्य प्रदेश, बघेलखंड, उत्तर प्रदेश होता हुआ बिहार, उड़ीसा में सोन घाटी के ऊपर दीवार के समान दक्षिण के पठार और गंगा की घाटी के मध्य में (सासाराम तक) स्थित है। इसकी ऊँचाई ४५७ मीटर से ६१० मीटर तक है। किंतु कहीं-कहीं ये ९१४ मीटर से भी अधिक ऊँचे हैं। यह पर्वत गंगा के प्रवाह प्रदेश को नर्मदा, ताप्ती और महानदी के मिलने वाले जल से पृथक करता है। यह पर्वत मुख्यत: बालू के लाल पत्थरों और क्वार्टज के बने हैं। इन चट्टानों का अधिकतर उपयोग भवन निर्माण के लिए किया जाता है। मालवा के पठार का पूर्वी भाग महादेव, मैकाल, बाराकर और राजमहल की पहाड़ियों के रूप में गंगा नदी की घाटी में बनारस तक फैला हुआ है।

छोटा नागपुर के पठार (Chhota Nagpur Plateau)—विन्ध्यांचल के दक्षिण से उन्हीं के समानान्तर १,१२७ कि० मीटर के विस्तार में सतपुड़ा (सात परतों वाला पर्वत) पर्वत फैले हुए हैं। यह पर्वत श्रेणी मध्य प्रदेश में नर्मदा के दक्षिण और ताप्ती के उत्तर में रीवां से लगा कर पश्चिम की ओर राजपीपला पहाड़ियों में होती हुई पश्चिमी घाट तक फैली है। यह अधिकतर बैसाल्ट और ग्रैनाइट नामी चट्टानों की बनी है। इसकी औसत ऊँचाई ७६२ मीटर है किन्तु अमरकंटक की पहाड़ियाँ १,०६६ मीटर ऊँची हैं जो आगे जाकर पूर्व की ओर छोटा नागपुर के पठार पर समाप्त हो जाती हैं। छोटा नागपुर के पठार के अन्तर्गत बिहार में रांची, हजारीबाग और गया के जिले हैं। इस पठार में कई अधिक ढाल वाली श्रेणियाँ हैं जिनके बीच में होकर गहरी नदियाँ बहती हैं। इस पठार पर अधिकतर खेतों में चावल पैदा किया जाता है। यह पठार खनिज पदार्थों में बड़ा धनी है। यहाँ भारत के प्रमुख बाक्साइट के सुरक्षित भंडार पाये जाते हैं। भारत का लगभग ८०% अभ्रक भी यहीं से प्राप्त होता है। सिंहभूमि में क्रोमाइट और छोटा नागपुर में कैओलिन नामक चिकनी मिट्टी तथा फैलस्फर, क्वार्टज, कोयला, तांबा आदि पाया जाता है। इमारती पत्थरों का तो यहाँ अक्षय भंडार है। अतएव इस पठार को खनिज पदार्थों का भंडार (Storehouse of Minerals) कहा जाता है। छोटा

नागपुर के पठार से संबंधित ही **चितूपालू घाट** (Chittupalu Ghat) और **टैटार-घाट** (Tetarghat) क्रमशः ६१० मीटर और ६१५ मीटर ऊँचे हैं। इनके अतिरिक्त कई छोटे चपटे सिरे वाली अन्य पहाड़ियाँ भी पाई जाती हैं जो मूल ऊँचे पठार के ही भाग हैं। ये क्रमशः **लालमाटिया पाट** (Lalmattia Pat), १,०३५ मीटर, **बगारू पठार** (Bagru) १,०५५ मीटर और **दूधा पाट, धूलूआ पाट** और **गढ़पाट** १,०३५ मीटर ऊँचे हैं। इस पठार पर साल, सागवान, जामुन, शीशम, हल्दू, सेमल, बाँस आदि के वृक्ष भी बहुत पाये जाते हैं।

सतपुड़ा पर्वत के दक्षिण में ताप्ती नदी की घाटी है। नर्मदा और ताप्ती दोनों नदियों ने काफी चौड़े कछारी मैदान निर्मित किये हैं। नर्मदा का मैदान ३२२ कि० मीटर लम्बा और ३५ से ५६ कि० मीटर तक चौड़ा है। इसकी औसत गहराई १५२ मीटर है। ताप्ती का मैदान प्रायः २४० कि० मीटर लम्बा और ५० कि० मी० चौड़ा है। दोनों ही नदियाँ उन दरार घाटियों में होकर बहती हैं जो प्राचीन काल में हुई भूगर्भिक घटनाओं के फलस्वरूप बन गई थीं। दोनों नदियों की घाटियाँ समुद्र तल से प्रायः ३०४ मीटर ऊँची हैं अतः एक घाटी से दूसरी घाटी में जाने में कठिनाई पड़ती है। किंतु खंडवा और बुढ़हानपुर के निकट पहाड़ियाँ नीची हो जाने से मार्ग कुछ सुगम हो गया है। इसी मार्ग द्वारा मध्य रेल मार्ग बम्बई से जबलपुर जाता है। यह विशेष स्मरणीय है कि जब सतपुड़ा पर्वत में अनेक दरारें पड़ीं तो सभी नदियाँ गहरी दरारी घाटियों से होकर बहने लगीं। ये गहरी घाटियाँ नदियों के आकार के अनुसार छोटी या बड़ी हैं। ये नदियाँ जब पठारों से नीचे उतरती हैं तो जल प्रपात बनाती हैं। जबलपुर के निकट नर्मदा नदी का धुआंधार प्रपात इसका मुख्य उदाहरण है। नर्मदा की घाटी में जबलपुर के निकट भारत के सर्वोत्तम श्वेत संगमरमर की चट्टानें मिलती हैं। नर्मदा और ताप्ती दोनों ही नदियाँ पठार के सामान्य ढाल के विरुद्ध बहती हैं क्योंकि जिन दरारों में होकर वे बहती हैं उनका ढाल पूर्व से पश्चिम की ओर है।

अरावली पहाड़ियाँ (Aravallis)—मालवा पठार के उत्तर पश्चिम में अरावली की पहाड़ियाँ हैं जो लगभग उत्तर-दक्षिण दिशा में राजस्थान में लगभग ६४० कि०मी० की लम्बाई में फैली हुई हैं। ये उत्तर पूर्व की ओर संकरी होकर टीले मात्र रह जाती हैं और दिल्ली के निकट दिल्ली की पहाड़ियों के नाम से समाप्त हो जाती हैं। अरावली पहाड़ियाँ ३०४ से ९१४ मीटर तक ऊँची हैं किन्तु दक्षिण-पश्चिम में आबू के निकट इनकी सबसे ऊँची चोटी **गुरूशिखर** १,७२२ मीटर है। **श्री हैरों** (A. M. Heron) का अनुमान है कि ये पहाड़ियाँ पृथ्वी के धरातल पर संभवतः सबसे प्राचीन हैं जो आज भी वर्तमान हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये प्राचीन पर्वत किसी समय उत्तर में हिमालय के उत्तरी पश्चिमी कोने तक और दक्षिण में लकद्वीप तक फैले थे। इन्होंने न केवल हिमालय के मुड़ावों को ही प्रभावित किया है वरन् पामीर और फरगना की श्रेणियों पर भी इनका प्रभाव पड़ा है। इनमें पूर्व-विंध्यन युग में मोड़ पड़े हैं। दक्षिण के पठार के उथल-पुथल होने के कारण कालांतर में यह पहाड़ियाँ मौसमी क्षति द्वारा छिन्न भिन्न होकर काफी नीची हो गईं। वर्तमान काल में यह पहाड़ियाँ टीलों के रूप में एक दूसरे के समान्तर फैली हैं जिनके ढाल बहुत तीव्र हैं और सिरे प्रायः चपटे। इससे ज्ञात होता है कि ये क्षयीकरण के पर्वत (Mts. of Circum-denunation) हैं। उदयपुर के उत्तर-पश्चिम में ये लगभग

१,२२० मीटर ऊँची हैं। अलवर के निकट ये केवल ५५० से ६७० मीटर और दिल्ली के दक्षिण में ३०४ मीटर ही हैं। किन्तु मध्य में इनकी औसत ऊँचाई १,०६६ मीटर है। आधुनिक काल में अरब सागर में लकद्वीप इसी श्रेणी के अवशेष हैं जो पश्चिमी तट के समुद्र में डूब जाने से बने हैं। **श्री फरमर** (Fermor) के अनुसार अरावली पर्वत **होर्स्ट** (Horst) प्रकार के पर्वत हैं जिसके पूर्व में राजस्थान की बड़ी सीमान्त दरार (Great Boundary fault) और पश्चिम में काल्पनिक दरार है।

अरावली पहाड़ियों को अनेक ऐसी नदियाँ पार करती हैं जो वर्षा काल के अतिरिक्त सदैव सूखी रहती हैं। इनमें पश्चिम की ओर बहने वाली मुख्य नदियाँ माही और लूनी हैं जो मरुस्थल में बहकर अरब सागर में गिर जाती हैं। पूर्व की ओर बनास मुख्य नदी है जो चम्बल में मिल कर गंगा के मैदान में पहुँचती है। इन पहाड़ियों के कारण सम्पूर्ण राजस्थान दो असमान भागों में बँट गया है। उत्तरी-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी। उत्तर-पश्चिमी भाग मुख्यतः रेतीला है। यही **थार का रेगिस्तान** कहलाता है। यह प्रायः ६४४ कि० मीटर लम्बा और १६१ कि० मी० चौड़ा है। यहाँ के रेत के टीलों की स्थिति हवाओं की दिशा में लम्बवत् है। यद्यपि दक्षिणी भाग में जहाँ बहुत तेज आंधियाँ चलती हैं कुछ ऐसे टीले भी हैं जो वायु प्रवाह के समान्तर हैं। बालू के इन टीलों का ढाल हवाओं के रुख की ओर लम्बा, सरल तथा लहरदार है किन्तु दूसरी ओर इनका ढाल अधिक खड़ा है। कभी-कभी इन ढालों की ऊँचाई १२० से १५२ मीटर तक हो जाती है। अधिकांश टीले ३ से ५ कि० मीटर लम्बे और १५ से १८ मीटर तक ऊँचे हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष बालू के ये टीले ८० कि० मी०की गति से धीरे-धीरे पूर्वी उत्तर प्रदेश के मथुरा और आगरा जिलों की ओर बढ़ रहे हैं। अतः बालू के इस ध्वंसकारी प्रवाह को रोकने के लिये भारत सरकार ने मरुस्थल की सीमा पर वृक्षारोपण आरम्भ किया है।

इस मरुभूमि की उत्पत्ति के बारे में कई अनुमान लगाये गये हैं। साधारणतया इस भाग की अत्यधिक शुष्कता ही इसका मुख्य कारण है। कच्छ की खाड़ी की ओर से आने वाली दक्षिण पश्चिमी मानसून हवायें अपने साथ समुद्र तट तथा निम्न सिंधु के बेसिन से रेत के बादलों को उठाकर लाती हैं और इन्हें देश के इस भाग में यत्र-तत्र बिखेर देती हैं। पहाड़ों के अभाव के कारण वाष्प-युक्त हवायें वर्षा बिल्कुल नहीं करतीं वरन् अत्यधिक ताप के कारण वाष्पी भवन क्रिया ही अधिक हो जाती है। अतः जल द्वारा रेत को समुद्र तक बहाकर ले जाने की क्रिया यहाँ नहीं होती। फलस्वरूप प्रति वर्ष रेत की मात्रा बढ़ती जाती है। दूसरा कारण यह भी है कि दिन और रात के बीच यहाँ तापक्रम भेद अधिक रहता है। अतः दिन में यहाँ की चट्टानें गर्मी पाकर बढ़ जाती हैं और रात में सर्दी के कारण कुछ सिकुड़ जाती हैं। इस क्रिया के निरंतर होते रहने के कारण चट्टानों में दरारें पड़ जाती हैं और उनमें टूट फूट होती रहती है इससे पर्याप्त मात्रा में रेत के कण निकलते हैं और चलने वाली वायु द्वारा ये कण और भी छोटे-छोटे बनकर भूमि पर फैलते रहते हैं। इस रेत को उपजाऊ मिट्टी में परिवर्तित करने वाली किसी भी रासायनिक क्रिया का यहाँ पूर्ण अभाव है अतः रेतीली अनुपजाऊ मिट्टी बढ़ती ही रहती है। इस भाग की प्रधान नदी लूनी और उसकी सहायक जोजरी, बांडी और सूकड़ी है। यह मरुस्थली प्रदेश नितान्त ही वृक्ष-रहित नहीं है किन्तु थोड़ी बहुत वनस्पति भी पाई जाती है।

मरुस्थलीय प्रदेश में भारत की प्रमुख खारी पानी की झीलें-सांभर, लूनकरन सर, पचभद्रा आदि पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त बीकानेर डिवीजन में जिप्सम, लिग्नाइट कोयला और जोधपुर में संगमरमर और मुलतानी मिट्टी पाई जाती है। जैसलमेर जिले में मिट्टी के तेल पाये जाने की भी सम्भावना की जाती है।

राजस्थान के पूर्वी भाग में अरावली का एक छोटा भाग बूँदी की पहाड़ियों के नाम से फैला है। इस भाग का अन्त आगरा के निकट फतहपुर सीकरी में होता है। राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग में चम्बल और उसकी सहायक नदियाँ बनास, कोठारी, खारी आदि सींचती हैं। इस प्रदेश में सर्वत्र ही लहलहाते खेत, मीठे जल और फलों के वृक्ष मिलते है। यह प्रदेश भी प्राचीन चट्टानों का बना होने से खनिज पदार्थों में धनी है। चाँदी-जस्ता-सीसा (उदयपुर में जावर खानों से), अभ्रक, घीया पत्थर (जयपुर, अजमेर व भीलवाड़ा जिलों में), मैंगनीज, एसबस्टस, पन्ना आदि उदयपुर जिले में पाये जाते हैं।

सौराष्ट्र और कच्छ का रन (Saurastra & Rann of Cutch)—थार के मरुस्थल के दक्षिण पश्चिम में सौराष्ट्र का थैलीनुमा प्रायद्वीप है। इसकी लहरदार धरती मध्य में प्रायः ९१४ से १२२० मीटर ऊँची है। अनुमान किया जाता है कि यह भाग प्राचीनकाल में एक द्वीप था और कच्छ तथा खम्भात की खाड़ियाँ एक दूसरे से मिलती थीं। सौराष्ट्र के उत्तर में कच्छ का उजाड़ रेतीला और पहाड़ी भाग है। कच्छ का यह भाग पहले अरब सागर का ही एक अंश था जो अब उत्तर व पूर्व की ओर से इसमें गिरने वाली छोटी-छोटी नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से भर गया है। उत्तर पश्चिम से लौटने वाले समय में यह खारी कीचड़ से भरा रहता है। कांप से भरा हुआ इसका चौरस धरातल सूर्य की गर्मी पाकर सफेद नमक के धरातल का रूप धारण कर लेता है। वर्ष के दूसरे भाग में यह नदियों के जल से भर जाता है। यह प्रायः ३२२ कि० मीटर लम्बा और १६१ कि० मीटर चौड़ा रेतीला मैदान ही कच्छ का रन है। यहाँ गर्मियों में गदहे लोटा करते हैं।

(२) दकन का मुख्य पठार (Deccan Tableland)—ताप्ती नदी के दक्षिण में दकन का असली त्रिभुजाकार पठार है। इसका क्षेत्रफल लगभग २ लाख वर्ग मील है। इसके अन्तर्गत मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र का अधिकांश भाग, मैसूर, मद्रास आदि राज्य स्थित हैं। यह पठार प्राचीन काल में धरातल में लम्बी दरारें पड़ जाने से हुए, ज्वालामुखी उद्गारों से निकले लावा के जम जाने से बना है। लावा के ये जमाव पूर्व में अमरकंटक और सरगूजा तक, उत्तर-पश्चिम में कच्छ तक तथा दक्षिण में बेलगाँव और दक्षिण-पूर्व में, राजमहेन्द्री तक फैले हैं। लावा की अधिकतम गहराई २,१३४ मीटर तक आंकी गई है किन्तु पूर्व और उत्तर की ओर यह कम है। कच्छ में लावा की गहराई ७६० मीटर, अमरकंटक में १५२ मीटर, और नागपुर के निकट १५ मीटर तथा जबलपुर के निकट चूई और बड़ा शिमला की पहाड़ियों के निकट केवल ६ से १० मीटर ही है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकला यह लावा धीरे-धीरे अपने मुख से ९७ से ११३ कि० मीटर दूरी तक फैल गया है।

इस पठार की चट्टानें बहुत ही कठोर और पुरानी हैं। इनमें कहीं भी प्राचीन अवशेष नहीं पाये जाते। ये चट्टानें या तो आग्नेय हैं या रवेदार हैं। इनके मुख्य उदाहरण ग्रैनाइट, नीस, बैसाल्ट, बलुए-पत्थर, क्वार्टज, चूने के पत्थर हैं। पठार की चट्टानें खनिज पदार्थों में बड़ी धनी हैं। यहाँ मध्य प्रदेश में मैंगनीज, बिहार में लोहा,

मैसूर में सोना तथा अन्य स्थानों पर अभ्रक, मोनाजाइट, मैग्नेसाइट, बाक्साइट, लैट-राइट आदि खनिज मिलते हैं। इन्हीं चट्टानों से भारत के प्रसिद्ध हीरे भी प्राप्त हुए हैं। नदियों की घाटियों में निम्न गोंडवाना युग की कोयले की श्रेणियाँ पाई जाती हैं। यही कारण है कि भारत का ९८% कोयला इन्हीं क्षेत्रों से उपलब्ध होता है। खनिज पदार्थों के अतिरिक्त बैसाल्ट चट्टानों से भवन निर्माण के लिए उत्तम पत्थर तथा सड़कों के लिए भी पत्थर मिलते हैं। इन्हीं चट्टानों से काली लावा मिट्टी प्राप्त होती है जिसमें लोहे के अंश मिले होने से अधिक उपजाऊ तत्व पाये जाते हैं। इसी में भारत के मुख्य रूई उत्पादक क्षेत्र फैले हैं।

पश्चिमी घाट (Western Ghats)—दक्षिणी पठार का पश्चिमी भाग पश्चिमी घाट और पूर्वी भाग पूर्वी घाट द्वारा आवृत है। पश्चिमी घाट जिन्हें सह-याद्री (Sahayadris) भी कहते हैं, महाराष्ट्र से लगाकर धुर दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक लगभग १,६१० कि० मी० की लम्बाई में विस्तृत हैं। ये घाट सागर की ओर सीधे ढाल तथा पूर्व की ओर कम ढाल वाले हैं। पश्चिमी घाट का अरब सागर की ओर खड़ी दीवार जैसा तेज ढाल इस बात को प्रमाणित करता है कि कभी ऐसा निमज्जन हुआ था जब भारतीय प्रायद्वीप उस प्रदेश से विलग हो गया जो अब अरब सागर में डूबा हुआ है। सामान्यतः ये घाट ५० मीटर से भी कम चौड़े हैं किन्तु दक्षिण की ओर ये ६५ से ८० कि० मीटर चौड़े हो गये हैं। ये घाट उत्तर दक्षिण दिशा में समुद्री भागों के समान्तर और लगातार फैले हैं जिनकी औसत ऊँचाई १,०६६ से १,२२० मीटर है। इन घाटों पर लावा की तहें पाई जाती हैं जिनके मौसमी क्षति की क्रियाओं द्वारा कट जाने से घाटों की आकृति सीढ़ीदार बन गई है। इन घाटों को कुछ ही स्थानों पर पार किया जा सकता है। उत्तर में स्थित दो दर्रों—**थाल घाट** जो ५८३ मीटर ऊँचा है तथा **भोर घाट** जो ६३० मीटर ऊँचा है—में होकर ही मार्ग निकला है। पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग में वे कुमारी अंतरीप से धारवाड़ तक पुरानी मणिभ और परिवर्तित शिलायें—नीस, शिष्ट और चार्नोकाईट—हैं किन्तु इनके उत्तरी भाग में दकन के लावा फैले हैं अतः इनके सिरे चपटे हैं। इस भाग से भीमा, गोदावरी और कृष्णा नदियाँ निकलकर पूर्व की ओर बहती है और पूर्व की ताप्ती और गोदावरी नदियों के बीच पश्चिमी घाट की एक श्रेणी **सतमाला** के नाम से और दूसरी श्रेणी भीमा और कृष्णा के बीच में **महादेव** के नाम से चली गई है। कृष्णा के उद्गम के निकट महाराष्ट्र राज्य का प्रसिद्ध स्वास्थ्यवर्धक स्थान महाबलेश्वर १,४३५ मीटर ऊँचा है।

दक्षिण की ओर मलाबार के उपरांत नीलगिरि की पहाड़ियों द्वारा ये घाट पूर्वी घाट से मिले हैं। घाट की सबसे ऊँची चोटी **दोदोबेटा** है जो २,६३३ मीटर से अधिक ऊँची है। नीलगिरि के दक्षिण में **आनमलाय** की पहाड़ियाँ हैं जो पालघाट के दर्रे (३०५ मीटर) द्वारा नीलगिरि से अलग हैं। यह दर्रा २५ किलोमीटर चौड़ा है और इसके द्वारा पूर्वी और पश्चिमी तट के बीच सरलता से जाया जा सकता है। अनामलाय की एक शाखा **पालनी** पहाड़ियों के नाम से उत्तर-पूर्व दिशा में फैली हुई है। दूसरी शाखा इलायची की पहाड़ियाँ दक्षिण में फैली हुई है। नीलगिरि की **मकरूती** चोटी २,५५३ मी०; अनामलाय की **अनायमुड़ी** चोटी २,६९५ मीटर और पालनी की **बम्बाड़ी शोला** चोटी २,४७३ मीटर ऊँची है।

पश्चिमी घाट समुद्र के बहुत निकट है। वहाँ चट्टानें समुद्र के भीतर तक पहुँच

गई हैं इसीलिए वहाँ नावों और जहाजों का चलाना सुरक्षित नहीं है। पश्चिमी घाट में अनेक नदियाँ पश्चिमी ढाल पर तथा अनेक पूर्वी ढाल से निकलती हैं। पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों का मार्ग छोटा होने से बड़ी तेजी से बहती हैं अतः उनके मुहाने पर बहुत कम मिट्टी जमा हो पाती है किन्तु पूर्व की ओर बहने वाली नदियों का मार्ग अपेक्षाकृत लम्बा है अतः उनके निचले भाग में अधिक चौड़ी घाटियाँ बन गई हैं तथा उनके मुहाने के पास बड़े-बड़े डेल्टा बने हैं। जहाँ-जहाँ ये नदियाँ पूर्व की ओर पठारों पर या पश्चिम की ओर मैदानों पर उतरती है वहाँ बड़े-बड़े जल प्रपात
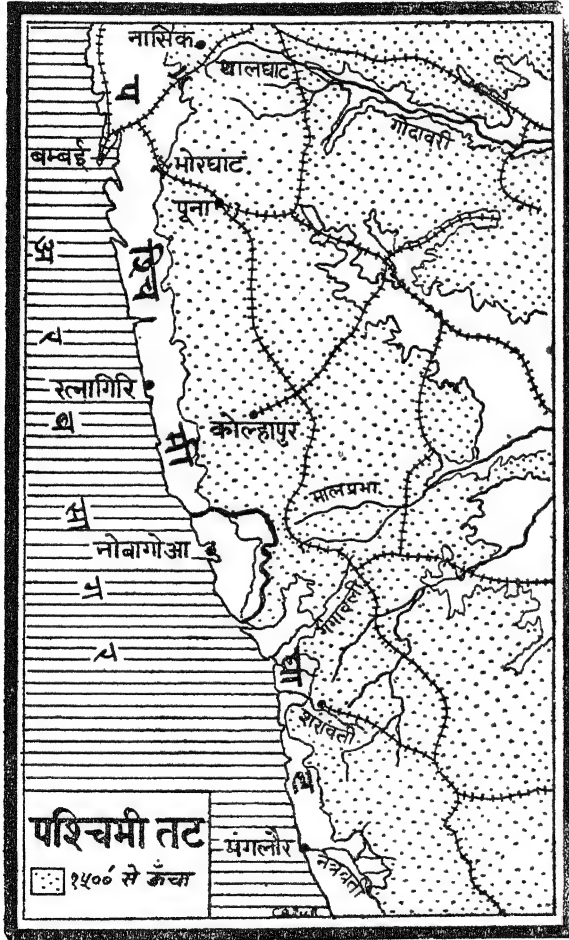
चित्र ३९. पश्चिमी घाट और तट

बन जाते हैं। मैसूर में कावेरी नदी का **शिवासमुद्रम प्रपात** (९१ मीटर ऊँचा), बेलगाम जिले में **गोकक** नदी पर **गोकक** प्रपात (५५ मीटर), उत्तरी कनारा में

शरवती नदी के **जिरसप्पा या महात्मा गांधी प्रपात** (२६० मीटर); महाबलेश्वर के **येना प्रपात** (१८३ मीटर) आदि इनके मुख्य उदाहरण हैं। पश्चिमी घाट के अधिकांश प्रपातों का उपयोग जल विद्युत शक्ति उत्पादन के लिए किया गया है।

पूर्वी घाट (Eastern Ghats)—पूर्वी घाट पूर्वी समुद्र तटीय मैदान के समान्तर महानदी की घाटी से दक्षिण में नीलगिरि तक दक्षिण-पूर्वी दिशा में ८०० कि० मी० की लम्बाई में फैले हैं। ये पश्चिमी घाट से बिल्कुल भिन्न हैं क्योंकि ये पश्चिमी घाट की तुलना में न तो अधिक ऊँचे ही हैं और न शृंखलाबद्ध ही। इन
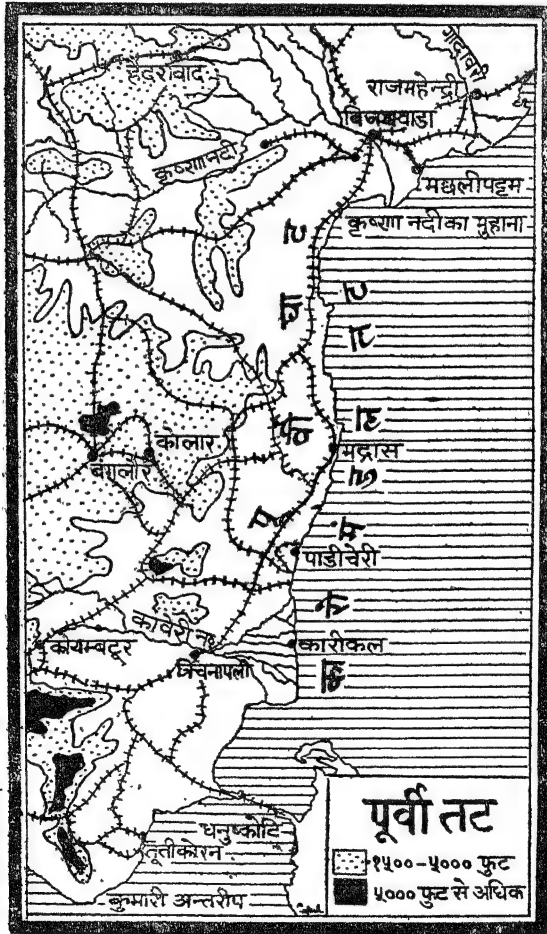
चित्र ४०. पूर्वी घाट और तट

पहाड़ियों में उड़ीसा और उत्तरी सरकार के पूर्वी घाट, नल्लैमलाय, पालकोंदा, जावड़ी, शेवराय तथा अन्य पहाड़ियाँ हैं। इन घाटों को काट कर महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियाँ पश्चिमी भागों से पूर्व की ओर बहकर अपने डेल्टाओं में

उपजाऊ मैदानों का सृजन करती हैं। यह घाट उत्तर पूर्व की ओर छोटा नागपुर की पहाड़ियों और सुदूर दक्षिण में नीलगिरि से मिल जाते हैं। अपने सार प्रसार में पूर्वी घाट समुद्र से दूर रहते हैं और इस प्रकार एक चौड़ी तट की पट्टी छोड़ते चलते हैं। अस्तु, तटीय मैदान ८० से १२९ कि० मी० तक चौड़ा है। अरावली की भाँति ये घाट भी पुराने मोड़दार पर्वतों के अवशेष हैं जिनका ढाल बड़ा धीमा है। इन घाटों की औसत ऊँचाई दक्षिण में ७६२ मीटर तक है किन्तु कहीं-कहीं ये १,५१५ मीटर ऊँचे हो गये हैं। उदाहरण के लिये कालाहांडी जिले में **कोरलापुर** १,२२० मीटर, **बकसामो** १,२७५ मीटर, कोरापुट जिले में **निमाईगिरी** १,५२५ मीटर, पाल लहारा में **मलयागिरी** १,२२० मीटर; मयूरभंज में **मेघसानी** १,२२५ मीटर; बोनाई में **मानकनंचा** १,१०० मीटर और गंजाम में **महेन्द्रगिरि** १,५२५ मीटर ऊंची है। पूर्वी घाट की पहाड़ियाँ कई तरह की शिलाओं से बनी हैं—नीस, खोंडलाइट (Khondalite), चार्नोकाइट और आग्नेय तथा अवसादीय उत्पत्ति की शिस्टों से।

दक्षिणी प्रायद्वीप—दक्षिण का प्रायद्वीप उस गोंडवाना महाद्वीप का भाग है जो किसी समय टेथिस महासागर के दक्षिण में फैला था। इन सब भागों में पाये जाने वाली मिट्टी के जमाव, पशु-पक्षी विशेष तथा वनस्पति विशेष आदि में ऐसी समानता मिलती है जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, मैडेगास्कर, भारत और अन्टार्कटिका में एक ही भूमि-सम्बन्ध स्थापित था। कई दृष्टिकोणों से यह प्रणाली अद्वितीय बनावट की है। धरातल से लेकर नीचे की सतह तक इसकी मिट्टी की एकरूपता, अतीत काल से पृथ्वी के इतने बड़े भाग के धरातल के इतिहास को अब तक सुरक्षित रख सकने की इसकी क्षमता, क्रमशः नीचे को धंसने वाले दरारी गड्ढों में मिट्टी की सतहों का विशेष ढंग से बनना तथा बहुमूल्य-कोयला भंडारों का विभिन्न भागों में अविभाज्य रूप से सुरक्षित रहना आदि ऐसे तथ्य हैं जो यहाँ की चट्टानों को अद्वितीयता प्रदान करते हैं। अधिक प्राचीन होने के कारण इस भाग में अनेक पर्वत निर्माणकारी क्रियाओं के फलस्वरूप गोंडवाना महाद्वीप के भाग छिन्न भिन्न होकर अलग-अलग हो गये तथा कुछ भाग तो सदा के लिए समुद्र के गर्भ में विलीन हो गये।

इसके बाद मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी के दक्षिण में गोंड़ राज्य में द्राविड़ युग में गहरे बेसीनों और गर्तों में गोंडवाना चट्टानों का निर्माण हुआ, जो पुरानी चट्टानें मिली हैं उन्हीं के आधार पर इस समस्त भू भाग को **गोंडवानालैंड** की संज्ञा दी गई है। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग १७७२ में **श्री मेड़लीकॉट** (Medlicott) और १८७६ में **फीस्मैंटल** (Feistmantel) और १८९३ में **ओल्डहम** (Oldham) प्रभृति भूगर्भ-वेत्ताओं ने किया। बाद को यह नाम उन भूखंडों को भी दिया गया है जहाँ ऐसी ही चट्टानें और अवसाद (Sediments) पाये गये हैं। गोंडवाना शिलाओं का विकास भारत के एक तिकोने प्रदेश के दो भागों में हुआ है। यह एक ओर दामोदर, सोन और ऊपरी नर्मदा की घाटियों में है जिसकी प्रगति लगभग पूर्व-पश्चिम है। दूसरा भाग गोदावरी घाटी में फैला है। इस तिकोने क्षेत्र में एक गौण मेखला (belt) महानदी घाटी में फैली है। दार्जिलिंग, भूटान और आसाम के उप-हिमालय प्रदेश में भी इसके कुछ प्रदर्शन मिलते हैं। काश्मीर में भी निचली गोंडवाना शिलायें मिलती हैं। भारत के पूर्वी तट पर ऊपरी गोंडवाना शिलायें मिलती हैं।

इस प्रकार की चट्टानें १५ करोड़ वर्ष पूर्व बनी मानी जाती हैं। गोंडवाना

युग का आरंभ, जब ये चट्टानें बनीं, एक सर्दी में हुआ। उस काल के आरंभ में सबसे नीचे शिलापिंड-पात्र (boulder-belt) और उनके ऊपर क्रमशः हरी जम्बूशिलायें (Shale) और बालू शिलायें जमीं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि उनका निर्माण सर्दी में हुआ है। इसके बाद के काल का मौसम गरम व आर्द्र था और इस समय कोयला गर्भित स्तर बिछाए गए। इस काल में वनस्पतियों का बाहुल्य था और इनका संग्रह ग्लोस्सोप्टेरिस शस्यजात (Glossopteris flora) के नाम से ज्ञात है। उसके बाद भूभाग क्रमशः शुष्क होने लगा और मौसम गरम होने लगा, क्योंकि उस समय के जमाव भौमिक आकार के हैं। इन जमावों में मुख्यतया लाल बालू शिलायें और जम्बू शिलायें हैं जिनमें सरीसृपगण (Reptiles), उभयचरण (Amphibians) आदि जन्तुओं के अवशेष मिलते हैं। फिर मन्द तथा आर्द्र परिस्थितियों से युक्त एक काल आया और उस समय एक नया शस्यजात बढ़ा जिसका नाम टेलोफिल्लम शस्यजात (Tilophyllum flora) है। पहले शस्यजात का दूसरे शस्यजात में बदलना एक शुष्क काल में हुआ। यह समय गोंडवाना कल्प के लगभग बीच का है।

प्राचीन युग में बनी इन चट्टानों में आधुनिक भारत की बड़ी भारी कोयला राशि जमी पाई जाती है। गोंडवाना कोयले का संचय लगभग २,००,००० लाख टन है, किन्तु इसमें से केवल ५०,००० लाख टन ही बढ़िया श्रेणी का है। कोयले के ये क्षेत्र रानीगंज, बाराकर उप-समुदायों में पाये जाते हैं। इनमें कोयले की तहें ६ मीटर से लगाकर २४ मीटर तक मोटी पाई जाती हैं। इन चट्टानों मे भारत के ८ प्रमुख कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं : दामोदर घाटी, बाराकर घाटी, राजमहल की पहाड़ियाँ, महानदी घाटी, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, गोदावरी घाटी और सतपुड़ा श्रेणी।

बाराकर-रानीगंज और पचमढ़ी उप-समुदायों में मिलने वाली बालू शिलायें इमारतें बनाने के लिए बहुत उपयोगी हैं। बाराकर बालू शिलायें चक्की बनाने के काम में भी आती हैं। कोयला क्षेत्रों में अग्नि मिट्टियाँ भी पाई जाती है, जो बर्तन व ईटें बनाने में उपयोगी हैं। कई भागों में वर्ण मिट्टी (Ochre) और लिमोनाइट श्रेणी का लोहा भी मिलता है।

भारत का प्रायद्वीप बहुत ही पुराना भू-भाग है जो अति प्राचीन युग में टेथिस नामक महासागर के दक्षिण में अवस्थित था। इस भूभाग का विस्तार बहुत अधिक था। इसके अन्तर्गत दक्षिण-अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया और अण्टार्टिका भूखंड थे। इस सारे भूखंड का नाम भूगर्भ विशारदों ने **गोंडवानालैंड** की संज्ञा दी थी। कई युगों से भूमि के नग्नीकरण और मौसमी क्षति के परिणाम-स्वरूप ही भारत का आधुनिक रूप बना है। कठोर शिला-समूह, जो मौसमी प्रहारों का सामना कर चुके है, आज पहाड़ के रूप में खड़े हैं। उन्हीं में जो कुछ कोमल थे वे आज घाटी और मैदान बन गये हैं। यह भू-पपड़ी के एक स्थायी खंड का सूचक है। यद्यपि विभंग (faulting) और दीर्घकालीन भू-चलनों का इस पर थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा है, फिर भी उषः कल्प-काल के भू-चलनों के कारण अधिक विचलित नहीं हुआ है। वह मुख्यतः पुरानी रवेदार और परिवर्तित शिलाओं से बना है जो कुछ स्थानों में बाद के अवसादों और लावा के बहाव से आवृत है। उषः कल्प-काल से समुद्री शिलायें उनके किनारों में ऊपरी द्वितीय जीव-कल्प और तृतीय जीव-कल्प में

जम गयी हैं। लेकिन ये कुछ अवसादों में गोंडवाना कल्प में नदीय और भील-अवसादों से बनी हैं।

गोंडवानालैंड का विभंजन (Disruption of Gondwanaland)—पृथ्वी की सबसे ऊपरी तह सब तहों में हल्की होती है। इसका घनत्व २·७ है। यह ग्रेनाइट और नीस चट्टानों की बनी है और इसमें सिलिका (Silica) और एल्यूमिनियम तत्व अधिकता से पाये जाते हैं। इसलिये इसका संक्षिप्त नाम **सियाल** (Sial) रखा है। इस तह से नीचे वाली तह बसाल्ट जैसी भारी चट्टानों से बनी होने के कारण सबसे ऊपर वाली तह से भारी होती है। इसका घनत्व ३·५ है। इसमें सिलिका और मैगनेशियम तत्व प्रधान होते हैं। अतः इसका नाम **सीमा** (Sima) रखा गया है। सीमा-परत से सागरों की तलहटी बनती है।

श्री स्विस (Suess) नामक आस्ट्रेलियाई भूगर्भशास्त्री ने कल्पना की थी कि महाद्वीपों का वर्तमान भाग जो अधिक कठोर पदार्थों से बना है आदि के स्थल-पिंड थे। वर्तमान मुलायम या कम कठोर भाग पहले सारे जल से भरपूर थे। बहुत सी भूगर्भिक हलचलों के बीच के समय में पुराने स्थल-पिंड डूब गये तथा जलभंडार का विस्तार बढ़ गया। कम कठोर भागों के क्षेत्र में महासागर की तलेटियाँ भर गईं और स्थल रूप हो गईं। इस सिद्धान्त का प्रमाण भूमध्यसागर है जो आदिकाल के टैथीस महासागर का अवशेष है।

सन् १९१२ में जर्मनी के जलवायु विज्ञानवेत्ता **श्री वैगनर** (Wagner) ने यह साध्य रखा कि **सियाल** का पिंड (जिससे महाद्वीप बने हैं) **सीमा** के घने तत्व पर तैर रहा है। उसके अनुसार संसार के सारे महाद्वीप आदिकाल में एक साथ जुड़े हुए थे और यह मिश्रित पिंड **पैन्जिया** (Pangea) कहलाता था। इसके चारों ओर एक गहरा महासागर था, जिसे **पैंथालैसा** (Panthallasa) कहते थे, और इस स्थल पिंड का कुछ भाग उथले जल से ढका था। कुछ समय पश्चात् कुछ अप्रत्यक्ष कारणों से इस स्थल पिंड का कुछ भाग पश्चिम और उत्तर की ओर खिसक गया। फलतः उत्तर तथा दक्षिण अमरीका बन गये। विभंजन का यह कार्य दीर्घकाल तक चलता रहा। सबसे पहले आस्ट्रेलिया और मलाया द्वीप समूह आदि स्थल से अलग हुए। फिर दक्षिण अफ्रीका से दक्षिण अमरीका का भूखंड अलग हुआ और सबसे अंत में भारत और मैडेगास्कर के बीच का स्थल-पुल (जिसे **लैमूरिया** (Lemuria) कहते थे) अलग हुआ। इस विभंजन के फल-स्वरूप अमरीका और यूरोप-अफ्रीका के बीच आंध्र महासागर बन गया तथा भारत और अफ्रीका के बीच अरब सागर की उत्पत्ति हुई।

श्री वैगनर के अनुसार प्रारंभिक कल्प में सारे महाद्वीप **पेन्जिया** के भाग थे किन्तु **परमो-कारवन युग** में यह स्थल-समूह दो खंडों में चटक गया—टैथिस महासागर का उत्तरी तथा दक्षिणी भाग। मध्य जीवयुग में उत्तरी और दक्षिणी भाग का पुनः वितरण पूर्वी और पश्चिमी भागों में हो गया। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, एशिया, आस्ट्रेलिया और अन्टार्टिका महाद्वीप एक दूसरे से अलग हो गये और इनके बीच में बड़े बड़े महासागर उपस्थित हो गये।

वैगनर का यह सिद्धान्त निम्न कारणों से मान्य हुआ है—

(१) ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका तथा प्रायद्वीपीय भारत के पठार पर एक ही

प्रकार की चट्टानों के समूह मिलते हैं जिनका भौगर्भिक इतिहास और प्राकृतिक बनावट भी एक सी है।

(२) आंध्र महासागर के दोनों किनारों की वनस्पति और जीवजन्तु तथा उनके अवशेष एक से हैं—ग्लोस्सोप्टैरिस शस्यजात के। भारत, मैडेगास्कर और दक्षिणी अफ्रीका के जल-क्षेत्रों में एक ही सी मछलियाँ और अन्य सरीसृप पाये जाते हैं। भूतपूर्व मध्य भारत में क्रिटैशियस काल में जो **दानवसरस** नामक भीमकाय जन्तु पाया जाता था उसी जन्तु के अवशेष पैटेगोनिया, ब्राजील, यूरेग्वे और मैडेगास्कर में मिले हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों किनारे किसी समय एक थे।

(३) प्राचीन काल के भूखंड के टूट जाने पर उसमें 'आरे की दरोंती जैसी व्यवस्था' (Jigsaw Fit) पायी गई है जिसके एक ओर उत्तर और पश्चिम यूरोप तथा पश्चिम अफ्रीका की सीमान्त रेखायें थीं और दूसरी ओर उत्तर और दक्षिण अमरीका थे। कुछ विशेष भागों को छोड़कर ब्राजील का उभड़ा हुआ भाग गिनी की खाड़ी में भली प्रकार सटाया जा सकता है। उत्तरी अमरीका की सीमांत रेखा ठीक प्रकार से स्कैंडेनेविया और पश्चिम यूरोप के कटावदार भागों से सटायी जा सकती है। इस प्रकार इथोपिया और इरीट्रिया का उभड़ा हुआ भाग पश्चिमी भारत और पाकिस्तान की तट रेखा के टेढ़े भाग में उपयुक्त रूप से सटाया जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में यह सब भाग सम्बद्ध थे।

(४) विशाल हिम-आवरण, जो **परमो-कारबन युग** में पृथ्वी के एक बहुत बड़े भाग पर फैला हुआ था, दक्षिण अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण भारत और आस्ट्रेलिया पर अपने चिन्ह छोड़ गया है। भारत में हिमावरण के चिन्ह, पत्थरों पर खरोंचे आदि विशेषत: राजमहल से गोदावरी घाटी और रानीगंज से नागपुर तक मिलते हैं। **डा० वाडिया** के अनुसार हिमावरण का मुख्य केन्द्र अरावली पर्वत थे, जिनसे चारों ओर हिमानियाँ बहती थीं। इससे यह प्रकट होता है कि ये सारे प्रदेश, जो अब भिन्न भिन्न महाद्वीप हैं, पहले एक ही पिंड के अंग थे।

इस प्रकार आदि भूखंड को विभंजन करने वाले ये परिवर्तन **इयोसीन युग** के आरम्भ में हुए। इस समय एक ओर गोंडवानालैंड विभिन्न भूभागों में टूट टूटकर अलग हुआ जिनसे कुछ भागों में भूमि समुद्र में डूब गई और कहीं नये महाद्वीपों का आविर्भाव हुआ, वहाँ दूसरी ओर टैथिस महासागर के गर्भ से हिमालय का जन्म हुआ। **क्रिटैसियश युग** के अन्त में प्रायद्वीप के धरातल पर भू-पपड़ी की दरारों से लावा के बहाव निकले। ये बहाव दकन ट्राप (Deccan Trap) के रूप में भूतल पर बड़े क्षैतिज स्तरों के आकार में फैले हैं। ये प्राय: भूमि के चलन से प्रभावित नहीं हुये। इस प्रकार के ट्राप महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं आंध्र के विशाल भू-भागों में फैले हैं। इन दरारों से अनुमानित ४,००,००० घन मील लावा पदार्थ निकला जो हिमालय के वजन और आयतन से भी अधिक माना जाता है। यह ५,१८,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर जम गया। लावा निर्मित पठार की मोटाई ६१० मीटर से १,८३० मीटर तक है तथा विशिष्ट स्थानों में तो यह मोटाई ३,०५० मीटर तक हैं।

प्रायद्वीप का भूतत्व

दक्षिण प्रायद्वीप के आधे से अधिक भाग की रचना, अति प्राचीन युग की नीस और ग्रेनाइट चट्टानों से हुई है। इस प्रायद्वीप का कुछ भाग प्राचीन युग में समुद्र के गर्भ में

चला गया। इस डूबे हुए भाग पर नदियों द्वारा लाया गया चट्टानों का चूर्ण जमा होता चला गया तथा ऊपर के दबाव और नीचे की गर्मी आदि के कारण चट्टानों का रूप धारण करता गया। यह घटना धारवाड़ युग में हुई थी। अतः ये चट्टानें **धारवाड़ चट्टानें** कहलाती हैं। इस प्रकार की चट्टानें प्रायद्वीप में तीन विभिन्न भागों में पतली और संकड़ी पट्टियों के रूप में कुमारी अंतरीप से लगाकर आंध्र प्रदेश व पूर्वी घाटों से होती हुई उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान तक फैली हैं। इनके क्षेत्र इस प्रकार हैं :—

(१) मैसूर, धारवाड़ और बलारी क्षेत्र,

(२) छोटा नागपुर, जबलपुर, नागपुर, रीवाँ व बिहार के, हजारी बाग जिले में;

(३) अरावली पर्वतमाला तथा उत्तर में लद्दाख, जांस्कर श्रेणी, कुमायूँ, गढ़वाल, हिमालय, दार्जिलिंग प्रदेश।

इन चट्टानों में शिलाभूत अवशेषों (Fossils) का अभाव पाया जाता है। किंतु ये खनिज पदार्थों में धनी हैं। जबलपुर के निकट ३$\frac{1}{4}$ कि.मी. तक संगमरमर की चट्टानें नर्मदा घाटी में पाई जाती हैं। भारत का सर्वोत्तम लोहा, सोना, मैंगनीज, हीरा आदि खनिज इन्हीं चट्टानों में पाये जाते हैं। इनमें फ्लूराइट, तांबा, क्रोमाइट सीसा, धूल-फ्रॉम, अभ्रक, एस्बस्टम, घीया पत्थर आदि भी मिलते हैं।

पुराणयुग में कडुप्पा समूह की चट्टानों का निर्माण मद्रास के कडुप्पा जिलों में हुआ है। इन चट्टानों में भी शिलाभूत अवशेष नहीं पाये जाते। पेनार तथा पापाहनी नदी घाटियों में इनका उत्तम विकास हुआ है किन्तु गोदावरी और कृष्णा की घाटी, मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़, रीवाँ, बिजावर, ग्वालियर आदि और बम्बई में कालड़गी और बेलगाँव के बीच के प्रदेश में भी इस समूह की चट्टानों का प्रसार मिलता है। ये चट्टानें लगभग १४,००० वर्ग मील क्षेत्र में फैली हैं। राजस्थान में ये शिलायें अजमेर तथा पश्चिमी मेवाड़, अलवर, अजबगढ़, एरिनपुरा में मिलती हैं। इन चट्टानों से कुछ उपयोगी खनिज मिलते हैं—जैसे स्लेट, बालू पत्थर, पट्टीदार जास्पर, सीसा-धातु आदि।

विन्ध्य समूह की शिलायें कडुप्पा शिलाओं के बाद बनी हैं। इन शिलाओं का नाम विन्ध्याचल के नाम पर पड़ा है। ये शिलायें पूर्व और पश्चिम की ओर बिहार के सहस्राराम नामक स्थान से लेकर अरावली पर्वत के छोर पर स्थित चित्तौड़गढ़ तक फैली हैं। इस प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग ४०,००० वर्गमील है।

विन्ध्य समूह के निम्न खंड का खुला रूप करनूल, सोन की घाटी, छत्तीसगढ भीमानदी की घाटी में गुलबर्गा और बीजापुर जिलों में पाया जाता है। इसमें चूने का पत्थर और शेल पाया जाता है। अनुमानतः यह खंड समुद्र के गहरे पानी में बना है। किन्तु इस समूह का उर्ध्व खंड (जो कैमूर, रीवाँ, पन्ना, भंडेर आदि समुदायों के नाम से ज्ञात है) छिछले समुद्र में बना अनुमान किया जाता है क्योंकि इनकी चट्टानों के स्तरों पर लहरों के हलकोरों के चिन्ह बने मिलते हैं।

इन चट्टानों में हीरे, चूने के पत्थर, मकान बनाने तथा सजावट के लिए उत्तम श्रेणी के संगमरमर, चीनी मिट्टी और अग्नि-मिट्टी मिलती है। बालू शिलाओं का इनमें आधिक्य है जिनका उपयोग आगरा, दिल्ली, जयपुर, ग्वालियर, फतहपुर सीकरी, सारनाथ और सांची के स्तूपों में किया गया है।

दक्षिण भारत की नदी प्रणाली (River System of Peninsular India)

दक्षिण के पठार पर बहने वाली नदियों में अनेक विशेषतायें पाई जाती हैं, जैसे :—

(१) बड़े मैदानों की अपेक्षा यहाँ की नदियाँ छोटी और कम संख्या में हैं क्योंकि यहाँ वर्षा कम होती है। इसलिये इन नदियों में गरमी के मौसम में पानी कम रहता है और वे पहाड़ी प्रदेश पर होकर बहती हैं इसलिये, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी आदि नदियाँ भी नावों के अधिक काम की नहीं हैं।

(२) मार्च से जून तक (गरम सूखे मौसम में) जब मैदान की नदियों में हिमालय का बर्फ गल कर आता है तो उन दिनों पठार की नदियाँ सूख जाती हैं क्योंकि इनके उद्गम स्थान बर्फ से ढके पर्वतों में नहीं हैं।

(३) धरती पथरीली होने के कारण पठार पर गिरने वाला वर्षा का जल धरती में नहीं सूखता परन्तु शीघ्र ही नदियों में बह जाता है। यही कारण है कि पठार की नदियों में एक दम बाढ़ आ जाती हैं और वे बहुत शीघ्र उतर भी जाती हैं। चम्बल, सोन और महानदी गहरी और आकस्मिक बाढ़ों के लिए प्रसिद्ध हैं।

(४) पठार के धरातल के ढालू और चटियल होने के कारण नदियों से सिंचाई के लिए नहरें नहीं निकाली जा सकतीं।

(५) पठार की प्रायः सभी नदियाँ बड़ी पुरानी हैं। सैकड़ों वर्षों से यह अपने मार्ग को काटती आ रही हैं। अतः अब इनकी काटने की शक्ति नष्ट प्रायः सी हो चुकी हैं। इनकी घाटियाँ चौड़ी किन्तु छिछली हैं।

दक्षिण भारत में अनेक छोटी बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं। इनमें से अधिकांश बंगाल की खाड़ी में, कुछ अरब सागर में और कुछ उत्तर की ओर बहती हुई गंगा नदी-प्रणाली में गिरती हैं। कुछ नदियाँ अरावली तथा मध्य प्रदेश के पहाड़ी भागों से निकल कर कच्छ के रन अथवा खंभात की खाड़ी में गिरती हैं।

नीचे की तालिका में दक्षिणी भारत की नदियों के उद्गम स्थान और लम्बाई बताई गई है—

चम्बल	उज्जैन के निकट	९६०	किलोमीटर
बेतवा	भोपाल के निकट	४८०	,,
सोन	अमरकंटक पहाड़ी	७७०	,,
गोदावरी	नासिक के निकट त्र्यंबक गाँव	१,४४०	,,
महानदी	रायपुर (जिला सिहावा)	८८०	,,
कृष्णा	महाबलेश्वर (पश्चिमी घाट)	१,२८०	,,
उत्तरी पेनार	नंदी दुर्ग पहाड़ी (मैसूर)	५७०	,,
दक्षिणी पेनार	चित्राकेशव पहाड़ी	४००	,,
कावेरी	कुर्ग	७६०	,,
तुंगभद्रा	गंगामूल चोटी (पश्चिमी घाट)	६४०	,,

नर्मदा	अमरकंटक (महाराष्ट्र)	१,२८०	„
साबरमती	साबरकांटा (गुजरात)	३२०	„
ताप्ती	मुल्ताई नगर (बेतूल, मध्य प्रदेश)	७००	„
माही	ग्वालियर	५६०	„
दामोदर	नागपुर पठार (तोरीपालमा (ऊजिला)	६००	„
स्वर्णरेखा	रांची के निकट	४८०	„
लूनी	अरावली पर्वत	३२०	„
बनास	आबू पर्वत	२७०	„

प्रायद्वीप के प्राकृतिक प्रदेश

दक्षिण के प्रायद्वीप के निम्न प्राकृतिक विभाग किये गए हैं:—

(१) थार का प्रदेश (Thar Region)

यह प्रदेश अरावली पर्वत के पश्चिम में स्थित है। इसका कुछ भाग पश्चिमी पाकिस्तान में है। राजस्थान का पश्चिमी भाग और पंजाब का दक्षिणी भाग इसी
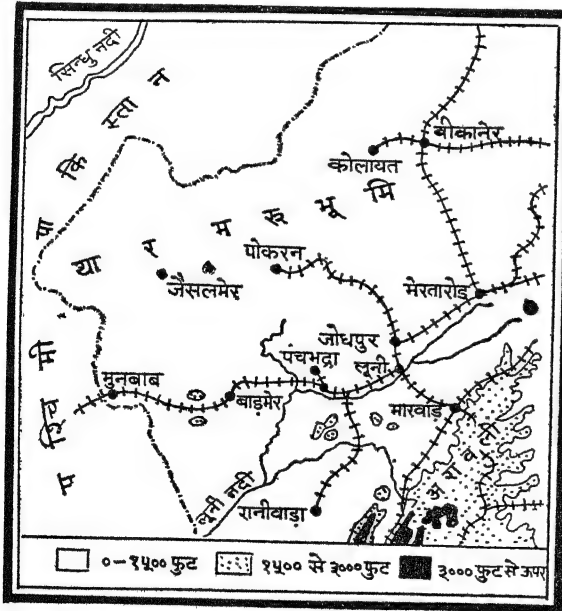
थार मरुस्थलीय प्रदेश (प्राकृतिक दशा)

चित्र. ४१

प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्व में सिन्धु व सतलज नदियों

के मैदान, पूर्व और दक्षिण-पूर्व में अरावली की पहाड़ियाँ हैं। थार के मरुस्थल का लगभग ८५% भाग भारत में है।

प्राकृतिक दशायें—सम्पूर्ण प्रदेश रेतीला मैदान है, जिसमें यत्र-तत्र पथरीले टीले मिलते हैं। मरुस्थल की ऊँचाई पश्चिम की ओर क्रम से धीमी होती गई है। उत्तरी पश्चिमी और पश्चिमी भाग में तो यह केवल १५२ मीटर ही ऊंचा है। मरुस्थल के बीच में उत्तर से दक्षिण निर्जल शुष्क नदियों की घाटियाँ पाई जाती हैं जिनके बीच में कठोर चट्टानें भी मिलती हैं किन्तु अधिकांश क्षेत्र बालू मिट्टी से ढका है जो वायु के प्रवाह के साथ-साथ उड़ कर अन्य स्थानों पर जम जाती है। बालू के टीले ६१ से १२१ मीटर तक ऊँचे तथा १½ से २½ किलोमीटर लम्बे तक पाये जाते हैं। इनके बीच में कई नमकीन जल की झीलें मिलती हैं—सांभर, डीडवाना, लूनकरन सर आदि।

यह एक शुष्क और गर्म प्रदेश है। ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी तथा शीत ऋतु में ठंढक पड़ती है। ग्रीष्म कालीन औसत तापक्रम ४३° सें० ग्रेड तक पहुँच जाते हैं और दिन के समय भयंकर आँधियाँ चलती हैं जिनके साथ बालू मिट्टी सर्वत्र छा जाती है किन्तु रात के समय तापक्रम गिर जाते हैं जिससे मौसम सुहावना हो जाता है। शीतकालीन तापक्रम २१° सें० ग्रेड से भी कम हो जाते हैं। इसलिये वार्षिक ताप क्रमान्तर ४° से १०° से० ग्रेड तक रहते हैं। वर्षा बहुत ही कम होती है। औसत २५ सें० मी० तक का हो जाता है। जो कुछ वर्षा होती है वह अरब सागर के मानसून से होती है किन्तु वर्षा अनिश्चित और अनियमित होती है। प्रायः वर्षा ग्रीष्म में ही होती है वह भी तूफानों के साथ। अतः कभी-कभी तो भयंकर बाढ़ें आ जाती हैं जैसी कि १९६१ की वर्षा ऋतु में आई थी। इससे लगभग ३ लाख पशुओं का विनाश हो गया तथा जैसलमेर क्षेत्र के अधिकांश वासी बेघरबार हो गये। कभी-कभी वर्षों तक वर्षा नहीं होती।

वर्षा के अभाव में सम्पूर्ण मरुस्थल में वनस्पति का अभाव रहता है किन्तु अधिकतर छोटे कटीले वृक्ष और झाड़ियाँ पाई जाती हैं जिन पर भेड़, बकरियाँ, गायें और ऊँट आदि निर्वाह करते हैं। इन वृक्षों की पत्तियाँ चिकनी, मोटी और छोटी होती हैं, जड़ें लम्बी और तनों पर काँटे होते हैं। बबूल, खेजड़ा, कैर, नागफनी, राम बाँस, गँवारपाठा आदि मुख्य पेड़ वहाँ मिलते हैं।

इस प्रदेश में कुछ महत्वपूर्ण खनिज पाये जाते हैं जैसे बीकानेर, जैसलमेर और जोधपुर जिलों में जिप्सम मिलता है। संगमरमर और छींटदार इमारती पत्थर जैसलमेर और जोधपुर जिलों में; लिगनाईट कोयला बीकानेर जिले में; मुल्तानी मिट्टी जोधपुर और बीकानेर जिलों में मिलती है। सांभर, डीडवाना झीलों से नमक प्राप्त किया जाता है। जैसलमेर जिले में पर्याप्त मात्रा में मिट्टी के तेलों के भण्डार मिलने की सम्भावनायें हैं।

मानवीय एवं आर्थिक दशायें—आर्थिक दृष्टि से यह प्रदेश विकसित नहीं है क्योंकि इस प्रदेश की सबसे बड़ी कठिनाई पर्याप्त जल न मिलने की है। बीकानेर जिले में सतलज नदी से निकाली गयी गंग नहर से सिंचाई करके कपास, गन्ना और गेहूँ तथा दालें पैदा की जाती हैं। अब भाखड़ा नांगल योजना से भी नहरें निकाली गई हैं जो इस प्रदेश के उत्तरी भाग को सींचती हैं। राजस्थान नहर के बन जाने पर पश्चिमी प्रदेश

बड़ा लहलहाता बन जायेगा और इतना अधिक कृषि उत्पादन होने लगेगा कि इस भाग को भारत का खाद्य भण्डार कहा जा सकेगा। लूनी नदी की घाटी तथा जवाई बाँध की नहरों के सहारे भी गेहूँ, गन्ना, दालें आदि पैदा किये जाते है। अन्यत्र कुएँ ६१ से १२२ मीटर गहरे मिलते हैं जिनके द्वारा सिंचाई होना सम्भव नहीं होता अतः अधिकांश भागों में केवल वर्षा के सहारे ही ज्वार, बाजरा, मूँग, मोठ आदि पैदा किये जाते हैं।

इस प्रदेश में पशु चारण एक प्रमुख व्यवसाय है। लाखों भेड़-बकरियाँ, गायें आदि पाले जाते हैं जिनसे ऊन, दूध, माँस और चमड़ा मिलता है।

इस प्रदेश में अभी तक औद्योगिक विकास बहुत ही कम हुआ है। बीकानेर जिले में सूती कपड़े तथा भेड़-बकरियाँ व ऊँटों के बालों से ऊनो कालीन, कम्बल लोईयाँ आदि बनाये जाते हैं। जोधपुर जिले में सूती कपड़ा तथा संगमरमर की मूर्तियाँ आदि बनाई जाती हैं। हाथ करघा उद्योग, हाथी दाँत की वस्तुएँ बनाना, रंगाई छपाई करना, लाख की चूड़ियाँ बनाना और दरी, निवार बुनना आदि प्रमुख गृह उद्योग हैं।

इस प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व बहुत ही कम है। जैसलमेर में ९ व्यक्ति से लगाकर गंगा नगर में ८० व्यक्ति और जोधपुर में ९० व्यक्ति प्रति वर्ग मील पीछे पाये जाते हैं। जल के अभाव में जनसंख्या छोटे-छोटे गांवों में कुओं के निकट केन्द्रित पाई जाती है। इस प्रदेश का औसत घनत्व २१ व्यक्तियों का है। यहाँ के निवासियों का मुख्य उद्योग कृषि करना तथा पशु पालना है।

बीकानेर, गंगानगर, जैसलमेर, मेड़ता, जोधपुर, पाली आदि यहां के मुख्य नगर हैं।

राजपूत उच्च भूमि प्रदेश (Rajput Upland Region)

यह प्रदेश वास्तव में दक्षिणी पठार का ही वह निकला हुआ भाग है जो उत्तर पश्चिम की ओर पठार के रूप में ही फैला है। इसके अन्तर्गत पश्चिम की ओर अरावली पर्वत और द० पूर्वी राजस्थान की नदी घाटियाँ; पूर्व की ओर मालवा का पठार; दक्षिण की ओर विंध्याचल की पहाड़ियाँ और उत्तर की ओर गंगा का मैदान है। इस प्रदेश का ढाल उत्तर-पूर्व में गंगा की घाटी की ओर है अतः इसका जल जमुना और उसकी सहायक नदियों में प्रवाहित हो जाता है। यह पहले अनेक राजपूत राजाओं का देश रहा है इसीलिये अभी भी इसे राजपूत प्रदेश कहा जाता है।

प्राकृतिक दशायें—यह प्रदेश प्रायः पठारी है जिसमें पूर्व की ओर तथा दक्षिण पूर्व में अनेक नदी-घाटियाँ फैली हैं। यह प्राचीन चट्टानों का बना है। दक्षिणी पश्चिमी भाग पर लावा की चट्टानें और दक्षिणी-पूर्वी भाग में प्राचीन रवेदार चट्टानें मिलती हैं।

इसके पश्चिमी भाग में उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम तक अरावली पर्वत श्रेणी लगभग ७०० किलोमीटर की लम्बाई में फैली है। यह अत्यन्त प्राचीन चट्टानों-शिष्ट, क्वार्टजाइट—आदि का बना है। किन्तु निरन्तर मौसमी क्षति होते रहने से यह काफी घिस गया है। इसकी औसत ऊँचाई १,५२४ मीटर है। यही श्रेणियाँ नीची होकर दिल्ली के निकट तक पहुँच गई हैं। यहाँ यह गंगा और सतलज के बीच एक जल विभाजक का काम करती है। पश्चिम में लूनी और उसकी सहायक नदियाँ तथा

पूर्व की ओर चम्बल और बनास नदियाँ निकल कर क्रमशः अरब सागर और जमुना नदी में मिल जाती हैं।

विन्ध्याचल श्रेणी इस प्रदेश के दक्षिणी भाग में पूर्व से पश्चिम को फैली है। इनकी औसत ऊँचाई ६१४ मीटर है। यह श्रेणी सतपुड़ा और महादेव श्रेणियों से
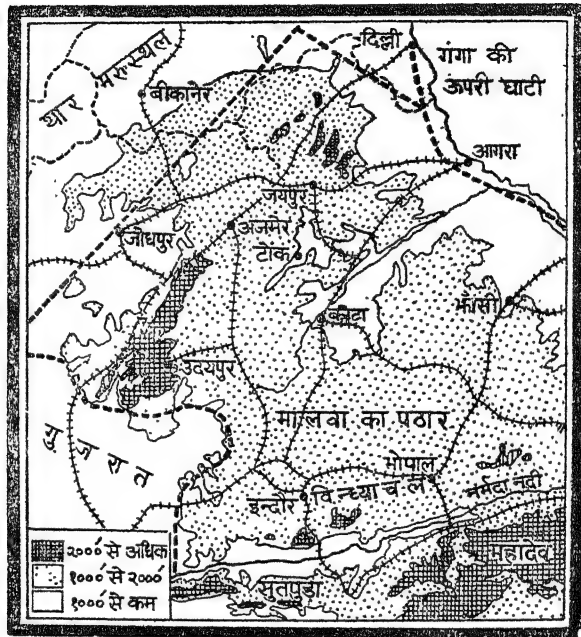
चित्र ४२. उच्च राजपूत प्रदेश

नर्मदा की दरार घाटी से अलग हो गई है। इस पर्वत श्रेणी का ढाल उत्तर की ओर हल्का तथा दक्षिण की ओर सीधा है। ये भी अत्यन्त प्राचीन चट्टानों से बनी हैं जिन पर मौसमी शक्तियों का प्रभाव पड़ा है।

इस प्रदेश के उत्तरी पूर्वी भाग में मालवा का पठार है जिस पर लावा की तहें जमी हैं। इस भाग में चम्बल और उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं।

जलवायु की दृष्टि से यह एक महाद्वीपीय क्षेत्र कहा जा सकता है। कर्क रेखा इसके मध्य से निकलती है। अतः यहाँ ग्रीष्म कालीन तापक्रम ३७° सें० ग्रेड से भी अधिक बढ़ जाते हैं किन्तु शीतकालीन तापक्रम १६° सें० ग्रेड ही रहते हैं। अतः तापक्रम का अन्तर अधिक रहता है। वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसूनों द्वारा होती है। वर्षा का औसत १०० सें० मीटर है किन्तु द० प० पर्वतीय भागों में १२७ सें० मीटर तक होती है। पूर्व की ओर बढ़ने पर वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। इस प्रदेश में अधिकतर शुष्क कांटेदार वृक्ष और झाड़ियों की अधिकता है। यहाँ सामान्यतः बबूल, कीकर, कैर, खेजड़ा आदि वृक्ष मिलते हैं किन्तु अरावली श्रेणी पर शीशम,

जामुन, महुआ, आदि के वृक्ष भी मिलते हैं। निचले भागों में घास के मैदान मिलते हैं जिनमें पशु पाले जाते हैं।

मानवीय एवं आर्थिक दशायें—यह प्रदेश अधिक ऊँचा-नीचा और अनुपजाऊ होने के कारण खेती केवल ४०% भाग पर ही की जाती है। खेती मुख्यतः नदी की घाटियों, पहाड़ों के ढालों और समतल पठारी भाग पर ही की जाती है। अधिकांश फसलें वर्षा के सहारे ही पैदा की जाती हैं। ज्वार, बाजरा, चना, जौ, तिलहन, दालें, मक्का और गेहूँ यहाँ की मुख्य फसलें हैं। दक्षिणी पूर्वी भागों में तालाबों से सिंचाई करके कपास, धान, गन्ना आदि पैदा किया जाता है।

इस प्रदेश में खनिज पदार्थों की अधिकता पाई जाती है। जस्ता, शीसा, लोहा, अभ्रक, ताँबा, बेरियल, मेंगनीज, बालू, संगमरमर व चूने के पत्थर आदि यहाँ प्राप्त किये जाते हैं। एस्बस्टस, पन्ना, बेनटोनाइट और फ्लूराइट भी यहाँ मिलते हैं।

शक्ति के साधनों के अभाव में इस प्रदेश का औद्योगिक विकास अधिक नहीं हो पाया है। फिर भी सीमेन्ट के कारखाने लाखेरी, सवाई माधोपुर और बनमोर में हैं। सूती कपड़े की मिलें इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन, रतलाम, नागदा, ब्यावर, भीलवाड़ा, कोटा, और जयपुर आदि नगरों में हैं। ग्वालियर में सूती, ऊनी और रेयन कपड़े की मिलें, बिस्कुट, चीनी मिट्टी के बर्तन आदि बनाने के कारखाने हैं। अजमेर तथा जयपुर में ऊनी रेशमी कपड़ा बनाने, चाँदी सोने के गहने, जूते, संगमरमर की मूर्तियाँ और बर्तन तथा साबुन व तेल आदि बनाने के कई कारखाने हैं। कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत, खादी, बीड़ी, साबुन, कम्बल, पत्थर के प्याले, कूंड़ियाँ, सूती साड़ियाँ, लकड़ी के खिलौने, कागज आदि उद्योग मुख्य हैं।

इस प्रदेश की जनसंख्या बहुत ही फैली हुई है। इसका घनत्व १०० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। किन्तु नदी की घाटियों और कृषि योग्य क्षेत्रों में यह २४० तक पहुँच जाता है। यहाँ के अधिकांश निवासी हिन्दू हैं जिनकी भाषा राजस्थानी, मालवी और बागड़ी है। पहाड़ी भागों में भील, कोल, गरासिया नामक आदिवासी जातियाँ रहती है जो खेती आखेट तथा पशुपालन पर आश्रित हैं।

आवागमन का मुख्य साधन सड़कें और रेल मार्ग हैं जिनका जाल-सा बिछा है। पश्चिमी रेल मार्ग ही सम्पूर्ण प्रदेश में फैला है। कोटा, अजमेर, मारवाड़ जंकशन, चित्तौढ़गढ़, ग्वालियर, उज्जैन, भोपाल आदि प्रसिद्ध जंकशन हैं।

यहाँ के मुख्य और ऐतिहासिक नगर जयपुर, अजमेर, कोटा, उदयपुर, चितौड़गढ़, बूँदी, झालावाड़, आबू, उज्जैन, इन्दौर तथा ग्वालियर हैं।

(३) मध्य भारतीय पठारी प्रदेश अथवा बुंदेलखंड-बघेलखंड का पठार (Central India High lands or Bundelkhand—Baghelkhand Plateau)

यह प्रदेश एक पठार है जो गंगा के मैदान से क्रमशः ऊँचा उठता है और दक्षिण में सोन तथा नर्मदा नदी की घाटियों के निकट समाप्त हो जाता हैं। इसके पश्चिम में मालवा का पठार, औरपूर्व में छोटा नागपुर का पठार है। मध्यप्रदेश का अधिकांश भाग इसी प्रदेश के अन्तर्गत आता है। उत्तर-प्रदेश के कुछ भाग भी इसमें सम्मिलित हैं। इसे बुंदेलखंड, बघेलखंड का पठार भी कहते हैं।

प्राकृतिक दशायें—यह भाग पठारी है जिसकी औसत ऊँचाई ३०५ से ६१० मीटर तक है। मध्य के भाग में भी कुछ पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। पूर्वी भाग में कैमूर श्रेणी रीवां से मिर्जापुर तक फैली है तथा नीची है। पठार के मध्य में भारनेर की श्रेणी दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर तथा विन्धाचल श्रेणी दक्षिण पश्चिम
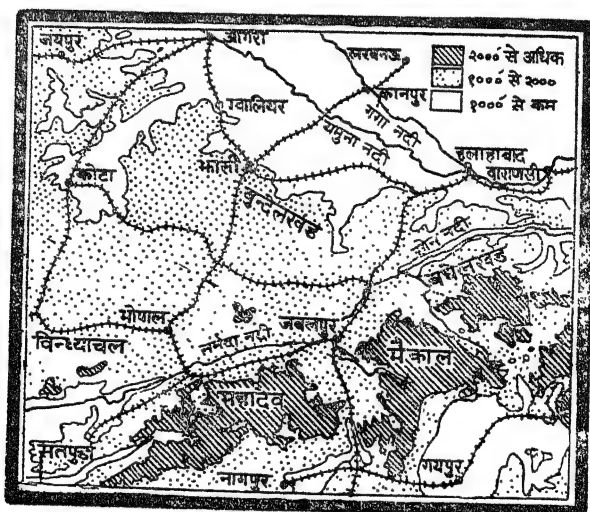
चित्र ४३. मध्य भारतीय या बुन्देलखंड-बघेलखंड का पठारी अग्र-प्रदेश

में ६१४ मीटर की ऊँचाई तक फैली हैं। नदियों के समीप इस प्रदेश का ढाल अत्यन्त ही खड़ा है। इस पठार का सारा जल गंगा में प्रवाहित होता है। नर्मदा, सोन, धसान, केन, टोंस और बेतवा इस प्रदेश की मुख्य नदियां हैं। यह सारा प्रदेश अत्यन्त प्राचीन काल की मणीभीय चट्टानों से बना है जिनके अवशेष ऊँचे टीलों के रूप में मिलते हैं। इस प्रदेश में अधिकतर लाल मिट्टी मिलती है।

इस प्रदेश की जलवायु कुछ आर्द्र है। ग्रीष्मकालीन औसत तापकम २९° सें० ग्रेड और शीतकालीन औसत तापक्रम १८° सें० ग्रेड तक रहते हैं। वार्षिक तापान्तर ३८ से ५१ सें० मीटर तक रहता है। वर्षा ग्रीष्म के मानसूनों द्वारा होती है। इसका औसत १०० सें० मीटर किन्तु बुन्देलखंड और रीवां का १०० से १२७ से० मीटर तक है। वर्षा की मात्रा पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ती जाती है।

इस प्रदेश की मुख्य वनस्पति मानसूनी वन हैं जो विंध्याचल के ढालों पर मिलते हैं। अन्यत्र झाड़ियाँ पाई जाती हैं। मानसूनी वनों से ढाक, हर्ड-बहेड़ा आँवला शीशम, बाँस, महुआ, और लाख, गोंद आदि प्राप्त किये जाते हैं। निचले ढालों पर पशुओं के लिये घास भी मिलती है। यहाँ सिंचाई के मुख्य साधन तालाब हैं।

मानवीय और आर्थिक दशायें—इस प्रदेश का मुख्य उद्यम खेती करना है किन्तु यह खेती विस्तृत खेती होती है क्योंकि उपजाऊ मिट्टी और सिंचाई के साधनों का अभाव है। नदियों की घाटी में कांप मिट्टी के क्षेत्रों में खेती की जाती है। कृषि के अन्तर्गत धान का महत्व विशेष है। यह सोन की घाटी में पैदा किया जाता है।

ज्वार, बाजरा, चना, जौ, कोदों, गेहूँ, तिलहन, दालें आदि अन्य फसलें भी पैदा की जाती हैं। कपास की खेती प्रायः नहीं की जाती। यद्यपि रीवां के पठार पर अच्छी वर्षा होती है, मिट्टी भी उपजाऊ है और सिंचाई के साधन भी उपलब्ध हैं किन्तु समस्त प्रदेश बहुत ही पिछड़ा हुआ और एकान्त में आ जाने से २० से २५% भाग पर ही खेती की जाती है।

यह प्रदेश खनिज पदार्थों में सम्पन्न है। यहाँ कोयले की अनेकों खानें पाई जाती हैं, विशेषकर उमरिया, और सोहागपुर में। पन्ना में हीरा और जबलपुर, कटनी आदि जिलों में चूने का पत्थर प्राप्त होता है। थोड़ी मात्रा में मैंगनीज, सिलिका बालू, और संगमरमर भी मिलते हैं। खनिज पदार्थों के मिलने के उपरान्त भी इस प्रदेश का औद्योगिक विकास उत्तम रूप से नहीं हुआ है। केवल कुछ सूती वस्त्र और सीमेंट के कारखाने ही यहाँ स्थापित हो पाये हैं। जबलपुर में सूती वस्त्र, चीनी मिट्टी, काँच व अस्त्र शस्त्र बनाने के कारखाने हैं। कटनी में सीमेन्ट का कारखाना है। हाथ करघे के वस्त्र, बाँस की चटाइयाँ और टोकरियाँ, लाख की चूड़ियाँ आदि कुटीर उद्योग मुख्यतः सतना, सागर और रीवां में किये जाते हैं।

इस प्रदेश की जनसंख्या छितरी हुई है। जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील पीछे १६० मनुष्यों का है। पन्ना में ९५ और सागर में १४६ व्यक्ति प्रति वर्ग मील से लगाकर जबलपुर में २७० और मिर्जापुर में २३३ व्यक्ति तक रहते हैं। यहाँ के गाँव छोटे होते हैं जिनमें घर पत्थर के बने होते हैं। यहाँ के निवासी बड़े परिश्रमी होते हैं। इनका मुख्य उद्योग खेती करना है।

आवागमन के मार्गों का विकास इस प्रदेश में अच्छा हुआ है। कलकत्ता से बम्बई जाने वाला मध्य रेलमार्ग इसी प्रदेश से निकलता है। झाँसी से होशंगाबाद, कटनी से सागर होकर कोटा और झाँसी से मानिकपुर को रेलमार्ग जाते है। सड़कों का भी अच्छा विकास हुआ है।

मिर्जापुर, झाँसी, रीवां, जबलपुर, सतना, कटनी, बीना, सागर आदि मुख्य नगर हैं।

(४) छोटा नागपुर का पठारी प्रदेश (Chhota Nagpur Plateau Region)

यह प्रदेश दक्षिणी पठार का वह उत्तरी पूर्वी भाग है जिसके पूर्व में गंगा का निचला मैदान, पश्चिम में बघेलखण्ड का पठार, उत्तर में गंगा का मध्यवर्ती मैदान और दक्षिण की ओर पूर्वी घाट के उत्तरी भाग हैं।

प्राकृतिक दशायें—यह पठारी भाग अत्यन्त प्राचीन और कठोर चट्टानों से निर्मित है किन्तु मौसमी क्षति के कारण अनेक स्थानों पर टूट-फूट गया है। इसी भाग से निकल कर नदियाँ दक्षिण-पूर्व और उत्तर की ओर बहती हैं। महानदी, दामोदर, हुगली, स्वर्ण रेखा और सोन नदियों में यहाँ की नदियाँ मिलती हैं। इस प्रदेश की औसत ऊँचाई ७६२ मीटर है। पूर्व में राँची का पठार और हजारी बाग का पठार है तथा उत्तर-पूर्व की ओर राजमहल की पहाड़ियाँ हैं जो गंगा की घाटी में चली गई हैं। छोटा नागपुर पठार का सबसे ऊँचा भाग पारसनाथ की पहाड़ी है जिसकी ऊँचाई १,३६५ मीटर है।

इस प्रदेश का तापक्रम वर्ष भर ही ऊँचा रहता है क्योंकि कर्क रेखा इसके

मध्य से निकलती है। ग्रीष्मकालीन औसत तापक्रम ३२° सें० ग्रेड और शीतकालीन औसत तापकम २१° से० ग्रेड तक रहते हैं। वर्षा मुख्यतः बंगाल की खाड़ी के मानसूनों में होती है। पूर्वी भाग में अधिक और पश्चिमी भाग में वर्षा की मात्रा कम होती है। वर्षा का औसत १२७ से० मी० से अधिक का है। अनेक बार अचानक तेजी से वर्षा हो जाने से नदियों में घनी बाढ़ें आ जाती हैं जिनके कारण छोटा नागपुर के पठार पर मिट्टी का कटाव अधिक होता है।

इस प्रदेश के लगभग एक तिहाई भाग में वन छाये हैं। अधिकतर मानसून वनों का ही महत्व है। साल, सागवान, खैर आदि के वृक्ष मिलते हैं। गोंद, लाख, कत्था, बीड़ी बनाने की पत्तियाँ और बाँस इन वनों से प्राप्त किये जाते हैं।

मानवीय एवं आर्थिक दशायें—इस प्रदेश का मुख्य उद्योग कृषि है। लगभग ४०% भाग पर खेती की जाती है। नदियों की घाटियों और पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेतों में धान, गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा, तिलहन, दालें पैदा की जाती हैं।

खनिज पदार्थों की दृष्टि से यह प्रदेश विशेष रूप से सम्पन्न है। कोयला, लोहा और अभ्रक तो बहुतायत से पाया जाता है। कोयला मुख्य रूप से झरिया, रानीगंज, गिरीडीह, बुकारो और करनपुरा क्षेत्रों में तथा लोहा, सिंहभूमि, मयूरभंज, क्योंझार, बोनाई क्षेत्रो में पाया जाता है। अग्नि मिट्टी, डोलोमाइट, चूने का पत्थर आदि मिल जाने के कारण ही जमशेदपुर में इस्पात का कारखाना स्थापित किया गया है। हजारी बाग और राँची अन्य औद्योगिक नगर हैं। बाँस और लाख की वस्तुयें बनाना तथा हाथ करघे का कपड़ा तैयार करना यहाँ के मुख्य कुटीर उद्योग हैं।

इस प्रदेश की जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है किन्तु पठार के उत्तरी पूर्वी भागों में घनत्व अधिक है क्योंकि इसी भाग में खनिज पदार्थों की अधिकता है। खानें खोदना, वनों से वस्तुयें प्राप्त करना तथा खेती करना यहाँ के मुख्य व्यवसाय हैं। पठार के भीतरी भागों में संथाल आदिवासी रहते हैं।

आवागमन का विकास अधिकतर उत्तरी पूर्वी भाग में ही हुआ है। पूर्वी रेलमार्ग तथा मध्य रेलमार्ग इस प्रदेश को पश्चिमी बंगाल से जोड़ते हैं। किन्तु आन्तरिक भागों में अभी भी आवागमन की कठिनाइयाँ है।

(५) दकन का लावा प्रदेश (Lava Region)

यह प्रदेश दक्षिण के प्रायद्वीप का उत्तर पश्चिमी भाग है जिसमें मध्यप्रदेश का पश्चिमी भाग, और महाराष्ट्र का अधिकांश भाग सम्मिलित है। इसे **काली-मिट्टी का प्रदेश, दकन का लावा प्रदेश**, मराठा प्रदेश, अथवा उत्तर पश्चिमी दकन के नामों से भी पुकारा जाता है। इस प्रदेश के पश्चिम में पश्चिमी घाट, पूर्व में उत्तरी पूर्वी पठारी भाग, दक्षिण में दकन का मुख्य पठार और उत्तर में राजपूत पठार है।

प्राकृतिक दशायें—सारा प्रदेश पठारी है जिसमें यत्र-तत्र बिखरी हुई पहाड़ियाँ मिलती हैं। सतपुड़ा पर्वत और पश्चिम में घाटों तक प्राचीनकाल के समय निकली लावा मिट्टी फैली है। इसकी औसत ऊँचाई ६१० मीटर है। किन्तु पश्चिम की ओर यह प्रदेश कुछ अधिक ऊँचा है। पूर्व की ओर गोदावरी और कृष्णा नदियों

की घाटी में निचले मैदान पाये जाते हैं। मौसमी क्षति के फलस्वरूप यहाँ की अत्यन्त प्राचीन चट्टानें घिस गई हैं जिनके सिरे चपटे, चिकने और कुछ गोलाकार बन
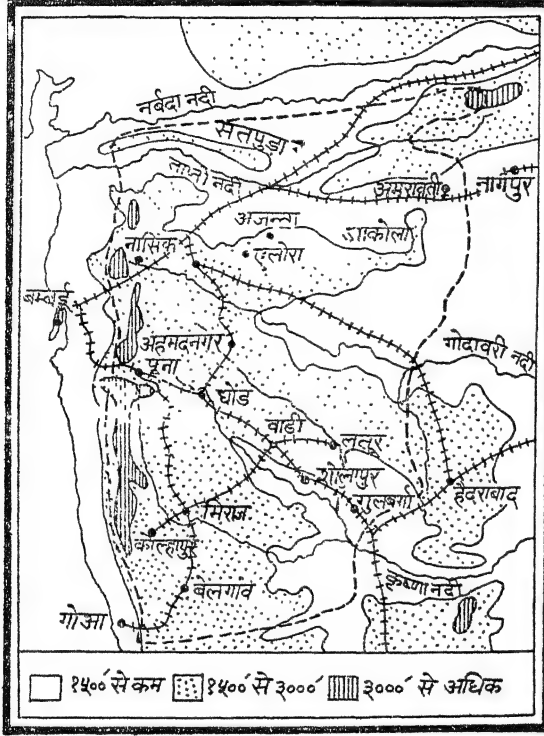
महाराष्ट्र – प्राकृतिक दशा

चित्र. ४४

गये हैं। सह्याद्रि, अजन्ता, बालाघाट आदि इस प्रदेश की कुछ नीची पहाड़ियाँ हैं। अधिकांश भाग लावा से बना होने के कारण सीढ़ीनुमा आकृति में हो गया है। यहाँ की मिट्टी काले रंग की तथा नमी को रखने वाली है किन्तु घाटियों में गहरी, उपजाऊ काँप मिट्टी मिलती है। दक्षिण पूर्व की ओर लाल मिट्टी के क्षेत्र पाये जाते हैं। इस और पूर्णियां की घाटी तथा वर्धा और ताप्ती नदी का ऊपरी भाग लगभग ३० मीटर ऊँचा है।
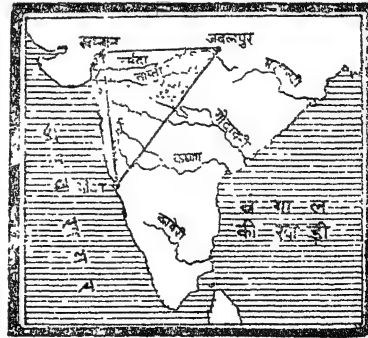
चित्र ४५. लावा प्रदेश

इस प्रदेश का तापक्रम सदा ऊँचा रहता है। ग्रीष्मकालीन औसत तापक्रम

३२° सें० ग्रेड तक और शीतकालीन औसत तापक्रम २१° सें० ग्रेड तक रहते हैं। यहाँ वर्षा का औसत ७५ से० मी० तक होता है। अधिकांश भाग अरब सागर के मानसूनों से वर्षा प्राप्त करता है किन्तु पश्चिमी भागों की वृष्टि छाया में होने के कारण पश्चिमी भाग में वर्षा कम होती है। पूर्वी भाग में बंगाल की खाड़ी के मानसून से वर्षा अधिक हो जाती है। लावा प्रदेश के ९६ कि०मी० चौड़े क्षेत्र में उत्तर से दक्षिण तक वर्षा की मात्रा २५ सें०मी० से भी कम होती है। पूर्व की ओर बेलगाँव में १२५ सें० मी० वर्षा होती है।

इस भाग में तालाबों की संख्या कम है। कुएं ही सिंचाई के मुख्य साधन हैं। मूथा और नीरा नहरों द्वारा सिंचाई भी की जाती है। सिंचित क्षेत्र अहमद नगर, आकोला, शोलापुर, बुलढाना, अमरावती और यवतमाल जिले में हैं।

इस प्रदेश का लगभग १८% भाग वनों से ढका है। पश्चिमी घाट के ढालों पर उष्ण कटिबन्धीय पतझड़ वन पाये जाते हैं। अन्यत्र कंटीली झाड़ियाँ और शुष्क वन हैं। वनों से साल, लाख, गोंद, शीशम की लकड़ी, बीड़ी बनाने की पत्तियाँ, बाँस आदि एकत्र किये जाते हैं।

मानवीय तथा आर्थिक दशायें—इस प्रदेश का मुख्य उद्योग खेती है। लगभग आधे भाग पर खेती की जाती है। वर्षा की कमी तथा सिंचाई के अनुपयुक्त भूमि होने से धान का महत्व कम है। यह केवल घाटों के निकटवर्ती भागों में तथा अमरावती और वर्धा नदियों की घाटियों में ही पैदा किया जाता है। ज्वार, बाजरा, गेहूँ, कपास, मूँगफली, गन्ना, तम्बाकू आदि अन्य फसलें हैं। इस प्रदेश में मैंगनीज, अभ्रक, लोहा और कोयला मिलता है।

यातायात के साधनों के अपूर्ण विकास एवं खनिजों के अभाव में यहाँ का औद्योगिक विकास अच्छे ढंग से नहीं हो पाया है। कपास का उत्पादन अधिक होने
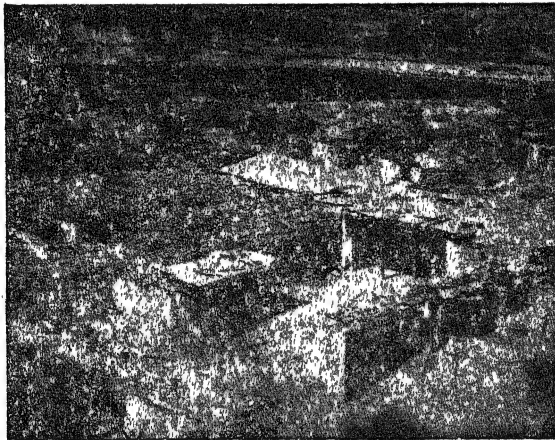
चित्र ४६. आंध्र प्रदेश के मेधक जिले का गाँव

से ही सूती कपड़े की मिलें शोलापुर, अमरावती, आकोला, पूना, अहमदनगर, गुलबर्गा, कोल्हापुर, बेलगाँव आदि नगरों में हैं। पूना यहाँ का प्रसिद्ध औद्योगिक नगर

है जहाँ रेशमी, सूती कपड़े, ताँबा, पीतल और मिट्टी के सुन्दर बर्तन तथा आभूषण बनाये जाते हैं। अहमदनगर, नासिक और पूना में चीनी की मिलें हैं।

इस प्रदेश में शक्ति की मुख्य योजना टाटा जल विद्युत योजना है।

इस प्रदेश में जनसंख्या का औसत घनत्व १७० से लगाकर ३०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील तक है। मालनद का घनत्व सबसे अधिक है। पश्चिमी हैदराबाद के भाग **मराठावाड़ा** तथा पूर्वी हैदराबाद के क्षेत्र में **तेलंगाना** जनसंख्या के घनत्व में भी बड़ा अन्तर पाया जाता है। जनसंख्या का जमाव मुख्यतः घाटियों और खेतीहर क्षेत्रों में है। लावा भूमियों पर गाँव प्रायः बड़े और सघन बसे हैं। साधारणतः सब समान दूरी पर पाये जाते हैं। मकान प्रायः ईंट व पत्थर के बने होते हैं जिनकी छतें कोल्हू से छाई जाती हैं।

अहमदनगर, औरंगाबाद, पूना, नासिक, कोल्हापुर, शोलापुर, गुलबर्गा, आकोला, अमरावती, और वर्धा प्रमुख नगर हैं।

आवागमन के क्षेत्र में यहाँ दक्षिण रेल मार्ग, मध्यवर्ती एवं पश्चिमी रेलमार्ग इस भाग में होकर गुजरते हैं।

(६) मुख्य दकन प्रदेश (Deccan Region)

यह प्रदेश भारत का सबसे प्राचीनतम भाग है। इसके पूर्व में कर्नाटक और पश्चिम में मलाबार के तटीय प्रदेश हैं। उत्तर-पश्चिम में लावा प्रदेश तथा उत्तर पूर्व में उत्तरी-पूर्वी दकन का प्रदेश है। इस प्रदेश में समस्त मैसूर राज्य तथा तेलंगाना के क्षेत्र हैं।

प्राकृतिक दशायें—यह प्रदेश ६१० मीटर से ऊँचा है तथा सम्पूर्ण पठारी भाग है। ऊँचाई पूर्व की ओर नदियों की घाटियों में केवल १५२ मीटर है किन्तु पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में ९१४ मीटर से भी अधिक है। नीलगिरी की **दादा-बेटा चोटी** तो २,६७० मीटर तक ऊँची है। यह सारा प्रदेश अत्यन्त पुरानी और उन कठोर चट्टानों का बना है जिनका निर्माण धारवाड़ युग और कड्डप्पा युग में हुआ है। ग्रेनाइट, नीस, शिष्ट आदि चट्टानें मौसमी क्षति के कारण घिस गई हैं जिनसे नदियों की घाटियाँ काफी कटी-फटी हैं। इस प्रदेश के उत्तर-पूर्व की ओर कृष्णा ओर तुंगभद्रा नदियाँ तथा पूर्व की ओर कावेरी और पेनार नदियाँ हैं। इन नदियों के कारण पूर्व की ओर चौड़े उपजाऊ काँप मिट्टी के मैदान बन गये हैं।

यह प्रदेश पश्चिमी घाट की वृष्टि छाया में होने के कारण सूखा रहता है। ग्रीष्म कालीन औसत तापक्रम २७° सें० ग्रेड और शीतकालीन औसत तापक्रम २१° सें० ग्रेड तक रहते हैं। पहाड़ी भाग सर्दियों में ठंढे रहते हैं। नीलगिरी पर तापक्रम १६° सें० ग्रेड तक हो जाता है। वर्षा का औसत १२७ सें० मीटर से भी कम है किन्तु पहाड़ों की तलैहटियों में कुछ अधिक है। अधिकांश वर्षा अरब सागर के मानसून से होती है। औसत तौर पर कहा जा सकता है कि इस प्रदेश की वर्षा बड़ी अनियमित और थोड़ी है।

मानवीय और आर्थिक दशायें—इस प्रदेश में लगभग आधे भाग पर खेती की जाती हैं परन्तु फसलों का उत्पादन बहुत कम होता है। इसका मूल कारण यहाँ मिट्टी का कम उपजाऊ होना है। यहाँ का वन क्षेत्र लगभग १६ प्रतिशत है। वन मुख्यतः आर्द्र पश्चिमी भाग में पहाड़ों के ढालों पर केन्द्रित हैं। मलाद (मैसूर का पश्चिमी अर्धा

आर्द्र भाग) में मिश्रित पतझड़ वाले जंगल हैं जिनमें सागौन, शीशम व चन्दन के पेड़ मिलते हैं। मैदान (मैसूर का शुष्क आधा पूर्वी भाग) में गन्ना और चावल और नारियल के खेत मिलते हैं। पूर्व की ओर लाल मिट्टी वाली उच्च भूमियों पर रागी तथा अन्य शुष्क फसलें पैदा होती हैं। मध्य का पथरीला भाग चरागाहों से ढका है। दक्षिण में नीलगिरी पर्वत सागौन, चन्दन, यूक्लिप्टस और सिनकोना आदि पेड़ों के जंगलों से ढके हैं। नीलगिरी के दक्षिण में अनामलाई और इलायची की पहाड़ियाँ
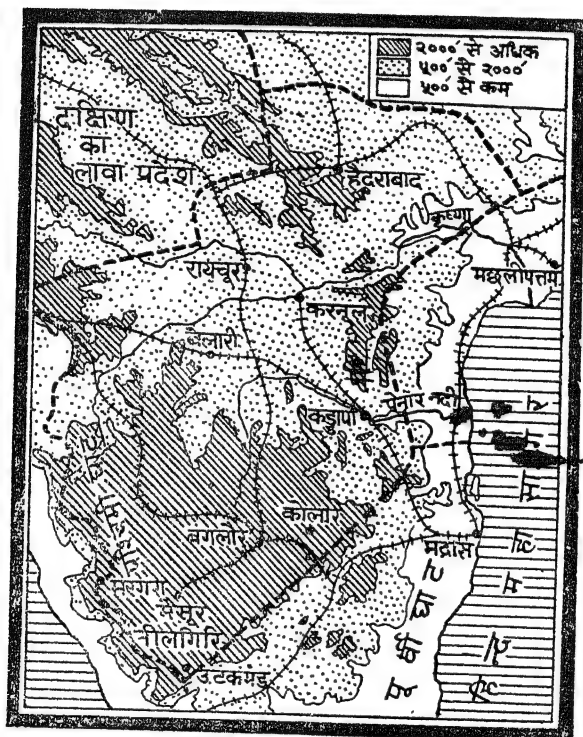
चित्र ४७. दकन का दक्षिणी प्रदेश

हैं। इन पर वन्य जातियों द्वारा झूमिंग खेती की जाती है। यहाँ चाय, काफी, इलायची और सुपारी के बागात भी पाये जाते हैं। यहाँ कृषि के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रदेश के लगभग १/३ भाग पर ज्वार बाजरा पैदा किया जाता है। काली मिट्टी के क्षेत्रों में कपास बोया जाता है। अधिक वर्षा वाले भाग में चावल तथा नदियों की घाटियों में मूँगफली पैदा की जाती है। शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। पशु पालन भी यहाँ खूब होता है। शुष्क पहाड़ी ढालों पर भेड़ें पाली जाती हैं।

इस प्रदेश के मुख्य खनिज लोहा (चितलदुर्ग और बेलारी में) क्रोमाइट मेंगनीज व सोना (धारवाड़, रायचूर, कोलार व हट्टी में) है। इस प्रदेश का औद्योगिक विकास अच्छा हुआ है। मैसूर में रेशमी, ऊनी, व सूती कपड़ा बनाया जाता है। यहाँ चन्दन का तेल, लकड़ी की वस्तुऐं आदि भी बनाई जाती हैं। सूती वस्त्र उद्योग

के अन्य केन्द्र बंगलौर, हैदराबाद, सिकन्दराबाद आदि हैं। बंगलौर में सूती ऊनी वस्त्र, टेलीफोन, हवाई जहाज, रेल के डिब्बे, मोटरें आदि बनाने के भी कारखाने हैं। भद्रावती में लोहे और इस्पात, सीमेन्ट, तेल साबुन, सूती रेशमी वस्त्र और कागज की मिलें हैं। हैदराबाद में सूती वस्त्र, दियासलाई, सिगरेट व बटन आदि बनाने के कारखाने हैं। कर्नूल में वनस्पति घी का कारखाना है।

इस प्रदेश की जनसंख्या का औसत घनत्व २०० व्यक्ति प्रति वर्गमील से भी कम है। यहाँ के निवासी पश्चिमी भाग में कन्नड़ और शेष भाग में तेलुगू बोलते हैं। अधिकांश निवासी ग्रामों में बसते हैं। उत्तर में बड़े-बड़े गांव और मुख्य सड़कें बाढ़ के भय से नदियों के किनारों से काफी दूर हैं। घर सामान्यतः तालाबों के निकट बनाये जाते हैं। घरों की दीवारें मिट्टी की तथा छतें चपटी होती हैं। शुष्क और ऊँचे अनुउपजाऊ भागों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में गाँव बड़े और सम्पन्न होते हैं। तेलंगाना में अधिकांश गांव तालाबों के निकट हैं जहाँ सिंचाई के लिये सरलता से जल मिल जाता है। नीलगिरी के पहाड़ी ढालों पर **टोड़ा** और **टोंक** आदि आदिम जातियाँ पाई जाती हैं जो मुख्यतः आखेट करके तथा पशुपालन करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। अन्य भागों के निवासी हिन्दू हैं।

यातायात के मार्गों का विकास इस प्रदेश में अच्छा हुआ है। पक्की सड़कों तथा रेल मार्गों का जाल-सा बिछा है। यहाँ के मुख्य नगर एवं व्यापारिक केन्द्र मैसूर, हैदराबाद, बंगलौर, धारवाड़, बीजापुर व करनूल आदि हैं।

उत्तरी पूर्वी पठारी प्रदेश (North East Plateau Region)

यह प्रदेश दक्षिणी पठार का उत्तरी पूर्वी भाग है। इसमें छत्तीसगढ़ का मैदान, गोदावरी की घाटी तथा उड़ीसा की पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं। अनेक नदियों ने इसे कई भागों में विभक्त कर दिया है। इसके उत्तर में छोटा नागपुर का पठार और मध्यवर्ती पठार, पश्चिम में लावा प्रदेश तथा दक्षिण में दक्षिणी दकन का पठार और पूर्व में उत्तरी सरकार प्रदेश हैं।

प्राकृतिक दशायें—इस प्रदेश का धरातल बड़ा ही असमान है क्योंकि अनेक नदियों ने इसे काट कर कई भागों में विभक्त कर दिया है। सामान्यतः यह भाग सर्वत्र ही १५२ मीटर से अधिक ऊँचा है। कहीं-कहीं इसकी ऊँचाई ६१० मीटर तक पाई जाती है। यह पठार अनेक प्राचीन चट्टानों का बना है। यत्र-तत्र घाटियों में कच्छार एवं पुरानी तलछट भी पाई जाती है। यह प्रदेश सतपुड़ा, महादेव और मैकाल का पूर्वी भाग ही है। उत्तर पश्चिम की ओर **महादेव** श्रेणियाँ हैं जिनके बीच-बीच में कई स्थानों पर बड़ी दरार घाटियाँ हैं। ये पहाड़ियाँ साधारणतः १,२२० मीटर तक ऊँची हैं। पूर्व की ओर पूर्वी घाट का भाग **बस्तर की पहाड़ियाँ** के रूप में फैला है। उत्तरी भाग से ये पहाड़ियाँ महानदी द्वारा पृथक हो गई हैं। पथरीले धरातल के कारण भूमि कृषि के उपयुक्त नहीं है परन्तु खनिज पदार्थों का यहाँ प्राचुर्य है। महानदी के ऊपरी मैदान को **छत्तीसगढ़ मैदान** कहा जाता है। यह एक ऊँचा मैदान है जो तीन ओर पहाड़ी भागों से घिरा है। गोदावरी की ऊपरी घाटी में गोदावरी, बेनगंगा और वर्धा नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी के उपजाऊ मैदान हैं।

इस प्रदेश में तापक्रम वर्ष भर ऊँचे रहते हैं। ग्रीष्म में औसत तापक्रम २९° से ३५° सें० ग्रेड तक और शीतकालीन तापक्रम २१° सें० ग्रेड तक

रहते हैं। तापक्रम का अन्तर पश्चिम की ओर बढ़ता जाता है। वर्षा का औसत १०० सें० मीटर तक रहता है किन्तु उत्तरी भाग में यह १२७ सें० मीटर हो जाता है। अधिकतर वर्षा ग्रीष्मकालीन मानसूनों से, जो बंगाल की खाड़ी से आती है, होती है।
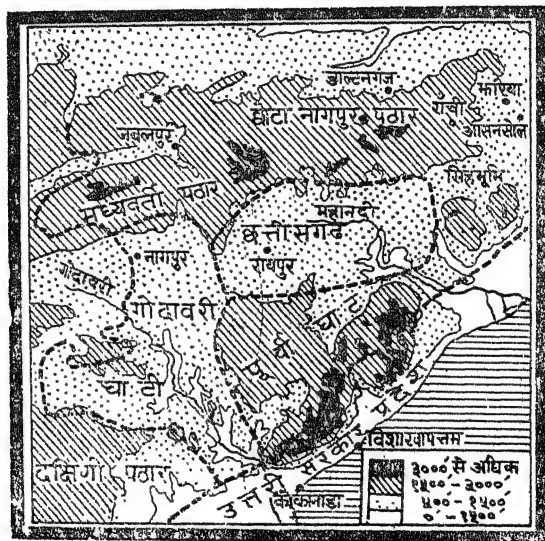
चित्र ४८. उत्तरी पूर्वी पठार

पठार के अधिकतर भाग में कमजोर और पतली मिट्टी पाई जाती है। यहाँ बलुही और लाल चीका मिट्टी भी मिलती है। यहाँ का १/३ भाग वनों से ढका है। मध्यवर्ती पहाड़ियों और पूर्वी घाट के ढालों पर वनों का आधिक्य है। इनसे महुआ, साल, सागौन, बाँस, लाख आदि प्राप्त किये जाते हैं।

मानवीय एवं आर्थिक दशायें—कृषि यहाँ का मुख्य उद्यम है। अधिकतर तालाबों के सहारे कृषि की जाती है। गोदावरी की घाटी और छत्तीसगढ़ का मैदान खेती के लिये बहुत ही उपयुक्त है। महानदी के ऊपरी भाग में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। नहरी सिंचाई शिवनाथ-महानदी दोआब में होती है। दोआब के ऊपरी भागों में तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है। कुओं से सिंचाई पान की खेती के लिये की जाती है। सम्बलपुर के निकट महानदी पर हीराकुण्ड बाँध योजना कार्यान्वित की गई है।

ऊँचे पहाड़ी भागों में अदिवासियों द्वारा मक्का, ज्वार, बाजरा तिलहन, और दालों की खेती की जाती है। मध्यवर्ती भाग मे वाण गंगा और पंच नदी की घाटियों में ज्वार, गेहूँ, कोदम, कपास और गन्ना पैदा किया जाता है। दक्षिण की ओर ज्वार बाजरा एवं मूँगफली की खेती की जाती है। पहाड़ी भाग में पशु चारण किया जाता है।

अध्याय ५

भारत की तट रेखा और द्वीप

(COASTLINE & ISLANDS OF INDIA)

सामान्य परिचय

भारत के क्षेत्रफल अथवा लम्बाई चौड़ाई के विचार से इसकी तट रेखा बहुत छोटी है। संसार के किसी भी महत्वपूर्ण देश—जो समुद्र से लगा हुआ है—के साथ इसकी तुलना करने पर उपरोक्त बात स्पष्ट प्रतीत होगी। यहाँ की तट रेखा बहुत ही कम कटी फटी है। लगभग ५,७०० कि० मी० लम्बी समुद्र तट रेखा शायद ही कहीं खाड़ी द्वारा टूटी हुई हो।[1] यहाँ की तट रेखा प्रायः सीधी और सपाट है। लम्बी तथा गहरी खाड़ियों का तट रेखा पर पूर्ण अभाव है। यही कारण है कि हमारे यहाँ की तट रेखा पर सामान्यतः अच्छे बन्दरगाहों और पोताश्रयों की कमी है। भारत के पूर्वी अथवा कारोमंडल तट के लिये तो यह बात विशेष रूप से सही है। पूर्वी तट की ओर बंगाल की खाड़ी में अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ प्रवेश करती हैं और इस दृष्टि से इस ओर अच्छे बन्दरगाहों की कमी कुछ भ्रम पैदा कर देती है परन्तु इसका कारण समझ पाना कठिन नहीं है। यही नदियाँ जो बंगाल की खाड़ी में प्रवेश करती हैं अपने मुहानों पर बालू की दीवारें खड़ी कर देती हैं जिससे धारायें कम गहरी हो जाती हैं और अन्ततोगत्वा नौका संचालन के लिये अयोग्य सिद्ध होती हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय तट पर बन्दरगाहों की कमी का एक और बहुत बड़ा कारण है। अच्छे बन्दरगाहों की कमी अफ्रीका, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और ऐसे ही अन्य प्राचीन अवशिष्ट भाग–जो कभी गोंडवाना भूमि से सम्बद्ध थे–के तटों पर भी पाई जाती है।[2] दूर-दूर की भूमियों में उनके आकारों के बीच ऐसी समानता निश्चय ही उनके प्राचीन इतिहास और क्रमिक विकास की ओर इंगित करती है। **एडवर्ड स्वैस** के अनुसार पुरा-कल्प (Paleozoic) में दक्षिण में एक काल्पनिक (Hypothetical) महाद्वीप था जो गोंडवाना भूमि के नाम से प्रसिद्ध था। इस गोंडवाना भूमि में समस्त अफ्रीका, मैडागास्कर, प्रायद्वीपीय भारत, आस्ट्रेलिया, टस्मानिया, एन्टार्टिका, फाकलैंड और सारा दक्षिणी अमेरिका-केवल पश्चिमी और उत्तरी पश्चिमी भाग को छोड़ कर सम्मिलित था।[3] यह भूबन्ध खटी-युग (Cretaceous times) के अन्त में छिन्न भिन्न हो गया। यह महाद्वीप दक्षिणी गोलार्ध की समस्त कठोर

---

1. *Morrison, C.*, Scottish Geographical Magazine, Vol XXI, 1905, p. 457.

2. *Frew, David*, A Regional Geography of The Indian Empire, p. 176.

3. Quoted from the article in the Encyclopaedia Britanica, 14th Edition, p. 514.

भूमियों (rigid masses) को एक विस्तृत भूखंड में मिलाये हुए था।[४] यह प्राचीन भूबन्ध एक लम्बे भौगर्भिक काल तक समुद्र के ऊपर शुष्क, कठोर और स्थिर भूमि बना रहा। अतएव इन सब ही भागों में अच्छे बन्दरगाहों की कमी का यही मूल कारण है। भारतीय तट की दूसरी विशेषता उसके चारों ओर द्वीपों की कमी होना है। पश्चिमी और पूर्वी तटों में कुछ दूर लक्षद्वीप, पाम्बन द्वीप, हेअर द्वीप, श्री हरी कोट द्वीप और अंडमान नोकोबार द्वीप समूह मिलते हैं।

सामान्यतः तट के समीप समुद्र कम गहरे हैं तथा पेंदी एक दम चपटी और बलुही है। इन दोनों ही कारणों से यहाँ नौका संचालन बड़ा कठिन हो जाता है। तटों के समीप समुद्र की औसत गहराई १८३ मीटर पाई जाती है। पश्चिमी तट पर पूर्वी तट की भाँति समुद्र गर्तों (Deeps) का अभाव है, किन्तु पश्चिमी तट की ओर समुद्र थोड़ी दूरी पर ही यकायक गहरा हो जाता है। भारतीय तट मूलतः **एटलान्टिक तट** के प्रकार का है। यह खाड़ियों और प्रवाल-भीतियों से रहित (reefless) है और अपनी प्रकृति में महाद्वीपीय हैं।[५] मलाबार तट की ओर अपवाद स्वरूप कुछ खाड़ियाँ और प्रवाल भीतियाँ अवश्य देखी जाती हैं।

तट रेखा पर निमग्न-तट (Continental shelf) सामान्यतः पूर्ण रूप से विकसित है। पूर्वी तट की ओर गंगा के मुहाने के पास इसका बहुत ही अच्छा विकास पाया जाता है। इसके अतिरिक्त भारतीय तटों पर तटीय मैदान भी देखे जाते हैं। परन्तु दोनों ओर तटीय मैदान समान रूप से फैले हुए नहीं हैं। पश्चिम की ओर का तटीय मैदान पूर्वी तटीय मैदान से कम चौड़ा है।

तट भूमियाँ (The Coastal Strips)

पूर्व और पश्चिम दोनों ओर तट के समानान्तर पूर्वी और पश्चिमी घाट खड़े हैं। समुद्र तट और इन घाटों के बीच तटीय मैदान पाये जाते हैं। पूर्वी तटीय मैदान कर्नाटक की अपेक्षा अपनी चौड़ाई में सब जगह एक समान नहीं है। दक्षिण की ओर यह अधिक चौड़ा है पर उत्तर की ओर सँकरा हो गया है। मद्रास के उत्तर में इसकी अधिकतम चौड़ाई ४८ कि० मी० है जबकि दक्षिण की ओर इसकी अधिकतम चौड़ाई १२६ कि० मी० तक है। यह मैदान कछारी मिट्टियों द्वारा बना हुआ है। पूर्वी घाट पहाड़ से निकल कर समस्त नदियाँ इस मैदान में बहती हैं अतः उनके निम्न बहावों में (डेल्टाओं) अच्छे मैदानों की रचना हो गई है। पश्चिमी समुद्र तट पूर्णतया बालू, मिट्टी और कंकड़ द्वारा बना हुआ है। यहाँ मिट्टी प्रायः कंकड़ों के साथ मिली हुई पाई जाती है।[६] यह तट एक दम संकड़ा और ऊबड़-खाबड़ है। पूर्वी और पश्चिमी दोनों तटीय मैदान दक्षिण के पठार के किनारों के कटाव द्वारा बने हैं। कटाव के मलबे द्वारा दोनों ओर तंग मैदानी पट्टियाँ बन गई हैं। साथ ही साथ इन तटों के किनारे धीरे-धीरे समुद्र में समाते रहे और डुबकियाँ लगाते रहे हैं। इसीलिये पूर्वी तट पर कुए खोदते समय इन्जीनियरों को कई स्थानों पर प्राचीन समुद्री मैदान (Old

---

4. *Steers, J. A.*, Unstable Earth, p. 12.

5. *S. Krishnaswamy*, "The Coasts of India", The Indian Geographical Journal, Vol. XXIX, 1954, p. 18.

6. *Frew, David.*, A Regional Geography of The Indian Empire, p. 176.

sea beaches) मिले हैं और धरातल के लगभग २७३ मीटर नीचे ओयस्टर के खोल (Oyster shells) देखे गये हैं।[७]

श्री सिडनी बुर्राड का कहना है कि सीस-रेखा (Plumb line) के भुकाव धरातल की इस बात को प्रकट करते हैं कि तटीय भूमियाँ तटों के सहारे कमजोर पेटियाँ हैं। उसकी मान्यता है कि ये पेटियाँ गंगा के मैदान की भाँति भंजन, निमज्जन और अधोभौमिक न्यूनता (Subterranean deficiency) की पेटियाँ हैं। धरातल की वर्तमान रूप-रेखा इस बात को प्रकट करती है कि प्राचीन समय में पश्चिम की ओर महाद्वीप के बहुत बड़े भाग का निमज्जन हुआ है। उपरोक्त तथ्य **श्री स्लेटर** (Slater) के इस विश्वास का प्रतिपादन करता है कि भारत मैडेगास्कर द्वारा दक्षिणी अफीका से जुड़ा हुआ था। दक्षिण के पठार के खड़े ढाल (escarpment) के सम्बन्ध में **फरमर** (Fermor) का हाल ही का अध्ययन भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

भारत की पश्चिमी और पूर्वी तट रेखा (Western & Eastern Coastline of India)

यह तट रेखा खंभात की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक फैली हुई है। उत्तरी भाग में यह कोंकन तट और दक्षिण में मलाबार तट के नाम से प्रसिद्ध है। ओमान की खाड़ी से खंभात की खाड़ी तक की तट भूमि यद्यपि रचना की दृष्टि से समान है किन्तु चट्टानों की दृष्टि से भिन्न है।

साधारणतः ओमान की खाड़ी से कराँची तक और भारत में बम्बई तक समुद्र का निमग्न तट प्रवल्याओं (Coral-reefs) से रहित है। यह ८० से १२९ कि० मी० तथा १६१ कि० मी० चौड़ा है और अपनी बाहरी सीमा पर ९० मीटर गहरा है। तट के सहारे कुछ प्रवल्यायें अवश्य पाई जाती हैं। बम्बई के दक्षिण में निमग्न तट (Shelf) ८० से ४८ कि० मी० तक सँकरा हो जाता है। यहाँ पर भी प्रवल्याओं का अभाव पाया जाता है परन्तु कहीं-कहीं बीच में खाड़ियाँ आ गई हैं।[८]

चट्टानों की दृष्टि से मकरान तट बम्बई तट से उतना ही भिन्न है जितना कि बम्बई तट दक्षिण के मलाबार तट से है। मकरान तट पर सर्वत्र ही प्रस्तरी-भूत चट्टानें फैली हुई पाई जाती हैं। यहाँ मुख्यतः भद्दी हरी शेल चट्टानें और हल्का रंगीन बलुही पत्थर ही अधिक पाया जाता है। चीकाप्रधान चट्टानें टूटने वाली चिकनी मिट्टी (friable clay) के रूप में मिलती हैं जो कि समुद्री पंक (marine ooze) से मिलती जुलती होती हैं।[९] शेल तथा चीका (Clays) चट्टानें समुद्र तट के समानान्तर कई स्थानों पर प्रतिनति के रूप में उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं।

पश्चिमी तट पर हिन्द महासागर के किनारे नर्मदा के उत्तर में चपटी निम्न भूमियों और बम्बई की तंग पट्टी में स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक विभेद पाया जाता है। नर्मदा के उत्तर में समुद्र में भूमि का विस्तार एक साधारण बात है कि किन्तु

---

7. *Morrison, C.*, New Geography of the Indian Empire and Ceylon, p. 27.

8. The Imperial Gazetteer of India, Vol I., 1908, p. 37.

9. *Fermer, L. L.* Quoted by *Davis W. M.* in The Coral Reef Problem, 1928, p. 53.

ताप्ती के दक्षिण में बम्बई तक तट के समीप भूमि का समुद्र में कोई वि गोचर नहीं होता।[10] नर्मदा के उत्तर में समुद्र तट तलछट द्वारा बना अधिक पुराने हैं और न अच्छी तरह जम ही पाये हैं।

महाराष्ट्र का तट पैठिक-लावा (Basic lava) द्वारा बना हुआ है। मेडलीकोट और ब्लैंफोर्ड के अनुसार खटी-युग में अकेले प्राय:द्वीपीय भारत से भी बहुत बड़े स्थल भाग में लावा की कई परतें फैल गई थीं। लावा से आच्छादित प्रायद्वीपीय भाग जो कि अब बहुत ऊँचा उठ गया है पश्चिम की ओर पश्चिमी घाट तक सीमित है जो अरब सागर के किनारे कोंकन की निम्न भूमि की ओर ढालू हैं। इन भूगर्भ-वेत्ताओं ने कहा है कि "पश्चिमी घाट कोंकन से एक दीवार के समान ऊंचे उठ गये हैं और इनकी ऊँचाई ६१० से १,२२० मीटर के बीच है। कुछ ही स्थानों पर यह कट गये हैं अन्यथा ये समुद्री-कगार (Sea Cliff) के अनुरूप ही दिखाई पड़ते हैं।"[11] इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक समय में अरब सागर की पेंदी जो नीचे बैठ गई है (recent down faulting) उसका प्रतिरूप हाल ही में दक्षिण के पठार के ऊंचे उठ जाने में मिलता है। यदि उपरोक्त मत सही है तो बुर्राड का यह अनुमान कि पश्चिमी घाट युवावस्था (Younger age) के हैं स्वीकार किया जा सकता है। पश्चिमी घाट दक्षिणी पठार के लावा के जमकर ठोस हो जाने और चट्टानों में परिवर्तित हो जाने के बाद ही ऊपर उठे हैं। यह घटना तृतीय-कल्प युग की है।[12]

मलाबार तट (The Malabar Coast)—मलाबार तट ऊपर वर्णित महाराष्ट्र तट के विपरीत प्राचीन रूपान्तरित चट्टानों द्वारा बना हुआ है। यह तट बहुत ही क्षत-विक्षित (dissected) है। पश्चिमी घाट पहाड़ों से निकलने वाली अनेक छोटी-छोटी और वेगपूर्ण नदियों के अथक परिश्रम से यहाँ पर कई कांप के मैदान बन गये हैं। तट के ऊपर लहरों का भी बराबर आक्रमण होता रहता है विशेषकर द० प० मानसून के समय जिससे समस्त तट भूमि के ऊपर अनेक बालुका-स्तूप बन गये हैं।

इस तट का भौगर्भिक इतिहास ठीक महाराष्ट्र तट के अनुसार ही है। दोनों में केवल यही भेद है कि यहाँ खाड़ियों, झीलों और लैगूनों का प्राबल्य है जबकि महाराष्ट्र तट पर इनका अभाव पाया जाता है। साथ ही साथ यहाँ ज्वारीय नदियों के मुहानों पर दलदल भी बहुतायात से पाये जाते हैं।

भारत के दक्षिणी सिरे पर और वहाँ से उत्तर पूर्व की ओर लंका तक बड़ा विकसित निमग्न तट है। यहाँ समुद्र की औसत गहराई ९२ मीटर है और निमग्न तट पर द्वीपों का पूर्ण अभाव है। लंका तट के अतिरिक्त तट के समीप कहीं भी प्रवल्यायें नहीं मिलतीं। लंका के दक्षिण पूर्व की ओर तट से २४ से ३२ कि० मी० दूर डूबी हुई प्रवल्यायें दिखाई पड़ती हैं। सेतु-बन्ध लहरों और धाराओं के प्रभाव से बनी भीति हैं जो लंका को मुख्य भूमि से जोड़ती है।

---

10 *Davis, W. M.*, Ibid, p. 227.

11. *Medlicott & Blanford*, Manual of Geology of India, Vol. I, p. 318.

12. *Burrard, S. G.*, Op. Cit., pp. XCI-XCII.

मद्रास तट (The Madras Coast)—मद्रास तट प्रवल्याओं रहित उन्मग्न महाद्वीपीय तट का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ तट पर कुछ तो पूर्व समुद्र की पेंदी का बिना भली प्रकार जमा हुआ (Unconsolidated) मलबा बिछा हुआ है परन्तु अधिकतर मलबा पूर्ण विकसित समुद्री कगारों की घिसावट और छीलन से ही प्राप्त हुआ है। इन कगारों का क्षय लम्बे समय से होता रहा है अतः अब ये कगारें तट से कई मील भीतर पाई जाती हैं।[13]

यहाँ कगारों की रचना उस समय हुई मालूम पड़ती है जबकि तट प्रवल्याओं से स्वतन्त्र था। तट पर प्रवल्याओं के अभाव के कारण रेतीली दीवारों (Sand Reefs) की लम्बी श्रृंखला स्थापित हो गई है पर बीच-बीच में डेल्टे बने हुए हैं।[14]

मद्रास तट का सम्भवतः दूसरी बार उन्मज्जन हुआ है। फलतः वहाँ दूसरा तटीय मैदान बन गया और इसी कारण यह प्रवल्याओं से अछूता है।[15] उत्तर की ओर बंगाल की खाड़ी के उत्तरी सिरे पर यह तट बहुत अधिक डेल्टाओं द्वारा घिरा हुआ है। यहाँ भयंकर लहरों के आक्रमण और संभावित निमज्जन के विपरीत भी नदियाँ डेल्टाओं का निर्माण करने में सफल हुई हैं। डेल्टाओं का विस्तार समुद्र में चौड़े निमग्न तट के ऊपर तक पाया जाता है। इस तट पर भी प्रवल्याओं का अभाव है। इस रूप में यह न्यूगायना के मध्य दक्षिणी तट के अनुरूप है जहाँ प्लाई नदी के डेल्टे ने विस्तृत चबूतरे का निर्माण किया है।[16]

भारतीय तट की खाड़ियाँ, झीलें और जलडमरूमध्य

भारतीय तट की महत्वपूर्ण खाड़ियाँ और झीलें पश्चिमी तट पर पाई जाती हैं, विशेषतः मलाबार तट पर। पूर्वी तट की ओर खाड़ियों के नाम पर केवल पुलीकट, कोलार और चिल्का झीलें ही पाई जाती हैं जो वस्तुतः आंतरिक झीलें हैं और सँकरे जल मार्गों द्वारा समुद्र से जुड़ी हुई हैं।

भारत के पश्चिमी तट पर हमें **कच्छ की खाड़ी, कच्छ का रन, खंभात की खाड़ी** तथा कोचीन व मलाबार के **पृष्ठ-जल** (Back-waters) देखने को मिलते हैं।[17] इनमें कच्छ का रन सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्रफल लगभग १४,४८१ कि०मी० है। इसका कुछ भाग सदा ही समुद्र जल में डूबा रहता है किन्तु यह बहुत छिछला है। कोचीन और मलाबार तट के पृष्ठ-जल वस्तुतः एक दूसरे से जुड़े हुए अनूप हैं जो एक ओर छोटी-छोटी नदियों को मिलाते हैं और दूसरी ओर समुद्र से स्वयं जुड़े हुए हैं।[18] भारत के दक्षिण में मनार की खाड़ी और पाक जलडमरूमध्य स्थित है जो लंका द्वीप को भारत की मुख्य भूमि से जोड़ते हैं।

---

13. *Davis, W. M.*, Op. Cit., p. 227.
14. *Davis, W. M.*, Op. Cit., p. 227.
15. *Davis, W. M.,* Op. Cit., p. 275.
16. *Davis. W. M.,* Op. Cit., p. 228.
17. *Morrison,* Op. Cit., p. 29.
18. *Morrison,* Ibid.

समुद्र तल का परिवर्तन (Changes in Sea-level)

यद्यपि साधारणतः भारत के पूर्वी तट पर हाल ही के उन्मज्जन के चिह्न पाये जाते हैं वहाँ पर स्थित कगारों में समुद्री गुफाओं, समुद्री अपक्षरण के चिह्नों से उन्मज्जन स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु कुछ स्थानों पर जैसे पांडीचेरी में ऐसे चिह्न भी देखे जाते हैं जो हाल ही में हुई भूमि के निमज्जन की ओर इशारा करते हैं।

समुद्र तल में विवर्तन पश्चिमी तट पर अधिक जटिल रहा है। सौराष्ट्र का तट जहाँ एक ओर भूमि के उन्मज्जन को प्रकट करता है विशेषकर कच्छ के रन में— वहाँ महाराष्ट्र और मलाबार तट निश्चय ही निमज्जन के द्योतक हैं।

तट रेखा का उन्मज्जन और निमज्जन (Emergence & Submergence of Caostline)

भारतीय समुद्र तटीय भागों में पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों द्वारा कई स्थानों पर भूमि ऊँची नीची हो गई है। भूमि के ऊँचे होने को उन्मज्जन (upheaval or emergence) और नीचे धँसने को निमज्जन (submergence) कहते हैं। पश्चिमी तट पर कच्छ का रन ऐतिहासिक युग में सागर का एक छिछला भाग था किन्तु अब इस पर मिट्टी आदि जम जाने से शुष्क भूमि समुद्र के ऊपर उठ आई है जो प्रायः नमकीन और दलदली है। सौराष्ट्र के तट पर **चोरिला पर्वत** के २६० मीटर ऊँचे शिखर पर **कांगुकश्म** (Miliolite) नामक चूने का पत्थर पाया जाता है जो कंगुक नामक (Miliola) समुद्री जीव के अवशेषों से बना है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में यह भाग समुद्र के गर्भ में था किन्तु अब उससे ऊँचा उठ गया है। इसी प्रकार मकरान तट पर समुद्र तल से ३० मीटर ऊँचाई पर तथा भारत के पूर्वी तट पर (विशेषतः उड़ीसा, नैलोर, मद्रास, मदुराई और तिरूनलवैली भागों में) १५ से ३० मीटर की ऊँचाई पर समुद्री जीवों के खोल (shells) प्राप्त हुए हैं। यह तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि ये भाग समुद्र से ३० से ६० मीटर ऊँचे अवश्य उठे हैं।

भारतीय तटों का कई स्थानों पर निमज्जन भी हुआ है। उदाहरणार्थ सन् १८७८ ई० में बम्बई के समीप (प्रिन्स डाक्स की खुदाई करते समय) ऐसे कई वृक्ष पाये गये जो उच्च-जल-चिह्न (High water mark) से १६ मीटर नीचे धंसे हुए थे। इसी प्रकार १६१२ में एलैक्जैन्ड्रिया डॉक्स की खुदाई करते समय ऐसे वृक्ष प्राप्त हुए जो उच्च जल चिह्न से १२ मीटर नीचे थे। दोनों ही स्थानों पर पाये गये सैकड़ों वृक्ष अपनी मूल-स्थिति में ही खड़े थे और कुछ झुकी हुई दशा में भी पाये गये थे। इन दोनों ही उदाहरणों से बम्बई के निकटवर्ती तट का नीचे धँसना सिद्ध होता है। इसी प्रकार के कुछ प्रमाण तिरूनलवैली तट के निकट पांडुचेरी में भूमि तल के ७२ मीटर नीचे से निकाली गई लिग्नाइट की मोटी तह के मिलने से प्राप्त हुए हैं। ये वृक्ष यहाँ भूमि के नीचे दबे पाये गये हैं।

तटीय भागों में भूमि का केवल उन्मज्जन और निमज्जन ही नहीं हुआ है वरन् यहाँ कई क्षेत्रों में तट रेखा बहुत दूर तक समुद्र में भी बढ़ गई है। यह बात दक्षिणी प्रायद्वीप की कुछ नदियों के डेल्टों से सिद्ध होती है। गोदावरी के डेल्टा पर कलिंगपट्टनम, कावेरी के डेल्टा पर कावेरीपट्टनम, तिरूनलवैली तट पर कोरकाई आदि १-२ वर्ष पूर्व बहुत ही अच्छे बन्दरगाह थे किन्तु अब डेल्टा की भूमि समुद्र की ओर बढ़

जाने से इनका महत्व कुछ घट गया है। इसी प्रकार कच्छ का रन भी अब कम महत्वपूर्ण हो गया है।

कई क्षेत्रों में समुद्र भी भूमि की ओर बढ़ गया है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण तंजौर तट पर स्थित ट्रैनक्वीबार में देखा जा सकता है जहाँ एक पैगोडा के अवशेष एक शताब्दी पूर्व निम्न जल-चिन्ह के ऊपर पाये गये थे। इसी प्रकार सैन थॉम टाइन (जो अब मद्रास का ही एक भाग है) पहले समुद्र तट से कुछ भीतर की ओर स्थित था किन्तु अब यह समुद्र तट पर ही स्थित है। इस समय भी मद्रास के पूर्वी भागों पर समुद्र का प्रहार हो रहा है। इससे बचाव हेतु दीवारें बनाई जा रही हैं।

तट रेखा का प्रभाव

तट रेखा का प्रभाव देश के व्यापार और वहाँ के मनुष्य के चरित्र पर पड़ता है। वस्तुतः भारत जैसे देश में—जहाँ तट रेखा बहुत ही कम कटी-फटी और छिछली तथा बालुका-मंडित है और बड़ी उत्ताल तरंगें नृत्य किया करती हैं—न तो उत्तम बन्दरगाह ही पाये जाते हैं और न ही पोताश्रयों की अधिकता है। अतएव, भारत के विदेशी व्यापार को भी इससे बड़ी हानि पहुँचती है क्योंकि जहाँ समुद्र तट के कटे फटे होने से जापान और ब्रिटेन जैसे देशों का कोई भी भाग समुद्र तट से ३२० कि० मी० से अधिक दूर नहीं है वहाँ भारत के बन्दरगाह भीतरी भागों से बहुत दूर पड़ जाते हैं अतः निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ बन्दरगाहों तक लाने में अधिक व्यय पड़ जाता है। यही बात आयातित माल के लिये भी लागू होती है।

भारत में गुजरात और मलाबार तट के कुछ सीमा तक कटे-फटे होने के कारण विदेशों से व्यापार करने की सुविधा प्राप्त है। इन तटीय भागों के निवासी भी प्रगतिशील, सभ्य, आराम-तलब और शांति प्रिय हैं किन्तु वह साम्प्रदायिक भावनाओं वाले न होकर विश्व बंधुत्व में विश्वास करने वाले हैं क्योंकि उनका सम्पर्क समुद्र द्वारा विदेशों से होता है। समुद्र के निकट होने से वे निर्भीक, उत्साही और अच्छे व्यापारी हैं किन्तु इसके विपरीत कोंकन तट के सपाट होने से निवासी भी यद्यपि शांतिप्रिय, उत्साही और तेज-बुद्धि वाले हैं किन्तु ये अच्छे मल्लाह और नाविक भी हैं।[१९] किन्तु मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय अच्छे मल्लाह नहीं हैं।

भारत के प्रमुख द्वीप आदि

भारत के पश्चिमी और पूर्वी तटों से कुछ दूर कई एक द्वीप हैं जिनमें से मुख्य (i) लक्ष द्वीप; (ii) पाम्बन द्वीप; (iii) हेअर द्वीप; (iv) श्री हरीकोटा द्वीप, और (v) अंडमान नीकोबार द्वीप हैं।

(i) **लक्ष द्वीप** (Laccadive) का शाब्दिक अर्थ एक लाख द्वीप है। भारत के पश्चिमी तट से लगभग २०० से ३२० कि० मी० की दूरी पर १०° से १२° उत्तरी अक्षांसों और ७१°४१′ तथा ७४° पूर्वी देशान्तरों के बीच ये द्वीप समूह स्थित हैं। अनुमान किया जाता है कि ये अरावली पर्वत माला के ही अवशेष हैं जो प्राचीन काल में हिमालय के पश्चिमी भाग से लगा कर यहाँ तक फैली थी। यह एक डूबे हुए पर्वत के अंश हैं जिनका जन्म प्रवालियों (Coral reefs) के पूर्वी भाग से

19. *H. L. Kaji*, Principles of General Geography, 145.

हुआ है। ये मूंगे के द्वीप हैं जिन पर नारियल के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं। इन द्वीपों पर अनाज, दालें, केले और सब्जियाँ आदि पैदा की जाती हैं।

माल द्वीप (Maldive)—अधिकतर ज्वालामुखी द्वीप माने जाते हैं इन पर भी थोड़ी बहुत खेती की जाती है।

अमीनीदीवी, मिनीकाय द्वीप—ये मलाबार तट से लगभग ६० कि० मी० दूर अरब सागर में हैं जो या तो समुद्र की देन हैं अथवा मूंगे के द्वीपों के बने हैं। इन पर नारियल अधिक पैदा किया जाता है।

(iii) **पाम्बन द्वीप** (Pamban Islands)—इन द्वीपों की आकृति सर्पाकार सी है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि किसी समय ये द्वीप लंका से जुड़े हुए थे अब इनके बीच में आदम का पुल (Adam's Bridge) और मनार की खाड़ी है। इन द्वीपों का विस्तार प्रायः १८ कि० मी० की लम्बाई और १० कि० मी० की चौड़ाई है। पूर्वी भागों की ओर बालू मिट्टी की अधिकता पाई जाती है किन्तु उत्तरी तट के निकट मूंगे की दीवार है।

(iv) **हेअर द्वीप** (Hare Islands)—ये द्वीप तूतीकोरिन से प्रायः ४ कि० मी० दूर हैं तथा पूर्णतः मूंगे के बने हैं। इन पर खरहे अधिक मिलते हैं।

(v) **श्री हरीकोटा द्वीप** (Shri Harikota Islands)—ये द्वीप पुलीकट झील के पश्चिमी तट पर हैं और प्रायः ६० कि०मी० की लम्बाई और १३ कि०मी० की चौड़ाई में फैले हैं। ये द्वीप समुद्री लहरों द्वारा जमाव होने से बने हैं। इन पर वन क्षेत्र अधिक मिलते हैं।

(vi) **अंडमान नीकोबार द्वीप** (Andaman Nicobar Islands)—ये दोनों ही द्वीप बंगाल की खाड़ी में कलकत्ता में १,२४८ कि० मी० दूर हैं। ये द्वीप समूह उस निमग्न पर्वत श्रेणी की बनी हुई चोटियां हैं जो किसी समय अराकान योमा को सुमात्रा द्वीप की मध्यवर्ती पर्वत श्रेणी से मिलाती थीं। अंडमान द्वीप में सब मिला कर लगभग २०५ द्वीप हैं जिनमें उत्तरी अंडमान, मध्य अंडमान, दक्षिणी अंडमान, बारातंग और रुथलैंड बड़े द्वीप हैं और शेष सभी छोटे हैं। यह द्वीप समूह ३५२ कि० मी० लम्बे और ५६ कि० मी० चौड़े हैं। ये एक दूसरे से जल-संयोजकों द्वारा अलग हैं। इनका किनारा काफी कटा-फटा है। इनके आसपास मूँगे के कीड़ों की अधिकता है। समुद्र के निकट सुन्दरी वृक्ष बहुत पाये जाते हैं।

नीकोबार द्वीप अंडमान द्वीप से १२८ कि० मी० दक्षिण की तरफ हैं। ये प्रायः जन-विहीन हैं और बहुत ही छोटे है।

(viii) चिल्का झील और बंगाल की खाड़ी के बीच **पारिकुद द्वीप** मिलते हैं जो प्रायः ३० किलोमीटर लम्बे हैं।

गंगा के मुहाने के निकट भी अनेक छोटे-छोटे दलदली वनों से ढके द्वीप मिलते हैं।

अध्याय ६

भूकम्प और ज्वालामुखी क्षेत्र

(EARTHQUAKE & VOLCANIC ZONES)

भूकम्प

भारत के प्राकृतिक विभागों और भूकम्प-क्षेत्रों में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। तीन प्राकृतिक भागों के अनुरूप ही भारत में निम्न तीन भूकम्प-क्षेत्र पाये जाते हैं।

(१) **हिमालय प्रदेश**—यह उत्तरी भूकम्प क्षेत्र है जो पूर्व-पश्चिम दिशा में फैला है। इसमें हिमालय पर्वत तथा उसके समीपवर्ती भाग सम्मिलित हैं। ये भाग रवेदार
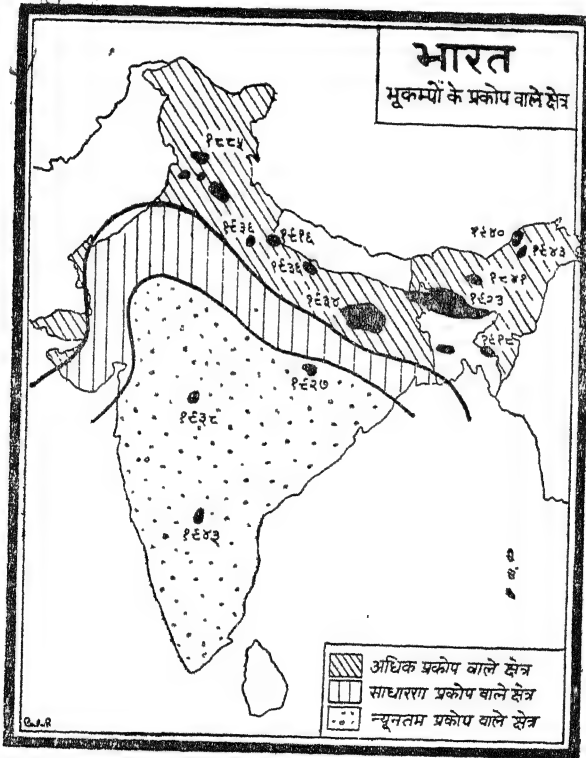
चित्र ४९. भूकम्पों के प्रकोप वाले क्षेत्र

और प्रस्तरीभूत चट्टानों से निर्मित हैं। यह क्षेत्र सबसे अधिक अस्थिर (Unstable) हैं क्योंकि अभी तक हिमालय पर्वत पूर्णतः संतुलन प्राप्त नहीं कर पाये हैं और वे अभी

भी ऊँचे उठ रहे हैं। अतः इस भाग में ही भारत के सबसे विध्वंसकारी भूकम्प उत्पन्न हुए हैं। इसी क्षेत्र की एक शाखा ब्रह्मा की पहाड़ियों में चली गई है। यह क्षेत्र **सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र** (Zone of Maximum Intensity) कहा जाता है। इस क्षेत्र के प्रमुख भूकम्प ये हैं : १८२८ का काश्मीर का भूकम्प; १८८४ का काबुल और पेशावर का भूकम्प; १८८५ का श्रीनगर का भूकम्प; १९०५ का कांगड़ा का भूकम्प; १८६६ और १८९७ के आसाम के भूकम्प; १९३५ का क्वेटा और १९५० का आसाम का भूकम्प। इन भूकम्पों से अपार-जनधन की हानि हुई।

(२) **गंगा-सिंधु का प्रदेश**—यह प्रदेश प्रायद्वीप की कठोर भूमि के सामने उस अग्रिम समुद्र का रूप है जिससे हिमालय की उत्पत्ति हुई है। यह क्षेत्र उपरोक्त अस्थिर भू-भाग के सन्निकट है किंतु इस क्षेत्र में भूकम्पों का प्रभाव इतना विनाशकारी नहीं हैं फिर भी यदा-कदा इस क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से भूकम्प उत्पन्न होकर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर अकथनीय जन-धन की हानि कर देते हैं। १८०३ का दिल्ली का भूकम्प; सन् १९३४ का बिहार; सन् १९३५ का क्वेटा; सन् १९५० और १९६० का आसाम का भूकम्प तथा १९५६ का पश्चिम उत्तर प्रदेश का भूकम्प इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस क्षेत्र को भूकम्पों से **सामान्यतः प्रभावित क्षेत्र** (Zone of Comparative Intensity) कहा जाता है।

(३) **प्रायद्वीपीय क्षेत्र**—भूकम्प का तीसरा क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप है जो बड़ा स्थिर भू-भाग है। यह अतीतकाल से होने वाली भू-क्रांतियों में भी अविचल रहा है। अतः इस क्षेत्र में भूकम्प का अनुभव नहीं के बराबर होता है। (सन् १६१८ का बम्बई का भूकम्प; १८१९ का पूना और अहमदाबाद का भूकम्प; १८४३ का दक्षिण का भूकम्प और १९५६ का कच्छ का भूकम्प इसके अपवाद हैं)। अतः इस क्षेत्र को **न्यूनतम प्रभावित क्षेत्र** (Zone of Minimum Intensity) कहा जाता है।

ज्यों-ज्यों उत्तर से दक्षिणी भारत की ओर बढ़ते हैं भूकम्प-क्षेत्रों की तुलनात्मक प्रभावशालीनता कम होती जाती है। भारत में कुछ प्रमुख भूकम्पों का प्रादेशिक वितरण निम्न प्रकार है[1]:—

(१) उत्तरी-पूर्वी भारत (नेपाल-सिक्किम तथा तिब्बत सहित)—३१

(२) उत्तरी-पश्चिमी भारत वर्तमान पाकिस्तान के बलूचिस्तान, चित्राल तथा भारत के काश्मीर सहित)—२१

(३) प्रायद्वीपीय भारत—२।

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि भारत के अधिकांश गहरे भूकम्पों का उत्पति क्षेत्र गंगा-सिंधु के मैदान के निकटवर्ती अस्थिर भू-भाग ही हैं।[2] भारतीय वैज्ञानिकों के अनुसार देश के उत्तर में ३,५०० कि० मी० लम्बी और ५०० कि० मी० चौड़ी पट्टी में अधिकांश एवं सबसे हानिकारक भूकम्प अनुभव किये जाते हैं। बड़े भूकम्प का औसत प्रति ९ वर्ष में १ है। इनके अतिरिक्त छोटे भूकम्प तो कई आते हैं,

1. *H. L. Chibber,* Physical Basis of Geography of India, Vol. I, 1945, p. 88.

2. *C. S. Fox,* Physical Geography for Indian Students, pp. 237-239.

जिनमें से कुछ का तो आलेखन ही नहीं किया जाता। इस समय भूकम्प मापक केन्द्रों की संख्या केवल १२ है।[3]

भारत में आने वाले प्रमुख भूकम्प ये हैं:—

प्रसिद्ध भूकम्प	प्रभावित क्षेत्रफल	हानि
दिल्ली (सन् १७२०)	दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्र, किला आदि	लाल किले की दीवार तथा कई मकान और फतहपुरी मस्जिद को हानि हुई।
कलकत्ता (१७३७ ई०)	कलकत्ता के निकट	अपार जन और जहाजों को हानि।
कलकत्ता (१७६२ ई०)	बंगाल और ब्रह्मा	चिटगाँव के निकट ६० वर्ग मील भूमि जल मग्न हो गई तथा कई स्थानों पर जल और बालू भूगर्भ से निकलने लगे।
उत्तर प्रदेश (१८०३ ई०)	उत्तर प्रदेश के दिल्ली, मथुरा, गढ़वाल, कुमायूं जिले।	इसका प्रभाव कलकत्ता तक अनुभव हुआ।
कच्छ (१८१९ ई०)	प्राय: सम्पूर्ण भारत, सूरत, पूना, अहमदाबाद, भड़ौंच आदि बुरी तरह प्रभावित हुए।	अकेले भुज में २,००० व्यक्ति मर गये। कच्छ के रन पर बाढ़ आ गई तथा उ० प० भाग में ८० मील ऊँचे भू-भाग ने सिंधु को रोक लिया।
दक्कन (१८४३ ई०)	दकन का पठार मुख्यत: शोलापुर, मकतल, बलारी, कर्नूल, बेलगाम और सिंगरूरगढ़ नगरों को अपार क्षति पहुँची।	—
आसाम (कच्छार) (१८६९ ई०)	२,५०,००० वर्गमील भूमि पर।	भूमि में दरारें पड़कर बालू तथा जल बहने लगा।
काश्मीर (१८८५ ई०)	१,१०,००० वर्ग मील क्षेत्र	३,००० व्यक्ति मरे।
बंगाल (१८८५ ई०)	२,३०,००० वर्ग मील क्षेत्र	इसका प्रभाव आसाम, छोटा नागपुर, सिक्किम आदि तक हुआ।
आसाम (१८९७ ई०)	१७,५०,००० वर्ग मील क्षेत्र। शिलांग, गोलपाड़ा, नवगाँव, सिलहट तथा कलकत्ता को अकथ हानि।	संभवत: ऐतिहासिक युग का सबसे बड़ा भूकम्प १,६०० व्यक्ति मरे।

3. *Hindustan Times*, 22nd March, 1961.

प्रसिद्ध भूकम्प	प्रभावित क्षेत्रफल	हानि
कांगड़ा (१९०५ ई०)	१६,२५,००० वर्ग मील क्षेत्र; कांगड़ा, धर्मशाला, तथा निकटवर्ती क्षेत्र पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट हो गये।	२०,००० मृत्यु
आसाम (धुब्री) (१९३०ई०)	३,५०,००० वर्ग मील क्षेत्र	—
उत्तर बिहार (१९३४ ई०)	१९,००,००० वर्ग मील सीतामढ़ी, मधुबानी, मुंघेर पटना, दार्जिलिग, मुज्जफ्फ-रपुर आदि को क्षति। इसका प्रभाव दार्जिलिंग तथा नैपाल तक हुआ।	भारतीय भूकम्पों में सबसे अधिक विध्वंसकारी। १०,००० से भी अधिक व्यक्तियों की मृत्यु।
क्वेटा (१९३५ ई०)	१,००,००० वर्ग मील क्षेत्र	२५,००० मृत्यु।

भारत में इस शताब्दी में जो भयंकर भूकम्प आए वे इस प्रकार हैं:—

(१) १५ अगस्त १९५० को आसाम में भारी भूकम्प आया। इससे आसाम के विस्तृत क्षेत्र को अपार हानि पहुँची। दिहांग नदी के प्रवाह मार्ग में एक चट्टान उभर आने से उसका प्रवाह रुक गया और भयंकर बाढ़ आ गई। इससे अपार धन-जन की हानि हुई।

(२) अगस्त सन् १९५६ में कच्छ प्रदेश में अंजर नामक नगर के निकट जो भूकम्प आया उससे सारा नगर ध्वस्तप्राय हो गया। कई भवन नष्ट हो गये और हजारों व्यक्तियों की जानें गई।

(३) ९ सितम्बर, १९५६ को बुलन्दशहर में जो भूकम्प आया उसका प्रभाव उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भागों में बुलंदशहर, मेरठ तथा मुज्जफ्फरनगर जिलों में तथा दिल्ली राज्य में पड़ा। बुलंदशहर की ७५ प्रतिशत इमारतें गिर गईं।

भारतीय भूकम्पों का मुख्य कारण पृथ्वी के कमजोर चिप्पड़ में आंतरिक हलचलों का होना है जिससे निकटवर्ती क्षेत्रों में न केवल दरारें ही पड़ जाती हैं वरन् नई भूमि का भी सृजन हो जाता है। सूखी भूमि पर पानी के फव्वारे फूट पड़ते हैं तथा गहरे गड्ढे बन जाते हैं तथा असंख्य धन-जन की हानि होती है।

ज्वालामुखी (Volcanoes)

यद्यपि आधुनिक काल में जागृत ज्वालामुखी भारत में नहीं पाये जाते किंतु भारतीय भूगर्भ विज्ञान के कई कालों में यहाँ ज्वालामुखियों के उद्गार होते रहे हैं। सबसे पहले भारत में दक्षिणी पठार पर **आर्कियन युग** के धारवाड़-काल में ज्वालामुखी का उद्गार १ अरब वर्ष पूर्व हुआ। इसका मुख्य केन्द्र बिहार में **डालमा श्रेणी** था। दूसरा उद्गार **कडुप्पा-काल** में मद्रास के कडप्पा जिले में तथा मध्यप्रदेश में बीजावर और ग्वालियर में हुआ। उपरोक्त दोनों ही उद्गारों के फलस्वरूप भूगर्भ से विस्तृत लावा की मात्रा निकलकर समीपीय क्षेत्रों में फैल गई। ग्वालियर में बेला और चौरा के निकट गहरे भूरे रंग का बैसाल्ट लावा जमा पाया जाता है।

चौरा के निकट इसकी मोटाई ८ मीटर और नयागांव के निकट लावा की मोटाई २१ मीटर तक पाई गई है। यह यहाँ ४ कि० मी० क्षेत्र में जमा पाया गया है। मध्य प्रदेश के लावा क्षेत्र लगभग ५ करोड़ वर्ष पुराने हैं।

तीसरा उद्गार **विध्यन काल** में लावा का बड़ी मात्रा में हुआ। इस उद्गार का मुख्य केन्द्र जोधपुर के निकट मालानी था। यहाँ लावा का जमाव लगभग ४२,००० वर्ग कि० मी० में हुआ है। यह क्षेत्र पूर्व से पश्चिम को २२५ कि० मी० और उत्तर से दक्षिण को १९३ कि० मी० विस्तृत है। यहाँ लावा का रंग भूरा है। इसमें बड़े-बड़े दाने हैं। यह जमाव भी काफी गहरा माना जाता है।

प्रारंभिक जीव-युग में ज्वालामुखी के उद्गार अधिकतर कुमायूं हिमालय में हुए जिनके मुख्य केन्द्र नैनीताल जिले के भुवाली-भीमताल क्षेत्र थे। इसके अतिरिक्त गढ़वाल जिले के लीमा क्षेत्र तथा उत्तरी शिमला की सतलज की घाटी में भी ज्वालामुखी के उद्गार इसी युग में हुए। **ऊपरी कार्बन-युग** में काश्मीर में ज्वालामुखी के उद्गार विशेषतः पीर पंजाल श्रेणी, लद्दाख आदि स्थानों में हुए। आरंभ में उद्गार बड़ी तीव्र गति से हुए किन्तु शनैः शनैः इनकी तीव्रता कम हो गई। यह उद्गार ट्रियासिक-युग तक समाप्त हो गये।

इसके बाद **मध्यजीव-युग** में लगभग १½ करोड़ वर्ष पूर्व ज्वालामुखी के उद्गार राजमहल की पहाड़ियों में हुआ। यहाँ लावा के जमाव ३,२२० मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं। इसी समय आसाम में भी अभोर पहाड़ियों में लावा के उद्गार हुए। इसके चिन्ह अब भी दिहांग नदी की घाटी में मिलते हैं। यहाँ लावा का रंग गहरा हरा तथा गहरा भूरा है।

मध्यजीव-युग के अंत में अथवा **तृतीयक युग** के आरंभ में एक बार फिर लावा के भीषण उद्गार हुए विशेषतः दक्षिण के पठार पर—पश्चिमी और मध्यवर्ती भारत में। इस उद्गार से निकले लावा के जमाव की गहराई २१३० मीटर से लगाकर ३०४० मीटर तक मानी जाती है। इसका विस्तार दकन के पठार क रूप में लगभग ५ लाख वर्ग कि० मी० क्षेत्र में पाया जाता है।[4] यह लावा बहुत अधिक उपजाऊ होने के कारण शताब्दियों से काली मिट्टी में कपास उत्पादन करने के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसके अतिरिक्त लावा द्वारा निर्मित चट्टानें साधारणतः कठोर होती हैं अतः ये भवन निर्माण के लिए बड़ी उपयुक्त हैं।

वर्तमान युग में जाग्रत ज्वालामुखी का भारत में अभाव है। सबसे नवीन उदाहरण बैरेन द्वीप का दिया जा सकता है जो बंगाल की खाड़ी में स्थित हैं। यहाँ अंतिम बार उद्गार सन् १८०३ में हुआ। इसमें से १०-१० मिनट के अन्तर पर काफी घनी काली गैसें और अन्य पदार्थ उभड़े। तबसे यह ज्वालामुखी शान्त है। इसके पूर्व यहाँ १७८७ और १७९५ में भी उद्गार हो चुके हैं। इस ज्वालामुखी का शंकु गोलाकार रूप में ७ वर्ग कि० मी० क्षेत्र में विस्तृत है। इसका मुख समुद्र के धरातल से ३१० मीटर ऊँचा है। यहाँ एक कड़ी चट्टानों का द्वीप था जो शनैः शनैः समुद्र में डूब रहा था। यह ज्वालामुखी गंधकीय प्रकार का था। इस द्वीप का ज्वालामुखी पूर्वी द्वीप समूह तथा मलाया की पेटी का उत्तरी अग्र भाग है जिसके चिन्ह उत्तर में नरकुंडम तथा ब्रह्मा के सुशुप्त ज्वालामुखियों के रूप में मिलते हैं।

---

4. *D. N. Wadia*, Geology of India, p. 291.

वर्तमान काल में भारत के ज्वालामुखी उद्‌गारों का महत्व कम ही है यद्यपि भूगर्भशास्त्रियों का कथन है कि हिमालय, ब्रह्मा और बलूचिस्तान में तृतीयक युग के ज्वालामुखियों का प्राधान्य है।[5] डाक्टर चिब्बर के अनुसार भारत में निम्न मुख्य ज्वालामुखी क्षेत्र हैं[6]—

(१) **बिहार में पूर्व-पश्चिम का क्षेत्र**—इसमें बिहार की डालमा श्रेणी के ज्वालामुखी आते है। यह ज्वालामुखीय क्रिया धारवाड़-युग में क्रियाशील थी।

(२) **कडुपा, बीजापुर और ग्वालियर क्षेत्र**—यह श्रेणी उत्तर-दक्षिण में फैली है। यहाँ कडुप्पा-युग में ज्वालामुखीय विस्फोट हुए थे।

(३) **जोधपुर में मालानी से लगाकर पंजाब में किराना पहाड़ियों तक का क्षेत्र**—यह श्रेणी भी उत्तर-दक्षिण में फैली है। यहाँ विंध्ययुग में विशेष हलचल रही है।

(४) नैनीताल, भुवाली, भीमताल, सतलज की घाटी, गढ़वाल जिले का लीमा तथा डलहौजी और पीर पंजाल श्रेणी के निचले भाग वाले क्षेत्र—यह श्रेणी उत्तर पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर फैली है। इसमें पुराकल्प में विस्फोट हुए थे।

(५) यह श्रेणी आसाम, बंगाल और बिहार होती हुई उत्तर-पूर्व से दक्षिण व दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली है। इसमें राजमहल पहाड़ी तथा आसाम की अभोर श्रेणी सम्मिलित है। यहाँ मध्य-कल्प में ज्वालामुखी के विस्फोट हुए थे।

(६) **दक्षिण भारत का विस्तृत लावा प्रदेश**—यहाँ मध्य कल्प और नवकल्प के प्रारम्भिक युग में विस्फोट हुए थे।

गर्म जल के स्रोत (Hot Springs)

गर्म जल के स्रोतों का सम्बन्ध ज्वालामुखी क्रिया से है अतएव गर्म जल के स्रोत अधिकांशतः उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ प्राचीन काल में कभी ज्वालामुखी क्रिया प्रगतिशील रही हो और जहाँ ज्वालामुखी के विस्फोट के फलस्वरूप आग्नेय चट्टानें पाई जाती हों। भारत में गर्म जल के सोते ग्रैनाइट, नीस आदि चट्टानों अथवा रूपान्तरित चट्टानों के प्रदेश में मिलते हैं। ऐसे प्रदेश काश्मीर, पंजाब, बिहार, बम्बई, मध्यप्रदेश, आसाम, केरल और उत्तर प्रदेश हैं।

जम्मू-काश्मीर राज्य में काश्मीर की घाटी, बर्दवान की घाटी, इस्लामाबाद, लद्दाख, पुगा घाटी क्षेत्र में गर्म जल के स्रोत मिलते हैं। काश्मीर घाटी में विही जिले में फूकनाग नामक झरने हैं। फरीआबादी नदी के १६ कि० मी० ऊपर बर्दवान घाटी में कई गर्म जल के सोते हैं जिनमें गंधक मिलता है। लद्दाख में पनामिक नामक स्थान के निकट गर्म पानी का एक सोता है जिसके जल का तापक्रम ७०° से ७२° सें० ग्रेड है। पुगा घाटी में भी कई गर्म सोते हैं, जिनके जल में गंधक या सुहागा मिला है। इन झरनों से लगभग ४,००० मन सुहागा और ५०० मन गंधक प्रतिवर्ष प्राप्त होता है।

5. *M. S. Krishnan,* Geology of India and Burma, p. 47.
6. *H. L. Chibber,* Op. Cit.

पंजाब राज्य में कुल्लू घाटी, कांगड़ा घाटी तथा सतलज घाटी में गर्म जल के स्रोत मिलते हैं। कुल्लू नगर के समीप मणीकर्ण नामक गर्म जल का सोता है जिसके जल में यात्री चावल उबाला करते हैं। इसके जल में स्नान करने से गठिया का रोग भी ठीक हो जाता है। इस झरने के जल के भाप बन जाने पर मोती जैसे श्वेत कण जम जाते हैं जो मणियों की तरह चमकदार होते हैं। इसी कारण यह सोता 'मणीकरण' सोता कहलाता है। इस सोते से गंधक मिश्रित हाइड्रोजन भी निकलता है।

कांगड़ा जिले में **ज्वालामुखी** स्थान पर भी गर्म जल-स्रोत है। इस जल में क्षार-युक्त आयोडाइड होता है जो गले की बीमारियों के लिए लाभप्रद है।

सतलज घाटी में शिमला से ४८ कि० मी० दूर सतलज के तट पर गर्म जल का सोता है, जिसका जल नदी के जल से बहुत अधिक गरम है जबकि नदी की धारा और इस सोते के उद्गम में कुछ ही इंचों का अन्तर है।

पंजाब के गुड़गांव जिले में भी **सोना** नामक स्थान पर गर्म जल का सोता है जिसके जल का तापक्रम ४६° सें० ग्रेड है। इसमें गंधक मिला रहता है।

सिक्किम में कई गरम जल के सोते हैं किन्तु इनमें मुख्य ये हैं : रंगीत नदी के पूर्वी भाग में रिनचिपोंग मठ से लगभग ३ कि० मीटर दूर **फूट साचू** नामक गरम सोता है जिसके जल का तापक्रम ३७° सें० ग्रेड तक है। रंगीत नदी के पश्चिमी तट पर **रलोंग साचू** नामक स्रोत है जिसके जल का तापक्रम ३८° से० ग्रेड तक पाया जाता है। किन्तु नहाने के लिए बनाये गए हौज में जल का तापक्रम ३७° सें० ग्रेड तक पाया जाता है। लचूँग नदी के पूर्वी किनारे पर भी **यूमतांग** स्रोत है जिसमें से गरम जल के साथ गंधक मिली हाइड्रोजन गैस निकलती है। इसके जल का तापक्रम साधारणत: ३७° सें० ग्रेड तक रहता है। अन्य मुख्य गर्म स्त्रोत किनचिनजंघा ग्लेशियर के लगभग १·६ कि०मी० नीचे हैं। इसके जल का तापक्रम ३६° सें० ग्रेड तक पाया गया है।

बिहार राज्य में गर्म जल के अनेक सोते हैं। बाजगिरी, हजारीबाग व संथाल परगना जिले गर्म जल स्रोतों के लिए प्रसिद्ध हैं। राजगिरि पहाड़ी के क्षेत्र में **राजगिरी** और **तपोवन** नामक गर्म सोते हैं।

मुंघेर जिले में धारवाड़ चट्टानों से सम्बद्ध **पंचबर, शृंगीऋषि, ताता पानी, ऋषिकुण्ड, रामेश्वर कुण्ड, सीता कुण्ड, लक्ष्मी कुण्ड, जन्म कुण्ड, भीमबन्द** और **झुरका** नामक १० सोते हैं। इनके जल का तापक्रम ४२° से ४४° सें० ग्रेड तक रहता है। इनका जल बड़ा स्वच्छ है।

हजारीबाग जिले में ६ प्रमुख सोते हैं—क्रमश: **लुरगरथा, पिंडारकुण्ड, द्वारी, सूरज कुण्ड, बेलकापी** और **केशवड़ीह**। इन सभी का जल गंधकीय है। इनके जल का तापक्रम ३८° से ६९° सें० ग्रेड तक पाया जाता है। इनमें सबसे गर्म सोता बेलकापी और सबसे कम गर्म सूरज कुण्ड है।

संथाल परगना में तीन-चार मुख्य गर्म सोते हैं जो सभी गंधकीय हैं। इनके जल का तापक्रम ३८° से ४६° सें० ग्रेड तक रहता है। नूनबिल, तातापानी, ततलोई और सिद्धपुर प्रसिद्ध सोते हैं।

मध्य प्रदेश राज्य में होशंगाबाद के **अनहोनी** तथा समोनी नामक गर्म सोते मुख्य हैं। यहाँ के जल में गंधक मिला होता है। इनके जल का तापक्रम ३८° सें० ग्रेड तक रहता है।

छिंदवाड़ा जिले में **अनहोनी धोना** प्रमुख सोता है। इसके जल का तापक्रम ३८° सें० ग्रेड तक रहता है।

पूर्णा घाटी में **सलबन्दी** नामक गर्म सोता है। इसके जल का तापक्रम ३७° सें० ग्रेड तक रहता है। इसका जल स्वादरहित है।

ग्वालियर के निकट **सिपरी** नामक गर्म सोता है। इसमें गंधक का मिश्रण है।

महाराष्ट्र राज्य में गर्म जल के कई सोते हैं। पंचमहल जिले में **तवा** नामक गर्म जल का सोता है। इसका जल बड़ा पवित्र माना जाता है। जल का तापक्रम ४७° सें० ग्रेड तक रहता है।

इसके समीप ही **लसुन्दरा** नामक सोता है। इसके जल का तापक्रम ३७° सें० ग्रेड तक रहता है।

थाना जिले में **वज्रबाई** से गिरगाँव तक ८० कि० मी० के भीतर अनेक गर्म जल के सोते हैं। ये क्रमशः **अक्लोली**, **गणेशपुरी**, **नीम्बोली** आदि हैं।

सूर्या नदी के दायें तट पर पालघर स्टेशन के समीप **कोकनेरा** नामक गर्म जल का सोता है।

गुजरात में बड़ौदा के समीप **ऊनी** नामक गर्म जल स्रोत भी उल्लेखनीय है।

उत्तर प्रदेश में देहरादून के समीप **सहस्रधारा** नामक प्रसिद्ध जल स्रोत है जो गंधकीय है।

उच्च पर्वतीय शिखरों पर **गंगोत्री** और **जमनोत्री** नामक गर्म जल के सोते उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान में दिल्ली से ४३ कि० मी० दक्षिण में **सोहना** गर्म जल का स्रोत है। इसमें गंधक मिली रहती है। इसके जल का तापक्रम ३९° सें० ग्रेड तक रहता है।

अलवर के दक्षिण-पश्चिमी भाग में २२ कि० मी० दूर **तालब्रीच** सोता है जिसका जल ३८° सें०ग्रेड तक गरम रहता है।

जयपुर जिले में **नरायणी** नामक गर्म जल स्रोत है। इसे नाई लोग बड़ा पवित्र मानते हैं।

इन राज्यों के अतिरिक्त आसाम, उड़ीसा, बंगाल और केरल में भी गर्म जल स्रोत पाये जाते हैं।

अध्याय ७

भारत की जल प्रवाह-प्रणाली

(HYDROGRAPHY OF INDIA)

भारत के आर्थिक विकास में नदियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। नदियाँ यहाँ आदि-काल से ही मानव के जीवन और गतिविधि का साधन रही हैं। पश्चिम की ओर से आने वाले आर्य लोगों ने सिंधु और गंगा नदियों के किनारे ही अपना निवास स्थान बनाया। फलतः इन्हीं नदियों की घाटियों में भारत की मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और आर्य सभ्यता का जन्म हुआ। भारतीय नदियाँ न केवल सिंचाई ही करती हैं वरन् इनके मार्गों में पड़ने वाले जल प्रपातों द्वारा जल विद्युत शक्ति भी प्राप्त की जाती है। उत्तर प्रदेश की गंगा नदी तथा मैसूर की कावेरी नदियाँ इसके सुन्दर उदाहरण हैं। नदियाँ आवागमन के भी प्रमुख साधन हैं। प्राचीन काल में इन्हीं नदियों द्वारा आन्तरिक व्यापार नावों द्वारा होता था किंतु रेल मार्गों के निर्माण और जल मार्गों के प्रति उपेक्षा भाव होने से इस महत्वपूर्ण साधन का विकास कम हो गया। चूँकि भारत की प्राचीन सभ्यता के स्थल इन्हीं नदियों की घाटियाँ रही हैं अतएव आज भी भारत के अधिक प्राचीन मन्दिर, धार्मिक और व्यवसायिक केन्द्र इन्हीं नदियों के तट पर अवस्थित पाये जाते हैं। ये नदियाँ मानव को सदैव से ही मछली के रूप में खाद्य प्रदान करती आई हैं। उत्तर प्रदेश और मद्रास तथा आसाम की कुछ नदियों की मिट्टी में स्वर्ण-कण भी पाये जाते हैं। उत्तरी भारत की नदियों का जल अधिकांशतः भूमि को सींचने के लिए बड़ा ही उपयुक्त साधन है अतएव उत्तरी भारत में विशेषकर पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में नहरों का जाल सा बिछा है। गंगा और सतलज तथा दक्षिणी भारत की नदियों के डेल्टा की उर्वरा शक्ति नदियों के कारण ही स्थिर रह पाती है।

प्रवाह क्षेत्र में परिवर्तन (Change in Drainage System)

भारत की नदियों के प्रवाह क्षेत्र में प्राचीन काल से ही बहुत परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्तरी और दक्षिणी भारत की सभी नदियों की प्रवाह प्रणाली पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। तृतीयक युग से उत्तरी भारत की प्रमुख बहाव-रेखा में महान परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के ५लस्वरूप उत्तरी भारत की सभी मुख्य नदियों का प्रवाह उल्टा हो गया है। कई पर्वत निर्माणकारी हलचलों के कारण प्राचीन टिथिस महासागर हिमालय पर्वत में परिवर्तित हो गया। इस लंबी प्रणाली के समय में समुद्र पहिले एक उथले जल क्षेत्र में बदला। तत्पश्चात् यह **शिवालिक नदी** के रूप में हो गया। यह नदी आसाम के उत्तर-पूर्वी भाग में अपने निकास क्षेत्र से निकल कर हिमालय के समानान्तर चलती हुई भारत की पूरी चौड़ाई में बहती हुई सुलेमान तथा किर्थर श्रेणियों के सहारे उत्तरी-पश्चिमी कोने तक जाती थी और फिर वहाँ से दक्षिण को मुड़कर पंजाब व सिंधु से पीछे हटते हुए अरब

समुद्र में गिर जाती थी। **श्री पैस्को** और **श्री पिल्ग्रिम** प्रभृति भूतत्ववेत्ताओं ने इस नदी का नाम **इन्डोब्रह्म** (Indo-Brahm) और **शिवालिक नदी** दिया है। इसकी तीन सहायक प्रणालियाँ थीं—(i) वर्तमान सिंधु; (ii) सिन्ध की सहायक नदियाँ और (iii) गंगा की सहायक नदियाँ। किंतु पोटवार (Potwar) के पठार के रूप में ऊँचे उठ जाने से यह प्रणाली छिन्न-भिन्न हो गई। इसके परिणाम-स्वरूप मुख्य नदी का उत्तरी-पश्चिमी भाग सिंधु नदी का स्वतंत्र बेसिन बन गया जिसकी अंतिम पूर्वी सीमा सतलज नदी ने बनाई। प्रमुख धारा का शेष ऊपरी भाग विपरीत दिशा में बहने लगा क्योंकि पंजाब की भूमि ऊँची होने से इसकी धारा विवशतः पूर्व की खाड़ी में गिरने को बाध्य हुई। इस प्रकार शिवालिक नदी के ऊपरी भाग, जो लौटकर पूर्वी खाड़ी में गिरे, वर्तमान काल की गंगा नदी है।

भूगर्भशास्त्रियों का अनुमान है कि ऐतिहासिक युग में सतलज और जमुना राजस्थान में होकर बहती थी। इसी प्रकार **सरस्वती नदी** (जो हिन्दुओं की परम्परा में अब विलुप्त होगई मानी जाती है) कदाचित् वह नदी थी जो सोतर (Sotar) या घाघर (Ghaggar) की तलहटी को घेरे हुए थी और नाहन के निकट बहती थी। जमुना दिल्ली के निकट उत्तर में स्थित करनाल के पश्चिम की ओर बहती थी। उत्तरी बीकानेर के सूरतगढ़ के पास ये दोनों नदियाँ मिल गईं और **हकारा** के नाम से दक्षिण पश्चिम की ओर बहती हुई कच्छ की खाड़ी में गिर जाती थीं। ईसाई युग के प्रारंभिक काल में सतलज नदी भी एक स्वतत्र नदी थी जो सिंधु से अलग ही बहती थी। यह घाघर में मिलती थी या नहीं इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है किन्तु अब यह व्यास नदी में मिल जाती है। अमरकोट और सिरसा के बीच में इसकी पुरानी धारा के अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं।

लगभग २०० वर्ष पूर्व ही गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ २४१ कि० मी० की दूरी पर अलग अलग नदियाँ थीं। बाद में ब्रह्मपुत्र मधुपुर के जंगलों के पूर्व में मेघना से मिल गई। किंतु वर्तमान काल में ही एक भूमि परिवर्तन क्रांति के परिणाम-स्वरूप मधुपुर के जंगल ३० मीटर ऊंचे उठ गये। इससे ब्रह्मपुत्र नदी ने अपना मार्ग जंगलों के पूर्व की अपेक्षा जंगलों के पश्चिम में बना लिया। यह घटना अभी केवल १०० वर्ष पूर्व ही हुई मानी जाती है।

गंगा तया उसकी सहायक नदियों के मार्ग में भी परिवर्तन हुए हैं। चौथी से छठी शताब्दी तक मौर्य और गुप्त राजाओं की राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) एक बड़ा ही उत्तम नगर था जो गंगा, सोन, घाघरा, गंडक और पुनपुन नदियों के संगम पर स्थित था। नदियों के तट पर होने से यह एक प्रमुख बन्दरगाह और व्यापारिक केन्द्र भी था किन्तु इसकी समृद्धि कालांतर में नष्ट हो गई। अब सोन और घाघरा नदियाँ गंगा से यहाँ नहीं मिलतीं किन्तु कई मील आगे जाकर गंगा से मिलती हैं। इसी प्रकारा गंगा के डेल्टा पर गौड़ नामक स्थान ५ वीं से १६ वीं शताब्दी तक एक मुख्य व्यापारिक केन्द्र था किन्तु कालान्तर में इसके चारों ओर दलदल फैल जाने से इसका महत्व कम हो गया। १६ वीं शताब्दी तक बंगाल के मुस्लिम राजाओं की राजधानी और प्रसिद्ध बन्दरगाह सतगाँव त्रिवेनी नदी के निकट सरस्वती नदी पर स्थित था किन्तु सरस्वती नदी के सूख जाने से इसका महत्व भी घट गया। १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुगली, चन्द्रनगर और सीरामपुर आदि बड़े मुख्य बन्दरगाह थे किन्तु दामोदर नदी के मार्ग परिवर्तन (यह पहले हुगली नदी से नया सराय स्थान

पर मिलती थी किन्तु १७७० ई० में यह कलकत्ता से ५६ कि० मी० नीचे की हटकर मिलने लगी) से नदी में बालू के उत्पन्न हो गयी अतः इनका महत्व सामुद्रिक जहाजों के लिए कम हो गया।

कोसी नदी १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पूर्णिया नगर के नीचे की ओर बहती थी किन्तु अब यह इसके ८० कि० मी० पश्चिम की ओर बहती है। जैसा कि नदी के पुराने मार्ग के अवशेषों द्वारा ज्ञात होता है पिछले २०० वर्षों में मार्ग परिवर्तन से इस नदी ने लगभग १०,००० वर्ग कि० मी० क्षेत्र को हानि पहुँचाई है।

हिमालय क्षेत्र की प्रवाह प्रणाली—हिमालय क्षेत्र का प्रवाह अनुगामी प्रवाह (Consequent Drainage) नहीं है। अनुगामी प्रवाह के अंतर्गत जब नदियाँ पहाड़ों से निकलती हैं तो उनका प्रारंभिक प्रवाह-पथ उसके प्रवाह-प्रदेश के ढाल के अनुसार ही होता है। अर्थात् जल प्रवाह नये प्रकट हुए भूखंड के ढाल के स्वरूप होने लगता है। ऐसी नदियों का बहाव मोड़ के बीच की घाटियों में उनकी रचना के अनुरूप होता है अतः इनका प्रवाह जल-विभाजकों के समानान्तर होता है और नदी को निचले भागों तक पहुँचने में उसे ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों का लम्बा चक्कर लगाकर बाहर निकलना पड़ता है। किन्तु हिमालय की नदियों का प्रवाह पूर्वगामी प्रवाह (Antecedent) है क्योंकि नैपाल की अरुण और भारत की सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, कोसी, सतलज तथा तिस्ता नदियाँ हिमालय पर्वत के निर्माण के पूर्व भी उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती थीं। बाद में हिमालय के निर्माण के उपरांत भी वे पूर्ववत बहती रहीं। इसका कारण यह है कि हिमालय के ऊँचे उठने और नदियों के अपक्षरण की गति लगभग समान रही है। इसका प्रमाण यह है कि जहाँ ये नदियाँ हिमालय को पार करती हैं वहाँ इनकी घाटियाँ काफी गहरी, तंग और तीव्र ढाल वाली होती है। इन नदियों द्वारा बनने वाले खड्ड सामान्यतः १,८०० से ३,६०० मीटर गहरे हैं।

किन्तु सतलज, गंडक, कोसी, स्वर्णसीरी आदि नदियों के प्रवाह क्षेत्र के सम्बन्ध में पूर्वगामी प्रवाह का सिद्धान्त लागू नहीं होता क्योंकि ये नदियाँ उत्तरी बर्फीले क्षेत्र के एक बड़े भाग का पानी लाती हैं। ये नदियाँ बर्फीली चोटियों को काटकर दक्षिणी पहाड़ियों में होती हुई मैदानों में उतरती हैं। ये नदियाँ अपनी घाटी को पीछे की ओर से काटती हैं। इसका कारण यह है कि दक्षिणी ढालों पर उत्तरी ढालों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

प्रायद्वीप की प्रवाह प्रणाली

प्रायद्वीप की सभी नदियाँ अरब सागर के निकट पश्चिमी घाट से निकलती हैं। केवल दो बड़ी नदियाँ नर्मदा और ताप्ती ही पश्चिम की ओर बहती हैं। इसका कारण भूगर्भ-शास्त्री यह बताते हैं कि नर्मदा और ताप्ती अपनी बनाई हुई घाटियों में नहीं बहतीं किन्तु उन्होंने अपनी धाराओं के लिए दो ऐसी घाटियाँ बनाली हैं जो भूमि में दरार विस्फोट क्रिया के परिणामस्वरूप बन गई हैं। ये गहरी कांप भूमि से भरी हुई घाटियाँ उन चट्टानों में बन गई हैं जो विंध्याचल पर्वत श्रेणी के समानान्तर चली गई हैं। इन दरार घाटियों का उत्पति काल उस समय से सम्बन्धित है जब कि हिमालय के ऊपर उठने के साथ-साथ प्रायद्वीप का उत्तरी भाग टेढ़ा हो गया था। उसी उथल-पुथल के साथ इस प्रदेश के दक्षिण ओर स्थिति प्रायद्वीपीय भाग थोड़े से पूर्व की ओर झुक गये अतः उस भाग का ढाल पूर्व को हो गया।

प्रायद्वीप के प्रवाह प्रदेश के बारे में दूसरा मत यह है कि प्रायद्वीप उस बड़े भूभाग का शेष अर्द्ध भाग है जिसका कि पश्चिमी घाट जल-विभाजक था। यह जल विभाजक स्थित रह गया किन्तु इसके पश्चिम का बहुत सा भाग अरब सागर में डूब गया। इसी कारण पश्चिमी तट पर समुद्र की गहराई केवल १८२ मीटर है।

दक्षिणी प्रायद्वीप की अधिकांश नदियाँ अनुगामी हैं अर्थात इनका बहाव धरातल के स्वाभाविक ढाल के अनुरूप ही हुआ है। यहाँ की अधिकतर नदियाँ वृक्षाकार परिवाह-क्रम (dendritic) का निर्माण करती है। केवल तटीय भागों में, विशेषतः पश्चिमी घाट में पश्चिम में समानान्तर परिवाह-क्रम मिलता है।

भारत की नदियाँ

भारत का जल-प्रवाह हिमालय की नदियों, प्रायद्वीप की नदियों और आन्तरिक प्रवाह-क्षेत्र की नदियों द्वारा बना है। हिमालय से निकलने वाली नदियों में गंगा और उसकी नदियाँ और ब्रह्मपुत्र आदि बंगाल की खाड़ी में तथा सिंध और उसकी सहायक नदियाँ अरब सागर में गिरती हैं।

गंगा के प्रवाह-प्रदेश में वे नदियाँ भी सम्मिलित की जाती हैं जो दक्षिणी प्रायद्वीप से निकल कर उत्तर की ओर बहती हुई गंगा या उसकी सहायक नदियों से मिल जाती हैं यथा, चम्बल, सोन, बेतवा, केन आदि। गंगा नदी का प्रवाह क्षेत्र भारत के कुल प्रवाह क्षेत्र का २५% भाग का जल पाता है।

दक्षिणी भारत के प्रवाह प्रदेश में नर्मदा, ताप्ती आदि बड़ी नदियाँ हैं जो पूर्व से निकलकर अरब सागर में गिरती हैं तथा पेरियर, पेन्नान, शरबती, कावेरी, कृष्णा, गोदावरी आदि पश्चिमी घाटों से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं।

आन्तरिक प्रवाह प्रदेश पश्चिमी राजस्थान तक ही सीमित है। इस भाग में केवल लूनी और माही नदी ही अरब सागर तक पहुँच पाती हैं, शेष रूपनारायण, मेंढ़ा आदि नदियाँ मरुभूमि में ही विलीन हो जाती हैं। संपूर्ण आंतरिक प्रवाह प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग १.६ लाख वर्ग किलोमीटर है।

जल विभाजक

बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों का प्रवाह क्षेत्र अरब सागर में गिरने वाली नदियों से अधिक विस्तृत है। मोटे तौर पर भारत के जल-प्रवाह का ३/४ भाग बंगाल की खाड़ी के अन्तर्गत आता है। अरावली पर्वत इन दोनों प्रवाह प्रदेशों के बीच उत्तम जल विभाजक का काम करते हैं, जो दिल्ली से लगाकर शिमला तक फैले हैं। इन दोनों प्रवाह-प्रदेशों की जल विभाजक रेखा हिमालय के उत्तर में स्थित कैलाश पर्वत के निकट मानसरोवर झील से आरम्भ होकर कामेत पर्वत होती हुई शिमला के पूर्वी भाग को छूती हुई अरावली पर्वतों के बीचों बीच उदयपुर तक आती है। इसके दक्षिण में इंदौर के निकट से यह जल विभाजक रेखा नर्मदा की घाटी के उत्तर-पूर्व मुड़कर मैकाल और महादेव की पहाड़ियों के दक्षिणी भाग से मुड़कर पुनः पश्चिम में अजन्ता की पहाड़ियों से होती हुई पश्चिमी घाट के सहारे-सहारे पश्चिमी तट के समानान्तर कन्याकुमारी तक विस्तृत है।

उत्तरी भारत की नदियाँ (Rivers of North India)

उत्तरी भारत की प्रसिद्ध नदियाँ ये हैं :—

गंगा नदी (Ganga)—उत्तरी भारत की सबसे प्रमुख नदी है। श्री स्ट्रैबो के

मतानुसार यह तीन महाद्वीपों में सबसे बड़ी नदी है जिसकी कम से कम चौड़ाई ३० स्टैडिया (1 Stadium=606$\frac{3}{4}$ ft.) है। मैगस्थनीज के अनुसार इसकी साधारण
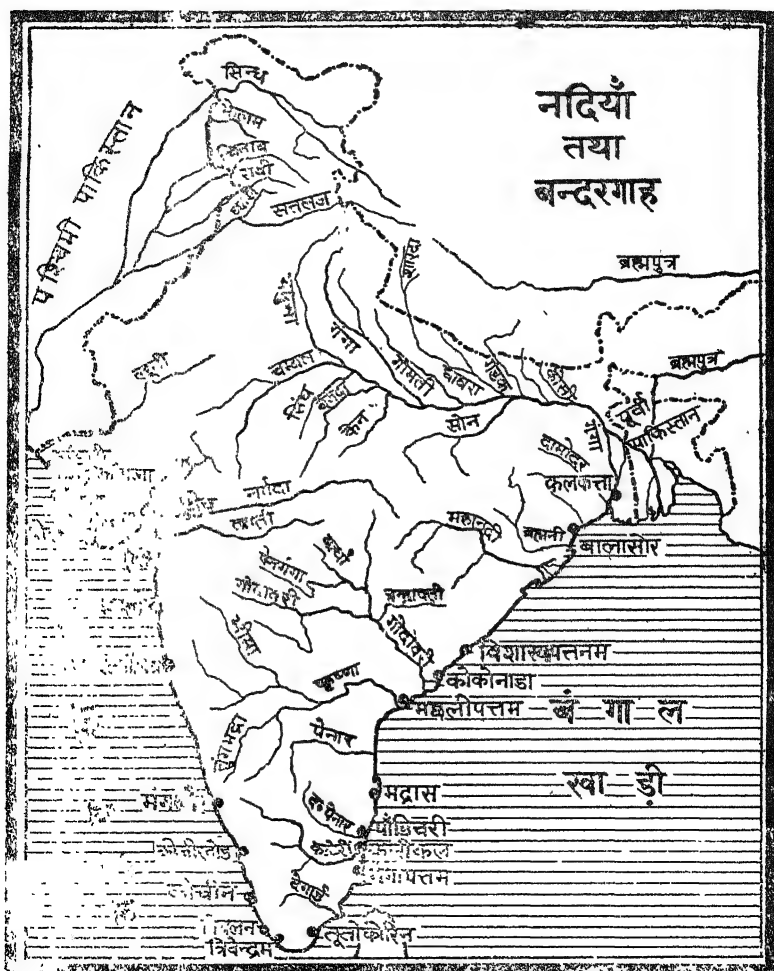
चित्र ५०. भारत की नदियाँ

चौड़ाई १०० स्टैडिया है और गहराई ३६ मीटर।[1] यह हिन्दुओं की सबसे प्रमुख धार्मिक नदी है। इसके प्रवाह प्रदेश में भारत के सबसे घने बसे और उपजाऊ राज्य हैं:—उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल आदि जहाँ आर्यों की आदि-सभ्यता का जन्म हुआ था। गंगा नदी कई सहायक नदियों से मिलकर बनी है। इसकी मुख्य

1. *P. Sen Gupta*, "The Ganga," in March of India, Vol. VII, No. 1, 1954, p. 19.

सहायक नदियाँ—जो इसमें उत्तर की ओर से आकर मिलती हैं जमुना, रामगंगा, करनाली, राप्ती, गंडक, कोसी, काली आदि हैं तथा दक्षिण के पठार से मिलने वाली नदियों में चम्बल, सिंध, बेताल, केन, दक्षिणी टोंस, सोन आदि हैं। इन नदियों का संग्रहण-क्षेत्र (Catchment area) इस प्रकार है[2] :—

हिमालय में संग्राहण क्षेत्र

कोसी	२३,६०० वर्ग मील
करनाली	२०,६०० ,,
गंडक	१४,६०० ,,
गंगा	८,६०० ,,
काली	६,३०० ,,
जमुना	४,५०० ,,
रामगंगा	२,६०० ,,

गंगा नदी वास्तव में भागीरथी और अलकनन्दा नदियों का ही सम्मिलित रूप है। अलकनन्दा में भागीरथी की अपेक्षा अधिक पानी की मात्रा रहती है। यह
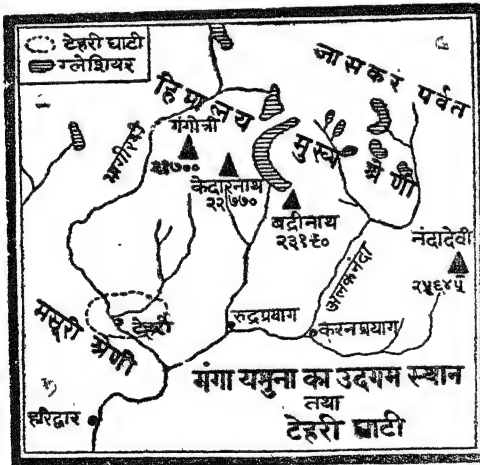
चित्र ५१. गंगा यमुना का उद्गम स्थान

धौली (Dhauli)—जो नीती दर्रे के निकट जांस्कर श्रेणी से निकलती है—और विष्णुगंगा (Vishnu-Ganga)—जो माना दर्रे के निकट माऊंट कामेत से निकलती है—आदि नदियों से मिलकर बनी है। यह दोनों **विष्णु-प्रयाग** के निकट मिलकर एक हो जाती हैं। इसके बाद अलकनंदा मध्य हिमालय के प्रमुख और गहरे गड्ढे में होकर बहती है जिसके एक ओर नंदादेवी और ओर दूसरी बद्रीनाथ की ऊँची चोटियाँ हैं। इसकी एक अन्य सहायक नदी **पिंडार** है जो नंदादेवी से निकल कर **कर्ण प्रयाग** में

---

2. *Burrard, S. H. & Hayden, H. H. & Heron. A. M. A.*, Sketch of the Geography and Geology of the Himalayan Mountains and Tibet, 1933, p. 175.

अलकनन्दा से मिल जाती है। **मंदाकिनी** नदी इससे बद्रीनाथ के दक्षिण की ओर **रुद्र प्रयाग** में मिलती है। त्रिशूल पर्वत के पश्चिम में **पिंडार** और **नंदका** नदियाँ **नंद प्रयाग** में मिलती हैं। अलकनंदा और भागीरथी देव प्रयाग में मिलकर एक हो जाती है। यहीं से अलकनंदा पहाड़ियों को काटकर शिवालिक होती हुई ऋषिकेश और हर-द्वार पहुँचती है।

गंगा नदी (वास्तव में भागीरथी) का मुख्य स्रोत गंगोत्री हिमानी से है जो केदारनाथ चोटी के उत्तर में **गऊमुख** नामक स्थान पर ३,६०० मीटर की ऊंचाई पर है इसीसे नीचे उतर कर गंगोत्री का पवित्र स्थान है। इस हिमानी के निकट **सातो पंथ, शिवलिंग** आदि कई ऊँची चोटियाँ हैं। मुख्य हिमालय के कुछ उत्तर में **जाह्नवी** नदी निकलकर भागीरथी से गंगोत्री के निकट मिलती है। दोनों नदियाँ एक होकर मुख्य हिमालय श्रेणियों में बन्दरपंच और श्रीकान्ता चोटियों के बीच ४,८७० मीटर गहरी घाटी बना कर बहती है। **श्री ग्रीज़बैच** (Griesbach) के अनुसार गंगा नदी बहुत ही गहरी घाटी में होकर बहती है। यह घाटी इतनी अद्‌भुत और चित्रमय है जिसकी तुलना विश्व की किसी भी घाटी से करना अनुचित है। इसके किनारे प्रायः लम्बवत् हैं जिन्हें नदी की घाटी ने काट कर कुछ चिकना बना दिया है। भैरोंघाटी नामक संकड़े स्थान पर एक तार का झूलता पुल बनाया गया है जिसके सहारे यात्री
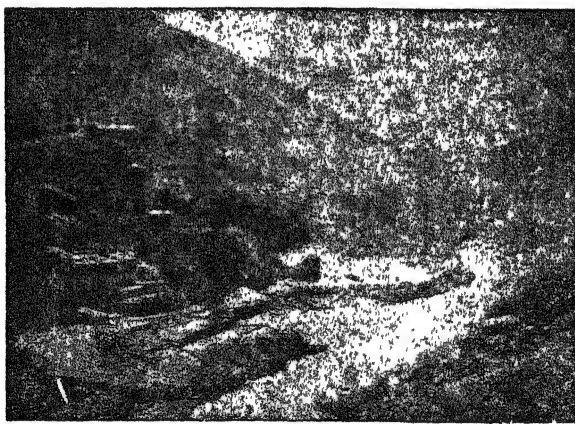
चित्र ५२. देव प्रयाग के निकट गंगा का उद्‌गम

गंगोत्री स्थान के दर्शन करने जाते हैं।[3] भूगर्भशास्त्रियों का विश्वास है कि गंगा का प्रवाह पूर्वगामी है। यह हिमालय की श्रेणियों से भी पुराना है। इन पर्वतीय क्षेत्रों में हिन्दुओं के कई धार्मिक स्थान हैं जैसे केदारनाथ, बद्रीनाथ, मानसरोवर झील, कैलाश आदि।

गंगा नदी हरिद्वार के निकट मैदान में प्रवेश करती है जिससे थोड़ी दूर पर ऊपरी गंगा की नहर निकाली गई है। यह नदी हरिद्वार से पहले दक्षिण और फिर

---

3. *Greisbach, C. L.*, Geology of the Central Himalayas, 1891, Memoirs.

दक्षिण पूर्व बहती हुई उत्तर प्रदेश के मेरठ, रुहेलखंड, फरुक्खाबाद, अवध, इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस, बलिया आदि जिलों में होती हुई बहती है। प्रयाग के निकट इसमें जमुना नदी आकर मिल जाती है। यहाँ से यह पूर्व की ओर घूमती है। यहाँ इसमें गाजीपुर के निकट गोमती और बलिया के निकट घाघरा मिलती हैं। मध्य के पठार से निकली हुई सोन नदी गंगा से पटना के निकट मिलती है। कुछ और पूर्व की ओर हटकर गंडक और कोसी भी गंगा में मिल जाती है। यहाँ से मुख्य नदी **पदमा** (Padma) के नाम से राजमहल की पहाड़ियों को पार कर दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई ग्वालंड़ों के निकट ब्रह्मपुत्र से मिल जाती है। यहाँ नदी कई मील चौड़ी हो जाती है और कई धाराओं में बंट जाती है। इसके पश्चात् मेघना नदी से मिलकर ९७ कि० मी० चौड़ी एस्चुरी बनाकर बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। बंगाल तक पहुँचने में यह नदी २,४६० कि० मी० बह चुकती है जिसमें ८७० कि० मी० तो बंगाल में ही बहती है। गंगा की अन्य धारायें क्रमशः हुगली, माटला, रायमंगल, मलंचा, हरिंग घाटा, नाडिया और भागीरथी हैं।

चित्र ५३. हरिद्वार के निकट गंगा का दृश्य

गंगा का डेल्टा हुगली और मेघना नदियों के बीच में है। यह संसार का सबसे बड़ा डेल्टा माना जाता है जिसमें अनेक धाराओं और छोटी-छोटी द्वीपों का जाल सा बिछा है। इस डेल्टा के अन्तर्गत मुर्शिदाबाद, नाडिया, जैसोर और २४ परगने के जिले हैं। डेल्टा का समुद्री भाग घने जंगलों से ढका है जिनमें चीते आदि हिंसक पशु रहते हैं। सुन्दरी पेड़ों की अधिकता से यह भाग सुन्दर-वन कहलाता है। बंगाल का सबसे बड़ा जलमार्ग हुगली नदी है। इसे विश्व की सबसे अधिक धोखेबाज नदी (Treacherous River) कहते हैं। यह विश्व की सबसे अधिक व्यस्त नदी भी है। इसी के तट पर कलकत्ता बन्दरगाह है जिसे **पूर्व का लंदन** कहा जाता है।

जमुना (Jamuna)—गंगा नदी की प्रणाली की सबसे मुख्य नदी जमुना है जो ज़मनोत्री (Jamnotri) के गर्म सोते से ८ कि० मी० उत्तर की ओर टेहरी गढ़वाल राज्य से निकलती है। हिमालय पर्वत की यात्रा के ऊपरी भाग में उत्तर की ओर

से इसमें **टोंस** नदी आकर मिलती है। इसके बाद यह लघु-हिमालय की पहाड़ियों को काटकर आगे बढ़ती है जहाँ पश्चिम की ओर से इसमें **गिरी** और पूर्व की ओर से **आसन** नदियाँ आकर इसमें मिल जाती हैं। अब यह नदी बड़ी तेजी से मैदान में उतरती है और प्रयाग में गंगा से मिल जाती है। मैदान में उतर कर बल खाती हुई दिल्ली, मथुरा, आगरा और इटावा का चक्कर लगाती है। इटावा के नीचे इसमें चंबल और सिन्धु आकर मिलती है तथा हमीरपुर के निकट बेतवा और प्रयाग के निकट केन नदियाँ इसमें मिलती हैं। यमुना सम्पूर्ण लम्बाई में १,३८० कि० मी० बहती है। जमुना का उपयोग पश्चिमी जमुना नहर को जल देने के लिए किया गया है। इसके ऊपरी भाग में टिम्बर तथा मैदानी भाग में पत्थर, कपास, अनाज आदि ढोया जाता है।
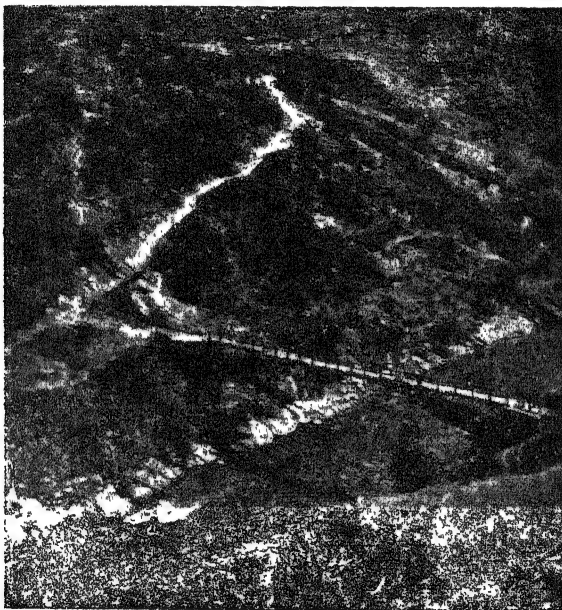
चित्र. ५४. जमुना नदी की सुन्दर घाटी का दृश्य

रामगंगा (Ram Ganga)—यह तुलनात्मक दृष्टि से एक छोटी नदी है जो मुख्य हिमालय श्रेणी के दक्षिणी भाग से निकलती है। यह नदी अपने प्रथम ९० मील की यात्रा में बड़ी तेजी से बहकर कालगढ़ किले के निकट (बिजनौर जिले में) मैदान में प्रवेश करती है जहाँ २४ कि० मी० नीचे की ओर इसमें **कोह नदी** आकर दाहिने किनारे से इसमें मिल जाती है। शिवालिक पहाड़ियों के कारण इसका प्रवाह दक्षिण-पश्चिम की ओर हो जाता है और मैदान में उतरने पर दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई मुरादाबाद, बरेली, बदायूँ और शाहजहाँपुर जिले में ५९० कि० मी० बहती हुई कन्नौज के निकट गंगा में जाकर मिल जाती है। यद्यपि इस नदी का जल सिंचाई के लिए अधिक उपयोग में नहीं आता किन्तु रामनगर के निकट

कोसी के दोनों किनारों से छोटी-छोटी नहरें निकाली गई हैं। इस नदी का मार्ग मैदान में बड़ा अनिश्चित और परिवर्तनशील है।

काली, कालीगंगा, सारदा अथवा चोका नदी (Kali, Kaliganga or Sarda)—काली नदी कुमायूं के उत्तर-पूर्वी भाग में मिलाम हिमनदी से निकलती है। इसकी दो सहायक नदियाँ हैं—**धर्मा** और **लिसार** जो अपने ऊपरी भागों में दक्षिण-पूर्वी दिशा में बहती है। किन्तु मुख्य नदी में **सरजू** और पूर्वी रामगंगा नदियाँ उत्तर-पश्चिम से आकर पंचेश्वर के निकट मिलती हैं। यहीं से यह नदी सरजू या सारदा के नाम से पहाड़ियों में चक्कर लगाती हुई बरमदेव के निकट मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ इसके दो भाग हो जाते हैं किन्तु मुंडिया घाट के निकट पुनः मिलकर एक हो जाती है। इससे आगे यह नदी नैपाल और पीलीभीत जिले के बीच की सीमा बनाती है। खेरी में इस नदी की चार शाखायें हो जाती हैं—ऊल, सारदा (चौका) दहावर और सुहेली। सारदा नदी चक्करदार मार्ग बनाती हुई बहरमघाट के निकट घाघरा से मिल जाती है। इससे ब्रह्मदेव के निकट सारदा नहर निकाली गई है।

करनाली, कौरियाला या घाघरा नदी (Karnali, Kauriala or Gogra)—यह नदी पहाड़ी क्षेत्र में करनाली या कौरियाला तथा मैदान में घाघरा कहलाती है। यह तकलाकोट से ३७ कि० मी० उत्तर पश्चिम की ओर **मापचा चूंगो** हिमानी से निकलती है और गुरलामांधाता के दक्षिणी और पश्चिमी सिरों का चक्कर लगाकर आगे बढती है। यह दक्षिणी पूर्वी दिशा में बहकर दक्षिणी-पश्चिमी ओर से हिमालय श्रेणी को पार करती है। यहाँ यह १६१ कि० मी० लम्बी है। यहाँ इसमें एक सहायक नदी आकर मिल जाती है। अब करनाली नदी एक गहरे खड्ड में होकर महान हिमालय को पार करती है तथा लगभग ८० कि० मी० दक्षिण-पश्चिमी दिशा में बहने के बाद पूर्व की ओर से टीला नदी इसमें मिल जाती है। यहाँ से यह बालों की पिन की तरह का मोड़ खाती हुई पश्चिम की ओर जाती है जहाँ इसमें सेती नदी मिलती है। अब यह महाभारत श्रेणी को काटती हुई आगे बढ़ती है जहाँ इसमें कुआनघाट के निकट बेरी नदी आकर मिलती है। शिवालिक को पार करते समय यह नदी शीशपानी नामक १८० मीटर चौड़ा खड्ड बनाती हुई ६१० मीटर गहरी बहती है। इसी के बाद इसमें तेज रपटें बनती जाती हैं। मैदानी भाग में पहुँच कर इसकी दो शाखायें बन जाती हैं पश्चिम की ओर करनालो तथा पूर्व की ओर गिरवा किन्तु आगे जाकर पुनः दोनों मिलकर एक हो जाती हैं। आगे यह नदी अवध होती हुई छपरा के निकट गंगा में मिल जाती है। इस नदी में प्रति सैकंड १० लाख घन फुट पानी बहता है।

राप्ती (Rapti)—यह नदी नैपाल के पिछले भाग की ओर से निकल कर पहले दक्षिण और फिर पश्चिम की ओर बहती है। एक बार फिर दक्षिण की ओर मुड़कर बहराइच, गोंडा, बस्ती और गोरखपुर जिलों में ६४० किं० मी० तक बहती हुई बरहज के निकट घाघरा में मिल जाती है। इसमें छोटी नावें भींगा तक तथा बड़ी नावें गोरखपुर तक खेई जा सकती हैं। नैपाल से अनाज तथा लकड़ियाँ आदि इसी नदी द्वारा ढोई जाती हैं।

गंडक (Gandak)—इस नदी को नैपाल में **सालिग्रामी** और मैदान में **नरायनी** कहते हैं क्योंकि इसमें गोल-मटोल सालिग्राम बहुत मिलते हैं। इनकी दो मुख्य

शाखायें है—पश्चिम की ओर काली गंडक तथा पूर्व की ओर त्रिसूली गंगा जिनकी स्वयं की कई सहायक नदियाँ हैं जो महान हिमालय से निकलती हैं। काली गंडक **फोट्टू** दर्रे के निकट से निकलती है किन्तु इसमें धौलागिरी चोटी से भी जल आता है। यह एक गहरे खड्ड में होकर महान हिमालय को पार करती है तथा पूर्वी भाग में बहने लगती है। त्रिशूली गंगा गोसांईथान के उत्तर-पश्चिमी भाग से निकलती है और फिर दक्षिण की ओर बहती हुई महाभारत श्रेणी के उत्तर तक जाती है। यहाँ इसमें **बूढ़ी गंडक, मरस्यान्डी** आदि अन्य सहायक नदियाँ मिलती हैं। यहीं इसमें काली गंडक नदी भी मिलती है। अब नदी संयुक्त रूप में महाभारत श्रेणी को काटकर दक्षिणी-पश्चिमी भाग में बहती हुई शिवालिक श्रेणी को पार कर मैदान में प्रवेश करती है। यह पटना के निकट गंगा से मिल जाती है। मैदान में कहीं-कहीं तो इसकी चौड़ाई ३ कि० मी० से भी अधिक हो जाती है।

कोसी (Kosi or Kausıka)—यह गंगा की सबसे बड़ी सहायक नदी है। मुख्य धारा अरुण के नाम से गोसांईथान के उत्तर से निकलकर काफी दूर तकपूर्व दिशा में बहती है। इसका बेसीन ब्रह्मपुत्र के बेसीन के दक्षिण में है इसे यहाँ दिगंरी मैदान कहते हैं जो प्रायः ३२० कि० मी० लम्बा और सपाट है। इसमें अरुण नदी सर्पाकार बहती है। यहाँ इसमें पूर्व की ओर से **यारु** नदी आकर मिलती है अब यह सम्मिलित रूप से दक्षिण को बहती है। अरुण नदी पश्चिम में माऊंट एवरेस्ट और पूर्व में कंचन-जंघा के बीच में दक्षिण दिशा को बहती हुई आगे बढ़ती जाती है। यहाँ इसकी घाटी बहुत गहरी है। लगभग ६० कि० मी० बहने के बाद इसमें पश्चिम की ओर से **सून कोसी** और पूर्व की ओर से **तामूर कोसी** नदियाँ इसमें आकर मिलती हैं। सून कोसी की कई सहायक नदियाँ है—इन्द्रावती, भोट कोसी, ताम्बा कोसी, लीखू, दूध कोसी आदि। कोसी नदी शिवालक को पार कर छत्तर खड्ड के निकट मैदान में प्रवेश करती है तथा गंगा में मिलने के पूर्व स्वयं का भी अपना बड़ा डेल्टा बनाती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आरम्भ में कोसी महानंदा नदी से, जो दार्जिलिंग हिमालय से आती थी मिलती थी, और २०० वर्ष पूर्व कोसी पूर्णिया के ठीक पश्चिम में बहती थी किन्तु अब यह उस स्थान से १६१ कि० मी० पश्चिम की ओर हटकर बहती है। इन दो सौ वर्षों में इस नदी ने कई बार अपना मार्ग परिवर्तन किया है तथा लगभग १०,३६० वर्ग कि० मी० क्षेत्र पर बही है। अब यह गंगा से मनीहारी के ३२ कि० मी० पश्चिम की ओर मिलती है। इस नदी में बाढ़ें बहुत अधिक आती हैं जिससे अपार जन-धन की हानि होती है। अधिक बाढ़ के समय इस नदी में लगभग ७$\frac{३}{८}$ लाख क्यूसैक (Cusec) जल आता है।

पठार से निकलने वाली गंगा की सहायक नदियाँ

यद्यपि गंगा में जल मुख्यतः उन सहायक नदियों से आता है जिनका उद्गम स्थान हिमालय में है किन्तु कुछ जल पठार की नदियों द्वारा भी उसे प्राप्त होता है। ये नदियाँ क्रमशः चम्बल, बेतवा, काली सिंध, दक्षिणी टोंस और केन आदि हैं।

चम्बल (Chambal)—यह नदी मध्य प्रदेश में मऊ के निकट जनापाव पहाड़ी से निकलती है जो समुद्रतल से ६१६ मीटर ऊँची है। यह पहले उत्तर-पूर्व की ओर बहकर बूंदी, कोटा और धौलपुर में आती है फिर पूर्वी भाग में बहती हुई इटावा से ३८ कि० मी० दूर जमुना में जा मिलती है। कोटा डिवीजन में भैंसरोड़गढ़ के निकट १८ मीटर ऊँचाई से इसका जल चूलिया झरने में गिरता है। इसकी सहायक

नदियाँ काली सिंधु, सिप्ता, पारबती और बनास हैं। इस नदी में बड़ी बाढ़ें आती हैं और तब यह अपने धरातल से १३० मीटर ऊँची तक बहने लगती है। इसकी धारा ने निकटवर्ती क्षेत्रों में बड़ी गहरी खाइयाँ बना दी हैं अतः ग्वालियर से निकटवर्ती भागों में बड़े खड्ड पाये जाते हैं। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ९६५ कि० मी० है। अब इस पर चंबल जल विद्युत योजना बनाई जा रही है। काली सिंध, पार्वती और बनास नदियों का जल इसमें मिल जाने पर यह नदी विशाल बन जाती है। धोलपुर होती हुई इटावा से ६०० कि० मी० नीचे यह जमुना में मिल जाती है।

बेतवा या वत्रावती (Betwa or Vetravati)—यह मध्य प्रदेश में भोपाल से निकल कर उत्तर पूर्वी दिशा में बहती हुई भोपाल, ग्वालियर, झांसी, ओरछा और जालोन आदि जिलों में होकर जाती है। इसके ऊपरी भाग में कई झरने मिलते हैं किन्तु झांसी के निकट यह कांप के मैदान में धीमे-धीमे बहती है। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ४८० कि० मी० है। यह यमुना में हमीदपुर के निकट गिर जाती है। झांसी से २३ कि० मी० दूर परिच्छ में इसमें बेतवा नहर निकाली गई है। इसके किनारे सांची और भेलसा के प्रसिद्ध नगर हैं।

काली सिंध (Kali Sindh) **या सिंध**—यह राजस्थान में टोंक जिले में नैनवास से निकल कर ४१६ कि० मी० बहती हुई जगमनपुर से कुछ उत्तर की ओर जमुना से मिल जाती है।

दक्षिणी टोंस या तमसा नदी (Southern Tons or Tamasa)—यह नदी कैमूर की पहाड़ियों में स्थित तमाशाकुंड नामक जलाशय से निकल कर उत्तर-पूर्वी दिशा में बहती हुई सतना नदी में मिलती है। इसके ६४ कि० मी० आगे पुरवा के निकट यह मैदानी क्षेत्र में उतरती है। इसमें मार्ग में कई सुन्दर प्रपात बन जाते हैं जिनमें सबसे मुख्य बिहार का प्रपात है जिसमें जल १८० कि० मी० की चौड़ाई और ११० मीटर की ऊँचाई से गिरता है। यह नदी २६५ कि० मी० बहकर इलाहाबाद से लगभग ३२ कि० मी० दूर सिरसा के निकट गंगा से मिल जाती है।

सोन या स्वर्णनदी (Sone Or Swarnanadi)—यह नदी अमरकंटक की पहाड़ियों में नर्मदा के उद्गम स्थान के निकट से निकलती है। शीघ्र ही इसे पठार को पार कर नीचे उतरना पड़ता है अतः इसमें झरने बन जाने हैं। अब यह उत्तर-पश्चिम की ओर बहने लगती है जहाँ सोहागपुर से कुछ दूर इसमें जोहिला नदी आकर मिलती है। रीवां और बघेलखंड के बीच यह नदी ४४८ कि० मी० तक कैमूर की श्रेणी के दक्षिणी भाग में बहती है। इसी भाग में यह महानदी, बनास और गोपत नदियों से मिलती है। उत्तर प्रदेश में यह बड़े टेढ़े-मेढ़े आकार में बहती है। यहाँ इसमें रीहांड और कन्हार नदियाँ मिलती हैं। बिहार में इसका पाट ५ कि० मी० चौड़ा हो जाता है किन्तु शुष्क ऋतु में इसकी धारा बड़ी पतली हो जाती है। बाढ़ के समय इससे प्रति सैकंड ८,००,००० घन फीट पानी बहता है। इसकी बाढ़ें बड़ी ही यकायक और विनाशकारी होती हैं। १,००० वर्ष पूर्व यह नदी गंगा से पटना के नीचे मिलती थी किन्तु अब यह गंगा नदी में दीनापुर से १६ कि० मी० ऊपर की ओर गिरती है। यह ७७० कि० मी० लम्बी नदी है।

ब्रह्मपुत्र प्रणाली (Brahamputra River System)

ब्रह्मपुत्र नदी को **ब्रह्मा का बेटा** कहा जाता है। यह भारत की सबसे बड़ी नदी है। यह तिब्बत में कैलाश पर्वत से, मानसरोवर झील से ८० कि० मी० की

दूरी पर ४८६० मीटर की ऊँचाई से निकलती है। इसका उद्गम दक्षिण-पश्चिम में सतलज और सिंध के श्रोतों के निकट ही है। यह नदी सांपू नदी के नाम से लद्दाख और कैलाश की घाटियों के बीच महान हिमालय की श्रेणी के समानान्तर पूर्व की ओर १२८० कि० मी० तक बहती है। पुनः हिमालय की प्रमुख श्रेणी का चक्कर काटकर यह दक्षिण की ओर मुड़ती है और हजारों मीटर नीचे गिरकर यह आसाम के उत्तरी-पूर्वी कोने से **धिशांग** के नाम से निकलती है। यहाँ इसमें उत्तर की ओर **डिबोग** और **सेसरी** तथा दक्षिण की ओर से **नोवा डिहांग** नदियाँ इसमें आकर मिलती हैं। यहाँ से दक्षिणी-पश्चिमी दिशा की ओर बढ़ती है और इसमें स्वर्णसीरी, माद्री, धनसीरी, बर्नाड़ी, मानस, संकोंश, धारला तथा तिस्ता-नदियाँ उत्तरी किनारे से और बुरही, दिहिंग, दिसांग, दिखो, जांभी, धनसीरी, कुलसी तथा जिंजीराम दक्षिणी किनारे से मिलती हैं। गारो पहाड़ी से मुड़ कर यह दक्षिण दिशा में बहने लगती है। इसी समय इसमें इसकी सहायक शाखा जमुना निकलती है जो दक्षिण में बहती हुई ग्वालन्दो के निकट पद्मा नदी से मिलती है तथा प्रमुख धारा जो जमुना से पतली है दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर मेघना नदी में मिल जाती है। अन्त में पद्मा और जमुना दोनों नदियाँ इसमें चांदपुर के निकट आकर मिलती हैं। ये संयुक्त-धाराएें बहुत चौड़ी होकर एक बड़ी एस्चुरी बनाती हैं जिसमें बहुत से द्वीप बनते हैं। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई २,८८० कि० मी० है तथा इसका प्रवाह-प्रदेश ६३१,३८० वर्ग कि० मी० में फैला है। इसके समुद्र में गिरने के स्थान से लगभग १२८० कि० मी० ऊपर डिब्रूगढ़ तक बड़े जहाज चल सकते हैं। छोटी नावें तिब्बत तक जा सकती हैं। इस नदी में बड़ो भयंकर बाढ़ें आती हैं जिससे आसाम राज्य को जन-धन की अपार हानि उठानी पड़ती है।
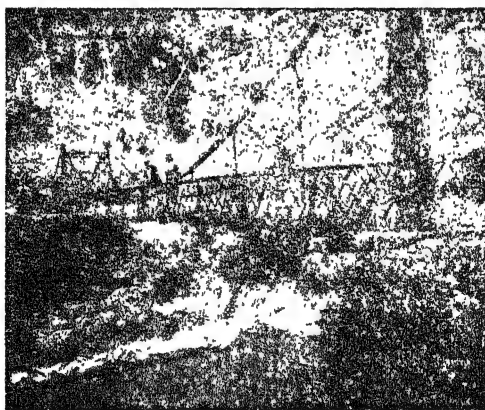
चित्र ५५. नागा पहाड़ियों में नदी पर झूलता हुआ पुल

सिंधु नदी क्रम (Indus System)

सिंध नदी—यह नदी लद्दाख श्रेणी के उत्तरी भाग से निकलती है। इसमें कैलाश चोटी के दूसरी ओर से एक सहायक नदी **सिंगी खंबाब**—और दक्षिणी ओर

से **गरतंग चू** आकर मिलती है। यह ब्रह्मपुत्र नदी से ठीक उल्टी ओर बहती है। १,०५७ कि० मी० उत्तर पश्चिम की ओर बहने के बाद यह नंगा पर्वत पर समकोण बनाती हुई मुड़ती है। तब यह अनेक चट्टानों और प्रपातों पर होती हुई अटक के पास मैदान में प्रवेश करती है। यहीं से इसकी पाकिस्तानी यात्रा आरंभ होती है। सिंधु की कई सहायक नदियाँ हैं। जांस्कर श्रेणी से निकलने वाली **जांस्कर नदी** लेह के निकट इससे मिलती है। जोजिला दर्रे के उत्तर की ओर से आने वाली नदी तथा कराकोरम के उत्तर की ओर से आने वाली **स्याँक** नदी फिरीस के निकट इससे मिलती है। **शिगार** और **गिलगिट** अन्य सहायक नदियाँ हैं जो इससे मिलती हैं। स्कार्डो के निकट यह नदी १५० मीटर चौड़ी और ३ मीटर गहरी रहती है। अटक के निकट यह समुद्र के धरातल से ६१० मीटर की ऊँचाई पर बहती है तथा ९० से २५० मीटर चौड़ी हो जाती है। मैदान का आधा भाग तय करने के बाद यह पंचनद, सतलज और चिनाब की संयुक्त धाराओं में मिलती है। चिनाब में झेलम और रावी नदियाँ आकर मिलती हैं तथा सतलज में व्यास नदी। आगे यह सिंधु के शुष्क राज्य में बहती हुई अरब सागर में गिर जाती है। ग्रीष्म में बर्फ पिघलने से इसमें प्रायः बड़ी बाढ़ें आया करती हैं। इस नदी की सम्पूर्ण लम्बाई ३,८८० कि० मी० है तथा प्रवाह क्षेत्र ९·६ लाख वर्ग कि० मी०। बाढ़ के समय इसका जल ६ से ८ मीटर ऊँचा बढ़ जाता है तथा जल की मात्रा १० लाख क्यूसेक से भी अधिक हो जाती है। इसका डेल्टा ७,८०० वर्ग कि० मी० में फैला है जिसमें अनेक पुरानी नदियों के मार्ग बने हैं।

सतलज या सतद्रु (Sutlej or Satadru)—यह नदी कैलाश पर्वत के दक्षिणी ढालों पर मानसरोवर झील के निकट ४६४० मीटर की ऊँचाई से राक्षसताल से निकलती है। तिब्बत में यह नदी बहुत ही संकड़े भाग में बहती है जहाँ इसके किनारे साधारण १८० से २१० मीटर ऊँचे हैं। राक्षसताल से शिपकी तक नदी की दिशा उत्तर-पश्चिम की ओर रहती है। यहाँ नदी की घाटी में काफी गहराई तक कांप मिट्टी पाई जाती है। यहाँ से यह दक्षिण की ओर मुड़ती है और हिमालय को काट कर गहरा खड्ड (Canyon) बनाती है, जो कहीं-कहीं ९१५ मीटर तक गहरा है। इस भाग में अनेक छोटी नदियाँ आकर इसमें मिलती हैं। इसके दोनों ओर ६०८० मीटर की ऊँची पर्वतीय दीवारें खड़ी हैं। शिपकी के पास नदी की ऊँचाई समुद्रतल से ३,०४० मीटर है। इसकी मुख्य शाखा सिप्ती नदी है जो मध्य हिमालय श्रेणियों का जल लेकर इसमें मिलती है। हिमाचल प्रदेश और कूलू घाटी में इस नदी ने भी गहरी नद-कंदरायें बनाई हैं। सिप्ती के मिलने पर सतलज में जल की मात्रा अधिक हो जाती है अतः यह बड़ी तेजी से बहती है। बशहर में रामपुर के पास यह ९१५ मीटर और बिलासपुर के निकट केवल ३०५ मीटर की ऊँचाई पर ही बहती है। रूपड़ के निकट यह शिवालिक श्रेणी का चक्कर काट कर मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ भाखड़ा नांगल बांध बनाया गया है। आगे बढ़ने पर यह जालंधर दोआब को सरहिंद पठार से अलग करती है और पश्चिम की ओर बहने लगती है। कपूरथला के दक्षिणी-पश्चिमी सिरे पर यह व्यास से मिल जाती है और मिथनकोट के निकट सिंधु से। ११ वीं शताब्दी में यह नदी सिंधु में न मिलकर बीकानेर जिले में बहने वाली हकरा अथवा सरस्वती नदी से मिलती थी। यह नदी १,४४० कि० मी० लम्बी है।

झेलम या वितास्ता (Jhelum or Vitasta)—यह नदी काश्मीर में शेष-नाग झील से निकल कर ११२ कि० मी० उत्तर-पश्चिमी दिशा में बहती हुई वूलर झील से मिलती है। इस मार्ग में यह मुख्य हिमालय और पीर पंजाल श्रेणियों के बीच बहती है। श्रीनगर से नीचे इसमें सिंधु नदी मिलती है। बारामूला के आगे यह २,१३० मी० गहरी बहती है और आगे जाकर इसमें **किशनगंगा** नदी मिल जाती है। जम्मू से आगे बढने पर यह पिंड दाननखान और चेहरा होती हुई त्रिमू के निकट चिनाब से मिलती है। सम्पूर्ण नदी की लम्बाई ७२० कि० मी० है। इससे काश्मीर राज्य को आवागमन एवं व्यापार में बड़ी सहायता मिलती है। श्रीनगर में इस पर 'शिकारा' अधिक चलाये जाते हैं तथा नावों में फल, सब्जियों और फूलों की खेती की जाती है।

चित्र ५६. श्रीनगर में झेलम पर लकड़ी का पुल

चिनाब (Chenab)—यह नदी लाहुल में बरालाचा दर्रे के विपरीत दिशा में ४,८८० मीटर की ऊँचाई से **चन्द्रा** और **भागा** नामक दो नदियों के रूप में निकलती है। यह नदियाँ बर्फीले पहाड़ों से निकलती हैं अतः बर्फ का जल पिघल कर इसमें निरन्तर आता रहता है। ये दोनों टांड़ी के निकट मिल कर चम्बा राज्य में उत्तर-पश्चिमी दिशा में लगभग १६१ कि० मी० बहती है। किश्तवार के निकट एक बड़ा तेज मोड़ लेकर यह पीरपंजाल श्रेणी में गहरी कंदरा बना कर मैदान की ओर बढ़ती है जहाँ इसकी घाटी चौड़ी हो जाती है। यहीं से इसकी पाकिस्तानी यात्रा आरम्भ होती है।

रावी (Ravi)—यह पंजाब की सबसे छोटी नदी है जो धौलाधर पर्वतमाला

के उत्तरी और पीर पंजाल श्रेणी के दक्षिणी ढालों का जल बहा कर लाती है। यह अपने मार्ग में बड़ी ऊँची श्रेणियों में होकर गहरी कन्दरायें बनाती हुई बहती है। फिर यह बसोली के निकट मैदानी भाग में बहने लगती है। इसकी लम्बाई ७२० कि० मी० है।

व्यास (Beas)—रावी के स्रोत के निकट से ही यह नदी भी निकलती है। अपने उद्गम से ६ कि० मी० दूर यह कोटी दर्रे से होकर बहती है जो लगभग से ६ मीटर चौड़ा और १८० मीटर लम्बा है। धौलाधर पर्वतमाला को काट कर यह कूलू, मंडी और कांगड़ा जिलों में बहती हुई कपूरथला तथा अमृतसर होती हुई कपूरथला के निकट सतलज से मिल जाती है। यह ४६४ कि० मी० लम्बी है।

दक्षिण भारत की नदियाँ (Rivers of Peninsular India)

दक्षिण के पठार पर बहने वाली नदियों में अनेक विशेषतायें पाई जाती हैं, जैसे :—

(१) बड़े मैदानों की अपेक्षा यहाँ की नदियाँ छोटी और कम संख्या में हैं क्योंकि यहाँ वर्षा कम होती है। इसलिये इन नदियों में गरमी के मौसम में पानी कम रहता है और वे पहाड़ी प्रदेश पर होकर बहती है इसलिये कृष्णा, कावेरी, गोदावरी आदि नदियाँ भी नावों के अधिक काम की नहीं हैं।

(२) मार्च से जून तक जब मैदान की नदियों में हिमालय का बर्फ गल कर आता है तो उन दिनों पठार की नदियाँ सूख जाती हैं क्योंकि इनके उद्गम स्थान बर्फ से ढके पर्वतों में नहीं हैं।

(३) धरती पथरीली होने के कारण पठार पर गिरने वाला वर्षा का जल धरती में नहीं सोखता परन्तु शीघ्र ही नदियों में बह जाता है। यही कारण है कि पठार की नदियों में एक दम बाढ़ें आ जाती हैं और वे बहुत शीघ्र उतर भी जाती हैं। चम्बल, सोन और महानदी गहरी और आकस्मिक बाढ़ों के लिये प्रसिद्ध हैं।

(४) पठार के धरातल के ढालू और चटियल होने के कारण नदियों से सिंचाई के लिये नहरें नहीं निकाली जा सकतीं।

(५) पठार की प्रायः सभी नदियाँ बड़ी पुरानी हैं। सैकड़ों वर्षों से यह नदियाँ अपने मार्ग को काटती आ रही हैं। अतः अब इनकी काटने की शक्ति नष्ट प्रायः सी हो चुकी है इनकी घाटियाँ चौड़ी किन्तु छिछली हैं।

दक्षिणी भारत में अनेक छोटी बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं। इनमें से अधिकांश बंगाल की खाड़ी में, कुछ अरब सागर में और कुछ उत्तर की ओर बहती हुई गंगा नदी-प्रणाली में गिरती हैं। कुछ नदियाँ अरावली तथा मध्य प्रदेश के पहाड़ी भागों से निकल कर कच्छ के रन अथवा खंभात की खाड़ी में गिरती हैं। नीचे की तालिका में इन नदियों का प्रवाह क्षेत्र आदि बताया गया है :—

	नदियाँ	लम्बाई कि० मी०	प्रवाह क्षेत्र (वर्ग कि० मी०)
(क) बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ	दामोदर	६००	११,०००
	स्वर्णरेखा	४८०	—

	ब्राह्मणी	४१६	—
	महानदी	८८०	११३,९६०
	गोदावरी	१४४०	२९०,०००
	कृष्णा	१२८०	२६०,०००
	कावेरी	७६०	७२,५२०
	पेन्नार	९७०	
(ख) अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ :	नर्मदा	१२८०	९३,२४०
	ताप्ती	७००	—
(३) खंभात की खाड़ी या कच्छ के रन में गिरने वाली नदियाँ	माही	५६०	
	बनास	२७०	
	लूनी	३२०	
	साबरमती	३२०	
(४) गंगा नदी प्रणाली में गिरने वाली नदियाँ :	चम्बल, काली सिंध, बेतवा, केन, दक्षिणी टोंस, सोन	९६०	

बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ

गोदावरी (Godavari)—यह नदी दक्षिणी पठार की सबसे बड़ी नदी है। यह पश्चिमी घाट में महाराष्ट्र राज्य में नासिक से दक्षिण-पश्चिम की ओर ६४ कि० मी० दूर त्र्यंबक गांव से निकलती है। अपने ऊपरी भाग में यह नदी पूर्व की ओर बहत है और उथली है। यहाँ दक्षिण में गोदावरी के समानान्तर बहने के बाद मंजरा नदी दाहिने किनारे पर मिल जाती है फिर यह नदी दक्षिण पूर्व की ओर मुड़ती है। यहीं इसके बांयें किनारे पर **वैनगंगा, वर्धा** और **पैनगंगा** का संयुक्त जल गोदावरी में मिल जाता है। मोड़ के कुछ आगे **इन्द्रावती** नदी दुर्गम प्रदेश को पार करती हुई गोदावरी से बांये किनारे पर आ मिलती है। इनकी पहाड़ियों में गोंड़ लोग रहते हैं। इन्द्रावती के संगम से उत्तर-पूर्व की ओर **सवरी** नदी इसमें मिलती है। इन नदियों के कारण गोदावरी में जल की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। जब यह पूर्वी घाट की ओर पहुँचती है तो आंध्र राज्य के ३२ कि० मी० में इसकी घाटी तंग हो जाती है। यहाँ पोलावरम के निकट यह कंदरा में होकर बहती है। पूर्वी घाट को पार करने के बाद अंतिम ९६ कि० मी० में यह फैलकर इतनी चौड़ी हो जाती है कि इसमें प्रायः द्वीप बन जाते हैं। राजमहेन्द्री के निकट गोदावरी की धारा २७४५ मीटर चौड़ी है। यहीं इसके आर पार लगभग ४ कि० मी० लम्बा एनीकट बांध बनाया गया है। इससे तीन नहरें निकाल कर डेल्टा में लगभग ८ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। इस नदी में २५५ कि० मी० तक नावें चल सकती हैं। यह १,४४० कि० मी० लम्बी है और इसका वार्षिक प्रवाह लगभग ८ करोड़ ४० लाख एकड़ फीट है किन्तु इसमें से अभी तक १४ प्रतिशत जल का ही उपयोग किया गया है। यह हिन्दुओं की पवित्र नदी है।

महानदी (Mahanadi)—यह नदी मध्य प्रदेश के रायपुर जिले में सिहावा

के निकट से निकलती है और दक्षिण पूर्व का ओर बहती है। यह नदी मध्य प्रदेश के आधे भाग और आंध्र प्रदेश के कुछ भाग का जल लेकर लगभग ८८० कि० मी० बह-

चित्र ५७. पूर्वी घाट के निकट गोदावरी नदी

कर उड़ीसा में बड़ा डेल्टा बनाती है। डेल्टा के पास ही बाईं ओर से ब्राह्मणी नदी आ मिलती है। यह नदी **कोयल** और **साँख** नदियों से मिलकर बनी है जो बोनाई, तलचर और बालासोर जिले में होकर बहती है तथा आगे जाकर **वैतरणी** नदी से मिल जाती है। वैतरणी उड़ीसा की क्योंझार पहाड़ियों से निकलती है और दक्षिण पूर्व की ओर बहती है। वैतरणी और ब्राह्मणी दोनों नदियाँ संयुक्त होकर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। इनका डेल्टा बड़ा उपजाऊ है। महानदी में सम्बलपुर के निकट हीराकुंड योजना कार्यान्वित की जा रही है। महानदी का जल सिंचाई के भी काम में आता है। इसका अनुमानित प्रवाह ७ करोड़ ४० लाख एकड़ फीट है। हीराकुंड योजना के बन जाने पर इसके १ करोड़ १० लाख एकड़ फीट जल का उपयोग हो सकेगा।

कृष्णा (Krishna)—यह महाबलेश्वर के पास पश्चिमी घाट से १,३७० मीटर की ऊँचाई से निकलती है। इसका निकास अरब सागर से केवल ४८ कि० मी० दूर है। यहाँ से इसकी तेज धारा दक्षिण की ओर बहती है। आगे चलकर यह पूर्व की ओर मुड़ती है। इस भाग में कृष्णा और इसकी सहायक नदियाँ गहरी तली में बहती हैं जिससे इनका जल सिंचाई के काम में नहीं आ सकता। वर्षा ऋतु में इनकी सहायक नदियाँ बाढ़ से उमड़ पड़ती हैं। ऊँचे पठार को पीछे छोड़कर कृष्णा शोलापुर और रायचूर के दोआबों में पहुँचती है। शोलापुर दोआब भीमा और कृष्णा के मिलने से बना है। **भीमा** नदी महाराष्ट्र के अहमदनगर, पूना और शोलापुर जिलों का पानी बहा लाती है। रायपुर दोआब तुंगभद्रा ने कृष्णा से मिलकर बनाया है। **तुंगभद्रा** उत्तरी मैसूर, बलारी और कर्नूल जिले का पानी लाती है। कुछ आगे बढ़ने पर कृष्णा में मूसी नदी मिलती है। **मूसी** के किनारे ही हैदराबाद नगर बसा है जो आन्ध्र राज्य की राजधानी है। पूर्वी घाट की पहाड़ियों के पास पहुँचने पर कृष्णा दो प्रधान धाराओं में बँटकर समुद्र में गिरती है। कर्नूल में इसकी तली पथरीली है और इसका जल निर्मल है। डेल्टा के प्रदेश में यह अपने साथ मिट्टी बहा लाती है इससे इसका पानी मटियेला हो जाता है। विजयवाड़ा के पास दो पहाड़ियों के बीच में इसकी

चौड़ाई ५,४७२ मीटर है। विजयवाड़ा के नीचे कृष्णा की धारा मन्द पड़ जाती है। इसका पाट ६ से ८ कि० मी० चौड़ा हो जाता है। विजयवाड़ा के पास कृष्णा एनीकट बनाकर दो नहरें निकाली गई हैं। इन नहरों से कृष्णा डेल्टा की सवा दो लाख एकड़ जमीन सींची जाती है। कृष्णा के निचले भाग में वर्ष के छः महीनों में नावें चल सकती हैं। इसके जल से डेल्टा की भूमि सींची जाती है। इस नदी का वार्षिक प्रवाह ५ करोड़ एकड़ फीट है किन्तु अभी तक इसके केवल १८ प्र० श० का ही उपयोग किया गया है। यह नदी १,२८० कि० मी० लम्बी है।

पेन्नार (पिनाकिनि) (Pennar)—पिनाक अथवा शिव धनुष के आकार का मार्ग होने से दक्षिण भारत की दो नदियों को पिनाकिनि कहते हैं। यह नदी मैसूर राज्य में नन्दीदुर्ग पहाड़ी से निकलती है। यह पूर्व की ओर कर्नाटक में बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। उत्तर पिनाकिनि नन्दी दुर्ग से उत्तर पश्चिम केशव पहाड़ी से निकली है। कोलार जिले में उत्तर की ओर बह कर आन्ध्र राज्य में पूर्व की ओर मुड़ती है। नेलोर नगर से ३२ कि० मी० की दूरी पर कई शाखाओं में बँट कर यह बंगाल की खाड़ी में गिरती है। नदी का समस्त मार्ग ५७० कि० मी० लम्बा है। **पाआघ्न** और **चित्रावती** इसकी सहायक नदियाँ हैं। वर्षा में पिनाकिनि में अचानक बाढ़ आ जाती है। नाव चलाने के लिए यह नदी अनुकूल नहीं है। पर इसका पानी सिंचाई के काम में आता है। सिंचाई के लिए तालाबों और छोटी नालियों को रोक लिया जाता है। नेलोर नगर के सामने डेल्टा प्रदेश को सींचने के लिए नदी में आर-पार जल-तल पर १३५ मीटर लम्बी दिवाल बनी है।

दक्षिण पिनाकिनि—चेन्नाकेशव पहाड़ी से निकल कर बंगलौर जिले में होती हुई मद्रास राज्य में कड्डालूर के उत्तर में फोर्टसेन्ट डेविड के पास समुद्र में गिरती है। यह नदी ४०० कि० मी० लम्बी है। बंगलौर जिले में इसका ८० प्रतिशत पानी तालाबों में सिंचाई के लिए उपयोग में लिया जाता है।
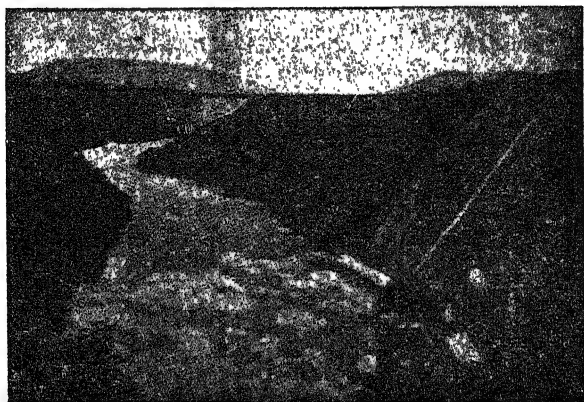
चित्र ५८. शक्ति उत्पादन केन्द्र के निकट कावेरी नदी

कावेरी (Cauvery)—कावेरी नदी कुर्ग से निकलती है और दक्षिण पूर्व की ओर मैसूर और मद्रास राज्यों में होकर बहती है। **भवानी, नोयिल** और **अमरावती**

आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं। यह नदी ७६० कि० मी० लम्बी है। मैसूर राज्य में इसके किनारों पर उपजाऊ भूमि है। इसलिए इसके बहाव को रोकने के लिए दस-बारह जगह पर बाँध बनाये गये हैं। मैसूर राज्य में इसने श्रीरंगपट्टम और शिवसमुद्रम् द्वीपों को घेर रखा है। यह दोनों द्वीप पवित्र गिने जाते हैं। स्वयं कावेरी भी दक्षिणी गंगा कहलाती है। शिवासमुद्रम् के नीचे कावेरी की दोनों शाखाओं में कई सुन्दर प्रपात हैं। झरनों की सहायता से ५,४७२ मीटर नीचे उतर कर कावेरी नदी मद्रास राज्य में प्रवेश करती है। इसके डेल्टा से ही तंजौर का उपजाऊ जिला बना है जो दक्षिण भारत का बगीचा कहलाता है।

तुंगभद्रा (Tungbhadra)—यह तुंगा और भद्रा नदियों के मिलने से बनी तुंगा मैसूर राज्य में पश्चिमी घाट की **गंगामूल** चोटी के नीचे से निकलती है और पास ही काडूर जिले से **भद्रा** निकलती है। शिमोगा जिले में **कुदाली** में दोनों का संगम है। मानसूनी वर्षा ऋतु में जून से अक्टूबर तक तुंगभद्रा की संयुक्त धारा आध मील से अधिक चौड़ी हो जाती है। इसमें पश्चिमी घाट के लट्ठों के बेड़े बहकर पूर्वी मैदानी भाग में आते हैं। इसका जल सिंचाई के काम आता है। हाल मे तुंगभद्रा योजना के बन जाने से सिंचाई का क्षेत्र और अधिक बढ़ गया है। अब से प्रायः ४ सौ वर्ष पूर्व सिंचाई के शिए विजयनगर के राजाओं ने तुगभद्रा के ऊपर सात बड़े बाँध बनवाये थे। **कुमदवती** और **वर्धा** इसके बाएँ किनारे पर मिलती हैं। **हग्गरी** और **हिन्द्र** दायें किनारे पर मिलती हैं। ६४० कि० मी० बहने के बाद तुंगभद्रा कर्नूल नगर से २३ कि० मी० उत्तर पूर्व की ओर कृष्णा में मिल जाती है। पथरीली तली होने के कारण गरमी में यहाँ बडी नावें नहीं चल सकती हैं। केवल टोकरी के आकार की छोटी नावें चलती हैं। हरिहर और कर्नूल इसके किनारे के प्रमुख नगर हैं। तुंगभद्रा में मगर बहुत रहते हैं।

अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ

माही (Mahi)—नर्मदा ताप्ती के बाद यह गुजरात में तीसरी बड़ी नदी है। यह विन्ध्याचल के पश्चिमी सिरे के पास समुद्र तल से ५४५ मीटर की ऊँचाई पर अमझरा में मेहद झील से निकलती है। आरम्भ में यह विन्ध्या श्रेणी के समानान्तर बहती है। यहाँ इसकी घाटी गहरी है। इसके दोनों ओर ३०० मीटर ऊँचे किनारे खड़े हैं। पूर्व की ओर से इसमें कई सहायक नदियाँ मिलती हैं। पश्चिमी शुष्क भाग से कोई सहायक नदी नहीं आती है। २२५ कि० मी० के बाद बागर की पहाडियाँ इसे पश्चिमी की ओर मोड़ देती हैं। ४० कि० मी० के बाद फिर इसे मेवाड की पहाड़ियाँ दक्षिण-पश्चिम की ओर मोड़ देती हैं। इसी दिशा में बह कर यह खम्भात की खाड़ी में गिरती है। निकास के १६१ कि० मी० बाद इसकी चौड़ाई १८० मीटर और गहराई ०.३० मीटर हो जाती है। बेरा खाड़ी तक इसमें ज्वार आता है। अन्तिम ७२ कि० मी० में इसकी साधारण गहराई ०.५ मीटर और चौड़ाई १८६ मीटर हो जाती है। खम्भात की खाड़ी में इसके मुहाने की चौड़ाई कस्बे से कावी तक ७½ कि० मी० है। ज्वार के समय मुहाने से ऊपर की ओर फेन भरे हुये पानी की दीवार ३२ कि० मी० ऊपर तक पहुँचती है। पड़ौस की भूमि से नदी की तली इतनी नीची है कि इसका पानी सिंचाई के काम नहीं आ सकता। यह नदी ५६० कि० मी० लम्बी है।

नर्मदा (Narmada)—अमरकंट से निकल कर नर्मदा एक तंग गहरी और

सीधी घाटी में पश्चिम की ओर बहती है। नर्मदा के उत्तर में विन्ध्य और दक्षिण में सतपुड़ा की ऊँची दीवार खड़ी हुई है। इस भाग में नर्मदा की धारा बड़ी तेज और निर्मल है। जबलपुर के नीचे संगमरमर की चट्टानों और धूँआधार प्रपात का दृश्य बड़ा मनोहर है जो ९ मीटर ऊँचाई से गिरता है। मध्य प्रदेश छोड़ने के बाद नर्मदा बीच में चौड़ी हो जाती है लेकिन इसकी धारा मन्द पड़ जाती है। भड़ौंच के नीचे इसकी एस्चुअरी (खुला मुहाना) २७ मी० चौड़ी है। यहाँ ९७ कि० मी० तक बड़ी नावें चलती हैं। पर नर्मदा का उत्तरी भाग नाव चलाने और सिंचाई करने के लिए अनुकूल नहीं है। गंगा की भाँति नर्मदा नदी भी पवित्र मानी जाती है। होशंगाबाद आदि बहुत से स्थानों पर नर्मदा नदी के किनारे सुन्दर घाट और मनोहर मन्दिर बने हैं। यह नदी १,२८० कि० मी० लम्बी है।

ताप्ती (Tapti)—ताप्ती नदी मध्य प्रदेश के बेतूल जिले में मुल्ताई (मूलताप्ती) नगर के पास से निकलती है। ताप्ती नदी की घाटी सतपुड़ा के दक्षिण में है। वह मध्य प्रदेश का जल लेकर ७२० कि० मी० बहने के बाद खम्भात की खाड़ी में गिरती है। खानदेश में घुसने के पहले इसमें पूर्वी नदी मिलती है। छोटी छोटी नावें इस नदी में सूरत तक चलती हैं। इसका वार्षिक प्रवाह १ करोड़ ७० लाख एकड़ फीट है। यह नदी ७०० कि० मी० लम्बी है।

उत्तरी और दक्षिणी नदियों की तुलना

उत्तरी और दक्षिणी भारत की नदियों में निम्न अंतर पाया जाता है :—

(१) हिमालय से निकलने वाली नदियाँ नये पहाड़ों से निकलती हैं इसलिये अपने पहाड़ी मार्ग में उनकी धारा बहुत तेज होती है। वे नदी के विकास में अभी नये और अपरिपक्व अवस्था में हैं। ये अभी भी अपने मार्ग की चट्टानों को काटने का कार्य कर रही हैं और अपनी धारा को कम तेज कर रही हैं। जबकि दक्षिण की नदियाँ अधिक पुरानी हैं, उनकी घाटियाँ चौड़ी और छिछली हैं तथा झरनों को छोड़कर इनका ढाल बहुत ही साधारण है। ये नदियाँ हर अवस्था में भूमि अपक्षरण के अंतिमकाल या आधार-तल को पहुँच चुकी हैं।

(२) हिमालय की नदियाँ अपने मार्ग की श्रेणी में विशेषता रखती हैं। इनके मार्ग में पर्वतीय, मैदानी और डेल्टा आदि की अलग-अलग अवस्थाएँ पाई जाती हैं किन्तु दक्षिणी नदियों का मैदानी मार्ग बहुत ही थोड़ा है। अतः हमें हिमालय से निकलने वाली नदियों से सिंचाई और नाव चलाने का अच्छा साधन प्राप्त होता है किन्तु दक्षिण की नदियाँ इस दृष्टि से बिल्कुल व्यर्थ हैं केवल डेल्टाओं में ही नावें चलाई जा सकती हैं अथवा सिंचाई के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है।

(३) हिमालय की नदियों को बड़ी बड़ी हिमानियों से अनंत राशि में जल मिलता है जब कि दक्षिणी नदियाँ वर्षा जल से ही पूरित रहती हैं। अतः उत्तरी नदियाँ प्रायः वर्ष भर ही भरी रहती हैं किन्तु दक्षिणी नदियाँ गर्मी में सूख जाती हैं और वर्षा ऋतु में उनमें भयंकर बाढ़ें आ जाती हैं। अस्तु, हिमालय से निकलने वाली नदियों के तट पर अनेक स्थानों पर प्रमुख नगर और व्यापारिक केन्द्र अवस्थित हैं किन्तु दक्षिणी नदियों के तट पर नगरों का प्रायः अभाव सा है।

(४) हिमालय से निकलने वाली नदियाँ मुलायम चट्टानों और मिट्टी पर बह कर आती हैं अतः वे अपने साथ उम्दा चिकनी मिट्टी और कीचड़ बहा ले आती

बाढ़ नियंत्रण (Flood Control)—कृषि उद्योग की सफलता एवं विकास के लिए जितनी अवर्षा से रक्षा करने के लिए सिंचाई के साधनों की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता फसलों की बाढ़ से रक्षा करने की है। भारत सरकार ने सन् १९५४ में बाढ़ नियन्त्रण कार्यक्रम बनाया है जिसके तीन खण्ड हैं:—तत्कालीन, अल्प-कालीन और दीर्घकालीन। तत्कालीन खंड की अवधि २ वर्ष है जिसमें बाढ़ सम्बन्धी गहन खोज और आँकड़ों को एकत्रीकरण का समावेश था। दूसरे खंड की अवधि अगले ५ वर्ष की थी जिसमें बाढ़ सुरक्षा साधनों को कार्यान्वित करना था, जैसे—तटबन्दी और नहरों में सुधार। तीसरे रूप में कुछ नदियों की सहायक नदियों पर संग्राही-तालाब तथा आवश्यक अतिरिक्त तटबन्दी का निर्माण होना था। अभी तक बाढ़ नियंत्रण का जो कार्य हुआ है उसमें विभिन्न राज्यों में ३,८०० मील लम्बी तट-बंदियां और ७०० मील लम्बी नालियाँ बनाई गई हैं तथा ४,३५२ गाँवों का धरातल ऊँचा किया गया है।

उच्च-स्तरीय समिति (High Level Committee on Floods)—बाढ़ नियन्त्रण की समस्या का विचार कर रक्षात्मक साधनों पर सलाह देने के लिए एक उच्च स्तरीय समिति सन् १९५७-५८ में बनाई गई। इसने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि बाढ़-नियन्त्रण के लिए पूरे देश को चार क्षेत्रों में बाँटा गया है:—(१) उत्तर-पश्चिम की नदियों का क्षेत्र, (२) गंगा नदी क्षेत्र, (३) ब्रह्मपुत्र नदी क्षेत्र, और (४) दक्षिण की नदियों का क्षेत्र। काश्मीर में बाढ़ का मुख्य कारण यह है कि झेलम का पाट और मुहाना चौड़ा न होने के कारण उसका पानी चारों ओर फैल जाता है। पंजाब में जल की निकासी ठीक से नहीं होती। गंगा की घाटी में भी मुख्य समस्या यह है कि पानी चारों ओर भर जाता है और गाँव डूब जाते हैं। कहीं-कहीं किनारे के कटाव से और पानी की निकासी ठीक न होने के कारण भी क्षति होती है। कोसी नदी की धारा बदलती रहती है और इससे बहुत नुकसान होता है। सुन्दरवन के क्षेत्र में बाढ़ के साथ ज्वार आने के कारण किनारे धंसक जाते हैं। ब्रह्मपुत्र तथा उसकी सहायक नदियों की बाढ़ से किनारे बहुत कटते हैं और कभी-कभी भूमि पानी में डूब जाती है। दक्षिण में मुख्य समस्या नदियों के मुहानों के आस-पास के क्षेत्र का जलमग्न होना है।

समिति ने बाढ़ से होने वाली क्षति का अनुमान लगाकर बताया कि यदि बाढ़ न आए तो देश की राष्ट्रीय आय प्रति वर्ष एक अरब रुपये बढ़ सकती है। सबसे अधिक क्षति असम में होती है।

समिति के सुझाव—(१) क्षेत्र विशेष के लिए अलग-अलग बाढ़-नियन्त्रण योजनायें बनाई जानी चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो इन योजनाओं का सिंचाई और बिजली योजनाओं से मेल बैठाना चाहिए। बहुमुखी योजनाओं पर विचार के समय उनके बाढ़ रोकने के पहलू पर भी विचार होना चाहिए।

(२) बाढ़ नियन्त्रण के लिए तटबन्ध बहुत उपयोगी हो सकते हैं यदि उन्हें ठीक तरीके से बनाया जाये, उनकी डिजाइन सही हो और वे उपयुक्त स्थानों पर ही बनाये जायें, किन्तु तटबन्धों के साथ-साथ बाढ़ का पानी इकट्ठा करने के लिए जलाशय आदि भी बनाये जाने चाहिए।

(३) समिति के अनुसार बाढ़ रोकने के कई उपाय हैं, जैसे—बाढ़ का पानी जमा करने के लिए जलाशय बनाना, धारा पर नियन्त्रण, गाँवों, बस्तियों आदि को

ऊँचाई पर बसाना और पानी के बहाव का ठीक प्रबन्ध करना आदि क्षति घटाने के भी कई उपाय हैं, जैसे—लोगों को बाढ़ क्षेत्रों से हटाकर दूसरी जगहों में बसाना, बाढ़ की पहले से सूचना देना और बाढ़ की हानि से फसलों का बीमा करना।

(४) बाढ़-नियन्त्रण के लिए नदी के तल में बालू व मिट्टी न जमने दी जाए। इसलिए भू-संरक्षण बहुत आवश्यक है।

(५) भूमि का कटाव रोकने के तरीकों में मेढ़बन्दी, भटकों या कटी जमीन को भरना और उन पर पेड़ लगाना, सीढ़ीनुमा खेत बनाना आदि हैं। ये काम बहु-मुखी बाँधों के क्षेत्र में, हिमालय की तराई में, गंगा के मैदान में और दक्षिण की पठारी भूमि में होने चाहिए।

(६) जहाँ बाढ़ से खतरा बहुत हो उसके लिए तात्कालिक उपाय किए जाएँ, इसके बाद ऐसे उपायों और कामों को हाथ में लेना चाहिए जिनसे आगे चल कर बाढ़ रुकने और अन्न की पैदावार बढ़ने में सहायता मिले।

झीलें (Lakes)—भारत की अधिकांश झीलें उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में ही पाई जाती हैं। यहाँ निम्न प्रकार की झीलों के उदाहरण मिलते हैं:—

(१) **भूमि के धरातल पर परिवर्तन होने से बनी झीलें** (Tectonic Lakes)—इस प्रकार की रचना मुख्यतः भूपृष्ठ के ऊँचे नीचे होते रहने से जो विशाल आखात बन जाते हैं उनमें जल भरने से होती है। अधिकतर झीलें भूपृष्ठ के फटने से उत्पन्न होती हैं। काश्मीर की बनी झीलें इसका मुख्य उदाहरण हैं।

(२) **ज्वालामुखी उद्‌गार से बनी झीलें**—ज्वालामुखी के उद्‌गार शान्त हो जाने पर उनके मुख में वर्षा जल के एकत्रित होने से झीलें बन जाती हैं। महाराष्ट्र के बुलढाना जिले में लूनार झील इसी प्रकार बनी है।

(३) **अनूप झीलें**—समुद्र में गिरने वाली नदियों के मुहाने पर समुद्र की धारायें या हवाएँ बालू मिट्टी के टीले बना कर जल के एक क्षेत्र को समुद्र से अलग कर देती हैं। ऐसे अनूप भारत में निचले बलुही समुद्र तटों पर बहुतायत से मिलते हैं। पूर्वी तट पर उड़ीसा की चिल्का और नैलोर की पुलीकट झीलें इसी प्रकार बनी हैं। पश्चिम तट पर केरल राज्य में भी असंख्य अनूप पाये जाते हैं। ये अनूप प्रायः छिछले होते हैं।

(४) **हिमानी द्वारा बनी झीलें**—हिमानी द्वारा बनाये गये गड्ढों में जब हिमानियाँ पहाड़ी भागों को छोड़ कर नीचे की ओर उतरने लगती है तो वे अपने मार्ग में चट्टानों की कांट-छांट करती रहती हैं। इससे भूतल पर इस छीलन के जमा हो जाने से बड़े-बड़े गड्ढे बन जाते हैं। यही गड्ढे कालांतर में बर्फ के पिघले हुए जल के भर जाने पर झीलें बन जाते हैं। इस प्रकार की झीलें अधिकतर कुमायूं हिमालय में पाई जाती हैं। इनके मुख्य उदाहरण राकसताल, नैनीताल, नौकुछिया ताल, भीम-ताल आदि हैं।

कभी-कभी हिमानियों में मिले हुए कंकड़ पत्थर का ढेर भी हिमानियों के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है जिसके फलस्वरूप हिमानियों का जल रुक कर झीलें बन जाती हैं। ऐसी झीलें **मोरेन झीलें** (Moraine Lakes) कहलाती हैं। पीर-पंजाल श्रेणी के उत्तरी-पूर्वी ढालों पर इस प्रकार की कई झीलें बनी हैं।

(५) **वायु द्वारा निर्मित झीलें** (Aeolian Lakes)—इस प्रकार की झीलें

मुख्यत: पश्चिमी राजस्थान के थार के मरुस्थल में पाई जाती हैं इन्हें **ढांढ़** कहते हैं। यह झीलें अस्थायी होती हैं। इस भाग में बालू मिट्टी के टीले अधिक पाये जाते हैं। इन टीलों के बीच में नीची भूमि भी मिलती है। वर्षा के दिनों में इस भूमि में जल भर जाता है और झीलें बन जाती हैं।

(६) **घुलन क्रिया द्वारा निर्मित झीलें** (Dissolution Lakes)—इस प्रकार की झीलें उन भागों में पाई जाती हैं जहाँ की चट्टानें चूने, जिप्सम या नमक की बनी होती हैं। चूने की चट्टानों की कंदराऐं जब पृथ्वी की हलचल द्वारा नीचे धंस जाती हैं तो उनमें जल भर जाने से झीलें बन जाती हैं। भारत में इस प्रकार की कुछ झीलें कुमायूं हिमालय में पाई जाती हैं।

(७) **भूमि के खिसकाव की झीलें** (Rock-fall Basins)—वायुमंडल की प्रतिक्रिया से चट्टानों के नष्ट भ्रष्ट और जीर्णशीर्ष अंश घाटियों में पर्वतों के ढालों पर जमा हो जाते हैं किन्तु कभी-कभी यह जमाव सम्पूर्ण रूप से नीचे खिसक जाता है इससे नदी घाटी में जलधारा का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और धारा का जल जलाशय के रूप में बदल जाता है। सन् १८९३ ई० मे हिमालय में अलकनन्दा नदी के मार्ग में एक बड़े पहाड़ी ढाल से चट्टानों के खिसक पड़ने से गोहना नामक झील बन गई थी। इस प्रकार की झीलें बहुधा अस्थायी होती है और इनके टूट जाने से नीचे के प्रदेशों में बाढ़ें आ जाती हैं।

(८) **नदियों के मार्ग में झीलों की रचना**—कई स्थानों पर रुकावट पड़ने से जल के जमा हो जाने से ऐसी झीलें बनती हैं अथवा मैदानी प्रदेशों में जब नदी धीमे-धीमे बहती है तो उसमें मुड़ाव या घुमाव पड़ जाते हैं। जब कभी इन घुमावों के बीच का स्थल कट जाता है तो नदी घुमाव को छोड़ कर पुन: सीधी बहने लगती है। इन मुड़ावों में बाढ़ के समय जल भर जाता है और झीलें बन जाती हैं। गंगा की ऊपरी घाटी में इस प्रकार की झीलें पाई जाती हैं।

(क) कुमायूं हिमालय की झीलें

भारत में सबसे अधिक झीलें कुमायूं हिमालय में हैं। इस भाग में सात बड़ी-बड़ी झीलें—**नैनीताल, भीमताल, नौकुछिया ताल, समताल, पूना ताल, मालवा ताल और खुरपा ताल**—हैं।

(१) **भीमताल** इन सबमें बड़ी है। यह उत्तर प्रदेश में काठगोदाम से १० कि० मी० उत्तर की ओर है। इसकी आकृति त्रिभुजाकार है। उत्तर से नौली गदना नामक छोटे से नाले का पानी इस झील में आता है। इसकी लम्बाई १,६७४ मीटर, चौड़ाई ४४७ मीटर और गहराई २६ मीटर है। यह झील समुद्र से १,३३२ मीटर ऊँची है। इसमें से छोटी-छोटी नहरें निकाल कर सिंचाई भी की जाती है। इसके बीच में एक छोटा-सा टापू है जो ज्वालामुखी चट्टानों का बना है।

(२) **नैनीताल झील** समुद्रतल से १,९३७ मीटर ऊँची है। इसके चारों ओर केवल दक्षिणी पूर्वी भाग को छोड़ कर जिस तरफ से इसमें से बालिया नदी निकलती है—ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। इस झील के बीच में एक छोटी-सी चट्टान है जो इसे दो भागों में बाँट देती है। सम्पूर्ण झील १,४१० मीटर लम्बी, ४४५ मीटर चौड़ी, २६ मीटर गहरी है। इसके चारों ओर का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। इसमें कई प्रकार की मछलियाँ भी मिलती हैं।

(३) **नौकुछिया ताल** भीमताल से ४ कि० मी० दक्षिण पूर्व की ओर है। यह समुद्रतल से १,२९२ मीटर ऊँची तथा ९३६ मीटर लम्बी, ६८० मीटर चौड़ी और ४० मीटर गहरी हैं। यह इस प्रदेश की सबसे गहरी झील है।
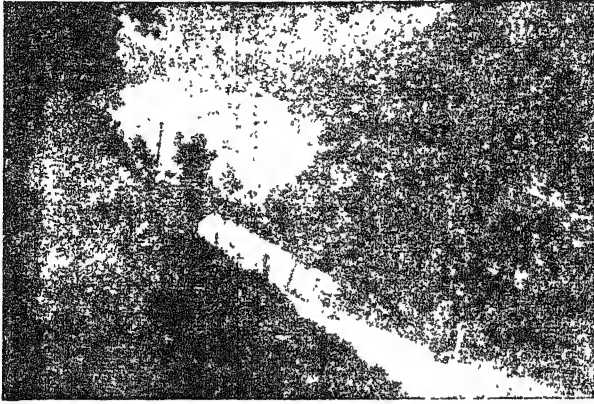
चित्र ५९. नैनीताल झील

(ख) काश्मीर की झीलें

काश्मीर राज्य में भी—जहाँ पंजाब हिमालय फैले हैं—दो सुन्दर झीलें हैं।

(१) **बूलर झील**—यह काश्मीर की सबसे बड़ी झील है। यह १५ कि० मी० लम्बी तथा १० कि० मी० चौड़ी और उत्तर-पूर्व की ओर ४ मीटर गहरी है। किन्तु अब नदी की मिट्टी इसमें भरती जा रही है। इसके चारों ओर चन्द्रमा के आकार में पहाड़ फैले हैं। झील के उत्तरी किनारे पर कई छोटे-छोटे गांव भी बसे हैं।

(२) **डल झील**—यह श्रीनगर के पूर्व की ओर है। इसमें सोतों और नालों से पानी आता है। यह झील ८ कि० मीटर लम्बी और ३ कि० मीटर चौड़ी है। कई जगह दलदल होने के कारण यह कम गहरी है। इसके तीन ओर ९०० से १,२०० मीटर ऊंचे पर्वत हैं। बूलर झील की भांति इसके किनारे पर भी कई गांव हैं जिनमें सैंकड़ों फलों के बाग हैं।

(ग) राजस्थान की झीलें

राजस्थान की अधिकतर झीलें खारी हैं। ये झीलें भीतरी बहाव के क्षेत्रों में हैं जहाँ छोटी छोटी नदियाँ आकर समाप्त प्रायः हो जाती हैं। यहाँ की सबसे बड़ी झील सांभर है जिसमें मेंढा, रूपनगर, खारी और खंडेल नदियाँ आकर गिरती हैं। इसका बहाव क्षेत्र लगभग ५,००० वर्ग कि० मी० है। सांभर झील साधारणतः १२९ कि० मी० लम्बी, १३ कि०मी० चौड़ी, ४ मी० गहरी है। मानसून काल में इसका जल १४५ वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैल जाता है और ग्रीष्म ऋतु में जब वाष्पीभवन क्रिया अधिक होती है तो यह क्षेत्रफल संकुचित होकर बहुत कम रह जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ४ मीटर की गहराई तक इस झील में नमक की मात्रा

५५० लाख टन है। अर्थात् प्रति वर्ग मील क्षेत्र पीछे १० लाख टन नमक होने का अनुमान है।[1]
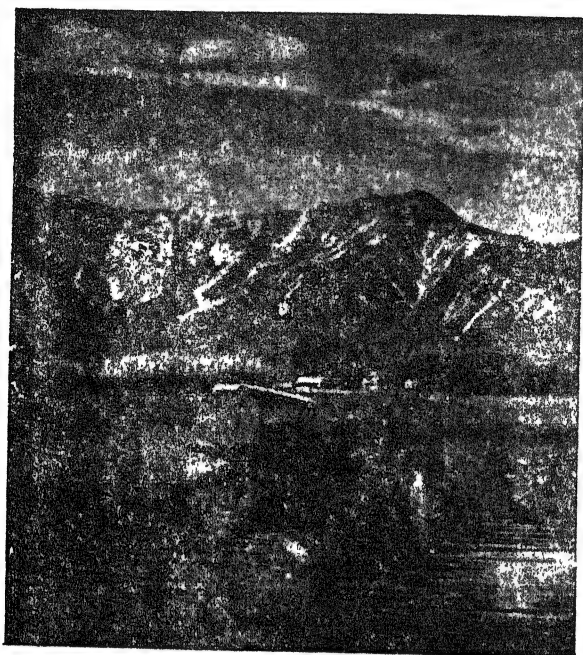
चित्र ६०. काश्मीर की डल झील में एक शिकारा

इस तथा राजस्थान की अन्य झीलों के खारीपन के बारे में **श्री ह्यूम्स** (Humes), **श्री नोटलिंग** (Noteling) तथा **हॉलैंड और क्राइस्ट** (Holland and Christe) प्रभृति विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। **जी ह्यूम्स के** अनुसार इन झीलों के स्थान पर पहले एक विशाल जलाशय या समुद्र था जिसके सूख जाने से ही यहाँ नमक की इतनी अधिक मात्रा का जमाव पाया जाता है किन्तु **डा० नोटलिंग** का अनुमान है कि सांभर झील में नमक भूमि के नीचे खारे जल के स्रोतों के बहने से प्राप्त होता है। अन्य विद्वानों के अनुसार इन झीलों के निक्षेपों के नीचे प्राचीन नमक की चट्टानें बिछी हुई हैं अतएव केशाकर्षण-शक्ति (Capillary action) द्वारा नमक ऊपर आता रहता है जिससे ये झीलें खारी होती रहती हैं।

श्री हॉलैंड और क्राइस्ट के मतानुसार राजस्थान में इतनी अधिक नमक की मात्रा पाये जाने का एक मात्र कारण ग्रीष्म ऋतु में प्रवाहित होने वाली दक्षिणी पश्चिमी मानसून है जो अपने साथ कच्छ की खाड़ी से सोडियम क्लोराइड नामक नमक धूल के कणों के रूप में लेकर राजस्थान की ओर आती है। ज्यों ज्यों यह हवायें राजस्थान की ओर बढ़ती जाती हैं उनकी चाल कम होती जाती है इस कारण

1. *M. S. Krishnan,* Geology of India and Burma, 1956, p. 43.

ये नमक के कणों को आगे नहीं ले जा सकतीं और वे इस राज्य की मरुभूमि में गिर पड़ते हैं। यह असंख्य कण इस भाग की छोटी छोटी नदियों द्वारा वर्षा ऋतु में सांभर जैसी झीलों में एकत्रित कर दिये जाते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में इन हवाओं द्वारा औसतन १$\frac{3}{4}$ लाख टन नमक राजस्थान की इन झीलों में पहुँच जाता है। फलतः झीलों में नमक की कभी भी न्यूनता नहीं आने पाती। जब मार्च-अप्रेल में झीलों का जल सूखने लगता है तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक के कण जम जाते हैं।

नीचे की तालिका में राजस्थान की विभिन्न झीलों—सांभर, डीडवाना, पचभद्रा में कौन-कौन सा नमक किस-किस मात्रा में पाया जाता है, यह बताया गया है। इनकी तुलना समुद्र तल में मिलने वाले नमक की मात्रा से की गई है:—[2]

लवण	सांभर %	डीडवाना %	पचभद्रा %	समुद्र %
१. कैलशियम-कार्बोनेट	—	—	—	०·३४५
२. कैलशियम-सल्फेट	—	—	२·९७०	३·६००
३. सोडियम-क्लोराईड	८७·३००	७७·१९०	८५·६६०	७७·७८८
४. सोडियम-सलफेट	८·६५०	२०·६५०	—	—
५. सोडियम-कार्बोनेट	३·८७०	०·६००	—	—
६. सोडियम-बाई-कार्बोनेट	—	१·५६०	—	—
७. पोटेशियम-क्लोराईड	०·१२९	—	—	२·४६५
८. मैग्नेशियम-सल्फेट	—	—	९·४४०	११·७३७
९. मैग्नेशियम-क्लोराईड	—	—	१·९३०	१०·८७८
१०. मैग्नेशियम-ब्रोमाईड	०·०५१	—	—	०·२१७
योग	१००·०००	१००·०००	१००·०००	१००·०००

इन सभी झीलों से बड़ी मात्रा में खाने का नमक प्राप्त होता है किन्तु तीनों ही स्थानों पर बनने वाले नमक की मात्रा, रंग और उनके रासायनिक सम्मिश्रण में थोड़ा अन्तर होता है। सांभर झील में तैयार किये जाने वाले नमक में सोडियम क्लोराईड की औसत मात्रा ९६ से ९८ प्रतिशत; नमी १ से ३ प्रतिशत और घुली हुई अशुद्धियाँ—सोडियम कार्बोनेट, बाई कार्बोनेट और कारबनीय पदार्थ—०·५ से १·०८ प्रतिशत तक पाई जाती है। इसके नमक का रंग कुछ भूरा होता है। डीडवाना से प्राप्त नमक अधिक अशुद्ध होता है। यहाँ नमक में सोडियम सल्फेट की मात्रा अधिक पाई जाती है और नमक प्रायः खाने के अयोग्य होता है। पचभद्रा का नमक रंग में अपेक्षतया सफेद होता है।

2. *J. L. Sorin*, "The Salinity of Rajasthan Desert", in Bulletin of the National Institute of Sciences of India, No. 1, (Sept. 52), p. 84.

राजस्थान में उदयपुर जिले में अनेक झीलें बनाई गई हैं जिनका उपयोग मुख्यतः सिंचाई के लिए होता है। ऐसी झीलों में उदयपुर में उदयसागर, पिछोला, फतहसागर, जयसमुद्र और कांकरोली की राजसमन्द झीलें मुख्य हैं।

चित्र ६१. उदयपुर के फतहसागर का एक मनोरम दृश्य

(घ) अन्य झीलें

(१) **लूनार झील**—यह महाराष्ट्र के बुलढाना जिले में है। पेंदे में इस झील का घेरा १$\frac{1}{4}$ कि० मी० है किन्तु ऊपरी धरातल १$\frac{3}{4}$ कि० मी० है। पूर्व की ओर से एक सोते द्वारा इसमें पानी आता है। इसकी औसत गहराई बहुत कम है—केवल ६१ मीटर। झील के चारों ओर कीचड़ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि दक्षिण के लावा पठार में यह झील प्राचीन काल में ज्वालामुखी के मुँह में पानी भर जाने से बनी है।

(२) **चिल्का झील**—उड़ीसा के तटीय भाग में नाशपाती की शक्ल में पुरी जिले में स्थित है। यह ७० कि० मी० लम्बी तथा ३० कि० मी० चौड़ी है किन्तु इसका क्षेत्रफल २,१०० वर्ग किलोमीटर तक हो जाता है। यह समुद्र का ही एक भाग है जो महानदी द्वारा लाई गई मिट्टी के जमा हो जाने से समुद्र से अलग होकर एक छिछली झील के रूप में हो गया है। दिसम्बर से जून तक इस झील का पानी खारा हो जाता है किन्तु वर्षा ऋतु में इसका पानी मीठा हो जाता है। इसकी औसत गहराई ३ मीटर है।

(३) **पालीकट झील**—मद्रास के तट पर ६० कि० मी० लम्बी और ५ से १५ कि० मी० चौड़ी है। यह एक छिछली अनूप है। इस झील की औसत गहराई १·८ मी० है। यह समुद्र से बालू की भीति द्वारा अलग होने से बनी है। इसके निकट

जो द्वीप है—श्री हरीकोटा—उसकी मिट्टी में सेलखड़ी के स्तर मिलते हैं जिन्हें आधुनिक काल में समुद्री लहरों ने बिछा दिया है।

(४) **कोलेरू झील** (Kolleru or Colair)—कृष्णा जिले में एक मीठे पानी की झील है किन्तु यह छिछली है और इसकी आकृति अंडाकार है। वर्षा ऋतु में इसका क्षेत्रफल लगभग १६० वर्ग किलोमीटर हो जाता है। अब यह झील अनेक छोटे स्रोतों द्वारा भरती जा रही है।

जल प्रपात (Water Falls)

भारत के अधिकांश प्रपात दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं जहाँ नदियाँ पश्चिमी घाट को पार कर प्रायद्वीप की ओर नीचे उतरती हैं। इनमें से अधिकांश तो बहुत ही छोटे होते हैं और ६ से ६ मीटर ही ऊँचे हैं। महाराष्ट्र और मैसूर राज्यों की सीमा पर शरवती नदी पर **जोग प्रपात** (जिरस्प्पा) हैं जो चार छोटे-छोटे प्रपातों—राजा, राकेट, रोरर और दाम ब्लांचें—से मिल कर बने हैं। इसका जल २५५ मीटर की ऊँचाई से गिर कर बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है।

कावेरी नदी पर **शिवासमुद्रम प्रपात** है जो ६० मीटर की ऊँचाई से गिरता है। इसका उपयोग जल विद्युत शक्ति उत्पादन के लिये किया गया है।

नीलगिरी की पहाड़ियों में **पायकारा** प्रपात का उपयोग भी जल शक्ति के लिए किया गया है।

बेलगाम जिले में गोकक नदी पर **गोगक** प्रपात ५४ मीटर ऊँचे और महाबलेश्वर के निकट **यन्ना प्रपात** १८० मीटर ऊँचे हैं।

दक्षिणी टोंस नदी जब विन्ध्याचल के पठार को पार करके निकलती है तो कई झरने बनाती है जिसमें मुख्य **बिहार** प्रपात है जो बाढ़ के समय १८० मीटर चौड़ा और १११ मीटर ऊँचा हो जाता है।

चम्बल नदी में अनेक छोटे बड़े प्रपात मिलते हैं। कोटा के निकट **चूलिया प्रपात** १८ मीटर ऊँचा है। इसी के सहारे चम्बल योजना में शक्ति उत्पादन की जायेगी। सोन और बेतवा नदी के मार्गों में कई प्रपात मिलते हैं।

नर्मदा नदी में जबलपुर के निकट **धुँआधार प्रपात**—जो केवल ६ मीटर ऊँचे हैं—बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। इसी नदी पर अन्य दो प्रपात—१२ मीटर ऊँचे—**मंधार** और **पुनासा** के निकट हैं।

कृष्णा नदी में भी बाढ़ के समय उसके मार्ग में कई रपटें और प्रपात बन जाते हैं।

अध्याय ८

सिंचाई

(IRRIGATION)

भारत में सिंचाई अनादिकाल से ही की जाती रही है। इसका प्रमाण अनेक प्राचीन ग्रंथों से मिलता है। २-३ हजार वर्ष पूर्व भी यहाँ कुओं तथा तालाबों से सिंचाई की जाती थी। नदियों पर बनाये गये बाँध भी सिंचाई के प्रमुख साधन थे इन्हें सेतुबंध कहा जाता था। **आचार्य चाणक्य का** कथन है कि "सेतुबंध कृषि के आधार होते हैं। इनके अभाव में नदियाँ बाढ़ों से पूरित होकर नहरों और ग्रामों को बहा ले जाती हैं और उनसे महान जन-धन का विनाश उपस्थित हो जाता है।" ११ वीं शताब्दी में कावेरी नदी पर बनाया गया बाँध इस बात का द्योतक है कि भारतीय राजा कृषि के विकास के लिए सिंचाई को एक प्रमुख साधन मानते थे। वर्तमान युग में भी, उष्ण मानसूनी जलवायु होने की दृष्टि से, भारतीय कृषि के लिए सिंचाई का महत्व इतना अधिक है कि प्रायः यह कहा गया है कि "जल भारतीय कृषि के लिए सोने से भी अधिक मूल्यवान है। यदि ऊसर भूमि को पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध हो जाये तो खेतों का उत्पादन ६ गुने से भी अधिक बढ़ सकता है।" **डा० नोल्स** के शब्दों में "सिंचाई जीवन की रक्षा का प्रबन्ध करती है, सिंचाई से भूमि की उपज, कृषि के क्षेत्र और उससे प्राप्त आय में वृद्धि होती है।"

सिंचाई की आवश्यकता

(१) यहाँ वर्षा अनिश्चित होती है तथा स्थान-स्थान में उसकी मात्रा में भी भिन्नता रहती है। मोटे तौर पर अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक चार या पाँच वर्ष में एक बार सूखा पड़ जाता है जो संबंधित क्षेत्रों की कृषि सम्बन्धी समूची अर्थ प्रणाली को अस्त-व्यस्त कर देता है और उसका सन्तुलन बिगाड़ देता है। ऐसा कोई वर्ष मुश्किल से ही निकलता हो जब कि देश के एक न एक भाग में अभाव की स्थिति न उत्पन्न हो जाती हो। इसके अतिरिक्त वर्षा का समय भी प्रायः अनिश्चित ही रहता है। कभी तो समय से बहुत पहले ही वर्षा शुरू हो जाती है और कभी काफी देर से। यदि समय से पहले पानी बरस पड़ा तो बीजांकुर असन्तोषजनक होते हैं क्योंकि बीज बोने के पहले ही धरती सूख जाती है और यदि वर्षा काफी देर से हुई तो फसल बिगड़ जाती है। जाड़े की ऋतु में वर्षा न होने से फसलों की वृद्धि रुक जाती है अथवा जाड़ों में वर्षा देर से हुई तो खड़ी फसल को या खेत में कटे हुए अनाज को क्षति पहुँचती है।

(२) सम्पूर्ण देश में वर्षा का वितरण असमान है। राजस्थान में जहाँ १३ से २५ सें० मी० तक वर्षा होती है तो दूसरी ओर आसाम में चेरापूँजी में १,०२८ सें० मीटर से भी अधिक वर्षा होती है। मोटे तौर पर ३८ से ७६ सें० मी० वर्षा सम्पूर्ण देश के एक तिहाई भाग में होती है। इन भागों में सूखे के कारण अकाल पड़ जाते हैं

१/३ भाग में ७६ से १२७ सें० मीटर तक वर्षा होती है और शेष १/३ में १२७ से० मीटर से अधिक। गंगा नदी के मैदान तथा पश्चिमी तट को छोड़कर अन्य सभी भागों में वर्षा की कमी से सदैव अकाल का संकट उपस्थित रहता है। राजस्थान और दक्षिणी पश्चिमी पंजाब के उन भागों में जहाँ बिल्कुल वर्षा नहीं होती, सिंचाई के बिना खेती करना सम्भव नहीं है। दक्षिण के ऊपरी भागों में भी सूखा का प्रकोप सदैव रहता है।

(३) भारत के सभी भागों में एक ही मौसम में वर्षा नहीं होती। ग्रीष्म ऋतु में भीषण गर्मी के साथ-साथ वर्षा का अभाव रहता है। शीतकाल में केवल दक्षिण-पूर्वी भाग में ही वर्षा होती है शेष भाग सूखे रहते हैं। ऐसी स्थिति में वनस्पति अथवा कृषि उत्पादन के लिए सिंचाई आवश्यक हो जाती है।

(४) प्रति वर्ष बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्नों की आवश्यकता पड़ती है। यह अतिरिक्त उत्पादन के गहरी खेती और प्रति एकड़ एक से अधिक फसलें उगाने से ही संभव होता है। अतः शुष्क ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता अनुभव की जाती है। देश की वर्तमान खाद्य समस्या को हल करने के लिए सिंचाई की सहायता अनिवार्य है।

(५) चावल, गन्ना, जूट आदि फसलों के लिए अधिक जल की नियमित रूप से आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए सिंचाई का महत्व बढ़ जाता है।

(६) उत्तरी मैदान तथा नदियों के डेल्टों में उपजाऊ कांप मिट्टी पाई जाती है। इसमें थोड़ी ही सिंचाई करने से उत्पादन बढ़ जाता है। अन्य भागों में मिट्टी अधिक समय तक जल रोकने में असमर्थ रहती है अतः उसे कृषि योग्य बनाये रखने के लिए सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है।

स्पष्ट है कि भारतीय कृषि के लिए सिंचाई की आवश्यकता प्रायः साल भर ही रहती है। यह बड़ी मनोरंजक बात है कि भारत में कुछ ऐसी सिंचाई व्यवस्था की प्रणालियाँ पाई जाती हैं जिन्हें विश्व की सर्वोत्तम व्यवस्था माना जाता है। भारतीय नहरों की कुल लम्बाई १,१२,६०५ कि० मी० के लगभग है जिनकी कुल क्षमता प्रति सैकिंड २,२०,००० क्यूसेक (Cusecs) की है। जल की यह मात्रा उस परिमाण को प्रकट करती है जो एक दिन और रात लगातार बह कर समूचे दिल्ली राज्य को दो फीट की गहराई तक डुबो दे।

सिंचाई की सुविधायें

उत्तरी भारत और नदियों के डेल्टों में सिंचाई की विशेष सुविधायें पाई जाती हैं। इसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं :—

(१) यह भाग समतल है। इन भागों की भूमि का ढाल इतना धीमा है कि नदियों के ऊपरी भागों से निकली हुई नहरों का जल सरलता से ही सारे मैदान में फैल जाता है।

(२) उत्तरी भारत की भूमि अधिकांशतः नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बनी होने के कारण बड़ी उपजाऊ है। अतः इस मिट्टी को जल मिल जाने पर उत्तम फसलें पैदा की जा सकती हैं।

(३) इन भागों में चट्टानें कम हैं तथा धरातल मुलायम है अतः नहरें खोदने में बड़ी सुगमता रहती है और खर्च भी अधिक नहीं होता।

(४) उत्तरी भारत के मैदानों में हिमालय से निकलने वाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं जिनमें अथाह जल-राशि भरी रहती है अतः इनसे जो नहरें निकाली जाती हैं वे भी वर्ष भर भरी रहती हैं जिससे लगातार सिंचाई की जा सकती है।

(५) देश की अधिकांश जनसंख्या खेती-वाड़ी में संलग्न है अतः खेती के लिए तथा अधिक उत्पादन करने के लिए सिंचाई की माँग भी अधिक है।

भारत के जल स्रोत (Water Resources)

अनुमान लगाया गया है कि संपूर्ण देश में ३०,००० लाख एकड़ फीट जल वर्षा द्वारा प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। इस राशि में से लगभग १०,००० लाख एकड़ फीट भाप बनकर उड़ जाता है और लगभग ६,५०० लाख एकड़ फीट भूमि में सोख जाता है। इस प्रकार केवल १३,५०० लाख एकड़ फीट नदियों में बहता है। किन्तु धरातल की विभिन्नता, जलवायु, मिट्टी की दशा आदि कारणों से यह संपूर्ण राशि सिंचाई के लिए उपलब्ध नहीं होती। अनुमानित नदी जल की ४,५०० लाख एकड़ फीट मात्रा सिंचाई के लिए काम में लाई जा सकती है। १९५१ में इसमें से ७६० लाख एकड़ फीट अर्थात् काम में लाई जा सकने वाली राशि का १७% (और कुल जल राशि का ६%) जल सिंचाई के लिए उपलब्ध हुआ। द्वितीय योजना के अंत में यह मात्रा १,२०० लाख एकड़ फीट अर्थात् २७% और ९% थी। तीसरी योजना के अंत तक ४०० लाख एकड़ फीट अतिरिक्त जल का उपयोग होने लगेगा। इस प्रकार उस समय तक कुल उपलब्ध नदी जल के ३५-३६% भाग का उपयोग संभव हो जायेगा।[1]

१९४७ में, विभाजन के बाद, केवल ४·८४ करोड़ एकड़ पर सिंचाई होती थी। १९५१ में सिंचित क्षेत्रफल ५·१५ करोड़ एकड़ हो गया और १९५८-५९ में ५·७९ करोड़ एकड़। कुल कृषि भूमि के केवल १६% पर सिंचाई की जाती है। १९५०-१९५९ के बीच सिंचित क्षेत्रफल में ६४ लाख एकड़ की वृद्धि हुई है।

प्रथम और द्वितीय योजनाकाल में सिंचाई के क्षेत्रफल में इस प्रकार वृद्धि हुई है:—[2]

	(लाख एकड़ में)			
	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६ के लक्ष्य
१. बड़ी और मंझली योजनाओं से	२२०	२४९	३१०	४२५
२. छोटी योजनाओं से	२९५	३१३	३९०	४७५
३. योग	५१५	५६२	७००	९००

1. Third Five Year Plan, pp. 188, 38
2. Third Five Year Plan, p. 382.

सिंचाई के साधन (Means of Irrigation)

भारत की भौतिक रचना में विभिन्नता होने के कारण सिंचाई के विभिन्न साधन काम में लाये जाते हैं। उत्तरी भारत में विशेषकर नहरों और कुओं से तथा दक्षिण के प्रायद्वीपीय भागों में तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है। कुल सिंचित
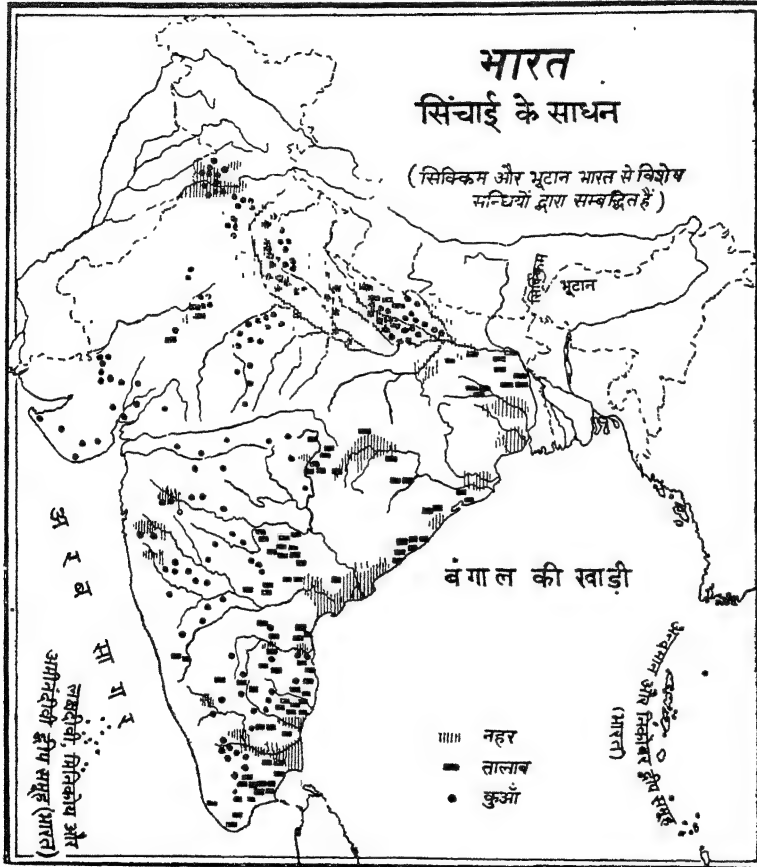
चित्र ६२. भारत में सिंचाई के साधन

क्षेत्रफल १९५८-५९ में ५.७९ करोड़ एकड़ था; यह बढ़कर १९५९-६० में ६.७७ करोड़ एकड़ और १९६०-६१ में ६.८९ करोड़ एकड़ हो गया। विभिन्न साधनों द्वारा की गई सिंचाई के आंकड़े इस प्रकार हैं:—[3]

सिंचाई के साधन	१९५९-६० (करोड़ एकड़ों में)	१९६०-६१	प्रतिशत
सकल सिंचित क्षेत्रफल	६.७७	६.८९	

3. Agricultural Situation in India, August 1963, p. 343.

वास्तविक सिंचित क्षेत्रफल (Net Area Irrigated)	५·८७	६·०२	१००
नहरों द्वारा	२·४६	२·५४	४२
सरकारी नहरें	२·१४	२·२४	
निजी नहरें	०·३२	०·३०	
तालाब	१·१६	१·१५	२०
कुएँ	१·७०	१·७४	२९
अन्य साधन	०·५५	०·५९	९

पंच-वर्षीय योजना के आरंभ में ५·१५ करोड़ भूमि पर सिंचाई होती थी, इसमें से २·२ करोड़ एकड़ पर बड़ी और मझली योजनाओं द्वारा सिंचाई की गई और शेष छोटी योजनाओं द्वारा।[४]

१. नहरें (Canals)

भारत में सिंचाई का मुख्य साधन नहरें हैं। अधिकांश नहरें या तो उत्तरी भारत के मैदानों में या तो तटवर्ती नदियों के डेल्टाओं में पाई जाती हैं। नहरें बनाने के लिए मुख्यतः दो बातों की आवश्यकता होती है—समतल भूमि और नदियों में जल का निरन्तर प्रवाह। ऐसी आदर्श अवस्था उत्तरी भारत में नदियों के विशाल मैदान से मिलती है। नहरों में जल या तो नदियों से पहुँचाया जाता है या कृत्रिम तालाबों से। उत्तरी भारत की प्रायः सभी नहरों में साल भर नदियों द्वारा ही जल आता रहता है, किन्तु दक्षिण की अधिकाँश नहरों में जल जलाशयों में एकत्रित किए गए भाग से मिलता है क्योंकि यहाँ की नदियाँ गर्मियों में सूख जाती हैं। अतः नदियों की बाढ़ के समय उनका जल बड़े संग्राहकों में इकट्ठा कर लिया जाता है और यही जल नलियों द्वारा निकटवर्ती भूमि की सिंचाई करता रहता है।

नहरें दो प्रकार की होती हैं :

(१) **अनित्यवाही नहरें** (Inundational Canals)—ऐसी नहरों को जल तब मिलता है जब नदियों में बाढ़ें आती हैं। ऐसी नहरें अक्टूबर से अप्रेल तक जल की कमी से सूखी रहती हैं। जहाँ इस प्रकार की अनित्यवाही नहरें मिलती हैं उन भागों में एक ही फसल पैदा की जाती है और प्रायः अक्टूबर से अप्रेल तक खेत खाली रहते हैं अथवा कुओं आदि से सिंचाई में सहायता लेकर फसलें पैदा की जाती हैं। ऐसी नहरें अब अधिकांशतः नित्यवाही नहरों में परिवर्तित करदी गई हैं।

(२) **नित्यवाही नहरें** (Perennial Canals)—उन नदियों से निकाली जाती हैं जिनमें सदैव ही जल भरा रहता है। नदी के जल को कभी कभी बांध बना कर रोक दिया जाता है और फिर इस रोके गये जल से नहरों द्वारा आसपास के प्रदेश के खेतों की सिंचाई की जाती है। उत्तर प्रदेश की नहरें इसी प्रकार की हैं।

नहरों से सिंचित क्षेत्रफल अधिकतर आंध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य-प्रदेश, मद्रास, पंजाब, और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है।

---

४. जिन योजनाओं पर ५ करोड़ रुपये से अधिक व्यय होता है उन्हें बड़ी; १० लाख से ५ करोड़ के बीच की मझली और १० लाख रुपये से कम की छोटी सिंचाई योजना कहलाती है।

उत्तरी भारत की नहरें

पंजाब की नहरें—पंजाब में वर्षा का औसत २५ से ३८ सेंटीमीटर के बीच का ही रहता है क्योंकि द० प० मानसून यहाँ तक पहुँचते पहुँचते शुष्क हो जाते हैं किन्तु भूमि कृषि के सर्वथा उपयुक्त है अतः कृषि उत्पादन के लिए सिंचाई का सहारा लिया जाता है। पंजाब की मुख्य नहरें इस प्रकार हैं :—

(१) **पश्चिमी यमुना नहर** (Western Jamuna Canal)—यह नहर १४वीं शताब्दी में मुगल बादशाहों द्वारा बनाई गई थी, १८८६ में अंग्रेज सरकार ने इसे सुधार कर सिंचाई के योग्य बनाया। यह नहर यमुना नदी से तेजावाला के निकट पानी लेकर अम्बाला, करनाल, रोहतक, हिसार (द० पं०), पटियाला व जिन्द में सिंचाई का कार्य करती है । इस नहर की तीन प्रमुख शाखायें हैं : (१) **दिल्ली शाखा** जो १८१८ ई० में बनाई गई, (२) **हांसी शाखा**, जो १८२५ ई० में
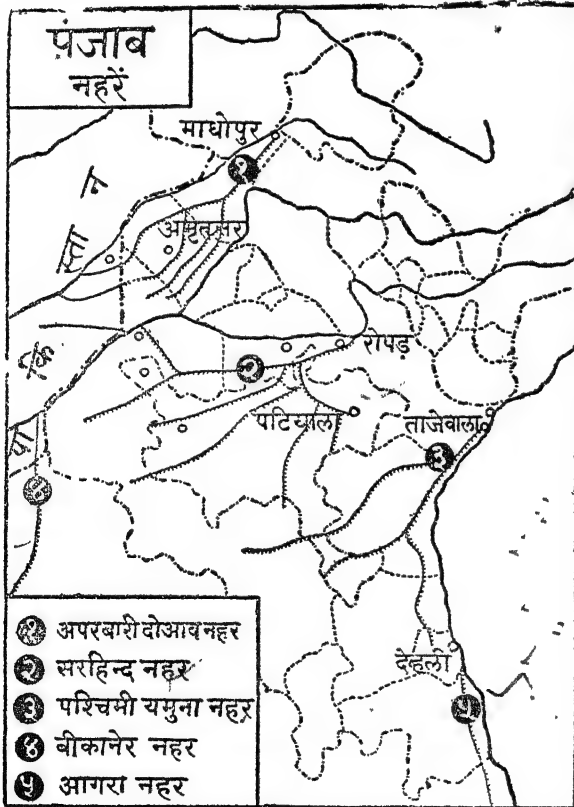
चित्र ६३. पंजाब की नहरें

बनाई गई। (३) **सिरसा शाखा**, जो १९ वीं शताब्दी में बनाई गई। पश्चिम यमुना नहर के द्वारा १,९०० प्रशाखाओं के सहयोग से ३½ लाख हैक्टेअर भूमि में सिंचाई होती है। यह नहर ३०४० कि० मी० लम्बी है।

(२) **सरहिन्द नहर** (Sirhind Canal)—यह नहर सतलज से रूपड़ स्थान पर निकाली गई है और लुधियाना, फिरोजपुर, हिसार, पटियाला, जिंद, नाभा जिलों की ७$\frac{3}{4}$ ला०है० भूमि में सिंचाई करती है। इसकी लम्बाई शाखाओं सहित ६,११५ कि० मी० है। इसकी मुख्य शाखायें अभोर, भटिंडा, पटियाला, कोटला, घग्घर और ढोआ हैं। यह नहर सन् १८८४ में बनाई गई थी। इसमें शीघ्र मिट्टी भर जाती है। फिरोजपुर के निकट यह नहर पुनः सतलज में मिल जाती है।

(३) **ऊपरी बारी दोआब नहर**—इसका निर्माण सन् १८४६ में आरंभ होकर १८५६ में समाप्त हुआ और १८७८-७९ में इसे पहले से अधिक चौड़ी और गहरी बनाई गई। यह रावी नदी से माधोपुर स्थान पर निकाली गई है और गुरुदासपुर तथा अमृतसर के जिलों में ४ लाख हेक्टेअर भूमि की सिंचाई करती है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ३,२०० कि० मी० है। इसकी मुख्य शाखायें लाहौर, कसूर और सबरौ हैं।

(४) **नांगल की नहरें**—सतलज नदी से भाखरा स्थान पर निकाली गई है। ये नहरें सन् १९५४ ई० में बनकर तैयार हुई। इनसे अम्बाला, पटियाला, हिसार, करनाल और उत्तरी राजस्थान के लगभग ६·६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो रही है।

(५) **बिस्त दोआब नहर**—यह नहर सन् १९५४ में तैयार हुई है। यह भाखरा-नांगल की ही शाखा है जो सतलज नदी से नोवा स्थान पर निकाली गई है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई १४५ कि० मी० है। इस नहर द्वारा सतलज और व्यास के दोआबों में जलंधर और होशियारपुर जिलों की लगभग ६$\frac{1}{2}$ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है।

(६) सन् १९५४ में व्यास और रावी नदी को भी एक नहर द्वारा मिला दिया गया जिससे व्यास नदी से निकलने वाली पुरानी और नयी प्रस्तावित नहरों को पर्याप्त जल मिलता रहे।

उत्तर प्रदेश की नहरें

उत्तर प्रदेश की उन्नति का प्रमुख कारण बड़ी नहरें हैं। उत्तर-प्रदेश में कुल बोई गई भूमि के ३१ प्रतिशत भाग में सिंचाई होती है। ऊपरी गंगा की घाटी में वर्षा प्रतिवर्ष १०१ से० मी० से भी कम होती है, अतः इस प्रदेश की खेती की उन्नति में नहरों का प्रमुख स्थान है। सिंचाई के सहारे यहाँ गन्ना, कपास तथा मकई पैदा की जाती है। उत्तर प्रदेश में सिंचाई के लिए नहरों और कुओं दोनों का ही महत्व अधिक है। उत्तर प्रदेश में निम्न नहरें मुख्य हैं :—

(१) **पूर्वी जमुना नहर**—यह नहर उत्तर प्रदेश के उत्तरी-पूर्वी भाग में सिंचाई करती है। यह नहर फैजाबाद के पास जमुना नदी से निकाली गई है जो दिल्ली तक जमुना के समानान्तर बहती है। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित लम्बाई १,४४० कि० मी० है और इसके द्वारा मेरठ, सहारनपुर और मुजफ्फरनगर की १$\frac{1}{2}$ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। यह भी हमारे देश की उत्पादक नहरों में से एक है। यह नहर सन् १८३१ में बनाई गई थी।

(२) आगरा नहर—जमुना के दायें किनारे से ओखला नामक स्थान पर पानी लेती है (यह स्थान दिल्ली से १८ कि० मी० नीचा है)। यह सन् १८७५ में बनाई गई थी। यह नहर अपनी १,६०० कि० मी० लम्बी शाखाओं-प्रशाखाओं के द्वारा दिल्ली, मथुरा, गुड़गाँव और आगरा की १ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई करती है।

(३) ऊपरी गंगा की नहर—यह नहर गङ्गा नदी से हरिद्वार के पास निकाली गई है। इस नहर का निर्माण १८४२ से प्रारम्भ होकर सन् १८५६ में समाप्त किया गया था। रुड़की तक आने में इसे ऊँची-नीची भूमि में होकर गुजरना पड़ता है। अतः हरिद्वार और रुड़की के बीच में कई स्थानों पर इसे नदियों के नीचे, कहीं-

चित्र ६४. उत्तर प्रदेश की नहरें
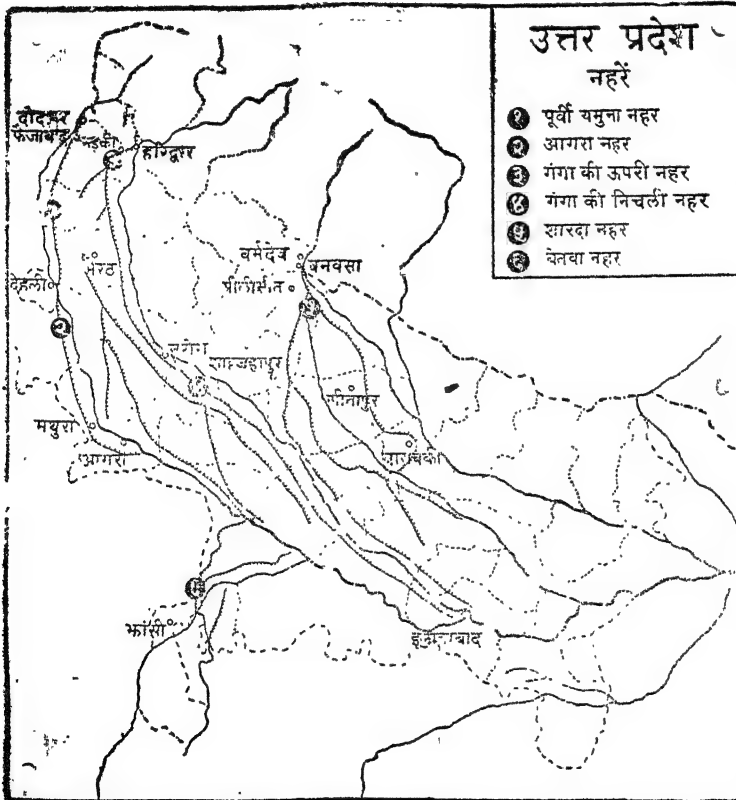
कहीं नदियों के ऊपर और कहीं-कहीं नदियों के साथ साथ चलना पड़ता है। इस नहर के मार्ग में ७ स्थानों पर झरने बनाकर बिजली उत्पन्न की जाती है। यह गङ्गा-जमुना दोआब के उत्तरी भाग के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, मेरठ, एटा, इटावा, अलीगढ़, मथुरा, कानपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और फतहपुर जिलों की लगभग ६

लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई करती है। प्रमुख नहर ३४३ कि० मी० लम्बी है तथा शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ५,६४० कि० मी० है। यह नहर आगरा नहर और गंगा की निचली नहर को भी जल देती है। इसकी प्रमुख शाखायें **अनूपशहर और माटा** हैं। इस नहर से जलविद्युत भी उत्पन्न की जाती है। सिंचाई के सहारे कपास, गन्ना और गेहूँ पैदा किया जाता है।

(४) **निचली गंगा की नहर**—यह नहर **नरोरा** से गंगा नदी से निकाली गई है। इसकी दो प्रधान शाखायें हैं—कानपुर शाखा और इटावा शाखा। प्रधान नहर तथा शाखाओं सहित इसकी लम्बाई लगभग ८,२५० कि० मी० है। इससे मैनपुरी, फर्रुखाबाद, एटा, कानपुर और फतहपुर जिलों की लगभग ४½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। यह नहर सन् १८७२ में आरंभ कर १८८० में समाप्त की गई। यह कासगंज के पास ऊपरी गंगा नहर से मिल जाती है, इससे इसमें जल की मात्रा पर्याप्त हो जाती है। आगे जाकर यह पुनः ऊपरी गंगा नहर से अलग हो जाती है।

शारदा नहर—यह नहर १९२८ में बनाई गई थी। यह नहर गोमती नदी से **बनबांसा** स्थान (नैपाल की सीमा पर) से निकाली गई है। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित लम्बाई १२,३४४ कि० मी० है। शारदा नहर पर खातिमा शक्ति-गृह बनाया गया है। इसकी सर्वाधिक पानी देने की क्षमता ९,५०० क्यूसेक प्रति

चित्र ६५. शारदा जिले में शारदा नहर

सैकिंड है, यह नहर रोहिलखण्ड और अवध के पश्चिमी भाग को सींचती है। इस नहर द्वारा इलाहाबाद, प्रतापगढ़ रायबरेली, बाराबंकी, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, खेरी, शाहजहाँपुर, बरेली और पीलीभीत जिलों की २१ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है। इसकी मुख्य शाखायें **खेरी, सीतापुर, लखनऊ** और **हरदोई** हैं।

शारदा नहर पर जल विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिए एक शक्ति गृह भी बनाया गया है जिसे **खातिमा शक्ति केन्द्र** कहते हैं।

(६) **बेतवा नहर**—यह जमुना की ही एक शाखा है जो झांसी से २४ कि० मी०

दूर परिच्छा नामक स्थान से निकाली गई है। इस नहर द्वारा झाँसी, जालौन, हमीरपुर आदि की ८ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। **हमीरपुर और कठौना**—इसकी दो प्रमुख शाखायें हैं। यह नहर १८९३ में बनाई गई थी।

उत्तर प्रदेश की अन्य नहरे (१) केन नहर, (२) धसान नहर, (३) घग्घर नहर और मिर्जापुर नहर हैं। इनके द्वारा क्रमशः बांदा जिले, हमीरपुर जिले तथा मिर्जापुर जिलों की सिंचाई की जाती है।
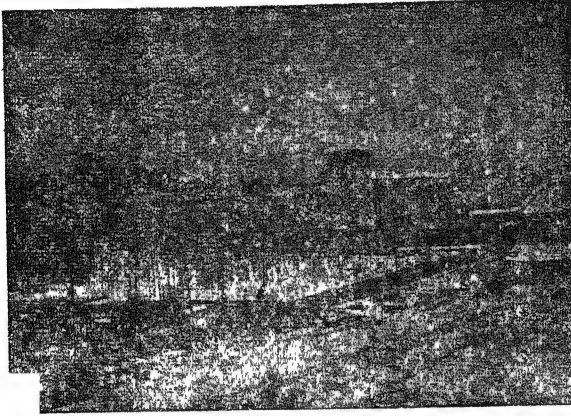
चित्र ६६. खातिमा में शारदा शक्ति-गृह

बिहार की नहरें

बिहार में वर्षा की अनियमितता के कारण भूमि की सिंचाई करने के हेतु गंडक और सोन नदियों से नहरें निकाली गई हैं। यहाँ कुल बोई गई भूमि के २३% भाग पर सिंचाई होती है। बिहार में निम्नांकित नहरें मुख्य है :—

१. **पूर्वी सोन नहर**—यह नहर सन् १८७५ में सोन नदी के दाहिने किनारे से **वारून** नामक स्थान से निकाली गई है। यह नहर पटना के समीप गङ्गा नदी में मिला दी गई है। इसके द्वारा पटना और गया जिलों की ७½ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। इस पर २६८ लाख रुपये खर्च हुए हैं। इस नहर की लम्बाई १३० किलोमीटर है।

२. **पश्चिमी सोन नहर**—सोन नदी के बाँये किनारे से डेहरी नामक स्थान से निकाली गई है। इसकी दो शाखायें हैं। एक शाखा बक्सर के निकट गङ्गा नदी में मिल जाती है और दूसरी शाखा आगे चल कर तीन भागों में विभक्त हो जाती है। उत्तर की ओर की शाखा **डुमराव नहर** कहलाती है और दूसरी शाखा का नाम **आरा नहर** है जो उत्तर-पूर्व की ओर बह कर गङ्गा में मिल जाती है। तीसरी नहर **चौसा नहर** है।

३. **त्रिवेणी नहर**—गंडक नदी से त्रिवेणी नामक स्थान के निकट से निकाली गई है। इससे उत्तरी बिहार के चम्पारन जिले की लगभग ६ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

४. **कनाड़ा बाँध की नहरें**—मयूराक्षी नदी पर मैसनजोर नामक स्थान पर एक १,०९५ मीटर लंबा और ४६ मीटर ऊँचा बाँध बनाया गया है। इससे नहरें निकाल कर लगभग ५ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है और चावल पैदा किया जाता है।

५. **गंडक बाँध योजना**—गंगा की सहायक गंडक नदी पर त्रिवेणी घाट नामक स्थान पर एक बाँध बनाया गया है। इससे दो नहरें निकाली गई हैं। इनसे नैपाल और बिहार के सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर और दरभंगा के लगभग ९ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। इससे २० हजार किलोवाट बिजली भी बनाई जा रही है।

पश्चिमी बंगाल की नहरें

अधिक वर्षा के कारण बंगाल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु फिर भी यहाँ कुछ नहरें बनाई गई हैं।

१. **मिदनापुर नहर**—यह नहर मिदनापुर के पास कोसी नदी से निकल कर पूर्व में हुगली नदी से मिल जाती है। इस नहर का कुछ भाग तो केवल सिंचाई करने के काम में और कुछ भाग सिचाई तथा नावें चलान दोनों ही कामों में आता है। सिंचाई के सहारे धान पैदा किया जाता है। इससे लगभग ५० हजार हैक्टेअर की सिंचाई की जाती है।

२. **एडन नहर**—यह दामोदर नदी से निकाली गई है। इससे बहुत थोड़ी सिंचाई होती है।

३. **तिलपाड़ा बांध की नहरें**—यह बाँध कनाड़ा बाँध से ३५ किलीमीटर नीचे की ओर मयूराक्षी नदी पर बंगाल के वीर भूम जिले में सूरी नामक स्थान पर बनाया गया है। यह ३१० मीटर लंबा है। इससे दो नहरें निकाल कर बंगाल के वीर भूमि, मुर्शिदाबाद और बर्दवान जिले की लगभग २½ लाख हैक्टेअर और बिहार की लगभग १० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

४. **दामोदर नदी की नहरें**—दुर्गापुर नामक स्थान पर दामोदर नदी पर एक बाँध बनाकर दो नहरें निकाली गई हैं। इनसे आसनसोल, हुगली और बर्दवान जिलों की लगभग ८० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जा रही है।

राजस्थान की नहरें

बीकानेर या गंग नहर (Bikaner or Gang Canal)—राजस्थान के पश्चिमी भागों में वर्षा बहुत ही कम होती है। इस असुविधा से संरक्षण पाने के लिए बीकानेर नहर बनाई गई है। यह नहर सन् १९२८ में सतलज नदी से फिरोजपुर के निकट हुसैनीवाला से निकाली गई है। इसकी तली सीमेंट की बनी है जिससे जल भूमि में नहीं सोख पाता है। इसके द्वारा बीकानेर डिवीजन के गंगा नहर, राजपुर, पदमपुर, रायसिंहनगर और अनूपगढ़ तहसीलों की लगभग १½ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है। इसके सहारे गन्ना, कपास और गेहूँ पैदा किया जाता है। इस नहर को गंग नहर भी कहते हैं। इससे संबंधित कुल नहरों की लम्बाई १,२८० कि० मी० है। इस नहर से राजस्थान को २,७२० क्यूसेक जल मिलता है। इसकी मुख्य शाखायें लक्ष्मीनारायणजी, लालगढ़, करणीजी व समिजा हैं।

राजस्थान नहर—सतलज तथा व्यास के संगम पर निर्मित हारीके बैरेज राजस्थान नहर का उद्गम है। यह स्थान राजस्थान की सिंचाई की दृष्टि से सर्वोच्च तल पर है। प्रमुख नहर हारीके से रामगढ़ तक ६८३ कि० मी० (४२५ मील) लम्बी होगी। प्रमुख नहर का प्रथम १७६ कि० मी० (११० मील) का मार्ग सरहिन्द फीडर के लगभग समानान्तर पंजाब में स्थित होगा। यहाँ इसका नाम राजस्थान फीडर होगा और यह इस क्षेत्र में सिंचाई नहीं करेगी। राजस्थान राज्य में प्रवेश करने के बाद भी प्रथम ३८ कि० मी० (२४ मील) में इसका उपयोग नहीं किया जायेगा। राजस्थान में प्रथम २०६ कि० मी० (१३० मील) की दूरी तक यह पजाब-राजस्थान की सीमा के निकट बहेगी और तब सूरतगढ़ की ओर मुड़ेगी तथा दक्षिण पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हुई यह रामगढ़ के पास समाप्त हो जावेगी। प्रमुख नहर से निकलने वाली शाखा नहरों की लम्बाई ६४४ कि० मी० (४०० मील) और वितरक नहरों की लम्बाई ३,२१६ कि० मी० (२,००० मील) होगी। खेतों में बनने वाली नालियों की लम्बाई ८०,४६७ कि० मी० (५०,००० मील) होगी। नहर की अधिकतम चौड़ाई (तल मे) ३७ मीटर (१२५ फुट) तथा गहराई ७½ मीटर (२१ फुट) होगी। जैसलमेर जिले में अपने अन्तिम सिरे पर इसकी चौड़ाई (तल में) १७ मीटर (५५ फुट) व गहराई ६ मीटर (१५ फुट) होगी। हारीके पर जल प्रवाह का परिणाम १८,५०० क्यूसेक होगा।
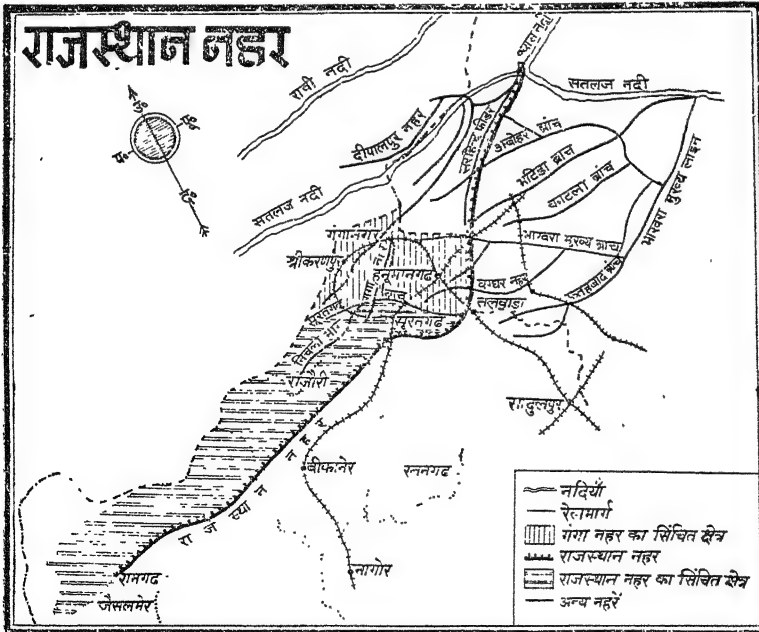
चित्र ६७. राजस्थान की नहरें

सम्पूर्ण राजस्थान फीडर तथा नहर पक्की होगी। यह परियोजना दो

अवस्थाओं में पूर्ण होगी। प्रथम अवस्था में रावी तथा व्यास नदियों के प्राकृतिक प्रवाह के जल का उपयोग होगा। दूसरी अवस्था में रावी तथा व्यास नदियों के वर्षा कालीन अतिरिक्त जल का उपयोग करने के लिये जलाशयों का निर्माण किया जायेगा। द्वितीय अवस्था के पूर्ण हो जाने के बाद ही ३६·३ लाख एकड़ भूमि में निरन्तर सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध करना सम्भव हो सकेगा।

प्रथम अवस्था में निम्नलिखित कार्य भी दो सोपानों में समाप्त किये जाएँगे:—

प्रथम सोपान के अन्तर्गत सम्पूर्ण फीडर २१५ कि० मी० (१३४ मील) १९५ कि० मी० (१२१·८ मील) की लम्बाई में राजस्थान नहर, सूरतगढ़ लो-लेबिल व नौशेरा शाखाओं का निर्माण होगा। यह २१५ कि० मी० लम्बी नहर बन चुकी है। नहर के बाई ओर कुछ ऊँचाई पर स्थित लूनकरानसर, जमसार तथा बीकानेर नगरों की जल पूर्ति के लिये एक १०० क्यूसेक क्षमता की **लिफ्ट चनल** होगी। नहर तल से लगभग १५ मीटर ऊँचे २ लाख एकड़ के क्षेत्र में पानी को ऊँचा उठाकर सिचाई की व्यवस्था होगी। सन् १९६८-६९ तक यह सोपान पूरा हो जायेगा। इस सोपान के सम्भावित व्यय का अनुमान ७५ करोड़ रु० है।

द्वितीय सोपान में मुख्य नहर के शेष भाग (१९६ कि०मी० ४६७ कि०मी० तक) तथा नौशेरा शाखा से नीचे की सम्पूर्ण वितरण व्यवस्था का निर्माण सम्मिलित है। मुख्य नहर में तो कोई झरने नही हैं पर वितरक नहरों में आने वाले झरनों का लाभ उठा कर जल विद्युत शक्ति का उत्पादन भी आयोजित है। सन् १९७८ तक योजना के अन्त तक इसके पूर्ण हो जाने की सम्भावना है। इस अवधि में २७४ कि० मी० मुख्य नहर तथा अन्य सहायक नहरें बनाई जायेंगी। इस चरण पर ६४ करोड़ रुपया खर्च होगा।

राजस्थान नहर की सिंचन क्षमता को बढ़ाने तथा अनवरत सिंचन सम्भव करने के लिये वर्ष पर्यन्त अधिक जल की आवश्यकता है। जल की इस कमी की पूर्ति के लिये व्यास नदी पर पांग गाँव के समीप एक बाँध बनाया जायेगा। यह स्थान मुकेरियन से ३८ कि० मी० दूर है। इस बाँध के बनाने वाले जलाशय की जल धारण क्षमता ८० लाख एकड़ फुट होगी। यह जलाशय बाँध स्थल के ऊपर ३७ किलोमीटर (२३ मील) तक फैला होगा तथा इससे ५८,००० एकड़ भूमि जलमग्न होगी। बाँध की अनुमानित लागत ९२·६५ करोड़ रुपये है। इस पर कार्य प्रारम्न किया जा चुका है तथा सन् १९६९-७० तक इसके पूर्ण होने की सम्भावना है। इस जल का उपयोग राजस्थान नहर द्वारा किया जायेगा। जल की यह पूर्ति आंशिक रूप से भाकड़ा होते हुए सतलज, व्यास नहर से होगी। इसके लिए हिमालयी क्षेत्रों में ४० कि०मी० लम्बी सुरंगें बनानी होंगी और ३०५ मी० ढलान होने से जल विद्युत भी पैदा किया जा सकेगा। शेष जल हरिके बांध के जलाशय में डाल कर राजस्थान की सहायक नहर में दिया जायेगा।

राजस्थान नहर का नौकानयन के लिये उपयोग करने तथा इस नहर को कांडला बन्दरगाह से मिलाने के प्रस्ताव विचाराधीन हैं। इस प्रस्ताव के क्रियान्वित होने पर तो इस नहर की लम्बाई १,४४८ कि० मी० (९०० मील) हो जायेगी। पूर्ण विकसित होने पर परियोजना द्वारा बीकानेर सम्भाग के श्री गंगानगर व बीकानेर जिलों और जोधपुर सम्भाग के जैसलमेर जिलों की २६·२० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। सिंचाई के लिए जो नाले बनाने पड़ेंगे उनकी लंबाई ६४·३ हजार

कि०मी० होगी । इसके सहारे खाद्यान्नों का ९.५ लाख टन अतिरिक्त उत्पादन होगा । कपास तथा चारे आदि का उत्पादन भी बढ़ेगा । इस उपज के मूल्य का अनुमान २९ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष लगाया गया है तथा सन् १९८८ तक सिंचाई व्यवस्था से ५० करोड़ रुपये से अधिक की पैदावार होगी । देश की खाद्य स्थिति पर भी इसका परिणाम शुभ ही होगा । द्वितीय अवस्था के पूर्ण हो जाने के बाद जबकि ३६.२९ लाख एकड़ में सिचाई होने लगेगी यद्यपि सिंचन योग्य क्षेत्र तो इससे भी अधिक है, २५.७९ लाख टन खाद्यान व चारे तथा १.६ लाख टन कपास का उत्पादन होगा जिसका मूल्य ६६ करोड़ रुपया होगा ।

कृषि उत्पादन को लाने ले जाने के लिये नहर में स्टीमर चलाने की व्यवस्था भी होगी । जहाँ सम्भव हो वहाँ झीलों का निर्माण कर मत्स्योद्योग तथा आमोद-प्रमोद के साधन भी विकसित किए जाएँगे ।

कृषि की पैदावार पर निर्भर चीनी, कपड़ा, आदि उद्योगों का विकास होगा और विभिन्न कुटीर-उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। इस प्रदेश में अन्य राज्यों के व्यक्तियों को भी बसाया जाएगा । इस प्रदेश की वर्तमान आबादी एक लाख से भी कम है तथा पूर्ण विकसित होने पर २० लाख व्यक्तियों को रोजगार दिया जा सकेगा । नई बस्ती बसाने और विकास पर अनुमानतः २ अरब १३ करोड़ रुपये खर्च होंगे ।

इस परियोजना के द्वारा २०-२५ वर्षों में ५२३ कि० मी० (३२५ मील) लंबे तथा ४८ कि० मी० (३० मील) चौड़े लगभग १०,००० वर्गमील में विस्तृत वनस्पति विहीन बंजर, पिछड़े हुए क्षेत्र का स्वरूप ही बदल जायेगा ।

परियोजना में राजस्थान का व्यय भाग ६५ करोड़ रुपये है । पंजाब की भूमि में प्रवाहित होने वाले 'राजस्थान फीडर' का व्यय २२.७० करोड़ रुपये होगा तथा राजस्थान में नहरों पर ११३ करोड़ रुपया व्यय होगा । इस प्रकार इस समय परियोजना की लागत २०० करोड़ रुपये है ।

इस परियोजना के निर्माण की विशालता का कुछ अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसमें मिट्टी के काम की मात्रा लगभग १,१०० करोड़ घन-फुट होगी जो कि भाखड़ा नहरों से चार गुनी, चम्बल नहरों से पाँच गुनी तथा डी. वी. सी. नहरों से ८ गुनी अधिक होती है । नहरों को पक्का करने में ईंट व सीमेंट की चिनाई का परिमाण भाखड़ा डाम में प्रयुक्त पदार्थों के परिमाण से अधिक होगा ।

दक्षिण भारत की नहरें

दक्षिण भारत में मद्रास राज्य में ही अधिक नहरें पाई जाती हैं । ये नहरें अधिकतर नदियों के डेल्टों में बनाई गई हैं क्योंकि पूर्वी भाग में तटीय मैदानों में ग्रीष्म काल में मानसून हवाओं से इतनी पर्याप्त वर्षा नहीं होती जिससे फसलों के लिये पानी की पूर्ति हो जाय किन्तु शीतकाल में यहाँ अच्छी वर्षा हो जाती है। अस्तु, सिंचाई केवल ग्रीष्म ऋतु में ही करने की आवश्यकता पड़ती है। इस ऋतु में पश्चिमी घाटों पर घनी वर्षा होने से इस ओर की नदियों में काफी पानी भरा रहता है । इसी जल का उपयोग पूर्वी तट की ओर आंध्र और मद्रास राज्यों में गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के डेल्टाओं में सिंचाई के लिए किया जाता है ।

महाराष्ट्र की नहरें

यहाँ की प्रमुख नहरें ये हैं :—

१. **गोदावरी की नहरें**–गोदावरी नदी पर बेल झील के पास एक २८ मीटर ऊँचा बाँध बना कर उसके दोनों किनारों से नहरें निकाली गई हैं। यह नहरें लगभग २०० कि० मी० लम्बी है। नासिक और अहमदनगर जिलों के ऐसे भागों में सिंचाई करती हैं जहाँ बहुधा अकाल पड़ा करता है।

२. **मूठा नहर**—मूठा नहर पूना को पीने के लायक पानी पहुँचाने के लिए यह नगर पूना की **फाइफ झील** से निकाली गई थी। यह खडकवासला नामक स्थान पर बनी है। इससे दो नहरें निकाली गई हैं। दाहिनी ओर की नहर ११२ कि०मी० लम्बी और बांयी ओर की २९ कि० मी० लम्बी है। इससे थोड़ी सिंचाई भी की जाती है।

३. **भंडारदरा बाँध**—इसका निर्माण सन् १९३५ में किया गया। यह बाँध पश्चिमी घाट के ऐसे भाग में बनाया गया है जहाँ बहुत अधिक वर्षा होती है। बाँध बनने से पहले इस राज्य की वर्षा का समस्त जल बह कर सागर में चला जाता था। लेकिन वह अब इसी में इकट्ठा होकर सिचाई के काम आता है। भन्डारदरा स्थान पर प्रवीरा नदी में ८२ मीटर ऊँचा एक बाँध बांधा गया है जिसे **विलसन बाँध** कहते हैं। इसमें २०,००० लाख फीट जल इकट्ठा किया जाता है। इस बांध से निकाली हुई नहरें लगभग १३७ कि० मी० लम्बी है और अहमदनगर जिले में इनसे लगभग २३ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है।

४. **भाटागर बाँध**—इसका निर्माण सन् १९२६ में किया गया। महाराष्ट्र में कृष्णा की सहायक नीरा नदी पर भाटागर नामक स्थान पर लायड बाँध बनाकर २,४२,००० लाख एकड़ फीट जल संग्रहित किया गया है। इस बाँध के दांये-बांये किनारों से नहरें निकाल कर पूना और शोलापुर जिलों की सिंचाई की जाती है। सिंचित क्षेत्रफल १·६ लाख एकड़ है।

५. **गंगापुर बांध योजना**—यह बाँध गोदावरी नदी पर उद्‌गम से १९ कि० मी० नीचे नासिक के पास बनाया गया है। यह बाँध ३,८१२ मीटर लम्बा और ४३ मीटर ऊँचा है। इससे बांई ओर की नहर को नासिक नहर कहते हैं। यह ३८ कि० मी० लम्बी है और इसके लगभग १० हजार हैक्टेअर की सिंचाई की जाती है।

मध्य प्रदेश की नहरें

मध्य प्रदेश में अधिकांश सिंचाई तालाबों द्वारा होती है किन्तु इस प्रदेश में तीन मुख्य नहरें भी हैं :—

१. **महानदी नहर**—रुद्री नामक स्थान से महानदी से निकाली गई है। शाखाओं-प्रशाखाओं सहित यह १५३० कि० मी० लम्बी है। इस नहर द्वारा लगभग २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। यह सन् १९२७ में १५९ लाख रुपये की लागत से बनाई गई।

२. **वैनगंगा नहर**—वैनगंगा नदी से निकाली गई है। यह नहर बालाघाट और भंडारा जिले में लगभग १० हजार एकड़ भूमि सींचती है।

३. **तन्दुला नहर**—तन्दुला और सुखा नदियों के संगम पर दो बाँध बनाकर निकाली गई है। १९२५ से १२० लाख रुपये की लागत से तैयार की गई। इसके द्वारा रायपुर और द्रुग जिलों की १६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

मध्य प्रदेश की दो नई सिंचाई योजनायें ये हैं :—

बरना सिंचाई योजना—बरना नर्मदा की एक सहायक नदी है जो भोपाल के निकट विंध्याचल की पहाड़ियों से ५३३ मीटर की ऊँचाई से निकलती है। इस नदी की कुल लम्बाई ९६ कि० मी० है और यह अपने निकास से ५६ कि० मी० उत्तरपूर्व में समरी घाट के निकट नर्मदा से मिलती है। नर्मदा से मिलने के पूर्व यह १.६ कि० मी० लम्बे एक पतले खड्ड में से गुजरती है। बांध इसी स्थान पर बनाया जायगा। इस नदी का स्रवण क्षेत्र १,१७६ वर्ग कि०मी० है जो अधिकन्तर पहाड़ों और वनों से ढका है। इस क्षेत्र में **पालक माटी ताल** से सिंचाई की जाती है। इसमें लग० ८५ वर्ग कि० मी० का जल इकट्ठा होता है।

इस बाँध की लम्बाई ३५४ मीटर और अधिकतम ऊँचाई ३७ मीटर होगी। यह मिट्टी का बनाया जायेगा। इसके जल का फैलाव ७० वर्ग कि० मी० में होगा जिसकी मात्रा ४० करोड़ ७० लाख घन मीटर होगी। इसके ऊपर से दांई और बांई ओर दो नहरें निकाली जायेंगी जिनसे लगभग ६६,४०० हैक्टेयर की सिंचाई से रायसेन जिले में ४३,१८२ मीट्रिक टन खाद्यान्न अधिक पैदा होंगे। इस बांध पर ५.५५ करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है।

हलाली सिंचाई परियोजना—बेतवा घाटी विकास योजना के अन्तर्गत मध्य-प्रदेश के विदिशा जिले में कार्यान्वित की जाने वाली हलाली सिंचाई परियोजना सम्भवतः मार्च, १९६८ तक पूरी हो जायगी।

हलाली परियोजना की अनुमानित लागत करीब चार करोड़ चार लाख रुपये है और पूरी होने पर इससे करीब साढ़े ७३ हंजार एकड़ क्षेत्र में सिंचाई होगी। सिंचित क्षेत्र में आठ हजार एकड़ अधिक क्षेत्र बारहमासी फसलों का है। इससे करीब डेढ़ लाख टन गन्ने के उत्पादन के अतिरिक्त करीब साढ़े १७ हजार टन अन्य फसलों का उत्पादन अधिक होगा।

परियोजना के अन्तर्गत हलाली नदी पर दीवानगंज स्टेशन से करीब नौ मील दूर खोआ ग्राम के निकट सकरी घाटी में ६०३ मीटर लम्बा सीधा ग्रेविटी का बांध बनाया जायगा, जिसकी अधिकतम ऊँचाई नींव के तल से २९ मीटर होगी।

बाँध से निर्मित जलाशय की कुल जल-संचय क्षमता दो लाख ५७ हजार एकड़ फुट होगी, करीब पौने १५ हजार एकड़ भूमि जलमग्न होगी और लगभग ३० गाँव उसके अन्तर्गत आयेंगे।

बाँध में दो द्वार होंगे तथा अतिरिक्त जल का निकास करने वाले स्थल की लम्बाई ७६ मीटर होगी। शीर्ष कार्यों पर करीब एक करोड़ सवा २९ लाख रुपये व्यय होगा।

नहरों की लम्बाई ७६ कि० मी० से कुछ अधिक होगी और उस पर करीब पौने तीन करोड़ रुपये व्यय होंगे।

मद्रास राज्य की प्रमुख नहरें ये हैं

१. **कावेरी डेल्टा की नहरें**—कावेरी के डेल्टा में नहरों का निर्माण दूसरी शताब्दी में किया गया। डेल्टा के प्रारम्भिक स्थान से २६ किलोमीटर ऊपर की ओर कावेरी नदी धाराओं में बँट जाती है। कावेरी की प्रधान धारा श्रीरंगम द्वीप के दाहिनी ओर से और कोलरून नदी बायीं ओर से बहती है। कावेरी के जल को कोलरून की ओर बह जाने से रोकने के लिए कोलरून पर **ग्रांड एनीकट** (Grand Anicut) नामक बांध बनाया गया है जो ३२६ मीटर लम्बा, १२ से १८ मीटर चौड़ा और ४½ से ५ मीटर तक ऊँचा है। दूसरा बाँध श्रीरंगम पर **ऊपरी एनीकट** के नाम से बांधा गया है। यह ७८० मीटर लम्बा है। इसकी मुख्य नहरों की लंबाई शाखाओं सहित २,४१५ कि० मी० है। इसी की सहायता से कावेरी डेल्टा में तंजोर जिला **दक्षिण का उद्यान** बन गया है। सिंचाई के सहारे चावल पैदा किये जाते हैं। इससे डेल्टा की लगभग ४ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। इसमें चावल का उत्पादन अधिक किया जाता है।

३. **पेरियर योजना**—पेरियर नदी इलायची की पहाड़ियों से निकल कर पश्चिम की ओर बहती हुई अरब सागर में गिर जाती थी। इसके जल का कोई उपयोग नहीं होता था जबकि इन पहाड़ियों के पूर्व में मद्रास के मदुराई और तिरूनलवेली जिलों में बहुत ही कम वर्षा के कारण बहुधा अकाल पड़ा करते थे। अतएव इंजीनियरों ने उस नदी का प्रवाह मार्ग पूर्व की ओर बदल डालने के लिए पश्चिम की ओर एक ५२ मीटर ऊँचा बाँध बनाकर इस नदी को एक झील के रूप में परिणत कर दिया। फिर इस झील का जल एक ३ कि० मी० लम्बी कृत्रिम सुरंग द्वारा पूर्व की ओर ले जाकर वेगई नदी में डाल दिया है। इससे वेगई नदी में बहुत जल हो गया है इसलिए उससे नहरें निकाल कर मदुराई जिले की आस-पास की लगभग ४० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाने लगी है। पेरियर प्रणाली की नहरों की लम्बाई लगभग ४३२ कि० है।

३. **कावेरी मेटूर योजना**—सन् १९४३ में कावेरी नदी पर उद्गम स्थान से लगभग ४०० किलोमीटर दूर के पहाड़ी प्रदेश में मेटूर नामक स्थान पर एक बाँध बनाकर ६.३५,००० लाख घन फुट पानी रोका गया है। इससे २०० कि० मी० लम्बी नहरें निकाल कर कावेरी डेल्टा में १८ हजार हेक्टेअर भूमि में सिंचाई की जाती है।

४. **निचली भवानी योजना की नहरें**—सन् १९५६ में कावेरी की सहायक भवानी नदी पर एक बांध १० करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया। यह ९ कि० मी० लम्बा और ४७ मीटर ऊँचा है। इसी को बांध कर भवानी सागर झील का निर्माण किया गया है। इससे नहरें निकाल कर कोयम्बटूर जिले के भवानी, ईरोड, धारापुरम्, गोवी, चेटीपलायम् तालुकों की ८० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है और कपास तथा अनाज बोया जाता है।

केरल राज्य की मुख्य नहरें ये हैं

१. **मालमपुजा बाँध की नहरें**—केरल राज्य के मलाबार जिले में यह बाँध १९५६ में मालमपुजा नदी पर ५½ करोड़ रुपयों की लागत से बनाया गया।

इसके द्वारा निकाली गई नहरों से २० हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

२. **वलायर जलाशय की नहरें**—केरल राज्य में कोरयार की सहायक वलायर पर सन् १९५७ में १ करोड़ रुपये के व्यय से बाँध बनाया गया है। इससे मलाबार जिले के पालघाट ताल्लुक की ३,२०० हैक्टेअर भूमि को सींचा जाता है।

३. **मंगलम योजना की नहरें**—यह नहर केरल राज्य के मलाबार जिले में ८५ लाख रुपये के व्यय से बनाई गई है तथा इसके द्वारा बाईं नहर से नौगाँव में २६०० हैक्टेअर भूमि तथा दाईं नहर से ८०० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई करके चावल की ३ फसलें प्राप्त की जाती है।
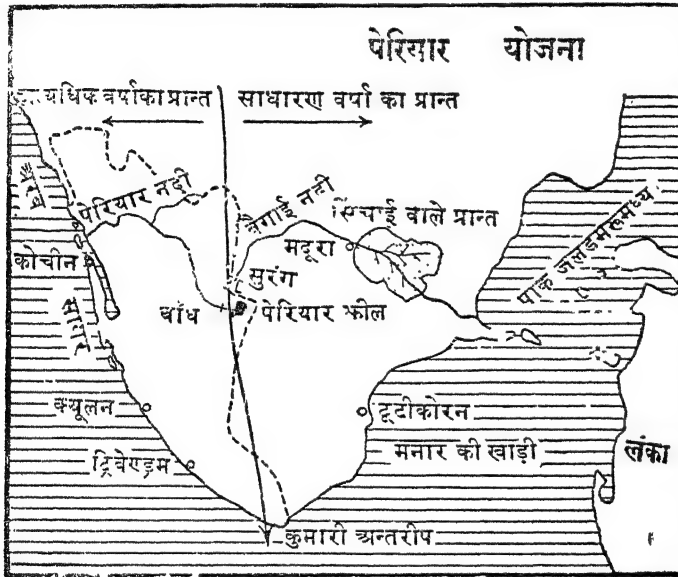
चित्र ६८. मद्रास की नहरें

आंध्र प्रदेश की प्रमुख नहरें ये हैं

(१) **गोदावरी डेल्टा की नहरें**—गोदावरी नदी अपने डेल्टा में गोमती, गोदावरी तथा वशिष्ठ गोदावरी नामक शाखाओं में विभक्त होकर बहती है। गोमती गोदावरी पर **धौलेश्वरम्** तथा **रोली** बांध क्रमशः १५२० मीटर और ९०० मीटर लंबे बनाये गये हैं। वशिष्ठ गोदावरी पर **मद्दूर** और **विजेश्वरम** बांध क्रमशः ४६०मीटर तथा ७९३ मीटर लम्बे हैं। इन दोनों से नहरें निकाली गई हैं जिनकी प्रधान शाखाओं की लम्बाई ८०५ कि० मी० और प्रशाखाओं की लम्बाई ३२२० कि० मी० है। गोदावरी डेल्टा की नहरें १८९० ई० में २$\frac{3}{4}$ करोड़ रुपये की लागत से बनाई गई थी। इनके द्वारा ५ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होती है।

(२) **कृष्णा डेल्टा की नहरें**—कृष्णा नदी अपने मुहाने से ९७ कि० मी०

विजयवाड़ा की ११,८८७ मीटर चौड़ी घाटी में जहाँ पहुँचती है वहीं उसका जल बांध बनाकर रोका गया है। इससे दोनों ओर की नहरें निकाल कर डेल्टा में सिंचाई की जाती है। नहरों का निर्माण सन् १८९८ में २$\frac{1}{4}$ करोड़ रुपये की लागत से किया गया। इनके द्वारा ४ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। इन नहरों को गोदावरी नदी के डेल्टे की नहरों से जोड़ दिया गया है जिससे इन दोनों के बीच यातायात भी होता है।

(३) **कृष्णा बैरेज प्रोजेक्ट**—कृष्णा नदी पर कृष्णा एनीकट से १८ मीटर ऊपर की ओर यह बांध सन् १९५६ में बनाया गया है। यह १,०६६ मीटर लम्बा है। इसके द्वारा नहरें निकाल कर डेल्टा तथा ऊपर के क्षेत्र में २९ हजार हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(४) **रामपद सागर योजना**—यद्यपि यह एक बहुमुखी योजना है किन्तु सिंचाई के लिए इसका विशेष महत्व है। इस योजना के अनुसार गोदावरी नदी पर पोलावरम नामक स्थान पर एक बड़ा बाँध —रामपद सागर—बना कर १२० लाख एकड़ फुट पानी रोका गया है और इस बाँध के दोनों किनारों से दो नहरें निकाल कर गोदावरी डेल्टा में विशाखापट्टनम, कृष्णा, गोदावरी, गंतूर जिलों की लगभग ११ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(५) **तुंगभद्रा योजना की नहरें**—कृष्णा की सहायक तुंगभद्रा नदी पर माला-पुरम स्थान पर एक ५० मीटर ऊँचा और लगभग २,४४० मीटर लम्बा बाँध बनाया गया है। इससे नहरें निकाल कर आंध्र प्रदेश की १ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है। सिंचित क्षेत्रफल पर कपास, मूँगफली, चावल, गन्ना और ज्वार बाजरा पैदा किया जाता है।

(६) **कृष्णा-पेनार योजना**—कृष्णा नदी पर कर्नूल जिले में **सिद्धेश्वर** नामक स्थान पर एक बाँध तथा पेनार नदी पर दूसरा बाँध **सोमेश्वर** में बनाया गया है। इसमें नहरें निकाल कर आंध्र प्रदेश की १२ लाख हैक्टेअर भूमि पर सिंचाई की जाती है। नहरों की लम्बाई १३०० कि० मी० है। इससे १$\frac{1}{4}$ लाख किलोवाट बिजली भी पैदा की जायेगी।

नहरों द्वारा सिंचाई के लाभ

(१) सिंचाई से बंजर भूमि हरे भरे खेतों में परिणत की जा सकती है। पंजाब की नहरी बस्तियों में तथा उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और दकन के पठार आदि के उन क्षेत्रों में जहाँ वर्षा कम होती है कृषि का तीव्र गति से विकास इसका सजीव उदाहरण है। नहरों ने बड़ी सीमा तक अकाल की भयानक आशंका को निर्मूल कर दिया है और आर्थिक सुख-समृद्धि के लिए एक नूतन अध्याय का सूत्रपात किया है। अकाल-ग्रस्त क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध करना उसके विरुद्ध बीमा कराने के समान है। सिंचाई के कारण **डा० स्टाम्प** के शब्दों में "भारत एक नये मिश्र की वृद्धि कर लेता है।"

(२) कृषि के उत्पादन में वृद्धि के सम्बन्ध में **श्री मुख्तारसिंह** का मत है कि कृत्रिम सिंचाई से उत्पादन में २९% वृद्धि होती है। **डाक्टर सुधीरसेन** के कथना-नुसार चावल के उत्पादन में तो सिंचाई से ५० प्रतिशत और ६६ प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। आई० सी० ए० आर० के सलाहकार बोर्ड ने भी समान मत व्यक्त

किया है जिसका कहना है कि किसी क्षेत्र में सिंचित भूमि की उपज में असिंचित भूमि की अपेक्षा प्रति एकड़ ५० से लेकर १०० प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।

(३) गन्ना, जूट, रुई आदि व्यापारिक फसलों के उत्पादन में उन्नति हुई है। नहरों का जल अपने साथ उपजाऊ मिट्टी लाकर सिंचित भूमि की उर्वरता में और अधिक वृद्धि कर देता है। महत्वपूर्ण व्यापारिक फसलों के लिए यह अत्यन्त लाभकर होता है।

(४) नहरों से उन विशाल क्षेत्रों के लिए यातायात तथा संचार साधन की संतोषजनक व्यवस्था हो जाती है जहाँ सड़कों तथा रेल यातायात का सर्वथा अभाव है। उदाहरणार्थ, पूर्वी डेल्टा की नहरों द्वारा सिंचाई और यातायात दोनों ही कार्य होते हैं।

(५) साधारणतया नहरों में लगाई गई पूँजी से सरकार को ७ से लेकर ८ प्रतिशत तक आय होती है। इससे एक लाभ यह भी है कि अकाल सहायता सम्बन्धी सरकारी व्यय में कमी हो जाती है। यह बात भी महत्व की है कि "सिंचाई से होने वाले लाभ को केवल सरकारी आय अथवा सिंचित क्षेत्रों के लाभ से नहीं आँका जा सकता। भारत की जनसंख्या में बराबर वृद्धि हो रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या का उदर-पोषण नितान्त आवश्यक है। वह समय दूर नहीं है जबकि चप्पा-चप्पा भूमि पर खेती करनी पड़ेगी। बल्कि कोटि-कोटि जनता के लिए खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए और अधिक भूमि की आवश्यकता होगी। इस दयनीय स्थिति का सामना करने के लिए एक मात्र उपाय यह है कि जिस भूमि पर इस समय खेती हो रही है उसके उत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि की जाय।"

(६) सस्ते किस्म के खाद्यानों—जैसे ज्वार, बाजरा आदि—के स्थानों पर गेहूँ, चावल जैसे अच्छे किस्म के अन्नों का उत्पादन होने लगा है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होने के साथ ही उन्हें पुष्टिकर भोजन भी मिलता है।

सिंचाई द्वारा होने वाली हानियाँ

(१) अधिक सिंचाई से नीची भूमि की सतह पर हानिकारक नमक जम जाता है जिससे मिट्टी का उपजाऊपन नष्ट हो जाता है। वस्तुतः नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रों में अनेक स्थानों के ऊसर हो जाने की आशंका बनी रहती है। महाराष्ट्र की नीरा नदी की घाटी में नमक की तह जम जाने से लगभग ८२ हजार एकड़ भूमि खेती के अयोग्य हो गई है।

(२) जिस भूमि में इस प्रकार नहर का जल जमा हो जाता है वहाँ मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि सारी भूमि इतनी अधिक संपृक्त हो जाती है कि उसमें सदा पानी भरा रहता है तथा दलदल हो जाता है। अतः भूमि मलेरिया और अन्य रोगों की जन्मस्थान बन जाती है।

(३) नहरों का तल और उसके किनारे हानिकर नमक की क्रियाओं से जम जाते हैं जो कि नहरों की सुरक्षा की दृष्टि से हानिकर होते हैं।

पंजाब के लगभग ७० लाख एकड़ क्षेत्र में पानी भरा है तथा काश्मीर में लगभग २९ हजार एकड़ भूमि में दलदल हैं। सब मिलाकर पंजाब, काश्मीर, महाराष्ट्र

तथा दिल्ली में ७२ लाख एकड़ भूमि ऐसी है जहाँ पानी भरा है यहाँ १० फुट तक गहरा पानी है।[५]

(४) अधिक सिंचाई के कारण भूमि से इतनी अधिक फसलें प्राप्त हो जाती हैं कि कृषक को उनका उचित मूल्य नहीं मिलता फलतः कृषि में मंदी आ जाती है।

(५) नहरों द्वारा कभी-कभी सिंचाई के लिए जल समय पर नहीं मिलता अतः जब कभी यह उपलब्ध हो जाता है तो कृषक आवश्यकता से कहीं अधिक जल भूमि को दे देता है। डा० हावर्ड के शब्दों में "जल के ऐसे दुरुपयोग से भूमि की उर्वरा-शक्ति कम हो जाती है।"

पंजाब में दलदल भूमि को ठीक करने के लिए कई उपाय किये गये हैं—जैसे प्रभावित क्षेत्रों में बाढ़ के पानी को आने से रोकना, सिंचाई की नहरों के बराबर जल की निकासी के लिए नालियाँ बनाना, नहरों आदि की भीतर दीवार को पक्का करना, काफी संख्या में नल कूप खोदना तथा भूमि में नीचे के पानी की सतह ऊँची होने से रोकने के लिए कुएँ खोदना।

उपाय—(१) जल लगे हुये क्षेत्रों में नल कूप बनवा कर जल की सतह नीची कर दी जानी चाहिये।

(२) नहर के तल और किनारों की क्षति रोकने के लिये सोडियम कारबोनेट का प्रयोग किया जाय।

(३) जल का व्यर्थ बहाव और उसका जमाव रोकने के लिए यह भी आवश्यक है कि जल देने के समय का उचित ढंग से नियंत्रण किया जाय।

२. कुएँ (Wells)

भारत में कुओं द्वारा सिंचाई करने का ढंग प्राचीन काल से चला आ रहा है। कुल सिंचित भूमि के ३०% भाग में कुओं द्वारा सिंचाई होती है। कुओं द्वारा सिंचाई उन्हीं भागों में की जाती है जहाँ कुओं के निर्माण के लिए निम्न भौगोलिक दशाऐं अनुकूल होती हैं :—

(१) देश के एक बहुत बडे भाग में चिकनी बलुई मिट्टी पाई जाती है जिसमें जहाँ तहाँ बालू के बीच कांप की तहें मिलती हैं। इनमें मिट्टी से रिस कर काफी मात्रा में जल एकत्रित हो जाता है अस्तु, कांप की यह तहें जल का अगाध भंडार बन जाती हैं। इन्हें खोदने पर काफी जल प्राप्त हो जाता है। इस जल को सरलता से ऊपर उठाकर धरातल पर पहुँचाया जा सकता है। भारत की भौगर्भिक बनावट इतनी सरल है कि जहाँ भी जल का दबाव इतना है कि वह स्वतः ही धरातल तक आ सके वहाँ पाताल तोड़ कुएँ आसानी से बन सकते हैं। जिन स्थानों पर कांप मिट्टी की तहें काफी मोटी पाई जाती हैं वहाँ गहरे छेद करके साधारण कुओं की अपेक्षा अधिक जल प्राप्त किया जा सकता है।

(२) अधिकतर कुएँ वहीं बनाये जाते हैं जहाँ जल भूमि के निकट ही पाया जाता हो। इस दृष्टि से गंगा-सतलज का मैदान कुओं द्वारा सिंचाई के लिए बड़ा उपयुक्त है क्योंकि जहाँ भूमिगत-जल प्रायः सभी स्थानों पर भूमि सतह से थोड़ी

५. उद्योग व्यापार पत्रिका, जून १९६०, पृ० ५२५.

ही गहराई पर मिल जाता है। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ कुओं में जल थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है किन्तु जहाँ वर्षा पर्याप्त नहीं होती वहाँ भूमिगत जल भी अधिक गहराई पर मिलता है।
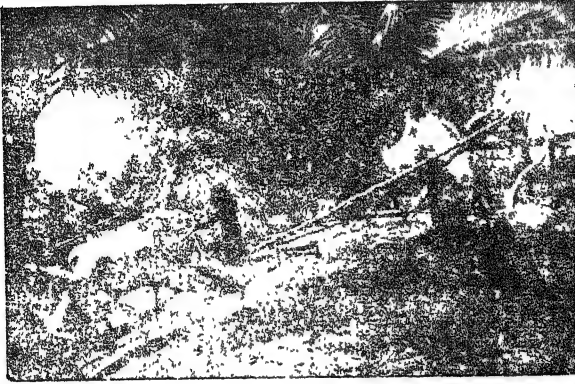
चित्र ६६. राजस्थान में चरस द्वारा सिंचाई

यही कारण है कि उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में जल-तल ३-४ मीटर की गहराई पर ही मिल जाता है किन्तु पश्चिमी उत्तर प्रदेश में १५ से १८ मीटर और राजस्थान में ६० से ६० मीटर की गहराई पर जल-तल मिलता है। अतः सिंचाई करने में इन स्थानों में परिश्रम और व्यय दोनों ही अधिक होते हैं।

कुओं से सिंचाई करने के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग पंजाब से लेकर बिहार तक का गंगा-सतलज का मैदान है। पंजाब और उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भागों में कुओं से सिंचाई, नहरों द्वारा सिंचाई के सहायक रूप में होती है क्योंकि यहाँ अधिकांश भागों में नहरों का जल मिल जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भागों में कुऐं सिंचाई के मुख्य साधन हैं। इन भागों में कुओं में जल भूमि के धरातल के निकट ही मिल जाता है अतः फसलों के लिए जल की उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी पश्चिमी भागों में। इन भागों में बहुत से कच्चे कुऐं आवश्यकतानुसार थोड़े ही खर्च में बना लिए जाते हैं। जिस वर्ष वर्षा कम होती है ऐसे कुओं की संख्या भी बढ़ जाती है। ऐसे कुऐं एक या दो मौसम से अधिक काम नही देते। बिहार के पूर्व में वर्षा की अधिकता के कारण बंगाल में सिंचाई की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब में पूर्वी भागों की अपेक्षा जल अधिक गहराई पर मिलता है अतः यहाँ सामान्यतः पक्के कुएँ ही बनाये जाते हैं। इन कुओं की काठी काफी नीचे तक जल में बैठाई जाती है और तब नीचे की चिकनी मिट्टी में —जिस पर कुऐं का ढाँचा खड़ा होता है—छिद्र करके स्रोतों से जल निकाला जाता है। इस प्रकार के कुओं में जल की पूर्ति काफी अधिक होती है और इनके निर्माण में व्यय भी अधिक होता है। पूर्वी भागों में कुओं से जल ऊपर लाने के लिए प्रायः हल्के साधन काम में लिये जाते हैं—जैसे हाथ से जल निकालना, ढेंकली द्वारा

आदि—किंतु पश्चिमी भागों में चरस और रेंहट द्वारा जल निकाला जाता है। साधारणतः ढेंकली द्वारा प्रतिदिन में $\frac{१}{८}$ एकड़; चरस द्वारा १ एकड़ और रेहट द्वारा ८ से १० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती है।
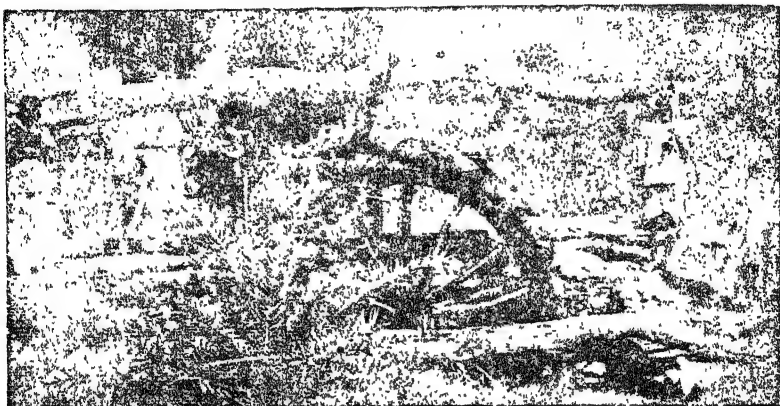
चित्र ७०. रेंहट द्वारा सिंचाई

कुओं से सिंचाई प्राप्त करने वाले अन्य मुख्य क्षेत्र मद्रास का दक्षिणी भाग और नीलगिरी और इलायची की पहाड़ियों का पूर्वी भाग है जो गन्तूर से कोयम्बटूर होता हुआ तिरूनलवैली तक त्रिभुजाकार रूप में फैला है। यह प्रदेश पूर्वी समुद्र तट के मैदान का है जहाँ ग्रीष्म में इतनी पर्याप्त वर्षा नहीं होती कि फसलें उगाई जा सकें। यहाँ कोयम्बटूर, रामनाथपुरम और मदुराई जिलों में कुओं द्वारा अधिक सिंचाई होती है।

महाराष्ट्र के दक्षिणी पठार से लगाकर पश्चिमी घाट के पूर्वी भागों में काली मिट्टी के क्षेत्र में भी कुओं द्वारा सिंचाई होती है।

पंजाब के हिमालय के निकटवर्ती जिलों में भी कुओं द्वारा सिंचाई होती है।

किन्तु हिमालय के बहुत ही निकटवर्ती क्षेत्र आसाम, अराकान की पहाड़ियाँ और पश्चिमी घाट के पश्चिमी क्षेत्र कुओं द्वारा सिंचाई के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

कुओं की सिंचाई में कई दोष पाये जाते हैं, जैसे :—

(१) यदि लगातार अधिक समय तक कुओं से जल निकाला जाय तो (विशेषकर छिछले) कुएँ शीघ्र ही सूख जाते हैं तथा जिस वर्ष वर्षा कम होती है उस वर्ष भी जल की कमी पड़ जाती है अतः सिंचित क्षेत्रफल में भी कमी हो जाती है।

(२) कुओं द्वारा सिंचाई करने में नहरों की अपेक्षा व्यय और परिश्रम दोनों ही अधिक होते हैं अतः ऐसी ही फसलें अधिक बोई जाती हैं जिनसे कृषक को धन मिल सकता है—गन्ना, कपास, या गेहूँ।

(३) कुओं से केवल सीमित क्षेत्रों में ही सिंचाई हो सकती है। उदाहरणार्थ कच्चा कुआँ अधिक से अधिक प्रतिदिन ३ एकड़ और पक्का कुआँ १५-२० एकड़ भूमि सींच सकता है।

(४) अधिकांश कुओं का जल खारी होता है जो सिंचाई के लिए अनुपयुक्त होता है। यह फसलों को भी नष्ट कर देता है।

किन्तु कुओं का सबसे बड़ा लाभ यही है कि इनके बनाने में व्यय कम लगता है और इन्हें खोदने में किसी यन्त्र विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ही विशिष्ठ ज्ञान अपेक्षित होता है। अतः भारतीय किसान के लिए सिंचाई का यही सबसे सस्ता और सरल साधन है।

नलकूप (Tube-wells)

भारत में नल-कूपों से सिंचाई होने के साधन के जन्मदाता श्री विलियम स्टैम्प माने जाते हैं। इनके कथानुसार गंगा-सिंधु के मैदान के नीचे प्राचीन काल की विलुप्त सरस्वती नदी का जल प्रवाहित हो रहा है तथा हिमालय के हिम क्षेत्रों का प्रयोग इस मैदान के शुष्क भागों की सिंचाई में किया जा सकता है। इनका विश्वास है कि हिमालय के प्रपातों से जल-विद्युत-शक्ति बना कर यदि उससे कुओं में पम्प लगाये जायें तो भूमि के नीचे के जल को ऊपर लाया जा सकता है और इससे ऐसी सिंचाई व्यवस्था विकसित की जा सकती है जिससे बहुत सा शुष्क प्रदेश उपजाऊ बनाया जा सकता है।

इन्हीं की राय के अनुसार भारत में बिहार और उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम १९३० में नलकूप निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया। साधारणतः नल कूपों की सफलता निम्न दशाओं पर निर्भर करती है :—

(i) भूमि तल के नीचे जल की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए जिससे वह धरातल की जल की मांग को स्थायी रूप से पूरा कर सके।

(ii) जल-तल का धरातल भूमि से (१५२ मीटर) की गहराई से अधिक न हो तथा उसका तल साधारणतः तल से नीचा हो।

(iii) सिंचाई की माँग औसत रूप से वर्ष भर में ३,२०० घन्टे हो।

(iv) सस्ती विद्युत-शक्ति की उस क्षेत्र में सुविधा हो। यह साधारणतः दो पैसे प्रति इकाई से अधिक न हो।

(v) मिट्टी इतनी उपजाऊ हो कि नलकूप-निर्माण में किया गया व्यय उस पर अधिक उत्पादन करके प्राप्त किया जा सके।

ट्यूबवैल से खेतों तक जल पहुँचाने के लिए कभी-कभी १·६ कि० मी० की दूरी तक पक्की और ३·२ कि० मी० की दूरी तक कच्ची नालियाँ (Guls) बनानी पड़ती है।

नलकूपों द्वारा सिंचित क्षेत्रफल अधिकतर उत्तर प्रदेश में ही पाया जाता है इसके निम्नांकित कारण हैं :—

(क) यहाँ नदियों के मैदान के अधिकांश भागों में ३० मीटर के परिमाण के अच्छे जल धारण करने वाले स्तर पाये जाते हैं जिनमें भूमि की ऊपरी सतह से ९१ मीटर नीचे तक भली भांति खुदाई हो सकती है। बोरिंग द्वारा नीचे वाले स्तरों में छिद्र किये जाते हैं ताकि निकट वाले साधारण कुओं में जल की कमी न हो जाय। अगर इस ३० मीटर के मोटाई के जल-धारण करने वाले स्तर में ६" व्यास वाले बोरिंग का नल ५ मीटर नीचा बैठा दिया जाय तो एक कुएँ से लगभग ३४,००० गैलन प्रति घन्टा के हिसाब से जल लिया जा सकता है। इतने जल से सामान्यतः

एक नलकूप के अन्तर्गत १,००० एकड़ भूमि होती है जिसमें से प्रति वर्ष ४०० एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

(ख) यहाँ के अधिकांश कुओं में जल का स्रोत पृथ्वी की ऊपरी सतह से ६ मीटर से भी कम गहराई पर मिलता है। इन कुओं में केन्द्रोपसारी पम्प लगाये जाते हैं जो बिजली की एक इकाई शक्ति से २,५०० से ४,५०० गैलन तक जल खींच लेते है। जिन भागों में जल-स्रोत ६ से १२ मीटर की गहराई पर मिलता है वहाँ नल-कूपों मे छिद्र का प्रयोग किया गया है जिनसे प्रति घन्टा २ हजार से ३ हजार गैलन तक पानी फेंका जाता है।

(ग) यहाँ वर्ष भर ही सिंचाई की मांग रहती है। खरीफ के मौसम में गन्ना, चरी और कपास तथा रबी की मौसम में गेहूँ, चना और चरी आदि की फसल की सिंचाई की जाती है।

उत्तर प्रदेश में नल कूपों की सिंचाई के क्षेत्र मुख्यतः दो भागों में विभाजित हैं:—(१) गंगा नदी के पश्चिम की ओर के भाग जिनमें मेरठ, मैनपुरी, एटा, इटावा, फरुख्खाबाद, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और अलीगढ़ के वे जिले हैं जिनमें वर्षा की मात्रा कम होती है तथा जहाँ जल का स्रोत भूमि के ऊपरी धरातल से ६-९ मीटर की गहराई पर मिल जाता है। इस क्षेत्र में लगभग ५०० नलकूप हैं।

(२) गंगा नदी के पूर्व की ओर के भाग—जिसमें बिजनौर, मुरादाबाद, जौनपुर, देवरिया, आजमगढ़, गोरखपुर, बलिया, बनारस, गाजीपुर, सुल्तानपुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच और बदायूं के जिले सम्मिलित है—में जल स्रोत भूमि से ४ $\frac{1}{2}$ से ६ मीटर नीचे की गहराई पर मिलता है। गंगा की नहरों से उत्पादित सस्ती बिजली इन कुओं को चलाने के लिए उपलब्ध है। प्रत्येक कुएं से सम्भवतः १$\frac{1}{4}$ वर्ग मील भूमि की सिंचाई की जाती है। इस क्षेत्र में लगभग २,००० कुएं हैं।

दक्षिण भारत में जल सहित स्तर केवल मुड़ावदार भागों में या चट्टानों के खड्डों में ही मिलते हैं। अतः ऐसे कूप कम ही मिलते हैं।

गुजरात में अहमदाबाद के निकट पाताल तोड़ कुएँ भी मिलते हैं। जल ७६ मीटर गहराई से पम्प करके प्राप्त किया जाता है। इनसे प्रति घन्टा ४ लाख गैलन मिलता है। अहमदाबाद के निकट छालोदा में २५७ मीटर गहरा पातालतोड़ कुआं है जिससे प्रतिदिन ६,५०,००० गैलन जल मिलता है।

१९५१ तक भारत में २,५०० नलकूप थे। इनमें से २,३०० उत्तर प्रदेश में थे। इनसे लगभग १० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती थी। प्रथम योजना काल में विभिन्न राज्यों में ५,८३० नलकूप बनाने की योजना थी जिनमें से २,६५० भारत अमरीका-टैक्नीकल सहयोग कार्य-क्रम के अन्तर्गत, ७०० नलकूप अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के अन्तर्गत और २४८० नलकूप राज्यों की विकास योजनाओं के अन्तर्गत सम्मिलित थे। इनमें से ३,२०५ नल कूप बन कर तैयार हो चुके हैं।

भारत में भारत-अमरीकी तांत्रिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक ३००० नलकूप उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब में खुदवाये जा चुके हैं। अधिक अन्न उपजाओ आंदोलन के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश और पंजाब में २७० नलकूप और गुजरात में ४०० नलकूप और खोदे गये हैं।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में १५०० नलकूप निर्माण योजना के अन्तर्गत उत्तर

प्रदेश में ७६६ कुएँ बनाये गये; ६५५ कुओं पर जल खींचने वाले पम्प लगाये गये और ६३० कुओं की जल खीचने की शक्ति में वृद्धि की गई। गुजरात में १७५ नलकूप लगाये गये जिसमें से २४ काम कर रहे हैं। आसाम में ८, प० बंगाल में १८ तथा मध्यप्रदेश में १५ नलकूप बनाये गये।

भूगर्भीय जल अनुसंधान योजना के अन्तर्गत बिहार, आंध्र प्रदेश, मद्रास, केरल, पंजाब और कच्छ में सब मिला कर २८२ स्थानों पर बर्मे लगाये गये जिनमें से १४७ को कुओं में परिवर्तित किया गया।

३. तालाब (Tanks)

तालाबों द्वारा भारत के सिंचित क्षेत्रफल का लगभग २०% भाग सींचा जाता है।

तालाब दक्षिण की विशेष परिस्थिति के द्योतक हैं। इसके कई कारण हैं :—(१) दक्षिण की नदियाँ बर्फीली नहीं हैं इसलिए वे वर्षा के जल पर ही निर्भर हो कर बहती हैं। इस प्रकार नदियों व जल प्रपातों की अस्थायी दशा तथा दक्षिण का पहाड़ी धरातल, दोनों स्थितियाँ इस बात के लिए एक बड़ी भारी बाधा उपस्थित करती हैं कि वहाँ नहरों का निर्माण कैसे हो। (२) वहाँ की दृढ़ चट्टानें भी जल को सोख नहीं सकतीं इसलिए कुओं का निर्माण होना असम्भव है परन्तु बड़े-बड़े जलाशयों और जल-भण्डारों का जल आसानी से बाँध बनाकर तालाबों का निर्माण करके खेतों को निरन्तर पानी पहुँचाया जा सकता है। (३) वहाँ की जनसंख्या बिखरी हुई है इसलिए वह स्वयं बाँध की योजना के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करती है अतः यही एक सुव्यवस्थित और सुविधाजनक उपाय है जिसके कारण वर्षा का जल संग्रह किया जाकर सिंचाई के प्रयोग में लाया जा सकता है अन्यथा वह यों ही बह कर बेकार चला जाता है। बाँध निर्माण योजना विशेषतः मद्रास में अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुकी है।

मद्रास में लगभग २४,००० तालाब हैं—ये तालाब चिंगलपुट, दक्षिणी और उत्तरी अर्काट, सलेम, कोयम्टूबर, तिरूचिरापल्ली, तंजौर, मदुराई, रामनाथपुरम और तिरूनलवेली जिलों में हैं। इनके द्वारा ३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

बाँध (Dams)

बाँधों का आकार तालाबों से बड़ा होता है तथा इनके निर्माण में व्यय भी अधिक होता है किन्तु इनमें जल रोक कर वर्ष भर ही नहरों द्वारा निकटवर्ती क्षेत्रों को जल दिया जा सकता है। ऐसे बाँध उत्तर प्रदेश, मद्रास और मैसूर में अधिक पाये जाते हैं।

उत्तर प्रदेश के बांध

(१) **चन्द्रप्रभा बाँध**—यह बाँध वाराणसी जिले में चन्द्रप्रभा नदी पर चकिया नामक स्थान से २० कि० मी० दूर दक्षिण में बनाया गया है। यह २० मीटर ऊँचा और २४३ मीटर लम्बा है। इसमें ७० हजार क्यूसेक जल समा सकता है। इसके निर्माण में ८८ लाख रुपये खर्च हुए हैं। इससे नहरें निकाल कर चन्दौली और चकिया तहसीलों की लगभग ६० हजार एकड़ भूमि सींची जाती है।

(२) **ललितपुर बाँध**—यह बाँध झाँसी जिले में बेतवा की सहायक शहजाद नदी पर बनाया गया है। यह ३३० मीटर लम्बा, और २० मीटर ऊँचा है। इससे नहरें निकाल कर २४,००० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।

(३) **सपरार बाँध**—यह झांसी जिले में मऊरानीपुर से ७ कि० मी० दक्षिण में करौंछा नामक गाँव में बनाया गया है। इससे नहरें निकाल कर लखरी-धसान दोआब की १२,८०० हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जाती है।
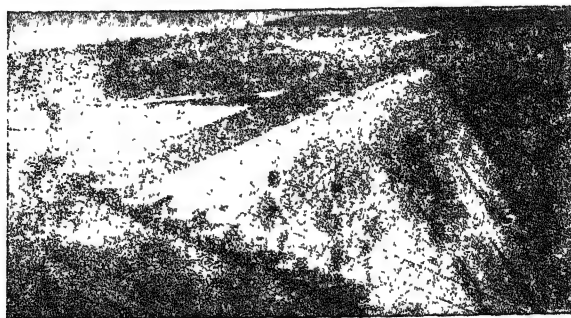
चित्र ७१. चन्द्रप्रभा बाँध

(४) **नगवा-शाहगंज बाँध**—झांसी जिले में नगवा स्थान पर कर्मनासा नरी पर मिर्जापुर से १२६ कि० मी० दक्षिण-पूर्व की ओर बनाया गया है। इसके लगभग ९०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई होती हैं।

(५) **माताटीला बाँध**—यह बाँध झांसी जिले में बेतवा नदी पर बनाया जा रहा है। यह ७१३ मीटर लम्बा और ३६ मीटर ऊँचा होगा। इसके निर्माण की पहली सीढ़ी समाप्त हो गयी है। माताटीला जलाशय में गुरसराय तथा मंदर नहर निकाल कर झाँसी, जालौन एवं हमीदपुर और मध्य प्रदेश की लगभग ४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी।

(६) **सिरसी बाँध**—सम्पूर्णतः मिट्टी का बना है। यह ३½ कि० मी० लम्बा और २२ मीटर ऊँचा है। यह बाँध सिरसी प्रपात के निकट बनाया गया है। इसके द्वारा १६ वर्गमील क्षेत्र की झील बन गयी है। इसमें ७¾ करोड़ घन फुट जल एकत्रित होता है और लगभग १ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

इनके अतिरिक्त अर्जुन बाँध, अहरौरा बाँध, नौगढ़ बाँध आदि भी बन कर तैयार हो चुके हैं।

व्यास नदी पर बाँध

धौलाधर पहाड़ियों की घाटी में पांग गाँव के निकट व्यास नदी पर मिट्टी एवं प्रत्थर का जो बाँध बनाया जा रहा है उस पर ७५ करोड़ रुपया व्यय होगा। यह बाँध १२ मीटर चौड़ा होगा। इस बाँध से रोका गया जल ८०% राजस्थान को तथा २०% पंजाब को मिलेगा। यह बाँध १०६ मीटर ऊँचा होगा।

इस बाँध से व्यास नदी का जो पानी जमा किया जायेगा उसमें ४० किं०मी० लम्बा जलाशय बनेगा। इसमें लगभग ५८ हजार एकड़ भूमि डूबेगी और उसमें से

लगभग २८ हजार एकड़ कृषि योग्य भूमि है। अनुमान लगाया गया है कि इस क्षेत्र में ११० गाँव हैं। इनमें ६ हजार ४०० परिवार तथा ४० हजार की आबादी है।

इन परिवारों को राजस्थान नहर के किनारे प्रत्येक परिवार को पाँच एकड़ भूमि देकर बसाने का विचार है। अनुमान लगाया गया है कि इनके अतिरिक्त भी राजस्थान नहर का पूरा पूरा उपयोग करने के लिए पंजाब के लगभग चालीस लाख किसानों को नहर के किनारे पर बसाना पड़ेगा।

योजना के प्रथम भाग में भाखड़ा बांध के ऊपर पण्डोह के पास व्यास नदी पर एक बांध बनाया जायेगा। उसकी ऊँचाई ३६ मीटर होगी। इससे निर्मित जलाशय में १० हजार एकड़ फुट पानी जमा होगा। वहाँ तीन सुरंगें बनायी जायेंगी। पहली सुरंग आठ मील लम्बी और ८ मीटर व्यास की होगी। यह सुकेट घाटी से व्यास नदी को मिलायेगी। सात मील लम्बी दो और सुरंगें बनायी जायेंगी। ये सुकेट घाटी से सतलज नदी तक पानी ले जायेंगी। इन पर ही तीन लाख ६१ हजार कि०वाट० का बिजलीघर बनाया जायेगा। इस पर एक अरब २५ करोड़ रु० व्यय होगा।

वर्तमान कार्यक्रम के अनुसार व्यास बांध योजना १९७० तक समाप्त हो जानी चाहिए। इस योजना के परिणामस्वरूप सिंचाई के लिए अतिरिक्त पानी की जो व्यवस्था होगी, उससे वर्ष में २० करोड़ रुपये की अतिरिक्त फसल पैदा होने का अनुसार है। इसके अतिरिक्त दो लाख ४० हजार कि० वा० क्षमता के बिजलीघर भी बनाये जा सकेंगे। इससे व्यास नदी की बाढ़ की भी रोकथाम हो सकेगी। इसी प्रकार बाँध के स्थान से लगभग ३७ कि० मी० तक नदी में छोटे जहाज भी चलाये जायेंगे।

तृतीय योजना के अन्तर्गत सिंचाई कार्यक्रम

पहली योजना के आरम्भ में विभिन्न साधनों से कुल ५·१५ करोड़ एकड़ भूमि में सिंचाई होती थी। इसमें से बड़ी और मध्यम योजनाओं से सिंचित २·२ करोड़ एकड़ क्षेत्र था। पाँचवी योजना के अन्त तक (१९७५-७६) तक बहुउद्देशीय योजनाओं सहित बड़ी और मध्यम योजनाओं से ८·५ करोड़ भूमि की सिंचाई होने लगेगी। तीसरी योजना में निम्नांकित योजनाओं को प्रमुखता दी गई है :—

(१) दूसरी योजना की बाकी वची योजनाओं की कार्यान्विति। इसमें खेत नालियाँ भी शामिल हैं।

(२) नालियों और जल-निकासी से सम्बद्ध योजनायें।

(३) मध्यम सिंचाई योजनायें।

पहली और दूसरी योजनाओं में १,००० करोड़ रुपये की लागत से जो बड़ी और मध्यम योजनाएँ आरम्भ की गई थीं किन्तु पूरी न हो सकीं, उनको पूरा करने के लिए ४३६ करोड़ रुपये और नई योजनाओं पर १६४ करोड़ रुपये तथा बाढ़ नियंत्रण कार्यों पर ६१ करोड़ रुपये का व्यय निर्धारित किया गया है।

द्वितीय योजना के अंत में सिंचाई की संभावनायें जो अपूर्ण रह जायेंगी वह ३२ लाख एकड़ की होंगी। तीसरी योजना में संभावित सिंचाई क्षमता इन चालू योजनाओं से लगभग १३८ लाख एकड़ की होगी और नई योजनाओं से २४ लाख एकड़ की। इस प्रकार सब मिलाकर १६२ लाख एकड़ की सिंचाई की क्षमता होगी इसमें से १२८ लाख एकड़ पर सिंचाई की जा सकेगी।

तीसरी योजना में सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण कार्यों पर होने वाला व्यय तथा लाभ इस प्रकार अनुमानित किया गया है :—

योजनायें	अनुमानित व्यय (करोड़ रु०)	अतिरिक्त लाभ संभावित (लाख एकड़ों में)	सकल सिंचित क्षेत्र (लाख एकड़ों में)
चालू योजनायें	४३६	१३८	११६·५
नई योजनायें	१६४	२४	११·५
योग	६००	१६२	१२८·०
		वास्तविक क्षेत्र	११५·०
बाढ़ नियंत्रण नालियों, जल निकासी एवं समुद्री कटाव को रोकने की योजनायें	६१	लगभग ५० लाख एकड़ भूमि को लाभ पहुँचेगा और २५ मील समुद्री तट की कटाव से रक्षा की जायेगी—	
कुल योग	६६१	——	

पहली और **दूसरी योजनाओं** से तीसरी योजना में चालू की गई मुख्य परि-योजनायें ये हैं :—

	कुल व्यय (ला० रु०)	पूर्ण समाप्ति पर सिंचाई लाभ (००० एकड़ में)
बाघ (महाराष्ट्र)	६१०	६०
बनास (गुजरात)	८२७	११०
बनास (राजस्थान)	७७६	१५०
बरना (म० प्रदेश)	५५२	२००
भद्रा (मैसूर)	३,१९२	१,३१०
भाखरा नांगल	१०,१८९	४१९
चम्बल (प्रथम और द्वितीय चरण)	५,४८५	१,७०३
दामोदर घाटी	३,४६८	११६
गंडक	४,९४५	३,०००
घाट प्रभा बांई नहर	१,८६३	५७२
गिरना (महाराष्ट्र)	८६५	५१९
हीराकुण्ड (प्रथम चरण)	९,३३४	१,२००
कदम (आंध्र)	६०१	९०
ककरापार नहर	१,८७०	४००

अध्याय ९

बहुमुखी योजनायें

(MULTIPURPOSE PROJECTS)

भारत की जलराशि

भारत की नदियों में अथाह जलराशि बहती है, जिसका लगभग ४/५ वाँ भाग बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों से प्राप्त होता है किन्तु राजस्थान के शुष्क मरुस्थल में जल-राशि का अभाव है। यह निम्न तालिका से प्रकट होगा :—

क्षेत्र	प्रवाह क्षेत्र (वर्गमीलों में)	साधारण औसत वर्षा (इंचों में)	औसत मध्यम तापक्रम (फा० में)	वार्षिक हानि (इंचों में)	वार्षिक बहाव	वार्षिक बहाव (दस लाख एकड़ फीट में)
१. अरब सागर में गिरने वाली सभी नदियाँ	१८९,७९०	४७·९५	७७·९°	२३·११	२४·८४	२५१,४६
२. भारत में सिंधु नदी का प्रवाह क्षेत्र	१३६,६७३	२१·९६	५४·७°	७३·०१	८·८४	६४,४३
३. बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली सभी नदियाँ (गंगा और ब्रह्मपुत्र को छोड़कर)	४६७,३०९	४२·७७	७९·०°	२९·३७	१३·४०	३३४,०३
४. गंगा नदी प्रणाली	३७६,८१८	४३·७६	६२·२°	२४·००	१९·७६	३९७,०९
५. ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली	१९५,४६०	४८·११	४६·८°	१८·४७	२९.६४	३०८,९५
६. राजस्थान का शुष्क मरुस्थल	६४,८८७	११·४८	७९·१°	११·४८	—	—
योग	१,४३०,९३७	४१·४८	—	२३·२६	१७·७७	१,३५,५९६

योजना आयोग के अनुसार भारत की मुख्य-मुख्य नदियों के जल का बहाव, उसका उपभोग और आयोजित उपभोग इस प्रकार हैं :—

नदियों का बहाव-क्षेत्र	अनुमानित औसत प्रवाह	१९५०-५८ तक उपयोग (लाख हैक्टेअर में)	१९६०-६१ तक उपयोग
सिन्धु	२०२	९·३	२४·२
गंगा	४८०	४५·५	८८·७
ब्रह्मपुत्र	३५०	२·८	२·८
गोदावरी	१०१	१४·४	१७·४
महानदी	१०१	३·७	१६·६
कृष्णा	६०	१०·८	३२·७
नर्मदा	३८	०·३	१२·३
ताप्ती	२०	०·३	५·३
कावेरी	१४	९·५	११·९
योग	१३७६	९६·८	२११·९

भारत में होने वाली वार्षिक वर्षा का अनुमान ३०,००० लाख एकड़ फुट का लगाया गया है। इसमें से १०,००० लाख एकड़ फुट जल वाष्पीभवन क्रिया द्वारा उड़ जाता है, लगभग ६,५०० लाख एकड़ फुट भूमि सोख लेती है। केवल १३,५६० लाख एकड़ फुट जल ही नदियों में बहता है। किंतु भूमि के असमान धरातल, जल-वायु एवं मिट्टियों की प्रकृति में भिन्नता होने के कारण इस सारी राशि का उपयोग नहीं किया जा सकता। सिंचाई के लिए केवल ४,५०० लाख एकड फुट का ही उपयोग संभव है। अभी तक सम्पूर्ण जल राशि का सिंचाई के लिए जो उपयोग हो सका है उसका प्रतिशत १९५१ में ६ था, १९६१ में यह बढ़कर ९ प्रतिशत हो गया और तृतीय योजना के अन्त में यह १२ प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। इसी प्रकार भारतीय नदियों के जल में संभावित शक्ति की राशि ४११ लाख किलोवाट अनुमानित की गई है। इसमें से वास्तविक शक्ति का उत्पादन १९५१ में केवल १·४ प्रतिशत हुआ था और १९६१ में २·१ प्रतिशत। १९६६ में यह १२·४ प्रतिशत हो जाने का अनुमान लगाया गया है।

भारत की इस विशाल जलराशि का उपयोग करने हेतु केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने कुछ योजनायें बनाई हैं जिनके उद्देश्य बहुमुखी हैं। इन योजनाओं से न केवल देश के सिंचाई के साधनों में ही उन्नति होगी वरन् इनसे जल-विद्युत शक्ति भी उत्पन्न होगी। इसके अतिरिक्त इन योजनाओं से बाढ़-नियन्त्रण, जल मार्गों की सुविधा, आमोद-प्रमोद के साधनों की उपलब्धि, मछली पकड़ने और वृक्षारोपण आदि करने की सुविधायें भी प्राप्त होंगी। उद्देश्यों की बहुलता के कारण ही इन योजनाओं को बहुमुखी योजनायें (Multi-Purpose Projects) कहा जाता है।

टैनेसी घाटी योजना (T. V. A.) के ढंग पर संसार के अन्य देशों—फ्रांस,

जर्मनी, रूस, अमरीका—में बनी नदी घाटी योजनाओं की सफलता होकर भारत में जल राशि का उपयोग करने के लिए ही इन योजनाओं गया है। इन योजनाओं के उद्देश्य हैं :—

(१) सिंचाई और भूमि का वैज्ञानिक उपयोग एवं प्रबन्ध; शक्ति में वृद्धि और औद्योगीकरण; (३) बाढ़ नियन्त्रण और बीमारि थाम में सहायता; (४) जल मार्गों का विकास तथा क्षेत्रीय आर्थिक प्र घरेलू कार्यों के लिए जल की व्यवस्था; (६) मछली उद्योग का विकास तथ झीलों में आमोद-प्रमोद के साधन उपस्थित करना; (७) जंगलों की रक्षा, वृक्ष रोपण एवं ईंधन का प्रबन्ध; (८) पशु सम्पत्ति के लिए चारे की व्यवस्था; (९) दुर्भिक्ष आदि से मुक्ति दिलाना; और (१०) भूमि का कटाव रोककर उसे कृषि योग्य बनाना।

केन्द्रीय सरकार इन योजनाओं पर कार्य कर रही है :—

(१) दामोदर घाटी की योजना (हुगली बहाव प्रदेश); (२) कोसी योजना (पूर्वी गंगा प्रदेश); (३) हीराकुड योजना (उड़ीसा); (४) रिहन्द या गोविंदवल्लभ योजना (उत्तर प्रदेश); (५) तुंगभद्रा योजना (मद्रास-आंध्र); (६) भाकड़ा-नांगल योजना (पंजाब/राजस्थान)।

इन योजनाओं के अतिरिक्त राज्य सरकारों ने भी कई मुख्य योजनाओं को आरम्भ कर रखा है। इनमें मुख्य ये हैं :—

(७) नागार्जुन और (८) रामपदसागर योजना—आंध्र प्रदेश में। (९) मचछकुन्ड योजना—पश्चिमी बंगाल में। (१०) निचली भवानी, (११) मनीमुथार तथा (१२) कुन्दायोजना—मद्रास में। (१३) भद्रा योजना—मैसूर में, (१४) मयूराक्षी—पश्चिमी बंगाल-बिहार में, (१५) कांग्सी और (१६) माताटीला बाँध पश्चिमी बंगाल तथा उत्तर प्रदेश में, (१७) तवा योजना—मध्य प्रदेश में, (१८) ककड़ापार, और (१९) कोयना बाँध गुजरात में; (२०) घाट प्रभा, (२१) गंगापुर और (२२) पूर्णा योजनाएँ—महाराष्ट्र में। (२३) चम्बल योजना—राजस्थान/मध्य प्रदेश में।

यहाँ हम कुछ मुख्य योजनाओं का ही वर्णन करेंगे।

(१) दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project)

दामोदर नदी छोटा नागपुर की पहाड़ियों से ६१० मीटर की ऊँचाई से निकलती है। यह ५४१ मीटर लम्बी है तथा बिहार में २९० कि० मी० बहने के बाद पश्चिमी बंगाल में २४० कि० मीटर बहकर हुगली नदी में गिर जाती है। यद्यपि देखने में यह नदी बहुत बड़ी नहीं लगती किन्तु हानि पहुँचाने में यह किसी भी बड़ी नदी से कम नहीं हैं। इसकी ऊपरी घाटी में वर्षाकाल में अत्यधिक वर्षा होने से इसमें भयंकर बाढ़ें आती हैं तथा अपने प्रारम्भिक भाग में तीव्र गति के कारण यह किनारे की मिट्टी को खूब काटती और बहा ले जाती है। दूसरे भाग में पहुँचने पर इसकी गति मंद हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप बहाई हुई मिट्टी मुहाने पर आकर जम जाती है तथा बाढ़ को भयानक रूप से विस्तृत कर देती है। करोड़ों रुपयों की फसल और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, यातायात के मार्ग रुक जाते हैं तथा ८,५०० वर्गमील की इसकी तराई विध्वंस को प्राप्त होती है।

योजः नदी की ऊपरी घाटी वनरहित है किन्तु यह खनिज पदार्थों में बड़ी
उसका उपभोसम्पूर्ण भारत में उत्पन्न होने वाले तांबे का १००%; कियेनाइट का
लोहे का ६३ प्र० श०, कोयले का ८० प्र० श०, क्रोमाइट और अभ्रक
नदियों का ा; अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी का ५०%; अस्बस्टस का ४५ प्र० श०;
क्षेत्र ४५ प्र० श०, चूने के पत्थर का २० प्र० श० और मैंगनीज का १०
मिलता है। किन्तु अभी तक इन खनिज पदार्थों का पूरा उपयोग नहीं
प्राकृतिक सम्पत्ति की भी बहुलता है विशेषतः टिम्बर, लाख, टसर और
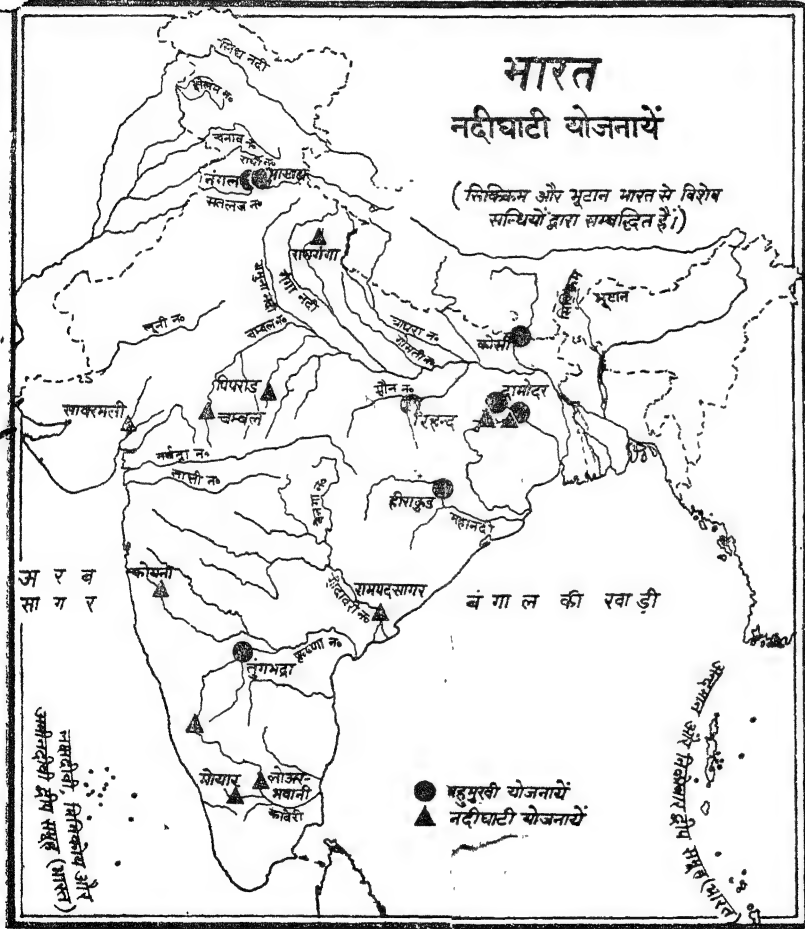
चित्र ७२. भारत नदी घाटी योजनाएँ

रेशम की। दामोदर की निचली घाटी यद्यपि बहुत उपजाऊ है किन्तु सिंचाई के साधनों के अभाव में गहरी खेती नहीं हो सकती इसके अतिरिक्त दामोदर घाटी व

इसके आस पास के भाग भारत के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र माने जाते हैं क्योंकि यहीं भारत के लोह-उद्योग, सिंदरी में खाद का कारखाना, चित्तरंजन में रेल के इंजन का कारखाना तथा सीमेंट आदि के कारखाने भी हैं। अतः इस घाटी को भारत की रूर घाटी कहा जाता है।

किंतु दामोदर नदी अपनी विनाशकारी बाढ़ों के लिए सदैव से ही मुख्य रही है। अस्तु १९४८ में भारत सरकार ने एक कानून द्वारा दामोदर घाटी की सर्वाङ्गीण उन्नति करने हेतु **दामोदर घाटी निगम** (Damodar Valley Corporation) की स्थापना की। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य दामोदर नदी की घाटी का आर्थिक विकास करना तथा सिंचाई, जल-विद्युत उत्पादन और बाढ़ को रोकने जैसे उद्देश्यों को पूरा करने के लिए काम की विभिन्न प्रणालियाँ आदि चालू करना है।

दामोदर घाटी योजना के अन्तर्गत आठ बाँध बनाये जायेंगे जिनसे बिजली-घर सम्बद्ध होंगे और एक बडा अवरोधक (Barrage) बनाया जायेगा। ये बांध क्रमशः बराकर नदी पर **मैथान**; दामोदर नदी पर **अय्यर**; **कोनार** व **बोकारो** में; बराकर में **बालपहाड़ी** और **तिलैया** पर तथा दामोदर में **पंचेत पहाड़ी** नामक स्थान पर बनाये जायेंगे। एक बड़ा अवरोधक दुर्गापुर पर बनाया जायेगा जिससे लगभग २५०० कि० मी० लम्बी नहरें व उनकी शाखायें निकाली जायेंगी। इन बाँधों से बाढ़ का जल रोका जायगा और सभी बाँधों से जल-विद्युत शक्ति उत्पन्न की जायगी। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर जल शक्ति के केन्द्रों को सहायता देने के लिए एक ५ लाख किलोवाट शक्ति का विशाल कोयला शक्ति केन्द्र भी बनाया जायगा।

यह योजना केन्द्रीय सरकार तथा बिहार और बंगाल की राज्य सरकारों के सहयोग से कार्यान्वित हो रही है। इसमें लगभग ८६ करोड़ रुपया खर्च होगा और अन्ततः सम्पूर्ण योजना की समाप्ति पर निम्न लाभ होंगे :—
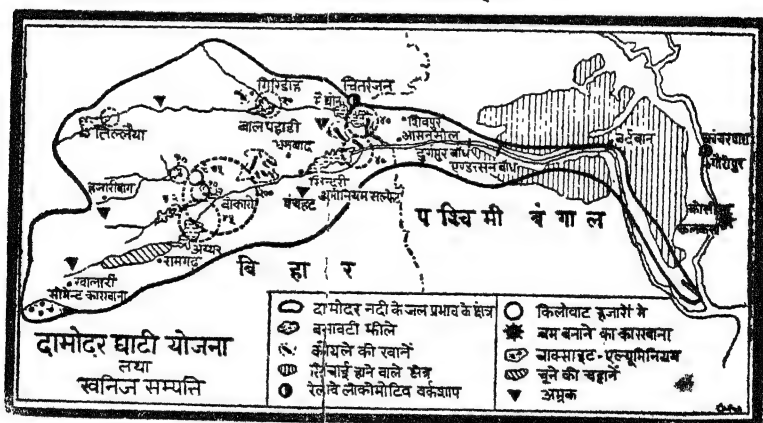
चित्र ७३. दामोदर नदी घाटी योजना

(१) दामोदर और उसकी सहायक नदियों में आने वाली बाढ़ों पर नियन्त्रण हो सकेगा। (२) लगभग ४$\frac{1}{2}$ लाख हैक्टेअर भूमि पर नित्यवाही सिंचाई हो सकेगी जिससे लगभग ३०·४८ करोड़ रुपये के मूल्य का ३·५ लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न

बोकारो में कोयले से चलने वाला शक्ति गृह १९५३ में चालू हो चुका है। इसकी उत्पादन क्षमता २,२५,००० किलोवाट है।

दुर्गापुर अवरोधक १९५५ में बनकर समाप्त हो चुका है। यह बाँध ६७५ मीटर लम्बा और १२ मीटर ऊँचा है। इस बाँध से निकाली गई नहरों से ९·७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। इस बाँध से दोनों किनारों पर दो नहरें होंगी। दाहिने ओर की नहर ६४ कि० मी० और बायीं ओर की नहर १३७ कि० मी० लम्बी है। यह दामोदर नदी को कलकत्ता से ४८ कि० मी० ऊपर की ओर हुगली नदी से मिलाती है। इस नहर द्वारा कलकत्ता और घाटी के बीच में कोयला आदि वस्तुएँ ढोने की सुविधा हो गई है। इस बाँध से निकाली गई नहरों और शाखाओं की कुल लम्बाई २,४१४ कि० मी० है।

दामोदर घाटी निगम से पश्चिमी बंगाल में बर्दवान, हावड़ा, हुगली और बांकुडा में ३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जा रही है।

इस योजना के द्वितीय चरण के अंतर्गत बरमा, अय्यर, बोकारो और बाल पहाड़ी स्थानों पर जलविद्युत शक्ति के लिए बाँध बनाये जायेंगे।

(२) कोसी योजना (Kosi Project)—कोसी नदी अपनी विनाशकारी बाढ़ों के लिये पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी है। अनुमान है कि जब साधारण रूप से ही कोसी में बाढ़ आती है तो वह प्रतिवर्ष बिहार में लगभग २,०००-३,००० वर्ग
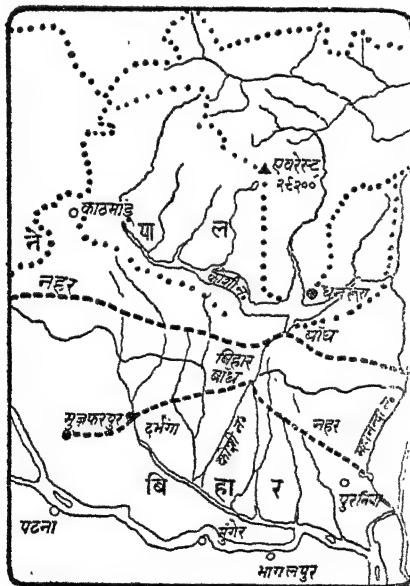
चित्र ७६. कोसी बाँध योजना

मील के तथा नैपाल के २००-५०० वर्गमील क्षेत्र में अपार क्षति करती है और बाढ़ के बाद मलेरिया का प्रकोप बढ़ता है। इसके बदलते हुए प्रवाह ने इसकी भयंकरता

को और भी अधिक कर दिया है। यह नदी धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ रही है और पिछले २०० वर्षों में ११३ कि० मी० बढ़ चुकी है। यह अपनी तीव्र धारा और एकदम से ही पानी बढ़ जाने के लिए बदनाम है अतः इस नदी पर नियंत्रण करना आवश्यक समझ कर ही कोसी योजना का विकास किया जा रहा है।

यह योजना सिंचाई, शक्ति, जलमार्ग, बाढ़ नियंत्रण, मिट्टी के कटाव नियंत्रण, दलदल भूमि को साफ करके मलेरिया नियन्त्रण, मछली पकड़ने और मनोरंजन की सुविधा की दृष्टि से एक बहुमुखी योजना है। यह नदी नैपाल की पहाड़ियों से निकलकर सूर्यकोसी, अरूण और तामूर नदियों के संगम से ६ किलोमीटर नीचे छत्तर खड्ड को पार कर बिहार में प्रवेश कर २६० कि० मी० बहकर गंगा में मिल जाती है। इस योजना के द्वारा नैपाल में छत्तर खड्ड के आर-पार २३० मीटर ऊँचा बाँध बनाया जावेगा। इस बाँध के द्वारा १४·६ लाख हैक्टेअर जल संग्रहीत किया जा सकेगा।

इस योजना के द्वारा कोसी पर दो बाँध बनाये जायेंगे :—(१) पहला बाँध कोसी के आर-पार नैपाल में हनुमाननगर से ५ कि० मीटर ऊपर की ओर बनाया जायगा। इसके दोनों किनारों से नहरें निकाल कर नैपाल के सप्तारी जिले में तथा बिहार की पूर्णिया और सहरसा जिलों की लगभग १२ लाख हैक्टेअर भूमि में सिंचाई की व्यवस्था की जा सकेगी। (२) दूसरा बाँध कोसी नदी के आर-पार नैपाल तथा बिहार की सीमा पर बनाया जायगा यहाँ से दो नहरें बांयी तथा एक नहर दांयी ओर बनाई जायगी जिससे बिहार की ४ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई होगी। कोसी नहर प्रणाली की सहायता से ३½ लाख एकड़ भूमि को खेती योग्य बनाया जा सकेगा। इस नई भूमि में खेती होने से उत्पादन लगभग १ करोड़ ७ लाख टन बढ़ेगा। यह पूर्णिया, दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिले की जनसंख्या का जीवन-स्तर उठाने में भी सहयोग प्रदान करेगी। बिहार के इस प्रदेश में पानी की अधिकता से बाढ़ भी आया करती है तथा पानी की कमी से अकाल भी पड़ा करता है इसलिए यह योजना जल नियन्त्रण कर उपयुक्त वितरण के द्वारा यहाँ कृषि के उत्पादन में सहयोग प्रदान करेगी। इस योजना के द्वारा २८ लाख किलोवाट शक्ति का उत्पादन होगा। इसके शक्ति-गृहों को दामोदर घाटी के शक्ति गृहों से मिला कर एक जाल सा बनाने की योजना है। इसमें ४४·७६ करोड़ रुपया खर्च होगा। यह बाँध १९६५ तक समाप्त होने का है।

(३) हीराकुड योजना (Hirakud Project)

इस योजना के अन्तर्ग उड़ीसा में महानदी पर एक बाँध बनाया जा रहा है। यह नदी मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में सिहावा के निकट से निकल कर बिलासपुर जिले में बहती हुई उड़ीसा में प्रवेश करती है। यह नदी ८५७ कि० मी० की यात्रा कर अन्त में कई शाखाओं में फट कर बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। इस नदी से प्रति वर्ष ७ करोड़ ४० लाख एकड़ फीट पानी बहता है किन्तु सिंचाई के कार्य में अब तक केवल ५ प्रतिशत का ही उपयोग किया गया है। अनुमान लगाया गया है कि सन् १८६६ से अब तक ४० बार प्रबल बाढ़ें इस नदी में आ चुकी हैं और प्रत्येक बार २० लाख से लेकर ७० लाख रुपये तक की हानि हुई है।

उड़ीसा राज्य संयुक्त राज्य अमरीका की प्रसिद्ध टिनैसी घाटी से कई गुना

अधिक सम्पन्न है। यहाँ कोयला, लोहा, बाक्साइट, मैंगनीज, ग्रैफाइट, अभ्रक और क्रोमाइट बहुत बड़ी राशि में पृथ्वी के गर्भ में भरा पड़ा है किन्तु महानदी के जल का पूरा उपयोग न हो सकने से यह प्रदेश निर्धन दशा में पड़ा हुआ है। अस्तु, इसको धन-धान्य और उद्योग धन्धों से भरा-पूरा करने के लिए ही हीराकुड योजना का श्रीगणेश सन् १९४८ में किया गया। यह योजना बहुमुखी है। इसके द्वारा बाढ़ नियन्त्रण, सिंचाई, नौका-नयन तथा जलविद्युत शक्ति का विकास किया जायगा।

इस योजना के अन्तर्गत सम्बलपुर जिले में महानदी पर सम्बलपुर से १४ कि० मी० ऊपर की ओर हीराकुड नामक स्थान पर तथा तिकरपाड़ा और नराज
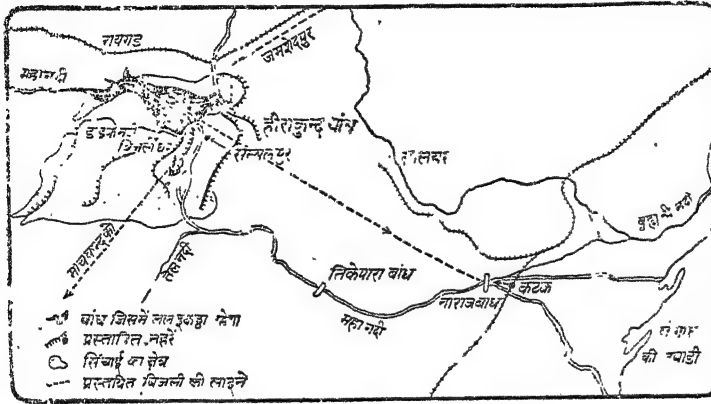
चित्र ७७. हीराकुड बाँध योजना

में तीन बाँध बनाये जायेंगे। सम्पूर्ण योजना से ८ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई तथा ३,५५,००० किलोवॉट बिजली का उत्पादन होगा। बंगाल की खाड़ी से मध्य प्रदेश की सीमा तक ५६१ कि० मी० लम्बा और कम से कम ३ मीटर गहरा जलमार्ग बनाया जायगा। मुख्य बाँध के दोनों ओर से नहरें निकाली जावेंगी और दोनों स्थानों पर जल विद्युत् उत्पन्न की जायेगी। इसमें ९७ करोड़ रुपये का व्यय होगा।

सबसे पहले योजना में हीराकुड बाँध का कार्य ही हाथ में लिया गया है। हीराकुड बाँध नदी के तल से ६१ मीटर ऊँचा और ५ कि० मी० लम्बा होगा। यह विश्व का सबसे लम्बा बाँध है। इसके द्वारा ६३० वर्ग कि० मी० क्षेत्र में ९ लाख हैक्टेअर मीटर जल एकत्रित किया गया है। इस बाँध में तुंगभद्रा बाँध की अपेक्षा दूना और कावेरी मेटूर बाँध से तिगुना पानी समाता है। इसकी क्षमता भाकड़ा बाँध के बराबर है। बाँध के दाहिनी ओर १ कि० मी० और बाँई ओर १० कि० मी० लंबे मिट्टी के दो बाँध और बनाये गये हैं। इस प्रणाली की ३ मुख्य नहरें हैं—दाहिनी ओर बोरगढ़ नहर और बाँई ओर सेसन नहर तथा संबलपुर नहर। बोरगढ़ नहर ८८ कि० मी० लम्बी है। इसकी दो बड़ी शाखायें अट्टाबीरा और रेतामुंडा है तथा २० छोटी नहरें हैं। मुख्य नहरें ऊँची-नीची भूमि पर होकर निकलती हैं अतः अनेक नदियों को पार करने के लिए पुल बनाये गये हैं। सबसे बड़ा पुल जीरा नदी पर २२२ मीटर लम्बा है।

इससे सम्बलपुर तथा बोलांगिर जिलों की ५·७ लाख एकड़ भूमि की और पुरी तथा कटक जिलों की लगभग १६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी।

बाँध के निकट एक शक्तिगृह बनाया गया है जिसकी उत्पादन क्षमता १,२३,००० किलोवाट की है। इसमें ४ शक्ति उत्पादक यंत्र लगाये गये हैं। यह शक्ति हीराकुड के अल्यूमीनियम के कारखाने, राजगंगापुर की सीमेंट की फैक्ट्री, रूरकेला के इस्पात, जोदा के फैरो मैंगनीज, बृजराजनगर के कागज तथा सूती कपड़े के कारखानों को मिल रही है। यह शक्ति कटक, जमशेदपुर, पुरी, सबलपुर, सुन्दरगढ़, बारगढ़, क्योंझार, थलचार आदि स्थानों को भी भेजी जा रही है। इस बिजली की लाइन मच्छकुन्द शक्तिगृह को भी जोड़ती है। इस योजना से सम्पूर्ण महानदी घाटी को लाभ पहुँचेगा क्योंकि इसके द्वारा न केवल सिंचाई, बिजली, नौका-संचालन, तथा
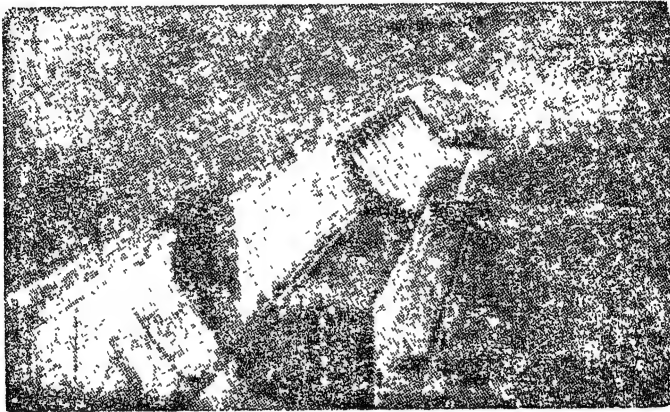
चित्र ७८. हीराकुड बाँध

बाढ़ नियन्त्रण की सुविधायें ही प्राप्त होंगी वरन् इससे मलेरिया के प्रकोप रोकने, मछली की पैदावार बढ़ाने, भूमि के कटाव रोकने और मनोरंजन की सुविधायें भी प्रदान की जायेंगी। अनुमान है कि सिंचाई सम्बन्धी योजना के पूर्ण हो जाने पर लगभग ७·५ लाख टन अन्न और २·९ लाख टन गन्ना अधिक पैदा होने लगेगा तथा ये बांध बाढ़ों को रोक कर लगभग १२ लाख रुपये का लाभ करेंगे। द्वितीय चरण में चिपलिमा में जो बाँध से २५% कि० मी० नीचे की ओर है, अधिक शक्ति प्राप्त करने के, लिए ३ इकाइयाँ २४,००० किलोवाट शक्ति प्रति इकाई की लगाई जायेंगी और हीराकुड के बाँध के शक्तिगृह पर भी ३७,५०० किलोवाट शक्ति वाले दो यंत्र और लगाये जायेंगे।

(४) रिहन्द बाँध या गोविन्द वल्लभ सागर योजना (Rihind or Govind Vallabh Sagar Project)

रिहन्द सोन की एक शाखा है जो मध्य प्रदेश से निकलती है। इसमें बाँध के ऊपर ५,१४८ वर्ग मील क्षेत्र का जल संगृहीत होता है। वर्षा ऋतु में इस नदी में भयंकर बाढ़ें आती हैं जबकि ग्रीष्म ऋतु में यह एक पतली धारा के रूप में बहती

है। अब इस नदी का उपयोग किया जाकर उत्तर प्रदेश और बिहार के गरीबी से पीड़ित अंचलों में उद्योग, खेती और सम्पन्नता की योजनायें सफल बनाई जा सकेंगी।

रिहन्द योजना उत्तर प्रदेश की अब तक की सबसे बड़ी योजना है। इसका स्थान पिपरी (मिर्जापुर जिले में) है। यह स्थान मिर्जापुर के १६१ मीटर दक्षिण में है। यहाँ नदी एक संकरी और तंग घाटी में होकर बहती है, जहाँ दोनों ओर की चट्टानें काफी मजबूत हैं। इस स्थल पर जल का न्यूनतम प्रवाह ५० क्यूसेक और अधिकतम ४½ लाख क्यूसेक रहा है। क्रंकीट बाँध नींव से ६२ मीटर ऊँचा है और नदी तल से १६७ मीटर ऊँचा है। इसकी लम्बाई ६३० मीटर है और सतह में ७० मीटर चौड़ा है तथा ऊपर ७ मीटर। गोविन्द वल्लभ पंत सागर का क्षेत्रफल १८० वर्गमील है जहाँ ११.४ लाख हैक्टेअर मीटर जल जमा हो सकता है। लगभग ८ लाख घन फुट प्रति सैकिंड की गति से आने वाली बाढ़ों को यह जलाशय रोक सकेगा। बाँध की एक विशेषता यह है कि उसके भीतर उसके विभिन्न भागों के निरीक्षण और सफाई के लिए चार सुरंगें बनाई गई हैं जिनकी लम्बाई क्रमशः १३७, १८३, १६८, ६३२ मीटर है। स्पिलवे की लम्बाई २०० मीटर है। इसमें १४ फाटक

चित्र ७६. रिहंद योजना

लगे हैं जिनका आकार ८ मीटर और १२ मीटर का है। स्पिलेव के ऊपर एक पुल है जिस पर ७ मीटर चौड़ी सड़क व २ मीटर चौड़ी पटरी पैदल चलने वालों के लिए बनाई गई है। बाँध के निर्माण में लगभग ३½ लाख टन सीमेंट-कंक्रीट लगी है।

सागर के नीचे की ओर बने हुए बिजलीघर में शक्ति पैदा करने वाली ६ मशीनें लगाने की व्यवस्था है, किन्तु अभी ५ ही मशीनें लगाई गई हैं। इस बिजलीघर से ६,१९८ लाख यूनिट बिजली मिलेगी। अतः उद्योगों और बिजली कम्पनियों को रेलों को बिजली से चलाने, ६०० नगरों और गाँवों को बिजली देने, ६०० राजकीय और ८०० निजी नलकूपों को बिजली से चलाने का कार्य किया जायेगा। पिपरी में २० हजार मैट्रिक टन क्षमता का अल्यूमीनियम का कारखाना तथा इस क्षेत्र में कास्टिक सोडा, क्लोरीन, कपड़ा, कागज, प्लास्टिक तथा अभ्रक उद्योगों को भी यह बिजली मिलेगी। बिजली को ट्रांसफर्मरों द्वारा राबर्ट्सगंज, मिर्जापुर और साहपुरी तक के उपकेन्द्रों को पहुँचाने की व्यवस्था की गई है। साहपुरी से वाराणसी तक भी ये लाइनें बनाई जायेंगी। इस बिजली का उपयोग बिहार राज्य को भी मिल सकेगा।

चित्र ८०. रिहन्द योजना

समें बाँध के
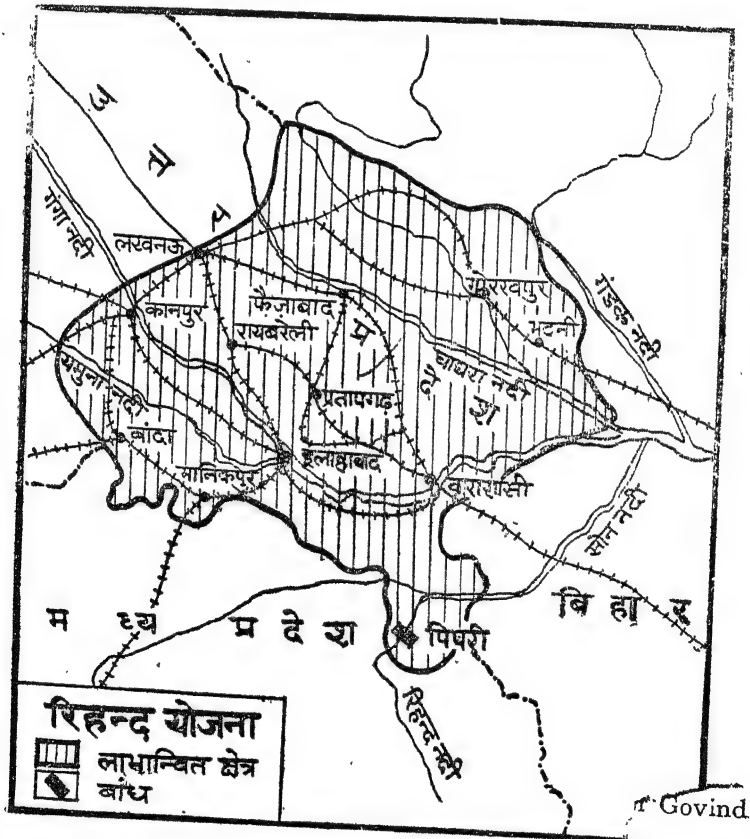
इस प्रदेश के औद्योगिक विकास की संभावनायें बहुत अधिक हैं इस नदी में घाटी में १६१ से २०० मीटर की परिधि में अनेक महत्वपूर्ण खनिज प में बहती

अनुमानित मिर्जापुर जिले की सिंगरौली क्षेत्र में पाये जाने वाले कोयले के भंडार २० लाख टन के हैं। कोयले की मुख्य पट्टी कोटा ग्राम में है। मिर्जापुर जिले में उच्च कोटि के चूने के पत्थर के भी विशाल भंडार है जिनसे कई वर्षों तक सीमेन्ट फैक्ट्रियों की मांग पूरी की जा सकती है। गरिया के उत्तर-पश्चिम की ओर १० लाख टन से अधिक संगमरमर के भी भण्डार स्थित हैं। इसी भांति बाक्साइट के भी अक्षय भण्डार हैं। इन्हीं सब खनिजों के कारण यह क्षेत्र भविष्य में बडा औद्योगिक क्षेत्र बन सकेगा। अभी बिजली का उपयोग करने के लिए साहपुरी में रसायन; गोरखपुर में खाद, नैनी में टायर-ट्यूब, मिर्जापुर में सोडा फैक्ट्री, बिजली का सामान, कागज और गत्ता बनाने के कारखाने भी स्थापित किये जा रहे हैं।

ओपरा पर २½ लाख किलोवाट क्षमता का एक बिजलीघर भी बनाया जा रहा है। यह स्थान रिहन्द बांध के दक्षिण की ओर ३२ कि० मी० दूर है। यहाँ ३१ मीटर ऊँचा बांध बनाया जा रहा है। इस प्रकार तृतीय योजना में लगभग ५ से ६ लाख किलोवाट बिजली रिहन्द क्षेत्र से उपलब्ध हो सकेगी।

पंत सागर का जल सोन नदी में पहुँच कर उसकी सिंचाई क्षमता को बढ़ायेगा। सोन की नहर प्रणालियों द्वारा बिहार की ५ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई की नई सुविधायें मिलेंगी। उत्तर प्रदेश में नलकूपों और नहरों को रिहन्द से बिजली मिल जाने पर यहाँ की १४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। बिहार में इस योजना के फलस्वरूप सोन नदी में जहाजरानी संभव हो सकेगी, और इसकी बाढ़ की तीव्रता भी समाप्त हो जायगी। इसमें मत्स्योत्पादन, भूमि संरक्षण और मनोरंजन की भी सुविधायें मिलेंगी।

संक्षेप में इस योजना के फलस्वरूप प्रदेश के दक्षिण-पूर्व के जिलों के ३२,००० वर्ग मील क्षेत्र को नये जीवन का अनुभव होगा और यहाँ की लगभग २½ करोड़ जनसंख्या को आर्थिक उन्नति का अपूर्व अवसर प्राप्त होगा। सम्पूर्ण योजना पर ४६ करोड़ रुपया खर्च हुआ है जिसमें से ६२% की पूर्ति अमरीका के ऋणों और अनुदानों से हुई है।

(५) तुंगभद्रा बाँध योजना (Tungbhadra Project)

तुंगभद्रा कृष्णा की सहायक नदी है। इस योजना के अन्तर्गत एक पक्के बाँध का निर्माण, मुख्य बाँध की बगल में हौज बनाने के लिए दो छोटे बाँधों का निर्माण, नदी के दोनों ओर दो नहरें, एक ऊँची सतह नहर और शक्तिगृह है। तुंगभद्रा नदी के आर-पार मैसूर के बलारी जिले में हास्पेट के निकट एक २½ किलोमीटर लम्बा और ५० मीटर ऊँचा बाँध बनाया गया है। इसमें १८ मीटर चौड़े और ६ मीटर ऊँचे ३३ दरवाजे बनाये गये हैं। मुख्य बाँध १८३ मीटर लम्बा है और पूरा पत्थर का बना है। इसके बायीं ओर दो बाँध हैं—एक मिट्टी का और दूसरा पत्थर तथा मिट्टी मिश्रित। इन बाँधों का कार्य तुंगभद्रा को बगल से रोकना है। इस जलाशय में ३६५ वर्ग कि० मी० भूमि का लगभग ४ लाख हैक्टेअर मीटर जल रोका गया है और इससे निकली हुई नहरों द्वारा मैसूर और आंध्र राज्यों की ८·२३ लाख एकड़ भूमि को सींचा जा सकेगा। इसके दाहिने किनारे से निकलने वाली नहर ३६२ कि० मी० लम्बी है और मैसूर राज्य की ३६,०००हैक्टेअर भूमि को सींचेगी। इसके बांये किनारे

से २०४ कि० मी० लम्बी नहर निकाली गई है और आँध्र प्रदेश की ६२,००० हैक्टेअर भूमि को सींचेगी। सम्पूर्ण योजना १९६७ तक समाप्त हो जायगी।
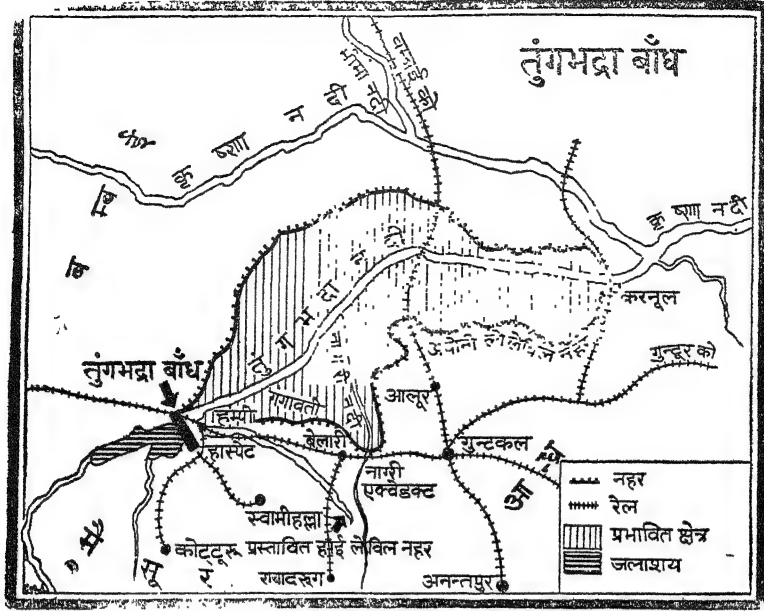
चित्र ८१. तुगभद्रा बाँध योजना
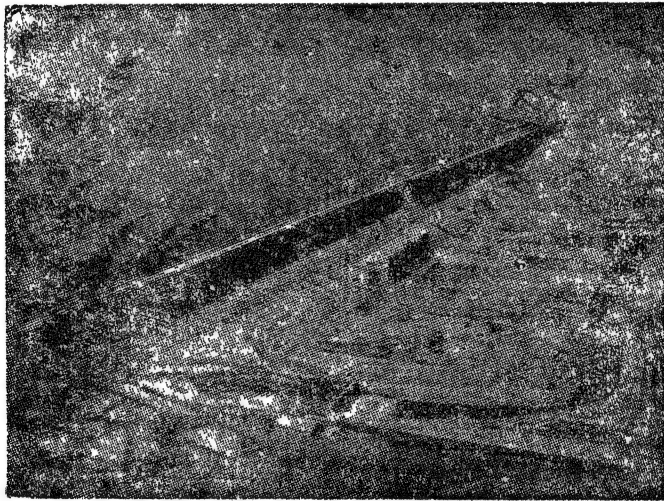
चित्र ८२. तुंगभद्रा बाँध

यहाँ तीन बिजलीघर बनाये गये हैं। बाँध के दोनों किनारों पर एक-एक बिजलीघर है जिसमें बिजली बनाने के ८ यंत्र लगेंगे। इनसे कुल ७२ हू० किलोवाट बिजली बनेगी। इस योजना से कुल १½ लाख किलोवाट बिजली बनाई जायेगी। सिंचाई के सहारे लगभग १½ लाख टन खाद्यान्न और ८०,००० टन व्यवसायिक फसलें पैदा की जायेगी। इसके अतिरिक्त इस अवधि में यहाँ लगभग १७ करोड़ लाख किलोवाट बिजली बनाकर दोनों राज्यों को दी गई संपूर्ण योजना में लगभग १०० करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है।

(६) भाकड़ा नांगल योजना (Bhakra Nangal Project)

सतलज नदी पंजाब की नदियों में बहुत बड़ी है जिसमें वर्षा ऋतु में भयंकर रूप से बाढ़ें आती हैं। इसकी अथाह जलराशि जंगलों, खेतों, ग्रामों आदि का विनाश करती हुई बिना किसी उपयोग में आए हुए समुद्र में बह जाती है।

चित्र ८३. भाखरा नांगल योजना
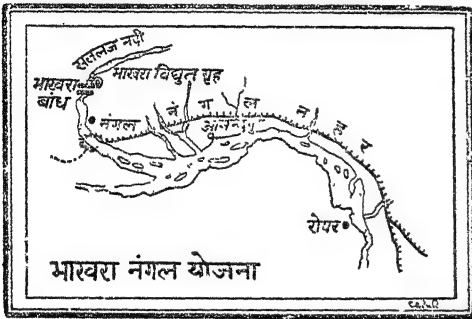
अतः इसका उपयोग करने के लिए इस योजना को कार्यान्वित किया गया है। जब शिवालिक पर्वतमाला की नंदा देवी श्रृंखला को पार करती हुई सतलज नदी मैदानों में उतरने लगती है तो भाकड़ा के समीप वह दो पहाड़ियों के बीचों बीच एक संकरी गली में होकर गुजरती है। यहाँ नदी का पाट ३०५ से ३७० मीटर से अधिक नहीं है। अस्तु, इसी स्थान पर अम्बाला जिले से रूपड़ से ८० कि० मी० ऊपर की ओर भाकड़ा कंदरा में आर-पार एक बाँध बनाया गया है। इस बाँध के कारण नदी का जल एक विशाल झील के रूप में परिणत हो गया है जो लगभग ८० कि० मी० लम्बी और ३-४ कि० मी० चौड़ी है। इस गोविंद सागर झील में ८० लाख एकड़ फीट पानी संग्रह हो सकता है। जल-मग्न हो गई इस झील में एकत्रित पानी की मात्रा का अन्दाज इस बात से लगाया जा सकता है कि इतना जल पूरे देश में साल भर तक घरेलू उपयोग के लिए पर्याप्त है। इससे लगभग २३ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई हो सकेगी और इससे ६ लाख किलोवाट जल विद्युत् उत्पन्न की जा सकेगी। अन्ततः विद्युत् की मात्रा १२ लाख किलोवाट तक बढ़ाई जा सकेगी।

यह योजना भारत की सबसे बड़ी बहुमुखी योजना मानी गई है। इसके उद्देश्य ये हैं:—

(i) सतलज और जमुना के मध्यवर्ती भाग की सिंचाई करना; (ii) सरहिंद नहर में पानी बढ़ाकर उसके सिंचाई के क्षेत्र में वृद्धि करना; (iii) गंग-नहर द्वारा राजस्थान में सिंचाई के लिए जल पहुँचाना; (iv) जल से लगभग १२ लाख किलोवॉट विद्युत् शक्ति उत्पन्न करना।

इस योजना के अन्तर्गत ८ बातें मुख्य हैं: (१) भाकड़ा बाँध; (२) नांगल बाँध; (३) नांगल विद्युत् नहर; (४) दो शक्ति गृह; (५) भाखरा नहर

व्यवस्था; (६) रूपड़ हैडवर्क्स और सरहिंद नहर का सुधार; (७) बिस्त दोआब नहर; तथा (८) बिजली के तारों का जाल।

इस योजना के अन्तर्गत निम्नांकित निर्माण कार्य किये गए हैं:—

चित्र ८४. भाकड़ा बाँध

भाकड़ा बाँध—भाकड़ा नामक स्थान पर सतलज नदी के आर-पार एक बाँध बनाया गया है जो नदी के तल से २२५ मीटर ऊँचा है किन्तु समुद्रतल से यह ५२२ मीटर ऊँचा है और संसार के सीधे बाँधों में यह सबसे बड़ा है। यह बाँध दिल्ली के कुतुबमीनार से तीन गुना ऊँचा है। लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई और मोटाई में बाँध की विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इसका आयतन इतना बड़ा है कि इसके पेट में मिश्र के सात बड़े पिरामिड समा जायेंगे और उतना ही स्थान रिक्त रह जाता है। इस बाँध में लगभग ७·६ लाख टन कंक्रीट लगा है (जिससे कलकत्ता से न्यूयार्क तक ६ मीटर चौड़ी और १ मीटर ऊँची सड़क बनाई जा सकती है)। १ लाख टन फौलाद इसमें काम में लाया गया है (इस मात्रा से यदि रेल की पटरियाँ बनाई जायें तो ४८३ कि० मी० लम्बा रेलमार्ग तैयार हो सकेगा)। इस बाँध में ८ लाख टन सीमेंट लगा है (यह मात्रा यदि मालगाड़ी के डिब्बे में भरी जाय और उन्हें एक सीध में खड़ा किया जाय तो वे नांगल से लखनऊ तक पहुँच जायेंगे)।

इस विशाल बाँध के निर्माण के लिए—जिसकी लम्बाई शिखर पर ५१८ मीटर है और नीचे जल के भीतर इसकी चौड़ाई ३३८ मीटर है—यह आवश्यक था कि सतलज नदी के प्रवाह की दिशा में बदला जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए

नदी के दायें बायें तटवर्ती पहाड़ियों से लम्बी गुफायें निकाल कर दो मार्ग बनाने पड़े हैं। ये दोनों गुफाएँ लगभग ०.८-०.९ किलोमीटर लम्बी हैं और इनका व्यास १५ मीटर है—जो आस-पास की दीवारों में सीमेंट और कंक्रीट की मोटी तह जमा देने के बाद है। मुँह की चौड़ाई की दृष्टि से ये दोनों गुफायें संसार में अद्वितीय हैं। दोनों ही गुफायें समाप्त हो चुकी हैं। सतलज नदी के पानी को इन दोनों गुफाओं में से ले जाकर निर्दिष्ट स्थान पर नदी को सुखा लिया गया है और वहीं बाँध बनाया गया है।

भाखड़ा नहर प्रणाली—भाखड़ा बाँध से ये नहरें निकाली गई हैं।

(१) **भाखड़ा की मुख्य नहर**—१७३ कि० मीटर लम्बी है। यह रोपड़ से निकाल कर हिसार जिले की सीमा पर स्थित टोहना तक जाती है। यहाँ यह दो भागों में बंट जाती है: एक पलस्तर युक्त (भाखरा मुख्य शाखा) और दूसरी पलस्तर रहित (फतेहाबाद शाखा)। अपनी शाखाओं सहित भाखड़ा नहर १,०५० कि० मी० लम्बी है तथा इसकी उपशाखाओं की कुल लम्बाई ३,५४० कि०मी० है।

(२) **बिस्त दोआब नहर**—रोपड़ के दाहिने किनारे से निकाली गई है। इस नहर की शाखाओं सहित लम्बाई १,०९० कि० मी० है तथा इसकी प्रशाखाओं की लम्बाई लगभग ६,४३७ कि० मी० होगी। इससे होशियारपुर, जलंधर और पूर्वी पंजाब के जिलों की सिंचाई की जायगी।

(३) **सरहिंद नहर** में जल की मात्रा को प्रति सैकिंड ९,००० क्यूसेक से बढ़ा कर १२,००० क्यूसेक किया गया है। इसी नहर से आगे बढ़ कर सिधवाँ शाखा निकाली गई है।

(४) **नरवाना शाखा नहर**—भाखड़ा की मुख्य नहर से ५१ वें कि०मी० पर निकाली गई है। यह १०३ कि० मी० तक पूरी पलस्तरयुक्त है। इस नहर को मार्ग में अनेक नदियों को पटियाला, घग्घर, टांगरी, मारकंडा और सरस्वती पार करना पड़ता है। इस नहर से सिरसा शाखा को अधिक जल मिलेगा तथा इसका उद्देश्य करनाल जिलों के कुछ क्षेत्रों की सिंचाई करना भी है।

सिंचाई की दृष्टि से इस प्रकार पंजाब के जालंधर, फीरोजपुर, होशियारपुर, लुधियाना, करनाल, हिसार और अम्बाला तथा पूर्व-पेप्सू के लगभग १९ लाख एकड़ भूमि पर तथा राजस्थान की बीकानेर डिवीजन की लगभग ३ लाख हैक्टेअर भूमि पर लाभ पहुँचाया जा सकेगा।

इस सिंचाई से खेती की उपज इस प्रकार बढ़ने की संभावना है:—

खाद्यान्न ११ लाख टन; रुई ८ लाख गांठें; गन्ना ५ लाख टन; चारा १५ लाख टन और दालें और तिलहन ३० हजार टन।

इस योजना के सम्पन्न होने से पंजाब तथा राजस्थान की ५९ लाख एकड़ ऐसी भूमि को जल मिलेगा जिसे अब तक सिंचाई के कोई साधन प्राप्त नहीं थे। सिंचाई से कृषि उत्पादन में जो भारी वृद्धि होगी उसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इन फसलों का मूल्य १ अरब ३२ करोड़ रुपया होगा। इसके अतिरिक्त इस योजना से लाभान्वित होने वाले क्षेत्रों में चावल और जूट की खेती के अतिरिक्त

तम्बाकू, मूँगफली, साग-सब्जियों की पैदावार भी बढ़ाई जा सकेगी। इन क्षेत्रों में फलों के बाग भी लगाये जायेंगे। इस सुविधाजनक स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर ३०,००० की जनसंख्या की कम से कम ३० और मंडियां स्थापित की जायेंगी जिनमें लगभग ९ लाख शहरी जनता को बसाया जा सकेगा। ६५ लाख खेतीहर भूमि पर २५ लाख किसानों को फिर से बसाने का भी प्रबन्ध होगा।

नांगल बाँध—भाकडा पर जो झील तैयार हुई है उसका जल बाँध के भीतर की जल प्रणालियों द्वारा नदी में गिरता है और नदी द्वारा होकर लगभग १३ कि० मी० नीचे पहुँचता है। यह नांगल नामक स्थान पर सतलज नदी के आर-पार एक सहायक बाँध या अवरोधक बनाया गया है जिसके द्वारा नदी में आने वाला सारा जल नांगल विद्युत नहर में छोड़ दिया जाता है। इससे भाकड़ा बाँध में जल के नित्य-प्रति होने वाले न्यूनाधिकरण के लिए स्थान मिल जायेगा और इनसे और अधिक बिजली उत्पन्न हो सकेगी। यह भाकड़ा बाँध के जल के लिए संतुलन का कार्य करेगा।

नांगल बाँध मजबूत कंक्रीट से तैयार किया गया है। यह २८ मीटर ऊँचा और ३१५ मीटर लम्बा तथा १२१ मीटर चौड़ा है। इस बाँध में लगभग ३.२ हजार एकड़ फीट पानी जमा हो सकेगा। इस बांध की नींव नदी के जल के अन्दर १५ मी० की गहराई पर डाली गई है। इसमें से निकलने वाली नहर में ९-९ फीट चौड़ी २८ खाड़ियाँ (जल-प्रणालिकायें) हैं, जिनमें प्रत्येक में लोहे का फाटक लगा है। इसकी सहायता से नदी के जल को वर्तमान सतह से १५ मीटर ऊँचा पहुँचा दिया जाता है। यदि ये सब जल-मार्ग खुले हों तो उनमें तीन लाख ५० हजार क्यूसेक जल प्रवाहित हो सकता है। नांगल बांध के बनाने में लगभग ३ लाख घन गज कंक्रीट, ९ हजार टन फौलाद और ६० हजार टन सीमेंट लगा है।

नांगल जल विद्युत नहर (Nangal Hydel Channel)—नांगल बाँध के बायें किनारे से निकाली गई है जो लगभग ६४ कि० मीटर लम्बी और ८३ मीटर

चित्र ८५. नांगल बाँध

गहरी है। इसकी प्रवाह शक्ति १२,५०० क्यूसेक है। इस नहर की पूरी लम्बाई तक

सीमेंट और टाइलों का पलस्तर किया गया है जिससे पानी भूमि में भिद कर न जा सके। इस नहर के निर्माण में ७५ करोड़ घन-फीट मिट्टी और १६५ लाख घन फीट कंक्रीट काम में आई है। इस नहर में इतनी टाइल बिछाई गयी हैं कि यदि उन्हें एक सीध में रखा जाए तो उसकी कुल लंबाई भूमध्य रेखा पर पृथ्वी की लगभग ७ परिक्रमा के बराबर होगी। (पलस्तर की मात्रा ३ करोड़ ४० लाख वर्ग फीट है)। इस पर ३६ पुल हैं। नहर अत्यन्त बीहड़ मार्गों से ले जानी पड़ी है क्योंकि नागल से रोपड़ तक के मार्ग में अनेक बरसाती नदी नाले पड़ते थे। इन्हें पार करके नहर के पानी को सुरक्षित ले जाना अत्यन्त दुरूह कार्य था अतः कहीं पर नहर को बरसाती नालों से ऊपर-ऊपर ले जाना पड़ा है और अनेक स्थानों पर नहर उनके नीचे से होकर निकाली गई है। इस प्रकार ६४ कि० मी० के भीतर सब मिलाकर ५८ मेहराबदार की जल-प्रणालिकाएँ तैयार करनी पड़ी हैं।

शक्तिगृह—नांगल जल विद्युत नहर पर तीन बिजली घर बनाने की योजना है जिनमें दो बिजलीघर—क्रमशः बाँध से २० कि० मीटर और २८ कि० मीटर नीचे गंगूवाल और कोटला में बनकर समाप्त हो चुके हैं। गंगूवाल में २९-२९ हजार किलोवाट शक्ति उत्पादक दो-दो यंत्र लगाये गये हैं। दोनों बिजलीघरों से १·५ लाख किलोवाट शक्ति तैयार होती है। तीसरा बिजलीघर रोपड़ के निकट बाद में बनाया जायेगा। गंगूवाल और कोटला में उत्पन्न होने वाली बिजली २,३०० मील लम्बे तारों द्वारा रूपड़, लुधियाना, अम्बाला, पानीपत, हिसार भिवानी, रोहतक, नाभा, जोगेन्दरनगर, पटियाला, मोगा, फीरोजपुर, फरीदकोट, कालका, कसौली, शिमला, जालंधर, होशियारपुर, कपूरथला, पठानकोट, फाजिल्का, हांसी, मुक्तसर, राजपुरा, धिलावान और ४९ अन्य छोटी-छोटी बस्तियों को बिजली भेजी जा रही है। यदि भाकड़ा की योजना भी पूरी हो जायेगी तो दिल्ली, गुड़गाँव, पलवल और रिवाड़ी तक बिजली भेजी जा सकेगी। बिजली पहुँचाने के लिए चारों ओर तार हैं। एक दुहरी सर्किट २२० किलो-वाट की लाइन दिल्ली गई है। दूसरी दुहरी सर्किट १३२ किलोवाट की लाइन लुधियाना गई है जो दो भागों में बँट जाती है—एक जालंधर और दूसरी मोगा और मुक्तसर को जाती है। एक इकहरी सर्किट ३१२ किलोवाट लाइन पानीपत से हाँसी, हिसार, राजगढ़ और रतनगढ़ को गई है।

इस बिजली की सहायता से पंजाब में विशेषकर जगाधारी में और अधिक यंत्र चालित कुएँ लगभग १ हजार बनाये जायेंगे और उनसे सिंचाई में वृद्धि होगी। नल-कूपों के बन जाने से पानी से भरे हुए भागों का पानी हटाकर शुष्क भागों में पहुँचाया जायेगा। कुछ समय बाद इस शक्ति का उपयोग अमृतसर और दिल्ली के बीच चलने वाली मुख्य रेलगाड़ियों में भी किया जा सकेगा। भाकड़ा नांगल योजना से राजस्थान के चुरू, बीकानेर, गंगानगर, झुंझुनू और सीकर जिलों के नगरों को भी बिजली प्राप्त हो रही है।

सम्पूर्ण योजना के पूर्ण हो जाने पर पंजाब के जालंधर, फिरोजपुर, लुधियाना, करनाल, हिसार और अम्बाला तथा राजस्थान के बीकानेर जिलों को अप्रत्याशित लाभ होगा। लगभग १३० नगरों को बिजली पहुँचाई जा सकेगी और ४ लाख किलोवॉट बिजली से २५ लाख व्यक्तियों को काम पर लगाया जा सकेगा। इस योजना

से देश को ६० करोड़ विदेशी मुद्रा की बचत होगी। सम्पूर्ण योजना १९६४ तक समाप्त हो जायेगी। इसमें १७२ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

१९६०-६१ में भाखड़ा नांगल योजना द्वारा पंजाब और राजस्थान में १९ लाख एकड़ भूमि सींची गई।

(७) चम्बल योजना (Chambal Project)

चम्बल मध्य प्रदेश व राजस्थान की मुख्य नदी है जो मह के निकट जनापाव स्थान से निकलकर पहले इंदौर, उज्जैन, रतलाम एवं मन्दसौर के जिलों में बहती हुई राजस्थान में कोटा के निकट प्रवेश करती है। यहाँ २०८ कि० मी० बहकर पुनः मध्य प्रदेश में मुरैना व भिंड जिलों की सीमा बनाती हुई उत्तर प्रदेश की जमुना नदी में इटावा के निकट मिल जाती है। चम्बल ९६६ कि० मी० लम्बी नदी है तथा इसका प्रवाह क्षेत्र ५५ हजार वर्गमील है। यद्यपि वर्षाकाल में यह जल की अपार राशि के कारण तीव्र धारा बन जाती है किन्तु शेष काल में यह अत्यन्त क्षीण हो जाती है। अतएव वर्षा का सारा जल व्यर्थ ही बह कर चला जाता है। इससे चम्बल के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में बाढ़ें भी आ जाती हैं और भूमि उपक्षरण भी अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका है। अस्तु, इस नदी के जल का उपयोग करने हेतु मध्य प्रदेश और राजस्थान सरकार ने सम्मिलित रूप से चम्बल घाटी योजना बनाई है जो तीन अवस्थाओं में पूर्ण होगी। इसके अन्तर्गत ३ बाँध, ५ बिजलीघर और १ सिंचाई अवरोधक जलाशय बनाये जायेंगे।

प्रथम अवस्था में गांधी सागर बाँध, विद्युत स्टेशन, विद्युत सम्प्रेषण लाइनें, कोटा सिंचाई बाँध तथा नहरों का निर्माण होगा।

द्वितीय अवस्था में राणाप्रताप सागर बाँध तथा बिजलीघर बनाये जायेंगे। **तीसरी अवस्था** में कोटा बाँध और एक शक्तिगृह बनाया जायेगा।

(१) **गांधी सागर बांध** (Gandhi Sagar Dam)—भानपुरा तहसील में चौरासीगढ़ स्थान पर चम्बल ११३ कि० मी० लम्बी उपत्यका में प्रवेश करती है। अपने मुहाने पर इस उपत्यका की चौड़ाई लगभग ७६२ मीटर है किन्तु कुछ कि०मी० बाद धीरे-धीरे यह १८३ मीटर ही रह जाती है। आगे इसकी चौड़ाई ३६५ कि० मी० से ६१० कि० मी० तक घटती बढ़ती रहती है। इसके किनारों की चट्टानों की ऊँचाई साधारणतया ६१ से ९१ मीटर के बीच में है। इस घाटी में भानपुरा से ३३ कि० मी० व चौरासीगढ़ से ८ कि० मी० दूर जहाँ घाटी की चौड़ाई कम है, पहला बाँध बनाया गया है। इसका नाम गांधी सागर बाँध (Gandhi Sagar Dam) है। यह बाँध ५१० मीटर लम्बा और ६२ मीटर ऊँचा है। इसके ऊपर ५ मीटर चौड़ी सड़क भी बनाई जायेगी। बाढ़ का अतिरिक्त जल निकालने के लिए स्पिलवे भाग में १८ मीटर और २४ मीटर आकार के १० फाटक होंगे। बाँध से जो विशाल जलाशय तैयार होगा उसका क्षेत्रफल ५१० वर्ग कि० मीटर होगा। इसमें ८ लाख हैक्टेअर मीटर पानी समा सकेगा। बाँध पर ही गांधी सागर विद्युत स्टेशन ९३ मीटर लम्बा होगा जिसमें १५-१५ मीटर की दूरी पर २३,००० किलोवाट शक्ति के ५ उत्पादन यंत्र लगाये जायेंगे। इनमें से चार प्रथम चरण में लग जायेंगे। शेष आवश्यकतानुसार विद्युत की मांग बढ़ने पर। इस प्रकार ६०% भारांश (Load factor) की कम से कम ९२,००० किलोवाट बिजली तो तुरन्त ही मिलने लगेगी।

(२) **राणा प्रताप सागर बांध** (Rana Pratap Sagar Dam)—गांधी सागर बाँध से ४८ कि० मी० दूर बहाव की ओर राजस्थान में ४० फीट ऊँचे चूलिया प्रताप के पास रावतभाटा में दूसरा बाँध राणा प्रताप सागर बाँध के नाम से बनाया जायेगा। यह बाँध ११०० मीटर लम्बा और ३७ मीटर ऊँचा होगा। इसके द्वारा

चित्र ८६. चूलिया जल प्रपात का मनोरम दृश्य

बनने वाले जलाशय का क्षेत्रफल ७७ वर्गमील होगा और उसमें ३·१ लाख हैक्टेअर मीटर जल समा सकेगा। यह बाँध न केवल गांधी सागर बाँध से छोड़े गए जल को बल्कि ६०० वर्गमील क्षेत्र के अपने स्वतंत्र जल संग्रहण क्षेत्र का भी जल इकट्ठा करेगा। भूपाल विद्युत् स्टेशन इस प्रपात के निकट होगा जिससे जलाशय के जल-तल तथा प्रपात के पानी गिरने के अन्तर का लाभ उठाया जा सके जो बरसात में ६१ मीटर तक हो जाता है। इस बिजलीघर का विद्युत् उत्पादन ६०% भारांश की १,१२,००० किलोवाट बिजली होगी। इस बाँध के बनने के पश्चात् ३ लाख अतिरिक्त एकड़ में सिंचाई की जा सकेगी।

(३) **कोटा बाँध** (Kota Dam)—तीसरा बाँध राणा प्रताप सागर बाँध से ३२ कि० मी० आगे होगा। यहाँ चम्बल की चौड़ाई चौरासीगढ़ की अपेक्षा १२२ मीटर कम हो जाती है। यह केवल एक पिक-अप बाँध (pick-up dam) ही होगा। पहले दो बाँधों से छोड़ा गया पानी ही यहाँ विद्युत् उत्पादन के लिए प्रयुक्त होगा। यह बाँध ५४८ मीटर लम्बा और २४ मीटर ऊँचा होगा। इस बाँध की जल धारण शक्ति १·४ लाख एकड़ फीट होगी व ६०% भारांश की ६१,००० किलोवाट बिजली पैदा होगी।

(४) **कोटा बैरेज** (Kotah Barrage)—कोटा बाँध से १६ कि० मी० आगे कोटा शहर के पास एक सिंचाई बाँध या अवरोधक का निर्माण होगा। यह बाँध ३६ मीटर ऊँचा और ६०० मीटर लम्बा होगा। इसके दाईं ओर मिट्टी की व बाँईं ओर पत्थर की मजबूत दीवार होगी। इस दीवार में लोहे के १४ विशाल फाटक होंगे जिससे बाढ के समय अतिरिक्त पानी निकाला जा सके। इस बाँध से दो नहरें निकाली जायेंगी—जो एक बांई ओर और दूसरी दांई ओर होगी। बाँई नहर में जल का प्रवाह १२७० क्यूसेक होगा। यह ३·२ कि० मी० लंबी होगी। इसकी दो शाखायें बूंदी और कप्रन प्रत्येक ६४ कि० मी० लंबी होंगी। इससे राजस्थान की २·६ लाख भूमि की सिंचाई होगी। दांई नहर ३७३ कि० मी० लंबी होगी। यह नहर प्रथम १२६ कि० मी० में राजस्थान की भूमि में होगी।
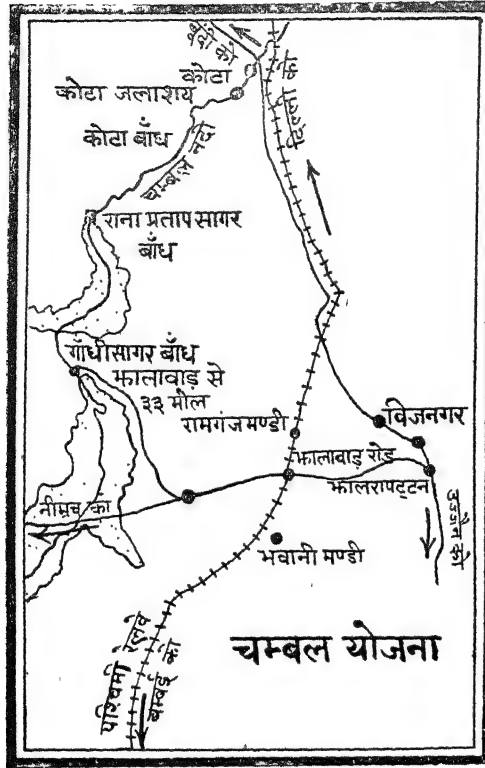
चित्र ८७. चम्बल योजना

मध्यप्रदेश सिंचाई नहर पारवती नदी को पार करके मध्यप्रदेश में मुरैना जिले में राधापुर ग्राम के पास प्रवेश करेगी। यहाँ इसका जल प्रवाह ६,६५६ क्यूसेक होगा। यह नहर राजस्थान में ४·४ लाख एकड़ और मध्यप्रदेश में ७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करेगी। नदी पर सीमेंट-कंक्रीट का बना पक्का मार्ग नहर-पुल (Aqueduct) तैयार कर नहर को इस पार लाया जायेगा। यह पुल ६१६ मीटर लम्बा होगा। इसमें २२ स्तंभ होंगे। यहाँ से यह नहर उत्तर-पूर्व की ओर मुड़कर आगे बढ़ेगी और कूनी नदी को पार करेगी। टैंटरा के निकट इस नहर की दो उप-शाखायें हो जायेंगी। बाई ओर की उप-शाखा-अम्बाह शाखा नहर अम्बाह के पास होती हुई चम्बल से मिला दी जायेगी। इसकी लम्बाई १८० कि० मी० होगी। दाईं उप-शाखा मुरैना शाखा नहर सबलगढ़, गौरा, मुरैना होती हुई आसन नदी में मिला दी जायेगी। यहाँ से पुनः इसकी एक शाखा मुरैना की ओर जायेगी। आसन नदी में छोड़ा गया पानी कोतवाल जलाशय में इकट्ठा किया जाकर सांक नदी के दूसरी ओर पिलुवा जलाशय में भरा जाएगा।

यातायात की सुविधा के लिए नहर के आर-पार पक्की सड़कें बनाई जाएँगी।

बैलगाड़ियों की सुविधा के लिए ४-६ कि० मी० के अन्तर पर पुलिएँ व पैदल यात्रियों के लिए ३-३ कि० मी० के अन्तर पर मार्ग बनाये जायेंगे। अगर राजस्थान को अधिक पानी मिला तो बाईं ओर वाली नहर को सवाई माधोपुर जिले में बनास नदी तक ले जाया जायेगा। यदि वह आगे बनी तो मेज नदी को पार करके अतिरिक्त भाग में भी सिंचाई होगी।

बाँध के सम्पूर्ण हो जाने पर अन्ततः २ लाख २८ हजार किलोवॉट शक्ति उत्पन्न होगी और ११ लाख हैक्टेअर भूमि की सिंचाई की जायेगी।

विद्युत तारों द्वारा उत्पादित बिजली ३२२ कि० मी० के अर्द्ध-व्यास की परिधि के क्षेत्र में पहुँचाई जायेगी। गांधी सागर शक्ति गृह से दो मुख्य लाइनें जाएँगी। पहली दक्षिण मे इन्दौर की ओर और दूसरी उत्तर में कोटा, सवाई माधोपुर, जयपुर, ग्वालियर, अजमेर और उदयपुर की ओर। विद्युत की सुलभता से सांभर झील के नमक, मकराने का संगमरमर, जयपुर व भीलवाड़ा का घीया पत्थर, जयपुर, किशनगढ़, कोटा और भीलवाड़ा की सूती कपड़े की मिलों, उदयपुर की जावर की खानों, बूंदी के सीमेंट तथा जयपुर के धातु व बॉल बियरिंग उद्योग की पर्याप्त उन्नति होगी। विद्युत शक्ति से चितौड़गढ़ और नीमच के सीमेंट के कारखाने, कोटा में रेयन, मुरैना, भिड और रतलाम जिलों में शक्कर तथा शक्ति अल्कोहल; अलवर जिले में तांबा उद्योग, नागदा और साभर जिलों में रासायनिक उद्योग, बांसवाड़ा जिले में फैरो मैंगनीज संयंत्र, निमाड़ जिले में पुट्ठा मिला और मंदसौर जिले में विद्युत प्रवाह-अवरोधक-सामग्री कारखानों को भी प्रोत्साहन मिलेगा। इस समय लगभग १½ लाख टन कोयला १,२८७ कि० मी० की दूरी से मंगवाना पड़ता है, योजना के पूर्ण हो जाने पर यह सारा व्यय बच जायेगा।

राजस्थान में इस योजना द्वारा सिंचित क्षेत्रफल १९ तहसीलों में सवाई माधोपुर, भरतपुर, कोटा व बूंदी जिलों में और मध्यप्रदेश की ग्वालियर, मुरैना और भिन्ड जिलों की १२ तहसीलों की कुल १४ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होगी। इसके फलस्वरूप ४ लाख ७५ हजार टन से अधिक अनाज पैदा होने लगेगा। गेहूँ और मक्का की पैदावार में प्रति एकड़ १२ से १६ मन और चावल की पैदावार में प्रति एकड़ १० से १५ मन तक की वृद्धि होगी। इस सिंचाई से साग सब्जी, फलों, रुई, गन्ना आदि की पैदावार भी बढ़ जायेगी। इस योजना से घास और चारे की भी अधिक मात्रा उत्पादित होगी। घास लग जाने से भूमिक्षरण की समस्या का भी आंशिक हल होगा। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि मछली पालन से लगभग ८ लाख रुपये का लाभ प्रति वर्ष होगा। चम्बल की नहरों से जल का तल भी ऊँचा हो जायेगा जिससे जल का इतना अभाव नहीं रहेगा—अभी यह जल-तल १२ से १८ मीटर तक है। योजना का प्रथम चरण १९६२ तक समाप्त हो गया है। इसमें प्रथम अवस्था में ६४ करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान था। द्वितीय अवस्था में १७ करोड़ और तृतीय करोड़ रुपये व्यय होंगे।

(८) जवाई बाँध योजना (Jawai Project)

राजस्थान में जवाई बांध जोधपुर डिवीजन में जवाई नदी पर एरनपुरा रेलवे स्टेशन से १ मील दूर दक्षिण में बनाया गया है। इस योजना के अन्तर्गत एक जलाशय का निर्माण, एक कंक्रीट बाँध का निर्माण, दो मिट्टी के बाँधों का निर्माण, दो पहलू

दीवालें (Flank walls) और नहरों का निर्माण सम्मिलित है। यह बाँध ३४ मी० ऊँचा और ६२३ मीटर लम्बा है। इस बाँध का क्षेत्रफल १० वर्गमील है। इसमें ३०० वर्ग मील क्षेत्र का ६५,००० लाख घन फुट जल एकत्रित होता है। यहाँ से इस जल का वितरण कक्रीट की तैयार की हुई नहरों के द्वारा किया गया है। मुख्य बाँध के अगल-बगल दो बाँध बनाये गये हैं जिनका सामना तो पक्का है किन्तु आधार मिट्टी का है। इन बाँधों का काम जल को जलाशय की बगलों से इधर-उधर ले जान से रोकना है। इसी प्रकार दो बगल की दीवारें हैं जिनकी लम्बाई क्रमशः १,०६६ मी० तथा १,२१६ मीटर हैं। ये दीवारें जलाशय के तटों का काम करती हैं ताकि बाढ़ के रूप में जल नष्ट न हो सके। इस बाँध से २२ कि० मी० लम्बी मुख्य नहर निकाली गई है। यह लगभग ४०० क्यूसेक जल ले जाती है। इस मुख्य नहर

चित्र ८८. जवाई बाँध

से ४ शाखायें और निकाली गई हैं जो १७६ कि०मी० लम्बी हैं। इस योजना पर ३ करोड़ से अधिक खर्च हुआ है। इसमें ६० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इस योजना के फलस्वरूप शुष्क क्षेत्र में रबी की फसलें उगाई जाने लगी हैं। इस योजना का अधिक लाभ जोधपुर डिवीजन के पाली, जालोर और सिरोही जिलों को है।

(९) जमनालाल बजाज सागर या माही योजना

माही नदी मध्य प्रदेश के धार जिले में विन्ध्याचल पर्वत के उत्तरी ढलाव से समुद्र की सतह से ५६३ मीटर की ऊँचाई से आरम्भ होती है और मध्यप्रदेश में लगभग १६९ कि० मी० बहने के पश्चात् बांसवाड़ा के समीप राजस्थान में प्रवेश करती है। राजस्थान में यह लगभग १७१ कि० मी० तक बहती है। यहाँ इस नदी की मुख्य सहायक नदियाँ अनास, सोम, लाखन व इराऊ है। राजस्थान के बाद यह नदी गुजरात में प्रवेश करती है फिर केम्बे की खाड़ी में जा गिरती है।

इस परियोजना का जल संग्रह क्षेत्र २,४०० वर्गमील है। यह क्षेत्र अधिकतर पर्वतीय है और उस क्षेत्र में वर्षा का औसत ३२ इंच रहता है। यहाँ की भूमि पथरीली

और कुछ मीटर गहराई तक मिट्टी होने के कारण यहाँ कुएँ खोदना बहुत कठिन है। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। फिर भी सिंचाई सुविधा के अभाव में मुख्यत: खरीफ का खेती ही की जाती हैं। रबी की फसल केवल उन्हीं क्षेत्रों में की जाती है जहाँ कुएँ सफलतापूर्वक खोदे जा सकते है। बाँध बन जाने से इस क्षेत्र में पानी की सतह ऊँची होगी और इसके फलस्वरूप कुओं में अधिक पानी आ सकेगा।

चित्र ८९. माही सिंचाई योजना

इस परियोजना के पूरा होने पर ६,७०० एकड़ भूमि की सिंचाई की जा सकेगी और ४० हजार किलोवाट बिजली पैदा हो सकेगी। परियोजना के अन्तर्गत राज्य के सुदूर दक्षिणी भाग में माही नदी पर एक बाँध का निर्माण किया जायेगा। केन्द्रीय जल व विद्युत आयोग तथा भारत के भूगर्भीय सर्वेक्षण विभाग के परामर्श के बाद बनाई इस योजना के अनुसार बाँध में पानी की भराव क्षमता ६० अरब घनफुट होगी। बाँध की ऊँचाई नदी के स्तर से ६१ मीटर होगी और वह सीमेंट, सुर्खी व गारे से बनाया जायगा। बाँध पर ८ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान है।

बाँसवाड़ा व डूँगरपुर जो अधिकतर आदिवासी क्षेत्र हैं इस परियोजना से प्राप्त होने वाली सिंचाई सुविधाओं व जल विद्युत् से लाभान्वित होंगे।

(१०) दांतीवाड़ा योजना

गुजरात राज्य में बनासकांठा जिले के दांतीवाड़ा गाँव के पास बनास नदी पर एक बाँध सिंचाई के लिए बनाया जा रहा है जिस पर लगभग ८·२७ करोड़ रुपया व्यय होगा। इस योजना के अन्तर्गत दांतीवाड़ा जलाशय में १६ अरब ४० घन फुट जल जमा किया जा सकेगा। इस बाँध का २७४ मीटर लम्बा बीच का भाग पक्का होगा और दोनों ओर कुल ४,७९२ मीटर लंबे मिट्टी के तटबंध होंगे। बाँध के पक्के भाग की सबसे अधिक ऊँचाई ५० मीटर और मिट्टी के तटबंध की ७६ मीटर होगी। इस जलाशय की नहर से बनासकांठा और महेसाना जिलों की १ लाख १० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। बाद में यहाँ १ हजार किलोवाट बिजली भी बनाई जायेगी।

(११) गंडक योजना

यह बिहार, उत्तर प्रदेश और नैपाल राज्यों की सम्मिलित योजना है। इसके

अंतर्गत गंडक नदी पर भैंसालोटन नामक स्थान पर एक ८४० मीटर लंबा बाँध बनाया जायेगा। इससे दो नहरें निकाल कर—पूर्वी नहर और पश्चिमी नहर—सिंचाई की जायेगी। पूर्वी नहर से नैपाल की पूर्वी नहर, त्रिवेनी नहर, तिरहुत नहर और डॉन नहरों को जल मिलेगा तथा पश्चिमी नहर से पश्चिमी नैपाल नहर, मुख्य पश्चिमी नहर और सारन नहर को जल मिलेगा। मुख्य पश्चिमी नहर से १३ कि०मी० नीचे की ओर एक शक्तिगृह स्थापित किया जायगा जिसकी क्षमता १५,००० किलोवाट होगी। इस योजना पर लगभग ५२ करोड़ रुपया व्यय होगा।

(१२) कोयना योजना (महाराष्ट्र)

उत्तरी सतारा जिले के देशमुखवाड़ी के पास कोयना नदी पर ६७० मी० लम्बा और ६३ मीटर ऊँचा बाँध बनाया जा रहा है। इसमें ३,६०,४५० लाख घन फीट जल एकत्रित किया जायेगा। इसी बाँध पर एक विद्युत् केन्द्र होगा जिसमें ६०,००० किलोवाट उत्पादन क्षमता वाली ४ इकाइयाँ होंगी, जिनमें से २·३ लाख किलोवाट बिजली का प्रदाय बम्बई एवं पूना को तथा शेष १०,००० किलोवाट बिजली महाराष्ट्र के अन्य भागों को दी जायगी। इस पर जनवरी सन् १९५४ में कार्य आरम्भ किया गया और सन् १९६३ तक यह योजना पूरी हो चुकी है। इसकी अनुमानित लागत ३८·२८ करोड़ रु० है।

(१३) काकडापार योजना (गुजरात)

यह ताप्ती नदी के विकास का पहिला स्वरूप है। ताप्ती नदी पर काकडापार के पास ऊँचा और लम्बा बाँध बनाने का कार्य जून सन् १९५१ में आरम्भ होकर जून सन् १९५३ में पूरा हो गया। इससे नहरें निकालने का कार्य जून सन् १९६३ तक पूरा हो चुका है, जिससे सूरत जिले की ६½ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इस बाँध के दांये-बांये से दो नहरें निकाली गई हैं। उनकी लम्बाई क्रमशः ५४५ कि० मी० और ८३७ कि० मी० है। इस योजना की लागत ११·६५ करोड़ रु० हुई है।

(१४) मयूराक्षी-योजना

यह पश्चिमी बंगाल की प्रमुखतः सिंचाई योजना है यद्यपि इसमें ४,००० किलोवाट क्षमता का विद्युत-केन्द्र भी स्थापित होगा। इस योजना के अनुसार बीर-भूमि जिले में मयूराक्षी नदी पर एक बाँध बनेगा, जिसकी लम्बाई ६१८ मीटर और ऊँचाई ३४ मीटर होगी। साथ ही, बाँध की निचली धारा से ३२ कि० मी० दूरी पर ३०८ मी० लम्बा तिलपारा बराज बनेगा तथा इसके दोनों ओर से २२ मीटर लम्बी दो नहरें निकाली जावेंगी। इसी प्रकार बाँध से भी एक नहर निकाली जायगी। इस नहर पद्धति की कुल लम्बाई १३६७ कि० मी० होगी, जिससे प० बंगाल को ७·२ लाख एकड़ और बिहार की ३५,००० एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। इस योजना की प्रथम सीढ़ी का कार्य सन् १९५१ में पूर्ण हो गया तथा तिलपारा बराज का जून सन् १९५५ में। साथ ही, २,००० किलो० विद्युत उत्पादक की एक इकाई दिसम्बर सन् १९५६ में एवं दूसरी फरवरी सन् १९५७ में आ गई है। इससे बीरभूमि, मुर्शिदाबाद और बिहार के संथाल परगना जिले में विद्युत का प्रदाय होगा। इस योजना की लागत १६·१ करोड़ है।

(१५) नागार्जुन सागर-योजना (आँध्र)

इस योजना के अनुसार आन्ध्र प्रदेश में नंदीकोडन ग्राम के पास कृष्णा नदी पर ९२ मी० ऊँचा एवं १,१८८ मीटर लम्बा बाँध बनेगा। इस बाँध की जल-ग्रहण शक्ति ९३·० लाख एकड़ फीट होगी। इस बाँध के दोनों ओर से ४१ मीटर और ३२ मीटर लम्बी नहरें निकाली जावेंगी, जिससे आन्ध्र प्रदेश की २०·९६ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध होकर ८ लाख टन वार्षिक खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ेगा। इसके जलाशय में ७४ वर्गमील क्षेत्र का ५४ लाख एकड़ फीट जल संग्रहीत किया जा सकेगा। इस योजना की लागत ८६·३३ करोड़ रु० है तथा सन् १९६३-६४ में यह पूर्ण हो चुका है। इसकी दोनों नहरों से २१ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी जिसमें ८ लाख टन खाद्यान्न पैदा किये जायेंगे। सिंचाई का लाभ कर्नूल, कृष्णा, गंतूर, नालगोंडा और खमाम जिलों को होगा।

(१६) भद्रा-संघ योजना

यह मैसूर सरकार की बहुमुखी योजना है, जिससे शिमोगा, चिकमगलूर, चितलदुर्ग तथा बेलारी जिले की २·४५ लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। साथ ही, ३३,२०० किलोवाट विद्युत-शक्ति का उत्पादन भी हो सकेगा। बाँध की ऊँचाई एवं लम्बाई ३२ मीटर एवं ४२६ मीटर होगी, जिसमें ३,६०,३५० लाख घन फीट पानी रह सकेगा। इसके दोनों ओर ३१४ कि० मी० लम्बाई की नहरें निकाली जावेंगी। इस योजना का कार्य सन् १९४७-४८ में आरम्भ हुआ था तथा सन् १९६१ तक पूर्ण हो गया। योजना की लागत ३३·५३ करोड़ रु० है।

(१७) मचकुण्ड योजना

यह आन्ध्र और उड़ीसा राज्य की संयुक्त योजना है, जिससे इन प्रदेशों की सीमा पर मचकुण्ड नदी पर ५३ मीटर ऊँचा और ५९२ मीटर लम्बा एक बाँध बनाया गया है। इसमें ९·२ लाख एकड़ फीट पानी की संग्रहण-क्षमता है। इस बाँध पर जो विद्युत-गृह बनाया गया है उसमें १७,००० किलोवाट वाली तीन बिजली उत्पादक इकाइयाँ हैं। २३,००० किलोवाट वाली तीन और इकाइयाँ बढ़ाई जावेंगी, जिससे इसकी विद्युत उत्पादन क्षमता १,२०,००० किलोवाट हो जायगी।

(१८) श्रावती परियोजना

श्रावती योजना भारत की सबसे बड़ी जल विद्युत योजना है। इसके पूरे होने पर दस लाख किलोवाट से भी अधिक बिजली पैदा होगी जिससे मैसूर राज्य, महा-राष्ट्र, आन्ध्र, मद्रास और केरल के कुछ हिस्से लाभान्वित होंगे। इस योजना के अनुसार जोग से कुछ मील दूर शरावती नदी पर लिंगनामक्की स्थान पर एक जलाशय और पत्थर का बाँध बनाया जायेगा। इस बाँध की लम्बाई २,१६१ मीटर होगी और यह नींव से लगभग ६२ मीटर ऊँचा होगा। इस जलाशय में ५ अरब घन मीटर पानी इकट्ठा किया जा सकेगा। दूसरा इससे छोटा जलाशय तालकलेल नदी का भी कुछ पानी संचित किया जायेगा। इस जलाशय तक पानी ले जाने के लिए ४,३२५ मीटर लम्बी नहर और ६१० मीटर और ९४७ मीटर लम्बी दो सुरंगें

निकाली जायेंगी। इसमें से प्रति सेकिन्ड १७४ घन मीटर और २४५$\frac{१}{२}$ घन मीटर की गति से पानी बह सकेगा। बिजली पैदा करने वाले यन्त्र को चलाने के लिये जलाशय से १,३१० मीटर लम्बे दस बड़े बड़े नलों से सीधे ३,११५ मीटर नीचे पानी की खड़ी धारें गिराई जायेंगी। निचले बिजली उत्पादक यन्त्र लगाये जायेंगे। प्रत्येक यन्त्र की क्षमता ८,९१,००० किलोवाट बिजली पैदा करने की होगी। बाँध के पास जो बिजलीघर होगा, उसमें ४० हजार किलोवाट बिजली पैदा की जायेगी। जोग के वर्तमान बिजलीघर में १,२०,००० किलोवाट बिजली तैयार करने की क्षमता है। इस प्रकार इस योजना में कुल मिलाकर १० लाख किलोवाट से अधिक बिजली तैयार की जा सकेगी। इस प्रकार यह देश की सबसे बड़ी जलविद्युत योजनाओं में होगी। अनुमान है कि इस योजना पर २३ करोड़ रुपये खर्च होंगे। भारत में सबसे सस्ती बिजली यहाँ पैदा होगी। अनुमान है कि उपर्युक्त दस बिजली उत्पादक यन्त्र हर साल ४ अरब ५० करोड़ यूनिट बिजली तैयार करेंगें, जिसकी लागत प्रति यूनिट केवल ४ नया पैसा होगी। ५४ लाख मी० टन लिगनाइट से जितनी शक्ति प्राप्त होगी उतनी यहाँ प्रति वर्ष ४$\frac{१}{२}$ अरब यूनिट बिजली से प्राप्त होगी। इस बिजली से मैसूर तथा अन्य निकटवर्ती राज्यों की आर्थिक उन्नति में बड़ी सहायता मिलेगी। तृतीय पंचशाला योजना में यह पूरी हो जावेगी।

ब्यास योजना

यह योजना पंजाब और राजस्थान सरकार द्वारा सम्मिलित रूप से तैयार की गई है। इसके अंतर्गत दो इकाइयाँ होंगीं। पहली इकाई **ब्यास—सतलुज लिंक** है जिसके अंतर्गत पंडोह नामक स्थान पर एक बाँध बनाना, सुरंगें बनाना तथा एक खुली जलविद्युत नहर और एक शक्तिगृह स्थापित किया जाना है। इसकी उत्पादन क्षमता ६३६ मिलीवाट की होगी तथा इससे स्थायी रूप से ३९१ मिलीवाट शक्ति प्राप्त हो सकेगी। इस इकाई के बाँध से नहरें निकाल कर लगभग १३ लाख एकड़ कृषि योग्य भूमि को सिंचाई देकर खाद्यान्न उत्पन्न कराने में सहायक होंगी।

दूसरी इकाई के अंतर्गत राजस्थान नहर के लिए पर्याप्त जल की व्यवस्था करने को व्यास नदी पर पोंग नामक स्थान पर बाँध बनाया जायेगा। इससे राजस्थान—पंजाब की लगभग ५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। एक शक्तिगृह भी स्थापित किया जायेगा जिसकी क्षमता २४० मिलीवाट होगी।

अध्याय १०

जलवायु

(CLIMATE)

देश के अधिक विस्तार और अनेक भू-आकृतियों के कारण सम्भवतः विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में जलवायु सम्बन्धी दशाओं में बड़ी विभिन्नता पाई जाती है। देश का एक भाग कर्क रेखा के उत्तर में और दूसरा उसके दक्षिण में है। उत्तर-पश्चिमी भागों में थार का विशाल मरुस्थल है जहाँ वर्ष भर में २.५ सें० मी० से भी कम वर्षा होती है; जब कि उत्तरी व पूर्वी भाग में खासी की पहाड़ियों में चेरापूंजी नामक स्थान पर १,०८० सें० मी० वर्षा का औसत रहता है। काश्मीर में द्रास नामक स्थान पर न्यूनतम तापक्रम—९° सें० ग्रेड तक पहुँच जाता है जब कि राजस्थान में श्रीगंगानगर का उच्चतम तापक्रम अनेक बार ४६° सें० ग्रेड से अधिक अंकित किया जा चुका है। हिमालय के अधिकांश पहाड़ी केन्द्रों में अगस्त के महीने में आर्द्रता १००% पाई जाती है और आकाश मेघाच्छन्न रहता है, किन्तु दिसम्बर में इन्हीं स्थानों में आर्द्रता ०% हो जाती है। कोचीन का मध्यम औसत तापक्रम २७° से० ग्रेड से नीचे नहीं जाता और न ही न्यूनतम तापक्रम २३° सें० ग्रेड से नीचे उतरता है। इसके विपरीत श्रीगंगानगर में औसत उच्च तापक्रम मई में ३८° सें० ग्रे० से अधिक और औसत न्यूनतम तापक्रम जनवरी में ३० सें० ग्रेड तक पहुँच जाता है। अस्तु, स्पष्ट होता है कि भारत में जलवायु की दशा में देश के विभिन्न भागों में अन्तर पाया जाता है।

भारत के जलवायु पर दो बाहरी कारणों का प्रभाव पड़ता है। उत्तर की ओर हिमालय की हिमाच्छादित श्रेणियाँ इसको मध्य एशिया की ओर से आने वाली शीतल वायु से बचाकर इसको महाद्वीपीय जलवायु (Continental Climate) का रूप देती हैं जिसकी प्रमुख विशेषतायें स्थल हवाओं का आधिक्य, वायु की शुष्कता, अधिक दैनिक तापक्रमान्तर और वर्षा की न्यूनता है। दक्षिण की ओर हिन्द महासागर की निकटता इसको गर्म मानसूनी जलवायु देती है जिसमें उष्ण कटिबन्धीय जलवायु की आदर्श दशाऐं प्राप्त होती हैं। **डा० स्टाम्प** का कथन है कि "हम भारत को सदैव ही मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय देश मानते हैं। और यह सत्य भी है क्योंकि उत्तर की विशाल पहाड़ी-दीवार से अवरोधित सम्पूर्ण क्षेत्र को एक ही इकाई मानना चाहिए, जिसमें एक ही प्रकार की जलवायु उष्ण मानसूनी पाई जाती है।"[1] इस प्रकार की जलवायु की मुख्य विशेषतायें न्यून दैनिक तापक्रमान्तर और उसकी एक समानता, वायु की अधिक आर्द्रता एवं वर्षा का न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र ही होना है।

ब्लैंफोर्ड ने भारत की जलवायु की विभिन्नताओं का उल्लेख करते हुए लिखा

---

1. *Stamp, L. D.*, Asia, 1957, p. 170.

है कि "हम भारत की जलवायुओं के विषय में कह सकते हैं, जलवायु के विषय में नहीं; क्योंकि स्वयं विश्व में जलवायु की इतनी विषमतायें नहीं मिलतीं जितनी अकेले भारत में।"[2] श्री मार्सडेन के अनुसार तो विश्व की समस्त जलवायुएँ भारत में पाई जाती हैं।"[3]

भारत की जलवायु पर विषुवत् रेखा की निकटता, कर्क रेखा के मध्य से गुजरने, कुछ भागों के समुद्रतल से काफी ऊँचे होने, तथा समुद्र के तीन ओर देश को घेरे रहने का भी प्रभाव पड़ता है। इन सब कारणों के स्वरूप देश के विभिन्न भौतिक विभागों में तापक्रम में बड़ा अन्तर पाया जाता है, जैसा कि नीचे दिए गए आँकड़ों से प्रतीत होगा :—

कुछ नगरों के मासिक उच्चतम और निम्नतम तापक्रम—

	मासिक उच्चतम तापक्रम				मासिक निम्नतम तापक्रम			
	जनवरी		मई		जनवरी		मई	
	फा०	सैं०	फा०	सैं	फा०	सैं०	फा०	सैं०
पहाड़ी प्रदेश								
मसूरी	८९·१	३१·७	९०·८	३२·७	७०.६	२१·४	७८·८	२६ ०
दार्जिलिंग	४७·०	८·३	६२·९	१७·२	३५·४	१·९	५२·४	११·३
शिलांग	६०·१	१५·६	७४·०	२३·३	३८·८	३·८	५९·१	१५·१
शिमला	४७·५	८·६	७३·२	२२·९	३५·४	१·९	५७·७	१४·३
चेरापूंजी	६०·३	१५·७	७२·१	२२·३	४६·१	७·८	६१·१	१६·०
मैदानी प्रदेश								
आगरा	७३·०	२२·८	१०६·८	४१·६	४२·६	५·९	७६·८	२४·९
अलीगढ़	७०·९	२१·६	१०५·३	४०·७	४५·२	७·३	७९·४	२६·३
नई दिल्ली	७०·५	२१·४	१०४·८	४०·४	४३·३	६·३	७८·८	२६·०
इलाहाबाद	७४·८	२३·८	१०७·१	४१·७	४७·१	८·४	७९·९	२६·६
कानपुर	७१·९	२२·२	१०६·२	४१·२	४५·७	७ ७	८०·४	२६·९
पटना	७३·०	२२·८	१००·३	३७·९	५१·१	१०·६	७८·१	२५·६
वाराणसी	७४·२	२३·४	१०५·४	४०·८	४८·१	८·९	७९·२	२६·२
कलकत्ता	७९·६	२६·४	९५·६	३५·३	५४·६	१२·६	७७·५	२५·३
जयपुर	७३·२	२२·९	१०५·६	४०·९	४६·८	८·२	७६·९	२४·९
बीकानेर	७१·७	२२·१	१०७·०	४१·७	४६·९	८·३	८१·९	२७·७
अजमेर	७२·७	२५·०	१०२·९	३९·४	४५·७	७·३	८०·२	२६·८

2. *H. F. Blanford*, Climate and Weather of India.
3. *Marsden*, Geography for Senior Classes, p. 117.

जोधपुर	७६·३	२४·६	१०५·४	४०·८	४८·६	९·२	७९·४	२६·३
कोटा	७७·१	२५·१	१०७·६	४२·०	५१·१	१०·६	८४·५	२९·२
अहमदाबाद	८४·८	२९·३	१०६·८	४१·६	५७·६	१४·२	७९·२	२६·२
पठारी प्रदेश								
नागपुर	८३·७	२८·७	१०८·७	४२·६	५७·७	१४·३	८२·७	२८·२
हैदराबाद	८४·७	२९·३	१०३·१	३९·५	५८·७	१४·८	७९·७	२६·५
मैसूर	८४·२	२९ ०	९१·९	३३·३	६०·८	१६·०	६९·९	२१·१
भोपाल	७९·३	२६·३	१०४·४	४०·२	४९·८	९·९	७९·०	२६·१
इंदौर	७९·५	२६·४	१०२·९	३९·४	४९·८	९·९	७६·३	२४·६
उटकमंड	६५·९	१८·८	७०·४	२१·३	४३·०	६·१	५२·५	११·४
पूना	८६·५	३०·३	९८·८	३७·१	५३·०	११·७	७२·४	२२·४
बंगलौर	८०·३	२६·८	९१·२	३२·९	५७·३	१४·१	६८·९	२०·५
तटीय प्रदेश								
मद्रास	८५·३	२०·६	१०१·३	३८·५	६७·१	१९·५	८१·७	२७·६
त्रिवेन्द्रम	८६·६	३०·३	७७·२	३०·७	७४·०	२३·३	७८·९	२६·१
कटक	८३·१	२८ ४	१०१·४	३८·६	५९·८	१५·४	७९·९	२६·६
मंगलौर	८९·१	३१·७	९०·८	३२·७	७०·६	२१·४	७८·८	२६·०
बंबई	८३·२	२८·४	९१·१	३२·८	६६·७	१९·३	७९·६	२६·४
पुरी	८०·०	२६·७	८९·६	३२·०	६३·७	१७·६	८१·१	२७·३

ग्रीष्म में जब सूर्य कर्क रेखा पर या उसके आस-पास लम्बवत् चमकता है तो उत्तरी गोलार्द्ध में विशेषकर एशिया महाद्वीप एवं भारत जैसे उष्णवृत्तीय देश में प्रचण्ड रूप से गर्मी पड़ती है। परिणामस्वरूप मध्य एशिया में बेकाल झील के आस-पास न्यून-भार का एक केन्द्र बन जाता है पर हिमालय के कारण एक दूसरा न्यून-भार का केन्द्र लाहौर के आसपास भी बनता है। इस समय उच्च वायुभार के क्षेत्र जापान के दक्षिण में प्रशान्त महासागर तथा आस्ट्रेलिया में होते हैं। जब किसी क्षेत्र विशेष में वायुभार न्यून हो जाता है तो उस स्थान पर चारों ओर से हवाएँ आने लगती हैं। चूंकि ये हवाएँ भाप से भरी होती हैं अतः खूब वर्षा करती हैं। इन्हीं हवाओं में से दक्षिणी हिन्द-महासागर से उठने वाली दक्षिणी हवाएँ भारत में आने के बाद हिमालय को पार नहीं कर सकतीं अतः यह भारत में ही खूब गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा कर देती हैं।

इसके ठीक विपरीत शीत ऋतु में होता है जबकि सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में सर्दी के कारण एशिया महाद्वीप के मध्य में बेकाल झील के निकट उच्च भार का केन्द्र बन जाता है। यहाँ का औसत वायुभार ७७७ मि०मी० होता है। इसी प्रकार भारत के सीमांत पश्चिमी भाग में भी मुल्तान के आस-पास उच्च वायुभार का केन्द्र बनता है। इसका औसत भार ७६५ कि०मी० होता है। अतः समुद्रीय

धरातल पर विशेषतः उत्तरी प्रशान्त महासागर और विषुवत् रेखीय प्रदेशों से लेकर दक्षिण तक तुलनात्मक भार कम रहता है। आस्ट्रेलिया में भी निम्न भार रहता है क्योंकि इस समय वहाँ गर्मी पड़ती है। अतएव, हवायें स्थल से समुद्र की ओर चलने
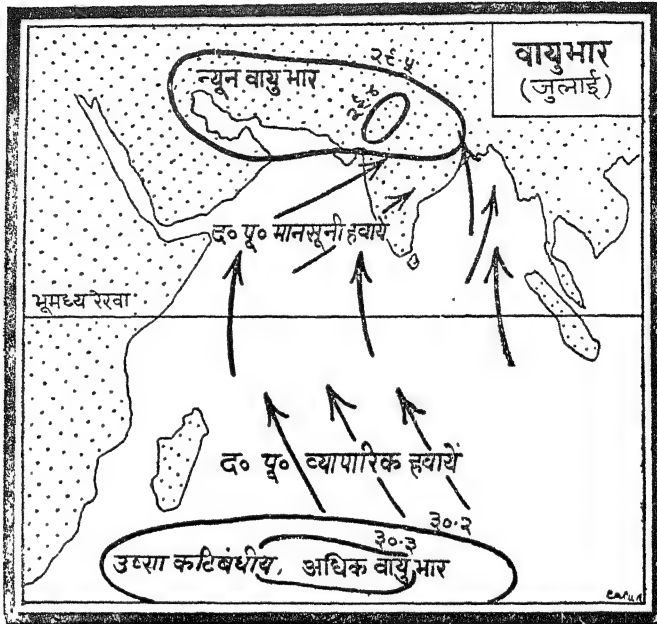
चित्र ६०. जुलाई वायुभार और हवायें

लगती हैं। यह स्थलीय हवायें उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवायें होती हैं। सूखी होने के कारण इन हवाओं से वर्षा नहीं होती। इस समय सारा पूर्वी और दक्षिणी एशिया इन हवाओं द्वारा प्रभावित होता है।

मानसूनी भागों में होने के कारण भारतवर्ष भी वर्ष के कुछ महीनों तक स्थली हवा और कुछ महीनों तक समुद्री हवा के प्रभाव में रहता है। यह स्थली हवाएँ साधारण तौर पर उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवाएँ होती हैं। समुद्री हवायें दक्षिणी-पश्चिमी मानसून कहलाती हैं जो अधिकतर दक्षिणी गोलार्द्ध में चलने वाली दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवायें ही होती हैं लेकिन विषुवत् रेखा पार करने पर फैरल नियम के अनुसार उनकी दिशा दक्षिण-पश्चिमी हो जाती है किंतु भारत के उत्तर में हिमालय और उससे मिली हुई पर्वत श्रेणियों के कारण यहाँ पर चलने वाली हवायें मध्य एशिया की हवाओं से कोई लगाव नहीं रखतीं। इसलिये भारत की जलवायु एशिया के दूसरे मानसूनी प्रदेशों (चीन, इण्डोचीन आदि) की जलवायु से भिन्न होती है।

प्रो० केन्ड्रयू के अनुसार भारत में निम्न चार प्रमुख ऋतुयें पाई जाती हैं:—[4]

4. *W. G. Kendrew*, The Climates of the Continents, 1941, p. 112.

(१) **उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवा का समय** (N. E. Monsoon Season)—यह ऋतु दिसम्बर से फरवरी तक रहती है।

(२) **गीष्म ऋतु** (Hot Weather Season)—यह ऋतु मार्च से मई तक रहती है।
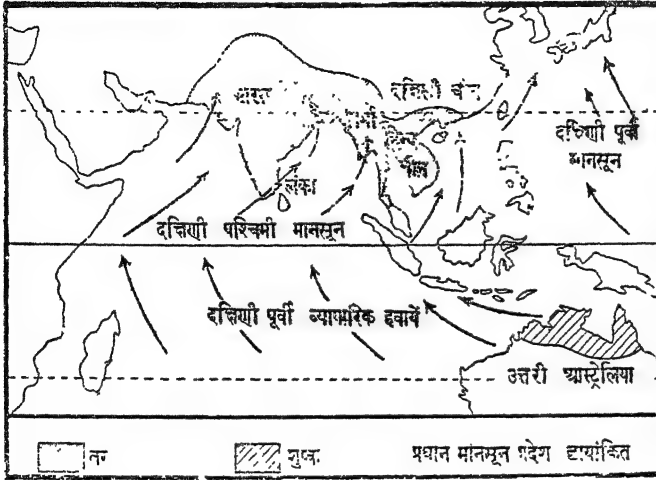
चित्र ६१. शीत ऋतु का मानसून

(३) **दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का समय** (South West Monsoon Season)—यह ऋतु जून से सितम्बर तक रहती है और इसी काल में देश व्यापी वर्षा होती है।

(४) **लौटती मानसून का समय** (Retreating Monsoon Season)—यह ऋतु अक्तूबर एवं नवम्बर दो महीने रहती है। इसी समय मद्रास आदि स्थलों पर वर्षा होती है।

शीत ऋतु (Cold Weather Season)

(क) **वायुभार की दशायें** (Weather Conditions)—उत्तरी भारत में अक्टूबर से ही आकाश मेघरहित हो जाने लगता है और दिसम्बर तक सम्पूर्ण देश मेघ-विहीन हो जाता है—केवल दक्षिणी-पूर्वी भारत में लौटती मानसून से जो वर्षा होती है उसके कारण कहीं-कहीं बादल छा जाते हैं। भारत में यह मौसम दिसम्बर से ही प्रारम्भ हो जाता है। चूँकि इस समय सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में होता है वह दिसम्बर के अन्त तक (२२ दिसम्बर) मकर रेखा पर पहुँच जाता है। अतः इस समय एशिया में उच्च-भार की पेटी मध्य एशिया से उ० पू० चीन और अरब तथा फारस तक फैल जाती है। भारत के बाहर इस समय उच्च-भार पेशावर के आस-पास बन जाता है। सारे देश में इस काल में तापक्रम न्यूनतम रहते हैं। **श्री कॅन्ड्रयू** के अनुसार "स्वच्छ आकाश, सुहावना मौसम, निम्न तापक्रम एवं आर्द्रता, सर्वोत्तम दैनिक तापान्तर तथा धीमी चलने वाली उत्तरी हवायें" इस ऋतु की प्रमुख विशेष-

तायें है। भिन्न-भिन्न स्थलों का तापान्तर भिन्न-भिन्न रहता है। कहीं-कहीं पर दैनिक तापान्तर बहुत ही कम होता है किन्तु कहीं-कहीं यह ४·४° सें० ग्रे० तक पहुँच जाता है जैसे मलाबार प्रदेश में तापान्तर ३° से० ग्रेड होता है जब कि मद्रास में यह अन्तर ८° सें० ग्रेड और बंगाल के कुछ क्षेत्रों में ६° सें० ग्रेड तथा पश्चिमी राजस्थान में ७° सें० ग्रेड तक पहुँच जाता है।

दिसम्बर के मध्य से मध्य एशिया में उच्च-भार (७७७ मिलीबार) होने के कारण पछुआ हवाओं की शाखाएँ दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं तथा वे फारस, उत्तरी भारत एवं दक्षिण-चीन की ओर बढ़ने लगती हैं। इसी क्षेत्र में इन चक्रवातों से भारत के उत्तरी भागों में बीच-बीच में आकाश की स्वच्छता मेघाछन्न स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार के चक्रवात एक महीने में ४ से ६ तक आ सकते
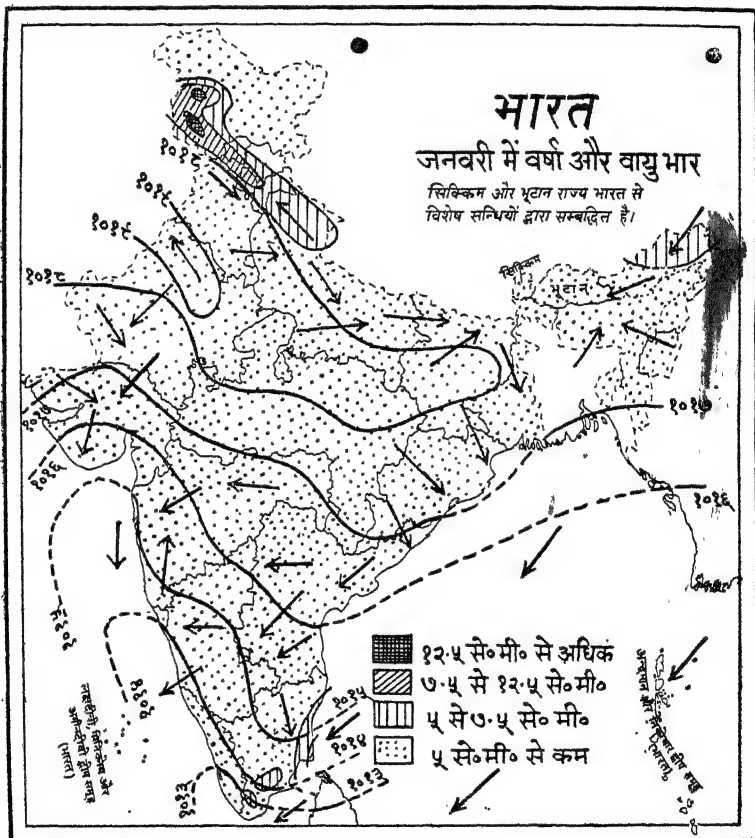
चित्र ९२. जनवरी में वर्षा और वायु भार

हैं।[५] यद्यपि इनसे बहुत ही कम वर्षा होती है परन्तु यह वर्षा रबी की फसल के लिये

५. पश्चिमी चक्रवातों की संख्या इस प्रकार है : नवम्बर २; जनवरी ४; फरवरी ५; मार्च ५; अप्रेल ५ और मई २। —*Kendrew*, Ibid, p. 158.

बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। वर्षा कहीं भी १२.५ सें० मी० से अधिक नहीं होती है। पर्वतों के उच्च ढालों पर बर्फ की वर्षा भी होती है। कभी कहीं तो कुछ बादलों से (चक्रवातों से) सारे उत्तरी भारत में वर्षा हो जाती है और कभी-कभी ये चक्रवात स्थानीय रूप से ही पंजाब एवं काश्मीर में अधिकतर वर्षा कर देते हैं। आरम्भ में जब चक्रवात आने की सम्भावना होती है तो तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं परन्तु वर्षा के बाद में तापक्रम कम हो जाते हैं। कुछ स्थानों पर तो तापक्रम बहुत ही कम बढ़ते हैं किन्तु ऐसा स्थानीय एवं अस्थायी रूप से ही होता है। इस ऋतु में सारे देश के तापक्रम न्यून रहते हैं। सबसे कम तापक्रम उत्तरी पश्चिमी भारत में पाये जाते हैं। यहाँ यह १०°सें० ग्रे० तक पहुँच जाते हैं। पर ज्यों-ज्यों हम पश्चिम व उत्तर से पूर्वी या दक्षिणी भारत में जाते हैं तापकम बढ़ते जाते हैं। गंगा सिन्धु के मैदान में तापक्रम १०° सें०ग्रें० से २०° सें० ग्रे० तक एवं दक्षिणी भारत में इसी ऋतु में तापक्रम २१° से ३२°सें० ग्रे० तक पहुँच जाते हैं।

(ख) **तापक्रम** (Temperature)—सर्दियों में भारत के अधिकांश भागों में महाद्वीपीय वायु चलती है क्योंकि इस समय पेशावर के आस-पास के क्षेत्रों में उच्च-भार परिपक्वावस्था की स्थिति में पहुँच जाता है। तापक्रम ज्यों-ज्यों हम उत्तर से दक्षिण में जाते है बढ़ते जाते हैं। समताप रेखायें अक्षांश रेखाओं के समानान्तर चलती हैं। सर्दी की मौसम में साधारणतया सबसे अधिक सर्दी दिसम्बर एवं जनवरी में पड़ती है। इस समय भारत के औसत उच्चतम तापक्रम कुछ स्थानों पर २९° सें० ग्रेड तक रहता है जबकि उत्तर-पश्चिम में यह केवल १८° सें० ग्रेड तक ही होता है। इसके विपरीत न्यूनतम औसत तापक्रम दक्षिणी भारत के धुर दक्षिण में २४° सें ग्रेड एवं उत्तर पश्चिम में कहीं-कहीं पर तापक्रम ४° सें० ग्रेड या इससे भी कम हो जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान में तो रात्रि का तापक्रम कई बार हिमांक बिन्दु ०° सैं० ग्रेड से भी नीचे पहुँच जाते हैं।

फरवरी के आस-पास कैस्पियन एवं तुर्किस्तान प्रदेश की ठंढी हवायें भारतीय प्रदेश में प्रवेश कर जाती हैं। कभी-कभी इन ठढी लहरों के कारण तापक्रम नीचे गिर जाते हैं। इसके फलस्वरूप बहुत ही गहरा कुहरा छा जाता है। रात्रि के पिछले पहर ऐसे मौकों पर बहुत ही शीतल होते हैं। देश के उत्तरी पश्चिमी भाग पंजाब, काश्मीर आदि में प्रायः पाला भी पड़ता है लेकिन ज्यों-ज्यों दक्षिण और समुद्र की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों पाले की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है—यहाँ तक कि पश्चिमी बंगाल में (समुद्र के निकट होने से) तथा मद्रास में (विषुवत् रेखा के निकट होने से) पाले का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता।

(ग) **आर्द्रता** (Humidity)—सर्दी की ऋतु में ज्यों-ज्यों हम देश के आन्तरिक भागों में जाते हैं त्यों-त्यों तापक्रम के साथ-साथ आर्द्रता में भी कमी आती जाती है। अतः इस काल में सापेक्षिक आर्द्रता (Relative humidity) कम ही रहती है। पश्चिमी दक्षिणी पठार, गुजरात एवं दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में आर्द्रता का प्रतिशत ४० से ५० तक रहता है। देश के किसी भी भाग में आर्द्रता का प्रतिशत ६० से अधिक नहीं होता परन्तु राजस्थान के मरुस्थल में कई ऐसे भाग भी हैं जहाँ इस मौसम में आर्द्रता शून्य प्रतिशत रहती है।

(घ) **वर्षा**—इस मौसम में उत्तरी भागों में उत्तर-पश्चिम से आने वाले चक्रवात एवं दक्षिण में लौटती हुई मानसूनों द्वारा वर्षा होती है। उत्तरी पश्चिमी

भारत में जो चक्रवात चलते हैं उसमें रुक-रुक कर वर्षा होती रहती है। इसी समय दक्षिणी भारत के कोरोमण्डल तट पर भी वर्षा होती है क्योंकि इस दक्षिणी भाग में 'शान्त खण्ड' (Doldrums) आ जाते हैं जिससे हवा चक्कर लगाती है और यहाँ वर्षा कर देती है। यहाँ पर तूफान भी आते रहते हैं। प्रति तीन वर्ष में एक बार
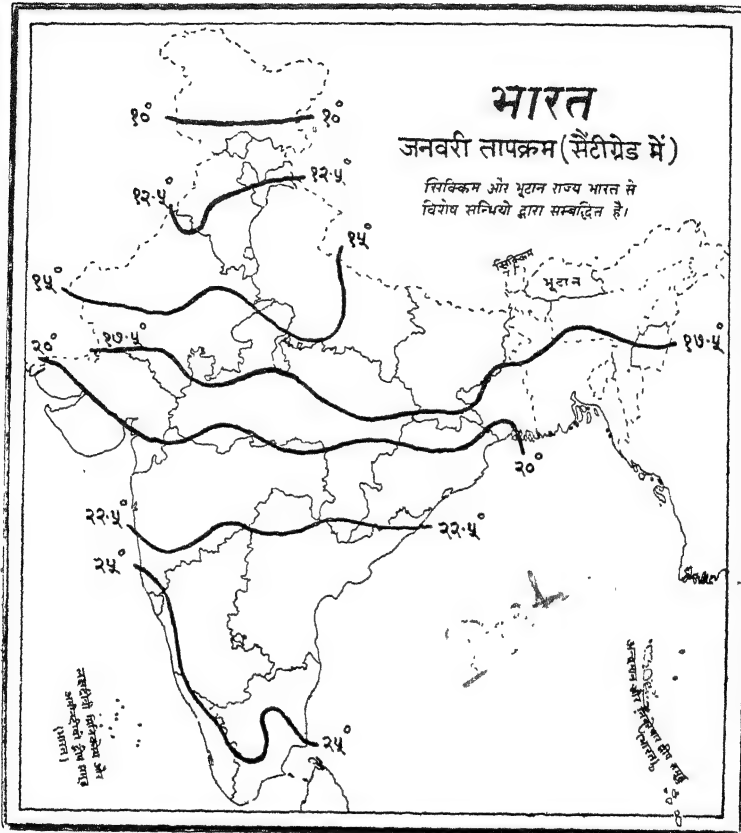
चित्र ९३. औसत तापक्रम (जनवरी)

तूफान आने की आशा की जाती है जो मद्रास के दक्षिणी तटीय प्रदेशों तक वर्षा कर देते हैं। इस क्षेत्र में दिसम्बर के महीने में २५ सें० मी० तक वर्षा हो जाती है। यह औसतन १० दिन में होती है जबकि मैसूर में २·५ सें० मी० वर्षा एक या दो दिन में ही हो जाती है। उत्तर पश्चिम में या आन्तरिक भागों में जायें तो वहाँ सिर्फ बूँदा-बूँदी ही होती है।

उत्तर पश्चिमी भारत में पश्चिम से आने वाले चक्रवातों से वर्षा होती है। इन चक्रवातों में प्रायः १० में से ९ भूमध्यसागर से ईरान होते हुए आते हैं और शेष मध्य भारत या अरब-सागर में उत्पन्न होते हैं। इनका मार्ग साधारणतः हिमालय पर्वत श्रेणियों के साथ होता है। अस्तु, १२° अक्षांश के दक्षिण के भाग में इनका

प्रभाव नहीं पड़ता। ये चक्रवात यूरोपीय चक्रवातों से मिलते-जुलते हैं किन्तु उनकी तरह प्रबल नहीं होते। इनके आने से उत्तरी भारत के तापक्रम एकदम बढ़ जाते हैं और इनकी समाप्ति पर तापक्रम गिर जाते हैं। इन चक्रवातों का मार्ग विषुवत्‌रेखीय शांत खंडों (Doldrums) द्वारा निर्धारित होता है। जब इन खंडों की स्थिति उत्तर की ओर होती है तो इनका मार्ग उत्तर की ओर अधिक होता है तथा उनमें अरब सागर की हवा कम होती है। इसके विपरीत जब शांत खंड दक्षिण की ओर स्थित होते हैं तो चक्रवातों का मार्ग भी दक्षिण की ओर अधिक होता है। इस समय चक्रवातों में नम हवा अधिक आ जाती है अतः इनके द्वारा पहाड़ों पर भी भीषण हिम-वर्षा होती है। इन चक्रवातों का औसत नवम्बर में २, दिसम्बर से अप्रेल तक प्रति महीने ४-५ और मई में २ का होता है।[६] ये चक्रवात पर्वतों की तलहटी एवं उनके आस-पास के मैदानों में वर्षा कर देते हैं। इस प्रकार के चक्रवात महीने में ५ से ६ तक आते हैं परन्तु वर्षा की दृष्टि से सभी की महत्ता एक समान नहीं है। ये सब एक अनिश्चित अन्तर पर आते रहते हैं। महा-हिमालय में इस समय बहुत हिमपात होता है कुछ हिमपात उप-हिमालय में भी हो जाता है पर शिवालिक की पहाड़ियों पर हिमपात नहीं होता क्योंकि इस समय यहाँ पर बसन्त ऋतु के प्रारम्भिक दिन होते हैं। यदि
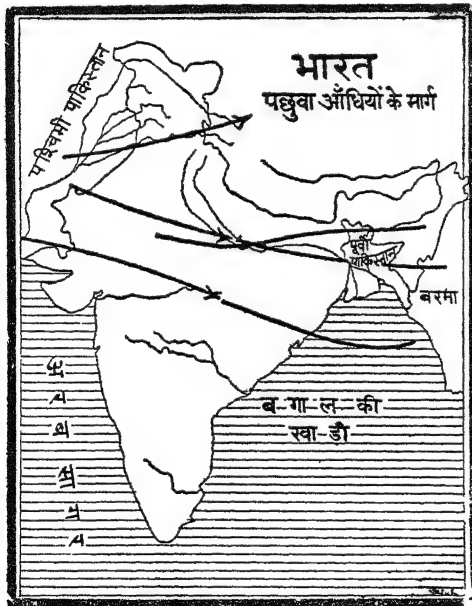
चित्र ६४. पछुवा आँधियों के मार्ग

वर्षा होती भी है तो यह हिमपात के रूप में नहीं होती। जब चक्रवातों का जोर अधिक होता है तो बर्फीले पहाड़ों की ठंढी हवा भारत के मैदानों में ठंढी लहर

6. *M. S. Randhawa*, Agriculture & Animal Husbandry in India, 1958, p. 36.

(Cold-wave) के रूप में आ जाती है इससे सर्दी अधिक बढ़ जाती है। कई बार इन तूफानों से ओले भी पड़ते है जिनसे फसल को बहुत हानि पहुँचती है।

इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में वर्षा शिवालिक को मिलाते हुए होती है। यह वर्षा अधिकतर पंजाब एवं पश्चिमी भागों तक तथा कभी-कभी बंगाल एवं आसाम तक भी पहुँच जाती है। कुल मिला कर इस क्षेत्र में २५ सें० मी० से कम वर्षा होती है। कभी-कभी देश के मध्य भागों एवं दक्षिणी पठार के उत्तरी भागों में भी कुछ शीतकालीन वर्षा हो जाती है। परन्तु इसी समय दक्षिणी कोरोमण्डल तट पर भी २५ सें० मी० के आसपास तक हो जाती है। इस ऋतु की वर्षा मात्रा में बहुत कम होती है (सम्पूर्ण वर्षा का केवल २%) किन्तु पंजाब और उत्तर-प्रदेश की गेहूँ, जौ, चना, आदि फसलों के लिए बहुत महत्व रखती है।
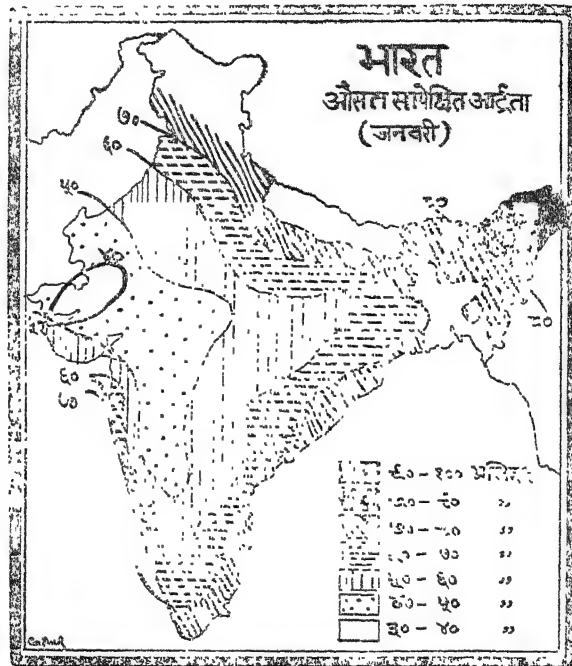
चित्र ९५. औसत सापेक्षिक आर्द्रता (जनवरी)

२. ग्रीष्म ऋतु (Hot Weather Season)

(क) वायुभार की दशायें : फरवरी तक सूर्य विषवत् रेखा के आस पास होता है तथा मार्च के अन्त तक वह कर्क रेखा की ओर आना आरम्भ कर देता है। इस कारण सारे देश में तापक्रम बढ़ने लगते हैं और वायुभार में गिरावट आ जाती है। ठीक इसी समय दक्षिणी हिन्द महासागर, दक्षिणी अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया में भी तापक्रम गिरते हैं तथा उन क्षेत्रों में प्रति-चक्रवातों का चलना आरम्भ हो जाता है। ज्यों-ज्यों सूर्य कर्क रेखा की ओर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों निम्न वायुभार उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ने लगता है। मार्च में देश के सर्वाधिक तापक्रम ३८° सें० ग्रेड दक्षिणी

हवायें मैदानों पर दिन में असाधारण गर्मी पड़ने के कारण चलती हैं। जब इन शुष्क हवाओं से आर्द्र हवायें मिलती हैं तो तेज तूफान आते है। इनका वेग कभी-कभी ११३ से १२९ किलोमीटर प्रति घंटा होता है। इनसे वर्षा भी हो जाती है। बंगाल में इन तूफानों को **काल बैसाखी** (Norwester) कहते हैं। इसी समय धूल के तूफान उत्तर के शुष्क और उत्तरी पश्चिमी प्रदेश से भी आते रहते हैं। इनसे बहुत हानि होती है।

(ख) **तापक्रम और आर्द्रता :** इस समय तटीय प्रदेशों में स्थली एवं जलीय पवनें चलती हैं इसके फलस्वरूप वहाँ पर निम्न तापक्रम पाये जाते हैं जबकि दूसरी
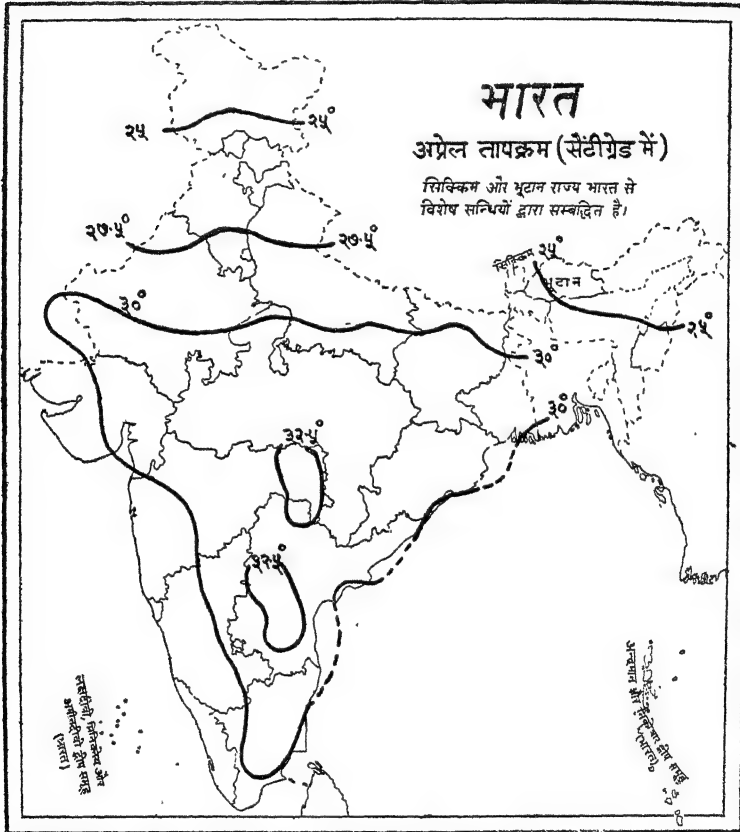
चित्र ९७. औसत तापक्रम (अप्रेल)

ओर आन्तरिक प्रदेशों में हवायें स्थल के एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलती हैं। इसके परिणामस्वरूप तटीय प्रदेशों के तापक्रमों में एवं आन्तरिक प्रदेशों के तापक्रमों में बहुत ही अन्तर पड़ता है। यही नहीं दैनिक तापान्तर भी आन्तरिक भागों में अधिक बना रहता है। यह ४° सें० ग्रेड अथवा कभी-कभी इससे भी अधिक पहुँच जाता है। किन्तु तटीय प्रदेशों में दैनिक तापान्तर २° सें० ग्रेड पहुँचते है। ज्यों-ज्यों गर्मी का

मौसम बढ़ता जाता है त्यों-त्यों निम्न भार के क्षेत्र उत्तरी भारत की ओर बढ़ते हैं इसके फलस्वरूप उत्तर में बड़ी तेजी से तापक्रम बढ़ने लगते हैं। वैसे तो सारे देश में ही तापक्रम बढ़ते हैं पर उत्तर में विशेषतौर पर तेजी से बढ़ते हैं। जनवरी में उत्तरी भारत में सर्वोच्च तापक्रम १८° सें० ग्रेड तक रहते हैं, मार्च में ३२° सें० ग्रेड या इससे अधिक तथा मई में तो उत्तरी पश्चिमी भारत में यह ४८° सें० ग्रेड से भी अधिक हो जाते हैं। सबसे अधिक तापक्रम श्री गंगानगर का रहता है (५०° सें० ग्रेड)। रात्रि के न्यूनतम तापक्रम २१° सें० ग्रेड के आसपास उत्तरी भारत में और २७° सें० ग्रेड से कुछ अधिक दक्षिणी पठार के पूर्वी भागों में रहते है। मई में गंगा के निचले मैदानों में तापक्रम समय-समय पर आने वाले वज्र तूफानों (Thunder Storms) के कारण अधिक नहीं बढ़ते हैं। इस काल में दक्षिणी पंजाब, पश्चिमी राजस्थान और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग सबसे अधिक गरम रहते हैं। आसाम, बंगाल, बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश भी इस समय बहुत गरम रहते हैं किन्तु समुद्र के निकटवर्ती भाग तथा पहाड़ी स्थान इस समय काफी ठंढे रहते हैं। पश्चिमी समुद्रतट पर इस समय तापक्रम २७° से २६° सें० ग्रेड रहते हैं। यहाँ दिन में तापक्रम ३७° सें० ग्रेड से ऊँचा नहीं बढ़ता। यहाँ दिन यद्यपि ठंढा रहता है किन्तु रातें उत्तर की अपेक्षा गर्म रहती हैं। तापक्रम का उतार-चढ़ाव भी कम रहता है।

आनुपातिक आर्द्रता ज्यों-ज्यों हम किनारे से आन्तरिक भागों की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों कम होती जाती है। वैसे तो भारत के आन्तरिक भागों में आर्द्रता कम ही रहती है पर देश के मध्यवर्ती भागों में विशेषकर मध्य दक्षिणी पठार के उत्तरी भाग एवं उसके आस-पास के प्रदेशों में आर्द्रता का प्रतिशत ३० या इससे भी कम होता है। गर्मियों में दोपहर के बाद उत्तरी भारत में पंजाब से बिहार तक कई स्थानों पर आर्द्रता ५०% तक पहुँच जाती है। ऐसे समय में हवा शुष्क एवं गर्म होती है। प्रत्येक भाग में विप्लवकारी (Turbulent) प्रभाव बताती है। ठीक यही बात उत्तरी भारत के भागों में होती है। इस समय जब हवा के नीचे की परतें गर्म हो जाती हैं तो ऊपर की ठण्डी हवा नीचे उतरती है और गरम हो जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस मौसम में हवा बहुत ही कम आर्द्र पाई जाती है।

(ग) **वर्षा :** मार्च से मई तक गर्मी की ऋतु में सारे भारत में वर्षा या तो होती ही नहीं या यदि होती भी है तो कुछ ही भागों में और वह भी बहुत ही कम मात्रा में (सम्पूर्ण वर्षा का केवल १०%)। मार्च में उत्तरी भारत में पश्चिम से चक्रवात आते हैं। इससे इन प्रदेशों में थोड़ी बहुत वर्षा हो जाती है। इन हवाओं के प्रभाव के कारण गंगा के पूर्वी मैदान और उत्तरी-पूर्वी भारत में तूफान आते रहते हैं जो कभी-कभी बड़ी हानि करते हैं। बंगाल और आसाम में इस समय समुद्र की ठंढी हवा के स्थल की गर्म हवा के मिलने से तूफान आते हैं—जिन्हें **नॉर वेस्टर** (Nor-Wester) कहते हैं। इनसे साधारण वर्षा होती है। असम में मई में इतनी वर्षा हो जाती है कि वह जून की वर्षा की $\frac{२}{३}$ होती है। इन तूफानों से कभी-कभी ओले भी पड़ जाते हैं। दक्षिण पठार के दक्षिण पश्चिम में और पूर्व में हल्की-हल्की वर्षा होती है और तूफान भी आते रहते हैं। अप्रेल और मई में उस प्रदेश में वर्षा ७·५ से १२·५ सें० मी० तक हो जाती है। मलाबार तट के आस-पास भी मई में थोड़ी बहुत वर्षा हो जाती है। दक्षिण भारत की इस वर्षा को **आम्र-वर्षा** (Mango Showers) तथा कहवा उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में **फूलों वाली बौछार** (Blossom Shower)

कहते हैं।[७] इस वर्षा का आर्थिक महत्व दक्षिण की अपेक्षा बंगाल व आसाम में अधिक है क्योंकि आसाम के चाय के बागों से नवीन पत्तियों का पनपना इसी वर्षा के बाद होता है जबकि उत्तरी पश्चिमी प्रायद्वीप में सारी गर्मी में वर्षा का अभाव रहता है। हवायें शुष्क जल-रहित होती हैं तथा मौसम कष्टदायक होता है किन्तु जून के आरम्भ में अचानक बड़ी तेजी से तूफान चलते है और मानसून प्रारम्भ हो जाता है। पंजाब, उत्तर प्रदेश और आसाम तथा उनके आस-पास के प्रदेशों में इस समय तूफान (hailstorms) चलते हैं। इनमें मेघ गर्जन और ओले गिरते है। इस प्रकार के तूफान दक्षिण भारत के मध्यवर्ती प्रदेशों में भी आते रहते है। इन सब प्रदेशों में ज्यों-ज्यों ग्रीष्म ऋतु समाप्त होती जाती है त्यों-त्यों तूफानों की संख्या घटती जाती है। उत्तरी भारत में ये तूफान बहुत ही हानिप्रद होते है क्योंकि इनमें छोटे-छोटे पत्थर मिले होते हैं। कभी-कभी तो इन पत्थरों एवं कंकड़ों का व्यास ५ से ६½ सें० मी० तक होता है। इनके द्वारा न केवल कई बार पशु व मनुष्य ही मर जाते हैं वरन् गेहूँ की खड़ी फसल भी नष्ट हो जाती है।

राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और दक्षिणी पठार के कुछ आन्तरिक भागों में मार्च या मई में (दक्षिणी पठार में) वर्षा होती है शेष समय शुष्क एवं गर्म रहता है। मई के अन्त तक तापक्रम बढ़ते रहते हैं और वर्षा जून में ही तटीय प्रदेशों में व्यापक रूप से प्रारम्भ हो जाती है।

३. वर्षा ऋतु (South-West Monsoon Season)

(क) **वायु भार की दशायें**—मई के अन्त तक उत्तरी भारत में हवा में शुष्कता आ जाती है और धूल के तूफान आने लगते हैं। ठीक इसी समय सूर्य भी कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकने लगता है तथा निम्न भार का केन्द्रीय स्थल पश्चिम में पंजाब के आस-पास बन जाता है। जून के आरम्भ में इस स्थिति के उत्पन्न हो जाने से अचानक ही बड़े मेघ-गर्जन एवं विद्युत-तर्जन के साथ दक्षिणी-पश्चिमी मानसून फट पड़ता है। इस प्रकार अचानक मानसून के फटने (Burst of monsoons) का मुख्य कारण यह है कि विषुवत् रेखीय निम्न भार की तुलना में थार के रेगिस्तान का निम्न भार और भी गहरा (Intense) हो जाता है। इसके फलस्वरूप दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवायें इस निम्न वायु भार के केन्द्र तक आने का प्रयास करती हैं। ज्योंही ये हवायें विषुवत् रेखा को पार करती हैं फैरल के नियमानुसार अपनी दिशा बदल देती है और दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के नाम से भारत की ओर बढ़ने लगती हैं।

जिस प्रकार एक निम्न वायु भार का क्षेत्र थार रेगिस्तान में होता है उसी प्रकार का एक दूसरा निम्न वायु भार क्षेत्र नागपुर पठार के आसपास भी बन जाता है। पर चूँकि यह क्षेत्र एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते अतः वर्षा भी सभी स्थलों पर एक समान नहीं होती। भारत में मानसूनी वर्षा थोड़े-थोड़े अन्तर से आती है। यह अन्तर कभी-कभी बहुत लम्बा भी हो जाता है। सारी मानसून दो शाखाओं में परिवर्तित होकर वर्षा करती है। पहले यह मानसून बंगाल की खाड़ी की शाखा और बाद में अरब सागरीय शाखा के रूप में देश के आन्तरिक भागों में वर्षा करती है। मानसून जून एवं जुलाई तक बढ़ता ही रहता है और अगस्त तक स्थिर रहता है परन्तु उत्तर पश्चिमी भारत से यह सितम्बर के तीसरे सप्ताह में लौटना प्रारम्भ कर

---

7. *W. G. Kendrew*, Op. Cit., p. 165.

देता हैं। मानसून के मौसम में (जून से सितम्बर तक) पश्चिमी घाट पर वर्षा २५० सें०मी०तक हो जाती है जबकि यही वर्षा पूर्वी घाट पर पहुँचते-पहुँचते ५० से ७६सें० मीटर तक ही रह जाती है। आसाम में वर्षा २५० सें० मीटर से भी ऊपर होती है पर पश्चिमी राजस्थान मे यह कम होते होते ५ से १३ सें० मीटर तक या इससे भी कम रह जाती है।

(ख) तापक्रम व आर्द्रता—ज्यों-ज्यों मानसून वर्षा बढ़ने लगती हैं त्यों-त्यों तापक्रम भी कम होने लगता है। जून एवं जुलाई में पश्चिमी रेगिस्तान और देश के कुछ दूसरे भागों को छोड़कर सारे देश के तापक्रम में समानता रहती है किन्तु यदि लम्बे समय तक वर्षा नहीं होती तो बीच-बीच में तापक्रम बढ़ जाते हैं। उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान ही एक ऐसा भाग है जहाँ तापक्रम लम्बे समय तक काफी ऊँचे रहते हैं किन्तु अगस्त या सितम्बर तक वह भी कम हो जाते है। जून में देश के कई भागों
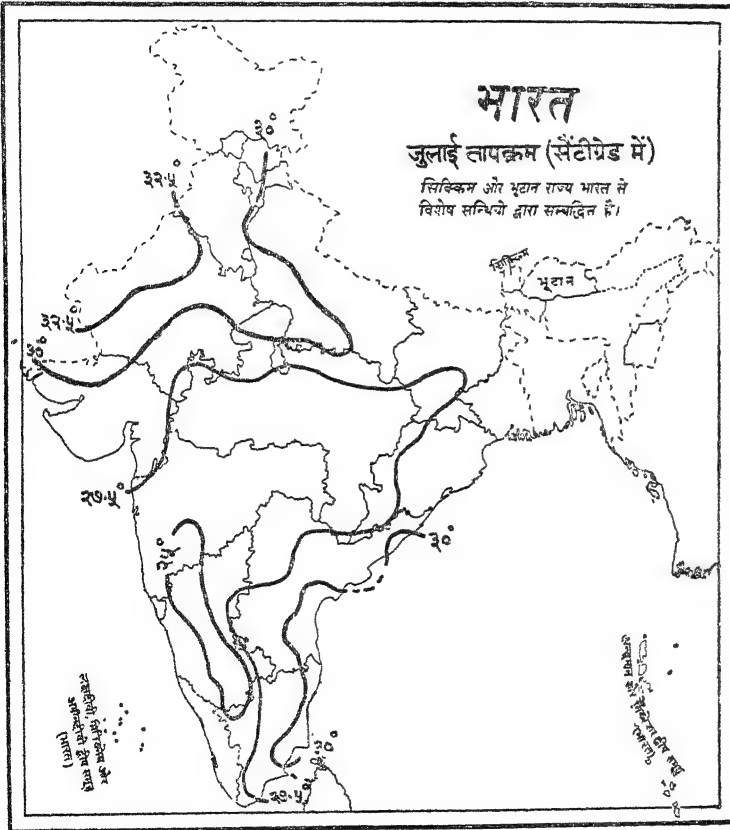
चित्र ९८. जुलाई तापक्रम

में तापक्रम काफी ऊँचे रहते हैं। इसी समय उत्तरी पश्चिमी राजस्थान और उत्तर-प्रदेश के कई स्थानों का तापक्रम ३८° सें० ग्रेड या इससे भी अधिक पहुँच जाता है।

परन्तु जुलाई में अधिकतम तापक्रम (३९° सें० ग्रेड) थार रेगिस्तान में ही मिलता है। अगस्त में तापक्रम और भी गिर जाता है। ऐसे समय में थार रेगिस्तान में हवा में आर्द्रता बढ़ जाने के कारण रात्रि को कोहरा एवं ओस गिरती है जिसके फलस्वरूप प्रातःकालीन तापक्रम काफी नीचे हो जाते हैं। परन्तु सितम्बर में इन प्रदेशों के तापक्रम फिर से बढ़ जाते हैं। सितम्बर में तापक्रम ३८° सें० ग्रेड तक अरावली के पश्चिम में अंकित किये गये हैं।

इस काल में तापक्रम एवं आर्द्रता दोनों ही वायुमण्डल में परिपूर्ण रहती है। देश के अधिकतर भागों में आर्द्रता ० से ९०% तक होती है किन्तु उत्तर-पश्चिमी भारत में इस समय आर्द्रता ८०% से भी कम रहती है।

इस प्रकार भारतीय जलवायु इस मौसम में विभिन्न प्रकार की आर्द्रता (प्रतिशत के रूप में) लिये होती है। वर्षा के काल में कभी-कभी स्थानीय रूप से वायुमण्डल में आर्द्रता शत प्रतिशत तक भी हो सकती है पर मई की भाँति उत्तरी भारत में यदि गर्म हवा बहे तो आर्द्रता १०% तक ही रह जाती है। दिन में तापक्रम के बिल्कुल विपरीत अवस्था में अनुपातिक आर्द्रता घटती है। प्रातःकाल वायुमण्डल बहुत ही नम रहता है। दिन में सूर्य की गर्मी के कारण आर्द्रता में कमी आ जाती है परन्तु सायंकाल को ज्यों-ज्यों तापक्रम गिरते हैं त्यों-त्यों आर्द्रता बढ़ती जाती है इस समय पाकिस्तान में बलूचिस्तान ही एक ऐसा भाग रहता है जहाँ कि आर्द्रता ४०% से भी कम एवं दोपहर बाद तो यह ५% से भी कम पहुँच जाती है।

(ग) **वर्षा**—मई-जून में अत्यधिक गर्मी के कारण भारत एवं मध्य एशिया में निम्न भार के केन्द्र बन जाते हैं उसके फलस्वरूप दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवाएँ दक्षिणी प्रायद्वीप की स्थिति के कारण दो भागों में विभक्त हो जाती हैं। इनमें से एक बंगाल की खाड़ी से और दूसरी अरब सागर से देश में घुसती है। बंगाल की खाड़ी का मानसून देश में पहले प्रवेश कर जाता है और अरब सागरीय मानसून लगभग १० दिन बाद। देश में इन्हीं हवाओं से बड़ी तेजी से गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा होती है। चूँकि यह हवायें हिन्द महासागर के गरम जल के ऊपर होती हुई हजारों किलोमीटर की दूरी से आती हैं अतः इसमें भाप की मात्रा बहुत भर जाती है। इसी कारण जहाँ-जहाँ यह हवा पहुँचती है वहीं-वहीं अधिक वर्षा करती है।

प्रायः देखा गया है कि दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का आरम्भ एवं समाप्ति नियत समय पर ही होती है जैसा की नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

राज्य	वर्षा आरम्भ होने की तिथि	समाप्ति
आसम	२५ मई	३० अक्टूबर
बंगाल	१ जून	१५ से ३० अक्टूबर
महाराष्ट्र	५ जून	१५ अक्टूबर
दकन का पठार	७ जून	२० अक्टूबर
मध्य प्रदेश	१० जून	१५ अक्टूबर
राजस्थान	१५ जून	२० सितम्बर
उत्तर प्रदेश	२५ जून	३० सितम्बर
पंजाब	१ जुलाई	१४ से २१ सितम्बर

जुलाई तक यह मानसून सम्पूर्ण भारत में फैल जाता है और सितम्बर तक स्थिर रहता है।
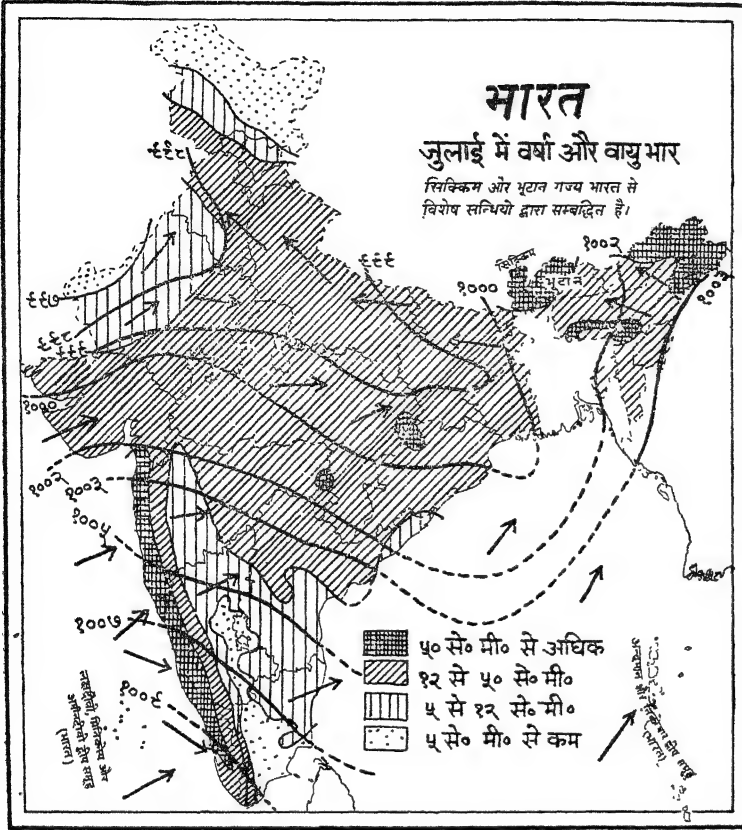
चित्र ६६. जुलाई की वर्षा

मानसून की पहली शाखा अधिक जोरदार होती है लेकिन मार्ग में पश्चिमी घाट के आ जाने से इसकी वर्षा थोड़े ही भागों तक सीमित रहती है कभी-कभी यह मानसून बड़ी तेजी से आता है—बम्बई में इसकी चाल लगभग २१ किलोमीटर प्रति घन्टे होती है—किन्तु अन्दर पहुँचने पर इसकी चाल में बहुत कुछ कमी हो जाती है। दूसरी शाखा यद्यपि इतनी शक्तिशाली नहीं होती किन्तु फिर भी देश की बनावट के कारण देश के भीतरी भागों में बहुत दूर तक फैल जाती है इससे हमारे यहाँ ८५ प्रतिशत वर्षा हो जाती है। ये दोनों शाखायें मध्य प्रदेश में मिलकर घनघोर वर्षा करती हैं जहाँ एक विस्तृत निम्न वायु भार क्षेत्र होता है जो सिन्ध के निम्न वायु भार केन्द्र से दक्षिण पूर्व की ओर फैला रहता है।

दक्षिणी पश्चिमी मानसून के आरंभ होते ही तूफान (Cyclones) आने लगते हैं। यह तूफान विशेषकर बंगाल की खाड़ी से उठते हैं और देश के भीतर तक पहुँच

जाते हैं। लेकिन जब दक्षिणी-पश्चिमी मानसून अच्छी तरह चलने लगती है तो यह तूफान नहीं उठते और अक्टूबर तक इनके उठने की सम्भावना नहीं रहती।
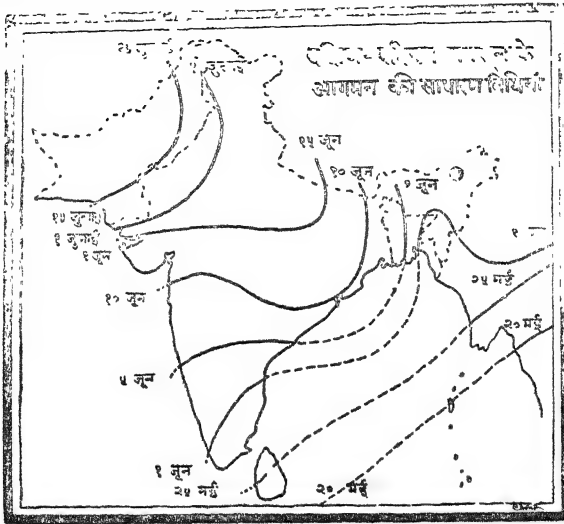
चित्र १००. द० प० मानसून की आगमन तिथियाँ

(क) अरब सागरीय शाखा (Arabian Sea Branch)—अरब सागर से चलने वाली मानसून सबसे पहले पश्चिमी घाट से सीधी टकराती है (जो इसके मार्ग में पड़ते हैं)। यहाँ इसे अनिवार्यतः ९०० से २,१०० मीटर की ऊँचाई तक चढ़ना होता है। इस चढ़ाव के कारण यह असाधारण मात्रा में ठंडी हो जाती है अतः पश्चिमी घाट और पश्चिमी तट के मैदानों में वर्षा अधिक होती है। (लगभग २५०सें० मीटर के)। पश्चिमी घाट को पार करते समय इसकी नमी कम हो जाती है क्योंकि दक्षिण के पठार की ओर उतरने पर यह गरम हो जाती है इसलिए सूखी हो जाने के कारण पठार के भीतरी भागों में वर्षा कम होती है क्योंकि यहाँ स्पष्ट वृष्टि छाया (Rain Shadow) का क्षेत्र बन जाता है। अस्तु, पश्चिमी समुद्र तट पर कोजीखोड में जहाँ २५० सें० मीटर वर्षा होती है और मंगलौर में ३३० सें० मीटर। बम्बई में जून से सितम्बर तक १७७ सें० मीटर वर्षा होती है और महाबलेश्वर में जुलाई के महीने में २५० सें० मीटर तथा मानसून के कुल ५ महीनों में ६५० सें० मीटर से भी अधिक वर्षा होती है। इसके विपरीत महाबलेश्वर से १०५ किलोमीटर दूर पूर्व में गोकाक में केवल ५५ सें० मी० ही वर्षा होती है। अधिक दक्षिण और पूर्व की ओर बढ़ने पर यह मात्रा और भी घट जाती है। धूलिया में ५५ सें० मीटर, बलारी में ४५ सें० मीटर और नागपुर में १०३ सें० मीटर। इसी प्रकार दक्षिण में इलायची की पहाड़ियों के वृष्टि छाया प्रदेश में स्थित तिरुनलवैली में वर्षा बहुत ही कम हो जाती है। जून से सितम्बर तक केवल ७ सें० मीटर ही वर्षा होती है।

बम्बई के उत्तर में इस मानसून का कुछ भाग नर्मदा और ताप्ती नदियों की घाटी में होता हुआ मध्य प्रदेश में कुछ वर्षा कर छोटा नागपुर में पहुँचता है। यहाँ

लगभग १५२ सें० मीटर के वर्षा हो जाती है। यहाँ से यह बंगाल की शाखा से मिल जाती है। अरब सागर की मानसून का एक भाग सिन्धु के डेल्टा और राजस्थान पर लांघता हुआ यहाँ बिना पानी की एक बूंद बरसाए सीधा हिमालय पर्वत से जा टकराता है और वहाँ धर्मशाला के स्थान के निकट अधिक वर्षा करता है। इसके द्वारा सिन्ध और पश्चिमी राजस्थान में २५ सें० मीटर से भी कम पानी बरसता है इसका कारण यह है कि (१) ये भाग प्रमुख मानसून हवाओं के मार्ग से दूर पड़ते हैं। (२) यह भाग अधिक गर्म और समतल है किन्तु इन हवाओं को रोकने वाला कोई पहाड़ नहीं है,तथा (३) फारस और बलूचिस्तान से आने वाली सूखी हवाएँ मानसूनी हवाओं से मिलकर उनकी नमी को कम कर देती हैं। केवल अरावली पर्वत पर,जो इस मैदान के एक कोने पर स्थित है, लगभग १२७ सें० मीटर वर्षा हो जाती है। (४) पूर्व, उत्तर तथा थार के मरुस्थल में उत्तर पूर्व में वह हवा पहुँचती है जो गंगा के मैदानों की अपनी यात्रा में सारी नमी छोड़ आती है और जब यह हवा पंजाब में उतरती है तो उतार के कारण और भी ठंढी हो जाती हैं। अतः थार मरुभूमि इस दूसरी मानसून शाखा से भी वर्षा प्राप्त नहीं कर पाती।

राजस्थान के पश्चिमी भागों में कभी-कभी वर्षा ऋतु में पानी ही नहीं बरसता और जब बरसता है तो पतली फुहारों के रूप में। कभी-कभी सहसा बिजली कड़क के साथ दोपहर के बाद थोड़े ही समय में ५ से ७ सें० मी० पानी बरस जाता है और छोटी नदियों में बाढ़ें उत्पन्न कर देता है। खम्भात की खाड़ी से उत्तर-पश्चिम की ओर चलने पर वर्षा की मात्रा निरन्तर कम होती जाती है। अहमदाबाद में ७६ सें० मीटर और भुज में ३८ सें० मीटर वर्षा ही होती है।

(ख) बंगाल की खाड़ी का मानसून (Bay of Bengal Branch)
दक्षिणी-पश्चिमी मानसून बंगाल की खाड़ी से चलकर ब्रह्मा की पहाड़ियों से जा टकराता है और इन पर्वतीय तथा तटीय मैदानों में अत्यन्त वेग से वर्षा करता है। अक्याब में ७६० सें० मीटर से भी अधिक वर्षा होती है जिसमें से ४०० सें० मीटर केवल जून से सितम्बर तक बरसता है। इस मानसून की एक शाखा गंगा के डेल्टा से होकर खासी की पहाड़ियों से टकराती है और उसे एक दम १,५०० मीटर की ऊंचाई तक उठना पड़ता है। अधिक ऊँची उठने के कारण इससे चेरापूँजी नामक स्थान पर वर्ष में १,०२८ सें० मीटर के लगभग वर्षा हो जाती है।[८] इसमें से ८२० सें० मीटर वर्षा जून से सितम्बर के महीनों में होती है। इस पहाड़ी श्रेणी को पार करने के बाद मानसून ब्रह्मपुत्र की घाटी और हिमालय की तराई की तरफ चलता है। लेकिन इन भागों में इसकी उठान अधिक न होने के कारण वर्षा कम होती है। यही कारण है कि चेरापूंजी से केवल ४० कि० मीटर दूर शिलांग में २१५ सें० मीटर के लगभग ही वर्षा होती है।

इस मानसून का कुछ भाग बंगाल में चलता है और पूर्वी हिमालय के प्रभाव में आने के कारण पर्वत की तराई में बहुत पानी बरसाता है। इस मानसून की प्रवाह-दिशा बहुधा हिमालय पर्वत की तरफ ही रहती है अतः हिमालय पर्वत से टक-

---

८. यहां एक वर्ष में तो २,२५० सें० मी० से भी ऊपर वर्षा हो चुकी है। यह वर्षा इतनी अधिक थी कि इसके द्वारा एक तीन मंजिल का मकान डुबोया जा सकता था। १४ जून सन् १८७६ को एक ही दिन में यहां १०२ सें० मी० वर्षा हुई थी।

राकर पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। चूँकि हिमालय पर्वत बहुत ऊँचे हैं इसलिये यह हवायें उसे पार नहीं कर सकतीं। अतः दक्षिणी ढालों पर बड़े वेग से वर्षा होती है और उत्तरी ढालें शुष्क रहती हैं। यही कारण है कि शिमला में १५२ सें० मी०, नैनीताल में २०३ सें० मी० और दार्जिलिंग में ३१० सें० मी० से भी अधिक वर्षा होती है परन्तु श्रीनगर में ६५ सें० मी० लेह और लासा में—जो इन पर्वतों के उत्तर में हैं—लगभग ५ सें० मी० के वर्षा होती है।

इस मानसून की दूसरी विशेष बात यह है कि ज्यों-ज्यों यह पश्चिम की ओर बढ़ती जाती है त्यों-त्यों सूखी होने के कारण वर्षा भी कम करती जाती है क्योंकि यह नमी वाले स्रोतों से दूर होती जाती है। अतः गंगा और सिन्धु के मैदान के पूर्वी भाग में पश्चिमी भाग की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। यही कारण है कि बंगाल में १५७ सें० मी०, उड़ीसा में १२२ सें० मी०, बिहार में ८६ सें० मी० और उत्तर प्रदेश में १०७ सें० मी० वर्षा होती है। पश्चिमी पंजाब में तो ३८ सें० मी० के लगभग ही वर्षा होती है। इस मानसून द्वारा कलकत्ता में १५७; पटना में १०१, इलाहाबाद में १०७, दिल्ली में ६५, हिस्सार में ४३ और जकोबाबाद में केवल ७ सें० मीटर वर्षा होती है।

चूँकि मानसून हवायें मुड़कर हिमालय पर्वत के साथ-साथ चलती हैं इसलिये जो स्थान हिमालय पर्वत के समीप स्थित हैं वहाँ उन स्थानों की अपेक्षा जो दक्षिण की ओर पर्वत से दूर स्थित हैं अधिक वर्षा होती है। यही कारण है कि अम्बाला और मेरठ में ८३, गोरखपुर में १२७, बरेली में ११०, नैनीताल में २०४, शिमला में १५३ और मंसूरी में २२३ सें० मी० के लगभग वर्षा होती है किन्तु वाराणसी में १४३, आगरा में ६८ और ग्वालियर में ५८ सें० मीटर से भी कम वर्षा होती है।

भारत में मानसून द्वारा होने वाली वर्षा का कुछ भाग पर्वतीय वर्षा के रूप में होता है तथा कुछ चक्रवातीय अथवा संवाहनीय वर्षा के रूप में। हिमालय और पश्चिमी घाट में सभी जगह (जहाँ मानसून हवाएँ पहाड़ों को पार करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं) हवाओं के ऊँचे उठने के कारण उनके ठंढी हो जाने से वर्षा हो जाती है। इस प्रकार की पर्वतीय वर्षा में पवनमुखी ढालों पर पवन-विमुखी ढालों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी तट पर स्थित मंगलौर में ३३०सें०मीटर वर्षा होती है जबकि बंगलौर में केवल ८६ सें० मीटर और मद्रास में पूर्वी तट पर केवल ३८ सें० मीटर वर्षा ही होती है।[९] इसी प्रकार जहाँ चेरापूंजी में १०२८ सें० मीटर से भी अधिक वर्षा होती है वहाँ ४० कि० मीटर दूर शिलांग में वर्षा का औसत केवल २१५ सें० मीटर ही होता है।

चक्रवातीय वर्षा अधिकतर चक्रवातों या तूफानों के कारण होती है। इनमें से कुछ चक्रवात स्थानीय तापक्रम के कारण उत्पन्न होते हैं और कुछ अन्य पड़ौसी देशों से उठ कर भारत की ओर बढ़ते हैं। चक्रवात अपने-अपने क्षेत्र में वर्षा को केन्द्रीभूत तथा घनीभूत करते हैं अतः भारत के किसी स्थान विशेष में जब अधिक या कम वर्षा होती है तो उसका कारण चक्रवातों की प्रचंडता होती है।

संवाहनीय वर्षा स्थानीय गर्मी के कारण होती है। इस गर्मी के कारण आठों

9. *W. G. Kendrew,* Climate of the Continents, 1941, p. 130, Ibid., p. 131.

पहर जलज बादल बनते जाते हैं। इस प्रकार की वर्षा प्रायः स्थानीय ही होती है। यह अधिकतर पतझड़ या बसंत ऋतु में होती है। गर्मी द्वारा हवा में संवाहनीय धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे वायु ऊपर उठ कर ठंढी हो जाती है और वर्षा कर देती हैं।

४. मानसून परिवर्तन का काल (Retreating South West Monsoon Season)

(क) वायु भार—सितम्बर के समाप्त होते-होते सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में पहुँच जाता है। इसके परिणामस्वरूप जो निम्न भार क्षेत्र उत्तर-पश्चिम में बना हुआ था वह समाप्त होने लगता है। अक्टूबर में यह निम्न भार क्षेत्र बंगाल की खाड़ी की तरफ बढ़ता जाता है अतः मानसून लौटने प्रारम्भ हो जाते हैं। पर मानसून उतनी तेजी से नहीं लौटते जितनी तेजी से वे आते हैं। वर्षा की गति पहले धीमी पड़ती है और सितम्बर के अन्त तक उत्तरी मैदानों में बंद हो जाती है। अब आर्द्र हवाओं के स्थान पर शुष्क हवाएँ आ जाती हैं। चक्रवाती परिस्थितियों का स्थान प्रति-चक्रवाती परिस्थितियाँ ले लेती है। दिन और रात का तापक्रमान्तर बढ़ने लगता है। मानसून की प्रगति प्रारम्भ होते समय उत्तर की ओर होती है किन्तु मध्य सितम्बर के बाद लौटते समय यह दक्षिण की ओर हो जाती है। सबसे पहले अरब-सागर की शाखा के मानसून पंजाब तथा राजस्थान के भागों से और बंगाल की खाड़ी के मानसून गंगा के ऊपरी डेल्टा से धीरे-धीरे पीछे हटने प्रारम्भ होते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है निम्न भार का क्षेत्र भी दक्षिण की ओर खिसकता रहता है। पंजाब से लगभग १५ सितम्बर को, उत्तर प्रदेश से १ अक्टूबर को और बंगाल से १५ अक्टूबर को मानसून लौटने लगता है। इस समय हवा की दिशा दक्षिण से बदल कर उत्तर-पूर्वी हो जाती है। इन्हीं हवाओं द्वारा मद्रास एवं पठार के कुछ आन्तरिक भागों और पूर्वी तट में सर्वाधिक वर्षा हो जाती है।

इस समय हेमन्त ऋतु का मौसम होता है। मानसून दिसम्बर के प्रारम्भ तक भारत में अनेक प्रभाव बताता रहता है क्योंकि मद्रास में सर्दियों के प्रारम्भ में जो वर्षा होती है वह इन्हीं कारणों से होती है। इसके बाद दिसम्बर में निम्न भार क्षेत्र दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य के साथ-साथ चला जाता है और उत्तरी भारत में भी पश्चिम से पंजाब एवं गंगा के मैदानों में चक्रवात आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

(ख) तापक्रम और आर्द्रता—ज्यों-ज्यों उत्तरी भारत से मानसून लौटने लगते हैं त्यों-त्यों उत्तरी पश्चिमी भागों में तापक्रम एक दम गिरते जाते हैं। अधिकतम तापक्रम उतने नहीं गिरते जितने कि न्यूनतम क्योंकि अक्टूबर और नवम्बर में अधिकतम औसत तापक्रम ३७° सें० ग्रेड के आसपास रहते हैं जबकि न्यूनतम तापक्रम इसी समय १० सें० ग्रेड या इससे भी कम हो जाते हैं। एक दम उत्तर में किसी-किसी रात्रि को तापक्रम ०° सें० ग्रेड से भी कम हो जाता है।

ज्यों-ज्यों मानसून पीछे खिसकते जाते हैं उत्तरी भारत में आर्द्रता कम होती जाती है। पर दक्षिणी पठार के पूर्वी भागों में अब भी आर्द्रता ७५% के आसपास रहती है क्योंकि इस समय बंगाल की खाड़ी में निम्न भार का केन्द्र बन जाता है। किसी-किसी दिन तो मद्रास के आस पास के प्रदेशों में (नवम्बर में) आर्द्रता ९०% तक पहुँच जाती है। परन्तु नवम्बर के अन्त में फिर से (जबकि पश्चिम से चक्रवात

जाती है। इसके द्वारा मेघना नदी के कछार में बसे लगभग १ लाख व्यक्ति आधे घंटे में ही मृत्यु के ग्रास बन गये। इसी प्रकार १९४२ में भी एक ऐसा भयंकर तूफान बंगाल के ऊपर होकर गुजरा था। "यह तूफान १५ अक्टूबर को प्रातः ७-८ बजे आरम्भ होकर १७ अक्टूबर की सुबह समाप्त हुआ। १६ तारीख को तीसरे पहर जलवायु तूफान के कारण खाड़ी से उठ कर एक भीषण ज्वार तरंग भूमि की ओर बढ़ी जिससे मिदनापुर के दक्षिणी भाग और चौबीस परगना को अपार हानि पहुँची। तूफान के साथ-साथ भारी वर्षा भी हुई। कहीं-कहीं तो २४ घन्टों में ३० सें०मी० तक पानी गिरा। इन जिलों की सभी नदियों में ज्वार तरंग, जल-वृष्टि और वायु वेग के कारण भयानक विनाशकारी बाढ़ें आई। इनके द्वारा मिदनापुर जिले में १० हजार व्यक्ति और २४ परगना में १ हजार व्यक्ति मर गये। पशुओं की क्षति इस संख्या से लगभग ७५% अधिक हुई।

"यह एक बड़ी मनोरंजक बात है कि भारत के किसी न किसी भाग में वर्ष के प्रत्येक महीने में काफी वर्षा हो जाती है। जनवरी-फरवरी में शीतकालीन चक्रवातों से उत्तरी भारत में वर्षा हो जाती है। मार्च में मेघ-गर्जन के साथ भीषण वायु बंगाल और असम में अधिकतर चलने लगती है और उससे जून तक (जबकि मानसून आरम्भ होता है) भारी वर्षा होती रहती है। फिर सामान्य मानसूनी वर्षा अक्टूबर तक होती रहती है और नवम्बर-दिसम्बर में मानसून के लौटते समय मद्रास एवं पूर्वी तट पर भारी वर्षा हो जाती है।"[10]

नीचे की लिखी तालिका में भारत की औसत मासिक वर्षा बताई गई है :—

महीना	मात्रा (सैंट्स में)	प्रतिशत
जनवरी	३,९४१	१
फरवरी	५,१५६	१.५
मार्च	५,८२०	१·८
अप्रेल	८,३८८	२·५
मई	१९,२७७	५·६
जून	५५,६५९	१६·३
जुलाई	८९,१३०	२६·२
अगस्त	७४,९८२	२२·४
सितम्बर	४२,२४४	१३·८
अक्टूबर	१८,६५०	५·५
नवम्बर	८,५७२	२·९
दिसम्बर	३,३३१	०·९

10. *W. G. Kendrew*, Op. Cit., p. 138.

कुछ स्थानों की औसत वार्षिक वर्षा

स्थान	इन्चों में	सैटीमीटर्स में
मंसूरी	८६·६०	२२२·५
दार्जिलिंग	१२६·४२	३२१·१
शिलांग	८४·६४	२१५·०
शिमला	६१·०४	१५५·०
चेरापूंजी	४२५·२३	१०८०·१
आगरा	२६·७४	६७·९
अलीगढ़	३०·८५	७८·४
नई दिल्ली	२६·२४	६६·६
इलाहाबाद	४१·८२	१०६·२
कानपुर	३५·९१	९१·२
पटना	४६·६९	११८·६
वाराणसी	४०·९७	१०४·१
कलकत्ता	६२·९८	१६०·०
जयपुर	२४·०२	६१·०
बीकानेर	११·४७	२९·१
अंजमेर	२०·७७	५२·८
जोधपुर	१४·२१	२६·१
कोटा	२९·५४	७५·०
अहमदाबाद	२९·२१	७४·२
नागपुर	४९·२४	१२५·१
हैदराबाद	२९·४२	७४·७
मैसूर	३१·१८	७९·२
भोपाल	५२·३१	१३२·९
इन्दौर	३४·७२	८८·२
उटकमंड	५४·८९	१३९·४
पूना	२६·४९	६७·३
बंगलौर	३४·०८	८६·८
मद्रास	४९·९२	१२६·८
त्रिवेन्द्रम	६६·७९	१६९·९
कटक	५९·९७	१५२·३

बंगलौर	१२६·५६	३२६·२
बम्बई	७१·२१	१८०·६
पुरी	५३·६६	१३६·३

नीचे की तालिका में विभिन्न उप-विभागों की वर्षा बताई गई है :—

वर्षा के खंड	वास्तविक (औसत वार्षिक वर्षा सेंटीमीटरों में)		साधारण
	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
१. खाड़ी के द्वीप	२९२·०	३२३·४	२८५·३
२. आसाम (मनीपुर, त्रिपुरा सहित)	१८७·४	२०४·७	२४२·१
३. उपहिमालय प्रदेश, प० बंगाल	२४६·७	२०८·४	२७९·७
४. गंगा के मैदान में प० बंगाल	१२७·५	१३६·४	१४६·२
५. उड़ीसा	१३८·७	१८०·१	१४७·३
६. बिहार का पठार	११४·६	१४५·५	१३५·८
७. बिहार के मैदान	९२·३	११६·५	१२७·०
८. पूर्वी उत्तर प्रदेश	१०७·१	११९·६	१०७·७
९. प० उत्तर प्रदेश	९७·५	१४१·२	१०६·१
१०. पंजाब (दिल्ली सहित)	८२·८	७४·०	६९·६
११. हिमाचल प्रदेश	१४३·७	१६२·२	—
१२. जम्मू काश्मीर	४१·२	२८·७	५३·३
१३. प० राजस्थान	२५·१	४२·५	३१·८
१४. पू० राजस्थान	६०·९	८४·०	६८·८
१५. प० मध्य प्रदेश	१०५·१	१४७·९	१०७·४
१६. पू० मध्य प्रदेश	१०९·७	१७४·६	१४०·१
१७. गुजरात प्रदेश	६०·२	१०१·६	८३·६
१८. सौराष्ट्र तथा कच्छ	५०·५	१०१·४	४९ ०
१९. कोंकन	२२८·३	२६०·३	२२०·२
२०. मध्य महाराष्ट्र	७८·५	८०·४	७०·८
२१. मराठवाड़ा	८०·१	१२३·५	७७·१
२२. विदर्भ	११३·७	१३२·०	१०६·१
२३. तटीय आंध्र प्रदेश	१४१·४	११६·६	१०१·४

15. (Source : Agricultural Situation in India, Aug., 1962., p. and Ibid, Aug. for 1963, p. 391)

अध्याय ११

भूतत्विक रचना

(GEOLOGICAL STRUCTURE)

भारत के भौगोलिक अध्ययन में उसके भूतत्व एवं संरचना का सम्यक ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि देश के विभिन्न भागों में पाई जाने वाली चट्टानों का स्वरूप जाने बिना उनकी उपयोगिता का पता लगाना असंभव सा होता है। कृषि का सम्बन्ध मिट्टी से होता है और मिट्टी का निर्माण उस देश में पाई जाने वाली चट्टानों से होता है। इन्हीं चट्टानों से देश के लिए विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ मिलते हैं जिनका देश के आर्थिक और औद्योगिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतः जब तक भारत की चट्टानों के स्वरूप और उनसे सम्बन्धित भूतत्व और संरचना का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक देश की आर्थिक क्षमता का ज्ञान भी अधूरा ही रह जाता है।

भारत के भूतत्व का इतिहास चार युगों में विभाजित किया गया है। इन्हीं चार युगों में देश के पर्वतों, मैदानों और उनसे सम्बन्धित भू-रचनाओं का निर्माण हुआ है। ये चार युग इस प्रकार है :—

(क) अति-प्राचीन युग अथवा कैम्ब्रियन युग के पूर्व का समय

(ख) पुराण युग अथवा कड्डप्पा और विन्ध्य युग का समय

(ग) द्रविड़ युग अथवा कैम्ब्रियन युग से प्रांगर युग तक का समय

(घ) आर्य युग अथवा हिमयुग से आरम्भ होने वाला समय।

इस तालिका में भारत की भूतात्विक राशियों को बताया गया है। इससे स्पष्ट होगा कि भारत के तीन प्रमुख भू-भागों में चट्टानों का क्रम भिन्न-भिन्न रूपों में चला था।

इस तालिका में भारत में विद्यमान भूतात्विक राशियों का साधारण अनुक्रम दिया गया है।। स्थान-स्थान पर शिला-विज्ञान और पहलू में बहुत कुछ भेद है अतः राशियों का पारस्परिक सम्बन्ध, मुख्यतः प्रायद्वीप में कठिन हो जाता है। भारत में कुछ ऐमी परिलक्षित असमानताएँ हैं जो अन्यत्र उतनी स्पष्ट नहीं हैं। आद्यकल्प के ऊपर, जिनमें धारवाड़-समूह भी सम्मिलित है, फासिल रहित कडप्पा और विन्ध्य उप-समूह हैं जो स्थूल रूप से अमेरिका के प्रपुराकल्प (Algonkian) के समरूप हैं। इन्हें डा० हालैंड ने **पुराण-समूह** (Purana System) का नाम दिया है। श्री हालैंड के अनुसार कैम्ब्रियन समुदाय के आधार से तलचर समुदाय के आधार तक की राशियाँ **द्राविड़ी समूह** (Dravidian Group) की हैं। ऊपरी कारबनीफरस के ऊपर के सम्पूर्ण स्तर **आर्य समूह** (Aryan Group) कहलाते हैं। इन दो समूहों को अलग करने वाली एक परिलक्षित और सार्वभौम असमानता है जो प्रायद्वीप तथा हिमालय पर्वत तथा बड़े मैदान में लक्षित है।

भारत की भूतात्विक राशियाँ

युग (Period)	काल (Era)	काल (Age)	हिमालय पर्वतीय क्षेत्र	उत्तर का मैदान	दक्षिणी पठार
१. अति प्राचीन युग	आद्यःकल्प (Archean)		सल्खाला, जुतोघ व चैल समुदाय; नाइस व शिस्त की आधारभूत चट्टानें	आसाम की नाइस एवं ग्रैनाइट चट्टानें, शिलांग सिरीज चट्टानें	बुन्देलखंडीय नीस चट्टानें, धारवाड़ व अरावली क्रम
२. पुराण युग (Purana Period)	प्रपुराकल्प (Algonkian)		मध्य हिमालय की शिमला स्लेट और देबबन क्रम; पूर्वी हिमालय का बक्सर क्रम; काश्मीर का डोगरा क्रम।	आसाम का मीजू क्रम	कडुप्पा, विन्ध्या क्रम; रीवाँ, कैमूर, सेमरी और कर्नूल क्रम; तथा अलोर व सेवाना ग्रैनाइट चट्टानें
३. द्राविड़ युग (Dravidian)	पुरा कल्प (Palaeozoic)	१. कैम्ब्रियन	काश्मीर की कैम्ब्रियन चट्टानें, मध्य हिमालय की हेमन्त चट्टानों का उप-समूह		विन्ध्या समूह (?)
		२. आर्डोविशियन	स्पीती तथा काश्मीर की आर्डोविशियन चट्टानें		
		३. सीलूरियन	काश्मीर तथा स्पीती की सील्यूरियन चट्टानें		
		४. डैनोवियन	काश्मीर व स्पीती का मुठक्रम जानसार की डैनोवियन चट्टानें		
		५. निम्न कारबोनीफरस	स्पीती की लिमाक सीरीज, काश्मीर का चूना प्रस्तर		
		६. मध्य कारबोनीफरस	काश्मीर की शेल और कारबोनीफरस चट्टानें तथा स्पीती का पो क्रम		
		७. ऊपरी कारबोनीफरस	हिमालय की गोंडवाना चट्टानें	आसाम का सुबरनसीरी क्रम	तलचर क्रम की चट्टानें
आर्य युग (Aryan)	मध्य जीव युग (Mesozoic)	१. परमियन	काश्मीर का जीवन-क्रम; स्पीती की शेल चट्टानें तथा मध्य हिमालय की शेल और शिमला का कोल-क्रम		रानीगंज व बाराकर का दामूदा-क्रम तथा उमरिया के जमाव
		२. ट्रायेसिक	हिमालय के ट्रायसिक		गोंडवाना क्रम के पंचेत व महादेव समुदाय
		३. जुरासिक	बनिहाल की जुरासिक, गढ़वाल की ताल और स्पीती के शेल क्रम		ऊपरी गोंडवाना क्रम की कोटा, जबलपुर, राजमहल, उमरिया समूह और कुछ जुरासिक की चट्टानें, कच्छ का जुरासिक द० पूर्वी तट की खटी चट्टानें; तिरुच्चिरापल्ली के लामेटा और बाग पात्र; आसाम क्रिटैशियस हिम्मतनगर बालू शिलायें; उमिया के सामुद्रिक जमाव
		४. क्रिटैशियस	बुर्जिल की ज्वालामुखी चट्टानें और चूना प्रस्तर, स्पीती की बालू शिलायें; उत्तरी हिमालय का सिकिम क्रम		

नवीन जीव कल्प (Caneozoic)	५. इओसीन	जम्मू के कोयला जमाव, भीतरी हिमालय की टर्शरी चट्टानें, बाहरी हिमालय की सबाथू और चरत क्रम	आसाम के बेरल समुदाय तथा जयन्तिया समूह	बीकानेर का लाकी क्रम; राजस्थान व सौराष्ट्र के चूना प्रस्तर
	६. ओलीगोसीन	हिमालय में प्रविष्ट ग्रैनाइट चट्टानें		कच्छ की नारी तथा सौराष्ट्र के द्वारिका क्रम
तृतीय कल्प (Tertiary)	७. मायोसीन	शिमला हिमालय की डागशाही तथा कसौली क्रम और शिवालिक क्रम	आसाम का तिपत क्रम व सुरमा क्रम	कच्छ का गज क्रम; पूर्वी तट की कड्डालोर बालू शिलायें; पुरी की मायोसीन चट्टानें
	८. प्लोयोसीन	हिमयुग के हिमनिक्षेप तथा काश्मीर के कारेवाँ	वांगर-कांप	नर्मदा व गोदावरी की पुरातन कांप तथा निचले भागों की लैटेराइट; पोरबन्दर के पत्थर तथा राजस्थान व कच्छ की बालू
चतुर्थ कल्प (Quarternary)	९. प्लीस्टोसीन	शिवालिक क्रम	आसाम का दिहींग क्रम	ऊँचे स्थानों की लैटेराइट
	१०. आधुनिक	नदी कृत निक्षेप	खादर की कांप	डेल्टाओं की कांप, कर्नूल की गुफाओं के जमाव, मरुभूमि जमाव

उष:कल्प समूह (Archean System)

उष:कल्प की चट्टानें पृथ्वी के धरातल पर सबसे पुरानी चट्टानें मानी जाती हैं। इन्हीं के ऊपर आगामी काल की अन्य चट्टानों और भूगर्भिक क्रियाओं का निर्माण हुआ है। विद्वानों का विचार है कि जब सबसे पहले पृथ्वी ठंढी हुई तो इन्हीं चट्टानों का निर्माण हुआ। ये बड़ी कठोर चट्टानें होती हैं। सम्भवतः ये उतनी ही पुरानी हैं जितना धरातल पर मानव का उद्‌भव। ये चट्टानें नीस, ग्रैनाइट और शिस्ट नामक चट्टानों और रवेदार चट्टानों के अंशों की बनी हुई हैं। पृथ्वी के गर्भ में अत्यधिक गर्मी और धरातल के दबाव के कारण इनमें कई क्षेत्रों में रवे पड़ गये हैं। जिन परि-स्थितियों में इन चट्टानों का निर्माण हुआ तथा जिन यांत्रिक अवस्थाओं का इन पर प्रभाव पड़ा उन सबके कारण इन चट्टानों के गुणों में बड़ी विषमता पाई जाती है।
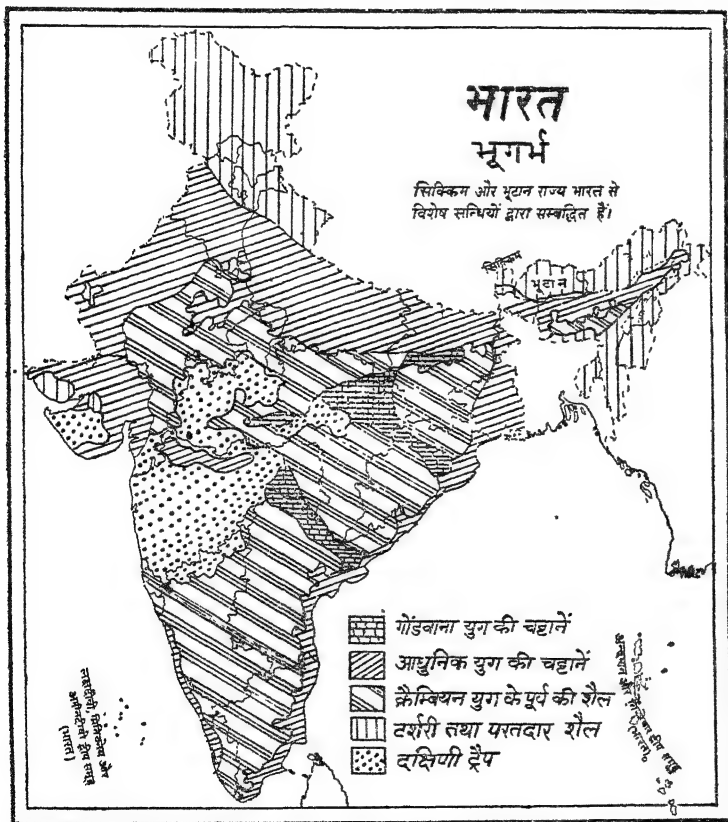
चित्र १०६. विभिन्न युग की चट्टानों का वितरण

इस प्रकार की चट्टानों के प्रायसमूह द्वीपीय भारत के लगभग १८७,५०० हजार वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैले हैं। इनका विस्तार मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर का पठार और राजस्थान में हैं। उत्तर-पश्चिम में ये अरावली पर्वत के

सहारे-सहारे फैली हैं। संभवतः इन्हीं का विस्तार पश्चिम में बुन्देलखंड तक है। मुख्य हिमालय की समस्त लम्बाई में उसके गर्भ भागों में इन्हीं चट्टानों का आधिक्य है।

इस समूह को तीन भागों में वितरित किया जा सकता है :—

(क) **बंगाल नीस**—जिसका विस्तार बंगाल, बिहार, उड़ीसा और कर्नाटक प्रदेश में है।

(ख) **बुन्देलखण्ड नीस**—जिसका विस्तार प्रायद्वीप के उत्तरी खंड में बुन्देलखंड जिले में मिलता है।

(ग) **नीलगिरी नीस**—जिसका विस्तार नीलगिरी की पहाड़ियों में है। इसे चरकोनाइट सीरीज भी कहते हैं।

धारवाड़ समूह—भारत में आद्य कल्प (Archean) की बनी हुई धारवाड़ समूह की चट्टानें (Dharwar Rocks) मानी जाती हैं। ये चट्टानें सॅकड़ी अभिनतियों में उषःकल्प समूह की नीस के सहारे-सहारे पाई जाती हैं। ये अत्यन्त ही रूपांतरित और स्तर-भ्रष्ट हुई हैं। इनमें अधिकांशतः अनुस्तरीय (Foliated) शिलाऐं शिस्ट, स्लेट, हार्नब्लैंड, क्वाटर्ज, रवेदार चूने के पत्थर, संगमरमर आदि —पाई जाती हैं। जबलपुर के निकट ३$\frac{1}{4}$ कि०मी०तक संगमरमर की चट्टानें नर्मदा की घाटी में पाई जाती हैं। इनका उपयोग उत्तम प्रकार के भवन-निर्माण कार्य में होता है। **धारवाड़ की चट्टानों में भारत का सर्व-श्रेष्ठ लोहा, सोना, मैंगनीज, हीरा आदि खनिज पाये जाते हैं।** इन्हीं चट्टानों में **फ्लूराइट, ताँबा, क्रोमाइट, इलमैनाइट, सीसा, सुरमा, वूलफ्राम, अभ्रक, कोबाल्ट, संखिया, एस्बस्टस, कोरंडम, घीया पत्थर, गार्नेट, और टूर्नलीन** भी मिलते हैं। इस प्रकार की चट्टानों का जन्म मैसूर के धारवाड़ जिले में हुआ है। इस समय इस प्रकार की चट्टानें दक्षिणी भारत में कुमारी अन्तरीप से लेकर हैदराबाद व पूर्वी घाटों से होती हुई उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान तक फैली हैं। ये आसाम तथा बाहरी-प्रायद्वीप (Extra-Peninsula) के कई भागों में भी पाई जाती हैं— जैसे लद्दाख, जांस्कर श्रेणी, कुमायूँ, गढ़वाल हिमालय, दार्जिलिंग प्रदेश आदि में। (ख) दक्षिणी भारत में धारवाड़ चट्टानें बलारी व मैसूर के अधिकांश भागों में (जिसका विस्तार नीलगिरी, मदुराई होते हुए श्री लंका तक है); (ग) छोटा नागपुर जबलपुर और नागपुर के अतिरिक्त रीवाँ व बिहार में हजारीबाग में भी पाई जाती हैं। इन सब में कहीं भी शिलाभूत अवशेष (Fossils) नहीं मिलते। मैसूर में ये चट्टानें लम्बे संकड़े मोड़ों के रूप में मिलती हैं। इनमें क्वाटर्ज शिलाओं की अधिकता होने से मैसूर में कोलार और धारवाड़ की खानों से सोना प्राप्त किया जाता है।

इस समूह की चट्टानें अरावली श्रेणी में भी पाई जाती हैं। इनकी रचना विश्व की अत्यन्त प्राचीन अभिनतियों में हुई है। ये श्रेणियाँ १२०० से १५०० मीटर की ऊँचाई में लगभग ६०० किलोमीटर की लम्बाई में भारतीय प्रायद्वीप का प्रमुख अंग बनाती हैं। इनका निर्माण धारवाड़ काल के अन्तिम भाग में हुआ था। फिर क्षयीकरण क्रियाओं द्वारा इनका अपक्षरण हुआ और फिर कैम्ब्रियन युग में ये पुनः ऊँची उठीं। अतः ये पर्वत मालायें विश्व की प्राचीनतम श्रेणियाँ मानी जाती हैं।

धारवाड़ समूह की शिलाओं के निर्माण के पश्चात् बहुत समय तक कोई तल घटीयकरण न होकर तल-ध्वंस क्रिया चलती रही। इसके प्रभाव से तल में भारी

अन्तर आने पर समुद्र का अतिक्रामथ कुछ क्षेत्रों में हुआ विषमक्रमीय स्तर बना सकता था। इस घटना को कडुपा समूह के स्तर अपने प्रथम स्तर को विषमक्रमीय रूप में दिखा कर प्रकट करते है। कडुपा के इस घटना के दुहराने पर विन्ध्य समूह दूसरी विषमक्रमीय तह बना कर अपना निर्माण करता है।

कडुपा समूह (Cuddapah System)—इस समूह की चट्टानों का नामकरण आंध्र के कडुपा जिले के नाम पर हुआ है। इस समूह की चट्टानें आंध्र के कडुपा जिले में एक विस्तृत क्षेत्र के अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में स्थल से घिरे समूह में निर्मित पाई जाती हैं। ६,०९६ मीटर से भी अधिक ऊँची हैं किन्तु इनमें भी शिलाभूत अवशेष प्राप्त नहीं होते। पेन्नार नदी की पापाघ्नी नदी की घाटी में इसकी खुली चट्टानों का स्तर दिखाई पड़ता है जिसमें पतले बालू का पत्थर, फिर शेल और स्लेट की तहें मिलती हैं। बीच-बीच में चूने का पत्थर भी दिखाई देता है। जहाँ ज्वालामुखी शिला उसमें घुस कर भीत्ति के रूप में घुसी मिलती है। वहाँ चूने का पत्थर इसके ताप से रूपान्तरित होकर संगमरमर के रूप में मिलता है।

मद्रास के सीड़ेड जिले, गोदावरी और कृष्णा की घाटी, मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़, रीवाँ, बिजावर, ग्वालियर आदि और महाराष्ट्र में कालड़गी और मैसूर के बेलगांव के बीच के प्रदेश में इस समूह की चट्टानों का प्रसार मिलता है। ये चट्टानें लगभग ३५,००० वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैली हैं। राजस्थान में ये शिलायें अजमेर तथा पश्चिमी मेवाड़, अलवर, अजयगढ़ और एरिनपुरा में मिलती हैं। इन चट्टानों से कुछ उपयोगी खनिज मिलते है—जैसे **स्लेट, बालू पत्थर, पट्टीदार जास्पर, सीसा-धातु, बैराइट, एल्बस्टस और चूने का पत्थर** आदि।

विन्ध्य समूह (Vindhyan System)—विन्ध्य समूह की शिलायें कडुपा शिलाओं के बाद बनी है। इन शिलाओं का नाम विन्ध्याचल के नाम पर पड़ा है। ये शिलायें पूर्व और पश्चिम की ओर बिहार के सहस्राराम नामक स्थान से लेकर अरावली पर्वत के छोर पर स्थित चित्तौड़गढ़ तक फैली हैं। इनकी मोटाई ४,२६७ मीटर तक है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग १००,००० वर्ग कि० मी० है। इसके समस्त खंड के स्तरों के क्रम विभाग किये गये हैं और स्थान के हिसाब से उनके नाम भी दिए गए हैं। इन स्तरों की विशेषताऐं यह हैं कि इनमें किसी भी प्रकार के स्तर-क्षोभ, रूपान्तर स्तर-भ्रष्टता और मोड़ आदि नहीं मिलते। केवल पश्चिमी भाग की ओर अरावली के पास किसी कारण कुछ मोड़ और स्तर-भ्रष्टता दिखाई देती है। धरती का तल उठ कर विन्ध्य रूप में खड़ी होने वाली घटना दक्षिणी भारत के स्तर-क्षोभ की अन्तिम प्रधान घटना थी।

विन्ध्य समूह के निम्न खंड का खुला रूप करनूल, सोन की घाटी, छत्तीसगढ़, भीमानदी की घाटी में गुलबर्गा और बीजापुर जिलों में पाया जाता है। इसमें **चूने का पत्थर** और **शेल** पाया जाता है। अनुमानतः यह खंड समुद्र के गहरे पानी में बना है। किन्तु इस समूह का उर्ध्व खंड (जो कैमूर, रीवाँ, पन्ना, भंडेर आदि समुदायों के नाम से ज्ञात है) छिछले समुद्र में बना अनुमान किया जाता है क्योंकि इनकी चट्टानों के स्तरों पर लहरों के हलकारों के चिन्ह बने मिलते है। **परिव्यक्त शिला** (Out-Crop) रूप में हिमालय में भी नैनीताल, शिमला आदि के पास विन्ध्य समूह के नमूने पाये जाते है जो शेल और चूने के पत्थर आदि रूपों से अपनी समानता प्रकट करते है। हिमालय की मुख्य पर्वत श्रेणी में भारत की ओर के ढाल में कहीं भी शिला-

भूत अवशेष नहीं मिलते । लघु हिमालय श्रेणी में भी अवशेषों का प्रभाव है । शिवालिक श्रेणी स्थल से घिरे समुद्र या झील में निर्मित ज्ञात होती है जो प्रथम जीव कल्प (Paleozoic) के तो नहीं किन्तु द्वितीय जीव कल्प (Mesozoic) या बाद की सृष्टि के कुछ अवशेष प्रकट करती हैं । विंध्याचल भी लहरों के चिन्ह के अतिरिक्त बहुत संदिग्ध रूप के कुछ क्षुद्र जन्तुओं या वनस्पतियों के असंतोषजनक शिलाभूत दिखा पाता है ।
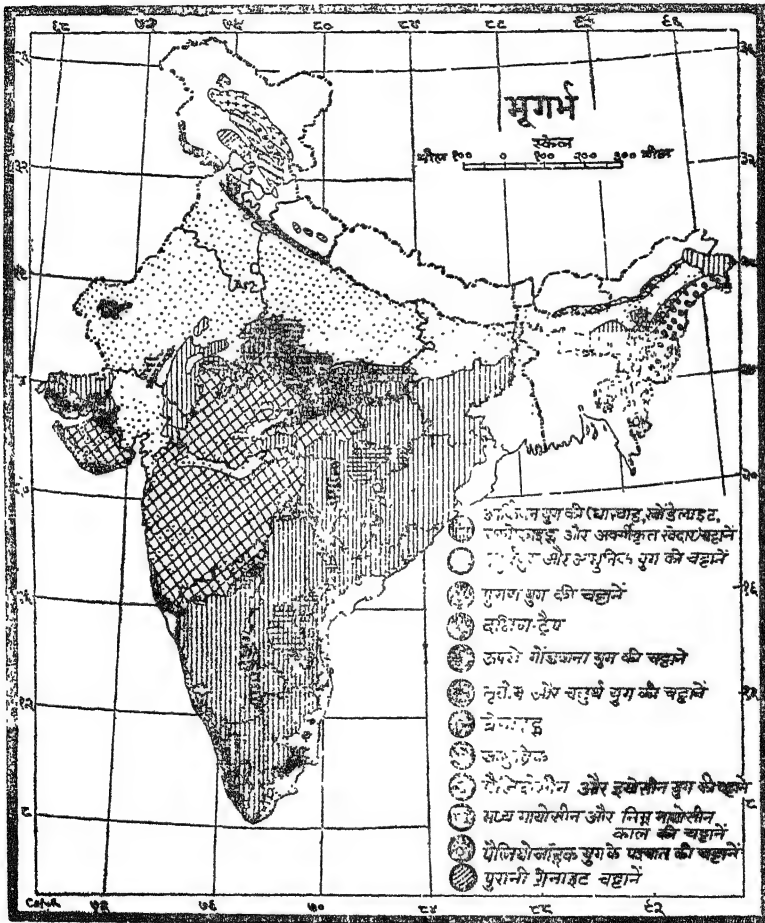
चित्र १०७. भारत का भूतत्व

विंध्य-चट्टानों के समूह में शताब्दियों से हीरे निकाले जाते हैं । कैमूर, रीवाँ, भंडेर समुदायों के कांग्लोमरेट के पात्रों में तथा बंगनपल्ली की ग्रिट में हीरे प्राप्त होते हैं । गोलकुण्डा पुराने जमाने में हीरों का प्रसिद्ध बाजार था । सोन की घाटी, जबलपुर और भीमा की घाटी में प्राप्त चूना शिलाओं से चूना और सीमेंट प्राप्त किया

जाता है। मकान बनाने तथा सजावट के लिए उत्तम श्रेणी के पत्थर और संगमरमर भी यहाँ मिलते हैं। **चीनी मिट्टी, अग्निजनित मिट्टी** और **गेरू** (Ochres) भी मिलती है। बालू शिलाओं का भी इनमें आधिक्य है। वर्तमान व भूतकाल की कई इमारतों जैसे—आगरा, दिल्ली, लाहौर और जोधपुर के गढ़ और महल, फतहपुरसीकरी का लगभग पूरा भाग और सारनाथ, भार्हुत और साँची के बौद्ध स्तूपों में विंध्य की बालू शिलाओं का ही उपयोग हुआ है।

प्रथम जीव कल्प (Palaeozoic)

उमरिया के पास एक छोटे प्रदेश के सिवाय (जो निचले परमियन काल का है) प्रथम जीव-कल्प काल की समुद्री शिलाभूत अवशेष प्रायद्वीप में कहीं नहीं पाई जाती। ऐसी शिलायें बाहरी प्रायद्वीप में भली भाँति विकसित हुई हैं। कूमायूँ की उत्तरी सीमा पर स्थित घाटी की शिलायें प्रथम जीव-कल्प का दिग्दर्शन कराती हैं। इस क्षेत्र को छोड़ कर सारा देश कदाचित उस समय समुद्र के क्षेत्र से बाहर ही था। दक्षिणी भारत के पूर्वी तट को द्वितीय जीव-कल्प आरम्भ होने से लेकर आधुनिक कल्प तक समुद्री तलछटीय स्तर बना कर शिलाभूत अवशेष प्रस्तुत करने की साधारण एकांकी घटना को छोड़ कर, भारत के शेष भूगर्भिक इतिहास में कहीं बीच के काल में पश्चिम की ओर कुछ काल के लिए समुद्र का प्रकोप उत्तर की ओर से होकर सौराष्ट्र, कच्छ अथवा पश्चिमी राजस्थान की ओर फैलाव होने और फिर प्रतिगर्भित होकर अपना चिन्ह कुछ स्तर निर्माण रूप में छोड़ जाने के अतिरिक्त स्थल खंड के अतिरिक्त कुछ स्तर- भ्रष्टता रूप में नदियों की घाटियाँ बनी मिल जाती हैं जिनमें दामोदर, सोन, महानदी और गोदावरी का नाम लिया जा सकता है। दो स्तर भ्रष्टता के बीच में स्खलित भूमियों में बनी दरार घाटियाँ नर्मदा और ताप्ती घाटियों के रूप में मिलती हैं। इन स्तर भ्रष्टताओं और दरार घाटियों के बनने का समय प्रथम जीव युग का अंतिम भाग माना जाता है। इन घाटियों को उत्पन्न करने वाला प्राकृतिक प्रकोप उत्तर में कराकोरम रूप में महान् पर्वतमाला खड़ी करने वाला स्तर वह हलचल है जिसे हर्सीनियन हड़कम्प कहा जाता है। कोयले और लोहे की प्रसिद्ध खानें और विन्ध्य समूह के निकटवर्ती दक्षिणी पठार की उत्तरी भाग की नदियों की घाटियों के निर्माण में सहायक यह हलचल प्रसिद्ध है। पृथ्वी के सब भाग इस हलचल से प्रभावित हुए और इसके कारण भूमि व समुद्र का पुर्नवितरण हुआ। वह हलचल, उस समय द्रोणी (Geosyncline) के (जहाँ अब हिमालय प्रदेश स्थित है) फैलाव का भी जिम्मेदार था। यह नया समुद्र पश्चिमी भूमध्य सागर के क्षेत्रों से चीन तक फैला था। यह **टैथिस महासागर** कहलाता था। कदाचित दक्षिण की ओर के भूखंड की वज्र कठोरता ने इस हलचल का सामना किया और क्रांतिकारी भारी परिवर्तन का अवसर न देकर उन नदियों की घाटियों के स्थान पर कुछ स्तर-भ्रष्टता होने दी।

इस समय दैवयुग से जलवायु में एक घोर परिवर्तन ने एक भीषण तुषार युग उपस्थित किया। कदाचित अरावली की चोटियाँ आज के हिमालय का रूप धारण किये हुये उत्तर-दक्षिण में फैली थीं। शीत के भीषण प्रकोप ने भयानक हिम को जन्म दिया जो अरावली से निकल कर चारों ओर दूर तक फैलने लगी। इन हिम खंडों की रगड़ से कठोर पाषाण भी ध्वंसित हो गये। घाटियाँ चौरस तल वाली हो गईं। बड़े-बड़े खंड शिलाओं से अलग-अलग किए जाकर हिम नदियों के भारी दबाब और प्रभाव से नष्ट हो गये। इनके प्रभाव से बने घिसे हुए पथरीले ढोंके अपने निम्न तल

में घसीटे जाने के कारण रेखाँकित चित्र बनाये अब भी नर्मदा नदी की घाटी में पाये जाते हैं।

गोंडवाना समूह (Gondwana System)—हिम नदियों के कारण पाषाणों का चूर्ण होकर घाटियों में उपजाऊ खण्ड बन गए। उनमें जल की राशि एकत्रित होकर आर्द्रता और दलदलीय प्रभाव दिखाने और छिछली झीलें बना सकने में समर्थ होने लगी। इनमें प्राचीन काल के वृक्ष आदि पैदा हुए और कालान्तर में उनके गिर जाने से निचले उथले जल में दबने लगे। वनस्पति का यही विनिष्ट रूप हमें कोयले के रूप में मिलता है। इस प्रकार की कोयले की तहों का निर्माण भारत की प्राचीन जाति गोंडों के प्रदेश से मध्य प्रदेश में आरम्भ हुआ। इसी कारण इन्हें गोंडवाना समूह की चट्टानें कहते हैं। इन चट्टानों के समूह इन भागों में मिलते हैं: (क) पेन गंगा और गोदावरी के निचले भागों में; (ख) महानदी और ब्राह्मणी नदियों के बीच तलचर से नर्मदा और सोन नदियों के ऊपरी भागों तक; तथा (ग) दामोदर घाटी प्रदेश में। इन चट्टानों के भारत में ८ मुख्य कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं: दामोदर घाटी, बाराकर घाटी, महानदी घाटी, गोदावरी घाटी, राजमहल पहाड़ियाँ, उड़ीसा में तलचर, मध्य प्रदेश (जबलपुर), रीवाँ, परसोदा, महादेव पहाड़ियाँ, और सतपुड़ा श्रेणी। इनमें भारत का लगभग ९८·५% कोयला मिलता है।

गोंडवाना समूह की शिलाओं में बालू-पत्थर की शिलायें. अग्निजित मिट्टी, लोहा, कोयला आदि खनिज अधिक मात्रा में पाया जाता है।

प्रथम-जीव युग दो छोटे-छोटे युगों में बाँटा गया है—प्राचीन पुराजन्तुक और नवीन पुराजन्तुक युग।

प्राचीन पुराजन्तुक युग में कैम्ब्रियन काल की चट्टानों में प्रथम बार जीवों के अवशेष मिलते है—जो बहुत ही निम्न श्रेणी के बिना रीढ़ की हड्डी वाले हैं। इस काल में काश्मीर की कैम्ब्रियन चट्टानें और स्पीती की नील की हेमन्त चट्टानें बनीं। इनमें मिट्टी, स्लेट, चूना शिलायें, स्फटिकात्मक शिलायें, नील मिट्टी आदि मिलती है।

आर्डोविशियन काल की चट्टानों में भी बिना रीढ़ वाले जीवों के अवशेष मिलते हैं किन्तु ये पूर्व काल के जीवों की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। इस काल में काश्मीर और स्पीती की आरडोविशियन चट्टानों का निर्माण हुआ जिनमें ग्रिट और चूना शिलाओं से युक्त बालू-शिलायें पाई जाती हैं।

सिल्यूरियन काल में ऐसे जीवों के अवशेष मिलते हैं जिनमें रीढ़ की हड्डी और दांत एवं आँखों का पूर्णतः विकास हो चुका था। इस काल में स्पीती और काश्मीर में लिड़ार घाटी में सिल्यूरियन उप-समूह की चट्टानों का निर्माण हुआ।

नवीन पुराजन्तुक युग में **डेवोनियन काल** की चट्टानें स्पीती और काश्मीर में पाई जाती हैं। ये समानता से फैली हैं और ये कठोर व सफेद स्फटिकात्मक शिलायें है। ये शिलायें कुमायू में भी मिलती हैं।

कार्बोनिफरस युग की शिलायें स्पीती में लीपक और पो समुदायों में तथा काश्मीर में मिलती हैं। इनमें चूना, शिलाओं, शेल आदि का आधिक्य है जिनमें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों आदि के अवशेष मिलते हैं।

परमियन काल में स्पीती में पो समुदाय के बाद इस प्रकार के जमाव मिलते हैं। इन जमावों का आरम्भ कांग्लोमरेट से हुआ है। काश्मीर में इस काल की

चट्टानों का अच्छा विकास पीर पंजाल में हुआ है। ये स्फटिक, ग्रेनाइट आदि शिलाओं के उपखंडों से युक्त हैं। शिमला-गढ़वाल में ये शिलाखंड चूना शिलाओं से बने हैं।

द्वितीय जीव-कल्प (Mesozoic)

द्वितीय जीव कल्प को तीन भागों में बाँटा गया है :—(१) ट्रियासिक काल, (२) जूरैसिक काल, और (३) क्रिटैसियस काल।

ट्रियासिक काल की शिलायें उत्तरी हिमालय प्रदेश के स्पीती, कुमायूं के बॉबनाग, और पालषाल पहाड़ियों, पैनखंडा तथा नैपाल की सीमा के पास ब्यास में विशेष रूप से विकसित हुई हैं। यहाँ की शिलायें चूना शिलायें हैं जिनमें शेल अन्तर्विष्ट हैं। इस काल की चट्टानों में जीवों के अवशेष बहुत कम प्राप्त होते हैं।

जूरैसिक उप-समूह का विकास हिमालय के तिब्बत प्रदेश और काश्मीर में स्पीती, प्रायद्वीप के कच्छ, राजस्थान और पूर्वी तट के कुछ भागों में हुआ है। स्पीती में शेल चट्टानें अधिक मिलती हैं जो भूरे या काले रंग की होती है और आसानी से चूर-चूर हो जाती हैं। इनमें शिलाभूत अवशेष पाये जाते है। ये हजारा व काश्मीर से नैपाल तक फैली हैं। **कच्छ** में ये शिलायें तीन भागों में पाई जाती हैं। उत्तर में कच्छ के रन के पचटम, करींर, बेला और छोरट द्वीपों के बीच में; मध्य में लखपत के निकट और दक्षिण में कतरोल पहाड़ी और भुज के दक्षिण से होकर है। इनमें चूना-शिलायें, बालू शिलायें और शेल आदि मुख्य चट्टानें हैं। **राजस्थान** में जूरैसिक शिलायें बीकानेर ,जैसलमेर आदि जिलों में पाई जाती हैं। इनसे भवन-निर्माण के लिए उत्तम प्रकार की चूना शिलायें मिलती है। पूर्वी तट पर गन्तूर जिले में ओंगोल के निकट ये शिलायें पाई जाती हैं।

क्रिटैसियस काल की चट्टानों का श्रेष्ठ रूप भारत में विस्तृत रूप से देखने को मिलता है। हिमालय में एक विस्तृत प्रदेश इस उप-समूह के द्वारा आवृत है। इसमें भू-द्रोणीय पहलू (Geosynclinal facies) दृष्टिगोचर होते हैं। प्रायद्वीप के कुछ प्रदेशों के समुद्री अतिक्रमण ने नर्मदा घाटी, आसाम और मद्रास के तिरूच्चिरापल्ली—पांडिचेरी प्रदेश में इस काल के स्तरों को बिछाया है। इनमें से नर्मदा-प्रदेश भूमध्य-सागरीय प्रदेश का साम्य दिखलाता है। अन्य दोनों स्तर हिन्द-प्रशान्त महासागरीय प्रदेश की राशियों से सम्बन्धित हैं। यहाँ सागर संगम सम्बन्धी और नदी सम्बन्धी जमाव भी हैं। ये या तो दकन ट्रैप के लावा के बहावों के नीचे फैले हैं या उनमें अन्तर्विष्ट हैं। इस काल का अन्त तीव्र आग्नेय क्रियाशीलता का एक काल था। बड़े परिमाण के लावा के बहावों ने प्रायद्वीप के एक विस्तृत प्रदेश को आवृत किया था। ये बहाव शायद उस स्थान के पश्चिम तक भी फैले थे जहाँ अब बम्बई का तट है।

बाहरी प्रायद्वीप के प्रदेशों में निचले और ऊपरी क्रिटैसियस समुदायों के बीच साधारणतया एक विस्तृत खला है। यह खला उस काल के एक समुद्री प्रतिगमन (Marine Regression) को सूचित करती है। लेकिन प्रायद्वीपीय प्रदेशों में लगभग उसी काल में एक पूर्णांकित समुद्री अतिक्रमण (Marine Transgression) दृष्टिगोचर होता है।

स्पीती प्रदेश में क्रिटैसियस शिलायें गऊमल, चिकिम तथा अन्य स्थानों में; कुमायूं में जौहर तथा दार्जिलिंग के उत्तर में कम्पाजोंग के निकट दिखाई देती हैं।

नर्मदी घाटी के बाघ पात्र (Bagh beds) में तथा सौराष्ट्र के बाधवन और मध्य-प्रदेश के ग्वालियर में भी ये शिलायें दृष्टिगोचर होती हैं। आसाम में शिलाग पठार में समुद्री क्रिटैसियस शिलायें पाई जाती हैं। ये बालू शिलाओं से बनी हैं।

दकन ट्रैप (Deccan Trap)—प्रायद्वीप भारत के एक विस्तृत प्रदेश को आवृत करते हैं। इनका निर्माण काल ऊपरी क्रिटैसियस से इयोसीन काल तक माना जाता है। मध्य प्रदेश और नर्मदा घाटी के कुछ भागों में दकन ट्रैप के नीचे चूना-शिलाओं का एक समूह फैला है। इनके साथ बालूशिलायें और मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं। ये शिलायें लामेटापात्र (Lameta-beds) कहलाती हैं। जबलपुर के निकट लामेटा घाट में ये अच्छी तरह प्रदर्शित हैं। इनकी मोटाई ६ से ३० मीटर तक है। साधारणतः चूना शिलायें सिलिकामय और ग्रिटमय हैं। इनमें दानवसरट, विभिन्न प्रकार की मछलियों आदि के अवशेष पाये जाते हैं। इन पात्रों का जन्म सागर से हुआ है।

दकन ट्रैप बैसाल्टमय लावा के बहाव हैं। पश्चिमी तथा मध्य प्रदेश में इनका विस्तार ५ लाख वर्ग कि० मी० के लगभग है। बैसाल्टमय लावा प्रायः ट्रैप कहलाते हैं। इसका कारण यह है कि इन बहावों से सीढ़ी जैसी भू-आकृति उत्पन्न होती है। पठार के जैसे आकार को निर्मित करने की उनकी प्रवृत्ति के कारण वे **पठार बैसाल्ट** कह-लाते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये बहाव तीव्र अति-ताप के साथ भूपपड़ी की कई दरारों (Fissures) से बड़े विस्फोट के साथ बाहर निकले। इस गर्मी ने लावा को एक विस्तृत प्रदेश में क्षैतिज चादरों के रूप में फैलने में समर्थ बनाया।

दकन ट्रैप महाराष्ट्र 'सौराष्ट्र और मध्य प्रदेश में एक विस्तृत क्षेत्र में फैले हैं। बिहार, मद्रास और कच्छ में भी इनके कुछ भाग हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्तमान काल के बम्बई तट के पश्चिम में कुछ दूर तक दकन ट्रैप फैले थे किन्तु यह भाग विभंगत हो गया और अब समुद्र में डूबा हुआ है। पश्चिमी तट के स्थल-निधाय का सीधापन और यहाँ के ट्रैप की मोटाई (२,१३४ मीटर) दोनों ही इस मत का पोषण करते हैं।

दकन ट्रैप तीन भागों में बाँटे गये हैं:—

(१) **ऊपरी ट्रैप** (Upper Traps)—४५७ मीटर तक मोटे हैं। ये बम्बई में पाये जाते हैं। यह ज्वालामुखी राख की अनगिनत तहों और मध्य-ट्रैपीय पात्रों से मुक्त हैं।

(२) **मध्य ट्रैप** (Middle Traps)—१,२१६ मीटर तक मोटे हैं। मध्य प्रदेश में ऊपरी भाग में अनगिनत राख के पात्र (Ash-beds) लेकिन मध्य ट्रैपीय कम हैं।

(३) **निचले ट्रैप** (Lower Traps)—मध्य प्रदेश तथा पूर्व में १५२ मीटर तक मोटे हैं। कई मध्य ट्रैपीय पात्र हैं लेकिन राख के पात्र कम हैं।

दकन ट्रैप के खनिजात्मक लक्षणों में आश्चर्य करने लायक एकरूपता है। ये डोलेरैट और बैसाल्ट की प्रकृति के हैं। इनका रंग गाढ़ा भूरा, गाढ़ा हरा-मिला भूरा आदि है। ट्रैप के शिला-चूर्णन से गहरे काले रंग की मिट्टी का जन्म हुआ है जिसे कपास की काली मिट्टी (Regur) कहते हैं। इसका गुण यह है कि गीली होने

पर वह फूल जाती है और अनगिनत बड़े दरारों के साथ सूख जाती है । ट्रैप से लैटे-राइट नामक मिट्टी भी (मानसूनी मौसम में) बनती है । इसमें अल्यूमीना, लोहा और मैंगनीज के आक्साइड समाहृत (Cocentrated) होते हैं ।

गोदावरी, छिंदवाड़ा, नागपुर और जबलपुर जिलों में नदी और तालाबों के अवसादीय पात्र भी मिलते हैं । इनकी मोटाई ·३ से ·६ मीटर तक होती है ।

दकन ट्रैप भवन निर्माण और सड़क में लगाने के लिए बहुत अच्छे पत्थर प्रदान करते हैं । इस ट्रैप में मणिभ, अगेट तथा सिलिका के अन्य रूपों का उपयोग घटिया रत्नों के रूप में होता है । राजपीपला, कैम्बे और रत्नागिरि में इनको काट कर मणियों और आभूषण की वस्तुयें वनाई जाती हैं । बम्वई और मध्य प्रदेश के ट्रैप में वाक्साइट के बड़े जमाव पाये जाते हैं ।

तृतीय जीव-कल्प (Cainozoic)

तृतीय जीव-कल्प को दो भागों में बाँटा गया है । प्रथम अंश अर्थात् तृतीयक (Tertiary) युग के पूर्वार्द्ध को इयोसीन और ओलीगोसीन नामक दो भागों में; तथा द्वितीय अंश अर्थात् उत्तरार्द्ध तृतीयक को मायोसीन और प्लायोसीन नामक दो भागों में बाँटा गया है ।

तृतीय जीव-कल्प में गोंडवाना भूमि का वर्तमान के महाद्वीपों में विभाजन हो गया । अंशतः भूखंडों के प्रवाहित होने से तथा अंशतः विभंग के फलस्वरूप समुद्र में भू-पपड़ी के कुछ भागों के डूब जाने से यह विभाजन हुआ ।

उसी समय टैथिस सागर की द्रोणी वड़े पर्वतों को निर्माण करने वाली गतियों द्वारा भंजित हुई । उस समय जिन पर्वतों का निर्माण हुआ उनमें हिमालय, इरानी पहाड़, काकेशस, कार्पेथियन, आल्पस और पिरेनीज हैं । हिमालय के निर्माण में चार या पाँच उत्थानों के स्पष्ट काल देखे गये हैं । पहला उत्थान ऊपरी क्रिटैसियस का तथा दूसरा ऊपरी इयोसीन काल का है । नारी, गज तथा मुर्री समुदायों के जमाव के बाद मध्य मायोसीन काल में तीसरा उत्थान हुआ । इस उत्थान ने टैथिस सागर के अव-शेषों को पूर्ण रूप से विलुप्त कर दिया । इस काल में हिमालय पर्वतों के दक्षिण में एक बड़ी द्रोणी का निर्माण हुआ । इसमें उत्तरवर्ती काल के शिवालिक अवसाद बिछाये गये । प्लायोसीन के अंत में चौथा उत्थान हुआ । यह और इसके बाद का हिम-युग दोनों मायोसीन और प्लायोसीन काल के सम्पन्न स्तनवर्गीय जीवों के नाश के उत्तरदायी थे । पिछले प्लायोसीन काल में अंतिम मुख्य उत्थान हुआ जिसके फलस्वरूप पीर-पंजाल ऊँचे पहाड़ों के रूप में ऊँचा उठ गया ।

तृतीय जीव-कल्प की सब शिलायें समुद्री हैं । उत्तरी-पश्चिमी भारत में इन शिलाओं की प्रकृति समुद्री, मुर्री शिलाओं की सागर-संगम सम्वन्धी और शिवालिक शिलाओं की नदीय है । इस कल्प में फूल लगने वाले पौधों का विकास हो गया था ।

काश्मीर में पीर पंजाल के दक्षिणी भाग में तथा रियासी जम्मू में इयोसीन काल के स्तर मिलते हैं । इनमें शेल और चूना शिलायें मुख्य हैं । जम्मू की इयोसीन मेखला शिमला और गढ़वाल के हिमालय के पाद-पर्वतों के अन्दर से नैनीताल के आसपास तक चली गई है । यहाँ के जमाव तटीय प्रकृति के हैं और पूर्व की ओर

क्रमशः पतले होते जाते हैं । आसाम में हफलांग-डिसांग समुदाय की अवधि ऊपरी क्रिटैसियस से मध्य इयोसीन तक है । बरैल समुदाय ऊपरी इयोसीन और ओलिगोसीन का प्रातिनिध्य होता है । इसके ऊपरी भाग में उत्तर-पूर्वी आसाम की धनसीरी घाटी के पूर्व में कोयले की मुख्य परतें पाई जाती हैं । लीडो के पड़ौस में इसका सर्वोत्तम विकास हुआ है । इन शिलाओं में नजीरा, माकूम, लीड़ो, नामदांग और टिकाक कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं । इस समुदाय के मध्य भाग में कुछ तेल के स्रोत भी पाये जाते हैं ।

राजस्थान के बीकानेर के पलाना के लिग्नाइट और मुल्तानी मिट्टी के निक्षेप भी इसी काल के हैं । गुजरात में सूरत और भड़ौच तथा कच्छ में भी इयोसीन शिलायें पाई जाती हैं ।

इयोसीन का अन्त पर्वत-निर्माण क्रिया का एक काल था । उस ससय टेथीस अवसाद ऊपर को उठाये गये और मंजित किये गये । ओलीगोसीन काल में भी यह अवसाद जारी रहा । ये जमाव उथले जल की उत्पत्ति को सूचित करते हैं किन्तु कुछ स्थानों में वे काफी मोटे हैं । दूसरा उत्थान मायोसीन काल में हुआ । तीसरा उत्थान मायो-प्लायोसीन काल में अवसाद के शिवालिक उपसमूह के रूप में ऊँचा उठ जाने से हुआ । शिवालिक स्तर और उनके तुल्य शिलायें हिमालय की सम्पूर्ण लम्बाई के पाद-प्रदेश और आसाम में पाई जाती हैं जहाँ ये दिहिंग समुदाय कहलाती हैं । इन शिलाओं में रेती का अंश अधिक है जिससे स्पष्ट होता है कि ये नदियों द्वारा छिछले जल में बिछाई जाने से बनी हैं । इन चट्टानों में शिलाभूत अवशेष कम ही मिलते हैं । सौराष्ट्र और कच्छ में शिवालिक काल की चट्टानें पाई जाती हैं । इनमें कई स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं । केरल राज्य में कोल्लम के निकट समुद्र तट और कुछ कुओं में कुछ चूना-शिलायें पाई गई हैं जिनमें प्रवाल और मोलस्का प्राप्त हुए हैं ।

चतुर्थ जीव-कल्प (Neozoic)

प्लैटोसीन काल—चतुर्थ जीव-कल्प का आरम्भ एक ठंढे मौसम द्वारा अंकित है । भारत में हिमानियों के प्रमाण हिमालय प्रदेश में ही मिलते हैं । यहाँ हिमानियाँ बहुत निचली ऊँचाई को उतर आई थीं । इसके चिन्ह शिलापिंडों, खरोचोंदार पिंडों तथा मोरेनों (Moraines) में मिलते हैं । काश्मीर की करेवाँ राशि प्लैस्टोसीन काल की है । यह झेलम की घाटी और पीर-पंजाल के पक्षों में चपटे उत्तलों (Terraces) को बनाती है । ये श्रीनगर गुलमर्ग के बीच में पाये जाते हैं । इस राशि में बालू, मिट्टियाँ, काँप और शिलापिंड (Boulders) पाये जाते हैं । करेवां शिलायें लगभग ७,५०० वर्ग कि० मी० में फैली हैं और १,५२४ मीटर मोटी हैं । इससे स्पष्ट होता है कि काश्मीर की घाटी में इन अवसादों के निर्माण के बाद ये ऊँचे उठे हैं । ये एक बड़ी झील में जमा हुए माने जाते हैं । यह झील उस क्षेत्र में स्थित थी जो उत्तर में हिमालय-पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में एक कूट के बीच में थी । निचली करेवाँ शिलाओं में चीड, ओक, बीच्, एल्डर, विल्लो, हॉली, दालचीनी आदि के अवशेष पाये जाते हैं । ये इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय का मौसम शीत-शीतोष्ण था । स्वच्छ जल के सीप, मछलियाँ और स्तनपोषी जीवों के अवशेष भी इनमें मिलते हैं ।

हुँडीज की सतलज घाटी में पूर्ण विकसित नदी उत्तल दृष्टिगोचर होते हैं इनमें

भी प्लैस्टोसीन स्तनपोषी जीवों के अवशेष पाये जाते हैं। नर्मदा और ताप्ती नदियाँ उन स्थानों में बहती हैं जो प्लैस्टोसीन जमावों से आवृत हैं। इन जमावों को मोटाई ३० मीटर तक है। इनमें भी स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदियों की ऊपरी घाटी में प्राचीनतम कांप (Oldest alluviam) मिलती हैं जो कंकर, बालू और मिट्टियों से बनी हैं। ये कुछ प्लैस्टोसीन प्राणियों के अवशेषों से युक्त हैं।

चित्र १०८.—प्लैस्टोसीन युग में भारत

प्रायद्वीप और बाहरी प्रायद्वीप के बीच एक विस्तृत कांप का मैदान फैला है जिसमें गङ्गा, सतलज एवं ब्रह्मपुत्र और सिंध नदियों द्वारा लाई गई कांप बिछाई गई है। यह प्रदेश ६¾ लाख वर्ग कि०मी० क्षेत्र से अधिक में फैला है। अरावली पहाड़ों की प्रगति रेखा दिल्ली के निकट जहाँ कांप प्रदेश को पार करती है, वहाँ वह प्रदेश बहुत संकरा है। राजमहल और गारो के बीच में जो द्रोणी है वह प्रायः छिछली है। इस द्रोणी की अधिकतम गहराई का अनुमान १८२८ से २१३४ मीटर का किया गया है। ये जमाव बालू और मिट्टी से बने हैं। प्राचीनतर कांप (Older Alluviam) मैदान **बांगड़** (Bangar) कहलाता है इसका रंग काला है और इसमें कंकड़ नज़र आते हैं। नया काँप का मैदान, जो **खादिर** (Khadir) कहलाता है, बालू और कंकड़ों से युक्त है। इसमें भूमिगत जल के भंडार पाये जाते हैं। पुराना कांप मध्य से ऊपरी प्लैस्टोसीन और नया कांप ऊपरी प्लैस्टोसीन काल का बना है। प्राचीन कांप में स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं और नये कांप में जिन जीवों के अवशेष मिलते हैं वे प्रायः अब जीवित जातियों के से हैं।

प्रायद्वीप के तटीय भागों में बालू तट हैं। साधारणतः उनमें पिछले प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के सीप पाये जाते हैं। ऐसे जमाव उड़ीसा, मद्रास और सौराष्ट्र के तटों पर मिलते हैं। दक्षिणी पश्चिमी तटों में कई जलाशय मिलते हैं जो समुद्र से नीची मिट्टी के किनारों द्वारा अलग किए गए हैं। ये प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के जमावों से युक्त हैं। पूर्वी तट में चिल्का झील है जो उन अवसादों द्वारा क्रमशः

क्रमशः पतले होते जाते हैं। आसाम में हफलांग-डिसांग समुदाय की अवधि ऊपरी क्रिटैसियस से मध्य इयोसीन तक है। बरैल समुदाय ऊपरी इयोसीन और ओलिगोसीन का प्रातिनिध्य होता है। इसके ऊपरी भाग में उत्तर-पूर्वी आसाम की धनसीरी घाटी के पूर्व में कोयले की मुख्य परतें पाई जाती हैं। लीडो के पड़ौस में इसका सर्वोत्तम विकास हुआ है। इन शिलाओं में नजीरा, माकूम, लीड़ो, नामदांग और टिकाक कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं। इस समुदाय के मध्य भाग में कुछ तेल के स्रोत भी पाये जाते हैं।

राजस्थान के बीकानेर के पलाना के लिग्नाइट और मुल्तानी मिट्टी के निक्षेप भी इसी काल के हैं। गुजरात में सूरत और भड़ौच तथा कच्छ में भी इयोसीन शिलायें पाई जाती हैं।

इयोसीन का अन्त पर्वत-निर्माण क्रिया का एक काल था। उस ससय टेथीस अवसाद ऊपर को उठाये गये और मंजित किये गये। ओलीगोसीन काल में भी यह अवसाद जारी रहा। ये जमाव उथले जल की उत्पत्ति को सूचित करते हैं किन्तु कुछ स्थानों में वे काफी मोटे हैं। दूसरा उत्थान मायोसीन काल में हुआ। तीसरा उत्थान मायो-प्लायोसीन काल में अवसाद के शिवालिक उपसमूह के रूप में ऊँचा उठ जाने से हुआ। शिवालिक स्तर और उनके तुल्य शिलायें हिमालय की सम्पूर्ण लम्बाई के पाद-प्रदेश और आसाम में पाई जाती हैं जहाँ ये दिहिंग समुदाय कहलाती हैं। इन शिलाओं में रेती का अंश अधिक है जिससे स्पष्ट होता है कि ये नदियों द्वारा छिछले जल में बिछाई जाने से बनी हैं। इन चट्टानों में शिलाभूत अवशेष कम ही मिलते हैं। सौराष्ट्र और कच्छ में शिवालिक काल की चट्टानें पाई जाती हैं। इनमें कई स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं। केरल राज्य में कोल्लम के निकट समुद्र तट और कुछ कुओं में कुछ चूना-शिलायें पाई गई हैं जिनमें प्रवाल और मोलस्का प्राप्त हुए हैं।

चतुर्थ जीव-कल्प (Neozoic)

प्लैटोसीन काल—चतुर्थ जीव-कल्प का आरम्भ एक ठंढे मौसम द्वारा अंकित है। भारत में हिमानियों के प्रमाण हिमालय प्रदेश में ही मिलते हैं। यहाँ हिमानियाँ बहुत निचली ऊँचाई को उतर आई थीं। इसके चिन्ह शिलापिंडों, खरोचोंदार पिंडों तथा मोरेनों (Moraines) में मिलते हैं। काश्मीर की करेवाँ राशि प्लैस्टोसीन काल की है। यह झेलम की घाटी और पीर-पंजाल के पक्षों में चपटे उत्तलों (Terraces) को बनाती है। ये श्रीनगर गुलमर्ग के बीच में पाये जाते हैं। इस राशि में बालू, मिट्टियाँ, काँप और शिलापिंड (Boulders) पाये जाते हैं। करेवां शिलायें लगभग ७,५०० वर्ग कि० मी० में फैली हैं और १,५२४ मीटर मोटी हैं। इससे स्पष्ट होता है कि काश्मीर की घाटी में इन अवसादों के निर्माण के बाद ये ऊँचे उठे हैं। ये एक बड़ी झील में जमा हुए माने जाते हैं। यह झील उस क्षेत्र में स्थित थी जो उत्तर में हिमालय-पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में एक कूट के बीच में थी। निचली करेवाँ शिलाओं में चीड, ओक, बीच्, एल्डर, विल्लो, हॉली, दालचीनी आदि के अवशेष पाये जाते हैं। ये इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय का मौसम शीत-शीतोष्ण था। स्वच्छ जल के सीप, मछलियाँ और स्तनपोषी जीवों के अवशेष भी इनमें मिलते हैं।

हुँडीज की सतलज घाटी में पूर्ण विकसित नदी उत्तल दृष्टिगोचर होते हैं इनमें

भी प्लैस्टोसीन स्तनपोषी जीवों के अवशेष पाये जाते हैं। नर्मदा और ताप्ती नदियाँ उन स्थानों में बहती हैं जो प्लैस्टोसीन जमावों से आवृत हैं। इन जमावों की मोटाई ३० मीटर तक है। इनमें भी स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदियों की ऊपरी घाटी में प्राचीनतम कांप (Oldest alluviam) मिलती हैं जो कंकर, बालू और मिट्टियों से बनी हैं। ये कुछ प्लैस्टोसीन प्राणियों के अवशेषों से युक्त हैं।

चित्र १०८.—प्लैस्टोसीन युग में भारत

प्रायद्वीप और बाहरी प्रायद्वीप के बीच एक विस्तृत कांप का मैदान फैला है जिसमें गङ्गा, सतलज एवं ब्रह्मपुत्र और सिंध नदियों द्वारा लाई गई कांप बिछाई गई है। यह प्रदेश ६¾ लाख वर्ग कि०मी० क्षेत्र से अधिक में फैला है। अरावली पहाड़ों की प्रगति रेखा दिल्ली के निकट जहाँ कांप प्रदेश को पार करती है, वहाँ वह प्रदेश बहुत संकरा है। राजमहल और गारो के बीच में जो द्रोणी है वह प्रायः छिछली है। इस द्रोणी की अधिकतम गहराई का अनुमान १८२८ से २१३४ मीटर का किया गया है। ये जमाव बालू और मिट्टी से बने हैं। प्राचीनतर कांप (Older Alluviam) मैदान **बांगड़** (Bangar) कहलाता है इसका रंग काला है और इसमें कंकड़ नज़र आते हैं। नया काँप का मैदान, जो **खादिर** (Khadir) कहलाता है, बालू और कंकड़ों से युक्त है। इसमें भूमिगत जल के भंडार पाये जाते हैं। पुराना कांप मध्य से ऊपरी प्लैस्टोसीन और नया कांप ऊपरी प्लैस्टोसीन काल का बना है। प्राचीन कांप में स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं और नये कांप में जिन जीवों के अवशेष मिलते हैं वे प्रायः अब जीवित जातियों के से हैं।

प्रायद्वीप के तटीय भागों में बालू तट हैं। साधारणतः उनमें पिछले प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के सीप पाये जाते हैं। ऐसे जमाव उड़ीसा, मद्रास और सौराष्ट्र के तटों पर मिलते हैं। दक्षिणी पश्चिमी तटों में कई जलाशय मिलते हैं जो समुद्र से नीची मिट्टी के किनारों द्वारा अलग किए गए हैं। ये प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के जमावों से युक्त हैं। पूर्वी तट में चिल्का झील है जो उन अवसादों द्वारा क्रमशः

जमी है जिन्हें महानदी लाती है। नदी के मुहानों को काट कर एक बालू-जिह्वा (Sandspit) चली गई है इसमें सीप-जमाव है जो समुद्र तट से कई फीट ऊँचे उठे हैं।

राजस्थान के दक्षिण में कच्छ का एक ऐसा प्रदेश है जो प्लैस्टोसीन काल में समुद्र में डूबा था। वह धीरे-धीरे शुष्क भूमि में बदलता जा रहा है। पश्चिमी राजस्थान में जो विशाल मरुस्थल फैला है उसमें बालू की अधिकता है। साधारणतः तल-शिलाओं (Bed-rocks) की चोटियाँ बालू के नीचे दबी हैं। यह बालू हवा की गति द्वारा विलक्षण रूप वाले बालू-स्तूपों के रूप में एकत्रित है। मरुभूमि के जमाव मुख्यतः प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के हैं। ये कई हजार वर्षों से एकत्रित किए गए हैं।

आधुनिक काल (Recent Period)

आधुनिक काल में तटीय बालूका-स्तूप, नदियों के मुहाने की कांप मिट्टी के जमाव और मिट्टियाँ आदि बनी हैं।

भारत के पूर्वी तट पर कई भागों में बालूका-स्तूप मिलते हैं। हवाओं द्वारा निरन्तर इनका पुनर्विन्यास होता रहता है। ये धीरे-धीरे देश के अन्दर की ओर बढ़ते हैं।

नदियों के मुहानों में नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी के विस्तृत जमाव पाये जाते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय प्रायद्वीप का अधिकतर भाग आद्य कल्प की शिलाओं से बना है। इनमें भिन्न-भिन्न उत्पत्ति तथा प्रकृति की नाइस, शिस्ट, आग्नेय और परिवर्तित शिलायें पाई जाती हैं। काल के अनुसार उनके बाद कडुप्पा और विन्ध्य की शिलायें हैं। उनके बाद कोयले से युक्त गोंडवाना राशियों और द्वितीय तथा तृतीय जीव-कल्प समूह की शिलायें हैं। पश्चिमी तथा मध्य प्रदेश दकन ट्रैप के लावा-बहाव से आवृत हैं। शिलाभूत अवशेषों के अवसादीय उप-समूह (Fossilized Sediments) प्रायद्वीप के एक छोटे भाग में ही मिलते हैं।

बाहरी प्रायद्वीप (Extra-Peninsula) में प्रधानतः मुख्य हिमालय अक्ष के उत्तर की ओर सभी कालों के समुद्री अवसादों का प्रभावपूर्ण विकास दृष्टिगोचर होता है। महा-हिमालय व लघु-हिमालय में मुख्यतः शिलाभूत अवशेषरहित अवसाद और आग्नेय तथा परिवर्तित शिलायें मिलती हैं।

भारत के कुछ विशाल प्रदेशों—उड़ीसा, आसाम और हिमालय के कुछ भागों का—भूतात्विक अध्ययन अभी भी अपूर्ण है।

अध्याय १२

खनिज सम्पत्ति

(MINERAL RESOURCES)

पिछली शताब्दी तक लोगों का विश्वास था कि भारत में यद्यपि अनेक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं किन्तु उनको निकालने में लाभ होना पूर्ण रूप से संभव नहीं होगा। उनका विचार था कि "प्राचीन काल में जब अन्य देशों ने खनिज विद्या प्राप्त न की थी तब भारत अपनी निजी आवश्यकता खनिजों के छोटे छोटे कारखाने स्थापित कर पूरी करता रहा होगा, किन्तु आधुनिक खनिजात्मक युग में पुराने ढंग से खनिज निकालना कदापि लाभदायक नहीं हो सकता।" किन्तु यह विचार असत्य सिद्ध हुआ है। भूगर्भ-वेत्ताओं ने निरंतर अनुसंधान करके यह स्पष्टत: सिद्ध कर दिया है कि आधुनिक युग में जिन जिन खनिजों की आवश्यकता किसी सभ्य देश को हो सकती है, वे सब भारत में वर्तमान हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री डा० बाल का कथन उल्लेखनीय है। वे कहते हैं, "भारत के भूगर्भ में विभिन्न प्रकार की खनिजों की नसें पाई जाती हैं। यदि विश्व के सभी देशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध न होता अथवा यदि यहाँ निकाले गये खनिजों को विदेशी व्यापार की प्रतिस्पर्धा से रक्षा की जाती तो इसमें कोई संशय नहीं कि भारत अपने देश ही में प्राप्त हुए खनिज पदार्थों से सम्पूर्ण रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता।"[1] भारतीय औद्योगिक आयोग (Indian Industrial Commission) का भी यह मत था कि, "भारत के मुख्य आधार भूत उद्योगों (Basic Indus'ry)—केवल उन उद्योगों को छोड़कर जिनमें वैनेड़ियम, निकल और मौलीबिडनम की आवश्यकता पड़ती है—के लिए भारत में खनिज सम्पति पर्याप्त मात्रा में व्याप्त है।" सच तो यह है कि भारत में विभिन्न प्रकार के खनिजों का अस्तित्व है और यदि इनका ठीक तरह से उपभोग किया जाय तो यह देश औद्योगिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बन सकता है। देश के विभाजन से भारत की खनिज सम्पति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। अविभाजित भारत के लोहे, अभ्रक, टाइटैनियम आदि के भंडार भारत में ही रहे हैं किन्तु क्रोमाइट, मुल्तानी मिट्टी, गंधक, मिट्टी का तेल, जिप्सम आदि के स्रोत पाकिस्तान को चले गये हैं।[2] खनिज तेल का २०% भाग, साधारण नमक का $\frac{1}{6}$ उत्पादक क्षेत्र और प्रतिवर्ष १ लाख टन कोयला उत्पन्न करने वाली टर्शरी कोयले की खानें पाकिस्तान में चली गईं।

यदि हम रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका या जर्मनी से भारत की खनिज सम्पत्ति की तुलना करें तो अवश्य ही यह मानना पड़ेगा कि हम इस दृष्टि से बड़े दरिद्र हैं,

---

1. *V. Ball,* Economic Geology of India, p. 15.
2. *C. N. Vakil,* Economic Consequences of Divided India, 1950 pp. 215-6.

किन्तु अधिकांश खनिजों का हमारे यहाँ अभाव नहीं है। (१) भारत ५ खनिजों में निर्यात्मक मात्रा में धनी है, जब कि संयुक्त राज्य ६ और रूस ५ खनिजों में। (२) भारत संयुक्त राज्य की तुलना में ४ खनिजों में आत्म निर्भर है, जबकि रूस ५ में और जर्मनी ७ खनिजों में आत्म निर्भर है। (३) लोहा, कोयला, मैंगनीज, मैगने-साइट, अभ्रक, क्रोमाइट, बाक्साइट आदि खनिजों में भारत धनी है किन्तु ताँबा, टीन, जस्ता, सीसा, गंधक और मिट्टी के तेल में दरिद्र है। इनकी मांग पूर्ति में भारत आत्मनिर्भर नहीं है। नीचे की तालिका में यह बताया गया है कि सं० रा० अमरीका, रूस, जर्मनी तथा भारत किन-किन खनिज पदार्थों में आत्म-निर्भर हैं :—

खनिज पदार्थों में राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता

खनिज	सं० रा० अमरीका	रूस	जर्मनी	भारत
सुरमा	— — C —	— — C —	— — — D	— — — D
एस्वस्टस	— — — D	A — — —	— — — D	— — C —
बाक्साइट	— — C —	— — C —	— — C —	A — — —
क्रोमाइट	— — C —	— B — —	— — — D	— B — —
कोयला	A — — —	— B — —	— B — —	— B — —
तांबा	A — — —	— — C —	— — C —	— — C —
औद्योगिक हीरे	— — — D	— — — D	— — — D	— — — D
ग्रैफाइट	— — C —	— B — —	— — — D	— — C —
लोहा	A — — —	— B — —	— — — D	A — — —
मैग्नेसाइट	— B — —	A — — —	A — — —	A — — —
मैंगनीज	— — — D	A — — —	— — — D	A — — —
पारा	— — C —	— — C —	— — — D	— — — D
अभ्रक	— — — D	— — — D	— — — D	A — — —
निकल	— — — D	— — — D	— — C —	— — — D
प्राकृतिक शोरा	— — — D	— — — D	— — — D	— — C —
मिट्टी का तेल	A — — —	A — — —	— — — D	— — C —
फास्फेट्स	A — — —	— B — —	— — C —	— — C —
प्लैटीनम	— — — D	A — — —	— — — D	— — — D
प्रोटाश	— B — —	— B — —	— — — D	— — — D
गंधक	A — — —	— — C —	— — — D	— — — D

3. *C. B. Mamoria,* Organisation and Financing of Industries in India, 1960, pp. 135-136.

टीन	D	D	D	—
टंगस्टन	C	D	D	D
वैनेडीयम	B	D	D	B
जस्ता	B	B	D	C
सीसा	B	C	C	D

A=खनिज जो निर्यात के लिए उपलब्ध हैं C=देश की मांग के लिए अपर्याप्त
B=देश की मांग के लिए पर्याप्त D=विदेशों पर निर्भर

रूस को छोड़कर विश्व में मैंगनीज उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। अभ्रक, इलैमैनाइट, मोनाजाइट और जिरकन में भारत का स्थान विश्व में प्रमुख है।

खनिज पदार्थों का प्रादेशिक वितरण (Regional Distribution of Minerals)

भरत में सतलज, गंगा और ब्रह्मपुत्र का मैदान नई चट्टानों से बना है जिसमें कई हजार फीट की गहराई तक चिकनी मिट्टी और बालू की तहें पाई जाती है अतः यहाँ कंकड़ को छोड़ और कोई खनिज नहीं मिलता, क्योंकि इन चट्टानों में ज्वालामुखी परिवर्तनों का प्रभाव अभी तक नहीं पहुँच पाया है किंतु भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप अत्यन्त पुराना भाग है। दक्षिण की पाँच लाख वर्ग कि०मी० भूमि समय समय पर ज्वालामुखी के फूट निकलने से लावा की तहों से बनी है जो कहीं कहीं ६०० मीटर तक मोटी है। किंतु इसमें भी खनिजों का अभाव है। प्रायद्वीप का आधे से अधिक भाग उन प्राचीन चट्टानों का बना है जो कुमारी अन्तरीप से लगा कर गंगा के पास २२,५३१ कि०मी० तक फैली हुई हैं। इनमें बुन्देलखंड की चट्टानें सबसे पुरानी हैं। इसी तरह राजमहल की पहाड़ियाँ, दामोदर घाटी, उड़ीसा के मुहाल, छत्तीसगढ़, छोटा नागपुर और गोदावरी के पास सतपुड़ा श्रेणी ऐसे प्राचीन प्रदेश है जो गोंडवाना विभाग में सम्मिलित है। इन भागों में बहुत पुरानी चट्टानें पाई जाती है इन्हीं में अधिकतर भारत के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। देश में बालू और चूने के पत्थर तो सर्वत्र ही मिलते हैं।

भारत में खनिज पदार्थों का वितरण बहुत ही असमान है। **डा० डन** का कहना है कि, "यदि एक रेखा दक्षिण में मंगलौर से कानपुर तक और वहाँ से हिमालय पर्वत तक खींची जाये तो जो भाग इसके पूर्व में हैं वे सभी खनिज पदार्थों में धनी और पश्चिम की ओर के भाग राजस्थान में अभ्रक, नमक, सीसा, हरसौंठ, पंजाब और काश्मीर में कोयला पाने वाले स्थानों को छोड़कर—खनिज पदार्थों में बिल्कुल ही निर्धन हैं।"

वैयक्तिक रूप से तो राज्यों में भी खनिज पदार्थों का वितरण बिल्कुल ही असमान है। बिहार और छोटा नागपुर का पठार तो संसार में सबसे धनी भाग माने जाते हैं जहाँ कोयला, लोहा, क्रोमाइट, तांबा, अभ्रक, फॉस्फेट्स, बाक्साइट, इलेमैनाइट, मैंगनीज आदि खूब निकाले जाते हैं। यह भाग खनिज पदार्थों का भण्डार कहा जाता है। बिहार के दो जिलों और उनसे संलग्न उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में उत्तम लोहे के ८०,००० लाख टन का जमाव है। यहाँ विश्व के सबसे अच्छे किस्म

का अभ्रक (५०%) और मैंगनीज धातु भी मिलते हैं । मध्य प्रदेश में उत्तम किस्म का लोहा, मैग्नेसाइट, मैंगनीज, अभ्रक, चूना तथा लिग्नाइट कोयला मिलता है । भारत में प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण सोना मैसूर राज्य में मिलता है जहाँ चिकनी मिट्टी, क्रोम तथा लोहे की खानें भी हैं । केरल में काँच के लिये उत्तम श्रेणी की बालू, मोनेजाइट, जिरकन, गार्नेट पाया जाता है । मद्रास में लिग्नाइट कोयला, मैंगनीज मैंगनेसाइट, अभ्रक, चूना पर्याप्त मात्रा में मिलता है । आंध्र में कोयला मिलता है आसाम में मिट्टी का तेल और कोयला मिलता है । हिमालय पर्वत के दक्षिण पश्चिम भाग में काश्मीर राज्य में कोयला, बाक्साइट और रत्न मिलते हैं । पश्चिमी बंगाल में केवल लोहे और कोयले के जमाव हैं किंतु दामोदर नदी की घाटी खनिज पदार्थों की दृष्टि से बहुत धनी है । यहाँ सम्पूर्ण भारत में उत्पन्न होने वाले ताँबे का १००%, कियेनाइट का १००%, लोहा ९३%, कोयला ८०%, क्रोमाइट ७०%, अभ्रक७०% ,फायर क्ले ५०%, एस्बस्टस ४५%, चीनी मिट्टी ४५%, चूने का पत्थर २०%, मैंगनीज १०%, और इमारती पत्थर १०% मिलता है । नैपाल में कोबाल्ट, निकल और तांबा तथा सिक्किम और भूटान में केवल तांबा प्राप्त होता है । इन पर्वतीय प्रदेशों को छोड़कर सम्पूर्ण हिमालय पर्वत खनिजों में निर्धन है । पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश भी खनिज पदार्थों से शून्य हैं किन्तु पिछले कुछ समय
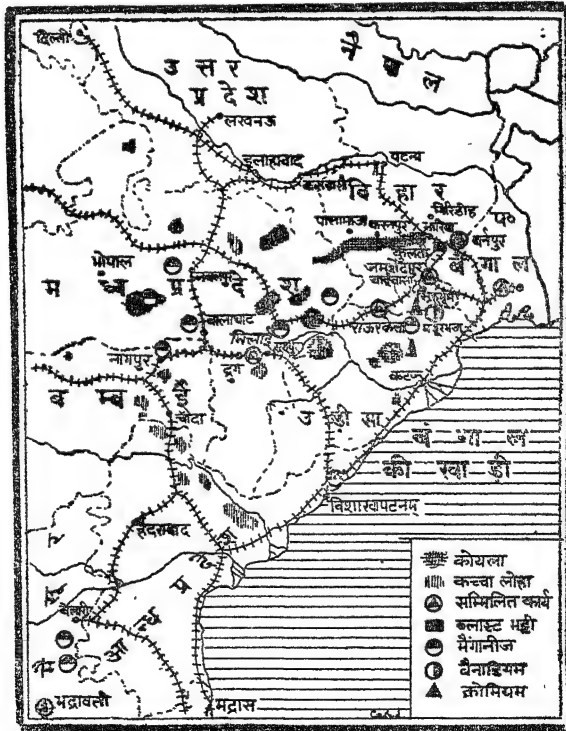
चित्र १०९. प्रमुख धातुओं का क्षेत्र

से राजस्थान में निकाले गये खनिज पदार्थो का महत्व बढ़ता जा रहा है। यहाँ अभ्रक, बेरीयम, एस्बटस, मैंगनीज, पन्ना, ताँबा, शीशा और जस्ता, गंधक, हरसौंठ और मुल्तानी मिट्टी निकाले जाने लगे हैं। [४]

नीचे की तालिका में खनिजों का निहित भंडार जो भारत में है, बताया गया है :—[५]

खनिज	भारत के भंडार	
कोयला (सभी प्रकार की २,००० फीट की गहराई तक)	११,६७७,००	लाख टन
लोहा (६० प्रतिशत धातु वाला)	२१८७,००	,,
मैंगनीज (४६ प्र. श. धातु वाला)	१,८००	,,
बाक्साइट	२,६००	,,
मैगनेसाइट	१,०००	,,
तांबा	३३०	,,
क्रोमाइट	४८	,,
चीनी मिट्टी	२·५	,,
कुरंवडम	१·०	,,
गंधक	३००	,,
हरसौंठ	६२००	,,
सोना	१२·६ लाख टन अयस	
मौनेजाइट	२०	,,
इलैमैनाइट	३,५००	,,
कीयैनाइट	५००,००० से ७५०,०००	,,
सिलैमैनाइट	३५०,०००	,,
बैन्टोनाइट	१००	लाख टन
चूने का पत्थर	१५७,४००	लाख टन
एस्बस्टस	५·८	,,
जस्ता-सीसा	८० से १००	,,
वैनेडियम	१७०	,,

खनिज उत्पादन—बिहार राज्य में सबसे अधिक खनिज निकाले जाते हैं।

4. *D. N. Wadia*, 'Geological and Geographical Distribution of India's Minerals, published by the Fourth Empire Mining and Metallurgical Congress, London, 1949.

5. *Govt. of India*, Geology in India, 1957, pp. 6—9; India, 1963, p. 3-5. and Third Five Year Plan, 1961, pp. 193 and 517.

१९६२ में देश के खनिज उत्पादन के मूल्य का ३८·९% यहीं से प्राप्त किया गया। अन्य देशों का भाग इस वर्ष इस प्रकार था : बंगाल, २१·६%; मध्य प्रदेश ११·३% उड़ीसा ६·४% ; आंध्र प्रदेश ५·६% ; मैसूर, ४·६% ; महाराष्ट्र ३·४% और गुजरात ३·१%।

राज्यों में खनिज उत्पादन

राज्य	मूल्य (लाख रु०)	१९६० कुल भारत का प्रतिशत	मूल्य (लाख रु०)	१९६१ कुल भारत का प्रतिशत
बिहार	५७५८·६	३५·३	६२२०·४	३५·७
प. बंगाल	३४२६·५	२१·०	३६०५·७	२०·७
मध्य प्रदेश	१९६१·३	१२ ०	२०८०·५	११·९
उड़ीसा	९०५·२	५·५	१०९२·३	६·३
आंध्र प्रदेश	८३८·७	५·१	९०८·५	५·२
मैसूर	८०२·१	४·९	८०७·९	४·६
महाराष्ट्र	५८६·५	३·६	६२४·०	३·६
राजस्थान	६५३·४	४·०	६०४·५	३·५
गुजरात	५२७·६	३·२	६०१·४	३·४
मद्रास	२०४·४	१·३	२५७·२	१·५
आसाम	१९५·५	१·२	२२५·२	१·३
उत्तर प्रदेश	२११·१	१·३	२१५·८	१·२
केरल	१७७·८	१·१	१३४·३	०·८
पंजाब	४४·२	०·३	३३·२	०·२
जम्मू-काश्मीर	१५·५	०·१	१४·२	०·१
हिमाचल प्रदेश	३·२	—	३·६	—
दिल्ली	११·२	०·१	३·४	—
भारत का योग	१६,३२३·२	१००·०	१७,४३२·८	१००·०

भारतीय खनिज पदार्थों की वर्तमान स्थिति और उत्पादन

वर्तमान युग में विश्व का कोई भी औद्योगिक देश ऐसा नहीं है जो सभी खनिज पदार्थों के उत्पादन में पूर्णरूप से आत्म निर्भर कहा जा सके। देश के विस्तार और जनसंख्या को देखते हुए भारत की खनिज सम्पति कुछ विशेष अधिक नहीं है, फिर भी यहाँ कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ यथेष्ठ यात्रा में हैं जिन्हें भारत निर्यात कर सकता है। कुछ ऐसे खनिज पदार्थ भी हैं जो भारत की आन्तरिक मांग के लिये पर्याप्त हैं किन्तु कुछ खनिज विशेषों के लिए भारत को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

डा० वाडिया ने भारत के खनिज पदार्थों को उनकी पर्याप्तता के अनुसार निम्न चार श्रेणियों में विभाजित किया है [६] :—

(१) वे खनिज पदार्थ जिनका निर्यात करके (Exportable Surplus) भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव डालता है :—

१. लोहा, २. टाइटैनियम, ३. अभ्रक, ४. थोरीयम धातु।

(२) वे खनिज जिनका भारत से निर्यात महत्वपूर्ण है :—

१. मैंगनीज, २. मैगनेसाइट, ३. रिफ़ैक्टरी खनिज, ४. बाक्साइट, ५. घीया पत्थर, ६. मोनेजाइट, ७. ग्रैनाइट, ८. बैरीलियम, ९. कौरेंड्रम, १०. प्राकृतिक घर्षण पदार्थ (Natural Abrasives), ११. सिलीका, १२. हरसौंठ।

(३) वे खनिज पदार्थ जिनके उत्पादन में भारत आत्म निर्भर है :—

१. कोयला, २. कांच बनाने का बालू, ३. सोना, ४. अल्यूमीनियम, ५. फैल-स्फर, ६. इमारती पत्थर, ७. चूने का पत्थर व डोलोमाइट, ८. संगमरमर, ९. स्लेट, १०. सीमेंट बनाने की सामग्री, ११. सुरमा, १२. तांबा, १३. सुहागा, १४. जिरकन, १५. औद्योगिक मिट्टियाँ, १६. बैराइट्स, १७. वैनेडियम, १८. पाइराइट, १९. शोरा, २०. फास्फेट, २१. क्रोमाइट, २२. तेजाब व संखिया, २३. बैरटीज, २४. फिटकरी, २५. नमक, २६. खनिज रंग (Mineral Pigments)।

(४) वे खनिज पदार्थ जिनके लिये भारत को मुख्यतः विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है :—

१. चांदी, २. निकल, ३. मिट्टी का तेल, ४. जस्ता, ५. सीसा, ६. टिन, ७. पारा, ८. टंगस्टन, ९. मौलीबिडनम, १०. ग्रैफाइट, ११. एसफाल्ट, १२. पोटाश, १३. प्लैटीनम, १४. गंधक, १५. फ्लूराइड।

१९६१ में खनिज पदार्थों का मूल्य १७४·३ करोड़ रुपया था जबकि १९६० में १६३·२ करोड़ रुपये के मूल्य खनिज निकाले गए। खनिज उत्पादन में ७% की वृद्धि होने का मुख्य कारण कोयला, लोहा, बाक्साइट, डोलोमाइट और चूने के पत्थर का अधिक उत्पादन होना तथा नमक और सोने का मूल्य अधिक होना था।

नीचे की तालिका में भारत के प्रमुख खनिज का उत्पादन बताया गया है १९६२ में १८६·८० करोड़ रुपये के खनिज पदार्थ निकाले गए।

खनिज उत्पादन १९६० और १९६१ में

	१९६०		१९६१	
इकाई मात्रा	मूल्य (करोड़ रु० में)	मात्रा	मूल्य(०००रु० में)	मात्रा
कोयला (००० टोंस)	५२५,९३	१०,८८,४४७	५६०,६५	११,७१,९३९
भूरा कोयला (टोंस)	४६९,४५	१०८५	६३७,६५	१४१५
धातु खनिज		२७४,४९५	——	२८२,०६३
(i) **लौह धातुयें**		१७८,७७९	——	१७९,१२९
क्रोमाइट (टोंस)	१००,११२	५,७३३	४५,९२६	२,९४७

6. *D. N. Wadia*, 'Mineral Outlook of India,' in Science & Culture, May, 1952, p. 517.

सिलीका (,,)	६३,९९९	९९०	९०,९२०	९५९
नमक (००० टोंस)	३,४३६	६७,१०८	३,४६६	७६,४०७
सिलैमैनाइट (टोंस)	८,४८३	४१८	८,११३	३६४
घीया पत्थर (,,)	९३,३९२	३,१७०	९२,८६९	२,८२३
वर्मीक्यूलाइट (,,)	१५	—	१	—
अन्य	—	७७,६२५	—	८५,७०२
कुल उत्पादन का योग	—	१,६३२,३२८		१,७४३,२८२

पिछले कुछ वर्षों में खनिज पदार्थों का उत्पादन इस प्रकार रहा है :—

वर्ष		धातु खनिजें लौह	अलौह धातुएँ (१० लाख रुपयों में)		अ-धातु खनिजें	पूर्ण योग
	कोयला	धातुएँ		योग		
१९४६	४५२	२७	६७	९४	९४	६४०
१९५१	५०५	९४	९६	१९०	१५७	८५२
१९५६	६५१	१७१	११०	२८१	१३७	१,०६९
१९५७	८१४	१८७	१००	२८७	१९२	१,२९३
१९५८	८९९	१६७	९८	२६५	२१९	१,३८३
१९५९	९४९	१५४	१०१	२५५	२०४	१,४०९
१९६०	१,०९०	१७९	१०६	२८४	२५८	१,६३२
१९६१	१,१७३	१७९	१०३	२८२	२८८	१,७४३
१९६२	१,३३८			२७२	२५२	१,८६८

खनिजों का व्यापार

१९६० में ५११० लाख रुपयों के मूल्य के खनिज निर्यात किए गए। १९६१ में इनका निर्यात मूल्य ४६४० लाख रुपया था। निर्यात की इस ९% कमी का मुख्य कारण मैंगनीज, कोयला, इल्मैनाइट और नमक की निर्यात मात्रा में कमी होना था। भारतीय खनिजों का निर्यात मुख्यतः जापान (३०%), चैकोस्लोवाकिया (१३%), इंगलैंड (११%), संयुक्त राज्य अमरीका (९%), और पाकिस्तान (६%) होता है। अन्य देश पश्चिमी जर्मनी, इटली और पोलैंड हैं। उपरोक्त सब देश मिलाकर भारतीय निर्यात का ८०% लेते हैं।

१९६० में भारत में विदेशों में से १०८० लाख रुपयों के खनिज आयात किए गए जब कि १९६१ में इनका मूल्य ११९० लाख रुपया था। आयात में चीनी मिट्टी, कोयला, जस्ता, सीसा, ताँबा, क्रायोलाइट, सुहागा, हीरे, फ्लूरोस्फर लोहे और इस्पात का सामान, संगमरमर, अल्यूमीनियम, टिन मुख्य थे। सीसा का आयात ब्रह्मा, मैक्सिको, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों से तथा जस्ता का आयात आस्ट्रेलिया,

कनाड़ा, सं. राज्य अमरीका, कांगो रिपब्लिक, रूस, जापान, दक्षिणी रोडेशिया, मोज-म्बीक आदि देशों से; तांबे का आयात उत्तरी और दक्षिण रोडेशिया, सं० राज्य, कनाडा, कांगो रिपब्लिक और मोजम्बीक से; **अल्यूमीनियम** का आयात कनाडा, इंग-लैंड, यूगोस्लाविया, प० जर्मनी, सं. राज्य और रूस से तथा लोहे और इस्पात की वस्तुयें जापान, इंगलैड, प. जर्मनी, सं. राज्य, बेल्जियम, रूस, स्वीडेन, इटली, फ्रांस, हंगरी और कनाडा देशों से होता है ।

खनिज उद्योग की समस्यायें

खनिज पदार्थों में देश सामान्यतः धनी कहा जा सकता है किंतु भारत में खनिज पदार्थों के निकालने में कई असुविधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । उनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) यहाँ अधिकतर खनिज पदार्थ—मैंगनीज, अभ्रक, क्रोमाइट, मैगनेसाइट, कैनाइट और इलैमैनाइट—विदेशों को निर्यात करने को ही निकाले जाते हैं जिससे देश को आर्थिक हानि बहुत होती है ।

(२) यद्यपि खानें बहुत हैं किंतु उनमें सुव्यवस्थित रूप से काम नहीं किया जाता । सबसे पहले ऊपरी भाग की खानें खोदी जाती हैं किंतु ज्यों-ज्यों गहराई बढ़ती जाती है दूसरी खानें खोद ली जाती हैं इससे खनिज पदार्थ पूरी मात्रा में नहीं निकाले जाते । बहुत तो यों ही व्यर्थ में नष्ट हो जाते हैं ।

(३) जल मार्गों की न्यूनता के कारण अधिकतर खनिज-पदार्थों को ले जाने का कार्य रेलें ही करती हैं अतः व्यय बहुत होने के कारण वे मँहगे पड़ते हैं ।

(४) नये भागों में खनिज-पदार्थों के सम्भावित क्षेत्रों का पर्य्यवेक्षण अभी तक पूरी तरह नहीं हो पाया है । कई भागों की भू-प्रकृति का अब तक पता नहीं लग पाया है । आसाम और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों की तो पूरी प्रकार जाँच भी नहीं हो पायी है । कई भागों में यद्यपि कुछ खनिजों के सुरक्षित भंडार होने का अनुमान अवश्य लगाया गया है किंतु विश्वसनीय तौर पर यह कहना कठिन है कि वे किस प्रकार के हैं और किस उपयोग के लिए उपयुक्त हो सकते हैं ।

(५) खनिज पदार्थों के निकालने सम्बन्धी नीति का अभाव, खनिजों के पूर्ण उपयोग करने के साधनों की कमी, खानों पर राज्य का अपूर्ण नियंत्रण, खनिजों की बिक्री सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव, शिक्षित और प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी तथा आधुनिक यंत्रों का खनिज निकालने में अपर्याप्त प्रयोग आदि अन्य असुविधायें हैं ।

अस्तु भारत की खनिज सम्पत्ति का पूर्ण उपयोग होने के निमित्त निम्न उपाय काम में लाने चाहिये :—

(१) उचित अन्वेषण और निरीक्षण के उपरांत देश की खनिज सम्पत्ति का नियमित तथा आयोजित उपभोग होना चाहिये ।

(२) देश की खनिज सम्पत्ति को पूरी तरह प्रयोग में लाने के लिये आयात निर्यात दोनों पर ही भारी कर लगा देने चाहिये । इसी हेतु कच्ची मैंगनीज, क्रोमीयम, अभ्रक, टाइटैनियम, फास्फेट तथा अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टियों का निर्यात सर्वथा रोक कर देश की खानों की उन्नति की जाये ।

(३) खानें खोदना प्रकृति की सम्पत्ति का अपहरण करना है । एक बार

भूगर्भ से निकाले जाने पर उतनी मात्रा में खनिज सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं। इसीलिए खानें खोदना एक प्रकार की डकैती (Robber Economy) कहलाती है। जिस गति से खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं अथवा उनका अनियोजित उपयोग होता है उसे देखकर भूगर्भशास्त्रियों का कहना है कि भविष्य में इन पदार्थों की कमी पड़ सकती है। अतः यह आवश्यक है कि इस सम्पत्ति का संरक्षण और उचित उपयोग किया जाय।

(४) खनिज पदार्थ-खाद्यान्न वस्तुयें नहीं हैं अतः उनकी मांग में सदैव घटा-बढ़ी होती रहती है। इसी के अनुसार उनके उत्पादन की मात्रा में भी कमी या वृद्धि होती है। अस्तु, देश में ऐसे नये आधारभूत उद्योगों के विकास की नितांत आवश्यकता है जिनमें खनिजों का प्रायः नियमित उपयोग होता रहे तथा खनिज व्यवसाय पनप सके।

(५) देश के विभिन्न भागों में जहाँ यातायात की असुविधा है वहाँ यातायात के विभिन्न साधनों की उन्नति कर नये क्षेत्रों का पर्य्यवेक्षण किया जाये और खनिज पदार्थों की संरक्षित राशि का यथोचित ज्ञान प्राप्त क़िया जाय।

(६) कुछ खनिजों के स्थानापन्न (Substitutes) निकाले जायें जिससे हमें विदेशों में आश्रित न रहना पड़े। इसके अतिरिक्त वर्तमान धातुओं के उपयोग की विभिन्न क्रियाएं ज्ञात की जायें।

(७) अनार्थिक खदानों को राज्य नियंत्रण द्वारा बंद कर दें और खनिज व्यवसाय कुशल और शिक्षित व्यक्तियों के हाथ में रहे।

खानों के विकास करने के लिए भारत में निम्न प्रमुख सरकारी संस्थाओं का सहयोग है :—

(१) भारतीय खान विभाग (Indian Bureau of Mines, Nagpur)

(२) भूगर्भ निरीक्षण विभाग (Geological Survey of India, Calcutta)

(३) राष्ट्रीय धातु प्रयोग शाला (National Metallurgical Institute)

(४) राष्ट्रीय ईंधन अन्वेषण संस्था (National Fuel Research Institute)

इनके अतिरिक्त भारत सरकार ने चार क्षेत्रीय मण्डल खनिज विकास योजना के अन्तर्गत स्थापित किए हैं जो अजमेर, कलकत्ता, नागपुर व बंगलौर में हैं। इनके कार्य क्षेत्र इस प्रकार हैं :—

(१) **अजमेर तथा उत्तरी मण्डल**—जम्मू तथा काश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान।

(२) **कलकत्ता तथा पूर्वी मण्डल** :—पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम, मनीपुर वत्रिपुरा, उड़ीसा व अंडमान द्वीप समूह।

(३) **नागपुर अथवा मध्य मण्डल**—मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र व आंध्र।

(४) **बंगलौर अथवा दक्षिण मण्डल** :—मैसूर, मद्रास व केरल।

भारतीय खान विभाग की स्थापना १९४८ में की गई थी। इसका कार्य देश में खनिज की खोज करना और उसको निकालने का प्रबन्ध करना है। खान विभाग

ने १९५४ में बड़े पैमाने पर खोज का कार्य आरम्भ किया और १० वर्ष के भीतर ही बहुत से खनिज भंडार का पता लगाया है। अब तक इसने निम्न खनिजों के भंडारों का पता लगाया है :

कोयला	१९६·९० करोड़ टन	चूने का पत्थर और डोलोमाइट	८·८६ करोड़ टन
लोहा	८१·१० ,,	घटिया मैंगनीज	०·८१ ,,
तांबा	१०·५५ ,,	पाइराइट	७·६२ ,,
सीसा-जस्ता-चाँदी	०·६६ ,,	मैंगेनसाइट	१·२९ ,,
एपैटाइटत	०·०१५ ,,		

इनका मूल्य लगभग ४२ अरब रुपया होता है।

तृतीय योजना के अन्तर्गत खनिज पदार्थों सम्बन्धी नीति इस प्रकार निर्धारित की गई है :—

(१) अभी जो खनिज एवं धातुऐं पूर्णत या अंशतः विदेशों से आयात की जाती हैं उनके कार्यशील भंडारों का पता लगाना।

(२) लोहा, बाक्साइट, जिप्सम, कोयला, चूने का पत्थर आदि खनिजों के अतिरिक्त भंडारों का पता लगाना जिससे देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

(३) नयी खानों और नये खनिज भंडारों का पता लगाना जिससे उनका निर्यात अधिक मात्रा में किया जा सके

खनिज-विकास के लिए तृतीत योजनाकाल में ४७८ करोड़ की राशि निर्धारित की गई है।

हम भारत की खनिज सम्पति का वर्णन इन आधारों पर करेंगे :

(क) धातु-खनिजें

(ख) अधातु-खनिजें,

(ग) अलौह धातुयें, और

(घ) इमारती पत्थर

अध्याय १३

खनिज सम्पति (क्रमशः)

धातु खनिजें

(METALLIC MINERALS)

१. लोहा (Iron)

लोहे की मुख्य खनिज ठोस काले या लाल गेरू का पत्थर "**हैमेटाइट या मैगनेटाइट**" होती है जो जलज शिलाओं और आग्नेय शिलाओं के किनारे पायी जाती है।

लोहे की किस्म

भारत में तीन प्रकार का लोहा मिलता है : (१) **हैमेटाइट लोहा** (Hematite)—जिसमें धातु का प्रतिशत ६० से ६६ तक होता है। इसमें धातु ठोस कणों अथवा चूर्ण के रूप में मिलती है। इस प्रकार का लोहा बिहार-उड़ीसा में सिंहभूम, क्योंझार, मयूरभंज जिलों: मध्य प्रदेश में डाली-राजहरा की पहाड़ियाँ, रावघाट और जबलपुर; महाराष्ट्र में रत्नागिरि, लोहारा, पीपल गांव; मैसूर में बाबाबूदन की पहाड़ियों और संडूर में मिलता है। इस प्रकार का लोहा मुख्यतः पहाड़ियों के ऊपरी भागों में मिलता है।

(२) **मैग्नेटाइट लोहा** (Magnetite)—यह आग्नेय चट्टानों वाले प्रदेशों में विशेषतः द० पूर्वी सिंहभूम मद्रास, आन्ध्र, मैसूर, हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले और उड़ीसा की पालामाऊ की खानों में मिलता है। इसमें धातु का अंश ७२ प्रतिशत तक होता है। इस धातु में टाइटैनियम, वैनेडियम ओर क्रोमीयम के अंश भी पाये जाते हैं।

(३) **लैटराइट लोहा** (Laterite)—मुख्यतः महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और मद्रास राज्यों से प्राप्त होता है किन्तु अन्य प्रकार का लोहा सुविधापूर्वक मिल जाने से इसको अधिक नहीं निकाला जाता।

१९६१ में विभिन्न किस्मों के लोहे की अयस का उत्पादन इस प्रकार था :—

धातु का प्रतिशत	कुल उत्पादन का प्रतिशत
६७% से अधिक	२·१०
६५% से ६७%	९·२७
६३% से ६५%	२४·६८
६०% से ६३%	२५·९६

५८% से ६०%	२१·०६
५८% से कम	१६·६०

उत्पादन क्षेत्र

यद्यपि विश्व का केवल ३% लोहा ही भारत में मिलता है किन्तु लोहा उत्पादक देशों में भारत का स्थान ८ वां है।

भारत का प्रमुख लोहा-क्षेत्र बिहार राज्य के सिंहभूमि जिले में (कोम्पिलाई) पूर्वी रियासतों में होता हुआ उड़ीसा तक ४८ कि० मीटर की लम्बाई में चला गया है। इस क्षेत्र में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। मैदान के ऊपर ४५७ मीटर तक भी अधिक ऊँची पहाड़ियों के रूप में उच्चकोटि का हैमेटाइट प्रकार का कच्चा लोहा पाया जाता है। यहाँ लोहा बहुधा सतह के निकट ही मिल जाता है, अतः उसे खोदने में अधिक व्यय नही पड़ता। अकुशल मजदूरों द्वारा लोहे के टुकड़े टुकड़े करके मोटर ठेलों में लाद दिये जाते हैं। इस लोहे की धातु में ७०% लोहा होता है। इस पेटी में लोहे का जमाव इतना अधिक है कि अनुमान किया जाता है कि इंगलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका के लोहे के कारखाने के समान ये ३०० वर्षों तक भारत के लोहे के कारखाने चलाने के लिये पर्याप्त हैं।[१] इस लोहे-क्षेत्र में कच्चे लोहे का कुल जमाव २७२ करोड़ टन है। सिंहभूम १०५ करोड़ टन; बयोंन-झार ९९ करोड़ टन; बोनाई ६८ करोड़ लाख टन; और मयूरभंज २ करोड़ टन। ये जमाव ६८ किलोमीटर लम्बे और ३२ कि० मीटर चौड़े क्षेत्र में फैले हैं।

इन खानों के लोहे के प्रमुख उपभोक्ता टाटा कम्पनी, इंडियन आयरन एंड स्टील कम्पनी और हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड है।

बिहार में लोहा सिंहभूम जिले के **कोल्हन** और **नोनामुंडी** व **गुआ** लोहा क्षेत्र की **पंसिराबुरू** और **बडाबुरू** खानों से निकाला जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पंसिराबुरू में १ करोड़ टन और बडाबुरू में १५ करोड़ टन लोहा भरा पड़ा है जिसमें लगभग ६४% लोहा है। ये खानें पूर्वी रेल से जुड़ी हैं अतः इसका अधिकांश उपयोग टाटा कम्पनी द्वारा ही किया जाता है। कुछ लोहा भारतीय लोहा कम्पनी द्वारा भी काम में लाया जाता है।

इन खानों के अतिरिक्त मयूरभंज जिले में **गुरुमहिसानी**, **ओकम्पाद** और **बादामपहाड़** में भी लोहे की महत्वपूर्ण खानें हैं। गुरुमहिसानी में धातु की तहें तीन समानान्तर और भिन्न पेटियों में मिलती हैं जो क्रमशः २१३४; १६५६ तथा ९१४ मीटर लम्बी और कई मी० तक चौड़ी हैं। यहाँ कच्ची धातु में लोहे का अंश ६४%से भी अधिक है। गुरुमहिसानी में खनिज का अनुमान ६० लाख टन; सुलेपात की पहाड़ी में २० लाख टन और बादामपहाड़ में ९० लाख टन खनिज का अनुमान लगाया गया है। ओकम्पाद (सुलेपात) में धातु का जमाव खोरकई नदी के पश्चिम में स्थित है। यहाँ सुलेपात पहाड़ी की धातु में लोहे का अंश ७८% है। बादामपहाड़ में ९१४ मीटर लम्बे और १५२ मीटर चौड़े क्षेत्र में लोहा मिलता है। इसमें धातु का अंश ५६ से ५८% तक पाया जाता है। ये तीनों क्षेत्र सम्पूर्ण भारत का ⅓ भाग कच्चा लोहा उत्पन्न करते हैं। गुरुमहिसानी में खनिज का अनुमान ६० लाख टन; सुलेपात की

1. *J. C Brown*, India's Mineral Wealth, p. 58.

पहाड़ी में २० लाख टन और बादामपहाड़ में ६० लाख टन खनिज का अनुमान लगाया गया है। कोयले और डोलोमाइट के निकट ही मिलने का कारण इन खानों का उपयोग अधिक हो सकता है।
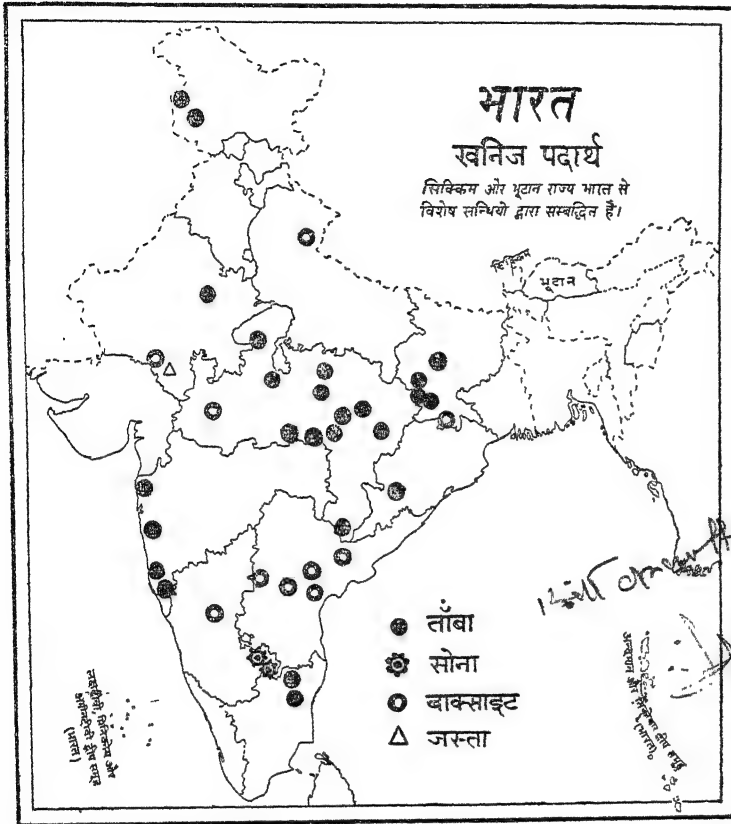
चित्र ११०. भारत के खनिज पदार्थ

उड़ीसा राज्य में बोनाई और कोमपिलाई की पहाड़ियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहाँ कच्चे लोहे से ६० प्रतिशत लोहा निकाला जाता है।

मैसूर राज्य में बाबाबूदन की पहाड़ियों में भी उत्तम श्रेणी का लोहा भरा पड़ा है। इनका जमाव २-३ करोड़ से ६ करोड़ टन के बीच में आँका गया है। मैसूर के भद्रावती लोहे के कारखानों में केमागुंडी की खानों का लोहा काम में लाया जाता है। इसमें ६४% लोहे की मात्रा होती है। बलारी के सन्दूर क्षेत्र, शिमोगा, तुमकुर, धारवाड़, चितलद्रुग और चिकमंगलौर में भी लोहा निकाला जाता है।

मद्रास में मैगनेटाइट किस्म का लोहा पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा जमाव सलेम—तिरूचिरापल्ली में ३० करोड़ टन कूंता गया है किन्तु कोयले की कमी के कारण यह अभी तक काम में नहीं लाया जा सका है। मद्रास में लोहे के

मुख्य क्षेत्र—गोदामलाई, थालमलाई, सिंगापट्टी, थिरथामलाई, पंचैमलाई, कोलेमलाई और कंजमलाईहैं। यहाँ धातु में ३५ से ४० प्रतिशत तक लोहा मिलता है। इनमें धातु के जमाव अक्षय मात्रा में होने का अनुमान है।

मध्य प्रदेश में द्रुग जिले में राजहारा पहाड़ियाँ तथा बस्तर, रायगढ़, रावघाट सरगूजा, बिलासपुर, जबलपुर, मांडला, बालाघाट आदि जिलों में धाली पहाड़ियों में भी ठोस लोहे की पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। ये पहाड़ियाँ अपने चारों ओर की चौरस भूमि की सतह से कहीं ७३० मीटर उठ गई है और ३२ कि ० मीटर तक लगातार टेढ़े-मेढ़े आकार में चली गई है। अमेरिकन विशेषज्ञों ने धाली और राजहारा को 'संसार का खनिज आश्चर्य' कहा है। यहाँ लगभग ७५ लाख टन लोहे के जमाव होने का अनुमान है। इनमें लोहे का भाग ६७% है। **बस्तर जिले** में चेलाडीला में ६१ मीटर की गहराई तक लगभग ६१ करोड़ टन के संभावित भंडार हैं। ये भंडार उच्च कोटि के है। **रावघाट** में ४५० मीटर की ऊँचाई तक हैमेराइट पाया जाता है इसके अनुमानित भंडार ७४ करोड़ टन के हैं। जबलपुर में अधिकांश भंडार ४५-६०% शुद्ध धातु वाले हैं जो अगदिया, जौली, सिलौंदी, गोसालपुर, घोघारा, सरौली और कन्हवाड़ में है।

पश्चिमी बंगाल में बर्दवान जिले में दामूदा श्रेणी में लोहा-प्रस्तरों से लोहा प्राप्त किया जाता है। दार्जिलिंग में भी लोहे की नई खानों का पता लगा है।

उत्तर प्रदेश में गढ़वाल (नागपुर परगना), अल्मोड़ा (सीमल खेत और पोन्नार घाटी) तथा नैनीताल (रामगढ़, खैरना, कालाढुंगी और दिचौरी) में लगभग १ करोड़ टन के जमाव होने का अनुमान है।

हिमाचल प्रदेश में भी मंडी क्षेत्र में लगभग १८ किलोमीटर लंबाई में ९० मीटर की गहराई तक ६ करोड़ टन लोहे के भंडार हैं।

गुजरात में नवानगर, पोरबन्दर, जूनागढ़ और भावनगर में भी लोहा मिलता है। गुजरात में बड़ौदा और खांडेश्वर की खानों से भी लोहा निकाला जाता है।

आंध्र प्रदेश में लोहे का खनन कृष्णा, कर्नूल, कडुप्पा, चित्तूर, गंतूर तथा वारंगल जिले में किया जाता है। अभी आंध्र-प्रदेश में कई नई खानों का भी पता लगा है जिसनें लगभग ४० करोड़ टन जमाव होने के अनुमान लगाए गए हैं। ये खानें क्रमशः गंतूर जिले में ओंगोल ग्रूप (कोनीजेडू, मरला पाडू और परनामिहा स्थानों में) और नैलोर जिले में कंडूकर तालुका में स्थित हैं। ऐसा अनुमान है कि यहाँ कुल जमाव में लगभग ३० करोड़ टन में धातु का प्रतिशत ३३ से ३७ तक है और शेष में धातु का प्रतिशत २५ है। इन जमावों की कार्याविधि कई शताब्दियों तक की मानी गई है। आंध्र प्रदेश में ही ३ लाख टन के अन्य जमाव कडुप्पा जिले में छबाली, पगाड़-लापल्लै, राजमपेट, पैंडलीमारी और मन्तमपली में हैं।

महाराष्ट्र में चांदा जिले में उत्तम श्रेणी के लोहे के पर्याप्त भंडार हैं जिसमें धातु का अंश ६१ से ६७ प्रतिशत तक है। यहाँ लोहा अधिकतर लोहारा रत्नागिरी और पीपल गाँव में निकाला जाता है। लोहारा पहाड़ी ६० मीटर लम्बी और २० मीटर चौड़ी है। पीपल गाँव के लोहा-भंडार अधिक बढ़िया श्रेणी के नहीं हैं। गुजरात में बड़ौदा और खांडेश्वर की खानों से भी लोहा निकाला जाता है।

पंजाब में लोहे का जमाव एक ३½ कि० मीटर लम्बी पट्टी में है जो पंजाब में महेद्रगढ़ जिले से होती हुई छपरा, अंतरी और बिहारीपुर तक चली गयी है। इस पट्टी में २० लाख टन जमाव होने का अनुमान है। यह लोहा खनिज इस्पात बनाने के योग्य तो है किन्तु प्रचुर मात्रा में नहीं है।

राजस्थान में थोड़ा लोहा जयपुर, सीकर, अलवर, उदयपुर, बूंदी, और भीलवाड़ा जिलों में भी मिलता है। उदयपुर जिले में नाथरा की पाल स्थान पर २० लाख टन बढ़िया किस्म के लोहे के जमाव पाये गए हैं जिनमें गंधक और फास्फोरस के अंशों का अभाव है।

कच्चे लोहे का उत्पादन

राज्य	जिला	१९६० मात्रा (टौंस)	मूल्य (०००रु०)	१९६१ मात्रा (टौंस)	मूल्य (०००रु०)
आंध्र प्रदेश	अनंतपुर, चित्तूर, कडुप्पा, खमाम, कृष्णा, कर्नूल, नैलोर	३२२,६११	२,९१३	२११,८८२	१,६८९
विहार	सिंहभूम	२८,४७,२०४	२४,५३४	२९,५९,८३४	२२,५५८
मध्य प्रदेश	द्रुग, ग्वालियर, जबलपुर	१४,४८,७३०	१५,३४१	२३,००,८२३	२५,२०४
महाराष्ट्र	चांदा रत्नागिरी	३२०,३००	६,३१०	३२२,४३७	५,७०५
मैसूर	बलारी, बीजापुर चिकमगलूर, चित्तलद्रुग, उत्तरी कनारा, शिमोगा, द० कनारा, तुमकुर	१८,७२,००६	७,२२१	१६,७६,४२३	६,५८६
उड़ीसा	कटक, क्योंझार, मयूरभंज, सुन्दरगढ़	३७,३४,७५६	३२,६५१	४६,८३,४५५	३६,४८०
पंजाब	मोहिन्दरगढ़	१२,२५९	८६	१२,१९२	९१
राजस्थान	जयपुर, झुंझुनू सीकर, उदयपुर	१,२५,४२५	१,१९९	८६,८५६	७८९
भारत का योग		१,०६,८३,२९१	९०,२८५	१,२२,५३,९०२	१,०२,१०२

लोहे के सुरक्षित भंडार

भूगर्भ-शास्त्रियों का अनुमान हैं कि भारत में उत्तम किस्म के (६८% धातु वाले) लोहे के जमाव पर्याप्त मात्रा में हैं। यद्यपि हमारे जमाव अन्य देशों की तुलना में कम हैं किन्तु हमारे यहाँ की धातु में गधक का अंश ०.६ प्रतिशत से अधिक नहीं होता अतएव ये जमाव उत्तरी अमरीका की मिनेसोटा, विस्कोंसिन और मिशीगन की खानों से प्राप्त किए जाने वाले लोहे से अधिक उत्तम समझे जाते है। बिहार, उड़ीसा के जमाव इतने अधिक हैं कि इनके द्वारा प्रतिवर्ष १५ लाख टन ढला लोहा लगभग १,००० वर्षो तक बनाया जा सकता है।

भारत में लोह अयस के सुरक्षित भंडार इस प्रकार अनुमानित किये गये हैं:—

राज्य	प्रमाणित भंडार (लाख मैट्रिक टन)	संभावित भंडार (लाख मैट्रिक टन)
	हैमेटाइट अयस	
बिहार-उड़ीसा	८२,६००	२७,८७६
मध्य प्रदेश	—	१४,६५३
महाराष्ट्र	६६,६००	४२६
मैसूर	—	६,२२२
आंध्र प्रदेश	—	४१८
काश्मीर	—	५२
राजस्थान	—	५६
पंजाब	३०६	२०
उत्तर प्रदेश	३०६	१०२
	मैगनेटाइट अयस	
मद्रास	१०,२००	३,१११
आंध्र प्रदेश	३,६६६	३,६६८
मैसूर	५,१००	२,१६३
बिहार-उड़ीसा	—	५८
हिमालय प्रदेश	६१२	६२२
	लिमोनाइट अयस	
पश्चिमी बंगाल	२०,०००	५,२००
सम्पूर्ण भारत का योग	२,१६,३६०	६८,२५५

भारत के भू-गर्भ-विभाग के अनुसार देश में विभिन्न प्रकार के (Probable) और संभावित (Potential) भंडार इस प्रकार हैं :—

संक्षेप में ये जमाव इस प्रकार हैं:—		अनुमानित भंडार	सम्भावित भंडार
हैमेटाइट धातु		५३,१६० (करोड़ टन)	१७६,३० करोड़ टन
मैगनेटाइट ,,		६,७२० ,,	१६,४६० ,,
लिमोनाइट ,,		५,००० ,,	२०,००० ,,
	योग	६७,६०० ,,	५७,१२० ,,

भारत में लोहे का उत्पादन निरन्तर गति से बढ़ रहा है। १६०४-८ में यह उत्पादन ०·८ लाख मैट्रिक टन का था, १६१४-१८ में यह ४·३ लाख टन; १६३४—३६ में २४·६ लाख टन और १६५० में २६·७ लाख टन था। १६६० में यह १०६ लाख टन का तथा १६६१ में १२२ लाख टन का हुआ और १६६५-६६ के अंत तक यह ३२० लाख टन हो जाने का अनुमान है।

प्रथम महायुद्ध और उसके उपरांत के ५ वर्षों में भारत में लोहा आयात किया जाता था—औसतन प्रतिवर्ष ३१ हजार टन। किन्तु इसके बाद से ही भारत से लोहे का निर्यात होने लगा है। १६५१-५२ में लगभग २ लाख टन का निर्यात किया गया। १६६२-६३ में यह मात्रा ३६ लाख टन की थी। कलकत्ता, विशाखापट्टनम और मद्रास निर्यात के प्रमुख द्वार हैं।

निर्यात से २० करोड़ रुपये की मुद्रा मिलती है। यह निर्यात रूमानिया, यूगोस्लाविया, जर्मनी, पोलैंड, इटली, चैकोस्लाविया और जापान आदि देशों को किया गया।

92

२. मैंगनीज (Manganese)

मैंगनीज धातु प्राय: काले रंग की प्राकृतिक भस्मों के रूप में पाई जाती है। भारत में इसकी मुख्य खनिज साइलोमेलेन (Psilomelane) और ब्रोनाइट (Braunite) ही है। ये दोनों खनिज ठोस काले रंग की होती हैं किन्तु साइलोमेलेन कुछ नरम और रवा-हीन (amorphous) होती है और ब्रोनाइट कड़ी और रवेदार (crystalline)।[२] यह अधिकतर परतदार चट्टानों में मिलती है।

इस धातु का मुख्य उपयोग सख्त और कड़ी फौलाद बनाने में होता है। इसके लिए लोहे और मैंगनीज का धातु मेल किया जाता है जिसे फैरो-मैंगनीज (Ferro-manganese) कहते हैं। इसी धातु से पोटेशियम परमैंगनेट नामक लवण प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग कांच का रंग उड़ाने, रोगन और वार्निशों को सुखाने, तथा बिजली की बैटरियों में; आक्सीजन तथा क्लोरीन आदि गैसों और ब्लीचिंग पाउडर बनाने में भी किया जाता है। आजकल बिजली, कांच और रासा-

२. साइलोमेलेन में धातु का प्रतिशत ४५ से ६० तक तथा ब्रोनाइट में ६२ प्रतिशत तक होता है।

यनिक उद्योगों में भी इसका प्रयोग बढ़ गया है। वास्तव में इस धातु के इतने अधिक उपयोग होने लगे हैं कि इसे 'Jack of all Trades' कहने लगे है।

उत्पादन क्षेत्र

मैंगनीज की खनिज का जमाव निम्न स्थानों में निम्न प्रकार की शिलाओं में पाया जाता है :—

(१) मैंगनीज-दार प्राचीन आग्नेय चट्टानों (Kodurites) में कहीं-कहीं इस धातु की खनिज निविष्ट हो गई है। इस प्रकार की खनिज आंध्र के गंजाम और श्री काकाकुलम तथा उड़ीसा के कोरापुट जिलों में पाई जाती है। फास्फोरस और लोहे का अंश अयस में अधिक होने से धातु मध्यम श्रेणी की होती है।

(२) प्राचीन काल की परिवर्तित-जलज चट्टानों (Gondites) की तहों में मैंगनीज की खनिज मिलती हैं। इन जलज चट्टानों में ताप और दबाव से मैंगनीज की खनिज कहीं-कहीं निविष्ट हो गई है। इस प्रकार के जमाव मध्य प्रदेश के बालाघाट, छिंदवाड़ा, सिऊनी, झाबुआ जिलों में; उड़ीसा के गंगपुर और महाराष्ट्र के नामकोट, भंडारा, नागपुर, पंचमहल और छोटा उदयपुर जिले में मिलते हैं।

(३) उपरोक्त परिवर्तित शिलाओं के ऊपर और उनसे उत्पन्न जो कहीं-कहीं लैटेराइट शिलाऐं मिलती है उसमें मैंगनीज की खनिज पाई जाती है। यह खनिज मैसूर राज्य में चितलद्रुग, चिकमगलूर, शिमोगा, काडूर, संडूर, बलारी तथा तुमकर जिले में; मध्य प्रदेश के जबलपुर और बिहार उड़ीसा के क्योंनझार, कोलहान और सिंघभूम जिले में तथा महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिलों में पाई जाती है। अयस में लोहे का अंश अधिक होने से यह धातु निम्न श्रेणी की होती है।

भारत में मैंगनीज का मुख्य उत्पादक मध्य प्रदेश है। यहाँ **बालाघाट** जिले में (कटेझिरिया, उकवा, भटवेली, नेत्रा, कांटगझिरी, बोटेझिरी, कोचेवाही, रामरामा, सेलवा, जाम चिकपारा, तिरोडी, मिरगपुर, हटेडा, सुकली, सीतापाथर, और गर्रा स्थानों में); **छिंदवाड़ा** जिले में (गोवरी, वर्धाना, बुदकुम, गोटी, सीतापुर और मच्छीधाना में), मांडला, बस्तर, बिलासपुर, जबलपुर, धार, झाबुआ और इन्दौर जिलों में मैंगनीज मिलता है।

मैंगनीज उत्पादन की दृष्टि से महाराष्ट्र का स्थान द्वितीय है। यहाँ **नागपुर जिले** में (सलाई, भंडारखोरी, गांगुडोह, मोनगाँव, चारगाँव, मन्सर, पारसोदा, सान्दरी, चोर बावली, सटक, वेलेडोंगरी, नगरधान, रामडोंगरी, बारेगाँव, लोहडोंगरी, कोडेगाँव, गुमगाव और किलापुर में); **भंडारा जिले** में (डोंगरी, कुरभुरा, सीतासोगी, चिरबला, असोलपानी, कांदेरिया, फीटला, और नवगाँव में); तथा पंचमहल, रत्नागिरी, निजामाबाद, छोटा उदयपुर जिलों में और गुजरात में बड़ौदा में मैंगनीज पाया जाता है।

मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र दोनों राज्यों में कुल देश के जमावों के २/३ हैं। यहाँ २०५ किलोमीटर लम्बी और १६ किलोमीटर चौड़ी पट्टी दक्षिणी मध्य प्रदेश के बालाघाट और छिन्दवाड़ा जिलों से लगाकर महाराष्ट्र के नागपुर और भंडारों जिलों तक फैली है। इस पट्टी में १५० ला० टन के उत्तम जमाव होने का अनुमान है।

उड़ीसा में मैंगनीज का उत्पादन गंगपुर, बोनाई, क्योंझार, कोरापत, कालाहांडी, बोलंगिर, तालाक् और तलचर की खानें उल्लेखनीय हैं।

बिहार राज्य में मैंगनीज सिंहभूम जिले में चैबासा में मिलता है।

आंध्र प्रदेश में विशाखापत्तनम और श्री काकाकुलम जिलों में;- **मैसूर** में चितलद्रुग, काडूर, शिमोगा, तुमकुर, बलारी, बेलगाँव, उत्तरी कनारा और चिकमंगलूर में तथा **राजस्थान** में बांसवाडा और उदयपुर जिले में भी मैंगनीज निकाला जाता है।

नीचे की तालिका में मैंगनीज का उत्पादन बताया गया है :

मैंगनीज का उत्पादन

		१६६०			१६६१
राज्य	जिला	मात्रा (टॉस)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (टॉस)	मूल्य (०००)
आंध्र प्रदेश	श्री काकाकुलम	४०,८३५	६०७	६६,४५२	१,४८२
बिहार	सिंघभूम	१६,१८०	६५६	८,८२६	२२६
गुजरात	बड़ौदा, पंचमहल	७७,००८	५,३६६	७३,६०७	५,२८८
मध्य प्रदेश	बालाघाट, छिंदवाड़ा, जबलपुर, झाबुआ	२१६,०६४	२३,७१५	२२७,१६८	२१,१४१
महाराष्ट्र	भंडारा, नागपुर, रत्नागिरी	१८७,३५३	२३,००५	११७,३८६	२०,५१७
मैसूर	बेलगांव, बलारी, चितलद्रुग, धारवाड़, उ. कनारा, शिमोगा तुमकुर	३०२,२१६	११,५४८	२६६,७११	६,७६३
उड़ीसा	बोलनगिर, क्योंझार, कोरापुट, सुन्दरगढ़	३४६,८७६	१७,३६१	३८६,४०२	१५,५०४
राजस्थान	बांसवाड़ा, उदयपुर	५,६०८	१५१	३,८६१	११२
प० बंगाल	मिदनापुर	६२५	४	२७	१
भारत का योग		११,६८,७६५	८२,७४३	१२,१३,७४३	७४,०३७

भारत के मैंगनीज खनिज में धातु का अंश ४७ से ५२ प्रतिशत तक पाया जाता है जबकि रूस में यह अंश ४५%; घन्ना में ४१ से ५०% और ब्राजील में ३१ से ५० तक है। वस्तुतः भारत की खनिज उत्तम प्रकार की है। यही नहीं, यहाँ इस खनिज के जमाव भी अधिक हैं, भारत में मैंगनीज के सुरक्षित भंडार इस प्रकार हैं :—

मध्य प्रदेश	८·१ करोड़ टन;	आंध्र-मैसूर,	२५ लाख टन
उड़ीसा	१ लाख टन;	महाराष्ट्र	५० लाख टन
		राजस्थान	२·५ ,,

कुल संचित भंडार में से लगभग ११ करोड़ टन उच्च श्रेणी का है जिसमें ४५% तथा इससे अधिक मैंगनीज है।

देश में फैरोमैंगनीज उत्पन्न करने के ६ कारखाने हैं। मुख्य कारखाने मध्य प्रदेश में रामटेक, बिहार में जोदा और महाराष्ट्र में तुमसर नामक स्थानों पर स्थापित हैं। इनकी उत्पादन क्षमता ९३,००० टन है। इनमें से ५ में उत्पादन हो रहा है।
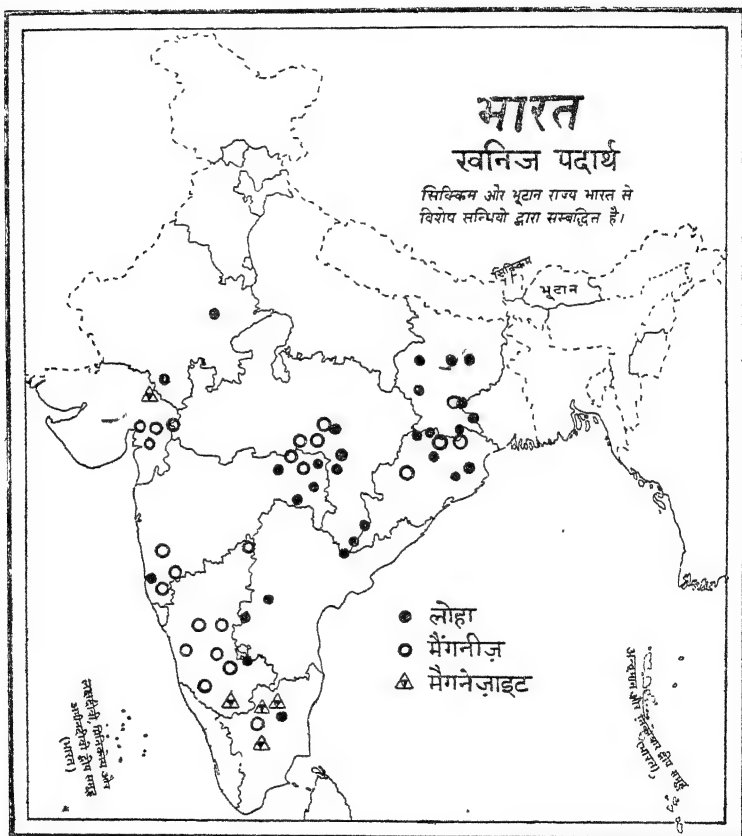
चित्र १११. खनिज पदार्थ

भारत से मैंगनीज का निर्यात मुख्यतः फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, जापान और ब्रिटेन को होता है। यह निर्यात विशाखापट्टनम, कलकत्ता और बम्बई बन्दरगाहों द्वारा होता है। १९५७ में १७ लाख टन और १९६२ में ७½ लाख टन मैंगनीज का निर्यात किया गया जिसका मूल्य क्रमशः ३२ करोड़ और ८ करोड़ रुपया था।

३. क्रोमाइट (Chromite)

क्रोमियम की मुख्य खनिज क्रोमाइट है जो लोहे के चुम्बक पत्थर के समान काले रंग की होती है। क्रोमाइट लोहे और क्रोमियम की भस्मों का सम्मेलन है। इस खनिज का रंग मटियाला काला होता है। क्रोमाइट खनिज से धातु और क्रोमियम और लोहे का धातु-मेल **फैरो-क्रोम** (Ferro-Chrome) बिजली की भट्टियों में शोध कर बनाया जाता है। क्रोमाइट की ईटें धातु शोधने की भट्टियों में अग्नि-प्रतिरोधक होने के कारण व्यवहृत की जाती हैं। क्रोमाइट का उपयोग चमड़ा सिझोने और रंगने में भी किया जाता है।

इसका सबसे अधिक उत्पादन मैसूर राज्य में होता है। यहाँ यह खनिज शिमोगा, शिन्डूवाली, चितलदुर्ग, हसन व मैसूर जिलों में पाया जाता है। देश का लगभग ६५% क्रोमाइट यहीं से प्राप्त होता है। इस राज्य में उत्तम क्रोमाइट के भंडार नुग्गीहल्ली, हसन और चितलदुर्ग जिलों में स्थित हैं।

इसके बाद उड़ीसा का स्थान है। यहाँ क्योंभार, कटक, धेनकेनाल आदि जिलों से देश के उत्पादन का लगभग ३१% प्राप्त होता है।

महाराष्ट्र में क्रोमाइट रत्नागिरी और सन्तवाडी; मद्रास में सलेम; आंध्र प्रदेश में कृष्णा और खम्मामेत और काश्मीर में लद्दाख जिले में भी क्रोमाइट निकाला जाता है।

भारत में १९५६ में ५४,०२४ टन और १९६१ में ६५,९२६ टन क्रोमाइट का उत्पादन किया गया जिसका मूल्य क्रमशः १९.६६ लाख रु० और २९.४७ लाख रु० था।

प्रायः उत्पादन की सम्पूर्ण मात्रा मद्रास और कलकत्ता बन्दरगाहों द्वारा ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जापान, नीदरलैंड, नार्वे, स्वीडेन, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका को निर्यात कर दी जाती है।

भारत में सब प्रकार के क्रोमाइट के भंडार इस प्रकार हैं :—[3]

भारत में क्रोमाइट के भंडार

राज्य	जिला		अनुमानित भंडार (लम्बे टनों में)
आंध्र प्रदेश	कोन्डापल्ले में कृष्णा		कई हजार टन होने का अनुमान
बिहार	सिंहभूम : जोजोहादू के पास		२०,५००
महाराष्ट्र	रत्नागिरी : कन्कोली के पास		५०,०००
	वागदा के पास		१७,०००
मद्रास	सलेम		२,२०,०००
मैसूर	चितलदुर्ग :	हसन	७,००,०००
		कादुर	२०,०००
		मैसूर	२०,०००
उड़ीसा	कटक		८,००,०००
		योग	३३,१४,५००

3. Indian Minerals Yearbook, 1959 (1960), p. 100.

४. टंगस्टन (Tungsten)

टंगस्टन की मुख्य खनिज **वूलफ्राम** (Wolfram) है जो टंगस्टन और मैंगनीज की भस्मों का रासायनिक सम्मेलन है। इसी खनिज को बिजली की भट्टी में शोध कर धातु निकाली जाती है। वूलफ्राम का रंग काला होता है और यह एक ओर से अधिक चमकदार होता है। यह अन्य धातु की खनिजों से अधिक भारी होती है। वूलफ्राम बिल्लौर-पत्थर की धारियों में पाया जाता है। ये धारियाँ ग्रेनाइट नामक आग्नेय चट्टानों के पास की भूमि में पाई जाती हैं। कहीं-कहीं ऐसी धारियों के पास ही वूलफ्राम के कण नदियों की बालू में भी पाये जाते हैं।

यह धातु अथवा इसका और लोहे का धातु मेल **फैरो-टंगस्टन** (Ferro-tungsten) विशेष प्रकार की फौलाद बनाने में काम आता है। प्रायः सब तेज चलने वाले और काट छाँट करने वाले यंत्र इसी फौलाद के बने होते हैं। इसका उपयोग बिजली के लैम्प के तार बनाने में भी होता है।

भारत में यह बिहार राज्य के सिंहभूम जिले, बंगाल के बांकुड़ा, महाराष्ट्र के नागपुर, मध्यप्रदेश के अगरगाँव और राजस्थान के जोधपुर डिवीजन में डीगाना में मिलता है।

१९६१ में ९,१७४ किलोग्राम टंगस्टन निकाला गया जिसका मूल्य ४३,००० रु० था।

५. बेरिल (Beryl)

जिन शिलाओं में अभ्रक पाया जाता है उन्हीं में थोड़ी मात्रा में बेरिल भी मिलता है। इसके रवे १ से ६ इंच लम्बे होते हैं किन्तु अधिकांश टुकड़े कई फीट के होते हैं। इसका उपयोग तांबा, अल्यूमीनियम, लोहा और निकल के साथ मिलाकर अन्य मिश्रण बनाने में किया जाता है। इसका उत्पादन बिहार राज्य के गया, हजारीबाग और कोडरमा की खानों में, राजस्थान में जोधपुर, उदयपुर और अजमेर जिलों में तथा आंध्र के नैलोर जिले में प्राप्त किया जाता है। यहाँ से लगभग ३०% उत्पादन का निर्यात कर दिया जाता है।

भारतीय भूगर्भ विभाग ने आंध्र प्रदेश में बैराइट (बेरियम-सल्फेट) की अनेक खानों का पता लगाया है। ये खाने मुख्यतः अनन्तपुर और कड्डप्पा जिलों में हैं। अनुमान लगाया है कि तीन मुख्य खानों में ७,११,५०० टन बैराइट है। कोत्तपल्ली में ३०,००० टन, नेरिजमुफल्ली में ६,००० टन और मत्मुकोटा में ७५,००० टन बैराइट की खानें कड्डप्पा जिले के कड्डप्पा और कमलपुरक तालुकों में, करनूल जिले के धोन, नन्दपाल और करनूल तालुकों में तथा खम्ममेत जिले के वैलाग्मेटला और रूडियम-कोटा में भी पाई गई हैं। इसका अभी अनुमान नहीं लगाया है कि इन खानों में कितना बैराइट है।

५. मैंगनेसाइट या भ्राजांगिज (Magnesite)

मैंगनेसाइट धातु का उपयोग इस्पात उद्योग में प्रयोग में आने वाली मिट्टी में लगाने की ईंटें बनाने में होता है। इसका उपयोग तरल कार्बन-डाई-आक्साइड, सिमैंट, कास्टिक, मैंगनेशिया, कांच, कृत्रिम पत्थर, ईंटें आदि बनाने और एपसम नमक, बम के

खोल (Bombshell), वायुयान बनाने और इस्पात उद्योग में भी किया जाता है। उत्पादन का एक बड़ा भाग विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है।

भारत में मैंगनेसाइट मद्रास में सलेम (चाक की पहाड़ियाँ), मैसूर में हसन और मैसूर जिले (कड़ाकोला); गुजरात के ईडर; राजस्थान के डूंगरपुर; उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा; बिहार के सिंघभूम जिले और केरल में पाया जाता है। उत्पादन का अधिकांश मद्रास और मैसूर के क्षेत्रों तक ही सीमित है। ३० मीटर की गहराई तक सुरक्षित भंडारों का अनुमान १० करोड़ टन का लगाया गया है। यहाँ यह डोलोमाइट और सर्पेन्टाइन शिलाओं के क्षेत्र में मिलता है।

१९६१ में २,०९,७४४ टन मैग्नेसाइट निकाला गया जिसका मूल्य ३४·७७ लाख रुपया था। १९६१ में ३० हजार मैट्रिक टन मैगनेसाइट का निर्यात जापान, नीदरलैंड, इंगलैंड, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका को किया गया जिसका मूल्य ४० लाख रुपया था। जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया और जैकोस्लोवाकिया आदि देशों में ६ लाख रुपये के मूल्य का मैगनेसाइट आयात भी किया गया।

७. सिलमैइट या तन्त्विज (Sillimanite)

सिलमैनाइट धातु शिस्ट और नीस शिलाओं से प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग उष्णरोध कार्यों में किया जाता है। सिलैमैनाइट के व्यापारिक महत्व के भंडार आसाम, मध्य प्रदेश (रीवाँ), मैसूर, केरल, महाराष्ट्र (भंडारा) जिले में हैं। असम की खासी पहाड़ियों में ६ मीटर की गहराई तक २·५ लाख टन के भंडारों का अनुमान है। मध्य प्रदेश के रीवाँ जिले में पिपरा में ९ मीटर की गहराई तक १ लाख टन जमाव का अनुमान है।

८. कुरविन्द (Corundum)

यह खनिज परिवर्तित शिलाओं से प्राप्त किया जाता है। इसके उत्पादन के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—

मैसूर में—मैसूर और हसन जिला;

मद्रास में—द० कनारा और सलेम जिला;

आंध्र में—अनन्तपुर, हैदराबाद जिला;

असम में—खासी की पहाड़ियाँ;

मध्य प्रदेश में—रीवां, और

महाराष्ट्र में—भंडारा जिला।

९. अणु-शक्ति वाले खनिज (Atomic Minerals)

भारत में न केवल कोयले और खनिज तेल के भंडार ही सीमित हैं वरन् वर्तमान गति से उपयोग में लाने पर भारत की जलशक्ति का भंडार भी आगामी कुछ वर्षों में समाप्त हो जाने की सम्भावना वैज्ञानिकों द्वारा प्रकट की गई है। अतः इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई है कि देश में अणु-शक्ति वाले खनिजों का पता लगा कर उनका उपयोग किया जाय। अनुमान लगाया लगा है कि १ पौंड यूरेनियम के

विश्लेषण से इतनी विद्युत शक्ति प्राप्त की जा सकती है जितनी २५ लाख पौंड कोयला जला कर। स्पष्ट है कि अणु-शक्ति वाले खनिजों द्वारा देश की शक्ति साधनों की समस्या हल की जा सकती है।

अणु-शक्ति के विकास में जिन खनिजों की आवश्यकता पड़ती है वे क्रमशः ये हैं :—

(१) यूरेनियम, (२) थोरियम, (३) बैरीलियम, (४) जिरकन, (५) ऐंटीमनी, (६) ग्रैफाइट।

(१) यूरेनियम (Uranium)

यह खनिज कई प्रकार की चट्टानों से प्राप्त की जाती है। भारत में यह खनिज गत ५० वर्षों से निकाला जाता था किन्तु इनमें द्वितीय युद्ध से पूर्व ही खनिज समाप्त हो गया था। सन् १६४६ में इस खनिज के दो नये क्षेत्रों का पता लगाया गया। पहला क्षेत्र बिहार में सिंघभूम जिले के तांबा क्षेत्र से सम्बद्ध है। यहाँ यूरेनियम की पट्टी ६७ कि० मीटर लम्बी है। दूसरा क्षेत्र मध्य राजस्थान में है।

भारत में इस खनिज की प्राप्ति चार स्रोतों से होती है : (क) धारवाड़ और आर्कियन चट्टानों से निम्न श्रेणी की धातु प्राप्त की जाती है। जैसे बिहार के सिंघभूम और मध्य राजस्थान में। इन चट्टानों में यूरेनियम की मात्रा ०·०३ से ०·१ प्रतिशत तक होती है। साधारणतः हल्की श्रेणी वाली धातु १ टन चट्टान में $\frac{१}{२}$ से २$\frac{१}{२}$ पौंड तक मिलती है।

(ख) **यूरेनियम** (Complex Uranium)—यह पैगमेटाइट्स तथा अन्य चट्टानों से (नायोबेट्स, टैन्टोलेट्स, टाईटैनेट्स आदि से) प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार की चट्टानों में यूरेनियम की मात्रा अधिक होती है—१० से ३० प्रतिशत तक किन्तु ये चट्टानें अधिक नहीं मिलतीं। पैगमेटाइट्स चट्टानें उत्तरी बिहार के अभ्रक क्षेत्र, मद्रास में नैलोर और मध्य राजस्थान के अभ्रक क्षेत्रों से सम्बद्ध पाई जाती हैं। केरल प्रदेश में भी ऐसी चट्टानें मिलती है।

(ग) केरल और मद्रास के तटीय भागों की मोनेजाइट (Monazite) नामक पीले रंग की बालू मिट्टी से भी यूरेनियम प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार की बालू मिट्टी कुमारी अंतरीप के तट के दोनों ओर १६१ कि० मीटर की लम्बाई तक पाई जाती है। यह मिट्टी समुद्रों की लहरों के प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप इकट्ठी हो जाती है। भारतीय मोनेजाइट विश्व की उत्तम श्रेणी की मोनेजाइट मानी जाती है। इसमें प्रायः ८ से १० प्रतिशत तक थोरियम आक्साइड और ०·२ से० ·४६%तक यूरेनियम मिलता है। इस खनिज के कण जिर्कन (Zircon) (जिरकोनिया की खनिज), चुम्बक पत्थर, इलैमेनाइट (टाईटैनियम और लोहे की खनिज), गार्नेट और स्फटिक इत्यादि अन्य खनिजों के कणों के साथ बालू में मिलते हैं। केरल राज्य के तटीय भागों में मोनेजाइट के २० लाख टन के भंडार अनुमानित किए गये हैं।

(घ) यूरेनियम का अन्य स्रोत चेरालाइट (Cheralite) खनिज भी है। यह भी केरल की बालू में मिलता है। इसमें यूरेनियम की मात्रा ४ से ६% तथा थोरियम की मात्रा १६ से ३३% तक होती है। चेरालाइट से हजारों टन यूरेनियम प्राप्त हो सकता है।

परमाणु शक्ति से बिजली उत्पादन के लिए पश्चिमी तट पर पहला बिजलीघर तारपोरे में बनाया गया है जो बम्बई से ६६ कि० मी० उत्तर की ओर है। यह लगभग ३ लाख किलोवाट बिजली तैयार करेगा। इसकी शक्ति ३८० मेगावाट की होगी। इस कारखाने के लिए यूरेनियम अमरीका से भी मंगवाया जायेगा। दूसरा विजलीघर कोटा के निकट स्थापित किया जायेगा।

(२) थोरियम (Thorium)

अणु-शक्ति के विकास के लिए दूसरा मुख्य खनिज थोरियम है जो मोनोजाइट रेत से प्राप्त किया जाता है। केरल राज्य की बालू मिट्टी में मोनोजाइट ८ से $१०\frac{१}{२}$% और बिहार की रेत में १०% तक पाया जाता है जबकि ब्राजील व अन्य देशों के मोनोजाइट में ५ से ६% ही थोरियम पाया जाता है। यह नीलगिरी, हजारीबाग, मेवाड़, मद्रास तथा पश्चिमी तटों के ग्रेनाइट क्षेत्रों में रवों के रूप में भी प्राप्त होता है इनके अतिरिक्त यह समुद्री रेत में भी पूर्वी और पश्चिमी तटों पर मोनोजाइट नामक बालू मिट्टी से प्राप्त होता है। केरल राज्य में २० लाख टन मोनोजाइट के जमाव होने का अनुमान लगाया गया है। इसमें १,५०,००० से १,८०,००० टन थोरियम की मात्रा है। इलैमेनाइट नामक बालू मिट्टी कई क्षेत्रों में पाई जाती है। इसका विस्तार कुमारी अंतरीप से लगा कर उत्तर में नर्मदा नदी की इस्चुरी तक पश्चिम में और महानदी के तट पर तिरूनलवैली तक पूर्वी तट पर है।

मोनोजाइट से सीरियम (Serium) प्राप्त किया जाता है जो सिगरेट लाइटर्स में चिनगारी पैदा करने वाले पदार्थ बनाने में काम आता है। ट्रेसर-बुलेट्स की घुंडियों, सर्च-लाइट, अणु बम शक्ति तथा बनावटी बैनजीन बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(३) बैरीलियम (Beryllium)

यह पदार्थ बेरील (Beryl) नामक खनिज से प्राप्त किया जाता है। यह देश के विभिन्न भागों में मिलने वाले पैगमेटाइट्स से मिलता है। ऐसे पैगमेटाइट्स अधिकांशतः अभ्रक क्षेत्रों में मिलते हैं। अतः राजस्थान, बिहार, आंध्र तथा मद्रास में यह मिलता है। इसका वार्षिक उत्पादन १,००० टन का है। अब काश्मीर, सिक्किम, आंध्र, मध्य प्रदेश और मद्रास के अन्य भागों में भी इस खनिज की खोज की जा रही है। भारत में मिलने वाले बैरील में बैरीलियम का प्रतिशत ब्राजील, अर्जेनटाइना, रोडेशिया, मैडेगास्कर और सं० रा० अमरीका की अपेक्षा अधिक है।

(४) जिरकन (Zircon)

यह खनिज भी केरल राज्य की बालू मिट्टी से प्राप्त किया जाता है। इससे जिरकोनिया (Zirconia) निकाला जाता है जिसका उपयोग मिट्टी के बर्तन के उद्योग में, रेडियो-ट्यूबों में, गोला-बारूद बनाने में तथा बिजली के जोड़ लगाने आदि कार्यों में होता है। जिरकोनिया उच्चकोटि का ताप विक्रीकारक होता है।

(५) एन्टीमनी या सुरमा (Antimony)

यह सफेद, रवेदार और सरलता से टूटने वाला पदार्थ है। यदि इसको रांगा, टिन या तांबे के साथ मिलाकर मिश्रणवाली धातु (alloy) बनाई जाये तो यह धातु को कड़ा बना देता है अतः इसका उपयोग बिज़ली की बैटरियों, नल, टाइप तथा

गोला-बारूद में प्रयोग की जाने वाली धातुओं के साथ होता है। एन्टीमनी का सल्फाइड का उपयोग दियासलाई में और एन्टीमनी की आक्साइड का प्रयोग पिग्मेंट में होता है जो रंग-रोगन व्यवसाय में व्यवहृत जाता है।

यह पंजाब के कांगड़ा जिले में लाहोल (Lahaul) में मिलता है। मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में भी यह मिलता है।

(६) ग्रैफाइट या लिखिज (Graphite)

यह अधिकतर नीस शिलाओं से प्राप्त होता है। इसका उपयोग पेंसिल का सीसा, रंग-रोगन, चिकनाई के तेल इत्यादि बनाने में होता है। यह ताप सोखने वाली धातु है अतः इससे धातु गलाने के पात्र भी बनाये जाते हैं।

इसके मुख्य उत्पादक क्षेत्र उड़ीसा में कालाहांडी, बोलनगिर, गंजाम और कोरापुट जिले में हैं। आंध्र में वारंगल, पश्चिमी गोदावरी, विशाखापट्टनम, खम्मामेत; बिहार में पालामाऊ जिले तथा मद्रास के तिरुनलवैली; राजस्थान के किशनगढ़ और अजमेर जिले; मैसूर के मैसूर जिले; उत्तर प्रदेश में अल्मोड़ा और पंजाब में गुड़गाँव जिले और मध्यप्रदेश के बेतूल जिले से भी ग्रैफाइट प्राप्त किया जाता है।

अध्याय १४

खनिज सम्पति (क्रमशः)

अधातु-खनिजें

(NON-METALLIC MINERALS)

१. अभ्रक (Mica)

अभ्रक आग्नेय अथवा परिवर्तित शिलाओं में सफेद या काले अभ्रक के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है। बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में भी निकाला जाता है जो साधारणतः ४½ मीटर लम्बे और ३ मीटर मोटे तक होते हैं। सफेद अभ्रक के टुकडे धारियों के रूप में बनी हुई पैग्मैटाइट (Pegmatite) नामक आग्नेय चट्टानों में ही मिलते है। सफेद अभ्रक को **रूबी-अभ्रक** (Ruby Mica) और हल्का गुलाबी-पन लिये अभ्रक को **बायोटाइट अभ्रक** (Biotite Mica) कहते हैं।

वर्तमान युग में अभ्रक का उपयोग अधिकतर बिजली के कारखानों में किया जाता है। प्राचीन काल से ही अभ्रक का उपयोग दवाइयाँ बनाने, सजावट करने और आभूषणों में जड़ने के लिए किया जाता रहा है। सफेद और गुलाबी रंग का अभ्रक अपनी स्वच्छता, लचक, तड़क और बिजली तथा गर्मी के लिए अचालकता तथा पारदर्शकता आदि गुणों के कारण छोटे-छोटे डायनमों, बिजली की मोटरों के कम्यू-टेटर, बेतार के तार, समुद्री विज्ञान, मोटर और हवाई यातायात आदि में अधिक उपयोग में आता है। इसके अतिरिक्त अपनी स्वच्छता और पतली-पतली परतों में पृथक हो जाने की रुचि के कारण अभ्रक लालटेन की चिमनियों, नेत्र-रक्षक चश्मों, चूल्हों की भट्टियों के मुँह पर पोतने, मकानों की खिड़कियों, छतों डालने के सामान और सजावट के सुन्दर कागज तथा खपरैलों में मिलाने के काम में लाया जाता है। यह अग्नि-प्रतिरोधक पदार्थों के समान बॉयलरों के ऊपर लगाने में भी काम आता है जिससे वे अधिक जल्दी ठंढे नहीं होते। अभ्रक को काटते समय जो चूरा बच जाता है उसे स्प्रिट में मिलाकर पतले-पतले परत बना लेते हैं। इस उद्योग को माइकेनाइट (Micanite) उद्योग कहते हैं। माइकेनाइट की चादरें किसी भी आकार और मोटाई की बन सकती। भाप से गर्म करके दवा कर घुमाने से वे किसी भी वांछित आकार में ढाली जा सकती हैं। इन उपयोगों से अभ्रक का औद्योगिक महत्व स्पष्ट हो जाता है। युद्ध व सैनिक दृष्टिकोण से भी अभ्रक का महत्व अधिक है।

उत्पादन क्षेत्र

विश्व में अभ्रक उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान सर्व प्रमुख है। यहीं से विश्व के कुल उत्पादन का लगभग ८० प्रतिशत अच्छी किस्म का अभ्रक प्राप्त होता है। निम्न प्रकार के अभ्रक से तैयार किये गए माइकेनाइट का ९०% भाग भी भारत से ही प्राप्त होता है। वैसे तो भारत में अभ्रक बिहार, मद्रास, केरल

मैसूर, राजस्थान आदि राज्यों में मिलता है किन्तु व्यापारिक दृष्टि से प्रथम दो क्षेत्र ही मुख्य हैं। १९६० में २९,१८२ टोंस तथा १९६१ में २८,१९५ टोंस अभ्रक निकाला गया जिसका मूल्य, क्रमशः २४६·९७ लाख और २३६·३९ लाख रुपया था।

भारत में अभ्रक के कुल उत्पादन का ६०% बिहार क्षेत्र से; २५% राजस्थान और १५% आंध्र प्रदेश से प्राप्त होता है।

बिहार राज्य में अभ्रक का क्षेत्र गया, हजारीबाग, भागलपुर, मुंघेर और संथाल परगना में फैला है। यह क्षेत्र १९ से २५ किलो मीटर चौड़ा और ९७से १२९ क्ि० मीटर लम्बा है। इसका क्षेत्रफल लगभग ४,१६० वर्ग किलोमीटर है। अधिकतर अभ्रक की खानें **कोडर्मा** (Kodarma), **दोमाचन्य, चाकल, धाव** तथा **तिसरी**

चित्र ११२. खनिज पदार्थ

इत्यादि स्थानों पर हैं। ये सब खानें कोडर्मा के जंगल में हैं। इस क्षेत्र से भारत का ७०% अभ्रक प्राप्त किया जाता है। इस क्षेत्र के अभ्रक को **बंगाल अभ्रक** (Bengal Mica or Ruby Mica), या माणिक किस्म का अभ्रक अथवा **बंगाल**

का लाल अभ्रक कहते हैं कारण कि यहाँ के अभ्रक के परतों के समूह का रंग फीका लाल होता है। यह अभ्रक उत्तम श्रेणी का होता है अतः इसका उपयोग विद्युत उद्योग में बहुत होता है। यह अभ्रक कलकत्ता से ही विदेशों को निर्यात किया जाता है।

अभ्रक का दूसरा प्रसिद्ध क्षेत्र **आंध्र प्रदेश** के नैलोर जिले में है। इसका क्षेत्रफल १,५४० किलोमीटर है। यह क्षेत्र लगभग ९६ किलोमीटर लम्बा और १२ से १६ किलोमीटर चौड़ा है। यहाँ की प्रसिद्ध खानें कालीचेडू और तेलाबाड़ है। ये खानें गडूर, कवाली, रायपुर और आत्मकूर में हैं। यह अभ्रक हरे रंग का होता है। अतः यहाँ का अभ्रक बिहार के अभ्रक से हल्का होता है। इसे विद्युत अभ्रक या हरा अभ्रक (Green Mica) भी कहते हैं। यहाँ से कुल उत्पादन का १०% मिलता है।

राजस्थान अभ्रक उत्पादन में देश का तीसरा राज्य है। यहाँ से कुल उत्पादन का लगभग २०% मिलता है। यहाँ अभ्रक का क्षेत्र उत्तर में जयपुर जिले से लगाकर दक्षिण में उदयपुर जिले तक ३२० किलोमीटर की लम्बाई में तथा ९० किलोमीटर की चौड़ाई में फैला है। अभ्रक की प्राप्ति यहाँ उदयपुर (भीलवाड़ा, शाहपुरा, रायपुर, राजनगर); अजमेर (ब्यावर, केकड़ी) टोंक, अलवर, भरतपुर आदि) डिवीजनों में होती है। यहाँ का अभ्रक उत्तम किस्म का होता है जिसका रंग हल्का हरा और गुलाबी होता है। सबसे अधिक अभ्रक भीलवाड़ा जिले से ही प्राप्त होता है।

उपरोक्त तीनों राज्यों के अतिरिक्त अभ्रक की प्राप्ति इन राज्यों में भी होती है :—

उड़ीसा—गंजाम, कोरापुट, कटक, संभलपुर जिलों में।

केरल—नय्यूर और पुन्नालूर जिलों में।

पंजाब—नारनौल और गुड़गांव जिलों में।

इन प्रदेशों में चट्टानों के अनियमित विन्यास के कारण अभ्रक के भंडार का यथोचित अनुमान लगाना कठिन है किन्तु ऐसा अवश्य अनुमान लगाया गया है कि अभी ऐसे भंडार हैं जिन्हें अभी तक छुआ भी नहीं गया है तथा उनसे वर्तमान उत्पादन की दर से अनेक दशाब्दियों तक अभ्रक प्राप्त होता रहेगा।

नीचे की तालिका में अभ्रक का उत्पादन बनाया गया है :—

अभ्रक का उत्पादन

राज्य	जिला	१९६० मात्रा (टोंस)	१९६० मूल्य (०००रु०)	१९६१ मात्रा (टोंस)	१९६१ मूल्य (०००रु०)
आंध्र प्रदेश	नैलोर, खम्मामेत विशाखापट्टनम	६,९७३	३,७,३७	६,९८३	३७,४१
बिहार	भागलपुर, गया, हजारीबाग, मुंघेर	१४,७१६	१५,५५७	१३,४९१	१४,२९७
केरल	क्विलोन	९५	२९	—	—

मद्रास	नीलगिरी	११४	१३०	११४	१३९
मध्य प्रदेश	बालाघाट	२	—	—	—
मैसूर	हसन	—	—	१२	—
उड़ीसा	गंजाम	—	—	३	—
राजस्थान	अजमेर, भीलवाड़ा पाली, सीकर, जयपुर, टौंक, उदयपुर	७,२८२	५,२४४	७,५८३	५,४५९
भारत का योग		२९,१८२	२४,६९७	२८,१९५	२३,६३९

भारत में अभ्रक की माँग कम है अतः उत्पादन का अधिकांश निर्यात कर दिया जाता है। यह निर्यात मुख्यतः कलकत्ता, बम्बई, विशाखापट्टनम, और मद्रास बन्दरगाहों से होता है। अभ्रक के मुख्य खरीददार इंगलैंड, संयुक्त राज्य, कनाडा जर्मनी, जापान, फ्रांस, नीदरलैंड्स, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, और चीन आदि हैं। १९६२-६३ में ३४२ लाख किलोग्राम अभ्रक निर्यात किया गया जिसका मूल्य १०·३६ करोड़ रुपया था।

२. नमक (Salt)

नमक **सोडियम क्लोराइड** और **क्लोरीन गैस** का मिश्रण होता है। इसका उत्पति स्थान समुद्र अथवा खारी झीलों में होता है। नमक के उत्पादन का अधिकांश भाग खाद, रासायनिक पदार्थ, काँच, प्लास्टिक, रंग, स्टार्च आदि उद्योगों में प्रयुक्त होता है। नमक का उपयोग मछलियाँ सुखाने, माँस जमाने, चमड़ा रंगने, सोडा बनाने, रंग को पक्का करने तथा ब्लीचिंग पाउडर बनाने में भी होता है। भोजन में तो बिना नमक के स्वाद ही व्यर्थ हो जाता है।

उत्पादन की अवस्थायें

नमक बनाने के लिए कुछ आदर्श अवस्थाओं की आवश्यकता पड़ती है जिनमें मुख्य ये हैं :—

(१) खारी जल मिलने की सुविधा—समुद्र तटीय भागों में या देश के आंतरिक क्षेत्रों में खारी पानी की झीलों या कुओं का सान्निध्य आवश्यक है।

(२) वर्षा का अभाव तथा शुष्क ऋतु की अनुकूलता।

(३) वेगवती पवनों और कड़ी धूप का होना।

(४) अधिक वाष्पीभवन क्रिया जिसके द्वारा नमकीन जल की क्यारियों से जलवाष्प बन कर उड़ सके।

उपरोक्त अवस्थायें मुख्य चार क्षेत्रों में पाई जाती हैं:—

(१) गुजरात का सौराष्ट्र तट;

(२) महाराष्ट्र-तट कोरोमंडल तट का दक्षिणी भाग अर्थात् कुमारी अंतरीप और नागापट्टम के बीच के क्षेत्र ;

(४) उत्तरी आंध्र तट—नैलोर और गोपालपुर के मध्यवर्ती क्षेत्र,

(५) आंतरिक क्षेत्रो मे साभर, पचभद्रा, डीडवाना आदि खारी जल की झीलें।
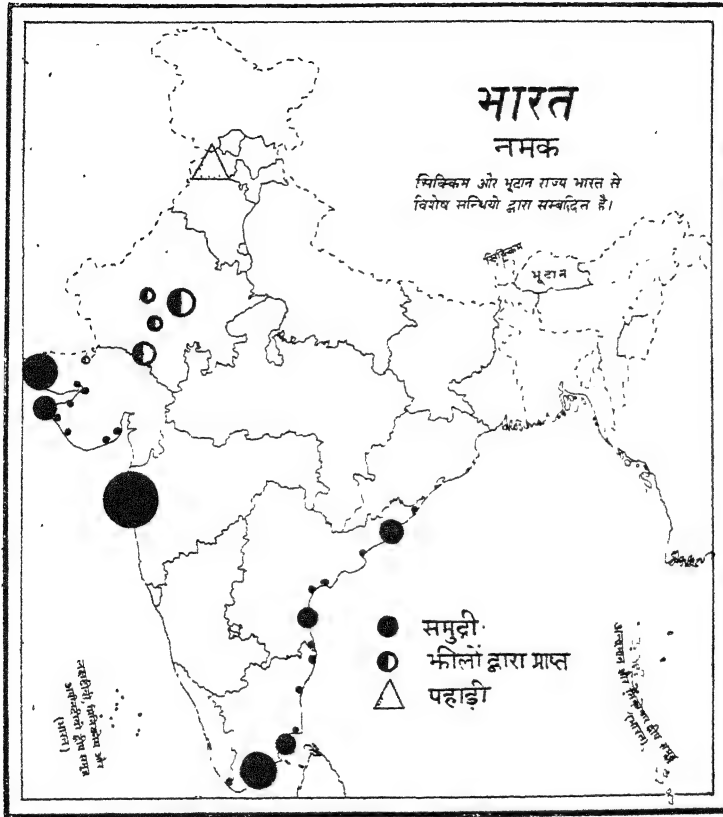
चित्र ११३. नमक उत्पादक क्षेत्र

सौराष्ट्र में नमक के कारखाने इन अनुकूल परिस्थितियों मे है। वे औसतन २०० मैट्रिक टन नमक प्रति हैक्टेअर तैयार कर सकते है और अच्छी वर्षा में लगभग २५० मीट्रिक टन प्रति हैक्टेअर जबकि राष्ट्रीय औसत उत्पादन ७५ मीट्रिक टन प्रति हैक्टेअर है।

नमक के स्रोत

सामान्य नमक तीन स्रोतो से प्राप्त किया जाता है :—

(१) **समुद्र**—जो नमक का सबसे बड़ा भंडार है।[1] यह व्यापक स्रोत समुद्री तट वाले देश को ही प्राप्त है। भारत की तटरेखा ५,७०० किलोमीटर लम्बी होने से यह विशेष लाभ प्राप्त है और वास्तव में हमारे नमक के कुल उत्पादन का लगभग ⅔ भाग गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास, और आंध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है।

(२) **नमकीन जल की आंतरिक झीलें**—भारत में राजस्थान की साभर झील इस दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है।

(३) **भूमि के नीचे मिलने वाला लवण-जल**—भारत में अधोभूमि लवण-जल का सबसे बड़ा स्रोत कच्छ में रान है जिस पर नमक बनाने के कई कारखाने स्थित है। राजस्थान और मद्रास में भी अधोभूमि लवण जल से काफी मात्रा में नमक तैयार किया जाता है।

(४) **खनिज नमक**—जो विशेष प्रकार की चट्टानो से प्राप्त किया जाता है।

नीचे की तालिका में बताया गया है कि किन परिस्थितियों में नमक बनाना संभव है :—

स्थान	वार्षिक वर्षा	वर्षा के दिनों की संख्या	औसत तापक्रम	औसत आर्द्रता	औसत वाष्पीकरण
द्वारका	३५ सै. मीटर	२०	२५° सें० ग्रेड	७५	९८·१२
पंजाब	६८ ,,	३०	२७·५ सें० ग्रेड	७५	८८·४०
गोपालपुर	११४ ,,	६०	२७° सें० ग्रेड	७५	८९·५०

समुद्री जल में औसतन ३½% घुले हुए ठोस अंश होते है। उदाहरणस्वरूप, बम्बई तट के समुद्री जल मे ७८% सोडियम क्लोराइड; ८·१०% मैग्नेशियम क्लोराइड; ७·५०% मैगनेशियम सल्फेट; ३·०५% कैलशियम सल्फेट; २·१४% पोटेशियम क्लोराइड, ०·१०% कैलशियम कार्बोनेट; ०·०८% मैगनेशियम ब्रोमाइड तथा ०·०३% अन्य तत्व होते है।

नमक बनाने के तरीके

नमक बनाने के लिए निम्न तरीके काम में लाये जाते है :

(१) **सौर वाष्पीकरण**—समुद्री जल, नमकीन झीलो और अधोभूमि के लवण-जल में से और वाष्पीकरण द्वारा तरल पदार्थो का अंश निकाला जाता है।

(२) **खुले बर्तन द्वारा वाष्पीकरण**—खुले बरतन में रखे हुए लवण-जल मे

---

१. अनुमान लगाया गया है कि समुद्र में १५,००० लाख घन किलोमीटर समुद्री जल होता है जो ४ खरब मीट्रिक टन नमक के बराबर होता है। इनके अतिरिक्त नदियां प्रति वर्ष ४,००० मीट्रिक टन नमक समुद्र में लाती हैं।

से अग्नि और भाप के द्वारा नमी का अंश निकाल कर नमक प्राप्त किया जाता है।

(३) **निर्वात पात्र द्वारा वाष्पीकरण**—लवण-जल में तरल पदार्थ का अंश बहुविध प्रभाव वाले वाष्पक यंत्रों द्वारा नमक निकाला जाता है।

(४) **बर्फ जमाकर**—पहले समुद्री जल को इतना ठंढा किया जाता है कि वह बर्फ बन जाय फिर घनीभूत करके लवण-जल को अलग कर लिया जाता है। फिर नमक प्राप्त करने के लिए इस जल को भाप मे परिवर्तित किया जाता है।

(५) **खनन द्वारा**—चट्टानों से नमक खोदकर।

भारत मे चट्टानों से सेंधव नमक पंजाब की मंडी की खान से प्राप्त किया जाता है।

गुजरात में मियापुर में टाटा केमिकल्स द्वारा चौगुने प्रभाव वाले वाष्पक यंत्रों द्वारा सीमित मात्रा मे अच्छे किस्म का नमक तैयार किया जाता है।

देश के अन्य भागों में लवण-जल के वाष्पीकरण से नमक बनाया जाता है।

मोटे तौर पर भारत के नमक का ७५% भाग समुद्री नमक के कारखानों द्वारा सौर-वाष्पीकरण के तरीके से ही तैयार किया जाता है।

नमक बनाने के कारखानों में पिछले समय से इस प्रकार वृद्धि हुई है :—

क्षेत्र	उत्पादन (लाख मीट्रिक टनों मे)	
	१९४८	१९५७
१०० एकड से अधिक	१४·२०	२३·५०
१० से १०० एकड़	४·६६	५·२८
१० एकड से कम	४·६६	७·८७
	२३·५२	३६·६५

१९५७ में देश में ३६·६५ लाख मीट्रिक टन नमक का उत्पादन हुआ था। १९५८ में ४२ लाख टन हुआ किन्तु उसके बाद से ही उसमें ह्रास हुआ है। १९६० में ३४·४ लाख टन और १९६१ में ३४·८ लाख टन नमक बनाया गया।

विभिन्न राज्यों में नमक का क्षेत्र और उत्पादन इस प्रकार है (१९६१ मे)

राज्य	क्षेत्र (एकड में)	उत्पादन (मीट्रिक टनों मे)	प्रतिशत
राजस्थान	३,०७०	२,४४,९००	७·०
हिमाचल प्रदेश	—	४,३००	०·१
महाराष्ट्र	४८,६८८	३,८२,६००	११·०
गुजरात		१७,११,९००	४९·८
मैसूर	४४६	८,५००	०·२

मद्रास	१६,६८२	५,३५,०००	१५·४
आंध्र प्रदेश		१,६८,०००	५·७
केरल	—	१,१००	—
उड़ीसा	—	४४,१००	१·३
पं० बंगाल	२,८८४	५,४००	०·२
बिना लाइसेंस शुदा (समस्त भारत)	६,२४०	३,२४,६००	९ ३
योग	७८,३३३	३४,८०,६००	१००·०

उत्पादन क्षेत्र

(१) **गुजरात—महाराष्ट्र**—इन राज्यों मे नमक बनाने के मुख्य क्षेत्र कच्छ की खाडी, सौराष्ट्र और सूरत में मंगलौर तक के तटीय प्रदेश है। खम्भात की खाड़ी के पूर्व में बलसर के निकट **मीठापुर, भंडप, भोयन्दर, ऊरन, धरसाना** और **छरवादा** में सरकारी कारखाने है। इस क्षेत्र के अन्य कारखाने बम्बई शहर से ४८ किलोमीटर के भीतर स्थित है। नमक के कारखाने ऐसे स्थानों पर स्थापित किए गए है जो समुद्र के ज्वार भाटे के तल से नीचे हों। ऐसे स्थानो के चारों ओर एक पक्का मजबूत बाँध बना दिया जाता है। इस घेरे में बाहरी तथा भीतरी जल भडार होते है तथा नमक बनाने का बड़ा हौज होता है। ज्वार भाटा के समय पानी ऊँचा उठता है तो बाहरी जल भंडार भर जाता है। उसका पानी भीतरी भडार में जाता है और यहाँ से यह जल हौजों मे भेजा जाता है और सूर्य के ताप से सुखाया जाता है। जब इस जल में से चूने के सल्फेट और कार्बोनेट नामक लवणों का अवक्षेपन हो चुकता है तो शेष नमकीन जल को कडाइयो मे भरकर उसमें से नमक निकाला जाता है। यहाँ नमक बनाने के हौज मिट्टी से लिपे रहते है अत: यहाँ का नमक कुछ मटमैला होता है। इस तट पर नमक बनाने का काम जनवरी से जून तक होता है। कुल उत्पत्ति का केवल २५% ही राज्य मे खपता है, बाकी नमक मध्य प्रदेश और दक्न को भेज दिया जाता है।

कच्छ की खाड़ी में **जसदान, दहीशाम, बजाना, खारगोदा, उडू** और **कूदा** नामक स्थानों पर भी नमक के कारखाने हैं। यहाँ की भूमि मे से खारी जल ५ मीटर से ९ मीटर तक नीचे और ३ मीटर चौड़े कुएँ खोदकर निकाला जाता है। यहाँ नमक नवम्बर से अप्रेल तक बनाया जाता है। देश के कुल उत्पादन का ८१% इन दोनों राज्य से प्राप्त होता है।

(२) **मद्रास**—पूर्वी तट पर मद्रास और आंध्र राज्य मे समुद्र के तटीय भागो में नमक तैयार किया जाता है। कुल उत्पति का ९०% सरकारी कारखाने और शेष गैर-सरकारी कारखानों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। सम्पूर्ण तट की २,५७५ कि० मी० की लम्बाई तक नमक बनाया जाता है। यहाँ नमक बनाने का ढंग वही है जो गुजरात में है। उत्तर के जिलों मे—गंजाम के कृष्णा जिले तक—नमक जनवरी-फरवरी से लेकर जून-जुलाई के अंत तक बनाया जाता है। बीच के जिलों—में कृष्णा जिले से चिंगलपुट तक—मार्च अप्रैल से अगस्त-सितम्बर तक नमक तैयार

किया जाता है किन्तु धुर दक्षिण में—चिंगलपुट से मलाबार तट के भागों तक—नमक मार्च-अप्रैल से लगाकर अक्टूबर-नवम्बर तक तैयार किया जाता है। इस प्रकार मद्रास और आंध्र में गंजाम से लगाकर तूतीकोरन तक नमक तैयार किया जाता है। इस तट पर नमक बनाने वाले केन्द्र **नानपदा, पेनुकुडुरू,** मद्रास, **कडुालोर, अदिरा-पटनम, तूतीकोरिन** और **नागापट्टम** है। भारतीय नमक का लगभग २५% भाग यहीं से प्राप्त होता है। कुल उत्पति का ८५% तो राज्य में ही व्यवहृत हो जाता है। शेष मध्य प्रदेश, उड़ीसा, मैसूर और पश्चिमी बंगाल को निर्यात कर दिया जाता है।

पश्चिमी बंगाल—पश्चिमी बंगाल के तटीय भागो मे समुद्री नमक बनाने के प्रयास किए गए है किन्तु वहाँ के अस्वास्थ्यकर जलवायु, वर्षा की अधिकता, गंगा के ताजे पानी के सामुद्रिक खारी पानी से सम्मिश्रण होते रहने तथा तट के निकट के पानी में खारीपन कम होने के कारण और कोयले आदि के लाने की कठिनाइयों के कारण यहाँ नमक बनाने का व्यवसाय पूर्ण रूप से विकसित नही होन पाया है। मिदनापुर के किनारो के निकट सूर्य-ताप द्वारा नमकीन पानी को सुखाकर नमक बनाने की काफी सम्भावनाएँ मौजूद है। यहाँ **कोन्टाई तट** पर नमक बनाया जाता है। बंगाल अपने उपभोग के लिए नमक अदन, पोर्ट सईद और लाल सागर के अन्य बन्दरगाहो तथा मद्रास से प्राप्त करता है।

(ख) खारी झीलों से प्राप्त नमक

झीलों तथा खारी पानी से नमक कच्छ के तट से पश्चिम राजस्थान तथा बहावलपुर राज्य में जो विस्तृत मरुभूमि फैली हुई है उसमें ही अधिक बनाया जाता है। राजस्थान में सांभर, डीडवाना, लूनकरनसर नामक खारी झीलें है। राजस्थान की खारी भूमि तथा झीलों के नमक की उत्पत्ति के विषय में भूगर्भ वेत्ताओं (श्री **होलेंड** और श्री **क्रिस्त**) का विचार है कि अरब सागर की ओर से कच्छ के रन पर होती हुई जो हवायें ग्रीष्म ऋतु में राजस्थान में चलती रहती है उनके साथ कच्छ की खाड़ी से नमक के छोटे-छोटे कण चले आते है। राजस्थान तक पहुँचने-पहुंचते इन हवाओं की चाल कम हो जाती है जिसके कारण ये नमक के कणों को आगे नही ले जा सकतो और वे कण इस राज्य की मरुभूमि में गिर जाते है। यह असख्य कण इस भाग की छोटी-छोटी नदियों—मेंढ़ा, रूपनगर, खारी और खंडेल—द्वारा वहा कर वर्षा ऋतु में साँभर जैसी झीलों मे एकत्र कर दिया जाता है। यही कारण है कि यद्यपि साँभर झील छोटी-सी है किन्तु वर्षा ऋतु मे इसका जल २२५ वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र फल में फैल जाता है। सांभर झील के तल की मिट्टी मे कम से कम ४ मीटर तक ५·२१% के हिसाब से नमक का अश है। इस झील के नमक का परिमाण डा० **क्राइस्ट** द्वारा लगभग ५ करोड टन होने का कूता गया है। जब साभर झील का पानी मार्च-अप्रैल में सूख जाता है तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक जम जाता है। झील में **झपोग** स्थान पर एक बहुत बड़ा बाँध बनाया गया है जिसमे पम्प द्वारा झील का पानी पहुँचा दिया जाता है। इस बड़े हौज से नमकीन पानी छोटे-छोटे हौजों और क्यारियों में पहुँचाया जाता है जहाँ पानी भाप बन कर उड़ जाता है और केवल नमक ही रह जाता है। डा० **डनीक्लीफ** (Dr. Dunnicliff) की गवेषणानुसार साँभर झील भारत मे नमक का सबसे बड़ा स्रोत है। साँभर का नमक राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली और मध्य प्रदेश में खपता है।

इस झील के अतिरिक्त राजस्थान में कुछ ऐसे भी स्थान है जहाँ पृथ्वी के नीचे बहने वाला नमकीन जल निकाल कर उसे सुखा कर नमक बनाया जाता है पंचभद्रा में कोई ९१ मीटर लम्बे तथा ३$\frac{1}{2}$ मीटर गहरे और १५ से १८ मीटर चौड़े कुएँ बना कर नमक बनाया जाता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि ९१ मीटर लम्बे और १५ मीटर चौड़े कुएँ के नमकीन पानी से प्रति वर्ष १५,००० मन अच्छी किस्म का नमक तैयार किया जा सकता है। डीडवाना की झील से भी लगभग इतना ही नमक प्राप्त किया जाता है। डा० ड्नीक्लीफ का अनुमान है कि यह क्षेत्र भारत के लिए कई वर्षों तक उम्दा नमक दे सकता है।

(ग) चट्टानी नमक (Rock-Salt)

पत्थर का नमक हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में **द्रांग** और **गूमा** की खानों से निकाला जाता है किन्तु इसका रग कुछ गहरा आसमानी-सा होता है और इसमें २५% अशुद्धि रहती है। अनुमान लगाया गया है कि इन खानों से यदि प्रतिवर्ष ६०,००० टन नमक निकाला जाये तो ये खानें १०० वर्ष तक के लिए पर्याप्त हैं।

नमक के उपोत्पादन

नमक निकालने के बाद जो पदार्थ बच जाते हैं उन्हे फिर से समुद्र या साभर झील में डाल दिया जाता है जिसका मूल्य औसतन १२ करोड़ रुपय आका गया है। इन्हीं का फिर से विदेशों से आयात किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत में जितना नमक निकाला जाता है उससे ६० हजार टन **पोटाशियम क्लोराइट** निकाला जा सकता है। इसी प्रकार २ लाख टन **कैल्शियम कार्बोनेट**; २ लाख टन **कैल्शियम सल्फेट**; ४ लाख टन **सोडियम क्लोराइड**; २४० लाख टन **मैगनेशियम सल्फेट**; ५·१० लाख टन **मैगनेशियम क्लोराइड** और **ब्रौमीन** ६ हजार टन[2]। बचे हुए पदार्थों में से ये तत्व २५ से ६०% तक निकाले जाते है। परन्तु अब तक केवल दो ही फर्में इन रासायनिक तत्वो को निकाल रही है और वह भी बहुत थोड़े पैमाने पर—**कांडला साल्ट वार्क्स** में तथा **तूतीकोरिन** मे।

मैगनेशियम लवण परिवार बहुत बडा होता है। इसमें अनेक लवण शामिल है, जैसे मैगनेशियम क्लोराइड, मैगनेशियम आक्सीक्लोराइड, हल्के और भारी मैगनेशियम कार्बोनेट, मैगनेशियम आक्साइड, मैगनेशियम सल्फेट और मैगनेशियम धातु। इनका कपड़ा उद्योग, रबड़, कागज, स्याही, रंग, दवाई, विस्फोटक आदि अनेक प्रकार के उद्योगों में उपयोग होता है। हवाई जहाज, इन्सूलेशन के सामान, पटाखों और इमारत में लगाये जाने वाले सामान आदि मे इनका इस्तेमाल होता है।

इसके अलावा कैल्शियम सल्फेट या मैरीन जिप्सम भी है। इनका सीमेण्ट, रंग, दीवाल के प्लास्टर और अन्य अनेक में प्रयोग होता है, दो नयी विधियाँ और विकसित हुई हैं। हल्के किस्म का चाक या कैल्सियम कार्बोनेट तैयार किया जा सकता है जिसको रबड़, कागज और प्रसाधन-सामग्री के उत्पादन मे उपयोग किया जा सकता है। दांत का मंजन (टूथपेस्ट) भी इससे तैयार किया जाता है। जलयुक्त

---

२. अनुमानतः १ टन नमक से लगभग १ मीट्रिक टन बिटर्न प्राप्त होते हैं जिनमें विभिन्न रासायनों का अंश इस प्रकार हैः पोटेशियम क्लोराइट १३१·६ कि० ग्रा०; मैगनेशियम क्लोराइड ८६·० कि० ग्रा०; मैगनेशियम सल्फेट ४६·६ कि० ग्रा०: पोटेशियम क्लोराइड १६·५ कि० ग्रा० और ब्रोमीन १·७ कि० ग्रा०।

कैल्शियम सिलिकेट अन्य तरीकों से तैयार किया जा सकता है। कीटाणु नाशक औषधि और प्लास्टिक तैयार करने के लिए यह बहुत उपयुक्त है।

प्लास्टर-आफ-पेरिस व इसकी पट्टियाँ तैयार करने में भी मैरीन जिप्सम का प्रयोग होता है। भावनगर की इन्स्टीट्यूट में यह विधि विकसित की जा रही है।

बचे पानी से ब्रोमीन भी निकाला जा सकता है। इसका उपयोग औषधियाँ तैयार करने में भी होता है। फोटोग्राफी का सामान तैयार करने में भी इसका उपयोग होता है। रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने और आक्सीडाईजिंग एजेन्ट के रूप में भी इसका प्रयोग होता है।

समुद्री जल का उपयोग जौ की खेती के लिए भी किया जा सकता है, जैसा इजराइल में किया जा रहा है।

नमक से उपोत्पादन प्राप्त करने के अनुसंधान पूना, फरीदाबाद, मद्रास, भावनगर में किया जा रहा है।

नमक का उपयोग और व्यापार

भारत में नमक का अधिकतर उपयोग मानुषी और अमानुषी उपभोग में होता है—कुल का ६६%; जबकि रासायनिक उद्योगों के केवल १२%; निर्यात में १०% और विविध कार्यों में १२% उपभोग होता है। संयुक्त राज्य अमरीका में नमक की उपभोग मात्रा ये है: १३%; ७३%; नगण्य और १४%।

भारत से प्रतिवर्ष लगभग ३ लाख मीट्रिक टन विदेशों को निर्यात किया जाता है। यह निर्यात मुख्यतः जापान, नेपाल, मलाया, इंडोनेशिया, पूर्वी अफ्रीका पूर्वी पाकिस्तान और मालद्वीप को होता है।

थोड़ी मात्रा में सेंधव नमक पश्चिमी पाकिस्तान, अदन और मिश्र से आयात भी किया जाता है।

तृतीय योजना के अंत तक नमक उद्योग की उत्पादन क्षमता ६६ ला० मी० टन और उत्पादन ५५ ला० मी० टन होने का अनुमान है।

३. हरसौंठ जिप्सम (Gypsum)

यह एक खनिज पदार्थ की तहदार किस्म है जो अपने रवीले रूप में सैलिनाइट (Salenite) कहलाती है। यह खनिज विशेषतः ऊसर भूमि और सूखे भागों में बहुत होती है। इसका उपयोग खेतों में खाद देने में तथा चूना मिलाकर प्लास्टर-ऑफ-पेरिस, रंग, रोगन तथा रासायनिक पदार्थों में किया जाता है।

यह खनिज दो क्षेत्रों से प्राप्त होता है। भारत के कुल उत्पादन का लगभग ६०% अकेले राजस्थान से निकाला जाता है। यहाँ इसके प्रमुख उत्पादक जोधपुर डिवीजन में बाढमेर, नागोर, मधुपुर तथा बीकानेर जिले में जमसर है। राजस्थान का हरसौंठ बिहार के सिंद्री कारखाने को भेज दिया जाता है।

दूसरा क्षेत्र मद्रास राज्य में है। यहाँ तिरूचिरापल्ली, कोयम्बटूर और रामनाथापुरम् जिलों में हरसौंठ निकाला जाता है।

इन दोनों क्षेत्रों के अतिरिक्त अब हरसौंठ की प्राप्ति उत्तर प्रदेश (देहरादून, गढ़वाल व टेहरी जिले), काश्मीर (ऊरी स्थान से), मध्य प्रदेश (रीवां जिला), शिमला की पहाड़ियों तथा सौराष्ट्र से भी की जाती है।

जिप्सम का उत्पादन

राज्य	जिला	१९६० मात्रा (टोंस)	मूल्य (०००रु०)	१९६१ मात्रा (टोंस)	मूल्य (००० रु०)
गुजरात	जामनगर	—	—	२५९	३
जम्मू-काश्मीर	बारामूला	१५	२	७	१
महाराष्ट्र	कोल्हापुर	३२	—	११८	१
मद्रास	कोयम्बटूर, रामनाथापुरम, तिरुचिरापल्ली, तिरुनलवैली	८२,२४७	९२०	७४,३९८	७९६
राजस्थान	बाढमेर, बीकानेर, नागौर	९१४,७२८	५,३२६	७८९,८८१	४,५१५
उत्तरप्रदेश	पौड़ीगढ़वाल	४२१	४	५८९	७
	भारत का योग	९९७,४४३	६,२५२	८६५,२५२	५,३२३

भारत मे जिप्सम के अनुमानित भडार इस प्रकार हैं :—

राजस्थान में बीकानेर ८०२·६ लाख टन; जोधपुर ३९१·२ लाख टन; जैसलमेर १३ २ लाख टन और नागौर ३,१०५·९ लाख टन;

मद्रास मे तिरुचिरापल्ली में १५५ ४ लाख टन,

गुजरात मे हल्लार, भावनगर, पोरबन्दर में ४६·७ लाख टन; कच्छ में २१·२ लाख टन,

हिमाचल प्रदेश मे ४ लाख टन;

उत्तर प्रदेश में लक्ष्मनझूला, देहरादून और नैनीताल मे २ लाख टन;

जम्मू और काश्मीर मे २१२·४ लाख टन

कुल योग ४,७६४·१ लाख टन

४. हीरा (Diamond)

अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत हीरों के लिए जगत प्रसिद्ध रहा है। यहाँ मध्यवर्ती प्रदेश से लगाकर दक्षिण मे पेनार नदी के बीच का भाग हीरों के लिए प्रसिद्ध था। इस समय हीरकमय क्षेत्र तीन भागों मे विभाजित किये जाते हैं :—

(१) **मध्य भारतीय क्षेत्र**— उपज की दृष्टि से यह क्षेत्र तीनों क्षेत्रों में सबसे अधिक मूल्यवान है। इसी क्षेत्र से कुल उत्पादन प्राप्त होता है। यह क्षेत्र लगभग ९७ किलोमीटर लम्बा और १६ किलोमीटर चौड़ा है। इसमें पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, कछार, कोठी पठार, चौबेपुर और बरौधा के अंग सम्मिलित है। यहाँ कैम्ब्री-

यन पूर्व युग की फासिल-विहीन विन्ध्य शिलाओं में हीरा मिलता है। **कोहनूर, महान, मुगल, पिट, ओरलोफ** आदि प्रसिद्ध हीरे इसी क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं।

(२) **दक्षिणी क्षेत्र**—हीरकमय प्रस्तर कडुप्पा, अनन्तपुर, कर्नूल, कृष्णा, गुण्टूर एव गोदावरी जिलों में फैला हुआ है। इन जिलों में कर्नूल श्रेणी की चट्टानें पाई जाती हैं जिनका एक खण्ड बानगनापल्ली है जो हीरकमय है। स्थान-स्थान पर खोद कर इनमे से हीरे निकाले जाते हैं। इनसे उत्पन्न बजरी व मिट्टी (अलूवियम) भी हीरकमय होती है और इसी से इन जिलों की नदियों की घाटियों की मिट्टी व बजरी मे बहुधा हीरे देखने में आते हैं।

(३) **पूर्वी क्षेत्र** – यह क्षेत्र महानदी की घाटी मे है तथा इसमें मुख्य उत्पादन केन्द्र सम्बलपुर व चाँदा जिलों में है यद्यपि यहाँ नदी की बालू व बजरी अनेक स्थानों पर हीरकमय पाई गई है फिर भी स्थानीय विन्ध्य शैल श्रेणी व कर्नूल श्रेणी के किसी स्तर में हीरे नहीं पाये गये। नदी की पर्वतीय घाटी में शिलाओं के बीच यत्र-तत्र रुकावट पड़ जाने के कारण धार का वेग कुछ कम हो जाता है। ऐसे स्थानों पर नदी में बहते हुये पदार्थ में से वे कण जो अधिक भारी होते हैं तल में बैठ जाते हैं। इस प्रकार बैठे हुये पदार्थ में हीरा सम्मिलित होता है। इन स्थानों की बजरी को धोने मे हीरा व अन्य बहुमूल्य पदार्थ यथाशक्ति प्राप्त होता है। सम्बलपुर के पास हीराकुड नाम के स्थान पर, जहाँ आजकल एक विशाल बाँध बनाया गया है, प्राचीन समय में कई हीरे प्राप्त हुये हैं जिनमें सबसे बड़े रत्न का भार ९९·३ कैरट था। किन्तु आधुनिक समय में इस क्षेत्र में कही भी हीरे की खुदाई नही हुई है।

१९५० में भारत २,७६९ कैरट भार के हीरे निकाले गए जिसका मूल्य ४·१ लाख रुपया था। १९६१ में उत्पादन १·३०९ कैरट का हुआ जिसका मूल्य ३·५७ लाख रुपया था।

५. घीया पत्थर या सेलखड़ी (Steatite, Soapstone or Potstone)

यह टाल्क (Talc) नामक खनिज की एक अस्वच्छ किस्म है। टाल्क अभ्रक के समान परतोंदार तथा सफेद होता है किन्तु यह अभ्रक से बहुत नरम और चिकना होता है। यह खनिज अधिकाशतः मैग्नेशिया, सिलीका और जल का सम्मिश्रण होता है और मैग्नेशियमदार परिवर्तित चट्टानों मे पाई जाती है। इसका उपयोग बर्तन, प्याले बनाने तथा सुन्दर खुदाई के कार्य के लिए और मेजों के ऊपरी भाग, स्नानगृह और गैस के चूल्हे बनाने में होता है। कच्ची दालों में कीड़ों से बचाने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। मुँह पर लगाने के पाउडर बनाने में भी उत्तम प्रकार की सेलखड़ी का प्रयोग किया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र

सेलखड़ी के मुख्य जमाव **राजस्थान** में जैपुर डिवीजन में डोगेथा, गिमगढ़, और भौरा-भंडारी नामक स्थानों पर है जो दौसा स्टेशन से बाहर भेजी जाती है। उदयपुर डिवीजन मे यह रिखबदेव, भीलवाड़ा आदि जिलों में मिलती है।

गुजरात में ईडर में देवमौरी के पास सेलखरी मिलती है। यहाँ के जमाव २० लाख टन के आँके गए हैं। यहाँ सेलखरी की तह १.६ कि० मी० लम्बी और ६१ मीटर मोटी है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी की घाटी मे गोवारी, लालपुर और धरवारा में सेलखड़ी मिलती है। भेराघाट और कपोंड़ से भी यह प्राप्त होती है।

उड़ीसा में मयूरभंज और सरायकेला क्षेत्रों में तथा बिहार के सिंघभूम जिले मे अच्छी सेलखड़ी मिलती है। अभी बिहार में टाल्क मैग्नेसाइट शिलाओं के ६० लाख टन के जमाव सिंघभूम जिले में पत्थर-पहाड़ मे पाये गये है। यह शिलायें ५५० मीटर लम्बे और १८० मीटर चौड़े क्षेत्र में है।

मद्रास राज्य में सेलखड़ी की प्राप्ति सलेम; मैसूर में बलारी तथा आध्र में कर्नूल और नैलोर जिले में होती है। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर और झांसी जिलों में भी सेलखड़ी निकाली जाती है।

१९५६ में ४६,८५५ टन घीया पत्थर निकाला गया जिसका मूल्य २४ लाख रुपया था। १९६१ में उत्पादन ९२,८६९ टन और मूल्य २८·२३ लाख रुपया था।

६. श्यामिज या कियेनाइट (Kyanite)

यह रत्न एल्यूमीनम और सिलीका का सम्मेलन होता है। इसकी स्वच्छ किस्म अपने सुन्दर आकाशीय नीले रंग के कारण रत्न मानी जाती है। यह खनिज प्रायः लंबे और चाकू के फल के समान रवे मे मिलती है। यह मुख्यतः परिवर्तित शिलाओं से प्राप्त होती है।

इस खनिज की मुख्य पेटी प्रायः ११३ किलोमीटर की लम्बाई में लाप्सू-बारू से लगा कर बिहार की खरसावाँ और सरायकेला क्षेत्रों में फैली हुई है। यही पट्टी डालभूम और मयूरभज जिलो मे विस्तृत है।

आंध्र प्रदेश में नेलौर जिले और मैसूर राज्य में हसन जिले मे; पंजाब में नारनौल के निकट भी यह मिलता है।

कियेनाइट के सबसे अधिक भंडार बिहार में पाये जाते है। यहाँ ३ मीटर की गहराई तक ७ लाख टन के जमाव है।

उत्पादन का बहुत ही थोड़ा भाग भारत में उष्ण रोध करने और काँच बनाने में किया जाता है। शेष निर्यात कर दिया जाता है।

१९५६ में इसका उत्पादन २०,१३५ टन था जिसका मूल्य ४७ लाख रुपया था। १९६१ में उत्पादन, २७,१५५ टन और मूल्य ५४ लाख रुपया था।

७. एस्बस्टस (Asbestos)

एस्बस्टस दो प्रकार का होता है—एक **जहर मोहरा** (Serpentine) नामक खनिज की रेशेदार किस्म है और दूसरी एक प्रकार की **हार्नब्लैंड** (Hornblende) नामक खनिज की। एस्बस्टस मैग्नेशिया सिलीका और जल का सम्मेलन होता है। यद्यपि दोनों प्रकार के एस्बस्टस मे कुछ भी अन्तर नही होता किन्तु पहले प्रकार की किस्म ही विश्व में अधिक मिलती है। यह आग्नेय शिलाओं में मिलता है।

इस खनिज की उपयोगिता उसके रेशों के चिमड़ेपन, लचीलेपन तथा उसके अग्नि-प्रतिरोधक गुण के कारण ही है। इसके रेशे रुई के समान काते और बंटे जा सकते हैं। इन रेशों से एस्बस्टस के मोटे कागज कपड़े और तख्ते तैयार किए जाते हैं। एस्बस्टस के कपड़े आग नहीं पकड़ते अतः, प्रायः तेल या भक से जल उठने वाले

अन्य पदार्थों के बक्सों में लगाने अथवा तख्ते बनाकर रेल के डिब्बों और जहाजों में लगाने में काम आते हैं जिससे गर्मी के मौसम में ये तपने न पायें। एस्बस्टस के कागज अथवा चटाइयाँ बॉइलर और इजिन इत्यादि को ढकने में काम आती है जिससे वे शीघ्र ठढे न होने पावें। सीमेंट मिलाकर इसके खपरैल तथा छत-पाटने के तख्ते इत्यादि भी तैयार किये जाते है। बिजली घरों और तेजाब जैसे द्रवों को छानने में भी इसका प्रयोग होता है।

उत्पादन क्षेत्र

एस्बस्टस का उत्पादन भारत में बिहार राज्य में सराय केला, मानभूम, रांची तथा मुंघेर जिले में और उड़ीसा के मयूरभंज जिले की परिवर्तित शिलाओं के क्षेत्र में होता है।

मैसूर राज्य मे शिमोगा, कडूर, बगलौर, हसन और मैसूर नामक जिलों में बहुत एस्बस्टस मिलता है। कहीं-कहीं पर कई मीटर लम्बी एस्बस्टस की लकड़ी मिलती है।

आंध्र के कड्डपा जिले में (ब्रह्मनापाली, चिन्नाकुडला और लोपटनूतुला) तथा करनूल जिले मे मल्कापुरम और जोहरापुरम में भी एस्बस्टस निकाला जाता है।

गुजरात में ईडर और **महाराष्ट्र** में भंडारा; **उत्तर प्रदेश** मे गढवाल और अलमोड़ा और मध्य प्रदेश में झाबुआ नामक जिलो में यह निकाला जाता है।

राजस्थान मे यह उदयपुर और डूगरपुर जिले में मिलता है।

१९६१ में १४६८ टोंस एस्बस्टस निकाला गया जिसका मूल्य १,३९,००० रुपया था।

भारत से इसका निर्यात मुख्यतः ब्रिटेन, जापान, बेल्जियम, इटली और पश्चिमी पाकिस्तान को किया जाता है।

अध्याय १५

खनिज सम्पत्ति (क्रमशः)

अलोह-धातुयें (Non-Ferrous Minera's)

अलौह धातुओ के अन्तर्गत लोहे और इस्पात को छोड़ कर अन्य सभी धातुएं सम्मिलित की जाती है किन्तु व्यवहार की दृष्टि से तांबा, सीसा, जस्ता, टिन की साधारण किन्तु भारी धातुये और बाक्साइट, सुरमा, इल्मैनाइट और मैग्नेशियम की महत्वपूर्ण हल्की धातुयें और सोना, चांदी आदि बहुमूल्य धातुएँ सम्मिलित की जाती हैं।

१. तांबा (Co; per)

तांबा प्रकृति में कई स्थानों पर अपने असली रूप में और कई स्थानों पर अन्य पदार्थों के साथ मिला पाया जाता है। यह अधिकतर आग्नेय और परिवर्तित शिलाओं की नसों से प्राप्त होता है। कच्चे खनिज में धातु का अश ३ से ६ प्रतिशत तक रहता है। इसका रंग लाल-भूरा होता है। तांबा वहुत ही लचीला और बिजली का उत्तम संचालक होन के कारण कई प्रयोगों में लाया जाता है। इसे काट-पीट कर सरलता से तार खीचे जा सकते है और उन्हें कोई भी रूप दिया जा सकता है। इसके मुख्य गुण ये हैः (१) यह सरलता से जोडा जा सकता है (२) कई प्रकार की घिसावट को रोकता है, (३) दूसरी धातुओ के साथ सरलता से मिश्रण किया जा सकता है तथा इसमे जग नही लगता। इन्ही गुणों के कारण तांबे का उपयोग बिजली के तार, हल्के बल्ब, यान्त्रिक शीत भडार, टैलीविजन, सामुद्रिक तार, शक्ति उत्पादक यंत्र, रेडियो, टेलीफोन, रेलों के सिगनल उपकरण, मोटरें, पानी के नल, और सिक्के बनाने में प्रयोग होता है। तांबा इजिनों के अग्नि-सन्दूकों, बोयलर तथा स्थिर यत्रों के भाप के नलों और लकडी के जहाजों के मढने में तांबे की कीले, रिपटें (Rivets) और चादरें बनाने के लिए भी प्रयुक्त होता है। तांबे से पारिवारिक बरतन आदि बहुत बनाये जाते है। मोटे तौर पर तावे की कुल मात्रा का ४०% बिजली के यंत्रो १५% तारों और ४५% अन्य धातुओं के साथ मिलाकर रासायनिक कार्यों के लिए किया जाता है।

उत्पादन क्षेत्र

डा० बाल के अनुसार भारत में तांबा अनेक प्रकार की चट्टानों में नसो के रूप में मिलता है। दक्षिणी प्रायद्वीप में प्राचीन रवेदार चट्टानों और कड्डप्पा, बिजावर तथा अरावली युग की चट्टानों में और उत्तरी भारत में परिवर्तित चट्टानों में बहुधा सल्फाइड के रूप में पाया जाता है।

भूगर्भिक दृष्टि से भारत में तावे के दो मुख्य क्षेत्र हैं— एक बिहार में और दूसरा आंध्र प्रदेश में।

इसके अतिरिक्त तांबे की नई खोजें सिकिम, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, आदि राज्यों में भी की गई हैं। अनुमान किया जाता है कि हिमालय की बाहरी श्रेणी के कुल्लू, कांगड़ा, नैपाल, भूटान और सिक्किम प्रदेशों में भी तांबे के विस्तृत भंडार हैं किन्तु यातायात की असुविधा के कारण तथा खपत के केन्द्रों से दूर होने से इनमें खान खोदने के उद्यम ने विशेष प्रगति नहीं की है। भारत में तांबे की अयस के भंडार ३३·७ करोड़ टन के अनुमानित किए गए हैं जिसमें औसत २·५ प्रतिशत तांबा है।

बिहार—तांबे की महत्वपूर्ण खानें बिहार राज्य में सिंहभूम जिले में है। इनमें ३१ लाख टन तांबा होने का अनुमान है। इस खनिज में २·९% तांबा होता है। यहाँ तांबे का मुख्य क्षेत्र बिहार-उड़ीसा मे सिंहभूमि जिले में लगभग १३० कि० मीटर लंबी पेटी में स्थित है जो कैरा, सेरोकोल, खरसांवा आदि भागों में होती हुई

चित्र ११४ खनिज पदार्थ

दक्षिण-पूर्व दिशा में चली गई है। यहाँ की मुख्य खनिज सोनामाखी (Copper Pyrite) है। इसके साथ तांबा, लोहा और निकल के गंधकदार मिश्रण भी मिलते है।

है। इनमें से एक स्थान **अग्नीगुंठन** है (जो गुन्टूर जिले में विनूकोंडा नगर से १४ कि० मी० उत्तर है) और दूसरा स्थान **गनी** है जो करनूल जिले मे है। इसमें ०·५% तावा है। अग्निगुंठल क्षेत्र मे ३½ कि० मी० लम्बा और जस्ते का १ २ कि० मी० लम्बा भडार मिला है।

इन राज्यों के अतिरिक्त कुछ तावा निम्न राज्यों मे भी पाया जाता है :—

जम्मू-काश्मीर में काश्मीर घाटी में हफ्तनर के निकट बनिहाल—रामसूस और डोड़ा—किश्तवार के कुछ भागों में और रियासी जिले मे गेंती मे।

पंजाब में कांगडा और पटियाला जिले में।

बंगाल में दार्जिलिंग और जलपाइगुडी में।

मध्य प्रदेश में जबलपुर, बालाघाट, होशंगाबाद, बस्तर और सागर जिलों मे।

मैसूर में चितलदुर्ग और हसन जिले में।

मनीपुर मे कतवा क्षेत्र में।

उत्पादन एवं व्यापार

तावा पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान नेहरवाँ है।

देश मे तांवे की बडी आवश्यकता है। इस समय प्रति वर्ष ८ ५०० टन तावा बिहार से प्राप्त किया जाता है। तावे की माँग १९५५ मे २६ ००० से बढ कर १९६१ में, ७०.००० टन हो गई। अत ताँबे की आयात मात्रा भी बढ़कर १८ ५०० से ६२,००० टन हो गई। १९७६ तक तांबे की खपत ३ लाख टन हो जाने का अनुमान है। रोडेशिया, जापान, पुर्तगाली पूर्वी अमरीका आदि से तावा आयात करना पडता है। १९५८ मे ५२ हजार मैट्रिक टन तावा आयात किया गया जिसका मूल्य १४ करोड़ रु० था। स० राज्य अमरीका, ब्रिटेन आदि देशों की तुलना मे हमारी खपत बहुत कम है। स० राज्य में प्रति व्यक्ति पीछे तावे की खपत १८ पौंड है, ग्रेट ब्रिटेन में १६ पौंड किन्तु भारत में यह मात्रा केवल ४ औंस है।

२. सीसा (Lead)

सीसा प्रायः चांदी और जस्ते के साथ मिला हुआ पाया जाता है। यह मौलीबिडनम, तांबा, सोना और सुरमे के साथ भी मिला हुआ पाया जाता है। सीसा तीन प्रकार की कच्ची धातुओं से प्राप्त होता है जिनमें धातु का प्रतिशत ६८ से ८६ तक होता है। सीसा प्रायः परतदार चट्टानों की नसों के रूप मे पाया जाता है। लोहे के बाद सीसे का ही उपयोग अधिक होता है क्योंकि यह मुलायम और भारी धातु होती है जो ६२१° फा० ताप पर पिघलती है। इसे सरलता से दूसरी धातुओं के साथ मिलाया जा सकता है। यह बिजली का कुसंचालक है : इसका उपयोग रेल के एंजिन, मोटर कार, कारतूस, बैटरी, हवाई जहाज टाइपराइटर, वाद्ययन्त्र, मशीनें, छापे खाने के टाइप, बन्दूक की गोलियाँ, बिजली के तार, रंग-रोगन, संवाद-वाहक तार, तथा अन्य रासायनिक पदार्थों के बनाने में होता है। सीसे का सबसे अधिक उपयोग लोहे और इस्पात उद्योग में होता है।

उत्पादक क्षेत्र

देश में सीसे का उत्पादन बहुत ही कम होता है। यद्यपि बिहार के हजारीबाग जिले में, राजस्थान के उदयपुर, और जयपुर जिलों मे, तथा मध्य प्रदेश के ग्वालियर, दतिया और दुर्ग जिलो में सीसे की खानें पाई जाती है तथापि व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक ढंग मे चलने वाली खानें केवल राजस्थान में उदयपुर से ४० कि० मी० दूर **जावर** स्थान पर है। इसमें से सीसा निकालने का कार्य मेसर्स **मेटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लि०** करते है। खान से सीसा और जस्ता दोनों मिला हुआ निकलता है जिसे बाद में साफ करके अलग-अलग कर लिया जाता है। कच्ची अयस में धातु का अश २ से ४% तक पाया जाता है। यद्यपि जावर मे **मोछिया मगरा, बरोड़ मगरा** और **जावर माला** पहाडियों मे सीसा और जस्ता पाया जाता है किन्तु कार्य अभी केवल मोछिया मगरा में ही किया जा रहा है। यहाँ के जमाव इस प्रकार है :—

'ए' ग्रेड की अयस ७००,००० टन जिसमे सीसा ५·२५% तथा जस्ता ७ २५ प्र०श०
'बी' ग्रेड की अयस २० ०००.००० ,, ,, १·६% ,, ३·८ ,,

इन दोनों किस्मो के अतिरिक्त लगभग ८० लाख टन निम्न श्रेणी के जमावों का भी अनुमान लगाया गया है जिनमें धातु की मात्रा ३ प्रतिशत तक है।

१९६१ मे १०,००० मीट्रिक टन सीसा तैयार किया गया जबकि सीसे की मांग ३५ हजार मीट्रिक टन की होती है।

भारत में सीसे का आयात मुख्यत: स० रा० अमरीका, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, ब्रह्मा, चीन, नीदरलैंड, और जापान से होता है। १९५८ मे २३० लाख रुपये के मूल्य का सीसा इन देशों से आयात किया गया।

३. जस्ता (Zinc)

जस्ता भी प्रकृति में शुद्ध रूप में नही मिलता। यह सीसे की भाँति परतदार चट्टानो की नसों में मिलता है। जस्ता अधिक मात्रा मे जस्ते की सल्फाइड (Zinc-Sulphide) से प्राप्त होता है किन्तु यह अन्य कच्ची धातुओ से भी—कैलेमीन, जिंकाइट, विलेमाइट, हैमीमारफाइट—प्राप्त होता है।

जस्ता अधिकतर लोहे को मोर्चे से बचाने के लिए पॉलिश करने के काम मे आता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग रग-रोगन बनाने, बिजली के सेल बनाने, बैटरियाँ बनाने, मोटर के पुर्जे बनाने, दवाइयाँ बॉयलर की तख्तियाँ, फोटो-एनग्रेविंग आदि करने मे होता है।

उत्पादक क्षेत्र

हमारे जस्ते के साधन भी सीमित है। अब तक व्यापारिक आधार पर चलने वाली केवल एक खान है जो केवल राजस्थान मे उदयपुर के निकट है। यहाँ जस्ता और सीसा मिला-जुला निकलता है। और इसे भी **मेटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया** निकालता है। देश में इस समय जस्ता तैयार नही किया जाता और जावर से निकलने वाला जस्ते का खनिज पदार्थ विदेशों को भेजा जाता है। इसके बाद जस्ते का पुनः आयात किया जाता है।

उत्पादन व व्यापार

हमारे यहाँ प्रतिवर्ष खनिज जस्ता लगभग ६,००० टन निकलता है। इसमें ५० से ५४% तक जस्ता धातु होती है। मैटल कॉरपोरेशन अपने कारखाने में जस्ता तैयार करने की मशीनें लगा रहा है जो आशा है कि प्रतिदिन ५०० टन खनिज जस्ते को गलाकर जस्ता तैयार करेगी। हमारे देश में जस्ता तैयार न होने के कारण हमारी सभी आवश्यकता विदेशों से जस्ता मगाकर पूरी की जाती है। १९६१ में ७३९ लाख रुपये के मूल्य का जस्ता यूगोस्लाविया, बेल्जियन काँगो, जापान, रूस, संयुक्त राज्य, बेल्जियम, रोडेशिया, मोजम्बीक, नीदरलैंड एव पोलैंड से आयात किया गया।

इस समय हमारी जस्ते की आवश्यकता लगभग ८५ हजार मीट्रिक टन प्रतिवर्ष की है।

जस्ते का महत्व बढ़ते जाने के कारण जस्ता विशेषज्ञों की एक समिति बनाई गई जिसका उद्देश्य जावर की खानो से निकलने वाले खनिज जस्ते को गलाने की भट्टी चालू करने के बारे में राय देना था। इस समिति ने कहा है कि व्यापारिक आधार पर भट्टी चलाने के लिये कम से कम १ हजार टन खनिज पदार्थ प्रतिदिन के हिसाब से कई वर्षों के लिये प्रबन्ध कर लेना चाहिये। मेटल कारपोरेशन इन खानो का ऐसा विकास कर रहा है कि यहाँ से १ हजार टन खनिज जस्ता प्रतिदिन निकाला जा सकेगा जिसकी सहायता से १५ हजार टन खनिज पदार्थ गलाने वाली भट्टी चालू हो सकेगी। आशा है कि इस भट्टी में जस्ता तैयार करने का काम १९६३-६४ तक शुरू हो जायेगा। इस भट्टी के स्थापित हो जाने के बाद भी बहुत सा जस्ता बाहर से मंगाना पड़ेगा। परन्तु १९६४ के बाद देश में ही जस्ता तैयार करने का काम तभी हाथ में भी लिया जा सकेगा जबकि जावर की खानों के निकट की अन्य पहाड़ियों में भी दूसरी नई खानें निकल आयेंगी। जस्ता साफ करने का कार-खाना उदयपुर से ६ मील दूर उदयसागर के निकट लगाया जा रहा है। इसमें ४½ लाख पौंड खर्च होने का अनुमान है।

४. टिन (Tin)

टिन कैसीटराइट (Cassiterite) नामक कच्ची धातु से प्राप्त होता है जो आग्नेय चट्टानों में पाई जाती है। साधारणतः टिन कठोर होता है। इसे साफ कर शुद्ध धातु प्राप्त की जाती है। मानव जितनी धातुओं का प्रयोग करता है उसमे सभवतः टिन ही सबसे कोमल और सबसे उपयोगी धातु है। यह कोमल और पीट कर बढ़ाने योग्य होने के कारण अधिकतर चादरें, कनस्तर आदि बनाने और इस्पात पर रोगन करने के काम आता है। इसके हथियार, बरतन और औजार भी बनाये जाते हैं। कांसा बनाने के लिए इसके तावे के साथ और सोल्डर (Solder) बनाने के लिए ताबे और सीसे के साथ तथा बैबिट धातु बनाने के लिए सुरमा के साथ मिलाया जाता है। इस धातु का अधिकाधिक उपयोग यातायात के साधनों और कई उद्योगों में होता है।

भारत में टिन की खानों का पता बिहार के गया और हजारीबाग जिलों में लगा है। यहाँ नारंगो नामक स्थान पर बरमे डाल कर १८३ मीटर की गहराई तक

मध्य प्रदेश	जबलपुर	४७,५१२	५११	४२,४१५	३२७
मद्रास	सलेम	७८९	१६	५५३	११
महाराष्ट्र	कोलाबा	७,६९३	५४	२७,२८९	१९९
मैसूर	बेलगाम	२,२४८	३६	२,४७१	२४
भारत का योग		३८७,३८०	४,०८९	४७५,९०५	४,६८३

भारत में सब प्रकार के बाक्साइट के जमाव ३०८ लाख लंबे टनों का अनुमान है, जैसा कि इस तालिका से स्पष्ट होगा :

भारत में बाक्साइट के जमाव

राज्य	जिले	संरक्षित जमाव (लम्बे टनों में)
१. बिहार	पालामाऊ व रांची	१,००००,०००
२. मध्य प्रदेश	बिलासपुर, रायगढ़, सुरगुजा, दुर्ग, मांडला बालाघाट, जबलपुर व शाहडोल	१,१०,००,०००
३. मद्रास	सलेम	२०,००,०००
४. महाराष्ट्र	कोल्हापुर	२१,००,०००
५. मैसूर	बेलगाम, बाबाबूदन की पहाड़ियाँ	३७,००,०००
६. उड़ीसा	सम्बलपुर-कालाहांडी	३०,००,०००
७. जम्मू कश्मीर	रियासी-पूंछ	२०,००,०००
	योग	३,०८,००,०००

१९५६ में बाक्साइट का उत्पादन ९१·२ हजार मीट्रिक टन का था। यह १९६१ में ४·७ लाख मीट्रिक का हो गया। कुल उत्पादन का लगभग ८२% बिहार और मध्य प्रदेश से प्राप्त हुआ। भारत से बाक्साइट का निर्यात किया जाता है। यह निर्यात मुख्यतः नीदरलैंड्स, जर्मनी, इंग्लैंड, प० पाकिस्तान, आदि देशों को होता है। १९६१ में लगभग २० हजार टन का निर्यात किया गया।

देश में बाक्साइट का उपयोग करने के लिए अभी दो कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता ७,५०० टन वार्षिक की है।

इस समय विभिन्न रूपों में हमारी अलूमीनियम सम्बन्धी आवश्यकता का अनुमान लगभग २५ हजार टन वार्षिक है। द्वितीय योजना की अवधि समाप्त होने तक यह आवश्यकता बढ़कर ३५-४५ हजार टन तक हो जायेगी। इन आंकड़ों से

प्रकट होता है कि हमारी आवश्यकता और उत्पादन क्षमता के बीच बहुत बड़ा अन्तर है।

निम्न प्रायोजनाओं के फलस्वरूप, १९६५-६६ तक अल्यूमीनियम उत्पादन का लक्ष्य ८२,५०० टन का पूरा हो जाने का अनुमान है :—

(१) हीराकुड की इंडियन अल्यूमीनियम कपनी के संयन्त्र में १० हजार टन प्रति वर्ष का विस्तार।

(२) रिहांड मे २० हजार टन,वार्षिक क्षमता वाली एक पिघलाने वाली भट्टी की स्थापना।

(३) कोयना में २० हजार टन वार्षिक क्षमतावाली एक पिघलाने वाली भट्टी की स्थापना।

(४) सलेम के निकट १० हजार टन वार्षिक क्षमता वाली भट्टी की स्थापना।

(५) अल्यूमीञियम कारपोरेशन ऑफ इंडिया के संन्यत्र में ५० हजार टन प्रतिवर्ष का विस्तार।

६. सुरमा (Antimony)

यद्यपि भारत में सुरमा बहुत ही कम मिलता है किन्तु मैसूर में चितलदुर्ग और पंजाब में कांगड़ा जिले में सुरमा गला कर सुरमा धातु तैयार करने की पर्याप्त क्षमता हमारे यहाँ मौजूद है। इससे हमारी वर्तमान और भावी आवश्यकतायें पूर्ण हो सकती हैं परन्तु खनिज सुरमा हमें विदेशों से मंगाना पड़ता है। यह खनिज सुरमा अधिकांश में चितराल से आता था। देश के अन्य देशों में इसकी खोज करने के लिये भारतीय भूगर्भ पर्यवेक्षण विभाग ने कार्य आरम्भ कर दिया है। इस समय देश में सुरमा धातु तैयार करने वाले कारखाने की उत्पादन क्षमता एक हजार टन वार्षिक है जो हमारी वर्तमान ६०० टन की मांग को पूरा करने के लिये काफी है। १९६५-६६ तक यह मांग बढ़ कर १५०० टन तक होगी और वह भी इसी कारखाने से पूरी हो सकेगी। सुरमा धातु का प्रयोग मुख्यतः बिजली की संग्रह बैटरियों, छपाई के टाइप, धातुओं को कड़ा करने तथा रेल्वे और शस्त्रास्त्र के कारखानों में होता है।

७. सोना (Gold)

सोना कभी भी खानों में शुद्ध रूप में नहीं मिलता। इसमें अधिकतर चांदी और अन्य धातुओं के अंश मिले रहते है। सोने की कच्ची धातु दो प्रकार से मिलती है—आग्नेय चट्टानों की नसों में और नदियों की बालू मिट्टी में। पहले प्रकार का सोना **पठारी सोना** (Vein-Deposit) कहलाता है। यह आग्नेय चट्टानों की नसों में पाया जाता है। इस प्रकार की नसें चट्टानों में अधिक गर्मी और अधिक दबाव के कारण बन जाती है। सोने के कण इन नसों में बिखरे हुए पाये जाते है अथवा स्वर्ण-मिश्रित बिल्लौर (Quartz) की धारियों में पाये जाते हैं। भारत के दक्षिणी पठार पर इसी प्रकार की चट्टानें मिलती है।

दूसरे प्रकार का सोना नदियों की कांप मिट्टी में मिला हुआ पाया जाता है। इस मिट्टी को चलनी से छान कर सोने के अंश प्राप्त किए जाते हैं किन्तु इस प्रकार

प्राप्त किये गये सोने की मात्रा थोड़ी ही होती है। इस प्रकार से प्राप्त किया गया सोना **मैदानी सोना** (Placer Depost) कहलाता है।

सोना अपने चमकीले रंग, सुन्दरता, टिकाऊपन और गलाने की सुविधा, भौतिक परिस्थितियों और कम मात्रा में पाये जाने के कारण बहुत प्राचीन काल से ही मानव के लिए आकर्षण की एक वस्तु रहा है। इसका अधिकांश प्रयोग सिक्के बनाने, धातु की ईटें बनाने, आभूषण बनाने, पैन की निबें, चश्मों के फ्रेम, बर्क, भस्में तथा औषधियाँ बनाने में होता है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत के सोने के उत्पादन का लगभग ९८% सोना अकेले मैसूर राज्य की कोलार की खानों से मिलता है। यहाँ यह बिल्लौर पत्थर की खानों से प्राप्त होता है। बिल्लौर की धारियाँ अत्यन्त परिवर्तित शिलाओं को बेधती हुई दूर तक उत्तर-दक्षिण दिशा में चली गई हैं। इनकी धारियों की मोटाई सभी जगह एक सी नहीं है—कहीं मोटी और कहीं पतली होती हुई चली गई है। इन धारियों में मुख्य धारी एक ही है जिस पर चार स्थानों पर कार्य हो रहा है। यह धारी लगभग १ मीटर मोटी है कहीं-कहीं यह ६ मीटर तक मोटी है और पृथ्वी तल पर ८ कि० मीटर से अधिक दूर तक दिखाई पड़ती है। यहाँ की सबसे गहरी खानें चैम्पीयन रीफ (Champion Reef) और ओरोगाम रीफ (Ooregaum Reef) है जिनमें ३००० मीटर की गहराई पर कार्य हो रहा है। सोने की परतों तक पहुँचने के लिए चट्टानों में से कुल ६६६ कि० मी० लंबी सुरंगें बनाई गई है। पृथ्वी तल से इतने नीचे होने के कारण इन खानों की तह में तापक्रम ५५° सैं०ग्रे० तक पहुँच जाता है अतः भीतर के पत्थर गर्मी के कारण हर समय तपते रहते है। इस गर्मी को कम करने के लिए खानों में बड़ी बड़ी चानकों (Shifts) में होकर बिजली के पंखों द्वारा वायु का संचार किया जाता है। यहाँ १४७ कि० मीटर दूर शिवासमुद्रम से बिजली लाई जाती है। मैसूर में सोने की खानें १४,६५६ एकड़ क्षेत्र में फैली हैं। यहाँ चैम्पीयन रीफ, औरोगम रीफ, मैसूर गोल्ड माइनिंग और नदीद्रुग गोल्ड माइनिंग कम्पनियाँ काम कर रही हैं। इस कार्य में लगभग १८००० मनुष्य लगे हुए हैं।
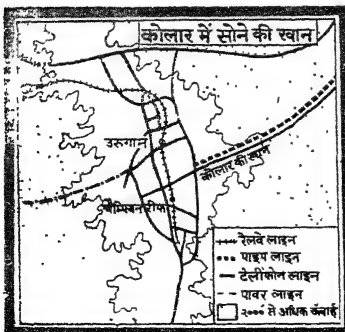
चित्र ११५. मैसूर में कोलार की खान

यहाँ सन् १८८२ में सोना निकालना आरंभ किया गया। उस वर्ष केवल ६ औंस सोना यहाँ निकाला गया और १९०५ में ३२७३ औंस, और १९५२ में २,०३,६२९ औंस। तबसे, एक साल को छोड़कर, हर साल इस उत्पादन में कमी होती रही है। १९६०-६१ में यहाँ से १३९,८५४ औंस सोना निकाला गया। घटते हुए उत्पादन और बढ़ते हुए व्यय को दृष्टिगत रखते हुए १ दिसम्बर १९६२ से इन खानों का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के आधीन हो गये है। १९५६ में इन खानों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका था। इसके लिए कम्पनी को १·६४ करोड़ रुपये का मुआवजा दिया गया।

कोलार सोने के क्षेत्र में सोने के सुरक्षित भंडार इस प्रकार अनुमानित किये गये है :—

खदान	सुरक्षित भंडार (टनों में)	औसत ग्रेड (प्रति टन अयस में धातु की मात्रा में)
मैसूर	२६१,२००	१२·३५
चैम्पीयन रीफ	५२७,४०६	११·४७
औरोगॉम	१५५,०२६	६·१५
नंदीद्रुग	३२२,५७०	१०·०६

बंगलौर से ६७ कि० मी० पश्चिम में कुछ सोना बलारी की खानों से भी प्राप्त किया जाता है। रायचूर जिले के हट्टी क्षेत्र में १६०३ से १६२० तक सोना निकाला जाता था। मैसूर के धारवाड़ और सांगली में तथा आंध्र के अनन्तपुर जिले मे वायनाड़ में भी सोना मिलता है। इन खानों से १८८० से १६०६ तक सोना निकाला गया। मद्रास के सलेम और आंध्र प्रदेश के चित्तूर जिलों में तथा बिहार के सिंहभूम, डालभूम और जशपुर जिलों में; उड़ीसा के गगपुर, बमरा, सम्बलपुर, और कोरापुट जिलों में भी सोने के विस्तृत भंडारों का पता लगा है।[1]

भारत के अन्य भागों में नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी के साथ भी सोना मिला हुआ पाया जाता है। उड़ीसा का सिंहभूम जिला, पंजाब का अम्बाला जिला, उत्तर प्रदेश का बिजनौर जिला और आसाम में ब्रह्मपुत्र घाटी इस प्रकार के सोना प्राप्त करने के उल्लेखनीय क्षेत्र हैं। आसाम में **स्वर्णसीरी** बिहार-उड़ीसा की **स्वर्णरेखा** और उत्तर प्रदेश की **सोना** नदियों के बालू में सोना मिलता है। किन्तु इस प्रकार प्राप्त किए गए सोने की मात्रा अधिक नहीं होती। इसका मूल्य भी ३००-४०० पौंड से अधिक का नहीं होता है।

विश्व के सोना उत्पादक देशों में भारत का स्थान प्रायः नगण्य-सा ही है। यहाँ विश्व के उत्पादन का केवल २ प्रतिशत सोना प्राप्त होता है। १६६१ में विश्व का कुल उत्पादन १२$\frac{१}{२}$ लाख किलोग्राम था, जब कि भारत ने इस वर्ष केवल ४८६८ किलोग्राम सोना ही प्राप्त किया गया। भारत की सोने की मांग विशेषतः ब्रिटेन, अदन, कुवैत, हांगकांग और बेल्जियम से आयात कर पूरी की जाती है।

८. चाँदी (Silver)

चांदी प्रकृति में शुद्ध रूप में कम ही मिलती है। यह अधिकतर जस्ता, तांबा सीसा अथवा सोने के साथ मिली हुई पाई जाती है। चाँदी मुख्यतः पाँच प्रकार की कच्ची धातुओं से प्राप्त की जाती है—अर्गेनटाइट (Argentite)—(८७% धातु), पायराजाइराईट (Pyrazirite)—६०% धातु अंश; स्टैफनाइट (Stefanite)-७०% धातु अंश; हार्नसिल्वर (Hornsilver)—७५% धातु अंश और प्रौस्टाइट (Prostite) – ६५% धातु अंश।

1. *M. S. Krishnan*, Geology of India and Burma, 1956, p. 164.

चाँदी का सबसे अधिक उपयोग सिक्के ढालने, आभूषण बनाने, वर्तन, वर्क, औपधियाँ, फोटोग्राफिक सामग्री आदि बनाने और जवाहिरात उद्योग में होता है।

भारत में चाँदी का उत्पादन बहुत ही कम होता है। यहाँ चाँदी उत्पादन क्षेत्र मैसूर से कोलार-क्षेत्र और बिहार में मानभूम तथा राजस्थान में जावर क्षेत्र माने जाते हैं। पहले मद्रास के अनन्तपुर जिले से भी काफी चाँदी प्राप्त की जाती थी किन्तु अब इसका उत्पादन समाप्त प्रायः हो गया है।

अब भारत में चाँदी का उत्पादन मैसूर और राजस्थान में जावर की खानों से ही प्राप्त किया जाता है।

१९६१ में ५९४१ किलोग्राम चांदी का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य ११ लाख रुपया था।

भारत में वेल्जियम, ग्रेट ब्रिटेन, इटली, पाकिस्तान और पश्चिमी जर्मनी से चादी का आयात किया जाता है।

९. इल्मेनाइट (Illemenite)

इल्मैनाइट की कच्ची धातु से टाइटैनियम धातु प्राप्त की जाती है जिसका उपयोग कई प्रकार की मिश्र-धातुओं और धूमपटों में किया जाता है। यह एक मुख्य रिफ्रैक्टरी पदार्थ है जिसका प्रयोग लोह और इस्पात उद्योग में अधिक होता है। इस पर न तो शीघ्र ही जलवायु का प्रभाव होता है और न जग ही लगता है तथा यह सीसे की तरह विषाक्त भी नहीं होता। इसका उपयोग रोगन, ऊँची श्रेणी के ऐनेमल और लैकर-वेयर आदि बनाने में भी होता है।

यह खनिज भारत में अनेक स्थानों में मिलता है। बिहार की अभ्रक-युक्त पैग्मैटाइट शिलाओं की छोटी छोटी धारियों में; किशनगढ़ में क्वार्ट्‌स शिलाओं में तथा राजस्थान के डिगाना क्षेत्र में वूलफ्राम की नसों के साथ पाया जाता है। बिहार मे दक्षिण-पूर्व सिहभूम और उससे सयुक्त मयूरभंज जिलों में इसके कई क्षेत्र हैं। किन्तु इसके प्रसिद्ध क्षेत्र केरल राज्य की तटीय बालू मिट्टी में हैं जहाँ यह अनेक नदियों और समुद्र की लहरों द्वारा जमा किया गया है। इसकी उत्पति मुख्यतः इन भागों में पाई जाने वाली ग्रेनाइट युक्त नीस और चर्नोकाइटस् शिलाओं से होती है। रत्नागिरी, मद्रास के दक्षिणी जिलों और उड़ीसा तट तथा आंध्र के विशाखापट्टनम जिलों से भी यह प्राप्त किया जाता है। सबसे उत्तम प्रकार का इल्मैनाइट केरल के तटीय भागों की बालू से प्राप्त किया जाता है जहाँ यह मोनेजाइट, जिरकन, रुटाइल, सिलैमैनाइट और अन्य खनिजों के साथ मिला पाया जाता है।

विश्व में सबसे अधिक उत्पादन भारत के केरल राज्य में होता है। यह यहाँ तट के निकट फैली काली बालू मिट्टी में पाया जाता है। यह बालू पश्चिमी घाट के निकट निदाकारा से लगा कर कुमारी अंतरीप होती हुई पूर्वी घाट की ओर लीपूरम तक १६१ कि० मी० की पट्टी में फैली है। यहाँ बालू २·४ मी० मोटी तह में मिलती है इसमें इल्मैनाइट का अंश ५० से ७० प्रतिशत तक होता है। डा० वाडिया के अनुसार भारत में इल्मैनाइट के जमाव लगभग ३,५०० लाख टन के हैं।

१९६१ में केरल और मद्रास राज्यों में ३·७ लाख टन इल्मैनाइट का उत्पा-

दन प्राप्त किया गया जिसका मूल्य १०२ लाख रुपया था। इस इल्मैनाइट का स्वीडेन, इंग्लैंड, सयुक्त राज्य, जर्मनी, जापान और बेल्जियम को निर्यात किया गया।

(१०) मैगनेसाइट (Magnesite)

इस खनिज से मैगनेशियम धातु बनती है। इसका उपयोग ऊँचा तापक्रम सहन करने वाली (८००° सैंटीग्रेड) वस्तुयें बनाने में होता है। इसका उपयोग तरल कारबोलिक एसिड गैस, टाइलें, कृत्रिम पत्थर, शीशी, चीनी मिट्टी के वर्तन बनाने तथा बम के खोल बनाने में भी किया जाता है। मैगनेशियम के खिलौने भी बनाये जाते है तथा वायुयान निर्माण में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

मैगनेसाइट का उत्पादन भारत में दो क्षेत्रों से प्राप्त होता है। प्रथम क्षेत्र मद्रास राज्य में है। यहाँ यह सलेम जिले की डोलोमाइट और सर्पेन्टाइन चट्टानों से प्राप्त किया जाता है जो लगभग ४$\frac{1}{2}$ वर्ग मील क्षेत्र मे फैली है। यहाँ यह ४२ मीटर ऊँची पहाड़ियों से खोद कर प्राप्त किया जाता है। यहाँ का मैगनेसाइट बड़े उत्तम प्रकार का है इसमें मैगनेशियम धातु का प्रतिशत ६६ से ६६ तक होता है। ३० मीटर की गहराई तक ८२५ लाख टन के जमाव होने के अनुमान है। थोड़ा सा मैगनेसाइट कोयम्बूटर और तिरूचिरापल्ली जिलों से भी प्राप्त किया जाता है।

इसका दूसरा क्षेत्र मैसूर राज्य में दोदकन्या और दोदकटूर में है। यहाँ कई लाख टन खनिज होने का अनुमान लगाया गया है।

थोड़ा सा मैगनेसाइट केरल, आंध्र प्रदेश, जम्मू-काश्मीर, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश से भी प्राप्त किया जाता है। अलमोड़ा जिलों में अभी ३$\frac{1}{2}$ लाख टन के जमाव मिले हैं। यहाँ का मैगनेसाइट क्रिस्टलित है अतः इसे गलाने के लिए कम बिजली और गर्मी की आवश्यकता होता है। भारत में इस खनिज के जमावों का अनुमान १,००० लाख टन का है। यह ३० मीटर की गहराई तक छिपे हैं।

मैगनेसाइट का निर्यात आस्ट्रेलिया, कनाडा, चिली, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राज्य, इंग्लैड, नीदरलैंड्स और जापान आदि देशों को किया गया।

(११) गंधक माक्षीक (Pyrites)

माक्षीक एक कच्चा पदार्थ है जिसका गन्धाम्ल (सलफ्यूरिक एसिड) बनाने में प्रयोग हो सकता है। भारत में इस खनिज का उत्पादन नही के बराबर ही होता है तथा आयतिक गंधक पर लगभग सम्पूर्णतः निर्भर है।

प्रकृति से गन्धक दो रूपों में पाया जाता है। शुद्ध रूप में तथा अशुद्ध रूप में। यह माक्षीक (आयरन सल्फाइड) तथा अन्य धात्वीय गन्ध किलों (सल्फाइड्स) के साथ पाया जाता है। अब तक की खोज से पता चला है कि काश्मीर के लद्दाख जिले में पूगा में कम से कम २ लाख टन तक शुद्ध गन्धक विद्यमान है। इन भंडारों के निकालने में मुख्य बाधा इस क्षेत्र में गन्धक को बाजार तक ले जाने के लिए आवागमन की साधनों की कमी है जिसके परिणामस्वरूप निकालने की कीमत बहुत अधिक बढ़ जाती है।

गन्धक के अन्य स्रोत जैसे कि आयो-माक्षीक तथा गंधकिल के भंडार बहुत विस्तृत हैं। यह भंडार अमजोर (शाहबाद, जिला बिहार), तारा देवी (शिमला की पहाड़ियों में), इनगालधल (चितलद्रुग, मैसूर), देवाला (वायनाद, मद्रास), लाश-

तियाल (काश्मीर) तथा करवाड में पाये जाते हैं। आयोमाक्षीक (आयरन पाइराइट्स), रेवा मैसूर आसाम, तन्दूर के गोंडवाना कोयले, आंध्र के कोथागुदुम और सास्ती के कोयले के भंडारों में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते थे। यह अनुमान किया गया है कि १०० टन कोयले के धोने से एक टन गन्धक प्राप्त हो सकता है। अंडमान नीकोबार द्वीपों में भी अच्छी किस्म की गंधक का पता लगा है।

ऊपर कहे गये भंडारों के केवल कुछ एक भागों का ही पूर्वेक्षण किया गया है। सब मिलाकर इसके भंडार २० लाख टन के हैं। पूर्वेक्षित क्षेत्रों में अनुमानित भंडार निम्नलिखित है :—

अनुमानित भंडार (०००, टनों में)

(१) अमजोर (बिहार)	५०
(२) देवाला	२०० (स्वर्ण पूर्ण) (ओरीफैरस)
(३) इनगालधल (मैसूर)	५००
(४) लाशतियाल (काश्मीर)	१५०
(५) तारादेवी (शिमला)	१५०

करवाड़ के भंडार व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते। भारत में गंधक उत्पादन बहुत ही कम है। अतः विदेशों से १९५१ में १·२१ करोड़ रुपये के मूल्य का और १९६१ में २०० करोड़ रुपये की गन्धक आयात की गयी। यह आयात बेल्जियम, चीन, जर्मनी, नीदरलैंड्स, इंग्लैड और संयुक्त राज्य आदि देशों से किया गया। आयो-माक्षीक के भंडार तो भारत में प्रचुर है। परन्तु अभी इसका उत्पादन बिल्कुल नही होता। क्योंकि देश में इसका किसी भी कार्य में प्रयोग नहीं होता। द्वितीय महायुद्ध काल में तारादेवी भंडारों से खनन की हुई माक्षीक से आगरा में गन्धाम्ल [सल्फ्यूरिक एसिड] का उत्पादन किया जाता था। इस समय यह उद्योग गन्धक के आयात पर पूर्णतः निर्भर है। गन्धक के तेजाब का उपयोग खाद बनाने, पैट्रोलियम साफ करने, लोहे और इस्पात, रासायनिक उद्योग, रंग-रोगन, रेयन, सूती वस्त्र, विस्फोटक पदार्थ और सैल्यूलोज की फिल्में बनाने में किया जाता है। रबड़ के सामान को जोड़ने में, तेजाब से, खराब न होने वाला सीमैंट बनाने और कीड़े मारने की दवा बनाने में भी गन्धक काम आता है।

(१२) कैलसाइट खनिज (Calcite)

देश में सर्वोत्तम कैलसाइट गुजरात में मिलता है। यही नहीं संसार में जितनी प्रकार का कैलसाइट मिलता है, उसमें भी गुजरात के इस खनिज का अद्वितीय स्थान है। गुजरात में इसकी खानें विभिन्न दिशाओं में काफी दूर तक फैली हुई है और कैलसाइट प्रायः ९ से १२ मीटर और कहीं इससे भी अधिक गहराई पर मिलता है। कैलसाइट के भण्डार नवानगर, पोरबन्दर, जूनागढ़ तथा अमरेली में हैं। सबसे बड़ी खानें अमरेली में हैं। यहाँ पनाला पहाड़ी में लगभग ५८ हजार टन कैलसाइट है। जूनागढ़ में ४½ मीटर की गहराई में ही लगभग २८ हजार टन कैलसाइट है। भाव-

नगर, गोंडल, मोरवी, पालीताना तथा वधवान में भी इसकी खानें हैं। इसके अलावा पठार के कई अन्य भागो में भी कैलसाइट मिलता है। 'जिओलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया' की प्रयोगशाला में नवानगर के कैलसाइट की जाँच करने पर पता लगा है कि इसमें मिलावट बिल्कुल नहीं होती और इसका उपयोग कैलशियम कारबाइड तथा रंग उड़ाने का पाउडर तैयार करने, मिट्टी के बर्तनों पर चमक पैदा करने, कारखानों में काम आने वाला चूना बनाने तथा धातुओं को साफ करने में किया जा सकता है। इससे कई वस्तुओं में सफेदी लाई जा सकती है जैसे—रबड़, सूती कपड़े, कागज, शीशे का सामान, चीनी आदि में। इससे धातुओं पर बिना खरोंच के डर के पालिश भी की जा सकती है।

(घ) इमारती पत्थर (Building Stones)

सभी प्रकार के पत्थरों से अच्छी मजबूत इमारतें नहीं बन सकतीं। कई पत्थर तो लकड़ी से भी कम टिकाऊ होते है। इमारतें बनाने के लिए **ग्रेनाइट** (Granite) स्लेट, क्वार्टज, चरनोकाइट, रवेदार चूने के पत्थर अथवा आग्नेय शिलाएँ बड़ी उत्तम रहती हैं। इन शिलाओं पर जल का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है और इनमें जल प्रविष्ट भी बहुत कम होता है क्योंकि इनकी रंध्रविशिष्टता (Porosity) बहुत कम है किन्तु ये शिलाएँ प्रायः पर्तहीन होती हैं और बड़ी कड़ी होती हैं जिससे इन्हें कांट-छांटने में बड़ी मेहनत पड़ती है।[1] जलज--**चूने का पत्थर** (Limestone) और **संगमरमर** (Marble) हल्के, सुन्दर और बहुत नरम होने के कारण अधिक प्रयोग में आते हैं किन्तु अन्य पत्थरों की तुलना में ये कम टिकाऊ होते हैं।

इमारती पत्थरों में सबसे अधिक प्रचलित **बालू का पत्थर** (Sandstone) है। यह पत्थर न तो ग्रैनाइट जैसा अधिक कड़ा और न चूने जैसा अधिक नरम और शीघ्र क्षय होने वाला ही होता है। इसके अतिरिक्त बालू का पत्थर तहदार भी होता है अत. इसकी पतली-पतली पट्टियाँ आसानी से बनाई जा सकती है। सबसे उत्तम बलुआ पत्थर वह गिना जाता है जिसमें बालू या रेत के अतिरिक्त अन्य पदार्थ बहुत कम हों। इनके अतिरिक्त इमारतों की छतों के पाटने में खपरैल की जगह स्लेट भी काम आती है। जलज मिट्टी की पतली तहदार पृथ्वीतल के नीचे पहुँचकर दबाव द्वारा परिवर्तित होकर स्लेट बन जाती है।

भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों में जो पास में सबसे उपयुक्त पत्थर होता है उसी का उपयोग इमारतों में कर लिया जाता है। इस प्रकार मद्रास और मैसूर में **ग्रैनाइट** तथा **चारनोकाइट** (Charnokite) नामक स्थानीय आग्नेय शिलायें ही अधिकतर कार्य में लाई जाती हैं। मद्रास और आंध्र में इन शिलाओं से ७½ से ९ मीटर लंबे और ४½ से ९ मीटर चौड़े स्तम्भ प्राप्त होते हैं। इसका उपयोग महाबलीपुरम के मन्दिर में विशेष रूप से किया गया है। भारत में अन्य दक्षिणी और मध्य भाग में प्रथम कल्प से भी पूर्व के स्लेट और चूने के पत्थर तथा द्वितीय कल्प के अन्त समय के ज्वालामुखी **बैसाल्ट** (Basalt) नामक काले पत्थर की ही इमारतें बनाई जाती

१. नीस और ग्रैनाइट शिलायें दक्षिणी भारत में विस्तृत रूप में पाई जाती हैं—राजस्थान, बुन्देलखंड, मध्यप्रदेश, बिहार, आंध्र, मैसूर, मद्रास राज्यों में—इन शिलाओं से मन्दिर, भवन, दुर्ग आदि बनाने के लिए सुन्दर पत्थर प्राप्त होते हैं।

हैं। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में प्रथम कल्प के आरंभ में बने हुए विंध्याचल पर्वत के बालू और चूने के पत्थरों का इमारतों में बहुत प्रयोग होता है। इस पर्वत में बालू के लाल पत्थर का बड़ा भारी जमाव है जो इमारतों के लिये अति उत्तम प्रमाणित हुआ है। मिर्जापुर, चुनार, कटनी, इंदौर, गवालियर, बूंदी इत्यादि अनेकों स्थानों पर इस पत्थर की खानें हैं। बंगाल और उसके पास के कोयले के क्षेत्रों में गोंडवाना काल के बालू के पत्थरों की ही इमारतें बनाई जाती हैं। गुजरात में जूनागढ़ और पोरबन्दर के चूने का पत्थर तथा धारंगध्रा का बालू का पत्थर ही अधिक प्रचलित है। उड़ीसा और मध्य प्रदेश में **लैटराइट** नामक शिला भी इमारतों के काम में आती है। राजस्थान में पश्चिमी भागों में लाल इमारती पत्थर तथा दक्षिणी पूर्वी भागों में अरावली से प्राप्त पत्थर ही इमारतें बनाने में उपयुक्त होते हैं। चित्तौड़ जिले की मानपुरा, नीम्बाहेड़ा आदि स्थानों की पट्टियाँ मकानों की छतें बनाने में उपयुक्त और चौके फर्श पर जड़ने के लिए काम में आते हैं। इन शिलाओं के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब आदि राज्यों में **कंकड़** नामक चूने का पदार्थ भी इमारतों में काम आता है। कंकड़ प्रायः प्राचीन कछार में जल द्वारा लाया जाकर एकत्रित किए हुए चूने के कड़ों से बना है। खपरैल के लिए **स्लेट** हिमालय पर्वत की कांगड़ा घाटी, अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलों में तथा रेवाड़ी में भी पाई जाती है।

संगमरमर (Marbles)

भारत में कई स्थानों पर उत्तम संगमरमर पत्थर भी प्राप्त होते हैं। निम्न स्थानों के संगमरमर तो जगत-प्रसिद्ध हैं :—

(१) जोधपुर डिवीजन के मकराना और उदयपुर डिवीजन के राजनगर जिले के शर्बती और सफेद, भूरे तथा हल्के गुलाबी तथा अन्य कई रंगों के संगमरमर पत्थर।

(२) अजमेर, किशनगढ़, जयपुर, अलवर, दान्ता और पटियाला इत्यादि क्षेत्रों के संगमरमर जो हल्के गुलाबी रंग का होता है।

(३) मध्य प्रदेश के जबलपुर का श्वेत और नृसिंहपुर, छिंदवाड़ा का रंगीन तथा बड़ौदा क्षेत्रों के मोतीपुरा नामक स्थान का हरा संगमरमर।

(४) जैसलमेर जिले और गवालियर के **बाघ** नामक स्थान के चूने का लाल-पीला, छींटदार हरा पत्थर।

विशाखापट्टनम, कोयम्बटूर, मदूराई, चितलद्रुग, कोरापुट तथा गंगपुर में अनेक रंगों वाले सुन्दर चूने के पत्थर प्राप्त होते हैं।

चूना और सीमेंट का पत्थर (Limestone & Cement Stone)

साधारण चूने का सीमेंट बनाने के लिए मध्य प्रदेश और राजस्थान में चूने के परिवर्तित पत्थरों का तथा उत्तर प्रदेश में कंकड़ों का भारी जमाव है। भारत में अनेक स्थानों पर चूने का पत्थर स्वयं ही ऐसे रासायनिक संगठन का होता है कि उसमें मिट्टी बहुत कम मिलाने की आवश्यकता रह जाती है। उदाहरण के लिए गवालियर की कम्पनी सीमेंट के लिए स्थानीय चूने के पत्थर के साथ केवल १% ही मिट्टी मिलाती है। बूंदी की सीमेंट कम्पनी में तो मिट्टी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के मिट्टीदार चूने के पत्थर को ही आपस में मिलाकर

उपयुक्त रासायनिक मिश्रण कर लिया जाता है। विंध्य पर्वत में उत्तम श्रेणी के पत्थरों का बड़ा भारी जमाव प्रायः रेलवे लाइन के पास ही पाया जाता है। इस कारण भारतीय सीमेंट के सब कारखाने प्रायः चूने की पत्थरों की खानों के पास ही खोले गये हैं। सीमेंट के लिए हरसोंठ राजस्थान से मंगवाई जाती है।

भारतीय भूगर्भ विभाग ने उड़ीसा के गंगपुर क्षेत्र में चूने के पत्थर और डोलोमाइट की बड़ी-बड़ी खानों का पता लगाया है। बीरमित्रापुर और पागनोश, आमघाट तथा हाथीबाड़ी की खानों के अलावा, जिन्हें दो कम्पनियाँ खोद रही हैं, विभाग ने लघुकुटीली में ७३२ मीटर लम्बी और ७५ मीटर चौड़ी पट्टी मे सीमेंट के काम आने वाले चूने के पत्थर का विशाल भण्डार खोज निकाला है। यह स्थान गार-पोश स्टेशन से १६ कि० मी० उत्तर में है। इस क्षेत्र में कई दिशाओं में चूने के पत्थर के भण्डार की लम्बी चौड़ी पट्टियाँ फैली हुई हैं। यहाँ अच्छे डोलोमाइट का अपार भण्डार है।

चूने का पत्थर इन जिलों मे निकाला जाता है :—

आध्र प्रदेश	आदिलाबाद, अनंतपुर, गंतूर, हैदराबाद, कर्नूल।
आसाम	खासी और जयंतिया पहाड़ियाँ।
प. बंगाल	पुरुलिया, जलपाईगुरी।
बिहार	हजारीबाग, पालामाऊ, रांची, शहाबाद, सिंघभूमि।
गुजरात	बड़ौदा, जामनगर, खैरा, सोरठा।
मध्य प्रदेश	बिलासपुर, द्रुग, जबलपुर, मोरेना, रायपुर, सतना।
मद्रास	कोयम्बटूर, सलेम, तिरचिरापल्ली, तिरूनलवैली, राम-नाथापुरम।
महाराष्ट्र	यवतमाल। मैसूर गुलबर्गा, शिमोगा, चितलदुर्ग।
उड़ीसा	सुन्दरगढ़।
पंजाब	अम्बाला।
राजस्थान	बूँदी, कोटा, पाली, सवाई, माधोपुर, सीकर, सिरोही।
उत्तर प्रदेश	चमोली, गढ़वाल, देहरादून, मिर्जापुर।

मद्रास राज्य में दक्षिणी अर्काट, तंजौर, तिरुचिरापल्ली, मदुराई, सलेम, कोयम्बटूर, रामनाथापुरम, तिरुनलवैली और रामेश्वर द्वीप में भी चूने के पत्थर की नयी खानों का पता लगाया गया है। इनमें कई लाख टन के जमाव होने का अनुमान है। रामानाथापुरम जिले में सत्तूर और अरुपूकोटाई तालुकों में ४३·६ लाख टन के जमाव और रामेश्वरम द्वीप में ५० लाख टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं। दक्षिणी अर्काट में २० लाख टन के जमाव होने का अनुमान लगाया गया है।

कांच के लिये बालू (Glass Sand)

साधारण काँच बनाने के लिए उत्तम और आदर्श बालू वह माना गया है जिसमें १०० प्रतिशत सिलीका हो और जिसके सब कण बराबर तथा कोणदार आकार

के हों। बालू में सिलीका के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ जितना ही कम होता है उतना ही बालू अधिक सफेद होता है और वह काँच के लिए उपयोगी होता है। बालू के सफेद जलज पत्थरों तथा स्फटिक शिलाओं को भी पीस कर काँच के उपयुक्त बालू बनाया जाता है किन्तु इसमें मेहनत और व्यय अधिक पड़ता है। यद्यपि भारत में काँच के लिये उपरोक्त आदर्श बालू कही पर नहीं मिला है परन्तु साधारण काँच के **बालू** की यहाँ कमी नहीं है। राजमहल पहाड़ में **मंगलहाट** तथा **पाथरघाटा** नामक स्थानों पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर मिलता है जिसको पीस कर काँच के लिए बालू बनाया जाता है। विध्याचल पर्वत के **लोहगरा** तथा **बरगढ़** नामक स्थानों पर बालू का परिवर्तित जलज पत्थर मिलता है जिससे उत्तम बालू प्राप्त होता है जिसका प्रयोग उत्तर प्रदेश के कई काँच के कारखानों में हो रहा है। इन स्थानों के अतिरिक्त बरार, पूना, जबलपुर. इलाहाबाद इत्यादि स्थानों तथा जयपुर, बीकानेर, बूँदी और बड़ौदा इत्यादि क्षेत्रों में भी उत्तम श्रेणी के बालू अथवा बालू के लिये पत्थर मिलते है।

उपयोगी मिट्टियाँ (Clays)

मिट्टियाँ कई प्रकार की होती हैं। मिट्टी की उत्तमता इस बात में है कि वह गीली होने पर मुलायम हो जाय ताकि इसको किसी भी शक्ल में परिवर्तित किया जा सके। भारत में मुख्यत: तीन प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं—(१) अग्नि प्रति-रोधक मिट्टी, (२) चीनी मिट्टी, और (३) मुल्तानी मिट्टी। भारत में इन मिट्टियों का उत्पादन इस प्रकार है :—

मिट्टियों का उत्पादन
(००० टनों में)

किस्म	१९४४	१९५७	१९६१
चीनी मिट्टी	४६	१८१	३६८
अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी	८७	१६६	२७०

(१) **अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी** (F re Clay)—जिन मिट्टियों में पोटाश अथवा सोडा का अंश बहुत कम होता है वे अग्नि-प्रतिरोधक होती है। भारत में अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी की तह बगाल की राजमहल पहाड़ी के पश्चिमी भाग में तथा गोंडवाना काल के कोयले की भिन्न-भिन्न तहों के बीच में बहुत मिलती है। इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेश में जबलपुर तथा अन्य स्थानों पर भी यह मिट्टी पाई जाती जाती हैं।

अग्नि-मिट्टी के उत्पादक ये जिले हैं :—

बिहार	धनबाद, हजारीबाग. पालामाऊ, रांची, सिंहभूम।
गुजरात	सुरेन्द्रनगर, साबरकोटा, गजकोट।
मध्य प्रदेश	जबलपुर, मंदसौर, पन्ना, शहडोल।
मद्रास	द० अर्काट, तिरूचिरापल्ली।

मैसूर	तुमकुर, शिमोगा ।
उडीसा	पुरी, सबलपुर, सुन्दरगढ़ ।
प० बंगाल	वीरभूम, बर्दवान, पुरुलिया ।

यह मिट्टी अधिकतर भारतीय कारखानों की भट्टियों के लिए अग्नि-प्रतिरोधक ईटें तथा बालू की ईंटें बनाने के काम आती है। **रानीगज** मे बर्न कम्पनी का कार-खाना, **कुमार धूबी** में बर्ड कम्पनी का तथा **कुल्टी** में मार्टिन कम्पनी का कारखाना अग्नि-प्रतिरोधक ईंटों के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश में जबलपुर और कटनी के कारखाने भी ऐसी ईटें तैयार करते है।

(२) **चीनी मिट्टी** (China Clay or Kaolin)—सब मिट्टियों में बिल्कुल सफेद चीनी नामक मिट्टी अधिक मूल्यवान होती है। यह मिट्टी प्रायः ग्रेनाइट की फैलास्पार (Felspar) नामक खनिज के क्षय से उत्पन्न होती है। पोटाश और सोडा इस मिट्टी में न होने से यह अग्नि-प्रतिरोधक भी होती है। इस प्रकार की मिट्टी भारत के कई भागों में पाई जाती है। सबसे उत्तम चीनी मिट्टी सिंहभूम जिले में तथा राजमहल पहाड़ी में मिलती है। इनमें से प्रथम स्थान की मिट्टी कपड़ों के कारखानों के लिए भी उत्तम प्रमाणित हुई है।

चीनी मिट्टी के प्रमुख उत्पादक जिले इस प्रकार है :—

आंध्र प्रदेश	आदिलाबाद, अनंतपुर, कड्डप्पा, कर्नूल ।
बिहार	भागलपुर, मुंघेर, पालामाऊ, रांची, सिंहभूम ।
गुजरात	महसाना, साबरकांटा ।
जम्मू-काश्मीर	ऊदमपुर ।
केरल	कन्नानोर, क्विलोन, त्रिवेन्द्रम ।
मध्य प्रदेश	ग्वालियर, जबलपुर ।
मद्रास	द० अर्काट।
महाराष्ट्र	चांदा ।
मैसूर	बंगलौर, हसन, शिमोगा ।
उड़ीसा	मयूरभंज, संभलपुर, सुन्दरगढ़ ।
पंजाब	गुड़गांव ।
राजस्थान	बीकानेर, जयपुर ।
प० बंगाल	वीरभूम, मिदनापुर,पुरूलिया ।

घीया पत्थर के प्रमुख उत्पादक जिले विभिन्न राज्यों में इस प्रकार हैं

आंध्र प्रदेश	महबूबनगर, कर्नूल, चित्तूर ।
बिहार	हजारीबाग, सिंघभूम ।
मध्य प्रदेश	जबलपुर ।
मैसूर	हसन, तुमकुर, मैसूर ।

राजस्थान	अलवर, भरतपुर, डूंगरपुर, जयपुर, झुंझुनू, सवाई-माधोपुर, सिरोही, उदयपुर ।
उत्तर प्रदेश	अल्मोड़ा, चमोली ।

क्वार्ट्‌ज और सिलीका के मुख्य उत्पादक जिले ये है :—

आंध्र प्रदेश	हैदराबाद ।
बिहार	धनबाद, गया, सिंहभूम, हजारीबाग ।
गुजरात	पंचमहल ।
केरल	अलैप्पी ।
मध्य प्रदेश	मोरेना ।
मद्रास	तिरूचिरापल्ली ।
मैसूर	बंगलौर, गुल्बर्गा, शिमोगा ।
उड़ीसा	मयूरभंज ।
महाराष्ट्र	रत्नागिरी ।
राजस्थान	अजमेर, बूंदी, जयपुर, सवाई माधोपुर, सिरोही ।

डोलोमाइट का उत्पादन इन जिलों से प्राप्त होता है :—

बगाल	जलपाईगुरी ।
बिहार	पालामाऊ ।
गुजरात	बड़ौदा ।
मध्य प्रदेश	बिलासपुर, छिंदवाड़ा, जबलपुर ।
महाराष्ट्र	नागपुर ।
मैसूर	शिमोगा, तुमकुर ।
राजस्थान	अजमेर ।
उड़ीसा	सुन्दरगढ़।

यह मिट्टी अधिकतर चीनी के बर्तन बनाने, कपड़ों में भरने तथा सफेद बढ़िया कागज बनाने में काम आती है। चीनी मिट्टी के उत्तम श्रेणी पदार्थ (Ceramics & Potteries) बनाने के कारखाने गवालियर, जबलपुर, कलकत्ता, दिल्ली, मैसूर आदि स्थानों में स्थित हैं।

(३) **मुल्तानी मिट्टी**—भारत में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, जबलपुर, हैदराबाद और मैसूर जिलों में बहुत मिलती है। इसका रंग सफेद, भूरा अथवा पीला होता है। इस मिट्टी के कण बहुत बारीक होते हैं अतः उनमें चिकनाई और रंग-कारक द्रव सोख लेने का गुण होता है। अतः इसका उपयोग ऊन से चिकनाई दूर करने तथा तैलों को स्वच्छ अथवा रंगहीन करने के लिए और कागज, साबुन और कपड़ों के कारखानों तथा सिर के बाल धोने के लिए किया जाता है।

अध्याय १६

औद्योगिक शक्ति के स्रोत

(INDUSTRIAL FUEL)

शक्ति के साधनों में कोयले का महत्व सबसे अधिक है। देश में उपयोग में लाई गई व्यवसायिक शक्ति उत्पादन में ८४% कोयले, १५% तेल और ६% जलशक्ति का उपयोग होता है।

विद्युत उत्पादन

वर्ष	भाप विद्युत	तेल विद्युत	जल विद्युत	योग
उत्पादन क्षमता : (१० लाख किलोवाट में)				
१९५०	१·०	०·१	०·६	१·७
१९५५	१·६	० २	० ९	२·७
१९५६	१·६	० २	१·१	२·९
१९५७-५८	१·८	०·२	१·२	३·२
१९५८-५९	१·९	०·३	१·३	३·५
१९५९-६०	२·१	०·३	१·५	३·९
१९६०-६१	३·५	०·३	२·१	५·८
उत्पादित शक्ति : (१० लाख किलोवाट घंटों में)				
१९५०	२,३८७	२००	२,५२०	५,१०७
१९५५	४,६१९	२३१	३,७४२	८,५९२
१९५६	५,१३४	२३३	४,२९५	९,६६२
१९५७-५८	६,०४२	२५४	५,०७२	११,३६९
१९५८-५९	६,८४८	२९८	५,८४८	१२,९९४
१९५९-६०	७,६९३	३०७	७,००१	१५,००१
१९६०-६१	७,९२९	३२६	६,९७७	१५,२४२

१. कोयला (Coal)

भारत में खानों से कोयले निकालने का प्रथम प्रयास सन् १७७४ में दो अंग्रेजों (समर और हीटले) द्वारा रानीगंज में किया गया किन्तु इस प्रयास में विशेष सफलता नहीं मिली। इस दशा में और भी कई फुटकर प्रयास किए गए किंतु १८४३ तक जब कि बंगाल कोयला कंपनी की स्थापना हुई—कोई विशेष लाभ इस उद्योग में

चित्र ११६. प्रमुख शक्ति के साधन

नहीं हुआ। १८५५ में ईस्ट इंडिया रेलवे और १८६५ में बाराकर क्षेत्र तक इसका विस्तार होने से कोयलें उद्योग की तीव्र उन्नति हुई क्योंकि इस कोयले की मांग रेलों में अधिक थी। १८६८ में ५ लाख टन कोयला निकाला गया। १८५८ में कोयले का उत्पादन २१६,००० टन से बढ़ कर १८७२ में ३२२,००० टन; १८७८-८० में ९८७,००० टन; १८९१-९५ में ४८,००,००० टन और १९०१-०५ में ११५,००,००० टन हो गया। १९ वीं शताब्दी के अंत में झरिया कोल क्षेत्र का पता लग जाने से

कोयले के उत्पादन में और भी वृद्धि हुई। इस समय तक कोयले की मांग देश में कम थी अतः कुछ कोयला मलाया और लंका को भी निर्यात किया जाने लगा। १९२० में भारत में कोयले का उत्पादन १८० लाख टन, १९३५-३६ में २३० लाख टन, १९३९-४० मे २८० लाख टन हुआ। द्वितीय महायुद्ध काल में युद्ध-कार्यों के लिए भारतीय कोयले की मांग में वृद्धि हुई अतः युद्धकाल में अधिक कोयला निकाला गया। विभाजन के समय भारत के कोयले क्षेत्र भारत मे ही रहे अतः इसके उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। १९४८ में २९८ लाख टन और १९५१ में ३४४ लाख टन कोयला निकाला गया। १९६१ में यह मात्रा ५६१ लाख टन; १९६२ में ६१५ लाख टन और १९६३ में ६२० लाख टन की थी। १९६४में उत्पादन का लक्ष्य ६७९ लाख टन का कराया गया है। १९६१ में विश्व में जितना कोयला निकाला गया उसका ३०% सं० रा० अमरीका में, १८% रूस में, १५ प्रतिशत ब्रिटेन में, ९ प्रतिशत जर्मनी में ३० प्रतिशत जापान, २ प्रतिशत भारत, २ प्रतिशत चीन और शेष एशिया, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के देशों में निकाला गया। भारत में कोयले की ८३२ खानें हैं जिनमें ३½ लाख श्रमिक लगे हैं।

कोयला क्षेत्र

भारत के कोयले का ९८.५ प्रतिशत गोंडवाना काल की शिलाओं मे दक्षिण के पठार पर पाया जाता है। ये शिलाये अत्यन्त प्राचीन हैं और मुख्यतः बलुए पत्थर और शेल की बनी है। अनुमानतः ये शिलाये नदियों के मीठे जल में जमा होकर बनी हैं। गोंडवाना शिलायें दामोदर घाटी में अधिक विकसित है। इन्हें यहाँ 'दामुदा मालाएँ' (Damuda Series) कहते हैं। रानीगंज और झरिया में ये शिलाये तीन भागों में विभक्त है। इनमे सबसे ऊपर और सबसे नीचे के भागों में ही कोयले की तहें पाई जाती हैं—ये क्रमशः 'रानीगज' और 'बाराकर' कहलाती है। इनके बीच में लोह-प्रस्तर होने से कोयला नहीं मिलता। रानीगंज क्षेत्र में कोयला 'रानीगंज' और झरिया में 'बाराकर' चट्टानों में कोयला मिलता है।

गोंडवाना क्षेत्र के अंतर्गत निम्न क्षेत्र मुख्य हैं :—

(१) दामोदर घाटी में रानीगंज, झरिया क्षेत्र, बोकारो क्षेत्र (२) दामोदर घाटी के उत्तर में गिरडीह क्षेत्र: (३) बिहार में पालामऊ जिले के पश्चिम में डाल्टनगंज और उत्तरी तथा दक्षिणी करनपुरा क्षेत्र; (४) गोदावरी घाटी में सिंगरेणी, बलारपुर और वरोरा क्षेत्र; (५) सतपुड़ा पर्वतों से संबंधित महोपानी और पेंच-घाटी क्षेत्र।

भारत की कुल उत्पत्ति ९०% कोयला बंगाल और उड़ीसा राज्यों की खानों से प्राप्त होता है। यह सभी क्षेत्र दामोदर नदी की घाटी में फैले हैं। कलकत्ते से गोंडवाना काल के क्षेत्र मोटे तौर पर पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा से लगाकर मध्यप्रदेश और आंध्र प्रदेश तक फैले है। शेष १.५%कोयला तृतीय-कल्प की शिलाओं-से प्राप्त होता है। इसे तृतीय-कल्प का कोयला या टर्शरी कोयला (Tertiary Coal) कहते हैं। इसके मुख्य क्षेत्र आसाम में दिहाँग नदी की घाटी में स्थित लखीमपुर के जिले में और राजस्थान में पलाना में हैं।

अस्तु, स्पष्ट है कि भारत के मुख्य क्षेत्र प्रायद्वीप में और दूसरे क्षेत्र प्रायद्वीप के बाहर हैं। यह बात विचारणीय है कि भूगर्भिक दृष्टि से भारतीय कोयले की उम्र
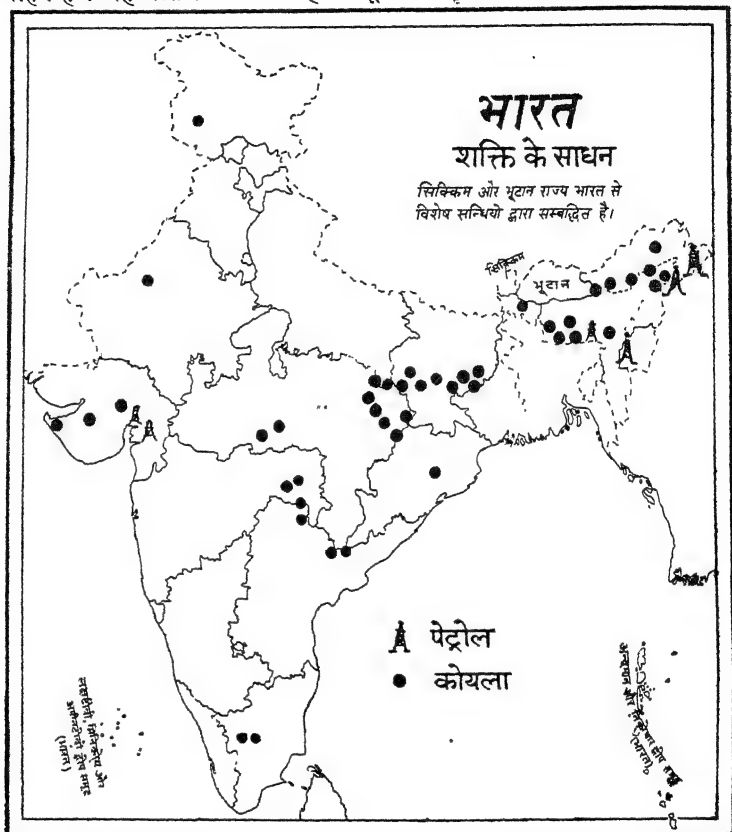
चित्र ११७. शक्ति के साधन

यूरोप और अमरीका के कोयलों की अपेक्षा कम है। गोंडवाना युग का कोयला २० करोड़ वर्ष पुराना और टर्शरी युग का कोयला ५ करोड़ वर्ष पुराना है।

भारत के कोयले की किस्म (Types of Coal)

रासायनिक सम्मिश्रण की दृष्टि से भारत में तीन प्रकार का कोयला प्राप्त होता है :—

(१) **भूरा कोयला** (Lignite)—इसका रंग भूरा होता है। यह कोयला जलने में अधिक धुआँ देता है और शुद्ध कोयले से अधिक हल्का होता है किन्तु यह शीघ्र चूर-चूर हो जाता है। इसमें कार्बन का अंश ४५ से ५५ प्रतिशत; जल का अंश ३० से ५५ प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ ३५ से ५० प्रतिशत तक होता है। इस प्रकार का कोयला राजस्थान में पलाना (बीकानेर डिवीजन), मद्रास के अर्काट जिले में नैवेली में और काश्मीर के कारेवाँ में मिलता है।

(२) **बिटूमीनस कोयला** (Bituminous Coal)—यह कोयला गोंडवाना काल की कई शिलाओं में मिलता है। इसका रंग काला होता है और जलते समय इससे धुआँ भी कम उठता है। यह गर्म होकर फूल जाता है और लिगनाइट से भारी होता है तथा हवा में खुला पड़ा रहने पर उतना शीघ्र चूर-चूर भी नहीं होता। इसमें कार्बन का अंश ४५ से ६५ प्रतिशत; जल का अंश ३० प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ का अंश ३५ से ५० प्रतिशत तक होता है।

(३) **ऐंथ्रासाइट कोयला** (Anthracite Coal)—सबसे उत्तम श्रेणी का कोयला है। इसमें जलते समय धुआँ नहीं निकलता तथा इसकी ज्वाला नीली और तेज प्रकाश वाली होती है और बड़ी गर्मी देती है। इस प्रकार का कोयला केवल काश्मीर राज्य में जम्मू के निकट ९८ कि० मी० क्षेत्र में ०·३ से ६ मीटर मोटी तहों में रियासी जिले में मिलता है। इसमें कार्बन की मात्रा ८० से ९५ प्रतिशत; जल का अंश २ से ५ प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ २५ से ४५ प्रतिशत तक होता है।

उपयोग में आने की दृष्टि से भारतीय कोयले को निम्न श्रेणियों में बांटा जाता है :—

(१) **धातु शोधन के उपयुक्त कोक बनाने योग्य कोयला**—इस प्रकार के कोयले से कोक बना कर धातु शोधन के उपयोग में लाया जाता है। ऐसा कोयला झरिया, बुकारो, रानीगंज और गिरडीह में मिलता है। अनुमानतः इन खानों में २०० करोड़ टन से कुछ ही अधिक कोकिंग कोयले का जमाव है जिसमें से छीजन आदि कट कर लगभग १४० करोड़ टन कोयला कोक बनाने के लिए उपलब्ध हो सकता है। इस कोयले में फासफोरस की मात्रा अधिक और राख की मात्रा कम होती है।

(२) **उत्तम श्रेणी का भाप बनाने योग्य कोयला** (High Grade Steam Coal)—इस प्रकार का कोयला उत्तम किस्म की भाप बनाने के काम में आता है। यह रानीगंज, बुकारो, करनपुरा, तलचर, मध्य प्रदेश और सिंगरेणी क्षेत्रों से प्राप्त होता है।

(३) **निम्न श्रेणी की भाप बनाने वाला कोयला** (Low Grade Steam Coal)—यह भी बिहार-उड़ीसा की खानों से प्राप्त होता है।

(४) **टर्शरी कोयला** जो मुख्यतः आसाम से प्राप्त होता है।

(५) मद्रास में पाया जाने वाला **लिगनाइट कोयला**।

(क) गोंडवाना कोयला क्षेत्र (Gondwana Coal Fields)

गोंडवाना क्षेत्र के अन्तर्गत प्रमुख कोयला क्षेत्र ये हैं :—

दामोदर घाटी कोयला क्षेत्र में पश्चिमी बंगाल में रानीगंज; बिहार में झरिया, गिरीडीह और उत्तरी तथा दक्षिणी करनपुरा की खानें हैं। इनमें अधिकांश में बिटयूमीनस कोयला ही अधिक मिलता है। यहाँ उच्च कोटि का कोकिंग कोयला प्राप्त होता है।

रानीगंज क्षेत्र—यह क्षेत्र दामोदर नदी की घाटी में सबसे महत्वपूर्ण है जो कलकत्ता से लगभग २४० किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में है। इसकी खानों का क्षेत्रफल १५०० वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसका अधिकांश बर्दवान जिले में है किंतु

इसकी सीमायें बांकुड़ा, मानभूम और संथाल परगने तक चली गई है। यहाँ कोयले की तहों का ढाल दक्षिण या दक्षिण-पूर्व की ओर है। यहाँ पर कोयला निकालने का प्रथम प्रयास कदाचित् १७७४ ई० में बाराकर नदी के किनारे किया गया था। रानीगंज क्षेत्र में यद्यपि कोयला **बाराकर** और **रानीगंज** दोनों श्रेणियों की शिलाओं में पाया जाता है किन्तु यहाँ रानीगंज श्रेणी का कोयला ही अधिक मिलता है। रानीगंज श्रेणी में कई अच्छी अच्छी कोयले की तहें हैं। बाराकर श्रेणी के कोयले में जल और वाष्पीय पदार्थों का अंश रानीगंज श्रेणी के कोयलों से कम और ठोस कार्बन अधिक मात्रा में होता है। बाराकर श्रेणी की मुख्य तहें रामनगर, लायकडीह और बेगुनिया है। रानीगंज श्रेणी की तह में थोड़ी-सी तह ही धातु शोधने योग्य कोक बनाने के लिए अच्छी हैं जिनमें **तिषारगढ़** तह ५ मीटर मोटी और **सैक्टोरिया**

चित्र ११८. भारत के प्रमुख कोयला क्षेत्र

तह ३ मीटर मोटी उत्तम कोयले के लिए प्रसिद्ध है। केवल इन दोनों तहों में ६१० मीटर की गहराई तक २३ करोड़ टन से अधिक प्रथम श्रेणी का कोक बनाने वाला कोयला कूंता गया है और इसके अतिरिक्त २० करोड़ टन कोक न बनाने वाला किन्तु उत्तम कोयला और होगा। चूंकि दक्षिणी-पूर्वी प्रसार दामोदर के कच्छार से दब गए हैं अतः कोयले की चट्टानें बर्दवान और कलकत्ता की ओर कहाँ तक फैली हैं इसका अनुमान पूर्णतः नहीं लगाया जा सका है। रानीगंज क्षेत्र में अनुमानतः कुल कोयला ६०० करोड़ टन ६०० मीटर की गहराई तक होगा। इसमें से ३३ करोड़ टन कोकिंग कोयला है। यह क्षेत्र भारत के कोयले का $\frac{1}{3}$ भाग उत्पन्न करता है। इस क्षेत्र को दक्षिणी-पूर्वी रेलवे जोड़ती है। इस क्षेत्र का कोयला रेलों और जहाजों के उपयोग में लाया जाता है।

झरिया कोल क्षेत्र (Jheria Coal fields)—रानीगंज क्षेत्र से ४८ मीटर पश्चिम की ओर है। इस क्षेत्र का पता सन् १५८५ में लगा था। यह क्षेत्र ३७ मीटर

लम्बा (पूर्व-पश्चिम में) और १६ मीटर चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल ४४० वर्ग किलोमीटर है इस क्षेत्र का कोयला 'बाराकर' और 'रानीगंज' दोनों श्रेणियों की जलज शिलाओं से मिलता है। 'बाराकर' श्रेणी यहां पर लगभग ८४ वर्गमील मे मिलती हैं और उनमें कोयले की बीस तहे हैं। इन तहों की पृथक रूप से मोटाई कुछ मीटर से ८ मीटर तक हैं। कुल तहे मिल कर ६१ मीटर के लगभग होंगी। 'रानीगंज' श्रेणी की शिलायें २१ वर्गमील मे मिलती है। बाराकर श्रेणियों की मोटाई ६१० मीटर और रानीगंज श्रेणियों की ५६० मीटर तक मानी गई हैं।[1] भरिया क्षेत्र की प्रायः सब तहो के कोयले से कोक बन सकता है परन्तु उत्तम कोक केवल ६ नम्बर से १८ नम्बर तक की तहों से ही बनता है। भरिया क्षेत्र समस्त भारत का ५०% कोयला उत्पन्न करते है। यहाँ के अनुमानित भडार ४५० करोड मी० टन के है जिसमें से ८६ करोड़ मी० टन कोकिंग योग्य है। दक्षिणी-पूर्वी रेलवे इस क्षेत्र को कलकत्ता से जोड़ती है। इस क्षेत्र के कोयले का उपयोग आसनसोल, कलकत्ता, जमशेदपुर और कुल्टी के कारखानों में किया जाता है।

गिरडीह क्षेत्र (Girdih fields)—हजारीबाग जिले मे है। इसका क्षेत्रफल केवल २८ वर्ग किलोमीटर है जिसमें कोयले वाली जलज शिलायें केवल १८ वर्ग किलोमीटर में ही मिलती है। ये कोयले की शिलायें बाराकर' श्रेणी की हैं परन्तु यहाँ के कोयले की मुख्य विशेषता यह है कि उससे अति उत्तम प्रकार का स्टीम-कोक तैयार होता है। यहाँ की प्रसिद्ध तहे **कडहरबाड़ी** और **पहाड़ी की सीमा** कहलाती है। इस तह में २ करोड़ मीट्रिक टन कोयला होने का अनुमान लगाया गया है। यह कोयला धातु शोधने मे व्यवहृत होता है।

बोकारो क्षेत्र (Bokaro fields)—भरिया के पश्चिम मे है और दो भागों में बँटा है—पूर्वी बुकारो और पश्चिमी बुकारो। दोनों का क्षेत्रफल मिला कर ५५० वर्ग किलोमीटर है। यह क्षेत्र ६४ मीटर लम्बा और ११ मीटर चौड़ा है। यहाँ भी कोक बनाने योग्य उत्तम कोयला मिलता है। यहाँ कोयले की तहें २६ हैं जिनकी मोटाई १ से ३० मीटर तक है। पूर्वी बोकारो की करगली तह ३७ मीटर मोटी है। यहाँ काफी कोयले के भडार हैं। यहाँ के भंडार ८० करोड़ मी० टन के हैं। यहाँ ६ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान किया जाता है।

करनपुरा क्षेत्र (Karanpura fields)—ऊपरी दामोदर की घाटी मे बुकारो क्षेत्र से दो मील पश्चिम मे यह क्षेत्र वर्तमान है। इस क्षेत्र के भी दो भाग हैं—उत्तरी और दक्षिणी करनपुरा। इनका क्षेत्रफल १,१०० वर्ग किलोमीटर है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि यहाँ कोयले की तहें अधिक मोटी पाई जाती है। उत्तरी करनपुरा मे कोयले की तहों की मोटाई २२ मीटर और दक्षिणी करनपुरा में १५ मीटर तक है। अरगड़ा की पर्त तो २० मीटर तक मोटी है। यहाँ लगभग ७५ करोड़ मीट्रिक टन कोयला होने के अनुमान है।

सोन घाटी के कोयला क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत मध्य प्रदेश के उमरिया, सोहागपुर, सिगरौली, तातापानी, रामकोला और **उड़ीसा** के औरंगा, हुटार, डालटेनगंज के क्षेत्र है।

---

[1] *M. S. Krishnan*, Geology of India & Burma, p. 321.

उमरिया का क्षेत्रफल केवल १५ वर्ग किलोमीटर है। इसमें ६ पर्तें है जो ८ मीटर मोटी है। यहाँ के कोयले में राख और वाष्प का अंश अधिक होता है। इस क्षेत्र मे ४ करोड़ मी० टन कोयला होने का अनुमान है।

सोहागपुर का क्षेत्रफल ३,००० वर्ग कि० मीटर है। यहाँ कोयले की तहे ३ से ५ मीटर मोटी हैं। इनमें राख की मात्रा १० से १५% तक है।

सिंगरौली क्षेत्र रीवाँ जिले में है। इसका क्षेत्र फल २,२०० वर्ग कि० मीटर है। यहाँ कोयले की तहें २ से ५ मीटर लम्बी मोटी पाई जाती है। यहाँ के कोयले में नमी की मात्रा अधिक होती है।

रामकोला-तातापानी क्षेत्र को छत्तीसगढ़ कोयला क्षेत्र भी कहते हैं। इसका पूर्वी भाग तातापानी और पश्चिमी भाग रामकोला है। इसका क्षेत्रफल २,००० वर्ग कि० मीटर है किन्तु गोंडवाना युग की कोयलादार शिलायें केवल २५० वर्ग कि० मी० में ही पाई जाती हैं। यहाँ का कोयला अच्छा नहीं है।

औरंगा क्षेत्र उड़ीसा में पालामाऊ जिले में है। इनका क्षेत्रफल २५० वर्ग कि० मीटर है। यद्यपि यहाँ कई १२ मीटर मोटी तहें पाई जाती हैं किन्तु कोयला निम्न श्रेणी का है।

हुटार क्षेत्र औरगा क्षेत्र के पश्चिम में २० किलोमीटर दूर है। इसका क्षेत्रफल २०० वर्ग कि० मीटर है। यहाँ कोयला ४ मीटर मोटी तहों से प्राप्त किया जाता है।

डाल्टनगज क्षेत्र भी पालामाऊ जिले मे ८० वर्ग कि० मीटर क्षेत्र में फैला है। इसमें १५ सैंटीमीटर से लगा कर १½ मीटर मोटी पर्तें मिलती हैं किन्तु सबसे मोटी पर्त १४ मीटर है, जो राजहरा स्टेशन के निकट पड़ती है।

महानदी घाटी कोयला क्षेत्र—इसके अंतर्गत **उड़ीसा** के तलचर, और संभलपुर क्षेत्र तथा **मध्य प्रदेश** के कोरबा, सनहट, झिलमिली-चिरमिरी, रायगढ़-हिंगिर तथा विश्रामपुर-लखनपुर क्षेत्र मुख्य हैं।

मध्य प्रदेश - कोरबा क्षेत्र मन्द नदी के आरपार ५०० वर्ग किलोमीटर में फैला है। इस क्षेत्र में विभिन्न मोटाई के कई पर्त मिलते हैं जिनमें सोनपुरी अथवा ऊपरी कुसमुडा पर्त २२ मीटर मोटी है। यहाँ अनुमानित २५ करोड़ मी० टन कोयले के जमाव हैं जिनमें से लगभग २½ करोड़ अच्छी श्रेणी के हैं। इसका उपयोग भिलाई के इस्पात कारखाने में होता है।

झिलमिली क्षेत्र छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। यहाँ कोयले की ४ पर्तें मिलती हैं जो १ मीटर मोटी है। इस क्षेत्र में लगभग ६५ ला० मी० टन कोयला होने का अनुमान है।

चिरमिरी क्षेत्र भी छत्तीसगढ़ के अन्तर्गत ही है। यहाँ कोयले की ⅓ मीटर मोटी ६ तहें मिलती है।

विश्रामपुर क्षेत्र १,००० वर्ग किलोमीटर में फैला है। यहाँ २ मीटर मोटी कई तहें हैं।

लखनपुर क्षेत्र ३४० वर्ग किलोमीटर में फैला है। यहाँ कोयले की केवल दो पर्तें हैं।

सनहट क्षेत्र यह कोरिया क्षेत्र में ८२५ वर्ग किलोमीटर में फैला है।

रायगढ़-हिंगिर क्षेत्र ५०० वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसमें कोयले की कई पर्तें हैं जिनमें कुछ २ मीटर मोटी हैं।

उड़ीसा - तलचर क्षेत्र ब्राह्मणी नदी की घाटी में ५०० वर्ग किलोमीटर मे फैला है। यहाँ ३-४ मीटर मोटी कोयले की कई तहे मिलती है।

सम्बलपुर क्षेत्र रामपुर में ५०० वर्ग किलोमीटर में फैला है। यहाँ १८० मीटर की गहराई तक १० करोड़ मी० टन कोयले के भंडार अनुमानित किए गए हैं।

गोदावरी-वर्धा घाटी क्षेत्र

इस क्षेत्र के अन्तर्गत महाराष्ट्र में चांदा, बलारपुर, वरौरा यवतमाल नागपुर आदि जिलों के तथा आंध्र प्रदेश में सिगरैनी, सस्ती और तद्दूर के कोयला क्षेत्र आते हैं।

महाराष्ट्र : चांदा जिले में **बलारपुर** नामक क्षेत्र में कोयले की तहें १० से २० मीटर मोटी हैं। यहाँ ५ वर्ग कि० मी० क्षेत्र में लगभग ४ करोड़ मी० टन कोयले के जमाव हैं। यहाँ का कोयला हवा में पड़ा रहने पर चूर-चूर होने लगता है और स्वयं जल जाता है।

चांदा जिले में ही **वरोरा क्षेत्र** है जहाँ ७ मीटर और ३ मीटर मोटी तहें मिलती हैं। यहाँ लगभग १.२ करोड़ मी० टन कोयले के जमाव हैं।

यवतमाल जिले में पिसगांव के निकट २३ मीटर की गहराई पर ४ मीटर से ८ मीटर मोटी और राजपुर के निकट ४८ मीटर की गहराई पर ५½ और ६ मीटर मोटी कोयले की तहें मिलती हैं। यहाँ का कोयला मुख्यतः निम्न श्रेणी का है। इसके अनुमानित जमाव २४ करोड़ मी० टन के हैं।

नागपुर जिले में टेकड़ी और जूनीकाम्पटी में ३० करोड़ मी० टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं।

आंध्र प्रदेश : सिगरैनी क्षेत्र में बाराकर श्रेणी की शिलायें ५४ वर्ग कि० मीटर क्षेत्र में फैली हैं। इसमें कोयले की ७ तहें हैं जिनमें से ऊपरी दो मीटर मोटे पर्त में उच्च किस्म का कोयला मिलता है। यहाँ लगभग १६ करोड़ मी० टन कोयले के जमाव हैं।

सस्ती क्षेत्र वर्धा नदी के पश्चिम में ५०० वर्ग किलोमीटर में फैला है। यहाँ १५ मीटर मोटी कोयले की पर्तें हैं। यह कोयला उत्तम श्रेणी का है।

तन्दूर क्षेत्र गोदावरी और तन्दूर नदियों के बीच में २५० वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैला है।

सतपुड़ा कोयला क्षेत्र

इस क्षेत्र में मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ कोयला क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। **मोहपानी क्षेत्र** नृसिहपुर जिले में नर्मदा घाटी के दक्षिण में सतपुडा के उत्तरी-ढाल के तले में स्थित है। यहाँ 'बाराकर श्रेणी' की शिलाओं में ४ तहे हैं जिनमें से दो लगभग ६ और ७½ मीटर मोटी हैं। यहाँ ४ करोड़ मी० टन कोयले के जमाव होने का अनुमान है।

कन्हन घाटी क्षेत्र छिंदवाड़ा जिले में कन्हन नदी की घाटी से पंच घाटी तक फैला है। यहाँ दमुआ, कालीछपर, घीरवाडी, नीमरवेडा, पनारा, जामकुन्दा और हिंग्लादेवी में कोयला मिलता है। कोयले की तहें १½ से ४ मीटर मोटी हैं।

पंचघाटी क्षेत्र भी छिंदवाड़ा जिले में कन्हन घाटी के दक्षिण में है। यहाँ अनेक स्थानों पर कोयला मिलता है।

(ख) टर्शरी युग के कोयला क्षेत्र (Cretaceous or Tertiary Coalfields)

सम्पूर्ण भारत का १·५ प्रतिशत कोयला टर्शरी युग की चट्टानों से प्राप्त होता है। इसके मुख्य क्षेत्र राजस्थान और आसाम हैं।

राजस्थान में बीकानेर डिवीजन में **पलाना** नामक क्षेत्र से कोयला निकाला जाता है जो बीकानेर के दक्षिण-पश्चिम मे २० कि० मीटर की दूरी पर है। यहाँ केवल एक ही पर्त है जो २ मीटर मोटी है, परन्तु कहीं कहीं यह १० मीटर मोटी है। यहाँ का कोयला लिग्नाइट श्रेणी का है। इसका उपयोग मुख्यतः उत्तरी रेलवे में होता है।

अभी हाल ही में जोधपुर के उत्तर-पश्चिमी भाग मे ६५ कि० मीटर दूरी पर लिग्नाइट की पर्त का पता लगाया गया है जो ३ मीटर मोटी है।

जयपुर जिले में लगभग २ करोड़ मी० टन कोयले के जमाव होने का अनुमान लगाया है।

आसाम—आसाम राज्य में कोयला पूर्वी नागा पर्वत के उत्तर-पश्चिम ढाल पर लखीमपुर तथा शिवसागर जिलों में पाया जाता है। यहाँ का सबसे बड़ा क्षेत्र **माकूम** है जो लगभग ८० कि० मी० लम्बा **नामदंगा लीडो** कोलक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की तहों की मोटाई अधिकतर १५ मीटर है। डा० फाक्स के मतानुसार यहाँ ६०० मीटर की गहराई तक लगभग १२५ वर्ग कि० मी० क्षेत्र में १०० करोड़ मीट्रिक टन कोयले के भंडार सुरक्षित हैं। यहाँ का कोयला गैस बनाने के लिए उपयुक्त है किन्तु इसमें गंधक का अंश अधिक होता है।

जयपुर क्षेत्र में, जो ४० कि० मीटर की लम्बाई मे फैला है, २ करोड़ मीट्रिक टन कोयले के जमाव होने का अनुमान है।

अन्य क्षेत्रों में **मिकर की पहाड़ियों** में लांगलोई, दिस्सोमा, और नाम्बोर की घाटियों में हल्की श्रेणी का कोयला १ से २ मीटर मोटी तहों में पाया जाता है। गारो, खासी, और जयन्तिया पहाड़ियो मे कोयला मिलता है। गारो में डोंगरिंग और बेमांग क्षेत्र, **खासी** में रोंगामलोब और मावलांग तथा **जयन्तिया** में अनवी और लकाडोंग क्षेत्रों में कोयला मिलता है।

नजीरा, **झांजी** और **देशीय** अन्य उल्लेखनीय क्षेत्र हैं। यहाँ के कोयले का उपयोग रेलों, स्टीमरों और चाय के कारखानों में किया जाता है।

दिहाग नदी की घाटी में **नामचिक** में उत्तम श्रेणी का कोयला मिलता है।

काश्मीर—इस राज्य में दक्षिणी-पश्चिमी भाग में कोयला मिलता है। **जम्मू** में तीन भागों में कोयला प्राप्त किया जाता है :

(क) चिनाब नदी के पश्चिम में कालाकोट, महोगला, चकर और मेटका की खानों से; (ख) धनसाल-सबालकोट क्षेत्र (ग) चिनाब के पूर्व में लड्डा क्षेत्र।

मद्रास—यहाँ लिग्नाइट कोयले का भारत का सबसे बड़ा क्षेत्र दक्षिणी अर्काट के कड्डालोर और वृद्धाचलम तालुका में पाया गया है जो ६ से ८ किलोमीटर की लंबाई में फैला है। यहाँ ३६ वर्ग कि० मी० में ३ से १५ मीटर मोटी तहें पाई गई हैं। इस क्षेत्र में कोयले के सुरक्षित भंडार लगभग ५० करोड़ मीट्रिक टन के अनुमानित किये गये है। यहाँ के कोयले में गंधक का प्रतिशत ०·७ है किन्तु आक्सीजन और उद्जन अधिक और कार्बन कम है।

उत्तर प्रदेश की सीमा पर नैपाल तराई क्षेत्र के शोहरतगढ़ और खाजावली में भी उत्तम श्रेणी के जमाव पाये गये हैं। उत्तर प्रदेश सरकार की सहायता से इस क्षेत्र की खुदाई की जा रही है।

कोयले का उत्पादन

राज्य	१९६० मात्रा (००० टॉंस में)	१९६० मूल्य (००० रु०)	१९६१ मात्रा (००० टॉंस में)	१९६१ मूल्य (००० रु०)
आंध्र प्रदेश	२,५१७	६७,०७३	२,७७१	७४,३३७
आसाम	६६३	१८,७५७	७३९	२०,९३९
बिहार	२५,०५१	४९०,५५६	२७,१६३	५३८,७३०
जम्मू-काश्मीर	२३	१,३५४	२२	१,२६७
मध्य प्रदेश	६,३०७	१२७,१५७	६.२८६	१३८,६६४
महाराष्ट्र	७८८	१६,९२८	८५६	१८,६४३
उड़ीसा	७७६	१६,९६८	९७२	२१,९३८
प० बंगाल	१६,४६८	३३९,६५४	१७.२५६	३५७,४२१
भारत का योग	५२,५९३	१०,८८,४४७	५६,०६५	११,७१,९३९
लिगनाइट कोयला				
जम्मू-काश्मीर	४,७२१	१८६	४,८१५	१५७
मद्रास	—	—	२,२६३	४९
राजस्थान	४२,२२४	८९९	५६,६८७	१,२०९
भारत का योग	४६,४९५	१,०८५	६३,७६५	१,४१५

उपभोग और व्यापार

भारतीय कोयले की सबसे बड़ी मांग देश के ही उद्योग-धंधों में है। किन्तु ठंढे देशों की भांति भारत में कोयला घरों को गरम करने आदि के लिए उपयोग में नहीं लाया जाता। प्रति व्यक्ति पीछे भारत में अन्य देशों की तुलना में कोयले की वार्षिक खपत बहुत कम है—केवल ०·०७ टन। ग्रेट ब्रिटेन में यह मात्रा ३·९ टन;

बेल्जियम में ३·६ टन; सं० रा० अमरीका में ३·३ टन; कनाडा में २·२ टन और जर्मनी में २ टन है।

भारत में जितना कोयला उपभोग में आता है उसका संभवत: ४०% उद्योगों में और लगभग ३३% रेलों में उपयोग होता है। १६६१ में कोयले का उपभोग इस प्रकार था :—

कोयले का उपभोग

	१६६१			
रेलों में	लाख टन १४८·०	लाख टन	३६.५	%
उद्योगों में :—				
लोह और इस्पात का उद्योग	४३·०	,,	१०·४	,,
सूती कपड़े का उद्योग	१८·०	,,	४·५	,,
ईंटों का उद्योग	१८·०	,,	४·४	,,
जूट का उद्योग	३·६	,,	१·०	,,
कागज का उद्योग	६·३	,,	१·६	,,
सीमेंट का उद्योग	२२·३	,,	५.५	,,
बिजली उत्पादन में	४०·०	,,	९·८	,,
जहाजों में तथा निर्यात में	१·५	,,	०·४	,,
निर्यात	१७·१	,,	४·२	,,
रासायनिक उद्योग	१०·६	,,	२·७	,,
अन्य	७८·०	,,	१०·०	,,
भारत का योग	४०७·५		१००·०	

भारत से कोयले का निर्यात समीपवर्ती देशों को—विशेषत: लंका, ब्रह्मा, पाकिस्तान, सिंगापुर, हांगकांग, जापान, अदन, मौरीशस, पूर्वी अफ्रीका और मध्य पूर्व के देशों को होता है। इंग्लैंड में अधिक कोयला उत्पन्न होने तथा दक्षिणी अफ्रीका के कोयले से स्पर्धा होने से भारत के निर्यात व्यापार को धक्का लगा है। कोयले के निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए **कोयला समिति** (१६५४) ने सुझाव दिया था कि : (१) कोयला का व्यापार राज्य-सरकार के हाथ में नहीं रहना चाहिए; (२) ग्रेड के अनुसार कोयले के निर्यात पर जो प्रतिबन्ध लगे हैं उन्हें हटा दिया जाय; (३) कलकत्ता के बन्दरगाह पर निर्यात संबंधी सुविधाओं को सुधारा जाय।

१६५६ में १२ लाख मीट्रिक टन कोयले का निर्यात किया गया जिसका मूल्य ३·२ करोड़ रुपया था। १६६१ में निर्यात की मात्रा १४ लाख टन और मूल्य ५·३ करोड़ रुपया था।

भारतीय कोयला उद्योग की विशेषतायें और दोष

(१) यद्यपि भारत में कोयले का कुल उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहा है किंतु कोयले की खानों के उद्योग की उत्पादन क्षमता बहुत कम है। अधिकाश खानें इतनी छोटी हैं कि उन्हें आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं माना जाता। ३५ प्रतिशत खानें अनार्थिक हैं।

(२) भारत में कोयले के क्षेत्रों का वितरण असमान है क्योंकि सम्पूर्ण उत्पत्ति का ६८·५ प्रतिशत कोयला गोंडवाना क्षेत्र—बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश से—तथा केवल १·५ प्रतिशत टर्शरी क्षेत्र के आसाम और राजस्थान से प्राप्त होता है। अतः प्रथम क्षेत्रों से कोयला औद्योगिक केन्द्रों तक ले जाने में व्यय अधिक हो जाता है। यही कारण है कि समुद्र तटीय भागों में कोयला विशेषतः अफ्रीका और इङ्गलैड से आयात किया जाता हैं।

(३) भारत के कोयला क्षेत्र नव्य-नदियों के प्रवाह-क्षेत्रों से दूर हैं अतः पश्चिमी देशों की भाँति हमारे यहाँ न तो नदियाँ ही और न नहरें ही कोयला ढोने के काम में आती हैं। परिणामतः सारा कोयला मालगाड़ियों के डिब्बों द्वारा ढोया जाता है जिससे व्यर्थ ही नष्ट हो जाने के कारण किराया भी काफी पड़ जाता है।

(४) भारत में कोयला निकालने के साधन बहुत ही पुराने हैं। अब भी कई खानों में मजदूरों द्वारा ही कोयला खोद कर निकाला जाता है। इसमें चूरा बहुत नष्ट हो जाता है। भारत में कोयला काटने, कोयला लादने और ढोने की मशीनें बहुत ही कम हैं। **भारतीय कोयला क्षेत्र समिति** (१६४६) और **कोयला उद्योग की वर्किग कमेटी** ने सुझाव दिया है कि कोयला उद्योग का शीघ्र ही मशीनीकरण कर दिया जाये जिससे प्रति महीने कम से कम १० हजार टन कोयला निकाला जा सके। इसी हेतु इस समिति का सुझाव है कि छोटी-छोटी खानों को मिलाकर एक बड़ी इकाई के रूप में संगठित किया जाय तथा कोयले की खानों में प्रयुक्त होने वाली मशीनों का भी भारत में ही उत्पादन किया जाय।

कोयले का उत्पादन क्षेत्रीय आधार पर संगठित किया जाय जिससे उत्पादन और वितरण का अभिनवीकरण (Rationalisation) किया जा सके और खानों से दूर के क्षेत्रों के विकास को प्रोत्साहन किया जा सके। अतएव आसाम को बहुत कुछ स्वावलम्बी बनाने के लिए वहाँ कोयले का उत्पादन बढ़ाया जाय, दक्षिणी भारत की रेलों और उद्योगों के लिए आंध्र में उत्पादन बढ़ाया जाय, सौराष्ट्र, कच्छ और पश्चिमी भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मध्य प्रदेश और मद्रास में कोयले की खानों का विकास किया जाये।

अभी तक भारतीय खानों में मशीनों का उपयोग पूर्ण रूप से न होने के कारण कोयले का उत्पादन कम मात्रा में किया जाता है। भारत में प्रति मजदूर ८ घंटे की एक पारी (shift) में २·७ टन कोयले का उत्पादन करता है जबकि ब्रिटेन में ६·२६ टन; जर्मनी में ८·६६ टन और अमरीका में २१·६८ टन कोयले का उत्पादन होता है।

(५) भारत में अधिकांशतः घटिया किस्म का कोयला ही उपलब्ध होता है जिसमें कारबन का अंश कम होता है किन्तु राख, वाष्पीय अंश और जल अधिक मात्रा में होता है। यह तथ्य नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

कोयले की तहें	जल %	वाष्पीय अश %	स्थिर कार्बन %	राख %
रानीगंज (घूसिक)	७·५	३४·८	५२·९	१२·६
रानीगंज (दिशेरगढ़)	२·५	३३·२	५४·२	९·८
झरिया, नं० १८	१·८	२८·८	५९·३	११ ९
झरिया नं० ५—६	० ६	१४·१	६६ २	१९·६
गिरडीह, करहरवाड़ी	० ९	२२·५	६६·०	१०·७
आसाम	६·०	३४·०	५३·०	३ ०

कोयले के सुरक्षित भंडार (Reserves of Coal)

भारत में कोयले के कितने भंडार सुरक्षित हैं इसके सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कहना असंभव है क्योंकि गोदावरी और महानदी के उत्तरी पश्चिमी छोरों के कोयला क्षेत्र पठार की गहरी पर्तों के नीचे दबे पड़े हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस आवरण के नीचे कोयले की कितनी बड़ी राशि छिपी पड़ी है। इसी प्रकार झरिया, रानीगंज और पूर्वी छोर गंगा नदी के कछार के नीचे दबे पड़े हैं। अतएव, भारत के सम्पूर्ण कोयला भंडार का अनुमान लगाना कठिन है फिर भी भारत के भूगर्भ विशारदों द्वारा समय-समय पर जो अनुमान लगाये गये है उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत में निम्न श्रेणी का कोयला तो काफी परिमाण में मौजूद है किन्तु धातु-शोधन योग्य उत्तम कोयले के भण्डार बहुत कम हैं।

गोंडवाना और टर्शरी युग के विभिन्न प्रकार के कोयलों के जमाव ३०५ मीटर (१००० फीट) की गहराई तक ३१३,८६१ लाख टन के अनुमानित किये गये हैं। इनका वितरण इस प्रकार है :—[1]

कोयले के प्रकार	जमाव (१० लाख मीट्रिक टनों में)
गोंडवाना कोयला	
१. पूर्वी हिमालय के क्षेत्र (दार्जिलिंग)	१००·०
२. प० बंगाल (रानीगंज)	७,९९६·०
३. विहार के क्षेत्र (झरिया, चंद्रपुरा, राजमहल, देवधर, शहाजूरी, कुन्डिट, गिरडीह इटरखोरी, बोकारो, रामगढ़, करनपुरा, पालामाऊ, हुटार, डालटनगंज)	
४. उड़ीसा के क्षेत्र (तलचर, इब-नदी)	७४३·०
५. मध्य प्रदेश के क्षेत्र (सिंगरौली, कोरार, उमरिया, जोहीलानदी, सोहागपुर)	२९० ५
६. छत्तीसगढ़ प्रदेश (झिलमिली, सनहट, झागराखंड, चिरमीरी, बिसरामपुर, सुन्दरगढ़, हस्ड़ो अरंड, कोरबा)	

1. Mineral Production in India for 1958 (1960). pp. 56-58.

७. सतपुड़ा क्षेत्र (मोहपानी, पथाखेड़ा, कन्हान, पंचघाटी)	२४७·०
८ आंध्र प्रदेश के क्षेत्र (तंडूर-जूनागाव, करलापाली, सिंगरेणी, धा येलंडू)	१९९·२
९. महाराष्ट्र के क्षेत्र (काम्पटी, वर्धा घाटी क्षेत्र, बन्दर, रजूर, चांदा बलारपुर)	४२८·५
टरशरी युग का कोयला	
१. आसाम	
(i) गारो पहाड़ियाँ (प० और पूर्वी धारंगगिरि तथा अज्ञात क्षेत्र)	२०६·०
(ii) खासी-जयन्ती पहाड़ियाँ (लंगरीन, उमरीलेंग, मिकिर पहाड़ियाँ)	१९१·६
(iii) ऊपरी आसाम क्षेत्र (नजीरा, माकूम, जयपुर नामचिक)	८५८·५
२. जम्मू-काश्मीर (कालाकोट, मोटका, महोगला, चाकर सावलकोट, जुगलगली, चिन्हकाह, काश्मीर घाटी)	२००·०
३. राजस्थान (पलाना)	२०·०
४. मद्रास (नैवेली)	२०००·०
५. केरल (पश्चिमी तट)	२७६·०
६. कच्छ (उमरसर)	११·०
भारत का योग	३१३,८६१

तृतीय योजना में बताया गया है कि भारत मे ४ फीट मोटी तहों में ५००,००० लाख टन कोयला भरा है जिसमें से ५-६% अर्थात् लगभग २८,००० लाख टन कोकिंग बनाने योग्य है। इसके अतिरिक्त अन्य भंडार ८००,००० लाख टन के तथा लिगनाइट के २०,७३० लाख टन के भंडार हैं।

भारत में कोयले की राशि अपर्याप्त ही है किन्तु यदि उसे ठीक प्रकार काम में लाया जाये और खानों में बालू भर कर उन्हें नष्ट होने से रोका जा सके तो कोयले की अवधि बढ़ सकती है। अतः आवश्यक है कि भारतीय कोयले के उपभोग और खनन में मितव्ययता की जाये। इसके लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते है —

(१) रानीगंज, झरिया, गिरडीह और करनपुरा क्षेत्रों का कोयला केवल धातु शोधन के लिए कोक-बनाने में प्रयुक्त किया जाय और अन्य स्थानों का कोयला (जिसमें वाष्पीय अंश और गन्धक अधिक है) मुख्यतः रासायनिक उप-प्राप्ति (by-products) उत्पन्न करने में ही किया जाय।

(२) कोयले को खानों से निकालने के लिए अधिक आधुनिक ढङ्गों का

प्रयोग किया जाये जिससे कोयला निकालने में कोयले का कम से कम दुरुपयोग हो।

(३) कोयले की धुलाई को प्रोत्साहन दिया जाय जिससे उसमें राख का अंश कम हो और पहले तथा दूसरे ग्रेड का धोया हुआ कोयला धातुशोधन के लिए उपयोग में लाया जा सा सके।

(४) कोयला निकालने के बाद जो खानें खाली हो गई हों उन्हें रेत आदि से भर दिया जाए जिससे शेष कोयला सुगमता से निकाला जा सके।

(५) बढ़िया कोयले का उत्पादन सीमित किया जाय।

(६) कोयले के द्वारा शक्ति का एक कण भी यदि प्राप्त हो तो उसे प्राप्त कर लिया जाय। अतः कोयले से मुलायम कोक बनाने की रीति को बदलना चाहिए। अभी सॉफ्ट कोक के उत्पादन में बड़ा अपव्यय होता है।

(७) भारतीय कोयले की खानों को पूर्णरूप से व्यक्तिगत पूँजीपतियों के हाथों मे न छोड़ा जाय क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य कोयला निकालने से धन कमाना है न कि देश को इस बहुमूल्य निधि का उचित रूप से उपयोग करना।

(८) नये कोयले के क्षेत्रों का पता लगाया जाय तथा घरों में उत्तम श्रेणी के कोयले के जलाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

(९) रासायनिक दृष्टि से भारतीय कोयले का विश्लेषण कर यह ज्ञात करना कि कौनसा कोयला किस काम मे प्रयुक्त किया जा सकता है।

(१०) यदि कोक योग्य कोयले का उत्पादन देश की माँग से अधिक हो तो उसे विदेशों को निर्यात कर विदेशी-मुद्रा अर्जित की जाये।

(११) यातायात और उद्योग-धन्धों में काम में आने वाली बिजली घटिया कोयले या उसके चूरे से ही बनाई जाय और अच्छे कोयले को बचा कर धातु शोधन के लिए रखा जाये।

द्वितीय योजना में कोयले का उत्पादन लक्ष्य ६०० लाख टन का रखा गया था। अतिरिक्त उत्पादन २२० लाख टन का निर्धारित किया गया था। इसमें से १२० लाख टन सरकारी क्षेत्र में और १०० लाख टन निजी क्षेत्र से प्राप्त किया जाना था किन्तु १९६०-६१ में केवल ५४६ लाख टन कोयला ही उत्पन्न किया गया।

तीसरी योजना में कोयले का अतिरिक्त उत्पादन ३७० लाख का होगा अर्थात् कुल ९७० लाख टन कोयला उत्पादित किया जायेगा।

२. खनिज तेल (Mineral Oil)

मिट्टी का तेल प्रायः मैदानों में साधारणतया नवीन पर्वतों के किनारे पाया जाता है क्योंकि यहाँ पृथ्वी के भीतरी भागों में उथल-पुथल कम हुई है। अतः ऊपर की छिद्रहीन चट्टानें टूटी नहीं और गैस तथा तेल सुरक्षित रहते हैं। पुरानी चट्टानों के बने प्रायद्वीप प्रदेश में खनिज तेल नहीं पाया जाता। यह तेल पर्तदार चट्टानों में ही मिलता है—आग्नेय या परिवर्तित चट्टानों में नहीं। बालू और चूने के पत्थरों में तेल उसी तरह से विद्यमान रहता है जैसे स्पंज में पानी।

तेल प्रायः नमकीन जल और गैसों के साथ मिला रहता है। सबसे नीचे जल रहता है उसके ऊपर नमकीन तेल और सबसे ऊपर गैस होती है। प्राकृतिक गैस के दबाव पर धरातल के नीचे वाले पानी के दबाव के कारण तेल की कुछ सीमित मात्रा कुछ समय के लिए झरनों या नालों के रूप में पृथ्वी के धरातल पर बहने लगती (overflow) है। किन्तु बाद में इसे पम्प करके निकाला जाता है। कभी-कभी मिट्टी का तेल फव्वारों के रूप में अपने आप भी भूमि के गर्भ से निकलकर बहने लगता है किन्तु अधिकांश में इसे पम्पों द्वारा ही निकालना पड़ता है। मिट्टी के तेल के कुएँ साधारणतः ४ से ७ हजार फीट गहरे होते है।

इस तेल में कई प्रकार की अशुद्धियाँ मिली रहती हैं। अतः इसे नलों द्वारा साफ करने के लिए तेल-शोधन शालाओं (Refineries) में भेजा जाता है जहाँ इसे स्वच्छ कर कई वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं—क्रूड आॅयल, ईथर, पैट्रोल, बैंजिन, गैसोलीन, कैरोसीन, चिकना करने वाला तेल, मोम आदि। मिट्टी के तेल में कार्बन का अंश सबसे अधिक होता है। यह ८०%; हाईड्रोजन १३% और आक्सीजन ७% होता है।

संभावित उत्पादक क्षेत्र—खनिज तेल की दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी ही दयनीय है क्योंकि यहाँके तेल-क्षेत्र पूर्व में फैली हुई अराकान पर्वत श्रेणी की मोड़दार चट्टानों तक ही सीमित हैं। ये पर्वत श्रेणियाँ पूरे आसाम से ब्रह्मा तक फैली हैं। तेल क्षेत्रों का यह सिलसिला इन्डोनेशिया तक चला गया है। ये क्षेत्र प्राचीन-काल में टैथिस महासागर की पूर्वी खाड़ी के अवशेषों में स्थित हैं। अभी जो पर्यवेक्षण किये गये हैं उनके अनुसार इन चट्टानों का क्षेत्रफल भारत में ४ लाख वर्गमील है। इन्हीं में संभावित तेल-क्षेत्रों का वितरण इस भांति अनुमान किया गया है:—

(१) आसाम क्षेत्र में ३०,००० वर्गमील में—जिसमें आसाम तेल कम्पनी को काम करने की सुविधा प्राप्त है।

(२) पश्चिमी बंगाल में ३०,००० वर्गमील क्षेत्र में जिसमें से १०,००० वर्ग मील में स्टैन्डर्ड वैकूम आइल कम्पनी को लाइसेंस दिया हुआ है। यही क्षेत्र सुन्दरवन और उड़ीसा के कुछ भागों तक विस्तृत है।

(३) पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर में ५०,००० वर्गमील क्षेत्र में।

(४) राजस्थान के ४६, ५०० वर्गमील क्षेत्र में।

(५) गुजरात में खंभात-कच्छ में ६८,५०० वर्गमील में।

(६) गंगा की घाटी में १४२,००० वर्गमील क्षेत्र।

(७) मद्रास के तटवर्तीय भाग में १७,००० वर्गमील क्षेत्र।

(८) आंध्र के ९,५०० वर्गमील; केरल के ६,००० वर्गमील और अंडमान नीकोबार के ३,००० वर्गमील क्षेत्र में।

वर्तमान तेल उत्पादक क्षेत्र

इस समय भारत में खनिज तेल का सबसे बड़ा स्रोत आसाम में है। यहाँ टर्शरी-चट्टानों की पेटी उत्तर-पूर्वी कोने से आसाम होकर ब्रह्मा के आराकान प्रदेश

तक चली गई है। यह ६६० किलोमीटर की लम्बाई में फैली है। इसी पेटी में अनेक स्थानों पर तेल मिलता है।

आसाम के विभिन्न भागों में तेल पाया जाता है किन्तु खासी और जयन्तिया श्रेणियों के दक्षिणी निचले भागों और उत्तरी-पूर्वी आसाम की कोयले युक्त चट्टानों में (विशेष कर लखीमपुर जिले में) पाये जाने वाले क्षेत्र प्रमुख है। यहाँ 'शेल तेल' (Shale oil) पाया जाता है। यह तेल-युक्त बालू से प्राप्त होता है। इस क्षेत्र में तेल साधारणतः ४५७ मीटर से १,६८५ मीटर की गहराई तक प्राप्त किया जाता है। यहाँ का मुख्य क्षेत्र उत्तरी-पूर्वी आसाम से लगाकर सुरमा नदी की घाटी में होता हुआ रामरी और चेदूबा द्वीपों तक १,२६० कि० मी० के घेरे में फैला है। इस क्षेत्र में मुख्य क्षेत्र लखीमपुर जिले में डिगबोई के निकट है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल ८ वर्ग किलोमीटर है। यहाँ तेल के कुए बप्पापांग, हस्सापाग, डिगबोई, और पानीटोला में हैं।

डिगबोई से प्रथम बार तेल सन् १८८८ में निकाला गया। १६०० में यहाँ का उत्पादन ४५½ लाख लिटर था। १६२० में यह २२३ ला० लिटर और १६४४ में ३७४ ला० लिटर था। आज भी इस क्षेत्र से भारत का ६०% तेल प्राप्त किया जाता है। तेल निकालने का कार्य **आसाम ऑयल कम्पनी** के संरक्षण में किया जाता है। डिगबोई के निकट ही एक तेल शोधनशाला सन् १८६६ में स्थापित की गई जहाँ कच्चे तेल को शुद्ध कर कैरोसीन, पैट्रोल, गैसोलीन, ईथर, बैंजिन मोबील आइल और पैराफीन मोम प्राप्त किया जाता है।

सुरमा घाटी में हल्की श्रेणी का तेल बदारपुर, मसीमपुर और पथारिया में मिलता है। बदारपुर से पहली बार तेल सन् १६१७ ई० में मसीमपुर में सन् १६१८ में तेल निकाला गया।

ऊपरी आसाम में माकूम-नामदंग, जयपुर, तिरू-पहाड़ियाँ, वारसिला तथा निचूगार्ड में सन् १६२० में तेल के कुएँ खोदे गए।

सन् १६५३ में नहोरकटिया-मोरन क्षेत्र में, जो डिगबोई के पश्चिम में ३० किलोमीटर दूर है, ५० लाख मीट्रिक टन तेल के भंडारों का पता लगाया गया है।

मोरन क्षेत्र में प्रतिदिन ८½ से १० लाख घन मीटर गैस भी मिल सकेगी। यहाँ तेल भी अधिक गहराई पर मिलता है।

तेल निकालने का काय सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में किया जा रहा है। पहले क्षेत्र में **तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग** के आधीन मार्च १६६२ तक आसाम के शिवसागर तथा गुजरात के कलोल, पादरा और अंकलेश्वर में ७१ कुयें खोदे जा चुके हैं जिनमें से ३७ कुओं से तेल निकाला जा रहा है, १३ गैस दे रहे थे तथा ८ सूखे थे और १३ का परीक्षण हो रहा था। गुजरात में अंकलेश्वर के कुओं से प्रतिदिन १५०० टन तेल निकाला जा रहा है। इसे बम्बई की शोधनशाला में साफ करने के लिए भेजा जाता है।

दूसरे क्षेत्र में **ऑयल इंडिया लिमिटेड** के आधीन नहोरकारिया, हुगरीजन और मोरन में अब तक १३० कुयें खोदे जा चुके हैं, जिनमें से ८८ कुओं से तेल निकाला जा रहा है, ८ कुयें गैस दे रहे हैं १५ सूखे हैं और शेष का परीक्षण हो रहा था। १६६३ तक इन क्षेत्रों से ३० लाख टन कच्चा तेल मिला है। इन कुओं में ४६० लाख

मैट्रिक टन तेल और ७२,४४,५२० लाख घन फीट गैस होने का अनुमान है। इनसे प्रति वर्ष ४० लाख टन तेल तथा १०० लाख घन फीट गैस निकाले जाने का अनुमान है।

तेल स्रोतों का पर्यवेक्षण करने का कार्य भारत सरकार के तेल एवं गैस मंत्रालय तथा रूसी, अमरीकी, फ्रांसीसी, जर्मन और रूमानियन विशेषज्ञों की सहायता से किया जा रहा है।

तेल के कुए पंजाब में ज्वालामुखी, नूरपुर, धर्मशाला, होशियारपुर और विलासपुर में भी पाये गये है।

पश्चिम बगाल में बर्दवान जिले में तथा राजस्थान में जैसलमेर जिले में भी तेल मिलने का अनुमान है।

मद्रास में कावेरी घाटी, जम्मू में मुसलगढ़ और उत्तर प्रदेश में भी तेल निकालने संबंधी कई परीक्षण किये गये हैं।

प्रथम योजनाकाल के पूर्व तेल शोधनशाला केवल डिगबोई में थी किंतु प्रथम योजना काल में दो, और द्वितीय योजना काल में एक शोधनशाला और स्थापित की गई है। बम्बई में ट्राम्बे में दो शोधनशालायें निर्मित की गई हैं—एक न्यूयार्क की **एस्सो कं०** द्वारा जिसकी शोधन क्षमता २४ लाख टन क्रूड तेल साफ करने की है। दूसरी शोधनशाला भी ट्राम्बे में ही है। यह लंदन की बर्मा शैल क० द्वारा आरम्भ की गई है। इसकी वार्षिक शोधन क्षमता ३५ लाख टन की है। तीसरी शोधनशाला विशाखापट्टनम में **कैलटैक्स कं०** द्वारा आरम्भ की गई। इसकी वार्षिक क्षमता ६½ लाख टन की है। आसाम तेल कम्पनी की डिगबोई शोधनशाला का विस्तार-एक
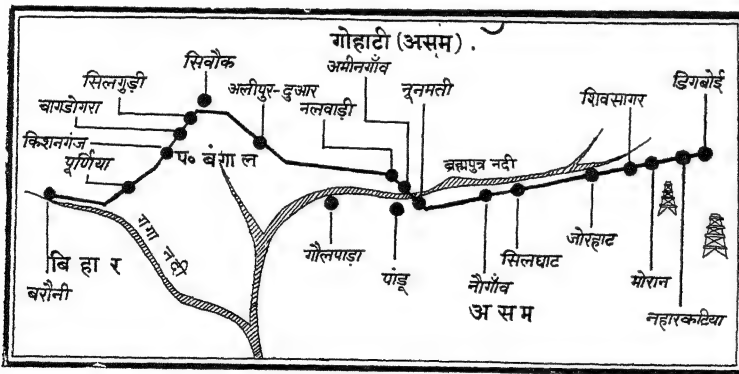
चित्र ११६. आसाम-बिहार की तेल वाहक नालियाँ

कुए गैसोलीन प्लान्ट और चिकने करने वाले तेल का प्लान्ट लगाने से— ४·२ लाख टन से बढ़ कर ६·८ लाख टन हो गया है।

इस समय निजी क्षेत्र में तेल साफ करने की कुल वार्षिक क्षमता ७४·५ लाख टन की है।

नई शोधनशालायें जो आसाम में नहोरकटिया स्थान पर स्थित तेल के कुयें से दिगबोई के तेल शोधन कारखाने तक तथा नहोरकटिया से नूनमती और बरौनी तक नल द्वारा तेल ले जाने की जो योजना बनाई गई है वह दो चरणों में समाप्त होगी। पहला चरण १९६१ के अंत तक समाप्त हो चुका है। इसके अन्तर्गत नहोरकटिया से नूनमती तक ४३५ किलोमीटर लंबे ½ मीटर व्यास के नल डाले गये हैं। दूसरे चरण में नूनमती से बरौनी तक ७२५ कि० मीटर लंबे आधा मीटर व्यास वाले नल डाले जायेंगे। यह चरण १९६२ के अंत तक पूर्ण हो गया है। पूरे होने पर ये नल प्रतिवर्ष ४० लाख टन तेल की ढुलाई करेंगे। प्रथम शोधनशाला की कच्चा तेल साफ करने की क्षमता ७½ ला० टन और कुल लागत १७·७ करोड़ रुपये की तथा दूसरी की २० लाख टन और लागत ३७ करोड़ रु० की होगी। अब इनकी क्षमता को बढ़ाकर क्रमशः १२½ लाख टन तथा ३० ला० टन किया जा रहा है।

एक दूसरी बड़ी योजना भी केन्द्रीय सरकार के विचाराधीन है। यह ३,२१९ कि० मीटर लंबी योजना है जिसके द्वारा कच्चा तेल और तेल पदार्थ देश के विभिन्न भागों तक ले जाये जायेंगे। यह नल-योजना तीन खंडों में है: (१) उत्तरी क्षेत्र ९८६ कि० मीटर जो बरौनी से कानपुर, लखनऊ और इलाहाबाद होकर दिल्ली तक होगा, (२) केन्द्रीय क्षेत्र १,७२२ कि०मी० लंबा होगा जो बम्बई-अहमदाबाद (४३१ कि० मी०) बम्बई—भुसावल (५११ किलोमीटर), बम्बई-पूना (१९३ किलोमीटर), तथा पूना-हैदराबाद (४३१ किलोमीटर) को जोड़ेगा। (३) दक्षिण क्षेत्र की लंबाई ५११ कि० मी० होगी। यह कोचीन बन्दरगाह को मद्रास और बॅंगलौर से मिलाएगा।

गुजरात में वड़ौदा से १० किलोमीटर दूर **कोयली** में सरकारी क्षेत्र में रूस की आर्थिक सहायता से एक और तेल शोधक कारखाना स्थापित किया जा रहा है जो दो चरणों में समाप्त होगा। प्रथम चरण १९६४ तक समाप्त होगा। इसमें कारखाने की क्षमता १० लाख टन तेल साफ करने की होगी। दूसरा चरण १९६५ के आधे तक पूरा होगा और तब शोधन क्षमता २० लाख टन की हो जायेगी। अन्ततः यह क्षमता ३० लाख टन की हो जायेगी। इसके लिए कच्चा तेल अंकलेश्वर और कल्लोल से प्राप्त किया जायेगा।

यह कारखाना मुख्यतः मिट्टी के तेल और डीजल तेल की कमी पूरी करने के लिए बनाया जा रहा है। इसमें ५·३६ लाख टन मिट्टी का तेल, १० हजार टन तरल पैट्रोल गैस, ३·७१ लाख टन मोटर गैसोलिन का उत्पादन किया जायेगा। इनके अतिरिक्त २५ ह० टन दावक पदार्थ, ८० ह० टन शोधक गैस और ४ २२ लाख टन ईंधन तेल का उत्पादन भी होगा।

इस कारखाने में १२२ तेल टैंक होंगे। इसमें ५ हजार घन मीटर की क्षमता वाले १० टैंकों में अर्द्ध निर्मित और ६० टैंकों में तैयार माल रखा जायेगा। कारखाने के लिए २४ हजार किलोवाट क्षमता वाला एक ताप बिजलीघर बनाया जा रहा है तथा जल की पूर्ति ८ किलोमीटर दूर महीसागर नदी से पूरी की जायेगी। तैयार माल की लदाई के लिए कारखाने में ७ किलो मीटर लंबी बड़ी लाइन की रेलवे साइडिंग की व्यवस्था की गई है।

एक और शोधनशाला कोचीन के निकट **अम्बालामुकुल** नामक स्थान पर स्थापित की जा रही है। यह कारखाना अमरीका के फिलिप्स पैट्रोलियम कं० के

सहयोग से बन रहा है। आरंभ में इस कारखाने में प्रति दिन २५ लाख टन तेल साफ किया जायेगा। अन्ततः इसकी क्षमता को बढ़ा कर ३५ लाख टन वार्षिक किया जा सकेगा। यह १९६५ के अन्त तक तैयार होगा। इसमें आरंभ में आयात किए गए तेल को और बाद में कावेरी क्षेत्र के तेल को साफ किया जायेगा।

तेल की माँग उत्पादन और व्यापार

१९६१ मे हमारा उत्पादन केवल ६ लाख टन के लगभग था, जबकि इसकी माग ८० लाख टन की थी। देश के तीव्रगति से औद्योगिक विकास की ओर बढ़ने के फलस्वरूप इसकी मांग १९६६ तक १६० लाख टन बढ़ जाने की है। वर्तमान अनुमानों के अनुसार देश का उत्पादन लगभग ७० लाख टन बढ़ जायेगा। इसमें २० लाख टन अंकलेश्वर, कलोल और पादरा क्षेत्रों से, ५ लाख टन खभात से, ३० लाख टन नहोरकटिया और मोरन से तथा १५ लाख टन आसाम में रुद्रसागर से प्राप्त किया जाये। इतना उत्पादन बढ़ जाने पर भी देश में ८० से ९० लाख टन तेल की कमी रहेगी। १९६६ के बाद वार्षिक उत्पादन ३० से ३५ लाख टन का होने लगेगा। इस उत्पादन प्राप्ति के लिए तेल और गैस आयोग के कार्यक्रमानुसार ६०० नये कुयें खोदे जायेंगे—जिनमें से ३०० कुयें गुजरात में होंगे। ५६ कुओं की गहरी खुदाई भी की जायेगी। इस कार्य के लिए २०२ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

मांग की कमी को पूरा करने के लिए ईरान, ईराक, अरब, इंडोनेशिया, बहरीन, संयुक्त राज्य अमरीका, बह्मा आदि देशों से तेल और उसकी वस्तुयें आयात की जाती हैं।

नीचे की तालिकाओं में पैट्रोलियम से प्राप्त विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन और उपभोग बताया गया है :—[1]

पैट्रोलियम वस्तुओं का उत्पादन (००० मैट्रिक टनों में)

	१९५१	१९५६	१९६१	१९६२
कच्चा तेल	२६०	२९४	५०८	१,०२१
हल्की वस्तुयें	५१	९६४	१,०५९	१,१६२
कैरोसीन	५२	५४६	१,०१५	१,१६७
डीजल	·४४	७११	१,५९६	१,७९२
भारी वस्तुयें	१७	१,४१६	१,८११	१,९५५
बिट्यूमिन	४	१६५	४३८	३६८
अन्य उत्पादन	५८	७१	७७	१५४
योग	२२६	३,८७३	६,०६५	६५९८

1. *Eastern Economist*, Annual Number, 1964, pp. 1338—1341.

पैट्रोलियम वस्तुओं का उपभोग (००० मैट्रिक टनों में)

	१९५१	१९५६	१९६१	१९६२
हल्की वस्तुयें	९०४	९४६	९७४	१,०६३
कैरोसीन	१,०५९	१,५५४	२,१९३	२,६६७
डीज़ल तेल	६७४	९८०	२,०४८	२,२७३
भारी वस्तुयें	६२८	८२०	१,९६४	१,८३४
अन्य उत्पादन	३११	५८२	८५०	१,२१४
योग	३,५७४	४,८८२	८,०२९	९,०५१

कच्चे पैट्रोलियम और उसकी वस्तुओं का आयात इस प्रकार है :—

(मात्रा ००० टोंस में; मूल्य करोड़ रुपयों में)

वस्तुयें	१९५९ मात्रा	मू०	१९६१ मा०	मू०	१९६२-६३ मा०	मू०
					लाख लिटर	
हल्की वस्तुयें (light Distillates)	१०९	३·२५	११२	३·१	१ ३८	४·१
कैरोसीन	१२६०	२१·९	१३९७	२१·८	१९·८८	३२·३
डीजल	३११	४·८	४१८	५·७	४६०	६·६
चिकना करने वाले तेल	२१२	९·६	२९५	१४·३	२३२	११ ५
बिटयूमन	६	०·१५	१३	०·३	१०	०·३
भारी वस्तुयें	६७	१ ५०	२१३	१·४	२०४	१·८
अन्य वस्तुयें	५२	०·८९	२७	०·४२	१८	०·७१
योग	२०१७	४२·२	२४७५	४७·२		५७·५
कच्चा तेल	१२०३	९·३	६३२०	४२ ३	४३२७	३०·१

अध्याय १७

औद्योगिक शक्ति के स्रोत (क्रमशः)

जल विद्युत्-शक्ति (Water Power)

किसी भी देश के आर्थिक और औद्योगिक विकास के लिये जल विद्युत शक्ति का महत्व बहुत अधिक है। भारत में जल-विद्युत् शक्ति का पहला कारखाना १८९७-९८ में दार्जिलिंग में स्थापित किया गया था। इसके शीघ्र ही बाद १८९९ में कलकत्ता में कोयले की तापशक्ति का कारखाना खोला गया। १९०३ में दक्षिणी भारत में मैसूर राज्य सरकार द्वारा कावेरी नदी के शिवासमुद्रम प्रपात पर एक जल-विद्युत शक्ति गृह स्थापित किया गया। इसकी उत्पादित शक्ति यहाँ से ९२ मील दूर कोलार की सोने की खानों को दी जाती है। प्रथम महायुद्ध काल में इस दिशा में कुछ और प्रगति की गई। १९१६-१८ के औद्योगिक आयोग की सिफारिशों के अनुसार भारत की जल-सम्पत्ति का अनुमान लगाने हेतु **श्री मीयर्स** (Meais) की नियुक्ति भारत सरकार के जल-विद्युत सलाहकार के रूप में की गई। इन्होंने अनुमान लगाया कि भारत की कुल सभावित शक्ति ८० लाख किलोवाट की है किन्तु इस समय सरकार ने जलविद्युत शक्ति के विकास के लिये विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं की। भारत में जलविद्युत शक्ति का वास्तविक विकास श्री जमशेद जी टाटा के सुप्रयत्नों द्वारा ही हुआ। १९१५ में तत्कालीन बम्बई राज्य में टाटा जलविद्युत् शक्ति योजनाओं के अन्तर्गत टाटा जलविद्युत शक्तिगृह स्थापित किये गये। इसी के बाद मद्रास, पंजाब, केरल और उत्तर प्रदेश की सरकारों ने भी अपने यहाँ जलशक्ति के विकास की योजनायें कार्यान्वित कीं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इस दिशा में अच्छी प्रगति हुई है।

१९२५ में शक्ति की उत्पादन क्षमता केवल १९२.३४१ किलोवॉट था, १९४५ में यह बढकर ९००,४०२ किलोवॉट हो गई। १९६० में यह बढ़कर ४,५६३,३०१ किलोवॉट हो गई। पिछले १० वर्षों में १४९% वृद्धि हुई है। इसी अवधि में शक्ति की उत्पादित मात्रा ५१०,६७ किलोवॉट घन्टा से बढ़कर १६८,५४६ किलोवाट घन्टा होगई अर्थात् वृद्धि २२८% की थो।

शक्ति उत्पादन की क्षमता (मैगावाट्स में) १९६२-६३ में

राज्य	जलविद्युत्	कोयला	तेल	योग
आंध्र	१२४·५	८३·५	२०·२	२२८·२
आसाम	९·३	—	१६·१	२५·४
बिहार	—	४८·५	१८·४	६६·९

गुजरात	—	३५०·९	६०·४	४११·३
जम्मू-काश्मीर	७८·६	१·५	०·९	३१·०
केरल	१७७·५	—	४·८	१८२·[illegible]
मध्य प्रदेश	८६·०	१७९·८	२८·७	२५४·५
महाराष्ट्र	८३१·९	४४३·२	३४·४	९३९·५
मैसूर	७३९·६	—	१२·९	२४९·५
मद्रास	४५०·५	१०१·५	०·५	५५२·५
उड़ीसा	२६६·९	५·८	७·५	२८०·२
पंजाब	४५·०	७·९	१८·७	४३२·४
राजस्थान	१०९·७	४६·२	२७·४	१८३·३
उत्तर प्रदेश	३४२·५	३५५·८	३८·१	७३६·४
प० बंगाल	७·२	५१२·०	९·४	५२८·६
दामोदर घाटी निगम	१०·४	४२०·०	—	५२४·०
दिल्ली	—	५३·६	२२·७	७६·३
अन्य केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र	०·४	६·०	६·५	१२·९
कुल योग	२७७४·१	३७३५·०	३७२·०	६८८·१

विद्युत्-शक्ति का उत्पादन[1]

प्रादेशिक वितरण (१० लाख किलोवाट घन्टों में)

राज्य	१९५७	१९६०
आंध्र	२८१·१८	८८५·८५
आसाम	१२·३०	३२·७४
बिहार	९५१·२१	१,७०३·६४
गुजरात+महाराष्ट्र	३,३१९·८४	४,३९५·०२
जम्मू काश्मीर	२८·६४	४२·६४
केरल	४२२·६६	५४८·२०
मध्य प्रदेश	२०२·१४	४३७·५६
मद्रास	१,३३६·५८	२,१४९·०१

1. *Eastern Economist*, 31st, Dec., 1963, p. 1341.

मैसूर	९०९ ८९	१,०२५·००
उड़ीसा	२४·६७	४७१ २९
पंजाब	६३०·५८	८६०·३८
राजस्थान	९३ ७७	१०५·५६
उत्तर प्रदेश	७२०·३७	१,१७१·६२
प० बंगाल	१,७२६·११	२,२९५·७३
दिल्ली	१९९ ९१	३००·८५
अन्य राज्य	८·८७	७·५८
भारत का योग	१०,८६८·७०	१६,४३२·६८

विद्युत-शक्ति के क्षेत्र

जहाँ प्रकृति ने भारत को कोयले और मिट्टी के तेल की दृष्टि से निर्धन बनाया है वहाँ उसने भारत मे जल-विद्युत को उत्पन्न करने के साधन उपलब्ध करके
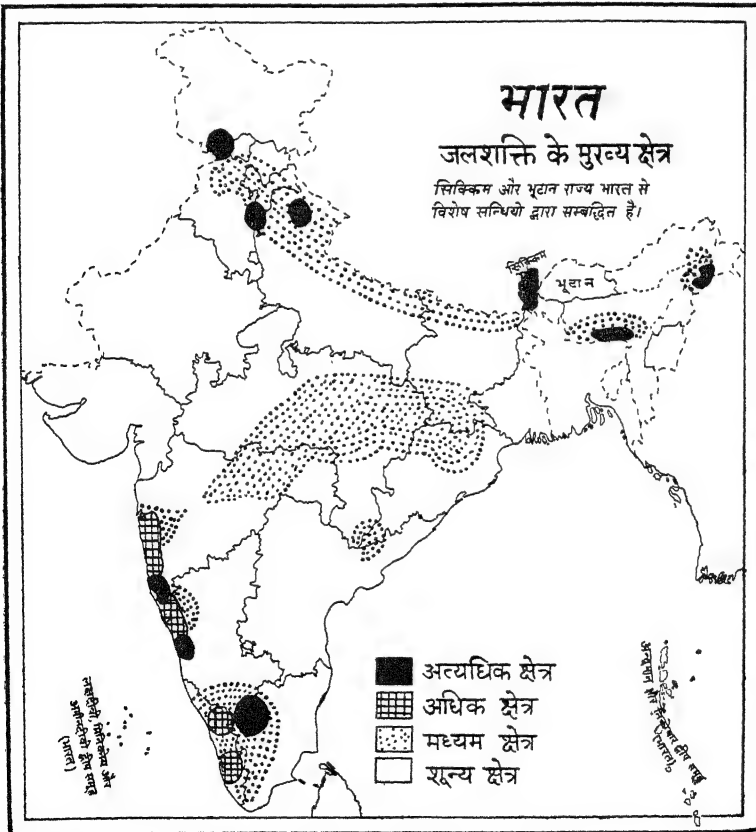
चित्र १२०. जल शक्ति के मुख्य क्षेत्र

इस कमी को पूरा कर दिया है । अतः देश प्रायः दो भागों में बँट गया है—एक भाग वह है जिसमें जल-विद्युत-शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है और दूसरे वे क्षेत्र है, जिनमें कोयले की खानों के निकट होने के कारण कोयले से ही विद्युत शक्ति पैदा की जा सकती है । भारत में जल-विद्युत शक्ति के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—

(१) सभावित जल-विद्युत शक्ति का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हिमालय पर्वत के नीचे पाकिस्तान के पश्चिमी भाग से लेकर पूर्व मे आसाम तक फैला है । इस क्षेत्र में हिमाच्छादित भागो से निकल कर बहने वाली प्रमुख नदियों में वर्ष भर ही पानी भरा रहता है तथा नदियों के मार्ग में कई प्रपात होने के कारण उपयुक्त स्थानों पर जल रोक कर बाँध बनाये जा सकते हैं किन्तु इस प्रकार उत्पादित शक्ति अधिक दूर तक नही भेजी जा सकती ।

(२) जल-विद्युत शक्ति का दूसरा विशाल क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप की पश्चिमी सीमा के सहारे महाराष्ट्र राज्य में होकर मद्रास तथा मैसूर और केरल तक फैला है । इस क्षेत्र मे भारत की सबसे मुख्य मुख्य जल-विद्युत योजनाएँ कार्य कर रही हैं ।

(३) उपरोक्त दोनों क्षेत्रों के मध्य में मध्य प्रदेश में तीसरा विस्तृत जल-विद्युत शक्ति का क्षेत्र है जो सतपुड़ा, विंध्याचल, महादेव और मैकाल की पहाड़ियों के सहारे-सहारे पश्चिम से पूर्व की ओर चला गया है, किन्तु यह क्षेत्र अधिक धनी नहीं है ।

इन तीन क्षेत्रों के अतिरिक्त भारत के कई क्षेत्रों में कोयले से भी विद्युत शक्ति पैदा की जाती है । ताप शक्ति (Thermal power) का मुख्य क्षेत्र कलकत्ता में आरम्भ होकर पश्चिम में नागपुर तक फैला है । इसके अन्तर्गत गोंडवाना कोयले के क्षेत्र हैं । स्पष्ट है कि भारत मे सभावित जल-विद्युत शक्ति के प्रधान क्षेत्र पंजाब, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आसाम और बिहार हैं । जल-विद्युत शक्ति से रहित प्रमुख क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि हैं ।

भारत में तीन प्रकार के जल-विद्युत उत्पन्न करने के कारखाने है : (१) वे कारखाने जो सरकार द्वारा स्थापित किये गए हैं और जो बड़े-वड़े औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्रों को बिजली देते हैं यथा—उत्तर प्रदेश की ग्रिड योजना, पंजाब की मंडी योजना और मैसूर की शिवासमुद्रम योजना । (२) वे कारखाने जो मिश्रित पूँजीवाली कंपनियों द्वारा स्थापित किए गये है, यथा—ताता जल-विद्युत शक्ति की तीनों योजनायें: (३) वे कारखाने जो असंख्य छोटी-मोटी निजी कम्पनियों द्वारा पहाड़ी स्थानों अथवा नगरों में रोशनी देने के लिए बिजली उत्पन्न करते हैं ।

(क) पश्चिमी घाट के कारखाने (Hydro electric Works of Bombay Deccan)

भारत में सबसे महत्वपूर्ण जल-विद्युत उत्पन्न करने वाले कारखाने पश्चिमी घाट के समीप स्थित है । इन घाटों पर अत्यधिक वर्षा होती है । इस जल से बिजली उत्पन्न करने के लिए टाटा जल-विद्युत शक्ति का कारखाना स्थापित किया गया है । सन् १९१५ में भोरघाट के ऊपर लोनावाला, वलव्हान और शिरवता नामक तीन झीलें बाँध बना कर तैयार की गई । वर्षा का जल इन झीलों में इकट्ठा किया जाता है और नहरों द्वारा लोनावाला की झील तक लाया जाता है । यहाँ से जल नलों द्वारा ५१० मीटर की ऊँचाई से खोपोली शक्तिगृह के पास गिराया जाता है और यहाँ से ७०,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है । बिजली की अधिक माँग होने

के कारण कुंडले के निकट एक झील और बनाई गई और दोनों कारखानों में ६५,००० अश्व-शक्ति के बराबर बिजली उत्पन्न करके ११३ कि० मीटर दूर तारों द्वारा बम्बई के मिलों को भेजी जाती है।

चित्र १२१. टाटा जल विद्युत योजना

महाराष्ट्र में बिजली की माँग इतनी अधिक थी कि ताता कम्पनी उसे पूरा नहीं कर सकती थी। इसलिए ताता कम्पनी ने **आंध्र घाटी जल-विद्युत योजना** का श्रीगणेश सन् १९२२ में किया। इस योजना के अनुसार लोनावाला के उत्तर में तोकर-वाडी के पास आध्र नदी पर आधा किलोमीटर लम्बा और ५८ मीटर ऊँचा बाँध बना कर नदी का पानी रोका गया। यहाँ से एक लम्बी सुरंग २,६५१ मीटर द्वारा पानी **भीवपुरी** के शक्तिगृह को ले जाया गया। यहाँ पानी ५३३ मीटर की ऊँचाई से गिराया जाता है। इस शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता ७२,००० किलोवाट है। यहाँ की बिजली बम्बई हारबर, ट्रामों और मध्य रेलवे के उपयोग में आती है। वास्तव में आंध्र घाटी योजना पहली योजना का विस्तार मात्र है।

ताता विद्युत कम्पनी सन् १९२७ में बनाई गई। इसके अन्तर्गत नीलामूला नदी को मुलसी नामक स्थान पर एक बड़ा बाँध बनाकर रोक दिया है। इस झील से ५३३ मीटर की ऊँचाई से पानी **भीरा** के शक्तिगृह पर गिराया जाता है और उससे बिजली उत्पन्न की जाकर बम्बई की मिलों और पश्चिमी व मध्य रेलवे को दी जाती है।

भीरा शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता १३२ हजार किलोवाट है। यह शक्तिगृह बम्बई से १२० कि० मी० दूर है।

उपर्युक्त तीनों योजनाएँ एक ही इकाई की भाँति काम कर रही हैं और इनकी सम्मिलित उत्पादन क्षमता ३१ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न करने की है। यह बिजली बम्बई नगर, निकटवर्ती स्थानों, थाना, कल्यण, पूना को जाती है। इस सम्मिलित योजना से बम्बई के लगभग २,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को बिजली प्राप्त होती है।

(ख) दक्षिण के जल-विद्युत उत्पन्न करने वाले कारखाने (Hydral Works of Peninsular India)—

दक्षिण भारत कोयले की खानों से बहुत दूर पडता है और यहाँ के अधिकांश बड़े नगर समुद्र से भी दूर है। अत. यहाँ कोयले को मंगाने में बड़ा खर्च पड़ता था और इसीलिए यहाँ के उद्योग धंधे भी पूर्ण रूप से नहीं पनप सके। जबसे मद्रास और मैसूर राज्य में जल-विद्युत उत्पन्न होने लगी है तब से यहाँ के उद्योग-धंधे चमक उठे हैं। दक्षिणी भारत में सब मिलाकर २·३ लाख किलोवाट बिजली तैयार की जाती है, अनुमान है कि यहाँ २० लाख किलोवाट बिजली तैयार हो सकती है। दक्षिण भारत का आधा उत्पादन मद्रास और केरल राज्यों से प्राप्त होता है।

(१) **मद्रास राज्य**—मद्रास राज्य में जल-विद्युत विकसित करने के उत्तम स्थान नीलगिरी और पालनी की पहाड़ियों के मध्य में है। इस राज्य में अब तक तीन महत्वपूर्ण योजनायें विकसित की जा चुकी हैं :—

(i) **पायकारा योजना** (Pyakara Project)—इस योजना के अन्तर्गत पायकारा नदी के आर-पार प्रमुख प्रपातों से ऊपर की ओर १९३२ में एक बांध बनाया गया है। इसके पानी को ३९६ मीटर की ऊँचाई से गिरा कर बिजली उत्पन्न की जाती है। पायकारा की सहायक मुकुर्ती नदी पर भी १९३८ में एक बांध बना कर अतिरिक्त पानी की व्यवस्था की गई है। पूरे विकसित रूप मे इस योजना की अनुमानित उत्पादन क्षमता १ लाख किलोवाट होगी। अभी इसकी क्षमता ५५,००० किलोवाट की है। विद्युतशक्ति पहले कोयम्बटूर जाती है और फिर वहाँ से उद्मलपेट, इरोड, मदुराई तिरूपुर, सम्वाती, तिरूचिरापल्ली, बिरूधनगर और कोयलापट्टी को जाती है। इरोड और मदुराई की लाइनों को मैटूर और पापानसम प्रणालियों से क्रमशः जोड़ दिया गया है। पायकारा योजना के अन्तर्गत उत्पादित बिजली तामिल प्रदेश के छोटे-छोटे गांवों और नगरों को दी जाती है। इस योजना से कोयम्बटूर जिले का औद्योगिक विकास बहुत हो गया है। कोयम्बटूर के निकट मधुकराई में सिमेंट तथा नीलगिरी की चाय की फैक्ट्रियों, कृषि कार्यो और साधारण घरेलू कार्यो में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है।

(ii) **मैटूर जल-विद्युत योजना** (Mettur Project)— कावेरी नदी पर मैटूर प्रपात पर स्टेनले नामक ५३ मी० ऊँचा बाँध बनाया गया है जो २,२५ ८००लाख घन मीटर जल रोक लेता है। इस बाध का अधिकतर जल सिंचाई के काम आता है। शेष को बिजली उत्पन्न करने में प्रयोग करते हैं। इससे जो विद्युत-शक्ति उत्पन्न होती है उसकी मात्रा में मैटूर बाँध के पानी की सतह के अनुसार घटा-बढ़ी होती

रहती है। अतः पानी की कमी के समय मैटूर बाँध को अन्य स्थानों की बिजली की आवश्यकता पड़ जाती है। इस समस्या को पायकारा और मैटूर की लाइन से मिला कर हल कर लिया गया है। मैटूर बाँध से उत्पन्न की गई बिजली उत्तर में सिंगारपेट को और दक्षिण में इरोड को दी जाती है। इरोड पर मैटूर की बिजली को पाईकारा विद्युत के तारों से मिला दिया गया है। उत्तर में विद्युत लाइनें वैलोर, तिरूपुर, अम्बर, तिरुवन्नमलय, विल्लूपुरम तक फैली हुई हैं और दक्षिण में तिरूचिरापल्ली, तंजौर, नागापट्टम, चितूर, अरकोनम, काँजीवरम, चिंगलपुट आदि स्थानों तक
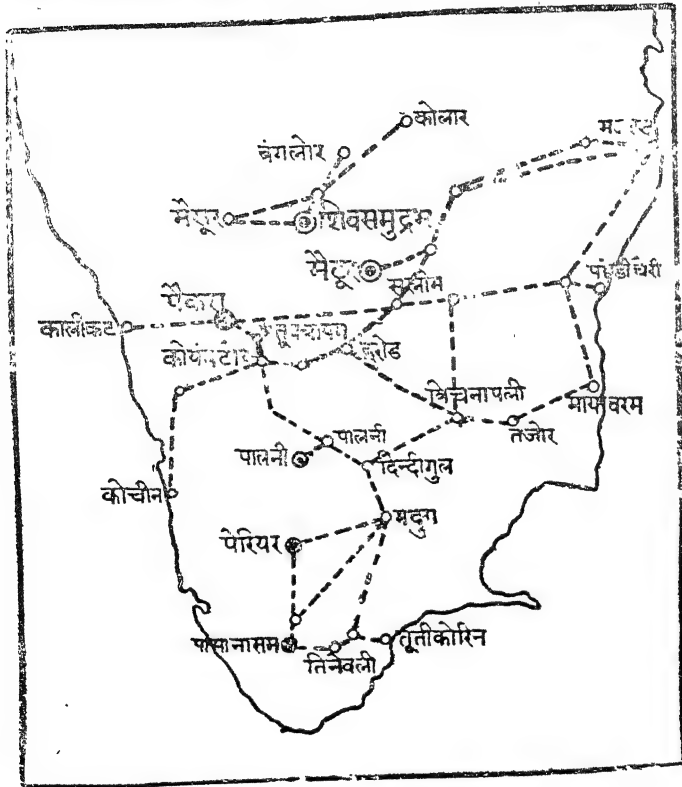
चित्र १२२. दक्षिण भारत की विद्युत् योजनायें

जाती हैं। मैटूर प्रणाली को मद्रास तापीय गृह से सिंगारपैट और मद्रास के बीच एक लाइन से जोड़ दिया गया है। इस प्रकार दक्षिणी भारत में इन शक्तिगृहों से बिजली ले जाने वाली लाइनों को जोड़ कर एक बड़ी लाइन का जाल-सा बिछा दिया गया है। मैटूर योजना से तिरूचिरापल्ली, सलेम और मैटूर के उद्योगों, दालमियापुरम के सीमेंट के कारखाने और नागापट्टम के लोहे के रोलिंग मिल्स को शक्ति मिलती है। इस योजना से लगभग ५०,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है।

चित्र १२३. मैटूर योजना

(iii) **पापानासम योजना** (Papanasam Project) तिरुनलवैली जिले में—पश्चिमी घाट के नीचे—ताम्रपर्णी नदी १०० मीटर की ऊंचाई से पापानासम प्रपात पर गिरती है। इस प्रपात से १० मीटर ऊपर एक ५३ मीटर ऊंचा बाँध बना कर १,५४० घन मीटर पानी रोका गया है। यहाँ से बिजली तूतीकोरिन, कोयलपट्टी और मदुराई को भेजी जाती है और मदुराई पर इसे पायकारा योजना में जोड़ दिया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता २१,००० किलोवाट है। यह योजना १९३८ में बनाई गई थी।

उपरोक्त तीनों योजनाएँ एक विद्युत शक्ति ग्रिड (Electric-Grid System) के रूप में सम्बन्धित हैं। दक्षिण में यह ग्रिड पूर्ण रूप से व्यवस्थित है और चितूर से तिरुनलवैली तक तथा चिंगलपुट से मलाबार तक के १२ जिलों के अधिकांश भागों को घेरे हुए है। इन जिलों के लगभग ५० नगरों और ११० गाँवों को बिजली मिलती है। इन तीनों शक्ति गृहों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता १ लाख किलोवाट है। इस ग्रिड से कपड़े की मिलों, सीमेंट के कारखानो, रासायनिक कार्यों, चाय की फैक्ट्रियों आदि को बिजली मिलती है।

(२) **केरल राज्य** की प्रमुख योजना पल्लीवासल योजना है। यह जल-विद्युत योजना १९४० में विकसित की गई है। इसके अनुसार मदिरापूजा नदी का जल ऊँचाई से गिरा कर मुनार पर शक्तिगृह बनाया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता १३,५०० किलोवाट है। इसके अतिरिक्त मद्रास सरकार को पापानासम व्यवस्था से भी ३,००० किलोवाट बिजली मिल जाती है। इसके लिए कुंदरा और शेनकोट को इकहरी लाइन से जोड़ दिया गया है। इस राज्य में ७०% से अधिक बिजली औद्योगिक कार्यों में—अल्यूमीनियम, चाय, मिट्टी के बर्तन, कपड़े, कागज, प्लाईवुड, तेल और लकड़ी की मिलों तथा इंजीनियरिंग कारखानों आदि में—और शेष घरेलू व कृषि-सम्बन्धी कार्यों में व्यवहृत होती है। यह बिजली तिरूचूर,अलवाये, कोट्टायाम, अलप्पी, क्विलन, त्रिवेंद्रम और शैनकोटल नगरों को दी जाती है।

(३) **मैसूर राज्य**— (i) **शिवासमुद्रम योजना**—मैसूर राज्य में कावेरी नदी पर शिवासमुद्रम् जल-प्रपात के समीप शक्ति-ग्रह स्थापित किया गया है। भारत में सबसे पहले (१९०३ में) जल विद्युत मैसूर राज्य में ही उत्पन्न की गई है। शिवासमुद्रम् से उत्पन्न की गई बिजली १४८ किलोमीटर दूर कोलार की सोने की खानों को दी गई है। इसके अतिरिक्त बिजली बंगलौर और मैसूर की ऊनी और रेशमी कपड़े के मिलों और अन्य २२५ नगरों और गांवों को भी दी गई है। बिजली की माँग अधिक होने के कारण नदी के ऊपर की ओर कृष्ण-राजसागर बाँध बनाकर कावेरी नदी के जल को रोक दिया गया है और इस प्रकार दोनों की सम्मिलित उत्पादक क्षमता ४२ ००० किलोवाट हो गई है।

१९४० में बनाया गया है। इससे १७,२०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है।

(iii) **महात्मा गाँधी जल विद्युत योजना या जोग-प्रपात शक्ति योजना** के अन्तर्गत शिरावती नदी के जोग (गिरस्सप्पा) प्रपातों का उपयोग किया गया है। यहाँ का बाँध प्रपात के लगभग ५ किलोमीटर ऊपर और शक्तिगृह प्रपात से ३ कि० मी० नीचे है। इस योजना से ४८,७०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है। किन्तु अन्तिम स्थिति में बढ़कर इसकी उत्पादन क्षमता १,२०,००० किलोवाट हो जायगी। शिम्सा, शिवासमुद्रम् और जोग प्रपातों की बिजली भद्रावती पर आकर मिल जाती है। उपरोक्त तीनों योजनाओं को जोड़कर मैसूर में जोग-कर्नाटक विद्युत् क्रम (Jog-Karnatak Electric Grid) का निर्माण किया गया है। इससे मैसूर राज्य के विभिन्न स्थानों को बिजली दी जाती है।

(ग) उत्तरी भारत के कारखाने (Hydro-Electric Works of Northern India)

(१) **काश्मीर**—काश्मीर राज्य में झेलम नदी पर श्रीनगर से ५४ किलोमीटर उत्तर की ओर बारामूला के निकट नदी का पानी विद्युत उत्पन्न करने में लिया जाता है जिसका शक्ति गृह मोहरा स्थान पर है। यहाँ लगभग १५,००० किलोवाट शक्ति प्राप्त होती है। यहाँ से बिजली की लाइनें बारामूला और श्रीनगर तक जाती है। यह बिजली झेलम नदी में झाम चलाने, श्रीनगर में रोशनी करने और रेशम के कारखाने चलाने में प्रयोग होती है। वुलर झील के निकटवर्ती दलदली भूमि के पानी को बहाकर कृषि योग्य भूमि प्राप्त करने में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है।

(२) **सिंध घाटी विद्युत योजना**—झेलम की सहायक नदी सिंध पर मैंड़खल स्थान पर एक शक्तिगृह स्थापित किया गया है जिससे ६,००० किलोवाट जल विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है। यह शक्ति श्रीनगर को दी जाती है।

(३) **उत्तर प्रदेश**—उत्तर प्रदेश में ऊपरी गंगा की नहर से बिजली उत्पन्न करने की योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऊपरी गंगा की नहर पर हरिद्वार से अलीगढ़ तक १३ झरने हैं। इनमें से इस समय ११ झरनों पर शक्ति गृह बनाये गये हैं। १९३१ में सबसे पहला शक्ति गृह बहादुराबाद में स्थापित किया गया। इससे ४,४०० किलोवाट शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति उत्पादन के लिए बहादुराबाद और सलेमपुर झरनों का उपयोग किया गया है। अब बहादुराबाद के निकट ही अन्य दो और झरनों के जल का उपयोग शक्ति उत्पादन में किया गया है। इनसे कुल मिलाकर २०,४०० किलोवाट शक्ति उत्पादन में शक्ति प्राप्त होती है। इससे गंगा नहर जल विद्युत क्रम के ५० प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। अन्य शक्ति-गृह मुहम्मदपुर (सहारनपुर), भोला (गाजियाबाद), नीरगजनी (मुजफ्फरनगर), चितौड़ा (मुज्जफ्फरनगर), सालवा (मुजफ्फरनगर), पालरा (बुलन्दशहर), और सुमेरा (अलीगढ़) में है। इन शक्ति गृहों और भाप से बिजली पैदा करने वाले शक्ति गृहों (चन्दौसी और हरदुआगंज) को एक सूत्र में संगठित कर दिया गया है। इनकी सम्मिलित शक्ति लगभग ७५,००० किलोवाट है, जिसमें ३०,००० किलोवाट ताप विद्युत है।
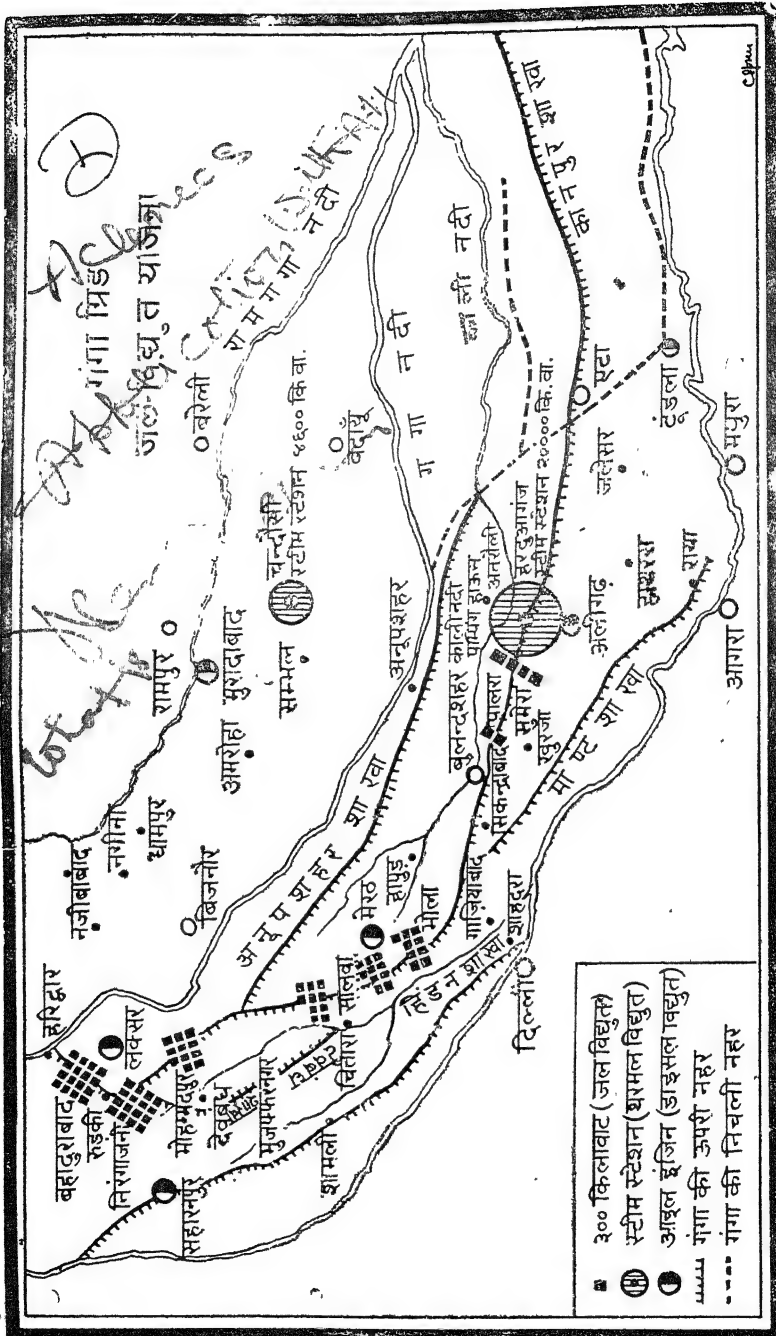
चित्र १२४. गंगा ग्रिड जल-विद्युत योजना

इस विद्युत क्रम (Electric grid) से उत्तर प्रदेश के १४ पश्चिमी जिलों—सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ़, आगरा, बिजनौर, मथुरा, मुरादाबाद, बरेली, बदायूँ, इटावा और मैनपुरी को दी जाती है जिससे ९५ नगरों को प्रकाश मिलता है। इसका उपयोग सिंचाई और कुटीर उद्योगों के लिए भी किया जाता है। इस क्रम से मेरठ और रुहेलखंड डिवीजनों में लगभग २५०० नल-कूप भी चलाये जाते हैं। यह शक्ति उत्तर प्रदेश के लगभग ४,००० वर्ग कि० मी० क्षेत्र की सेवा करती है। इसकी लाइनें ८,००० कि० मी० लम्बी हैं।

(४) **हिमाचल प्रदेश**—हिमाचल प्रदेश में **मंडी जल विद्युत योजना** प्रमुख है। यह तीन चरणों में समाप्त होगी, अभी तक प्रथम चरण समाप्त हुआ है।

प्रथम चरण के अन्तर्गत हिमालय प्रदेश में व्यास की सहायक नदी ऊहल पर एक बांध बना कर जल प्रवाह के मार्ग को मोड़ा गया है। इस जल को एक ३ मीटर चौड़ी और लगभग ४,३३१ मीटर लम्बी सुरंग में निकाल कर ६१०मीटर की ऊँचाई से गिराया जाता है। जोगेन्द्रनगर के निकट इससे जलशक्ति उत्पादित की जाती है। इस शक्ति गृह से ५०,००० किलोवाट शक्ति प्राप्त की जा रही है। इसका उपयोग घरेलू कार्यों और उद्योग धंधों के लिए किया जाता है। कांगड़ा, पठानकोट,धारीवाल, अमृतसर, मोगा, जालंधर, लुधियाना, शिमला, अम्बाला आदि नगरों को यही बिजली मिलती है। पाकिस्तान में मुगलपुरा की रेलवे-वर्कशॉप को भी यहीं से बिजली दी जाती है।

द्वितीय चरण में ऊहल नदी पर बांध बना कर एक कृत्रिम झरना बनाया जायेगा। इससे ६०,००० किलोवाट शक्ति का उत्पादन होगा।

तृतीय चरण में ऊहल नदी पर स्थित शनान नामक स्थान पर संग्रहित जल को एक नहर द्वारा ले जाकर ३६५ मीटर की ऊँचाई से गिरा कर विद्युत शक्ति उत्पन्न की जायेगी।

पूरी योजना की समाप्ति पर विद्युत शक्ति मेरठ, दिल्ली, सहारनपुर, करनाल पानीपत और रोहतक जिलों को भी शक्ति दी जायेगी।

भारत में जल विद्युत विकास की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

(१) यद्यपि जल और कोयला दोनों से बिजली बनाई जाती है किन्तु कोयले की अपेक्षा जल विद्युत शक्ति का विकास कम हुआ है। शक्ति विकास की दृष्टि से भारत के विभिन्न क्षेत्रों की स्थिति इस प्रकार है :—

(i) मैसूर, केरल, पंजाब, उड़ीसा, जम्मू-काश्मीर में मुख्यतः जल-विद्युत। (ii) महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, आंध्र, उत्तर प्रदेश और आसाम में जल-विद्युत और ताप-विद्युत दोनों। (iii) बिहार-बंगाल, मध्य प्रदेश और राजस्थान कोयले से प्राप्त ताप-विद्युत।

(२) पिछली दशाब्दी से जल-विद्युत योजनाओं का पूरा लाभ उठाने तथा शक्ति की क्षमता बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाओं को विद्युत क्रम (Electric Grids) में संगठित किया गया है। मुख्य विद्युत क्रम ये हैं :—

(i) मैसूर में जोग-कर्नाटक क्रम। (ii) महाराष्ट्र में टाटा जल विद्युत योजनाओं का क्रम। (iii) मद्रास और केरल में पायकारा-मेट्टूर-पापानासम से सम्ब-

न्धित पल्लिवासल योजना क्रम। (iv) पंजाब और दिल्ली में भाखरा-नांगल एवं दिल्ली की ताप विद्युत योजना। (v) उत्तर प्रदेश की ऊपरी गंगा की नहर की जल विद्युत योजना क्रम। (vi) बिहार की जल-विद्युत शक्ति योजनाओं से दामोदर घाटी योजना की ताप शक्ति से सम्बन्धित क्रम।

(३) भारत में जल-विद्युत शक्ति का विकास अभी तक बड़े-बड़े नगरों और औद्योगिक केन्द्रों तक ही सीमित है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि बम्बई, कलकत्ता, नागपुर, अहमदाबाद, मद्रास और दिल्ली आदि ६ बड़े-बड़े नगरों में कुल विद्युत शक्ति की उत्पादन क्षमता का ५१ प्रतिशत और वास्तविक उत्पादन का ५४ प्रतिशत पाया जाता है। कुल योजनाओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी जल विद्युत दी जाती है। पंजाब, आंध्र, महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर, केरल और उत्तर प्रदेश इस दृष्टि से मुख्य हैं।

भारत में सबसे अधिक केरल में ४७% जनता बिजली का उपयोग करती है। मद्रास में बिजली वाले गांवों और कस्बों की संख्या ४,४७७ है। उत्तर प्रदेश के ३,२१३ गांवों में बिजली मिलती है। द्वितीय योजना के अंत तक १७,००० गांवों को बिजली मिल रही थी। तृतीय योजना के अन्तर्गत यह बिजली २०,००० गांवों को और मिलेगी। इस योजना काल में उन सभी नगरों और गांवों को बिजली मिलना आरंभ होगा जिनकी जन-संख्या ५,००० से अधिक है।

बिजली के उपयोग का रूप (१० लाख किलोवाट घंटों में)

उपयोग का मद	१९५१-५२	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६१-६२
घरेलू उपयोग	५८८	८४५	१४२२	१५९६
व्यवसायिक उपयोग	३३८	४८८	८६५	९१३
औद्योगिक शक्ति	—	४७६३	९६४३	११८३८
सड़कों पर रोशनी में	३१०४	१०३	१९५	२०९
खेती में	६७	४०७	४५१	५५६
सिंचाई में	३३३	२८०	८०५	८५९
सार्वजनिक जल	२०१	३००	४५१	४६४
कार्यों में	२१८	—	—	—
योग	४८४९	७१८५	१३८३२	१६४३६

(४) देश के विशाल क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से भारत में जल-विद्युत शक्ति का प्रति व्यक्ति पीछे उत्पादन अन्य देशों की तुलना में बहुत ही कम है। भारत में शक्ति उत्पादन की मात्रा प्रति व्यक्ति पीछे केवल ४५ किलोवाट घंटा है, जबकि नार्वे में यह मात्रा ७,७४० Kwh; कनाडा में ५,७८० Kwh; इंग्लैड में १,९१० Kwh; जापान में ९३० Kwh; रूस में ९६० Kwh; इटली में ९२८ Kwh तथा विश्व का औसत ६७० Kwh है। देश में जल विद्युत का उपभोग भी समान नहीं है। प्रति व्यक्ति पीछे यह केवल ४५ Kwh है। दिल्ली में यह उपभोग की मात्रा ९६ Kwh है जब कि मैसूर में यह ५९ Kwh और बम्बई में ५५ Kwh

और पश्चिमी बंगाल में ५४ Kwh है। सबसे कम उपभोग उड़ीसा में (०.५७ Kwh) और आसाम में (०.७४ Kwh) है। उत्तर प्रदेश में प्रति व्यक्ति पीछे केवल ७.७४ Kwh शक्ति उपभोग में ली जाती है।

भारतीय नदियों के जल की संभावित जलशक्ति का अनुमान ४११ लाख किलोवाट का लगाया गया है। यह विभाजन इस प्रकार है :—

द० भारत की पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ	४३.५	लाख कि०
द० भारत की पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ	८६.३	,,
मध्य भारतीय नदियाँ	४२.६	,,
गंगा-प्रवाह क्षेत्र की नदियाँ	४८.३	,,
सिन्धु-प्रवाह क्षेत्र की नदियाँ	६५.८	,,
ब्रह्मपुत्र एवं अन्य नदियाँ	१२४.६	,,
योग	४११.७	

योजनाओं के अन्तर्गत विकास

प्रथम योजना के आरंभ पर देश की शक्ति उत्पादन क्षमता २३.० लाख किलोवाट की थी। प्रथम योजना की समाप्ति पर ११.२ लाख किलोवाट शक्ति और बढ़ाई गई। दूसरी योजना काल में यह क्षमता ३४.२ लाख किलोवाट से बढ़कर ५७.० लाख किलोवाट हो गई। तृतीय योजना में यह बढ़ कर १३४ लाख किलोवाट होने का अनुमान है। इस वृद्धि के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति पीछे शक्ति का उत्पादन ९५ Kwh हो जायेगा जो १९६१ में ४५ Kwh; १९५६ में २८ Kwh और १९५१ में केवल १८ Kwh था।

अध्याय १८

मिट्टियाँ

(SOILS)

मिट्टियाँ भारतीय कृषक की अमूल्य सम्पदा है जिस पर देश का सम्पूर्ण कृषि उत्पादन निर्भर करता है। मिट्टियों का निर्माण जलवायु तथा चट्टानों के विखंडन के फलस्वरूप होता है जिनमें अनेक प्रकार के रासायनिक तत्व पाये जाते हैं। फलत: विभिन्न जलवायु में और विभिन्न चट्टानों से बनी मिट्टियों में भी न तो एकरूपता ही पाई जाती है और न सबकी उर्वराशक्ति ही एकसी होती है।

मिट्टियों का वर्गीकरण अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों ने किया जिनमें श्रीविश्वनाथ और ऊकील, डा० चटर्जी, डा० वाडिया, डा० कृष्णन और मुकर्जी तथा श्रीमती चोकाल्स्काया रूसी महिला प्रमुख हैं। परम्परागत दृष्टि से भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण कछारी, लाल, रेगड़, लैटेराइट् आदि मिट्टियों के रूप में किया गया है। भारतीय कृषि अनुसंधान शाला के रॉय चौधरी और मुकर्जी ने भारतीय मिट्टियों को निम्न श्रेणियों में बांटा है।

(१) नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी, (२) नदियों द्वारा लाई गई वह मिट्टी जिसमें खनिज नमक मिले रहते हैं, (३) तटीय प्रदेशों की बलुही मिट्टी जो नदियों द्वारा लाई गई है, (४) नदी के तलहटी की पुरानी मिट्टी, (५) डेल्टा प्रदेश की नमकीन मिट्टी, (६) चूना मिली मिट्टी, (७) गहरी काली मिट्टी, (८) माध्यमिक काली मिट्टी, (९) कम गहरी चिकनी मिट्टी (१०) लाल व काली मिट्टी का मिश्रण, (११) लाल मिट्टी, (१२) लाल बलुही मिट्टी, (१३) मिश्रित लाल-दोमट बलुही मिट्टी, (१४) कंकरीली मिट्टी, (१५) तराई की मिट्टी, (१६) पहाड़ी मिट्टी, (१७) दलदली मिट्टी, (१८) पीट भूमि की मिट्टी और (१९) मरुस्थल की मिट्टी।

मिट्टियों का भूगर्भिक वर्गीकरण

किसी स्थान की मिट्टी में वही गुण आता है जो उन चट्टानों में पाये जाते हैं जिनसे इसका जन्म हुआ है। अत: भारत के भूगर्भशस्त्रियों ने विभिन्न चट्टानों को ही भारतीय मिट्टियों का मूलाधार माना है। उनके अनुसार हमारी मिट्टियों का जन्म निम्न प्रकार की चट्टानों से हुआ है :—

(१) **अति प्राचीनकाल की रवेदार और परिवर्तित चट्टानें**—जो अधिकांशत: भारत के पठारी भाग पर पाई जाती है जैसे ग्रेनाइट, नीस रवेदार, शिष्ट आदि। इनमें लोहे और मैंगनीज के कण पर्याप्त मात्रा में मिले रहने से जो मिट्टी जलवायु सम्बन्धी कारणों से इन चट्टानों की टूट फूट से बनी है उनका रंग स्वत: ही लाल होता है।

(२) **कडुप्पा और विंध्या युग की चट्टानें**—यह चट्टानें भी बड़ी पुरानी हैं

अतः यह पूरी प्रकार पूर्ण हो चुकी है अतः इनसे बनने वाली मिट्टी पूर्णावस्था को प्राप्त कर चुकी है।

(३) **गोंडवाना काल की चट्टानें**—यह भारतीय प्रायद्वीप में मुख्यतः नदियों की घाटियों और प्राचीन काल के पिछले जल अवशेषों में मिलती हैं जिनमें नदी द्वारा लाये गए पदार्थ, बालू आदि जम गए हैं। इन चट्टानों से बनी मिट्टी अभी पूरी प्रकार परिपक्व नहीं हो पाई है।

(४) **दकन ट्रैप**—प्राचीन काल के ज्वालामुखी उद्गार के समय दक्षिणी पठार के एक बड़े भाग पर पृथ्वी के गर्भ से निकली हुई द्रव्य और ठोस वस्तुओं के जम जाने से इस प्रकार की चट्टानें बनी हैं। इनमें लोहे और मैंगनीज के अंश अधिक पाये जाते हैं। फलतः इनसे जो मिट्टी बनी है वह काले रंग की तथा अधिक उपजाऊ होती है।

(५) प्रायद्वीप के बाहरी भागों में टर्शरी और मध्य-जीव युग से बनी चट्टानें मुख्यतः पहाड़ियों के ऊपरी भागों और नदियों की घाटियों में बिखरे रूप में मिलती हैं। इनसे अधिकतर चूना अथवा बालू मिली मिट्टियाँ बनी हैं।

(६) जल अथवा वर्षा द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टियाँ जो अपने बनने के स्थान से काफी दूर पाई जाती हैं। सिंध गंगा के मैदान की खादर और बांगर मिट्टी, डेल्टाओं की कांप मिट्टी, लैटेराइट और मरुस्थलीय मिट्टी इसी प्रकार की हैं। उचित मात्रा में जल मिल जाने पर इनमें अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था द्वारा प्रकाशित सर्वेक्षण में भारतीय मिट्टियों को इन भागों में बांटा गया है :—

(१) कांप मिट्टी
(२) काली मिट्टी
(३) लाल, पीली मिट्टी
(४) लैटेराइट मिट्टी
(५) ऊसर व कलार मिट्टी, और
(६) हिमालय पर्वत की मिट्टियाँ

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम भारतीय मिट्टियों को भू-विभागों की दृष्टि से तीन भागों में अध्ययन करेंगे।

(क) हिमालय प्रदेश की मिट्टियाँ
(ख) उत्तरी मैदान की मिट्टियाँ
(ग) दक्षिणी के प्रायद्वीप की मिट्टियाँ

(क) हिमालय प्रदेश की मिट्टियाँ

हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली मिट्टियाँ नई ही हैं। अधिकांश यह मिट्टियाँ पतली, दलदली और छिद्रमय होती हैं। इनकी अधिक गहराई नदियों की घाटियों और पहाड़ी ढालों पर पाई जाती है। हिमालय के दक्षिणी ढाल अधिक सीधे होने के कारण उत्तरी ढालों की अपेक्षा मिट्टी इकट्ठी नहीं होने देते। हिमालय

पर्वत की मिट्टी कई प्रकार की है। पहाड़ी ढालों के पेंदों में टरशियरी (Tertiary) पाई जाती है जो हल्की बालूमय और छिद्रमय होती है जिसमें वनस्पति का अंश कम होता है किन्तु पश्चिमी हिमालय के ढालों पर कुछ अच्छी बालू मिट्टी मिलती है। मध्य हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली मिट्टी वनस्पति के अंश की अधिकता के कारण बड़ी उपजाऊ है। इसी कारण अच्छी वर्षा होने पर द्वार और दून की घाटी तथा कांगड़ा जिले में अच्छी चाय पैदा होती है। हिमालय प्रदेश में दो प्रकार की मिट्टियाँ मुख्यत: पाई जाती हैं।

(१) हिमालय के दक्षिण भाग में पथरीली मिट्टी अधिक पाई जाती है जिसे नदियों ने लाकर एकत्रित कर दिया है। इस मिट्टी का दाना बड़ा होता है तथा इसमें कंकड़ और पत्थर के छोटे २ टुकड़े भी मिले रहते हैं किन्तु इस मिट्टी में वनस्पति का अंश कम होता है। अत: अच्छी पैदावार नहीं होती। घाटियों में जहाँ कहीं चिकनी और महीन मिट्टी मिलती है वहाँ चाय, आलू, आदि वस्तुऐं पैदा की जाती हैं।

(२) हिमालय प्रदेश में कई स्थानों पर चूने और डोलोमाइट चट्टानों से प्राप्त मिट्टी मिलती है विशेषकर नैनीताल, मसूरी, चकराता आदि स्थानों के निकट। वर्षा के फलस्वरूप चूने का अधिकांश भाग बहकर चला जाता है, थोड़ा भाग भूमि पर ही रह जाता है जिससे भूमि अनुत्पादक और बीहड़ों वाली हो जाती है। ऐसी भूमि में केवल चीड़ और साल आदि के वृक्ष ही हो सकते है।

डा० जिन्सबर्ग के शब्दों में कहा जा सकता है कि उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में लिथोसोल (Lithosol) मिट्टियाँ मुख्यत: गहरे ढालू और ऊँचे ढालू भागों में मिलती हैं, किन्तु धीमे ढाल वाले भागों में छिछली मिट्टियाँ मिलती हैं। अत्यन्त ही निचले उष्णकटिबंधीय ढालों पर लाल या पीली मिट्टियाँ पाई जाती हैं। ऊँचाई के अनुसार भूरी पोडसोल तथा पर्वतीय चरागाह मिट्टियाँ भी मिलती हैं। ये पर्वतीय प्रदेश मैसोथर्मल, माइक्रोथर्मल और टुंड्रा जलवायु प्रदेश की मिट्टियाँ प्रदर्शित करते हैं जिनका स्वरूप अर्द्ध-उष्णकटिबंधीय, शीतोष्ण कटिबंधीय और पवर्तीय वनस्पति में परिलक्षित होता है।[1]

(ख) उत्तरी मैदान की मिट्टियाँ

डा० जिन्सबर्ग के अनुसार भारत के ३० से ३५% क्षेत्र पर जल या वायु द्वारा प्रवाहित मिट्टियाँ पाई जाती हैं तथा लगभग २०% भाग पर कांप, बलुही, चिकनी और चीका मिट्टी मिलती है।[2]

(१) **काँप मिट्टी** (Alluvial Soil)—यह मिट्टियाँ हिमालय की नदियों द्वारा लाई गई हैं। इसमें कंकड़ नहीं होते। यह सबसे अधिक उपजाऊ होती है। इस मिट्टी वाले प्रदेश का क्षेत्रफल ७'५लाख वर्ग कि०मी० है। यह अधिकांशत: उत्तर राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार, उड़ीसा,बगाल, आसाम में पाई जाती है। आसाम में लखीमपुर, धरांग, शिवसागर, कामरूप, गोलपाड़ा जिलों में यह मिट्टी पाई जाती है। गोदावरी, कावेरी, कृष्णा नदियों के डेल्टा, मध्य प्रदेश की नर्मदा और ताप्ती नदियों की घाटियों, मद्रास के पूर्वी तथा पश्चिमी तटीय मैदानों में भी यह मिट्टी

1. *Norton Ginsberg* (Ed.), The Pattern of Asia, 1958, p. 508.
2. Ibid, p. 508.

मिलती है। इस मिट्टी की गहराई का अभी तक ठीक प्रकार से पता नहीं लग पाया है। खुदाई करने पर ज्ञात हुआ है कि ४६० मीटर की गहराई तक यह मिट्टी मिलती है। इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस और वनस्पति के अंश की कमी है परन्तु पोटाश और चूना काफी मात्रा में पाया जाता है। अधिकतर स्थानो में यह पीली दोमट मिट्टी होती है तथा कुछ स्थानों में बलुई व चिकनी मिट्टी होती है।

गंगा के मैदान की मिट्टियों का रासायनिक तत्व

तत्व	मात्रा%	तत्व	मात्रा%
अघुलनशील तत्व	८८·०८	पोटाश	०·६४
अल्यूमीना	४·३८	सोडा	०·०६
लोहा	३·१०	फोस्फोरस	०·०८
चूना	०·४७	गंधक ट्राइओक्साइड	०·०५
मैग्नेशिया	०·३२	कार्बन आक्साइड	०·३७
		जल और जीवांश	२·४२
		योग	१००·००

उत्तरी मैदान की मिट्टियाँ नदी की घाटी के भिन्न-भिन्न भागों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। जैसे भाबर और तराई में यह **पुरातन कच्छार** (Older Alluviam) और मध्य की घाटी में **नवीन कच्छार** (Newer Alluviam) और डेल्टा में **नवीनतम कच्छार** (Newest Alluviam) मिट्टी है। पुरातन कच्छार मिट्टी—जिसे बांगर (Bangar) भी कहते हैं—में मोटी बालू, चूना, पत्थर के टुकड़े और कंकड़ का अंश प्रधान होता है। इसका रंग गहरा होता है। अतः यह कम उपजाऊ होती है। नवीन कच्छार जिसे **खादर** भी कहते हैं. में चिकनी मिट्टी की बहुतायत रहती है। काँप मिट्टी कुछ हल्के भूरे या पीले रंग की होती है। इन मिट्टियों में अभी तक पूर्ण परिपक्वता नही आई है फिर भी यह उपजाऊ होती है। वर्षा की भिन्नता के कारण इस मिट्टी के गुणों में भी अन्तर पाया जाता है। अधिक वर्षा के कारण ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी मे चूना, मैगनेसिया और पोटास आदि क्षार पानी के साथ भूमि में भिद जाते हैं, अतः मिट्टी बलुई हो जाती है किन्तु सिंधु की घाटी में वर्षा की कमी के कारण ये क्षार भूमि पर ही रहते है। गगा की घाटी में मध्यम मात्रा में क्षार मौजूद रहते हे। कांप मिट्टी का विशेष गुण यह है कि मिट्टी हल्की और छिद्र युक्त होती है जिनमें कृषि कार्य सरलता से किया जा सकता है। इनमें जल सरलता से भिद जाता है किन्तु यह अधिक देर तक नही ठहर सकता। इस मिट्टी में गेहूं, मकई, कपास, जौ, चावल, गन्ना और सब्जियों का उत्पादन सफलता पूर्वक किया जा सकता है। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम और पूर्वी उत्तर प्रदेश में जूट का उत्पादन मुख्य रूप से किया जाता है। नदियो के डेल्टों में नदियों की घाटी की मिट्टी की अपेक्षा अधिक बारीक कण होते है। इसमें वनस्पति की मात्रा भी खूब होती है। यह मिट्टी बहुत ही उपजाऊ होती है। नदियों के किनारे-किनारे तो बालू की अधिकता रहती हैं। पंजाब में जो कांप मिट्टी पाई जाती है उसमें दोमट

से लगाकर बलुही दोमट तक मिलती है तथा मिट्टी की गहराई भी बहुत है। निचले भागों में कंकड़ पत्थर भी मिलते हैं। सोडियम लवण के कारण यह मिट्टी साधारणतः क्षारयुक्त होती है। इसमें फास्फोरस और पोटास अधिक किन्तु जीवांश और नेत्रजन कम होता है।

बिहार में गंगा के उत्तरी भाग में चिकनी, दोमट अथवा बलुही दोमट मिट्टी मिलती है जिसमें पोटास पाया जाता है किन्तु गंगा के दक्षिणी भाग में मिट्टी भारी और बारीक कणों वाली होती है। इसमें फास्फोरस कम मिलता है।

पश्चिमी बंगाल में राढ़ (Rahr) क्षेत्र में मुख्यतः पुरानी कांप मिट्टी मिलती है। इसमें समानता नहीं पाई जाती है।

मद्रास में जो कांप मिट्टी मिलती है वह ऊपरी भागों से बहाकर लाई गई है इसके जमाव डेल्टों तथा तटीय भागों में है। इसमें बालू और चिकनी मिट्टी की तहें समान रूप में पाई जाती हैं।

(ग) दक्षिण के पठार की मिट्टियाँ

(१) **काली मिट्टी** (Black Soil)—यह गुजरात से अमरकंटक और बेलगांव से गुना तक लगभग ५ लाख वर्ग कि०मी० क्षेत्र में फैली है। महाराष्ट्र के अधिकांश भाग, पश्चिम मध्य प्रदेश, उड़ीसा के दक्षिणी भाग, मैसूर के उत्तरी जिलों और आंध्र मद्रास के सलेम, रामनाथापुरम, कोयम्बटूर तथा तिरूनलवैली जिलों में यह मिट्टी अधिक पाई जाती है। यह मिट्टी प्राचीन काल में हुए ज्वालामुखी के उद्गार से निकले हुए लावा से बनी है। यह मिट्टी राजस्थान के बूँदी और टोंक जिलों तथा उत्तर प्रदेश के बुन्देलखंड डिवीजन में भी मिलती है। इन मिट्टियों को उष्ण कटिबंधीय काली मिट्टियाँ या उष्णकटिबंधीय **चर्नोजेम** भी कहा जा सकता है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसकी सामान्य गहराई ८ मीटर तक है। इसमें रेत, चिकनी मिट्टी या दोमट मिली होती है। चिकनी मिट्टी के भाग में ६०% सिलीकेट, १५% लोहा और २५% अल्यूमिनियम होता है। वर्षा में यह मिट्टी फूल कर गोंद की तरह चिपचिपी हो जाती है किन्तु सूखने पर इतनी कड़ी हो जाती है कि सूर्य की किरणें धरातल के भीतर का जल भाप बनाकर उड़ा नहीं पातीं और धरातल पर बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। ०·६ से १ मी० गहरी इस मिट्टी में खनिज पदार्थों की बहुतायत रहती है। यह मिट्टी कम वर्षा वाले स्थानों ५१ से ७६ सें० मी० में ही अधिक पाई जाती है। इसमें नमी बहुत देर तक ठहर सकती है। इस मिट्टी की सतह की गहराई १ मीटर से १५ मीटर तक मिलती है।

काली मिट्टी रूस और उत्तरी अमरीका के पश्चिमी भाग में भी पाई जाती है। रूस के यूक्रेन प्रांत में मिलने वाली काली मिट्टी से भारत की काली मिट्टी सर्वथा विभिन्न है क्योंकि यूक्रेन वाली काली मिट्टी का रंग उसमें मिली हुई सड़ी गली वनस्पति (Humus) के कारण होता है इसीलिये यह हमारे देश की काली मिट्टी की तरह चिकनी नहीं है बल्कि भुरभुरी है। भारत की मिट्टी बड़ी उपजाऊ है। मालवा के कुछ मैदानों में—जहाँ यह मिट्टी पाई जाती है—लगभग दो हजार वर्षों से बिना सिंचाई और खाद तथा भूमि को विश्राम दिये खेत जोते और बोये जाते है। इस मिट्टी में कपास, गेहूँ, अलसी और मोटे अनाज अधिक पैदा होते हैं। इस मिट्टी में चूना पोटास, मैगनेशिया, एल्यूमीनियम तथा लोहा खूब होता है किन्तु फासफोरस,

नाइट्रोजन और जीवांशों की कमी रहती है। साधारणतः ये मिट्टियाँ बड़ी उपजाऊ होती हैं विशेष कर निचले भागों में। पहाड़ी ढालों और ऊपरी भागों में यह बलुही
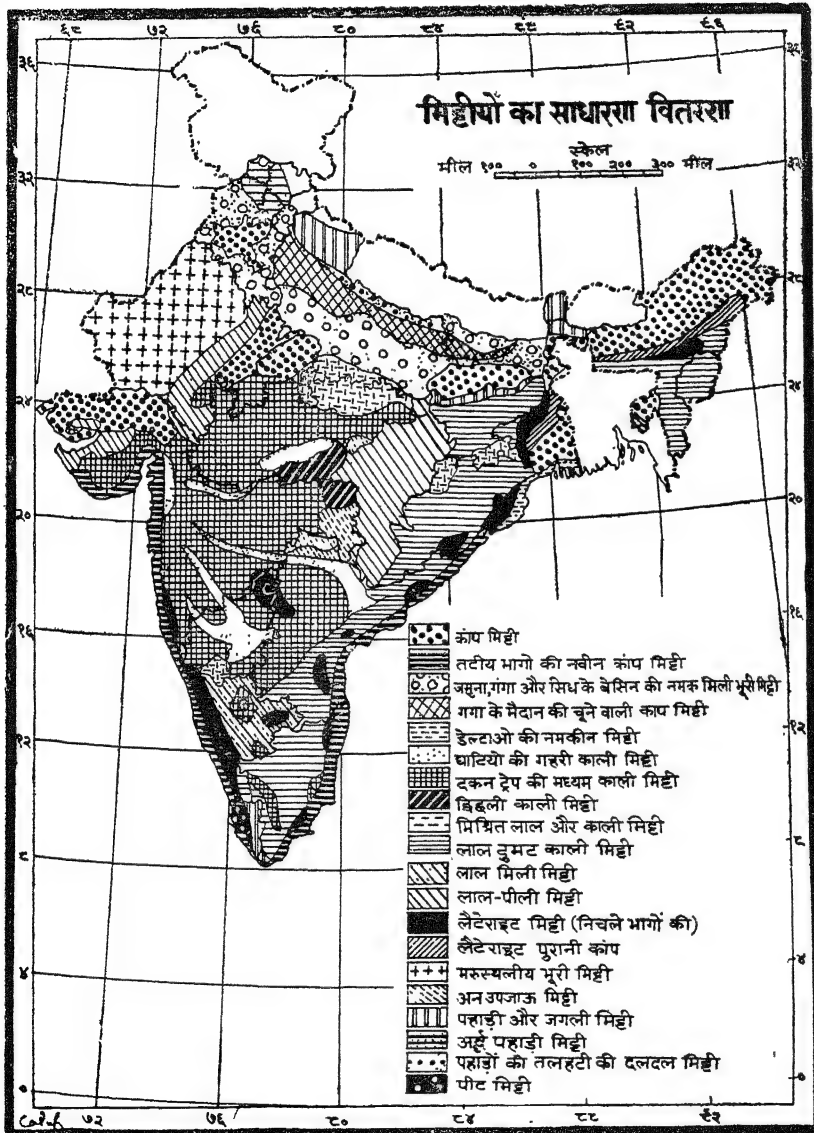
चित्र १२५. भारत की मिट्टियाँ

और कम उपजाऊ होती हैं। पहाड़ियों और मैदानी क्षेत्रों के बीच में यह गहरे रग की

अधिक गहरी और उपजाऊ होती हैं, जिसमें पहाड़ी नालों द्वारा लाई गई मिट्टी बिछाई जाती रहती है।

काली मिट्टी का रासायनिक सगठन इस प्रकार का है—[3]

नागपुर में किए गए परीक्षणों के आधार पर

तत्व	%मात्रा	तत्व	%मात्रा
अघुलनशील तत्व	६८·७१	मैग्नेशिया	१·७६
लोहा	११·२५	पोटाश	०·४५
अल्यूमीनियम	६·३६	कार्बन-डाइ-आक्साइड	०·४४
जीवांश और जल	५·८३	फास्फोरस	०·०६
चूना	१·८२	नेत्रजन	०·०५
		योग	१००·००

महाराष्ट्र में इस मिट्टी के क्षेत्र काफी विस्तृत हैं। यह दक्कन ट्रैप से बनी हैं। पहाड़ी ढालों पर यह हल्के रंग की, पतली तथा अन उपजाऊ और निचले भागों में गहरी तथा उपजाऊ होती है। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटियों में यह ६ मीटर से भी अधिक गहरी पाई जाती है। भीतरी मिट्टी में चूने की मात्रा अधिक होती है। गुजरात के सूरत और भडौंच जिलों में भी यह मिट्टी पाई जाती है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा की घाटी में गहरी और गहरे काले रंग की तथा छिछली काली मिट्टी मिलती है। इसमें कपास का उत्पादन अधिक होता है। मैसूर में काली मिट्टी में नमक के कण भी मिले रहते है।

(२) **लाल-पीली मिट्टी** (Red and Yellow Soils)—लाल मिट्टी शुष्क और तर जलवायु के बारी-बारी से बदलने के फलस्वरूप प्राचीन रवेदार चट्टानों और परिवर्तित चट्टानों के टूट-फूट के कारण बनती है और अपने बनने के स्थान पर ही पड़ी रहती है। ताप्ती नदी की घाटी में पहाड़ियो के ढालों पर लगातार अधिक गर्मी पड़ने से चट्टानों के टूटने पर उनमें मिला हुआ लोहा मिट्टी में एक-सा फैला गया है जिससे इस मिट्टी का रंग लाल हो गया है। कहीं-कहीं इसका रंग भूरा, चाकलेटी, पीला अथवा काला भी हो गया है। जहाँ कहीं यह मिट्टी बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों की बनी है वहाँ यह काफी उपजाऊ है। लेकिन दूसरे भागों में मिट्टी की तहों में पानी न रुकने के कारण यह प्रायः बंजर रह गई है।

इस प्रकार की मिट्टी मध्य प्रदेश के बुन्देलखंड से लगाकर ठेठ दक्षिण तक पाई जाती है। इसका क्षेत्र २० लाख वर्ग किलोमीटर में मद्रास, मैसूर, दक्षिणी पूर्वी महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग से लगाकर छोटा नागपुर और उड़ीसा तक फैला

3. *H. L. Chibber*, Ibid, p. 208.

है। यह मिट्टियाँ बिहार के संथाल परगना; बंगाल के वीर भूम, बांकुडा और मिदनापुर जिलों में; आसाम की खासी, जयन्तियाँ, गारो और नागा पहाड़ियों पर; उत्तर प्रदेश के हमीरपुर, बांदा और झांसी जिलों में तथा राजस्थान के अरावली पर्वत के पूर्वी क्षेत्रों में मिलती हैं।

अनेक प्रकार की चट्टानों से बनी होने के कारण यह गहराई और उर्वरा शक्ति में बहुत तरह की होती हैं। ये मिट्टियाँ अत्यन्त रंध्रयुक्त होती हैं और अत्यन्त बारीक तथा गहरी होने पर ही उपजाऊ होती है। अतः ऊँचे मैदानों में पाई जाने वाली लाल मिट्टी उपजाऊ नहीं होती। यहाँ पर यह हल्के रंग की पथरीली और कम गहरी होती है। इस मिट्टी में पहाड़ी भागों में बाजरा आदि पैदा होता है किन्तु, जो नीचे मैदानों में पाई जाती है वह उपजाऊ होती है। अतः इसमें कपास, गेहूँ, दालें, मोटे अनाज आदि पैदा किये जाते हैं। इसमें पोटाश और चूना यथेष्ट होता है किन्तु नाइट्रोजन, फासफोरस और वनस्पति का अंश कम होता है।

लाल मिट्टी का रासायनिक संगठन इस प्रकार का है:—[४]

(मद्रास में किये गए परीक्षणों के आधार पर)

तत्व	% मात्रा	तत्व	% मात्रा
अघुलनशील तत्व	९० ४७	कार्बन-डाई-आक्साइड	०·३०
लोहा	३·५१	पोटाश	०·२४
अल्यूमीनियम	२·९२	सोडा	० १२
जीवांश और जल	१·०१	फास्फोरस	०·०९
मैग्नेशिया	०·७०	नेत्रजन	०·०८
चूना	०·५६	योग	१००·००

(३) **लैटेराइट मिट्टी** (Laterite Soils)—ऐसी मिट्टी लगभग १·२२ लाख वर्ग कि०मी० क्षेत्र में फैली है। यह विशेषकर मध्य-प्रदेश (गवालियर, पन्ना और रीवां जिले में) पूर्वी और पश्चिमी घाटों के समीप, मैसूर, दक्षिणी महाराष्ट्र, मलाबार, राजमहल की पहाड़ियों, उड़ीसा तथा आसाम के कुछ भागों में पाई जाती है। चट्टानों का ठोसपन और बुलबुलीदार रचना इसकी विशेषतायें है।

इन मिट्टियो का निर्माण अधिकतर ऐसे भागों में होता है जहाँ शुष्क और तर मौसम बारी-बारी से होता है। अपने निर्माण करने वाले कणों के आधार पर लैटेराइट मिट्टियों के तीन उपभेद किये जाते हैं : (क) **गहरी लाल लैटेराइट** जिनमें लौह-आक्साइड और पोटाश की मात्रा अधिक होती है किन्तु कैओलिन की मात्रा कम। इन मिट्टियों की उर्वरा शक्ति कम होती है किन्तु निचले भागों में इनमें कुछ कृषि की जाती है।

4. *H. L. Chibber*, Ibid, p. 205.

(ख) **सफेद लैटेराइट** जिनमें कैओलिन की अधिकता के कारण मिट्टी का रंग सफेद होता है। इनकी उर्वरा शक्ति सबसे कम होती है।

(ग) **भूगर्भवर्ती जलवाली लैटेराइट** मिट्टियाँ जिनमें मिट्टियों के निर्माण तथा गुणों में भूगर्भीय जल का हाथ रहता है। ग्रीष्म ऋतु में ऊपरी तहों में यह मिट्टियाँ सूखकर कड़ी हो जाती हैं किन्तु वर्षाकाल में जल मिलने पर ऊपर तह के घुलनशील पदार्थ भूमि के नीचे चले जाते हैं। ऊपर तह की मिट्टियाँ अनुपजाऊ होती हैं क्योंकि लौह-आक्साइड आदि तत्व जल में घुल कर नीचे रिस जाते हैं।

ये मिट्टियाँ कई प्रकार की होती हैं। पहाड़ियों पर पाई जाने वाली मिट्टियाँ बहुत कम उपजाऊ होती हैं।

लैटराइट मिट्टी का रासायनिक संगठन इस प्रकार है :—[5]

तत्व	मात्रा %	तत्व	मात्रा %
सिलिका	३२·६२	टिटैनिया	१·६२
अल्यूमीना	२५·२८	फास्फोरस	०·७०
लोहा	१८·०७	चूना	०·४२
मैग्नेसिया	—	अघुलनशील तत्व	८·१५
		योग	१००·००

इस मिट्टी में चूना, फासफोरस और पोटाश कम होता है। किन्तु वनस्पति का अंश यथेष्ट होता है। इस मिट्टी का रंग कुछ ललाई लिये होता है। जहाँ-जहाँ यह मिट्टी पाई जाती है वहाँ किसी तरह की वनस्पति नही उगती। मद्रास में पहाड़ी भागों और निचले क्षेत्रों दोनों में ही लैटेराइट मिट्टी मिलती है जिसकी उत्पति जलवायु और मौसमी कारणों से हुई मानी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी अपने बनने के स्थान पर ही नही रहती वरन् नदियों द्वारा बहाकर अपने डेल्टाओं में भी जमा दी जाती है। निचले भागों में इस मिट्टी में चावल और ऊपरी भागों में रबड़, सिंकोना, चाय, कहवा आदि बोया जाता है।

कुर्ग में यह मिट्टी सारे जिले में बिखरी मिलती है। महाराष्ट्र में रत्नागिरी जिले में पाई जाती है। यहाँ इसका दाना बड़ा मोटा होता है। केरल राज्य में चौड़े समुद्री तट और पूर्वी भागों के बीच में इस प्रकार की मिट्टी मिलती है। पश्चिमी बंगाल में बैसाल्ट और ग्रैनाइट पहाड़ियों के बीच-बीच में लैटेराइट मिट्टी पाई जाती है। उड़ीसा के पठार के ऊपरी भागों और घाटियों में मिलती है।

भूमि कटाव या क्षरण की समस्या (Problem of Soil Erosion)

भारत में भूमि सम्बन्धी प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है। हमारे देश की मिट्टियों की उर्वरा शक्ति प्रति वर्ष कम होती जा रही है। इसके साथ साथ कई भागों की मिट्टियाँ

5. *H L. Chibber*, Ibid., p. 212.

बहते हुए पानी के जोर से कटकर समुद्र में चली जाती हैं। धरती के कटने या अपक्षरण की समस्या भारत जैसे अधिक वर्षा वाले देश में बड़ी विषम हो गई है। मिट्टी के कटाव को 'रेंगती हुई मृत्यु' कहा जाता है। यह परिणाम भूमि तक ही सीमित नहीं है किन्तु उन्हें मनुष्यों को भी भुगतना पड़ता है क्योंकि भूमि के नष्ट होने से भूमि की पैदावार क्षीण होती जाती है। भूमि की सतह के ऊपर ही वनस्पति-जन्य तत्व, रासायनिक तत्व और भूमि की शक्ति को बढ़ाने वाले पदार्थ एकत्रित रहते हैं जिनसे पौधों को भोजन मिलता रहता है। यदि एक बार यह ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है तो भूमि की उर्वरा शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ किसी प्रकार की वनस्पति पैदा होना असम्भव हो जाता है।

भूमि कटाव के प्रकार (Types of Soil Erosion)

भारत की उन सभी ढालू भूमियों पर जहाँ न तो वन हैं न घास के मैदान और जहाँ कृषि-योग्य भूमि की ठीक प्रकार से मेढ़-बन्दी भी नहीं की जाती वहाँ की मिट्टी सदैव कटती रहती है। प्रत्येक स्थान पर मिट्टी का कटाव समान नहीं होता। यह कई बातों पर निर्भर है। जैसे—मिट्टी का गुण, भूमि का ढाल, वर्षा की मात्रा आदि। कठोर मिट्टी की अपेक्षा कोमल छोटे कण वाली मिट्टी अधिक ढाल और मूसलाधार वर्षा में शीघ्र कट कर बह जाती है।

मिट्टी का कटाव कई प्रकार का होता है। जब घनघोर वर्षा के कारण निर्जन पहाड़ियों की मिट्टी जल में घुलकर बह जाती है तो इसे भूमि का **धरातली कटाव** (Sheet erosion) कहते हैं। धरातलीय कटाव सभी ढालू भूमि की ऊपरी मूल्य-वान मिट्टी को बहा देता है जिससे उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है।

जब जल बहता है तो उसकी विभिन्न धारायें मिट्टी को कुछ गहराई तक काट देती हैं जिससे धरातल में कई फुट गहरे खड्ड बन जाते हैं। इस प्रकार के कटाव को **नाले का कटाव** (Gully erosion) कहते है। परन्तु नाले का कटाव प्रथम प्रकार के कटाव से अधिक हानिकारक होता है।

मरुभूमि में प्रचण्ड वायु द्वारा भी मिट्टी का कटाव होता रहता है। इसके द्वारा मिट्टी काटकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाकर बिछा दी जाती है। इसे **वायु का कटाव** (Wind erosion) कहते हैं।

इन विभिन्न प्रकार के कटावों द्वारा भारतवर्ष की हजारों एकड़ भूमि नष्ट की जा चुकी है। भारत में तीनों ही प्रकार के कटाव मिलते हैं।

भूमि कटाव के कारण

भूमि कटाव अनेक कारणों द्वारा होता है, यथा :

(१) अनेक शताब्दियों से मानव अज्ञानतावश ईंधन एवं घरेलू कार्यों के लिए निर्भयतापूर्वक वनों को नष्ट करता रहा है। इस क्रिया से भूमि के रक्षात्मक तत्व तेजी से बहने वाले वर्षा जल के साथ बह कर चले जाते हैं और वहाँ बड़े बीहड़ उत्पन्न हो जाते हैं। यमुना, चम्बल, माही और उनकी अनेक सहायक नदियों के किनारे भूमि का क्षरण निरंतर गति से हो रहा है। इससे उपजाऊ क्षेत्र नष्ट होते जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश में लगभग ३५ लाख एकड़ और राजस्थान, गुजरात एवं मध्य

प्रदेश राज्य में प्रत्येक में ८०,००० एकड़ भूमि इन बीहड़ों द्वारा नष्ट हो गई है। इस विनाशपूर्ण क्रिया को रोकना आवश्यक है।

(२) वनों के समीप रहने वाले निवासी असंख्य मात्रा में भेड़ बकरी आदि पशुओं को पालते रहे हैं जो भूमि की वनस्पति को अन्तिम बिन्दु तक चरकर उसे खोखला कर देती हैं। यही ढीले भाग जल अथवा मिट्टी के वेग के साथ बहकर भूमि को अनउपजाऊ बना देते हैं।

(३) अनेक क्षेत्रों के पहाड़ी ढालों पर (विशेषत: आसाम, निचले हिमालय, उड़ीसा, मध्य प्रदेश आदि में) आदिवासियों द्वारा झूमिंग प्रणाली के अन्तर्गत भूमि को वनों द्वारा साफ कर कृषि योग्य बनाया जाता है जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों के वन नष्ट होकर भूमि कटाव आरम्भ हो जाता है।

(४) वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व भीषण गर्म आँधियाँ चलती हैं जो भूमि की ऊपरी पर्त की ढीली मिट्टी को उड़ा ले जाता है। इस क्रिया द्वारा धरातल पर आवरण-क्षय होता रहता है और कालान्तर में यह क्षेत्र अनुपजाऊ बन जाते हैं।

(५) कृषि के अवैज्ञानिक ढंगों से भी भूमि का कटाव होता है जैसे बिना बाँधों के ढलावों पर हल चलाना।

भारत में भूमिक्षरण के क्षेत्र

भूमिक्षरण की विभीषिका ने भारत में अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर रखा है। इसको भारतीय कृषि की पहली श्रेणी का शत्रु माना जाता है। **डा० ग्लोवर** के अनुसार भूमिक्षरण से भारत में १५ करोड़ एकड़ भूमि की क्षति हो रही है। **श्री जे० रसेल** का अनुमान है कि देश के विभिन्न भागों में प्रति एकड़ १ से लेकर ११५ टन तक मिट्टी नष्ट हो रही है! एक अन्य अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष वर्षा से भूमि की $\frac{1}{२०}$ इंच ऊपरी उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो रही है। औसतन प्रतिवर्ष मिट्टी का २% भाग बहकर चला जाता है।

भारत में भूमिक्षरण के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—(१) उत्तर-प्रदेश में व्रजभूमि की वर्तमान स्थिति भूमिक्षरण से होने वाले विनाश का सजीव प्रतीक है। "एक समय जहाँ दूध और घी की नदियाँ बहा करती थी वहाँ आज विश्व के इस सर्वाधिक उर्वर भू-भाग के मध्यमें सैकड़ों वर्ग कि.मी. तक फैली हुई भूमि अतिशय पशु चारणके फलस्वरूप अपने प्राकृतिक आवरणों से वंचित होकर मरुस्थल हो गई है।" उत्तर प्रदेश में लगभग ३५ लाख एकड़ उबड़-खाबड़ भूमि और उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के बीच का मानव निर्मित मरुस्थल जो राज्य के दक्षिण-पश्चिमी जिलों को भी अपनी लपेट में लेना चाहता है और जिसके फलस्वरूप पंजाब और उत्तर-प्रदेश की नहरों में कीचड़ जमा हो गया है, भूमि क्षरण का मुख्य स्थल है।

आगरा, मथुरा और इटावा के जिलों में दूर-दूर तक विस्तृत बंजर भूमि है। इटावा में ही १,२०,००० एकड़ बंजर भूमि है। इस जिले में प्रति सैकंड ११ घनफीट मिट्टी बेकार होती है जो तीन मील प्रति घंटा की रफ्तार से बहने वाली लगभग ४ मी० चौड़ी और ०·६ मीटर गहरी जल धारा से कटने वाली मिट्टी के बराबर है। उत्तर प्रदेश में भूमि-क्षरण से ध्वस्त भूमि ३५ लाख अवध, बुन्देलखण्ड और आगरा के बंजर

क्षेत्रों में धरातली भूमि-क्षरण गत २०० वर्षों से जारी है जिससे लगभग १ फुट गहराई तक की मिट्टी बहकर साफ हो गई है।
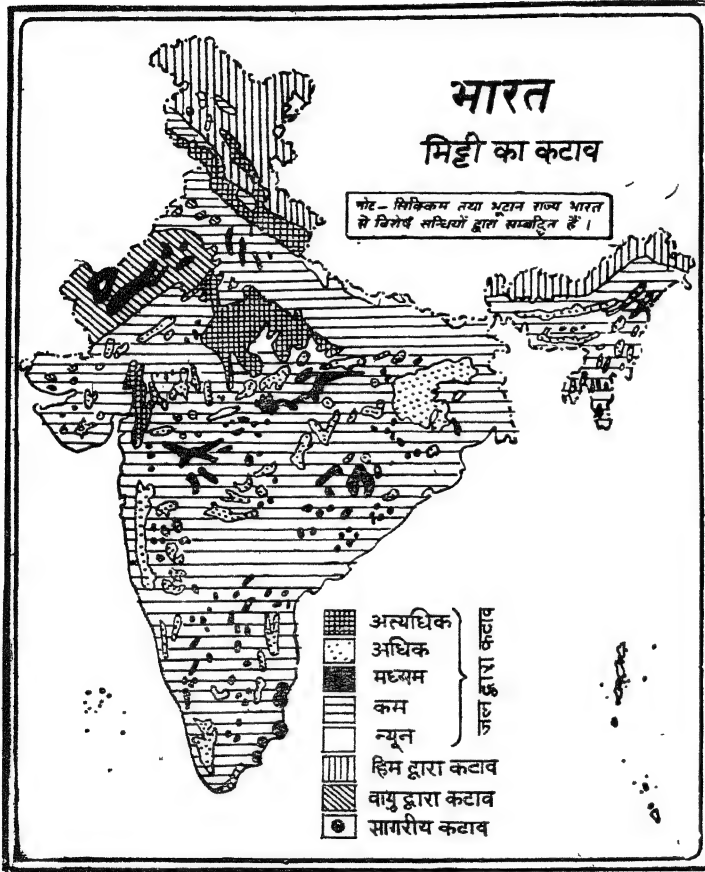
चित्र १२६. मिट्टी का कटाव

(२) मध्य प्रदेश (गवालियर) में चम्बल तथा अन्य नदियों की लगातार बाढ़ से विशाल भूमिखण्ड (लगभग ८ लाख एकड़) अनुर्वर हो गया है। अनुमान लगाया गया है कि जमुना चम्बल घाटी में जो भूमि-क्षरण हुआ है वह गत १००० वर्षों से प्रति दूसरे दिन और रात में ½ टन मिट्टी हटने के बराबर है। इस क्षेत्र में भूमि-क्षरण से प्रभावित भूमि ११२ कि०मी० लम्बी और मध्य में २१ कि०मी० चौड़ी है। चम्बल नदी भूमि-क्षरण को सर्वाधिक प्रोत्साहित करने वाली मानी जाती है। इन क्षेत्रों पर दृष्टिपात करने से मालूम हो जाता है कि यह विशाल भूखण्ड अनेक नालों और खड्डों में विभक्त हो गया है और इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जिनमें पूरी की पूरी सेना समा जाय। यह तो निर्विवाद सत्य है कि इन खड्डों और दूर-दूर तक विस्तृत

नालों में भयानक डाकू दल विचरण करते हैं। इस भूमि पर खेती करने की बात तो दर किनार है यह चारागाह के लिये भी अनुपयुक्त है। ये खड्ड और नाले भूमि-क्षरण और तदजन्य विनाश के क्षेत्र जीते-जागते नमूने हैं।

(३) गंगा और उसकी सहायक नदियों के मैदानी क्षेत्र भी इस विभीषिका से सर्वथा मुक्त न रह सके हैं। सच तो यह है कि ये नदियाँ धीरे-धीरे किन्तु क्रम से मैदानों में गहरे नाले बनाकर भूमि की उर्वर परत को बहा कर साफ करती रही है। इन भागों में नदी तट का भूमि-क्षरण सामान्यतः देखा जा सकता है। विद्वानों का मत है कि अकेली गंगा नदी प्रतिवर्ष १० करोड़ मन मिट्टी ले जाकर बंगाल की खाड़ी में डालती है। दक्षिणी बंगाल में प्रायः सभी नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में भूमि-क्षरण का भीपण प्रकोप है जिसके फलस्वरूप न केवल कृषि-योग्य भूमि ही नष्ट हो रही है वरन् जनसंख्या को भी क्षति पहुँच रही है।

(४) शिवालिक तथा हिमालय पर्वत माला में ये खड्डे और नाले सैकडों मीटर गहरे हैं और जहाँ कहीं भी भूमि-क्षरण के फलस्वरूप दरारें पड़ गई है वहाँ के लोग अपने गाँव व घर छोड़ कर अन्यत्र भाग जाने के लिये बाध्य हुए हैं।

(५) महाराष्ट्र तथा दक्षिण में रुई उत्पादन करनेवाली काली मिट्टी पानी की घातक क्रियाओं को बिल्कुल ही नहीं सहन कर सकती और कपितय क्षेत्रो में अनुमानतः प्रतिवर्ष प्रति एकड़ १३३ टन मिट्टी की क्षति होती है।

(६) निश्चित अंश तक धरातली कटाव और नाले के कटाव के बाद ये क्षेत्र वायु से होने वाले भूमि-क्षरण के शिकार बन जाते है। इन क्षेत्रों की बढ़ती हुई खुश्की के फलस्वरूप वायु का वेग पेड़ों, झाड़ियों तथा घास के आवरण को नष्ट करता हुआ सारी भूमि को मरुभूमि बना देता है। मरुस्थल की प्रवृति दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान के बाहरी भागों की ओर अबाध गति से बढ़ रही है। समस्या की गति को केन्द्रीय अधिकारी वर्ग ने अनुभव किया है फलस्वरूप दिल्ली, उत्तर-प्रदेश तथा पंजाब की सीमा पर रक्षात्मक वृक्षों की पट्टी लगाने का प्रयत्न आरम्भ किया गया है। राजस्थान और पाकिस्तान की सीमा के बीच में ८ कि० मीटर चौड़ी और ६७४ किलोमीटर लम्बी वृक्षों की पेटी लगाई गई है।

वायु से होने वाला भूमि-क्षरण सामान्यतः राजस्थान (जोधपुर, बीकानेर, कोटा, जयपुर, भरतपुर, किशनगढ़) और पंजाब के क्षेत्रों में देखा जाता है। राजस्थान में इस प्रक्रिया से गत शताब्दी में प्रति वर्ग मील से लगभग ६ करोड़ मन उपजाऊ मिट्टी का विनाश हुआ है। इस मरुस्थल के अनेक क्षेत्रों में तेज वायु बहुधा जोते और बोये खेतों पर बालू की परत जमा देती है जिसके फलस्वरूप बीज अंकुरित नहीं होने पाता अथवा हल्की मिट्टी के उड़ जाने से नन्हें पौधे अरक्षित होकर नष्ट हो जाते हैं।

भूमि कटाव की हानियाँ :—विभिन्न प्रकार से होने वाले भूमि क्षरण के संयुक्त प्रभावों का राष्ट्रीय योजना समिति ने निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण दिया है :—

(१) भीषण तथा आकस्मिक बाढ़ों का प्रकोप।

(२) सूखे की लम्बी अवधि जिसका प्रभाव नहरों पर पड़ता है।

(३) जल के अतिरिक्त स्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव जिससे कुओं तथा नलों की सतह नीची हो जाती है और सिंचाई में कठिनाई होती है।

(४) नदियों की तह में बालू का जम जाना जिससे नदी की धारा में परिवर्तन होता रहता है और नहरों तथा बन्दरगाहों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

(५) उच्च कोटि की भूमि नष्ट हो जाने से खेतों की पैदावार नष्ट हो जाती है।

(६) गड्ढों से होने वाले भूमि-क्षरण तथा नदियों के किनारे के भूमि-क्षरण से खेती योग्य भूमि में कमी पड़ने लगती है।

मिट्टी की सुरक्षा के उपाय

मिट्टी के कटाव के रोकने के लिए निम्न उपाय काम में लाना आवश्यक है:—

(१) पहाडी ढालों पर, बंजर भूमि में और नदियों के किनारे वृक्षारोपण किया जाये तथा पशुओं की चराई पर नियंत्रण रखा जाये।

(२) जोते हुए क्षेत्रों के रक्षात्मक आवरण को बनाये रखने के लिये फसलों का हेर-फेर, भूमि को समय-समय पर परती रखना आदि क्रियाओं में लाया जाना वांछनीय होगा।

(३) बहते हुए जल का वेग रोकने के लिए खेतों में मेंढ़ बन्दी करना, ऊँची भूमि पर पतली खेती और मैदान में टेढ़ी-मेढ़ी खेती की पद्धति अपनाना आवश्यक है।

(४) बहते हुए जल की मात्रा और भारीपन में कमी करना भी आवश्यक है। इसके लिये (क) पहाडियों के ढाल पर अथवा ऊंचे-नीचे क्षेत्र में बहते हुए जल को संग्रह करने के लिये छोटे-छोटे तालाबों का बनवाना आवश्यक है। (ख) बढ़ी हुई नदियों का अतिरिक्त जल रोक रखने के लिये जल के विशाल संग्रहालय तैयार कराये जाँय। (ग) खेतों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बाँध बनवाये जाँय जो एकत्रित जल को अनेकों भागों में बाँट देंगे और इस प्रकार जल का वेग कम हो जावेगा और उस भूमि खण्ड की उपजाऊ मिट्टी बहकर न जा सकेगी।

(५) जो मिट्टी जल द्वारा कट गई है उसे रोकने के लिए ढालू खेतों के छोर पर खाई खोदना ठीक होता है।

(६) देश के सभी भागों में गांवों, कस्वों, नगरों के बाहर पशुओं के चराने के लिए निश्चित भूमि में चरागाहों का विकास किया जाये। उन्हें अन्य क्षेत्रों में भटकने से रोका जाय तथा उन्हें उन्हीं चरागाहों में चराया जाय।

योजनाओं के अंतर्गत भूमि संरक्षण कार्य

भारत सरकार का ध्यान मिट्टी के कटाव से उत्पन्न भीषण समस्या का सामना करने की ओर प्रथम योजनाकाल से ही आकर्षित हुआ है। प्रथम योजनाकाल में मिट्टी की सुरक्षा और कटाव को कम करने के लिए १९५३ में **केन्द्रीय भूमि संरक्षण बोर्ड** की स्थापना करके उनके निरीक्षण का कार्य आरंभ किया गया। इस बोर्ड के मुख्य कार्य (१) भूमि सरक्षण के संबंध में खोज करने के कार्यों का सयोजन

और निरीक्षण करना; (२) नदी घाटी योजनाओं और राज्यकीय भूमि संरक्षण योजनाओं को नई योजनायें बनाने में सहयोग देना, (३) भूमि संरक्षण संबंधी कार्यों के लिए विशिष्ट शिक्षा देने का प्रबंध करना है।

प्रथम योजना काल में भूमि संरक्षण कार्य के लिए १·६ करोड़ रुपया व्यय किया गया। ८ क्षेत्रीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये और भूमि रक्षा के उपाय लगभग ७ लाख एकड़ भूमि पर (विशेषतः महाराष्ट्र और मद्रास में) अपनाये गये। राजस्थान में १६५२ में जोधपुर में एक मरुस्थल वृक्षारोपण तथा अनुसंधान केन्द्र खोला गया। यह केन्द्र मरुस्थल के उपयुक्त पौधे उगाता है तथा यहाँ से पौधे और बीज उगाने के लिए वितरित किये जाते हैं।

दूसरी योजना काल में इस कार्यक्रम में १८ करोड़ की राशि व्यय की गई। महाराष्ट्र राज्य में लगभग २० लाख एकड़ भूमि पर कंटूर-बंदी की गई। १२० लाख एकड़ भूमि का भूमि संरक्षण की दृष्टि से सर्वेक्षण किया गया। राजस्थान में जोधपुर के निकट ही चरागाहों के विकास कार्यक्रम के अंतर्गत २०० एकड़ प्रत्येक के ५५ बाड़े स्थापित करने का कार्य आरंभ किया गया जिसमें अब तक ५० बाड़े तैयार हो चुके हैं।

तृतीय योजना में भूमि संरक्षण कार्य को और भी अधिक बढ़ाया जा रहा है इस योजना काल में निम्न कार्यक्रम निर्धारित किया गया है :—

(१) १२० लाख एकड़ भूमि पर कंटूर बंदी तथा २२० लाख एकड़ भूमि पर शुष्क खेती करने की प्रणाली अपनाई जायेगी।

(२) नदी घाटियों में बने बांधों को अधिक स्थायी बनाने, बाढ़ों को रोकने, भूमि के कटाव का नियंत्रण करने, मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने तथा ईंधन और औद्योगिक लकड़ी की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए भाखड़ा नांगल, दामोदर, हीराकुड तथा अन्य नदी घाटी योजनाओं के अंतर्गत नदियों के प्रवाह-क्षेत्रों में १० लाख एकड़ भूमि पर वृक्षारोपण किया जावेगा।

(३) नमकीन और ऊसर मिट्टी का पुनरुद्धार करने तथा उसकी उपजाऊ शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए पंजाब, राजस्थान, मैसूर, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, दिल्ली, गुजरात आदि राज्यों में २ लाख एकड़ भूमि का सुधार किया जायेगा।

(४) मरुस्थली क्षेत्रों में चरागाह तथा वृक्षारोपण क्रिया द्वारा १ लाख एकड़ भूमि का और पहाड़ी-क्षेत्रों तथा बंजर भूमि पर ७ लाख एकड़ भूमि पर भूमि संरक्षण कार्य किये जायेंगे।

उर्वरक और खादें

खेती पर आश्रित जनसंख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप कृषि योग्य भूमि का अधिकाधिक उपयोग किया जाने लगा है किन्तु इससे गहरी खेती के रूप में अथवा अनेक फसलों के उत्पादन से खेतों की उर्वरा शक्ति का निरंतर ह्रास हो रहा है। यद्यपि भारतीय मिट्टियाँ विश्व की सर्वोत्तम मिट्टियाँ मानी जाती हैं किन्तु हमारी मिट्टियों का उपजाऊ भंडार अधिक समय तक नहीं चल सकता जब तक कि उसमें से निकले तत्वों को फिर से उसमें समावेश न किया जाये। अतएव खोई हुई उर्वरा शक्ति पुनः प्राप्त करने के लिए खेतों में उर्वरकों और खादों का देना अधिक महत्व-

पूर्ण हो जाता है। यह उपजाऊ तत्व वायु, कीड़ों-मकोड़ों तथा वनस्पति द्वारा तो प्रदान किये ही जाते हैं किन्तु कृत्रिम रूप से उपजाऊ तत्वों का मिलाया जाना भी आवश्यक है। खेती के प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने के लिए बाहर से जिन तत्वों को मिट्टी में मिलाया जाता है उन्हें खाद या उर्वरक की संज्ञा दी जाती है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारतीय मिट्टियों की सबसे बड़ी कमी नाइट्रोजन की है। यह बात नीचे की तालिका से और भी स्पष्ट हो जायगी :—

मिट्टी	नेत्रजन (Nitrogen)	फासस्फुरिक अम्ल (Phosphoric cid)	पोटास (Potash)	चूना (Lime)
१. कांप मिट्टी	०.३ से .०३	.०८ से .१३	.३ से .०७	३ से २.०
२. काली मिट्टी	.०२ से .०५	.०२ से .२	.८ से .१५	१.० से ७.७
३. लाल मिट्टी	.०८ से .०६	.००५ से .०२	.१ से .३५	१.० से भी कम
४. लैटे [illegible] मिट्टी	.०१ से ०.४	—	—	बिल्कुल नहीं

इस अभाव की पूर्ति के लिए निम्न उपायों का सहारा लिया जाता है :—

(१) **खेत की खाद** (Farmyard manure)—यह खाद फार्म के पशुओं के मलमूत्र तथा घास-पात को मिलाकर तैयार की जाती है। अनुमानतः वर्तमान फार्मों या पशुओं के खाद से प्रतिवर्ष ८.३ लाख नाइट्रोजन तैयार होता है। इसका २० प्रतिशत तो नष्ट हो जाता है, ४० प्रतिशत ईंधन के रूप में निकल जाता है और केवल ४० प्रतिशत का खाद के रूप में उपयोग होता है। डाक्टर बर्न्स का मत है कि भारत में प्रति वर्ष कम से कम २६ लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता है। इस प्रकार हमें बहुत बड़ी कमी पूरी करनी है। दूसरा मुख्य दोष यह है कि हमारे यहाँ पशुओं के मत्र का प्रायः पूर्ण रूप से अपव्यय होता है क्योंकि इसे संग्रह करने का कोई सन्तोष-जनक उपाय नहीं है।

यह अनुमान लगाया गया है कि खेतों से तैयार की जाने वाली खाद में यदि उन्नति के सामान्य उपाय ही काम में लाये जायें तो खाद के परिमाण में ५० प्रतिशत और उसके नाइट्रोजन तत्व में १०० प्रतिशत वृद्धि की सम्भावना है। इससे धरती को सहज ही १० लाख टन अतिरिक्त नाइट्रोजन मिल सकेगा और भारत के खाद्य उत्पादन में प्रतिवर्ष एक करोड़ टन की वृद्धि सम्भव हो सकेगी।

इस प्रकार की उन्नति के निम्नलिखित उपाय हैं :—

(१) किसान को खेत की खाद को समुचित ढंग से सुरक्षित रखने की शिक्षा दी जाय, (२) अन्य प्रकार की खादों उदाहरणार्थ कम्पोस्ट खाद, रासायनिक खाद, तिलहन की खली के खाद के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाय, और (२) किसानों के लिये सस्ता ईंधन उपलब्ध किया जाय जिससे पशुओं का गोबर, खाद के काम में आ सके।

(२) **कम्पोस्ट** (Compost)—यह हर प्रकार के रद्दी सामानों जैसे कूड़ा-करकट, घास-पात, गोबर-मूत्र, झाड़-झंकाड़ और विशेष स्थिति में मैले को सड़ा कर तैयार किया जाता है। कृषि सम्बन्धी रायल कमीशन के कथानुसार यह प्रक्रिया चीन में काफी प्रचलित है जहाँ हर प्रकार का कूड़ा-करकट कम्पोस्ट के रूप में पुनः धरती में ही मिल जाता है।

भारत में लगभग ५,००० नगर है जिनकी जनसंख्या लगभग १० करोड़ है। यदि इन नगरों का कचड़ा और मल आदि खाद मे परिवर्तित कर दिया जाय तो आसानी से लगभग १ करोड़ टन कम्पोस्ट तैयार हो सकता है। १९६२-६३ में केवल ३१·२ लाख टन कम्पोस्ट खाद तैयार किया गया। इसमें से २५ लाख टन कम्पोस्ट २१३५ नागरिक क्षेत्रों में वितरित किया गया। कम्पोस्ट बड़े बड़े नगरों में गंदे पानी से भी खाद का उत्पादन किया गया। ५१ बड़े नगरों में १४ करोड़ गैलन गंदे जल का उपयोग प्रतिदिन किया गया।

इनके अतिरिक्त सामुदायिक विकास खंडों में १,९१५ में स्थाई रूप से कम्पोस्ट बनाया जा रहा है तथा बड़ी पचायतों में मैले का उपयोग खाद के लिये किया जा रहा है।

तीसरी योजना में ५० लाख टन कम्पोस्ट बनाने का कार्यक्रम है।

(३) **दाल के पौधे और हरी खाद** (Leguminous crops)—चना, सनई, ग्वार, ढेंचा, मूगफली आदि की फसल जमीन के उपजाऊपन को बढ़ाने वाली होती है। सनई की फसल को तो खेत में ही जोत कर उसकी खाद बनाई जा सकती है। भारत में हरी खाद का प्रयोग बहुत कम होता है क्योंकि किसानों की गरीबी उन्हें मजबूर कर देती है कि वे अपने खेतों को हरी खाद के लिये फसाये रखने के बजाय उसमें खाद्यान्नों का उत्पादन करें। अनुभव और प्रयोग बताता है कि हरी खाद से आगे की फसल को ५० प्रतिशत से लेकर ८० प्रतिशत तक नाइट्रोजन शक्ति प्राप्त होती है और इसका प्रभाव दो तीन वर्ष तक बना रहता है। हरे खाद का उपयोग अब आंध्र प्रदेश, मद्रास, उत्तर प्रदेश और बिहार में बढ़ रहा है। १९५९-६० में ७० लाख एकड़ और १९६२-६३ में १४० लाख एकड़ भूमि पर हरे खाद का उपयोग किया गया।

(४) **खली की खाद** (Oil-cakes)—अभी तक भारत के निर्यात व्यापार में तिलहन का प्रमुख स्थान रहा है। इस निर्यात के फल-स्वरूप नाइट्रोजन युक्त खली की व्यापक क्षति होती है। इसका उचित समाधान भारत में तेल पेरने के उद्योगों को अधिक से अधिक प्रोत्साहन करने में निहित है। इस समय बैलों को खिलाने के लिये तथा खाद के लिये खली काफी मँहगी पड़ती है। तेल के पेरने के उद्योग के अधिक से अधिक विकास से ही सामान्य कृषक के लिये सस्ती खली प्राप्त हो सकती है।

(५) **रासायनिक तथा कृत्रिम खाद** (Chemical or Artificial manures)—इसमें हर प्रकार की कृत्रिम खादें (जैसे अमोनिया सल्फेट आदि) है। इस प्रकार के खाद के प्रयोग में दो कठिनाइयाँ है। पहली यह कि इस तरह की खाद काफी मँहगी पड़ती है और दूसरी यह कि यदि उचित उपाय न किया जाय तो इनके प्रयोग से भूमि को काफी हानि भी पहुँचती है। "कृत्रिम खाद का उपयोग वास्तविक खाद को उत्तेजित करने के लिये अथवा उसे पूरक के रूप में करना

चाहिये।" वस्तुतः अनुभव यह रहा है कि लगातार केवल कृत्रिम खाद का ही प्रयोग करने से न केवल धरती की उर्वरा शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है बल्कि उपज की गन्ध, खाद्यान्न के मूल्य तथा अन्य बातों पर भी इसका घातक प्रभाव पड़ता है। फल और तरकारी वगैरह इस नकली खाद के प्रयोग से आकार में बड़े हो जाते हैं किन्तु उनमें जल का आधिक्य हो जाता है और वे अपेक्षाकृत जल्द सड़ने लग जाते हैं। अन्न तथा चारे में विटामिन तथा विकास और उन्नति के अन्य उपकरणों की कमी होने लगती है।

अभी तक रासायनिक खाद के सम्बन्ध में गुण तथा परिमाण दोनों ही दृष्टियों से प्रायः अभाव रहा है। किन्तु गत ५ वर्षों के बीच में इस क्षेत्र में काफी प्रगति की जा चुकी है। टाटा नगर में कोयले के अवशेष से अमोनिया सल्फेट तैयार किया जाता है। जहाँ तक कच्चे माल की समस्या है, यह ज्ञात हुआ कि मद्रास तथा उत्तर-भारत के कुछ भू-भाग से कच्चा नाइट्रोजन तथा राजस्थान से जिप्सम पर्याप्त परिमाण में प्राप्त हो सकती है। केन्द्रीय सरकार ने बिहार के सिन्द्री नामक स्थान में १३ करोड़ की लागत से खाद का एक बड़ा कारखाना खोला है। इस कारखाने में उत्पादन १९५४-५५ में २·९ लाख टन और १९६१-६२ में यह ३ लाख टन था।

मुख्य रासायनिक खादें निम्न हैं :—

(क) **फासफेट**—फासफेट बिहार में हजारीबाग, मुंघेर व गया जिलों से प्राप्त होने वाली अभ्रक का अंश है। आग्नेय तथा परिवर्तित चट्टानों से भी फासफेट मिलती है। ऐसी चट्टानें तिरुचिरापल्ली व मसूरी के निकट हैं।

(ख) **पोटाशियम खाद**—ये पोटाशियम सलफेट, पोटाशियम क्लोराइट व पोटाशियम नाइट्रेट है। ये खादें पंजाब, बिहार, तथा उत्तर प्रदेश में प्राप्त होती हैं।

(ग) **केलशियम खाद**—चूने का पत्थर से, जो भारत में बहुतायत से मिलता है, प्राप्त होती है। यह बहुत सस्ती पडती है और और यह भारत में शाहबाद (बिहार), कटनी, मध्य-प्रदेश तथा जोधपुर (राजस्थान) जयन्तिया व खासी पर्वतों से भी मिलती है और प्राप्त होती है। डोलोमाइट से मैगनेशियम के साथ कैल-शियम भी मिलती है। डोलोमाइट मसूरी, देहरादून, नैनीताल तथा मध्य-प्रदेश से प्राप्त होती है। जिप्सम काश्मीर, उत्तर प्रदेश (देहरादून), जोधपुर व सौराष्ट्र से प्राप्त होती है।

(घ) **नाइट्रोजन**—पोटाशियम नाइट्रेट भारत में उत्तर-प्रदेश, पंजाब तथा बिहार में बनाया जाता है। अमोनिया सलफेट टाटा के लोहे के कारखाने से प्राप्त होती है।

१९६१-६२ में नाइट्रोजन खाद की आवश्यकता २७ लाख टन की थी जबकि वास्तव में उपयोग के लिए केवल १५ लाख टन अमोनियम सल्फेट ही प्राप्त हो सका। इस समय इस खाद के उत्पादन की क्षमता लगभग १० लाख टन की है। अधिक उत्पादन बढ़ाने के लिए तथा वर्तमान कारखानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए नये लाइसेंस स्वीकृत किये गये हैं। यह उत्पादन इस प्रकार होगा :—

वाराणसी का कारखाना	२०,००० टन	(नाइट्रोजन)
एनमोर (मद्रास)	८,२५० टन	(,)
मध्य प्रदेश	५०,००० टन	(,,)
विशाखापट्टनम	८०,००० टन	(,,)
कोठागुडियम (आंध्र)	८०,००० टन	(,,)
राजस्थान	८०,००० टन	(,,)
दुर्गापुर	५८,००० टन	(,,)

ये सब कारखाने निजी क्षेत्र में होंगे। इनके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र में सिंद्री के कारखाने की क्षमता भी बढ़ाई जायेगी। रूरकेला (१.२ लाख टन), नैवेली (७० हजार टन), ट्रामबे (६० हजार टन), नेहोरकटिया (३३ हजार टन), ट्रावनकोर कारखाने का विस्तार (८० हजार टन), गोरखपुर (८० हजार टन) के कारखानों में सब मिलाकर तीसरी योजना में नेत्रजन उर्वरक उत्पादन की क्षमता ७.३ लाख टन की होगी।

फास्फेट खाद का उपयोग भी काफी बढ़ रहा है। १९६१-६२ में इस खाद की मांग ५.६ लाख टन की थी किन्तु वास्तविक उत्पादन ३.४ लाख टन का हुआ। अब इसका उत्पादन २ लाख टन और बढ़ाने का प्रस्ताव है।

(६) **अन्य प्रकार की खादें** (Other manures)—इस प्रकार की खाद में मछली और समुद्री घास आती है जिसका प्रयोग समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में होता है। इसके अतिरिक्त खाद के रूप में हड्डी का चूरा, धान की भूसी तथा अन्य ऐसे ही तत्वों का उपयोग होता है। फसल की अदला बदली (Rotation of Crops) पलिहर (Fallowings) तथा बेझड़ की फसल भी खाद के रूप में प्रयुक्त होती है। इन सभी तरीकों का महत्व सीमित है क्योंकि इनका उपयोग स्थानीय है। इस प्रकार की खाद में उपयुक्त होने वाले पदार्थों की प्रायः कमी है। यद्यपि मछली और समुद्री घास खाद की अच्छी किस्में मानी जाती हैं पर इनका उपयोग समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में ही हो सकता है। इसी प्रकार हड्डी का चूरा भी कुछ ही स्थानों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है और यदि यह मिले भी तो इसके उपयोग पर अधिकतर लोगों को आपत्ति होती है।

(७) **फसल का स्थानान्तरण या अदला-बदली** (Rotation of Crops)—यह तरीका प्राचीन काल से प्रचलित है जबकि लोग एक के बाद दूसरी फसल पैदा करके धरती को प्राप्त होने वाली सहायता का महत्व अनुभव करते थे। भारतीय किसान इस तरीके को समझता है और कुछ हद तक इसका उपयोग भी करता है। फिर भी उन्नति का व्यापक क्षेत्र है और तत्सम्बन्धी ज्ञान के प्रसार तथा उचित मार्ग दर्शन कराने के लिये उचित प्रसार यंत्र की आवश्यकता है। इस तरीके के निम्नलिखित लाभ हैं :—

(१) इससे घास तथा फसल के कुछ रोगों के नियंत्रण में सहायता मिलती है और खाद तथा कृत्रिम खाद प्रभावकर होती हैं। इस प्रकार इन दोनों ही स्वास्थ्यकार तरीकों का इसमें समन्वय है।

(२) देखा गया है कि यह प्रक्रिया फार्म की खाद तथा अन्य नकली और रासायनिक खाद की तुलना में गेहूँ आदि प्रमुख अन्नों के उत्पादन और उन्नति के लिये ८५ प्रतिशत प्रभावकारी सिद्ध हुई है।

नीचे की तालिका में फसलों का हेर-फेर दो वर्षीय और तीन वर्षीय आधारों पर बताया गया है :—

दो-वर्षीय अदला-बदली	तीन-वर्षीय अदला-बदली	
१. चावल दालें	१. गेहूँ मकई गन्ना	४. चावल गन्ना
२. ज्वार या मकई गेहूँ या चना	२. गन्ना गेहूँ कपास	५. गेहूँ मकई गन्ना
३. कपास या ज्वार मूँगफली या ज्वार	३. गेहूँ गेहूँ तोरिया	

(८) **पशुओं से प्राप्त खादें**—बूचड़ खानों से प्राप्त जानवरों के लहू को खाद में परिवर्तित करने का कार्य उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, पश्चिमी बंगाल और आंध्र राज्यों में सराहनीय प्रगति कर रहा है। उत्तर प्रदेश की चार म्युनिसिपेलटियों अर्थात् कानपुर, लखनऊ, हापुड़ और गोरखपुर में इस प्रकार का लगभग ४६० टन खाद बनता है। महाराष्ट्र में पूना नगर, पूना कन्टोनमेन्ट और बम्बई नगर में कई केन्द्रों द्वारा ३०० टन का उत्पादन हो रहा है। मद्रास राज्य के पांच म्युनिसिपल क्षेत्र, हैदराबाद के कुछ म्युनिसिपल क्षेत्र तथा मद्रास और कलकत्ता शहरों के कोर-पोरेशन भी इस प्रकार की खाद बनाने के प्रयत्न में लगे हैं।

अध्याय १६

प्राकृतिक वनस्पति एवं वन-सम्पदा

(NATURAL VEGETATION AND FOREST WEALTH)

बहुत प्राचीन काल से ही भारत के भू-भाग पर विस्तृत वन-प्रदेशों का आधिपत्य रहा है। उस समय मानव जीवन की आर्थिक और सांस्कृतिक क्रियाएँ भारत की नदियों के तटवर्ती भागों और वन-प्रदेशों के निकटस्थ भागों में केन्द्रित थीं। मत्स्य

चित्र १२७. वन प्रदेश

पुराण में वनों का महत्व इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—"१० कुएँ खोदने का पुण्य १ तालाब बनवाने के बराबर है और १० तालाबों के निर्माण का पुण्य १ झील बनवाने के बराबर है। १० झीलों को बनाने में उतना ही पुण्य होता है जितना एक गुणवान पुत्र प्राप्त करने में और १० गुणवान पुत्रों का यश उतना ही होता है जितना एक वृक्ष लगाने का।" भारतीय सभ्यता के इतिहास में ऐसी कई घटनायें हैं जिनका सम्बन्ध वनों से माना जाता है। हिन्दुओं के

प्राचीन धार्मिक ग्रंथों-वेदों, रामायण तथा महाभारत में बड़े घने और अंधकारमय वन-प्रदेशों के प्रसंग मिलते है जो गंगा के मैदान में फैले हुए थे। इन जंगलों का बहुत बड़ा भाग अब खेती योग्य बना लिया गया है। सच तो यह है कि महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ का निर्माण ही नैमीष्यारण्य के कुजों में हुआ था। देश के अधिकाश भागों में तपोवन फैले हुए थे जिनमें ऋषी-मुनी एवं वानप्रस्थ प्राप्त व्यक्ति ईश्वराधना करते थे। नन्दनवन, दंडकारण्य, अशोक वन वृन्दावन आदि ऐसे ही वन थे जिनमें भारत की कई धार्मिक घटनायें घटी है। चीनी यात्रियों के यात्रा सम्बन्धी लेखों से (जो ६०० वर्ष पूर्व लिखे गये थे) पता लगता है कि वर्तमान वृक्ष-विहीन पश्चिमी बंगाल और गोरखपुर के जिलों में कई मीलों तक अन्धकारमय उदासीन वन प्रदेशों के समूह खड़े थे। १६ वीं शताब्दी में मुगल सम्राट बाबर यमुना के जंगलों में बाघ तथा अन्य वन्य-पशुओं का शिकार किया करता था जहाँ अब केवल झाड़ियों से आच्छादित निर्जन खादरी प्रदेश है।

वनों के नष्ट होने के कारण

शनैः शनैः वन प्रदेशों के नष्ट किये जाने के प्रमुख कारण ये हैं :—

(१) अंग्रेजी राज्य के स्थापित होने और जनसंख्या में क्रमशः तीव्र वृद्धि होने से लकड़ी का उपयोग निर्माण-कार्यों और ईंधन के रूप में बढ़ गया। साथ ही कृषि के योग्य भूमि और चरागाहों की आवश्यकता भी बढ़ती गई। रेल की पटरियों के लिए और कारखानों के लिए विभिन्न प्रकार की लकड़ियों की माँग भी बढ़ी। फलतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वन-प्रदेशों पर प्रहार होने लगा। इसके परिणामस्वरूप १९ वीं शताब्दी के मध्य भाग मे ही वनों की न्यूनता देश के लिए गंभीर समस्या बन गई।

(२) वर्तमान समय में भारतीय मैदानों में वन प्रदेश यत्र-तत्र ही दृष्टिगोचर होते हैं। मैदानों में काफी मिट्टी होने के कारण पहाड़ों पर से आने वाली नदियाँ बड़े वेग के साथ मनमाने ढंग से टेढ़ी मेढ़ी बहती हैं और ये अपने साथ-साथ चिकनी मिट्टी और चीका (Silt) ले आती हैं। इनमे बड़े वेग से बाढ़ें आती हैं। बाढ़ के कारण पानी चारों ओर फैल जाता है। जब सदा हरे-भरे रहने वाले वनों में ऐसा होता है तो नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी और चीका इन वनों में जम जाती है और इसके कारण धीरे-धीरे वन नष्ट होने लगते हैं। बड़े-बड़े पेड और झाडियां मुरझा जाती हैं और जो पेड़ इस प्रभाव से बच भी जाते हैं उन्हें कीड़े शीघ्र ही नष्ट कर डालते हैं। इस क्रिया के कारण ही पहाड़ों के नीचे वाले मैदानों मे बहुत से वन नष्ट हो गये हैं।

(३) कभी-कभी जब जंगलों में आग लग जाती है तब भी वन नष्ट हो जाते हैं। ठण्डी ऋतु में जंगलों में लगने वाली आग बड़ी विनाशकारी होती है क्योंकि इस समय वायुमण्डल सूखा होने के कारण बड़े वेग से हवा चलती है और जिससे शीघ्र ही समीपवर्ती जंगलों में भी आग फैल जाती है। ग्रीष्म ऋतु में घास भी सूख जाती है किन्तु शीघ्र ही वर्षा होने के कारण यह पुनः हरी भरी हो जाती है और इसलिये आग नहीं लग पाती।

(४) पहाड़ी स्थानों के वनों के नष्ट होने में मनुष्य का हाथ भी रहा है। आसाम में आदि वासियों ने खेती के लिए भूमि प्राप्त करने के लिये झूमिङ्ग की

क्रिया (Jhuming) से वनों को कई स्थानों पर साफ कर दिया है। झूमिङ्ग की क्रिया परिमित ऊँचाई के बीच में होती है। चूंकि १,५२४ मीटर से नीचे अधिक गर्मी और बीमारियों का डर रहता है इसलिये पहाड़ी लोग इस ऊँचाई से नीचे नहीं जाते और चूँकि २,४३८ मी० से ऊपर फसलें आसानी से नहीं पक सकतीं अतः इन्हीं ऊँचाइयों के बीच झूमिङ्ग क्रिया होती है। इस कार्य के लिए सूर्य की गर्मी का लाभ उठाने के लिये पहाड़ों के पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी-पश्चिमी भागों को ही चुनते है। बड़े-बड़े वृक्ष ठण्डी ऋतु मे काट डाले जाते है और गर्मी की ऋतु में भूमि के निचले भागों में आग लगादी जाती है जिससे आग की लपटें ऊँची उठती है और यह पहाड़ियों की तरफ बढ़ती जाती है। जब सब वृक्ष जल जाते है तो बची हुई राख में ज्वार,बाजरा,चावल आदि भूमि में गाड़ दिये जाते हैं। फसल पकने के पहले वर्षा ऋतु में एक या दो बार खेतों को निराया जाता है। दो तीन साल तक उस खेत को इस तरह बोया जाता है और फिर जब भूमि की उर्वरा-शक्ति नष्ट हो जाती है तो ये खेत खाली छोड दिये जाते है। यहाँ अब छोटी-छोटी झाड़ियाँ उग आती है। आदिवासी अब दूसरी जगह झूमिङ्ग की क्रिया से भूमि साफ कर लेते है। इस प्रकार उसी स्थान पर पुनः जंगलों का उगना असम्भव सा हो जाता है।

सामान्य वनस्पति

भारत का अधिकाश भाग उष्ण-कटिबन्ध में स्थित है। कुछ भाग समुद्र तट से अधिक ऊँचे होने के कारण शीत कटिबन्ध में गिने जा सकते है। इन दोनों ही भागों के मध्य शीतोष्ण कटिबन्ध के भाग हैं। कुछ भागों में वर्षा औसत से भी अधिक हो जाती है। किन्तु कुछ भाग प्रायः निर्जल ही रहते है। भूमि और जलवायु की असमानता के कारण हमें यहाँ विभिन्न प्रकार की वनस्पति मिलती है। वर्षा की मात्रा और उसका वितरण ही किसी देश मे पाई जाने वाली वनस्पति का निर्णय करता है। प्राकृतिक वनस्पति झाड़ियों, घास के मैदानों अथवा जगलों का रूप लेती हैं। जहाँ २०० सें० मीटर से अधिक वर्षा होती है वहाँ सदैव हरे-भरे रहने वाले चौड़ी पत्ती के वन होते है। ये वन विषुवत रेखीय वनों के अनुरूप होते हैं। इनमें लतायें, गुल्म, झाड़ियाँ आदि अधिक होती है। १०० से २०० सें० मीटर वर्षा वाले भागों में मानसूनी वन होते है जिनकी चौड़ी पत्तियाँ ग्रीष्म में सूख जाती हैं। किन्तु वर्षा के अच्छी तरह आरम्भ होने से ही कुछ पहले इनमें फूल आ जाते हैं और पत्तियाँ निकल आती है। ये वन अधिक खुले होते हैं। केवल बांस के पेड़ों के नीचे ही घनी बढ़वार हो सकती है। इन वनों में मुख्यतः साल, सागवान, रोजवुड, पाइन आदि वृक्ष अधिक होते है। ५० से १०० सें० मीटर वर्षा के भागों में कटीले वृक्ष पाये जाते हैं क्योंकि यहाँ भूमि इतनी सूखी होती है कि इसमें यथेष्ट वृक्षों की उत्पत्ति नहीं होती। कटीली झाड़ियाँ भूमि पर दूर-दूर उगती हैं। बीच की भूमि वर्ष के आधे भाग में खाली रहती है किन्तु वर्षा ऋतु में हरी घास और जड़ी-बूटियों से ढक जाती है। यहाँ बबूल, खेजड़ा, प्रोसोपिस आदि झाड़ियाँ अधिक उगती है। यहा ५० सें० मीटर से कम वर्षा के क्षेत्रों में अर्द्ध-रेगिस्तानी वनस्पति मिलती है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है जलवायु और भौतिक परिस्थितियों में अन्तर होने के कारण भारत में शीतोष्ण और उष्ण कटिबन्धीय दोनों ही प्रकार की वनस्पतियाँ मिलती हैं। कुल वन प्रदेशो का ७% शीतोष्ण वन (३% कोणधारी और

उड़ीसा	३८,५६०	८,७९९	२१·१
पंजाब	३०.११९	८४३	२७·६
राजस्थान	८४,५४३	३,४७८	४·५
उत्तर प्रदेश	७२,५९१	८,७१३	११·१
पश्चिमी बंगाल	२१,६८६	१,९१६	४·७
दिल्ली	३६७	४	—
हिमाचल प्रदेश	६,९९०	४००	—
मनीपुर	५,५२२	३७	—
त्रिपुरा	२,५७४	१,५७३	६०
अंडमान-नीकोबार	२,०५८	३९	—
योग	८०६,२७०	१२५,५५४	२१·८

भारत के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में २०·६ प्रतिशत भाग पर; उत्तर पश्चिमी क्षेत्र मे १० ७ प्रतिशत; मध्यवर्ती क्षेत्र में २९·९ प्रतिशत और दक्षिणी क्षेत्र पर १८·८ प्रतिशत भाग पर वन प्रदेश फैले हैं।

सम्पूर्ण देश के वनों का केवल ८०% (२१४,८८६ वर्ग मील) ही काम में आने लायक लकड़ियाँ प्रदान करता है शेष २०% (५९,५२८ वर्गमील) अप्राप्य हैं। विश्व के अन्य देशों की तुलना में हमारे यहाँ बहुत ही कम वन पाये जाते हैं। अन्य देशों में तो न्यून से न्यून भी २० से २५ प्रतिशत भूमि पर वन हैं। स्वीडेन में ५६%; रूस में ३४%; नार्वे में २१%; कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका मे ३३%; फिनलैण्ड में ७१%; जापान में ६२%; इन्डोनेशिया में ६४% और थाईलैण्ड में ७७% भूमि पर वन फैले हुये है। स्पष्ट है कि हमारे यहाँ देश की आवश्यकता के अनुरूप वन प्रदेशों का विस्तार बहुत ही कम है। १९५२ की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश की कम से कम ३३% भूमि पर वन-क्षेत्र होना अनिवार्य है। इस क्षेत्र का वितरण हिमालय पर्वत, दक्षिण के पठार और अन्य पहाड़ी या पठारी क्षेत्रों की ६० प्रतिशत भूमि पर और मैदानों की २० प्रतिशत भूमि पर होना चाहिए। जनसंख्या के बढते हुए भार और ईधन की मांग के कारण नदी तटों तथा अन्य अनुपजाऊ क्षेत्रों में भी वन प्रदेशों का होना आवश्यक माना गया है।

नीचे की तालिका में वन प्रदेशों का वर्गीकरण बताया गया है :—[3]

	१९४९-५०		१९५७-५८	
	(वर्ग मील)			
व्यवसायिक दृष्टि से		२६५,९३२		२७४,४१४
व्यापारिक वन क्षेत्र	२११,५७९		२१४,८८६	
अप्राप्य वन क्षेत्र	५४,३५३		५९,५२८	

3. India 1963, p. 209.

वैधानिक दृष्टि से :		२६५,६३२		२७४,४११
सुरक्षित वन	१२३,६६५		१३१,५८६	
रक्षित वन	३७,६४४		६३,७५६	
स्वतंत्र वन	१०४,३२३		४६,०६६	
लकड़ियों की दृष्टि से		२६५,६३२		२७४,४११
कोणधारी वन	१३,६८३		१०,०४१	
चौड़ी पत्ती वाले वन	२५१,६४६		२६४,३७०	

वनों के संरक्षण के लिये सरकार के वन-विभाग ने उनको तीन भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बांट रखा है :—

(१) जो वन जलवायु की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते है उन्हें **सुरक्षित वन** (Reserved forests) कहते है। इन वनों का क्षेत्रफल ५२% है। इनमें से न तो लकड़ियाँ ही काटी जा सकती है और न पशु ही चराने दिये जाते हैं।

(२) दूसरे प्रकार के वनों को **संरक्षित वन** (Protected forests) कहते हैं। इनमें मनुष्यों को अपने पशुओं को चराने तथा लकड़ी काटने की सुविधा तो दी जाती है किन्तु उन पर कड़ी देखभाल की जाती है जिससे वनों को हानि न पहुँचे। इस प्रकार के वनों का क्षेत्रफल २४% है।

(३) शेष वनों को **स्वतन्त्र वन** या **अवर्गीकृत वन** (Unclassed forests) कहते हैं। इनमें लकड़ी काटने और पशुओं के चराने पर कोई रोक थाम नहीं है। सरकार इसके लिये कुछ शुल्क लेती है। इन वनों का क्षेत्रफल २४ प्रतिशत है।

वनों का आर्थिक महत्व (Importance of Forests in National Economy)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में वनो का महत्व बहुत अधिक है जैसा कि निम्न तथ्यों से स्पष्ट होगा :—

(१) वनों का भारत के आर्थिक जीवन में बड़ा स्थान है। देश की राष्ट्रीय आय का लगभग ५०% कृषि उद्योग से (रु० ५,२६० करोड़) प्राप्त होता है। इसमें से ७० करोड़ रुपये या ०·७% वन सम्पत्ति द्वारा मिलता है।

(२) भारतीय वन, चरागाहों के अभाव में, लगभग ३ करोड़ पशुओं को चराने की सुविधा प्रदान करते हैं।

पशुओं की चराई के अतिरिक्त वन प्रदेश अनेक प्रकार के कंद-मूल-फल आदि भी प्रदान करते हैं जिन पर गरीबों की जीविका निर्भर करती है।

(३) वन लगभग ४ लाख व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से दैनिक व्यवसाय देते हैं। ये लोग लकड़ी काटने, लकड़ी चीरने, गाड़ियाँ ढोने तथा गौण-उपजें एकत्रित करने में लगे है।

(४) वनों से सरकार को काफी आय होती है। १९४९-५० में सरकार को वनों से शुल्क के रूप में ११·२ करोड़ रुपये प्राप्त हुए और १९५८ में २० करोड़ रुपये।

(५) वनों से जो गौण उपज प्राप्त होती है उसका मूल्य १६४६-५० में ५.७ करोड़ और १६५७-५८ में ८.५ करोड़ रुपया था। इसके अतिरिक्त इन वर्षों में १७.२ करोड़ और २८.६ करोड़ रुपये की लकड़ी भी वनों से प्राप्त की गई।

प्रत्यक्ष लाभों की अपेक्षा वनों से होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ भी बहुत होते हैं, यथा :—

(१) वनों से बहुत सी नमी निकलती रहती है जिससे वायुमंडल का तापक्रम गिर जाता है और जलवायु में लाभदायक परिवर्तन हो जाता है और वर्षा होती है। उत्तर प्रदेश के इटावा जिले मे जंगलों के नष्ट हो जाने से वर्षा की मात्रा में बड़ी न्यूनता आ गई थी किन्तु जबसे वहाँ वृक्षारोपण आरम्भ किया गया है वर्षा की मात्रा मे अधिकता आ गई है। वन किसी प्रदेश के तापक्रम को भी समान बनाये रखते हैं।

(२) वन वर्षा के पानी को स्पंज की भांति चूस लेते है अतः निम्न पड़ौसी प्रदेशों में बाढ़ का अधिक भय नहीं रहता और पानी का बहाव धीमा होने के कारण समीपवर्ती भूमि का कटाव भी नहीं होता। वास्तव में वनस्पति से युक्त भूमि एक कम्बल की तरह काम करती है और निर्जन भूमि अपने पर गिरे वर्षा-जल को बड़ी तीव्र गति के साथ बहा देती है। छोटा नागपुर के पठार, हिमालय की तलहटी तथा उड़ीसा के वनों के अनुचित रूप से काटे जाने के कारण ही आज यमुना, चम्बल, आदि नदियों में बाढ़ के कारण अगणित भूमि क्षेत्रों की उत्पादन शक्ति का ह्रास हो रहा है। घाघरा, गंडक, कोसी, सोन, स्वर्ण रेखा, अजैजा, दामोदर, तिस्ता ब्रह्मपुत्र, महानदी और गोदावरी आदि सभी नदियों में उनके विकास क्षेत्रों की वनस्पति के नष्ट हो जाने से प्रति वर्ष भयंकर बाढ़ें आती हैं।

(३) वन प्रदेश वायु प्रभाव की तेजी को रोक देते है या कम कर देते हैं और इस प्रकार वे बहुत से भागों को शीत अथवा तेज बालू की आँधियों के भय से युक्त कर देते हैं। थार के मरुस्थल की बालू अपने किनारों पर वनस्पति न होने के कारण ही प्रति वर्ष करोड़ों टन की मात्रा में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों की ओर बढ़ती जा रही है। अनुमान है कि थार का मरुस्थल प्रति वर्ष १/२ मील की गति से बढ़ रहा है। अस्तु, इसके किनारे-किनारे ८ कि० मीटर लम्बी वृक्षों की कतारें लगाई जा रही हैं जिससे मरुस्थल का बढ़ना रुक सकेगा।

(४) वे वर्षा के पानी को भूमि में रोक देते हैं और धीरे-धीरे बहने देते हैं इससे मैदानी भाग के कुओं का जल जल-तल से अधिक नीचे नहीं पहुँचने पाता। पंजाब के होशियारपुर और जलंधर जिलों और उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा, इटावा और जालौन आदि जिलों के कुओं का जल-तल बहुत ही नीचा है क्योंकि इनके निकटवर्ती स्थानों के वनों को बड़ी ही मूर्खता से नष्ट किया गया है।

(५) वनों के वृक्षों से जो पत्तियाँ आदि सूख-सूख कर गिरती हैं वह धीरे-धीरे सड़-गल कर मिट्टी में मिल जाती हैं और उसको अधिक उपजाऊ बना देती हैं।

(६) वन सुन्दर एवं मनमोहक दृश्य उपस्थित करते हैं और देश के प्राकृतिक सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। अतएव वे देशवासियों में सौन्दर्य-भावना जागृत करते हैं और उन्हें सौन्दर्य एवं प्रकृति प्रेमी बनाते हैं।

(७) घने वनों में कई प्रकार के कीड़े-मकोड़े तथा छोटे-छोटे असंख्य जीव-जन्तु रहते हैं जिन पर बड़े-बड़े जीव अपना निर्वाह करते हैं। भारतीय वनों में कई प्रकार के शाकाहारी—यथा बारहसिंघा, हिरन, सांभर, बैल, सूअर—तथा मांसाहारी जीव—तेंदुआ, रीछ, शेर आदि रहते है जिनका शिकार कर बहुत से व्यक्ति अपना पेट पालते हैं। सघन वनों मे अब भी कई आदिवासी निवास करते हैं जैसे गोंड, भील, संथाल आदि।

इस प्रकार वन सम्पदा किसी देश की आर्थिक उन्नति के लिये सब प्रकार से लाभदायक होती है। **श्री चटरबक** के शब्दों में "वन राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। आधुनिक सभ्यता को इनकी बडी आवश्यकता है। ये केवल जलाने की लकड़ी ही नहीं देते प्रत्युत हमारे उद्योग धन्धों के लिये कच्चा माल और पशुओं के लिये चारा भी प्रदान करते हैं। किन्तु इनका अप्रत्यक्ष महत्व सबसे अधिक है।"

भारत में पाई जाने वाली वनस्पति

हिमालय के हिम मडित भाग से लेकर कुमारी अंतरीप तक और राजस्थान के मरुस्थल से लेकर आसाम की पहाड़ियो की पूर्वी सीमा तक असंख्य प्रकार की वनस्पति पाई जाती है जो स्थानीय जलवायु, मिट्टी, भूमि की ऊँचाई-नीचाई तथा अन्य कारणों पर निर्भर होती है। वनस्पति के दृष्टिकोण से भारत के अधिकांश भाग को गंगा सतलज के मैदान सहित उष्ण-कटिबन्धीय क्षेत्र में समझना चाहिए, किन्तु जहाँ जहाँ पर्वतीय प्रदेश हैं—जैसे दक्षिण में नीलगिरी उत्तर में आसाम की पहाड़ियाँ और हिमालय—वहाँ अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय सम-शीतोष्ण और उत्तर में आल्पस प्रकार के विभाग हैं वहाँ उसी प्रकार के वन पाये जाते है।

स्थानीय स्थितियों के अनुसार भी वनों का वर्गीकरण किया जा सकता है जैसे तटीय बालू मिट्टी के भागों में तटीय वन (Littoral), नदियों के बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों में बाढ़-प्रदेश के वन (Inundational forests) और नदियो में दलदल (Marshes Or Swamps) वन इत्यादि।

भारत में पाई जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति को निम्न भागों में बाँटा जाता है :—

(१) उष्ण कटिबन्धीय सदा हरे रहने वाले वन (Tropical Wet Ever-green Forests)—

यह उन भागों में पाये जाते है जहाँ वर्षा प्रतिवर्ष २०० सें० मीटर तक होती है और वार्षिक औसत तापमान २४° सें० ग्रेड के लगभग रहता है। ये भाग क्रमशः दक्षिण में पश्चिमी घाट के ढाल पर महाराष्ट्र से लगाकर उत्तरी व दक्षिणी कनारा; तिरूनलवेली, मैसूर, कोयम्बटूर, केरल और अंडमान तक फैले हैं और उत्तर में सम्पूर्ण उत्तरी-पूर्वी भारत में बंगाल से लगाकर पूर्वी और दक्षिणी भागों में, जहाँ २५० सें० मीटर तक वर्षा होती है, इस प्रकार के वन पाये जाते हैं। यहाँ के वन सदा हरे-भरे रहते हैं और इनके पेड़ों की ऊँचाई भी ३० से ४५ मीटर से भी अधिक होती है। इन वृक्षों की लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है। इसको काटना बड़ा कठिन होता है। विभिन्न प्रकार की लताओं, गुल्मों, झाड़ियों तथा छोटे-छोटे पौधों की अधिकता से ये वन प्रायः दुर्गम होते हैं। यद्यपि इन वनों में कई प्रकार की बहु-मूल्य लकड़ियाँ मिलती हैं किन्तु यातायात के साधनों की कठिनाई के कारण व्यवसाय

की दृष्टि से उनका महत्व अधिक नहीं है। इन वनों में अधिकतर रबड़, महौगनी, एबोनी, लौह-काष्ठ, जंगली आम, नाहर, गुरजन, तुलसर, चपलास, तून, ताड़ और बाँस आदि वृक्ष और कई प्रकार की लतायें अधिक उगती हैं।

Albizzia, Terminalia, Cadrela, Toona, Magnifera, Indra, Calophyllum, Tomentosum, Artocarpus, Pterocarpus और Dipterocarpus आदि[4]
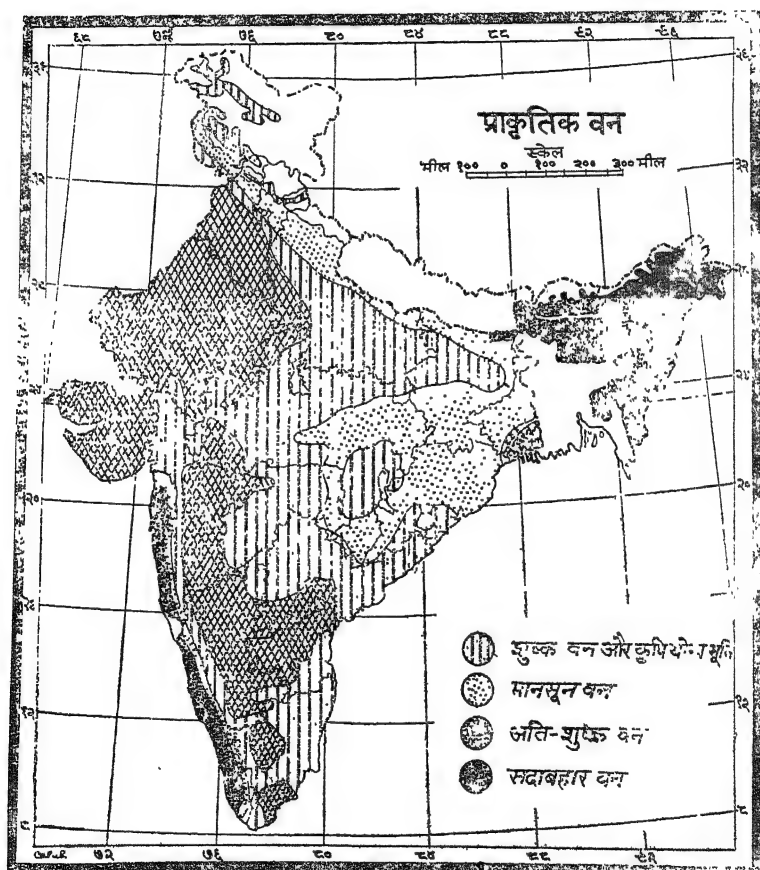
चित्र १२८. प्राकृतिक वनस्पति

(२) उष्ण कटिबन्धीय तर पतझड़ वाले वन या मानसूनी वन (Tropical Moist Deciduous or Monsoon Forests)—

ये वन अधिकतर उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा प्रायः १०० से २०० सें० मीटर इंच तक होती है। ग्रीष्म ऋतु के आते ही इन वनों के पेड़ों की पत्तियाँ

4. *Imperial Gazetteer of India*, Vol III, 1903, p. 103.

झड़ जाती हैं जिससे इनकी नमी भाप बनकर उड़ सके। इन भागों में ऊँचे (३० से ५० मीटर) और मजबूत पेड़ों के लिये तो काफी जल मिल जाता है किन्तु वर्षा की इतनी अधिकता नहीं होती कि वृक्ष दुर्गम हो जावे। इन वृक्षों के नीचे अधिक गहरे झाड़-झखाड़ नहीं होते किन्तु वृक्षों के नीचे पर्याप्त सूर्य प्रकाश पहुँचता रहता है, अतः घास बहुतायत से उत्पन्न हो जाता है। बांस अधिक पैदा होता है किन्तु बेंत, ताड़ तथा लताओं का अभाव सा होता है। इस प्रकार के वन पूर्वी पंजाब से आसाम तक हिमालय के बाहरी व निचले ढालों पर मिलते हैं और उत्तर की इसी सीमा से लेकर उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और दक्षिण में पश्चिमी घाट के पूर्व से लगा कर मध्य-प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर और केरल के सूखे भागों में कुमारी अन्तरीप तक मिलते हैं। इन वनों में बहुमूल्य लकडियाँ जैसे टीक, कुसुम, पलास, हल्दू, हड़-बहेड़ा-आँवला, साल (Shorea Robusta), अंजन, कंजू, जारूल, सागवान (Tectona Grandis), Terminalia, Acacia, Sterculia और Hardwickia Eugenia, बेंत, साखू, सागवान, लाल चन्दन, शहतूत, बाँस, कत्था और पैडूक के वृक्ष पाये जाते है। इन वनों में सागौन के वन चांदा, उत्तरी कनारा, वैनाड़ और अनामलाई की पहाड़ियों पर मिलते हैं—मुख्य हैं। व्यवसायिक दृष्टि से ये वन बड़े लाभदायक हैं। ये वन अधिकतर सरकार द्वारा सुरक्षित रखे गये हैं जिससे उनका बेकार प्रयोग न किया जा सके। भारत में साल के वनों का क्षेत्रफल १०४,७६३ वर्ग कि० मी० और सागवान के वनों का क्षेत्रफल ५८,१३२ वर्ग कि० मी० है।

३. उष्ण कटिबन्धीय सूखे पतझड़ वन (Tropical Dry Deciduous forests)

ज्यों-ज्यों वर्षा की कमी होती है वनस्पति में भी विभिन्नता आती जाती है। इस प्रकार के वनों में वृक्षों की ऊँचाई साधारणतः १५ से २३ मीटर तक होती है। इनमें कई प्रकार के वृक्ष होते हैं जो सभी ग्रीष्म ऋतु में अपनी पत्तियाँ झाड़ देते हैं।

किन्तु उत्तरी भारत के ये वन दक्षिणी भारत की अपेक्षा उतने ऊँचे नहीं होते हैं—मुख्यतः १५ मीटर। ये वन सूखी ऋतु में सूख जाते हैं किन्तु मानसून काल में पुनः हरे-भरे हो जाते हैं। यहाँ घास भी पाई जाती है किन्तु वह गर्मी में सूख जाती है। बांस साल, पैंडूला आदि यहाँ के मुख्य वृक्ष हैं। उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पंजाब आदि में पाये जाते हैं।

४. उष्ण कटिबन्धीय कंटीले वन (Tropical Thorn Forests)

जिन भागों में वर्षा की मात्रा १०० सें० मीटर से कम होती है वहाँ जल के अभाव में न तो अधिक ऊँचे वृक्ष ही पाये जाते हैं और न ये हरे-भरे ही होते हैं। इन वृक्षों की साधारणतः ऊँचाई ६ से ९ मीटर तक होती है। यहाँ विशेषतः ऐसे वृक्षों अथवा झाड़ियों की अधिकता होती है जिनमें जल के अभाव को पूरा करने के विभिन्न साधन होते हैं। कुछ वृक्षों की जड़ें बहुत लम्बी और मोटी होती हैं जिससे वे मिट्टी की अधिकतम गहराई से भीतरी जल चूस सकें और उन्हें अपने मोटे भागों में संचित रख सकें। कुछ वृक्षों की पत्तियाँ और तने बहुत मोटे होते हैं जिनसे उनकी नमी बाहर न निकल सके। कइयों पर पत्तियाँ बिल्कुल ही नहीं या बहुत कम होती

---

5. Imperial Gazetteer of India, Vol. III, p. 103.

हैं किन्तु कांटे अधिक होते हैं। इन कांटों के कारण सूर्य की तेज किरणें कांटों की नोंक द्वारा जल की बहुत ही कम मात्रा को हवा में उड़ा पाती हैं तथा इन कांटों के कारण वह पशुओं से खाये जाने से भी बच जाते हैं। इन वनों में अधिकतर नागफनी, रामबांस, खेजड़ा, बबूल, कीकर, कैर, रीठा, कुमटा Stercul a, Euuia, Terminalia, Albizzia, Melia, Dalbergia और खजूर आदि वृक्ष पाये जाते हैं। घास का प्रायः अभाव होता है।

उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन प्रदेश दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ मिट्टी अनउपजाऊ और वर्षा ५० से १०० सें० मीटर के बीच होती है। दक्षिणी भारत में पठार के शुष्क भागों में—मैसूर, आंध्र, मद्रास, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में-भी इस प्रकार के वन मिलते हैं।

५. उष्ण कटिबन्धीय पहाड़ी वन (Montane Sub-Tropical Forests)

ये वन उष्ण कटिबन्धीय हरे भरे वनों से मिलते जुलते हैं किन्तु इनमें न तो उनकी तरह इतना घनापन ही है और न ये उतने ऊँचे ही होते हैं। कुछ भागों में तो ये १५ मीटर या उससे भी कम ऊँचे होते हैं इस प्रकार के वन दक्षिणी भारत में ९१५ से १,५२५ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। इनका सबसे अधिक विस्तार नीलगिरी, शिवराय, अनामलाय और पालनी की पहाड़ियों तथा उनके निकटवर्ती भागों में और महाराष्ट्र में महाबलेश्वर तथा मध्य प्रदेश में पंचमढ़ी में हैं। यहाँ के मुख्य वृक्ष यूजिनिया, Michelia Nilegirica, Enrya Japonica, Terustrocmica Japonica और सिनैंमोमम आदि हैं।

उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन पूर्वी हिमालय तथा आसाम की पहाड़ियों पर ९१५ से १,८३० मीटर की ऊँचाई पर मिलते हैं। इनमें मुख्यतः बलूत, चैस्टनट, बेतूला, एलनस आदि वृक्ष पाये जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में यहाँ के वृक्ष ४५ मीटर तक ऊँचे हो जाते हैं जिनके नीचे सदैव झाड़ियों का प्राबल्य होता है।

६. शीतोष्ण पहाड़ी वन (Montane Temperate Forests)

इस प्रकार के वनों में वृक्ष १५ से १८ मीटर ऊँचे तथा मोटे तने वाले होते हैं जिनके नीचे गहरी झाड़ियाँ आदि होती हैं। इन वृक्षों की पत्तियाँ घनी और सदाबहार होती हैं। इनकी टहनियों पर भी काई, लतायें आदि लिपटी रहती हैं। यह अनामलाय, पालनी तथा नीलगिरी पहाड़ियों के अधिक ऊँचे भागों में पाये जाते हैं। यूजेनिया, मिचेलिया और रोडेनड्रोन्स मुख्य वृक्ष हैं।

उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन प्रदेश पूर्वी हिमालय और आसाम की पहाड़ियों पर १,८३० से २,८०० मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। इनके मुख्य वृक्ष चीड़, बलूत और चैस्टनट हैं।

७. हिमालय की वनस्पति (Alpine Forests)

पहाड़ों की ऊँचाई के अनुसार ही उनकी वनस्पति होती है। हिमालय के

पूर्वी भागों में (जहाँ वर्षा घनी होती है) पश्चिमी भागों की अपेक्षा घने और विविध प्रकार के वन पाये जाते हैं। अस्तु, हिमालय के वन प्रदेशों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(क) पूर्वी हिमालय के वन

(i) **अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय वन**—इनके अन्तर्गत तराई से लेकर हिमालय की १,५२४ मीटर की ऊँचाई तक उगने वाले वन सम्मिलित हैं। इन वनों में साल, चिलौनी, दिलेनिया, अमूरा और सिनेमन के वृक्ष मिलते हैं। इनके अतिरिक्त शीशम, खैर, सेलम, लेंदी तथा चंदन भी खूब पैदा होते हैं। सवाना प्रकार की लम्बी घास भी इन वनों में उगती है। बाँस के झाड़ तथा लताओं के कारण ये वन और भी घने हो गये है।

(ii) **शीतोष्ण कटिबन्धीय वन**—इनके अन्तर्गत पूर्वी हिमालय में शीतोष्ण वनों के ओक, बर्च, मैपिल, एल्डर तथा लोरेल के चौड़े पत्तियों वाले वृक्ष १,५२४ मीटर से २,७४३ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं।

(iii) **शीत शीतोष्ण कटिबन्धीय वन**—२,७४३ मीटर से ३,६५७ मीटर की ऊँचाई तक शीत शीतोष्ण के सिलोफर, चीड़, स्प्रूस, देवदार आदि नुकीली पत्ती वाले वृक्ष मिलते हैं।
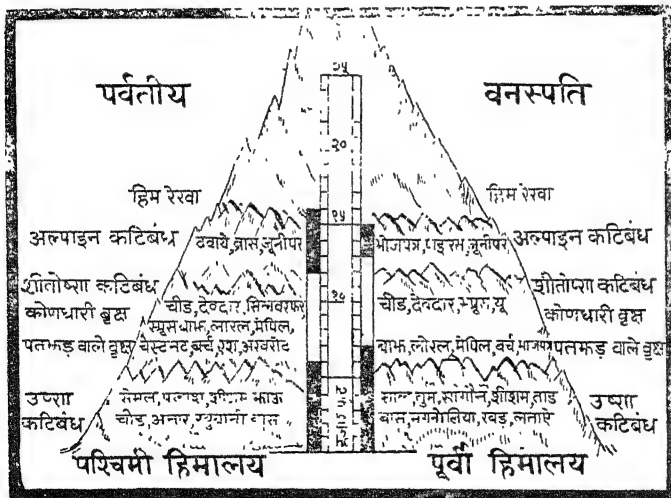
चित्र १२९. पश्चिमी और पूर्वी हिमालय की वनस्पति

(iv) **पर्वतीय वन**—ये ३,६५७ मीटर से ४,८७६ मीटर के बीच में मिलते हैं। इनमें सिलवर फर, बर्च, जूनीपर, भोजपत्र, रोडोडोन्ड्रन्स तथा लिचन पैदा होती है।

४,८७६ मीटर से प्रायः ६,०९६ मीटर तक छोटी छोटी घास तथा सुन्दर पुष्पों के पौधे मिलते हैं।

६,०९६ मीटर से ऊँचाई पर केवल बर्फ जमी रहती है।

(ख) पश्चिमी हिमालय के वन

(i) **अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय वन**—समुद्रतल के धरातल से १,५२४ मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। इनमें साल ढाक, सेमल, आंवला, शीशम, गूलर, जामुन, बेर आदि अधिक पाये जाते है।

(ii) **शीतोष्ण कटिबन्धीय वन**—इनमें चौड़ी पत्ती तथा नुकीली पत्ती वाले वृक्ष मिश्रित रूप में मिलते हैं। इनका विस्तार १,५२४ मीटर से ३,६५७ मीटर तक है। निचले भागों में वर्षा की कमी और शीत की अधिकता के कारण चीड़, देवदार, ब्लूपाइन के वृक्ष तथा एल्डर, एल्म, बर्च, पोपलर और ओक आदि वृक्ष मिलते हैं। २,४३८ मीटर से अधिक ऊँचाई पर ब्लूपाइन और सिल्वर फर के वृक्ष पाये जाते हैं।

(iii) **पर्वतीय वन**—साधारणतः ३,६५७ मीटर से ४,५७२ मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। जूनीपर, सिल्वर फर और बर्च अधिक मिलते हैं।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि हिमालय पर ऊँचाई के साथ-साथ वनस्पति की किस्म में भी अन्तर पड़ता जाता है। निचले भागों में चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों की बहुलता होती है जो साधारणतः ६ से ९ मीटर ऊँचे होते हैं। ये वृक्ष काफी खुले होते हैं। ऊँचे भागों में नुकीली पत्ती वाले १८ से अधिक मीटर ऊँचे मिलते है। बसंत ऋतु में इन प्रदेशों में प्रिमूला और मैकोनोपिस आदि किस्मों के फूल बहुतायत से होते हैं तथा ग्रीष्म ऋतु में उत्तम घास भी पाई जाती है।

(७) ज्वार प्रदेश के वन (Tidal Forests)

इस प्रकार के वन उन भागों मे पाये जाते हैं जहाँ समुद्रतट पर बार-बार ज्वार भाटा आने के कारण जल फैल जाता है। यहाँ की मिट्टी भी कीचड़मय होती है। अस्तु, यहाँ मुख्यतः ऐसी वनस्पति पैदा होती है जिसकी जड़ें सदैव नमकीन जल में डूबी रहती हैं। इनसे शाखायें निकल कर चारों ओर फैल जाती हैं। ये वृक्ष सदा हरे भरे रहते हैं और संभवतः ३० मीटर ऊँचे होते हैं। इनमें मुख्यतः हैरोटीरिया, सरलोप्स, रीजोफोरा, सोनेरीटा, फोनिक्स Cerapa Nelucceasis Amur Avicennia, officinalis आदि किस्म की वनस्पति पायी जाती है। इस प्रकार के वन मुख्यतः गंगा के डेल्टा के सुन्दर वन, मद्रास और आंध्र के उत्तरी तट के जिलों, महानदी, कृष्णा, गोदावरी आदि नदियों के डेल्टों में मिलते हैं। सुन्दरवन में सुन्दरी नामक वृक्ष की बहुतायत होती है। यहाँ ताड़, नारियल और केवड़ा के वृक्ष भी मिलते हैं।

(८) नदी तट के वन (Riverine Forests)

वर्षाऋतु में नदियों की बाढ़ का जल नदियों के दोनों ओर बहुत दूर तक फैल जाता है। इस सीमा तक वहाँ वृक्ष उग आते हैं क्योंकि बाढ़ की मिट्टी उपजाऊ होती है। इन वृक्षों में जो नदी तटों के निकट होते हैं वह अपनी लम्बी लम्बी जड़ों द्वारा नदी के जल को खींचकर बड़े ऊँचे और मजबूत बन जाते हैं किन्तु जो वृक्ष नदी तट से दूर होते हैं वे प्रायः छोटे और कमजोर रह जाते हैं। इन वृक्षों में मुख्य बबूल, शीशम, जामुन, इमली, खैर आदि होते हैं। ऐसे वन पंजाब से लगाकर आसाम तक मिलते हैं किन्तु चूँकि नदी तट की भूमि मे खेती अधिक की जाती है अतः ये वन कम घने ही होते है। इन्हीं से किसानों को ईंधन उपलब्ध होता है।

भारतीय वनों से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ

भारतीय वन देश के लिए अमूल्य निधि माने जाते है क्योंकि इनसे हमें न केवल ईधन और अन्य कार्यो के लिए लकड़ियाँ ही मिलती है वरन् ये देश के उद्योग धंधों के लिए असंख्य कच्चे माल भी देते है। इनसे होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ भी बहुत अधिक है। वनों से प्राप्त होने वाली वस्तुओं को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:—

(१) मुख्य पदार्थ (Major Produce)

(२) गौण पदार्थ (Minor Produce)

(१) मुख्य पदार्थ (Major Produce)—भारतीय वन कई प्रकार की लकड़ियों में धनी हैं। इन वनों से हमें सागवान, साल, देवदार, शीशम, चीड़, बबूल, चन्दन आदि की मजबूत और टिकाऊ लकड़ियाँ, मिलती हैं। नीचे की तालिका में भारतीय वनों से प्राप्त होने वाली मुख्य प्रकार की लकड़ियों का उत्पादन और मूल्य बताया गया है :—

लकड़ियाँ	१९४९-५०		१९६१-६२	
	मात्रा (००० घ० फी०)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (००० घ० फी०)	मूल्य (००० रु०)
१. टिम्बर (कोणधारी + चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों से)	११०,९९१	१२८,०६६	१३३,२३३	
२. राउंड वुड	२२,८२२	१०,०३९	२९,६५६	
३. लुग्दी और दियासलाई				२८९,३३०
की लकड़ी	९५		१,९७८	
४. कोयले की लकड़ी	२८,५७१	१,३९९	२७,३८८	
५. ईधन	३७२,०४९	३२,१४४	३६०,१९१	

भारतीय वनों के वृक्षों की सैकड़ों किस्में आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद हैं जिनमें से कुछ यहाँ दी जाती हैं:—

(क) हिमालय वन प्रदेश की लकड़ियाँ

(१) **श्वेत सनोवर**(Silver fir)—प्रायः २,२०० से ३,००० मीटर की ऊँचाई तक पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से झेलम तक और चित्राल से नैपाल तक मिलती है। नुकीली पत्ती का यह सदा हरा भरा रहने वाला वृक्ष होता है। यह ६१ मीटर तक ऊँचा और ६ से ७ मीटर तक मोटा होता है। इसकी लकड़ी सफेद और नर्म होती है किंतु टिकाऊ नहीं होती। अतः इसका प्रयोग हल्के सन्दूक, पेकिंग, तख्तों, दियासलाई तथा कागज की लुब्दी अथवा फर्श में तख्ता बन्दी करने में होता है। इनकी मात्रा बहुत अधिक है किन्तु ये अधिकतर ऊँचाई पर होने से अप्राप्य हैं।

(२) **देवदार** (Deodar) का पेड़ स्वाभाविकतया ६० मीटर तक ऊँचा और १० मीटर मोटा होता है। यह सदाबहार तथा नुकीली पत्ती वाला होता है। यह हिमालय में काश्मीर और चम्बा राज्य में १,६०० से २,४०० मीटर की ऊँचाई तक गढ़वाल के पश्चिम से जौनसार बावर तथा पंजाब की पहाड़ियों में पाया जाता है। इसका क्षेत्रफल २,००० वर्गमील है। इसकी लकड़ी साधारणतया कठोर, कुछ भूरी पीली और टिकाऊ होती है। यह सभी प्रकार के निर्माण कार्यों—विशेषकर रेल के स्लीपरों के बनाने—मे प्रयुक्त होती है क्योंकि यह टिकाऊ होती है। लकड़ी से एक प्रकार का सुगन्धित तेल भी निकाला जाता है।

(३) **चीड़** (Chir) का वृक्ष १,००० से २,००० मीटर की ऊँचाई पर काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा नैपाल मे बाहरी हिमालय के उत्तरी ढालों पर ३,००० वर्ग मील क्षेत्र में पाया जाता है। इसकी ऊँचाई १८ से ३० मीटर तक होती है तथा वृक्ष नुकीली पत्तियों और सदा हराभरा रहने वाला होता है। इसकी लकड़ी का उपयोग चाय तथा साबुन की पेटियां और नाव बनाने में होता है। लकड़ी से तारपीन का तेल और बिरोजा प्राप्त किया जाता है। इसकी लकड़ी कुछ अधिक ललाई लिये हुए और कठोर होती है।

(४) **नीली पाइन** (Blue Pine) का वृक्ष १,८०० से ३,६०० मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसके वन अधिकतर पंजाब में पाये जाते हैं। इसकी लकड़ी साधारण कठोर और अच्छी होती है तथा रंग हल्का लाल होता है। इसका पेड़ ३० से ४५ मीटर ऊँचा और १ से ४ मीटर मोटा होता है। यह साज-सामान, बढ़िया बिरोजा और तारपीन का तेल, स्लीपर आदि बनाने के काम आती है।

(५) **स्प्रूस** (Spruce) लकड़ी प्रायः २,१०० से ३,६०० मीटर की ऊँचाई तक मिलती हैं। इसकी लकड़ी सफेद और बहुत कोमल होती है। उत्तरी भारत में यह लकड़ी काश्मीर हिमालय में मिलती है। इसका प्रयोग मकानों की छतों और फर्श में तख्ताबंदी करने और सस्ते फर्नीचर बनाने में होता है। इसका पेड़ ६१ मीटर से भी अधिक ऊँचा और ६ मीटर तक मोटा होता है।

(ख) मानसूनी वनों की लकड़ियाँ

इन वनों से प्राप्त होने वाली मुख्य लकड़ियाँ ये हैं:—

(१) **सागौन** (Teak) मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और पश्चिमी घाट तथा उड़ीसा से आती है विशेष कर महाराष्ट्र के उत्तरी कनारा और खानदेश तथा मध्य प्रदेश के होशंगाबाद व चाँदा जिले से। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और सुन्दर होती है तथा टिकाऊ होने के कारण इससे रेलगाड़ी के डिब्बे, फर्नीचर और जहाज आदि बनाये जाते हैं।

(२) **साल** (Sal) के वन पंजाब के कांगड़ा से लेकर आसाम के नवगाँव तक हिमालय के निचले ढालों एवं तराई के भागों में विस्तृत हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, छोटा नागपुर, मध्य प्रदेश, उत्तरी मद्रास और उड़ीसा में भी ये वन फैले हैं। यह भूरे रंग की कठोर और टिकाऊ लकड़ी होती है किन्तु यह खुरदरी और टेढ़े रेशे वाली होने से चिकनी देर में होती है। इसके वन ३,००० वर्ग मील में फैले हैं। इसका प्रयोग रेल के डिब्बे, लकड़ी की पेटियां, तम्बू, पुल बनाने और घरेलू कामों में होता है। साल से गंधा-बिरोजा और धूप भी प्राप्त किया जाता है।

(३) **शीशम** (Sisoo) मुख्यतः उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा मद्रास के शुष्क भागों से प्राप्त होती है। कुछ सीमित परिमाण में यह बंगाल, आसाम और मध्य प्रदेश से भी आती है। यह लकड़ी भूरे रंग की होती है अतः साधारणतया कठोर होती है। इसका उपयोग मकान, फर्श तथा फर्नीचर बनाने, सन्दूक और रेल के डिब्बे बनाने में होता है।

(४) **अर्जुन** (Arjun) लकड़ी सागवान से अधिक कठोर और भारी होती है। यह आसानी से चीरी फाड़ी-जा सकती है। अतएव इसका अधिकतर प्रयोग बैलगाडी, नावे और खेती के औजार बनाने में किया जाता है। यह प्रायः सभी जगह बहुतायत से मिलती है।

(५) **हल्दू** (Haldu) साधारणतया मजबूत और कड़ी लकड़ी होती है लेकिन यह आसानी से काटी जा सकती है। इसका रंग बहुक हल्का होता है। यह अधिकतर खिलौने और कंघे बनाने तथा खुदाई करने के काम में ली जाती है। यह लकड़ी प्रायः सर्वत्र ही प्राप्त होती है।

(६) **पलास** (Palas) या ढाक के वृक्ष अधिकतर छोटा नागपुर और द० पू० राजस्थान के अधिकांश भागों में पाये जाते हैं। इनकी पत्तियों पर लाख के कीड़े पाले जाते हैं।

(७) **कुसुम** (Kusum) की लकड़ी बहुत कठोर, भारी और मजबूत होती है। अतः इसका प्रयोग औजारों के दस्ते और पहिये आदि बनाने के काम में होता है। इस पर भी लाख के कीड़े पाले जाते है।

(८) **आबनूस** (Ebony) लकड़ी बहुत काले रंग की किन्तु मजबूत, कठोर और टिकाऊ होती है। यह जगलों में बहुत पाई जाती है। इसका अधिकतर प्रयोग फर्नीचर, छड़ियाँ और छतरियों के दस्ते बनाने में होता है। इस पर खुदाई का काम भी अच्छा होता है।

(९) **महुआ** (Mahua) अधिकतर छोटा नागपुर के पठार, मध्य प्रदेश तथा द० पू० राजस्थान मे बहुत होता है। यह लकडी बहुत मजबूत होती है इसलिये इसके काटने में बड़ी कठिनाई होती है। इसका कच्चा फल पकाया जाता है और तेल निकाला जाता है। पके फल से देशी शराब बनाई जाती है।

(१०) **हर्ड और बहेडा** (Myrabolans) दोनों ही मानसून वनों में बहुत मिलती है। हर्ड दवाई व रंगाई के काम में आती है तथा बहेड़ा बहुत मजबूत होने के कारण पेटियाँ सामान भरने के डिब्बे आदि बनाने के काम में आती है।

(११) **लारेल** (Laurel) लकड़ी बहुत भारी, कड़ी और टिकाऊ होती है। इसलिये यह अधिकतर गाड़ियाँ, खम्बे, खेती के औजार, रेल के डिब्बों की फर्श और स्लीपरों आदि के बनाने के काम में आती है। नुकीले वनों में ये बहुत पाई जाती हैं।

(१२) **अंजन** (Anjan) लकड़ी बहुत ही कठोर, भारी और मजबूत होती है। इसका प्रयोग गाड़ियों के पहिये, हल और मकानों के फर्श बनाने में होता है। यह बहुत कम पाई जाती है।

(१३) **कंजू** (Kanju) लकड़ी न तो इतनी मजबूत और टिकाऊ ही होती है जितनी सागवान किन्तु उत्तरी भारत में विशेषकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बहुत मिलती है। यह अधिकतर सस्ता फर्नीचर, पेटियाँ, दियामलाई की डिब्बियाँ और स्लेटों के चौखटे बनाने के काम में आती है।

(१४) **जारुल** (Jarul) **और सिधू** (Sidhu) लकड़ियाँ उत्तरी पूर्वी भारत विशेष कर बंगाल और बिहार में बहुत होती है। यह काफी मजबूत और टिकाऊ होती है। इनका प्रयोग रेल के डिब्बे, मकान नावें और खम्भे बनाने में होता है।

(१५) **शहतूत** (Mulberry) की लकड़ी बहुत ही मुलायम और टिकाऊ होती है। इसलिये इससे खेल का सामान जैसे हाकी, टेनिस रेकेट, क्रिकेट के बल्ले आदि बहुत बनाये जाते हैं।

(ग) सदा हरे भरे रहने वाले वनों की लकड़ियाँ

इन वनों में भी कई प्रकार की लकड़ियाँ पाई जाती हैं जिनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) **चपलास** (Chaplash)—लकड़ी साधारणतया मजबूत और टिकाऊ होती है। यह अधिकतर उत्तरी पूर्वी भारत में होती है। इससे फर्नीचर, जहाज और सामान भरने की पेटियाँ आदि बनाई जाती है। इस लकड़ी की एक किस्म एनी (Aine) है जो अधिकतर दक्षिणी भारत में मिलती है। यह सागवान की भाँति मजबूत होती है।

(२) **तून** (Toon)—यद्यपि यह लकड़ी अधिक मजबूत नही होती लेकिन काफी टिकाऊ होती है। यह अधिकतर हिमालय पर्वत के निचले ढालों पर मिलती है। फर्नीचर, घरेलू सामान, चाय की पेटियाँ, खिलौने आदि बनाने के काम में आती है।

(३) **रोजवुड** (Rose wood)—फर्नीचर, पेटियाँ, पहिये, डिब्ब और फर्श बनाने के काम में आने वाली लकड़ियों में सबसे अच्छी मानी जाती है। इस प्रकार की लकड़ियाँ पश्चिमी घाट, महाराष्ट्र, मद्रास और केरल में मिलती है।

(४) **गुरजन** (Gurjan)—लकड़ी बहुत मजबूत होती है लेकिन अधिक टिकाऊ नहीं होती। यह अधिकतर बंगाल, आसाम और अडंमान द्वीप में मिलती है। इसका प्रयोग रेल के स्लीपर बनाने और अन्य साधारण कार्यों में होता है।

(५) **तलसुर** (Telsur)—यह लकड़ी बहुत मजबूत कड़ी और टिकाऊ होती है। निकृष्ट से निकृष्ट जलवायु में भी यह जल्दी नष्ट नहीं होती इसलिये इसका प्रयोग अधिकतर पुल बनाने, जहाज, नावों के मस्तूल तथा गाड़ियाँ बनाने के काम में होता है। यह बंगाल, महाराष्ट्र, केरल और अंडमान द्वीप में पाई जाती है।

(६) **नाहर** (Nahar)—यह लकड़ी यद्यपि बहुत मजबूत और कठोर होती है किन्तु इसको काटने में बड़ी कठिनाई होती है। आसाम और पश्चिमी समुद्र तट पर बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। इससे भी लट्ठे, नावें और रेल के स्लीपर बनाये जाते हैं।

(घ) शुष्क वनों से प्राप्त होने वाली लकड़ियाँ ये हैं

(१) **बबूल** (Acacia)—बबूल या कीकर भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में

उपजता है। यह कहीं कांटेदार झाड़ियों के रूप में तो कहीं वृक्षों के रूप में उगता है। बबूल वृक्ष की जाति बड़ी विशाल है। इसके अन्तर्गत ४३० किस्म के वृक्ष होते है जिनमें से भारत में केवल २२ किस्म के वृक्ष पाये जाते हैं। ये अधिकाश मैदानों में होते हैं। दो किस्में १५२४ मीटर की ऊँचाई तक होती हैं। भारतीय बबूल जाति की प्रत्येक किस्म का कुछ न कुछ व्यापारिक महत्व है। परन्तु इसमें तीन किस्में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये हैं: (१) बबूल (Acacia Arabica), (२) कत्था (Acacia Catechu), और (३) कुमटा (Acacia Senegal)। इन वृक्षों की छाल और गोंद बड़े काम की होती है।

सूखी से लेकर हल्की नमी वाली जलवायु तक में यह अच्छी तरह उपजता है। इसी कारण यह समुद्र तट के निकट नहीं होता। बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के तराई वाले क्षेत्रों में भी यह नहीं उपजता। इसके विशेष क्षेत्र उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश और महाराष्ट्र हैं। पंजाब, बंगाल, और मद्रास क्षेत्र इसके अनुकूल न होने पर भी ये वहाँ उपजता है।

बबूल की अनेक किस्में होती हैं पर इनमें तीन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं :—

(१) **तेलिया बबूल**—इसे गोड़ी और तेली भी कहते हैं। यही साधारणतया सर्वत्र दिखाई देता है। यह एक साधारण आकार का वृक्ष होता है जिसका छोटा सा तना और मुलायम पत्तियाँ होती हैं।

(२) **कौड़िया बबूल**—इसका तना और भी छोटा और छाल अधिक खुरदरी होती है। यह अधिकांशतः बरार और खानदेश में उपजता है। इसकी लकड़ी जलाने के काम आती है।

(३) **रामकांटा**—इसकी डालियाँ ब्रुश की तरह फैली होती है। यह पंजाब, राजस्थान और दक्षिण भारत में उगता है। इसका नाम रामकांटा या रामकांटी होने के कारण बरार में लोग इसे जलाने के काम नहीं लाते।

बबूल के वृक्ष की छाल सबसे महत्वपूर्ण वस्तु होती है। भारत में इसे चमड़ा कमाने के काम में लाया जाता हैं। पंजाब से बंगाल तक के चमड़ा कमाने वाले कारखाने इसका उपयोग करते हैं। कानपुर के कारखानों में इसकी सबसे अधिक खपत होती है। बबूल की छाल से कमाया हुआ चमड़ा मजबूत और टिकाऊ होता है परन्तु वह सख्त और गहरे रंग का होता है। इसलिये बबूल की छाल भारी चमड़े के लिये तो अच्छी सिद्ध होती है परन्तु मुलायम चमड़ों के लिये उपर्युक्त नहीं होती।

बबूल की छाल में खांचा कर देने से जो रस बहता है वही जमकर गोंद बन जाता है। यह रस मार्च से मई तक विशेषतः निकलता है। इसका औसत कुछ छटांक ही होता है परन्तु किसी-किसी पेड़ से एक सेर तक गोंद निकल जाता है। पेड़ के पुराने होते जाने पर गोंद भी कम निकलने लगता है। गोंद का रंग हल्के पीले से लेकर एक ओर भूरा तक और दूसरी ओर एकदम काला तक होता है। पानी में यह घुल जाता है। काले रंग के गोंद में टेनीन होती है और वह पानी में कम घुलता है।

अच्छी किस्म का बबूल का गोंद कपड़े की छपाई और रंगाई में काम आता है। कागज बनाने में भी यह प्रयुक्त होता है। घी में भूनकर उसे खाया जाता है परन्तु अंग्रेजी ढंग की मिठाइयाँ बनाने के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होता है। देशी दवाइयों में अनेक प्रकार से यह काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त दिया-

सलाइयां, स्याही, रग और रंगलेप बनाने के लिये यह बड़े काम का प्रमाणित हुआ है।

इस समय देश में मुख्यतः तीन प्रकार के गोंद का व्यापार होता है :—

(१) **शुद्ध अरबी गोंद**—यह अधिकांश में अरब और अफ्रीका से आता है।

(२) **पूर्वी भारतीय गोंद**—यह भी अदन और लाल सागर के अन्य वन्दरगाहों से आता है। महाराष्ट्र में इसे चुन कर और साफ करके पैक किया जाता है और यूरोप तथा अमेरिका को निर्यात कर दिया जाता है।

(३) **शुद्ध भारतीय गोंद**—यह अधिकांश में भारत में ही निकलता है और इसमें बबूल तथा अन्य पेड़ों के गोंद मिले होते हैं।

बबूल की लकड़ी मजबूत और चीचड़ होती है। सूखने पर इसका भार ५१ पौंड प्रति घनफीट होता है। सागौन से यह दुगनी कठोर होती है। इसके भीतरी भाग में जल्दी ही घुन नहीं लगता। परन्तु बाहरी भाग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। देहातों में गाड़ियाँ और खेती के औजार बनाने मे यह बहुत प्रयुक्त होती है। तेल और गन्ना पेरने के कोल्हू, कुएं से पानी निकालने के रेंहट, तम्बुओं के खूँटे, नावों के डांड आदि भी इससे बनाये जाते है। हथोड़ों के बेंट भी इसके अच्छे बनते हैं।

बबूल से कुछ अन्य कार्य भी लिये जाते हैं। छाल, पत्तियों और सीगांरियों को पका कर सूती तथा रेशमी कपड़ा रंगा जाता है। कुछ अन्य रासायनिक पदार्थो को इनमें मिलाकर काले, कत्थई अथवा खाकी रंग तैयार हो जाते है। इसके कांटे मछली मारने के काम आते हैं और गत महायुद्ध में आलपीनों का अभाव हो जाने पर इन कांटों का उनके स्थान पर प्रयोग किया गया था। बबूल की छांह से खेती को हानि नहीं पहुंचती है। अतः इसे खेतों के निकट उगाने में सुविधा रहती है।

(२) **कत्था**—कत्था खैर वृक्ष की भीतरी कठोर लकड़ी से निकाला जाता है। खैर का वृक्ष अधिक बड़ा नहीं होता। उपयुक्त धरती आदि प्राप्त हो जाने पर इसके गोल तने का घेरा १½ मीटर तक और ऊँचाई ९ मीटर तक हो जाती है। सामान्यतः इसके तने का घेरा १ मीटर और ऊँचाई २-३ मीटर होती है। इसकी गहरी भूरी कत्थई छाल लगभग १/२ इंच मोटी होती है। यह लम्बी पट्टियों के रूप में उतरा करती है।

खैर का वृक्ष सिंधु नदी से लेकर आसाम तक और नीचे समस्त भारतीय प्रायद्वीप मे पाया जाता है। शुष्क भू-भागों में यह वृक्ष बहुतायत से होता है। ब्रह्मा से निचले पहाड़ी जंगलों में भी यह पर्याप्त संख्या में पाया जाता है।

खैर की तीन प्रमुख किस्में हैं। **पहली किस्म** मुख्यतः पंजाब, गढ़वाल, कुमायूं, बिहार, उतरी कन्नड़ और गंजाम में पायी जाती है। उतरी भारत में खैर की इसी किस्म से कत्था निकाला जाता है।

दूसरी किस्म का खैर अधिकतर सिक्कम की तराई, आसाम, और थोड़ा सा मैसूर और नीलगिरी की पहाड़ियों में पाया जाता है।

तीसरी किस्म भारतीय प्रायद्वीप में अधिक पैदा होती है। दक्षिणी भारत में इसी तीसरी प्रकार के खैर से कच तैयार किया जाता है।

हमारे देश में प्रायः दो प्रकार का कत्था देखने में आता है। इनमें से एक का रंग गहरा होता है और बाजार में छोटे बड़े टुकड़ों अथवा वर्गाकार खण्डों के रूप में बिकता है। इसको प्रायः **कत्था** कह कर पुकारा जाता है। दूसरे प्रकार का कत्था अपेक्षाकृत गहरे रंग का होता है। और प्रायः टुकड़ों छोटे, घनाकार खण्डों या सिल्लियों के रूप में दिखाई देता है। इसका नाम **कच** है। कच केवल उद्योगों में काम आता है। इसका उपयोग रंगाई के लिये भी किया जाता है और संरक्षक तत्व (Preserving Agent) के रूप में भी। इसमें टैनीन की मात्रा पर्याप्त होती है।

कत्था खैर वृक्ष के तने की भीतरी कठोर लकड़ी को पानी में उबाल कर निकाला जाता है। वृक्षों से प्राप्त होने वाला कत्थे और कच की मात्रा उनकी आयु और गहराई पर निर्भर करती है। अतः कत्था निकालने के लिये प्रायः वे ही वृक्ष अधिक उपयुक्त समझे जाते है जिनकी आयु २०-३० वर्ष की हो चुकी हो और जिनके तने की मोटाई लगभग ०·६ मीटर हो। छोटे वृक्षों के तने ०·६ से ६ मीटर के रूप में काट लिये जाते है। फिर छाल और उसके नीचे की कच्ची लकड़ी छील कर अलग कर देते हैं। इसका प्रयोग ईंधन के तौर पर होता है।

भारत में खैर से कत्था निकालने का कार्य अत्यन्त प्राचीन काल से होता रहा है। देश के कुछ भागों, उदाहरणार्थ उड़ीसा और गुजरात में तो कुछ जाति विशेष के लोग पीढ़ियों से यही कार्य कर रहे है। कत्थे का अधिकांश उत्पादन अब भी ग्रामीणों के छोटे-छोटे दलों द्वारा और लगभग पुराने तरीकों से ही किया जा रहा है।

कत्था पान का अनिवार्य अंग है परन्तु इसके कुछ अन्य उपयोग भी है। अनेक रोगों उदाहरणार्थ गला, मुँह, मसूड़ों के ढीले पड़ जाने और खाँसी तथा दस्तों आदि में इसका प्रयोग दवाई के तौर पर भी किया जाता है। फोड़े पर भी इसे लगाते हैं। काला कत्था, टिंचर और चूर्ण के रूप में बरता जाता है।

कच का प्रयोग मुख्यतः रुई और रेशम की रंगाई और कपड़ों की छपाई के लिये किया जाता है। साधारण परिमाण में इसका प्रयोग मछली पकड़ने के जालों, नावों के पालों और डाक के थैलों आदि को रंगने के लिये किया जाता है। कच दूसरे रंगों के साथ मिला कर भी इस्तेमाल किया जाता है। कच से रंगे जाने वाले पालों का रंग पक्का होता है और समुद्री पानी का भी उन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। कच से रंगे कपड़े पर फफूंद भी कम लगती है। पटसन को यदि कच और पोटेशियम बाइक्रोमेट में भिगो लिया जाय तो वह आसानी से सड़ता नहीं। कच का उपयोग कागज, लुग्दी और कागज की रंगाई के लिये किया जा सकता है। नवीन अन्वेषणों से यह सिद्ध हुआ है कि कत्थे में से निकली गयी ऐकाकौटेचीन मूंगफली के तेल को बिगड़ने से रोकने के लिये काम में लायी जा सकती है।

खैर की लकड़ी भी बहुत अच्छी और कीमती होती है। यह मजबूत भी होती है और टिकाऊ भी। इसमें दीमक नहीं लगती। इस लकड़ी पर पालिश बहुत अच्छी तरह हो जाती है। मकानों के खम्भों, तेल अथवा गन्ने का रस निकालने वाले यन्त्रों, हलों और नौकाओं आदि के निर्माण के लिये यह लकड़ी विशेषतः उपयुक्त सिद्ध होती है। औजारों के दस्ते भी इस लकड़ी से बहुत अच्छे बनाये जा सकते हैं। इसका प्रयोग ईंधन के रूप में भी किया जाता है। इस लकड़ी से प्राप्त होने वाला

कोयला बहुत अच्छी किस्म का होता है। यह लकड़ी बंगाल, आसाम और दक्कन में बहुतायत से पाई जाती है।

भारत में कत्थे का उत्पादन अधिकतर छोटे पैमाने पर ही किया जाता है। परन्तु बरेली में इसका एक बहुत बड़ा कारखाना भी है। यहाँ कत्था और कच बहुत बड़े पैमाने पर तैयार किये जाते है। यहाँ उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में मशीनों का प्रयोग होता है। गवालियर में प्रतिवर्ष लगभग ४०० टन कत्था तैयार होता है। कत्था उत्पादन के अन्य प्रमुख केन्द्र उड़ीसा, बरार और गुजरात हैं।

(३) **रीठा**—रीठे की काँटेदार बेल होती है जो पास की झाड़ियों आदि पर चढ़ती है। यह भारत के उन जंगलों मे होती है जो उष्ण कटिबंध में पड़ते हैं। यह विशेष रूप से दक्षिण में होता है। रीठें की एक बौंडी में ६ से लेकर १० रीठें तक होते है। जब रीठा सूख जाता है तो इसके ऊपरी भाग का रंग बादामी हो जाता है और कुछ सिकुड़ने पड़ जाती है। इसका उपयोग बाल धोने में किया जाता है।

(४) **कुमरा**—बबूल वंश का तीसरा महत्वपूर्ण वृक्ष कुमरा है। इसका पेड़ काँटेदार होता है लेकिन ऊँचाई में ३ मीटर से लेकर ४½ मीटर तक ही होता है। पेड़ की मोटाई भी ०.३ मीटर से लेकर ०.६ मीटर तक ही होती है। इसकी छाल नरम तथा रंग में पीली सी होती है। इसके सफेद फूलों में खुशबू भी होती है।

कुमरा गुजरात के शुष्क पहाड़ी भागों, दक्षिणी पूर्वी पंजाब, अरावली की उत्तरी पहाड़ियों तथा राजस्थान के कुछ भागों में उगता है।

कुमरा से ही असली गोंद निकलता है। भारत में अन्य जातियों के बबूलों के गोंदों को इसके गोंद में मिलाया जाता है। इस गोंद को अधिकतर दवाओं के काम में लाया जाता है।

बकरियाँ और ऊँट उसकी पत्तियाँ बड़े ही आनन्द से खाते हैं। इसके तने की लकड़ी से बुनकरों के शटल बनाये जाते हैं। इसकी लकड़ी जलाने के लिये भी बड़ी अच्छी होती है।

(५) **कीकर**—सफेद कीकर का वृक्ष २ से ३ मीटर ऊँचा तथा ३ इंच मोटा हुआ करता है। यह पेड़ शुष्क प्रदेशों में खूब होता है। भारत में यह पजाब के मैदानों में तथा दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क इलाकों में पाया जाता है। इसका एक इंची कांटा सीधा, सफेद रंग का और बड़ा मजबूत होता है। इसकी छाल ऊपर से बादामी और सफेद रंग की होती है। अन्दर से इसका रंग हल्का लाल होता है।

इसकी लकड़ी भारी तथा टेढ़ी-मेढ़ी होती है। लकडी का ऊपरी भाग पीले रंग से लेकर सफेद रंग तक का होता है और भीतरी भाग ईट की तरह लाल। यह लकड़ी बहुत अधिक नहीं चलती है क्योंकि इसके ऊपरी भाग में घुन जल्दी लग जाता है। जब यह लकड़ी सूख जाती है तो इसे चीरना बहुत कठिन होता है। लकड़ी का भीतरी भाग या पक्की लकड़ी बड़ी मजबूत तथा सख्त होती है। यह सामान्यत: खेती के औजार बनाने में, तेल पेरने के कोल्हुओं में, गाड़ियां बनाने तथा गाड़ी के पहिये बनाने में अधिक काम आती है।

इसकी छाल का चमड़ा कमाने में प्रयोग किया जाता है। देहरादून की सफेद कीकर की छाल में ९ प्रतिशत और मैसूर के पेड़ की छाल में २१ प्रतिशत टैनीन

होता है। इसे पीटने से एक प्रकार का रेशा निकलता है जिसे मछली पकड़ने का जाल बनाने और घटिया किस्म के रस्से बनाने के काम में लाया जाता है। कहते है कि चीनी और ताड़ी से शराब बनाते समय सफाई के लिये इसे प्रयोग किया जाता है। इसलिये इसे **शराब की कीकर** भी कहा जाता है।

इसका गोंद देशी दवाइयों में प्रयोग किया जाता है। सींगरियां तथा बीजों को खाया जाता है और अन्न के अकाल में सफेद कीकर की छाल पीस कर आटे में मिलायी जाती है।

(२) गौण उपजें (Minor Products)

अन्य उपयोगी वस्तुयें जो वनों से प्राप्त होती हैं वे बबूल, आम, बेंत अनेक प्रकार के रेशे, गोंद, राल, बिरोजा, चमड़ा रंगने की छालें आदि हैं। ये सभी भागों में उपलब्ध होती हैं। भारतीय वनों में लगभग ३,००० से भी अधिक किस्म की गौण वस्तुयें प्राप्त होती हैं।[6]

नीचे की तालिका में मुख्य गौण उपजों का उत्पादन मूल्य बताया गया है :—

गोण उपज	१९४९–५०	१९६१–६२
बांस और बेंत	००·३	१३४·५
रेशे आदि	०·४५	०·८२
गोंद और बेरोजा	१३३·७	१२५·६
अन्य गौण उपजें	४३७·३	५९३·१
योग	५६७·९	८५४·२

लाख (Shellac)

भारत ही संसार में एक ऐसा देश है जो लाख उत्पन्न करता है। **लैसीफर लक्का** (Laccifer Lacca) या **लैक-बैग** (Lac Bag) नामक खटमल की जाति के कीड़े कुछ पेड़ों के रस को चूस कर लाख बनाते हैं। ये कीड़े अधिकतर कुसुम, बरगद, सिरस, खैर, अरहर, रीठा, घोंट, सीसू, क्रोटन, पीपल, बबूल, गूलर और पलस आदि की नरम डालों के रस चूस कर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकालते हैं इसे ही लाख कहते हैं। ये वृक्ष विशेषतः बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, व उत्तर प्रदेश में पैदा होते हैं। लाख का कीड़ा प्रधानतः समुद्रतल से ३०५ मीटर ऊँचे भागों में जहाँ साधारण तापक्रम और १५२ सें० मीटर से कम वर्षा होती है। बहुत से स्थानों पर तो लाख पेड़ों पर जंगली अवस्था में पाई जाती है। लेकिन जिन स्थानों में लाख का कीड़ा बिना पाले हुये अवस्था में मिलता है वही स्थान लाख के लिये अनुकूल समझा जाता है अधिकतर लाख को उत्पन्न करना पड़ता है। लाख पैदा करने के लिये ऊपर के पेडों में छोटी-छोटी लकड़ियाँ बांध दी जाती हैं जिनमें लाख के कीड़ों के बीज होते हैं। ये कीड़े धीरे-धीरे सारे पेड़ पर फैल

6. Third Five Year Plan, 1961, p. 365.

जाते हैं। जून, जुलाई, अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में नये पेड़ों पर लाख का कीड़ा फैलाया जाता है। यह उन पेड़ों का रस चूस कर लाख बनाना आरम्भ कर देता है। फसल छः महीने के पश्चात् इकट्ठी कर ली जाती है। इस लाख को पीस कर चलनियों में छाना जाता है उस लाख को कई बार धोकर **शुद्ध लाख** (Shellac) **दाना लाख** (Seed Lac) या **बटन लाख** (Button Lac) प्राप्त की जाती है।

भारत लाख का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। भारत में लाख उत्पादन के महत्वपूर्ण क्षेत्र निम्नलिखित हैं :—

(i) **बिहार**—छोटा नागपुर डिवीजन (जहाँ भारत में उत्पादित कुल लाख के ५०% भाग से अधिक का उत्पादन होता है); संथाल परगने और गया के जिले।

(ii) **मध्य प्रदेश**—बिलासपुर, भंडारा, रायपुर, बालाघाट, छिंदवाड़ा, जबलपुर, सरगूजा, मांडला, रायगढ़, उमरिया, शेहडोल और होशंगाबाद जिले।

(iii) **पश्चिमी बंगाल**—मुर्शिदाबाद, मालदा और बांकुड़ा के जिले।

(iv) **आसाम**—खासी और जैंतिया की पहाड़ियाँ, गारो की पहाड़ियाँ, नौगाँव, कामरूप और शिवसागर के वन्य जिले।

(v) **उड़ीसा**—सम्बलपुर, मयूरभंज, बोलंगिर, ढेंनकनाल और क्योंनभार जिले।

(vi) **गुजरात**—पंच महल और बड़ौदा जिले।

(vii) **उत्तर प्रदेश**—मिरजापुर और डुढ़ी।

लाख की फसलें (Lac Crops)

एक वर्ष में लाख की चार फसलें प्राप्त हो जाती हैं। ये फसलें वर्ष के जिन महीनों में काटी जाती हैं उन्हीं के अनुसार इनको भी सम्बोधित किया जाता है। **रंगीनी** अंशु (Strain) बेर और पलास के वृक्षों से प्राप्त होने वाली फसलों को **बैसाखी** और **कतकी**; 'कुसुम' वृक्षों पर 'कुसुम' अंशु से प्राप्त होने वाली फसलें **अगहनी** और **जेठवी** के नाम से पुकारी जाती हैं।

इन सबमें 'बैसाखी' फसल सबसे बड़ी होती है। व्यवसायिक दृष्टि से इसी का महत्व अधिक होता है। भारत के कुल उत्पादन में 'रंगीनी' फसलों—अर्थात् 'बैसाखी' और 'कतकी' का भाग क्रमशः ६२ और २३% है तथा 'कुसुम' फसलों—'जेठवीं' और अगहनी—का भाग १५% होता है।

बैसाखी फसल का ६३% भाग बिहार; १९% मध्य प्रदेश और शेष अन्य राज्यों से प्राप्त होता है।

कतकी फसल के कुल उत्पादन में बिहार और मध्य प्रदेश का भाग क्रमशः ४२ और ३४% होता है। शेष अन्य राज्यों से प्राप्त होता है।

जेठवी फसल का ७०% बिहार; १८% मध्य प्रदेश और शेष अन्य राज्यों से मिलता है।

अगहनी फसल का ७५% भाग बिहार और १५% भाग मध्य प्रदेश तथा शेष अन्य राज्यों से मिलता है।

लाख के उत्पादन का अधिकांश भाग निर्यात कर दिया जाता है लगभग ६५ प्रतिशत भाग । यह निर्यात मुख्यतः अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, हांगकांग, इटली, फ्रांस, जापान, चीन, स्वीडेन, ब्राजील, अर्जेनटाइना और रूस को होता है। भारत विदेशों से --विशेषतः थाइलैंड और मलाया से- लाख का आयात भी करता है उससे चपड़ा या बटन लाख बनाकर पुन. निर्यात कर देता है। भारत से लाख का निर्यात मुख्यतः दाना लाख और चपड़े के रूप में होता है किन्तु कच्ची लाख, कीरी लाख और रद्दी लाख का भी निर्यात किया जाता है।

लाख का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह मद्यसार (alcohal) को छोड़ कर अन्य सामान्य द्रवों में नहीं घुलता। यह एक विद्युत निरोधक तत्व (insulator) भी है। इन्हीं दोनों कारणों से लाख का उपयोग अनेक प्रकार की वस्तुयें बनाने में किया जाता है। जैसे :

चिपकने वाले विद्युत निरोधक पदार्थ के रूप में चपड़े का उपयोग विद्युत तारों की खोल में तथा विद्युत शक्ति मोटरों की रक्षा करने में किया जाता है।

यह काँच से काँच को अथवा काँच को धातु से जोड़ देने की क्षमता रखता है अतएव बिजली के बल्ब और रेडियो तथा टैलीविजन ट्यूब तैयार करने मे भी चपड़े का उपयोग किया जाता है।

चपड़ा पैट्रोलियम टरपैंटाइन अथवा पैट्रोलियम जनित अन्य द्रवों में नहीं घुलता। लौह-क्षार से इसे मिश्रित कर ऐसा लाल रंग तैयार किया जाता है जिसका उपयोग तेलवाहक टैंकरों के भीतरी भाग को रंगने के लिए किया जा सकता है जिससे टैंकरों की दीवार की धातु पर पैट्रोलियम का कोई प्रतिकूल रसायनिक प्रक्रिया नहीं होती।

छपाई और प्रकाशन व्यवसाय में चपड़े का उपयोग बहुत होता है। फोटो-एंग्रेवर रंगीन फोटो-प्लेटें बनाने के लिए इसका उपयोग करते हैं। पत्रिकाओं के ऊपर के 'सिल्क पेपर' की चमक भी इसी से लाई जाती है। चूँकि यह तुरंत सूख जाता है अतएव छपाई के लिए प्रयुक्त होने वाली स्याही में भी इसका उपयोग होता है।

खिलौने के निर्माता भी चिपकाने के लिए अथवा मढ़ने के लिए लाख और चपड़े का उपयोग करते है। फैल्ट-हैटों को कड़ा करने में भी चपड़े का उपयोग किया जाता है। वायुयान के निर्माता मोटर निर्माण घिसाई करने वाले उपकरणों, जहाजों एवं सिलिंग-वैक्स इत्यादि के निर्माता भी इसका उपयोग करते हैं।

लकड़ी की छिद्रों और दरारों को भरने तथा उन पर सुन्दर चमक लाने के लिए; मूल्यवान चित्रों को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने के लिए उत्कृष्ट कोटि के फ्रांसीसी चपड़े का कोट कर दिया जाता है।

भारत में लाख का उपयोग लेपन उद्योग (Coating industry) में बहुत अधिक होता है। इस क्षेत्र में यह प्रायः सजावट अथवा सुरक्षित रखने के लिए विविध प्रकार की वार्निशों और सुनहरी वार्निशों आदि पदार्थों के रूप में प्रयोग किया जाता है। जिन उद्योगों में लाख का प्रयोग अधिक होता है इनमें से कुछ मुख्य ये हैं:—दवाइयाँ, नाखूनों पर लगाने का पालिश, डैंटल-प्लेट; आतिशबाजी और युद्ध-सामग्री, चूड़ियाँ,जवाहरात की जड़ाई,बरतनों आदि पर लेप करना,चिकनाई रोक कागज,शीशे

के लिए लेप, मोम की रंगीन पेंसिलें बनाना, ऐनकों के फ्रेम, ग्रामोफोन-रेकार्ड, चपड़ी, मोमजामा, बिजली निरोधक कपड़ा, मुहर लगाने का चपड़ा, माइकेनाइट उद्योग आदि ।

चमड़ा कमाने के पदार्थ (Tanning Materials)

भारतीय वनों में ऐसे बहुत से वृक्ष हैं जिनकी छाल या फल चमड़ा कमाने के काम आते हैं । हर्ड, बहेड़ा और आंवला इनमें मुख्य हैं । इनके अतिरिक्त आंवल, टीमरू, बबूल, तुरवद, मैंग्रोव, कच्छ तथा गैम्बीयर वृक्षों की छाल, चमडा कमाने के लिये विशेष उपयोगी है ।

वैटल (Wattal)—यह वृक्ष पहले दक्षिणी आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया में होता था । भारत में १८४० में इसे लगाया गया था । उस समय यहाँ ईंधन की कमी थी, उसी की पूर्ति के लिये इसे लगाया गया था । यह १५२४ मीटर से लेकर २१३३ मीटर की ऊँचाई वाले स्थानों में ही उगता है जहाँ कि सारे साल में कम से कम १५० सें०मी० वर्षा अवश्य हो । यह नीलगिरी पर्वत पर तथा केरल में पैदा होता है । इसकी छाल में ३५ प्रतिशत टैनीन होता है । इसमें चमड़ा कमाने के वे सब गुण विद्यमान हैं जो आयात की हुई छाल में होते हैं ।

कागज की लुब्दी (Paper Pulp)--कागज बनाने के लिये प्रयोग की जाने वाली लुब्दी भिन्न-भिन्न प्रकार की नरम लकड़ियों (स्प्रूस, चीड़ आदि), घासों—सबाई, भावर बैब और हाथी घास तथा अन्य वन पदार्थों से तैयार की जाती है । हाथी घास विशेष कर बंगाल, आसाम और उत्तर प्रदेश में और अन्य उपरोक्त घासें छोटा नागपुर, उड़ीसा, नैपाल, उत्तर-प्रदेश और तराई में मिलती है ।

दियासलाई की लकड़ी—दियासलाई बनाने के लिये सेमल, मुरकत, धूप, पपीता, आम, सुन्दरी, सलाई आदि वृक्षों की लकड़ी काम में ली जाती है । ये वृक्ष उत्तर भारत के वनों में बहुत पाये जाते हैं ।

गोंद की राल (Gum Resin)—यह उन वृक्षों से प्राप्त होती है जो सभी शुष्क उष्ण-कटिबन्धीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं । इसका वृक्ष बिहार, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, आसाम आदि में खूब होता है ।

घासें (Grasses)—भारत के कई भागों में सुगन्धित घासें पाई जाती हैं । इनसे दवाइयों के काम का तेल प्राप्त किया जाता है ।

(क) रोशा तेल की घास—महाराष्ट्र, दक्षिणी भारत और मध्य प्रदेश के शुष्क भागों व गर्म प्रदेशीय भागों में बड़े महत्व की होती है । इससे खुशबूदार तेल बनाया जाता है ।

(ख) अगिनघास (Lemon Grass)—सुगंधित द्रव्यों को तैयार करने में अगिनघास तेल काम में लाया जाता है । यह तेल केरल में बनाया जाता है । भारत में इस तेल का अनुमानित वार्षिक उत्पादन ८०० टन से कुछ अधिक ही है, जिसकी कीमत लगभग २ करोड़ रु० बैठती है । भारत में उत्पादित यह समस्त तेल मुख्य रूप से अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस को निर्यात किया जाता है । कुछ तेल जर्मनी को भी जाता है । इसका उपयोग विटामिन "ए" बनाने में भी होने लगा है । कभी-कभी मच्छर निरोधक लेप (क्रीम) और दर्द का मलहम भी तैयार किया जाता है । अगिनघास भारत में नैसर्गिक रूप से पैदा होती है ।

अध्याय २१

भारत में कृषि उत्पादन

(CROP PRODUCTION IN INDIA)

कृषि भारतीय अर्थ-व्यवस्था का आधार है। हमारी ७० प्रतिशत जन-संख्या भूमि पर निर्भर है और हमारी ५१ प्रतिशत राष्ट्रीय आय कृषि एवं उससे सम्बन्धित क्रियाओं से प्राप्त होती है। कृषि उत्पादन पर्याप्त मात्रा में निर्यात होता है, जिससे हमें विदेशी विनिमय प्राप्त होता है। शक्कर और वस्त्र उद्योग जैसे महत्वपूर्ण उद्योग कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर ही आधारित हैं। लाख के उत्पादन में तो भारत को लगभग एकाधिकार है तथा चाय और मूंगफली के उत्पादन में विश्व में सर्व प्रथम है। संसार के चावल, जूट, गन्ना-कपास आदि के उत्पादन में भारत का स्थान दूसरा है।

भारत का सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल ३२·२४ करोड़ हैक्टेअर है, जिसमें से ३·२ करोड़ हैक्टेअर भूमि के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं होती। केवल २९ करोड़ हैक्टेअर अथवा ८९ प्रतिशत भूमि के उपयोग के आँकड़े उपलब्ध हैं। सन् १९५०-५१, १९५५-५६ और १९६०-६१ में भूमि का वर्गीकरण इस प्रकार था :—

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
		(करोड़ हैक्टेअर में)	
भौगोलिक क्षेत्रफल	३२·२४	३२·२४	३२·२४
उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार क्षेत्रफल	२८·१०	२८·९२	२९·००
वन प्रदेश	४·००	५·०९	५·२
वह भूमि जो कृषि के लिए उपलब्ध नहीं है	४·६८	४·६४	६·६४
(१) अन्य उपयोग में	१·१०	१·३२	१·३२
(२) बंजर तथा अयोग्य भूमि	३·५८	३·३२	३·३२
परती भूमि को छोड़ कर वह भूमि जिस पर कृषि नहीं होती	४·८९	३·९३	३·९३
(१) स्थायी चरागाह आदि	०·६६	१·२७	१·२८
(२) झाड़ झंखाड़ आदि	१·९६	०·५७	०·५६
(३) कृषि योग्य बंजर	२·२६	२·०९	२·१९

परती भूमि	२·५७	२·६०	५·६०
(१) वर्तमान	०·८५	१·२८	२·८०
(२) अन्य	१·७२	१·३२	२·८०
वह क्षेत्र जिस पर खेती की जाती है	२९·३४	१२·७०	१३·००
कुल भूमि जिस पर फसल काटी गई	३२·५९	१४·३७	१५·००
एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	३·२५	१·६६	२·००

उक्त आंकड़ों से पता चलता है कि वन प्रदेश और परती भूमि को मिलाकर लगभग ५० प्रतिशत भूमि कृषि के लिए उपलब्ध नहीं है। बोये जाने वाले क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। लगभग १५ प्रतिशत भूमि ऐसी है जो परती है, किन्तु जिस पर सुधार करके कृषि की जा सकती है। यद्यपि बोये गये क्षेत्रफल में वृद्धि प्रतीत होती है, किंतु गत तीस वर्षों में प्रति व्यक्ति बोये गये क्षेत्रफल में कमी हुई है, क्योंकि क्षेत्रफल के अनुपात में जन-संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। भारत में प्रति व्यक्ति पीछे बोया गया क्षेत्रफल लगभग ०·८२ एकड़ ही है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में २·६८ एकड़, रूस में २·५९ एकड़ और इंगलैंड में ०·४२ एकड़ है।[1]

फसलों का सापेक्षिक महत्व

भारत में उत्पादित कृषि पदार्थों की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं :—

(अ) फसलों की विविधता।

(ब) अखाद्य फसलों की अपेक्षा खाद्य फसलों की अधिकता।

८२ प्रतिशत भूमि पर खाद्य पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं, जबकि व्यापारिक फसलें केवल १८ प्रतिशत भूमि पर उत्पन्न होती हैं। ऐसा अनुमान है कि प्रथम योजना के अन्त में २७·४ करोड़ एकड़ भूमि पर और १९५९-६० में २७·८ करोड़ एकड़ भूमि खाद्य पदार्थ, गन्ना, तम्बाकू, दालें आदि उत्पन्न की जाती थीं और अखाद्य फसलें तेल के बीज, चाय आदि का उत्पादन केवल ८·४ करोड़ एकड़ भूमि पर होता था। नीचे की तालिका में मुख्य फसलों का क्षेत्रफल एवं उत्पादन बताया गया है :—

भारत में कृषि उत्पादन

	१९५०-५१		१९५५-५६		१९६२-१९६३	
उपज	क्षेत्र० (०००हैक्टेअर्स में)	उत्पादन (००० मीट्रिक टनों में)	क्षेत्र (००० है० में)	उत्पा० (००० मी० टन)	क्षेत्र० (००० है० में)	उत्पा० (००० मी० टन)
चावल	३०८१२	२०५७५	३१५२२	२७५५६	३४७८७	३२०१८
ज्वार	१५५७२	५४९५	१७३६३	६७२५	१७७४८	९३३९

1. Third Five Year Plan, p. 184.

बाजरा	९०२३	२५९५	११३३९	३४२८	१०७१२	३८६२
मकई	३१६०	१७२९	३६९९	२६०२	४५७९	४५२०
रागी	२२०३	१४२९	२३०७	१८४६	२३३१	१९१४
छोटे अनाज	४६०५	१७५०	५३३६	२०७०	४६८३	१८४१
गेहूँ	९७४६	६४६२	१२३६७	८७६०	१३४५७	११९३१
जौ	३११३	२३७७	३४१८	२८१५	३०३४	२४७४
चना	७५७०	३६५०	९७८०	५४१८	९१९३	५७२७
तूर	२१८१	१७१९	२२८७	१८६१	२३६३	१५३९
अन्य दालें	९३४१	३०४१	१११५०	३७६६	११६८८	४३८४
योग खाद्य पदार्थ	९७३२६	५०८२२	११०५६५	६६८४७	११४३२२	७९८२३
मूंगफली	४४९४	३४८१	५१३४	३८६२	६४१४	४७५७
रेंडी	५५५	१०३	५७२	१२५	४४८	१०३
तिल	२२०४	४४५	२२९३	४६७	२२५१	३७२
राई-सरसों	२०७१	७६२	२५५६	८६०	३१२७	१२९९
अलसी	१४०३	३६७	१५२९	४२१	१८८३	४२७
कपास[2]	५८८३	२९१०	८०८५	३९९२	७९७३	५२४७
जूट[3]	५७१	३२८३	७०४	४१९८	९१४	६२६९
मैस्टा[4]	—	—	२३१	११५३	३८५	१७०५
आलू	२४०	१६६०	२८०	१८५९	३६९	२७६७
गन्ना	१७०७	५७०५१	१८४७	६०५४०	२२९१	९१०५
तम्बाकू	३५७	२६१	४१०	३०३	४०९	३४४

खेती के प्रकार (Systems of Cultivation)

देश की प्राकृतिक दशा, जलवायु तथा मिट्टी आदि में भिन्नता होने के कारण भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की खेती होती है। खेती की निम्न मुख्य पद्धतियाँ यह हैं :—

(१) **तर खेती** (Wet Cultivation)—विशेषतः काँप मिट्टी के उन भागों में की जाती है जहाँ साधारणतया वर्षा २०० सें० मीटर से ऊपर होती है जैसे :—मध्य और पूर्व हिमालय-प्रदेश, दक्षिणी बंगाल, मलावार तट आदि में। इन

---

2. एक गांठ में १७७·८ किलोग्राम कपासः १००० गांठों में
3. एक गांठ में १८१·४ किलोग्रामः १००० गांठों में
4. ,, ,, ,,

भागों में एक से अधिक बार भूमि से कृषि उत्पादन प्राप्त किया जाता है। यहाँ बिना सिंचाई के ही खेती द्वारा गन्ना, चावल, जूट आदि की फसलें उत्पन्न की जाती हैं।

(२) **आर्द्र खेती** (Humid Farming)—भारत में विशेष कर काँप मिट्टी और काली मिट्टी के प्रदेशों में की जाती है, जहाँ वर्षा १०० से २०० सें० मी० के बीच होती है। ऐसे भाग मध्यवर्ती गंगा का मैदान और मध्य प्रदेश हैं जहाँ प्रायः दो फसलें पैदा की जाती है। कभी-कभी जायद फसलें भी उत्पन्न कर ली जाती है।

(३) **सिंचाई द्वारा खेती** (Irrigation Farming)—उन प्रदेशों में की जाती है जिनमें ५० से १०० सें० मीटर तक वर्षा हो जाती है। ऐसे भाग गंगा का पश्चिमी मैदान, उत्तरी मद्रास और दक्षिण भारत की नदियों के डेल्टा प्रदेश हैं। यहाँ सिंचाई के द्वारा गेहूँ, चावल, गन्ना आदि फसलें पैदा की जाती हैं। किन्हीं क्षेत्र में दो और किन्हीं में एक फसल पैदा की जाती है।

चित्र १४१. भारत में विभिन्न प्रकार की कृषियाँ

(४) **शुष्क खेती** (Dry Farming)—भारत के उन भागों में जहाँ वर्षा सैं० मीटर से भी कम होती है वहाँ ऐसी खेती की जाती है। ऐसे क्षेत्र पश्चिमी

उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और गुजरात में हैं। इस खेती के लिए पहले खेत जोत लिया जाता है जिससे जितना जल बरसे वह भूमि में समा जाय। प्रातःकाल इन जोते हुए खेतों को छोटे-छोटे पत्थरों से ढक दिया जाता है अथवा पटला फेर दिया जाता है जिससे सूर्य की गर्मी के कारण पानी भाप बन कर न उड सके। संध्या समय पत्थर हटा दिये जाते हैं जिससे रात की ओस खेत में पड़ सके। इसी क्रिया को कुछ समय तक करते रहते है और जब मिट्टी काफी गीली हो जाती है तो उसमें ज्वार, बाजरा, चना, जौ, गेहूँ आदि अनाज बो दिये जाते हैं। इस प्रकार की खेती में २-३ सालों में एक ही फसल पैदा की जाती है।

(५) **झूमिंग-प्रणाली द्वारा खेती** (Jhuming)—असम, मध्य-प्रदेश व पश्चिमी घाट और राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भाग में की जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पहले भूमि को वन आदि जलाकर साफ कर लिया जाता है फिर पहली वर्षा के बाद उन राख युक्त मिट्टी में मोटे अनाज आदि बखेर कर बो दिये जाते हैं। इस प्रकार के खेतों से दो या तीन वर्षों तक फसलें प्राप्त की जा सकती हैं। उसके बाद फिर नई भूमि साफ कर ली जाती है। इस प्रकार की खेती को भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं :—आसाम में झूम, मध्य प्रदेश में डाह्या हिमालय में खील, पश्चिमी घाट में कुमारी और दक्षिणी-पूर्वीय राजस्थान में वालरा कहते हैं।[5]

(६) **पहाड़ी खेती** (Terrace Cultivation)—विशेषकर पहाड़ी ढालों पर की जाती है। पहाडी निवासी ढालों को सीढियों के आकार में काट कर छोटे खेत बना लेते हैं और उसमें बड़े परिश्रम के साथ आलू, चावल अथवा चाय पैदा कर लेते है। इस प्रकार की खेती असम और हिमालय के पहाड़ी ढालों पर की जाती है।

फसलें (Crops)

भारत में फसलों का उत्पादन मुख्यतः जल वर्षा पर निर्भर करता है। अस्तु, देश में जल प्राप्ति की मात्रा के अनुसार कहीं दो और कहीं तीन फसलें पैदा की जाती है। कुल खेती योग्य भूमि के केवल १२ प्रतिशत भाग पर ही दो बार खेती की जाती है यहाँ खेती का धंधा प्रायः जून में आरंभ हो जाता है। फसल बोने के समय की दृष्टि से उनको निम्न श्रेणियों में रखा जा सकता है :—

(१) खरीफ या वर्षा ऋतु की फसल

वर्षा के आरम्भ में मई से जुलाई तक बोयी जाती है और इसकी समाप्ति पर सितम्बर से अक्टूबर-नवम्बर तक काटी जाती है। इस फसल के लिये अधिक जल की आवश्यकता नही होती अतः वर्षा के जल से ही काम चल जाता है। खरीफ की मुख्य फसलें ज्वार, बाजरा, मक्का, चावल, रेंडी, तिल, मूँग, उड़द, तम्बाकू, मूँगफली, जूट, गन्ना, मोठ, सन, सनई, और कपास आदि हैं।

(२) जायद खरीफ की फसल

यह फसल अगस्त से सितम्बर तक बोई जाती है तथा दिसम्बर से जनवरी तक काटी जाती है। इसके अन्तर्गत कपास, चावल, ज्वार, सरसों, राई, तिलहन और तोरिया मुख्य फसलें हैं।

---

5. Imperial Gazeteer of India, Vol. III, p. 25.

(३) रबी या शीत ऋतु की फसल

यह फसल शीतकाल के आरम्भ में अक्टूबर से दिसम्बर तक बोयी जाती है और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ होने से कुछ पूर्व फरवरी से अप्रैल और कहीं-कहो मई तक काटी जाती है। इस फसल के लिए जल की आवश्यकता कम होती है। साधारणतः फसल की १-२ बार सिंचाई की जाती है। इसकी मुख्य फसलें जौ, जई, आलू गेहूँ, चना, अलसी, सरसों, मटर, अरहर, मसूर तथा गांठदार सब्जियाँ—अरबी, रतालू, शकरकंद, चुकन्दर आदि हैं।

(४) जायद की फसल

ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में फरवरी-मार्च में बोई जाती है और अप्रैल-मई तक काटी जाती है। सिंचाई के सहारे शाक-सब्जियाँ, खरबूजे, ककड़ियाँ, तरबूजे, चारा तथा ज्वार आदि पैदा किये जाते हैं।

नीचे की तालिका में मुख्य-मुख्य फसलों का उत्पादन काल बताया गया है :—

फसल	ऋतु	पकने की अवधि
चावल	सर्दी	५½-६ महीने
	बसन्त	४-४½ ,,
	गर्मी	२-३ ,,
गेहूँ	रबी	५-५½ ,,
ज्वार	खरीफ	४½-५½ ,,
	रबी	४¼-५ ,,
	जायद खरीफ	२½ ,,
बाजरा	खरीफ	४½ ,,
मक्का	खरीफ	४-४½ ,,
रागी	खरीफ	३½ ,,
जौ	रबी	५-५½ ,,
चना	रबी	६ ,,
गन्ना	वार्षिक	१२-१५ ,,
तिल	खरीफ	३½-४ ,,
	रबी	५ ,,
		—जल्दी पकने वाली
मूँगफली	खरीफ	—४-४½ महीने
		—देरी से पकने वाली
		—४½-५ महीने

राई और सरसों	रबी	४-५	,,
	जायद रबी	४	,,
अलसी	रबी	५-५½	,,
अण्डी	खरीफ	जल्दी ६	,,
		अन्य ८	,,
कपास	खरीफ	जल्दी ६-७	,,
		देरी ७-८	,,
जूट	खरीफ	६-७	,,

भारत मे जितनी खेती होती है उसका प्रायः दो-तिहाई खरीफ की फसल और एक-तिहाई रबी की फसल होती है। बंगाल और मद्रास राज्यों में पर्याप्त गर्मी और दोनों ही ऋतुओं से प्राप्त होने वाली वर्षा के कारण खरीफ और रबी दोनों ही फसलों में लगभग एक सी ही उपजें बोई जाती हैं। महाराष्ट्र में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के कारण खरीफ फसल का महत्व अधिक है और उत्तरी-पूर्वी मानसून के कारण मद्रास में रबी की फसल का। उत्तरी भारत में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से वर्षा होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में खरीफ और शीत ऋतु में रबी की फसल बोई जाती है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत के सभी भागों में खेती नहीं की जाती क्योंकि सभी जगह भूमि समान रूप से उपजाऊ नहीं है। खेती योग्य भूमि उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और गुजरात-महाराष्ट्र तथा मद्रास के राज्यों तक ही सीमित है। इन राज्यों में वर्षा पर्याप्त होने के साथ-साथ मिट्टी उपजाऊ और भूमि समतल है। किन्तु निम्न भागों में कृषि करने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं :—

(१) पूर्वी महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में (काली मिट्टी वाले क्षेत्रों को छोड़ कर) अधिकांशतः भूमि अनुउपजाऊ है।

(२) असम राज्य के कई भागों में पहाड़ी धरातल, सघन वन प्रदेश और अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण खेती करना असम्भव है।

(३) राजस्थान में शुष्क जलवायु और वर्षा की कमी के कारण पश्चिमी भागों में खेती करना कठिन है।

(४) हिमालय और मैदान के बीच स्थित तराई; पश्चिमी घाट के समानान्तर एक संकड़ी पट्टी और पूर्वी घाट के समानान्तर पट्टी जो मद्रास, उड़ीसा, आंध्र और मध्य प्रदेश में चोड़े क्षेत्र का रूप धारण कर लेती है। इन तीनों ही क्षेत्रों में वर्षा का औसत १२७ से २५४ सें० मी० तक होता है और भूमि भी उपजाऊ है किन्तु इन सभी भागों में सदैव मलेरिया का प्रकोप रहता है। ऐसी भूमि का उपयोग तभी हो सकता है जब मलेरिया पर नियन्त्रण किया जाय।

(५) दक्षिण में पश्चिमी घाट और समुद्र तट के बीच में और उत्तर में गोआ से दक्षिण में कोंकन तक सारे प्रदेश में वर्षा १५२ सें० मी० से ऊपर होती है। वन प्रदेशों का आधिक्य है किन्तु भूमि उपजाऊ है फिर भी वर्षा की अधिकता, अस्वास्थ्यप्रद जल

वायु, मलेरिया का प्रकोप तथा मजदूरों की कमी और यातायात की असुविधाओं के कारण खाद्यान्न अधिक मात्रा में नहीं पैदा किये जाते। यदि इन असुविधाओं को दूर कर दिया जाय तो इनमें कृषि उत्पादन किया जा सकता है।

भारत के कृषि प्रदेश (Agricultural Regions)

भारत के कृषि विभाग करने में कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। इनमें मुख्य तापक्रम, वर्षा की मात्रा, ऊँचाई विषुवत् रेखा से दूरी, प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टी का रूप और गुण तथा बोई जाने वाली फसलें आदि है। इन सभी बातों पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि देश के एक बड़े भाग में इन बातों में एकरूपता पाई है। डा० दुबे ने वर्षा की मात्रा और मिट्टी के अनुसार भारत को निम्न-सात कृषि प्रदेशों में विभाजित किया है :—

(१) गंगा का निचला प्रदेश
(२) गंगा का ऊपरी प्रदेश
(३) सतलज प्रदेश
(४) मरुस्थलीय प्रदेश
(५) काली मिट्टी का प्रदेश
(६) रवेदार मिट्टी का प्रदेश
(७) तटीय प्रदेश

इनमें से प्रथम तीन का निर्धारण वर्षा की मात्रा द्वारा और शेष की मिट्टियों की प्रकृति द्वारा किया गया है।

यहाँ हम भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था द्वारा मान्य वर्गीकरण को लेते हैं। **डा० रंधावा** के अनुसार ये विभाग इस प्रकार हैं :—

(१) शीतोष्ण हिमालय प्रदेश (Temperate Himalayan Region)

यह प्रदेश दो उप-विभागों में बांटा गया है : (क) **पूर्वी हिमालय प्रदेश**—इसके अंतर्गत ऊपरी असम की मिकिर-पहाड़ियाँ, सिक्किम, भूटान और नैपाल राज्य है। बाहरी श्रेणियों में वर्षा अधिक होने से साल आदि के सघन वन पाये जाते हैं। इस भाग में मुख्यतः चाय पैदा की जाती है। कई स्थानों में चावल भी पैदा किया जाता है किन्तु सबसे अधिक महत्व वनों का है। (ख) **पश्चिमी हिमालय प्रदेश**—इस प्रदेश में कुमायूँ, गढ़वाल, शिमला की पहाड़ियाँ, कूलू, कांगड़ा की घाटी और जम्मू तथा काश्मीर राज्य सम्मिलित हैं। यहाँ जलवायु शुष्क पाया जाता है। उत्तरी भागों में जहाँ शीतकालीन वर्षा की मात्रा अधिक होती है वहाँ भूमध्य सागरीय जलवायु सदृश्य जलवायु मिलती है। सेब, बादाम, शफ्तालू, नाशपाती, बेर आदि फलों का उत्पादन अधिक किया जाता है। आलू, मकई और चावल भी बोया जाता है।

(२) शुष्क उत्तरी गेहूँ उत्पादक प्रदेश (Dry Northern Wheat Region)

इस प्रदेश में पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी मध्य प्रदेश और राजस्थान के भाग सम्मिलित हैं। यहाँ वर्षा ५१ सें० मी० से भी कम होती है। कहीं कहीं तो यह मात्रा २० सें० मी० से भी कम है। मिट्टी साधारणतः कछार है। यहाँ सिंचाई के सहारे गेहूँ, जौ, चना, मकई और कपास आदि फसलें बोई जाती हैं।

(३) पूर्वी चावल उत्पादक प्रदेश (Eastern Rice Region)

असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश और आंध्र के कुछ भाग इस प्रदेश के अंतर्गत हैं। इन भागों में वर्षा भी १५२ सें० मी०

अधिक होने के साथ-साथ मिट्टी भी बड़ी उपजाऊ मिलती है। अतः यहाँ चावल, जूट, गन्ना और चाय का उत्पादन अधिक किया जाता है।

(४) मलाबार नारियल उत्पादक प्रदेश (Malabar Coconut Region)

इस प्रदेश में केरल, पश्चिमी समुद्रतटीय पट्टी, मैसूर और उसके निकटवर्ती क्षेत्र सम्मिलित हैं। यहाँ वर्षा २२९ सें० मी० से अधिक होती है और मिट्टी कच्छार तथा लैटेराइट दोनों ही प्रकार की पायी जाती है। इस भाग का विशेष महत्व यहाँ पैदा की जाने वाली उद्यान फसलों (Plantation Crops) के कारण है। नारियल, रबड़, कहवा, इलायची, टैपीओका और कालीमिर्च अधिक पैदा की जाती है। चावल यहाँ की मुख्य फसल है।

(५) दक्षिण के मोटा अनाज उत्पादक प्रदेश (Southern Millets Region)

इस प्रदेश में दक्षिणी उत्तर प्रदेश का झांसी डिवीजन, मध्य प्रदेश, आंध्र और मद्रास के पश्चिमी भाग, पूर्वी महाराष्ट्र और मैसूर का पूर्वी भाग है। यहाँ वर्षा ५१ सें० मी० से १०२ सें० मी० तक होती है। यह भाग साधारणतः अकाल का क्षेत्र माना जाता है। इसकी मिट्टी काली और लैटेराइट है। इसमें ज्वार-बाजरा, कपास, मूगफली आदि का उत्पादन अधिक किया जाता है।

प्रमुख फसलें (Chief Crops)

भारत उष्ण और समशीतोष्ण दोनों कटिबन्धों में स्थित है अतः जहाँ एक ओर चावल, गन्ने तथा केले जैसी उष्ण कटिबन्धीय फसलें पैदा होती हैं, वहाँ दूसरे भागों में कपास, गेहूँ तथा तम्बाकू जैसी समशीतोष्ण कटिबन्धीय वस्तुयें भी उत्पन्न की जाती हैं। इसके अतिरिक्त भारत की भौतिक अवस्था, जलवायु और मिट्टी आदि की विभिन्नता के कारण यहाँ अनेक प्रकार की फसलें उत्पन्न की जाती हैं। इन फसलों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :—

(क) **खाद्यान्न**–(i) चावल, (ii) गेहूँ, (iii) जौ, (iv) मोटे अनाज, (v) मकई, और (vi) विभिन्न प्रकार की दालें।

(ख) **पेय पदार्थ**—(i) चाय, (ii) कहवा, (iii) तम्बाकू, (iv) अफीम आदि,

(ग) **व्यवसायिक फसलें**—(i) गन्ना, (ii) तिलहन, (iii) मसाले, (iv) सुपारी, (v) काजू, (vi) रबड़।

(घ) **रेशेदार पदार्थ**—कपास, जूट, मैस्टा, सनई।

(ङ) **फल और तरकारियाँ**।

(क) खाद्यान्न (Food Crops)

(१) चावल (Rice)

चावल भारत के लगभग तीन चौथाई मनुष्यों का भोज्य पदार्थ है। यहाँ इसकी खेती ईसा के ३,००० वर्ष पूर्व से हो रही है। हिन्दुओं के मांगलिक और धार्मिक अवसरों पर इसका उपयोग इस तथ्य को सिद्ध करता है कि चावल की खेती अति प्राचीनकाल से ही की जा रही है। विश्व के उत्पादन का २१% चावल भारत से प्राप्त होता है। ३१% चीन से, १८% पाकिस्तान, ८% जापान, ६% इंडोनेशिया, ४% थाईलैंड, ३% ब्रह्मा और शेष संयुक्त राज्य, मिश्र, स्पेन, इटली और ब्राजील से प्राप्त होता है।

भौगोलिक दशायें

(१) चावल उष्ण कटिबंधीय पौधा है अतः इसे ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होती है। साधारणतः पौधे के जमने के लिए कम से कम २० सें० ग्रेड तक का तापक्रम, फसल पकाने के लिए अधिक से अधिक २७° सैं० ग्रेड का तापक्रम ठीक माना गया है। १९° सैं० ग्रेड से कम तापक्रम में चावल पैदा नही होता। इसको प्रचुर मात्रा में सूर्य प्रकाश की भी आवश्यकता होती है। अधिक लम्बा मेघाच्छदन मौसम इसके लिए हानिकारक होता है। तेज हवा भी पौधे को गिरा कर नष्ट कर देती है।

(२) चावल को जमने के लिए प्रारम्भिक अवस्था में खेती में आधा फुट की ऊँचाई तक जल भरा रहना चाहिए। जल की यह मात्रा खेतों में ७५ दिनों तक रहे तो अच्छा है। चावल की खेती अधिकतर नदियों के डेल्टों में, समुद्री किनारे के नीचे तटीय प्रदेशों में और ऐसे प्रदेशों में जहाँ मानसून के समय बाढ़ें आया करती हैं, की जाती है। साधारणतः ६० सैं० मी० से लगाकर ७५ सैं० मीटर तथा २०० सें० मीटर वर्षा वाले भागों मे चावल बोया जाता है। १५० से २०० सें० मी० वाले भागों में बिना सिंचाई और ६० से ७५ सें० मीटर वर्षा वाले भागों में सिंचाई के सहारे चावल बोया जाता है। अनेक भागों में उपयुक्त अवस्थायें मिलने पर सिंचाई का सहारा भी लिया जाता है। भारत की वार्षिक वर्षा के वितरण के मानचित्र से धान के क्षेत्रों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि ज्यों-ज्यों समुद्री तटीय भागों से देश के भीतर की ओर बढ़ते है वर्षा की कमी के साथ-साथ चावल की खेती का महत्व भी कम होता जाता है। बगाल और असम के बाहर पंजाब, उत्तर प्रदेश और दक्षिण में पूर्वीय तटीय भागों में डेल्टाओं में सिंचाई द्वारा चावल पैदा किया जाता है।

(३) चावल के लिए उपजाऊ चिकनी, कछारी अथवा दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है जिससे धान की जड़ें बँधी रहें और पौधा खड़ा रह सके। चावल भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट कर दता है अतः इसमें खाद देना आवश्यक हो जाता है। हरी खाद (ढैंचा, गंवार आदि), हड्डियों की खाद, अमोनियम सल्फेट, सुपरफास्फेट आदि खाद देकर चावल की प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाई जाती है। एक एकड़ में २० पौंड नेत्रजन या १०० पौंड अमोनियम सल्फेट देने पर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है। यह खाद साधारणतः बुवाई के पहले और अंकुर निकलने के समय दिया जाता है।

(४) चावल को बोने के लिये अधिक मात्रा में मजदूरों की आवश्यकता होती है क्योंकि क्यारियों से निकाल कर खेतों में पौधों को एक-एक कर रोपना पड़ता है।

भारत में चावल को तीन प्रकार से बोया जाता है—छिटक कर, हल द्वारा बोकर या पौधों को दुबारा लगा कर। (१) जहाँ भूमि ऊँची-नीची होती है और नमी की मात्रा तथा मजदूरों की कमी होती है वहाँ चावल छिटक कर बोया जाता है। इस ढंग द्वारा फसल मानसून के आरम्भ होते ही बो दी जाती है। इसमें अधिक बीज की आवश्यकता पड़ती है तथा उत्पादन भी अधिक नहीं होता। (२) हल चला कर चावल की खेती दक्षिणी प्रायद्वीप के अधिकांश भागों में की जाती है। इसके

अनुसार जुताई करते समय दाना बोते जाते हैं। (३) पौधा लगाकर चावल की खेती के अनुसार पहले बीजों को छोटी-छोटी क्यारियों में बो देते हैं। जब ४-५ सप्ताह में पौधे बड़े हो जाते हैं तो उन्हें हाथों से उखाड़ कर पहले से ठीक किये गये खेतों में एक-एक कर ४-६ इकट्ठे कर के रोप दिये जाते हैं। साधारणतः ये पौधे ६ से ९ इंच की दूरी पर लगा दिये जाते हैं। इन पौधों को तब तक जल से भरा रखते हैं जब तक कि धान पकने पर न आए। ऐसी खेती में अधिक मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है किन्तु उत्पादन अधिक होता है।

भारत मे जापानी विधि से चावल पैदा करने का पहला प्रयास १९५३ में आरम्भ किया गया। जापानी कृषि प्रणाली के अनुसार सर्व प्रथम बीज को पानी में डाल दिया जाता है और कम्पोस्ट खाद डाल कर खेत में चार फीट चौड़ी क्यारियाँ बना ली जाती हैं। प्रति एकड़ १५० मन से २०० मन तक कम्पोस्ट खाद प्रयुक्त होती है और १.५ सेर से ३ सेर बीज प्रति एकड़ बोया जाता है। अमोनियम सल्फेट की खाद के प्रयोग द्वारा भूमि को अधिकाधिक उर्वर बनाया जाता है। इसके अभाव में हड्डी के चूरे की खाद भी प्रयोग में लायी जा सकती है। २८ या ३० दिन के बाद इस बेहन को एक-एक करके ९″×६″ की दूरी पर रोप दिया जाता है। प्रत्येक पंक्ति एक दूसरी से ९″ की दूरी पर तथा प्रत्येक पौधा एक दूसरे से ६″ की दूरी पर रहता है। जापान में पंक्तियों के बीच दूसरे प्रकार की फसलें तैयार की जाती हैं, अतः इस प्रकार की कृषि को अर्न्तकृषि (Interculture) कहते हैं। रोपने के १५ या २० दिन बाद निराई की जाती है जिससे पौधा स्वतन्त्रतापूर्वक विकास कर सके।

इस प्रणाली ने अन्तर्गत १९५२-५३ में ४ लाख एकड़ भूमि पर चावल की खेती की गई। १९५५-५६ में २१ लाख एकड़ पर; १९५७-५८ में ३५ लाख एकड़ पर; १९५८,५९ में ४० लाख एकड़ भूमि पर और १९६०-६१ में ६५.४ लाख एकड़ भूमि पर जापानी विधि से चावल की खेती की गई। इस विधि से धान बोने पर प्रति एकड़ औसत उपज २७.३ मन तक बैठती है जब कि देशी विधि से औसत उपज केवल १७ मन ही रहती है।

भारत चावल की फसल शीतकाल की फसल है। यहाँ इसकी बुवाई अप्रेल से अगस्त तक होती है और नवम्बर से जनवरी तक इसको काट लिया जाता है। किन्तु असम, बिहार, बंगाल, उड़ीसा और मद्रास आदि राज्यों में शीतकाल के अतिरिक्त पतझड़ और ग्रीष्म ऋतुओं में भी फसल प्राप्त की जाती है। अगले पृष्ठ की तालिका में विभिन्न राज्यों में चावल के बोने और काटने का समय बताया गया है :—

भारत में चावल की जो तीन फसलें पैदा की जाती हैं उनमें से अधिक महत्व शीतकाल की फसल का ही है क्योंकि इसी से ६२% उत्पादन मिलता है। पतझड़ की फसल में केवल ३७%। ग्रीष्म की फसल का महत्व नगण्य है (१%)। इन तीनों फसलों का साधारण बोने कौर काटने का समय इस प्रकार है :—

फसल		बोने का समय	काटने का समय
१. औस	(पतझड़ की फसल)	अप्रेल-जुलाई	अगस्त-दिसम्बर
२. अमन	(शीत की फसल)	अप्रेल-अगस्त	अक्टूबर-जनवरी
३. बोड़ो	(ग्रीष्म की फसल)	सितम्बर-फरवरी	मार्च-जून

भारत के विभिन्न राज्यों में चावल काटने बोने का समय

प्रदेश	जाड़े की फसल		सितम्बर-अक्तूबर की फसल		गर्मी की फसल	
	बोना	काटना	बोना	काटना	बोना	काटना
बङ्गाल	मई-जुला	।क्टूबर-जनवरी	मार्च-जुलाई	जून-सितम्बर	अक्टूबर-जनवरी	फरवरी-अप्रैल
बिहार	जून-अगस्त	नवम्बर-दिसम्बर	मई-जुलाई	अगस्त-अक्टूबर	सितम्बर-नवम्बर	फरवरी-मार्च
मद्रास	जून-अक्टूबर	दिसम्बर-मार्च	—	—	दिसम्बर-मार्च	अप्रैल-मई
पंजाब	मार्च-अगस्त	सितम्बर-नवम्बर	—	—	—	—
उत्तर प्रदेश	जून-अगस्त	सितम्बर-दिसम्बर	—	—	—	—
काश्मीर	—	—	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्टूबर	—	—
मैसूर	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	फरवरी	अप्रैल-मई
मध्य प्रदेश	जून-जुलाई	नवम्बर	जून-जुलाई	अक्टूबर	—	—
केरल	सितम्बर-अक्टूबर	जनवरी-फरवरी	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्टूबर	जनवरी-फरवरी	अप्रैल-मई
आंध्र	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	नवम्बर-जनवरी	अप्रैल-मई

औस (Aus) की फसल ऊँची भूमि पर बोई जाती है। अप्रेल और मई से जुलाई तक ऊँचाई पर स्थित सूखे भागों में धान के बीज बो दिये जाते हैं। वर्षा होने पर लगभग १½ फीट तक जल भरा रखा जाता है। अगस्त से दिसम्बर तक इसकी कटाई हो जाती है। इस फसल का प्रति एकड़ उत्पादन कम होता है (११ मन)।

अमन (Aman) की फसल अप्रेल से अगस्त तक वर्षा होने पर बो दी जाती है और जल की ऊँचाई के साथ-साथ यह बढ़ती जाती है। अक्टूबर से जनवरी तक इसकी कटाई होती रहती है। यही फसल सबसे मुख्य होती है। प्रति एकड़ उत्पादन १२½ मन होता है।
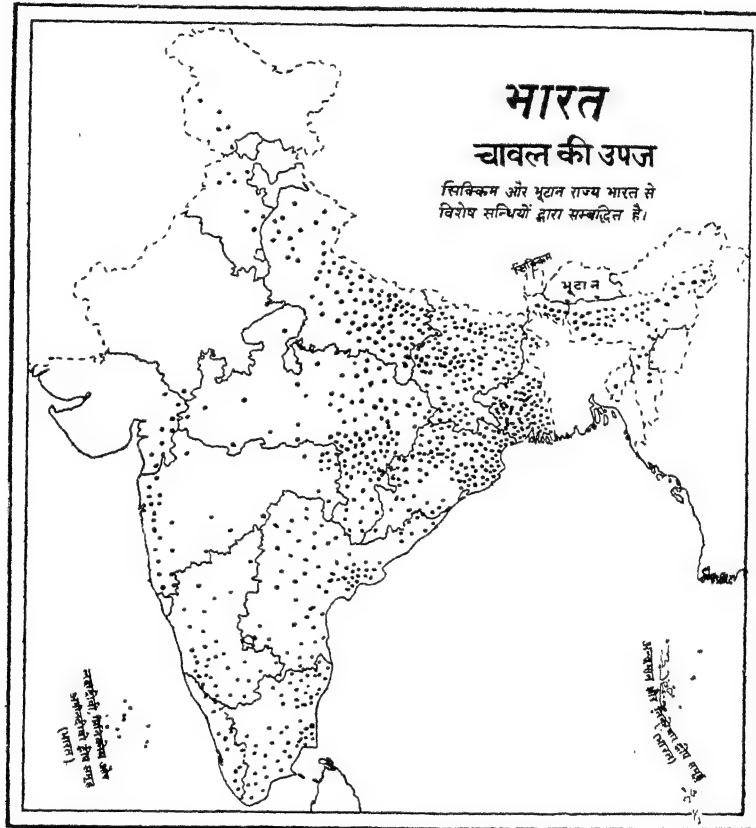
चित्र १४२. प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र

बोड़ो (Boro) वर्षा के अन्त में बीजों को गढ्डों में बो दिया जाता है। मार्च में जब तापक्रम ऊँचा होने लगता है तो फसल पक जाती है। इसे मार्च से जून तक काटा जाता है। इसका महत्व केवल नाममात्र का ही है। प्रति एकड़ उत्पादन १४ मन होता है।

औस को छिटक कर, **बोड़ो** को पौध लगा कर और **अमन** को दोनों ही ढंगों से बोया जाता है।

प्रति हैक्टेअर उपज

क्षेत्र एवं उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान द्वितीय है किन्तु प्रति एकड़ उत्पादन बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण घनघोर वर्षा से भूमि के ऊपरी तल से खनिज लवण और वनस्पति के अंशों का बह जाना है। धान (Paddy) का प्रति हैक्टेअर उत्पादन भारत में २१७ कि० ग्रा० है जब कि संयुक्त राज्य में ५४५ कि० ग्राम; मिश्र में ४६२ कि० ग्रा०; जापान में ५८५ कि० ग्रा०; चीन में ४२६ कि० ग्राम; ब्रह्मा में २५५ कि० ग्राम, थाईलैंड में २८१ कि० ग्राम।

भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों की वर्षा, सिंचाई, मिट्टी की प्रकृति और बोने तथा काटने के समय के अनुसार प्रति हैक्टेअर पैदावार में भिन्नता पाई जाती है। पतझड़ की अपेक्षा शीतकाल की फसल का प्रति एकड़ उत्पादन अधिक होता है। इसी प्रकार **जापानी चावल** (Japonica) का उत्पादन **भारतीय चावल** (Indica) की अपेक्षा अधिक होता है। जापानी प्रणाली से पैदा किये जाने वाले चावल का उत्पादन प्रति एकड़ २७ मन तक का होता है जब कि साधारण रीति से बोने पर यह उत्पादन केवल १७ मन तक का होता है।

धान उत्पादक क्षेत्र

भारत में बोयी गई सभी फसलों के अन्तर्गत सबसे अधिक क्षेत्रफल चावल का है। कुल बोयी गई भूमि के १५% भाग पर तथा खाद्यानों के अन्तर्गत बोयी गई भूमि के ३०% भाग पर धान की खेती की जाती है। आंध्र, असम, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, केरल, और पश्चिमी बंगाल मिलकर कुल क्षेत्रफल के ६०% से कुछ अधिक भाग पर पर चावल पैदा करते हैं।

(१) **बंगाल** भारत का प्रमुख चावल उत्पादन करने वाला राज्य है। वहाँ भूमि के अधिक उपजाऊ होने से खाद अधिक देने की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु कभी-कभी फसल को बाढ़ से हानि उठानी पड़ती है। किन्तु अब शीघ्र पैदा होने वाली किस्में बोकर—विशेषकर 'इन्द्रसेल' और 'धोरेल'—इस हानि से बचने का उपाय किया जाता है। यहाँ प्रत्येक जिले में ६० प्रतिशत से अधिक भूमि पर चावल बोया जाता है। यहाँ के मुख्य चावल उत्पादक जिले जलपाईगुरी, बांकुड़ा, मिदनापुर, दिनाजपुर, बर्दवान और दार्जिलिंग हैं। बंगाल में चावल की तीन फसलें पैदा की जाती हैं।

(२) **आंध्र** और **मद्रास** में चावल का उत्पादन पश्चिमी गोदावरी, चिंगलपुट, तंजौर, कडुप्पा, कर्नूल आदि जिलों में होता है। विषुवत् रेखा के निकट होने और समुद्र के समीप होने के कारण तापक्रम ऊँचा किन्तु वर्ष भर सम रहता है। अतः वर्ष में तीन फसलें तक पैदा की जाती हैं।

(३) **असम** में धान की खेती ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी की घाटियों में तथा पहाड़ी ढालों पर की जाती है। गोलपाड़ा, नवगांव, कामरूप आदि जिले प्रमुख उत्पादक है।

(४) **बिहार** में वर्ष में चावल की तीन फसलें पैदा की जाती हैं किन्तु मानसूनी वर्षा की अनिश्चितता के कारण सिंचाई का आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ गया, मुंघेर, भागलपुर और पूर्णिया जिले में धान पैदा किया जाता है।

(५) **उत्तर प्रदेश** में धान के दो मुख्य क्षेत्र हैं। हिमालय की तराई में जहाँ उपजाऊ भूमि, वर्षा की अधिकता अवं अनुकूल तापक्रम के कारण धान बोया जाता है। लघु एवं मध्यवर्ती हिमालय की सीमाओ पर पहाड़ी ढालों पर चौरस खेतों मे जल रोक कर धान बोया जाता है। देहरादून, पीलीभीत, सहारनपुर, देवरिया, गोंडा, बस्ती, बलिया, लखनऊ और गोरखपुर आदि मुख्य उत्पादक जिले हैं।

(६) **मैसूर** में पूर्वोत्तर और वैंगाना नदी की घाटी में तथा मध्य प्रदेश में ताप्ती की घाटी में रायपुर, गोंदिया, जबलपुर जिलो में धान बोया जाता है।

(७) **महाराष्ट्र** में पठारी एवं मैदानी धान की खेती पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल और समुद्र के तटीय भागों में रत्नागिरी, कनारा तथा कोंकन तट पर और केरल में मलाबार तट पर चावल पैदा किया जाता है।

नीचे की तालिका में चावल का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

चावल के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२
आंध्र प्रदेश	७५३२	७२१८	३६०५	३५९८
आसाम	४४४९	४३७५	१५०१	१६४८
बिहार	१२८४३	१२६०८	४२१३	४२२७
गुजरात	१३०३	१४१३	३७२	५०९
केरल	१९४७	१८६३	१००८	१००४
मध्य प्रदेश	१०३४१	१०३०९	२७६	३४२८
मद्रास	६३४०	५९६५	३८००	३५९८
महाराष्ट्र	३१७९	३११५	१११६	१३८०
मैसूर	२४७३	२४१४	१३५०	१२६८
उड़ीसा	१०९७०	१००४२	३५९३	३६४९
पंजाब	११६३	१२२९	४५४	४७३
राजस्थान	२८०	२४३	९९	१३०
उत्तर प्रदेश	१०४४९	१०३६२	३०७१	३३२४
पश्चिमी बंगाल	१०९८४	१०९२४	४३४०	४७२८
मनीपुर	४००	३९५	१०६	१०४
त्रिपुरा	४४६	४३२	१७१	१६७
नागालैण्ड	१६५	१६५	७३	७३
योग	८५,९६१	८३,६६९	३१,५१२	३३,६१०

शरदऋतु	५५२८२	२९०३९	९८८५	११५१९
जाड़े की ऋतु	१६५२	५३११२	२०८५३	२१३६४
ग्रीष्म ऋतु	८५९६१	१५१८	७७४	७२७
	८५९६१	८३६६९	३१५१२	३३६१०

भारत में चावल खाने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि स्थानीय उपज के अतिरिक्त कई लाख टन चावल विदेशों से आयात किया जाता है। यह आयात ब्रह्मा, लंका, थाईलैड, चीन और इण्डोनेशिया से होता है। बंगाल, केरल, मद्रास और आंध्र अन्य राज्यों से चावल का आयात करते हैं।

देश में नई बहुमुखी योजनाओं की समाप्ति पर लगभग ५०% उत्पादन में और वृद्धि होने की आशा है। तृतीय योजना में चावल का उत्पादन २९ करोड़ टन से बढ़कर ३.९ करोड़ टन तथा प्रति एकड़ उत्पादन ८०७ पौंड से बढ़ कर १२०२९ पौंड हो जायेगा अर्थात् उत्पादन और प्रति एकड़ उपज में क्रमशः ३४.४% और २७.५% की वृद्धि होगी।

१९६३-६४ में ८७,६५९ हजार एकड़ भूमि पर ३५,९१३ हजार टन चावल पैदा किया गया।

(२) गेहूँ (Wheat)

गेहूँ खाद्यानों में प्रमुख माना जाता है। मोहनजोदड़ो में की गई खुदाई में जो गेहूँ के दाने मिले हैं उनसे ऐतिहासज्ञों का मत है कि भारत ही सम्भवतः गेहूँ का आदि स्थान रहा है। यहाँ इसकी खेती बहुत ही प्राचीन काल से की जाती है। विश्व के उत्पादन का केवल ३.५% गेहूँ ही भारत से प्राप्त होता है।

भौगोलिक अवस्थायें

गेहूँ के लिए निम्न भौगोलिक अवस्थाओं की आवश्यकता होती है :—

(१) यह शीतल और नम जलवायु में बढ़ता है और गर्म तथा शुष्क जलवायु में सबसे अच्छा पकता है। इसलिये गेहूँ के अधिकतर खेत सतलज-गंगा के मैदान के उच्चतर और शुष्क भागों में पाये जाते हैं। पाला इसकी खेती के लिये हानिकर है। फसल पकने के समय उच्च तापक्रम, तेज और चमकीली धूप और स्वच्छ आकाश की आवश्यकता होती है। गेहूँ के पकने के लिए अधिक गर्मी की आवश्यकता पड़ती है। जाड़े के आरम्भ में बोने के समय तापक्रम १०° से १५° सें० ग्रेड तक और पकने के समय २०° से २५° सें० ग्रेड तक का तापक्रम साधारणतः उपयुक्त माना जाता है।

(२) गेहूँ को बोने के समय जल की आवश्यकता होती है किन्तु आसाम, बंगाल, पश्चिमी तटीय भागों में अधिक वर्षा के कारण फसल नहीं बोयी जाती। पंजाब और उत्तर-प्रदेश के शुष्क भागों में ७५ सें० मीटर से कम वर्षा होने पर भी सिंचाई की सहायता से गेहूँ बोया जाता है। दाने पकने के कुछ पहले साधारण वर्षा होना आवश्यक है। इससे पौधा शीघ्र बढ़ता है। बुवाई के १५ दिन बाद और पकने के १५ दिन पूर्व यदि चक्रवातीय वर्षा हो जाती है तो गेहूँ की फसल के लिए लाभदायक होती है।

भारतीय वनों के पिछड़े होने के कारण

यद्यपि भारतवर्ष वनों की दृष्टि से धनी देश है—यहाँ बहुमूल्य लकड़ी उत्पन्न होती है—किन्तु अभी तक भारत में अन्य देशों की तरह वनों से प्राप्त सम्पत्ति का पूर्ण उपयोग नहीं किया जा सका है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) भारत में वनों का विस्तार न तो समान ही है और न पर्याप्त ही। सम्पूर्ण देश के केवल २१·८% भाग ही वन प्रदेश हैं। प्रति व्यक्ति पीछे भारत में वनों का क्षेत्रफल केवल ०·२ हैक्टेअर है। जबकि यह क्षेत्रफल रूस में ३·५ हैक्टेअर; और संयुक्त राज्य में १·८ हैक्टेअर है।[7] यही नहीं प्रति एकड़ वार्षिक उत्पादन भी बहुत ही कम है, भली प्रकार देखभाल किये जाने वाले वनों में प्रति एकड़ पीछे साल की लकड़ी की प्राप्ति २·७५ टन, देवदार का ४·१० टन और चीड़ की १·३० टन है।[8]

(२) भारतवर्ष के अधिकांश जंगल अधिक ऊँचाई पर स्थित हैं जहाँ पहुँचना कठिन है फिर वहाँ से लकड़ी काट कर लाना तो और भी असम्भव है। हिमालय के पूर्वी वन और पश्चिमी घाट के कई भागों के वन तो अभी छुए भी नहीं गये हैं। भारत के २०% वन अप्राप्य हैं।

(३) आवागमन के साधनों की बड़ी कमी है। ऊँचे और सघन वनों की लकड़ी को मैदान में लाने के लिये नदियों, सड़कों, ट्रामों, तार के रास्ते तथा लकड़ी के शहतीरों को खींचने वाले छोटे-छोटे एन्जिनों का अन्य देशों में खूब प्रयोग किया जाता है किन्तु भारत में यह सुविधायें बहुत कम हैं क्योंकि पश्चिमी देशों की भाँति न तो यहाँ नदियाँ ही लट्ठों के बहाने के काम में ली जाती हैं और न मशीनें हीं। हमारे यहाँ अधिकतर मजदूर या हाथी आदि पशु ही लकड़ियाँ ढोने के काम में लिये जाते हैं।

आसाम में गोलपारा (Goalpara) जिले में, पंजाब में चंगामंगा (Changa Manga) क्षेत्र में और केरल राज्य में इस काम के लिये ट्राम का प्रयोग किया जाता है। केरल, पंजाब और सुन्दर वन में नदियों का प्रयोग लट्ठे ले जाने के लिये किया जाता है। अधिकतर नदियों में लकड़ियाँ बाढ़ के समय में ही बहाई जाती हैं जबकि उनमें पर्याप्त जल होता है। भारत मे सबसे बड़ा लकड़ी का मुख्य बाजार झेलम पर है जहाँ प्रतिवर्ष काश्मीर के पहाड़ों से लगभग ८० लाख घनफुट लकड़ी झेलम द्वारा आती है। तार के रास्ते (Rope Ways) अधिकतर चेरापूँजी के निकट बनाये गये हैं।

(४) देश के वनों का कम उपयोग होने का एक कारण यह भी है कि पाश्चात्य औद्योगिक देशों की तरह भारत में लकड़ी की माँग अधिक नहीं है। यूरोप और अमेरिका आदि देशों में तो पूरे मकान ही लकड़ियों के बनाये जाते हैं लेकिन चूँकि हमारे देश की जलवायु गर्म है इसलिये यदि मकानों इत्यादि मे लकड़ी का प्रयोग किया जावे तो गर्मी के कारण लकड़ी के तख्तों के कड़क जाने का डर रहता है और फिर कई तरह के कीड़े इत्यादि भी भारत में लकड़ी को बहुत हानि पहुँचाते

---

7. India, 1962, p. 236; Ibid, 1960, p. 254.
8. Third Five Year Plan, 1961, p. 363.

हैं। अतः साधारणतया मकान बनाने में लकड़ी का प्रयोग नहीं किया जाता। लोगों के रहन सहन का स्तर भी बहुत ही नीचा है। अतः यहाँ उत्तम लकड़ी की आवश्यकता भी कम ही पड़ती है। यहाँ के निवासी बहुत ही कम फर्नीचर काम में लाते हैं। अशिक्षा के कारण लकड़ी का प्रयोग कागज बनाने में भी कम होता है। जहाँ कनाडा में ९५० घन फीट की लकड़ी का उपयोग प्रति व्यक्ति पीछे होता है वहाँ फिनलैण्ड में २९९ घन फीट; सं० रा० अमेरिका में २०० घ० फी०; स्वीडेन में १२९ घन फीट; नार्वे में ११८ घन फीट; रूस में ६६ घनफीट; जर्मनी में २७ घन फीट; फ्रांस में १६ घन फीट; इगलैण्ड में १५ घनफीट और जापान में १३ घन फीट लकड़ी प्रति व्यक्ति के काम आती है किन्तु भारत मे केवल ०·६ घन फीट लकड़ी ही।

(५) भारत में एक ही प्रकार के वृक्ष एक ही क्षेत्र में इकट्ठे नहीं मिलते बल्कि एक ही प्रकार के वृक्ष काफी छितराये हुए मिलते हैं अतः किसी विशेष प्रकार की लकड़ी को एकत्रित करने में समय भी अधिक लगता है और खर्चा भी खूब पड़ता है।

(६) हमारे यहाँ लकड़ी काटने के तरीके भी पुराने ही हैं। इससे बहुत सी लकड़ी तो व्यर्थ में ही नष्ट हो जाती है।

भारत की वन नीति (Forest Policy of India)

देश के काफी भू-भाग में स्थायी वनों की आवश्यकता है। ये वन देश के विभिन्न भागों में समुचित रूप से फैले हुए होने चाहिए और अनाधिकार प्रवेश उपयोग तथा अति-उपयोग से उनकी रक्षा की जानी चाहिए। इसी हेतु १९५२ में भारत सरकार ने राष्ट्रीय वन-नीति घोषित की। इस नीति के अनुसार भूमि के ३३ प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। वन सम्बन्धी नीति के दो उद्देश्य हैं: एक ओर तो वन साधनों के दीर्घकालीन विकास की व्यवस्था करना और दूसरी ओर निकट भविष्य में इमारती लकड़ी तथा ईंधन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करना। इस नीति के अनुसार भारतीय वनों को निम्न चार भागों में बाँटा गया है :—

(१) **संरक्षित वन** (Protection Forests)—ये ऐसे वन हैं जिनका राष्ट्र की भौतिक अथवा जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए आवश्यक है। इस हेतु पहाड़ी क्षेत्रों, नदी घाटियों, तटीय भागों पर न केवल वृक्षारोपण किया जाय वरन् इन स्थानों में उपलब्ध वर्तमान वनों की रक्षा की जाय।

(२) **राष्ट्रीय वन** (National Forests)—ये वन देश की सुरक्षा, यातायात, उद्योग तथा सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं। इस सम्बन्ध में इस बात पर जोर दिया जाता है कि वर्तमान क्षेत्रों के टिम्बर-क्षेत्रों में खेती न करने दी जाय और न ही उनका अविचारपूर्ण विदोहन किया जाय।

(३) **ग्राम्य वन** (Village Forests)—इन वनों का महत्व गाँवों और निकटवर्ती नगरों के लिए सस्ते ईंधन की उपलब्धि करना है जिससे कंडे आदि का ईंधन के रूप में प्रयोग रोका जाकर खेतों में खाद के रूप में व्यवहृत किया जा सके। इन्हीं वनों से कृषि-यंत्रों के लिए तथा अन्य कार्यों के लिए सीमित मात्रा में लकड़ी मिलती है।

(४) **वृक्ष वन** (Tree Lands)—इन वनों की आवश्यकता भी देश की भौतिक अवस्था के लिए होती है।

१९५२ की वन-नीति के अनुसार जुलाई १९५२ में भारत सरकार ने वन महोत्सव (Van-Mahotsava) मनाना आरम्भ किया गया है। १९५० में ४·४३ करोड़ पौधे लगाये गए जिनमें से १·७१ करोड़ वृक्ष बन सके। १९६१ में १·७६ लाख पौधे लगाये गए जिनमें से १·१९ करोड़ वृक्ष बने। शेष नष्ट हो गये। यह महोत्सव देश व्यापी आन्दोलन के रूप में मनाया जाता है अतः प्रति वर्ष जुलाई-अगस्त मास में वृक्षारोपण सप्ताह मनाया जाता है। वन-महोत्सव आन्दोलन का मूल आधार "वृक्ष के अर्थ जल हैं, जल का अर्थ रोटी है और रोटी ही जीवन है" (Trees mean water, water means bread, and bread is life) श्री मुंशी का यह कथन है। अनुमान लगाया गया है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति वर्ष भर में दो वृक्ष बोये तो सारे भारत में ५ वर्ष की अवधि में २९७ करोड़ नये वृक्ष पैदा हो सकते है।

योजनाओं के अन्तर्गत

प्रथम और द्वितीय योजनाओं के अन्तर्गत क्रमशः ९·५ करोड़ और १९·३ करोड़ रुपये की राशि वन-सम्बन्धी कार्यक्रमों पर खर्च की गई। जमींदारी क्षेत्रों के अन्तर्गत पड़ने वाले वन प्रदेश अब सरकार के अधिकार में हो गये हैं। इन योजना कार्यों में लगभग ५५,००० एकड़ भूमि पर दियासलाई की लकड़ियों के और ३,३०,००० एकड़ पर औद्योगिक लकड़ियों के नये वृक्ष लगाये गये। लगभग १८ हजार वर्गमील क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया। ९,००० हजार मील लम्बी सड़कें वन-प्रदेशों में बनाई गईं और लगभग ४ लाख एकड़ भूमि के नष्ट हुए वनों की पुनर्व्यवस्था की गई।

तृतीय योजना में यह प्रस्तावित किया गया है कि भारत में वनों के अन्तर्गत क्षेत्रफल काफी कम है अतः वन-साधनों का दीर्घकालीन विकास करना आवश्यक माना गया है। यदि इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रयत्न नहीं किये गये तो आगामी १०-१५ वर्षों में औद्योगिक लकडी का अभाव हो जायेगा। इस हेतु वन सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिए ५१ करोड़ रुपया की व्यवस्था की गई है। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत निम्न कार्य सम्मिलित किये गये हैं :—

(१) औद्योगिक विकास के लिए बढ़ती हुई मात्रा में लकड़ियों की उपलब्धि की जाये। इसके लिए २१०,००० एकड़ भूमि पर टीक की लकड़ी, ४०,००० एकड़ पर बाँस, ६०,००० एकड़ पर दियासलाई की लकडी, २२,००० एकड़ पर वाटल के वृक्ष, ४६,००० एकड़ पर ईंधनोपयोगी वृक्ष तथा अन्य ३,००,००० एकड़ भूमि पर मिश्रित वन लगाये जायेंगे जिनमें अधिकांश शीघ्र उगने वाले वृक्ष होंगे। सब मिला कर १२ लाख एकड़ क्षेत्र में वन लगाने का काम किया जायेगा।

(२) वन-प्रदेशों में १५,००० मील लम्बी सड़कों का विकास किया जायेगा जिससे पहाड़ी क्षेत्रों के वनों तक पहुँचने में आसानी रहे।

(३) लकड़ियों को ठीक प्रकार पकाने अथा सुरक्षित रखने के लिए २७ संयंत्र (सीजनिंग प्लाँट) स्थापित किये जायेंगे।

(४) ६ लाख एकड़ भूमि पर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मद्रास और मैसूर राज्यों में वनों की पुर्नव्यवस्था की जायेगी।

(५) कृषि के अयोग्य भूमियों में १५०,००० लाख एकड़ भूमि पर पशुओं के लिए चरागाहों का विकास किया जायेगा।

अध्याय २०

पशु धन

(CATTLE WEALTH)

किसी देश की आर्थिक व्यवस्था में पशुओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पशुओं का कितना महत्व है यह डा० डालिंग के शब्दों से स्पष्ट होगा। वे कहते हैं, "इनके बिना खेत बिना जुते-बोये पड़े रहते हैं, खलिहान खाद्यान्नों के अभाव में खाली पड़े रहते है तथा एक शाहकारी देश में इससे अधिक दुखदायी बात क्या हो सकती है कि यहाँ पशुओं के अभाव में घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थों का उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा ही निम्न है।"

भारत में पशुओं द्वारा निम्न उद्देश्यों और लाभों की पूर्ति होती है :

(१) कृषि कार्यों में सहायता के लिए, हल खीचने, दांय चलाने, गन्ने की चरखियाँ फेरने तथा कुओं से पानी खींचने और बोझा ढोने के लिए बैलों तथा अन्य पशुओं का उपयोग किया जाता है।

(२) पशुओं से ही जीवनदायक दूध प्राप्त होता है। यद्यपि भारत में पशुओं की संख्या अधिक है किन्तु उनके द्वारा प्राप्त होने वाली दूध की मात्रा बहुत ही अपर्याप्त है। साधारणतः पशुओं की दूध देने की सामर्थ्य बहुत ही कम है। इसी कारण भारत की गायों को 'Tea-Cup Cows' कहा जाता है। दुग्ध-काल में औसत एक गाय से केवल १८६ कि० ग्राम दूध मिलता है और एक भैंस से ५०० कि० ग्राम जबकि पाश्चात्य देशों से दूध का औसत उत्पादन प्रति पशु पीछे १८०० कि० ग्राम से भी अधिक होता है। १९६१ में २६ करोड़ क्विंटल दूध की प्राप्ति की गई।

(३) पशुओं के खेतों के लिए गोबर की खाद प्राप्त होती है तथा हड्डी और खून की खाद भी महत्वपूर्ण है। ये खादें भूमि की उर्वरता को निरन्तर बनाये रखती हैं। पशुओं से चमड़ा और खालें (विशेषकर कसाईघर में काटे गये पशुओं से) प्राप्त किये जाते हैं। प्रतिवर्ष ५० लाख भैंस की खालें, २१० लाख बकरी, १६० लाख भेड़ और १६० लाख गाय की खालें प्राप्त होती हैं।

पशुओं से होने वाले प्रत्येक प्रकार के लाभ का मूल्य इस प्रकार आँका गया है।[1]

दूध एवं दूध से बनी वस्तुयें ७५९ करोड़ रुपये; जोताई तथा अन्य कृषि कार्य ९०० करोड़ रुपये; कृषि उपज का यातायात ३०० करोड़ रुपये; माँस ९२ करोड रुपये; चमड़ा और खालें २९ करोड़ रुपये; गोबर २२७ करोड़ रुपये; बाल और ऊन १३ करोड़ रुपये; अंडे आदि २८ करोड़ रुपये; हड्डियाँ २ करोड़ रुपये, योग ११७४·६ करोड़ रुपये।

1. Khadi Gramodhyog, Vol-10, Jan. 1964, p. 294.

भारत में मिलने वाले पशुओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है। जिन भागों में वन प्रदेश हैं वहाँ अधिकांशतः जंगली पशु ही मिलते हैं, किन्तु जहाँ कृषि के लिए भूमि साफ कर ली गई है वहाँ पालतू पशु ही पाये जाते हैं।

जंगली पशु (Wild Animals)

जंगली पशु अधिकांशतः या तो घने जंगलों अथवा जंगलों के किनारे रहते है जहाँ वे अन्य घास खाने वाले पशुओं का शिकार करके अपना पेट पालते हैं। जंगली पशुओं में सिंह, बाघ, चीते, तेंदुए अथवा रीछ मुख्य हैं। बाघ अधिकतर बंगाल, सौराष्ट्र, तराई और राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी वनों के ढके हुए भागों में खूब मिलते हैं। **रीछ** बहुधा हिमालय के पहाड़ी भागों तथा तराई में अधिक मिलते हैं। इन वनों में चीते और तेंदुए भी मिलते है। **सियार** और **लोमड़ी** भारत के प्रत्येक भाग में मिलती है। **जंगली कुत्ता** नीलगिरी के पहाड़ों पर अधिक मिलता है। **हाथी** जंगली दशा में आसाम, केरल और मैसूर में पाया जाता है। **बन्दर** भी समस्त भारत में मिलते हैं। भारत में पाये जाने वाले सींगदार जंगली पशुओं में **बीसन और जंगली भैंसे** मुख्य हैं। ये दक्षिणी भारत, मध्य प्रदेश और आसाम में पाये जाते है। **इबैक्स** नामक पहाड़ी बकरी विशेष कर काश्मीर और दक्षिणी भारत की पहाड़ियों पर पाई जाती है। **याक** हिमालय के ऊँचे भागों में और हिरण भारत के अधिकांश भागों में पाये जाते हैं। **गैंड़े**, ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी और सुन्दर वन में मिलते हैं। कच्छ के मरुस्थल में **जंगली गधे** मिलते हैं।

पालतू पशु (Domesticated Animals)

पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़ और घोड़े आदि मुख्य हैं। भारत में पशुओं की संख्या ३४ करोड़ के लगभग है।

भारत में पालतू पशुओं की संख्या (लाख में)

पालतू पशु	१९४५	१९५१	१९५६	१९६१
गाय-बैल	१३६७	१५५२	१५८७	१७५७
भैंस	४०७	४३४	४४९	५१२
भेड़	३७७	३९०	३९२	४०३
बकरी	४६३	४७१	५५४	६०८
घोड़े और टट्टू	१४	१५	१५	१४
खच्चर	·४५	·६०	·४०	७३
गदहे	११	१२	११	
ऊँट	७	६	७	
सूअर	३७	४४	४९	
कुल पशु	२·६८४	२,९२६	३,०६५	३,३६५
मुर्गियाँ	५४७	७३५	९४७	१,१६९

१९५६ और १९६१ के बीच पालतू पशुओं की संख्या ११·४% बढ़ी है।

भारत के पशु पालन क्षेत्र

शुष्क जलवायु मे जहाँ चरने की अधिक सुविधाएँ होती हैं पशु अधिक संख्या में पाले जाते हैं। भारत की प्रमुख पशु-पट्टी भारतीय मरुस्थल के चारों ओर—जहाँ वर्षा की मात्रा में अपेक्षतया कमी होती है—फैली हुई है। भारत में पशु-पालन के यह क्षेत्र अन्य देशों की स्थिति के बिल्कुल समान ही हैं जहाँ पशु-पालन उन घास के मैदानों में होता है जो या तो मरुस्थलो की बाहरी सीमा पर स्थित हैं अथवा उन शुष्क भागों में है जहाँ प्रतिकूल प्राकृतिक रचना के कारण कृषि का विकास कठिन है। भारत के मुख्य पशु-पालन क्षेत्र पजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, पश्चिमी उत्तर
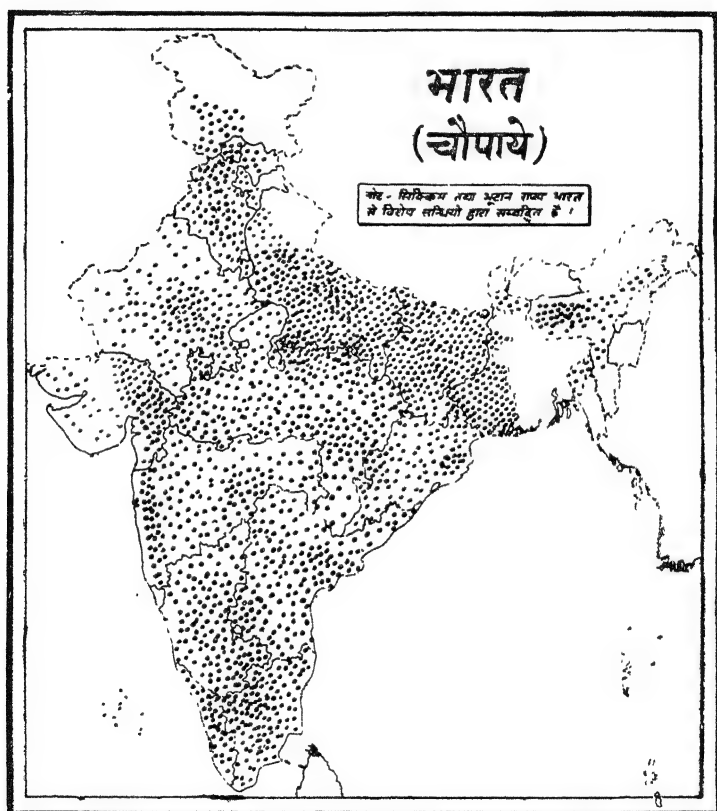
चित्र १३०. भारत में चौपाये

प्रदेश हैं। इन भागों में वर्षा की इतनी अधिक मात्रा नहीं होती कि उत्तम घास पैदा हो सके अत: चरवाहे अपने पशुओं के लिए खेतों में ऐसी फसलें उगाते हैं जिनके डंठल पशुओं की चराई में काम आ सकें। किनु जिन भागों में वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है अथवा जहाँ सिंचाई के उत्तम साधन उपस्थित हैं वहाँ उत्तम पशु-पालन नहीं किया

जाता। अतः आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, केरल और मद्रास में उत्तम श्रेणी के पशु नही पाये जाते। इन भागों के पशु दुबले-पतले, रोगी और कम दूध देने वाले होते हैं। यही कारण है कि अधिक आर्द्र भागों में शुष्क भागों की अपेक्षा उतना ही दूध प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक पशु पालने पड़ते हैं।

मिट्टी की प्रकृति, तापक्रम एवं वर्षा के अनुसार भारत के निम्न पशु विभाग किए गए हैं :—

(१) **हिमालय प्रदेशीय विभाग**—इसके अन्तर्गत भूटान, नैपाल, उत्तर प्रदेश के कुमायूं, गढ़वाल जिले तथा पंजाब की शिमला रियासतें, कागड़ा एव कूलू की घाटी और जम्मू तथा काश्मीर सम्मिलित किये जाते है। इस प्रदेश में भेड़ बकरियाँ ही मुख्य पालतू पशु हैं और इनसे ऊन प्राप्त करना मुख्य उद्योग है। इन भागों का ऊन श्वेत और उत्तम किस्म का होता है। शहद की मक्खियाँ पालने का धंधा भी किया जाता है।
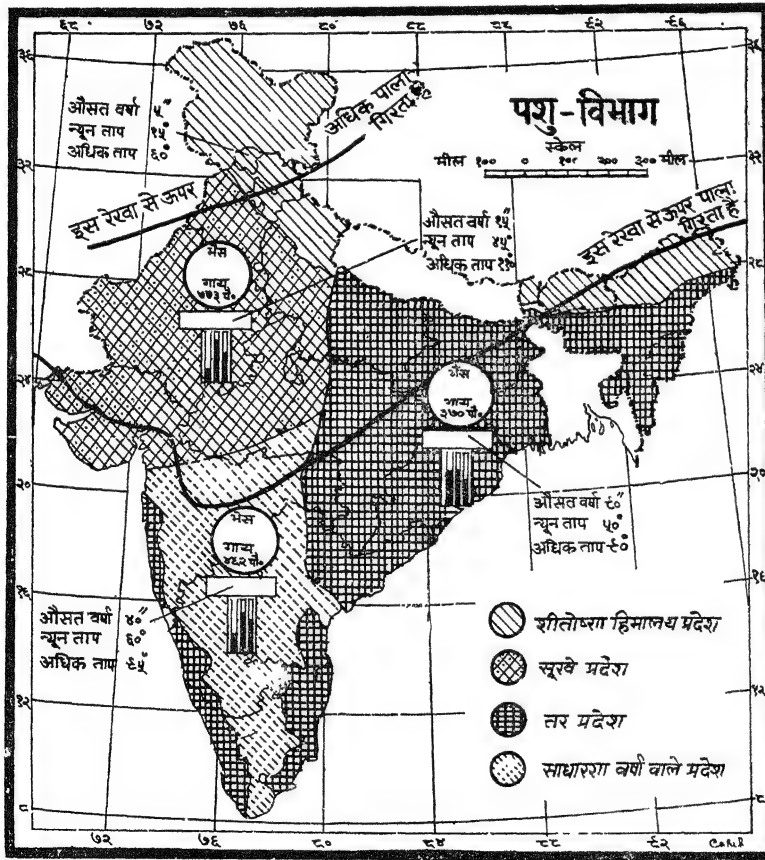
चित्र १३१. भारत के पशु-विभाग

(२) **उत्तरी शुष्क जलवायु**—पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग इसमें सम्मिलित होते है। यहाँ मुख्यतः ऊँट, घोड़े तथा गदहे अधिक मिलते है। शुष्क भाग होने के कारण यहाँ गेहूँ का उत्पादन सिंचाई के सहारे किया जाता है। इस भाग मे दूध देने वाले पशुओं की उत्तम नस्लें पाई जाती है जिनके लिए अधिकाश भागों में चारा पैदा किया जाता है।

(३) **पूर्वी और पश्चिमी तर विभाग**—इस विभाग में बिहार, बंगाल, उड़ीसा आसाम, पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी मद्रास, केरल राज्य, पश्चिमी समुद्र तटीय पट्टी तथा आंध्र प्रदेश सम्मिलित किये जाते है। इन भागों मे वर्षा १२५ सेंटीमीटर से अधिक होती है अतः चारे के अन्तर्गत बहुत ही कम भूमि बोई जाती है। चावल इन भागों की मुख्य उपज है। इसी के डठल पशुओं को खिलाये जाते है। इसमें पोषक तत्त्व अधिक नही होते अतः इन भागों के पशु भी छोटे, दुबले-पतले और कम दूध देने वाले होते है। भैस और भैंसे दोनों ही अधिक पाले जाते है जिनसे दूध लेने और खेती मे काम करने को प्रयुक्त किया जाता है।
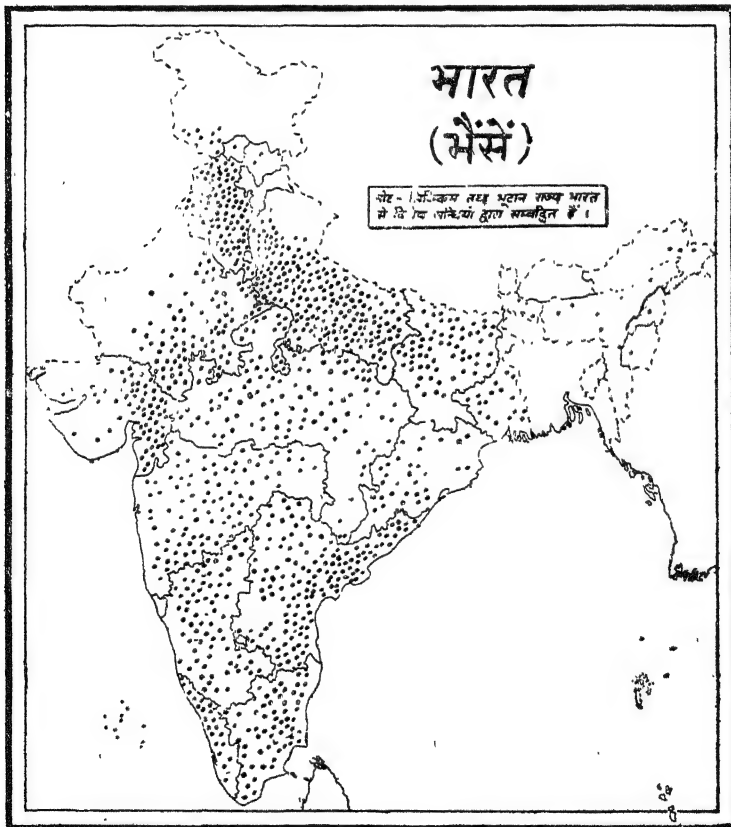
चित्र १३२. भारत में भैंसें

(४) **मध्यम वर्षा वाला विभाग**—इसके अंतर्गत काली मिट्टी के प्रदेश—मध्य प्रदेश, आंध्र के पश्चिमी भाग, मैसूर, पूर्वी महाराष्ट्र, पश्चिमी मद्रास और दक्षिणी उत्तर प्रदेश— सम्मिलित हैं। यहाँ वर्षा १२५ सैंटी मीटर से कम होती है। ज्वार, बाजरा, रागी आदि मोटे अनाज यहाँ की मुख्य फसलें हैं। इस विभाग में भारत मे सबसे अधिक भेड़ें पाली जाती है किन्तु इनका ऊन अच्छे किस्म का नहीं होता।

भारत से चमड़ा और खालों का निर्माण मुख्यतः पश्चिम जर्मनी, अमरीका, ब्रिटेन, रूस, चैकोस्लोवाकिया, आदि देशों को किया जाता है। १६६१-६२ में ८·२२ करोड़ रु० का निर्यात किया गया तथा १६६२–६३ मे १०·८४ करोड़ रुपये का।

भारत में विश्व के पशुओं का छठा भाग और प्रायः आधी भैंसें हैं। लेकिन यह न तो क्षेत्रफल के अनुपात मे और न जनसंख्या के अनुपात में अधिक हैं। देश में पाये जाने वाली गायों और भैंसों का केवल ३६% ही दूध देने वाली हैं। भैंस के दूध का वार्षिक उत्पादन ५०० किलोग्राम का है, जब कि प्रति गाय के दूध का वार्षिक उत्पादन १८६ किलोग्राम ही है।

चौपायों की नस्लें (Cattle Breeds)

भारत में चौपायों की नस्ल तीन प्रकार की पाई जाती है :—

(१) **दूध देने वाली नस्ल** (Milch Breeds)—इस प्रकार की नस्ल से दूध अधिक मिलता है तथा बैलों से साधारण ढोने का काम लिया जा सकता है। इस नस्ल वाले पशु हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इनके सींग घुमावदार होते हैं। इस प्रकार की नस्ल वाली मुख्य गायें **गिर, साहीवाल, सिंधी और देवनी** हैं। पजाब की **हांसी** और **हरियाना** तथा **गिर** नस्लों से दुग्धकाल में १५७५ किलोग्राम, **सिंधी** से २७०० किलोग्राम और **साहीवाल** तथा **मुर्रा** से २२५० किलोग्राम दूध तक प्राप्त होता है। दिल्ली की **मुर्रा,** सौराष्ट्र की **जाफराबादी**, गुजरात की **महसाना** और पंजाब की **रोहतक** भैंसें भी अधिक दूध देती हैं।

(२) **सामान्य उपयोग वाली नस्लें** (General Utility Breeds)—इस प्रकार की नस्लों मे गायें अच्छा दूध देने वाली और बैल बोझा ढोने योग्य होते हैं। इसमें दो प्रकार के चौपाये मुख्य हैं : (१) एक वे जिनके सीग छोटे होते हैं तथा रंग सफेद या भूरा होता है—जैसे **हरियाना, ऑंगोल, गोआलो, कृष्णा-घाटी** नस्ल आदि; (२) दूसरे प्रकार के वे जिनका रंग भूरा होता है, शरीर हृष्ट-पुष्ट और पेशानी चौड़ी होती है—जैसे **थारपरकार** और **कंकरेज**।

(३) **बोझा ढोने वाली नस्लें** (Draught Breeds)—इस प्रकार की नस्ल में गायें बहुत ही कम दूध देने वाली होती हैं किन्तु बैल बोझा ढोने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं। इनमें मुख्य **नागोरी, बचौर, कन्कथा, माल्वी, खैरीगढ़, हल्कीकर, कंग्याम, अमृतमहल, खिलारी, पंवार और सीरी** हैं।

इनके अतिरिक्त भारत में अनेक प्रकार की भैंसों की नस्लें भी मिलती हैं, जैसे **मुर्रा- महसाना, नीली, सूरती, पंढ़ारपुरी, तैलंगाना, एलिचपुरी, परलाकीबेदी, रावी** और **जाफराबादी**। ये नस्ल अधिक दूध देने वाली होती हैं। जाफराबादी भैंस से

एक ही दुग्ध काल में कभी-कभी १३५० किलोग्राम तक दूध मिलता है जबकि साधारण नस्ल की भैंस से ६७५ किलोग्राम तक ही दूध मिलता है।

भारत में सबसे अधिक भैंस उत्तर प्रदेश में २१ प्रतिशत,मद्रास में १५ प्रतिशत, गुजरात महाराष्ट्र में ६ प्रतिशत में पाई जाती हैं। भैंस पालने वाले अन्य राज्य राजस्थान, बिहार और आंध्र है।

नीचे की तालिका मे भारत में मिलने वाली मुख्य नस्लें बताई गई हैं :—

राज्य	गाय	भैंस
आंध्र-मद्रास मैसूर	**देवनी** (उत्तर-पश्चिमी आंध्र), **ओंगोल** (ओंगोल क्षेत्र, नैलोर तथा गंतूर जिले) **कृष्णावेली** (कृष्णा-घाटी और पश्चिमी आंध्र मे) **हलीकर** (मैसूर के हसन, जन्कर और मैसूर जिले में) **अमृतमहल** (मैसूर) **कंग्याम** (मद्रास के कोयम्बटूर जिले में) **बरगूर** (कोयम्बटूर के बरगूर तालुक में)	**टोडा तेलंगाना, परलाकीबेदी एलिचपुरी**
गुजरात-महाराष्ट्र	**गिर** (सौराष्ट्र) **डांगी** (आकोला ताल्लुक, सोनकद ताल्लुक, नासिक, थाना, कोलाबा जिले तथा डांग जिला)	**जाफराबादी** (द० सौराष्ट्र) **सूरती** (गुजरात के चारोंतर-क्षेत्र, खैरा, बड़ौदा और नाड़ियाद जिले), **महसाना** (बड़ौदा)
	गोआली (नागपुर जिला) **कंकरेज** (कच्छ के रन के दक्षिण-पूर्व से लगाकर दक्षिण में धोलका (अहमदनगर) और पूर्व में दीसा से राधानपुर तक) **खिलारी** (शोलापुर, सतारा जिला, सतपुड़ा श्रेणी एवं दक्षिणी महाराष्ट्र के भाग)	**नागपुरी** (नागपुर, वर्धा)
मध्य प्रदेश	**गोली, मालवी** (माल्वा के पठार के सूखे भागों में तथा आंध्र के उत्तर-पूर्वी भागों में); **निमारी** (निमाड़ और खारगाँव जिले में)	**भदवारी** (गवालियर) **नागपुरी**

राज्य	गाय	भैंस
उत्तर प्रदेश	**मेवाती** (मथुरा की कोसी तहसील में); **पोंवार** (पीलीभीत और लखीमपुर खेरी जिले); **कन्कथा** (बांदा जिला), **खैरीगढ़** (खैरीगढ़ परगना)	**भदवारी** (आगरा, इटावा जिले)
पंजाब-दिल्ली	**हरियाना** (रोहतक, हिस्सार, गुडगांव, कर्नाल जिले, दिल्ली, जिंद,नाभा पटियाला), **शाहीवाल** (द० पंजाब)	**मुर्रा** (रोहतक, हिसार, गुड़गाँव, पटियाला नाभा जिंद जिले) नीली (फिरोजपुर)
	नागोरी (उत्तर-पूर्व जोधपुर जिला) **हरियाना** (जयपुर, जोधपुर, लोहारू, अलवर, भरतपुर जिले), **मेवाती** (अलवर, भरतपुर) रथ (अलवर, दक्षिणी राजस्थान) **थारपरकार**	

घी दूध आदि (Dairy Products)

भारतीय पशु बहुत ही कम दूध देते हैं। भारत में दूध की वार्षिक उत्पत्ति ५२ करोड़ ८२ लाख मैट्रिक टन है। इसमें से २२ करोड गाय का; २९ करोड़ टन भैंस का और शेष बकरी का दूध होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि दूध पैदा करने वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान है। भारत में ब्रिटेन का चार गुना, डेनमार्क का ५ गुना, आस्ट्रेलिया का ६ गुना तथा न्यूजीलैंड का ७ गुना दूध प्राप्त किया जाता है। किन्तु देश की जनसंख्या के लिये यह मात्रा भी बहुत कम है। यहाँ प्रति व्यक्ति पीछे ४·९ औंस दूध प्रयोग में आता है। जबकि न्यूजीलैण्ड में प्रति व्यक्ति दूध का उपयोग २६ औंस; आस्ट्रेलिया में १७½ औंस; इंगलैण्ड में २० औंस; कनाडा में २४ औंस, सं० रा० अमरीका में २३ औं०; जर्मनी में १६ औंस तथा हालैण्ड और बेल्जियम में २५ औं० तथा फ्रांस में १६ औंस है।[2]

नीचे की तालिका में दूध, घी मक्खन आदि का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	दूध	घी	मक्खन (हजार मैट्रिक टनों में)
१९४०	१६,९७६	—	—
१९४५	१७,८१७	—	—
१९५१	१७,२५५	३८१	७१
१९५६	१९,५५६	३९२	७४

2. *Swaminathan & Bhagwan*, Our Food, 1959, p. 82

भारत में १९५१ में दूध का कुल उत्पादन १७ करोड़ टन था। १९५६ में यह १·९ करोड़ टन और १९६१ में २२ करोड़ टन था। तृतीय योजना काल में यह बढ़कर २५ करोड टन होने का अनुमान है। इमसे प्रति व्यक्ति पीछे दूध का उपभोग ५·१ औंस हो सकेगा। यह उपभोग १९५१ में ४.७३ औंस और १९६१ में ४·९ औंस प्रतिदिन का था। पंजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, और उत्तर प्रदेश में अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक दूध का उपभोग किया जाता है।

भारत मे सबसे अधिक **दूध का उत्पादन** उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, आंध्र, गुजरात और मध्य प्रदेश में होता है। भारत में जितना दूध उत्पन्न होता है उसका ३०% भाग ताजा दूध के रूप में; ५२% घी तथा १८% खोआ, रबड़ी, मक्खन, दही, मलाई आदि बनाने में काम में लिया जाता है। बड़े पैमाने पर काम करने वाली दुग्धशालाएँ अभी बहुत ही सीमित हैं। अलीगढ़ की 'कैवेन्टर्स' आगरा की 'राधास्वामी संस्था', आनन्द की 'पोलसन' मैसूर की 'रायनकेरा' प्रमुख दुग्धशालाएँ है। अन्य दुग्धशालाएँ उटकमंड, आगरा मेरठ, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर और वाराणसी में हैं। दिल्ली में केन्द्रीय डेयरी; कलकत्ता के निकट हरिंगघट्टा; मद्रास के निकट माधवरम और बम्बई के निकट आरे में और अन्य नई डेयरियाँ अब अगरतला, भोपाल, कोयम्बटूर, गया, त्रिवेन्द्रम. चंडीगढ, पटना जयपुर, हिसार, लखनऊ, आगरा, नैलोर, कटक और श्रीनगर मे खोली गई हैं। द्वितीय योजना काल में बड़े नगरों को दूध देने के लिए ३६ डेयरियाँ खोली गई; १२ ग्रामीण मक्खन फैक्ट्रियाँ और ७ दूध की वस्तुयें तैयार करने की फैक्ट्रियाँ। तृतीय योजना के अन्तर्गत दूध वितरण करने की ५५ नई योजनायें कार्यान्वित की जायेंगी। ये १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में दूध देंगी। इनके अतिरिक्त ८ मक्खन बनाने, ४ दूध की वस्तुऐं बनाने, २ पनीर बनाने की फैक्ट्रियाँ भी स्थापित की जायेंगी।

घी उत्पन्न करने वाले मुख्य राज्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र, गुजरात, पंजाब और बिहार है। अनुमानतः समस्त घी की उत्पत्ति का $\frac{३}{५}$ उत्तरी और पश्चिमी भारत में तथा $\frac{२}{५}$ शेष भारत में होता है। कुल उत्पादत का ३० प्र० श० गाँवों में ही खप जाता है, केवल ७० प्रतिशत घी नगरों के लिये प्राप्त होता है। भारत में प्रति वर्ग मील ९ मन घी, गाँव में २१ मन और प्रति १०० मनुष्यों के पीछे ३$\frac{१}{२}$ मन घी उत्पन्न होता है। घी का निर्यात ब्रह्मा, मलाया, पूर्वी अफ्रीका आदि देशों को किया जाता है। घी का आयात नैपाल और पाकिस्तान से होता है।

भारत में दूध का उपयोग (मनों में)[3]

	१९५१ (दूध का उपयोग)	१९५६
दूध का कुल उत्पादन	४६६,३५०,९३३	५२८,२५७,१३२
दूध के रूप में उपभोग	१८२,२५३,७३१	२०६,५८२,६०१
दूध से तैयार किये जाने वाले पदार्थ :		
घी	१८६,९८६,२७८	२१०,३०९,९७६
खोआ	२०,५९८,३१८	२३,९८५,१७२

3. Agricultural Situation in India, Augusr, 1962, p. 465

मक्खन	२७,९७३,७६५	३१,४५७,०३२
दही	४१,२४७,८३४	४७,८५४,४००
मलाई की बर्फ	२,१८२,५३२	२,४७८,६४८
मलाई	३,३५६,६२६	३,८१७,७४१
अन्य पदार्थ	१,७४९,८४९	१,७७१,५६२

पशुओं की अवनति के कारण :—

भारत में पशुओं की हीन अवस्था और निम्न मात्रा में दुग्ध उत्पादन के निम्न कारण हैं :—

(१) भूमि पर पशुओं का भार बहुत अधिक है इससे उनके लिए जनसंख्या के भार से बची निकृष्ट भूमि से आवश्यक चारा प्राप्त नहीं होता। उष्ण-कटिबन्धीय जलवायु के कारण गोचारण भूमियाँ अविकसित है। प्रति १०० एकड बोई गई भूमि पर यहाँ १०० पशु पाले जाते हैं जबकि हालैंड और मिश्र की प्रति १०० एकड़ जोती बोई गई भूमि पर क्रमशः ३८ और २५ पशु ही पाले जाते हैं। उचित चारे का प्रबन्ध न होने पर दूध देने वाले और हल खींचने वाले पशुओं की शक्ति में ह्रास होता जाता है। कुछ गायों की जनन-शक्ति चारे के अभाव में कम हो जाती है।

(२) पशुओं को उचित मात्रा में पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। साधारणतः मकई, जई और जौ आदि अन्न निर्धन कृषकों का मुख्य भोजन है अतः पशुओ को केवल सूखी फसलों के डंठलों से प्राप्त कुट्टी और भूसे पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मार्च से जून तक चारे का भी अभाव हो जाता है। पशुओं के लिए केवल ४% बोई जाने वाली भूमि पर चरी, बरसीम, रजका आदि बोया जाता है जबकि, इङ्गलैंड में २५% तथा मिश्र में १९% बोई जाने वाली भूमि पर पशुओं के लिये चारा अथवा अन्न उत्पन्न किया जाता है।

(३) निर्धन और अशिक्षित किसान वैज्ञानिक रीति द्वारा पशु-पालन क्रिया से अनभिज्ञ हैं। चारे की कमी के कारण उत्तम और निकृष्ट सभी प्रकार के पशुओं को एक ही चरागाह में चराया जाता है। इससे निम्न श्रेणी के सांड़ों के सम्पर्क में आने के कारण गायें दुर्बल तथा निकृष्ट श्रेणी के ही बछड़ों या गायों को जन्म देती हैं। इससे निरन्तर पशुओं की जाति बिगड़ती जा रही है। न केवल उत्तम सांड़ों की ही कमी है वरन् कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों का भी अभी तक अभाव है।

(४) गायों और भैंसों को एक ही साथ चराये जाने, गन्दा पानी पीने और सड़ी गली वस्तुओं को खाने और गन्दे तथा अँधेरे बाड़ों में रहने के कारण वे अनेक रोगों से पीड़ित रहती हैं। वर्षा के दिनों में इनमें पैर और मुँह की बीमारियाँ हो जाती हैं। ये रोग संक्रामक होते हैं जो एक पशु से शीघ्र ही दूसरे को फैलते है। इससे बड़ी संख्या में पशुओं का विनाश हो जाता है।

पशु सुधार के उपाय

अतः पशु सुधार के लिए पहला कदम यह होना चाहिये कि चारे के उत्पादन में यथाशक्ति वृद्धि की जाय और वर्तमान उत्पादन की उचित सुरक्षा से गायों के

लिए काफी चारा प्राप्त किया जाय। चारे की कमी सम्बन्धी समस्या को हल करने के लिए हमें अन्य समस्त साधनों का उपयोग करना चाहिये। ये साधन निम्न-लिखित हैं :—

१. वर्षा काल में उत्पन्न होने वाली सूखी घास तैयार करने का काम देश भर में आरम्भ किया जाय। (२) जंगल विभाग की आधीनता में बहुत-सी घास उत्पन्न होती है जिससे पशुओ के काम आने लायक घास का चारा बनाया जा सकता है। (३) ऐसी फसलें बोई जाँय जिससे केवल पोषक तत्व वाला चारा ही न मिले बल्कि बोई जाने वाली भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़े। ऐसी फसलें मटर और बर-सीम घास हैं। घास पत्ते जो सबसे ज्यादा पौष्टिक हों और जिनका प्रति एकड़ उत्पा-दन भी काफी हो लगाये जांय जिससे किसान को उतनी ही जमीन से अधिक चारा मिल सके और रुपया देने वाली फसल के लिये भी काफी जमीन रह जाये। (४) तिलों की खली भी पशुओं को खिलाई जा सकती है। (५) भारतीय पशु चिकित्सा अनुशंधानशाला के प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि आम की गुठली की गिरी, मूँज, काँस, जामुन की गुठली, बबूल की फली, मूँगफली के छिलके आदि में पोषक तत्व अच्छी मात्रा में होते हैं और उन्हें पशुओं को खिलाया जा सकता है। (६) धान में पोषक तत्वों की जो कमी होती है उसे हड्डी की भस्म मिलाकर पूरा किया जा सकता है। (७) यदि मिली-जुली खेती की जा सके तो पशुओं के चारे का प्रबन्ध भली भाँति किया जा सकता है। (८) यदि चारे से छिलके उतार लिये जाँय तो ३० प्रतिशत व्यर्थ जाने वाले चारे को बचाया जा सकता है। (९) ऐसे पेड़ों को लगाया जाय जिनकी पत्ती व छाल पशुओं को खिलाई जा सके; और (१०) देश में मछली मारने के उद्योग का विकास किया जाय ताकि पशुओं को मछली से तैयार किया हुआ पोषक खाद्य दिया जा सके।

२. अभी चलने वाले अविचारपूर्ण संयोग के कारण हमारे पशुओं की नस्ल बहुत गिर गई है। कुछ एक गिरोह की चुनी हुई गायों में, जहाँ साँडों का चुनाव अच्छा हुआ है और संयोग व्यवस्थित रूप से कराया गया है, यह पाया गया है कि दूध का उत्पादन २५ वर्ष में ही चौगुना हो गया है। मामूली ग्रामीण गायों का उत्तरोत्तर उच्च कोटि के साँडों से संयोग कराकर ही स्थायी रूप से नस्ल सुधारी जा सकती है, यद्यपि ऐसा करने में समय काफी लगेगा।

पशु धन में सुधार करने के लिए वैज्ञानिक ढंग पर पशुपालन होना आवश्यक है। कितने ही सरकारी फार्मों पर विभिन्न नस्ल के साँड तैयार किये जाते हैं और फिर उन्हें नस्ल सुधारने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में वितरित कर दिया जाता है। प्रजनन के लिए प्रतिवर्ष लगभग १० लाख साँड उपलब्ध होते हैं परन्तु यह संख्या देश की आवश्यकता का एक बहुत ही थोडा भाग पूरा करते हैं। इसलिए नस्ल की सुधार के लिए ये उपाय किये जा सकते हैं :—(क) फार्म से प्राप्त साँडों को एक विशेष क्षेत्र में इकट्ठा किया जाय, (ख) ऐसी नस्लों का विकास करने का प्रयत्न किया जाय जिससे दुधारू गायों के साथ सबल बैल भी प्राप्त हो सकें। (ग) कृत्रिम ढङ्ग से गर्भाधान।

३. चराई और नस्ल सुधार के अतिरिक्त अच्छी व्यवस्था भी किसी पशु

उन्नति के कार्य में प्रधान कार्य होना चाहिये। गाय एक जीती जागती मशीन है और उससे अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिये उसकी आवश्यकताओं पर सतत ध्यान देना आवश्यक है। बीमार गाय न तो अच्छा दूध ही दे सकती है और न अच्छे बैल ही। अतः उन्हें स्वस्थ रखने के लिए रहने की उचित व्यवस्था, परिश्रम और ताजे पानी की आवश्यकता होती है। हमारे गाँव इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए बिल्कुल ही साधनहीन हैं।

द्वितीय एवं तृतीय योजना के अन्तर्गत कार्यक्रम

पशुओं की दशा सुधारने के लिये सरकार की निम्नलिखित मुख्य योजनायें हैं :—

(१) **गो-सदन** : बूढ़ी, अशक्त, दुर्बल और बेकार मवेशी को अच्छी नस्ल के अशुओं से अलग रखने की योजना है जिनका मुख्य उद्देश्य एक ओर भारतीय जनता की इस माँग पर ध्यान देना है कि कसाई घर बन्द किए जायें और दूसरी ओर व्यर्थ पशुओं के द्वारा चारे और कृषि तथा नस्ल की हानि को रोकना, प्रथम पंचवर्षीय योजना में २५ गोसदन और द्वितीय योजना में ३४ नये गोसदन स्थापित किये गए। तृतीय योजना में २५ गोसदनों की और स्थापना की जायेगी।

(२) **गोशालाऐं** : द्वितीय योजना में भारत की लगभग ३,००० गोशालाओं में से लगभग २४६ गोशालायें चुनी गई, यहाँ पशुओं की दशा सुधारी गई। इन गोशालाओं के व्यर्थ और अनुत्पादक मवेशी को गो-सदनों में भेज दिया जाता है। सरकार इन गोशालाओं में अच्छी नस्ल के पशु भी रखती है। तीसरी योजना में १६८ गोशालायें और पशु सुधार हेतु चुनी जायेंगी।

(३) **ग्राम-केन्द्र योजना** (Key Village Scheme) : प्रत्येक ग्राम-केन्द्र के अन्तर्गत तीन या चार गाँवों की तीन साल से अधिक अवस्था वाली लगभग ५०० गायें सम्मिलित की जाती हैं। इस योजना का मुख्य उद्देश्य नस्ल सुधार करना है। इस योजना के द्वारा निर्धारित चुने हुये ग्रामों में नस्ल का कार्य चुने हुए सांड़ों द्वारा कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों द्वारा किया जाता है। अन्य बैलों को बधिया कर दिया जाता है या हटा दिया जाता है। कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र लगभग ५००० गाँवों के लिये काफी होता है। नस्ल सुधारने के अतिरिक्त ग्राम केन्द्र योजना बछड़ों के पालन, चारे की व्यवस्था तथा पशुओं से मिलने वाले पदार्थों की बिक्री का सहकारी ढङ्ग पर प्रबन्ध करती है। द्वितीय योजना तक २००० ग्राम केन्द्र और ६७० कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित किये गए। इस योजना के द्वारा लगभग २२,००० अच्छी कोटि के साँड ९५०,००० अच्छे बैल और १० लाख अच्छी गायें प्राप्त हुए। तृतीय योजना के अंतर्गत ३५ नये ग्राम केन्द्र ब्लॉक खोले जायेंगे तथा ३७१ कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र।

(३) **पशुओं की बीमारियों की रोक** : प्रथम योजना काल में पशुओं की बीमारियों को रोकने के लिये सन् १९५१ में पशु चिकित्सालयों की संख्या २००० थी, सन् १९५६ में ४००० हो गई। तृतीय योजना के अंत तक प्रत्येक विकास खंड में एक पशु चिकित्सालय खोला जायगा अर्थात् १९६५-६६ तक यह संख्या ८००० हो जायगी।

(४) **उत्तम सांड केन्द्र** : उत्तम प्रकार के सांडों की प्राप्ति के लिए अभी

१२५ सरकारी फार्म है जहाँ प्रतिवर्ष लगभग ५००० बैल उत्पन्न किये जाते हैं। तृतीय योजना में ११ नये सांड-उत्पादक केन्द्र और स्थापित किये जायेंगे।

बकरियाँ (Goats)

बकरी गरीब की गाय समझी जाती है। इससे दूध, चमड़ा और बाल मिलते हैं। इसका दूध स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा लाभदायक माना जाता है। भारत में ६६ करोड़ बकरियाँ पाई जाती हैं जिनसे लगभग १.६ लाख टन मांस की प्राप्ति होती है। इनसे प्रति वर्ष लगभग २ २ करोड खालें और ७० लाख पौंड वस्त्र प्राप्त होते हैं जिनका मूल्य ६.६ करोड़ और ७२ लाख करोड़ रुपया अनुमानित किया गया है।
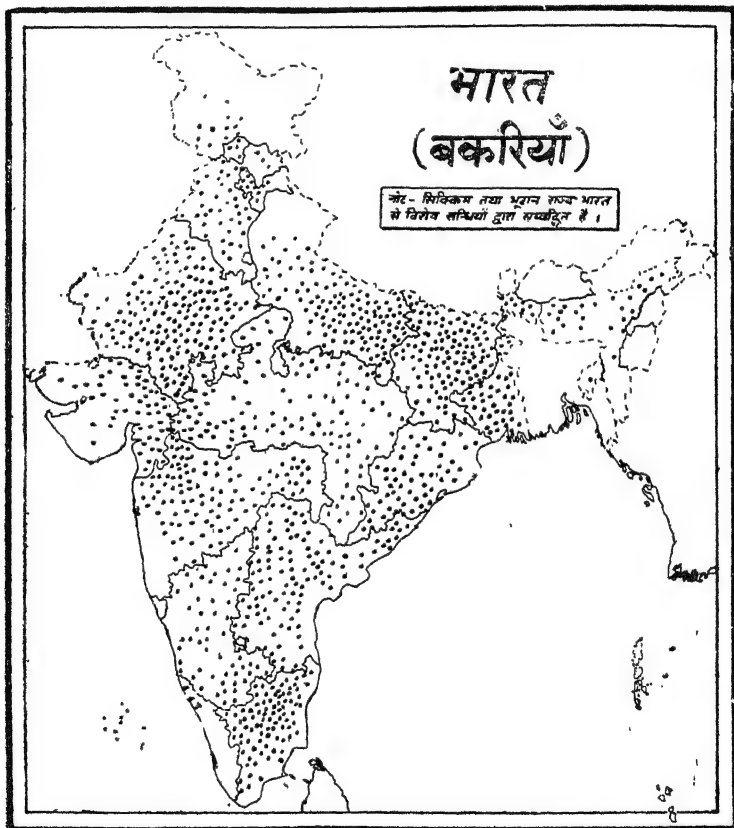
चित्र १३३. भारत में बकरियाँ

बकरियाँ भारत में सभी क्षेत्रों में पाई जाती हैं किन्तु इनका पालन विशेषतः दो क्षेत्रों में होता है :—

पहला क्षेत्र सौराष्ट्र और गुजरात से आरम्भ होकर पूर्वी राजस्थान होता हुआ पंजाब तक फैला है। पूर्वी राजस्थान से यही क्षेत्र पूर्वी उत्तर-प्रदेश और उत्तरी बिहार में होता हुआ बंगाल तक चला गया है।

दूसरा क्षेत्र महाराष्ट्र आन्ध्र, मैसूर, और मद्रास राज्यों में फैला है।

(१) **हिमालयी बकरी** (Himalayan Coat) : इसके बाल सफेद होते हैं। यह मुख्यत: पश्चिमी क्षेत्र में हिमालय प्रदेश, पंजाब और काश्मीर के राज्यों में भार-वहन करने और दूध के लिए पाली जाती है। हल्की किस्म का पश्मीना ऊन इन्हीं से प्राप्त होता है। विभिन्न स्थानीय भागों में इन्हें **चम्बा गड़ी** और **काश्मीरी** नामों से पुकारते हैं। इन बकरियों पर बाल अधिक और मुलायम होते हैं। औसतन एक बकरी से ३/४ औंस तक बाल मिल जाते हैं। हिमालय से दूर पश्चिमी मैदान में अन्य नस्लों की बकरियाँ भी मिलती हैं जिनमें मुख्य **मारवाड़ी** और **महसाना** नस्ल है।

(२) **जमुनापारी** (Jamunapari) : इस नस्ल की बकरियों का मुख्य आवास क्षेत्र जमुना, गंगा और चम्बल नदियों के बीच की भूमि है। इनसे भी भार ढोने और दूध प्राप्त करने का काम लिया जाता है। इनका रंग सफेद तथा भूरा होता है और इनके कान साधारणत: १० से १२ इंच तक लम्बे होते हैं। इनसे दुग्धकाल में साधारणत ८०० से १२०० पौंड तक दूध मिलता है।

(३) **बड़बारी** (Barwari) : इस प्रकार की नस्ल के बाल छोटे और सफेद या ललाई लिए हुए होते हैं। दिल्ली, गुड़गाँव और करनाल जिलों में मुख्यत: पाई जाती है। अनुकूल परिस्थितियों में इनसे २ से ३ पौंड दूध प्रति दिन मिल जाता है।

सूरती (बम्बई), **बङ्गाली** (बगाल), **कोची** (आंध्र), **मालबारी** (केरल) **कच्छी** (कच्छ), **छापर** (राजस्थान) आदि अन्य मुख्य नस्लें हैं।

भेड़ें (Sheeps)

भारत में भेड़ों का विस्तृत क्षेत्र ६३ से १०२ सेंटीमीटर इंच वर्षा वाले पहाड़ी भागों में है जहाँ उत्तम चरागाह पाये जाते है। भारत में लगभग ४ करोड़ भेड़ें हैं। ये अधिकतर शीतल और सूखे स्थानों में मिलती हैं। गर्म और नर्म भागों में इनकी संख्या बहुत ही कम है क्योंकि इस जलवायु में इनका खुर का रोग हो जाता है और यद्यपि इनकी ऊन अच्छी होती है किन्तु मास की दृष्टि से इनका कोई स्थान नहीं होता। भेड़ों को दो दृष्टि से पाला जाता है : (१) उनसे बढ़िया किस्म का ऊन प्राप्त किया जाता है। औसतन एक भेड़ से १½ पौंड ऊन प्रति वर्ष मिल जाता है। ऊन का उत्पादन देश में लगभग ३१२ लाख किलोग्राम प्रति वर्ष का होता है। किन्तु, इसमें से अधिकांश ऊन मोटा और खुरदरा तथा रंगीन ही है। इसमें से आधा विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। लगभग १·५ से १·७ करोड़ पौंड साफ किया ऊन विदेशों से आयात भी किया जाता है। १९६१-६२ में भेड़ें और ऊन आदि का निर्यात मूल्य ७ करोड़ रुपये का था।

(२) भेड़ें माँस के लिए भी पाली जाती हैं किन्तु इसकी मात्रा बहुत ही कम होती है। भेड़ों के मांस की वार्षिक प्राप्ति ९० करोड़ पौंड है।
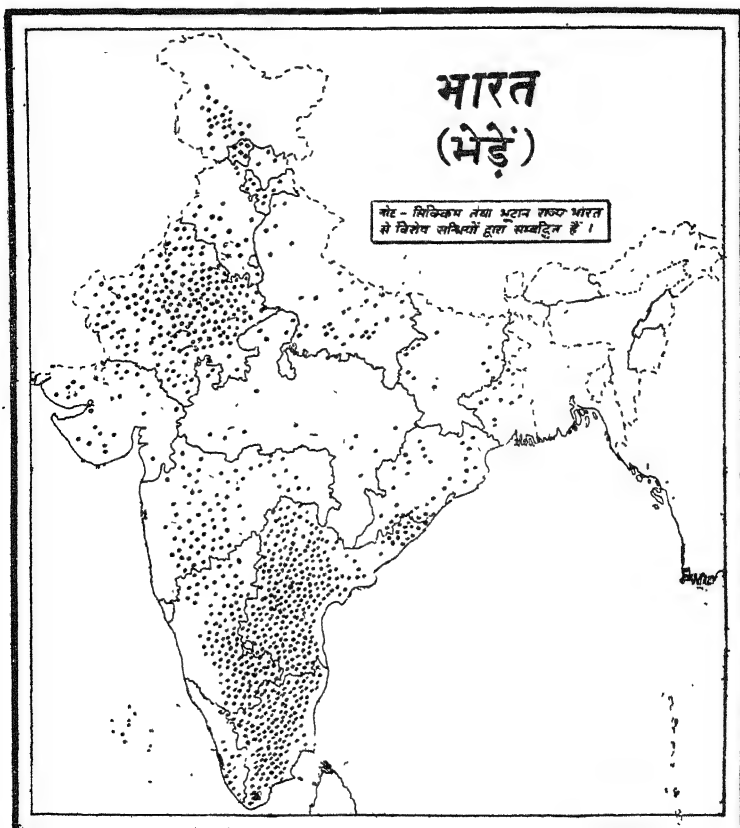
चित्र १३४—भेड़ों का वितरण

उत्तरी भारत की भेड़ें दक्षिणी भारत की भेड़ों की अपेक्षा अधिक अच्छी और सफेद बालों वाली होती है। दक्षिण की भेड़ों का रंग गहरा होता है। दोनों ही क्षेत्रों की ऊन छोटे रेशेवाली होती है।

भेड़ें पालने वाले मुख्य क्षेत्र पंजाब में लुधियाना, अमृतसर, अम्बाला, हिस्सार और पटियाला जिले; उत्तर-प्रदेश में गढ़वाल, अलमोड़ा और नैनीताल जिले; मद्रास में कर्नूल और कोयम्बटूर जिले; मैसूर में बलारी; महाराष्ट्र में खानदेश; सौराष्ट्र एवं गुजरात क्षेत्र और राजस्थान में जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर जिले हैं।

भारत में भेड़ों की कई नस्लें पाई जाती हैं, किन्तु उत्तम नस्लें काश्मीर, उत्तर-प्रदेश और पंजाब राज्य से प्राप्त होती हैं। हिमालय के पर्वतीय ढालों पर २,७४३ से ३,६५८ मीटर की ऊँचाई तक चरागाह पाये जाते हैं। ग्रीष्मकाल में गड़-

रिये भेड़ों को यहाँ चराने के लिए ले जाते है किन्तु शीतकाल के प्रारम्भ होते ही पुनः घाटियों में लौट आते है। जो भेड़ें निचले ढालों पर ही चरती हैं उनका ऊन खुरदरा होता है। उत्तम प्रकार का ऊन उन भेड़ों से प्राप्त किया जाता है जो शुष्क और ठण्डे भागों में पाली जाती है। हिमालय के पूर्वी जिलो में-चम्बा, कूलू और काश्मीर की घाटी में—उमदा बालों वाली भेड़ें पाली जाती है। काश्मीर की गुरेज तहसील में **गुरेज नस्ल** की भेड़ें पाली जाती है। ये बिना सीग वाली होती है। इन पर ऊन की मात्रा भी अधिक होती है। यह ऊन बिलकुल सफेद होता है। औसतन एक भेड़ से वर्ष भर में ४ से ६ पौड ऊन मिल जाता है। काश्मीर की ही **करणा** तहसील में ४ से ४,५७२ मीटर की ऊँचाई पर **करणा** नस्ल मिलती है। काश्मीर हिमालय के निचले ढालों पर **भकरावाल** नस्ल मिलती है।
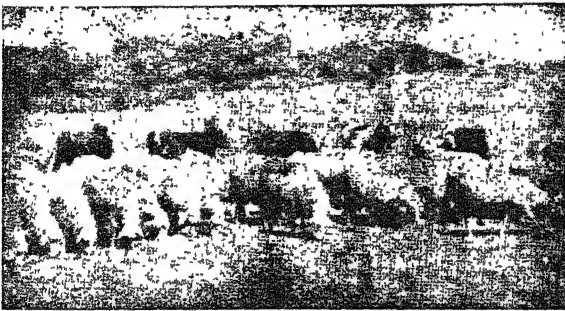
चित्र १३५. दक्षिणी भारत में नीलगिरी भेड़ों का एक रेवड़

हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी भागों में **रामपुर-बुशायर** नस्ल मिलती है जो गर्मियों में तिब्बत की ओर चली जाती है और सर्दियो में जमुना, टोंस और सतलज नदियों की घाटी की ओर लौट आती हैं। प्रति भेड़ से ३ से ४ पौंड तक ऊन प्राप्त होता है।

भारत के पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों में ऐसी भेड़ें अधिक पाली जाती हैं जिनके बालों का उपयोग गलीचे आदि बनाने के काम आता है। राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश की भेड़े अधिक गर्मी और कठोर शीत को सह सकती है तथा ये छोटी घास पर ही निर्भर रह जाती है।

पश्चिमी भारत मे भेड़ों की मुख्य जातियाँ ये है :—

(१) **बीकानेरी** (Bikaneri)—जो बीकानेर के सूखे भागों में और पंजाब के रोहतक, लुधियाना, गुडगाँव, फिरोजपुर और अम्बाला जिले में पाई जाती है। ये भेड़ें बहुत तन्दुरुस्त होती हैं। इनका ऊन लम्बा और खुरदरा होता है। प्रति भेड से ४ से ६ पौंड तक ऊन मिलता है। यह ऊन अधिकतर गलीचे बनाने के काम में आता है। यह ऊन बड़ी मात्रा में इङ्गलैंड और उत्तरी अमेरिका को भेज दिया जाता है।

(२) **लोही** (Lohi)—यह अधिकतर राजस्थान के दक्षिणी जिलो और अमृतसर जिले में पाई जाती है। इसके ऊन से मोटे कपड़े और कम्बल बनाये जाते हैं जिनका प्रयोग अधिकतर किसान लोग करते है।

(३) **मारवाड़ी** (Marwari)—राजस्थान के जोधपुर डिवीजन में काले मुँह वाली भेड़ें पाई जाती है जिनके बाल सफेद और मिश्रित रंग के होते हैं। इस प्रकार की भेड़ें मुख्यत: पाली और बाढ़मेर जिलों में मिलती है। प्रति भेड़ पीछे-२ से ४ पौंड हल्के किस्म की ऊन की प्राप्ति होती है।

(४) **कच्छी** (Kutchi)—कच्छ के मरुस्थल तथा उत्तरी गुजरात में भूरे बालों वाली भेड़ें मिलती हैं जिनमे मांस, दूध और ऊँन तीनों ही वस्तुयें प्राप्त होती हैं तथा जो बोझा ढोने में भी अच्छी होती है।

दक्षिणी भारत में मुख्यत: दो प्रकार की भेड़ें पाई जाती है। एक वे जिनसे केवल ऊन प्राप्त होता है और दूसरी वे जिनसे मांस मिलता है।

(५) **दक्षिणी ऊन** (Deccanese)—अधिकतर महाराष्ट्र राज्य में होता है। यह घटिया दर्जे का और काले रंग का होता है। प्रति भेड से लगभग १ पौंड ऊन मिलता है।

(६) **नैलर किस्म** (Nellore Breed)—लगभग समस्त मद्रास में पाई जाती है। इस तरह की नस्ल से अधिक मास मिलता है किन्तु ऊन बहुत कम होती है।

भारत की भेडों की नस्लें उतनी अच्छी नहीं होतीं जितनी कि आस्ट्रेलिया की भेड़ों की। यहाँ पर साल मे एक भेड़ मे सिर्फ दो पौंड ऊन ही मिल सकती है जबकि आस्ट्रेलिया में प्रति भेड ७½ पौंड ऊन प्रति वर्ष देती है। भारत में प्रति वर्ष कुल ऊन लगभग ६.५ करोड़ पौंड (३१२ लाख कि० ग्राम) होती है।

भारतवर्ष में फारस, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, आस्ट्रेलिया तथा नैपाल से भी ऊन आता है। आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त और सब देशों से खुश्की के रास्तों से भी ऊन आता है। आस्ट्रेलिया का ऊन उत्तम प्रकार का होता है। अतएव इसकी माँग भारतवर्ष के ऊनी कपड़ों के मिलों में अधिक होती है। तिब्बत से भी ऊँचे प्रकार की पश्मी ऊन आती है जो कि दार्जिलिंग के निकट कलिंगपोंग तथा उत्तर प्रदेश के तनकपुर में इकट्ठी की जाती है।

तृतीय योजना के अंत में ऊन का उत्पादन ९ करोड़ पौंड और निर्यात का मूल्य ३५ करोड़ रुपये होने का है। इस योजना काल में भेड़ें पालने के केन्द्रों की संख्या ४ से बढ़कर १५ हो जायेगी जिनमें २ से २½ भेडे गाँवों में भेड़ पालने वालों को वितरित की जा सकेंगी।

रेशम के कीड़े पालना (Sericulture)

देश की लगभग ३/४ **शहतूती रेशम** का उत्पादन मैसूर राज्य में होता है। इस किस्म की रेशम पश्चिमी बंगाल, जम्मू-काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, आसाम, मद्रास, आन्ध्र प्रदेश, बिहार और हिमाचल प्रदेश में भी होती है। शहतूती रेशम गहरा पीला होता है।

टसर रेशम के कुल उत्पादन का ५०% मध्य प्रदेश, ३९% बिहार और ७% उड़ीसा से प्राप्त होता है। इस रेशम का एक मात्र उत्पादन कबायली लोगों द्वारा ही किया जाता है। भारतीय टसर के कीड़े तीन प्रकार के होते हैं—एक प्रजनन

वाले, द्वि-प्रजनन वाले तथा त्रिप्रजनन वाले। ये अधिकतर महुआ, ढाक, साल, बेर, आसन, कुसुम आदि वृक्षों पर पाला जाता है।

ईरी रेशम के कुल उत्पादन का ९०% आसाम मे तैयार किया जाता है। यह रेशम नरम और बादामी हल्के रंग का होता है और शहतूती रेशम से खुरदरा तथा कम चमकीला होता है।

मूंगा रेशम का एकमात्र उत्पादन आसाम की घाटी में उत्तरी आसाम का **अहोम**, दक्षिणी कामरूप की **गारो**, **रभास** और **कचारी** तथा नवगाँव की **लहुँग** जातियों द्वारा किया जाता है। यह रेशम सुनहरा-पीला होता है।

रेशम के कीड़े १८° से० ग्रेड से लगाकर २४ से० ग्रेड तक की गर्मी में सरलता से पैदा हो सकते है अर्थात् इस दृष्टि से सम्पूर्ण भारत में ही किसी न किसी मौसम में रेशम के कीड़े पाले जा सकते है। बंगाल, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश के कुछ भागों में और मद्रास के समुद्रतटीय जिलों में तो यह साल भर ही (अधिक गर्मी की ऋतु को छोड़ कर) पाले जा सकते है। जिन वृक्षो की पत्तियों पर ये पाले जाते हैं वे प्रायः प्रत्येक कटिबन्धो तथा मिट्टियों में उग सकते है।

चित्र १३६. काश्मीर के रेशम के कोये तैयार किये जा रहे है

रेशम का उत्पादन इस प्रकार है :[३]—

वर्षा	शहतूत फिलेचर	शहतूत काटेज बेसीन	शहतूत चरखा	शहतूत ड्यूपिअन	अन्य टसर	अन्य एरी	अन्य मूँगा	योग
	(टनों में)							
१९५८	१३१	६२	९१६	३१	१६०	१३५	९३	१,५२८
१९५९	१२६	८९	८९४	३२	१६२	१२८	८४	१,५१५

३. उद्योग व्यापार पत्रिका जनवरी, १९६४, पृ. ६४६.

१९६०	१५७	१४२	८२१	३४	१७९	११२	५४	१,५९९
१९६१	१६१	१७०	८८९	४४	२०३	१३३	५६	१,६५६
१९६२	१७६	३२०	८५०	४५	२०२	१३३	४५	१,७८१

भारत में रेशम के कीड़े अधिकतर तीन भागों में पाले जाते हैं : (१) मैसूर के पठार का दक्षिणी भाग और मद्रास का कोयम्बटूर जिला, (२) पश्चिमी बंगाल के मालया, मुर्शिदाबाद, वीरभूम जिला, और (३) पंजाब के कुछ जिले और काश्मीर तथा जम्मू में।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त **टसर** कीड़ा छोटा नागपुर, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में तथा **मूंगा** और **एण्डी** कीड़े आसाम में पाले जाते हैं। इन कीड़ों से रेशम प्राप्त किया जाता है। सबसे अच्छा रेशम काश्मीर और आसाम में होता है।

मत्स्य पालन (Fishing)

भारत जैसे विशाल देश में—जहाँ विस्तृत समुद्री किनारे,वर्ष भर पानी से भरी हुई २७,३५९ किलोमीटर लम्बी नदियाँ और सिंचाई की ११२,६५४ कि०मी० लंबी नहरें तथा उनकी प्रशाखायें तथा वर्षा-जल से पूर्ण असंख्य तालाब और झीलें हैं—मछलियाँ पकड़ने के लिए विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। अब तक भारतीय समुद्रों में १,८०० प्रकार की मछलियाँ ज्ञात हो चुकी हैं किन्तु कुछ ही किस्मों की मछलियाँ यहाँ पर्याप्त परिमाण में पकड़ी जाती है। भारत में मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र समुद्र तटीय सीमायें हैं। इनके अतिरिक्त नदियों के मुहाने, नदियाँ, सिंचाई की नहरें, बाढ़वर्ती क्षेत्र, झीलें आदि भी मछली पकड़ने के मुख्य क्षेत्र हैं। भारत की समुद्रतटीय रेखा लगभग ५,७०० किलोमीटर लम्बी है और उस समुद्र का क्षेत्रफल जो १८३ मीटर गहरा है लगभग २·७५ लाख वर्ग कि० मी० है किन्तु इस क्षेत्रफल का बहुत थोड़ा भाग ही काम में आता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि अभी तक तट से १० से १६ कि० मीटर के क्षेत्र तक ही मछलियाँ पकड़ने के केन्द्र सीमित है।[४] सम्पूर्ण समुद्री मछलियों के केवल ५–६%क्षेत्रफल में ही मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। नदियों के मुहाने और नदियों में भी मछली पकड़ने का काम किया जाता है। इनसे देश के भीतर काफी परिमाण में मछलियों की पूर्ति हो जाती है।

समुद्र, नदियों और झीलों आदि से पकड़ी जाने वाली मछलियों से भारत को प्रतिवर्ष लगभग ६० करोड़ रुपये की आय होती है। देश के लम्बे समुद्रतट पर लगभग ७३,४०० नावें मछली पकड़ने में व्यस्त रहती हैं और इनसे लगभग १० लाख मछुए जीविका कमाते हैं। भारत में मछलियों का उत्पादन १९५१ में ७ लाख टन, १९५६ में १० लाख टन और १९६१ में १४ लाख टन का हुआ। इसमें से ११ लाख टन समुद्र से और ३ लाख टन भीतरी जलाशयों तथा नदियों से प्राप्त किया गया है। पौष्टिक विज्ञान के अनुसार प्रति दिन ३ औंस मछली के उपभोग की मात्रा से भारत को प्रतिवर्ष ४५.५ मैट्रिक टन की आवश्यकता होती है किन्तु उत्पादन

4. Third Five Year Plan, p. 190.

लगभग एक चौथाई का ही होता है। औसत भारतीय मछुआ प्रतिवर्ष केवल २,५०० पौंड मछलियाँ ही पकड़ पाता है जबकि अन्य देशों में यह पकड़ ८०,००० पौंड तक की होती है।
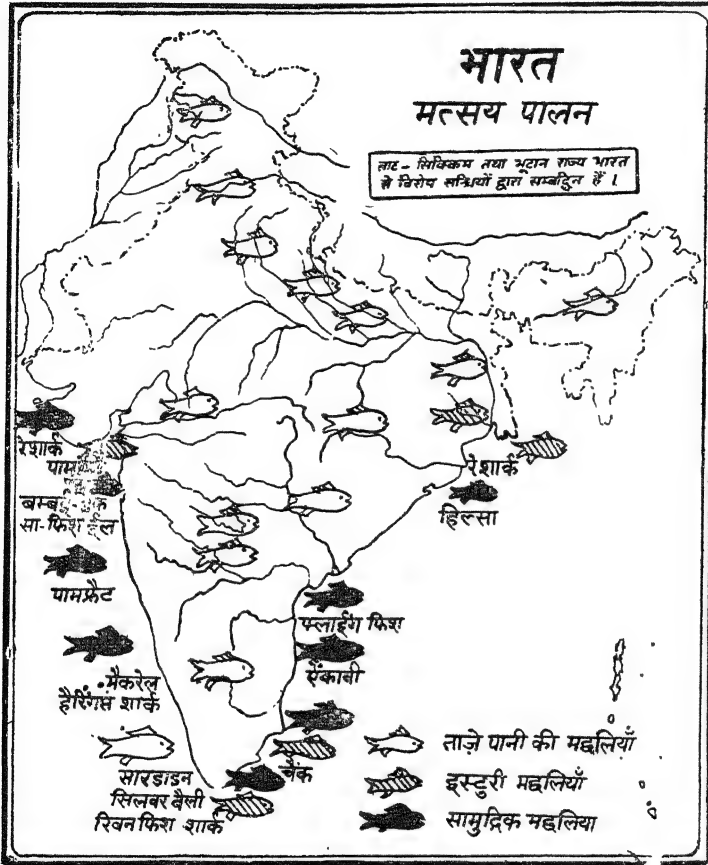
चित्र १३७. भारत में मत्स्य पालन

भारत में मछली खाने वाली जनसंख्या सीमित है। इन मछली खानेवालों में अधिकांश लोग निम्न जाति के है किन्तु बंगाल, उड़ीसा आदि के निवासी चावल के साथ मछली खाते हैं। भारत में प्रति व्यक्ति मछली का उपभोग केवल १·६ कि० ग्राम है। इसकी तुलना में जापान में ४८ कि० ग्राम, ब्रह्मा में ३२ कि० ग्राम, सा०. अमेरिका में २१ कि० ग्राम और लंका में २·४ कि० ग्राम मछली का उपभोग प्रति व्यक्ति पीछे होता है। भारत के विभिन्न राज्यों में भी उपभोग की मात्रा में विषमता पाई जाती है। इसके मुख्य कारण विभिन्न राज्यों में मछलियों का असमान उत्पादन, निवासियों के भोजन में विभिन्नता होना और आर्थिक स्थिति है। सौराष्ट्र

और पंजाब में इसका उपभोग बहुत ही कम है। राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में मछलियाँ केवल नदी के निकटवर्ती भागों मे ही पकड़ी और खाई जाती है। बिहार, पश्चिमी बंगाल, केरल और आसाम में सबसे अधिक मछलियाँ खाई जाती हैं। केरल में ६ कि० ग्राम, मद्रास में ५ कि० ग्राम बंगाल में २$\frac{1}{2}$ कि० ग्राम, आसाम में १$\frac{3}{4}$ कि० ग्राम मछली का ही उपभोग होता है।

देश के भीतरी भागो में ताजा मछलियो और तटीय भागों में ताजा और सुखाई हुई दोनों ही प्रकार की मछलियों की माँग रहती है। उत्पादन का केवल ४३ प्रतिशत ही ताजी मछलियो के रूप मे काम में लाया जाता है और आधे के लगभग सुखाकर काम में लाया जाता है। उत्पादन का लगभग ९२ प्रतिशत खाने के काम में और शेष ८ प्रतिशत औद्योगिक वस्तुयें प्राप्त करने में होता है। भारत से मछलियों का निर्यात लंका, सिंगापुर, मलाया, मारीशस हांगकांग, ब्रह्मा और सुदूरपूर्व के देशों में होता है। १९६१-६२ में ३·८८ करोड़ तथा १९६२-६३ में ४·०८ करोड़ रुपये की मछलियाँ निर्यात की गईं।

विभिन्न प्रकार की सूखी मछलियाँ जो भारत से विदेशों को निर्यात की जाती है वे ये हैं :

बम्बई डक (Bombay Ducks)—जो मुख्यत: गुजरात और महाराष्ट्र के समुद्री तटों पर मिलती है।

मड़ेली और **रिबन**—ये दोनों भी इन्हीं तटो पर मिलती हैं।

चूड़ाई, रिब्बन तथा सोल— केरल और मैसूर राज्यों में प्राप्त होती हैं।

नथेली—यह मुख्यत. आंध्र और मध्य प्रदेश में पाई जाती हैं। ठंडे देशों में ये मछलियाँ प्राय: पेय पदार्थों के साथ परोसी जाती है। **मैकरेल** तथा **सारडीन** और झींगा मछलियों से स्वादिष्ट अचार बनाया जाता है।

मछलियों से प्राप्त गौण उपजों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दवाइयाँ हैं क्योंकि इनमें A B और D विटामिन रहते हैं। मछलियों से तेल निकालने का कार्य व्यापारिक पै,माने पर बम्बई, मद्रास और केरल राज्य में होता है। यह तेल अधिकतर सारडीन और शार्क मछलियों से प्राप्त किया जाता है। इस तेल का उपयोग औषधि के रूप में, चमडे को मुलायम करने में, इस्पात को चमकाने में, साबुन बनाने में तथा रोगन बनाने और जमाकर खान में किया जाता है। नमक में भिगोकर धूप में सुखाने के बाद मछलियों को डिब्बे मे बन्द कर निर्यात किया जाता है। मछलियों से बची हुई व्यर्थ वस्तुओं से खाद भी बनाई जाती है। ज्यू-फिश, सैमन, कैट-फिश आदि से आईसिंग ग्लास (Icinglass) भी बनाया जाता है जिसका उपयोग शराब को शुद्ध करने में होता है। मछलियों के टुकड़े पशुओं और मुर्गियों आदि को भी खिलाये जाते हैं।

यद्यपि भारत के निकटवर्ती समुद्रों में १,८०० से भी अधिक किस्म की मछलियाँ पाई जाती हैं किन्तु इनमें से कुछ ही प्रकार की मछलियों को अभी तक पकड़ा गया है। मत्स्य विज्ञान के विद्वानों ने समुद्री मछलियों को १४ और ताजे पानी की मछलियों को ९ मुख्य भागों में वर्गीकृत किया है।

समुद्री मछलियों के अन्तर्गत सारडाइन, हेरिंग, ऐंकावी तथा शेड आदि

मछलियों का स्थान प्रथम है। मैकरेल, हॉर्स मैकरेल तथा पर्च का स्थान द्वितीय है। ५५ प्रतिशत उपरोक्त दोनों प्रकार की मछलियाँ होती है तथा ४५ प्रतिशत मे ज्यू-फिशकैट फिश, भारतीय सैमन, बॉम्बे डक, मुलेट्स, पाम्फ्रेट्स, चाँदी के पेट वाली, रिबन फिश, शैल मछली, ईल और दोराब आदि है। इन मछलियों को पकड़ने के लिए ड्रिफ्ट नेट, कास्ट नैट तथा स्थिर-जाल आदि का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की मछलियाँ समुद्री तटीय भागों में से ८ से ११ किलोमीटर के घेरे मे ही पकड़ी जाती है।

ताजे पानी की मछलियों में विशेष महत्वपूर्ण स्थान कार्प नामक मछली का है। कुल पकड़ी जाने वाली मछलियो की एक तिहाई इसी प्रकार की होती है। इनके अन्तर्गत रोहू, कतला, कालबासू, सौर, मशीर, बचुवा, चिल्वा, बारिल मुराल और श्रींगल आदि मछलियाँ मुख्य है। कार्प के अतिरिक्त ताजे पानी में कैट फिश, लाइव फिश, प्रॉन, मुलेट्स, फैदर-बैक, पर्च लोच, ईल हेरिंग और एन्कोवी मछलियाँ भी खूब पकड़ी जाती है। ये मछलियाँ नदियों, झीलों, तालाबों, बांधो और नहरों मे पकड़ी जाती है।

मछली उत्पादक क्षेत्र (Fishing Areas)

भारत में मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों को निम्न रूप में बाँटा जा सकता है:

(१) समुद्री मछलियों के क्षेत्र,

(२) देश के भीतरी भागों में मछली पकड़ने के क्षेत्र,

(३) नदियों के मुहाने के क्षेत्र, और

(४) मोती देने वाली मछलियों के क्षेत्र।

(१) **समुद्री मछलियाँ** (Sea Fisheries) -- समुद्री मछलियों का उत्पादन ताजे पानी की मछलियों के उत्पादन से लगभग २½ गुना है किंतु मूल्य की दृष्टि से ताजे पानी की मछलियाँ अधिक महत्व की है। समुद्र की मछलियों का उतना मूल्य नही मिलता जितना ताजे पानी की मछलियों का क्योंकि मछली खपत करने वाले केन्द्रों और समुद्रतट के अधिकाँश मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों के बीच में काफी दूरी रहती है। इस कारण पकड़ी हुई मछलियाँ शीघ्र और कम खर्च में भीतरी भागों में नही पहुँच पाती। इसके विपरीत ताजे पानी की मछलियाँ देश के भीतर हजारों छोटे छोटे मछली केन्द्रों में सीमित सख्या में ही पकडी जाती है तथा किसी भी एक केन्द्र में लाई हुई मछलियाँ आसानी से खप जाती हैं।

समुद्री मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र तटीय रेखा से ८ से १६ किलोमीटर की सीमा तक ही सीमित है। समुद्री मछली के प्रमुख क्षेत्र गुजरात के तटीय भागों मे महाराष्ट्र और मलाबार तट, मनार की खाड़ी व कोरोमडल तट है। पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर पकडी जाने वाली मुख्य मछलियाँ — प्रॉन, ज्यू मछली, मैकरेल, मुलेट्स, सैमन, पॉम्फ्रेट, सीर, सारडाइन, रे, उड़ती मछली, चपटी मछली, हेरिंग और शार्क है। ये सभी मछलियाँ खाने के काम आती है। ये मछलियाँ सीमित मात्रा में ही पकड़ी जाती है क्योंकि गाँवों आदि में इनकी माँग बहुत ही कम है।

सभी क्षेत्र एक समान उत्पादक नहीं हैं। पश्चिमी समुद्रतट लगभग १८५० कि० मीटर लम्बा है किन्तु यहाँ कुल उत्पादन की ६६% मछलियाँ पकड़ी जाती हैं

जबकि बंगाल की खाड़ी का तट जो २,८५० कि० मी० से भी अधिक है, सम्पूर्ण भारत की केवल ⅛ ही मछलियाँ पकड़ता है। पश्चिमीतट पर ही कनारा और मलाबार के जिलों में कुल भारत की पकड़ का १/४ मछली पकड़ी जाती है।

भारत के समुद्रों में मछली पकड़ने का उद्योग सामयिक है। मानसून के दिनों में यह काम कम हो जाता है। समुद्र में तेज वायु और नदियों तथा तालाबों में पानी का तेज-प्रवाह व अधिकता के कारण मानसून के दिनों में मछली पकड़ने में रुकावट पड़ती है। भारत के समुद्र में मछलियाँ केवल तट के निकट ही पकड़ी जाती हैं। जब समुद्र का वातावरण शांत होता है तभी मछुए अपनी नावें समुद्रों में उतारते हैं। पश्चिमी समुद्र तट के सभी मछली पकड़ने के केन्द्रों पर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के अन्त होने के साथ ही मछली पकड़ने का मौसम आरम्भ हो जाता। यह मौसम किन्हीं वर्षों में अक्टूबर महीने में और किन्ही वर्षो में नवम्बर में अपनी पूर्ण अवस्था तक पहुँच जाता है। फरवरी के महीने में इसमें कमी होने लगती है। मद्रास के पूर्वी तट पर परिस्थितियाँ थोड़ी भिन्न हैं क्योंकि यह भाग दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के मार्ग में नहीं पड़ता। अतः यहाँ वर्ष भर ही थोड़ी-बहुत मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मई-जून में जब पश्चिमी तट पर बहुत कम मछलियाँ मिलती हैं तब भी यहाँ काफी परिमाण में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

चित्र १३८ पूर्वी तट पर उड़ीसा तट से मछुए मछलियाँ ले जाते हुए

समुद्री मछली पकड़ने में **मद्रास** और **आंध्र** राज्य का स्थान मुख्य है। इनकी तटीय रेखा १,२५० मील लम्बी है और पूर्वी समुद्र तट के निकट लगभग ४० हजार वर्गमील क्षेत्र में मछलियाँ पकड़ी जाती है। यहाँ मुख्य क्षेत्र समुद्रतट से ३ मील तक ही सीमित है जिनमें मद्रासी मछुए ज्यूफिश, रिबन-फिश, मैकरेल, कैट-फिश तथा सारडाइन मछलियाँ अपने पुराने ढंग की नावों में पकड़ते हैं। मद्रास में पूर्वी तट पर गंजाम, गोपालपुर, विशाखापट्टनम, कोकोनाडा, मसलीपट्टम, नैलोर, पांडिचेरी, मद्रास और नागापट्टम में असंख्य मछुए मछली पकड़ने का व्यवसाय करते हैं।

समुद्री मछली पकड़ने में **महाराष्ट्र** का स्थान दूसरा है। इसका मुख्य कारण तट का अधिक कटा-फटा होना तथा मौसम का साल के आधे भाग में शान्त रहना और तट के निकटवर्ती भागों में जल का छिछला होना है। महाराष्ट्र में रत्नागिरि के मछुए प्रतिवर्ष बहुत मछलियाँ पकड़ते हैं जिनमें मुख्य **सोल, पामफ्रैट, भारतीय सेमन, शार्क,**

ज्यूफश, **पर्चेस** आदि मुख्य हैं। टाटा कम्पनी ने इर्नाकुलम में एक कारखाना खोला जहाँ मछलियाँ का तेल निकाला जाता है तथा डिब्बों में बन्द किया जाता है। चोंदिया (कनारा जिले में) और मलवान (रत्नागिरी जिले में) नामक स्थानों में बर्फ की दो फैक्टरियाँ भी खोली गई हैं जिनमें मछलियों को डिब्बों में दबा कर बम्बई भेजा जाता है। बम्बई सरकार ने मछलियाँ लाने के लिए असंख्य मोटर-बोटें भी चलाई हैं।

गुजरात में कच्छ और सौराष्ट्र के समुद्री किनारों पर भी असंख्य मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। किनारे के निकट बहुत दूर तक मछली पकड़ने वाली नावें विशेपकर सूरत और बेसीन के बीच में मछलियाँ पकड़ती रहती हैं।

केरल के समुद्री किनारों के निकट २०० मील की लम्बाई ४,००० वर्ग मील क्षेत्र में मछलियाँ खूब पकड़ी जाती हैं किन्तु मानसून के समय समुद्र के पानी में तूफान आ जाने के कारण मछली पकड़ने वाले जहाजों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। यहाँ **सीर**, **टनी**, **पौमफ्रैट** और **मैकरेल** मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र कोजीखोड़ और मंगलौर हैं।

२. ताजे पानी की मछलियाँ (Fresh-water or Riverine Fisheries) : समुद्री मछलियों के बाद ताजे पानी की मछलियाँ भी महत्त्वपूर्ण है। ताजे पानी की मछलियाँ देश के भीतरी भागों में पाये जाने वाली असंख्य नदियों, नहरों, सिंचाई के नालों, तालाब तथा पोखरों मे पकड़ी जाती हैं। उत्तर प्रदेश की गंगा नदी और

चित्र १३६. तालाब में मछली पकड़ने का दृश्य

उसकी सहायक नदियों में, बिहार तथा बंगाल मे, ब्रह्मपुत्र नदी में, आसाम में तथा महानदी, ताप्ती, नर्मदा, कृष्णा और कावेरी नदियों में मछलियों की अधिकता है। ताजे पानी में मछली पकड़ने के कार्य में मौसमी दशा का काफी प्रभाव पड़ता है।

उत्तरी भारत की बडी नदियों में वर्षा काल में सामान्यत: मछलियाँ पकड़ने का कार्य अधिक नहीं होता। इन नदियों में जब बाढ़ आना बन्द हो जाता है तो अक्टूबर से मछली पकड़ने का मौसम शुरू हो जाता है। गर्मी के महीनों में मैदानो मे मछलियों की माँग कम रहती है, अत ग्रीष्म और वर्षा ऋतु मे पजाब के कुछ भागों उत्तर-प्रदेश और मध्य प्रदेश में मछली पकडने का धंधा सामान्यत: कमजोर पड़ जाता है। तालाबों में जब पानी की सतह नीची हो जाती है उस समय उनमें मछलियाँ अच्छी तरह पकड़ी जाती हैं। मद्रास, आध्र, मध्य प्रदेश और बंगाल में तो तालाबों और झीलों में ही अधिकांश मछलियाँ प्राप्त की जाती हैं। इन भागों में अप्रैल से जुलाई तक मछलियाँ पकड़ी जाती है। ताजे जल में पकड़ी जाने वाली मुख्य मछलियाँ **कैट-फिश, सॉ-फिश, हैरिंग** और **मैकरेल** हैं।

राज्यों में उत्पादन और मूल्य दोनों की दृष्टि से बंगाल सबसे मुख्य है। बंगाल का मछली उत्पादन २९% और मूल्य ३६% है। बिहार इस दृष्टि से दूसरा और आसाम तीसरा मुख्य राज्य है। ये तीनों राज्य मिल कर कुल ताजा पानी की मछलियों का ७२% बाजार में भेजते हैं। मद्रास, जो समुद्र की मछलियों के उत्पादन में सबसे आगे है, ताजे पानी की मछलियों का केवल ५% ही उत्पादन करता है। इन सब राज्यों में ताजे पानी की मछलियों का अधिक उत्पादन वहाँ मिलने वाले बड़े नदमुखों, झीलों और बाढ़-क्षेत्रों तथा भारी वर्षा होने के कारण है।

ताजे पानी की मछली पकड़ने में बंगाल सबसे मुख्य है। यहाँ लगभग ९६ हजार व्यक्ति मछलियाँ पकड़ कर ही अपना जीवन चलाते है। बंगाल में असंख्य नदी नालों के कारण **रोहू**, हिल्सा **कटला, पॉमफ्रेटस, चंदा, तापसी, रिबन, स्केट** आदि मछलियाँ बहुत पकड़ी जाती हैं किन्तु मानसून के दिनों में मछलियाँ मौसम खराब होने के कारण कम पकड़ी जाती है। तालाबों में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

केरल राज्य में किनारे से लगा कर त्रिवेन्द्रम के बीच में ४८ कि० मी० लम्बी और १६ कि० मी० चौड़ी एक झील में **प्रॉन** मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती हैं। आंध्र-मद्रास राज्य में गोदावरी, कृष्णा और कावेरी आदि नदियों और तालाबों में भी मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती हैं। उत्तर प्रदेश में गंगा, जमुना, सारदा, घाघरा, ताप्ती और बेतवा नदियों में **कटला, रोहू, हिल्सा, कालाबांस, मुरेल** तथा **प्रॉन** आदि मछलियाँ खूब पकड़ी जाती है।

मछली पकड़ने के मुख्य केन्द्र एव बाजार राज्यों में इस प्रकार है :—

गुजरात तट	उमरसायी, कोलक, वलसर, कोलंबा, भडौच, भाद्भूत, कावी बाजार, वैरावल, नवलखी, पोरबन्दर, नयाबन्दर, जाफराबाद, धामलेज, जामनगर, सिक्का, नवलखी, ओखा, बेलन, मधवार, सुरबारी, मेद्रेश्वर, लूनी, मुन्दा, बरोई
महाराष्ट्र तट	बरोत्र, मुरनला, उड्डन, उसरानी, नवपुर, नागों, (थाना जिले में); करन्जा, वरसोली, अलीबाग, भुरूद, भद्रखोल (कोलाबा जिले में), डमोल, जैगढ़, रत्नागिरि, विजयदुर्ग, मालवन, जैतापुर, देवबन तथा वे गुरला (रत्नागिरि जिले मे)।

मैसूर तट	कारवर, अंकोला, कुमता, हनोवर, भटकल, यजालि चंदिया, गंगील, उदिंग्रापुर, बकापटनम, मंगलोर।
केरल तट	इर्नाकुलम, बेपुर, और अन्य ६० केन्द्र।
उडीसा तट	गोपालपुर, सोनापुर, आर्यपल्ली, कंडारपल्ली, गजपतिनगर, दामोदरपुर, चंद्र मुहानी।

३. **नदियों के मुहानों में पकड़ी जाने वाली मछलियाँ** (Estuarine Eisheries) : पुरी से हुगली के मुहाने तक महानदी, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के चौड़े मुख में **काँक-अप; हिल्सा, पाँमफ्रैट, कटला, रोहू** और **कैटफिश** बहुत पकड़ी जाती हैं। सबसे अधिक मछलियाँ बंगाल के डेल्टा में पकड़ी जाती हैं यहाँ मछली पकड़ने का क्षेत्र ५,८०० वर्गमील मे फैला है जिसमें अधिकांश भाग में दलदल घने जंगल तथा नदियों और नालों का प्राचुर्य है। किन्तु गमनागमन के साधनों की कमी होने के कारण पकडी गई मछलियाँ ताजे रूप में नही पहुँचाई जा सकतीं अतः बहुत-सी मछलियाँ तो सड़कर नष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त मछली पकड़ने वाली नावें पुराने ढङ्ग की होती हैं जो खुले समुद्रों में अथवा सुन्दरवन में नहीं जा सकतीं।

४. **मोती देने वाली मछलियाँ** (Pearl Fisheries) : भारतीय राष्ट्रीय योजना समिति के अनुसार मनार की खाड़ी, सौराष्ट्र के समुद्री किनारे तथा कच्छ की खाड़ी में **ओइस्टर** मछलियों की अधिकता है जिनसे उत्तम बहुमूल्य मोती प्राप्त किए जा सकते हैं। मद्रास राज्य में कुमारी द्वीप (पानबन) में ओइस्टर मछलियाँ पाली जाती हैं। इस प्रकार की कुछ मछलियाँ महाराष्ट्र राज्य में कच्छ की खाड़ी तथा सौराष्ट्र के तटीय भागों में भी मिलती हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि भारतीय समुद्रों, नदियों और तालाबों तथा झीलों में सैकड़ों किस्म की खाद्य मछलियाँ भरी पड़ी हैं किन्तु अभी तक इन साधनों का केवल ५–६% ही उपयोग में लाया जा सका है। इस स्थिति के कई कारण हैं :—

(१) हिन्दुओं में ऊँचे वर्ण के लोग इस धन्धे से घृणा करते हैं केवल निम्न श्रेणी के लोग ही मछली पकड़ने का व्यवसाय करते हैं जो अधिकांशतः अशिक्षित और दरिद्र हैं। वे पुराने ढङ्गों द्वारा ही मछलियाँ पकड़ते हैं। ये कंटिये तथा जाल की सहायता से छोटी-छोटी नावों में बैठकर मछली मारते हैं जिससे गहरे जल की बड़ी मछलियाँ नहीं मारी जा सकतीं। मछली पकड़ने के आधुनिक ढङ्गों से वे अभी तक अपरिचित हैं। मामूली प्रयत्नों को छोड़कर नए साधन अभी काम में नहीं लाये जाते।

(२) मछुए लोग प्रायः छोटी-छोटी नवजात मछलियों को भी पकड़ लेते हैं इस कारण इनकी उत्पत्ति में कमी होती जा रही है।

(३) कई मछुए तो मछलियाँ पकड़ने के साथ-साथ खेती भी करते हैं अतः मछली पकड़ने मे वे पूर्ण रुचि नहीं लेते। इसके अतिरिक्त अधिकांश मछुए महाजनों के कर्जदार होते हैं अतः पकड़ी गई मछलियाँ उन्हीं के सुपुर्द कर देनी पड़ती हैं वही लोग व्यापार करते हैं। इस आय का थोड़ा-सा भाग मछुओं को मिल पाता है।

(४) आवागमन के साधनों विशेषकर शीत भण्डारों की पूर्ण उन्नति नहीं हो पायी है अतः मछलियाँ काफी परिमाण में नष्ट हो जाती हैं। केवल बम्बई और मद्रास को छोड़कर मछलियों को डिब्बों में दबाने और वर्फ में रखने के कारखाने नहीं हैं।

(५) प्रति वर्ष इतनी अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती है कि कुछ भागों में तो अब मछलियों की संख्या कम होती जा रही है।

(६) बगाल की कई नदियों तथा मद्रास में कई तालाबों में रेती भरती जा रही है। इस कारण वहाँ मछलियों की उत्पत्ति भी कम होती जा रही है।

(७) कई नालों और तालाबों का पानी दूषित कर दिया जाता है जिससे मछलियाँ वहाँ रहने ही नहीं पाती। बंगाल के कई तालाबों में जूट धोने के कारण पानी मछलियों के लिए जहरीला हो जाता है।

(८) भारत में मछली पकड़ने के क्षेत्रों की उन्नति मे सबसे बड़ी कठिनाई यह पड़ती है कि यहाँ ये क्षेत्र शीतकटिबन्धों की भाँति एक ही स्थान पर न होकर समुद्र में दूर-दूर तक बिखरे हैं। इससे एक स्थान की मछली मार लेने के बाद दूसरे स्थान तक नावों द्वारा जाने में अधिक समय लग जाता है।

(९) भारत की नदियों द्वारा समुद्रों में मछलियों के लिए भोज्य पदार्थ नही पहुँच पाते और न ही समुद्र में प्लैंक्टन अधिक मात्रा मे मिलता है। इसके अतिरिक्त भारत के समुद्रतट मछलियों के लिये अधिक उपयुक्त नहीं है। मछलियों के लिये उपयुक्त स्थान उथले, ठन्डे और कटे हुए सुरक्षित तट समझे जाते है किन्तु ऐसे स्थानों का यहाँ अभाव है।

(१०) पशुओं को मछलियाँ खिलाने तथा मछलियो की खाद का प्रयोग करना, मछलियों से तेल और चमड़ा प्राप्त करने आदि बातों की ओर भी बहुत अधिक उदासीनता रही है।

इन्हीं सब कारणों से अभी तक भारत में मछली पकड़ने के व्यवसाय में पूर्ण उन्नति नहीं हो सकी है।

मत्स्य उद्योग का विकास

पिछले कुछ वर्षों से मछली पकड़ने के व्यवसाय को उन्नत करने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा कई प्रयत्न किये गए हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस कार्य में २ ८ करोड़ रुपये और **द्वितीय योजना** में ९ करोड़ रुपये, खर्च किये गये पर इसमें से लगभग एक तिहाई सामुद्रिक एवं आंतरिक मछलियों से सम्बन्धित गवेषणा करने, मछली पकडने वाले बन्दरगाहों का विकास करने, प्रशिक्षण की सुविधायें देने और मछलियों के नये क्षेत्रों की खोज करने, उनके उत्पादन, संरक्षण, भडार विपणन और यातायात सम्बन्धी कार्यों पर था। इस योजनाकाल में भारत को मछली उत्पादन के सम्बन्ध में तांत्रिक सहायता Indo-U. S. A. Technical Mission Programme, Indo-Norwegian Fisheries Community Development Programme और F. A. O. प्रभृति संस्थाओं के अन्तर्गत मिली है। **तृतीय योजना** में मछलियों का उत्पादन १८ लाख टन होगा। उत्पादन में वृद्धि सामुद्रिक मछलियों से प्राप्त होगी।

सरकार ने इस व्यवसाय के लिये निम्न कार्य किये हैं :—

(१) मछली पकड़ने के लिये नए प्रकार की मोटर नावों को दिया गया है। भारत के तटीय भागो में इस समय २४०० मोटर चालित नावों से मछलियाँ पकड़ी जा रही हैं। गुजरात मे देशी नावो में इंजन लगाये जा रहे है। बेसीन से सूरत तक ऐसी नावें प्रचलित है जो बहुत सुन्दर हैं और जिनमें कई दिनों तक मछलियाँ रखी जा सकती हैं। केरल और आंध्र में भी नई तरह की नावें बनाई गई हैं। तृतीय योजना में ४००० मोटर चालित नावे हो जायेंगी। ऐसी नावें समुद्र मे २४ कि० मी० मील दूर तक जा सकती है।

(२) मछुओं को मछली पकडने के अच्छे तरीके सिखाने के लिए ९ स्थानों पर प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित किये गये हैं। ये केन्द्र बम्बई के निकट सतपति, गुजरात में वेरावल, केरल मे कोचीन और मद्रास से तुतुकुडि में स्थापित किये गये हैं। गुजरात के गहरे समुद्र में मछली पकड़ना सिखाने वाले केन्द्र में इस धन्धे के आधुनिक तरीके सिखाये जाते हैं। कलकत्ता में केन्द्रीय मछली गवेषणा केन्द्र मे नदियो और झीलों या तालाबों में अधिक मछली पैदा करना सिखाया जाता है। पंजाब में मछली पकड़ने और उनकी बिक्री के लिए विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाता है। अमृतसर, जालन्धर लुधियाना, फ़िरोजपुर, अम्बाला, शिमला, करनाल और पानीपत में मछलियों की सरकारी दुकानें खोली गई है।
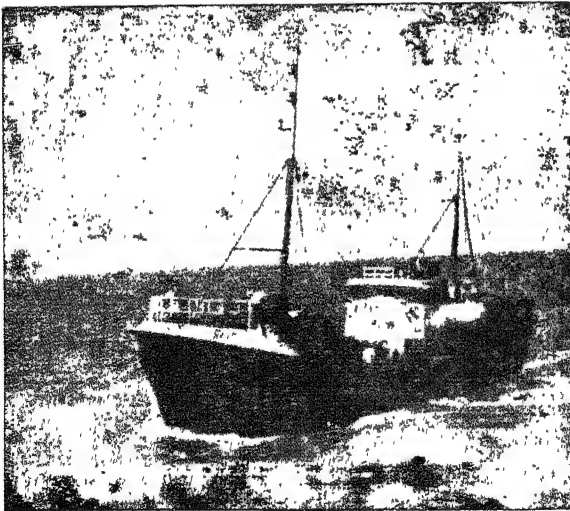
चित्र १४०. मछली पकड़ने वाला आधुनिक ट्रालर

(३) मछलियों को सुरक्षित रखने के लिये शीत भंडार बम्बई, मद्रास, मंगलौर, कोजीखोड, कलकत्ता, कोचीन, क्विलोन, तिरूअन्तपुरम आदि स्थानों में स्थापित किये गये हैं। विशाखापट्टनम, तुतुकुडि और जामनगर में भी ऐसे गोदामों की व्यवस्था की गई है। महाराष्ट्र में मालवन, रत्नागिरी, चेंदिया, पूना और अकोला में

बर्फ की फैक्ट्रियाँ भी स्थापित की गई हैं। रत्नागिरी और कनारा जिलों में मछलियों में मसाला लगाने के लिए उपयुक्त स्थान बनाये गये है।

(४) मछलियों के नये साधनों की खोज क लिये भारत सरकार ने मछली अनुसधान शालायें स्थापित की है। ताजे पानी की मछलियो के लिए कलकत्ता में बैरकपुर में और सामुद्रिक मछलियों के लिये मद्रास में मडापम में और बम्बई में अनुसंधानशालायें खोली गई हैं। मंडापमशाला की शाखायें कोजीखोड़ा, करवार, कांडला, क्विलोन, बम्बई, कोचीन, मद्रास, मगलौर, वाल्टेयर, काकीनाडा और विजयनगरम में हैं जहां सारडीन, मैकरेल, प्रॉन, शैल और पेंदेवाली मछलियो के सम्बन्ध में गवेषणा की जाती है। बम्बई की अनुसंधानशाला इस बात पर गवेषणा कर रही है कि तटीय भागों मे किस प्रकार की आधुनिक ढगों की शक्ति-चालित नावों का उपयोग किया जा सकता है, मछलियाँ पकड़ने के क्षेत्रों का पता लगाना, तथा उनके सुरक्षित रखने के ढंगो पर विचार आदि करना है। विशाखापट्टनम, कोचीन, तूतीकोरिन में समुद्री क्षेत्रों की मछलियों के नये क्षेत्रों का पता लगान के लिए अनुसधान केन्द्र खोले गये हैं।

(५) मछुओं की दशा सुधारने के लिये बम्बई केरल, मद्रास, और उड़ीसा में लगभग २१०० सहकारी समितियाँ स्थापित की गई है जिनका काम अपने सदस्यों की पकड़ी हुई मछलियों को बेचना और मछुओं को वितरण करना है। नई नावें बनाने के कारखाने गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, केरल, मद्रास और आंध्र प्रदेश में स्थापित किये गये है।

(६) तृतीय योजनाकाल में ४,००० यंत्र-सज्जित नई नावें चालू की जायेगी। ३५ बड़े जहाज भी इस कार्य मे लगाये जायेंगे।

(७) विभिन्न राज्यो में मछलियो को सुरक्षित रखने के लिए ७२ शीतन-संयंत्र वितरित किय जायेंगे।

(८) ३०,३०० हैक्टेअर जलक्षेत्र को प्रदर्शन मछली फार्मों में परिवर्तित किया जाकर इसमें १२० करोड़ मछली व अंडे जमा किये जायेंगे।

(३) इसके लिये ऐसी मिट्टी चाहिये जो उपजाऊ तो हो किन्तु अधिक नम न हो। हल्की दोमट या गाढ़े रंग की मटियार भूमि इसके लिए अच्छी रहती है। काली मिट्टी में भी यह पैदा किया जाता है।

(४) गेहूँ के खेतों को जोतने, बोने, काटने और दानों को भूसे से अलग करने में काफी परिश्रम की आवश्यकता होती है इसलिये जहाँ मजदूरी सस्ती और आसानी से मिल सकती है वहाँ गेहूँ अधिक मात्रा में बोया जाता है।

साधारण तौर से गेहूँ को पकने में ३ से ६ महीने लगते हैं। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में गेहूँ थोड़े ही समय में पक जाते है क्योंकि गेहूँ को पकने के लिये जितनी गर्मी की आवश्यकता होती है वह थोड़े ही समय मे प्राप्त हो जाती है। दक्षिण के प्रदेशों में गेहूँ दिसम्बर से ही कटने प्रारम्भ हो जाते हैं लेकिन मध्य प्रदेश में ये साधारण तौर पर मार्च में काटे जाते है और पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पंजाब के प्रदेशों में गेहूँ अप्रैल के अन्त तक काटे जाते है। उत्तरी भारत में गेहूँ की फसल अक्टूबर या नवम्बर के अन्त में और दक्षिणी प्रायद्वीप में सितम्बर या अक्टूबर के मध्य में बोयी जाती है।

भारतवर्ष में प्रति १० व्यक्तियों के पीछे एक एकड से भी कम में गेहूँ बोया जाता है जबकि कनाडा और आस्ट्रेलिया मे प्रति व्यक्ति पीछे २८ एकड़ में गेहूँ बोया जाता है। यूरोपीय देशों—फ्रांस और इटली—में प्रति तीन व्यक्तियों के लिये एक एकड़ और सयुक्त-राष्ट्र में प्रति चार व्यक्तियों के लिये एक एकड़ गेहूँ बोया जाता है।

भारत की औसत पैदावार प्रति हैक्टेअर ११५ कि० ग्राम है। साधारण तौर पर फसल को जल मिलने के परिमाण के अनुसार प्रति एकड पैदावार मे अन्तर पाया जाता है। जैसे उन प्रदेशों में जहाँ सिचाई का प्रवन्ध है वहाँ प्रति एकड़ पैदावार अधिक होती है तथा जहाँ उपज वर्षा पर निर्भर रहती है वहाँ पैदावार कम होती है।

भारत की तुलना में पाकिस्तान में प्रति एकड़ पीछे ११८ कि० ग्राम, फ्रांस में ३३६ कि० ग्राम, कनाडा में २७२ कि० ग्राम, संयुक्त राज्य में २१६ कि० ग्राम और आस्ट्रलिया में ६७५ कि० ग्राम गेहूँ पैदा होता है। इससे स्पष्ट है कि दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में प्रति हैक्टेअर पैदावार की औसत बहुत कम है क्योंकि भारत के किसान गरीब, पुराने विचारों के और अशिक्षित हैं जिससे वे अपनी तथा खेतों की दशा सुधारने में असमर्थ हैं जबकि दूसरे देशों मे खेती मशीनों से होती है, उनको अच्छे बीज मिलते है तथा अनाज को सुरक्षित करने के लिये अच्छे गोदाम बने हुए हैं जिससे वे प्रति हैक्टेअर अधिक पैदावार कर सकते हैं।

गेहूँ की किस्में—भारत में प्राय दो प्रकार का गेहूँ उत्पन्न होता है। प्रथम प्रकार के गहूँ को साधारण रोटी का गेहूँ (Common B ad Wheat) कहते हैं। यह देखन में चमकीला, सुडौल तथा पीसने में मुलायम होता है और इसका रंग सफेद होता है। इस प्रकार का गेहूँ भारत के उत्तरी मैदान में होता है। दूसरे प्रकार का गेहूँ, जिसे मैकरॉनी गेहूँ (Macroni Whe t) कहते है, अपेक्षाकृत कठोर रग में लाल और छोटे दाने वाला होता है। मैकरॉनी गेहूँ वर्षा के जल का अपेक्षित होता है और इसीलिए यह मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र के काली मिट्टी के क्षेत्र, आंध्र प्रदेश, तथा मद्रास आदि राज्यों में अधिकतर उगाया जाता है।

भारतीय गेहूँ की कृषि की विशेषतायें

(१) भारत में गेहूँ की कृषि समशीतोष्ण और उष्ण दोनों ही कटिबन्धों मे होती है किन्तु अधिक तापक्रम के कारण दक्षिणी भारत का गेहूँ उत्तरी भारत के गेहूँ से पहले पकता है।

(२) यहाँ गेहूँ की कृषि अक्टूबर के अन्त में प्रारम्भ हो जाती है और फरवरी तक एक या दो बार सीच दी जाती है। किन्तु मार्च महीने में तापक्रम के सहसा बढ़ जाने और पछुवा हवा के झकोरो के कारण दाने शीघ्र पक कर सूख जाते हैं। यही कारण है कि भारत का गेहूँ उच्च कोटि का नही होता।
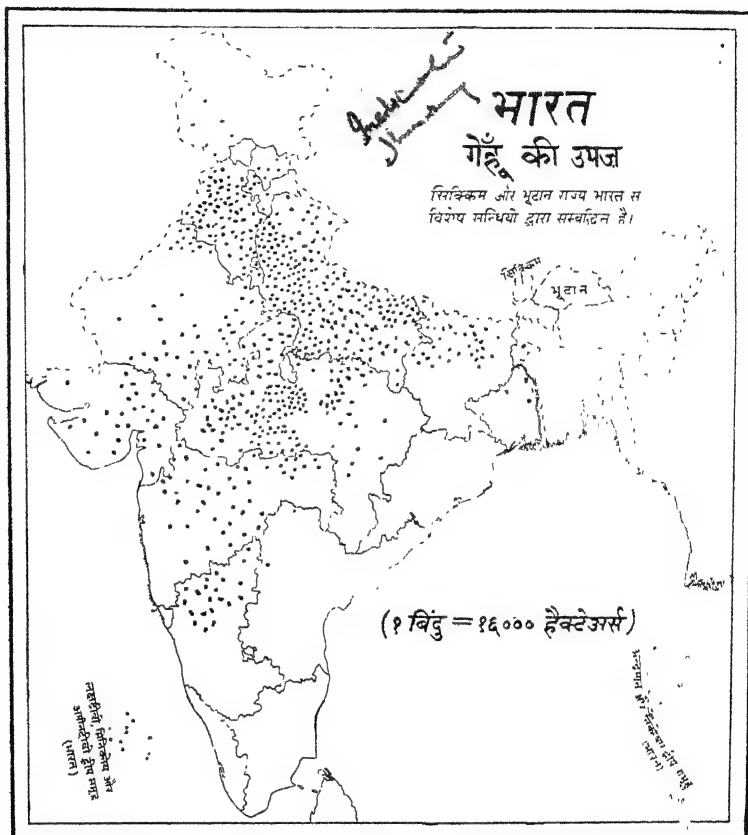
चित्र १४३. प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्र

(३) यहाँ गेहूँ की फसल उस समय पकती है जब विश्व के अन्य देशों के गेहूँ की फसल हरी-भरी रहती है। विश्व की मंडियों का गेहूँ इस समय तक समाप्त रहता है। ऐसी दशा में भारतीय गेहूँ विदेशी बाजार में प्रवेश कर सकता है।

(४) इस देश में गेहूँ की कृषि की एक और विशेषता यह है कि इसे बहुधा

विनष्टकारी रोगों (गेरुई, हरदा), ओले और झंझावातों द्वारा बहुत क्षति पहुँचती है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में खाद्यानों के अन्तर्गत बोई गई भूमि के १० प्रतिशत भाग पर गेहूँ बोया जाता है। यह अधिकांशतः उत्तरी और मध्य भारत की मुख्य फसल है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और बिहार मिलकर कुल उत्पादन क्षेत्र के ९० प्रतिशत भाग में गेहूँ पैदा करते हैं।

(१) **उत्तर प्रदेश** भारत का ४०प्रतिशत गेहूँ अकेले उत्पन्न करता है। दक्षिण के पहाड़ी एवं पठारी भूमि को छोड़कर उत्तर प्रदेश में सर्वत्र गेहूँ की कृषि होती है। मेरठ, बुलन्दशहर, देहरादून, सहारनपुर, आगरा, अलीगढ, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद इटावा, फर्रुखाबाद,बदायूँ, कानपुर, फतेहपुर आदि जिलों की लगभग एक तिहाई कृषि योग्य भूमि पर केवल गेहूँ की कृषि होती है। सिचाई का प्रबन्ध गंगा, यमुना तथा शारदा नदियों से निकलने वाली नहरों से होता है। इन जिलों की जलवायु शुष्क तथा गेहूँ के उत्पादन के लिए सर्वथा अनुकूल है अत. इन जिलों की प्रति एकड़ उपज अधिक है। बुलन्दशहर का उत्पादन प्रति एकड़ १,३०० पौंड है जब कि जालन्धर में वह केवल १,२५० पौंड है। उत्तर प्रदेश के पूर्व और पूर्वोत्तर भाग में वर्षा की अधिकता के कारण गेहूँ की कृषि का महत्व कम है और धान तथा गन्ने की फसलों की प्रधानता है। गोरखपुर की कृषि योग्य भूमि के केवल ⅙ क्षेत्र में ही गेहूँ का उत्पादन होता है। घाघरा नदी के पूर्व मे स्थित क्षेत्र गेहूँ का द्वितीय महत्वपूर्ण उत्पादक क्षेत्र है। गंगा यमुना के कछारों मे तो गेहूँ बिना सींचे ही पैदा होता है। कछार की उर्वरा मिट्टी मे गेहूँ के पौधे मजबूत होते हैं और जाड़े की वर्षा के कारण उनका प्रति एकड़ उत्पादन बहुत बढ़ जाता है।

(२) **पंजाब** में अमृतसर, लुधियाना, जालंधर तथा फिरोजपुर आदि जिले पंजाब के प्रसिद्ध गेहूँ उत्पन्न करने वाले प्रदेश हैं जहाँ नहरों की सहायता से सिंचाई का समुचित प्रबन्ध है। दक्षिणी पूर्वी पंजाब के जिलों की जलवायु अधिक शुष्क है और सिचाई के साधनों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है फिर भी रोहतक, हिसार तथा गुड़गाँव में गेहूँ की कृषि सिचाई के सहारे की जाती है। भाकरा नांगल योजना की सहायता से गेहूँ के क्षेत्र को दक्षिण-पूर्व की ओर बढाया जा रहा है।

(३) **मध्य प्रदेश** के मैदानी क्षेत्रों में सिंचाई द्वारा गेहूँ पैदा किया जाता है। होशंगाबाद, सागर ग्वालियर, नीमाड़, उज्जैन, भोपाल, रीवाँ और जबलपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं।

(४) **गुजरात** राज्य में अहमदाबाद, नासिक, भड़ौंच तथा **महाराष्ट्र** में खानदेश, और बीजापुर जिले में गेहूँ बोया जाता है।

(५) **बंगाल** और **बिहार** की जलवायु गेहूँ के उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं है। अतः बहुत ही थोड़े क्षेत्र में गेहूँ बोया जाता है। बंगाल में नादिया, मुर्शिदाबाद और वीरभूमि जिले में थोडा गेहूँ पैदा किया जाता है।

गेहूँ के मुख्य उत्पादक क्षेत्रों का क्षेत्रफल और उत्पादन निम्न तालिका में बताया गया है :—

गेहूँ के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आन्ध्र प्रदेश	४९	४७	५	५
बिहार	१७२८	१७६८	४३४	५१९
गुजरात	९७२	१००७	३५०	२९८
जम्मू व काश्मीर	४२६	४२२	१०३	१०७
मध्य प्रदेश	७८५४	७७६५	२११९	२०६७
महाराष्ट्र	२१९६	२२९३	३९०	४५६
मैसूर	७५८	७५४	७०	८१
उडीसा	१७	२३	४	४
पंजाब	५५३२	५५९३	२७०४	३००७
राजस्थान	३११५	३०७१	१२१५	१०६८
उत्तर प्रदेश	१००५०	९९८०	४०६४	३१८६
पश्चिमी बंगाल	११३	१२१	३४	३०
दिल्ली	७२	७१	३३	२५
हिमाचल प्रदेश	३४६	३५७	९१	९५
भारत का योग	३३२४०	३३२५५	११६२०	१०९५६

१९६३-६४ में ३३,११८ हजार एकड़ भूमि पर ९,५५५ हजार टन गेहूँ पैदा किया गया।

भारत में जितना गेहूँ पैदा होता है उसका ४५ प्रतिशत देहातों में ही खप जाता है तथा ५५ प्रतिशत मंडियों में लाया जाता है। पहले भारतवर्ष बहुत बड़ी मात्रा में गेहूँ निर्यात करता था लेकिन क्रमशः इसकी जनसंख्या में वृद्धि होने तथा विदेशों में गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों की वृद्धि होने से सन् १९४२ से भारत से गेहूँ का निर्यात बन्द हो गया है। सन् १९४७ में भारत विभाजन से पश्चिमी पजाब का गेहूँ पैदा करने वाला देश पाकिस्तान के अन्तर्गत चला गया जिससे इस कमी को पूरा करने के लिये आजकल प्रतिवर्ष बहुत-सा गेहूँ विदेशों से मँगवाना पड़ता है। यह आयात मुख्यतः अर्जेनटाइना, रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया से किया जाता है।

तीसरी योजना में गेहूँ का उत्पादन ९३ लाख टन से बढ़ कर १२१ लाख टन तथा प्रति एकड़ उत्पादन ६६२ पौंड से बढ़ कर ७९५ होगा अर्थात् यह वृद्धि क्रमशः ३०·१% और २०·१% की होगी।

(३) मोटे अनाज या मिलेट्स (Millets)

मिलेट्स के अन्तर्गत कई प्रकार के मोटे अनाज सम्मिलित किये जाते हैं जिनका उपयोग मुख्यतः खाने में और जिनके डंठलों का उपयोग पशुओं द्वारा खाने में किया जाता है। मोटे अनाज कई जातियों और श्रेणियों के होते हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की भौतिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। मुख्य मोटे अनाजों में ज्वार, बाजरा, रागी कोरा या कांगनी, कोदों, कुटकी, चीना और सांवक आदि अनाज सम्मिलित किये जाते हैं। ये अनाज प्रायः भारत के सभी राज्यों में पैदा किये जाते है। इनका उपयोग और उत्पादन देश में प्रागैतिहासिक काल से होता रहा है। ये ऐसी परिस्थितियों में भी पैदा किये जाते हैं जिनमें अन्य अनाज पैदा नहीं होते। इनके पकने में साधारणतः ३ से ४ महीने लगते हैं और इनसे पौष्टिक पदार्थ भी कम मात्रा में ही मिलते हैं। ये अधिकांशतः सूखे भागो में सिंचाई के सहारे पैदा किये जाते हैं। १९६३-६४ में ११,४०२ ह० एकड़ भूमि पर १,९९९ ह० टन मोटे अनाज पैदा किये गए।

मोटे अनाजों का उत्पादन

	क्षेत्रफल (००० एकड़ में)		उत्पादन (००० टना में)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आंध्र प्रदेश	२६१९	२६६१	३९९	४२०
आसाम	१४	१७	३	३
बिहार	५९१	५६६	८८	९३
गुजरात	४१४	३६४	१७०	१२०
मध्य प्रदेश	३४०५	३३४८	३७६	३७८
मद्रास	१५०	१४७	४१	३९
महाराष्ट्र	४५३	४३८	८३	७५
मैसूर	१००४	१००४	१४१	१३३
पंजाब	१२	१०	२	२
राजस्थान	२०८	१७०	३७	२६
उत्तर प्रदेश	१४८६	१४२३	२४७	२२७
हिमाचल प्रदेश	६१	६१	१०	१०
भारत का योग खरीफ	१०९६३	१०७७४	१७५६	१६२८
रबी	८२१	७९९	१८३	१८४
कुल योग	११,७८४	११,५७३	१९३९	१८१२

(क) ज्वार (Jowar)

मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र और पश्चिमी राजस्थान के किसानों का

ज्वार रबी की फसल के साथ बोई जाती है। यह सितम्बर से नवम्बर तक बोयी जाती है और जनवरी से मार्च तक काट ली जाती है।

यह खाद्य-पदार्थ और ढोरों के चारे की दृष्टि से अधिक महत्व रखती है। स्थान-स्थान पर वर्षा की मात्रा, अतिरिक्त पानी की पूर्ति और खाद की मात्रा के अनुसार ज्वार की प्रति एकड़ उपज भिन्न-भिन्न होती है।

१९६३-६४ में ४४,९१० ह० एकड़ भूमि पर ९,०८१ ह० टन ज्वार पैदा की गई।

उत्पादक क्षेत्र

ज्वार के मुख्य उत्पादक क्षेत्र आंध्र, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मद्रास, उत्तर प्रदेश, पंजाब, मैसूर और राजस्थान राज्य हैं। ये सब मिलाकर ज्वार के अन्तर्गत लगभग ९६% क्षेत्र पर खेती करते हैं।

ज्वार के उत्पादक क्षेत्र ये हैं :—

महाराष्ट्र में पूना, शोलापुर, सतारा और खानदेश जिले।

गुजरात में बड़ौदा, भड़ौंच, सुरेन्द्रनगर जिले।

आंध्रप्रदेश में हैदराबाद, महबूबनगर और निजामाबाद जिले।

मैसूर में बीजापुर, बेलगाँव और रायचूर जिले।

ज्वार के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आंध्र प्रदेश	६०७१	५९०४	१३१९	१३००
गुजरात	३४०७	३२६६	३२४	४४२
मध्य प्रदेश	४९७५	५०१०	८८०	१४३७
मद्रास	१७९२	१८७८	५५५	५९३
महाराष्ट्र	१४१२०	१४६९६	२६४८	३०९९
मैसूर	६७९५	७१३२	१२६३	१२६४
पंजाब	७६५	७९२	५४	५०
राजस्थान	२७४५	२९००	२९२	४०७
उत्तर प्रदेश	२१०४	२१९८	३१८	५८४
भारत का योग	४३०७४	४३८५७	७६६४	९१९२

(ख) बाजरा (Bajra)

बाजरे के लिये ज्वार से भी अधिक शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। यह ४० से ५० सैं० मीटर तक वर्षा वाली बलुही भूमि में अधिक उत्पन्न होता है। यह ५० से ८० सें० मीटर वर्षा वाले भागों में

भी बोया जाता है। किन्तु ८० सें० मीटर से अधिक वर्षा वाले भागों में इसकी खेती नहीं की जा सकती। अतः जहाँ सिंचाई के साधन भी प्राप्त न हों वहाँ भी बाजरा पैदा किया जाता है। कम उपजाऊ भूमि में बिना खाद डाले ही बाजरा पैदा किया जाता है। यदि वर्षा हल्की फुहार के रूप में होती रहे तो
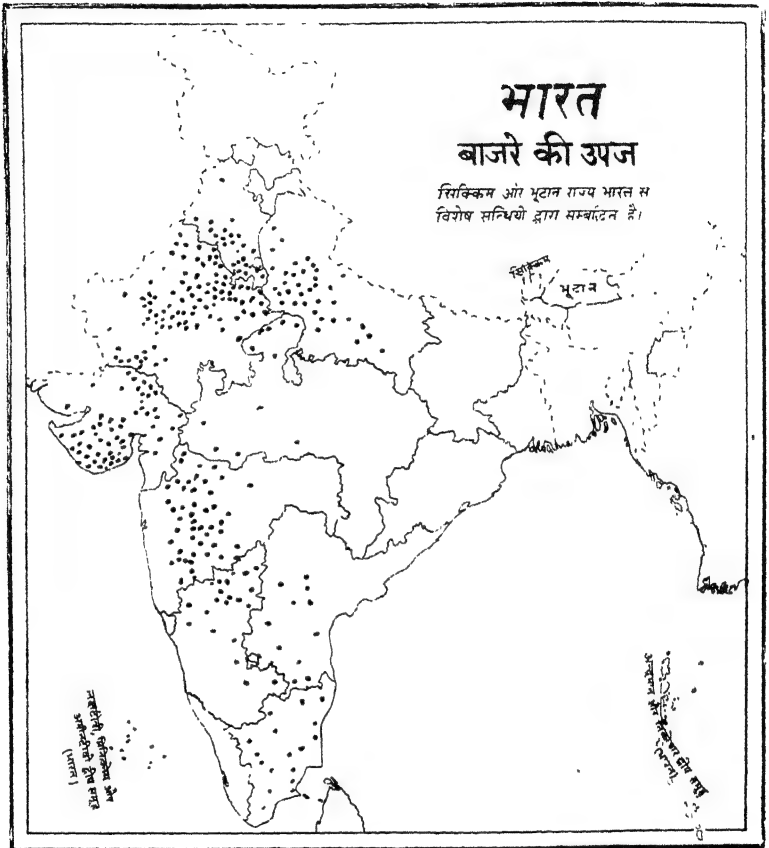
चित्र १४५. बाजरा से प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

निकृष्ट भूमि में भी बाजरे का उत्पादन हो सकता है। इसलिए बाजरे की कृषि भारत मे ८०° देशान्तर के पश्चिम में स्थित अनुपजाऊ भूमि में अधिक होती है। यह सामान्यतः अन्य खाद्यानों के साथ मिला कर बोया जाता है। यह मई से सितम्बर तक बोया जाता है और सितम्बर से फरवरी तक काट लिया जाता है। इसके लिए औसत तापक्रम २५° से ३२° सें० ग्रेड उपयुक्त रहते हैं।

इसके मुख्य उत्पादक राज्य आंध्र प्रदेश, मद्रास, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मैसूर और राजस्थान हैं। इनमें बाजरे के अन्तर्गत ९६% क्षेत्र पाया जाता है।

बाजरा के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन.

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१ ६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आंध्र प्रदेश	१४७४	१४५९	३१५	३४८
बिहार	४०	४६	८	७
गुजरात	३०८४	३२३२	४७८	५००
जम्मू व काश्मीर	४७	६१	९	१२
मध्य प्रदेश	३८२	४३३	६३	११२
मद्रास	१२३०	१२००	३१०	३०४
महाराष्ट्र	४२५५	३९६४	४३२	५२३
मैसूर	१२२९	१२४२	१३६	१२८
पंजाब	२१२९	२०५६	३२४	३२१
राजस्थान	१०६८८	१०१६२	१०४०	९३०
उत्तर प्रदेश	२४१२	२५५५	३७८	६०५
दिल्ली	४४	४६	७	९
भारत का योग	२७०२७	२७३२२	३५०२	३८०१

१९६३-६४ में २६,७१३ ह० एकड़ भूमि पर ३,६७७ ह० टन बाजरा उत्पन्न किया गया।

बाजरा गरीब देहातियों का मुख्य खाद्यान्न है। अतः अधिकांश उत्पादन उपभोग में आ जाता है। केवल २५% का निर्यात सूडान, अरब, नीदरलैंड्स, पूर्वी अफ्रीका, जर्मनी और अदन को किया जाता है। यह निर्यात बम्बई और कांदला से होता है।

(ग) रागी (Ragi)

रागी सब अनाजों में सबसे अधिक सूखा सहन करने वाला अनाज है जो शुष्क खेती की प्रणाली द्वारा पैदा किया जाता है। यह बहुत ही कम वर्षा वाले भागों में पैदा किया जाता है। इसके दाने में पौष्टिक तत्व अधिक होने से शारीरिक कार्य करने वालों का यह मुख्य खाद्यान्न है। सिंचाई के सहारे भी इसका उत्पादन किया जा सकता है। इस अनाज को ५० वर्षों से भी अधिक समय तक के लिये इकट्ठा कर रखा जा सकता है क्योंकि यह कीटाणुओं और रोगों द्वारा प्रभावित नहीं होता। इसका भूसा और डंठल पशुओं को खिलाये जाते हैं।

रागी खरीफ की फसल है। यह मई से अगस्त तक बोयी जाती है और सितम्बर से फरवरी तक काट ली जाती है।

इसके मुख्य उत्पादक आंध्र प्रदेश, मैसूर और मद्रास राज्य हैं, जहाँ कुल उत्पादन क्षेत्र का लगभग ६६% पाया जाता है। शेष बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है।
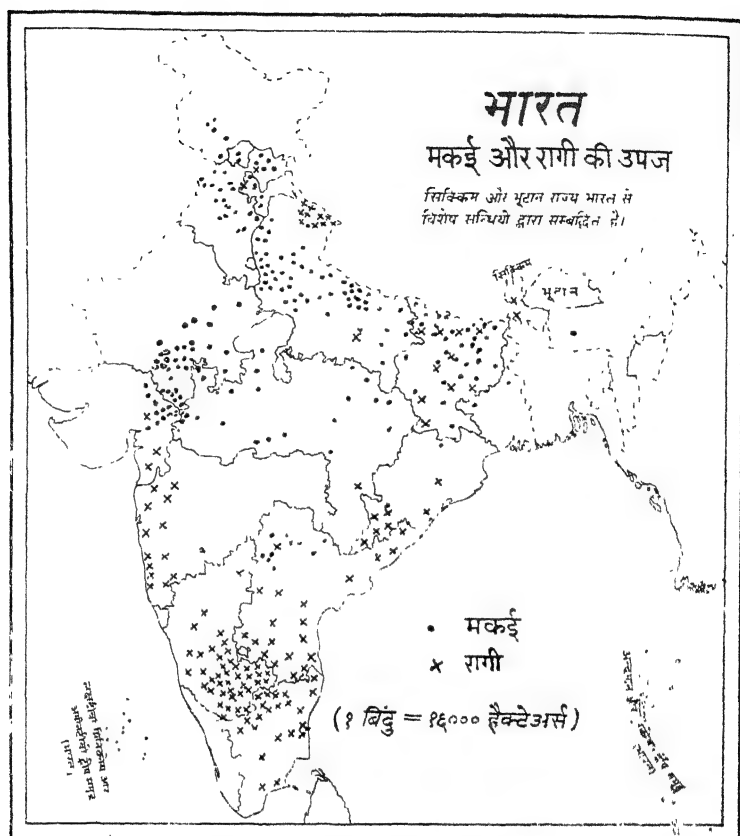
चित्र १४६. प्रमुख रागी उत्पादक क्षेत्र

रागी के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आंध्र प्रदेश	७४३	७४४	२४३	२६८
बिहार	४८९	४६३	९९	१००
गुजरात	१६१	१५५	५८	६०
मद्रास	८७६	८२१	३४३	३३०
महाराष्ट्र	५३४	५२९	१५६	१४९
मैसूर	२१७४	२३३७	७१४	७७८

उड़ीसा	१६५	१७८	२८	३३
उत्तर प्रदेश	४६७	४१२	८६	१४३
पश्चिमी बंगाल	२७	२७	३	३
हिमाचल प्रदेश	३९	३७	८	७
भारत का योग	५७१०	५७६०	१७४९	१८४४

१९६३-६४ में ५,८४१ ह० एकड़ भूमि पर १,८२३ ह० टन रागी पैदा की गई।

(घ) छोटे अनाज (Small Millets)

छोटे अनाजों के अन्तर्गत अनेक प्रकार के अनाज सम्मिलित किये जाते हैं। ये इस प्रकार हैं :—

राज्य	अनाज
गुजरात+महाराष्ट्र	कोदरा, वारी, सावा, बौटी, बादली
मध्य प्रदेश	कोदों, कुटकी, राला, सावा, राजगिरा
आंध्र/मद्रास	कोरा, वरागू, क्षमाई
उत्तर-प्रदेश/राजस्थान	कोदों, कुटकी, ककू, सावा, चीना
मैसूर	नवाने, सेवा, हराका, वरागू

ये अनाज खरीफ और रबी दोनों की फसल हैं। इनके मुख्य उत्पादक आंध्र प्रदेश, मद्रास, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मैसूर और मध्य प्रदेश हैं। ये अधिकतर निम्न श्रेणी की भूमि में बोये जाते हैं जहाँ जल की मात्रा पर्याप्त नहीं होती।

(४) जौ (Barley)

जौ भारत का महत्वपूर्ण खाद्यान्न है। इसका उपयोग अधिकतर खाने के लिये किया जाता है। गेहूँ की अपेक्षा इसे कम देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह सभी भागों में गेहूँ के साथ साथ ही बो दिया जाता है।

भौगोलिक अवस्थायें

(१) जौ का पौधा प्रायः शुष्क और बालू मिश्रित काँप मिट्टी में उगता है। जौ के उत्पादन के लिये गेहूँ की भाँति उपजोऊ दोमट या मटियार मिट्टी की आवश्यकता नहीं पड़ती। (२) गेहूँ की अपेक्षा जौ अधिक शीत एवं नमी सहन कर सकता है इसी लिए जौ की कृषि उत्तरी ध्रुववृत्त तक संभव है। जौ का पौधा शुष्क जलवायु में भी पूर्णरूप से विकसित हो सकता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं पंजाब की शुष्क एवं सिंचाई के साधनों से रहित भूमि में भी जौ की कृषि सफलतापूर्वक की जाती है। जौ के पौधे को कम तापक्रम (१५° से १८° सें०) की आवश्यकता होती है अन्यथा न तो इसका बीज अच्छी तरह से उग सकता है और न अच्छी तरह से पक ही सकता है। साधारणतया जौ को उत्तर प्रदेश में गेहूँ के बाद बोया गेहूँ के पहले ही काटा जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जौ का पौधा अक्टूबर या नवम्बर की जाड़े वाली रातों में प्रफुल्लता के साथ उगता और विकसित होता है किन्तु यह मार्च महीने का सहसा ऊँचा उठता हुआ तापक्रम और शुष्क पछुवा हवा के झोंकों

को सहन नहीं कर सकता। अधिक गर्मी पाने से जौ का दाना सूख कर पतला पड़ जाता है और आटे की अपेक्षा भूसी का अनुपात बढ़ जाता है।

भारत में जौ रबी का फसल है। यह अक्टूबर-नवम्बर में बोया जाता है और मार्च के अन्त में काट लिया जाता है। पंजाब में जौ जनवरी के आरम्भ तक बोया जाता है। सामान्यतः जौ मार्च के अन्तिम सप्ताह में पकना शुरू होता है और मध्य
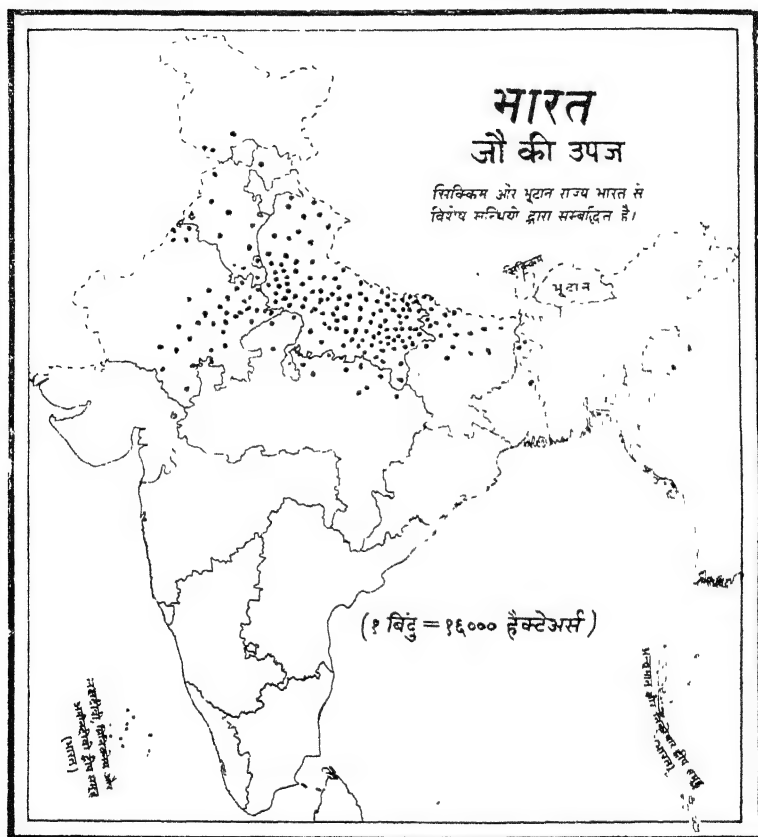
चित्र १४७. जौ के उत्पादक क्षेत्र

अप्रैल तक पूरी तरह पक जाता है। बिहार और पूर्वी उत्तर-प्रदेश में पूर्वी पंजाब की अपेक्षा जौ कुछ सप्ताह पहले पक जाता है। गेहूँ की तुलना में जौ को पकने के लिये कुछ कम समय चाहिए। भारत में भूमि कम उपजाऊ होने के कारण अथवा अधिक ठंड पड़ने के कारण अथवा सिंचाई की सुविधा के अभाव में गेहूँ के स्थान पर जौ बो दिया जाता है। वैसे जौ और गेहूँ की पैदावार का क्षेत्र एक ही है।

भारत में जौ की प्रति एकड़ उपज मुख्यतः भूमि बोने के समय जल का पर्याप्त मात्रा में मिलना और बीज की जाति पर निर्भर है। सिंचाई की हुई भूमि में प्रति एकड़ उपज बिना सिंचाई किए हुये भागों में अधिक होती है।

उत्पादन क्षेत्र

भारत में जौ का उत्पादन दो क्षेत्रों में होता है। पहला क्षेत्र इलाहाबाद के पूर्व से लेकर पश्चिमी बंगाल तक और दूसरा क्षेत्र इलाहाबाद के पश्चिम से पंजाब तक विस्तृत हैं। जौ का सबसे अधिक उत्पादन **उत्तर प्रदेश** में है, जहाँ कुल जौ के क्षेत्रफल का ६०% पाया जाता है। यहाँ मुख्य उत्पादन जिले वाराणसी, आजमगढ़, जौनपुर, बलिया, गाजीपुर, गढ़वाल, गोरखपुर, इलाहाबाद और प्रतापगढ़ हैं। **बिहार** भारत के ५% क्षेत्र में जौ पैदा करता है। यहाँ चम्पारन, सारन और मुज्जफरपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं।

नीचे की तालिका में जौ का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

जौ के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
बिहार	१००८	१००५	२१७	२५५
गुजरात	२१	१९	४	४
मध्य प्रदेश	५००	४८९	१९३	१४३
महाराष्ट्र	१०	६	२	२
पंजाब	४४६	३९८	१५४	१५१
राजस्थान	१३६१	११९७	६५६	५२३
उत्तर प्रदेश	४६१३	४१२९	१७६८	१३१८
पश्चिमी बंगाल	१५१	१२०	४२	२८
दिल्ली	१२	८	१	१
हिमाचल प्रदेश	७६	७१	१५	१४
भारत का योग	८२५५	७१९१	३०६७	२४३५

१९६३-६४ में ६,९०४ ह० एकड़ भूमि पर १,९५४ ह० टन जौ पैदा किया गया।

भारत में उत्पादित जौ का उपयोग देश मे ही हो जाने के कारण इसका निर्यात बिल्कुल नहीं होता।

(५) मकई (Maize)

मकई भी भारत के शुष्क भागों का मुख्य खाद्यान्न है। इसे कई फसलों के साथ मिलाकर बोया जाता है। विश्व की केवल १·४ प्रतिशत मकई भारत में पैदा की जाती है।

मकई के लिए गर्म रात और गर्म दिन की आवश्यकता होती है। अतः मकई गर्म अयन वृतीय क्षेत्रों में या लम्बी गर्मी की ऋतु होने वाले प्रदेशों में अच्छी नहीं होती। साधारणतया मकई के लिए ४½ से ६ महीने लम्बी गर्मी का मौसम— जिसमें पाला या सर्दी न हो और दिन व रात में समान रूप से गर्मी रहे—होना आवश्यक है। इसके साथ ही साथ खुला हुआ आकाश और अच्छी वर्षा यदि कुछ समय के बाद होती रहे—जिसमें पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक नमी तो पहुँचती रहे किन्तु मिट्टी अधिक गीली न हो—तो ऐसी जलवायु मकई के लिये आदर्श होती है।(१)इसके लिए २५° से ३०° सैं० ग्रेड तापक्रम उपयुक्त होता है किन्तु १२° से ३५° सें० ग्रेड वाले तापक्रम क्षेत्र में भी यह पैदा होती है, जहाँ ३ महीने २५° सें० ग्रेड से अधिक तापक्रम रहता है। १२° से कम तथा ३५° सें० ग्रेड से अधिक तापक्रम में यह भली भाँति नहीं उगती।

(२) यह ५० से १०० से० मीटर वर्षा वाले भागों में अच्छी पैदा की जाती है। ५० सें० मी० की वर्षा रेखा इसकी पश्चिमी सीमा और ८० सें० मी० की वर्षा रेखा पूर्वी सीमा निर्धारित करती है। अधिक वर्षा इसके लिए हानिकारक है। (३) इसके लिए नेत्रजन युक्त गहरी दोमट मिट्टी अच्छी रहती है।

यह मई से जुलाई तक बोई जाती है और अगस्त से नवम्बर तक काट ली जाती है।

मकई उत्पादक मुख्य राज्य आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब, जम्मू-काश्मीर, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश हैं। यहाँ मकई के अन्तर्गत क्षेत्रफल का ९५ प्रतिशत पाया जाता है। शेष मकई-क्षेत्र उड़ीसा और बंगाल में है। १९६३-६४ में ११,२३४ ह० एकड़ भूमि पर ४,५२७ ह० टन मकई पैदा की गई।

मकई के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आंध्र प्रदेश	४१७	४४५	१६५	१३८
आसाम	३७	४२	७	७
बिहार	२०२४	२०४५	६९९	८५९
गुजरात	५३८	५५२	२९५	२६७
जम्मू व काश्मीर	५७२	६१८	२०८	२४१
मध्य प्रदेश	११६४	११७९	३९८	४४४
महाराष्ट्र	६७	६३	१४	१३
उड़ीसा	५५	८४	९	१३
पंजाब	१३२८	१४३९	६७०	५२३
राजस्थान	१६५१	१७१५	६८४	७५०
उत्तर प्रदेश	२६९२	२६६४	६८६	९८७

पश्चिमी बंगाल	१३०	१३६	२६	३५
हिमाचल प्रदेश	२८८	२८६	१५५	१५४
भारत का योग	११०४०	११३१६	४२०२	४४४६

भारत में मकई का उत्पादन विशेषतः खाने में किया जाता है। अब इससे स्टार्च और ग्लूकोज भी बनाया जाने लगा है। इसका निर्यात व्यापार बहुत ही थोड़ा है।

(६) दालें (Pulses)

दालें भारत की मुख्य पैदावार हैं। दालों का भारतीयों के भोजन में विशेष स्थान है। माँस और मछली के स्थान पर या उसमें योग देने के लिये भारतीयों के भोजन मे दाल प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। दालें वायु से नेत्रजन खीच लेती हैं और उसे मिट्टी को प्रदान कर उसे उर्वरा बना देती है। इनकी जडों में कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है जो मिट्टी में नत्रजन का निर्माण करते हैं। जौ, गेहूँ तथा गन्ने की फसल काटने के बाद उन खेतों मे दालें बोई जाती है उससे फसलो के हेर-फेर द्वारा बिना खाद पाये ही भूमि उपजाऊ हो जाती है। इसके अतिरिक्त दाल के पौधो को भी खेतों में जोत दिया जाता है इससे हरी खाद दूसरी फसलों को मिल जाता है। कुछ दालों को पशुओं को भी खिलाया जाता है।

दालों के अन्तर्गत चना, अरहर, मूँग, मोठ, चंवला, उर्द, मटर, मसूर, लोबिया आदि का विशेष महत्व है। इनकी खेती रबी तथा खरीफ दोनों ही फसलों में की जाती है। अरहर, चना, मटर और मसूर गेहूँ, जौ आदि रबी की फसल के साथ मार्च अप्रैल मे तैयार हो जाते है और मूग, उर्द चवला, मोठ आदि की फसल खरीफ की फसल है जो जुलाई में बोई जाकर शीतकाल मे काटी जाती है। मुख्य प्रकार की दालों का क्षेत्रफल और उत्पादन निम्न प्रकार है:—

दालों के अंतर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१६६१-६२	१६६२-६३	१६६१-६२	१६६२-६३
आंध्र प्रदेश	१७६६	१८७२	१११	१२७
बिहार	८२६	७७७	१२६	१२४
गुजरात	६७२	६६६	७३	७५
मध्य प्रदेश	१४७६	१४८६	१५८	१६२
मद्रास	८७२	८८७	७८	८०
महाराष्ट्र	२५७१	२६०८	२८६	३०८
मैसूर	१६१६	१७०५	१६२	१६८

पंजाब	३१७	२५७	५२	४२
राजस्थान	४·२३५	४२२५	३९०	४३४
उत्तर प्रदेश	४८१	४३७	५०	६३
प० बंगाल	७१	८४	१६	२१
हिमाचल प्रदेश	४६	४८	६	६
भारत का योग	१५,५७७	१५,६०६	१६११	१७१०
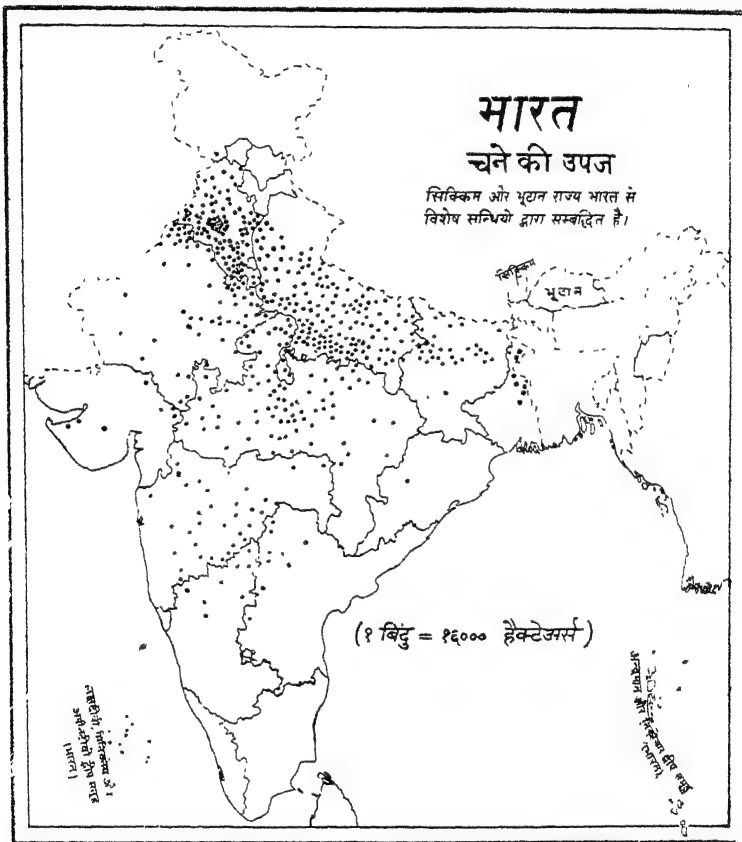
चित्र १४८. चने के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

(क) चना—दालों में चने का महत्व सबसे अधिक हैं। इसका पौधा साधारण रूप से १ फुट से छोटा होता है किन्तु नदियों की कछारी और उपजाऊ भूमि में यह १½ फुट से भी अधिक बढ़ जाता है।

चने के लिए हल्की बलुही मिट्टी और ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होनी है। चने की पैदावार हल्की, ऊँची और भली भाँति सूखी हुई भूमि में अच्छी होती है।

पाला पड जाने से इसका फूल नष्ट हो जाता है जिससे इसका दाना सूख जाता है। चने के बोते समय मिट्टी में नमी होना जरूरी है लेकिन बाद को वर्षा की कमी इसे हानि नहीं पहुँचाती। जहाँ पानी की कमी के कारण गेहूँ या जौ पैदा नहीं हो सकता वहाँ चना उत्पन्न किया जा सकता है। चना जाडे की उपज है। फसल बढ़ने में ४ से ६ महीने लग जाते हैं। उत्तर भारत में नवम्बर से अप्रैल तक तथा मध्य भारत और दक्षिण भारत में नवम्बर से फरवरी तक फसल पक जाती है।

भारतवर्ष में चने की खेती गंगा तथा सतलज नदियों की ऊपरी घाटी और उससे लगे हुए मध्य प्रदेश तक ही सीमित है। समस्त चने के क्षेत्रफल का ९० प्रतिशत गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और पंजाब में है। चने का सबसे घना क्षेत्र उत्तर-प्रदेश (आगरा और मिर्जापुर के बीच में); पंजाब, मध्यवर्ती बिहार, दक्षिणी मैसूर और उत्तर-पूर्वी मध्य-प्रदेश है।

चना के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आंध्र प्रदेश	२३२	२३६	२५	२८
बिहार	१३२२	१२६६	२९५	२८१
गुजरात	२२६	२४०	३७	४६
मध्य प्रदेश	३८३३	३८२६	८६७	९१७
मद्रास	४	४	१	१
महाराष्ट्र	१०४४	१००७	१४०	१६३
मैसूर	३७५	३५८	४४	४५
पंजाब	५६२५	५५५५	१७३३	१७९६
राजस्थान	४००९	३६६७	९८७	७३३
उत्तर प्रदेश	६३६६	६०२९	१४९४	१५१५
प० बंगाल	४०७	४०१	७९	८८
दिल्ली	५९	४६	२०	१०
हिमाचल प्रदेश	१६	१७	२	२
भारत का योग	२३५८५	२२७१९	५७३५	५६३६

१९६३-६४ में २२,८३८ ह० एकड़ भूमि पर ४,४०७ ह० टन चना पैदा किया गया।

अरहर—इसका उत्पादन देश के सभी भागों में होता है किन्तु इसका उपभोग गुजरात और दक्षिण भारत में अधिक होता है। यह ज्वार, बाजरा, रागी अदि अन्य अनाजों के साथ बोया जाता है। यह मई से जुलाई तक बोया जाता है तथा ६ से ८ महीने में पककर तैयार हो जाता है अर्थात् दिसम्बर से मार्च तक।

उत्तर प्रदेश, मैसूर, बिहार, आंध्र, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश अरहर के मुख्य उत्पादक हैं। इन राज्यों में अरहर के अन्तर्गत क्षेत्रफल ९५% पाया जाता है।

अन्य प्रकार की दालों का उत्पादन देश भर में होता है। आंध्र, बहार महाराष्ट्र मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पश्चिमी बगाल, उत्तर प्रदेश और राजस्थान, मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

अध्याय २२

कृषि उत्पादन (क्रमशः)

व्यावसायिक और मुद्रादायिनी फसलें

(COMMERCIAL AND CASH CROPS)

भारत में अनेक प्रकार की व्यावसायिक फसलें पैदा की जाती हैं जिससे कृषक को मुद्रा की प्राप्ति होती है। प्रमुख फसलें इस प्रकार हैं :—

गन्ना (Sugarcane)

भारत गन्ने का जन्म स्थान माना जाता है जहाँ आज भी विश्व के गन्ने के क्षेत्र का लगभग ३७% क्षेत्र पाया जाता है, किन्तु वैज्ञानिक ढङ्गों से क्यूबा भारत की अपेक्षा अधिक गन्ना पैदा करता है अतः उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान द्वितीय है। गन्ने के मुख्य उत्पादक इन दोनों देशों के अतिरिक्त पाकिस्तान, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, फिलीपाइन्स, पोर्टोरीको, हवाई द्वीप, मैक्सिको, डोमिनिकन रिपब्लिक, इण्डोनेशिया, तैवाँ, मारीशस, पीरू, ब्रिटिश पश्चिमी द्वीप समूह और संयुक्त राज्य अमरीका हैं।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

गन्ना मुख्यतः अयन-वृतीय पौधा है किन्तु इसकी खेती अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धों में भी की जाती है। इसके लिये इन दशाओं की आवश्यकता होती है:—

गन्ने की फसल को तैयार होने में लगभग १ वर्ष लग जाता है। अंकुर निकलने के समय २०° सें० ग्रे० औसत तापक्रम लाभदायक रहता है। किन्तु बढ़ने के लिए २०° से २५° सें० ग्रेड की आवश्यकता पड़ती है। ३०° सें० ग्रेड से अधिक और १८° सें० ग्रेड से नीचे के तापक्रम में यह नहीं पैदा होता। अत्यधिक सर्दी और पाला फसल के लिए हानिकारक होता है।

साधारणतः इसके लिए लम्बी और तापयुक्त गर्मियाँ अधिक लाभदायक रहती हैं। यह १०० से २०० सें० मीटर वर्षा वाले भागों में भली प्रकार पैदा किया जा सकता है। कई क्षेत्रों में तो १५० से २५० सैं० मीटर की वर्षा वाले भागों में भी यह पैदा होता है। यदि वर्षा की मात्रा कम होती है तो पौधे को सिंचाई के सहारे पैदा किया जाता है। गर्मी में पौधे को कम से कम चार बार सींचने और गोड़ने से एक-एक पौधे में कई अंकुर निकल आते हैं और वह भूमि में भली प्रकार जम जाता है।

गन्ने के लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी अथवा नमी से पूर्ण भूमि विशेषतः गहरी और चिकनी दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। दक्षिण की लावा युक्त भूमि में भी गन्ना

पैदा किया जाता है। गन्ने के पौधे को पर्याप्त खाद की आवश्यकता होती है। अतः साधारणतः गन्ना तीन वर्षीय हेर-फेर के साथ बोया जाता है। गोबर, कम्पोस्ट, अथवा अन्य प्रकार के प्राणिज खादों और सनई, ढैंचा आदि हरी खाद का भी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। दक्षिणी भारत में २०० से ३०० पौंड नेत्रजन और उत्तरी भारत में १०० से १५० पौंड नेत्रजन खाद दिया जाता है।

यह साधारणतः मध्य जनवरी से मध्य अप्रेल तक लगाया जाता है तथा आगामी फरवरी-मार्च में काट लिया जाता है। गुजरात-महाराष्ट्र और मैसूर में अदसाली फसल जून से जुलाई तक बोई जाती है और नई पौध जनवरी में बोई जाती है। मद्रास में पौध रखने का समय मार्च से सितम्बर तक होता है। एक बार का बोया पौधा तीन वर्षों तक अच्छी फसल देता है। उपजाऊ भूमि, अच्छी सिंचाई और तेज गर्मी मिलने पर गन्ने का पौधा काफी ऊँचा बढ़ जाता है। कभी-कभी तो यह ७½ मीटर तक ऊँचा हो जाता है।

भारत में जलवायु सम्बन्धी विभिन्नताओं के कारण उत्तरी भारत में पतला और दक्षिणी भारत में मोटा गन्ना उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यों बंगाल से पंजाब की ओर बढ़ते है त्यों-त्यों गन्ने में रेशे का अंश बढता जाता है और मिठास की मात्रा कम होती जाती है। भारत में गन्ने में रस की मात्रा तथा गन्ने की प्रति एकड़ औसत पैदा अन्य देशों की तुलना में बहुत कम होती हैं जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

गन्ने में रस की मात्रा और प्रति एकड़ उपज

देश	रस की मात्रा का प्रतिशत	प्रति एकड़ उत्पादन (टनों में)	प्रति एकड़ गन्ने के क्षेत्र से शक्कर की प्राप्ति (टनों में)
क्यूबा	१२·२५	१७·१२	२·०६
पोर्टोरीको	१२·२३	२४·१६	२·९५
हवाई	१४·४६	६२·०५	६·४८
मारीशस	१२·०८	१९·६३	२·३७
द० अफ्रीका	१०·९०	२२·३६	३·४३
जावा	११·४६	५६·२०	६·४४
भारत	९·५०	१४·७०	१·३९

भारत में प्रति एकड़ उत्पादन कम होने के मुख्य कारण ये हैं :—

(१) गन्ने का प्रति एकड़ उत्पादन दक्षिणी भारत में अधिक है किन्तु ८० प्रतिशत गन्ने का क्षेत्र उत्तरी भारत में स्थित है। अधिक शीतलता, वर्षा तथा मार्च में सहसा ऊँचा उठ जाने वाला तापक्रम गन्ने के लिए अनुपयुक्त वातावरण उपस्थित कर देता है।

(२) अधिकांश खेत छोटे-छोटे टुकडों में बंटे है। बड़े खेतों की संख्या नगण्य है। खेत: की जोताई और सिंचाई के लिए पुराने प्रकार के लकड़ी के हल तथा पुरवट जैसी वस्तु का उपयोग होता है। गोडाई कुदाल और फावड़े से की जाती है। रासायनिक खादों का तथा फसलों के हेर-फेर आदि का कम उपयोग होता है। ये सब बातें उपज को सीमित करती हैं।

(३) सिंचाई के साधनों का पूर्ण विकास अभी नही हुआ है। नहरों द्वारा सिचाई मँहगी पड़ती है और कुओं द्वारा एक एकड़ गन्ने को सींचने में एक सप्ताह तक लग जाता है। परिणामस्वरूप गन्ने को उतना जल नहीं प्राप्त होता जितना उसके लिए आवश्यक है।

(४) भारत मे कोयम्बूटर का गन्ना ही अधिकतर बोया जाता है। यह गन्ना दो वर्ष तक ही अच्छा उत्पादन देता है। तीसरे वर्ष गन्ने की नवीन फसल बोनी पड़ती है। इसके विपरीत क्यूबा मे १० वर्ष तक एक ही बार बोई गई फसल से निरन्तर गन्ना प्राप्त होता रहता है।

(५) रेड राट (Red Rot) गन्ने का सबसे भयङ्कर रोग है जो भारत भर मे फैल गया है। इसके कारण गन्ने की पत्ती सूखकर लाल हो जाती है और जड़ में कीड़े लग जाते है जिससे पौधा सूख जाता है। यह छूत की बीमारी है और एक पौधे में होने से मीलों तक अपना आंतक फैला देती है।

अब पिछले कई वर्षों से भारत में गन्ने की किस्म को उन्नत करने के सफल प्रयास किये गये हैं। कोयम्बटूर के अनुसन्धान केन्द्र मे गन्ने को ज्वार के पौधे से कलम करके तैयार किया गया है। उत्तम कोटि का होने के कारण उसकी खेती का क्षेत्रफल बढ़ रहा है। महाराष्ट्र में उत्तम श्रेणी का गन्ना बोने से प्रति एकड़ पीछे १२२ मन तक गन्ना प्राप्त किया गया है। उत्तरी भारत में प्रति एकड़ गन्ने का उत्पादन ३०० से ४०० मन का और दक्षिणी भारत में ६०० मन तक होता है किन्तु उत्तम कोटि के बीज से उतरी भारत में १,५०० मन और दक्षिणी भारत में २,५०० मन तक गन्ना प्राप्त किया गया है।

उत्तर-प्रदेश, बिहार, पंजाब आदि में गन्ने की उत्तम श्रेणी की किस्में— Co. 312; Co. 313; Co. 419; Co. 421; Co. 453; Co. 527; Co. 532; B.O. 10 और B.O. 11—पैदा की जाती हैं।

उत्पादक क्षेत्र

यद्यपि गन्ने की खेती के लिये उतरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत भौगोलिक सुविधाओं की दृष्टि से अधिक अनुकूल है तथापि अधिक गन्ना उत्तरी भारत में ही उपजाया जाता है। अकेला उत्तर प्रदेश देश की उपज का ५०%, पंजाब १५%, तथा बिहार १२% पैदा करता है। ये तीनों राज्य मिल कर भारत का लगभग ८० प्रतिशत गन्ना उत्पन्न करते हैं।

गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आन्ध्र प्रदेश	२१५	२३३	६२७०	७०८३
आसाम	६७	७०	१०६८	९८२
बिहार	४८७	४००	६०३७	४८००
गुजरात	५२	५०	११०२	१०३२
केरल	२३	२३	३७१	४१०
मध्य प्रदेश	११५	१३५	११९५	१४०२
मद्रास	१८७	१८०	५५४३	५६३४
महाराष्ट्र	३२९	३७०	७७९५	८५२१
मैसूर	१६१	१६८	४१२१	५६५२
उड़ीसा	५९	६३	६९१	७४८
पंजाब	६६८	६४४	८२१०	८३१०
राजस्थान	८१	८०	७१९	८१०
उत्तर प्रदेश	३३८३	३१४४	५०७२३	४३१९९
पश्चिमी बंगाल	८५	७७	१७८९	१३३३
भारत का योग	५९४२	५६६१	९६०२१	९००६०

गंगा की घाटी में ही गन्ना अधिक पैदा किया जाता है, इसके कई कारण हैं— (१) यहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ के समय खेतों में कछारी मिट्टी फैल जाती है। (२) जल कम गहराई पर ही मिल जाता है जिससे सिंचाई आसानी से हो जाती है। वर्षा भी १०० सें० मी० तक हो जाती है (३) समतल मैदान होने के कारण खेती सरलतापूर्वक की जा सकती है। (४) पाले का अभाव रहता है। (५) तापक्रम लगभग २७° सें० ग्रेड तक रहता है। (६) घनी जनसंख्या होने के कारण मजदूर सस्ते और आसानी से मिल जाते हैं।

(१) **उत्तर प्रदेश**—गन्ने के क्षेत्र एवं उत्पादन की दृष्टि से भारत में उत्तर प्रदेश का स्थान सर्व प्रथम है। भारतीय क्षेत्र का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग केवल उत्तर प्रदेश में स्थित है। यहाँ गन्ने की दो प्रमुख पेटियाँ हैं। पहली पेटी तराई प्रदेश से संबद्ध है और रामपुर से प्रारम्भ होकर बरेली, पीलीभीत, सीतापुर, खीरी, लखीमपुर, गोंडा, फैजाबाद, आजमगढ़, जौनपुर, बलिया, देवरिया, गोरखपुर होती हुई बिहार के सारन, चम्पारन तक फैली है। इस पेटी का केन्द्र गोरखपुर-देवरिया कहा जा सकता है जहाँ कई चीनी की मिलें हैं।

दूसरी पेटी गंगा-यमुना नदियों के दोआब में स्थित है। यह मेरठ से इलाहाबाद तक विस्तृत है। इस पेटी का केन्द्र मेरठ में है। मेरठ का गन्ना उत्तम कोटि का ऊँचा मोटा तथा रस वाला होता है।

(२) **आन्ध्र** में गन्ने की कृषि गोदावरी तथा कृष्णा के डेल्टों में होती है क्योंकि इस प्रदेश में उपरोक्त नदियों के डेल्टों में नहरों द्वारा सिंचाई करने की सुविधा प्राप्त है। यहाँ की भूमि बड़ी उर्वर है।

चित्र १४६. प्रमुख गन्ना तथा नारियल उत्पादक क्षेत्र

(३) **मद्रास** में कोयम्बटूर एवं मदुराई जिलों में गन्ने की कृषि विशेष रूप से होती है। कोयंबटूर में गन्ने की अनुसंधानशाला भी है जिससे कृषि में सहायता मिलती है।

(४) **महाराष्ट्र** राज्य के गन्ने का क्षेत्र राज्य के पूर्वी भाग में नासिक के दक्षिण में स्थित है। अहमदनगर, नासिक, पूना और शोलापुर जिले प्रमुख उत्पादक हैं। यहाँ गन्ने की सिंचाई के लिये बड़ी बड़ी योजनायें बनाई गई हैं। तापक्रम वर्ष भर सम रहता है जिससे गन्ने में रस अधिक निकलता है और वर्ष भर ही मिलों

को गन्ना मिलता रहता है । इन्हीं सब कारणों से अहमदनगर के निकट गन्ना पेरने की बड़ी बड़ी मिलें स्थापित हो गई है।

(५) **पंजाब** भारत का चतुर्थ महत्वपूर्ण गन्ना उत्पादक राज्य है जहाँ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों की भाँति सिचाई की सहायता से गन्ना उत्पन्न किया जाता है। यहाँ के प्रमुख गन्ना उत्पादक जिले रोहतक, जालंधर फिरोजपुर, गुरुदासपुर एवं अमृतसर आदि है जहाँ ८ प्रतिशत भारतीय गन्ने का उत्पादन होता है।

(६) **पश्चिमी बंगाल** में अतिवृष्टि जूट की अपेक्षा गन्ने के लिए कम उपयोगी है फिर भी बर्दवान, वीरभूमि, हुगली, मुर्शिदाबाद, चौबीस परगना और नादिया आदि जिलो की ½ प्रतिशत से १ प्रतिशत कृषि योग्य भूमि पर गन्ने की खेती की जाती है।

(७) **बिहार** के गन्ने का क्षेत्र उत्तर प्रदेश की तराई वाली पेटी से सम्बद्ध है । प्रधान गन्ना उत्पादक जिले चम्पारन, सारन, शाहाबाद, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया और भागलपुर आदि है जहाँ कृषि योग्य भूमि के ५ प्रतिशत से लेकर १० प्रतिशत क्षेत्र में केवल गन्ने की खेती होती है।

भारत में जितना गन्ना पैदा होता है उसका ५१% गुड़ बनाने में; ३०% सफेद चीनी बनाने में और शेष चूसने तथा बीज के रूप काम में लाया जाता है।

तीसरी योजना में गन्ने का उत्पादन ७३ लाख टन से बढ़ कर ९३ लाख टन तथा प्रति एकड़ उत्पादन ३२०६ पौड से बढ़ कर ३७८८ पौंड होगा। अर्थात् प्रतिशत वृद्धि क्रमशः २७.४ और १८.२ की होगी।

तिलहन (Oilseeds) :

तिलहन के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में प्रमुख है। यहाँ विश्व की ¾ मूंगफली, ⅓ तिल, ⅕ रेंडी और ⅙ सरसों और अलसी उत्पन्न की जाती है। तिलहन के अन्तर्गत दो प्रकार के बीज सम्मिलित किए जाते हैं। एक वे जिनका दाना छोटा होता है जैसे, अलसी, सरसों, राई और तिल । दूसरे वे जिनका दाना बड़ा होता है जैसे, मूंगफली, रेंडी, बिनौला, महुआ और नारियल आदि। छोटे दाने वाले तिलहन अधिकांशतः उत्तरी भारत में और बड़े दाने वाले दक्षिणी भारत में होते हैं।

तिलहनों को भोज्य और अभोज्य होने की दृष्टि से भी दो भागों में बाँटा जा सकता है। मूंगफली, सरसों, राई और तिल भोज्य हैं तथा अलसी, रेंडी, बिनौले और महुआ आदि अभोज्य । इन सभी प्रकार के तिलहनों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी, वर्षा एवं ताप की आवश्यकता होती है। अतः ये भारत के सभी राज्यों मे न्यूनाधिक मात्रा में पैदा किये जाते हैं।

(१) **मूंगफली**—इनका आदि स्थान ब्राजील है। यहीं से यह विश्व के अन्य देशों में पहुँचाई गई । मूंगफली के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में सर्व प्रथम है। विश्व के उत्पादन का लगभग ३२% भारत से ही प्राप्त होता है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

यद्यपि यह उष्ण कटिबन्धीय पौधा है किन्तु यदि गर्मियाँ अच्छी रहें तो इसकी खेती अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय भागों में भी की जा सकती है। साधारणतः इसे ७५ से

१५० सैं० मीटर तक की वर्षा पर्याप्त होती है। इससे कम वर्षा होने पर सिंचाई का सहारा लिया जाता है। यह अधिक वर्षा वाले भागों में भी पैदा की जा सकती है।

यह साधारणतः शुष्क भूमि की फसल है। इसके पकने में ६ महीने तक लगते हैं। यद्यपि अब ऐसी किस्म भी पैदा की जाने लगी है जो ९० से १०० दिनों में ही पक जाती है। इसे ज्वार, बाजरा, रेंडी, अरहर अथवा कपास के साथ मिलाकर भी बोया जाता है।

मूंगफली का पौधा इतना मुलायम होता है कि अधिक शीतल प्रदेशों में इसका उगना असम्भव है। साधारणतया इसे १५° से २५° से० ग्रेड तक के तापक्रम की आवश्यकता होती है। पाला फसल के लिये हानिकारक है।
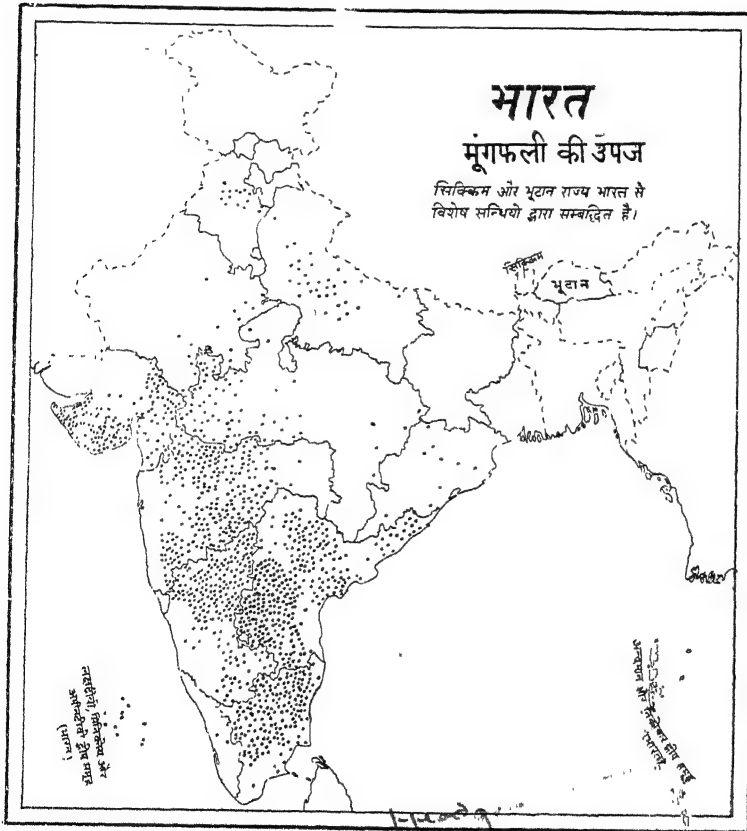
चित्र १५०. मूंगफली के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

यह हल्की मिट्टी में जिसमें खाद पड़ा हो और जीवांश मिले हों अच्छी-पैदा होती है। भारत में इसकी फसल महाराष्ट्र, गुजरात और मद्रास राज्यों के काली मिट्टी और दक्षिण के पठार के लाल मिट्टी के क्षेत्र में भी होती है। गंगा की कछारी

बालू मिट्टी में भी यह बोई जाती है। हल्की बलुही मिट्टी में कठोर चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक फलियाँ लगती है।

मूंगफली प्राय: खरीफ की फसल है जो मई से लेकर अगस्त तक बोई तथा नवम्बर से जनवरी तक खोदी जाती है। मद्रास राज्य मे मूंगफली खरीफ तथा रबी दोनों ही फसलों में होती है। दूसरी फसल की बोवाई फरवरी और मार्च के महीने में होती है और जून जुलाई तक खोदी जाती है। यद्यपि मूंगफली का ८० प्रतिशत उत्पादन दक्षिण भारत में ही होता है किन्तु प्रति एकड उत्पादन उत्तरी भारत की अपेक्षा कम है। भारत मे मूंगफली की कृषि का महत्त्व केवल मुद्रादायनी फसल के रूप में ही नहीं है किन्तु खाद की दृष्टि से भी है। जिस खेत में मूंगफली की कृषि होती है उसकी मिट्टी कीटाणुओं से भर जाती है जो नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ा देते हैं। मैसूर में मूंगफली की खेती रागी के साथ हेर-फेर करके की जाती है। इससे दोनों की फसल लगभग दूनी हो जाती है। मूंगफली की फसल तैयार होने में ६ महीने से भी अधिक समय लगता है अत: अब अन्तर्कृषि प्रणाली द्वारा मूंगफली उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। मूंगफली की कृषि का प्रादेशिक वितरण उतना ही अवैज्ञानिक है जितना गन्ने का। मूंगफली का ८० प्रतिशत उत्पादन दक्षिणी भारत में होता है जबकि उत्तरी भारत की जलवायु इसके लिये अधिक अनुकूल है और गन्नों का ८० प्रतिशत उत्पादन उत्तरी भारत में होता है जबकि दक्षिणी भारत की जलवायु इसके लिये अधिक अनुकूल है। परिणामस्वरूप गन्ने तथा मूंगफली दोनों ही की प्रति एकड़ उपज अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है।

इसकी प्रति एकड़ उपज कई बातों पर निर्भर रहती है विशेषकर मिट्टी, मौसम और बोने के तरीकों पर। मूंगफली की जमीन में फैल जाने वाली फसल से प्रति एकड़, अधिक उपज प्राप्त होती है अपेक्षतया झुंड में फैलने वाली फसल के। सिंचाई करने पर फसल की उपज और भी अच्छी होती है।

भारत में व्यावसायिक दृष्टि से चार किस्म की मूँगफली पैदा की जाती है :—

(i) **कोरोमन्डल या मारीशस** (Coromandal or Mauritius)—यह मुख्यत: महाराष्ट्र और मद्रास में पैदा की जाती है। इसका पौधा अधिक फैलता है तथा इसके पकने में लगभग ४½ महीने लगते हैं। छिलकों में ७७% मूंगफली प्राप्त होती है जिसमें तेल की मात्रा ४० से ५०% तक होती है।

(ii) **बम्बई बोल्ड किस्म** (Bombay Bold)—यह किस्म महाराष्ट्र के शोलापुर, बरसी, लटूर, गुलबर्गा कोल्हापुर जिलों और गुजरात में कराद और सौराष्ट्र में पैदा की जाती है। इसके फल बड़े होते है। फल में तेल की मात्रा ४३ से ४७ प्रतिशत तक होती है।

(iii) **स्पेनिश या खानदेश किस्म** (Spanish or Khandesh)—यह महाराष्ट्र राज्य के खानदेश; मध्यप्रदेश तथा मद्रास के कोयम्बटूर और पाडिचेरी जिलों में बोई जाती है। फल अधिकतर गुच्छों के रूप में लगते हैं। फसल ३½ महीने में ही तैयार हो जाती है। छिलकों से ७८ प्रतिशत तक मूँगफली मिलती है जिससे तेल की मात्रा ५० से ५४ प्रतिशत तक होती है।

(iv) **लाल नैटाल** (Red Natal or Lal Boria)—यह अधिकतर सौराष्ट्र, गुजरात, कोल्हापुर, कराद, बरार और मध्य प्रदेश में पैदा की जाती है। यह तीन महीने में ही पक जाती है तथा इसमें तेल का अंश ४६ से ५१ प्रतिशत तक होता है।
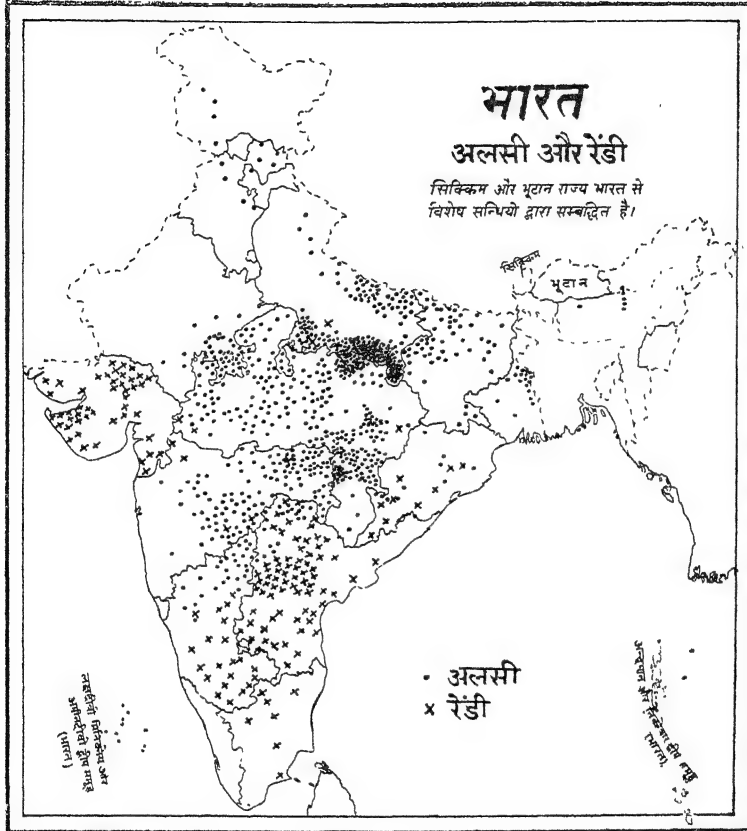
चित्र १५१. अलसी के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

भारत में मूँगफली के मुख्य उत्पादक आंध्र, मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र और मैसूर राज्य हैं जिनमें कुल क्षेत्रफल का ९० प्रतिशत पाया जाता है। राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश अन्य उत्पादक हैं। १९६३-६४ में १६,८१४ ह० एकड़ भूमि पर ५,२०७ ह० टन मूंगफली पैदा की गई।

मूंगफली के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन १९६२-६३

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आन्ध्र प्रदेश	२१९५	५८०
गुजरात	४६०९	१२३८

केरल	४०	१४
मध्य प्रदेश	६६८	२५७
मद्रास	२०७६	१००४
महाराष्ट्र	२६१६	७१६
मैसूर	२१३३	४६६
उड़ीसा	६०	१६
पंजाब	१८०	६४
राजस्थान	२६८	६२
उत्तर प्रदेश	६४३	२२६
भारत का योग	१६६६२	४७४५

भारत से मूंगफली का निर्यात मुख्यत: कनाडा, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इटली और इंगलैंड को किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से अब मूंगफली के तेल का भी निर्यात किया जाने लगा। है

(२) **अलसी**—अलसी दो कार्यो के लिए पैदा की जाती है। भारत में इसका उत्पादन विशेषत: बीजों के लिए किया जाता है जिससे तेल प्राप्त होता है, जबकि शीतोष्ण देशों मे अलसी के पौधे से रेशे प्राप्त किये जाते हैं जिससे लिनेन वस्त्र बुना जाता है। तेल का उपयोग रंग-रोंगन बनाने मे किया जाता है।

अलसी या तीसी उत्पन्न करने वाले देशों भारत का स्थान चौथा है। यहाँ से कुल उत्पादन का १२% प्राप्त होता है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

अलसी के लिये ठन्डे जलवायु की आवश्यकता होती है अत: जिन स्थानों में गेहूँ की पैदावार हो सकती है वहाँ अलसी भी आसानी से हो सकती है। इसके लिए औसत तापक्रम १५° से २५ सें० ग्रेड ठीक रहता है। अलसी सभी प्रकार की मिट्टी में हो सकती है यदि वहाँ काफी नमी हो। इसके लिये ७५ से १५० सें० मीटर तक की वर्षा पर्याप्त होती है।

भारत में प्रायद्वीपीय एवं मैदानी दो प्रकार की अलसी उत्पन्न की जाती है। प्रथम प्रकार की अलसी को गहरी काली मिट्टी की आवश्यकता होती है जो कुछ समय तक नमी सञ्चित रख सके। दूसरे प्रकार की अलसी कछारी मिट्टी में पैदा की जाती है।

इसकी खेती पजाब से लगा कर बंगाल तक भिन्न-भिन्न जलवायु में होती है। भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु में उत्पन्न होने वाली अलसी की बोवाई और कटाई भी भिन्न-भिन्न समय में होती है। प्राय: वर्षा के समाप्त होते ही अक्टूबर से दिसम्बर तक अलसी बोई जाने लगती है और फरवरी से अप्रैल तक काटी जाती है। अलसी की कृषि रबी की फसलों के साथ-साथ होती है अत: अन्य फसलों

के साथ साथ यह भी सींची जाती है अथवा बिना सींचे भी उत्पन्न की जा सकती है।

भारत में दो प्रकार की अलसी बोई जाती है —बड़े दाने की बादामी रंग की और छोटे दाने की पीले रग की।

उत्पादक क्षेत्र

अलसी के मुख्य उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान महाराष्ट्र और गुजरात है। कुल क्षेत्रफल का लगभग ९०% इन राज्यों में है। मैसूर और आंध्र प्रदेश में भी यह पैदा की जाती है।

अलसी के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आन्ध्र प्रदेश	७२	७३	४	५
बिहार	२७४	२९५	४१	३१
महाराष्ट्र	५६२	५६९	४७	५३
जम्मू व काश्मीर	२३	२१	७	५
मध्य प्रदेश	१४८९	१४९८	१३१	१४१
मैसूर	१२१	११६	१०	११
उड़ीसा	५४	४८	८	१०
पंजाब	२८	२५	३	५
राजस्थान	२१२	२७१	१९	२७
उत्तर प्रदेश	१२४३	१६४९	११३	११९
पश्चिमी बंगाल	१२५	११३	८	१२
भारत का योग	४२११	४६५३	३९१	४२०

अलसी का निर्यात पहले इंगलैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, हालैंड और इटली आदि देशों को किया जाता था किंतु अब तेल पेरने वाली मशीनों के प्रचार से तेल अधिक और अलसी कम मात्रा में भेजी जाती है।

(३) **तिल**—तिल की मातृभूमि दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका बताई जाती है किन्तु वैदिक यज्ञों में तिल का वर्णन आया है अतएव संभवतः यह यहीं का पौधा रहा होगा। प्रारम्भ में इसकी खेती कहीं भी की जाती रही हो किन्तु आज भारत तिल का दूसरा बड़ा उत्पादक है। अन्य उत्पादक सूडान, मैक्सिको, बर्मा, पाकिस्तान और टर्की हैं।

तिल की पैदावार भारत में ठन्डे भागों में खरीफ की फसल और गर्म भागों में रबी की फसल की भाँति की जाती है। पहले भागों में यह मई से अगस्त तक बोया जाता है और अगस्त से दिसम्बर तक काटा जाता है। दूसरे भागों में अक्टूबर से जनवरी तक बोया जाता है और मई से जुलाई तक काट लिया जाता है।

इसकी खेती अनेक प्रकार की जलवायु में की जाती है। इसके लिए २०° से २५° सें० ग्रेड या इससे कुछ अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। ५० से १०० सैं० मी० तक की वर्षा इसके लिए पर्याप्त होती है।

तिल के लिए हल्की बलुही मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें पानी रुके नहीं। जब खेत में पानी रुक जाता है तो पौधा नष्ट हो जाता है। इसकी खेती निकृष्ट एवं अनउपजाऊ खेतीहर भूमि में भी की जाती है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और मद्रास इसके मुख्य उत्पादक हैं। इन राज्यों में तिल के अन्तर्गत ९०% क्षेत्र पाया जाता है।

तिल के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन १९६१-६२

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र प्रदेश	५६०	
बिहार	६८	
गुजरात	२८१	
केरल	३०	
मध्य प्रदेश	७३०	
मद्रास	३१३	
महाराष्ट्र	२८७	
मैसूर	१५७	
उड़ीसा	२२८	
पंजाब	५०	
राजस्थान	१२५८	
उत्तर प्रदेश	१५५९	
भारत का योग	५५६१	

पिछले कुछ वर्षों से तिल का निर्यात व्यापार नगण्य सा ही है। तिल का तेल ही अधिक निर्यात किया जाता है। इसके मुख्य खरीदार इंगलैण्ड, मारीशस, अरब, लङ्का, फ्रास, बेल्जियम, मिश्र. जर्मनी और इटली हैं।
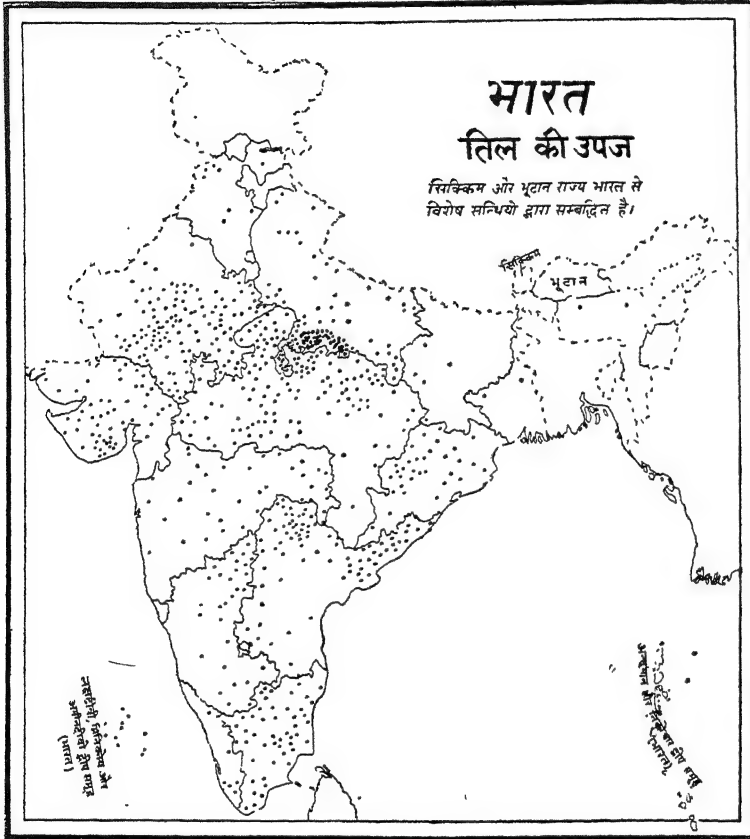
चित्र १५२. तिल के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

(४) **सरसों और राई**—सरसों और राई दोनों ही तेल-बीज गेहूँ और जौ आदि फसलों के साथ मिलाकर बो दिये जाते है। अतः इनके लिए भी वैसा ही जलवायु और मिट्टी की आवश्यकता होती है जैसी गेहूँ या जौ के लिए। औसत ताप-क्रम २०° से २५° सें० ग्रेड और वर्षा ७५ से १५० सैंटीमीटर लाभदायक होती है। किन्तु पानी की अधिकता पौधों को नष्ट कर देती है। यह अगस्त से अक्टूबर तक बोई जाती है और जनवरी से अप्रैल तक काट ली जाती है। यह अधिकतर गेहूँ, चना तथा मटर के साथ बोई जाती है।

भारत में ये दोनों ही उत्तरी भारत में अधिक पैदा किये जाते हैं। इनके मुख्य उत्पादक उत्तर-प्रदेश, बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा और पंजाब आदि हैं।

भारत की उपज का अधिकांश भाग बेल्जियम, इटली, फ्रांस, और इङ्गलैंड को निर्यात किया जाता है। देश में इसका उपयोग तेल बनाने में तथा इसकी खली पशुओं को खिलाने में काम में लाई जाती है।
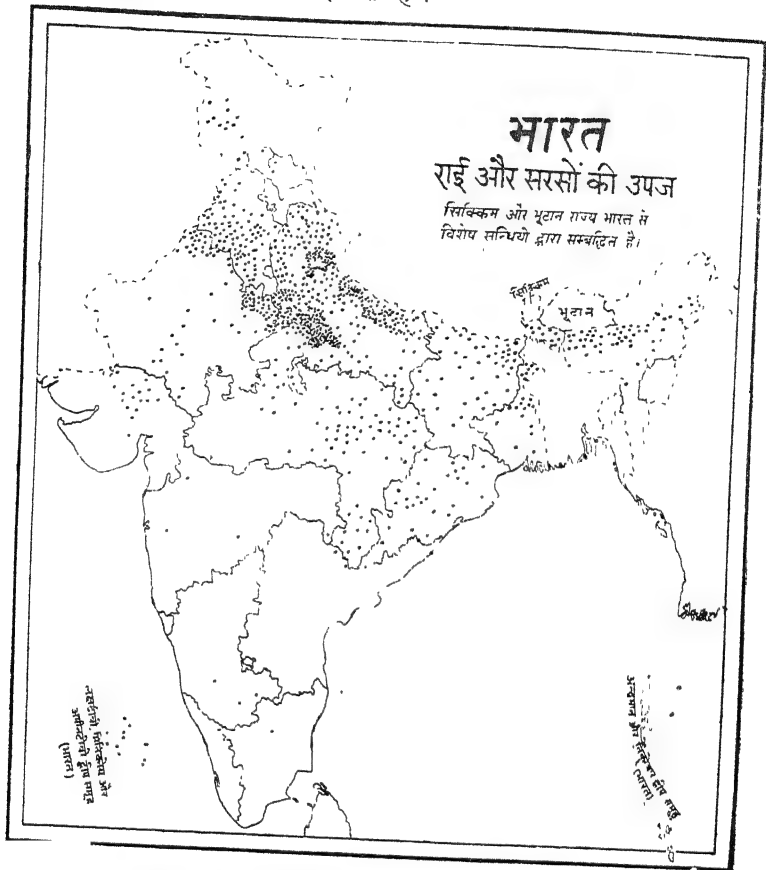
चित्र १५३. राई और सरसों के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

राई व सरसों के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६१-६२	१९६२-६३
आसाम	२७१	२९३	३६	४३
बिहार	२९१	२६३	४९	५२
गुजरात	५९	७१	११	१३

जम्मू व काश्मीर	३६	५४	१०	१२
मध्य-प्रदेश	३६७	३८५	४३	४२
महाराष्ट्र	१०	१०	१	१
उड़ीसा	११३	११३	१६	१८
पंजाब	७०७	६२८	१५८	२१६
राजस्थान	६४८	७६१	१४५	१३०
उत्तर-प्रदेश	४७७३	४५४६	८१६	७११
पश्चिमी बंगाल	२८६	२३५	३४	३७
भारत का योग	७५६८	७७२६	१२८५	१२७६

(५) **रेंडी**—भारत मे २७% रेंडी प्राप्त होती है। रेंडी की कृषि मैदानों तथा पठारों पर समान रूप से होती है। रेंडी का पौधा ६ से ७ मीटर तक ऊँचा होता है और नर्म स्थानों की अपेक्षा गर्म स्थानों में सरलता से उगता है। यह पौधा शुष्क जलवायु में भी हरा भरा रहता है किन्तु अधिक जल वाले स्थान में पीला होकर गल जाता है। अतः इसके पौधे के लिए शुष्क बलुही या काँप मिट्टी के क्षेत्र की आवश्यकता होती है। पाला पड़ने से रेंडी के पेड़ की पत्तियाँ सूख जाती हैं और फसल को बड़ी क्षति पहुँचती है।

रेंडी की कृषि बहुधा ज्वार,बाजरे,अरहर तथा कपास आदि के साथ-साथ की जाती है। बम्बई में ४/५ तथा मद्रास की ३/५ रेंडी की कृषि स्वतन्त्र रूप में होती है। रेंडी को रबी और खरीफ दोनों फसलों में उगाया जाता है। गर्म जलवायु वाले राज्यों में रेंडी का पेड़ एक बार बोये जाने पर कई वर्ष तक रेंडी उत्पन्न करता रहता है किन्तु ऊँचे और शीतल क्षेत्रों में यह प्रति वर्ष बोया जाता है। साधारणतया जुलाई के महीने में पहली वर्षा पड़ने पर रेंडी बो दी जाती है और दिसम्बर से मार्च तक काटी जाती है। पर सौराष्ट्र और कच्छ आदि में इसे अगस्त और सितम्बर में बोते हैं।

भारत में इसके मुख्य उत्पादक आंध्र-प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, और उड़ीसा हैं। कुछ रेंडी मध्यप्रदेश, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश में भी पैदा की जाती है।

भारत में रेंडी का उपयोग तेल निकालने में किया जाता है जो मशीनों को चिकना करने में उपयुक्त है। इसकी खली पशुओं को खिलाई जाती है तथा खेतों में खाद के रूप में प्रयुक्त होती है।

भारत से रेंडी के तेल का निर्यात मुख्यतः बेल्जियम, फ्रांस, इटली, सं० राज्य अमरीका, हौलैंड, स्पेन आदि देशों को निर्यात किया जाता है। १९६३-६४ में १,१०६ ह० एकड़ भूमि पर ६६ ह० टन रेंडी पैदा की गई।

(६) **बिनौला** (Cottonseed)—बिनौला कपास के बीज को कहते हैं। यह केवल पशु को ही नहीं खिलाया जाता वरन् इससे वनस्पति घी भी बनाया जाता है। पशुओं से कम दूध प्राप्त होने के परिणामस्वरूप घृत का प्रयोग संकुचित है और रसोई के कार्यों में वनस्पति घी का प्रयोग अधिक होता है।

बिनौले के लिए जिन भौगोलिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है उनका वर्णन आगामी पृष्ठों में कपास के प्रकरण के अन्तर्गत किया जायगा। बिनौले का अधिकतर उत्पादन दक्षिण भारत की काली मिट्टी एवं मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में स्थित है। भारत में बिनौले मे १८ प्रतिशत से १६ प्रतिशत तेल की मात्रा रहती है। तेल निकलने के बाद खली का उपयोग पशुओं को खिलाने तथा खाद के रूप में होता है।

(७) **महुवा** (Mahua)—जुलाई अगस्त में महुवा के पक जाने पर उससे घुडियाँ प्राप्त होती है। इन घुंडियों को बरसाती धूप में खूब सुखा लिया जाता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में (कभी-कभी ३३ प्रतिशत से अधिक) तेल निकलता है। यह तेल भोज्य होता है और इससे अनेक प्रकार की खाद्य सामग्री, मिठाई आदि बनाई जाती है। महुवे के लिए अधिक तापक्रम और साधारण वर्षा किन्तु बलुही भूमि की आवश्यकता पडती है। समस्त प्रायद्वीपीय भाग और उत्तर में मैदानी भाग में महुवे के पेड़ उगे हुए हैं जिनसे प्रति वर्ष लाखों टन घुन्डी मिलती है। लगभग सभी तेल की खपत देश में ही हो जाती है।

(८) **नारियल** (Coconut)—उष्ण कटिबन्धीय ताड़ों में सबसे अधिक महत्व नारियल के वृक्ष हैं। इसका आर्थिक उपयोग सबसे अधिक है। इसके वृक्ष से खोपरा, नारियल का तेल, नारियल के तेल की खली, जटायें आदि प्राप्त होती हैं। तने से साही लकड़ी मिलती है, जो बड़ी कड़ी होती है, और इमारती कामों में प्रयुक्त की जाती है। खोखले तने देशी नाव बनाने के काम में आते हैं। फूलों से ताड़ी (toddy) निकाली जाती है जिससे गुड़, शक्कर, सिरका (Vinegar) तथा अन्य पेय पदार्थ बनाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ छतें छाने के काम आती हैं और जटा से रस्से, चटाइयाँ, दरी और ब्रुश आदि बनते हैं। खोपरा की लकड़ी से बटन, प्याले चम्मच आदि बनाये जाते हैं। इतने अधिक उपयोग होने के कारण ही इसके वृक्ष को 'कल्प वृक्ष' (Wish-granting tree) कहा जाता है।

यद्यपि निश्चित आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं किन्तु अनुमानतः समस्त विश्व में लगभग ८४ लाख एकड़ भूमि पर नारियल का वृक्ष पाया जाता है। इसके मुख्य उत्पादक फिलीपाइन्स, भारत, इंडोनेशिया, मलाया, लका और ब्रिटिश दक्षिणी द्वीप समूह हैं।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

नारियल का वृक्ष उष्ण कटिबन्धीय जलवायु क्षेत्रों में ही पैदा होता है जहाँ अधिक वर्षा और पर्याप्त तापक्रम रहते हैं। साधारणतः तापक्रम २०° से २५° सें० ग्रेड तक और वर्षा १५० सें० मीटर से अधिक होनी चाहिये। यह अधिकतर समुद्र तटों पर और नदियों के डेल्टों में काँप भूमि में पैदा किया जाता है। यद्यपि इसे समुद्री हवा की आवश्यकता रहती है किन्तु यह समुद्र से दूर वाले स्थानों में भी पैदा किया जाता है।

भारत में इसकी कई किस्में पैदा की जाती हैं जिनमें मुख्य ये हैं :—

(१) **पश्चिमी तट** (West Coast)—इस किस्म का उत्पादन भारत के सभी तटीय भागों में होता है। इसका व्यवसायिक महत्व भी अधिक है। यह तटीय बालू मिट्टी से लगा कर भीतरी भागों में और ६१४ मीटर की ऊँचाई तक भी

पैदा किया जाता है। यह किस्म भारत में बहुत समय से पैदा की जा रही है तथा इसे इसी देश की उपज माना जाता है। यह काफी समय तक फल देती है और इसका उपयोग बहुमुखी है। इसके फल मध्य आकार के होते है तथा रग हरे से लेकर पीला तथा नारंगी तक होता है। यह वृक्ष ६ से ८ साल में फल देना आरम्भ करता है और लगभग ८० वर्षो तक फल देता रहता है। किन्तु यदि जलवायु सम्बन्धी दशायें अनुकूल नहीं होतीं तो पहली बार का फल भी १०-१५ वर्षों बाद आता है। प्रति नारियल पीछे लगभग ५ औंस खोपरा मिलता है जिसमें तेल का अंश ७२ प्रतिशत होता है।

(२) **छोटी या बौनी किस्म** (Dwarf or Short Variety)—इस किस्म का वृक्ष छोटा होता है तथा फल का रंग हरा, नारंगी या पीला होता है किन्तु इससे फल शीघ्र मिलने लगता है। इस किस्म को **निकोबार या अंडमान** किस्म भी कहते हैं। लगभग ३-३½ वर्ष बाद ही फल मिलना आरम्भ हो जाता है और एक एक वृक्ष पर नारियल के झुड के झुड लगते है। फल का आकार छोटा तथा गोल होता है। इसको अधिकतर कच्चे रूप में ही काम में लाते हैं। इससे बड़ा स्वादिष्ट और स्फूर्तिदायक पेय प्राप्त होता है। प्रति नारियल से केवल ३ औंस खोपरा मिलता है अतः व्यवसायिक जगत में इसका महत्व अधिक नहीं है।

(३) **न्यू गिनी किस्म** (New Guinea)—इस किस्म का फल बड़ा और अंडाकार होता है तथा रंग हरे से भूरा। इसमे कच्ची अवस्था में जल अधिक होता है। पश्चिमी तट पर इस किस्म से औसतन प्रति वृक्ष पीछे ६५ नारियल मिलते हैं और प्रति नारियल पीछे ८ औंस खोपरा प्राप्त होता है, जिसमें तेल का अंश ६६ प्रतिशत तक होता है।

(४) **कोचीन-चीन** (Cochin-China)—इस किस्म का फल भी बड़ा और आकार गोल होता है। प्रति वृक्ष पीछे लगभग ८६ फल मिलते हैं और प्रति फल से लगभग ८ औंस खोपरा प्राप्त होता है जिसमें तेल का अंश ५६ प्रतिशत होता है।

(५) **जावा किस्म** (Java)—इसका वृक्ष लम्बा तथा तना बडा मजबूत होता है। नारियल का आकार मध्यम से लेकर बड़ा तक होता है। इसका गोलागोल और कुछ लम्बा होता है। प्रति वृक्ष पीछे लगभग ९५ फल प्राप्त होते हैं। प्रति फल पीछे ७ औंस खोपरा और तेल का अंश ६६ प्रतिशत तक होता है।

(६) **स्याम** (Siam)—यह किस्म भी बड़ी अच्छी होती है। फलों का रङ्ग हरे और आकार मध्यम होता है। फल में मीठा जल मिलता है। प्रति वृक्ष पीछे ८० फल मिल जाते है। प्रति फल को ८ औंस तक खोपरा प्राप्त होता है, जिसमें तेल का अंश ७४ प्र० श० तक होता है।

(७) **लकद्वीप** (Laccadive)—इसके फल मध्यम आकार के होते हैं और एक वृक्ष से लगभग १२४ फल तक मिल जाते हैं। किन्तु प्रति फल पीछे खोपरे का प्रतिशत ५ औंस ही होता है। फिर भी तेल का अंश ७२ प्र० श० तक पाया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में सबसे अधिक नारियल केरल, मद्रास, आंध्र प्रदेश, मैसूर, महाराष्ट्र, पश्चिमी बङ्गाल, उड़ीसा और आसाम में पैदा होते हैं।

मद्रास और आंध्र की तीन चौथाई उपज पूर्वी गोदावरी और कावेरी डेल्टा, से प्राप्त होती है। केरल में मध्यवर्ती तथा तटीय भागों की निम्न भूमि में मलाबार जिले में नारियल पैदा होते हैं। मैसूर के तुमकुर, हसन, मैसूर, चितलद्रुग और कादूर जिलों मे, उड़ीसा के पुरी और कटक जिलों में और महाराष्ट्र के कनारा तथा रत्नागिरी जिलों में नारियल पैदा किया जाता है। बङ्गाल में इसका उत्पादन निम्न भागों में चावल के खेतों के बीच-बीच में सभी जगह किया जाता है।

पिछले कुछ वर्षों से नारियल के अन्तर्गत क्षेत्र और उसका उत्पादन इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन
१९५२-५३	१,६०८	४४,९८० लाख
१९५३-५४	१,६३८	४६,४९० ,,
१९५४-५५	१,६५६	४६,१४० ,,
१९५५-५६	१,५८०	४२,९७० ,,
१९५६-५७	१,५८३	४२,१७० ,,
१९६०-६१	१,७००	४६,४०० ,,

भारत से खोपरा और खोपरा के तेल का निर्यात मुख्यतः फ्रांस, जर्मनी, इङ्गलैंड, सं० रा० अमरीका आदि देशों को किया जाता है।

मसाले (Spices)

उष्ण कटिबन्धीय भारत में अनेक प्रकार के गर्म मसाले पैदा किये जाते हैं, जहाँ वर्ष भर उच्च तापक्रम और भारी वर्षा होती है। मुख्य मसाले ये हैं :—

१. काली मिर्च
२. लाल मिर्च
३. अदरक
४. दाल चीनी
५. जावित्री-जायफल
६. लौंग
७. इलायची
८. हल्दी

भारत में मसालों के उत्पादन का क्षेत्र (१९५६-५७)[1]—(हजार एकड़ों में)

राज्य	काली मिर्च	लाल मिर्च	सौंठ	हल्दी	इलायची	सुपारी	अन्य मसाले	योग
आंध्र प्रदेश	—	४४१	२	५६	—	(a)	२७१	७७०
आसाम	(a)	७	३	५	—	४३	१	५९

1. Agricultural Situation in India, Vol. XIV No. 6., 1959, p. 733.

बिहार	—	५९	—	—	—	—	१८	७६
बम्बई	(a)	४११	३	२१	(a)	५	१७९	६१९
जम्मू काश्मीर	(a)	२	(a)	(a)	—	—	२	४
केरल	२१५	७	२५	१२	७०	१२१	१०५	५५५
मध्य प्रदेश	(a)	१००	३	१	—	(a)	१८६	२९०
मद्रास	१	१४६	१	२३	१४	४	९४	२८३
मैसूर	६	६५	३	३	५०	७१	८०	४७९
उड़ीसा	—	३९	२	१०९	(a)	(a)	३	१५३
पंजाब	(a)	५९	१	(a)	—	—	९	६९
राजस्थान	—	२५३	(a)	१	—	—	२४९	३०३
उत्तर प्रदेश	—	३६	(a)	(a)	—	—	९६	१३२
पश्चिमी बंगाल	—	१९	२	—	—	—	९	२९
दिल्ली	—	१	—	—	—	—	१	२
हिमाचल प्रदेश	—	१	३	(a)	—	—	(a)	४
योग	२२२	१,६४५	४९	२३१	१३४	२४४	१,३०३	३,८२७

(a=५०० एकड़ से कम)

(१) **काली मिर्च** (Pepper)—यह एक लता का बीज है। इसका जन्म स्थान केरल के वन प्रदेश माने जाते हैं। भारत में इसका उत्पादन अति प्राचीन काल से होता रहा है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें—काली मिर्च की लता सदाबहार लता है जा एक बार लगाने पर लगभग २५ से ३० वर्षों तक जीवित रहती है। कहीं-कही इसकी लता ६० वर्ष तक भी जीवित रहती हैं। इसका उत्पादन समुद्र तल के धरातल से लगाकर १,०५० मीटर की ऊँचाई तक होता है। यह अधिकतर चिकनी दोमट मिट्टी में अच्छी पैदा होती है किन्तु लाल दोमट और बलुही दोमट में भी यह पैदा की जाती है।

इसकी लता को सिंचाई की आवश्यकता नही पड़ती। यह अधिकत: आर्द्र और तर जलवायु मे पनपती है। इसके लिये न्यूनतम तापक्रम १०° सैं० ग्रेड और अधिकतक तापक्रम ३८° सैं० ग्रेड तक पर्याप्त होता है। वर्षा का औसत २०४ सैं० मीटर होना आवश्यक है। १२७ सैं० मीटर से कम वर्षा वाले भागों मे यह पैदा नहीं की जा सकती।

इसकी लता साधारणत: ९ मीटर तक ऊँची बढ़ जाती है किन्तु फल को सुविधापूर्वक तोड़ने के उद्देश्य से इसे ६ मीटर से अधिक ऊँचा नहीं बढ़ने दिया जाता। सहारे के लिये सुपारी, मुरक्कू आदि के वृक्ष लगाये जाते हैं। लता में जुलाई के मध्य से फूल आने लगते हैं तथा फल जनवरी से मार्च तक पक कर तैयार हो जाते हैं। पकने पर फलों का रंग भूरा हो जाता है। तीन वर्ष बाद फल मिलने लगता है

किन्तु पहले वर्ष की फसल अच्छी नहीं होती। छठे वर्ष बाद अच्छी फसल मिलने लगती है और अधिकतम उत्पादन ७वें वर्ष से आरम्भ होता है।

यह मिर्च दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। गुच्छियाँ [illegible] जब हरी होती हैं उन्हें तोड़ लिया जाता है और उनमें पक्के फलों को अलग कर ७-८ दिन तक पानी में डाल देते हैं जब उनका गूदा मुलायम पड़ जाता है तो उन्हें मसल डालते हैं जिनसे उनके भीतर से गुठलियाँ निकल आती हैं। यही सुखाने पर सफेद मिर्च कहलाती है। काली मिर्च बनाने के लिये सब प्रकार की गुच्छियों का ढेर लगा दिया जाता है और इन्हें सूखने के लिये ५—६ दिनों तक पड़ा रहने दिया जाता है। जब यह सूख कर कड़ी और काली पड़ जाती हैं इन्हीं को काली मिर्च कहते हैं।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में इसका सबसे अधिक उत्पादन केरल, मद्रास और मैसूर राज्यों में होता है। कुछ काली मिर्च महाराष्ट्र में भी पैदा की जाती है।

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का काली मिर्च के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
१९५२-५३	२०२	२३
१९५५-५६	२२०	८
१९५९-६०	२३२	२५
१९६२-६३	२५४	२८
१९६३-६४	२५.३	२४

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत से काली मिर्च का निर्यात लगभग ९०० टन का होता था। अब यह २०,००० टन का है। यह निर्यात मुख्यतः संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, मैक्सिको, क्यूबा, कोलम्बिया, ग्वाटेमाला, हैटी आदि देशों को होता है। इंगलैंड, इटली, रूस, मिश्र और अदन में भी इसका निर्यात होने की अधिक सम्भावनायें हैं।

(२) **लाल मिर्च** (Chillies)—भारत में लाल मिर्च का सम्भवतः मसालों के अन्तर्गत सबसे अधिक उपयोग होता है। यह दक्षिणी अमरीका (विशेषतः ब्राजील) का पौधा है जहाँ से यह पुर्तगालियों द्वारा भारत में लाया गया। इसके अन्य उत्पादक दक्षिणी अमरीका के विभिन्न राज्य, अफ्रीका और स्पेन तथा एशिया के देश हैं।

जलवायु सम्बन्धी दशायें और उत्पादक क्षेत्र—इसका उत्पादन उष्ण और अर्द्ध-कटिबन्धीय जलवायु में सरलता से किया जाता है। समुद्र के धरातल से लगाकर १,५२० मीटर तक उन क्षेत्रों में यह पैदा की जाती है जिनमें वर्षा की मात्रा ६३ सें० मी० से १२७ सें० मी० तक होती है। अधिक वर्षा होने पर पत्तियाँ और फल नष्ट हो जाते हैं। इसका पौधा जून और फरवरी दोनों ही

महीनों में लगाया जाता है। कम वर्षा वाले भागों में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

मिर्चा के लिए भारी दोमट मिट्टी, जिसमें कंकड़ पत्थर न हों तथा जहाँ पानी जमा न रह सके, अच्छी होती है। बलुही अथवा हल्की कछार मिट्टी में सिंचाई और खाद के सहारे अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जून अथवा जुलाई के प्रमुख सप्ताह में इसका बीज नर्सरी में लगाया जाता है और जब पौध ४०-५० दिन का हो जाता है अन्य क्यारियों में रोप दिया जाता हैं। इसके १ महीने बाद ही फूल आने लग जाते हैं और नवम्बर से इसकी चुनाई आरम्भ हो जाती है। फिर इन्हें धूप में सुखा देते हैं। पूरी तरह सूखने में लगभग १५ दिन लगते हैं। प्रति एकड़ पीछे २५० पौंड सूखी मिर्ची मिलती है किन्तु सिंचित भागों में प्रति एकड़ १,५०० से २,५०० पौंड तक मिर्ची मिल जाती है।

पिछले कुछ वर्षों का उत्पादन इस प्रकार है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
१९५२-५३	१,२३५	२८३
१९५५-५६	१,४९३	३५५
१९६१-६२	१,५१६	३७०
१९६२-६३	१,५४०	३८३

(३) **सोंठ** (Ginger)—व्यापार क्षेत्र में जिसे सोंठ कहा जाता है वह एक पौधे के हरे भूमिगत तत्वों या मूलों को सुखा कर तैयार किया जाता है। यह पौधा उष्ण कटिबन्ध के देशों में बहुत अधिक उगाया जाता है। इन देशों की वार्षिक पैदावार का अधिकांश अदरक के रूप में वहीं खप जाता है और थोड़ा सा भाग ही व्यापार के लिये सुखा कर सोंठ बनाया जाता है। अदरक पैदा करने वाले मुख्य देश जमैका (प० हिन्द द्वीप समूह), सियरालियोन (ब्रि० प० अफ्रीका) और भारत है। भारत का वार्षिक उत्पादन १०,००० से १५,००० टन का होने से यही विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें और उत्पादक क्षेत्र—अदरक या सोंठ मुख्यतः अधिक वर्षा वाले भागों में पैदा किया जाता है। यह बलुही अथवा चिकनी दोमट मिट्टी में या लाल दोमट मिट्टी में अच्छी पैदा होती है। इसकी खेती समुद्र तल से लगा कर ९१५ मीटर तक (जैसे मैसूर में) और हिमालय के ढालों पर १५२० मीटर तक होती है। इसके लिए पश्चिमी घाट के ढाल सर्वोत्तम माने जाते हैं। यह अधिक गर्मी और तरी चाहने वाला पौधा है।

इसका पौधा बारहमासी होता है। इसे पकने में ९ से १० महीने तक लगते हैं। यह मई के अन्त में बोया जाता है और दिसम्बर-जनवरी तक तैयार हो जाती है।

इसका सबसे अधिक उत्पादन केरल राज्य में होता है। यहाँ वाईकम, मुवत्तूफूजा, थोड्डूफूजा, मीनाच्छिल, थालापिली और कुनाथुंनाड जिले प्रमुख उत्पादक हैं।

पश्चिमी तट पर मलाबार जिले में इरनाद ताल्लुके में भी अधिक उत्पादन किया जाता है। उत्तर प्रदेश, (कुमायूं), बंगाल, महाराष्ट्र और आंध्र अन्य उत्पादक राज्य हैं। केरल में अदरक से सोंठ बनाई जाती है।

भारत में गत कुछ वर्षों में सोंठ की खेती का क्षेत्रफल और उत्पादन इस प्रकार है।

वर्ष	क्षेत्रफल (एकड़)	उत्पादन (टन)
१९५२-५३	४६,०००	१९,०००
१९५५-५६	३७,०००	१४,९००
१९६१-६२	४४,६००	१७,०००
१९६२-६३	४४,३००	१७,०००

ऊपर दिये हुये आँकड़ों से पता चलता है कि क्षेत्रफल और उत्पादन दोनों बढ़ते रहे हैं। भारत में पैदा हुई सौंठ मुख्यतः अदन, अरब मिस्र, ईरान, अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों को भेजी जाती है। पश्चिमी द्वीपों तथा बृ० प० अफ्रीका में पैदा होने वाली सौंठ सामान्यतः ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा तथा अन्य पश्चिमी देशों को भेजी जाती है। ब्रि० प० अफ्रीका और पश्चिमी द्वीपों में पैदा होने वाली सौंठ की किस्म अच्छी होती है। उनके रेशे कम होते हैं और कीमत में २० से ३० प्रतिशत तक सस्ती होती है।

(४) **दालचीनी** (Cinnamon)—यह एक पेड़ की छाल होती है जिसका उपयोग सुखाकर भोजन को सुगंधित करने, दवाई तथा तेल निकालने में किया जाता है। इसका पौधा लंका और दक्षिणी भारत, ब्रह्मा तथा मलाया प्रायद्वीप का आदि-पौधा है। इस समय इसका सबसे अधिक उत्पादन लंका, भारत, जमैका, सेयीन, साईचेलीस और ब्राजील में होता है किन्तु भारत की अपेक्षा लंका की दालचीनी अधिक उत्तम मानी जाती है।

इसका पौधा अधिकतर कांप बलुही मिट्टी में आर्द्र-गर्म भागों में पैदा होता है जहाँ वर्षा लगभग २०० मीटर तक होती है। नीलगिरि पहाड़ियों के ढालों पर यह ७२५ मीटर तक पैदा किया जाता है। इसको रोप कर लगाया जाता है। यह रोपण अक्टूबर से नवम्बर तक होता है। वर्षा ऋतु में वृक्ष से छाल प्राप्त की जाती है। वृक्ष से ३—४ वर्ष बाद पहली बार छाल प्राप्त की जाती है और प्रति एकड़ में ५० से ६० पौंड तक छाल मिल जाती है। १० वर्ष के बाद तो इस वृक्ष का इतना विकास हो जाता है कि प्रति एकड़ से १५० से २०० पौंड तक दालचीनी मिलती है।

भारत में इसका उत्पादन ७०० एकड़ में होता है। यह उत्पादन मलाबार और नीलगिरि की पहाड़ियों से होता है। तेलीचेरी में 'ब्राउन उद्यान' २५० एकड़ बड़ा है।

(५) **जायफल** (Nutmeg) **और जावित्री** (Mace)—इसका आदि स्थान मलक्का द्वीप माने जाते हैं तथा इसका अधिकतम उत्पादन बन्दा द्वीप, अम्बोया,

गिलोली और पश्चिमी न्यू गिनी में होता है। भारत में यह १८ वीं शताब्दी में लाया गया किन्तु तब से अभी तक इसके उत्पादन में विशेष प्रगति नहीं हुई है।

जायफल एक पेड़ विशेष (Myristica fragrants) का फल होता है। पक जाने पर फल फूट जाता है। इस फल के ऊपर छिलका होता है। यही जावित्री होती है। इसे हटाकर भीतर का भाग निकाल लिया जाता है। सूख जाने पर यह चिटक जाता है और तब बीज (जायफल) निकाल लेते हैं। इसका उत्पादन आर्द्र और तर भागो में ही अधिक किया जाता है। इसकी खेती समुद्र के धरातल से लगभग ७२५ मीटर तक की जाती है, जहाँ वर्षा की वार्षिक मात्रा १५२ से ३०० सैं० मीटर तक होती है तथा वार्षिक औसत तापक्रम १०° से ३७° सें० ग्रेड तक। लैटेराइट तथा पीली दुमट और चिकनी मिट्टी इसके लिए बड़ी उपयुक्त होती है। अधिक नमी या अधिक सूखा दोनों ही इसके लिए हानिकारक है। इसके प्रति वृक्ष पीछे ५० से १०० पौंड पशुओं के मलमूत्र का खाद दिया जाता है। वृक्ष ८ से १० वर्षों बाद फल देना आरम्भ करता है तथा १०० वर्षों तक फल देता रहता है। फल को पकने में ६ महीने तक लगते हैं। इनकी चुनाई मुख्यतः जून से अक्टूबर तक की जाती है। नीलगिरी मे प्रति मादा वृक्ष पीछे २० पौंड जायफल और १ पौंड जावित्री (Mace) प्राप्त होती है। इसका उपयोग मसाले और औषधि के रूप में किया जाता है।

भारत में इसका उत्पादन मुख्यतः दक्षिणी भारत तक ही सीमित है। यहाँ केरल राज्य के तटीय क्षेत्रों में तथा नीलगिरि और तेनकासी पहाडियों में पैदा किया जाता है। कुछ उत्पादन मैसूर और बङ्गाल से भी प्राप्त होता है किन्तु इसका क्षेत्र ३०० एकड़ से अधिक नहीं है।

(६) **लौंग** (Cloves)—यह एक वक्ष के (Eugenia Caryophyllanta) सूखे फल हैं जो मल्लक्का द्वीपों का आदि-वृक्ष है। अब इसका उत्पादन जंजीबार, मसाले के द्वीपों (Spice Islands), पश्चिमी द्वीप समूह, मस्करीन द्वीपों, सुमात्रा, जावा, लंका और मैलेगासी (मैडेगास्कर) तथा भारत मे किया जाने लगा है।

इसे नम तथा गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। भारत में इसका उत्पादन समुद्रतटीय भागों से लेकर १,८३० मीटर की ऊँचाई तक किया जाता है जहाँ वार्षिक वर्षा १५२ से २५४ सैं० मीटर तक होती है। यह गहरी दुमट अथवा गहरी पीली मिट्टी से अधिक अच्छा पैदा होता है। भारत के तटीय भागो में इसकी खेती बलुही भूमि में और केरल में लैटेराइट मिट्टी में की जाती है। जडों में पानी जमा हो जाने से यह नष्ट हो जाता है। पौधे में घास-फूस, नदी की चीका मिट्टी और अमोनियम सल्फेट का भी खाद दिया जाता है।

लौंग के बीजों को पहले नर्सरी में बोया जाता है जब पौधे लगभग ९″ बड़े हो जाते हैं तो उन्हें अन्यत्र रोपा जाता है। लगभग ४-५ वर्ष बाद पौधे में फूल आने लगते हैं। अनुपजाऊ भूमि में फूल ४ से ६ वर्ष बाद तक आते हैं। नीलगिरि पहाड़ियों में दिसम्बर-जनवरी में फूल खिलने लगते हैं तथा अप्रैल तक फल तैयार हो जाते हैं। तेनकसी पहाड़ियों में फूलों का खिलना लगभग ३० से ५० दिन बाद होता है तटीय भागों में ये सितम्बर में फूलते हैं और दिसम्बर जनवरी तक फल पक जाता है। औसत एक वृक्ष से प्रति वर्ष ५ पौंड सूखे लौंग प्राप्त होते हैं। यदि १ एकड़ भूमि मे १०० वृक्षों का औसत माना जाये तो प्रति एकड़ पीछे ३७५ पौंड तक सूखे

लौंग प्राप्त होते हैं । फलों को तोड़ने के बाद उन्हें सुखाने के लिए या तो धूप में डाल देते हैं अथवा आग पर जस्त की बड़ी-बड़ी तश्तरियों में इन्हें भूना जाता है । प्रथम क्रिया से लौंग ४-५ दिन में और दूसरी क्रिया में लगभग ८ घण्टे में ही सूख जाते हैं । लौंग का उपयोग मसाले के रूप में तथा तेल निकालने में किया जाता है ।

भारत में लौंग की खेती भी दक्षिणी भारत तक ही सीमित है जहाँ इसकी खेती लगभग ८०० एकड़ भूमि पर की जाती है । मद्रास राज्य में नीलगिरि तथा तेंकसी की पहाड़ियों और कन्याकुमारी जिले में तथा केरल राज्य के कोट्टायम और क्विलोन जिले में इसका उत्पादन किया जाता है ।

(७) **इलाइची** (Cardamoms)—इसका फल तिकोने आकार का एक कैप्सूल (Capsule) की भाँति होता है जिसमें १० से १५ काले छोटे-छोटे बीज होते हैं । छिलका उतारने पर इन्हीं बीजों का उपयोग पान के साथ खाने में, मसाले तथा बिस्कुट और डबल रोटियों में तथा मद्य और औषधि बनाने में किया जाता है ।

विश्व में इसका उत्पादन भारत लंका, इंडोचीन, सिकिम, मध्य अमरीका, जावा तथा नैपाल में किया जाता है किन्तु विश्व के बाजारों में भारतीय इलाइची का भाग अधिक रहता है । युद्ध के पूर्व भारत का निर्यात ७१६ टन; युद्ध के पश्चात् काल में ९१७ टन और १९६३ में १,६०० टन का हुआ । यह अधिकतर स्वीडेन, सऊदी अरब, कुवेत, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन आदि देशों को होता है ।

इसका उत्पादन भारत में विशेषत पश्चिमी घाटों के अनेक भागों में जंगली और पौधा लगाकर दोनों ही अवस्था में होता है । यह ७२५ से १,४५० मीटर तक की ऊँचाई पर भी पैदा की जाती है । इसके लिए ऊँचे तापक्रम १०° से ३५° सैं० ग्रेड तक और अधिक वर्षा १५२ सैं० मीटर तक—जो नियमित रूप से होती रहे - विशेष उपयुक्त है । इसे धूप से बचाने के लिये अन्य वृक्षों का सहारा लिया जाता है ।

इसका वृक्ष बड़ा लम्बा होता है जिसके कई टहनियाँ फूटती रहती हैं । साधारणतः इसे फरवरी-मार्च में बोया जाता है और प्रायः अगस्त से सितम्बर तक फलों की चुनाई आरम्भ होकर जनवरी से अप्रैल तक चलती रहती है । प्रायः तीसरे वर्ष से फल मिलता रहता है किन्तु चूँकि सभी फल एक साथ नहीं फलते अतः इसकी चुनाई काफी समय तक चलती रहती है । ३० से ४० दिन के अन्तर पर फल चुने जाते है और पूर्णतः चुनाई ६ बार में समाप्त हो पाती है । पहली चुनाई से औसतन प्रति एकड पीछे २० पौंड तक इलायची मिलती है किन्तु चौथी वर्ष की चुनाई के बाद ३० से ४० पौंड और पांचवे वर्ष के बाद ६० से ७० पौंड तक फल मिलने लगते हैं । फलों को तोड़कर धूप में या विशेष प्रकार से बनाये गये सुखाने के कमरों में कृत्रिम आँच द्वारा इन्हें सुखाया जाता है ।

भारत में इसका सबसे अधिक उत्पादन केरल राज्य में होता है । यहाँ इसके उद्यान इलायची की पहाड़ियों में ५० से २०० एकड़ के पाये जाते है । मैसूर राज्य में हसन जिले के मंजराबाद तालुक में भी इलायची पैदा होती है । कुर्ग जिले में इसका उत्पादन वृक्षों को साफ कर पहाड़ी ढालों पर किया जाता है । अन्य उत्पादक मलाबार तट व जिला, नीलगिरि और उत्तरी कनारा तथा मदुराई जिले हैं ।

इलायची का वार्षिक उत्पादन १,४०० से १,४५० टन तक का होता है ।

(८) हल्दी (Turmeric) - हल्दी उष्ण कटिबन्ध में पैदा होने वाली वस्तु है। यह भारत, हिन्द चीन, पूर्वी द्वीप समूह से लगाकर चीन में पैदा की जाती है।

इसका उत्पादन समुद्रतल से लगाकर १२१६ मीटर की ऊँचाई तक किया जाता है। पश्चिमी और पूर्वी घाट में यह जंगली अवस्था में पैदा होती है। यह चिकनी दुमट अथवा बलुई मिट्टी में अच्छी पनपती है किन्तु नमकीन मिट्टी या जड़ों में पानी भर जाने से पौधा नष्ट हो जाता है। यह सिंचाई के सहारे भी बोई जाती है। पश्चिमी तट पर वर्षा के साथ ही इसका उत्पादन किया जाता है।

हल्दी की ऐसी कोई किस्म नहीं है जो अपने आप पहचानी जा सके फिर भी जिन इलाकों में पैदा होती है, उसके आधार पर व्यापारियों ने इसके कुछ नाम रख लिये हैं। व्यापारियों में हल्दी की किस्मों के दो नाम चलते है—एक गठीली(Bulb) और दूसरी लम्बी (Finger)। उड़ीसा में पैदा होने वाली ७५% हल्दी तथा समुद्र में होने वाली २०% हल्दी लम्बी किस्म की होती है। शेष हल्दी गठिया किस्म की होती है। लम्बी हल्दी अच्छी समझी जाती है इसलिए इसके दाम अधिक मिलते हैं।

हल्दी के मुख्य उत्पादक आंध्र प्रदेश और उड़ीसा राज्यों के पूर्वी तट हैं। आंध्र में इसका सबसे अधिक उत्पादन गंतूर जिले में और कडुप्पा, कृष्णा तथा पूर्वी और पश्चिमी गोदावरी जिलों में किया जाता है। मद्रास राज्य के सलेम, कोयम्बटूर और तिरूचिरापल्ली जिलों मे भी इसका उत्पादन होता है।

उड़ीसा राज्य में गंजाम, फूलबानी और कोरापुट जिले में तथा महाराष्ट्र में थाना, खानदेश, सांगली और कोल्हापुर जिलों में भी हल्दी पैदा होती है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मैसूर, पश्चिमी बगाल, राजस्थान और पंजाब अन्य उत्पादक राज्य हैं।

देश के उत्पादन का १०% से भी कम निर्यात किया जाता हैं। यह निर्यात लंका, ईरान, अरब, अदन, संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन को होता है।

हल्दी का उपयोग पीला रंग बनाने में, रंग लेपों में तथा मसाले के रूप में होता है।

सुपारी (Arecanut)

यह भी उष्ण कटिबन्धीय पौधा है जो अधिकांशतः दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों—भारत, पाकिस्तान, लका, मलाया और फिलीपाइन्स में होती है।

जलवायु सम्बन्धी अवस्थायें—सुपारी का वृक्ष ताड़ की भाँति १८ मीटर से अधिक लम्बा होता हैं। इसका उत्पादन समुद्र तट से लगा कर ९१४ मीटर की ऊँचाई तक किया जाता है किन्तु अधिक ऊँचाई पर उत्पादन अधिक प्राप्त नहीं होता। कुर्ग जिले और वाइनाड जिले में अधिक ऊँचाई पर होने के कारण फल अधिक कठोर नहीं होता क्योंकि तापक्रम पकने के समय अधिक ऊँचे नहीं रहते। यह १६° से ३७°से० ग्रेड के तापक्रम में अच्छी पनपती है। इसके लिये अधिक वर्षा, नमी और शीत वायु मंडल की आवश्यकता होती। केरल के कई भागों में यह केवल

जाता है। साधारणतः लैटेराइट मिट्टी में, जहाँ ३०४ सें० मीटर से अधिक वर्षा होती है, यह पैदा किया जाता है जैसे पश्चिमी तट पर किन्तु ३८ सें० मीटर से कम वर्षा वाले भागों में भी इसकी खेती समान रूप से की जाती है जैसे पूर्वी तट पर मद्रास में यह सूखा सह सकता है किन्तु पाला इसके लिए हानिकर है।

इसका वृक्ष दक्षिणी भारत में उद्यानों में आम, नारियल, सुपारी आदि वृक्षों के साथ अथवा अन्य क्षेत्रों में घरों के कोनो पर लगाया जाता है। पौधों से साधारणत. ३-४ वर्ष बाद फल मिलने लगता है। १० वें वर्ष तक उपज निम्न श्रेणी की रहती है किन्तु इसक बाद अच्छी होने लगती है। अधिकतम उपज ७ से १० वर्ष के बीच के काल में प्राप्त होती है। फलोत्पादन ३५ से ४० वर्षो तक होता रहता है। पौधे में दिसम्बर से जनवरी तक फूल आने लगते हे। इस समय साधारण वर्षा इसके लिए लाभदायक सिद्ध होती है किन्तु लम्बे समय तक मेघाच्छन्न अवस्था उपज को गिरा देती है। उद्यानों में यदि वृक्ष पास-पास लगाये जाते है तो प्रति वृक्ष पीछे १ पौंड सूखा काजू प्राप्त होता है किन्तु यदि एक एकड़ में केवल ६० से ७० वृक्ष तक हों तो प्रति वृक्ष पीछे ४० से ५० पौंड तक काजू मिल जाता है। केरल में कोंट्टारकारा तथा क्विलोन जिलों में प्रति एकड़ में ५० से २०० वृक्ष लगाये जाते हैं किन्तु त्रिचूर के कई भागों में १,००० से भी अधिक। मैसूर राज्य के वन प्रदेश में ७५ से १०० वृक्ष तक पाये जाते हैं। औसतन प्रति वृक्ष पीछे पश्चिमी तट पर २० पौंड तक काजू मिल जाता है और पूर्वी तट पर कुछ अधिक।

उत्पादक क्षेत्र—काजू का उत्पादन पश्चिमी समुद्र तट पर कन्या कुमारी से महाराष्ट्र तक तथा पूर्वी तट पर बरहामपुर तक होता है। इसका सबसे अधिक उत्पादन मलाबार और दक्षिणी कनारा जिलों में होता है। केरल राज्य में चीरेन-काल, कोट्टाराका, कुनाथुनाद, त्रिचूर, कीलीमन्नूर और कुनामकुलम जिलो में इसका सबसे अधिक उत्पादन होता है। महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले, आंध्र के पूर्वी गोदावरी, विशाखापट्टनम, मद्रास के दक्षिणी अर्काट, तिरुचिरापल्ली और तंजौर जिलों में भी काजू पैदा की जाती है। कुछ काजू मैसूर और कुर्ग में भी बोया जाता है।

कच्चे काजू का वार्षिक उत्पादन लगभग ६०,००० टन होता है। काजू को तोड़कर उससे छिलका अलग किया जाता है फिर उसे भून कर तैयार करते हैं। भारत में १५० काजू के कारखाने हैं जिनमें ७० हजार टन काजू प्रतिवर्ष फोडा जा सकता है किन्तु हम इतना जुटा नहीं पाते अतः विवशतः ब्रिटिश, पूर्वी अफ्रीका से काजू मँगाना पड़ता है। भारत से काजू का निर्यात मुख्यतः १२ करोड़ रुपये की लागत का होता है। यह निर्यात इंगलैंड, कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका को होता है।

काजू का उपयोग खाने के लिये अधिक होता है। कड़े छिलके से तेल निकाला जाता है जो रंग-रोगन बनाने में काम में लाया जाता है।

इस समय केरल में कोट्टारकारा; आंध्र में वापताला और महाराष्ट्र में रत्नागिरि में क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र चल रहे है। इन केन्द्रों में वैज्ञानिक ढंग से काजू पैदा करने के कई ढंग निकाले गये हैं। उदाहरणार्थ, ३″ गहराई में बीज डालने से पौधा जल्दी बढ़ता है, पौधों के बीच में कम से कम २०—२० फीट का फासला होना चाहिए। काजू के पौधे को कीट-व्याधियों और रोगों से बचाने के तरीके भी निकाले गये हैं।

रबड़)(Rubber)

रबड़ उष्ण कटिबन्ध की उपज है। यह अपने प्रकार के वृक्षों से प्राप्त दूध से बनाया जाता है, जिसमे मुख्य **पारा-रबड़** (Para Rubber or Hevea Brasilien sies) मुख्य है। इस वृक्ष का जन्म स्थान ब्राजील है किन्तु अब इसकी खेती भारत, लंका, मलाया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, दक्षिणी समुद्री द्वीपों पश्चिमी अफ्रीका, उत्तरी अमरीका, वेनेजुएला, इक्वेडोर, कोलम्बिया और पश्चिमी द्वीप समूहों में भी की जाती है।

भारत में इसकी खेती का श्रेय भारत मन्त्री सैलिसबरी के लार्ड को है जिन्होंने १६०० में इसका पौधा भारत में लगवाया। १६०३ मे केरल राज्य में पेरियर नदी के निकटवर्ती भूमि में रबड़ का पौधा लगाया गया। १६२६ तक काफी विकास हुआ उसके बाद विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी के कारण उत्पादन में कुछ कमी हो गई किन्तु द्वितीय युद्ध-काल में पुनः इसका विकास हुआ। अब भारत में विश्व के उत्पादन का लगभग १ प्रतिशत रबड़ प्राप्त किया जाता है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें—पारा रबड़ समुद्र के धरातल से ३०५ मीटर की ऊँचाई तक उगाया जाता है। रबड़ के वृक्ष के लिये २०४ सें० मीटर से अधिक वर्षा और ३२° सैं० ग्रेड तक के औसत तापक्रम की आवश्यकता रहती है। वर्षा यदि समान रूप से होती रहे तो ३०४ सैं० मीटर तक के क्षेत्रों में यह पैदा किया जा सकता है। किन्तु अधिक तापक्रम और शुष्क दशाओ में उपज में कमी हो जाती है। अतः भारत में इसकी खेती केरल, मद्रास, मैसूर आदि राज्यों में ही मुख्यतः की जाती है।

रबड़ का पौधा भिन्न-भिन्न गुणों वाली मिट्टी में सरलतापूर्वक उग सकता है। दक्षिणी भारत की लाल, लैटराइट, चिकनी मिट्टी तथा दुमट और वन प्रदेशों की मिट्टी में भी इसका पौधा सरलता से उगता है। रबड़ के उत्पादन में वृक्षों की देख-रेख के लिये अधिक मानव श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

भारत में रबड़ के पौधे रोपे जाते हैं अथवा कलम करके लगाये जाते हैं। कलमी पौधों के लिये सुमात्रा से **अवोर**, जावा से **बोजोंग**, **तिरांदजी** तथा **जासिंगा** (Dsasinga), मलाया से **पारंग बेसर**, **सबरंग** (Sabrang), **रुबाना** आदि किस्मों को मँगवा कर उपयोग किया जाता है। कलमी पौधे से बीज-पौधे की अपेक्षा चौगुना दूध मिलता है। साधारण बीज-पौधे से प्रति एकड पीछे ३०० पौंड तथा कलमी पौधे से ७०० से ८०० पौंड तक दूध प्रतिवर्ष मिलता है।

रबड़ का पौधा जब लगभग १½-२ फुट ऊँचा हो जाता है तो उसे हटाकर उद्यानों में साधारणतः प्रति एकड़ में १६० वृक्षों के हिसाब से लगा दिया जाता है जहाँ वह प्रति वर्ष ४ से ६ फीट तक बढ़ता है। बढ़ने का यह क्रम चार-पाँच वर्ष तक सीमित होता है। साधारणतः २ या ३ वर्ष बीतने पर पौधे से दूध निकलने लगता है किन्तु कहीं कहीं ७ से ८ वर्ष बाद दूध मिलने लगता है। वृक्ष से दूध निकालने का कार्य वर्ष में २०० से ३०० दिन तक किया जाता है। केवल जनवरी से फरवरी तक यह कार्य ४ से ६ सप्ताह तक के लिये रोक दिया जाता है क्योंकि उपज इस समय सबसे कम होती है। दूध निकालने के लिये रबड़ के पौधे को गोलाई में काटा जाता है।

उत्पादक क्षेत्र—भारत में रबड़ के मुख्य उत्पादक केरल, मद्रास और मैसूर राज्य है।

सम्पूर्ण देश में १९५६ में १८,१७५ रबड़ के उद्यान (Estates) थे जिनमें ६३ ०३४ व्यक्ति लगे थे। रबड़ के अन्तर्गत ३'६ लाख एकड़ भूमि है जिस पर १९६२में ३१ ३०० टन और १९६३ में ३३,७०० टन रबड उत्पादन किया गया।

भारत से कुछ रबड़ का निर्यात इंगलैंड, लंका, हालैंड, स्ट्रेट्स सैटलमैंट्स तथा जर्मनी को किया जाता है। भारत में रबड़ का विनिमय और उत्पादन भारतीय रबड बोर्ड के अन्तर्गत किया जाता है।

अध्याय २३

कृषि उत्पादन (क्रमशः)
पेय और मादक पदार्थ
(BEVERAGES & STIMULANTS)

इन पदार्थों के अन्तर्गत चाय, कहवा, तम्बाकू, अफीम और भाँग आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

चाय (Tea)

चाय आरंभ में चीन में पैदा की जाती थी। भारत में इसकी कृषि १८३४ में लार्ड बैंटिक के प्रयास से आरंभ की गई। चीन से चाय का पौधा मँगवाया गया और आसाम की पहाड़ियों पर लगाया गया। तीन वर्ष बाद चीन से चाय के कुछ विशेषज्ञ बुलाये गये और आसाम के उद्यानों की चाय ब्रिटेन को भेजी गई जहाँ वह ऊँचे मूल्य में बिकी। फलतः चाय की कृषि बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई और अंग्रेज पूँजीपतियों ने आसाम में अधिकाधिक चाय के उद्योग लगाने आरम्भ किये। **असम कम्पनी** की स्थापना होने पर भारत सरकार ने उसे अपने सब उद्यान दे दिये। **चीनी चाय** तथा देशी चाय के सम्मिश्रण से **वर्णशंकर पौधा** तैयार किया गया। इससे उत्तम श्रेणी की चाय मिलने लगी जो विदेशों में ऊँचे भाव पर बिकती है।

चाय पैदा करने में भारत का स्थान दूसरा है। पहला स्थान चीन का माना जाता है किन्तु उसके विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। वस्तुतः भारत ही विश्व में प्रमुख उत्पादक और निर्यातक देश है।

भौगोलिक दशायें

चाय का उत्पादन भारत में १०° उत्तरी अक्षांश से लगाकर ३३° उत्तरी अक्षांशों तक होता है। साधारणतः यह प्रमुख क्षेत्र २३° से लगा कर ३२° अक्षांशों के बीच में स्थित है। पंजाब में हिमालय प्रदेश के उद्यान ३३° उत्तरी अक्षांश और दक्षिण में १०° से १३° उत्तरी अक्षांशों में स्थित हैं। वस्तुतः चाय उष्ण कटिबन्धीय जलवायु अवस्थाओं में अच्छी पनपती है।

(१) चाय उत्पादन के लिए आर्द्र जलवायु उपयुक्त माना जाता है। वर्ष के किसी भी भाग में इसका पौधा सूखा नहीं सह सकता। वर्षा का समान रूप से वितरण पौधे के लिये उपयुक्त है। यदि वर्षा बसंत एवं शीत ऋतु में हो जाय तो चाय की पत्तियों को वर्ष में ४-५ बार तक तोड़ा जा सकता है। साधारणतः वर्षा का औसत १५० सें० मीटर होना चाहिए। असम के पहाड़ी भागों में यह १२५ से ३७५ सैं० मीटर तक में तथा द्वार और दार्जिलिंग में २५० से ५०० सैं० मीटर तक वर्षा होती है। दक्षिण भारत के चाय क्षेत्रों में तो इससे भी अधिक वर्षा होती

है। चाय के पौधे के विकास के लिए जाड़ों में जल का एकत्रित होना हानिकारिक होता है। इसीलिए चाय के उद्यान समुद्रतल से ६१० से १८,३० मीटर ऊँचे पहाड़ी ढालों पर भी मिलते हैं। हिमालय का दक्षिणी ढाल सूर्योन्मुखी है और अधिक ताप एवं जलवृष्टि दोनों ही प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त यह ढाल हिमालय के कारण ध्रुवों की शीतल हवाओं से भी सुरक्षित रहता है।

(२) चाय छाया-प्रिय पौधा है जो हल्की छाया में बड़ी तीव्र गति से बढ़ता है। मासिक तापक्रम २४° से ३०° सें० ग्रेड के बीच में उपयुक्त माने गए हैं। जब अधिकतम तापक्रम छाया में २८ सें० ग्रेड से नीचे गिर जाते हैं या औसत न्यूनतम तापक्रम १८ सें० ग्रेड से नीचे हो जाते है तो उसकी वृद्धि रुक जाती है। आसाम में तो ३७° सें० ग्रेड तापक्रम वाले भागों में भी छाया में चाय का उत्पादन किया जाता है। ठंडी हवा और ओले चाय के लिए हानिकारक होते हैं।
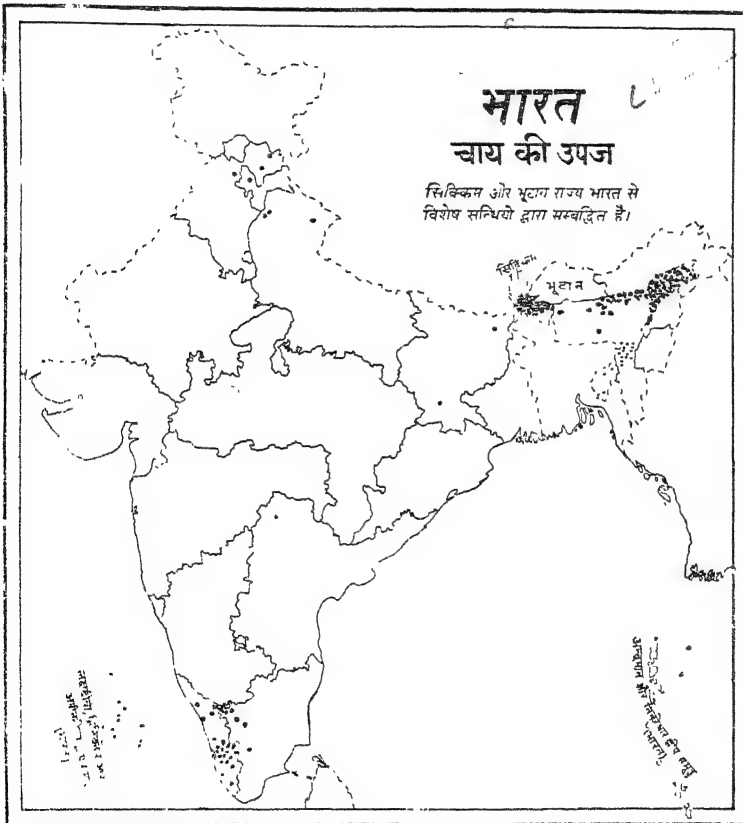
चित्र १५४. भारत में चाय की उपज

(३) चाय का उत्पादन पहाड़ों के ढालों पर या समतल भूमि पर भी किया जा सकता है यदि वर्षा का अतिरिक्त जल बह कर चला सके। भारत के कुछ सर्वो-

त्तम चाय के उद्यान आसाम में समुद्रतल के धरातल से १५ से १२० मीटर ऊँचाई तक पाये जाते हैं। साधारणतः मिट्टी गहरी और गंधक वाली होनी चाहिए। बहुधा जंगलों को साफ की गई भूमि चाय के लिए अच्छी मानी जाती है। उपजाऊ मुलायम, बलुही मिट्टी भी चाय अच्छी पैदा करती है यदि उसमें प्राणिज अथवा रासायनिक तत्वों का आधिक्य हो। आसाम के उद्यानों में चाय की झाड़ियों को छांटने में जो टहनियाँ गिरती है उन्हे भी भूमि में गाड़ दिया जाता है। इससे मिट्टी को प्रति वर्ष वनस्पति-तत्व उपलब्ध होते रहते है। दार्जिलिंग की चाय इसलिये सुगंधित होती है कि वहा की मिट्टी में पोटाश और फास्फोरस अधिक मात्रा में विद्यमान रहते है। प्रति एकड़ भूमि मे एक बार में १,००० पौंड चाय की फसल लगभग ५५ पौंड नेत्र-जन ले लेती है अतः मिट्टी अनउपजाऊ हो जाती है इसके लिए अमोनियम सल्फेट, हड्डी का खाद अथवा हरी खाद का उपयोग किया जाता है।

(४) चाय की चुनाई के लिए सस्ते और अधिक मात्रा में मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है क्योकि चाय की पत्तियाँ एक-एक कर तोड़ी जाती हैं जिससे कोमल पत्तियाँ नष्ट न हों। अपनी कोमल उँगलियों के कारण ही चाय के उद्यानों में स्त्री मजदूरों द्वारा पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं। अब पत्तियाँ तोड़ने के लिए डायनमों से चलने वाली मशीनों का भी प्रचलन किया गया है।

खेती के ढंग

चाय के बीज पहले क्यारियों में बिखेर कर बोये जाते हैं। बुवाई अक्टूबर से मार्च तक चलती है। जब पौधे साधारणतः ६" बड़े हो जाते हैं उन्हें अन्य स्थानों में रोप दिया जाता है। प्रति १ मन बीज का पौधा ३ से ५ एकड़ क्षेत्र के लिये पर्याप्त होता है। समतल भूमि पर चाय का पौधा चतुष्कोण अथवा वर्ग के आकार की क्यारियों में और ऊँचे भागों में कन्टूर के समानान्तर लगाया जाता है। पौधे को तेज हवा और धूप से बचाने के लिए दालों वाले पौधे भी लगाये जाते हैं।

चाय की झाड़ी ५ से ६ फीट से अधिक नहीं बढ़ने दी जाती। इससे पत्तियाँ चुनने में बड़ी आसानी रहती है। साधारणतः ३ साल के बाद पत्तियाँ चुनी जाती हैं और ४० वर्षों तक पौधे से पत्तियाँ प्राप्त होती रहती हैं। प्रति वर्ष गर्मी, वर्षा और शरद ऋतु में तीन बार पत्तियाँ चुनी जाती हैं। प्रथम बार अप्रैल-मई में, दूसरी बार जुलाई अगस्त में और तीसरी बार अक्टूबर-नवम्बर में। यदि शीतकाल एवं बसंत ऋतु में वर्षा हो जाये तो पत्तियों की चुनाई सभव हो जाती है। ऊपरी भाग की की चांय तनों की अपेक्षा अच्छी होती है। एक झाड़ी से एक बार में लगभग १ कि० ग्राम हरी पत्तियाँ मिल जाती हैं और प्रति हैक्टेअर पीछे लगभग १६४ कि० ग्राम। उत्तम मिट्टी और उत्पादन कला में वृद्धि होने से एक झाड़ी से २ कि० ग्राम अथवा एक हैक्टेअर भूमि से ४५० कि० ग्राम तक चाय की पत्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। भिन्न-भिन्न जाति की झाड़ियों की पत्तियाँ भिन्न भिन्न लम्बाई की होती हैं। लुशाई और कच्छार की पत्ती १ फुट लम्बी तथा आसाम की केवल ६" ही लम्बी होती है। जंगली अवस्था में इसकी पत्तियाँ १०-१२ फीट लम्बी हो जाती हैं।

भारत के चाय उत्पादक क्षेत्र एक दूसरे से दूर दूर हैं। उनकी मिट्टी तथा जलवायु भी एक दूसरे से भिन्न है अतः चाय की किस्मों में भी अन्तर होता है। आसाम की चाय अपनी तेज सुगन्ध और रंग के लिए प्रसिद्ध है परन्तु पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग क्षेत्र में पैदा होने वाली चाय बहुत सुस्वादु और मादक होती है। दक्षिण भारत (विशेषतः नीलगिरि और कानन देवांस क्षेत्र) में पैदा होने वाली चाय

अपने रंग, मादकता और सुगन्धि के लिए प्रसिद्ध है परन्तु दार्जिलिंग की चाय न केवल भारत में ही वरन् विश्व भर में श्रेष्ठ मानी जाती है।

भारत में कई प्रकार की चायें प्राप्त की जाती हैं जैसे काली चाय, हरी चाय, कोलोंग चाय (Colong Tea), ईटों वाली, चाय (Brick Tea) तथा लेट-पेट-चाय (Let-pet Tea)। इनमें से वाणिज्य में मुख्यत: काली चाय का ही महत्व है। हरी चाय बहुत ही थोड़ी मात्रा में प्राप्त की जाती है। शेष प्रकप्रर की चायें केवल परीक्षण रूप में ही पैदा की जाती हैं।

चाय को पीने योग्य बनाने के पूर्व उसको साफ किया जाता है। इसके अन्तर्गत अनेक क्रियायें आती हैं। जैसे पत्तियों को खमीर उठाने के लिए सुखाना, उनको बेलनों में दबाकर मोड़ना तथा फिर भून कर डिब्बो में बन्द करना। यह सब कार्य कुशल मजदूरों द्वारा फैक्ट्रियों में ही किया जाता है जो चाय उद्यानों के निकट ही स्थित होती हैं। जब चाय भून कर तैयार हो जाती है तो उसे अलग अलग श्रेणियों में विभाजित किया जाता है और इसके वाणिज्यक प्रमाण रखे जाते हैं जैसे पत्ती वाली चाय (Leaf grade), ओरेंज पीको, पीको, पीको सूचोंग आदि तथा चूरा चाय (Broken Tea) जैसे ओरेंज पीको चूरा, पीको सूचोंग चूरा तथा फैनिंग्स आदि। चाय छांटने के बाद जो निकृष्ट श्रेणी का चूरा बच जाता है उससे कैफीन (Caffein) नामक मादक पदार्थ प्राप्त किये जाते है। हरी चाय बनाने के लिए खमीर उठाने की क्रिया नहीं की जाती वरन् उन्हें सुखा कर दबा देते है और फिर विभिन्न श्रेणियों की चाय छांट ली जाती है। हरी चाय की मुख्य किस्में Young Hyson, Twankey, Fannings or Soumee है।

उत्पादन की विधियाँ

अब भारत में चाय का उत्पादन वैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाने लगा है। काली चाय उत्पन्न करने वाले देशों में साधारणतया पुरानी विधि (Orthodox) काम में लाई जाती हैं, किन्तु भारत में अब इस विधि के अतिरिक्त C. T. C. तथा पत्तियों के निचले भाग को काटने की (Legcut) विधि द्वारा चाय का उत्पादन किया जाता है। दक्षिणी भारत में पुरानी विधि से बनाई जाने वाली चाय का अनुपात लगभग ५ से ६% है, जबकि उत्तर-पूर्वी भारत में कुल चाय का ४१% चाय पत्तियों के निचले भाग को काटने की विधि द्वारा बनाई जाती हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में चाय का अधिकांश भाग C. T. C. विधि द्वारा किया जाता है। इसमें प्रति पौंड चाय में अधिक प्याले बनने के अतिरिक्त मादकता भी अधिक होती है।

टोकलाई की चाय अनुसंधानशाला में उत्पादन के प्रत्येक पहलू पर सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है और उत्पादन की विधियों को विकसित एवं उन्नत बनाया जाता है। चाय की किस्म अधिकाशत: पत्तियों के भीतरी भाग पर निर्भर करती है और इन पत्तियों को आधुनिक विधियों द्वारा सर्वोत्तम बनाने के प्रयत्न किये जाते हैं।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में निम्नलिखित जलवायु क्षेत्रों में चाय का उत्पादन किया जाता है:—

(१) **उष्ण जलवायु की चाय**—इस क्षेत्र के अन्तर्गत नीलगिरि की पहा-

ड़ियाँ, मद्रास तथा उड़ीसा का पहाड़ी ढाल तथा हिमालय का दक्षिणी ढाल आता है। यहाँ जो चाय उगाई जाती है वह उष्ण जलवायु वाली चाय कही जाती है।

(२) **शीतल जलवायु की चाय**—यह चाय हिमालय की पहाड़ियों के ऊपर टीलों पर होती है। साधारणतया यह क्षेत्र १२०० से १८२० मीटर तक की ऊँचाई पर है।

(३) **शीतोष्ण जलवायु की चाय**—यह चाय ढालों के ऊपरी एवं निचले भागों की मध्यवर्ती भूमि पर उत्पन्न की जाती है। दार्जिलिंग, कुमायूं, कांगड़ा आदि जिलों मे २००० मीटर तक की ऊँचाई पर चाय पैदा की जाती है।

सारे देश में ६,६२२ चाय के उद्यान है जिनमें से २० प्रतिशत पंजाब और ११ प्रतिशत आसाम मे हैं किन्तु पंजाब में उद्यान का औसत क्षेत्रफल केवल ४ एकड ही है जबकि आसाम में यह ४०० एकड तक है। आसाम में चाय के ७८८ उद्यान हैं, बंगाल मे ३०२; हिमाचल प्रदेश में २२६; पंजाब में १,१२६; उत्तर प्रदेश मे ४६; त्रिपुरा में ५५; बिहार मे ४, मद्रास, केरल तथा मैसूर में ४,०५९ उद्यान हैं।

भारत के चाय के उत्पादन का ७५% आसाम, बंगाल तथा पंजाब आदि राज्यों से प्राप्त होता है और शेष २५% दक्षिणी भारत से।

नीचे की तालिका में चाय का क्षेत्रफल एवं उत्पादन बताया गया है :—

भारत मे चाय का उत्पादन (१९५५ से १९६२)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)			उत्पादन (००० पौंड)		
	१९५५	१९५६	१९६२	१९५५	१९५६	१९६२
आसाम	३८६	३८४	३९०	३३५,५२४	३६६,११८	३६६,०००
बिहार	१	१	१	१७१	३०७	३०७
मद्रास	६८	७२	७५	४४,८६२	७३,१८७	५५,०००
पंजाब	९	९	११	२,०३६	२,४२६	२,४३४
उत्तर प्रदेश	६	६	७	२०६८	१,९३८	७,०००
पश्चिमी बंगाल	१९५	१९४	१९६	१६६,२२६	१६६,९६३	१६६,७१७
मैसूर	५	५	४	२,५८१	२,६०३	५,२९९
केरल	९७	९७	९९	६९,०३१	६७,७३२	७६,५५२
हिमाचल प्रदेश	२	२	२	१९७	२३७	१६३
त्रिपुरा	११	११	१२	४,९१३	४,९९२	४,८३५
भारत का योग	७८०	७८१	८०९	६२७,६६९	६८६,४९९	७६०,०००

(१) **असम** में चाय का एक क्षेत्र ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में स्थित है। विश्वनाथ तथा तेजपुर के जिलों की लाल कछारी मिट्टी चाय के उद्यानों से ढकी है। यह क्षेत्र धरॉग, शिबसागर तथा लखीमपुर जिलो तक विस्तृत है। उद्यान ढालू पठार पर हैं, अतः पौधों की जड़ों में पानी एकत्रित नहीं हो पाता। असम का द्वितीय चाय उत्पादन क्षेत्र सूरमा नदी की घाटी है। गर्त की भूमि के ऊपर उभड़ आने के कारण उसका जल बह गया है और मिट्टी में प्राणिज तत्वों का आधिक्य है। यह क्षेत्र रेल तथा जल मार्ग द्वारा कलकत्ता और चटगाँव से संबद्ध है। आसाम से भारत की ५०% चाय प्राप्त होती है।

(२) **पश्चिमी बंगाल** मे चाय के उद्यान दार्जिलिंग तथा जलपाइगुड़ी जिले में लगे हैं। इस क्षेत्र में उत्तम प्रकार की सुगन्धित चाय उत्पन्न होती है। ये दोनों जिले मिल कर भारत की २०% से २५% तक चाय का उत्पादन करते है।

(३) **बिहार** की चाय निम्न कोटि की होती है और यहाँ के प्रमुख चाय उत्पादन जिले पूर्णिया, राँची और हजारीबाग हैं।

(४) **उत्तर प्रदेश** में देहरादून, गढ़वाल तथा अलमोड़ा की पहाड़ियों पर चाय का उत्पादन होता है। यह क्षेत्र बिहार के क्षेत्र का डेढ़ गुना है।

(५) **पंजाब** के चाय का उत्पादन-क्षेत्र कांगड़ा जिले मे स्थित है। यहाँ से भारत की लगभग $\frac{2}{3}$ हरी चाय उत्पन्न होती है। बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पजाब तीनों में मिलकर भारत के कुल उत्पादन क्षेत्र का लगभग ५० प्रतिशत क्षेत्र स्थित है।

(६) **दक्षिणी भारत** में चाय का सबसे अधिक उत्पादन-मद्रास के अन्नामलाई नीलगिरी और कोयम्बटूर जिले, केरल राज्य के वायनाद, मध्य ट्रावनकोर, कानन देवन्स, मलाबार तट तथा मैसूर और महाराष्ट्र राज्य में होता है।

उत्पादन एवं व्यापार

भारतीय चाय उद्योग में लगभग १० लाख व्यक्ति लगे है और ११३·०६ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित है। इसमें से ६४·२ प्रतिशत अँगरेज कम्पनियों के अधिकार में हैं (जिनमे 'लिप्टन' और 'ब्रुकबांड' विशेष रूप से उल्लेखनीय है) और ३५·८ प्रतिशत भारतीय पूजी है। प्रति वर्ष इस उद्योग से १३ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है तथा सरकार को कर के रूप में ३५ से ४० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष मिलते हैं।

चाय के उत्पादन में निरंतर वृद्धि होती रही है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा। १९६३ में ७,७५० लाख पौंड के कुल उत्पादन में से ७७% उत्तरी भारत से और २३% दक्षिण भारत से हुआ।

चाय का निर्यात भी बढ़ रहा है। १९६०-६१ में १२२·२६ करोड़ की चाय का निर्यात किया गया, १९६१-६२ में १२६·१९ करोड रुपये की तथा १९६२-६३ में १३६·१२ करोड रुपये की। यह निर्यात मुख्यतः ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, आयरलैण्ड, रूस, मिश्र, ईरान, कनाडा, नीदरलैड्स, आस्ट्रेलिया, उत्तरी अमरीका और सूडान, टर्की, तथा मध्यपूर्व के देशों को होता है। कुल निर्यात का लगभग ७०% ब्रिटेन खरीदता है। चाय का यह निर्यात कलकत्ता, बम्बई, कोचीन, मद्रास और मंगलौर बन्दरगाहों से होता है।

चाय का उत्पादन, निर्यात आदि

वर्ष	क्षेत्रफल (हैक्टेअर में)	उत्पादन (००० कि० ग्रा० में)	मात्रा (००० कि० ग्रा० में)	निर्यात मूल्य (करोड़ रु०)
१९५६-५७	३२३,२८५	३०८,७१९	२३७,४८४	—
१९६०-६१	३३१,०९०	३२१,०७७	१९५,११३	१२२·२६
१९६१-६२	अप्राप्य	३५३,४८९	२०५,९५३	१२९·१९
१९६२-६३	,,	३४३,८००	२२०,६००	१३६·१२

सन् १९६३ में भारत ने विश्व के कुल उत्पादन का ४७% पैदा किया तथा विश्व के निर्यात का ४०% भारत से ही किया गया। विदेशी बाजारों में भारतीय चाय की बड़ी माग है। वास्तव में भारतीय चाय का दो-तिहाई विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। भारत में चाय का प्रति एकड़ उत्पादन ८८० पौंड है। अन्य राज्यों म यह उत्पादन इस प्रकार है: असम ९५५ पौं०; प० बंगाल ९५० पौं०; मद्रास में १०१४ पौं०; मैसूर में ५६८ पौं० और पंजाब में २६७ पौं०।

भारत के कुल उत्पादन का लगभग ७५ प्रतिशत निर्यात कर दिया जाता है। देश में २० से २५ प्रतिशत ही चाय खपती है। १९३८ में जहाँ लगभग ९३२ लाख पौंड चाय की खपत हुई वहाँ १९४८ में १,५८३ लाख पौंड, १९५२ में २,३४३ लाख पौंड और १९६३ में लगभग २,७५० लाख पौंड चाय की खपत हुई। खपत में वृद्धि होने का मुख्य कारण **भारतीय चाय विपणन समिति** की बिक्री योजनाओं का कार्यान्वित किया जाना है। फिर भी भारत में चाय की खपत प्रति व्यक्ति पीछे बहुत ही कम है। सं० राज्य अमरीका में ३·२ कि०ग्रा० प्रति व्यक्ति पीछे पी जाती है, इंगलैंड में ४·५ कि० ग्राम, नीदरलैंड्स में ३·५ कि० ग्राम, आस्ट्रेलिया में ४ कि० ग्राम और भारत में केवल ०·२३ कि० ग्राम है।

१९३३ में भारत, जावा तथा लंका के बीच एक समझौता हुआ था जिसमें प्रत्येक देश का निर्यात निश्चित कर दिया गया था। उस समझौते के अनुसार भारत ३८०० लाख पौंड से अधिक चाय बाहर नहीं भेज सकता था। पारस्परिक प्रति-स्पर्धा के कारण चाय का मूल्य बहुत गिर जाये इसलिए यह अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौता हुआ। द्वितीय महायुद्ध में भारतीय चाय की माँग देश और विदेश दोनों ही में बढ़ गई। १९४८ में फिर जो अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौता हुआ उसके अनुसार भारत का निर्यात कोटा ४,३५० लाख पौंड निश्चित हुआ। १९५०-५१ में यह कोटा बढ़ा कर १४,५२० लाख पौंड कर दिया गया। किन्तु फिर भी भारतीय चाय उद्योग का सकट बना ही रहा। उस पर यहाँ की चाय कम्पनियों ने आपस में मिल कर चाय के उत्पादन को घटाने का निश्चय किया और १९५३-५४ में ८ प्रतिशत क्षेत्र कम कर दिया गया और उत्पादन में ५०० लाख पौंड की कमी हो गई। यह समझौता मार्च, १९५५ में समाप्त हो गया। अब भारत् से चाय का निर्यात कोटा चाय-बोर्ड की लाइसेंस समिति द्वारा तय किया जाता है।

तृतीय योजना काल में चाय का उत्पादन लक्ष्य ४०,८०० लाख कि० ग्राम रखा गया है अर्थात् उत्पादन में वृद्धि २४% की होगी। चाय का निर्यात लक्ष्य २,७७० लाख कि० ग्राम का रखा गया है।

चाय का निर्यात बढ़ाने के लिए विदेशों को प्रतिनिधि मंडल भेजे जाते हैं। आयरलैंड में **चाय परिषद** तथा लन्दन, न्यूयार्क, सिडनी और मिश्र में भारतीय चाय सलाहकार कार्य कर रहे है।

कहवा (Coffee)

कहवा भी चाय की तरह ही एक झाड़ी का फल होता है जिसका मूल-स्थान अफ्रीका(काफा क्षेत्र)और एशिया के उष्णकटिबन्धीय प्रदेश है। किन्तु अब इसका उत्पादन विश्व के अन्य देशों में २५° उत्तरी से २५° दक्षिणी अक्षांशों के बीच किया जाता है। भारत में इसका उत्पादन १८२६ में चिकमगलूर में, १८३० में शिवराय और माननटोड़ी तथा १८३९ में नीलगिरी में आरम्भ किया गया। १८९६ में कहवा के उद्यानों का क्षेत्रफल ३.०४,००० एकड था किन्तु १९२० मे इसकी पत्तियों में रोग लग जाने से इसके क्षेत्रफल में काफी कमी हो गई। तब से अभी तक कहवा का क्षेत्रफल सन् १८९६ के क्षेत्रफल बराबर नही हो सका है। विश्व के उत्पादन का केवल २ प्रतिशत कहवा भारत से प्राप्त होता है किन्तु इसका स्वाद उत्तम होने के कारण विश्व के बाजारों में इसका मूल्य अधिक मिलता है। भारतीय कहवा को **मधुर कहवा** (Mild Coffee) कहा जाता है।

भौगोलिक दशायें

(१) कहवा का पौधा बड़ा ही नाजुक होता है। यह गर्म और आर्द्र जलवायु में अच्छा पनपता है किन्तु इसके फलों के पकने के लिये शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है। यह पाला नहीं सह सकता और न ही अधिक गर्मी। अतः इसका उत्पादन उन क्षेत्रों तक ही सीमित है जहाँ औसत वार्षिक तापक्रम १५° से २८° सें० ग्रेड से अधिक नहीं बढ़ता। साधारणतः तापक्रम १०° से २७° सें० ग्रेड तक का ठीक रहता है। कहवा अधिक तेज धूप को भी नहीं सह सकता अतः इसके आसपास छायादार वृक्ष—जैसे केला, सिंकोना, रबड़, सिल्वर-ओक आदि के वृक्ष लगाये जाते हैं।

(२) इसके लिए १५० से २५० सैं० मीटर तक की वर्षा पर्याप्त मानी गई है। यदि वर्षा का वितरण समान रूप से हो तो यह ३०० सैं० मीटर तक की वर्षा वाले क्षेत्रों में भी पैदा किया जा सकता है। किन्तु अधिक समय तक सूखा पड़ने से इसकी पैदावार कम हो जाती है। पहाड़ी ढालों पर, जहाँ वर्षा का अतिरिक्त जल बह कर चला जाता है, इसकी पैदावार की जाती है। साधारणत. १,८०० मीटर की ऊंचाई तक यह पैदा किया जाता है। दक्षिणी भारत में कहवा के उद्यान साधारणतः घाटियो के पार्श्ववर्ती भाग में तथा पश्चिमी घाटों पर पाये जाते है। वर्षाकाल में चलने वाली तेज हवाओं से पौधे का बचाव हो जाता है। कहवा अधिकतर वनों को साफ की गई भूमि में अच्छा पैदा होता है है जहाँ भूमि में अधिक उपजाऊ तत्त्व मिलते हैं।

(३) कहवा के लिए दोमट मिट्टी अथवा ज्वालामुखी के उद्गार से निकली हुई लावा मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है जिनमें क्रमश वनस्पति और लोहे के अंश मिले रहते हैं ;

कहवा का बीज पहले छोटी-छोटी क्यारियों में बोया जाता है। यह जनवरी

से मार्च तक बोया जाता है और जब पौधा ८ से १२ सप्ताह का हो जाता है तो उसे नर्सरी में लगा देते है वहाँ १८ महीने का होने पर पुनः अन्य क्यारियों में लगाया जाता है। तीन वर्ष बाद पौधे से फल मिलने लगता है और ३० से ५० वर्षों तक मिलता रहता है। फल अधिकतर अक्तूबर से जनवरी तक चुने जाते हैं। दक्षिणी भारत में वर्षा की प्रथम बौछारों के बाद फूल आने आरम्भ होते हैं और फल लगभग ८-६ महीने में पक कर तैयार हो जाता है तथा इसे अक्तूबर-नवम्बर में चुन लेते हैं। मैसूर में फरवरी तक पौधे से ३-४ बार फल चुन लेते हैं जबकि नीलगिरि में मई से जून तक कई बार फल चुने जाते हैं। एक वृक्ष से औसतन १/४ से १/२ कि० ग्राम तैयार किया गया कहवा मिलता है अथवा प्रति हैक्टेअर पीछे २० से २१० कि० ग्राम तक।

चित्र १५५. काफी की उपज के क्षेत्र

भारत में प्रति एकड़ कहवा की पैदावार अन्य देशों की तुलना में बहुत ही कम है। कहवा की उपज ऊँचाई, आकार, वर्षा का समय छाया, छटाव, खाद आदि बातों पर निर्भर करती है। १६६३ में अरेबिका कहवा का प्रति एकड़ उत्पादन ४२१ कि० और रोबस्टा कहवा का ४०६ कि० था।

कहवे के फल को तोड़ कर दो ढंग से तैयार किया जाता है। पहले ढग के अनुसार और फिर उन्हें धूप में २ से ३ सप्ताह तक सुखाया जाता है और फिर मशीन से साफ कर बीज निकाले जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त किये गए कहवा को **चेरी** (Cherry) कहते हैं। दूसरे ढंग के अनुसार फलों को इकट्ठा कर उनका गूदा निकाल लेते हैं फिर बड़े-बड़े हौजों में उसे साफ कर बीज निकाले जाते हैं। इनको धूप में सुखाकर **पार्चमैंट** (Parchment) कहवा प्राप्त किया जाता है।

भारत में मुख्यतः दो प्रकार का कहवा पैदा किया जाता है: (१) 'अरेबिका कहवा' (Coffee Arabica) और (२) 'रोबस्टा कहवा' (Coffee Robusta)। पहले प्रकार का कहवा उच्च कोटि का होता है तथा अधिक क्षेत्रफल में बोया जाता है किन्तु इसमें काड़े और रोग अधिक लग जाते है। अरब कहवा की मुख्य किस्में चिक, कुर्ग, केंट और मारगोपाइप, बोरबन, अमरीलो तथा ब्लू माउन्टेन आदि हैं। रोबेस्टा कहवा आजकल अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। इसको रोगों और कीड़ों मकोड़ों का भय कम रहता है। इसकी प्रति एकड़ पैदावार भी अधिक होती है। मैसूर और केरल राज्यों मे इसे केले, आम, नारंगी तथा काली मिर्चों के साथ पैदा किया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में कहवा के १२,८००उद्यान है जिनमें २२,७२३३ श्रमिक काम करते हैं। इन उद्यानों में से ७,००० उद्यान दक्षिणी भारत में है। कहवा के उद्यानों का ७०% अंग्रेजों और ३०% भारतीयो के अधिकार में है।

कहवा के अन्तर्गत क्षेत्रफल का ३७% मैसूर में; ३०% मद्रास में और ३३% केरल राज्य में है।

मैसूर में लगभग ४,६०० उद्यान है। यहाँ कहवा अधिकतर दक्षिणी और दक्षिणी पश्चिमी भाग में कादूर, शिमोगा, हसन और मैसूर जिलों में पैदा होता है जो साधारणतः १२०० मीटर ऊँचे हैं और जहाँ औसत वर्षा १२५ सें० मीटर होती है।

मद्रास में सम्पूर्ण दक्षिण-पश्चिम में उत्तरी अर्काट जिले से लगा कर तिरुनलवैली तक यह बोया जाता हैं। नीलगिरि पर्वत प्रमुख उत्पादन क्षेत्र है।

महाराष्ट्र में सतारा जिले में, **केरल** में कुर्ग और **आंध्र** में विशाखापट्टनम जिले में भी कहवा पैदा किया जाता है।

गतवर्ष १५ वर्षों में कहवा का उपभोग और व्यापार दोनों ही बढ़े हैं। इस वृद्धि का कारण **भारतीय कहवा बोर्ड** के प्रयास है। नीचे की तालिका में कहवा का उत्पादन बताया गया है:—

कहवा के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन

	अरेबिका		रोबस्टा		कुल योग	
वर्ष	क्षेत्र० (हैक्टेअर्स)	उत्पा० (मीट्रिक टन)	क्षेत्र० (हैक्टेअर्स)	उत्पा० (मीट्रिक टन)	क्षेत्र० (हैक्टेअर्स)	उत्पा० (मीट्रिक टन)
१९४८-४९	६६४५२	१९१३७	२१९९८	३५२६	८८४५०	२२६६३
१९४९-५०	६६४४५	१२९२८	२४४४९	७९२१	९०८९४	२०८४९

१९५०-५१	६७६१८	१५५१०	२४९१०	३३८२	९५२८१	१८८९२
१९५५-५६	६७५७५	२२९६७	३९३९७	१२०६०	१०६९७२	३५०२७
१९५७-५८	६६४५६	२९६९०	४२१९१	१४७१०	१०८६४७	४४४००
१९५८-५९	६६५००	२६०५०	४७५००	२०५४५	११४०००	४६५९५
१९५९-६०	६७४००	३२०१०	४८६००	१७३७०	११६०००	४९३८०
१९६०-६१	७४०००	३९२५०	५००००	३८३००	१२४०००	६७५५०
१९६१-६२	अप्राप्य	२९१९१	अप्राप्य	१६५५१	—	४५७४२
१९६२-६३	,,	३३४५७	अप्राप्य	२०२१५	—	५४६७२

गत १५ वर्षों में कहवा के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। १९४७-४८ में जहाँ इसका उत्पादन केवल १६,००० टन था, वहाँ १९६०-६१ में यह ६७,००० से भी अधिक का हुआ। १९६१-६२ में भारी वर्षा, बाढ़ तथा भू-फिसलाव के कारण कहवा का उत्पादन केवल ४५,६८५ टन रह गया। १९६२-६३ में ५८,००० टन कहवा उत्पादन का अनुमान लगाया गया था। मैसूर में ४०,४४० टन; मद्रास में ७२७५ टन और केरल में ७७८५ टन कहवा पैदा किया गया। कहवा का घरेलू बाजार भी बढ़ता जा रहा है तथा निर्यात में भी वृद्धि हुई है जैसा कि नीचे के अंकों से स्पष्ट होगा :—

वर्ष	घरेलू खपत (टनों में)	निर्यात (टनों में)	मूल्य (लाख रु० में)
१९५५-५६	२६,५०६	८,०८२	५५३·२
१९५७-५८	२९,९२४	१४,२८१	६२४·०
१९५८-५९	३०,१२०	१६,४००	६३३·७
१९५९-६०	३१,३२६	१८,१८०	६५१·५
१९६०-६१	३५,५२३	३२,२७१	८८७·६
१९६१-६२	२५,९११	३१,९५१	९५२·०
१९६२-६३	२२,०००	१६,०००	७६१·०

१९६५-६६ तक कहवा का उत्पादन ८०,००० मी० टन हो जाने का अनुमान है, तथा निर्यात के लिए ४५,०००मी० टन और घरेलू खपत के लिए ३५,००० टन कहवा उपलब्ध हो सकेगा। १९६५-६६ तक १४ करोड़ रुपये का कहवा निर्यात किया जा सकेगा।

कहवे का निर्यात मुख्यतः इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंड्स, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया और ईराक को किया जाता है। निर्यात का लगभग ७६% मंगलौर, ११% तैलीचेरी, १०% कोजीखोड़ और ३% मद्रास के बन्दरगाह से जाता है। पिछले कुछ समय से ब्राजील से स्पर्धा होने से भारत के निर्यात में काफी कमी आ गई है।

तम्बाकू (Tobacco)

भारत में तम्बाकू का पौधा पुर्तगालियों द्वारा सन् १५०८ में लाया गया और तब से इसकी खेती का क्षेत्र भारत के लगभग सभी भागों में फैल गया है। भारत विश्व के उत्पादन का लगभग ७ प्रतिशत तम्बाकू उत्पन्न करता है। भारत में लगभग ३६३,००० हैक्टेअर क्षेत्र में २८८,००० टन तम्बाकू का पत्ता पैदा किया जाता है। यह क्षेत्रफल कुल बोये गये क्षेत्रफल का लगभग ०·३५ प्रतिशत है। राष्ट्र के लिये आर्थिक दृष्टि से तम्बाकू का महत्व अधिक है। इससे आबकारी कर के रूप में सरकार को लगभग ३५ करोड़ रुपये और निर्यात से ६५ करोड़ की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। अनुमान है कि लगभग १६ लाख तम्बाकू उगाने वाले और लगभग ९ लाख सुखाने वाले हैं। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि तम्बाकू उद्योग से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लगभग ३० लाख लोगों की जीविका चलती है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

(१) तम्बाकू की पैदावार का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। यह उष्ण कटिबन्धीय, अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय और शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु की दशाओं में पैदा की जाती है। इसका उत्पादन समुद्र के धरातल से लेकर १,८०० मीटर की ऊँचाई तक भी किया जा सकता है। इसके पूर्ण विकास के लिए तापक्रम १६° सैं० ग्रेड से ४०° सैं० ग्रेड का ठीक रहता है। यदि वर्षा वाली भूमि में बोया जाय तो साधारणतः इसे ५० से १०० सैं० मीटर की वर्षा पर्याप्त होती है। इससे अधिकतर वर्षा वाले भागों में इसकी खेती नहीं की जा सकती। पत्तियों के पकने के समय वर्षा हो जाने से उसकी किस्म बिगड़ जाती है। पकने के समय स्वच्छ और तेज धूप तथा वर्षा रहित मौसम होना आवश्यक है। इसकी जड़ों में पानी नही जमना चाहिये इसीलिए तम्बाकू की कृषि नदी की ढालू घाटी और पठार पर अधिक होती है।

(२) तम्बाकू के लिए बलुही, दोमट अथवा मिश्रित कछारी मिट्टी उपयुक्त रहती है। मिट्टी में से तम्बाकू उपजाऊ तत्वों को बहुत जल्दी खींच लेता है अतः पोटाश, फास्फोरिक एसिड और लोहांश के रूप में खाद की आवश्यकता पड़ती है।

(३) तम्बाकू जाड़े में पैदा होता है। इसका पौधा जब ६-८ हफ्तों में बड़ा हो जाता है तो पौधों को १½-२ फुट की दूरी पर दूसरी क्यारियों में रोप दिया जाता है। जहाँ सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं वहाँ दो फसलें भी प्राप्त की जाती हैं। पहली फसल जनवरी से जून तक तथा दूसरी अक्तूबर से मार्च तक। साधारणतः इसकी फसल जुलाई से अक्तूबर तक बोई जाती है और फरवरी से मई तक काटी जाती है।

(४) तम्बाकू की पौध लगाने, काटने, पत्तियों के सुखाने और तैयार करने में सस्ती मजदूरी की आवश्यकता पड़ती है।

तम्बाकू की किस्म मिट्टी, अपने रंग, वजन और स्वाद पर निर्भर करती है। मौसम में हलके परिवर्तन व पत्तियों की छंटनी और सफाई का भी इसकी किस्म पर प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः कहा जा सकता है कि ठण्डी, नम, ग्रीष्म ऋतु व हल्की नरम भूमि होने पर पत्तियाँ अच्छे रेशे वाली और कम तेज होती हैं। किन्तु जब भूमि कठोर और तापक्रम ऊँचा रहता है तो पत्तियाँ मोटी और तेज स्वाद वाली होती है।

यद्यपि भारत में लगभग ६० किस्म की तम्बाकू बोई जाती है किन्तु दो उनमें मुख्य हैं : 'निकोटिना टुबैकम' (Nicotina Tobacum) और निकोटिना रस्टिका' (Nicotina Rustica) । भारत में सबसे अधिक क्षेत्रफल प्रथम किस्म के अन्तर्गत है । चूँकि 'रस्टिका' तम्बाकू को ठण्डे जलवायु की आवश्यकता होती है अतः यह मुख्यत उत्तरी और उत्तरी-पूर्वी भारत में पैदा की जाती है । इसका पौधा छोटा और पत्तियाँ भी छोटी होती हैं । इसका उपयोग हुक्का, खाने और सूंघनी बनाने में होता है । 'टुबैकम' सारे ही भारत मे बोई जाती है । इसमें फूल गुलाबी रंग के होते है । इसके पौधे लम्बे तथा पत्तियाँ बड़ी होती हैं । सिगरेट, चिरूट, बीड़ी, हुक्का तथा खाने और सूघनी बनाने में इसी का प्रयोग अधिक किया जाता है ।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में तम्बाकू का उत्पादन मुख्यतः आंध्र, महाराष्ट्र और मैसूर राज्यों मे
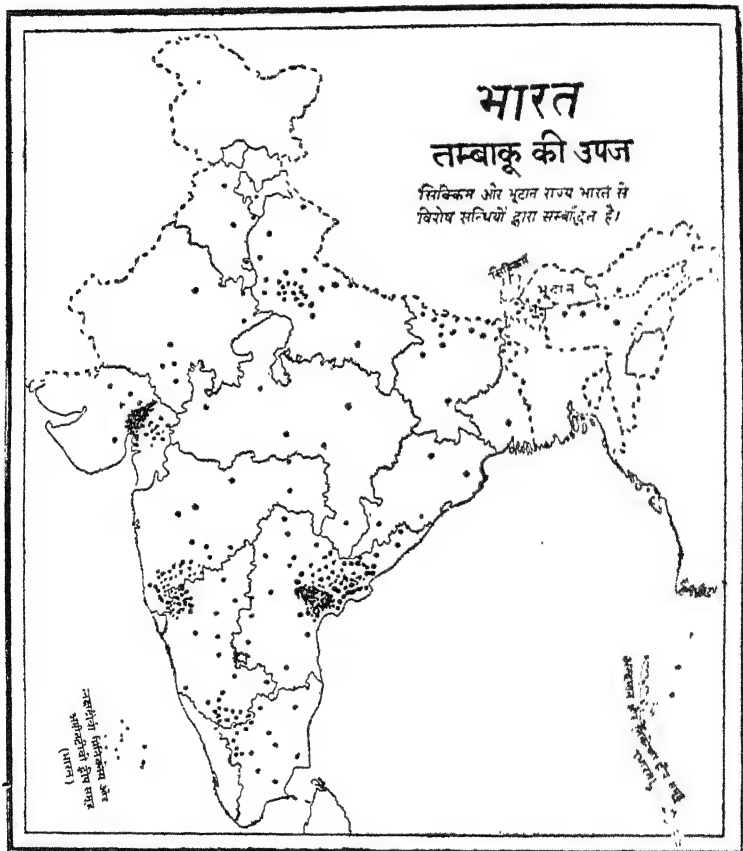
चित्र १५६. प्रमुख तम्बाकू उत्पादक क्षेत्र

होता है। इन तीनों राज्यों में कुल क्षेत्र का लगभग ७४% है। अन्य राज्य आसाम, बिहार, उत्तर प्रदेश, मद्रास और पश्चिमी बंगाल है।

(१) **गंतूर प्रदेश**—इसमें आंध्र राज्य के गतूर, कृष्णा, पूर्वी गोदावरी तथा पश्चिमी गोदावरी जिले सम्मिलित हैं किन्तु २/३ से भी अधिक क्षेत्र गतूर जिले में है। इस क्षेत्र की मिट्टी काले रंग की है जिसमें चूने की मात्रा अधिक है। पूर्वी तट पर सिंचाई की भी सुविधा है। इस प्रदेश में अधिकतर गर्म हवा में सिझाये गये तथा सूर्य की धूप से सिझाये गये विभिन्न प्रकार के **वर्जिनिया तम्बाकू** तथा **'नाटू' 'थाक आकू'** और **'करा आकू'** नाम की देशी तम्बाकू पैदा किये जाते है। लंका नामक जिला विशेष का तम्बाकू तो पूर्वी गोदावरी और कृष्णा जिले में उगाया जाता है। यह मुख्यत: चुरुट और सिगार बनाने में प्रयोग मे लाई जाती है।

(२) **उत्तरी-बिहार और बंगाल प्रदेश**—इसमें बिहार के मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा, मुंगेर और पूर्णिया जिले तथा पश्चिमी बंगाल के जलपाईगुरी, माल्दा, हुगली, कूचबिहार और बरहामपुर जिले सम्मिलित है। गंगा के ढालू मैदान की उपजाऊ मिट्टी इसकी कृषि के लिए आदर्श है। यहाँ हुक्का के उपयोगी 'एन टुबेकम' एन रस्टिका' की विविध किस्में—**विलायती, मोतीहारी** और **जाति**—पैदा की जाती है।

(३) **चरोत्तर**—इसमें गुजरात राज्य के खैर जिले के आनन्द, बोरसद पेटलाद, नाडियाद तालुक सम्मिलित हैं। इस प्रदेश मे विविध किस्मो के—'निकोटिना रस्टिका' और 'वर्जिनिया टुबैकम' बोया जाता है।

(४) **निपानी क्षेत्र**—इसमें महाराष्ट्र के कोल्हापुर, सांगली, मिराज, वेलगांव और सतारा जिलों में मुख्यत बीडी का तम्बाकू उगाया जाता है। यहाँ गहरी काली और गहरे लाल रग की मिट्टी में तम्बाकू पैदा किया जाता है।

(५) **उत्तर प्रदेश और पजाब प्रदेश**—उत्तर प्रदेश के बनारस, मेरठ बुलन्दशहर, मैनपुरी, सहारनपुर और फरुखाबाद जिले और पजाब के अमृतसर, जालन्धर, गुरुदासपुर तथा फिरोजपुर जिले तम्बाकू के मुख्य उत्पादक हैं। यहाँ हुक्का के लिये तथा खाने के लिये बढ़िया किस्म की 'कलकतिया' तम्बाकू उगाया जाता है।

(६) **दक्षिणी मद्रास प्रदेश**—इसमें मद्रास राज्य के मदुराई, कोयम्बटूर, डिंडीगल, तिरुचिरापल्ली जिले सम्मिलित है। इसमे सिगार और चुरुट में भरने वाला तम्बाकू उगाया जाता है।

नीचे की तालिका मे तम्बाकू के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है:—

तम्बाकू के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन
(१९६०-६१ एवं १९६२-६३)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	१९६०-६१	१९६२-६३	१९६०-६१	१९६२-६३
आंध्र प्रदेश	२१३	४०५	६४	१३५
आसाम	२४	२६	७	८
बिहार	३९	४३	११	१५

गुजरात	२१६	२२६	५६	६५
मद्रास	४३	४७	२५	२८
महाराष्ट्र	५४	६८	१०	१५
मैसूर	६६	६५	२४	२३
राजस्थान	१५	१२	५	४
उत्तर प्रदेश	४८	४०	१६	१३
पश्चिमी बंगाल	४३	३८	१४	११
भारत का योग	६६८	१०६२	२६४	३६१

नीचे की तालिका में तम्बाकू के क्षेत्रफल एवं उत्पादन सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

वर्ष	क्षेत्रफल (ह० हैक्टेअरों में)	उत्पादन (दस लाख कि० ग्राम)
१९५७-५८	३५३	२४१
१९५८-५९	३६३	२६५
१९५९-६०	३७०	२८६
१९६०-६१	३९२	२९९
१९६१-६२	४१०	३०५
१९६२-६३	४२९	३०२

तम्बाकू का निर्यात संयुक्त राज्य, सोवियत रूस, अदन, बेल्जियम, लंका, चीन, नीदरलैंड्स, फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका, ब्रिटेन, मिश्र, सिंगापुर एवं जापान, और हांगकाग को किया जाता है।

उत्तम दर्जे के सिगरेटों में मिश्रण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका से गर्म हवा से सुखाई गई तम्बाकू आयात की जाती है। कुछ तम्बाकू मिश्र, पाकिस्तान और ब्रह्मा से भी मंगवाते हैं।

सिगरेट और नाटू तम्बाकू पर अनुसंधान करने के लिए आंध्र प्रदेश के गंतूर में सिगरेट तम्बाकू अनुसंधान उपकेन्द्र की स्थापना की गई है। मद्रास में वेडसन्दूर में सिगार और चुरुट अनुसंधान केन्द्र स्थापित हैं। बिहार में पूसा में हुक्का व खानी तम्बाकू के लिए, पश्चिमी बंगाल के दीन हाटी में रैपर व हुक्का तम्बाकू अनुसंधान केन्द्र हैं। मैसूर में तम्बाकू के उत्पादन गुण की वृद्धि पर अनुसंधान के लिए हुणसूर में और राजमहेन्द्री में सभी किस्मों पर बुनियादी व व्यावहारिक अनुसंधान के लिए तम्बाकू अनुसंधान केन्द्र हैं।

तृतीय योजना में तम्बाकू का उत्पादन ३ लाख टन से बढ़ कर ३¼ लाख टन होगा। अर्थात् उत्पादन मे वृद्धि ८·३% की होगी। संपूर्ण वृद्धि वर्जिनिया तम्बाकू के उत्पादन में ही होगी।

अफीम (Opium)

अफीम पोस्ते की डोडी से निकाला गया सूखा रस है। इसकी पैदावार के लिये अधिक उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। ठडी या गरम जलवायु मे जहाँ ६२ से १२७ सैं० मीटर तक वर्षा होती है अफीम की खेती की जाती है। यह अक्टूबर के महीने में बोई जाती है और मार्च मे अफीम इकटठी की जाती है। अफीम की खेती सरकार की निगरानी में ही की जाती है। जबसे चीन को अफीम का भेजा जाना बन्द हुआ है तभी से भारत मे भी इसकी खेती कम होने लगी है।

इस समय यह मध्य प्रदेश के ग्वालियर और मालवा प्रदेश ; उत्तर प्रदेश के बनारस और गाजीपुर जिलों में तथा राजस्थान के उदयपुर जिले में पैदा की जाती है। थोड़ी सी अफीम बिहार और बंगाल में भी उत्पन्न की जाती है।

अध्याय २४

कृषि उत्पादन (क्रमशः)

रेशेदार पौधे

(FIBROUS CROPS)

कपास (Cotton)

कपास भारत की ही उपज है जहाँ पूर्व ऐतिहासिक काल से ही इसकी खेती की जा रही है। यहीं से ३२७ ई० पूर्व के लगभग यूनान में इस पौधे का प्रचार हुआ। यहीं से यह पौधा चीन और विश्व के अन्य देशों को ले जाया गया। आज भी कपास के उत्पादन में भारत का स्थान मुख्य है। यहां से विश्व का ८% कपास प्राप्त होता है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

(१) कपास उष्ण और सम-शीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है जो ४०° उत्तरी अक्षांस से ३०° दक्षिणी अक्षांस के बीच पैदा किया जाता है। भारत में इसका उत्पादन समुद्रतल के धरातल से लगभग ९१४ मीटर की ऊँचाई तक होता है। इसकी खेती मुख्यत समतल मैदानों और कुछ पठारी भागों तक ही सीमित है। इसके पौधे के लिए उच्च तापक्रम की—साधारणतः २०° से ३०° सें० ग्रेड—आवश्यकता पड़ती है किन्तु यह ४०° सें० ग्रेड तक की गर्मी में पैदा किया जा सकता है। पाला अथवा ओला इसकी फसल को हानि पहुँचाते हैं। अतः इसे २०० दिन पाला-रहित ऋतु चाहिए। इससे कम समय में न तो पौधे का पूर्णतः विकास ही होता है और न बड़े-बड़े फूल ही आते है। बौंडियाँ (Bolls) खिलने के समय स्वच्छ आकाश, तेज और चमकदार धूप होनी आवश्यक है जिससे रेशे में पर्याप्त चमक आ सके और बौंडियाँ पूरी तरह खिल सके।

(२) कपास के लिए साधारणतः ५० से १०० सेंटीमीटर तक की वर्षा पर्याप्त होती है। यह मात्रा थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर से प्राप्त होनी चाहिए। १०० सेंटीमीटर से अधिक वर्षा वाले भागों में इसकी खेती नहीं हो सकती। जहाँ वर्षा ५० सेंटीमीटर से कम होती है वहाँ सिचाई के सहारे कपास पैदा किया जाता है। यदि वर्षा दोनों ही मानसून-काल में आती है तो दो फसलें प्राप्त की जा सकती हैं अन्यथा एक ही।

(३) कपास विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में पैदा किया जा सकता है किन्तु आर्द्रता पूर्ण चिकनी और काली मिट्टी अधिक लाभप्रद मानी जाती है क्योंकि पौधे की जड पानी में न डूबे तब भी उसे अधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से दक्षिणी भारत की काली मिट्टी इसके लिए बड़ी उपयोगी है। भारत में इस प्रकार

की मिट्टी के क्षेत्र गुजरात राज्य के भड़ौंच, सूरत व दक्षिणी सौराष्ट्र में मिलते है।

(४) कपास की बौडियाँ चुनने के लिए सस्ते मजदूरो की भी आवश्यकता पड़ती है ज्यों ही पौधे पर फूल निकल कर बड़े होने लगें त्यों ही उनको चुन लेना आवश्यक होता है अन्यथा देरी होने पर फूल खराब होकर गिरने लगते हैं और कपास की किस्म बिगड जाती है।

कपास की जलवायु की दृष्टि से दक्षिणी भारत की जलवायु उत्तरी भारत की अपेक्षा अधिक अनुकूल है क्योंकि जाड़े मे उत्तरी भारत का तापक्रम कम हो जाता है और भूमध्य सागरीय चक्रवातों के आगमन से बादल छाये रहते है तथा बौंडियो को प्रस्फुटित होन के लिये पर्याप्त मात्रा मे ताप एवं चमकदार धूप नहीं मिल पाती। कभी कभी जाडे में वर्षा भी हो जाती है अथवा बर्फ गिर जाता है इससे फसल को क्षति पहुँचती है।

कपास का पौधा प्राकृतिक रूप से ३ से ४ ½ मीटर तक ऊँचा बढ़ जाता है किन्तु प्रति वर्ष उत्पादन होने के कारण यह अधिक से अधिक १ से १½ मीटर तक ही बढ़ पाता है। भारत में यह अधिकतर रागी, ज्वार, बाजरा, चावल, दालों और तिलहनों के साथ बोया जाता है। साधारणतः इसकी बुवाई मार्च से अगस्त और चुनाई सितम्बर से अप्रेल तक की जाती है। दक्षिणी भारत में कपास की दो फसलें बोई जाती है, पहली फसल, ग्रीष्म ऋतु के मानसून आरम्भ होने पर और दूसरी उसके अन्त पर बोई जाती है। कपास चुनने का मौसम प्राय. नवम्बर से फरवरी तक चलता है। पहली फसल से जनवरी तक और दूसरी से अप्रैल तक कपास मिलती है। गुजरात में अहमदाबाद, सूरत, भड़ौच तथा महाराष्ट्र मे कर्नाटक और खानदेश में कपास बोई जाती है। भडौंच मे मिट्टी गहरी होने के कारण नमी अधिक रहती हैं। यहाँ कपास मानसून के आरम्भ होने पर बोई जाती है और अक्टूबर से मार्च अप्रेल तक इसकी चुनाई की जाती है। कर्नाटक और खानदेश में मानसून के कारण फसल को कुछ देरी से बोया जाता है। यह अगस्त के अन्त तक चुनी जाती है। मध्य प्रदेश में वर्षा आरम्भ होते ही फसल बो दी जाती है और नवम्बर से मार्च तक चुनाई होती रहती है। मद्रास मे दो फसले बोई जाती है। एक दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पर निर्भर रहती है वह मई से जुलाई तक बोई जाती है और दूसरी उत्तरी पूर्वी मानसून पर जो सितम्बर से नवम्बर तक बोई जाती है। तिरूनलवैली में दोनों फसलें एक ही मौसम में बोई जाती है। प्रायद्वीप के बाहर कपास की खेती सिंचाई के सहारे मार्च से अगस्त तक की जाती है। पजाब में कपास की बुवाई अप्रेल में होती है और चुनाई अक्टूबर में आरम्भ हो जाती है। जहाँ उत्तरी भारत में कपास का पौधा ६ महीने में तैयार होता है वहाँ दक्षिणी भारत में इसके उगने में ८ महीने लगते है।

भारत में तीन जाति की कपास पैदा की जाती है :—

प्रथम जाति की कपास (Gossypium Arboreum) भारत की ही उपज मानी जाती है। इस जाति की कपास खुरदरी और छोटे रेशेवाली होती है यद्यपि कुछ मध्यम रेशेवाली भी होती है। इसका उत्पादन देश के सभी कपास उत्पादक राज्यों में किया जाता है।

दूसरे जाति की कपास (Gossypium Herbaceum) भारत में मध्य पूर्व के देशों से लाकर लगाई गई है। यह कपास प्रथम जाति की अपेक्षा अधिक अच्छी

और लम्बी होती है। इसके उत्पादक क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास, आंध्र प्रदेश और मैसूर हैं।

तीसरे जाति की कपास (Gossypium Hirsutum) भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल मे बोई जाने लगी। इसका धागा मध्यम से लम्बा तक और उत्तम श्रेणी का होता है। इस प्रकार की कपास का उत्पादन पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान के बीकानेर डिवीजन, मध्य प्रदेश के कुछ भागों में, आंध्र, मैसूर और महाराष्ट्र तथा मद्रास में होता है।

व्यापारिक दृष्टिकोण से भारत में मुख्यतः १८ किस्मों की कपास पैदा की जाती है। इनकी अच्छाई या बुराई, उनकी मजबूती, धागे, सूक्ष्मता, रंग, चमक और ओटाई की प्रतिशतता पर निर्भर करती है। ये किस्में इस प्रकार हैं:—

(१) **बंगाल की कपास** (Bengal Cotton)—छोटे रेशे वाली होती है। इसके मुख्य क्षेत्र राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब और दिल्ली राज्य हैं। यह कपास भारत के प्रायः सभी भागों में होता है। इसका धागा १७/३२″ होता है।

(२) **अमेरिकन कपास** (American Cotton)—भारत में केवल महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा मद्रास में ही पैदा की जाती है। यह लम्बे रेशे वाली (१″ से अधिक) उम्दा किस्म की कपास होती है।

(३) **धौलेरा** (Dholleras)—कपास मुख्यतः उत्तरी गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ और पश्चिमी भारत में उत्पन्न की जाती है। इसके रेशे की लम्बाई ९/१६″ से ३१/३२″ तक होती है।

(४) **उमरा** (Oamras)—कपास विशेषतः मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के खानदेश, विदर्भ और औरंगाबाद डिवीजनों में उत्पन्न होती है। इसका धागा भी बहुत छोटा होता है।

(५) **भड़ौंच कपास** (Broach)—की खेती गुजरात राज्य के भड़ौंच, खैरा, पंचमहल, साबरकांटा और बड़ौदा में की जाती है। इसका रेशा भी छोटा होता है।

(६) **सूरती कपास**—भड़ौंच की ही एक उपजाति है। यह मुख्यतः सूरत और भड़ौच जिलों में बोई जाती है।

(७) **कम्पटा** (Kumpta)—कपास दक्षिण में मैसूर, आंध्र, उत्तरी-पूर्वी मद्रास तथा मध्य महाराष्ट्र राज्य में उत्पन्न होने वाली छोटे रेशे वाली कपास है जिसका रेशा ११/१६″ से २७/३२″ तक होता है।

(८) **जयवन्त** (Jaywant)—नाम के नए बीज द्वारा इसमें उन्नति की गई है।

(९) **कम्बोडिया** (Kambodias)—कपास दक्षिणी मद्रास में अधिक उत्पन्न की जाती है। यह तीन प्रकार की होती है—लम्बे रेशे वाली, मध्यम रेशे वाली और छोटे रेशे वाली। यह उत्तम किस्म की होती है। इसकी खेती कोयम्बटूर, तिरूनलवैली, मदुराई और रामनाथापुरम जिले में की जाती है।

(१०) **कोम्मिला** (Comillas)—छोटे रेशे वाली कपास होती है जो आसाम तथा त्रिपुरा के पहाडी भागों में पैदा की जाती है।

(११) **दक्षिणी कपास** (Southerns) —मैसूर और आँध्र प्रदेश में पैदा की जाती है।

(१२) **तिरूनलवैली** (Tirunelvellis)—कपास मद्रास राज्य के कोयम्बटूर मदुराई, रामनाथापुरम और तिरूनलवैली जिलों में पैदा की जाती है।

(१३) **मद्रास यूगंण्डा** (Madras Yuganda)—यह कपास भी मुख्यतः मद्रास राज्य में ही पैदा की जाती है। मदुराई, सलेम, रामनाथापुरम, कोयम्बटूर तिरूनलवैली, चिंगलपुट और दक्षिणी अर्काट जिले इसके मुख्य उत्पादक जिले है।

(१४) **सलेम** (Salems)—कपास मद्रास के तिरूचिरापल्ली और कोयम्बटूर जिलों में पैदा की जाती है।

नीचे की तालिका में विभिन्न किस्मों का कपास का उत्पादन क्षेत्र और उत्पादन बताया गया है :—

विभिन्न किस्मों की कपास का उत्पादन (१९६१-६२ और १९६२-६३ में)

किस्में	क्षेत्रफल (००० एकड)		उत्पादन (३९२ पौंड वाली ००० गाठों में)	
	(१९६१-६२)	(१९६२-६३)	(१९६१-६२)	(६२-६३)
बंगाल	१३३९	१२६५	६७६	६३४
अमेरीकन	५२५३	५६६१	१३९४	१६४२
समुद्री कपास	१०	५	४	१
विरनार	२९४५	३५३५	४७८	७३०
एच-४२०	१४८	४४	१३	९
ऊमरा	७०२	८२३	८५	१२५
हैदराबाद-गारोनी	१०३७	७१४	१२८	१२४
मालवी	१०२०	१०१८	९७	१५२
भड़ौंच-विजय	११८६	१३६४	४३९	६८२
सूरती-विजलपा	६३०	५८६	११९	२४३
धोलेरा	१९१२	१९१२	६०३	४९३
दक्षिणी कपास	२३७३	२३५४	४४०	४१३
कोमिला	५१	५८	१३	१५
विदर्भ प्रदेश की देशी कपास	१०४	३५९	११	४८
योग	१८७१०	१९७०१	४५००	५३१२

पिछले कई वर्षो से भारत में दो किस्मों को मिलाकर नई और अच्छी किस्म तैयार करने की ओर प्रयास किये गये हैं। इसमें काफी सीमा तक सफलता मिली है। भारतीय केन्द्रीय कपास समिति इस ओर काफी प्रयत्नशील रही है और इसने जिन नई किस्मों को निकाला है उनमें मुख्य ये है :—

किस्म	धागे की लम्बाई (इंचों में)	ओटाई का प्रतिशत	क्षेत्र जिनमें उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है ।
कल्याण	३६/३२ से २७/३२	४० से ४३	गुजरात के महसाना और अहमदाबाद
विजय	२६/३२ से २८/३२	३७ से ४०	जिले, नर्मदा के उत्तर में भड़ौंच, खैरा, साबरकाँटा और पंचमहल जिले ।
विजलपा	२९/३२	३६·५	महाराष्ट्र के पश्चिमी खानदेश जिले में नवापुर तालुक तथा सूरत क्षेत्र ।
विरनार	२८/३२	३८ से ४१	महाराष्ट्र के खानदेश और बुल्दाना जिला,
जरीला	२६/३२	३५ से ३६	मध्यप्रदेश तथा विदर्भ और औरङ्गाबाद जिला ।
जयधर	२८/३२ से २९/६२	३३ से ३४	मैसूर के कम्पटा धारवाड़ क्षेत्र, रायचूर और चितलद्रुग जिले ।
लक्ष्मी	२९/३२ से ३०/३२	३४ से ३५	मैसूर के धारवाड़, बलारी, चितलद्रुग, रायचूर और शिमोगा जिले एवं आंध्र प्रदेश ।
प्रताप	२६/३२	३२ से ३३	गुजरात के गोहिलवाड़, अहमदाबाद और अमरेली जिला ।
Co-2	३०/३२	३४ से ३५	मद्रास के कोयबम्टूर, सलेम, मदुराई, तिरुचिरापल्ली, रामनाथापुरम और तिरुनलवैली जिले ।
पश्चिमी १.	२४/३२ से २६/३२	३०	आंध्र के कड़प्पा, अनन्तपुर और कर्नूल जिले तथा मद्रास का बलारी जिला ।
C-I और C-2	२२/३२ से २६/३२	२८ से ३०	आंध्र के गंतूर एवं निकटवर्ती जिलों में,
२१६-F-	२८/३२ से ३०/३२	३२ से ३३	पंजाब के हिसार, रोहतक कर्नाल, गुडगाँव, पटियाला, सगरूर और भटिंडा जिले, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान के गंगा नहर जिले और मद्रास के तंजौर डेल्टा में ।
३२०-F	२८ ३२	३३ से ३४	पंजाब के फिरोजपुर, जलंधर, अमृतसर, लुधियाना जिले तथा राजस्थान के गंगानगर जिले में ।
H ४२०	२८/२३	३२ से ३३	मध्यप्रदेश के निमाड़ और महाराष्ट्र के विदर्भ डिवीजन में ।
गारोनी-६	२८/३२ से २०/३२	३१ से ३२	महाराष्ट्र के नांदेड एवं प्रभानी जिले, आँध्र के आदिलाबाद और मैसूर का बीदर जिला ।

३५/१	१२/३२ से २६/३२	३४ से ३५	पश्चिमी और मध्य उत्तर प्रदेश ।
एम. ए. वी.	१ ९/६	,,	मैसूर के हसन, मैसूर, शिमोगा, चितलद्रुग, बलारी और चिकमगलूर जिलों में
मालवी ६	२२/३२ से २४/३२	,,	मध्यप्रदेश के मालवा पठार पर
इंदौर-१	२४/३२ से २६/३२	३१ से ३२	राजस्थान के उदयपुर डिवीजन में
C-५२०	३/४	३५ से ३६	राजस्थान के अजमेर डिवीजन में

भारत में कपास का प्रति एकड़ उत्पादन (१९५८-५९ में) १०१ पौंड तक है। पाकिस्तान में प्रति एकड पीछे १८४ पौंड ; चीन में ३८० पौंड ; पीरू में ४१२ पौंड; मिस्र में ४७९ पौंड; संयुक्त राज्य अमरीका में ४६६ पौंड; मैक्सिको में ४४९ पौड और रूस में ६१२ पौंड है। इन देशों की तुलना में भारत में प्रति एकड़ उत्पादन कम का मुख्य कारण उत्तम बीज का अभाव, फसलों का हेर-फेर न करना, सिंचाई की अपर्याप्त सुविधायें और कपास के क्षेत्र का काली मिट्टी के प्रदेश में केन्द्रित होना आदि हैं।

उत्पादक क्षेत्र

कपास के उत्पादन की दृष्टि से दक्षिण की काली मिट्टी का प्रदेश बड़ा महत्वपूर्ण है। गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश मिल कर देश के उत्पादन का लगभग ५०% कपास उत्पन्न करते हैं। अन्य मुख्य उत्पादक मद्रास, आंध्र, पजाब, राजस्थान आदि हैं।

कपास के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० गांठों में)	
	१९६१–६२	१९६२–६३	१९६१–६२	१९६३
आन्ध्र प्रदेश	८१६	९१५	१२८	१४३
आसाम	३३	४०	५	७
गुजरात	४०३३	४२३८	१२५४	१५६९
केरल	२४	१९	१०	८
मध्य प्रदेश	१९५७	२०६३	१९२	३४२
मद्रास	९९५	१००५	३८६	४०२
महाराष्ट्र	६२२६	६६९४	९१३	१२५५
मैसूर	२३४७	२५६७	४४१	४३०
पंजाब	१४५९	१४४७	९४४	९२१
राजस्थान	५८४	४७८	१६८	१६०
उत्तर प्रदेश	१८८	१८९	४५	६१
भारत का योग	१८७१०	१९७०१	४५१२	५३१२

१९६३-६४ में १९,५६९ हजार एकड़ भूमि पर कपास बोया गया। इसका उत्पादन ५,४९३ हजार गांठें था।

(१) **पंजाब** में कपास का उत्पादन अमृतसर, जालंधर, लुधियाना, पटियाला, रोहतक, हिसार, संगरूर, कर्नाल, भटिंडा और गुड़गाँव जिलों में होता है।

(२) **गुजरात** में अधिक वर्षा के कारण डामन से दक्षिण की ओर समुद्र तट पर कपास नहीं होती। यहाँ केवल उत्तरी भाग में ही भड़ौंच, खेडा, गोहिलवाड़, साबरकाँटा, पंचमहल, बड़ौदा और सूरत में ही कपास पैदा की जाती है। **महाराष्ट्र** में बीजापुर, सांगली, प्रभानी, खानदेश, नासिक, अहमदनगर, बुलढ़ाना, आकोला, अमरावती, यदतमाल, वर्धा और सांगली जिलों में कपास पैदा की जाती है।

(३) **मध्य प्रदेश** में नीमाड़, इंदौर, ग्वालियर और रायपुर जिले मुख्य हैं।

(४) **मद्रास** मे विशेपकर तिरूनलवैली, रामनाथापुरम, तंजौर, सलेम, मदुराई और कोयम्बटूर जिलों में कपास पैदा की जाती है।

(५) **आंध्र प्रदेश** में गंतूर, कडुप्पा, कर्नूल, अन्तपुर जिलों में; तथा **मैसूर** में हसन, चिकमगलूर, शिमोगा, चितलद्रुग, बलारी, बीदर, धारबाड़, रायचूर जिलों में कपास पैदा किया जाता है।
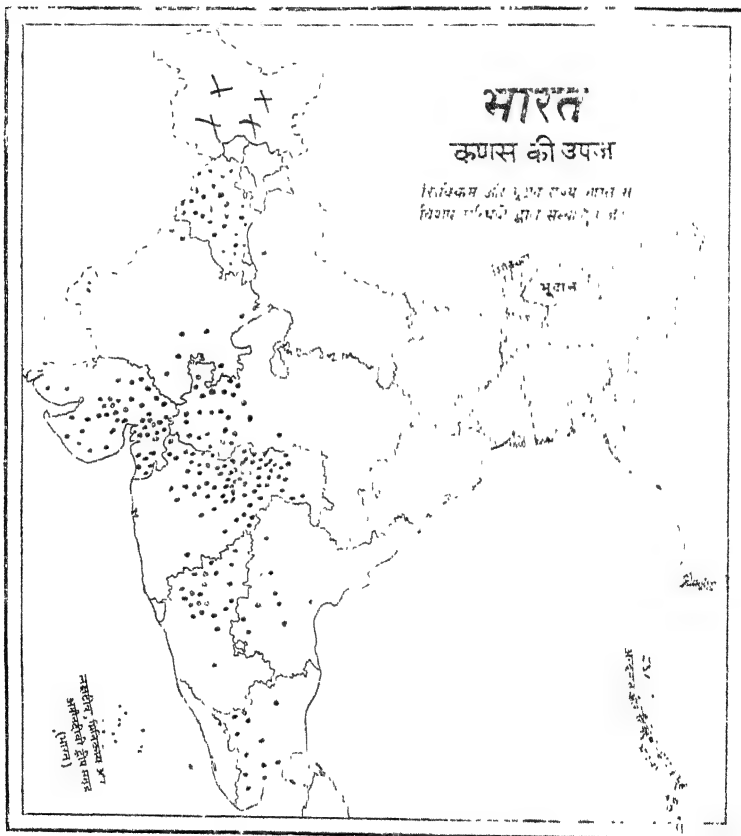
चित्र १५७. भारत में कपास की उपज

रेशों की लम्बाई के अनुसार कपास का उत्पादन १९६१–६२ और १९६२-६३ में इस प्रकार था—

किस्म	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (३९२ पौंड की हजार गांठों में)	
	(६१-६२)	(६२-६३)	(६१-६२)	(६२-६३)
छोटे रेशे वाली	२,४२२	२,६६१	८४३	८५४
मध्यम रेशे वाली	८,५४२	९,९९३	१,७८४	२,२२०
बड़े रेशे वाली	७,७४६	८,०४७	१,७७३	२,२३८
योग	१८,७१०	१९,७०१	४,५००	५,३१२

व्यापार—भारत के विभाजन के पूर्व कपास पैदा करने मे भारत का स्थान दूसरा था और यहाँ से काफी मात्रा में कपास का निर्यात किया जाता था किन्तु विभाजन के पश्चात् से भारत कपास का मुख्य आयातक बन गया है क्योंकि प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र पाकिस्तान को चले गये। फिर भी भारत की छोटे रेशेवाली खुरदरी कपास की माग संयुक्त राज्य अमरीका और जापान मे होती है जहाँ ऊन के साथ मिला कर मोटे कम्बल और मोटे वस्त्र बनाये जाते हैं। थोड़ी मात्रा में रुई का निर्यात इङ्गलैड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, हालैड, न्यूजीलैड और आस्ट्रेलिया को भी किया जाता है। लम्बे रेशे वाली रुई का आयात भारत में पाकिस्तान, मिश्र, संयुक्त राज्य अमरीका आदि देशों से किया जाता है। तृतीय योजना में कपास का उत्पादन ५१ लाख गाठों से बढ़ कर ७० लाख गांठें होगा अर्थात् उत्पादन मे ३७% की वृद्धि होगी। इन योजना काल में मैसूर, केरल, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों में वर्णशंकर तथा समुद्री कपास का क्षेत्रफल २० हजार एकड़ से बढ़ा कर ३ लाख एकड़ किया जायेगा।

जूट (Jute)

विश्व में जूट उत्पन्न करने वाले देशों में अविभाजित भारत का स्थान सबसे आगे था किन्तु विभाजन के फलस्वरूप इस परिस्थिति में अन्तर पड़ गया। जूट पैदा करने वाले पाबना, बोगरा, माइमैनसिह, ढाका और फरीदपुर जिले पाकिस्तान को चले गये। अब विश्व के उत्पादन का ३८ प्रतिशत भारत और ५२ प्रतिशत पाकिस्तान से प्राप्त होता है।

जूट की खेती के लिए अधिक जल और तापक्रम की आवश्यकता होती है। साधारणतः तापक्रम २५° से ३५° सें० ग्रेड तक का उपयुक्त रहता है। अकुर निकलने के दो या तीन महीने बाद पौधे को अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है अतः इसकी खेती १०० से २०० सैंटीमीटर या उससे भी अधिक वर्षा वाले भागों मे होती है। जूट की खेती से भूमि बहुत जल्दी ही कमजोर हो जाती है। इस कारण जूट की खेती उन्हीं स्थानों में की जाती है जहाँ हर साल नदियाँ उपजाऊ मिट्टी लाकर बिछा देती हैं। बंगाल के डेल्टा मे प्रतिवर्ष करोड़ों टन मिट्टी बाढ के समय भूमि पर फैल जाती है। इसी मे अधिक जूट पैदा किया जाता है। सर्वोत्कृष्ट जूट दुमट मिट्टियों में होता है। कांप मिट्टी में भी यह पैदा किया जाता है किन्तु उसमें एकरूपता नहीं रहती।
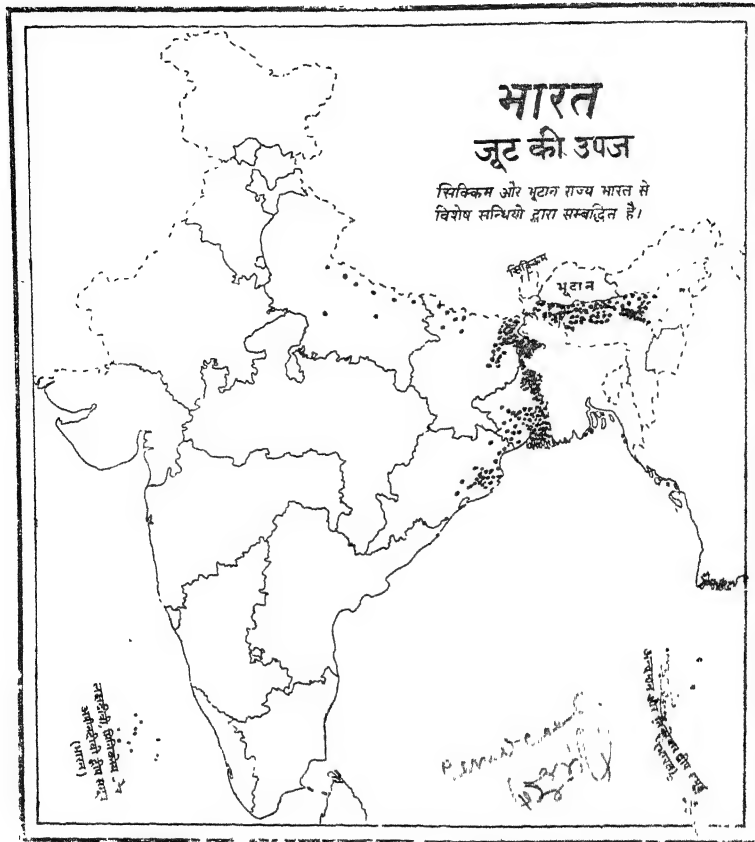
चित्र १५८. भारत में जूट की उपज

जूट के पौधे से रेशा प्राप्त करने के लिये उसको कई सप्ताह तक पानी में भिगो कर रखना पड़ता है अतः उत्तम और मीठे पानी की भी आवश्यकता होती है। जूट के डंटल को खेत से काट कर तालाब और झील के स्थिर जल में गाड़ दिया जाता है। जब वह २०-२५ दिन तक सड चुकता है तो उसे पीट पीट कर धोया जाता है और फिर डंठल को सुखा कर उससे रेशे को अलग कर लेते है।

जूट के लिये सस्ते मजदूरों की भी आवश्यकता होती है क्योंकि तैयार पौधों को काटने तथा बंडल बनाने के लिये अधिक मजदूर चाहिए।

जूट की पैदावार पश्चिमी बंगाल, आसाम आदि राज्यों तक ही सीमित है, क्योंकि यहाँ गंगा द्वारा लाई हुई उपजाऊ मिट्टी मिलती है और बाढ़ के साथ बदलते रहने से इसकी उपजाऊ शक्ति का ह्रास नहीं होता। बिना खाद दिये इन राज्यों में जूट की खेती की जाती है।

जूट का पौधा साधारणतः ३ से ३½ मीटर ऊँचा होता है। इसकी खेती उस उभरी हुई भूमि पर होती है जो नदियों के पुराने या नये कगारों के कारण बन

जाती है। गर्तो में धान और जूट को बारी बारी से बोते हैं। जूट मार्च से मई तक बोया जाता है और जुलाई से सितम्बर तक काट लिया जाता है। पश्चिमी बंगाल में भूमि के ऊँचे-नीचे होने पर ही जूट के बोने का समय निर्भर रहता है। निम्न भूमियों में बाढ़ें आती हैं अतः वहाँ उच्च भूमियों की अपेक्षा जल्दी ही बोआई कर दी जाती है। निम्न भूमियों पर फरवरी से मार्च तक तथा उच्च भूमियों पर मार्च से जून तक जूट की बोआई की जाती है। जो फसल सबसे पहले बोई जाती है उसी को पहले काटा जाता है।

भारत में दो प्रकार की जूट पैदा की जाती है। चीनी जूट (Chinese Jute) नदियों के उभरे हुए किनारों (Chars) या नदी के द्वीपों मे बोया जाता है। देशी जूट (Indian Jute) मुख्य रूप से नीची भूमियों (Bils) में बोया जाता है। भारत के अनेक भागों में ये दोनों प्रकार के जूट साथ-साथ उगते हैं। प्रथम प्रकार का जूट सफेदी लिए और चमकीला तथा अच्छा होता है।

उत्पादक क्षेत्र

जूट के क्षेत्र मुख्यतः पश्चिमी बंगाल, आसाम और बिहार में है। ये तीनों राज्य मिल कर कुल जूट क्षेत्रफल के ६० प्रतिशत पर जूट बोते है। जूट की खेती दक्षिण की ओर गंगा के मुहाने के पास कम होती है क्योंकि यहाँ भूमि इतनी नीची है कि जूट के लिए अनउपयुक्त है। पश्चिम में दक्षिण के पठार की ओर भी, जहाँ पथरीली भूमि अधिक है, जूट की खेती कम होती है।

नीचे की तालिका में जूट का क्षेत्र और उत्पादन बताया गया है :—

जूट के अंतर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन (१९६३-६४)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० पौंड की गांठें)
(१) आसाम (कछार, धरांग, गोलपाड़ा, कामरूप, लखीमपुर, नवगांव सिवसागर, गारो पहाड़ियाँ, खासी और जयन्तिया पहाड़ियाँ, मिकिर और उत्तरी कछार पहाड़ियाँ)	३३४	१,०२०
(२) बिहार (चम्पारन, दरभगा मुज्जफरपुर, पूर्णियां, सारन, भागलपुर मुंघेर, संथाल परगना)	४८२	९४२
(३) उड़ीसा (बोलकगिर, पटना, धेनकनाल, गंजाम, कालाहांडी, क्योंनझार कोरापुट, बालासोर, कटक, पुरी आदि)	१३५	४६७
(४) उत्तर प्रदेश (बहराइच, देवरिया, गोंडा, सीतापुर, खेरी आदि)	४८	१४०
(५) प० बंगाल (कूचबिहार, दार्जिलिंग, जलपाईगुडी, बांकुडा, बर्दवान, हुगली, हावड़ा, माल्दा, मिदनापुर, मुर्शिदाबाद, पश्चिमी दिनाजपुर, २४—परगना, इस्लामपुर)	१,१०२	३,२७०
(६) त्रिपुरा	२९	७१
योग	२,१३०	५९१०

व्यावसायिक रूप से भारत में जूट की दो किस्मों की खेती की जाती है : **कारकोरस कैपसूलिरस** (Corchorus Capsularils) तथा **कारकोरस ओलिटोरियस** (Corchorus Olitorius)। इनका उत्पादन वितरण इस प्रकार है :—

राज्य	कैपसूलिरस	ओलिटोरियस
प० बंगाल	७५	४५
बिहार	७०	३०
आसाम	७५	२५
उड़ीसा	७५	२५
उत्तर प्रदेश	९९	१
त्रिपुरा	९८	२

पहले किस्म का जूट अत्यन्त उत्तम किस्म का होता है और साधारण जूट से ११% अधिक उत्पादन देता है।

दूसरे किस्म का जूट भी अधिक उत्पादन देता है।

उत्तर प्रदेश की शारदा, सरयू और चौका नदी की तराई में भी अब १५,००० एकड़ भूमि पर जूट का उत्पादन प्रारम्भ किया जा रहा है जहाँ से उत्तर प्रदेश की लगभग तीनों मिलों को कच्चा माल प्राप्त होता है। कृषि अनुसंधानशाला ने जूट के पौधे को क्यारियों में लगाकर नवीन पद्धति से जूट की खेती करने की प्रणाली की खोज की है जिसके अनुसार क्यारियाँ लगभग एक फीट की दूरी पर रहेंगी और पौधे ३" या ४" के अन्तर पर पक्ति मे लगाये जायेंगे। इससे निराई और गोड़ाई थोड़े श्रम में हो जायेगी। इस प्रकार की कृषि से प्रति एकड़ उत्पादन निःसदेह बढ़ेगा।

तीसरी योजना में उत्पादन में ५५ प्रतिशत की वृद्धि होने की आशा है अर्थात् यह ४० लाख गांठों मे बढ़ कर ६२ लाख गांठें हो जायगा।

जूट और मैस्टा का उत्पादन इस प्रकार है :—

	जूट		मैस्टा		दोनों का योग	
वर्ष	क्षेत्र (००० है०)	उत्पादन (००० गांठें)	क्षेत्र (००० है०)	उत्पादन (००० गांठें)	क्षेत्र (००० है०)	उत्पादन (००० गांठें)
१९५६-५७	७२२	४२८९	२९७	१४७८	१०१९	५७६७
१९५७-५८	७०५	४०५२	३०९	१२९१	१०१४	५३४३
१९५८-५९	७३३	५१५८	३३४	१४८८	१०६७	६६४६
१९५९-६०	६८२	४६०५	२८५	१११८	९६७	५७२३
१९६०-६१	६१९	४०३०	२८१	११४७	९००	५१७७
१९६२-६३	८५१	५४०६	२८०	१६८४	११३१	७०९०
१९६३-६४	८६२	५९१०	२८५	१८०५	११४७	७७२५

विभाजन के बाद से भारत में कच्चे जूट का अभाव हो गया है। यह अभाव पाकिस्तान से जूट का आयात करके पूरा किया जाता है।

मैस्टा (Mesta)

भारत में जूट की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जूट के समान ही रेशा पैदा करने वाले पौधे मैस्टा का उत्पादन बढ़ाया गया है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में इसे कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे महाराष्ट्र और मेवाड़ में **अम्बाड़ी**, आँध्र में **बिमली**, बिहार में **चन्ना**, बम्बई मे **बम्बई पटुआ** आदि। भारत के बाहर इसे कैनाफ, रोजेला आदि कहते है।

मैस्टा का उत्पादन ऐसी भूमि पर किया जाता है जो पूर्णतः जूट की पैदावार के उपयुक्त नही है। यह सूखे भागों में भी पैदा किया जा सकता है। इसका पौधा ८ से १२ फीट तक ऊँचा होता है और बोने के १०० से १८० दिन बाद काटने लायक हो जाता है। आँध्र, बिहार, उड़ीसा और बगाल में यह अकेला ही बोया जाता है किन्तु अन्य राज्यों में इसे रागी, मोटे अनाज, दालें, चावल और कपास के साथ भी बोया जाता है। इसके लिए जूट जैसी जलवायु चाहिए। पौधे से रेशा प्राप्त करने के लिये इसे कई दिनों तक जल में सड़ाया जाता है।

मैस्टा का उत्पादन आंध्र और बगाल में अधिक होता है। ये दोनों राज्य मिलकर कुल उत्पादन का लगभग ७६% पैदा करते हैं। अन्य उत्पादक राज्य आसाम, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा और पंजाब हैं। १९६०-६१ में ११½ लाख गांठे पैदा हुई और १९६२-६३ में १५ लाख गांठें। मैस्टा के अन्तर्गत क्षेत्रफल इन वर्षो में इस प्रकार था : ८ लाख तथा ७·८ लाख एकड़।

सन या सनई (Flex)

सनई एक रेशेदार पौधा होता है जिसके रेशे सफेद और चमकीले होते हैं। सन प्राप्त करने के लिए इसके पौधे को भी सड़ा कर धोया जाता है। इसके लिए उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं होती। इसकी विशेषता यह है कि जहाँ जूट पैदा नहीं होता वहाँ यह उत्पन्न हो सकता है। साधारणतः इसके लिये ५० सेंटीमीटर तक की वर्षा और १५° से २५° सेंटीग्रेड तक का तापक्रम चाहिए।

भारत में उत्पन्न होने वाली सनई उत्तम प्रकार की नहीं होती क्योंकि भारतीय सनई का बीज अच्छा नहीं होता। उत्तम प्रकार का सन एवं बीज एक ही पौधे से नहीं प्राप्त होता है। भारत मे सनई के बीजों की तरफ अधिक ध्यान दिया जाता है, रेशे की तरफ कम। क्योंकि यहाँ की जलवायु गरम है। गरम जलवायु में यदि इसे रेशे के लिए पैदा किया जाय तो इसका धागा निकम्मा रहता है।

भारत में प्रतिवर्ष लगभग १ लाख २० हजार टन सनई पैदा होती है। हमारे यहाँ इसके रेशे से मोटे रस्से, रस्सियाँ, डोरी, मछली पकड़ने के जाल, चटाई और बोरियाँ आदि बनाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त भारत इसे इङ्गलैंड, अमेरिका, फ्रांस और इटली आदि देशों को भी भेजता है। सनई का रेशा तीन तरह का होता है—**सफेद, गंजाम** या **हरा** और **देवगढ़ी**। सबसे अधिक उपज सफेद रेशे वाली सनई की होती

है। कुल उपज का लगभग २६ प्रतिशत भाग सफेद रेशे वाली सनई का होती है। सफेद सनई व्यापार की दृष्टि से चार श्रेणियों की होती है—बनारस, छपरा, बंगाल और गोपालपुर। मुख्यतः यह बिहार, प० बंगाल, उत्तर प्रदेश के पूर्वी और मध्य जिलों तथा उड़ीसा के कुछ भागों में उगाई जाती है। इससे लगभग ५० प्रतिशत बनारसी किस्म की होती है। **गंजाम** या **हरी** किस्म की सनई मुख्यतः मध्यप्रदेश, पंजाब उत्तर प्रदेश के पीलीभीत और मुरादाबाद जिलों तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों तथा उड़ीसा और मैसूर राज्यों में उगाई जाती है। इस किस्म की उपज कुल उपज का ४३ प्रतिशत **देवगढ़ी** किस्म महाराष्ट्र राज्य के केवल रत्नागिरी जिले में उगाई जाती है। इसकी उपज कुल उपज की केवल एक प्रतिशत होती है।

भारत सनई का सबसे अधिक निर्यात इङ्गलैंड को करता है। इसके अतिरिक्त अमेरिका, फ्रांस और इटली भारत से सनई खरीदते हैं।

पटुआ या हैम्प (Sann-Hemp)

भारत मे इसकी तीन किस्में होती है—सीसल हेम्प, सन हेम्प और भारतीय हेम्प। इनमें सबसे अच्छी सन हेम्प होती है। यह महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर-प्रदेश तथा आंध्र में गोदावरी और कृष्णा जिले तथा मद्रास में तिरुनलवेली जिलों में होता है। इसका अधिकतर भाग संयुक्त-राज्य, बेल्जियम, इटली, फ्रांस और जर्मनी को निर्यात कर दिया जाता है।

यह भारत में अधिकतर भाँग, गांजा और चरस के रूप में काम में लाई जाती है। रेशों के लिये इसका उपयोग भारत में कम होता है। रेशों के लिये इसकी पैदावार दक्षिण-पश्चिमी हिमालय के भागों में (नैपाल, शिमला, काश्मीर, कुमायूँ और काँगड़ा) होती है। सिसल हैम्प का अभी तक व्यवसायिक उपयोग कम हुआ है। यह सिलहट (आसाम), तिरहुत (बिहार), महाराष्ट्र और दक्षिणी भारत में उगाई जाती है।

इसके अन्तर्गत और क्षेत्रफल इस प्रकार था :—

१९६१-६२	५०४ हजार एकड़	७७ हजार टन
१९६२-६३	४८२ हजार एकड़	७७ हजार टन
१९६३-६४	५२८ हजार एकड़	८५ हजार टन

मूँज

मूँज सरपत को कूट कर रेशे निकालने से बनता है। मूँज रस्सी और अन्य घरेलू वस्तुओं के बनाने में काम आता है। सरपत से किसान अपनी झोंपड़ी के लिए छाजन बनाता है। सरपत नदी-नालों की नीची भूमि में होता है। इसका बीज नहीं बोया जाता। कृषक अपने खेत की मेंड पर एक बार इसकी जड़ को लगा देता है; पानी बरसने पर यह स्वतः उगती रहती है।

अध्याय २५

फलोत्पादन

(HORTICULTURE)

भारत में अनेक प्रकार की भूमि तथा जलवायु मिलने के कारण यहाँ न केवल उष्ण कटिबंधीय फल ही पैदा किये जाते हैं वरन् शीतोष्ण कटिबंधीय फलों का उत्पादन भी काफी मात्रा में किया जाता है। फलों के अन्तर्गत लगभग ३० लाख एकड़ भूमि और सब्जियों के अन्तर्गत ३० लाख एकड भूमि काम में लाई जाती है। इससे ६० लाख टन सब्जियों का और ८० लाख टन फलों की प्राप्ति होती है।[1] कुछ प्रमुख फलों का उत्पादन इस प्रकार है: आम ४ लाख टन; केला २४ लाख टन; संतरा एवं अन्य रसदार फल ५ लाख टन; अमरूद ३ लाख टन; लीची १ $\frac{1}{६}$ लाख टन, अनार १ लाख टन; अनन्नास १ लाख टन, चीकू १ लाख टन; अंगूर ५०,००० टन और विविध फल ३ लाख टन।[2] प्रति व्यक्ति पीछे फलों और सब्जियों का दैनिक उपयोग क्रमशः १·५ औंस और १·३ औंस होता है जबकि स्वास्थ्य की दृष्टि से इनका उपभोग क्रमशः ३ औंस और १० औंस का होना अनिवार्य है। स्पष्ट है कि इनका उत्पादन देश की मांग के अनुरूप नहीं है।

फलों के उत्पादन के लिए उपजाऊ भूमि और गर्म-तर जलवायु की आवश्यकता पड़ती है। भारत के कुछ भाग फलों के उत्पादन के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। पंजाब की कूलू और कांगड़ा की घाटियाँ, काश्मीर और श्रीनगर की घाटी, आसाम के पहाड़ी भाग, मद्रास की नीलगिरि और अनामालय की पहाड़ियाँ और महाराष्ट्र के कोंकन तट फलो के मुख्य उत्पादक प्रदेश हैं। मोटे तौर पर उत्तरी भारत में शीतोष्ण कटिबन्ध के फल—नारंगी, अंगूर, सेब, नाशपाती, बेर, अनार आदि खूब पैदा किये जाते हैं। सभी भागों मे लम्बी सर्दी की ऋतु, साधारण वर्षा और ढलुआँ भूमि पाये जाने के कारण फलों का उत्पादन विशेष रूप से किया जाता है। दक्षिणी भारत में मुख्यतः उष्ण कटिबंधीय फल—केले, आम, अनन्नास आदि पैदा किये जाते हैं।

फल उत्पादक प्रदेश

फलों के उत्पादन की दृष्टि से भारत के निम्न भाग किये जा सकते हैं:—

(१) हिमालय के शीतोष्ण प्रदेश (Himalayan Temperate Region)

इस प्रदेश के अन्तर्गत हिमालय प्रदेश, पंजाब, कुमायूँ की पहाड़ियाँ, कूलू, काँगड़ा और श्रीनगर की घाटियाँ सम्मिलित किये जाते हैं। यहाँ वर्षा फलों के उत्पादन के लिये पर्याप्त मात्रा में हो जाती है किन्तु निचले ढालों पर ग्रीष्म ऋतु

१. Third Five Year Plan, p. 320.
२. उद्योग व्यापार पत्रिका नवम्बर १९६३, पृ० ४३२-४३३.

में सिंचाई की जाती है। इन प्रदेशों में पैदा किये जाने वाले अधिकांश फल इंगलैंड, संयुक्त राज्य अमरीका आदि देशों मे लाकर लगाये गये हैं। खेतों के किनारों पर तथा बीच में अनेक प्रकार के फल पैदा किये जाते हैं विशेषतः दाखें, सेव, नाशपाती, चैरी, शफ्तालू, बेर, अंगूर आदि। उष्ण शीतोष्ण कटिबंधीय दशाओं के अन्तर्गत १,०३६ से १,२२० मीटर की ऊँचाई तक कठोर फल (Stone fruits)—शफ्तालू, अखरोट, बेर, पिस्ते और एप्रीकॉट तथा मुलायम फल (Pome fruits)—सेव, नासपाती तथा अंगूर पैदा किये जाते है और अधिक ऊँचाई पर लुकाट तथा नीबू आदि पैदा किये जाते है।

(२) उत्तरी शुष्क प्रदेश (Northern Dry Region)

इस प्रदेश में पंजाब के मैदानी भाग, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले तथा राजस्थान और मध्य प्रदेश के पश्चिमी जिले सम्मिलित किये जाते है। पहाडी भागों में ३५७ मीटर से ६१० मीटर की ऊँचाई तक बड़ी कठोर ठण्ड पड़ती है किन्तु सम्पूर्ण प्रदेश मे फलों के उत्पादन के लिए तापक्रम बड़े अनुकूल रहते हैं। वर्षा का औसत ५० से ६२ सैटीमीटर तक रहता है। मरुस्थलीय भागों मे सिंचाई भी की जाती है। जलवायु सबधी दशाओ की विभिन्नता के कारण यहाँ अर्द्ध-उष्ण कटिबन्ध के सभी फल पैदा किये जाते है। रसदार फल, खजूर, अजीर, अमरूद, अंगूर, लुकाट, लीची, आम, जैतून, पपीता, फालसा, अनार, नासपाती, शफ्तालू, बादाम, बेर, फालसा आदि खूब पैदा किये जाते हैं। इनमें से अधिकांश फल पंजाब, हिमालय प्रदेश और उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भागों मे पैदा किये जाते हैं। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर और देहरादून जिलों मे बेर, लुकाट, रसदार फल, लीची, आम, फाल्सा, पपीता, कला अमरूद आदि अधिक पैदा किये जाते हैं। पजाब के हिसार और फिरोजपुर जिलों तथा उत्तरी राजस्थान में अंगूर पैदा होते हैं। पश्चिमी राजस्थान में अरबी खजूर पैदा होता है। केले दिल्ली के दक्षिणी भाग में तथा नारंगियाँ (माल्टा) पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तरी राजस्थान में और संतरे मध्य प्रदेश मे अधिक पैदा किये जाते हैं।

(३) पूर्वोत्तर प्रदेश (Eastern Wet Region)

आसाम के दक्षिणी भाग, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तर-पूर्वी आंध्र प्रदेश इसमें सम्मिलित किये जाते हैं। इन भागों की मिट्टी लाल तथा पीली दुमट, बलुही दुमट और मुख्यतः काँप है। वर्षा की मात्रा ७६ से १९० सैटीमीटर तक होती है और सर्दी के तापक्रम २१° सें० ग्रेड तथा गर्मी के ३२° सें० ग्रेड तक रहते है। कई भागों में गर्म हवायें चलती हैं। इस प्रदेश के मुख्य फल आम, रसदार फल, केला, अमरूद, काजू, अनन्नास, लीची, पपीता, चीकू, शरीफा, और नासपाती है।

(४) दक्षिणी प्रदेश (Southern Region)

इस प्रदेश के अन्तर्गत मध्य प्रदेश के दक्षिणी जिले, पश्चिमी आंध्र प्रदेश और मद्रास, मैसूर के पूर्वी भाग, तथा महाराष्ट्र आदि सम्मिलित किये गये हैं। यहाँ की मिट्टी काली है। कई भागों में लाल या पीली दुमट मिट्टी भी मिलती है। वर्षा की मात्रा ५० से १२५ सैंटीमीटर तक होती है किन्तु महाराष्ट्र में यह १९०

से ३८० सैंटीमीटर तक हो जाती है। इस प्रदेश में मुख्य फल आम, नारंगी, नीबू, अंगूर, अमरूद, केला, अंजीर, अनन्नास, शरीफा, अनार, काजू, सैपोटा और कटहल है।

(५) तटीय तट प्रदेश (Coastal Wet Region)

इस भाग के अंतर्गत दक्षिणी भारत के पाश्वर्ती पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तटीय भाग है। इनकी मिट्टी काँप है जो बड़ी उपजाऊ है। तापक्रम तथा वर्षा साल भर ही ऊँचे और अधिक रहते है। आम, अनन्नास, काजू, नारंगी, केला, सेव, नासपाती, कटहल और पपीता यहाँ के मुख्य फल हैं।

कुछ प्रमुख फल

अंगूर (Grapes)—यह बहुत ही स्वादिष्ट फल है। इसकी पैदावार के १६° से० ग्रेड० के लिए काफी धूप होनी चाहिए अर्थात् लम्बी गर्मी की ऋतु जिसमें सितम्बर में तापक्रम तक रहता हो इसके लिए अधिक उपयुक्त है। अंगूर की जड़ें बहुत लम्बी होती है जिनसे लताओं को बहुत गहराई से जल मिल जाता है अतः अंगूर प्रायः ऐसे भागों मे पैदा किए जाते है जहाँ गरमी मे बिल्कुल वर्षा न होती हो। इसके लिए गर्म भुरभुरी मिट्टी अच्छी रहती है। चूने के पत्थर और खड़िया वाली भूमि इसकी पैदावार के लिए विशेप रूप से उपयुक्त है। पाला इसके लिए हानिकारक है क्योंकि इसमे अंगूरों के गुच्छे नष्ट हो जाते है।

भारत में सबसे अधिक अंगूर महाराष्ट्र, मद्रास और मैसूर में होते है। देश में अंगूरों के अन्तर्गत लगभग १,५०० एकड़ भूमि है। महाराष्ट्र में नासिक जिला; काश्मीर में श्रीनगर तथा मद्रास के मदुराई और सलेम जिले, आंध्र के औरगाबाद, हैदराबाद और अनन्तपुर जिले अंगूर के मुख्य उत्पादक है।

अंगूरों की मुख्य किस्में जो भारत में पैदा की जाती है वे ये हैं :—

सुल्ताना, काशमीरी, ब्लैक प्रिंस, खलीली, मस्कट, थॉम्पसन, भौकरी, फकादी, पंढारी, साहबी, पचद्राक्षाई और बंगलौर ब्लू।

प्रतिवर्ष काफी मात्रा में अंगूर और दाख अफगानिस्तान, पाकिस्तान, आस्ट्रेलिया और सयुक्त राज्य अमेरिका से आयात किये जाते हैं।

केला (Banana)—केला उष्ण कटिबन्ध का फल है। इसे उपजाऊ भूमि, अधिक वर्षा और ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होती है। भारत में सबसे उत्तम प्रकार का केला दक्षिणी भारत में पैदा किया जाता है। यहाँ बसराई वेलची, लाल-वेलची, राजेली, मोंथन, सीरूमलाई किस्म के केले पैदा किये जाते हैं। केरल, गुजरात के सूरत, खैरा; महाराष्ट्र के कोलाबा, अमरावती, आकोला और पूर्वी खानदेश; आंध्र के उस्मानाबाद, हैदराबाद, प्रभानी और गुलबर्गा जिले; मद्रास के तंजौर, तिरूचिरापल्ली, सलेम और कोयम्बटूर, मैसूर जिले में **रसवाला** किस्म का केला पैदा किया जाता है।

पूर्वी प्रदेश में 'मालभोग', 'चीनी चम्पा', **चम्पा, अल्फान, अधेश्वर दूध-सागर** और **सब्जा** किस्म का उत्पादन बिहार के चम्पारन, सारन, मुज्जफरपुर, दरभंगा,

और भागलपुर जिलों में होता है। इन किस्मों के अतिरिक्त **बसराई** और **रायकला** का उत्पादन उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद और बनारस जिलों तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागों में किया जाता है। उड़ीसा में **मारीशस** और **मर्तबान** तथा पूर्वी गोदावरी, कृष्णा और विशाखापट्टनम जिलों में **रसथली, वामनकेली, सिंगापुर** और **चक्राकेला** किस्म के केलों का उत्पादन होता है। बंगाल में मालदा, मुर्शिदाबाद बर्दवान और चौबीस परगना तथा आसाम में खासी और जयन्तियों की पहाड़ियों, कछार, कामरूप और गोलपाड़ा, नवगाँव, सिवसागर और लखीमपुर जिलों में भी केलों का उत्पादन बहुत होता है।

भारत में केलों का अनुमानित उत्पादन २,४००,००० टन है।

केलों का अधिकांश देश में ही खप जाता है। इसमें अन्तर्राज्यीय व्यापार ही अधिक होता है।

रसदार फल (Citrus Fruits)—इन फलों के अन्तर्गत मुख्यतः नारंगी, नीबू, संतरे और मौसमी सम्मिलित होते हैं। इनके लिए पर्याप्त जल, नम जलवायु और गहरी चूनेदार मिट्टी की आवश्यकता होती है। अधिक सर्दी के कारण इनके पौधे मुरझा जाते हैं।

भारत में नारंगी, नीबू आदि की कई किस्मे पैदा की जाती है इनमें से मुख्य ये हैं:—

किस्म	उत्पादन क्षेत्र
(क) **संतरा** : (i) देशी, नागपुरी, एम्पदर, लड्डू	कुमायूँ, उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, तथा देहरादून जिले।
(ii) देशी, कुर्ग, लाहौर	पठानकोट के निकटवर्ती भागों में।
(iii) नागपुर	मध्य प्रदेश के उत्तर पश्चिमी जिलों में और नीमाड़ जिले में; और महाराष्ट्र के नागपुर जिले में।
(iv) खासी नारंगी या दार्जिलिंग	बंगाल के दार्जिलिंग जिले और आसाम में ब्रह्मपुत्र की घाटी में।
(ख) **मालटा** : मौसम्बी, ब्लड रैड, जाफ्का, वाशिंगटन, मजोरका आदि	उत्तर प्रदेश के मेरठ, वाराणसी और सहारनपुर जिलों तथा सम्पूर्ण पंजाब में; बिहार के रांची जिले में; आंध्र प्रदेश के औरंगाबाद, प्रभानी जिले; गुजरात के अहमदनगर और महाराष्ट्र के पूना, नासिक, अमरावती और खानदेश जिले, आकोला राजस्थान के गंगानगर; और मद्रास के सलेम और कोयम्बटूर जिले।

(ग) खट्टे और मीठे नीबू (Acid & Sweet Limes)

कागजी नीबू, मीठे नीबू...उत्तर प्रदेश के सहारनपुर और मेरठ जिले; कुमायूं पहाड़ियाँ, हिमाचल प्रदेश और पजाब; पूर्वी प्रदेश के सभी भागों मे; मद्रास के मदुराई, कोयम्बटूर और सलेम जिले तथा महाराष्ट्र के खानदेश और अहमदनगर जिले ।

संतरे की प्रति एकड़ उपज जलवायु, खाद, मिट्टी, तथा कीड़ो से बचाव और वृक्षों की उम्र पर निभर रहती है । नीचे तालिका में संतरे की विभिन्न किस्मों की अनुमानित वार्षिक औसत उपज प्रति पौंडों में दी गई है :—

संतरे की किस्म	प्रति एकड़ उपज (मनों में)
मद्रास (कमला, खटा आदि)	७५ से २०० तक
मध्य प्रदेश (संतरा)	६५ से २५० तक
महाराष्ट्र (सतरा)	१०
आसाम (सिलहट)	१०६ से ३६४
बंगाल (सिक्किम)	५० से २०१
उत्तर प्रदेश (सतरा, माल्टा)	६० से १००
आंध्र (मौसम्बी)	१८०

भारत में सन्तरा और अन्य रसदार फलों का अनुमानित उत्पादन ५ लाख टन का है ।

आम (Mango)—आम भारत का प्रसिद्ध फल है । यह देश के प्रायः सभी भागों में पैदा किया जाता है किन्तु वर्षा के काफी होने के कारण एवम उपजाऊ और चिकनी मिट्टी होने के कारण गगा-यमुना के मैदानों में आम बहुत होता है । उत्तरी भारत में आम पकने का मौसम जून से अगस्त तक और दक्षिण भारत में इससे कुछ पहले अप्रैल से जून तक आरम्भ हो जाता है ।

भारत में अनेक किस्म के आम पैदा किये जाते हैं किन्तु इनमें मुख्य किस्में और उनके उत्पादक क्षेत्र ये हैं :—

	किस्म	उत्पादक क्षेत्र
(i)	दसेरी, लंगड़ा, सफेदा लखनऊ, सफेदा, मलीहाबादी, बम्बई हरा, बम्बई पीला, फजरी, गोपाल-भोग, रतौल, सिरौली, मालदा, हुश्नारा, बारामासिया, सिंदूरिया	उत्तर प्रदेश के मध्यवर्ती और पश्चिमी जिलों में मुख्यतः लखनऊ, बरेली मेरठ, कानपुर, सहारनपुर, हरदोई जिलों में; पजाब के होशियारपुर, अम्बाला, गुरुदासपुर, करनाल जिले और दिल्ली, राज्य ।
(ii)	बम्बई, फजली, सफेदा कलकत्ता, हिमसागर	पश्चिमी बंगाल के बर्दवान, हुगली, मुर्शिदाबाद, मालदा और २४ परगना जिलो में ।

(iii) बिहार-हापुस, गुलाबखास कृष्ण-भोग, जरदालू, कैथल, खासुलखास	बिहार के मुज्जफ्फरपुर, दरभंगा, और भागलपुर जिलों में।
(iv) शाहपसंद, वृन्दावनी, सफदर पसंद तैमूरिया	उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में बनारस, इलाहाबाद, बाराबंकी, गोंडा, फैजाबाद, और सुल्तानपुर।
(v) लंगडा, दसेरी और चौसा	बिलासपुर, होशंगाबाद, जबलपुर जिलों में।
(vi) नीलम, बेगनपाली, धूफूल, खुदाबाद	उडीसा में, मद्रास में सलेम, मैसूर।
(vii) स्वर्णरेखा, राजूभानू, जहाँगीर, चीनरस्म, कोट्टापल्ली, हिमायूद्दीन, कबारी, मुलगोवा, अज्जमउसमर, तोतापुरी।	आंध्र प्रदेश के गोदावरी कृष्णा और विशाखापट्टनम जिलों में।
(viii) हापुस, पैरी, राजापुरी, केसर भारत से आमों का निर्यात भी किया जाता है।	सौराष्ट्र, बड़ौदा और सूरत जिलों में।

इन मुख्य फलों के अतिरिक्त निम्न प्रकार के फलों का उत्पादन भारत में काफी होता है :—

फल	किस्म	उत्पादक क्षेत्र
खजूर (Dates)	हिलाबी, खुद्रावी, शामरान, अरबी और जैदी	पंजाब के पश्चिमी और राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग।
अंजीर (Figs)	(i) सफेद, काली, भूरी टर्की	राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं पंजाब के कुछ भाग।
	(ii) पूना, पैनूकोड़ा, कोयम्बटूर दौलताबाद, मैसावानी	आंध्र के अनन्तपुर जिले तथा महाराष्ट्र के पूना जिले और मैसूर राज्य मे।
अमरूद (Guava)	(i) सफेदा, हाफजी, लखनऊ, करेला, इलाहाबाद सफेदा, हरा चिकना	उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, बरेली और फैजाबाद जिले; बिहार के चम्पारन, भागलपुर और मुज्जफरपुर जिले।
	(ii) धोलका, लखनऊ	आंध्र के भीर, प्रभानी, कडुप्पा, कर्नूल औरंगाबाद जिले; महाराष्ट्र के पूना, नासिक, अहमदनगर, धारवाड़ और पूर्वी खानदेश जिले तथा गुजरात में अहमदाबाद।

फल	किस्म	उत्पादक क्षेत्र
अनन्नास (Pineapple)	मारीशस, क्यू, सिलोन, क्वीन,	आसाम, पश्चिमी बंगाल; गुजरात का बडौदा जिला; मद्रास में मदुराई, मैसूर तथा पश्चिमी तट पर सर्वत्र ।
अनार (Pomegranate)	(i) काबुली, कंधारी, मस्कट लाल, घोलका, हब्शी, ऊथूकुल,	पंजाब, उत्तर प्रदेश, मैसूर, आंध्र, मद्रास ।
सेव (Apple)	(i) लाल, सुनहरी, फॉक्स, पीपीन; वरसस्टर, रिचार्ड, न्यूटन	हिमालय प्रदेश ।
	(ii) अमबरी, काश्मीरी, लाल-सफेद दोनेदार	काशमीर घाटी ।
	(iii) रोम-ब्यूटी, रेमर, शैनबरी	कुमायूं पहाडियाँ, कूलू घाटी, नीलगिरि ।
	(iv) लैडी शैडले, चार्ल्स रॉस; प्रिन्स, एल्बर्ट,	आसाम ।
नासपाती (Pears)	(i) थाम्पसन, कान्फ्रैंस आदि	हिमालय प्रदेश में ५,००० फीट से अधिक ऊँचाई वाले भागों मे ।
	(ii) बब्बूगोशा, चीन, कैफर	उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, हिमाचल प्रदेश एवं पंजाब और दिल्ली में; नीलगिरि, और बंगलौर जिले ।
शफ्तालू (Peaches)	एलैक्जन्डर, आगरा, वाल्डो, चीन	उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, लखनऊ; पंजाब की पहाड़ियाँ, राजस्थान के जैपुर और जम्मू में ।
लुकाट (Loquat) और लीची (Litchi)	वेदाना, चीनी पूर्वी, कलकत्ता जिले;	उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मेरठ, देहरादून पंजाब के गुरुदासपुर जिले; बिहार के चम्पारन, मुजफ्फरपुर, भागलपुर और दरभंगा जिले ।

भारत में फल उद्योग

भारतवर्ष में अभी तक फल उत्पन्न करने का धन्धा उन्नत अवस्था में नहीं है। इसके कई कारण है :—

(१) फलों के बगीचे बहुत ही छोटे छोटे और बिखरे हुए हैं। उदाहरण के लिये पंजाब में कुछ फलों के बगीचे बड़े है जबकि पंजाब में एक बाग का औसत क्षेत्र फतेहपुर में ८ एकड़, सीतापुर में ३ और नैनीताल में ६ एकड है। बहुत ही कम फलो के बाग व्यवसायिक रूप से लगाये जाते हैं। अतः इन बागों से इनके मालिकों को अधिक आर्थिक लाभ नही होता।

(२) इन बागों की देखभाल प्रायः ठेकेदारों के हाथों में छोड़ दी जाती है जो स्वयं फल खरीदते है या फिर अशिक्षित और गरीब माली ही इनकी देखभाल करते हैं। ठेकेदार भी थोड़े ही खर्चे मे अधिक लाभ उठाने के लिये प्रयत्नशील रहता है किन्तु वैज्ञानिक रीति से फलों की पैदावार बढ़ाने के लिये वह कुछ नहीं करता है।
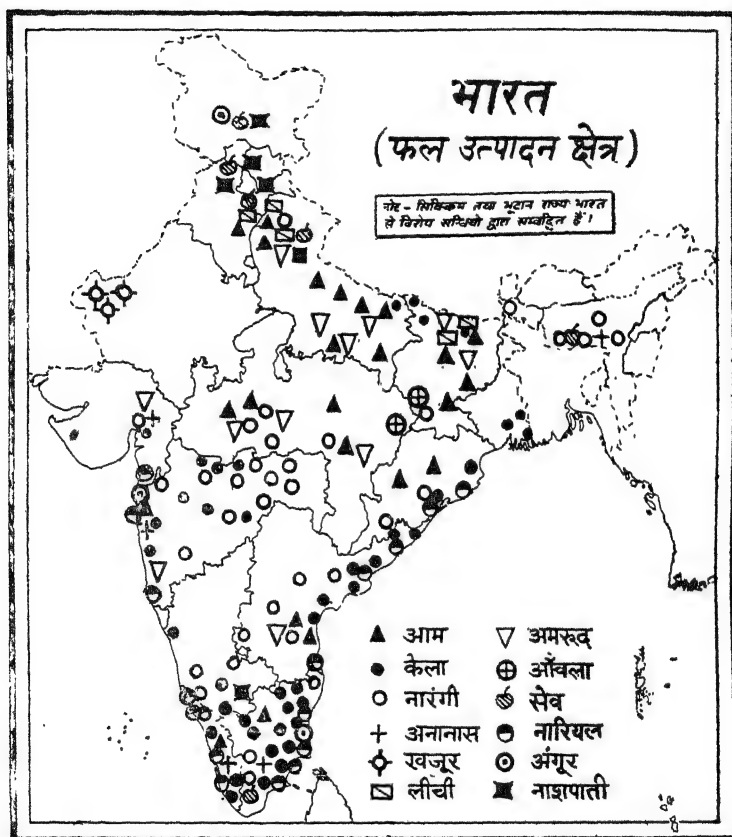
चित्र १५९. भारत में फल उत्पादन क्षेत्र

(३) फलों के बाग मे पौधे एक दूसरे के इतने निकट लगाये जाते हैं कि ये साधारणतः पूरी तरह बढ भी नहीं पाते। पौधों के पास-पास लगाने से यद्यपि कुछ समय तक फलों की पैदावार वढती जाती है किन्तु अल्प काल के पश्चात् वह घटने लगती है।

(४) फलों को बाजार जाकर बेचने के लिये हमारे यहाँ सन्तोषजनक स्थिति नही है। फलों के बगीचे जो नगरों के निकट होते हैं उनके लिये कोई असुविधा नहीं होती किन्तु जो बाग गाँव में होते हैं वहाँ के सभी फल नगरों को भेज दिये जाते हैं

जिसके फलस्वरूप गाँवों के लिये बिल्कुल फल नहीं रह जाते हैं। नगरों में भी फलों की माग पूरी नहीं होती। अनुमान लगाया गया है कि बम्बई में प्रति व्यक्ति पीछे आधे आउन्स फल बिकते है जबकि लन्दन में यह मात्रा ४½ आउन्स तथा न्यूयार्क में एक पौण्ड है।

(५) फलों के पकने के समय अत्यन्त असावधानी की जाती है जिससे फल और पौधे दोनों ही प्रायः नष्ट हो जाते हैं। अधिकतर हरे और कच्चे फलों को भी तोड लिया जाता है। फलों को तोड़ने के लिये वृक्ष की टहनियाँ हिलाई जाती हैं जिससे बहुत से फल नष्ट हो जाते हैं।

(६) फलों को बाहर भेजते समय उन्हें डिब्बों और टोकरियों में बन्द करके भेजा जाता है। किन्तु वे हल्की और हवादार नहीं होतीं। इसके अतिरिक्त फलों के साथ साथ घास और सूखी पत्तियाँ भी भर जाती हैं जिससे फल गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के पहले ही नष्ट हो जाते है। उदाहरण के लिये बम्बई की आम विपणन समिति ने अनुमान लगा कर बताया है कि बम्बई नगर में आने वाले २० प्रतिशत आम तो इसलिये नष्ट हो जाते है कि वे कच्चे ही तोड़ कर पेटियों में बन्द कर दिये जाते है और २० प्रतिशत सड़ जाते हैं।

(७) भारतवर्ष में जो भी फल व तरकारियाँ पैदा की जाती हैं वे सब शीघ्र नष्ट हो जाने के भय से शहरों के समीपवर्ती स्थानों में बोई जाती हैं क्योंकि हमारे यहाँ शीत भडारों की सुविधायें नहीं हैं और रेल भी इन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिये विशेप प्रबन्ध नहीं करतीं जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में तरकारी व फल दूसरे स्थानों को भेजने के लिए प्रतिदिन प्रातः काल फल व तरकारियों की एक्सप्रेस गाड़ियाँ दौड़ती है।

फलों का निर्यात व्यापार

थोड़े से परिमाण मे केला, आम, संतरा, नीबू, खट्टा नीबू, अंगूर, सेव और नाशपाती देश से पडौसी देशों को निर्यात किये जाते हैं। ब्रिटेन, यूरोप, स० राज्य अमरीका, जापान, रूस, आस्ट्रेलिया को भी भारतीय फल पहुँचते है।

अल्फोन्सो किस्म के आमों; नागपुर के **संतरों;** कुर्ग के **मंडारिनों** (एक किस्म के आम); अबोहर तथा गंगानगर के लाल रंग के **माल्टों**, मध्य प्रदेश के **कागजी नीबुओं**; आंध्र प्रदेश के **अनोवशाही अंगूरों**; केरल और मैसूर के **क्यू अन्नासों** और **पूवन** तथा **सराय** किस्म के **केलों** के खरीदार विश्व के अनेक देश है।

औसतन १० से १२ लाख रुपये के डिब्बे में बंदफल तथा १० लाख रुपये की चटनी, अचार, मुरब्बे आदि भारत से निर्यात होते हैं।

फल शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तु है अतः इनके निर्यात व्यापार बढ़ाने हेतु निम्न उपाय सफल हो सकते हैं :—

(१) यदि तापहर वाष्प-पोतों द्वारा उन्हें जल्दी से उत्पादक प्रदेशों से लाने की व्यवस्था की जाये तो नष्ट होने की क्रिया को कम किया जा सकता है।

(२) यदि फलों को निर्यातार्थ समुद्र तट के निकट ही स्थान निर्धारित किए

जायें तो विदेशों को उन्हें भेजने में खर्च होने वाले समय को और भी कम किया जा सकता है।

(३) शीत-संग्रहागार में विभिन्न किस्मों के फल रखने के बारे में किये गए परीक्षणों से पता लगा है कि उन संग्रहगारों में बिना किसी पौष्टिक तत्व नाश के-५ से १० सप्ताह तक संतरा; ७ से १२ सप्ताह तक सेब और ३ से ४ सप्ताह तक अंगूर रखे जा सकते है। अतः फलों के निर्यात की वैज्ञानिक प्रणाली विकसित की जाये।

सब्जियाँ (Vegetables)

भारत में अनेक प्रकार की सब्जियों का उत्पादन किया जाता है क्योंकि देश की अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी हैं। सब्जियों के उत्पादन के लिये शीतोष्ण जलवायु अनुकूल होती है किन्तु पाला इसे सहन नहीं। इनके लिए रेतीली दोमट मिट्टी अच्छी होती है। भूमि की गहरी जुताई और अधिक खाद की भी आवश्यकता होती है। जल भी पर्याप्त मात्रा में मिलता रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त सब्जियाँ शहरों से अधिक दूर पैदा नहीं की जा सकतीं क्योंकि शीत भण्डार की सुविधाओं के अभाव में उन्हें दूर तक नही ले जाया जा सकता।

देश में अनेक प्रकार की हरी सब्जियाँ तथा गाँठदार सब्जियाँ काफी मात्रा में पैदा की जाती हैं। भिंडी, करेला, तुरई, बैंगन, चवलाफली, गोभी, टमाटर, पालक लौकी, कद्दू, अरबी, रतालू, कटहल, चुकन्दर, मूलां आदि सभी जगह थोड़ी बहुत मात्रा में पैदा की जाती है। किन्तु इनका महत्व स्थानीय ही है। सब्जियों में आलू का महत्व ही अधिक है।

आलू (Potato)

यह भारत की प्रमुख तरकारी है। इसके लिए नम और ठंडी जलवायु अधिक उपयुक्त होती है। अधिक वर्षा और कम तापक्रम वाले भागों में भी यह पैदा किया जा सकता है। इसके लिए भुरभुरी मिट्टी अच्छी होती है। यह सिचाई और बिना सिचाई दोनों प्रकार से पैदा किया जाता है। भारत में इसकी दो फसलें प्राप्त की जाती हैं। सर्दी की फसल सितम्बर से दिसम्बर तक बोयी जाती है और जनवरी से अप्रैल तक काटी जाती है। गर्मी की फसल फरवरी से अप्रैल तक बोयी जाती है और मई से सितम्बर तक काटी जाती है। सामान्यतः जाड़ों की फसल मैदानों में और गर्मी की फसल पहाड़ी भागों में पैदा की जाती है। जाड़े की फसल का महत्व ही अधिक होता है। कुल फसल का ९५% जाड़े की और ५% गर्मी का होता है।

भारत में आलू उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार और आसाम राज्य हैं। कुल उत्पादक क्षेत्र का ८० प्रतिशत इन्हीं राज्यों में है। मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में भी आलू पैदा किया जाता है।

भारत में आलू का प्रति एकड़ उत्पादन ५,७०० पौंड से ७,००० पौंड तक का होता है। यहाँ देशी किस्म के अन्तर्गत फुलवा (Phulwa), दार्जिलिंग लाल (Darjeeling Red Round) और गोला (Gola) आदि किस्में मैदानी भागों में और अंग्रेजी किस्म के अन्तर्गत नवीनतम (Upto-date), ग्रेट स्काट (Great

Scot) और मैगनम बोनम (Magnum Bonum) आदि किस्में पहाड़ी भागों में पैदा की जाती हैं।
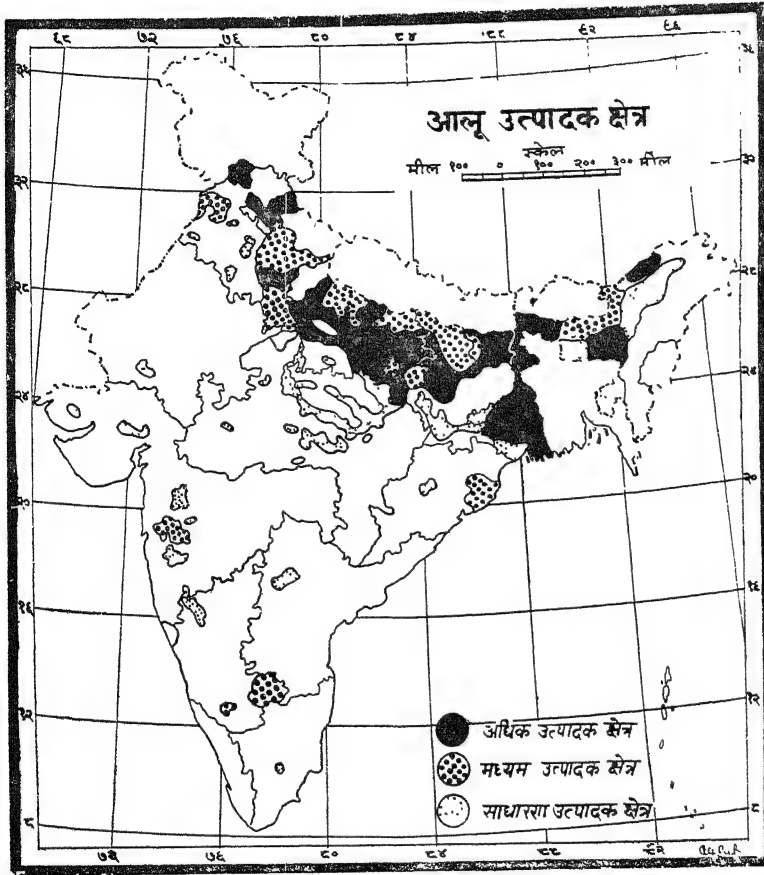
चित्र १६०. प्रमुख आलू उत्पादक क्षत्र

विश्व के उत्पादन का केवल ०·७%आलू ही भारत से प्राप्त होता है। यहाँ १६६२-६३ में ६,१२०० एकड़ भूमि पर २७ लाख टन आलू पैदा किया गया। यहाँ आलू का आयात इटली, साइप्रस, केनिया, ब्रह्मा और जापान से किया जाता है।

योजनाकाल में फल-सब्जियों का उत्पादन

द्वितीय योजना काल में १·६६ लाख एकड़ भूमि पर नये फलों के बगीचे लगाये गये तथा १·३२ लाख एकड़ भूमि के बगीचों का पुनरुद्धार किया गया। इस समय फलों और सब्जियों के अन्तर्गत सब मिला कर ६० लाख एकड भूमि है। तृतीय योजना मे यह क्षेत्र फल वढाकर ७० लाख एकड़ किया जायेगा। २.३५ लाख एकड़ भूमि पर नये बगीचे लगाये जायेंगे तथा २·५ लाख एकड़ भूमि के बगीचों का पुनरुद्धार किया जायेगा। तीसरी योजना में फलों तथा सब्जियों से सम्बन्धित तैयार माल का उत्पादन ४०,००० टन से बढ़ा कर १ लाख टन किया जायेगा।

अध्याय २६

भारतीय कृषि की समस्याएँ

(AGRICULTURAL PROBLEMS IN INDIA)

'भारत एक सम्पन्न देश है, जिसमे निर्धनता वास करती है।" यह कहावत भारत पर पूर्णतः लागू होती है। भारत की भूमि उपजाऊ है और जलवायु खेती के लिए अनुकूल होते हुए भी भारत में कृषि उद्योग की दशा अच्छी नही है। १९५६-५७ से १९६०-६१ की अवधि में औसत प्रति एकड उपज गेहूँ की ६६२ पौंड; चावल की ८०७ पौंड; तिलहनों की ४५१ पौंड; गन्ने की ३२०६ पौंड; कपास की ९५ पौंड और जूट की १०३५ पौड थी। अन्य देशों की तुलना मे यहाँ की प्रति एकड़ उपज बहुत ही कम है :—

१९६०-६१ में प्रमुख देशों में मुख्य कृषि उत्पादनों का प्रति हैक्टर उत्पादन क्विटल्स में

गेहूँ भारत ८·५; सं० रा० अमरीका १७·६; कनाडा १४·२; अर्जेनटाइना ११·०; रूस १०·६, फ्रांस २५·३; इटली १४·९; आस्ट्रेलिया १३·१; चीन १३·०।

मकई भारत ९·२; स० रा० अमरीका ३३·५; कनाडा. ३५·८; अर्जेनटाइना १७·७; नीदरलैंड ३८·१; रूस १६·७; इटली ३२·१; आस्ट्रेलिया २१·२; यूगोस्लाविया २४·०।

धान भारत १५·२; जापान ३८·६; ब्रह्मा १६·२; थाईलैंड १३·२; अरब गणतन्त्र ५०·१; आस्ट्रेलिया ६११; चीन २५·४।

मूँगफली भारत ७·१; इंडोनेशिया ११·७; सं० रा० अमरीका १४·२; अर्जेनटाइना १४·०, चीन १०·८।

कपास भारत १·३; सं० रा० अमरीका ५·०; अरब गणतन्त्र ६·१; सूडान २·७; यूगैंडा ९ ९।

गन्ना भारत ४४४·४; क्यूबा ४१०·९; हवाई १९६३·१, पोर्टोरीको ७६५·५; मैक्सिको ब्राजील ४२०·१; आस्ट्रेलिया ६७४·९।

तम्बाकू भारत ७·८; जापान २०·५; ब्राजील ८·०; स० रा० अमरीका १९·१; कनाडा १७·७; इटली १५·०; रूस १२·८

कृषि की इस स्थिति के लिए कतिपय कारण उत्तरदायी है, अत: इस अध्याय में कृषि उद्योग की इन समस्याओं पर विचार किया जायगा क्योंकि कृषि भारत का प्रमुख व्यवसाय होने के साथ ही लगभग $\frac{2}{3}$ जनसख्या की उपजीविका का साधन है।

कृषि की अविकसित दशा के कारण

भारतीय कृषि की अच्छी स्थिति न होने का कारण कृषक की मूर्खता एवं अज्ञानता न होकर वे कठिनाइयाँ है, जिनके कारण भारतीय कृषि-उद्योग अविकसित रहा है तथा प्रति एकड़ उपज कम रही है। विश्व के महत्वपूर्ण देशों की तुलना में भारतीय कृषि का उत्पादन ८६% तथा अधिकांश यूरोपीय देशों की तुलना में ५०% भी कार्यक्षम नहीं है।[1] जनसख्या की वृद्धि और उत्पादन में कमी के कारण भारतीय जीवन-स्तर का ह्रास हो रहा है। भारत की साधारण स्थिति में ही ३९% जन-संख्या को सन्तुलित आहार नहीं मिलता। बहुत अधिक मनुष्य और बहुत कम पूँजी के कारण कृषि भूमि पर जन संख्या का प्रभाव बढ़ा,[2] जिससे गरीबी में वृद्धि हुई और कृषि भूमि से उपज कम होने लगी। इस हेतु क्षत्रीय साधन तथा क्षेत्रीय जनसंख्या की गति मे सामंजस्य लाकर जनसंख्या का प्रभार कृषि भूमि पर कम करना होगा। साथ ही, कृषकों को उपभोग शक्ति बढ़ाने के लिए उद्योग-धन्धों का पुनर्वितरण करना होगा।

तान्त्रिक कमजोरी के कारण भारतीय कृषि विश्व की प्रतिस्पर्धात्मक अर्थ-व्यवस्था की गति के अनुरूप अपने को ढाल सकने में असमर्थ रही है। कृषक बाजार की परिस्थितियों को ध्यान मे रखे बिना उत्पादन करता है और कटाई के समय ही फसल को बेच देता है, जब कि मूल्य न्यूनतम मिलता है। इस प्रकार वह न तो व्यय और न भावी माँग की ओर ही ध्यान देता है। फलस्वरूप उसे बहुधा हानि ही होती है, क्योंकि उत्पादन व्यय बिक्री मूल्य से अधिक होता है और वह किसी भाँति अपना जीवन-निर्वाह करता है। इस प्रकार भारतीय कृषि की बहुविधि समस्याएँ हैं, जो निम्न है :—

(१) **खेतों का छोटा और बिखरा होना**—भारतवर्ष में जन-संख्या की वृद्धि के कारण अधिकाधिक जन-संख्या खेती पर निर्भर है, क्योंकि यहाँ उद्योग धन्धों की उन्नति नहीं हुई है। इसका परिणाम हुआ है कि प्रत्येक किसान की भूमि बँटते-बँटते बहुत कम रह गई और वह थोड़ी सी भूमि भी एक चक में न हो कर छोटे-छोटे टुकड़ो मे इधर-उधर बिखरी हुई है। भारत मे औसत खेत ७½ एकड का है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में १४५ एकड, डेनमार्क में १० एकड़, इङ्गलैड में ६२ एकड़, जर्मनी में २१ एकड़, फ्रांस में २१⅛ एकड़, हालैण्ड में ३६ एकड़, बेल्जियम में १४½ एकड़ है। बङ्गाल मे प्रति कुटुम्ब पीछे ४ एकड़ जमीन का औसत आता है तथा मद्रास में ५ एकड़, मध्य-प्रदेश में ८ एकड, उत्तर-प्रदेश में ६ एकड़, बिहार-उड़ीसा में ३ एकड़, बम्बई में १२ एकड़ और पजाब में १० एकड़ है।

"जन सख्या में वृद्धि, किन्तु उद्योग-धन्धों मे उसी अनुपात में वृद्धि न होना, संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का अन्त और मनुष्यो में व्यक्तिक विचारों की उत्पत्ति होना

---

१. भारत की औद्योगिक कुशलता—रजनीकान्त दास।

२. Agrarian Problems from the Baltic to the Aegean—*E. John Russel*, Page 10.

तथा पिता की मृत्यु के बाद जमीन का उसके वारिसों में विभाजन आदि इस स्थति के लिए जिम्मेवार हैं।"[3]

खेतों के छोटे होने के कारण खेतों की सीमा बनाने में बहुत अधिक जमीन नष्ट हो जाती है। इन खेतो में कीमती मशीनें भी काम में नही लाई जा सकतीं और न वैज्ञानिक खाद ही दिया जा सकता है। खेतों के दूर-दूर होन के कारण किसान को एक खेत से दूसरे खेत तक जान के लिए अधिक समय नष्ट करना पड़ता है। खेतों पर अधिक खर्च के कारण कुएँ आदि भी नहीं बनाये जा सकते। इन छोटे-छोटे खतों के बीच प्रायः दूसरे व्यक्तियों के खेत आ जान से प्रायः लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। कभी-कभी पड़ौसियों के पशु फसलो को रौद डालते हैं। इन्ही कारणों से गरीब किसान अपने खेतों से अच्छी फसल के रूप में पूरा फायदा नहीं उठा सकता, अतः खेतो की फसल कम हो जाती है।

(२) **कम आय**—खेतों के छोटे होने के कारण किसानों की आय भी कम होती है। सैन्ट्रल बैंकिग जाँच कमेटी के अनुसार—'भारतीय किसान की औसत आमदनी लगभग ४२ रुपये प्रति वर्ष है। फलस्वरूप उसे अपनी जमीन और घर बार बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसी कारण अच्छी फसल होने पर भी किसान ऋण-ग्रस्त रहते है।" सरकारी रिपार्टो के अनुसार सन् १९११ मे किसानों पर कुल कर्जा ३०० करोड़ रुपये, सन् १९२९ में ५३३ करोड़ रु०, सन् १९३१ में ९०० करोड़ रुपये, सन् १९३७ मे यह १,००० करोड़ और १९६१ में २००० करोड़ रुपये से भी अधिक बढ़ गया था। इस प्रकार उसका कर्ज बराबर बढ़ता ही गया है। ऋण का बोझ लदा हुआ होने के कारण किसान जब ऋण चुकाने मे असमर्थ हो जाता है तो उसे साहूकार के यहाँ गुलामी की जिन्दगी बितानी पड़ती है।

वास्तव मे भारतीय किसान इसलिये खेती नहीं करता कि उसे कुछ आर्थिक लाभ हों, बल्कि इसलिये कि उसे पेट भर भोजन मिल सके। खेती मे मिलने वाली आमदनी प्रति व्यक्ति बहुत कम है। भारतीय किसान प्रति एकड़ से बहुत ही कम आय प्राप्त करता है। औसत रूप से एक एकड़ से उसे ३) रु० मिलने हैं, जबकि बेल्जियम, नीदरलैंड, स्विटजरलैंड आदि देशों में १२ पौंड से १५ पौंड, डेनमार्क में ९ से १२ पौंड, जर्मनी, फ्रांस और इङ्गलैंड मे ६ से ९ पौंड तथा रूमानिया, अलबानिया और यूगोस्लेवेकिया में ३ पौंड आमदनी होती है। इतनी कम आमदनी वाले किसान से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अपनी खेती में सुधार करने की कोशिश करे।

(३) **कृषक की ऋणग्रस्तता**—कर्ज बढ़ने का एक मुख्य कारण यह भी है कि भारत के किसानों को खेती के लिए वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। कभी अत्यधिक वर्षा के कारण या बाढ़ आ जाने से खेती नष्ट हो जाती है, तो कभी उसके बैल मर जाते हैं या अनाज की दर गिर जाने से उसे हानि होती है। कभी-कभी उसे अपने बाल-बच्चों की शादी के लिए साहूकार से अधिक ब्याज पर रुपया कर्ज पर लेना पड़ता है। कभी त्यौहारों पर या मौत पर अपने पुरखों का श्राद्ध, कथा अथवा अन्य

---

3. Indian Economics—*Jathar Beri.*

धार्मिक कार्यों के लिए उसे रुपयों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में उसे अपना खेत गिरवी रख कर कर्ज पर रुपया लेना पड़ता है। इस प्रकार किसान की गाढ़ी कमाई का रुपया जमींदार और साहूकार खा जाते है तथा कुछ वकीलों की जेबों में भी पहुँच जाता है। जैसे—जमींदार ८%, वकील आदि २%, साहूकार ५८%, रैयत ३२%।

जहाँ एक बार ऋण लेना शुरू हुआ कि वह पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता ही जाता है। सन् १९२८ के कृषि कमीशन के शब्दों में, "भारतीय किसान ऋण मे जन्म लेता है और ऋण में ही मरता है तथा ऋण को भावी पीढ़ियों के लिए छोड़ जाता है। यह ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता ही रहता है।" गरीबी और ऋण-ग्रस्तता के कारण किसान अपने खेतों की भली प्रकार सेवा नही कर सकता और न वह खेतों की पैदावार बढ़ाने के लिए ही कुछ कर सकता है, जिससे खेतों की पैदावार दिन प्रति दिन कम होती जा रही है।

(४) **खेतों को पर्याप्त वनस्पति खाद नहीं मिलती**—भारत की भूमि की उर्वरा शक्ति बिलकुल ही गिर गई है। इसका मुख्य कारण वनस्पति खाद की कमी है। कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिकों का मत है कि यहाँ की भूमि की उत्पादन शक्ति इतनी गिर गई है कि इससे अधिक अब गिर भी नही सकती। जब कोई फसल किसी भूमि में बोई जाती है तो वह उस भूमि से कुछ निश्चित अंश खीच लेती है, जैसे—नाइ-ट्रोजन या लवण आदि। भूमि में इन अशों की कमी होने से उसकी उर्वरा-शक्ति कम हो जाती है, इसलिए इस क्षति की पूर्ति करने के लिये खाद की आवश्यकता है। जितनी पुरानी भूमि है, उतनी ही उसमे अधिक खाद देना आवश्यक है, जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़े। कभी-कभी तो उत्तम खाद से ५% उत्पत्ति में वृद्धि हो जाती है। गहरी खेती में तथा एक भूमि में एक ही वर्ष में कई फसलें उत्पन्न करके के लिये खाद देना आवश्यक हो जाता है। भारत के कई स्थानों में तो तीन फसलें उगाई जाती हैं, जहाँ खाद देना आवश्यक होता है। भारत में सभी प्रकार की खादें उपलब्ध हैं, परन्तु उनका सदुपयोग नहीं होता क्योंकि खाद देने का तरीका ठीक नहीं है। साधारणतः खाद का ढेर खेतों में कर दिया जाता है, जिसका ३३%, अंश वर्षा, हवा एवं धूप से नष्ट हो जाता है। फलतः अन्न और धन का अप-व्यय होता है। गोबर अथवा पशुओं का मल-मूत्र एक मौलिक खाद है, जिसे ईंधन की कमी के कारण जला दिया जाता है। डॉ॰ वोयल्कर के अनुसार—"कुल गोबर का ४०% खाद देने में, ४०% जलाने में तथा २०% अनुचित तरीके से नष्ट होने में काम आता है।" पशुओं का मूत्र तो साधारणतः व्यर्थ ही जाता है क्योंकि उसके उपयोग के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं होता।

कम्पोस्ट एवं मानव मलमूत्र से खाद का निर्माण होता है तथा नगरपालिकाएँ एवं नगर निगम इनकी उपयोगिता बढ़ाने में सहायक हो सकते है। आजकल अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के कारण कम्पोस्ट खाद का उपयोग बढ़ रहा है। सन् १९६३-६४ में ३० लाख टन कम्पोस्ट खाद बनाया गया तथा २५ लाख टन का वितरण किया गया। शहरों के गन्दे पानी का खाद के हेतु उपयोग करने की योजनाएँ कार्यान्वित की गई हैं जिससे लगभग १८,००० एकड़ भूमि का लाभ पहुँचता है।

वनस्पति खाद जैसे मूँगफली, ज्वार आदि की पत्तियों के उपयोग से भी खेतों की उर्वरा शक्ति बढाई जा सकती है। परन्तु पर्याप्त चारे के अभाव में वनस्पति खाद का उपयोग हमारे यहाँ पर बहुत ही कम परिमाण में होता है। रासायनिक खादों में अमोनियम सल्फेट, नाइट्रोजन आदि का समावेश होता है। इनका उपयोग बढ़ाने के लिए सिंध्री में खाद कारखाने की स्थापना हो चुकी है तथा अन्य कारखानों की भी स्थापना होने वाली है। परन्तु विभिन्न प्रकार की रासायनिक खादों का आज भी भारत में अभाव है।

(५) **खेती में स्थायी उन्नति की कमी**—भूमि में स्थायी उन्नति का न होना एक बड़ी कमी है। उदाहरणार्थ, खेतों की घेराबन्दी नहीं की जाती, जिससे खेतों में जानवर, मवेशी तथा चोरों के जाने में रुकावट नहीं होती। खेतों की सीमा के सम्बन्ध में हमेशा झगड़ा हुआ करता है। खेतों में पुश्ते नहीं बनाये जाते इसलिए बरसात का पानी धीरे-धीरे खेतों को काटता रहता है। पश्चिमी बगाल तथा उत्तर-प्रदेश में तो लाखों एकड़ भूमि नदियों के कटाव के कारण नष्ट हो गई है। पानी के बहाव का भी ठीक प्रबन्ध नही होता है और किसी-किसी स्थान पर पानी रुक कर दलदल हो जाती है। खेतों पर इमारतें नहीं बनाई जातीं, जिससे बहुत हानि होती है।

(६) **खेती के पुराने-तरीके**—किसान परम्परागत ढग से खेती करता है। और जो नये तरीके हैं, उनको निर्धनता, अज्ञान के कारण नहीं अपनाता। खेत जोतने के लिए लकडी के हल का प्रयोग किया जाता है, जिसमें लोहे का फल लगा रहता है। इससे केवल ७"—८" जमीन खुदती है। खेत बराबर करने के लिए लकड़ी का पटरा होता है तथा बीज या तो छिड़क दिये जाते हैं या जुताई के साथ-साथ डाल दिए जाते हैं। 'सीडड्रिल' या 'सीडहोक्स' यन्त्रों का प्रयोग बहुत कम होता है। निराई तथा गुड़ाई के लिए खुरपी ही काम में लाई जाती है। काटने में भी किसी मशीन का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि हँसिया से फसल काटी जाती है। पशुओं द्वारा खलियान माँडा जाता है और हवा में उड़ा कर भूसा अलग निकाला जाता है। थ्रेशर्स (Threshers), विन्नोवर (Winnower) आदि का प्रयोग नहीं होता। इस प्रकार उसके सब यन्त्र पुराने हैं। नये यन्त्रो के प्रयोग से, जैसे—हल, पानी खींचने के पम्प आदि से कार्य-कुशलता अधिक बढ सकती है।

(७) **उत्तम बीजों की कमी**—किसान उत्तम बीजों का प्रयोग नहीं करता और बहुधा उसको मिलता भी नहीं है। वह गाँवों के बनियों या महाजनों से बीज लेता है, जो अच्छा नहीं होता, जबकि अच्छी उपज के लिए अच्छा, मोटा तथा स्वस्थ बीज आवश्यक है। परन्तु भारत के कुछ ही राज्यों में प्रगतिशील बीजों का प्रयोग १५% से अधिक नहीं है। १९५५-५६ तक ५·५ करोड़ एकड़ भूमि पर सुधरे किस्म के बीजों का उपयोग किया जाता था।[४]

भारतीय कृषक बीजों के सम्बन्ध में भी बेफिकर है और वह अच्छे बीजों को रखने के लिए प्रयत्नशील नहीं है। वास्तव में परिस्थितिवश उसे ऐसा करना

---

4. Grow More Food Enquiry Committee Report, 1952 p. 127; Third Five Year Plan, p. 312.

पडता है और फिर उसे महाजनों या बनियों से ऊँचे दाम पर अच्छे किस्म का बीज नहीं मिलता, जिसका परिणाम फसलों पर होता है।

(८) **पशुओं की दशा**—यद्यपि भारतीय कृषि मे गाय और बैल का बहुत अधिक महत्व है। उनके बिना खेतो की जुताई नहीं हो सकती, कुंओं से सिचाई नही हो सकती और न फसलों के भण्डार ही भरे जा सकते हैं और न हमारे भोजन के लिए दूध जैसा पौष्टिक पदार्थ ही मिल सकता है। किन्तु फिर भी हमारे यहाँ पशुओं की दशा अच्छी नहीं है। समस्त भारत में ३०० करोड़ पशु हैं। इनमें से आधे प्राय गिरी हुई हालत में है, जो खेती को किसी प्रकार की सहायता नहीं पहुँचा सकते।

पशुओं की खराब अवस्था होने का मुख्य कारण चरागाहों की लापरवाही, दोषपूर्ण जनन किसानों की निर्धनता एवं अशिक्षा है। उदाहरणार्थ, उत्तर-प्रदेश में जगलों को काट कर पहाडियों पर भी खेत बनाये गये हैं। चरागाहों के ठीक न होने से पशुओं की कमी होती जा रही है। इसके अलावा कृषि भी ऐसी की जाती है जिससे भूसा आदि अधिक नही मिलता, ताकि पशुओं की वृद्धि हो सके। साधारणतया चरागाहों में ५ महीने पशुओं की चराई हो सकती है। इसी तरह बगाल में प्राय: सभी स्थानों पर रास्तों के किनारे, तालाबो के आस-पास, खेतों की मेंड़ो पर ही पशु अपनी गुजर कर सकते हैं। जमीन का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो कृषि के उपयोग में न लाया गया हो। फसल काटने के वक्त कुछ समय के लिए अवश्य उन्हें खाने को मिल जाता है किन्तु बाकी समय में उनका कुछ भी प्रबन्ध नहीं होता। परिणामस्वरूप पशुओ की दशा गिरती जा रही है।

चारे की कमी के कारण पशुओं की नस्ल भी बहुत खराब है, क्योंकि हमारे शहरों व गाँवों मे जो बेकार तथा खराब जाति के सांड़ घूमा करते है, उनमे ही सन्तानोत्पत्ति होती हैं। फलस्वरूप नई नस्लें बिगड़ती जाती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पशुओं की बीमारी भी सहायक होती है। इन्हीं कारणों से हमारे पशु खेतों के कार्यों के लिए पूर्ण रूप से लाभदायक सिद्ध नहीं होते। इसीलिए भारत में पशुओं की प्रति १०० एकड़ में सख्या ७५ है, जबकि हॉलैंड मे यही सख्या ३८, मिश्र में २५ है।

(९) **जन-संख्या में वृद्धि और बोई हुई भूमि में कमी**—भारत की जन-संख्या बड़े वेग से बढ़ रही है, अतएव जब तक इस पर रोक थाम न हो, तब तक हिन्दुस्तान की खाद्य-समस्या हल नही हो सकती। सच बात तो यह है कि पहले की अपेक्षा सभी देशों की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई है लेकिन साथ ही उन देशों में खाद्य-सामग्री का उत्पादन भी बढ़ा है। इन देशों में शक्ति को सचित रखते हुये थोड़ी मेहनत से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के साधनों में भी उन्नति हुई है।

देश	प्रति मनुष्य पीछे भूमि का भाग (एकड़)
जापान	०.३६
चीन	०.४४
भारतवर्ष	०.८०

सोवियत रूस	४ २
अमेरिका	३·३
कनाडा	२·८९

यह भी उल्लेखनीय है कि एक ओर तो कुल कृषि भूमि के साथ खाद्यान्न के अन्तर्गत कृषि भूमि का अनुपात तो कम हो रहा है और दूसरी ओर व्यापारिक फसलों के उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि हो रही है।

(१०) **सहायक उद्योग-धन्धों की नितान्त कमी**—भारत में ऐसे व्यक्ति अधिक हैं जो बिना जमीन के है और जो मेहनत-मजदूरी करके पेट पालते हैं। उन्हें खेतों में काम साल के कुछ ही महीनों में, जब फसलें बोई और काटी जाती हैं, मिलता है। बाकी वर्ष के अन्य समय में वे बिल्कुल बेकार रहते हैं क्योंकि कृषि के साथ साथ चलने वाले धन्धों की बड़ी कमी है। फलतः यह समय ये मजदूर व्यर्थ मे खो देते हैं। फसल नष्ट होने या ओले पड़ने या अकाल होने पर तो इनकी दशा और भी बुरी हो जाती है क्योंकि खेतों में पूरे साल भर भी इनको यथेष्ठ काम नहीं मिल सकता। डा० राधाकमल मुकर्जी के अनुसार, "उत्तरी भारत में केवल २०० दिन के लिए खेतों में काम मिलता है।" डा० स्लेटर के मतानुसार, "साल भर में केवल ५ महीने ही मद्रासी काश्तकार खेती में लगे रहते हैं।" मैजर जैक के कथनानुसार, "बंगाल में जब किसान जूट नहीं बोता है तब वह ९ महीने फालतू रहता है, किन्तु अगर वे जूट और चावल बो देते है तो उन्हें जुलाई और अगस्त में ६ सप्ताह के लिए और कार्य मिल जाता है।" श्री कीटिंग का कहना है कि "दक्खिन बम्बई में १८०-१९० रोज के लिए खेतों में अधिक कार्य रहता है।" पंजाब में श्री कैलवर्ड के अनुसार, "साल भर में सिर्फ १५० दिन का ही काम रहता है।" रॉयल कृषि कमीशन के अनुसार किसानों को साल भर में ४ महीने तक कोई काम नहीं रहता वे इस समय को व्यर्थ ही शादियों, झगड़ों और आलस्य में गवाँ देते हैं, अतः भूमि पर और भी अधिक भार बढ़ जाता है।

(११) **फसल के रोग और शत्रु**—यदि खेत अच्छी तरह से न जोता जाय, अच्छी खाद न डाली जावे या कम खाद डाली जावे, आवश्यकता से अधिक या कम पानी दिया जावे तो फसल निर्बल हो जाती है और उसमें कीड़े लग जाते हैं। उदाहरण के लिए, चावल में फूट रॉट (Foot rot) और ब्लास्ट (Blast) कीड़े, गन्ने में मोसेक (Mosaic) और रेड रॉट (Red rot), मकई में स्मट्स (Smuts), मूँगफली में विल्ट (Wilt) आदि। इन कीड़ों से फसल को बड़ा नुकसान होता है। एक जगह फसल में कीड़े लग जाने से अन्य स्थानों की फसल पर भी प्रभाव पड़ता है। ये कीड़े पौधों की जड़ों से मिलने वाले भोजन को खा जाते हैं जिससे पौधा अच्छी तरह नहीं बढ़ पाता। कई प्रकार के अन्य कीड़े, जैसे—टिड्डियाँ, घास टिड्डे (Grass Hoppers), छोटे-छोटे चींटे तथा दीमक आदि भी फसल को समूचा ही नष्ट कर देते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि कीड़े समस्त पृथ्वी की दस प्रतिशत फसलों को नष्ट कर देते हैं। केवल भारत में ऐसी हानि सन् १९२१ में १३,६०, ००,००० पौंड की कूती गई थी।

कहीं-कहीं बन्दर, सूअर, गीदड़, चूहे तथा जंगली जानवर भी खेतों को बहुत हानि पहुँचाते हैं। रॉयल कमीशन के अनुसार तत्कालीन बम्बई राज्य में इनसे प्रति

वर्ष ७२० लाख रुपये का हानि होती थी। उत्तर प्रदेश और मध्य-प्रदेश में यह हानि और भी अधिक होता है। परीक्षा से मालूम हुआ है कि एक चूहा साल में ६ पौंड अनाज नष्ट करता है और भारत में कुल ८० करोड चूहे माने जाते है। अत: उनसे एक वर्ष में २२ करोड़ रुपये की हानि होती है। फसलों के इन शत्रुओं से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि खेतो मे बाड़े लगाई जावें और कीटाणुनाशक द्रव्यों का उपयोग किया जाय।

(१२) **प्राकृतिक कारण**—भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है अत: जिस वर्ष मानसून ठीक समय पर नहीं आते तो हमारे कृषि कार्य बिल्कुल रुक जाते हैं और कभी-कभी तो अकाल पड़ जाता है। अनुमान है कि प्रति पाँच वर्ष में एक वर्ष अच्छा, एक बुरा और तीन अनिश्चित वर्ष होते है। अतः हमारी फसलें कभी तो अच्छी और कभी औसत से भी कम होती हैं। कई बार अधिक वर्षा होने असामयिक वर्षा होने, ओले गिरने या बाढ आने के कारण भी फसलें नष्ट हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में किसान के लिए अधिक ब्याज पर ऋण लेने के अतिरिक्त और कोई चारा नही होता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमको सन् १९६३ की वर्षा से मिलता है, जिसमें फसलों को अत्यधिक हानि हुई है।

(१३) **पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं का अभाव**—भारतीय कृषि वर्षा पर निर्भर रहती है अत: मानसून का कृषि कार्यो में विशेष महत्व है। अच्छे वर्ष में पानी की विशेष आवश्यकता नहीं होती किन्तु सूखे समय में सिंचाई आवश्यक हो जाती है। यद्यपि भारत में सिचाई का क्षेत्रफल ६७५ लाख एकड़ भूमि है, जबकि सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में २०० लाख एकड़, रूस मे ८० लाख, जापान में ७० लाख, मिश्र में ६० लाख, मेक्सिको में ५७ लाख और इटली मे ४०.५ लाख एकड़ भूमि है। फिर भी यह मात्रा हमारे लिये पर्याप्त नहीं है क्योकि केवल १६% भाग पर ही सिंचाई की जाती है अत: देश के विभिन्न भागों में ठीक समय पर फसलों को पानी न मिलने से प्राय: एक न एक फसल नष्ट होकर खाद्यान्नो की कमी हो जाती है।

(१४) **क्रय-विक्रय की असुविधाये**—साधारणत: खेती की पैदावार देश में ही खप जाती है, क्योंकि अभी तक हमारे यहाँ खेती व्यावसायिक पैमाने पर नहीं होती। इसके अलावा हमारे यहाँ अन्य देशों की तरह मिश्रित खेती भी नहीं होती, ताकि कई तरह की पैदावार मिल सके। ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं कि बड़ी मात्रा में कृषि उत्पादन विदेशों को भेजे जा सकें। मोटे रूप में हमारे यहाँ पैदा होने वाली चाय और कॉफी का तीन-चौथाई भाग, कपास का दो-तिहाई भाग, जूट का एक-तिहाई भाग, अलसी का आधा भाग और मूँगफली का पाँचवां भाग विदेशों को निर्यात होता है। आम तौर पर किसान अपने खाने के लिए रखकर बाकी पदार्थो को अपने पुराने कर्ज चुकाने, लगान देने तथा अन्य आवश्यक कार्यों के लिए बेच देते हैं। यही अतिरिक्त पदार्थ नगरवासियों का भरण-पोषण करते हैं।

भारत का कृषि उद्योग ऐसे करोड़ों व्यक्तियों के हाथ में है जिन्हें न तो इस बात की शिक्षा ही मिली है कि अच्छे ढंग से और सुचारु रूप से विशेष लाभ के लिए किस प्रकार उत्पादन किया जाय और न वे अपनी दरिद्रता के कारण खेती सम्बन्धी वैज्ञानिक तरीकों, सूचनाओं तथा वस्तुओं के भाव-ताव सम्बन्धी बातों से ही परिचित होते हैं। फलतः किसान के अज्ञान का लाभ व्यापारी उठाते हैं। हमारे निर्यात

व्यापार में इतने अधिक दलालों का हाथ रहता है कि वे किसान से मनमाना फायदा उठाते है। गरीब किसान अपने खेतो और गिरी हुई आर्थिक अवस्था के कारण इतना अधिक उपज नही कर पाता कि वह बड़ी-बडी मण्डियों मे जाकर अच्छे भाव पर बेच सके। दलालों की अधिकता और माल बेचने मे कई अस्वस्थ तरीकों का प्रयोग होने से गरीब किसान को अपने एक रुपये की फसल में से सिर्फ नौ आने ही मिल पाते हैं और बाकी रुपया दलालों, तुलावटियों धर्मादा, पल्लेदारों म्यूनिस्पिल टैक्स आदि खर्चो में ही समाप्त हो जाता है। विशेषकर बगाल, बिहार, उडीसा, उत्तर प्रदेश व पजाब में अधिकतर माल इन दलालों की सहायता से बेचा जाता है। कभी कभी तो महाजन किसानों को इस शर्त पर रुपया देते हैं कि फसल पकने पर उनको ही बेची जायेगी। इस प्रकार के कार्यो मे गरीब किसान को अधिक हानि होती है क्योंकि उसे अपनी फसल का पूरा लाभ नही मिलता। इसका मुख्य कारण माल बेचने की पर्याप्त सुविधाओं का न होना है। बाजारों मे कई प्रकार के बाँट काम मे लाये जाते हैं। कभी-कभी तो खरीदने और बेचने के बाँट भी अलग-अलग होते है। इसके अलावा किसान से माल खरीदते समय कई प्रकार की कटौतियाँ की जाती है, जैसे- तुलाई, बिनई, पल्लेदारी, धर्मादा, खाता दलाली, आढत, करदा आदि। इनके अलावा चौकीदार, भंगी, मुनीम, भिश्ती, आदि सभी को इसमें से कुछ न कुछ चुकाना पड़ता है। फलत किसानों को काफी हानि होती है और उसकी उपज का ४२ ३ से ५.३७ प्रतिशत दलालों और आढ़तियों की जेब में चला जाता है। १ अक्टूबर सन १९५८ से बाँटों की नई प्रणाली लागू की गई है।

(१५) **कृषि पूंजी का अभाव**—कृषक के पास कृषि में विनियोग के लिए पर्याप्त पूँजी नही होती इस कारण वह खेतों के लिए खाद नही खरीद सकता है और न पशुओं को खिला-पिला ही सकता है। सिंचाई के लिये पानी प्राप्त नहीं कर सकता है और न अधिक उपयोगी कीमती औजार ही खरीद सकता है। भारतीय किसान विस्तृत खेती करता हैं। चीन और जापान के किसानों की तरह गहरी खेती नही कर सकता। इन कारणों से भारत में खेती की औसत उपज कम है।

(१६) **भारतीय किसान साधक या बाधक**—भारत में कृषि की अवनत अवस्था के कारण कृषक की दशा अत्यन्त शोचनीय है। वस्तुस्थिति म अनेक लोग इसका मुख्य कारण किसान का मानते है। भारतीय किसान को मूर्ख अपने धन्धे के विषय मे कुछ भी न जानने वाला और अत्यन्त रूढ़िवादी कहा जाता है। आरम्भ में कृषि-विभाग भी समझता था कि भारतीय किसान खेती करना नहीं जानता किन्तु सर्व-प्रथम कृषि विशेषज्ञ डा० वोयल्कर ने भारतीय किसान की प्रशसा करते हुए कहा है "भारतीय किसान खेती के सम्बन्ध मे पूरा ज्ञान रखता है और जिन विपरीत परिस्थितियों में उसे उद्योग चलाना पड़ रहा है, उनको देखते हुए वह श्रेष्ठ किसान है। भारत का किसान ब्रिटेन के किसान की बराबरी नही करता किन्तु वह उससे कुछ बातों में बढ़ जाता है। उनका कहना है कि उन्होंने भारत जैसा मेहनती और होशियार किसान नहीं देखा, जो इतनी लगन और सावधानी से खेती करता हो।" क्रमशः अब तो कृषि विभाग के अधिकारी भी इस बात को मानने लगे है कि भारतीय किसान को साधारणत. खेती बारी के सम्बन्ध में कुछ और नही सीखना, परन्तु वैज्ञानिक खेती के लिए उसे कुछ नई आवश्यक बातें अवश्य सीखनी होंगी।

उत्तम बीज, खाद, हल, बैल, गहरी जुताई और चकबन्दी के लाभ को वह न जानता हो यह बात नहीं है किन्तु जिस निर्धनता और उपेक्षा के वातावरण में वह जीवन व्यतीत कर रहा है, उसमें वह खेती की उन्नति नहीं कर सकता। इन विषम परिस्थितियों के कारण वह निराशावादी और भाग्यवादी हो जाता है। फिर भी जिस सहनशीलता और लगन का वह परिचय देता है, वह केवल सराहनीय ही नहीं अपितु इस बात की सूचक है कि पूर्ण सुविधाएँ होने पर वह अन्य देशों की तुलना में भी सफल हो सकता है।

यह सर्व विदित है कि आज का किसान सर्वथा अपढ और अशिक्षित है तथा उसके खेती करने का ढंग अत्यन्त पुराना है। वह सफाई की ओर विशेष ध्यान नहीं देता। फलस्वरूप वह अनेक रोगों का शिकार हो जाता है तथा उनसे ग्रसित होकर अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर लेता है और उसकी कार्यशक्ति में बहुत कमी आ जाती है।

समस्या का हल

संयुक्त-राष्ट्र-संघ के कृषि और खाद्य विभाग के डाइरेक्टर श्री एन० सी० डॉड ने भारत की कृषि उन्नति के लिए निम्न सुझाव दिये है : (१) जंगलों को काटने की प्रणाली पर कड़ा नियन्त्रण कर भूमि कटाव को रोका जाय। (२) नल-कूपों द्वारा सिंचाई के क्षेत्रों मे वृद्धि करना। (३) रसायनिक खाद के उपयोग मे वृद्धि करने की अपेक्षा दाल वाली फसलों का अधिक उपयोग किया जाय, जिससे उनके द्वारा नाइट्रोजन संग्रह करने तथा पानी को अधिक समय भूमि में रहने की प्रणाली का विकास हो। (४) खेती मे मशीन का प्रयोग खेतों के नये टुकड़े तक ही सीमित कर देना भारत की सम्पूर्ण कृषि में मशीनो का प्रयोग करना एक मूर्खता का कार्य है क्योंकि इससे भारत में एक लम्बे समय में प्रचलित खेती के उपयोग में बाधा उपस्थित हो सकती है।

इस स्थिति का सामना करने के लिए उचित उपाय तो यही है कि देश में काफी उत्पादन किया जाय और देश को खाद्यानों की वृद्धि से आत्म-निर्भर बनाया जाय। यह कार्य तीन प्रकार से किया जा सकता है :—

(१) कृषि के अन्तर्गत भूमि का क्षेत्रफल बढाकर।

(२) भूमि की प्रति इकाई से उत्पादन बढ़ाकर।

(३) वर्तमान कृषि योग्य भूमि को अनुत्पादक होने से बचाकर।

(१) कृषि के अन्तर्गत भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाकर—कृषि के अन्तर्गत भूमि में वृद्धि करने का अर्थ यह होगा कि बेकार भूमि और कृषि-योग्य भूमि पर (जो २५% होती है) कृषि की जाय। निस्सन्देह यह वांछनीय है। अतः इस प्रकार की भूमि पर खेती करने के पहले यह मालूम करना होगा कि किन कारणों से वह बेकार थी। सम्भव है किन्हीं भागों में कम वर्षा, किन्हीं में अधिक और किन्हीं में कीड़े-मकोड़े या बीमारियों के अथवा घास-काँस के कारण खेती न की जा सकी हो। अतः इन कारणों का पता लगाकर कौन से तरीके काम में लाये जायँ, इसको सोचना होगा ? इसके अतिरिक्त बेकार जमीन पर खेती करने का उपाय होना आवश्यक है। ऐसी भूमि

को जो नदियों, तालाबों और रेल मार्गों के दोनों ओर बेकार पड़ी हैं, उसका पूरा ब्यौरा मालूम कर किसानों को या ऐसे व्यक्तियों को दे दी जाय जो उस पर शीघ्र से शीघ्र खेती कर सकें अथवा वहाँ जल्दी उगने वाले वृक्षों को लगा कर बढ़ती हुई ईंधन की समस्या को हल करें। केन्द्रीय सरकार की ट्रैक्टर व्यवस्था कमेटी ने इस सम्बन्ध में काफी सराहनीय कार्य किया है। अब तक तराई, मध्य-प्रदेश और राजस्थान संघों के एक बड़े भाग की भूमि को ट्रैक्टरों द्वारा कृषि योग्य बना दिया गया है। ऐसा अनुमान है कि यदि बेकार और बंजर भूमि के कम से कम चौथाई भाग पर ही खेती की जाय तो हमारी खाद्यान्न उत्पत्ति काफी सीमा तक बढ़ सकेगी।

कुछ लोगों का अनुमान है कि इस प्रकार की कुल भूमि वास्तव में देश की जन-संख्या की तुलना में बहुत थोड़ी है, जिसमें अधिकांश की दशा ऐसी है कि उस पर कृषि करने से कोई बचत नहीं होगी। दूसरे, इस प्रकार की भूमि का उचित रूप से विकास करने के लिए दीर्घकालीन कार्यक्रम बनाने पड़ेंगे। उनके अनुसार यदि इस प्रकार की सारी प्राप्य भूमि कृषि के अन्तर्गत कर ली जाय तो भी इन पर उत्पन्न होने वाली फसलों से देश के उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी और न खाद्य समस्या में ही सुधार होगा।

(२) **भूमि की प्रति इकाई से उत्पादन बढ़ा कर**—इससे निश्चय ही लाभ होने की सम्भावना है। भारत में प्रति हैक्टेअर चावल की उपज बहुत ही कम होती है जबकि थाईलैंड, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, मिश्र, जापान, स्पेन में और इटली में यह कई गुना अधिक होती है। इसी प्रकार अन्य फसलों की भी यही दशा है। फिर यह प्रश्न उठता है कि दूसरे देशों में प्रति हैक्टेअर उत्पादन का स्तर इतना ऊँचा है तो यह भारत में ही क्यों नहीं हो सकता। इस प्रश्न पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि फसलों को उगाने की प्रणाली में ही कोई बड़ा दोष है जो न्यून उत्पादन के लिये उत्तरदायी है। जब तक इन दोषों को दूर नहीं किया जा सकता तब तक खाद्य-समस्या के हल करने की आशा करना व्यर्थ है।

सभी राज्यों में सिंचाई के पर्याप्त साधन प्राप्त नहीं हैं। अतएव सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि जिन-जिन भागों में वर्षा कम होती है वहाँ सिंचाई के साधन प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत किये जायँ। उदाहरण के लिये, दक्षिण भारत में भूमि के असमतल होने के कारण पहाड़ियों के बीच बाँध बना कर वर्षा का पानी रोका जा सकता है। पहाड़ी भागों में भी सोतों, नदियों तथा नालों को रोक कर तालाब की आकृति के बाँध बनाये जा सकते हैं अथवा सरकार अपनी ओर से तकाबी देकर ट्यूब-बैल बनाने में मदद कर सकती है। इसके अतिरिक्त वर्तमान कुँओं की मरम्मत की जानी चाहिए अथवा उसके निकाले जाने वाले पानी का उपयुक्त उपयोग किया जाय, जिससे सींची हुई भूमि से थोड़े ही समय में दो फसलें मिलने लगेंगी और प्रति एकड़ उपज में काफी वृद्धि होगी।

वर्षा की कमी सूखी खेती को प्रणाली को अपनाकर भी दूर कर सकते हैं। इस तरह के प्रयोग इन्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्च द्वारा पंजाब में रोहतक, बम्बई, शोलापुर, बीजापुर, हैदराबाद, रायपुर और मद्रास में हजारों केन्द्रों पर किये गये हैं। इस प्रणाली से न सिर्फ औसत वर्ष में ही उत्पत्ति की जा सकती है, अपितु सूखे वर्षों में भी कुछ न कुछ पैदा किया जा सकता है।

यह कहा जा सकता है कि अन्य बातों में सुधार करने से भी इस प्रकार की सफलता मिल सकती है। प्रत्येक फसल के साथ कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनका पूर्व उपयोग फसल की अधिक से अधिक प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है, जैसे खाद इसका दूसरा उदाहरण है। भिन्न-भिन्न कमेटियों और विद्वानों ने बार-बार इस ओर संकेत किया है कि भारतीय मिट्टी मे नेत्रजन की कमी है। डा० बर्न ने अनुमान लगाया है कि भारत में प्रति वर्ष २६ लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़नी है। यह पूर्ति १३२ टन अमोनियम सलफेट अथवा ५२·६० लाख टन गोबर की खाद से पूरी की जा सकती है। डा० आचार्य के अनुसार यदि बबूल खेजडा आदि जल्दी पनपने वाले वृक्षों को लगाकर गोबर को जलाने से बचाया जा सके तो प्रति वर्ष हमको इस अतिरिक्त गोबर की खाद से १०० प्रतिशत नाइट्रोजन मिल सकता है, जिससे खाद्यानों में १०० लाख टन की वृद्धि की जा सकती है। इसके अलावा किसान खाद की कमी अपने खेत और पशुओं के वाड़े में मैले और कूडे कर्कट से कम्पोस्ट बनाकर स्वयं खाद की पूर्ति कर सकते है। डा० सी० एन० आचार्य के अनुसार, "भारत के ५,००० शहरों में लगभग ६ करोड़ व्यक्ति रहते है, यदि उनके मैले को कम्पोस्ट बनाने में उपयोग किया जाय तो प्रति वर्ष १०० लाख टन उत्तम खाद मिल सकती है, जिससे उत्पादन में १० लाख टन की प्रति वर्ष वृद्धि होगी।"

कम्पोस्ट के अलावा तिलहन की खाद भी काम में लाई जा सकनी है। इसके अलावा खेती में हरी खाद, ढैचा, गवार, सनई, नील, सोयाफली आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। विदेशों में खेतों की उर्वरा शक्ति बढाने के लिए बनावटी खादों का भी प्रयोग किया जाता है, किन्तु भारत मे उनका प्रयोग खर्चीला और मुश्किल होता है। कई विद्वानों का कहना है कि खेतों को बनावटी खादों से दूर रखा जाय। अमेरिका में डा० क्लार्क और रौलट, इङ्गलैण्ड के डोलमेट और मौकगेड तथा भारत में डा० मैकरीसन तथा बी० बी० नाथ का तो कथन है कि खेतों में निरन्तर बनावटी खाद देने से यद्यपि दो फसलें पैदा होती हैं फिर भी उनमें उतने पोषक तत्त्व नहीं होते, जितने गोबर और अन्य खादों से तैयार की गई फसलो में होते है। फिर भारत के किसान गरीब हैं उनके लिए इस खाद का उपयोग असम्भव है। अतः वर्तमान समय में खेतों से अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न करने चाहिए। इस सम्बन्ध में चीन और जापान मे जो किया जाता है वह भारतीय किसानों के लिए सर्वथा अनुकरणीय है। वहाँ खाद की कमी को पूर्ण करने के हेतु पेड-पौधों की पत्तियाँ, उनकी शाखायें, घास, चिथड़े, अन्य सडे-गले पदार्थ, राख, चूना आदि सभी प्राप्य वस्तुयें खाद बनाने के काम मे लाई जाती है। भारत में भी इस प्रकार का प्रयत्न होना चाहिए कि जो खाद बनाई जावे उसका वितरण म्युनिसपैल्टियों, ग्राम पंचायतों और सरकारी समितियों द्वारा हो।

कृषि के लिए उन्नत किस्मों की फसलों को अपनाना चाहिए। उदाहरण के लिए, अमेरिका में अब तक गेहूँ की ५० नई जातियाँ निकाली गई है, जो बीमारियों, पशुओं, अनावृष्टि अथवा सर्दी के कोहरे के अन्तर से मुक्त है। इस उन्नत जाति के बोने से वहां काफी वृद्धि हुई है। सर रसल का कहना है कि उन्नत बीजों द्वारा पैदावार मे कम से कम ९० प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है। भारत में गेहूँ, गन्ना, चावल और कपास की कुछ सुप्रसिद्ध उन्नत जातियों को विस्तृत रूप से सफलतापूर्वक अपनाना भी यह प्रकट करता है कि अन्य फसलो में भी इस प्रकार के परिवर्तनो की सम्भावनायें हैं।

विशेष जाति का चुनाव करते समय केवल उपज प्राप्ति का ही नहीं बल्कि रोग, अनावृष्टि तथा बाढ सहन करने की प्रवृत्तियों पर भी विचार करना चाहिए। ऐसा अनुमान है कि उन्नत जाति के बीजों को बोने से गेहूँ, चावल व जूट की पैदावार में औसतन, २ मन की वृद्धि हुई है। इस प्रकार ज्वार व बाजरा में १ मन, मूँगफली में १'७५ मन, बिनौला मे ०'५ मन तथा गन्ने में २०० मन की वृद्धि हुई है।

(३) **कीड़ों व पशुओं से फसल का बचाव**—वर्तमान समय में अनेकानेक कीड़ों, चिड़ियों, टिड्डियों, दीमक अथवा पशुओंद्वारा भी हमारी फसल में कमी हो रही हैं। अतः इनको रोकने के उपाय होना आवश्यक है। दीमक आदि कीड़ों को रोकने के लिए खेतों में फसलो को हेर-फेर के साथ बोया जाय अथवा गहरे हल चला कर व्यर्थ घास-फूस को खेतो से निकाल दिया जाय। पानी के लिए उपयुक्त नालियाँ बनाई जायँ और जो पौधे सूख जायँ उन्हें शीघ्र ही हटा दिया जाय। फसलों को जंगली पशुओं से बचाने के लिए खेत के चारों ओर कटीले तारों की मजबूत बाढ़ लगाई जावे, परन्तु रात में फसलों की रखवाली करना भी जरूरी है। फसलों में कब कीड़े लगते हैं और उनको कैसे दूर किया जा सकता है, इसके लिए देख-रेख आन्दोलन चालू किया जाय जो समय-समय पर किसानों को इससे सूचित करते रहें। इन कार्यो से फसल की सुरक्षा होकर उत्पादन में वृद्धि अवश्य होगी।

आस पास के लगे हुए खेतों के किसान आपस में मिलकर सम्मिलित खेती करें तो औजार, पशु आदि के खर्च मे कमी आ जायगी तथा इस बचे हुए धन को भूमि के सुधार में लगाया जा सकता है।

(४) **अन्य कार्य**—किसान अपने काम मे पूरी रुचि लें, इसलिए यह जरूरी है कि जिस जमीन को वह जोतता है उस पर उसका हक हो, तभी वह अपनी खेती समझ कर सुधार कर सकता है। इस तरह खेतों की प्रति एकड़ पैदावार अधिक होकर हमारी खाद्य-समस्या का हल हो सकेगा तथा विदेशो विनिमय की बचत हो सकेगी।

योजनाओं के गअन्तत कृषि कार्यक्रम

कृषि व्यवस्था के उत्थान के लिए देश को पंच-वर्षीय योजनाओं में कृषि उद्योग के विकास एवं सुधार को पर्याप्त स्थान दिया गया है। फलस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। तीसरी योजना में भी कृषि नीति का लक्ष्य यही है कि बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध हो सके तथा विकसित औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के लिए आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध हो एवं कृषि पदार्थों का विदेशों को निर्यात सम्भव हो। योजना कालीन कृषि नीति के प्रमुख तत्त्व निम्न है:—

(१) भूमि उपयोग का नियोजन।

(२) दीघकालीन एव अल्पकालोन लक्ष्यों का निर्धारण।

(३) योजना के अनुसार विकास कार्यक्रमों, भूमि-उपयोग योजना, खाद का बँटवारा, उत्पादन, लक्ष्यो की पूर्ति के लिए सरकारी सहायता को सम्बन्धित करना, तथा

(४) समुचित कृषि मूल्य नीति का निर्धारण।

दूसरी योजना के अत में कृषि उत्पादन का सूचनांक १९४९-५० के आधार पर १३५ था—खाद्यानों का सूचनांक १३२ और अन्य फसलो का १४२ था। प्रथम योजनाकाल में कृषि उत्पादन मे १७% की वृद्धि हुई। दूसरी योजनाकाल में यह वृद्धि लगभग १६% की थी। द्वितीय योजनाकाल मे हुई वृद्धि का अनुमान इस प्रकार रहा है:—

कार्यक्रम	प्रगति
बड़ी और मझली सिंचाई योजनाओं द्वारा	६९ लाख एकड़
सिंचित्र क्षेत्रफल	९० ,,
छोटी सिंचाई योजनाओं द्वारा	
कृषि भूमि पर भूमि संरक्षण कार्य	२० ,,
भूमि पुनरुद्धार	१२ ,,
सुधरे बीजों के अन्तर्गत खाद्यान्न क्षेत्र	५५० ,,
नेत्रजन का उपभोग	२३० हु० टन०
फास्फेट ,,	७० ,,
नागरिक कम्पोस्ट उत्पादन	३० लाख टन
ग्रामीण कम्पोस्ट ,,	८३० ,,
हरी खाद का प्रयोग	११८ लाख एकड़

तृतीय योजना काल में जो लक्ष्य निर्धारित किये गये है उनके स्वरूप प्रति व्यक्ति पीछे खाद्यान्नों की उपलब्धता १९६०-६१ में १६ औस से बढ़कर १९६५-६६ में १७·५ औंस हो जायेगी तथा कपड़े का उपयग १५½ गज से बढ कर १७ गज किया जायेगा। खाद्य तेलों का उपयोग ०·४ एकड़ से बढ़ कर ०·५ एकड़ होगा।

प्रारभिक अनुमानों के अनुसार कुल बोई गई भूमि का क्षेत्रफल ३२·७० करोड़ एकड़ से बढ़ कर ३३·५० करोड़ एकड़; एक से अधिक बार बोये जाने वाला क्षेत्र ५·२ करोड़ एकड़ से बढ़ कर ६·७ करोड़ एकड़ हो जायगा तथा कृषि योग्य बजर भूमि का क्षेत्रफल ४·७ करोड़ एकड़ से घट कर ४·१ करोड़ होगा।

अध्याय २७

कुटीर एवं बृहत् उद्योगों का विकास

(EVOLUTION OF COTTAGE AND LARGE SCALE INDUSTRIES)

कुटीर उद्योगों की प्राचीन स्थिति

भारतीय कुटीर-उद्योग प्राचीन अवस्था में उन्नत दशा में थे तथा कुटीर निर्मित वस्तुये विदेशों में निर्यात होती थी। इससे भारत की कुशलता एवं उद्योग-शीलता का परिचय देश के कौने-कौने में हो चुका था जिसका इतिहास साक्षी है। भारतीय कुटीर निर्मित माल ये हैं :—पीतल तथा अन्य धातु की वस्तुयें, हाथी-दाँत की पच्चाकारी, चित्र-कला, मलमल आदि। सूती वस्त्रोद्योग का महत्त्व विदेशों में भी था। इसी कारण भारतीय उद्योगों के माल की माँग विदेशों में बहुत अधिक थी। बनारस को जरी, सोने और चाँदी के तार का काम भी विख्यात था। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध में मुगलकालीन यात्री ट्रेवनियर लिखता है : "भारत-निर्मित वस्तुयें इतनी सुन्दर थीं कि वे तुम्हारे हाथ में हैं, यह ज्ञान किंचित ही होता था। वह अतीव कोमलता से काते गये तारों से बुना जाता था तथा १ पौंड रुई में २५० मील लम्बा कपड़ा बुना जाता था।" प्रो० बेवर लिखते हैं :—"बहुत प्राचीन काल से बारीक कपडा बुनने, रंगों का मिश्रण करने, धातुओं और बहुमूल्य रत्नों पर काम करने और इसी भाँति की अनेक कलाओं में निपुणता दिखाने में भारतवर्ष के कारीगर संसार में विख्यात रहे हैं। मिस्र में ईसा से २,००० वर्ष पूर्व के शव उच्च कोटि की भारतीय मलमल में लपेटे हुए पाये गये। रोम में भारतीय माल की खपत बहुत होती थी और ढाका की मलमल से यूनानी परिचित थे जिसे वे गँजेटिका (गंगा वाले देश की) कहते थे।" दिल्ली में पाया गया लौह-स्तम्भ भी भारतीय लोहा उद्योग की प्राचीन उन्नति का परिचायक है। इसी प्रकार आधुनिक औद्योगिक पद्धति के जनक पश्चिमी यूरोप में जब असभ्य जातियों का निवास था, उस समय यहाँ के शासकों की सम्पत्ति एवं शिल्पियों की उच्च कलात्मकता के लिए भारत प्रसिद्ध था।

कुटीर-उद्योगों की अवनति

कुटीर-धन्धों की अवनति का प्रारम्भ उसी समय से होता है जब भारत में अंग्रेज व्यापारियों ने व्यापार करने के लिए मुगल बादशाह से आज्ञा-पत्र प्राप्त किया। आज्ञा-पत्र पाने के बाद अँग्रेज व्यापारियों ने भारत में अपना व्यापारिक आसन मजबूत बनाना आरम्भ किया। धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यवसाय करने के हेतु यहाँ आई। यह अपना व्यापारिक सिंहासन जमाकर राजकीय सत्ता हथियाने के प्रयत्न करने लगी। इस प्रकार अपनी कूटि-नीति से १७ वीं शताब्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपना राजनीतिक आसन यहाँ जमाया और क्रमशः राज-सत्ता का विस्तार

करने लगी। यहीं से हमारे कुटीर-उद्योगों के इतिहास में नये अध्याय का आरम्भ हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने ऐसी राजनैतिक एवं आर्थिक नीति अपनाई कि कुटीर-उद्योगों की अवनति होने लगी। फिर भी १९ वीं शताब्दी तक भारत में रेशम, ऊन, सूती वस्त्र-उद्योग तथा ऐसे अन्य कतिपय कुटीर-धन्धे राजा एव नवाबों के आश्रय के कारण ही काफी प्रगति पर थे। उनकी माँग के कारण ही ये उद्योग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में भी जीवित रह सके।

अवनति के कारण

(१) **राजा एवं नवाबों का अन्त**—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास राजनीतिक सत्ता आ जाने से भारतीय नवाब एवं राजाओं, कुटीर-धन्धों के माल की माँग नष्ट प्रायः हो गई। इससे कुटीर-धन्धों को गहरा आर्थिक धक्का लगा। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भी छोटे-छोटे राजाओ एवं नवाबों की राजधानियाँ प्राचीन कला-कौशल की केन्द्र थीं और वहाँ इन शिल्पियों को आश्रय मिलता था। किन्तु लॉर्ड डलहौजी की विनाशकारी नीति के कारण ये राज्य भी लुप्त हो गये जिससे बची-खुची कला-कौशल की माँग भी समाप्त हो गई।

(२) **ब्रिटिश शासन की आर्थिक एव औद्योगिक नीति**—कुटीर-उद्योगों का माल इतना सस्ता एवं आकर्षक था कि इतने पर भी उसके लिए (विशेषतः कपड़ा, छींट आदि) विदेशी माँग बनी रही इसलिए उन्होंने विशेष आर्थिक एव औद्योगिक नीति अपनाई जिससे कुटीर उद्योगों पर कुठाराघात हो :—

(अ) **मुक्त-व्यापार नीति**—१८ वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हुई जिससे इङ्गलैड का माल भारत में आने लगा। उन्होंने इस माल की खपत यहाँ बढ़ाने के लिए मुक्त व्यापार नीति अपनाना शुरू किया। फलतः भारतीय कुटीर-उद्योगों का माल विदेशी यन्त्र निर्मित वस्तुओं की प्रतियोगिता में असमर्थ हो हो गया।

(ब) **भारी अन्तर्राज्यीय कर**—भारतीय कुटीर-धन्धों को नष्ट करने के लिए भारत स्थित ब्रिटिश शासकों ने कुटीर-धन्धों के उत्पादन के प्रान्तीय आयात-निर्यात पर भारी कर लगा दिए जिससे वह माल भारत में ही मँहगा हो गया। इसके विपरीत इङ्गलैड के माल पर किसी प्रकार का कर नही था।

(स) **आयात-निर्यात कर**—इसके साथ ही इङ्गलैड के माल की खपत बढ़ाने के लिए इङ्गलैंड में बनी हुई वस्तुओं पर भारत मे किसी प्रकार का आयात-कर नहीं लगता था यदि था तो बहुत ही कम। इसके विपरीत भारत से भारतीय माल के निर्यात पर अधिक भारी कर लगा दिये गये जिससे विदेशों मे भारत का माल मँहगा होने से न बिक सके।

(३) **भारतीय माल पर इङ्गलैड में वैधानिक रोक**—साथ ही इङ्गलैंड ने अपने देश में एक ऐसी आर्थिक नीति का अवलम्बन किया जिससे भारतीय माल के उपयोग पर ही वैधानिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये। जो व्यक्ति इसका उल्लंघन करता था उसे दण्ड दिया जाता था।

(४) **भारतीय कारीगरों पर नियन्त्रण**—ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारत में शिल्पियों की कारीगरी पर भी नियन्त्रण लगाना शुरू किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी

के संचालकों ने कम्पनी के भारत स्थित अधिकारियों को आदेश दिया कि भारत में वस्त्र शिल्पियों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जावे जिससे वे केवल विशेष प्रकार का कपड़ा विशेष नम्बर के सूत से ही बुन सकें। बुनने की मर्यादा भी निश्चित कर दी गई। इस प्रकार के आदेशों का पालन बड़ी कड़ाई से होता था। यहां के अच्छे अच्छे शिल्पी कम्पनी की इच्छानुसार काम करने एवं अपना उत्पादन उनके निश्चित मूल्यों पर बेचने के लिए बाध्य किये गये। इसी प्रकार वे कोई भी माल बाजार में स्वतन्त्रता से तब तक नहीं बेच सकते थे, जब तक उस पर कम्पनी की मुहर न लगी हो।

(५) **विदेशी वस्तुओं की प्रतियोगिता**— जब सरक्षक नीति के फलस्वरूप इङ्गलैंड में औद्योगिक क्रांति सफल हो गई और वाष्प-चालित पुतली-घर रात-दिन काम करने लगे तब माल की उत्पत्ति बहुत बड़ी मात्रा मे होने लगी। इसकी खपत के लिए यह विस्तृत देश बाजार बनाया गया। यन्त्रशक्ति के सामने हाथ की शक्ति ठहर न सकी और हमारे देश के कारीगरों की जीविका छीन ली गई। हाथ के बुने हुए कपड़े की माँग बन्द हो गई क्योंकि मिल के सस्ते, चमकीले और भड़कीले कपड़ों ने सबको आकर्षित किया। इस प्रकार जो काम पहले दबाव से हुआ था अब प्रतियोगिता से सरलता से होने लगा। यह दशा केवल सूती कपडे की ही नहीं वरन् सभी धन्धों की हुई। हाथ की बनी चीजें सस्तेपन मे मिल की बनी चीजों की बराबरी नही कर सकती थी। खरीदने वालों का ध्यान चीजो की मजबूती और कला से हट कर सस्तेपन की ओर गया और स्वदेशी माल के बदले विदेशी माल की खपत बढ़ने लगी।

(६) **यातायात के आधुनिक साधनों की उन्नति**—स्वेज नहर के बन जाने से इङ्गलैंड आने-जाने का अन्तर कम हो गया और वहाँ से मिलों का माल शीघ्रता और सरलता के साथ यहाँ आने लगा। सन १९३० के बाद यहाँ के जहाजों का किराया घट गया था और इंगलैंड का तैयार माल बहुत सस्ती दर से जल्दी आने लगा था जिससे यहाँ के धन्धों को और भी धक्का लगा। धन्धे तो नष्ट हुए ही, विदेशी व्यापार विदेशी जहाज कम्पनियों के हाथ में चला गया जो अपने लाभ की दृष्टि से किराया लेती थीं। आवागमन के साधनों की उन्नति से जहां और देशों की आर्थिक दशा सुधरती है, वहाँ भारत की दशा और भी बिगडने लगी क्योंकि इस देश में आवागमन के साधन देश की आर्थिक उन्नति को ध्यान में रखते हुए उन्नत नहीं किये गये। रेल, तार, डाक,सडकें, जहाज सबका निर्माण और उनके संचालन की नीति एक ही थी, अर्थात् अंग्रेजी व्यापार की वृद्धि और वहां के तैयार माल की इस देश में खपत।

(७) **भारत सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति**— इस देश की अंग्रेजी सरकार ने यहाँ के धन्धों के प्रति केवल उपेक्षा ही नहीं दिखाई वरन् अप्रत्यक्ष रूप से उनको नष्ट किया। इंगलैंड के व्यवसायियों को भारतवर्ष के बाजार में माल भेजने के लिए प्रोत्साहन दिया गया और उनका माल सस्ती से सस्ती दर पर देश के कोने-कोने में पहुंचाने का प्रयत्न किया गया। इस देश का कच्चा माल इंगलैंड भेजा जाने लगा और उसी का तैयार माल वहाँ से आने लगा आन्तरिक व्यापार को नष्ट करके विदेशी व्यापार की वृद्धि की गई। जिन धन्धों के लिए यहाँ कच्चा माल था वे यदि यहाँ खोले गये होते और सरकार द्वारा उनको प्रोत्साहन मिलता तो देश में इतनी बेकारी और दरिद्रता नहीं फैलती। लोगों की आर्थिक दशा अच्छी होती,

जिमसे उनकी क्रयशक्ति बढ़ती और इंगलैड का तैयार माल यहाँ और भी अधिक मात्रा में खपता। किन्तु सरकार ने अपनी अदूरदर्शी नीति के कारण यहाँ के धन्धों को पनपने ही नही दिया।

आधुनिक औद्योगिक संगठन में कुटीर उद्योगों का स्थान

साधारणत: अर्थशास्त्र के विद्वानों की यह धारणा है कि गृह-उद्योग-धन्धे बड़े-बड़े कारखानों की स्पर्धा में खड़े नही हो सकते और उनका विनाश अवश्यभावी है किन्तु ऐसी बात नहीं है। आधुनिक समय में कुछ ऐसी शक्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिन्होंने कुटीर-उद्योगों को विशेष बल दिया है।। इनमें जल-विद्युत और सहकारिता उल्लेखनीय हैं। जल-विद्युत का विस्तार होने से कुटीर-उद्योगों को कम मूल्य पर शक्ति मिल जाती है जो बड़ी मात्रा के उत्पादन की एक विशेष बचत थी। सहकारिता द्वारा छोटे-छोटे कारीगर उन आन्तरिक तथा बाह्य बचतों को प्राप्त कर सकते है जो बड़ी मात्रा के उत्पादकों को प्राप्त हें। इसके अतिरिक्त हल्के यन्त्रों का आविष्कार तथा कला-कौशल का विस्तृत ज्ञान, गृह-उद्योग-धन्धों के लिए लाभकर सिद्ध हो रहा है। धनिक वर्गो में कला-पूर्ण तथा विलासता की सामग्री की माँग बढ़ती जा रही है और ये वस्तुएँ अधिकतर कुटीर-उद्योग में ही तैयार होती है। यही कारण है कि आज भी भारत में बड़े-बड़े कारखानों के साथ-साथ गृह-उद्योग-धन्धे भी फलते-फूलते दिखाई देते है।

भारत में कुटीर उद्योग धन्धों में लगभग २ करोड़ व्यक्ति लगे हैं। इसमें से ५० लाख तो एकेले हाथ कर्घा उद्योग से ही जीविका पाते है। इसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य १ करोड़ रु० आंका गया है।

कुटीर उद्योग

इण्डियन फिस्कल कमीशन (सन् १९५०) ने कुटीर धन्धों को दो भागों में बांट दिया है:—(१) ग्राम्य कुटीर उद्योग, तथा (२) शहरी कुटीर उद्योग। इसके साथ इनका उप-विभाजन भी किया गया है। ग्राम्य कुटीर-धन्धो का विभाजन कृषि सहायक ग्राम्य कुटीर धन्धे तथा अन्य कुटीर धंधों में तथा शहरी कुटीर-उद्योगों का उप विभाजन किंचित् शहरी शिल्प तथा अधिक शहरी शिल्प में किया गया है। किंचित् शहरी शिल्प वाले शहरी कुटीर-धन्धों में उन धन्धों का समावेश होता है जिनमें परम्परागत कुशलता एवं कारीगरी होती है, जैसे—बनारसी जरी का उद्योग अथवा चन्देरी का जरी उद्योग। इसके विपरीत दूसरी श्रेणी में उन कुटीर-धन्धों का समावेश होता है जिनमें अधिक आधुनिकता है तथा जो बहु-परिमाण उद्योगों से समानता रखते है। उदाहरणार्थ, मदुराई का हैण्डलूम उद्योग, जिसमें अधिक आधुनिकता है तथा परम्परागत कुशलता एवं कारीगरी का आभास नहीं मिलता। इसी प्रकार कृषि-सहायक कुटीर धन्धों में टोकरी बनाना, सूत कातना आदि ऐसे उद्योगों का समावेश होता है जो आमतौर से फुरसत के समय किसान के परिवार के लोग मिल कर अपनी आय बढ़ाने के लिए करते हैं। दूसरी श्रेणी के अन्य ग्राम्य कुटीर-धन्धों में उन धन्धों का समावेश होता है, जिन पर आमतौर से शिल्पी की उपजीविका निर्भर रहती है, जैसे—कुम्हार, लुहार, सुनार, चटाई-उद्योग इत्यादि।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिये उपयुक्त कुटीर-धन्धे

भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में जिन कुटीर-धन्धों का विकास सफलता से किय

जा सकता है, उनका विवरण राष्ट्रीय योजना आयोग के निम्नलिखित प्रकार से किया है :—[1]

(१) **कृषि सहायक एवं कृषि-सम्बन्धी उद्योग**—धान और दालें दलना, गेहूं अथवा अन्य अनाज पीसना, तेल, गुड़ एवं शक्कर उद्योग, मिठाइयाँ, फलों से मुरब्बे एवं अचार बनाना अथा उसकी सुरक्षा (Fruit Preservation), विभिन्न प्रकार की तम्बाकू बनाना, बीडी बनाना, दुग्धशाला, गाय, मुर्गी तथा मधुमक्खियों को पालना।

(२) **वस्त्र उद्योग**—बिनौले निकालना एवं रुई धुनना, कताई, बुनाई, रेशम के कीड़े पालना, ऊन कातना और बुनना, चटाइयाँ बनाना, कपड़ों की छपाई और कढ़ाई करना।

(३) **लकड़ी का काम**—लकड़ी चीरना, फर्नीचर, गाड़ियाँ, कंघे, खिलौने तथा छोटे-छोटे औजार बनाना।

(४) **धातु का काम**—कच्चे धातु को शुद्ध करना, लुहारी, चाकू,छुरी, बक्स, ताले, पीतल, ताबे आदि के बर्तन बनाना, तार खींचना आदि।

(५) **चर्म-उद्योग**—चमड़ा कमाना, रंगना तथा उसके जूते तथा अन्य वस्तुएँ बनाना, हड्डियों से खाद बनाना, सींग के कंघे, बटन आदि बनाने का काम।

(६) **मिट्टी का काम**—कुम्हार का काम—ईट के भट्टे, खपरे बनाना, चूना तैयार करना, चीनी के बर्तन आदि बनाना।

(७) **रसायनों का काम**—लाख बनाना और उससे चूड़ियाँ चपेटे आदि बनाना, साबुन, रंग एवं वार्निश बनाना।

(८) **अन्य उद्योग**—मछली का तेल निकालना तथा उससे खाद और जिलेटिन तैयार करना, बटन एवं कागज इत्यादि का काम करना।

उपरोक्त कुटीर-उद्योगों में से अधिकतर उद्योग भारत के विभिन्न भागों में पाये जाते हैं, परन्तु वे नष्ट प्राय: अवस्था में है जिनका पुनर्जीवन होना चाहिए। इसी प्रकार जो उद्योग अविकसित दशा में हैं उनके समुचित पुनर्गठन एवं विकास की आवश्यकता है, क्योंकि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की उन्नति से ही भारत को सर्वाङ्गीण उन्नति हो सकती है। पंच-वर्षीय योजना की 'ग्रामीण विकास योजना' में ग्राम्य उद्योग धन्धों का केन्द्रीय स्थान है, इसलिए उनके विकास के लिए उतनी ही प्राथमिकता दी गई है जितनी कृषि उत्पादन बढ़ाने को।"

भारत के प्रमुख कुटीर उद्योग

भारत की अर्थ-व्यवस्था में जिन कुटीर तथा लघु उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है उनमें से मुख्य ये हैं—हस्तकरघा उद्योग, चीनी मिट्टी के बर्तन, ऊनी कपड़े का कुटीर उद्योग, कांच की वस्तुएँ, कागज, बीड़ी, चमड़े का सामान, खिलौने बनाना, खेल का सामान बनाना, रेशम के कीड़े पालना, साबुन, खण्डसारी, शक्कर, धातु के बर्तन, दुग्ध उत्पादन, चटाई बनाना, रंगाई, छपाई।

1. The First Five Year Plan, 1951.

(१) हस्त कर्घा उद्योग (Handloom Industry)

यद्यपि भारत के गाँव-गाँव में हस्तकरघों से कपड़ा बुना जाता है, परन्तु फिर भी हस्तकरघा-उद्योग के प्रमुख केन्द्र निम्नलिखित हैं :—(i) **मलमल** के लिए चन्देरी, कोटा, रोहतक मेरठ, पिलखुआ, सिकंदराबाद, अम्बाला, फरुखाबाद, मथुरा, कडप्पा, मदुराई, वाराणसी और आरनी; (ii) **छींट** के लिये मछलीपट्टम और कालहस्ती, (iii) **दरियों** के लिए आगरा, बरेली, अकबरपुर, झांसी, अलीगढ़, पूना, गोरखपुर, कालीकट व अम्बाला तथा (iv) **खादी** के लिए अमरोहा, संडोला, डाडा, अकबरपुर, कालीकट, देवबन्द, पूना इत्यादि। नई-नई डिजायनें निकालने के लिए अखिल भारतीय हस्तकरघा मण्डल ने डिजायन केन्द्रों को बुन कर सेवा केन्द्रों में परिणित कर दिया है, जहाँ रंगाई, डिजायन, कपड़े की बनावट और अधिक उत्पादन के लिए करघों और औजारों के सुधार आदि के हेतु व्यावहारिक अनुसन्धान होता है। अखिल हस्तकरघा मण्डल ने बम्बई, कलकत्ता, मद्रास तथा वाराणसी में ४ बुन-कर केन्द्र स्थापित किये हैं।

हस्तकरघे का कपड़ा विदेशी मुद्रा कमाने का महत्त्वपूर्ण साधन है। गत ३-४ वर्षों से हस्तकरघों के कपड़ों का निर्यात लगातार बढ रहा है। सन् १९६२-६३ में लगभग १० करोड़ रु० के मूल्य का कपड़ा निर्यात किया गया। लङ्का, अदन, ईरान, सौदी अरब, सूडान, ब्रिटिश प० अफ्रीका और मलाया हस्तकरघों के कपड़े के प्रमुख ग्राहक है।

अम्बर चरखा

हस्तकरघा तथा खादी कपड़ों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए जो अधिक सूत की आवश्यकता होगी उसकी पूर्ति के हेतु अम्बर चरखों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है। अब तक दिये जाने वाले चरखों की कुल संख्या ३ लाख तक पहुँच गई है। इससे अनेक लोगों को रोजगार मिला है।

(२) ऊनी कपड़े का कुटीर-उद्योग

ऊन उद्योग भी भारत का एक प्राचीन कुटीर-उद्योग है। इस उद्योग के अन्तर्गत ऊन की कताई तथा बुनाई का काम किया जाता है। गांव में कृषक अपना बचा हुआ समय इस कार्य में लगाते हैं तथा कम्बल, कालीन, शाल-दुशाले, नमदे, लोई, पट्टू, इत्यादि वस्तुओं का निर्माण करते हैं।

कालीन बनाने के कारखाने दक्षिण भारत में मसलीपट्टम, बंगलौर, एलोर, उत्तर-प्रदेश में भदोई, मिर्जापुर, आगरा मुजफ्फरनगर तथा वाराणसी, में; पंजाब में अमृतसर लुधियाना; काश्मीर में श्रीनगर और आन्ध्र प्रदेश में वारंगल में अधिकतर पाये जाते हैं। अनुमानतः इस उद्योग में लगभग ५ लाख व्यक्ति लगे हैं। काश्मीर के नमदे व शाल-दुशाले बहुत बड़ी संख्या में विदेशों को निर्यात किये जाते हैं। कम्बलों का उत्पादन सन् १९५५-५६ में २·५५ लाख गज से बढ कर सन् १९६०-६१ में ५० लाख गज तथा अन्य ऊनी वस्त्रों का उत्पादन ६·२५ लाख गज से बढ़ कर २५ लाख गज हो गया है।

(३) रेशमी कपड़ों का कुटीर-उद्योग

रेशम उद्योग के अन्तर्गत शहतूत के पेड़ लगाना, रेशम के कीड़े पालना, रेशम

को साफ करना तथा उससे कपडा बुनना आदि सम्मिलित हैं। यह भारत का अत्यन्त प्राचीन उद्योग है। वाराणसी के जरदोजी के वस्त्र तथा दिवली की कामदार साड़ियां इतिहास प्रसिद्ध रही है।

रेशम वस्त्र-उद्योग के राज्यानुसार प्रमुख केन्द्र निम्नलिखित हैः—(i) **बंगाल**, मुर्शिदाबाद, बहरामपुर, मिदनापुर, बर्दवान, वीरभूमि, बाँकुड़ा, विष्नूपुर, राजशाही, आदि। (ii) **असम**—जोरहाट, शिवसागर तथा गोलघाट (iii) **उत्तर-प्रदेश**-वाराणसी, मिर्जापुर, तथा शाहजहाँपुर; (iv) **पंजाब**—अमृतसर तथा लुधियाना (v) **मद्रास**—तिरुचरापल्ली, सेलम; कोयम्बटूर, तंजौर तथा मदुराई (vi) **महाराष्ट्र**—अहमदाबाद, पूना, बम्बई, सूरत, शोलापुर तथा नागपुर; (vii) **मैसूर**—मैसूर धारवाड़, बङ्गलौर, बेलगाँव तथा कोलार; (viii) **मध्य-प्रदेश**—चन्देरी; (x) **उड़ीसा**—सम्बलपुर तथा बहरामपुर; (xi) **आन्ध्र प्रदेश**—हैदराबाद, औरंगाबाद तथा बेलारी; (xii) **काश्मीर**—श्रीनगर और जम्मू।

केन्द्रीय सिल्क बोर्ड, जिसकी स्थापना सन् १९४९ में हुई थी, रेशम उद्योग के विकास की ओर पूर्ण ध्यान देता है। केन्द्रीय सैरीकल्चरल अनुसंधान संस्था बहरामपुर (प० बङ्गाल) इस उद्योग की अनुसंधान सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाती है। द्वितीय योजना काल में इस संस्था का विकास काफी हुआ। बोर्ड ने मैसूर में एक All-India Seri-Cultural Training Institute तथा एक Central Foreign Race-Seed Station श्रीनगर में स्थापित किया गया है।

(४) शहद उद्योग

शहद के लिये मधु-मक्खी को पाला जाता है। पहाड़ी क्षेत्रों में इसका विशेष महत्व है। सरकार ने इसके अनुसंधान तथा प्रशिक्षण के लिये अनेक केन्द्र खोले हैं। काश्मीर, उत्तर-प्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, पंजाब तथा अन्य राज्यों में इस उद्योग ने काफी प्रगति की है।

(५) गुड़ तथा खांडसारी उद्योग

यह भी एक ग्राम-उद्योग है। भारतीय किसान गन्ने से गुड तथा खांड़ तैयार करते है। जिन राज्यों में ताड़ के पेड़ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं वहाँ ताड से गुड बनाने के कार्य को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। गुड़ बनाने का तरीका बहुत पुराना और दोषपूर्ण है। भारत में लगभग ९ करोड रुपये के मूल्य का गुड़ तैयार किया जाता है इनमें से आधा अकेले उत्तर प्रदेश से प्राप्त होता है। मेरठ जिला उसके लिए प्रसिद्ध है।

(६) चमड़ा उद्योग

चमड़े का पकाना, रंगना तथा जूते आदि बनाना भारत का एक प्रमुख कुटीर उद्योग है। देहातों में कुँओं से पानी निकालने वाले चरस, पानी भरने की मशक, घोड़े की जीन, चमड़े की अटैची आदि वस्तुएें बनाई जाती हैं। उत्तर-प्रदेश में आगरा तथा कानपुर इसके मुख्य केन्द्र हैं। प्रायः हर नगर तथा गाँव में इस काम के करने वाले मिलत है।

(७) दियासलाई उद्योग

कार्य कुटीर उद्योग के रूप में अभी हाल में शुरू किया गया है। सन्

१९६३ में इस प्रकार के ६० कारखाने चल रहे थे। यह उद्योग मध्य प्रदेश, उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र, पश्चिमी बंगाल तथा केरल राज्य में स्थापित कर दिए गए हैं।

(८) बाँस का सामान बनाने का उद्योग

भारत में भारी संख्या में बांस के जंगल पाये जाते है। बाँस एक उपयोगी पेड़ है, जिससे अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन में बाँस का बहुत प्रकार से प्रयोग होता है। शहरी जनता की उपयोग की अनेक सुन्दर वस्तुएँ, जैसे—टोकरी, मेज, कुर्सी, हाथ के पंखे इत्यादि बाँस से ही बनाये जाते है।

कुटीर-उद्योगों की वर्तमान समस्याएँ

स्वदेशी आन्दोलन के कारण तथा तत्पश्चात् सरकारी सहायता के कारण कुटीर-उद्योगों को २० शताब्दी से काफी प्रोत्साहन मिला है। फिर भी कुटीर-उद्योगों की स्थिति विशेष अच्छी नहीं है और न उनका संगठन ही सुदृढ़ है।

(१) **लाभ तथा कच्चा माल प्राप्त करने में कठिनाई**—कुटीर उद्योग के सामने कच्चा माल प्राप्त करने की समस्या उग्रतर है, विशेषतः हाथ कर्घा उद्योग की। इसके अलावा हाथ कर्घा उद्योग को अच्छी किस्म का एवं उच्च कोटि का कच्चा माल पर्याप्त नहीं मिलता क्योंकि वह साधारणतः संगठित उद्योगों में चला जाता है। इस कारण कुटीर उद्योगों को कच्चे माल के लिए अधिकतर स्थानीय व्यापारियों पर निर्भर रहना पड़ता है। साथ ही, कुटीर-उद्योगो का कच्चे माल की खरीद के लिए कोई सगठन न होने से उनको मँहगी कीमतों मे कच्चा माल खरीदना पडता है, जो कारीगर स्वयं ही आवश्यकतानुसार खरीदता है।

इस समस्या के उचित हल के लिए गाँवों में सरकारी-क्रय-समितियों का निर्माण होना चाहिए अथवा मद्रास तथा उत्तर-प्रदेश के ढंग पर औद्योगिक सहकारिताओं का आयोजन होना चाहिए जो कुटीर उद्योगों के लिए कच्चे माल की खरीद एवं निर्मित माल की बिक्री करें। ऐसी समितियाँ महाराष्ट्र, मद्रास, राजस्थान, आंध्र, उत्तर-प्रदेश में अधिकतर देखने को मिलती हैं।

(२) **आवश्यक पूँजी की कमी**—कुटीर-उद्योगों को आवश्यक कच्चा माल, अच्छे औजार आदि खरीदने के लिये न तो उनके पास पूँजी ही पर्याप्त होती है और न उनको पर्याप्त मात्रा में उचित ब्याज पर ऋण ही उपलब्ध है। इस कारण उनको गाँव के महाजन अथवा बनियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जो उन्हें ऊंची ब्याज दरों पर ऋण देते हैं। परिणामस्वरूप शिल्पी हमेशा ऋण-ग्रस्त रहते हैं तथा अपनी निर्मित वस्तुएँ परिस्थितिवश चाहे जिन दामों पर महाजनों अथवा बनियों को बेच देते हैं। राज्य सरकारें कुटीर-उद्योगों को कुछ आर्थिक सहायता प्रान्तीय औद्योगिक सहायता अधिनियम के अन्तगत देती हैं, परन्तु वह अपर्याप्त है इसलिए फरवरी सन् १९५५ में लघु उद्योग निगम की स्थापना की गई है जो इन उद्योगों की आर्थिक एवं शिल्पिक समस्याओं को हल करता है।

(३) **विक्रय सुविधाओं का अभाव**—कुटीर उद्योगों के उत्पादन की बिक्री के लिये समुचित सुविधायें नहीं हैं, जिससे कारीगर को अपना उत्पादन परिस्थितिवश

बाध्य होकर अलाभकर कीमतों में बेचना पड़ता है। इसके लिये पर्याप्त आर्थिक प्रदाय का अभाव ही है। यह आर्थिक प्रदाय उनको ऊँचे ब्याज पर महाजनों से मिलता है जो उनका उत्पादन मनचाही कीमतों में लेते हैं तथा उन्हें बाजारों में बेच कर अच्छा लाभ कमाते हैं परन्तु गरीब कारीगर भूखा ही रहता है।

इस कार्य के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा केन्द्रीय-कुटीर उद्योग एम्पोरियम की स्थापना की गई है। यह देशी एवं विदेशी माग द्वारा कुटीर-उद्योगों के माल के विक्रय मे सहायता देकर प्रोत्साहन देता है। इस एम्पोरियम ने कुटीर-उत्पादन के लिए संयुक्त-राज्य श्री लङ्का, अफगानिस्तान, जापान, न्यूजीलैंड आदि देशों में प्रदर्शनियों का आयोजन किया जिससे वहाँ की माग से लाभ हो सके। उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, मद्रास, काश्मीर, आसाम, पंजाब तथा महाराष्ट्र, गुजरात राज्यों में भी कुटीर निर्मित माल के विपणन के लिए एम्पोरियम हैं जो देश की विभिन्न प्रदर्शनियों में माल के विज्ञापन के हेतु दुकान रखते हैं।

(४) **उच्च कोटि का एवं समान उत्पादन में कठिनाई**—कुटीर-उद्योगों का उत्पादन उच्च कोटि का नहीं होता और न एक ही शिल्पी द्वारा बनाई गई एक ही नमूने की वस्तुएँ समान होती है। यह कुटीर निर्मित माल का सबसे बड़ा दोष है। एक रूप उत्पादन तभी सम्भव हो सकता है जब शिल्पियों को उच्च कोटि का पर्याप्त कच्चा माल मिले, तो उनकी समस्या हल हो सकती है।

(५) **शिल्पियों की रूढ़िवादिता, अशिक्षा एवं अज्ञान**—शिल्पियों के इस त्रिदोष के कारण उन्हे बाजार की स्थिति एवं माँग का ज्ञान नहीं होता और न वे उत्पादन लागत ही निकाल सकते हैं। इस कारण लाभ को ध्यान में रखकर बिक्री करने में वे असमर्थ हैं तथा रूढिवादिता के कारण कुटीर-उद्योगों के औजारों में नवीनता एवं उत्पादन तन्त्र में आधुनिकता लाने का प्रयत्न नहीं करते। फलतः उत्पादन लागत अधिक होने से वे यन्त्र-निर्मित सस्ते माल की प्रतियोगिता नहीं कर पाते। साथ ही वे विज्ञापन, प्रचार आदि साधनों द्वारा माल की बिक्री नहीं बढ़ा पाते हैं। इन दोषों के निवारण के लिए कारीगरों को प्राथमिक एवं औद्योगिक शिक्षा का आयोजन होना चाहिए।

(६) **अच्छे औजारों का अभाव**—छोटे-छोटे यन्त्र एवं अच्छे औजारों का कुटीर उद्योगों में नगण्य उपयोग होता है। इनके सफल उपयोग के लिए कारीगरों की निरक्षरता एवं रूढ़िवादिता का निवारण कर उद्योगों का आधुनिक ढंग पर पुनर्गठन करना चाहिए।

तीसनी योजना में

तीसरी योजना काल में छोटे और ग्रामोद्योग के क्षेत्र में निम्न लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं।

हाथ करघा वस्त्र, बिजली करघा वस्त्र, परम्परागत खादी और अम्बर खादी ३ अरब ५० करोड़ गज।

कच्चा रेशम ५० लाख पौंड (३० लाख ७० हजार पौंड) औद्योगिक बस्तियाँ ३६० और हाथ करघा विभाग में बिजली करघा कारखाना की स्थापना १३ हजार।

तीसरी योजना में सरकारी विभाग में २ अरब ६४ करोड़ रुपए का व्यय निर्धारित किया गया है। विभिन्न विभागों में व्यय करने के लिए प्रदान किया गया धन निम्नलिखित है—

हाथ करघा विभाग में हाथ करघा तथा बिजली करघा के लिए ३८ करोड़ रुपये खादी, अम्बर खादी और ग्रामोद्योग ९२ करोड़ रुपये लघु उद्योग एवं औद्योगिक बस्तियाँ १ अरब ४ करोड़ रुपये, हस्तशिल्प ८.६ करोड़ रुपये, रेशम के कीड़ों का पालन ७ करोड़ रुपये और नारियल-जटा-उद्योग ३.२ करोड़ रुपये। कुल व्यय के आधार पर विभिन्न कार्यक्रमो से ८० लाख व्यक्तियो को अधिकाधिक रोजी तथा ९ लाख व्यक्तियों को पूरे समय की नौकरी मिल सकेगी।

तीसरी योजना में कुटीर एवं लघु उद्योगों के कार्यक्रम के सम्बन्ध में निम्न निर्देशक उद्देश्य होंगे :—

(१) समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लघु एवं बड़ी औद्योगिक इकाइयो के सम्बन्धित लक्ष्य विभिन्न उद्योगों के उत्पादन कार्यक्रम के एक भाग के बतौर स्पष्ट होंगे,

(२) लघु औद्योगिकों को संगठनात्मक एवं तकनीकी कुशलता में सुधार के लिए सहायता दी जावेगी, तथा

(३) शिल्पियों एवं कारीगरों को सहकारी-संगठन बनाने में, विशेषत: ग्रामीण क्षेत्रों में, सहायता दी जावेगी।

आधुनिक उद्योगों का विकास (Evolution of Modern Industries)

आधुनिक ढंग के कारखानों की स्थापना भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुई। आरम्भ में ये उद्योग कलकत्ते के आस-पास में स्थित थे क्योंकि यूरोपीय व्यवसायी इस प्रदेश में सबसे अधिक थे। बाद को क्रमश: देश के भीतरी भागों में भी भारतवासियों ने कारखाने स्थापित करना आरंभ किया। १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध आरभ होने के समय तक भारत में सूती वस्त्रों के कारखाने, बंगाल के जूट के कारखाने उड़ीसा और बंगाल का कोयले का उद्योग और आसाम में चाय के उद्योग को छोड़कर अन्य कारखाने स्थापित नहीं हुए थे। सूती कपड़े के उद्योग को छोड़कर बाकी सब उद्योग विदेशियों के हाथ में थे। यूरोपीय महायुद्ध के उपरांत देश में लोहे और इस्पात तथा सीमेंट के उद्योगों, कागज, दियासलाई, शक्कर, शीशा और वस्त्र तथा चमड़े के उद्योगों की उन्नति शीघ्रता से हुई। दूसरे महायुद्ध के समय भारत के औद्योगिक विकास के मार्ग में कई प्रमुख कठिनाइयाँ उपस्थित थीं—यथा उपयुक्त मशीनों और टैकनीकल लोगों की कमी, यातायात के साधनों की अपूर्ण उन्नति तथा विदेशी सरकार के बड़े बड़े उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति आदि। इस कारण जितनी औद्योगिक उन्नति इस देश में हो सकती थी उतनी अवश्य नहीं हो सकी किन्तु फिर भी कुछ सीमा तक इस युद्ध से भारतीय उद्योग-धन्धों को काफी सहायता मिली। कई उद्योगों में अधिक से अधिक उत्पादन होने लगा। कई उद्योगों में नई मशीनें लगाई गई और कुछ आधारभूत उद्योगों की स्थापना हुई। छोटे पैमाने पर चलने वाले उद्योगों का काफी प्रसार हुआ और अनेकों प्रकार का सामान तैयार होने लगा। इस प्रकार वस्त्र, ज, चाय, सीमेंट, स्पात, शक्कर आदि के उद्योगों को काफी प्रोत्सा-

हन मिला । कई नये उद्योगों का भी युद्ध काल में विकास हुआ जैसे हवाई जहाज तैयार करने वाली हिन्दुस्तान एअर क्रैफ्ट कंपनी, अल्यूमीनियम उद्योग, युद्ध सामग्री और शस्त्रों के उद्योग आदि । **रोजर मिशन** (Roger Mission) ने, जो सन् १९४० में भारत आया था, युद्ध सम्बन्धी उद्योग-धन्धों के विकास की सिफारिश की जिसके परिणामस्वरूप कई करोड़ रुपये खर्च करके वर्तमान कारखानों का विस्तार किया गया और कई नए कारखाने बन्दूको, गोलों, कारतूसों, बम गोलो आदि का उत्पादन करने के लिए स्थापित किए गए । रासायनिक पदार्थ, गंधक का तेजाब क्लोरीन, बोरिक एसिड, एलकली आदि के उत्पादन को भी बड़ा प्रोत्साहन मिला । मशीनों के भाग, हल्के ढग की कृषि और शक्कर की मशीनरी और टूल, लोहे की चद्दरें, छड़ें, कीलियें तथा बाईसिकल के उत्पादन के लिये कई नए कारखानों का श्रीगणेश हुआ ।

विभाजन का प्रभाव

सन् १९४७ ई० में देश का बँटवारा हुआ । इसका हमारे आर्थिक जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा । कपास और जूट जैसे महत्वपूर्ण कच्चे माल के लिए भारत को बहुत सीमा तक पाकिस्तान पर निर्भर होना पड़ा । जूट की सब मिलें भारतीय संघ मे आगई पर जूट पैदा करने करने वाली अविभाजित भारत के केवल एक तिहाई भूमि ही भारत को मिली । इसी प्रकार अविभाजित भारत की ९९% सूती वस्त्र की मिलें भी भारत में रहीं । इसके लिए १० लाख लम्बे और मध्यम धागे वाली कपास की गांठों के लिए पाकिस्तान पर निर्भर रहना पडा ।

राष्ट्रीय सरकार की औद्योगिक नीति

युद्ध के समय भारतीय उद्योग-धन्धों को जो प्रोत्साहन मिला वह देश के बँटवारे के बाद में स्थायी नहीं रह सका इसके कई कारण थे- यातायात की कठिनाई, उद्योगपतियों और श्रमिकों के आपसी सम्बन्धों में खिचाव और बिगाड़, कच्चे माल की कमी, मशीन आदि पूँजी-वस्तुओं के प्राप्त करने और इमारत के सामान मिलने की कठिनाई तथा टैकनीकल लोगों की कमी आदि--इसका परिणाम देश में धीरे-धीरे औद्योगिक संकट का आविर्भाव होना हुआ । देश के स्वतंत्र होने के समय हमारी औद्योगिक स्थिति अच्छी नहीं थी अतः दिसम्बर १९४७ में उद्योग धन्धों के सचिवों का सम्मेलन हुआ जिसमे औद्योगिक स्थिति पर विचार कर कुछ प्रस्ताव भी उपस्थित किये गये । इन्हीं के आधार पर अप्रैल १९४८ में औद्योगिक नीति घोषित की गयी ।

औद्योगिक नीति सन् १९५६

सन् १९४८ की औद्योगिक नीत के मूल हेतु तीन थे—उत्पादन में निरन्तर वृद्धि, वितरण में समानता तथा औद्योगिक विकास में सरकार की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियों की पूर्ति । इस हेतु इस प्रस्ताव के अनुसार शस्त्र और बारूद, अणु-शक्ति, रेल्वे यातायात पर सरकारी अधिकार रहेगा । इसके अतिरिक्त अन्य ६ आधार भूत उद्योगों की नई इकाइयाँ विशुद्ध सरकारी क्षेत्र में ही स्थापित होंगी, परन्तु राष्ट्र हित के लिए आवश्यकता होने पर सरकार निजी क्षेत्र का सहयोग भी प्राप्त कर सकती थी । शेष उद्योग क्षेत्र निजी उपक्रमियों के लिए स्वतन्त्र था परन्तु सरकार यदि चाहे तो इस क्षेत्र में प्रवेश कर सकती थी । इससे स्पष्ट है कि यह प्रस्ताव मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पर आधारित था तथा सरकारी क्षेत्र सीमित होने के साथ ही निजी उद्योग के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप न्यूनतम था ।

नवीन नीति की आवश्यकता

इस औद्योगिक घोषणा को हुए आठ वर्ष बीत चुके। इस अवधि में देश में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तथा औद्योगिक क्षेत्र में भी नये विकास हुए है। इन परिवर्तनों में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्न हैं :—

(i) देश में 'भारतीय संविधान' का निर्माण, जिसमें नागरिकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा के साथ ही सरकारी नीति सम्बन्धी कुछ निर्देशक-सिद्धान्तों का भी उल्लेख है।

(ii) देश व्यापी आधार पर पंच-वर्षीय योजनाओं का आरम्भ।

(iii) 'औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम' लागू होना।

(iv) आवदी काँग्रेस सम्मेलन में भारत के आर्थिक विकास का लक्ष्य 'समाज वाद' रखा गया था, जिसकी पुष्टि अमृतसर सम्मेलन में की गई। इस सिद्धान्त के अनुरूप भारतीय संसद ने भी समाज के समाजवादी आधार को सरकारी सामाजिक एवं आर्थिक नीति का लक्ष्य मान लिया है।

(v) समाजवादी संगठन की स्थापना के हेतु आवश्यक संशोधन भारतीय संविधान में किये गये है।

उद्योगों का वर्गीकरण

प्रथम श्रेणी में वे उद्योग है जिनके भावी विकास की जिम्मेदारी केवल सरकार पर होगी। इन उद्योगों के नाम औद्योगिक-नीति सम्बन्धी प्रस्ताव की पहली अनुसूची में दिये है, जो १७ है, परन्तु जहाँ पर निजी क्षेत्र में उनके स्थापना की स्वीकृति दी गई है उनका एवं वर्तमान औद्योगिक इकाइयों का विस्तार एवं विकास निजी क्षेत्र में ही होगा। उनके राष्ट्रीयकरण पर नवीन नीति में जोर नहीं दिया है। सरकारी क्षेत्र में नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना में, जहाँ राष्ट्रीय हित मे निजी उपक्रम का सहयोग होगा, सरकार ऐसा सहयोग प्राप्त कर सकेगी परन्तु रेल एवं हवाई यातायात, शस्त्र एवं बारूद तथा अणुशक्ति का विकास केवल केन्द्रीय सरकार के एकाधिकार में ही होगा। इन उद्योगों में भी यदि निजी क्षेत्र का सहयोग आवश्यक होगा तो सरकार ऐसा सहयोग इस प्रकार अधिकांश अंश स्वयं खरीद कर या अन्य प्रकार से प्राप्त करेगी जिससे उन उद्योगो का नियन्त्रण एवं नीति का संचालन सरकार के हाथ में ही रहे।

इस श्रेणी में ये उद्योग रखे गये हैं (१७) :—

अस्त्र-शस्त्र व सुरक्षा के सामान; अणु-शक्ति; लोहा और इस्पात; लोहे इस्पात, खनिज यंत्र तथा अन्य आधारभूत उद्योगों के लिए यंत्र और मशीन बनाने का उद्योग; बडे भारी विद्युत प्लांट, कोयला और लिग्नाइट, खनिज तेल; कच्चा लोहा, मैगनीज क्रोम्प गंधक, सेलखड़ी, सोना और हीरा निकालने का उद्योग, तांबा, राँगा, जस्ता, मोलीबिडनम वूलफ्राम, टीन की खानें खोदना, वायुयान; जलयान; रेल यातायात; वायु यान यातायात; टेलीफोन तार; विद्युत उत्पादन और वितरण; अणु शक्ति आदेश १९५३ में वर्गीकृत खनिज; लोहे और इस्पात का फोर्जिंग उद्योग।

दूसरी श्रेणी में उन उद्योगों का समावेश है जो प्रतिशील रीति से सरकारी

क्षेत्र के अन्तर्गत आवेगे तथा इस श्रेणी की नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना साधारणतः सरकार स्वयं करेगी। परन्तु निजी क्षेत्र से यह अपेक्षा है कि वह सरकारी प्रयत्नों को सहायक होगा। साथ ही, निजी क्षेत्र को भी इस श्रेणी के उद्योगों का विकास एवं स्थापना अपने स्वयं की प्रेरणा से अथवा सरकारी सहायता एवं सहयोग से करने का अवसर मिलेगा। अतः इस श्रेणी को हम मिश्रित क्षेत्र कहेंगे जिसमें सरकार एवं निजी क्षेत्र पर औद्योगिक विकास की जिम्मेदारी होगी। इस श्रेणी के उद्योगों का विवरण प्रस्ताव की दूसरी अनुसूची में है।

इस श्रेणी के अन्तर्गत ये उद्योग सम्मिलित किये गए हैं :—

प्रथम वर्ग में सम्मिलित धातुओं को छोड़कर अन्य सभी लोहा युक्त धातुयें और अल्यूमीनियम; खनिज छूट नियम १९४९ के अनुसार वर्गीकृत सभी धातुयें; मशीन-यंत्र उद्योग; लोह-मिश्रण और औजार निर्माण उद्योग; औषधियां, रंग रोगन और प्लास्टिक उद्योग, दवाइयाँ तथा अन्य औषधियाँ; कृत्रिम रासायनिक पदार्थ; कोयले से कार्बन गैस का उत्पादन; रासायनिक लुग्दी; सड़क यातायात और समुद्री यातायात।

तीसरी श्रेणी में शेष सभी उद्योग होंगे जिनका भावी विकास व्यक्तिगत उपक्रम एवं प्रेरणा से निजी क्षेत्र में होगा। फिर भी सरकार को इस क्षेत्र में किसी भी उद्योग को खोलने की स्वतन्त्रता रहेगी।

इसके अन्तर्गत कपड़ा, कागज, शक्कर, दियासलाई, चाय उद्योग आदि हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत की औद्योगिक नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। कुछ उद्योगों को सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है, और कई नए उद्योगों की स्थापना हुई है।

वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्रालय के अन्तर्गत—हिन्दुस्तान इन्सैक्टीसाइड्स, भारत इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि०, नाहन फाउन्ड्री लि०, नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स फैक्टरी, हिन्दुस्तान एन्टीबॉयटिक्स, सिन्द्री फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमीकल्स लि०, हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड।

रक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत—हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट लिमिटेड।

सन्देशवाहन मन्त्रालय के अन्तर्गत—इंडियन टेलीफोन इन्डस्ट्रीज।

अणुशक्ति मन्त्रालय के अन्तर्गत—इंडियन रेअर अर्थस लि०, थोरियम प्लान्ट।

रेलवे मन्त्रालय के अन्तर्गत—चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, इंटीग्रल कोच फैक्टरी।

स्पात, खान और ईंधन के अन्तर्गत—हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड

अर्थ मन्त्रालय के अन्तर्गत—इन्डिया गवर्नमेंट सिलवर रिफायनरी प्रोजेक्ट।

सार्वजनिक क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों के कुछ प्रमुख केन्द्र निम्नलिखित हैं।

फैक्टरी उद्योग	स्थान	स्थापना का वर्ष
(१) भारत इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड (प्राइवेट)	जलहाली, बंगलौर	१९५४

(२) चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स	चितरंजन, जिला बर्दवान प० बंगाल	१६४८
(३) हैवी इलैक्ट्रीकल्स (प्राइवेट)	भोपाल, मध्यप्रदेश	१६५६
(४) हिन्दुस्तान एअरक्राफट लिमिटेड	पो० हिन्दुस्तान एअरक्राफट, जिला बंगलौर (मैसूर)	१६४०
(५) हिन्दुस्तान एन्टीबायटिक्स लिमिटेड	पिम्परी, जिला पूना	१६५२
(६) हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड	रूपनारायनपुर. जिला वर्दमान प० बंगाल	१६५४
(७) हिन्दुस्तान हाऊसिंग फै[illegible] लिमिटेड	जंगपुरा, नई दिल्ली	पूर्णतः सरकार के नियंत्रण में १६५५ से
(८) हिन्दुस्तान इन्सेक्टीसाइड्स लि०	नई दिल्ली, तथा अलवाये (केरल)	१६५५
(६) हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि०	जलहाली, बंगलौर	१६५३
(१०) हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि०	विशाखापट्टनम, आंध्र प्रदेश	१६५२
(११) हिन्दुस्तान स्टील लि० (प्राइवेट)	रूरकेला, उड़ीसा	१६५४
(१२) हिन्दुस्तान स्टील लि० (प्राइवेट)	भिलाई, मध्य-प्रदेश	
(१३) हिन्दुस्तान स्टील लि० (प्राइवेट)	दुर्गापुर, प० बंगाल	
(१४) इन्डियन गवर्नमेंट सिलवर रिफाइनरी	स्ट्रेंड रोड, कलकत्ता—७	१६५७
(१५) एटमिक रिएक्टर (अप्सरा)	ट्राम्बे, बम्बई—३८	१६५६
(१६) इन्डियन रेअर अर्थम् लि०	अलवाये, केरल	१६५२
(१७) इन्डियन टेलीफोन इन्डस्ट्रीज लिमिटेड	दूरवाणी नगर, बंगलौर (मैसूर)	१६४८ १६५०
(१८) इन्टीग्रल कोच फैक्टरी	पेराम्बूर, मद्रास	१६५२
(१६) नाहन फाउन्ड्री लिमिटेड	नाहन, जिला सिरमूर हिमाचल प्रदेश	१८७५
(२०) नेशनल इन्स्ट्रमेन्टस् फैक्टरी	वुड स्ट्रीट कलकत्ता—१६	
(२१) सिन्द्री फर्टीलाइजर एण्ड केमीकल्स लि०	सिन्द्री, विहार	१६५१
(२२) थोरियम प्लान्ट	ट्राम्बे, बम्बई—३८	१६५५
(२३) हैवी इन्जीनिरिंग कोरपोरेशन लिमिटेड	रांची के निकट (हतिया) बिहार	

(२४) इन्डियन रिफाइनरिज लिमिटेड (रिफाइनरीज के प्रबन्ध के लिए)	नई दिल्ली	१९५८
(२५) नेवेली लिगनाइट कोरपोरेशन प्राइवेट लिमिटेड	मद्रास	१९५६
(२६) मशीन-टूल प्रोटोटाइप फैक्टरी	बम्बई के निकट, अम्बरनाथ	१९५३
(२७) नांगल फर्टीलाइजर हैवीवाटर प्रोजेक्ट	नंगल (पंजाब)	१९५६
(२८) ऑप्टीकल एन्ड आप्थलिमक ग्लास फैक्टरी	दुर्गापुर, बंगाल	१९६०

[Third Five Year Plan, 1962],

नीचे की तालिका में प्रमुख वस्तुओं का उत्पादन बताया गया है:—

वस्तु	इकाई	१९५१	१९५६	१९६१	१९६२
इस्पात	(००० मी० टन)	८९	१०७	२३४	३७८
बाइसिकलें	(०००)	११४	६६४	१,०४७	१०१५
मोटर गाड़ियाँ	(०००)	२३	३२	५४	५९
रेलों के डिब्बे	(०००)	—	१६	११	
एंजिन	संख्या	७	११३	८१	—
गंधक का तेजाब	(००० टन)	१०७	१६५	४०७	४५८
कास्टिक सोडा	,,	१५	३९	११८	१२६
सोडा एश	,,	४८	८४	१७३	२०२
क्लोरिन तरल	,,	५	१५	१७	३७
ब्लीचिंग पाउडर	,,	४	५	३	६
सुपर फास्फेट	,,	६१	८१	१७७	४४५
अमोनियम सल्फेट	,,	५३	३८९	१९७	४१
साबुन	,,	८३	११०	७३	८०
रंग-रोगन	,,	३३	४२	५७	६४
दियासलाई	(००० बक्स)	५७८	६१६	७५८	५६९
शक्ति अल्कोहल	(लाख गैलन)	६०	१००	१२०	५२२(ला.लौ.)
औद्योगिक अल्कोहल	,,	७०	८०	२००	६१६

सीमेंट	(००० टन)	३,१९६	४,९२९	८,१०१	८,५०९
चमड़े के देशी जूते	(००० जोड़ी)	२,०७४	२,९११	४,४०८	५,२८४
अंग्रेजी ढंग के जूते	(,,)	३,६४१	३,६२०	६,२२४	६,५१३
कागज और दफ्ती	(००० टन)	१३२	१९३	३५८	३८८
सिगरेट	लाख	२१४,४९०	२६३,०००	४१०.६४०	४०९,४७६
शक्कर	(००० टन)	१,११५	१,८५४	२,९८१	३,०२८
वनस्पति तैल	(,,)	१७२	२५६	३५४	३६९
सूती कपड़ा	(लाख गज)	४०,७६०	५३,०७०	५१,३४०	५३,०००
सूत	(लाख पौंड)	१३,०४०	१६,७१०	१९ ०१०	२०,०००
जूट का माल	(००० टन)	८७५	१,०९३	९५४	१,०८५
नमक	(लाख मन)	७४४	८९०	९२९	३८६(ला.विव.)

[Eastern Economist, December 31, 1962 pp. 1333-1334.;
उद्योग व्यापार पत्रिका सितम्बर १९६४, पृ० १५३-१६१.

अध्याय २८

धातु उद्योग

(METALLURGICAL INDUSTRIES)

१. लोहा और इस्पात उद्योग (Iron & Steel Industry)

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति—भारत में लोहा पिघलाने और ढालने तथा इस्पात तैयार करने का कार्य अत्यंत प्राचीनकाल से किया जा रहा है। अगारिया जाति यह कार्य करती थी। किन्तु पश्चिमी देशों में आधुनिक ढंग के कारखानों के स्थापित हो जाने के कारण भारतीय कुटीर उद्योग को बड़ा धक्का पहुँचा और भारत निर्यातक से आयातक देश बन गया। १८वीं और १९वीं शताब्दी में दक्षिणी भारत में १७७९ और सन् १८३० में अर्काट जिले में दो अंग्रेजों द्वारा मोटले—फरकूहर तथा जोशिया हीथ द्वारा असफल प्रयत्न किये गये। सन् १८७४ में पश्चिम बंगाल में झेरिया कोयला क्षेत्र कुल्टी में **बाराकार लोह कंपनी** की स्थापना की गई। १८८९ में यह कारखाना **बंगाल लोह और इस्पात** कंपनी के अधिकार में चला गया १९०० में इसका उत्पादन ३५,००० टन का था। इसके बाद १९०७ में बिहार में साकची नामक स्थान पर भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी श्री जमशेद जी टाटा द्वारा **टाटा लोह और इस्पात कंपनी** की स्थापना की गई जिसमें ढले लोहे का उत्पादन पहली बार १९११ में तथा इस्पात का उत्पादन १९१३ में किया गया। १९ ८ में एक और कारखाना बंगाल में **भारतीय लोह और इस्पात कंपनी** के नाम से आसनसोल के निकट हीरापुर में स्थापित किया गया। १९३६ में कुल्टी और हीरापुर के दोनों कारखाने **भारतीय लोह और इस्पात कम्पनी** (Indian Iron & Steel Co.) के नाम से मिला दिये गए। १९३७ में बर्नपुर में **स्टील कार्पोरेशन आफ बंगाल** की स्थापना की गई और इसे भी उपरोक्त कंपनी से १९५३ में मिला दिया गया। इस प्रकार लोहे और इस्पात कंपनी के अन्तर्गत तीन मुख्य इकाइयाँ हैं—कुल्टी, हीरापुर तथा बर्नपुर के कारखाने। सन् १९२३ में दक्षिण भारत में मैसूर सरकार द्वारा **मैसूर लोह और इस्पात का कारखाना** (Mysore Iron & Steel Works) की स्थापना की गई इन सब कारखानों का इस्पात का उत्पादन १९३९ में ८ लाख टन से कुछ अधिक था। द्वितीय महायुद्ध के कारण उद्योग की बड़ी प्रगति हुई। ढले लोहे (pig iron) और इस्पात का उत्पादन १९३९ में क्रमशः १८·३५ लाख टन और ८·४८ लाख टन था। यह १९५० में १५·६२ लाख टन तथा १०·०४ लाख टन था।

योजना-कालों में उद्योग का विकास

पहली योजना के आरंभ में भारत में इस्पात तैयार करने वाले केवल तीन कारखाने थे जिनमें से भद्रावती का कारखाना राज्य सरकार के अन्तर्गत था। जमशेदपुर और कुल्टी-बर्नपुर के कारखाने निजी क्षेत्र में थे। इस योजना में कच्चे लोहे की उत्पादन

कच्चे लोहे और इस्पात का उत्पादन लाख टन

वर्ष	कच्चा लोहा	इस्पात पिंड	समापित इस्पात
१९५६	४·४०	१६·६६	१३·५५
१९५७	२·१५	१६·६६	१४·०९
१९५८	४·२३	१७·३७	१३·२८
१९५९	७·६८	२३·८२	१७·६८
१९६०	११·७६	३२·०७	२१·६६
१९६१	११·४०	३८·७०	३९·८०
१९६२	९·७४	५०·८६	३५·०८

विभिन्न इकाइयो द्वारा उत्पादन की मात्रा इस प्रकार थी—

इकाइयाँ	विक्रय योग्य कच्चा लोहा (००० टन में)		समापित इस्पात (००० टन में)	
	१९६१	१९६२	१९६१	१९६२
टाटा आयरन एंड स्टील कं०	२०·८	२१·१	७५५·५	९४८·४
इंडियन आयरन एंड स्टील कं०	२६७·८	२०४·२	५६३·०	६१३·३
मैसूर आयरन एंड स्टील कं०	९·९	—	३७·६	३९·१
रूरकेला स्टील प्लांट	९९·३	६०·२	१४५·०	४२८·९
भिलाई स्टील प्लांट	३९३·४	३३४·३	२५६·५	५१४·१
दुर्गापुर स्टील प्लांट	३१४·७	३२५·०	४९·६	१८८·२
कलिंगा वर्क्स	३०·२	२८·४	—	-
पुनः बेल्लनीय संयत्र	—		८७३·२	९५३·५
तार निकालने वाले कारखाने	--	-	१५·५	२१·६
योग	१,१३६·५	९७३·५	२,८१६·८	३,५०७·७

उत्पादन के साथ साथ इस्पात की मांग भी निरंतर बढ़ती जा रही है। १९५७ में यह मांग ४१·४५ लाख टन की थी, किन्तु उपलब्ध हुआ केवल ३१·२९ लाख टन। १९६२ में यह मात्रा, क्रमशः ५१·०० लाख टन और ४४·४६ लाख टन थी। **राष्ट्रीय फलित आर्थिक गवेषणा परिषद्** द्वारा लगाये गए एक अनुमान के अनुसार १९६५-६६ तक इस्पात की मांग ७२ लाख टन की हो जायगी। इसकी प्राप्ति के लिए १०० लाख टन इस्पात पिंड की क्षमता स्थापित करने की आवश्यकता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भिलाई इस्पात संयंत्र की क्षमता १० लाख टन से बढ़ाकर २५ लाख टन; रूरकेला की १० लाख टन से १८ लाख टन और दुर्गापुर की १० लाख टन से १६ ला० टन करनी पड़ेगी। मैसूर आयरन एण्ड स्टील लि० की क्षमता लगभग १ लाख टन तक बढ़ाई जायेगी और जमशेदपुर तथा बर्नपुर का वर्तमान ३० लाख टन क्षमता को मिलाकर कुल उत्पादन क्षमता ९० लाख टन तक होगी। शेष १० लाख टन की प्राप्ति बोकारो के कारखाने से की जायेगी।

तृतीय योजना काल में इस उद्योग के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए १६६ लाख टन कच्चा लोहा, २७० लाख टन कोयला, ६२ लाख टन चूने का पत्थर, ६५, हजार टन डोलोमाइट की आवश्यकता होगी।

मिश्र इस्पात (Alloy Steel)—अभी केवल २४,००० टन मिश्र इस्पातों का उत्पादन भारत में किया जा रहा है किन्तु यह मात्रा कम होने से अधिकांशतः आयात किया जाता है। १९६१-६२ में नई योजनाएे-जिनकी उत्पादन क्षमता २ ६१ लाख टन की है—तथा १९६२-६३ मे ३ नई योजनायें—जिनकी उत्पादन क्षमता २० हजार टन की है—स्थापित करने के लिए लाइसेंस दिए गए हैं। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ७ लाख टन मिश्र इस्पात की आवश्यंकता होगी।

कानपुर में फ्रांसीसी तकनीकी कारपोरेशन के सहयोग से निजी क्षेत्र में एक मिश्र इस्पात बनाने का कारखाना ३·११ करोड़ रुपये की लागत से स्थापित किया जा रहा है जिसका वार्षिक उत्पादन १९ ८०० टन का होगा। इसके लिए सिली-को- मैंगनीज इस्पात और दूसरे कम कार्बन वाले इस्पात के लिए लोहे की देशी टूट फूट और लोहा मिश्रण धातुयें काम मे लाई जायेगी। इस कारखाने की लोहे गलान की व्यवस्था मे सीधी विद्युत की दो १० टन वाली भट्टियाँ लगाई जायेगी। निरंतर ढलाई का भी प्रबन्ध होगा और विभिन्न मोटाइयो की चादरें तथा गोल और वर्ग छड़े बनाने के लिए स्वचालित बेलन मिलें भी स्थापित की जायेंगी।

हिन्दुस्तान स्टील कं० दुर्गापुर के अतर्गत एक संयंत्र स्थापित किया जा रहा है जिसकी वार्षिक क्षमता ६ लाख टन इस्पात पिंड अथवा ६०,००० टन समापित इस्पात की होगी। यह १९६५-६६ तक कार्यारम्भ कर देगा।

भद्रावती में स्थापित मैसूर आयरन स्टील प्लांट की पूर्णतः विशेष इस्पात उत्पादन सयत्र मे परिवर्तित करने का भी आयोजन है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप जिसमें ८-९ करोड़ रुपया खर्च होगा लगभग ८०,००० टन विशेष इस्पात खड और गढ़ाई इस्पात का उत्पादन हो सकेगा।

बेदाग इस्पात (Stainless Steel)—अभी इस प्रकार के इस्पात का उत्पादन भारत में बिलकुल नहीं होता। इसकी समस्त मांग आयात द्वारा पूरी की जाती है। तीसरी और चौथी योजनाओं में इसकी मांग क्रमशः ५०,००० टन और ७०,००० टन की होगी। अतएव अब दुर्गापुर में मिश्र इस्पात संयंत्र द्वारा पहले चरण में लगभग १७ ००० टन बेदाग इस्पात तैयार किया जायेगा। विस्तार के पश्चात् यह ३४,००० टन बेदाग इस्पात तैयार करने लगेगा।

निजी क्षेत्र में दो और संयंत्र स्थापित किये जा रहे हैं। एक ७,००० टन वार्षिक क्षमता वाला मद्रास में और दूसरा १०,००० टन क्षमता वाला अहमदाबाद के निकट बटवा मे। १९५८ की गणना के अनुसार भारत मे छोटे बड़े निर्माणियों की संख्या १९७ थी जिसमें १८३ करोड़ रुपये की पूँजी लगी थी और ९३,२८३ श्रमिक काम कर रहे थे। १९५६ में १०·१८ लाख टन लोहे और इस्पात का आयात किया गया जबकि १९६० में यह मात्रा ११·३१ लाख टन की थी। इन पाँच वर्षों में ५१९ करोड़ रुपये के मूल्य का आयात हुआ। १९६०-६१ में भारत से १ लाख टन ढला लोहा और ७१ हजार टन इस्पात का निर्यात किया गया जिसका मूल्य क्रमशः २·४ करोड़ तथा २·७६ करोड़ रुपया था।

३. **मैसूर लोहे और इस्पात का कारखाना** (MISW)— यह मैसूर राज्य में भद्रावती नामक स्थान पर है। जो भद्रा नदी की घाटी में है। यह घाटी ४३ किलोमीटर चौड़ी है अतः कारखाने के लिए उपयुक्त भूमि उपलब्ध है। यह स्थान भद्रावती की घाटी मे बिरूर-शिमोगा रेल लाइन पर है। इसके समीप ही बहुत बड़े
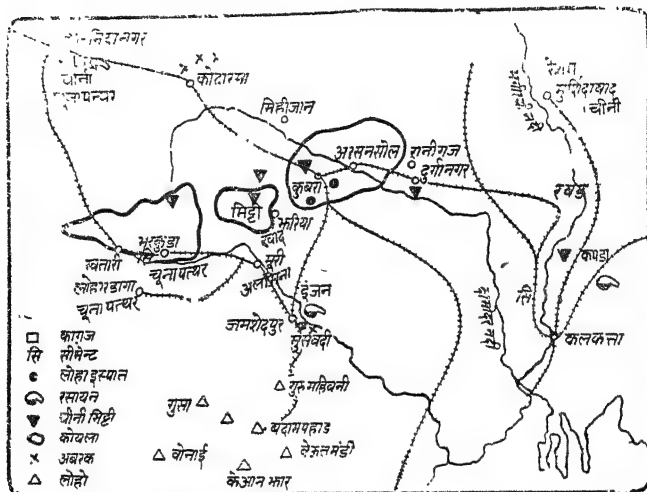
चित्र १६३. जमशेदपुर का इस्पात क्षेत्र

जङ्गल हैं जिनकी लकड़ी के कोयले से लोहा गलाया जाता है क्योंकि पश्चिम बंगाल और बिहार से यहाँ कोयला मँगा कर लोहा गलाना बड़ा खर्चीला पड़ता है। भारत में केवल यही एक कारखाना ऐसा है जहाँ लकड़ी का कोयला काम में आता है। यहाँ के लिए कच्चा लोहा बाबाबूदान की पहाड़ियों में स्थित केमानगुड़ी की खानों से (जो भद्रावती से केवल ४२ किलोमीटर दूर है) आता है। चूने का पत्थर भाडीगुडा की खानों से जो भद्रावती से २१ किलोमीटर पूर्व में हैं आता है। इस कारखाने में लकड़ी से एल्कोहल तथा शक्ति उत्पन्न कर लोहा गलाया जाता है और इस्पात बनाया जाता है।

(४) **रूरकेला का कारखाना**—यह कारखाना कलकत्ता से ४३१ किलोमीटर दूर बम्बई-कलकत्ता रेलमार्ग पर रूरकेला में है। यहाँ से पश्चिम की ओर सांख तथा कोइल नदियाँ ब्राह्मणी नदी में गिरती है। अतः जल की पर्याप्त सुविधा है। यह जल की मात्रा १२५ घन फुट प्रति सैकडा की अनवरत धारा अथवा प्रतिदिन लगभग ७ करोड़ गैलन तक मिल सकती है। इसी जल का उपयोग इस्पात को ठंडा करने के लिए किया जाता है।

रूरकेला से केवल ८० किलोमीटर दूर बोनाई में तालडीह स्थान पर अच्छे खनिज लोहे की बड़ी-बड़ी खानें है। यहाँ लगभग ७० करोड़ टन धातु के जमाव होने का अनुमान है।

(३) चूने का पत्थर बिरमित्रापुर में तथा खनिज मैंगनीज निकटवर्ती क्षेत्रों में ही उपलब्ध है। चूने के पत्थर के जमाव लगभग २६ लाख टन के अनुमानित किए गए है।

चित्र १६४. भद्रावती के इस्पात का कारखाने का भीतरी भाग

(५) उत्तम कोयला २४० किलोमीटर दूर स्थित बोकारो से तथा ३२० किलोमीटर दूर भेरिया से प्राप्त किया जाता है। घटिया कोयले के लिए कोरबा क्षेत्र ११० किलोमीटर दूर है। हीराकुड़ विद्युत गृह से रूरकेला १६० किलोमीटर ही दूर है जहाँ से १·२३ लाख किलोवाट बिजली मिल सकती है।

इस कारखाने में अब तक २ लपट वाली भट्टियाँ, ४ खुली भट्टियाँ, तीन परिवर्तन तथा ब्लूमिंग और स्लैबिंग मिल, प्लेट मिल आदि कार्य कर रहे है। इस कारखाने में अधिकतर चपटे आकार की वस्तुयें—अलग-अलग मोटाई की प्लेटें, चादरें, पत्तियाँ टीन की चादरे आदि बनाई जाती है। इनका उपयोग जहाज अथवा रेल के डिब्बे बनाने के लिए किया जाता है। बिजली के झाले हुए पाइपों का उत्पादन करने के लिए एक पाइप सयंत्र १९६० में यहाँ स्थापित किया गया है।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त यहाँ के कारखाने मे हल्का तेल, प्रांगविक तेल (Carbolic oil) नैपथलीन तेल, वॉश आयल, एथैसीन तेल, पिच आदि तैयार करने की व्यवस्था भी की गई है। हल्के तेल से बेंगोल, टूलोल तथा ऐथेसी तेल बनाये

जायेंगे। नेत्रजन तथा नेत्रजन उर्वरक बनाने के लिए एक ५·८ लाख टन क्षमता वाला एक सयत्र भी यहाँ स्थापित किया जा चुका है।
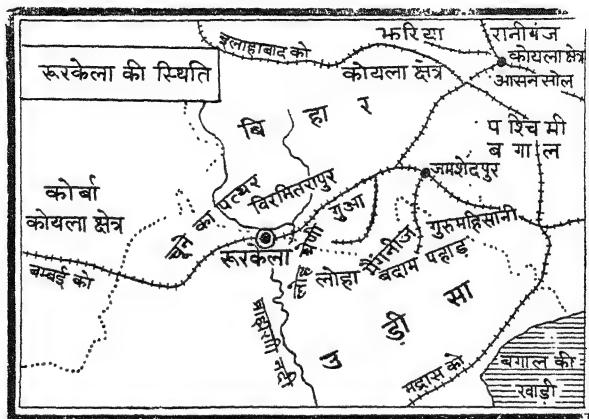
चित्र १६५. रूरकेला की स्थिति

(5) भिलाई का कारखाना—यह कारखाना मध्य प्रदेश मे भिलाई नामक स्थान पर रायपुर से २१ किलोमीटर पश्चिम में दुर्ग—रायपुर रेल मार्ग पर बनाया गया है। इसके लिए यहाँ निम्न सुविधायें पाई जाती है :—

(१) इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा यहाँ से ३२ किलोमीटर दूर धाली राजहरा पहाडियों से प्राप्त होता है। इसमे धातु का अंश ६५%तक है। यहाँ लोहे की पहाड़ी ३२ किलोमीटर तक १२२ मीटर की ऊँचाई मे फैली है। कच्चा लोहा हाहालर्दा, कोन्डापुरा, चारगाँव और रावघाट मे भी मिलता है। दुग यहाँ से ८३ कि० मीटर पड़ता है। चादा और बस्तर जिलों में १६५ करोड टन के भडार सुरक्षित है।

(२) यहाँ के लिये उत्तम किस्म का कोकिंग कोयला २२५ किलोमीटर दूर से प्राप्त होता है। यहाँ से ६·६ करोड टन कोयला मिल सकेगा। इनके अतिरिक्त भरिया और कोरबा का कोयला ६५ : ३५ के अनुपात में मिला कर धातु शोधन के उपयुक्त बनाया जाता है। कोरबा की खानें १०० किलोमीटर दूरी पर है। इसमें कार्बन का प्रतिशत ७६ और राख का अंश २१·४% है। कोरबा तापशक्ति गृह से ६०,००० किलोमीटर बिजली भी उपलब्ध है।

(३) इस कारखाने के लिये प्रतिदिन लगभग १७·५ करोड गैलन साफ जल की आवश्यकता होती है। यह जल-प्राप्ति तदुला नहर से मिलती है। गोंदी योजना भी इसमें सहायक है।

(४) चूना दुग, रायपुर और बिलासपुर जिलों से प्राप्त होता है जहाँ लगभग १५,००० वर्गमील में कई खानें फैली हैं।

(५) डोलोमाइट भानेकर, कामोंदी, पारसोदा, खरिया रामतोला और हरदी (बिलासपुर जिले में) तथा भाटपारा और पाटपार (रायपुर) से प्राप्त होता है

इस कारखाने में तीन ओवन-भट्टियाँ, तीन लपटवाली भट्टियाँ, ६ खुली भट्टियाँ और ४ रोलिंग मिल कार्य कर रहे है। यहाँ रेलें, छड़ें, भट्टियाँ शहतीर और कतरनें आदि तैयार की जाती हैं। यहाँ ३ लाख टन कच्चा लोहा भी तैयार किया जाता है।
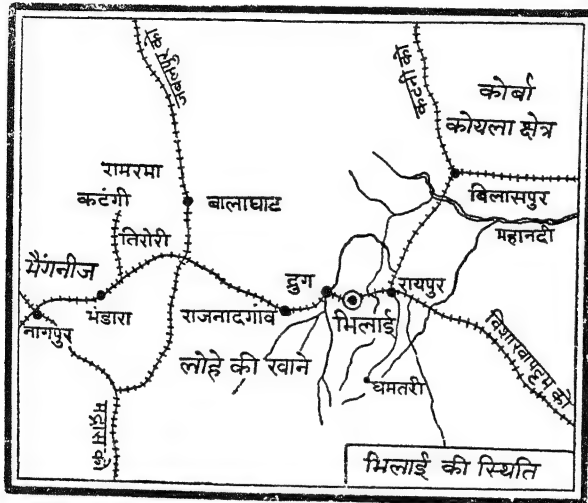
चित्र १६६. भिलाई का स्थिति

यहाँ आमोनिया सल्फेट, बैंजोल, टूलोल, जिलोन, सोलवेंट नैप्था, कारबोलिक एसिड, नैप्थलीन तेल, ऐंथ्रासीन तेल, ऐंथ्रासीन, नैप्थलीन और पिगल आदि भी तैयार करने की व्यवस्था है।

(६) दुर्गापुर इस्पात का कारखाना—यह कारखाना बंगाल में दुर्गापुर में स्थापित किया गया है। इसके लिए कोयला रानीगंज की खानों तथा बिहार से ७२ किलोमीटर दूरी से प्राप्त होता है। दामोदर योजना के शक्ति-गृह से जल विद्युत शक्ति भी मिलती है। दुर्गापुर बांध की नहरों से इस्पात ठंडा करने के लिए शुद्ध जल मिलता है। कच्चा लोहा २४० किलोमीटर दूर गुआ की खानों से प्राप्त किया जाता है। चूने का पत्थर बिरमित्रापुर तथा हाथीबाड़ा क्षेत्र से मंगवाया जाता है।

यहाँ के कारखाने में अधिकतर पहिये, टायर, धुरियाँ, रेल की पटरियाँ, छड़ें, कतरनें, बिलट आदि तैयार किये जाते हैं। यहाँ ३·६ लाख टन कच्चा लोहा भी तैयार किया जाता है। पहिये और धुरी बनाने का संयत्र भी स्थापित किया जा चुका है। इसकी क्षमता ६०,००० पहिये तथा चौड़ी और छोटी लाइन के लिए ४५,००० पहिये के सेट बनाने का है।

यहाँ अमोनियम सल्फेट, बैंजीन, टूलोल, जिलोन, सालवैंट, नैप्था, नैप्थलीन और कोलतार बनाने की भी व्यवस्था है।

(७) **बुकारो का इस्पात का कारखाना** :—तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत एक नया कारखाना बुकारो मे स्थापित किया जा रहा है। इसकी स्थापना के पीछे ये कारण रहे हैं :—
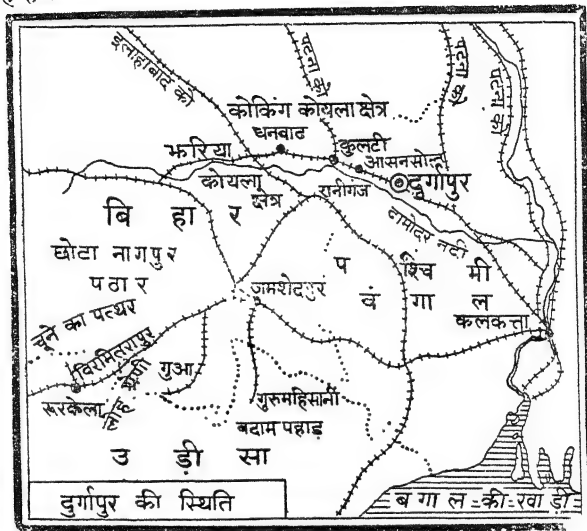
चित्र १६७. दुर्गापुर की स्थिति

(क) यहाँ जो इस्पात तैयार किया जायेगा वह कम मूल्यों पर ही बनाया जा सकेगा।

(ख) यह जमशेदपुर तथा झेरिया के कोयला क्षेत्रों के बीच में है तथा रानीगंज कोयला क्षेत्रों के भी निकट पडता है अतः इसकी स्थापना से सम्पूर्ण इस्पात कोयला क्षेत्र में एक समन्वयता होकर औद्योगिक क्षेत्र पूर्ण संगठित हो सकेगा।

(ग) सिंद्री के कारखाने के निकट होने के कारण यहाँ बनाया जाने वाला थोक रासायनिक खाद बनाने के लिए प्राप्त हो सकेगा।

बुकारो की स्थिति औद्योगिक कारखानों के बीच में बड़ी महत्वपूर्ण है जहाँ डिब्बे, इंजिन, साइकिलें, गाडियाँ तथा अनेक तरह का इस्पात का सामान बनाया जाता है। पहले चार उद्योगों के लिए कई उद्योगों की आवश्यकता पड़ती है जिनमें इस्पात से वस्तुऐं बनाई जा सकें। बुकारो के ४० कि०मी० की दूरी पर मुरी में अल्यूमीनियम साफ करने का कारखाना, तंदू मे १६ कि०मी० की दूरी पर सीसा, जस्ता आदि साफ करने का कारखाना तथा गुलमुरी में टिन की चादरें बनाने तथा अन्य केन्द्रों में कांच और अग्नि प्रतिरोधक ईंटें बनाने का उद्योग और दामोदर नदी के निकट गोमिया में विस्फोटक पदार्थ बनाने का उद्योग केन्द्रित है। इस दृष्टि से बुकारो का चुनाव बड़ा अच्छा कहा जा सकता है।

एक नया इस्पात का कारखाना गोवा-हास्पेट, विजग-बैलाडीला अथवा नैवेली-सलेम में स्थापित किया जायेगा।

रोलिंग मिल्स (Re-Rolling Mills)

भारत में रोलिंग मिलों (Rolling Mills) की स्थापना के पूर्व देश से टूटा-फूटा लोहा और इस्पात (Scrap) बहुत अधिक मात्रा में सं० रा० अमरीका, जापान, इंगलैंड आदि देशों को निर्यात किया जाता था। किंतु १६२० में जब भारत में ही स्क्रेप से छड़ें, लट्ठे तथा अन्य सामान बनाये जाने लगे तो स्क्रेप का निर्यात बन्द हो गया। १६२८ में पहली रौलिंग मिल कानपुर में खुली। अब तो भारत मे १७० रोलिंग मिलें हैं। जिनकी उत्पादन क्षमता ७,१८,००० टन वार्षिक है। इन मिलों में से ६५ मिलें बिलेट (billet) से और शेष स्क्रेप से रोल करती हैं किंतु कच्चे माल की इन मिलों को बड़ी असुविधा रहती है।

२. एल्यूमीनियम उद्योग (Aluminium Industry)

बाक्साइट धातु से अल्यूमीनियम बनाया जाता है। बाक्साइट की कच्ची धातु को शुद्ध करके ही सफेद रंग का रवेदार पदार्थ 'अल्यूमीना प्राप्त किया जाता है। इसे क्रोमाइट के घोल में बिजली की भट्टियों में गला कर अल्यूमीनियम धातु प्राप्त की जाती है। साधारणतः १ टन अल्यूमीनियम बनाने में निम्न मात्रा में विभिन्न पदार्थों की आवश्यकता होती है :—

बाक्साइट	४·५ टन
पैट्रोलियम कोक	०·७५ ,,
पिच	०·२० ,,
कोयला	४·०० ,,
फारनेस-तेल	०·५० ,,
कास्टिक सोड़ा	०·१६ से ०·२ टन
क्रायोलाइट	०·०७ से ०.१० ,,
अल्यूमीनियम फ्लूराइड	०·०३५ से ०·०४ टन
फ्लूरोस्फर	०·००७ से ०·००८ ,,
बिजली	२०,००० से २४,०००० किलोवाट

सौभाग्य से भारत में बाक्साइट के उत्तम जमाव लगभग ३५० लाख टन के हैं और सभी प्रकार के जमाव २,५०० लाख टन के है। अतः ५०,००० टन प्रति वर्ष अल्यूमीनियम उत्पादन करने वाले कारखाने १५० वर्षों तक चलाये जा सकते हैं। किन्तु अन्य कच्चा माल कास्टिक सोडा, क्रायोलाइट, अल्यूमीनियम फ्लूराइड तथा कार्बन विदेशों से मंगवाना पडता है। भारत मे इसके दो कारखाने हैं :—

पहला कारखाना **दी इण्डियन एलूमीनियम कम्पनी** है जिसमें लगभग २ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और लगभग डेढ़ हजार मजदूर काम करते हैं। बाक्साइट के क्षेत्र, शक्ति के साधन और आर्थिक व्यवस्थाओं के कारण इस कम्पनी का कार्य भिन्न-भिन्न स्थानों में किया जाता है—(अ) बाक्साइट की खानें बिहार में लोहारडागा जिले में है जहाँ से प्रति महीने १ हजार टन धातु निकाला जाता है। (ब) एलूमीनियम साफ करने का कारखाना बिहार मे मुरी नामक स्थान पर है, यहाँ कच्ची धातु से एलूमीना बनाया जाता है (स) एलूमीनियम बनाने का कारखाना (Reduction and Extrusion Works) केरल राज्य में अलवाये के निकट अलूपुरम् में है क्योंकि यहाँ पल्लीवासल जल-विद्युत शक्ति गृह से सस्ती बिजली प्राप्त हो जाती है। (द) बंगाल में हावड़ा के निकट एलूमीनियम के पिण्ड बनाने का कारखाना

(Rolling Mill) कलकत्ता के निकट बेलूर में है तथा पाऊडर और पेस्ट बनाने का कारखाना महाराष्ट्र में थाना के निकट कलवा मे है । इस कंपनी मे १९३१ में आयातित अल्यूमीनियम सिलों से चद्दरें और छल्ले बनाना तथा इसके दूसरे प्लांट अलवोय में आयातित अल्यूमीनियम से पल्लीवासल जलविद्युत कारखाने मे बिजली के द्वारा अल्यूमीनियम बनाया जाने लगा । १९४८ से मुरी वाले प्लाट में देशी बाक्साइट से अल्यूमीना का उत्पादन किया जाने लगा ।

एलूमीनियम कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड नामक दूसरी कम्पनी का कारखाना बिहार में आसनसोल के निकट जे० के० नगर में स्थित है । इसमें भारतीय बाक्साइट से अल्यूमीना १९४२ मे तथा देशी अल्यूमीना से अल्यूमीनियम का उत्पादन १९४४ से किया गया । इसमें ६० लाख की पूँजी लगी है तथा लगभग १,५०० मजदूर काम करते है । यह पूरी तौर पर स्वावलम्बी कारखाना है क्योंकि एलूमीना को ठीक करने, वैज्ञानिक विश्लेषण करने और उसको गला कर पिण्ड बनाने का सभी काम एक ही स्थान पर होता है ।

१९५५ में इन दोनों इकाइयों की अल्यूमीनियम प्राकृतधातु, उत्पादन की कुल क्षमता केवल ७५०० टन प्रतिवष की थी । अल्यूमीनियम सिलीयों का वास्तविक उत्पादन १९५१ मे ३८५० टन से बढ़कर ७२२५ टन १९५५ में हो गया । इसी अवधि में दानो इकाइयो के बेलन मिलों की सयुक्त क्षमता ३,७५० टन से बढ़कर ८४०० टन चक्के और चद्दरें प्रतिवर्ष होगई ।

नीचे की तालिका में अल्यूमीनियम की मिलो, चद्दरों, चक्कों और पत्तियों तथा पन्नी और तार की छड़ों का उत्पादन बताया गया है —

वर्ष	सिलें		चद्दरें, चक्के और पत्तियाँ			पन्नी अल्यूमीनियम की तार की छड़ें	
	इकाइयों की संख्या	उत्पादन (टोन्स)	इकाइयों की संख्या	उत्पादन (टोन्स)	(टन)	इकाइयाँ	उत्पादन (टन)
१९५६	२	६,६०५	७	१०,६४७	१,१५७	२	२,४०४
१९५७	२	७,९०९	७	११,२०६	१,३७६	२	३,३४३
१९५८	२	८ ३१२	८	१३,७९७	१,६०६	२	१,६३१
१९५९	३	१७,५२४	८	१६,२०१	१,९५६	३	२,९८५
१९६०	३	१८,२४३	९	२६,०२९	३,३००	४	४,६५७
१९६१	३	१८,३८१	११	१६,०००	३,८१०	४	७,५००

१९६० में **टैरिफ आयोग** ने भारत में अल्यूमीनियम की वार्षिक मांग ४५ हजार टन की अनुमानित की थी, जबकि योजना आयोग की तीसरी योजना के अनुसार यह मांग ११५ हजार टन की कूती गई । १९६५-६६ क लिए ८१००० टन अल्यूमीनियम उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है । इस उत्पादन की प्राप्ति के लिए ३८१ हजार टन बाक्साइट, ५०९ हजार टन पैट्रोलियम कोक, १६ ३ हजार टन दाहक सोडा, ८ १ हजार टन क्रायोलाइट, और २ लाख कि० वा० बिजली और कुछ अल्यूमीनियम फ्लोराइड और फ्लूओरस्कार की आवश्यकता होगी । दाहक सोड़ा देश मे बनता है किन्तु उत्पादन

आवश्यकता से कम होता है। पैट्रोलियम कोक का उत्पादन भी कम होता है अतः इस उद्योग की आवश्यकता का अधिकांशतः आयात से ही १९६०-६१ और १९६१-६२ में अनगढे और गढ़े अल्यूमीनियम और अल्यूमीनियम मिश्रधातु का आयात क्रमशः २५,४०७ टन और २५,५६३ टन का किया गया जिनका मूल्य क्रमशः ७·६ लाख तथा ७ ६ लाख रुपया था। अल्यूमीना मुख्यतः जर्मनी, सयुक्त राज्य अमरीका और जापान से आयात किया जाता है तथा अल्यूमीना की छड़े कनाडा, संयुक्त राज्य, रूस, नार्वे, फ्रांस और यूगोस्लाविया से; अल्यूमीनियम के सीखचे, छड़े और चक्के कनाडा, संयुक्त राज्य, ब्रिटेन और यूगोस्लाविया से तथा अल्यूमीनियम पन्नी ब्रिटेन, स्विटजरलैंड से आयात की जाती है।

१९६०-६१ और १९६१-६२ में एल्यूमीना और अनगढ़े अल्यूमीनियम का निर्यात नहीं किया गया किन्तु गढ़े अल्यूमीनियम तथा मिश्रधातु एल्यूमीनियम के निर्यात की मात्रा क्रमशः १९ व २० टन तथा मूल्य १·८ लाख और २ १ लाख रुपया था। गढ़े अल्यूमीनियम का निर्यात द० रोडेशिया, लंका, सिंगापुर और पाकिस्तान को किया गया।

द्वितीय योजना काल में ही हीराकुण्ड बांध के समीप ७½ रुपये की लागत से इडियन अल्यूमीनियम कम्पनी ने बनाकर इसकी उत्पादन क्षमता १०,००० टन की करली। अलूपुरम में एक नया उत्सारण प्रेम स्थापित किया गया है। यहाँ एक नया प्रदायक और कल्वा में एक पन्नी मिल स्थापित की जा रही है।

हिन्दुस्तान अल्यूमीनियम कारपोरेशन ने १९६२ में २०,००० टन सिलें तैयार करने का कारखाना अमरीकी सहयोग से बना लिया है। अब एक २०,००० टन क्षमता वाला एक प्रदायक (Smelter) चिपलूण मे स्थापित किया जा रहा है जिसे कोयला के बिजली घर से शक्ति मिलेगी। मद्रास में भी मैसूर मे एक प्रदायक लगाया गया है।

चौथी योजना के अंत तक देश में २·९० लाख टन अल्यूमीनियम की मांग होने का अनुमान है। इसे पूरा करने के लिए वर्तमान कारखानो का विस्तार किया जायेगा तथा कुछ नये कारखाने खोले जायेंगे। महाराष्ट्र में **कोयला अलमूनियम निगम**; मैसूर में **मैसूर अलमूनियम कारखाना** और मध्य प्रदेश मे कोरबा कारखाने स्थापित किए जायेगे। जिनकी क्षमता ८८ ह० टन की होगी। केरल के अलवाये तथा उत्तर प्रदेश के रेंड़ के कारखाने की क्षमता क्रमशः १० ह० और ४० ह० टन से बढ़ाई जावेगी। इस प्रकार इन कारखानो की उत्पादन क्षमता ६२,५०० से बढ़ कर ११३,००० टन की होगी।

अध्याय २६

इन्जीनियरी उद्योग

(ENGINEERING INDUSTRY)

इंजीनियरिंग उद्योग के अन्तर्गत एक छोटे पुर्जे से लेकर रेलवे एंजिन तक सभी पदार्थ आ जाते है। इनमें सब प्रकार की धातुओं का निर्माण किया जाता है जैसे, लोहा, इस्पात, अल्यूमीनियम, तांबा और मिश्रित धातुऐं आदि। भारी इंजीनियरिंग उपकरण भी धातुओं के बने होते हैं किन्तु वह वजन और आकार में भारी होते है। उदाहरण के लिए, इस्पात के कारखाने में जो धमन भट्टियाँ (Blast Furnaces) होती है उनकी ऊँचाई १०० फीट से अधिक, व्यास २५ फुट और भार लगभग २,००० टन होता है। यह इस्पात की मोटी चादरों को मोड़कर और ढालकर बनाई जाती है। इस्पात कारखाने की रोलिंग मिल चलाने में बड़ी-बड़ी मोटरो का उपयोग किया जाता है जिनकी शक्ति कई हजार अश्व-शक्ति होती है। इसमें बड़े-बड़े गिरह होते है जिनका भार कई टन का होता है।

इस प्रकार के इंजीनियरी बड़े-बड़े उपकरणों के निर्माण के लिए बड़ी मशीनों की आवश्यकता होती है जिनमें विपुल धनराशि लगती है। इनके लिए विशेष तकनीकी ज्ञान और अनुभव, परिवहन की पूर्ण सुविधायें, रेल किराये में सहानुभूतिपूर्ण नीति का पालन, उदार कर नीति, सस्ते दामों पर कोयले की व्यवस्था आदि का होना आवश्यक है। इजीनियरी उद्योग के लिए बड़ी मात्रा में उपकरणादि विदेशों से आयात करने पड़ते है। १९५६-५७ में लगभग २५३ करोड़; १९५७-५८ में ३१० करोड; १९५८-१९५९ मे २४९ करोड़, १९५९-६० में २७९ करोड़ और १९६०-६१ में ३३२ करोड़ के मूल्य का विभिन्न प्रकार की मशीनों औजारों का आयात किया गया। यह आयात मुख्यत: जापान, कनाडा, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, संयुक्तराज्य अमरीका, इटली और रूस से आयात किया जाता है।

पिछले कुछ वर्षो से इंजीनियरी उद्योग में प्रगति की गई है और अब मशीनी औजार, रेल के डिब्बे, बिजली की मोटरें, ट्रांसफार्मर, चीनी मिलों और कोयला काटने की मशीनें, मोटर कारें, ट्रैक्टर, स्कूटर, बाईसिकलें, गीयर, फावडे, बुलडोजर्स आदि का उत्पादन बढ़ा है। कुछ मुख्य प्रकार की मशीनों का उत्पादन इस प्रकार है[1] :—

चीनी मिल की मशीनें रसायन और औषधें बनाने वाली मशीनें	६·४३ करोड़ रु०
रासायनिक मशीनें	३·६७

---

१. उद्योग व्यापार पत्रिका, फरवरी १९६४, पृ० ७५७।

चीनी मिट्टी का माल बनाने की मशीनें	०·१० करोड़ रु०
चाय की पत्ती तैयार करने वाली मशीनें	१·६५ ,,
औद्योगिक बायलर	२·६२ ,,
कृषि सम्बन्धी मशीनें	१ ४२ ,,
सीमेंट बनान की मशीनें	०·७१ ,,
वस्त्र की मशीनें	२७·०० ,,
मोटर गाड़ियाँ	५७,७४४
स्कूटर, मोटर साइकल	२५,०००
मोटर गाड़ी सबधी उद्योग की वस्तुऐं	१८·०० करोड़ रु०

तृतीय योजना मे इस्पाती ट्यूब, तार, विद्युत तार, तार के रस्से विभिन्न प्रकार की लोहे और इस्पात की ढलाई व गढ़ाई तथा जोड़कर बनाये जाने वाले ढाँचें, डेरी मशीने, कागज तथा छपाई की मशीने आदि बनाने के लक्ष्य निर्धारित किये गए हैं।

यह स्मरणीय तथ्य है कि पहली योजना के आरम्भ मे केवल ४ करोड़ के मूल्य की मशीनें भारत में बनाई जाती थी। दूसरी योजना में इनका उत्पादन १०० करोड़ से भी अधिक बढ गया। इस समय लगभग २५० करोड रुपये के मूल्य की मशीने और साज-सामान तैयार किया जाता है। तृतीय योजना की समाप्ति पर लगभग ५००-६०० करोड़ रुपये की मशीनें प्रति वर्ष बनने लगेंगी।

मशीनी औजारों के उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ उनका निर्यात भी बढने लगा है। १६६१ में २·६६ लाख रुपये के मूल्य के औजार भारत से निर्यात किये गए। १६६२ मे ७·८६ लाख रुपये के मूल्य के। इनका निर्यात मुख्यतः अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, बर्मा, मलाया, ईरान, केनिया, पाकिस्तान, कतार, सिंगापुर, ब्रिटेन, ओमान और पश्चिमी जर्मनी को किया गया।

जैसा कि ऊपर कहा गया है निर्माण कला संबंधी उद्योगों में कई प्रकार के उद्योग सन्निहत है। इनके अन्तर्गत **स्ट्रकचरल इंजीनियरिंग** (जिसके अन्तर्गत पुल आदि बनाना, तेल के कुँए, हैंगर्स आदि दूसरे इस्पात के कामों का निर्माण करना आता है); **औद्योगिक प्लान्ट** और मशीनरी के निर्माण का उद्योग; एंजिन बनाने का उद्योग; मोटर आदि बनाने का उद्योग; हवाई जहाज बनाने का उद्योग; **मशीन टूल्स** (जिसके अन्तर्गत वे तमाम यांत्रिक उपकरण आ जाते हैं जो लकड़ी या धातु के काटने, पालिश करने या उन पर काम करने के लिये आवश्यक होते है); हल्की निर्माण कला के उद्योग (साइकल, सिलाई की मशीनें लालटेन बनाने के उद्योग); बिजली के सामान सबधी उद्योग (पखे, बत्तियाँ, मोटर्स, तार, सूखी बैटरियाँ, प्लग ट्रान्सफोर्मर्स आदि), डीजल एंजिन सबधी उद्योग; विद्युत की मशीनें; रेडियो और टेलीफोन के सामान बनाने का उद्योग आदि उद्योगों का समावेश किया जाता है।

निर्माण कला उद्योग में कच्चे इस्पात से पक्के इस्पात का बनाना (Steel forging) और पेंट करना, मशीनिंग, ड्रिलिंग तथा रिवेटिंग आदि की क्रियाएँ (Steel fabrication) जिनके द्वारा 'रोल्ड स्टील' को जिस काम मे वह आने वाला हो उसके योग्य बनाया जाता है—भी आ जाती है। इन उद्योगों की गिनती आधार-

भूत उद्योगों मे की जाती है और इनकी प्रगति लोहे और इस्पात के उद्योग पर ही अधिकाश में निर्भर होती है। भारत में इन उद्योगों के लिए कच्चे माल की उपलब्धता है किन्तु अभी कुशल मजदूरों की नितात कमी है।

१. इस्पात के ढाँचे बनाने का उद्योग

ढाँचा निर्माण उद्योग एक महत्वपूर्ण विशिष्ट उद्योग है जिसके लिए बड़े वर्कशॉपों की तथा बहुत से मशीनी उपकरणों की आवश्यकता पडती है। इसके प्रशिक्षित तथा अनुभवी इंजीनियरों और कुशल कारीगरों की भी आवश्यकता होती है। अनेक उद्योगो के विपरीत ढाँचा निर्माण उद्योग एक-सी ही वस्तुऐं नहीं बनाता बल्कि यह तो जैसे ढाँचे की मांग हो वैसा ही ढांचे बनाता है। दूसरे शब्दों में उन्हीं मशीनों का अनेक प्रकार के ढाँचे बनाने मे प्रयोग किया जाता है। इस देश में इस उद्योग का श्रीगणेश इस शताब्दी के आरम्भ मे स्थापित किये गये इंजीनियरी के कारखाने में हुआ जिससे रेलों तथा सरकारी निर्माण विभागों आदि की जरूरतें पूरी की जा सकें। प्रतिरक्षा विभाग की अत्यधिक माँग के कारण यह उद्योग दूसरे महायुद्ध के दिनों मे खूब बढा-पनपा। महायुद्ध के बाद यद्यपि निर्माण कार्यक्रमों की बहुत माँग रही फिर भी इस्पात की कमी के कारण यह उद्योग अपनी पूरी क्षमता के अनुसार कार्य नही कर सका। लेकिन हाल ही मे इस स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ गया है।

विभिन्न प्रकार के ढाँचे—अधिक सामान्य किस्मों के जो ढांचे बनाये जाते हैं उन्हें मोटे तौर पर निम्न शीर्षों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :—

(१) वर्कशापों, मालगोदामो, बिजलीघरों, विमानशालाओं आदि के लिये आवश्यक ढाँचे।

(२) सडक, रेल तथा नदियो के पुलों, जहाजों पर से उतरने के स्थान तथा जहाज घाटों के ढाँचे।

(३) इस्पात संयंत्र, कोक भट्टी संयंत्रों, सीमेन्ट, कागज मिल, रासायनिक संयंत्रों आदि के लिये आवश्यक ढाँचे।

(४) मशीनों द्वारा सामान इधर-उधर पहुँचाने के क्रेनों, विन्चों तथा डैरिकों जैसे उपकरणों के लिये इस्पात के ढाँचे।

(५) पानी में प्रयोग किये जाने वाले इस्पात के ढाँचे जैसे नहर आदि में पानी छोडने या रोकने के फाटक, उन फाटकों को चलानें वाले गीयर, बाढ़ का पानी निकालने वाले फाटक। ये ढांचे जल-विद्युत तथा सिंचाई योजनाओं के काम आते हैं।

(६) रस्सों तथा तारों के बने हुए वायुयानों से सामान इधर-उधर हटाने के उपकरण जैसे पिजड़े, ट्रालो तथा सहायक पाढ़ें आदि।

(७) विद्युत प्रेषक स्तंभ।

(८) पानी तथा तेल भरने के लिये इस्पात की ढाली हुई अथवा झाली हुई टंकियाँ।

(९) ढालकर, झालकर अथवा रिपट लगाकर बनाये गये अन्य विविध प्रकार के ढाँचे।

इनके अतिरिक्त रेल के माल ढोने के डिब्बे, डिब्बों के नीचे लगने वाले ढाँचे, सवारी डिब्बे, सिगनल के सामान तथा जहाजों के निर्माण में भी ढाँचों का बहुत प्रयोग करना होता है।

उत्पादन क्षमता—इस समय ढाँचे बनाने का काम ६९ कारखानों में होता है। इन ३९ कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता लगभग १,२६,००० टन है।

आधे से अधिक कारखाने छोटे-छोटे हैं और उनकी उत्पादन क्षमता १,००० टन वार्षिक से भी कम है। यद्यपि ढाँचे बनाने वाली फर्में महाराष्ट्र और मद्रास में, बिहार में (इस्पात के कारखानो के पास) तथा देश के आन्तरिक भाग में स्थित एक महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र कानपुर में है तथापि फिलहाल यह उद्योग मुख्य रूप से कलकत्ते के आस पास ही है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानो में जो कारखाने है, वे मुख्य रूप से हलके ढाँचे ही बनाते हैं।

इन्जीनियरी उत्पादन क्षमता का सर्वेक्षण करने वाली समिति के अनुसार २५ प्रतिशत क्षमता का उपभोग भारी ढाँचे बनाने में, ४० प्रतिशत कम भारी ढाँचे बनाने में और ३५ प्रतिशत क्षमता का प्रयोग हलके ढाँचे बनाने में किया जा सकता है। भारी ढांचे बनाने की कुल क्षमता का ७० प्रतिशत भाग देश के पूर्वी प्रदेश में तथा शेष भाग पश्चिमी प्रदेश में है। कम भारी तथा हलके ढाचे बनाने की अधिकांश क्षमता पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेश मे है।

कच्चा माल—ढाँचा निर्माण उद्योग में विभिन्न वर्गों के हलके तथा भारी ढाँचों, प्लेटों, कम तथा तेज तनाव रोकने वाली इस्पात की सलाखो, वोल्ट तथा ढिबरियों, रिपटों, ढाले हुए लोहे और इस्पात, जस्ता चढी चादरों और तारों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है। ये सभी वस्तुऐं देश मे ही तैयार होती हैं और कभी-कभी कमी पूरी करने के लिये इनका आयात भी किया जाता है, विशेष रूप से चौड़ी प्लेटों तथा ढाँचों के उन भागों का भी आयात किया जाता है, जिनकी ढलाई भारत के कारखाने नहीं कर सकते हैं। हाल के वर्षो मे इस उद्योग को जिन प्रमुख कटिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनमें से दो प्रमुख कठिनाइयाँ लोहे की सामान्य कमी तथा आयातित इस्पात के ऊंचे दाम होने की है। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में इस्पात उद्योग के विस्तार हो जाने से ढाँचा निर्माण उद्योग के विकास मार्ग की बड़ी बाधा दूर हो जायगी। इसी प्रकार भारी ढलाई-घर तथा भार ढलाई-घर स्थापित होने से यह आशा है कि भारी ढलाई और गलाई की आवश्यकतायें भी पूरी हो जायँगी।

इस उद्योग में करीब ११-१२ करोड़ रु० लगा हुआ है। १९६१ में इस्पात के ढांचों की वार्षिक मांग ५ लाख टन की थी।

२. जलयान निर्माण उद्योग (Ship Building Industry)

उद्योग का विकास:—नावें बनाने का उद्योग भारत में काफी समय से किया जाता था। ईसा से ३ शताब्दी पूर्व तो यहाँ अच्छी किस्म के जलयान भी

बनाये जाते थे । मांडवी, कच्छ, मलवान, कालीकट, ट्रिकोअली, मछलीपट्टम, विजयदुर्ग, भावनगर, बेसीन, अलीबाग, बालासोर, ढाका, सिलहट और कलकत्ता जहाज बनाने के प्रमुख केन्द्र थे । इन जहाजों के बनाने में लकड़ी का ही अधिक प्रयोग किया जाता था । किन्तु विदेशी देशों की प्रतिस्पर्धा से यह व्यवसाय अधिक नहो टिक सका । वींसवीं शताब्दी के मध्य से ही यह पुनर्जीवित हुआ है ।

आधुनिक ढग का जहाज बनाने का कारखाना **सिंधिया नेवीगेशन कं०** द्वारा १९४१ में विशाखापट्टनम में स्थापित किया गया किन्तु आर्थिक अव्यवस्था के कारण १९५१ में इसका नियंत्रण भारत-सरकार के आधीन हो गया और कपनी के दो हिस्से सरकार ने तथा एक-तिहाई सिंधिया कम्पनी के होगये । १ मार्च, १९५३ से इस कारखानें का सारा कार्य **हिन्दुस्तान शिपयार्ड कं०** के हाथ मे आगया । इस कारखानें द्वारा प्रतिवर्ष डीजल से चलने वाले चार जहाज बनाये जा सकते है ।

१९५१ में भारत की जहाजी-शक्ति ३९०,७०७ GRT की थी । यह बढ़कर १९५६ में ६००, ७०७ GRT हो गई और १९६१ में ९०१,७०७ GRT. तृतीय योजना मे यह १४·२ लाख GRT होगी । इसमे से १०·८ लाख GRT विदेशी व्यापार के लिए और ३·४ लाख GRT तटीय व्यापार के लिए होगी ।

विशाखापट्टनम के कारखाने मे अब तक ४० जहाज बन चुके हैं । जिनका टन भार १४५,३०५ GRT है । २·५ करोड रुपये की विस्तार योजना के फलस्वरूप प्रतिवर्ष यहाँ ५० से ६० हजार DWT के कुल टन भार जहाजों का उत्पादन हो सकेगा ।

१९५२ से अब तक इस कारखाने मे निम्न मुख्य जहाज बन कर तैयार हो चुके है :—

जहाज	भार	स्वामित्व
१. जलरानी	८,००० D.W.T.	ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन
२. जलप्रताप	,,	सिंधिया स्टीमशिप क०
३. जलपुष्पा	,,	,,
४. भारत-रत्न	,,	भारत-लाइन्स लि०
५. जलपुत्र	,,	सिंधिया स्टीमशिप क०
६. जलविहार	७,००० D.W.T.	,,
७. जलविजय	,,	,,
८. जलविष्णु	,,	,,
९. स्टेट ऑफ कच्छ	८,०००D.W.T.	ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन
१०. कोर्ट नोजल टग		मद्रास बन्दरगाह
११. एडमान	४,००० D.W.T.	गृह-मंत्रालय, भारत सरकार
१२. स्टेट आफ उड़ीसा	८,००० D.W.T.	ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन
१३. जल-विक्रम	५,००० D.W.T.	सिंधिया स्टीमशिप कं०
१४. जल-वीर		

यहाँ निम्न सुविधायें पाई जाती हैं :—

(१) यह बन्दरगाह पूर्वी तट पर कलकत्ता और मद्रास के केन्द्रवर्ती भाग में स्थित है अतः दोनों ओर से आने-जाने की सुविधा है।

(२) इसका बन्दरगाह गहरा है अतः बड़े-बड़े जहाजों के ठहरने की सुविधा है।

(३) बंगाल और बिहार के लोहे तथा कोयले के क्षेत्र बहुत ही निकट हैं। विजगापट्टम दक्षिण-पूर्वी रेलवे द्वारा तातानगर से जुड़ा है। (जो केवल ८८५ किलो-मीटर दूर है) अतः इस्पात मिलने की सुविधा है।

(४) जहाज बनाने के उपयुक्त मजबूत लकडी बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर के जंगलो से प्राप्त हो जाती है।

(५) कुशल और दक्ष मजदूर बंगाल और मद्रास से आ जाते हैं।

(६) छोटा नागपुर से अच्छे किस्म की लकड़ी भी मिल जाती है जो जहाज निर्माण में डेक, कमरे आदि बनाने के काम आती है।

बन्दरगाह में जलपात सुरक्षित रखने के ५५० फुट लम्बे बर्थों, साधारण उपयोग के लिए एक छोटे बर्थ, १२५ टन क्षमता वाले हैमर से युक्त विशाल क्रेनों तथा बहुत बड़े-बड़े पूरक कारखानों से युक्त इस शिपयार्ड में जलपोत निर्माण करने की क्षमता १५००० लाख. टन की है। विकास योजना की समाप्ति पर शिपयार्ड की वर्तमान उत्पादन क्षमता २ अथवा ३ जलपोत प्रतिवर्ष से बढकर आधुनिक प्रकार के भारवाहक ४ से ६ जलपोत प्रतिवर्ष की होगी जिनका वार्षिक टन भार ५०,००० से ६०,००० DWT का होगा।

देश की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए एक और शिपयार्ड बनाने का आयोजन किया गया है। इसके लिए १९५७ में ब्रिटेन से एक प्रतिनिधि मंडल भारत बुलाया गया। इस मडल के अनुसार जलयान निर्माण के लिए वही स्थान उपयुक्त हो सकता है जहाँ निम्न सुविधायें मिल सकती हों :—

(क) जहाजी कारखानों में बनने वाले बड़े-बड़े जहाजों को उतारने के लिए पानी की गहराई और ज्वार-भाटे का क्षेत्र काफी होना चाहिए।

(ख) उत्तम जलमार्ग से यह कारखाना जुडा हो।

(ग) तूफान से सुरक्षित और पर्याप्त लंबा चौड़ा स्थान हो जहाँ भविष्य में विकास के लिए पर्याप्त स्थान मिल सके।

(घ) किसी बड़े बन्दरगाह या औद्योगिक केन्द्र के निकट हो।

(ङ) बिजली, पानी, सड़क और रेल मार्गों की सुविधा हो।

इस मंडल के अनुसार भारतीय तट पर कोई ऐसा आदर्श स्थान नहीं है जो पूर्णरूप से सभी सुविधाओं वाला हों किन्तु फिर भी अर्नाकुलम, मझगाँव, काडला,

ट्राम्बे, और ज्ञानखाली का विचार किया जा सकता है क्योंकि इन स्थानों की विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

अर्न कुलम—इसकी स्थिति सर्वोत्तम मानी गई है। यहाँ पहले से ही जलयान निर्माण सम्बन्धी कई उद्योग किए जा रहे हैं। यातायात की पर्याप्त सुविधा है तथा श्रमिक भी औद्योगिक प्रक्रियाओं से परिचित हैं किन्तु यह स्थान सिविल-एंजिनियरिंग की दृष्टि से अनुपयुक्त है।

मझगाँव—इसकी स्थिति जहाजों के मरम्मत के लिए ठीक है। यहाँ १२ हजार टन तक के जलयान बनाये जा सकते है किन्तु इसकी वार्षिक निर्माण क्षमता केवल ४ जहाजों की ही होगी। इसका उत्पादन अन्य स्थानों की अपेक्षा कम होगा किन्तु इसका विकास कम लागत और शीघ्रता के साथ किया जा सकता है।

कांडला—सामरिक दृष्टि से यह सुरक्षित स्थान नहीं है तथा औद्योगिक केन्द्रों से भी दूर है। इसके अतिरिक्त प्राविधिक श्रमिक उपलब्ध करने की भी कठिनाई है किन्तु जहाज निर्माण कार्य जल की प्रर्याप्त गहराई होने से ठीक प्रकार किया जा सकता है।

ट्राम्बे—यद्यपि इसकी स्थिति उपयुक्त है किन्तु सागर की ओर इसका प्रवेश उथले जलमार्ग द्वारा होता है अतः इसे निरंतर गहरा करना आवश्यक होगा। इसमें खर्च अधिक बैठेगा।

ज्ञानखाली—यह स्थान रेती से पटता रहता है अतः तट तक पहुँचने के लिए हुगली नदी को निरंतर गहरा करना पड़ेगा। वैसे यह इस्पात उद्योग तथा कलकत्ता के औद्योगिक क्षेत्र के निकट है, अतः आवश्यक कच्चा माल और प्रशिक्षित श्रमिक मिल सकेंगे।

उपरोक्त पांचों स्थानों पर स्थापित किये जाने वाले कारखानों का व्यय इस प्रकार अनुमानित किया गया है :—

इर्नाकुलम १९·१६ करोड़ रु०; कांडला २०·३१ करोड़; ट्राम्बे १७·३८, ज्ञानखाली, २०·८८ करोड़ और मझगांव ७·०४ करोड़ रु०।

इन स्थानों की अपेक्षा दूसरा शिपयार्ड कोचीन मे और स्थापित किया जा रहा है जिस पर २० करोड़ खर्च होने का अनुमान है। इसकी जहाज बनाने की क्षमता आरंभ मे ६०,००० GRT होगी जो अंततः ८०,००० ग्रॉस टन की होगी।

३. मोटर साइकिल, स्कूटर और ट्रेलर उद्योग

(१) **मोटर साइकलें** तैयार करने का पहला कारखाना **एनफील्ड (इण्डिया) लि०** के नाम से १९५४ में मद्रास में स्थापित किया गया। इसमें मोटर साइकिलें १९५५ से बनना आरम्भ हुआ। इसकी उत्पादन क्षमता ५,००० वार्षिक थी। १९५५ में ही **ओटोमोबाइल प्रोडक्टस ऑफ इण्डिया लि०** बम्बई ने लैम्ब्रेटा स्कूटर बनाने आरंभ किए। इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ६०४८ स्कूटर की थी। १९६१ में पूना में इस कम्पनी की एक नई इकाई (**बजाज ओटो प्रा० लि०**) खुल जाने से अब इसकी **वर्तमान क्षमता १८,००० स्कूटर की हो गई है।**

(२) ट्रेलर बनाने वाले केवल १२ इकाइयाँ है जिनकी उत्पादन क्षमता एक पारी के आधार पर ११,३४० ट्रेलर वार्षिक है । ये इकाइयाँ ५ महाराष्ट्र में ३ पश्चिम बगाल में, २ मद्रास मे, १ आसाम मे और १ उत्तर प्रदश मे है ।

मोटर साइकलों, स्कूटरों और ट्रेलर तथा ओटो-रिक्शाओं का उत्पादन इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	मोटर साइकले	स्कूटर	तीन पहिये वाली गाड़ियाँ	ट्रेलर
१९५६	१,०२२	४,७३५	५२९	१,८८६
१९५७	१,८२७	६,५२८	३५२	१,८३५
१९५८	२,६५३	४,३९१	४८३	१,९२०
१९५९	३,२३९	३,९४०	९४७	१,५३६
१९६०	३,९९८	१२,८८०	९९६	२,०१२
१९६१	८,६३६	१५,४५१	१,२६७	३,०४६

१९५६ के अत में मोटर साईकलों की वार्षिक खपत ५,००० की थी । यह बढ़कर स्कूटरों सहित १९६१ में ११,००० हो गई । तीसरी योजना मे सभी की खपत ५०,००० वार्षिक हो जानी है । इसके अतिरिक्त उत्पादन के लिए मैसूर. पजाब और मद्रास में तीन नई इकाइयाँ तथा दिल्ली मे ४ और मद्रास में १ नई इकाई खोली जा रही है ।

१९६१-१९६२ में मोटर वाली समस्त साइकलों का कुल आयात मूल्य १३४ लाख रुपया तथा मोटर साइकल के पुर्जो का आयात मूल्य ७९ लाख रु० और ट्रेलरों का आयात मूल्य ६ लाख रु० था । **ओटो रिक्शा** पश्चिमी जर्मनी से; **मोटर साइकिलें** चैकास्लोवाकिया और ब्रिटेन से; **स्कूटर** इटली और ब्रिटेन से; **मोटर साइकिल के पुर्जे** पश्चिमी जर्मनी, ब्रिटेन चैकोस्लोवाकिया, इटली से तथा ट्रेलर सयुक्त राज्य अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और रूमानिया स आयात किये गये ।

इस उद्योग के लिए दो प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता होती है :—

(क) इस्पात की चद्दरे और पटियाँ, कार्बन, इस्पात और मिश्र-धातु इस्पात के सींखचे, कतरने, नलियाँ और वेल्लित खड । ये सब दश मे ही उपलब्ध हो जाते हैं ।

(ख) ढलवें इस्पात की वस्तुयें, इल्यूमीनियम के ढले सामान, रबड़ युक्त हिस्से, कांच ।

४. मोटर गाड़ी उद्योग (Automobile Industry)

कुछ समय पूर्व से ही कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विभिन्न भागों में कत्रित करके मोटर-गाड़ी तैयार करने का उद्योग शुरू किया गया है । इस समय

देश में १२ कारखाने हैं, यथा —५ महाराष्ट्र में, ३ मद्रास में, और ४ कलकत्ता में[1]। इनमें ८,००० व्यक्ति लगे हैं तथा ४२ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है। इन केन्द्रों में विदेशी मोटरों के भागों को मिला कर गाडियाँ तैयार की जाती हैं।

कलकत्ता केन्द्र में १९४४ में हिन्दुस्तान मोटर कम्पनी ने काम शुरू किया। इस कम्पनी के पास पूरा मोटर व ट्रक तैयार करने की मशीनें हैं। केवल इन गाड़ियों का शरीर नहीं बन सकता है। ग्रेट ब्रिटेन की मोरिस मोटर कम्पनी तथा संयुक्त राष्ट्र की स्टूडीबेकर कम्पनी के साथ मिलकर 'हिन्दुस्तान' व 'स्टूडीबेकर' गाड़ियाँ भारत में तैयार की जाने की योजना है। कलकत्ता में उत्तर पारा स्थान पर इस प्रकार के एकत्रीकरण का एक विस्तृत कारखाना बनाया गया है।

बम्बई केन्द्र में भी १९४८ में ही कार्य आरम्भ हुआ था। यहाँ की मुख्य कम्पनी प्रीमियर ऑटोमोबाईल कम्पनी है। इसका सम्पर्क संयुक्त राष्ट्र की चेस्लर ग्रूप से है। यहाँ मोटर कारें व ट्रकें बनाई जाती हैं।

बर्नपुर और जमशेदपुर में इस उद्योग के लिए विशेष सुविधायें हैं। ये दोनों ही स्थान लोह-क्षेत्रों के मध्य में स्थिति है। यहाँ आयात की हुई मशीनों व मोटरों के भागों को आसानी से लाया जा सकता है। चूँकि इन केन्द्रों में इंजीनियरिंग उद्योग पहले से ही स्थापित है इसलिये कुशल मजदूरों को भी प्राप्त किया जा सकता है।

वास्तव में मोटर उद्योग निर्माण व एकत्रीकरण दोनों रीतियों का सम्मिश्रण है। संसार के किसी एक मोटर कारखाने में सभी आवश्यक कल-पुर्जे नहीं बनाये जाते। अतः भारत को भी मोटर गाड़ियों के सभी कल-पुर्जे निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। भारत में कुछ भागों को बनाया जाता है और अन्य कल-पुर्जों की आवश्यकता आयात द्वारा पूरी की जाती है।

नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत में विभिन्न श्रेणी की गाड़ियों का कितना प्रतिशत भाग भारत में ही बनाया जाता है :—

कारें :

फिएट ११००	३१ प्र० श०
हिंदुस्तान एम्बैसेडर	६० ,,
स्टैण्डर्ड वैनगार्ड	३३ ,,
स्टैण्डर्ड १०	३० ,,

---

१. महाराष्ट्र में : (१) जनरल मोटर्स लि०; (२) फोर्ड मोटर कं०; (३) प्रीमियर ऑटोमोबाइल लि०; (४) महेन्द्र एण्ड महेन्द्र लि०; (५) रूट्स ग्रुप।

मद्रास में : (१) एडीसन एण्ड कं०; (२) स्टैन्डर्ड मोटर कं० (३) अशोक मोटर्स।

कलकत्ता में : (१) पेनिन्सुला मोटर कारपोरेशन; (२) फ्रैंच मोटर कं०; (३) हिन्दुस्तान मोटर्स (४) देवार्स गैरेज एण्ड एंजीनियरिंग वर्क्स।

ट्रकं :

लेलैंड	३६ प्र० श०
डॉज (हल्के पैट्रोल)	३७ ,,
डॉज	३३ ,,
डॉज (मध्यम डीजल)	५० ,,
टाटा-मर्सीडीज बैंज	४७ ,,

जीपें :

विली जीप	५२ प्र० श०
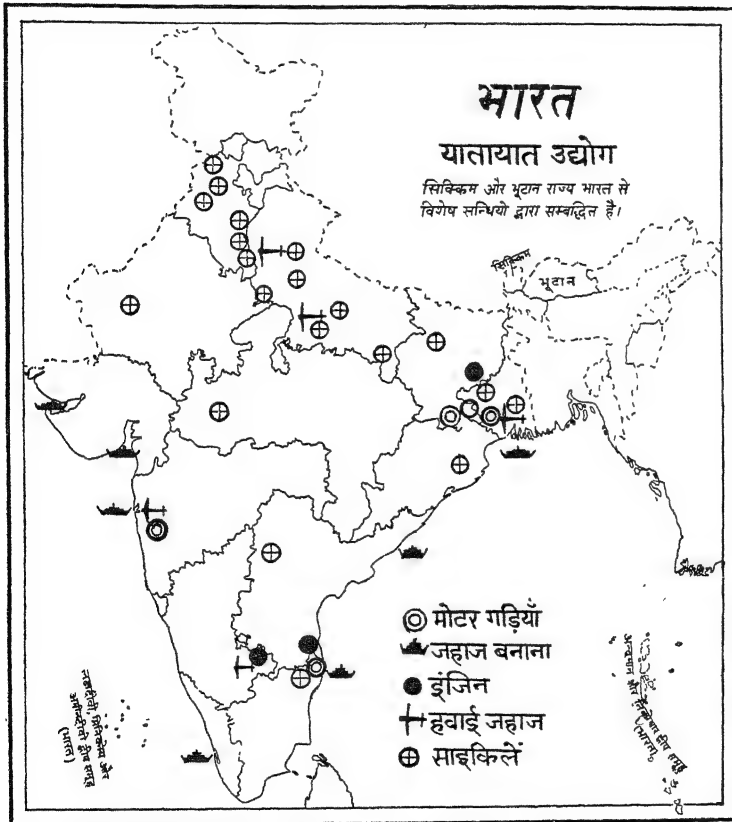
चित्र १६८ भारत में यातायात उद्योग

अग्र पृष्ठ की तालिका में बताया गया है कि भिन्न भिन्न कंपनियाँ किस प्रकार की गाड़ियाँ तैयार करती है :—

फर्म का नाम	गाड़ियाँ	ट्रक और यात्री ढोने वाली
(१) हिन्दुस्तान मोटर्स, कलकत्ता	हिन्दुस्तान १४, स्टूडीबेकर; मौरिस माइनर	स्टूडीबेकर
(२) प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स लि०, बम्बई	डॉज, डिसोटो, प्लाईमाऊथ, फिएट ११००	डॉज, डिसोटा, फॉरगो
(३) स्टैण्डर्ड मोटर प्रोडक्शन्स इण्डिया लि०, मद्रास,	स्टैण्डर्ड वैनगॉर्ड स्टैण्डर्ड ८	—
(४) अशोक लेलैंड लि०, मद्रास,	—	लेलैंड (डीजल)
(५) टाटा मर्सीडीज बेंज लि०, जमशेदपुर		मर्सीडीज, बेंज (डीजल)
(६) महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा कं० लि०, बम्बई	विलीज जीप	

अभी तक भारत मे समूची मोटर गाड़ियों का निर्माण आरम्भ नहीं हुआ है। अभी यह देश मे बन पुर्जों और विदेशो से आयात किये गये पुर्जों से बनाई जाती हैं, अगली तालिका मे मोटर गाड़ियो का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	कारें	ट्रकें बसें सवारी गाड़ियाँ	योग
१९४९	६,६७२	१५,१३२	२१,८०४
१९५१	१२,३८४	९,८८८	२२,२७२
१९५६	१२,९६०	१८,६६३	३१,६२३
१९५७	११,५०४	२०,४२८	३१,९३२
१९५८	७,८१२	१८,९८४	२६,७९६
१९५९	११,७१२	२९,४६०	४१,१७२
१९६०	१९,०९२	२७,०७२	५२,१४०
१९६१	२१,६६०	२५,५९६	५४,३१२
१९६२	२३,३६८	२७,२४०	५७,८१६

तृतीय योजना के अन्तर्गत ३०,००० सवारी गाड़ियाँ, ६०,००० व्यापारिक गाड़ियाँ और १०,००० जीपें आदि प्रति वर्ष बनने लगेंगी।

५. साइकल उद्योग (Cycle Industry)

भारत में साइकल उद्योग १९३८ में आरंभ हुआ जबकि **मैसर्स इण्डिया मैन्यू-फैक्चरिंग कं, कलकत्ता** की स्थापना साइकल के पुर्जे बनान के लिए हुई। उसके दो साल बाद दो कंपनियाँ—**हिन्दुस्तान बाईसिकल मैन्यफैक्चरिंग एंड इंडस्ट्रियल कारपोरेशन, पटना** और **मैसर्स हिन्द साइकल लि० बम्बई** सम्पूर्ण साइकलें बनाने के लिए स्थापित हुईं। द्वितीय महायुद्ध काल में यह उद्योग अधिक उन्नति नहीं कर सका किन्तु १९४७ के बाद इसने विशेष प्रगति की है जब कि तीन नये कारखाने स्थापित किए गए है :—(१) **टी० आई० साइकल ऑफ इंडिया**, मद्रास; (२) **सेन-रैले इंडस्ट्रीज आफ इंडिया**, आसनसोल और (३) **एटलस साइकल इंडस्ट्रीज कं०, सोनीपत**।

पहली पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में विशाल उद्योग क्षेत्र में दो कारखाने ही थे, जिनकी संयुक्त क्षमता १,२०,००० साइकलें प्रतिवर्ष थी। पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान कई इकाइयाँ और खुलीं तथा १९५१-५२ के बीच इस उद्योग के विकास में पहला विकास हुआ। १९५६ में संगठित क्षेत्र में १४ कारखाने थे जिनमें पूरी साइकिलों का निर्माण होता था। इनमें से चार पंजाब, तीन उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल में थीं तथा एक एक दिल्ली, मद्रास, बिहार, महाराष्ट्र मे। इनकी संयुक्त क्षमता ६,२७,५०० बाइसिकलें थी। इसके अलावा, बाइसिकलों के पुर्जे व सामान बनाने वाले २२ विशाल कारखाने और थे।

सन् १९५७ में लघु उद्योग क्षेत्र में सम्पूर्ण बाइसिकलों के ४९ निर्माता थे। इनमें से पंजाब व दिल्ली में १२-१२, महाराष्ट्र में ८, मध्यप्रदेश में ५, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में ४-४, प० बंगाल में तीन और मद्रास में एक कारखाना था। इन कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता २,१९,००० बाइसिकलें बनाने की थी।

दूसरी योजना में कुल १२.५ लाख बाइसिकलों के बनाने का लक्ष्य रखा गया।

तीसरी पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में देश के विशाल उद्योग क्षेत्र में कुल ११,१७,५०० बाइसिकलों की उत्पादन क्षमता वाले २० कारखाने थे—पंजाब व उत्तर प्रदेश में छः-छः, पश्चिमी बंगाल व दिल्ली में दो दो तथा महाराष्ट्र, बिहार मद्रास व आसाम में एक एक। ५१ कारखाने पुर्जे बनाते हैं। पुर्जों व उपसाधनों का उत्पादन १९५६ के २.३२ करोड़ रुपये से बढ़कर १९६० में ५.०७ करोड़ रुपये हो गया। ये कारखाने पश्चिमी बंगाल (७) दिल्ली (५), पंजाब (४), महाराष्ट्र (३), उत्तरप्रदेश (३), गुजरात (२), केरल (१), व मद्रास (१) में स्थित थे।

भारत की प्रमुख साइकल बनाने वाली कंपनियाँ ये है—

सैनेरेले इण्डस्ट्रीज आफ इंडिया,	आसनसोल	'सेन रैले'
टी० आई० साइकल आफ इडिया लि०,	मद्रास	'अम्बट्टुर'-
एटलस साइकल क० लि०	सोनीपत	'ईस्टर्न स्टार'
हिन्दुस्तान बाईसिकल मैन्यूफैक्चरिंग एण्ड इंडस्ट्रियल कारपोरेशन,	पटना	

हिन्द साइकल्स लि०	बम्बई	'हिन्द साइकल्स'
वियरवेल साइकल कं०	फरीदाबाद	'वियरवैल'
पर्ल साइकल इंडस्ट्रीज	दिल्ली	'रायल सुप्रीम'
आर भल्ला एण्ड संस	दिल्ली	'फारवर्ड'
एवन साइकल क०	लुधियाना	'एवन'
मैटल गुड्स मैन्युफैक्चरिंग कं०	वाराणसी	'एशिया'
रामपुर इजीनियरिंग क०	रामपुर	'हंसा'
पापुलर साइकल मैन्युफैक्चरिंग कं०	आगरा	'जयहिन्द'

नीचे की तालिका में साइकलो का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	कारखाने (संख्या)	क्षमता (सख्या)	उत्पादन
१९५१	२	१२०,०००	११४,२७६
१९५६	१४	६२७,५००	६६३,९६९
१९६०	२०	१०६५,५००	१०५०,०९०
१९६१	२०	१११७,५००	१०४०,५९१
१९६२	—	—	१११५,९०६

देश के भीतर बाइसिकलों की माँग, जो दूसरी योजना के अंत तक १३ लाख थी, तीसरी योजना के अन्त तक २३ लाख तक हो जायगी। १९६५-६६ में २ लाख साइकलों के निर्यात का लक्ष्य रखा गया है। १९६५-६६ तक कुल २५ लाख बाइ-सिकलों की आवश्यकता होगी जिसमें २० लाख विशाल उद्योगों तथा ५ लाख लघु उद्योगों क्षेत्रों में बनाई जायगी।

आयात—१९६०-६१ में भारत में ६८१३१ रु० के मूल्य की ३९१ साइ-किलों का आयात हुआ। १९६१-६२ में ६८,८०५ रु० की ४२६ साइकिलें आई। १९६०-६१ के मुख्य निर्यातक देश प्रमुखतया जापान, ब्रिटेन, सिंगापुर व हाँगकांग थे।

निर्यात—भारत की साइकलों के खास खरीददार हैं अफगानिस्तान और मिश्र तथा बहुत से अन्य देश भी जैसे पूर्वी पाकिस्तान, ईरान व तुर्की। १९६०-६१ में २,८०,६२९ रु० से १९६१-६२ में ७,०५,९५६ रु० के मूल्य के बाइसिकल पुर्जों के निर्यात को देखकर पर्याप्त संतोष होता है। रिम तीलियाँ और गद्दियाँ निर्यात की मुख्य मदें हैं तथा अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, मिश्र, नाइजीरिया, न्यायजीरिया, न्यासालैंड व थाईलैंड प्रमुख खरीदार देश थे।

६. रेल के इंजिन बनाने का उद्योग (Locomotives)

भारतीय रेलें लगभग ३४,००० मील चलती हैं और लगभग ८,६०० एंजिन काम में लाती हैं किन्तु कई वर्षों तक भारतीय रेलों को विदेशों से एंजिन आयात करने पड़ते थे। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेलों का विकास आरंभ होने के बाद जी० आई० पी० रेलवे ने जमालपुर और बी० बी० एंड० सी० आई रेलवे ने अजमेर में वर्कशॉप स्थापित कर रेल के इंजिन बनाने का कार्य आरंभ किया। बहुत

शीघ्र ही इस कार्य में सफलता मिली। इसके फलस्वरूप १८८५ और १९२३ के वर्षों में जमालपुर के कारखाने में २१४ बड़ी लाइन के इंजिन और १०३ बॉयलर बनाये गये। इसी प्रकार १८९६ और १९४० के बीच अजमेर के कारखाने में ४४६ इजिन ३८६ बॉयलर तैयार किये गये किन्तु विदेशी सरकार के इस उद्योग को प्रोत्साहन न देने की नीति के फलस्वरूप यहाँ कार्य बन्द कर दिया गया।

जब प्रथम महायुद्ध के समय इजिनों का आयात कठिन हो गया तो तत्कालीन सरकार ने भारत में ही इञ्जिनों का बनाना आवश्यक समझ कर एक घोषणा १९२१ में की। अतएव शीघ्र ही १९२१ में **पेनिन्सलुर लोकोमोटिव कं०** (Peninsular Locomotive Co.) की स्थापना सिंघभूम में इञ्जिन बनाने के लिए की गई। इसका लक्ष्य २०० इञ्जिन प्रति वर्ष बनाने का रखा गया किन्तु पुनः सरकार से संरक्षण न मिलने के कारण यह कारखाना सरकार को वेच दिया गया। सरकार ने यह कारखाना ईस्ट इण्डियन रेलवे को दे दिया। यहाँ निचले ढाँचों का उत्पादन आरम्भ किया गया किन्तु शीघ्र ही कारखाना आर्डर न मिलने से बन्द करना पड़ा। द्वितीय महायुद्ध में सुरक्षा विभाग ने सैनिक गाड़ियों के उत्पादन के लिये यह कारखाना ले लिया। युद्ध की समाप्ति पर यह कारखाना टाटा कपनी को बेच दिया गया जिसने १९४५ मे टाटा इञ्जिनियरिङ्ग और लोकोमोटिव कं० के नाम से नया कारखाना आरभ किया। इस कपनी का लक्ष्य प्रति वर्ष १०० इञ्जिन और १०० बॉयलर तैयार करने का रखा गया है। १९६१ तक इस कारखाने में ४६० एंजिन बन चुके थे।

युद्ध की समाप्ति पर सरकार ने एक और कारखाना खोलने का निश्चय किया। फलस्वरूप चांदमारी नामक स्थान इसके लिये चुना गया किन्तु विभाजन हो
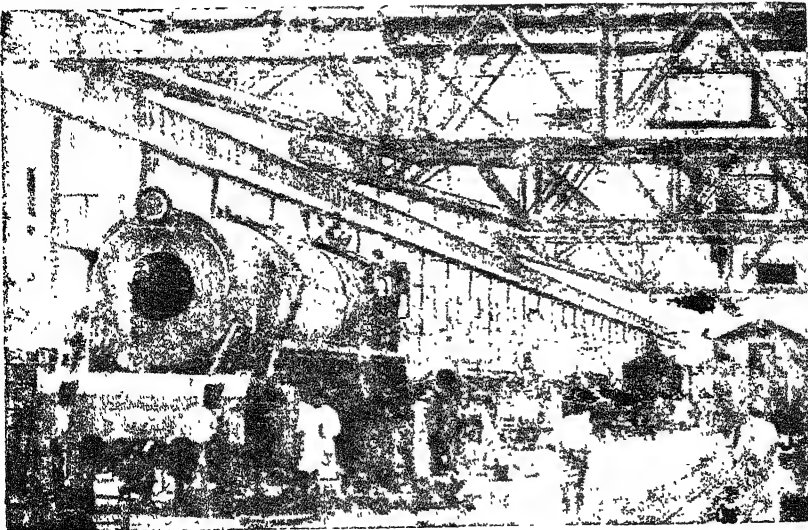
चित्र १९९. चितरंजन वर्क्स का भीतरी भाग

जाने से यह आवश्यक समझा गया कि इस स्थान को न चुन कर मिहीजाम को चुना जाय क्योंकि यह पाकिस्तान की सीमा के बहुत समीप था। इसी स्थान पर १९४८ में कार्य आरम्भ किया गया और २६ जनवरी १९५० को कारखाना चालू कर दिया। आरम्भ में इस कारखाने का लक्ष्य प्रतिवर्ष १२० औसत आकार के इञ्जन और ५० बॉयलर तैयार करने का रखा गया किन्तु अब यह लक्ष्य क्रमशः ३०० इंजिन और १०० बॉयलर बनाने का रखा गया है। इस कारखाने का नाम चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स रखा गया। यहाँ १९५० से ही W. G. इंजन तैयार किये जा रहे हैं जो भारी किस्म के होते हैं और बड़ी लाइनों पर माल ले जाने वाली गाड़ी में प्रयुक्त किये जाते हैं। ये इञ्जिन ७८ फीट लम्बे होते हैं तथा खाली इंजिन का वजन १२८ टन और पानी तथा कोयले सहित १७७ टन होता है। यह ३५ मील प्रति घंटा की चाल से १२७० अश्वशक्ति घर्षण ताकत पैदा कर सकता है। यह समतल भू-भागों में २१०० टन भार तथा चढ़ाई पर ९०० टन भार खींच सकता है। इन इञ्जिनों में ५,३०० से अधिक हिस्से होते हैं अब इनमें से ४,४०० से अधिक हिस्से यहीं बनाये जाते हैं। शेष विदेशों से आयात किये जाते हैं। आरंभ में प्रति इञ्जिन ७.५ लाख रुपये की लागत का बना। किन्तु अब यह लागत ४ लाख तक ही आती हैं।
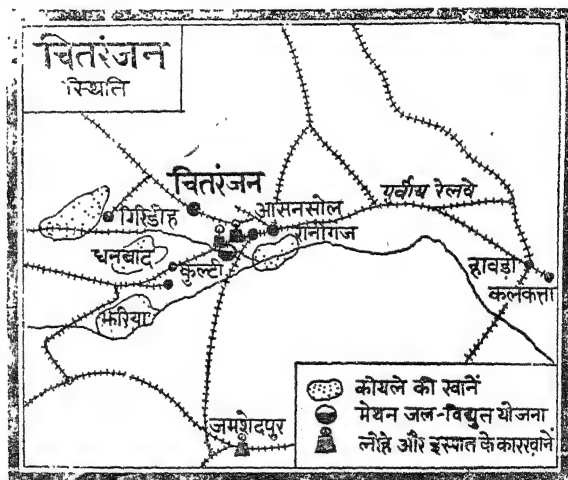
चित्र १७०. चितरंजन की स्थिति

चितरंजन में इस कार्य के लिये निम्न सुविधाएँ उपलब्ध हैं :—

(१) यह पश्चिमी बगाल के कोयला क्षेत्र से केवल १६ कि० मी० पर स्थित है।

(२) दामोदार घाटी योजना से पानी और जल विद्युत शक्ति भी सुगमता-पूर्वक प्राप्त की जा सकेगी।

(३) यह टाटा और भारतीय लोहे व इस्पात के कारखानों के भी निकट है।

(४) यहाँ संथाल परगना क्षेत्र से सस्ते व मजबूत श्रमिक मिल सकते है।

(५) कलकत्ता से केवल २२५ कि०मी० दूर होने से इङ्गलैंड व अमेरिका से आवश्यक हिस्से सुगमता से प्राप्त किये जा सकते है :—

१९६२ तक चितरंजन कारखाने में १५०० इंजिन बन कर समाप्त हो चुके थे जिनमें से अधिकांश W. G. श्रेणी के एंजिन है जो मालगाडियाँ खींचते हैं तथा थोड़े से W. T. श्रेणी के है जो उपनगरीय गाड़ियाँ खींचने के काम आते है। शेष एंजिन W. P. श्रेणी के हैं जो सवारी गाड़ियाँ खींचते है। इसके अतिरिक्त ३६०० अश्व शक्ति के १५०० वोल्ट डी. सी. बिजली से चलने वाल एजिन भी बनाये गये थे जो सभी प्रकार के यातायात के काम में आते है। इस कारखाने की वर्तमान वार्षिक क्षमता १६४ एंजिन बनाने की है।

तृतीय योजनाकाल में कुल मिला कर १,४७० एजिन बनाये जायेंगे जिनमें से १,१९१ भाप के, ११५ डीजल, और १६४ विद्युत के एजिन होंगे।

डी० जी० श्रेणी के एक इंजिन के निर्माण में निम्न कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है :—

(१) १०५ टन इस्पात के ३२० खंड।

(२) २७ टन इस्पात को ढालकर विभिन्न प्रकार की ९६ वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है जो कुछ पौंड से लेकर ३ टन भार तक की होती है।

(३) इस्पात को पीटकर बनाई गई २१ टन भार की लगभग ७०० वस्तुयें जो कुछ पौंड से लेकर १ टन वजन तक की होती है।

(४) भूरा लोहा ढाल कर बनाई गई १५ टन भार वाली लगभग ९० प्रकार की वस्तुयें जो कुछ पौंड से लेकर ३॥ टन तक भारी होती है।

(५) अलौह-धातु को ढाल कर बनाई गई ३ टन भार की लगभग १२५ वस्तुयें जो कुछ पौंड से लेकर ६ हंडरेडवेट तक भारी होती हैं।

(६) एक एजिन के लिए लगभग १'७५ टन भार वाली रबड़ और लकड़ी की वस्तुयें।

भाप के इंजिन—चितरंजन के कारखाने में ही १९६० से भाप के इंजिन बनाये जाने लगे है। इस प्रकार के एंजिन का भार १२६ टन होता है। यह कोक डिजाइन के अनुरूप बने हैं जो मध्य रेलवे के घाट खंडो पर माल और सवारियाँ खींचते है।

डी० सी० जी० बिजली के इंजिनों का निर्माण—अधिकांशतः इस्पात के ढले हुए टुकड़ों को मिला कर किया जाता है और भाप एंजिन की तुलना में छिलाई गढ़ाई या ढलाई का काम कम होता है।

ए० सी० विद्युत इंजन—१९६३ से इसी कारखाने में मालगाड़ी के लिए बनने लगे हैं। ये आधुनिक ढंग के होते है और २५ किलोवाट ५० साइकिल, सिंगल फेज की बिजली से चलते हैं। ये एंजिन दक्षिण पूर्व रेल पर कोयला इस्पात की अधिकता

वाले क्षेत्रों में चलाये जायेंगे। २८०० अश्व शक्ति के ये एंजिन १८०० टन भार लगभग २० प्रति घंटा की चाल से खींच सकेंगे।

वाराणसी में २० करोड़ रुपये की लागत से एक अमरीकन कंपनी **एल्को** के प्रावैधिक सहयोग से डीजल रेल इंजिन बनाने का कारखाना स्थापित किया है, जिसमें पहला डीजल बिजली इंजिन ३ जनवरी १९६४ को चालू किया गया। १९६७-६८ तक प्रतिवर्ष १५० डीजल बिजली के इजिन इस कारखाने मे बनने लगेंगे तथा पूरी क्षमता प्राप्त होने पर इन इजिनों के ९०% पुर्जे यहीं बनने लगेंगे।

७. वायुयान निर्माण उद्योग (Air Craft Manufacture)

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में हवाई जहाज बनाने वाला कोई कारखाना नहीं था। उस समय कुछ इजीनियरिंग वर्कशॉप मरम्मत आदि का कार्य करते थे। टाटा लाइन्स, इन्डियन नेशनल ऐयरवेज, एयर सर्विसेज आफ इण्डिया आदि कम्पनी इस कार्य मे संलग्न थीं किन्तु द्वितीय महायुद्ध में इस उद्योग की तीव्र आवश्यकता अनुभव हुई। अस्तु, १९४० मे मैसूर सरकार और वालचन्द हीराचंद की फर्म की साझीदारी में **हिन्दुस्तान ऐयरक्राफ्ट कम्पनी** की स्थापना बंगलौर में की गई। इसकी देखरेख करने को अमेरिकन विशेषज्ञ भी रखे गये और अधिकृत पुंजी ४ करोड़ रुपये रखी गई। १९४१ में भारत सरकार भी इस कम्पनी में हिस्सेदार बन गई। किन्तु अप्रेल १९४२ में भारत सरकार ने सुरक्षा के निर्मित इस कम्पनी को बालचंद
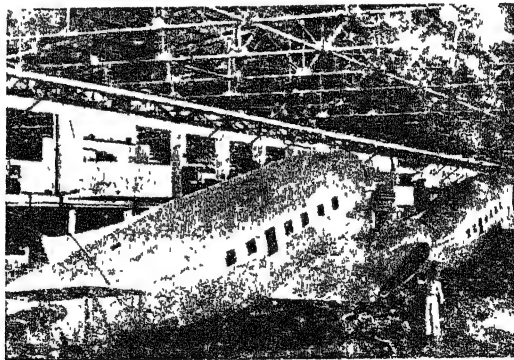
चित्र १७१. बगलौर में वायुयान के कारखाने का एक भाग

हीराचंद से खरीद लिया और अब व्यवस्था सम्बन्धी सारा काम भारत सरकार के ही हाथ में है। इस कम्पनी ने १९४१ मे पहला हवाई जहाज बनाकर तैयार किया और अब इसकी अच्छी प्रगति हो रही है। इस कारखाने में **डी० हैवीलैंड, वैम्पायर जेट लड़ाकू विमान ट्रेनर्स और सुपरसोनिक** वायुयानों का निर्माण होता है। इस कारखाने में बड़ी लाइन के रेल के डिब्बे, जो समस्त धातु के बने होते है, का उत्पादन भी होता है। अब तक यहाँ २०० डिब्बे बनाये जा चुके हैं। यहाँ अब तक **१७ पुष्पक विमान** बनाये जा चुके हैं।

बंगलौर में इस कारखाने की स्थापना के कई कारण थे—(१) हवाई जहाज के लिए एल्यूमिनियम की आवश्यकता होती है जो पास ही ट्राबनकोर के कारखाने से प्राप्त हो जाता है। (२) फौलाद मैसूर राज्य के भद्रावती लोहे के कारखाने से मिल जाता है। (३) दक्षिणी मैसूर में जल विद्युत शक्ति की उन्नति होने के कारण कारखाने के लिए शक्ति भी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (४) भारतीय वैज्ञानिक संस्था भी बंगलौर में है जिससे टेकनीकल सहयोग भी प्राप्त होता है।

वायुसेना के सरक्षण में **एयर क्राफ्ट निर्माण डिपो** कानपुर में खोला गया है जिसमें AVRO-७४८ वायुयान बनाये जाने लगे है। इस वायुयान की पहिली उड़ान नवम्बर १९६१ में दिल्ली में हुई। द्वितीय AVRO-७४८ वायुयान १० मार्च, १९६३ को बनकर तैयार हुआ।

८ मशीन-उद्योग (Machine Industry)

मशीन टूल्स (Machine Tools)—लोहे और इस्पात के उद्योग से सम्बन्धित ही मशीन टूल्स बनाने का उद्योग भी है। बड़े-बड़े कारखानों में लोहे और इस्पात के पिंड, छड़ें, रेलें तथा चादरें बनाने से ही इस उद्योग की समाप्ति नही हो जाती। यद्यपि इनमें से कई तैयार माल के रूप में निकलती है किन्तु लोहे और इस्पात के पिंड कई अन्य उद्योगों के लिये कच्चे माल का काम देते हैं। अतः इनसे जो अन्य वस्तुएँ बनाई जाती है उन उपकरणों को ही मशीन-टूल्स कहते है। इनके द्वारा अनेक प्रकार की नई मशीनें बनाई जाती हैं। **मशीन टूल्स एक प्रकार का शक्ति चालित यंत्र होता है जो धातु को काटकर एक विशिष्ट रूप देने के कार्य में प्रयुक्त होता है।**

मशीन टूल दो प्रकार के होते है: (१) विशेष प्रयोजन के लिये काम में आने वाले—जैसे मोटर गाड़ी के एक्सिल बनाने वाली मशीन जो एक घण्टे मे १५० एक्सिल तैयार करती है। (२) साधारण प्रयोजन वाली मशीनें जो विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ मिलींग और प्लानिंग मशीनें बनाने के काम आती हैं।

मशीनी-औजार उद्योग के आधार-भूत उद्योग हैं जो सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों में ही किया जाता है। सरकारी कारखानों में ५.८० करोड़ रुपये के मूल्य के तथा निजी क्षेत्र में ५.५० करोड़ रुपये के मशीनी औजार १९६२ में तैयार किये गये। १९६१ में इनका उत्पादन मूल्य क्रमशः ४.४ तथा ४.१ करोड़ रुपये का था। पहली बार ही फ्लेश बट वेल्डिग मशीनों, लचकदार शेफ्ट मशीनों मैग्नेटिक चकों, रोलिंग मिलों आदि का उत्पादन किया गया है। छोटे औजारों का भी उत्पादन किया जा रहा है। १९६१ और १९६२ में इनका उत्पादन क्रमश ४.६ करोड़ और ७ करोड़ रुपये के मूल्य का किया गया।

मशीनी औजार बनाने के मुख्य कारखाने, जो सरकारी नियंत्रण में हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१. **हिन्दुस्तान मशीन टूल्स** (Hindustan Machine Tools)—यह कारखाना बंगलौर के निकट जलाहाली में १९४१ में स्थापित किया गया है। इसमें १९६१-६२ में ५ करोड़ रुपये से भी अधिक मूल्य की १२५१ मशीनों का उत्पादन

किया गया। यहाँ अधिक गति वाली खरादें, बरमे, घिसाई की मशीनें, जमीन खोदने की आड़ी मशीनें, सान रखने की मशीन आदि तैयार की जाती है।

इस कंपनी द्वारा दो अन्य मशीन टूल्स फैक्ट्रियाँ पंजाब और केरल राज्यों में बनाई जा रही है। पंजाब मे पिंजौर में यह कारखाना स्थापित किया गया है। बंगलौर का कारखाना एक जापानी फर्म के सहयोग से घड़ियाँ भी बना रहा है। १९६२ मे लगभग २६,००० घड़ियाँ यहाँ तैयार की गईं। कारखाने में २$\frac{1}{3}$ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता २$\frac{1}{2}$ लाख घड़ियों की है।

२. **पिंजौर का मशीनी औजार कारखाना**—उपरोक्त कंपनी के ही अधिकार में पंजाब में दो खंडों मे बनाया जा रहा है। इसमें प्रतिवर्ष लगभग १० करोड़ रुपये के मूल्य के मशीनी औजार बनेंगे। पहला खंड समाप्त हो चुका है। इसमे ५ करोड़ रुपये के मशीनी औजार बनाने की क्षमता है। इसमें ३००० व्यक्ति काम कर रहे हैं। पूरी तरह तैयार होने पर इस कारखाने मे मिलिंग मशीनें और गियर कटिंग-मशीनें तैयार की जायेंगी। कारखाने में छोटी से छोटी ८·४ किलोवाट से चलने वाली १३५०×३५५ मिलीमीटर से लेकर बड़ी से बड़ी ३३·६ किलोवाट से चलने वाली २५००×६०० मिलीमीटर की मिलिंग मशीनें बनाई जायेंगी।

३. **प्रागा टूल्स कारपोरेशन** (Praga Tools Corporation)—इसका कारखाना हैदराबाद में है। इसमें मशीनी औजारों पुर्जों, ऑटो तथा डिजल के के हिस्सों, रेलवे डुप्लीकेटरों तथा अन्य सामान तैयार किया जाता है। इस कारखाने मे भारत सरकार तथा आंध्र प्रदेश के शेयर है। भविष्य में इस कारखाने में ड्रिल चक, लेथ, चक और काटने के औजार, आधुनिक गढाई और ढलाई घरों तथा अन्य प्रकार के मशीनी औजार बनाने की योजनायें भी आरम्भ की जाने वाली हैं। १९६२ में यहाँ १ करोड रुपये के मूल्य का उत्पादन हुआ है।

४. **भारी मशीन प्रायोजनायें** (Heavy Machinery Plans)—इस प्रायोजन के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र में **हैवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन** की स्थापना की गई है। यह कारपोरेशन निम्न प्रायोजनाओं को कार्यान्वित कर रहा है:—

(क) **भारी मशीनी कारखाना**—यह प्रायोजन बिहार में **हटिया** (रांची) में रूस के तकनीकी सहयोग से स्थापित हो रहा है। इसके अन्तर्गत प्रथम चरण में ४५,००० टन और दूसरे चरण में ८०,००० टन भार की मशीनें तैयार की जायेंगी। पहली अवस्था में २४ करोड रु० तथा दूसरी अवस्था में ४२ करोड़ रु० के मूल्य का वार्षिक उत्पादन किया जाने लगेगा। इस संयंत्र द्वारा मुख्य रूप से लोहा तथा इस्पात उद्योग के लिए मशीनें और अन्य साज-सामान का उत्पादन किया जायेगा इसके अतिरिक्त खनिज तेल, कोयला खनन, रसायनिकों, उर्वरकों, सीमेन्ट आदि तथा अन्य सामान्य इंजीनियरिंग की वस्तुओं (भारी क्रेनें, खोदने, पेरने और घिसाई करने की मशीनें और साज-सामान) के उत्पादन की क्षमता भी रखी जायेगी। इस प्रायोजना के लिए रूस क्रमशः ५० करोड़ तथा १५० करोड़ रूबल के दो ऋण देगा।

(ख) **कोयला-खोदने की मशीन प्रायोजना**—यह भी रूस की सहायता से दुर्गापुर में आरम्भ की जा रही है। आरम्भ में इसमें ३०,००० टन की कोयल खनन मशीनें प्रतिवर्ष बनाई जायेगी। अतः यह क्षमता ४०,००० टन की होगी। पहले चरण में २४ करोड़ रुपये के मूल्य की मशीने तैयार की जायेगी। कुल व्यय ३०$\frac{1}{2}$ करोड़ रुपये का होगा।
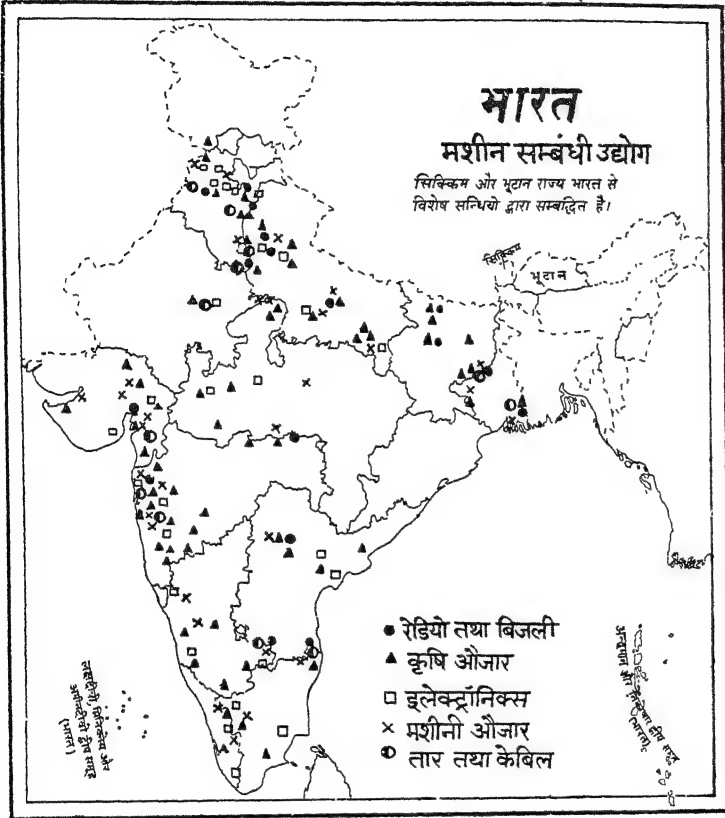
चित्र १७२. भारत में मशीन सम्बन्धी उद्योग

(ग) **ढलाई-गलाई प्रायोजना**—यह प्रायोजना हटिया में स्थापित की जा रही है तथा चैकोस्लोवाकिया से तकनीकी सहायता और दीर्घकालीन ऋण लिया जा रहा है। इसमें भारी मशीनें बनाने वाले सयंत्र की भूरे लोहे, इस्पात तथा अलौह ढलाई और गढ़ाई संबंधी आवश्यकतायें पूरी की जायेगी। पूरा कार्य तीन भागों में समाप्त किया जायेगा। यह १९६४-६५ तक उत्पादन आरम्भ करेगा।

(घ) **भारी मशीनी ओजार प्रायोजना**—यह प्रायोजना भी चैकोस्लोवाकिया के तकनीकी और आर्थिक सहयोग से स्थापित की जा रही है। पहली अवस्था

में यहाँ २२ प्रकार के १०,००० टन मशीनी औजार उत्पादन किये जायेंगे। इसमें २५·८३ करोड रुपया खर्च होगा। प्रारम्भिक उत्पादन १९६५-६६ से आरम्भ होने लगेगा।

५. **नाहन फाऊन्ड्री** (Nahan Foundry)—हिमाचल प्रदेश के सिरमूर जिले में यह आरम्भ में १८७२ में निजीक्षेत्र में स्थापित की गई किन्तु १९५२ में भारत सरकार ने इसे अपने नियंत्रण में ले लिया। इसमें मुख्यत: कृषि उपकरण और गन्ना पेरने की मशीनों का उत्पादन किया जाता है। १९६२ में ३० लाख रु० के मूल्य के २९३२ टन कृषि उपकरणों का उत्पादन किया गया। अब यहाँ रेलवे के लिए स्लीपर तथा डाक-तार विभाग के लिए ढले लोहे की गद्दियाँ और लंगर तथा बिजली की मोटरें और रेलवे का अन्य समान भी बनाया जाने लगा है।

६. **नेशनल इंस्ट्रूमेंट फैक्ट्री** (National Instruments Factory)—यह १८३० में कलकत्ता में स्थापित की गई किन्तु द्वितीय महायुद्ध काल में इसको आधुनिक रूप दिया गया। इसमें विभिन्न प्रकार के यंत्र, उपकरण, बारोमीटर हाईड्रोमीटर, थर्मामीटर प्रैशर तथा वैकूम-गाज, थियोडोलाइट खुर्दबीन, हस्पतालों मे काम में आने वाले थर्मामीटर, कुतुबनुमा, नपने ग्लास और मोनोमीटर का उत्पादन तथा विमान यंत्र और विद्युत यंत्रों की मरम्मत होती है। १९६२ में इस कारखाने का उत्पादन लगभग ६० लाख रुपये का हुआ।

७. **हिन्दुस्तान केबुल्स फैक्ट्री** (Hindustan Cables Factory)—यह फैक्ट्री डाक-तार विभाग की तारों सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए १९५४ में पश्चिम बंगाल में **रूपनारायनपुर** नामक स्थान पर स्थापित की गई। इसकी वर्तमान उत्पादन क्षमता केबुल्स तथा को-एक्सियल केबुल्स बनाने की १६० लाख रुपये के मूल्य की है। अब यहाँ ड्राईकोर केबुल्स, स्विचबोड, प्लास्टिक इंसुलेटेड केबुल्स भी बनाये जा रहे है। पहले इसकी उत्पादन क्षमता ८०० मील केबुल्स बनाने की थी, अब यह २००० मील कर दी जायेगी। १९६२ में लगभग १५०० मील ड्राई केबुल्स तथा १४० मील को-एक्सियल केबुल्स बनाये गए।

८. **रेल के डिब्बे का कारखाना**—यह कारखाना भारतीय रेलों के डिब्बों की आवश्यकता पूर्ति के लिए मद्रास के निकट **पैरम्बूर** में स्विटजरलैंड की एक फर्म के सहयोग से **इंटीग्रल कोच फैक्ट्री** (Integral Coach Factory) के नाम से स्थापित किया गया। इसमें उत्पादन १९५५ से प्रारम्भ हुआ है। १९६०-६१ में ६२० और १९६१-६२ में ६५० सवारी गाड़ी के डिब्बे यहाँ बनाये गए। इस कारखाने में ७·३५ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा ७,३०० व्यक्ति काम कर रहे हैं। तृतीय योजना काल में यहाँ प्रतिवर्ष ७०० डिब्बे बनाने का लक्ष्य है। यहाँ के डिब्बों की विशेषता यह है कि उनके ऊपर और नीचे के भागों को अलग-अलग तैयार करके नहीं जोड़ा जाता वरन् समूचा डिब्बा ही एक साथ ढला होता है। इससे धक्के या दुर्घटना का प्रभाव किसी एक स्थान पर केन्द्रित न होकर सारे डिब्बे पर ही होता है। यहाँ के बने डिब्बे का औसत भार ३५ टन होता है जबकि सामान्य डिब्बे का भार ४२ टन होता है।

रेल के डिब्बे बनाने के अन्य चार कारखानों भरतपुर, कानपुर, मद्रास और

बरेली में खोले जा रहे हैं जहाँ प्रतिवर्ष प्रत्येक कारखाने का उत्पादन १००० डिब्बों का होगा।

६. इंडियन टैलीफोन उद्योग—यह उद्योग आरम्भ में १९४८ में एक सरकारी उद्योग के रूप में स्थापित किया गया, १९५० में इसे एक निजी सीमित पूँजी वाली कम्पनी के रूप में बदल दिया गया। यह उद्योग बंगलौर के निकट **दूरवाणी** में स्थापित किया गया है। इसमें २$\frac{1}{3}$ करोड़ की पूँजी लगी है जो भारत सरकार मैसूर सरकार तथा लिवरपूल की औटोमैटिक टेलीफोन एण्ड इलैक्ट्रिक कं० द्वारा दी गई है। यहाँ के कारखानें में टेलीफोन के ५३९ पुर्जो में से ५२० पुर्जे बनाये जाते है, १६ पुर्जे अन्य उत्पादकों से खरीदकर लगाये जाते है और ३ पुर्जे विदेशों से आयात किये जाते है। इस कारखानें में विभिन्न किस्म के टेलीफोन, पब्लिक औटोमैटिक एक्सचेंजों, आंतरिक और बाहरी उपभोग के लिए एक्सटेंशन सहित स्विचिंग टेलीफोन, रेलवे कंट्रोल ओटोमैटिक, मैग्नेटो ग्रामीण एक्सचेंजों का उत्पादन होता है। १९६२ में ५$\frac{1}{3}$ करोड़ रुपये के मूल्य के लगभग ४ लाख टेलीफोन बनाये गए।

९ भारी विद्युत प्रायोजनाएँ (Heavy Electricals)

सरकारी क्षेत्र में भारी विद्युत प्रायोजनाओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। इस उद्योग के अंतर्गत हैवी इलैक्ट्रिकल्स (इंडिया) लि० निम्न चार संयंत्रों के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी है।

(क) हैवी इलैक्ट्रक्ल्स संयत्र भोपाल (Heavy Electrical Plan)—इस संयंत्र में जुलाई १९६० से स्विच-गियर और ट्रांसफर्मरों का उत्पादन किया गया। १९६२ में ३१ करोड़ रुपये की वस्तुऐं बनाई गई। इस कारखाने ने भारी बिजली का सामान जैसे **ओबरा** (उत्तर प्रदेश) ऊहूल (पंजाब) में पन बिजली प्रायोजनाओं के लिए जलचक्र टरबाइनजेनेरेटर, १५०० वी० सी० सी० का बिजली का पूरा साज-सामान भारतीय रेलवे के लिए स्टॉट तथा बड़ी औद्योगिक मोटरें भी बनाना आरम्भ कर दिया है।

(ख) हैवी इलैक्ट्रिकल इक्वीपमैंट प्रायोजना, रानीपुर (हरिद्वार)—यह योजना रूस के सहयोग से इस प्रकार बनाई जा रही है कि जिससे १०·५० लाख किलोवाट के वार्षिक उत्पादन के लिए स्टीम टर्बाइन और जेनरेटर तथा माध्यम और बड़ी औद्योगिक मोटरों का उत्पादन किया जा सके।

(ग) हैवी पावर इक्वीपमैंट प्रायोजना रामचन्द्रपुरम—हैवी इलैक्ट्रिक्ल्स ने प्रेग की टैक्नोएक्सपोर्ट (Techno Export) के सहयोग से एक संयंत्र रामचन्द्रपुरम मे स्थापित करने का संविदा किया है जो भारी विद्युत् साज-सामान तैयार करेगा।

(घ) हाई प्रेशर बायलर प्रायोजना, तिरुचिरापल्ली—यह संयंत्र भी प्रेग की उपरोक्त फर्म के सहयोग से स्थापित किया गया है। इसमें २०० एम० डबल्यू० यूनिट तक के आकारों के बायलरों का उत्पादन प्रारम्भ किया गया है। इस कारखाने की कुल उत्पादन क्षमता ७·५ लाख एम० डबल्यू की होगी।

भारत इलैक्ट्रोनिक्स—रक्षा सेवाओं और अन्य सरकारी विभागों की बिजली के साज-सामान की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बंगलौर में इस

कारखाने की स्थापना की गई। १९६२ में इसके उत्पादन का मूल्य १२८ लाख रु० था।

१०. डीजल इंजन (Diesal Engines)

उद्योग का विकास—भारत में डीजल इंजन बनाने का पहला कारखाना सन् १९३२ में सतारा (महाराष्ट्र) में स्थापित किया गया। इसके बाद दूसरा कारखाना १९३३ ई० मे लाहौर में खोला गया, जो देश के विभाजन के उपरान्त दिल्ली में स्थापित हो गया। तीसरा कारखाना १९३९ में पूना में स्थापित किया गया। गत विश्वयुद्ध के समय कुछ आवश्यक पुर्जो के आयात पर पाबदी लग जाने से इस देशी उद्योग के विकास में बाधा आई। डीजल इंजन बनाने के प्रारम्भिक उपाय क्षैतिज प्रकार के इंजन बनाने तक ही सीमित रहे। १९४९ में किरकी के डाक विशाल कारखाने में पहले-पहल ऊर्ध्वाधर प्रकार के इंजन बनाने की कोशिश की गई।

दूसरी योजना के प्रारम्भ में विकास सम्बन्ध की सक्रिय कारखानों की सूची मे ५ कारखानों के नाम शामिल थे। इन सबकी कुल वार्षिक आय ६३१० इंजन थी। १९५६ मे विशाल उद्योग क्षेत्रों में कारखानों का सख्या बढ़कर १६ हो गई, जिनकी कुलक्षमता १९७६९ इजन प्रतिवर्ष थी। दूसरी पचवर्षीय योजना में १९६०-६१ तक १ से ५० अ० श० वाले २० से २१ हजार तक स्थिर डीजल इंजनों के बनाने का लक्ष्य रखा गया डीजल इंजनों के उत्पादन से सम्बन्धित आँकड़े नीचे दिये गये है जिससे यह स्पष्ट होता है कि १९६०-६२ के निर्धारित लक्ष्य से दुगने से भी अधिक इंजन देश में बनाये गये। १९५६ में ११,०१५ इजिन तैयार किए गए, १९६२ में लगभग ५००,०००।

दूसरी योजना के अन्त तक विशाल उद्योग क्षेत्र में कुल ४७ इंजन (पट्टियों वाले इंजनों के अलावा) बनाने वाले लाइसेंस शुदा २३ कारखाने थे। इस उद्योग का केन्द्र महाराष्ट्र था, जहाँ ९ कारखाने चालू थे। शेष कारखानों में से मद्रास व उत्तर प्रदेश में चार-चार, गुजरात में ३, पंजाब में २ तथा प० बंगाल में १ चालू थे।

१९५६ में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार लघु उद्योग क्षेत्र में सम्पूर्ण डीजल इंजन बनाने वाले ५० निर्माता थे। इस संस्था में वे निर्माता भी शामिल थे जो अन्य प्रकार की कलों के साथ डीजल इंजन भी बनाते थे। लघु उद्योग क्षेत्र में डीजल इंजनों के १५ कारखाने उत्तरप्रदेश मे, १३ गुजरात में, १२ पंजाब में, ५ महाराष्ट्र में, ४ दिल्ली में तथा १ मध्य प्रदेश में थे। इनमें से ४२ कारखानों की कुल क्षमता ३६४७ इंजन थी जब कि इनका वास्तविक उत्पादन केवल १७७१ इजन था। अतिरिक्त पुर्जों के छोटे निर्माताओं का केन्द्र उत्तर प्रदेश व गुजरात रहा है। उपयुक्त ४२ निर्माताओं में २३ उत्तरप्रदेश, १५ गुजरात और ४ दिल्ली मे कार्यरत हैं। लघु उद्योग क्षेत्र में तैयार हुआ अतिरिक्त पुर्जो का मूल्य २८ लाख रुपये आंका गया। इनके अलावा प० बंगाल में अतिरिक्त पुर्जे बनाने के ३ छोटे पैमाने के कारखाने और खोले गये।

भारत में तीन प्रकार के डीजल इञ्जिन बनाये जाते हैं: (१) कम अश्व शक्ति वाले जो ३ अश्व शक्ति तक के होते हैं; (२) मध्यम अश्व शक्ति वाले जो ३

मे ५० अश्व शक्ति के होते हैं, और (३) ऊँची अश्व शक्ति वाले जो ५० से भी अधिक अश्व शक्ति के होते है। भारत में ४ से ५० अश्व शक्ति बनाने वाले १७ कारखाने है जो बम्बई, पूना, सतारा, कोल्हापुर, दिल्ली, कोयम्बटूर, अम्बाला, कलकत्ता, अहमदाबाद, राजकोट और फरीदाबाद में हैं।

११. शक्ति चालित पम्प (Power Pumps)

पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में शक्ति चालित उपकेन्द्र पम्प बनाने वाली आठ संगठित इकाइयां थीं, जिनकी कुल क्षमता ३३,४६० पम्प प्रतिवर्ष थी। प्रथम योजना में १९५५-५६ तक ६६,४०० पम्प प्रतिवर्ष की क्षमता स्थापित की गई थी। पहली योजना के अन्त तक संगठित क्षेत्र कारखानों की सख्या २७ हो गई थी जिनकी कुल अधिष्ठापित क्षमता ६७,४९२ पम्प प्रति वर्ष थी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के समाप्ति तक पम्प बनाने में लगी इकाइयों की संख्या तथा कुल लाइसेंस शुदा क्षमता १२७,८४६ पम्प प्रतिवर्ष होगई। इस उद्योग का केन्द्र मद्रास है जहाँ २२ विशाल कारखाने स्थित है। देश के शेष २६ कारखानों में से महाराष्ट्र में ८, प० बगाल में ७, गुजरात में ५, उत्तर प्रदेश में २ तथा मध्य प्रदेश, बिहार, दिल्ली, केरल में एक-एक है। दूसरी योजना के दौरान न तो कारखानों की संख्या बढ़ी और न ही क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। शक्ति चालित पम्पों का वास्तविक उत्पादन दूसरी योजना के लक्ष्य से अधिक था। १९५६ में ४६ ९०० पम्प बनाये गए। १९६१ में १२६,७०० पम्प।

पहली व दूसरी योजना में कुछ विशेष प्रकार के पम्पों के निर्माण पर जोर दिया गया। धीरे धीरे कुछ विशेष फर्मो ने बडे आकार के पम्प भी बनाने की कोशिश की। फलस्वरूप २४ इची व्यास वाले बड़े पम्प भी देश में अव तैयार होने लग गये हैं। साथ ही डूबने वाले पम्पों, पैट्रोल, छांटने वाले पम्पों, आंशिक अश्वशक्ति मोटरों से चलने वाले पम्पों अक्षीय प्रवाह पम्पों और चीनी, कागज तथा सीमेंट उद्योग में आवश्यक पम्पों का भी निर्माण हो रहा है।

आयात—द्रवों के लिये पम्पों व उनके अतिरिक्त पुर्जो का आयात मूल्य १९६०-६१ में तथा १९६१-६२ में क्रमशः ३७५·३ लाख रुपये तथा ३९७·८ लाख रुपये था।

निर्यात—द्रवों के पम्पों के निर्यात मूल्य १९६०-६१ में ७ ७ लाख रुपये १९६१-६२ में घटकर ६·२ लाख रुपया हो गया।

१२. सिलाई मशीन उद्योग (Sewing Machines)

सन् १९४६ में टेरिफ बोर्ड की पहली जाँच के समय देश में सिलाई मशीनें बनाने वाले चार कारखाने थे, जिनमें से दो उस क्षेत्र में थे जो अब पाकिस्तान में हैं। पहली योजना के प्रारम्भ में शेष दो कारखानों की कुल क्षमता ३७,५०० सिलाई मशीनें प्रतिवर्ष थी। भारत के इस उद्योग में मुख्यतय हाथ, पैर और बिजली से चलने वाली घरेलू मशीनों का ही उत्पादन होता था। ओद्योगिक सिलाई का ही उत्पादन होता था। औद्योगिक सिलाई मशीनों का निर्माण तो पहले पहल मई १९५३ से ही चालू हुआ था।

लघु उद्योग क्षेत्र—विशाल उद्योगों के अलावा लघु उद्योग क्षेत्र में भी सम्पूर्ण सिलाई मशीन बनाने वाले कई कारखाने थे जो सामान्यतः देश या विदेश में निर्मित हिस्सों को जोड़कर मशीनें बनाते है। १९५६-६० की अवधि मे सिलाई मशीनों के छोटे कारखानों की संख्या ३५ से बढकर ७५ हो गई और दो ही वर्षों में लघु उद्योग क्षेत्र मे तैयार होने वाली सिलाई मशीनों की संख्या २३,६०३ से बढ़कर ५०,००० हो गई। १९६५ ६६ तक लघु उद्योग द्वारा १,५०,००० मशीने बनाने की आशा है। छोटी इकाइयाँ मुख्यतया पंजाब व दिल्ली में स्थित है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, जम्मू एव काश्मीर, आन्ध्र प्रदेश में भी यह उद्योग विकसित है। लघु उद्योग क्षेत्र में मुख्यतः घरेलू किस्म की मशीनें बनती है।

दूसरी योजना के अंत तक सिलाई मशीनें बनाने में लगे हुए ७ कारखाने (४ पंजाब, २ प० बंगाल व १ दिल्ली) संगठित क्षेत्र में थे। इनके अलावा सिलाई मशीनों के पुर्जो के चार निर्माता थे—३ पंजाब, १ महाराष्ट्र में। इस समय कुछ बड़े निर्माणक अपने कारखाने की जरूरत के अधिकांश पुर्जे बना लेते हैं। दो फर्मे सिलाई मशीन की सुइयाँ बनाती है।

क्षमता एवं उत्पादन—१९६०-६१ तक (लघु उद्योग क्षेत्र में तैयार ८०,००० घरेलू सिलाई मशीनों सहित) उत्पादन का लक्ष्य ३,००,००० मशीनें रखा गया। १९६०-६१ में अनुमानतः २,९७,३०० मशीनें बनीं। १९६५-६६ का लक्ष्य ८५०,००० मशीनें रखा गया है। १९५१ से १९६१ तक प्रतिवर्ष उत्पादन का व्यौरा इस प्रकार है :—

वर्ष	कारखानो की संख्या	प्रतिष्ठापित (सख्या)	उत्पादन (संख्या)
१९५१	२	३७,५००	४४,४६१
१९५६	५	७०,१७६	१३०,३८८
१९६१	७	१,३३७०४	३२७,१२७

आयात—१९६१-६२ एवं १९६०-६१ में सिलाई मशीनों व पुर्जों के आयात का मूल्य क्रमशः ३४ लाख तथा ४६ लाख रु० था। घरेलू मशीनों का निर्यात १९६०-६१ के ६४ (२०,७४५ रु०) से बढ़कर १९६१-६२ में २२१ (६०, ४३८ रु०) हो गया।

निर्यात—भारतीय सिलाई मशीनों का निर्यात न केवल अफगानिस्तान श्रीलंका या पाकिस्तान को ही किया जाता है बल्कि ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा पश्चिम जर्मनी जैसे उद्योग सम्पन्न देशों को भी किया जाता है। १९६३-६४ में जिन दूसरे देशों को घरेलू मशीनें भेजी गई उनमें बेल्जियम, मलयसंघ, ईराक, नाइजीरिया, फिलीपीन, सिंगापुर, ब्रिटिश गायना, कुवेत, मिश्र, जोर्डन, साइबेरिया, मोरीशस और थाइलैंड उल्लेखनीय है।

१३. कृषि औजार (Agricultural Machinery)

उपयोग की दृष्टि से खेती के औजार कितनी ही किस्मों के होते हैं जैसे कि बीज बोने के पहले बोने के लिये, बीज में जुताई और निराई के लिये, फसल काटने, गाहने और ओसंने के लिये, सिंचाई के लिये तथा चारा काटने

के लिये। इसके अलावा, खेती की उपज प्रकरण के लिये कलें (जैसे कि तेल घानियाँ, गन्ने की कोल्हू, मूँगफली छीलने की कल) दुग्धशाला व कुक्कुरशाला उपस्कर, पादप संरक्षण उपस्कर (जैसे कि फुहारे), फार्म परिवहन उपस्कर (जैसे कि पहियेदार हैरो) भी कृपि औजार गिने जाते है। भारत सरकार द्वारा कृषि औजारों के लघु एवं विश्व उद्योगो मे उत्पादन की मदें निश्चित कर दी गई हैं। औजारों और कलें बनाने के सभी बड़े कारखाने शक्ति चालित होंगे। बड़े कारखानों के लिये निश्चित, बोने योग्य भूमि बनाने, बोने और रोपने बीच में जोतने, फसल काटने व गाहने के लिये औजारों व कलों की सूची नीचे दी गई है :—

(१) **बोने योग्य भूमि बनाने के लिये ट्रैक्टर**— कर्षित कलें, मिट्टी पलट हल, तवेदार पोंजी, तवेदार हैरो, एकतरफी हैरो या हैरो हल, कल्टीवेटर या ग्रवर सरवनें बेलन और झुरझुरकारी मशीन, सिडिल ब्रेकर या मेंडकारी, अवभूमि हल, चक्की हल और चट्टाकर्तक।

(२) **बोने व रोपने की कले** :—ट्रैक्टर कर्षिक बीज व उर्वरकड्रिल, उर्वरक पृथापन मशीनें, पंक्ति सस्य सीडर, गेहूँ, जई, जौ या धान के लिये ट्रैक्टर कर्षित अनाज ड्रिल, अनाज व बीज सफाई मशीनें, दजबिन्दी और बीज संवारने वाली कलें, आलू और गन्ना रोपक तथा प्रतिरोपण कलें।

(३) **अंतकर्षण कले, मेंड यंत्र** :—ट्रेक्टर कार्षित मेंडकारी हल तथा अंतकर्षण गुड़ाई आदि के लिये संलागों सहित ट्रेक्टर कार्षित कल्टीवेटर।

काटने व गाहने को कलें :—ट्रेक्टर कर्षित लवन कलें, ट्रेक्टर कर्षित कटाई कलें या फसल काटने, सूखी घास या भूसे की गांठ बांधनी मशीनें, घासंदायक, गंजी मशीने, शक्ति चालित गाहनी मशीनें, बीज वितुषक, संयुक्त काटनी व गाहनी मशीनें, आलू खुदाई यत्र, आलू स्पिनर, मूलसस्य कटाई मशीनें और मूँगफली गाहनी या चुननी मशीनें।

१९६०-६१ तथा १९६१-६२ में खेती के हथियारों, कलों और औजारों का आयात मूल्य क्रमशः ९० लाख तथा ९५ लाख रुपये का था। कृषि हथियार रूस, सं० राज्य अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और इटली से तथा कृषिकलें और उपसाधन आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, डेनमार्क, पश्चिमी जर्मनी और संयुक्तराज्य अमरीका से होता है।

इसी प्रकार इस अवधि में १.६ लाख तथा २.३९ लाख रुपये के मूल्य के कृषि औजार भारत से निर्यात किए गए। इसके खरीददार बर्मा, लंका, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और स्विटजरलैंड हैं।

भारत में कृषि कार्यो के लिए यंत्र और मशीनें बनाने वाले ६२ कारखाने हैं—१३ पंजाब में, १२ उत्तर प्रदेश में, ११ महाराष्ट्र में, ५ बगाल में, ३-३ आंध्र और बिहार में, ४-४ दिल्ली और मद्रास में और शेष अन्य राज्यो में। इन सबमे बड़ी टाटा का एग्रीको कं० जमशेदपुर में है। मैसूर की मैसूर इम्पलीमैंट्स फैक्ट्री तथा पंजाब की नाहन फाउंड्री सरकारी क्षेत्र में है।

औद्योगिक मशीन निर्माण उद्योग

१. **वस्त्र बनाने की मशीनें** :—द्वितीय महायुद्ध के संकटपूर्ण दिनों तथा

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तेजी से हो रहे देश के औद्योगीकरण ने भारत में मशीनें बनाने के उद्योग को जन्म दिया। सुव्यवस्थित ढंग से इस उद्योग का आरम्भ १९४६ में हुआ जब कलकत्ता की एक फर्म ने वस्त्र-मिलों के लिए स्पिनींग-फ्रेम (Spinning Frame) बनाने आरम्भ किए। इसके अतिरिक्त इनके महत्वपूर्ण पुर्जे, तकुए, रिंग, फ्लेट्ड बार आदि भी बनाये जाने लगे। इस समय वस्त्र उद्योग की मशीनें बनाने वाले ११ कारखाने है :—

(१) नेशनल मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स, बम्बई।
(२) टैक्समैको, कलकत्ता।
(३) टैक्स-टूल्ज, कोयम्बटूर।
(४) लक्ष्मी रतन इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई।
(५) मशीनरी मैन्यूफक्चरर्स कारपोरेशन, कलकत्ता।
(६) टेक्समैको, ग्वालियर।
(७) दी मैसूर मशीनरी मैन्यूफैक्चर्स, बंगलौर।
(८) कपूर इन्जीनियरिंग लि०, सतारा।
(९) बसन्त इडस्ट्रियल, एण्ड इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई।
(१०) कैलिको इंडस्ट्रीयल इन्जीनियर्स, बम्बई।
(११) गानिकलाल मैन्यूफैक्चरिंग कं० बम्बई।

उपरोक्त कारखानों में कताई, बुनाई, धुनाई तथा सफाई आदि के लिए मशीनें बनाई जाती है।

२ जूट उद्योग की मशीनरी (Jute Mill Machinery)

जूट मिलों की मशीने बनाने का कार्य कलकत्ता में **ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स** तथा **टैक्सटाइल मशीनरी कारपोरेशन** द्वारा किया जा रहा है। एक तीसरी कंपनी '**लेगन जूट मशीनरी क०** के नाम से और स्थापित की गई है। इनकी उत्पादन क्षमता क्रमशः २४०, ३०० और १२० की है।

३. चीनी उद्योग की मशीने (Sugar Mill Machinery)

चीनी उद्योग के लिए गन्ना पेरने तथा रस को साफ करने, वाष्पीकरण और केन्द्रीयकरण करने के लिए मशीनों की आवश्यकता होती है। इनका उत्पादन (१) पश्चिमी बंगाल में बैरी बॉदर्स, चौबीस परगना; (२) सरन इन्जीनियरिंग क०, मरहोरा; (३) रिचार्डसन एण्ड क्रूडास, बम्बई; (४) आर्थर बटलर एण्ड कं०, मुजफ्फरपुर; (५) पोर्ट इन्जीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता तथा (६) भारतीय चीनी और सामान्य इन्जीनियरिंग निगम अम्बाला द्वारा किया जा रहा है।

तृतीय योजना में १० करोड़ रुपये के मूल्य की मशीनें बनाई जायेंगी।

४.-चाय उद्योग की मशीनें (Tea Industry Machinery)

मैसर्स ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता; मैसर्स मार्शल एण्ड सन्स, गैन्सबटो की सहायता से चाय की पत्ती तैयार करने की मशीनें और चाय उद्योग की अनेक मशीनें बना रहा है।

अध्याय ३०

रसायन एवं उनसे संबन्धित उद्योग

(CHEMICAL & ALLIED INDUSTRIES)

रासायनिक उद्योग (Chemical Industries)

"रासायनिक उद्योगों के अन्तर्गत वे उद्योग आते है जो अन्य उद्योगों के लिये आधारभूत रासायनिक पदार्थ बनाते है; इसके अतिरिक्त वे उद्योग भी आते हैं जिनमें रासायनिक क्रियाओं द्वारा पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं।" इस दृष्टि से इन उद्योगों के अन्तर्गत कई प्रकार की वस्तुएें बनाना—जैसे रंग और रोगन, कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक, दवाइयाँ, कृत्रिम तेल आदि सम्मिलित की जाती हैं।

भारी रासायनिक पदार्थ वे रासायनिक तत्व होते हैं जिनका प्रयोग मुख्यत: औद्योगिक और उसी से सम्बन्धित उद्योगों में किया जाता है। साधारणत: इन पदार्थो का औद्योगिक उपभोग ही अधिक होता है। ये वस्त्र, कागज, साबुन, काँच, चमड़ा, रंग, वारनिश, प्लास्टिक, मोटर स्प्रिट इत्यादि उद्योगों में कच्चे माल की तरह काम में लाये जाते हैं। इम्पीरियल रासायनिक उद्योग के चेयरमेन के अनुसार, "यह उद्योग सभी उद्योगों में सबसे अधिक बहुपति वाला उद्योग है क्योंकि यह उद्योग रसायन-वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, इन्जिनियरों आदि की सहकारिता पर निर्भर करता है।" इस उद्योग का शान्ति व युद्ध दोनों ही काल में बड़ा महत्व है। आधुनिक काल में जिस देश में उद्योगों का जितना अधिक विकास होता है वह देश उतना ही सभ्य और औद्योगिक माना जाता है।

रासायनिक उद्योग दो प्रकार के होते हैं

(१) **भारी रासायनिक पदार्थ** (Heavy Chemicals)—इसके अन्तर्गत गन्धक का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, शोरे का तेजाब, विभिन्न के प्रकार सलफेट, कॉस्टिक सोडा, सोडा एश, एमोनिया, ब्लीचिंग पाउडर, क्लोरीन, पोटेशियम क्लोरेट, और रासायनिक खादें—अमोनियम सल्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट, सुपरफोसफेट, शोरा आदि का उत्पादन आता है।

(२) **कीमती और हल्के रासायनिक पदार्थ** (Fine Chemicals)—इनके अन्तर्गत फोटोग्राफी में काम आने वाले रसायन, दवाइयाँ, रंग और रोगन आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

उद्योग की विशेषतायें

भारत में इस उद्योग की निम्न विशेषतायें हैं :—

(१) इन वस्तुओं को तैयार करने के लिए साधारणत: छोटे-छोटे कारखाने हैं। इनमें गंधक तेजाब तैयार करने में लागत भी अधिक पड़ती है।

(२) आधारभूत रासायनिक पदार्थों—सोडा एश, गंधक का तेजाब, कास्टिक सोडा—का मूल्य बहुत अधिक पड़ता है। इन पदार्थों का लागत कम रखने के उद्देश्य से भविष्य में स्थापित होने वाले नये कारखानों का न्यूनतम आकार निर्धारित कर दिया गया है।

(३) हमारे देश में रसायन-उद्योग अभी बड़ी पिछड़ी हुई अवस्था में है। अन्य रसायन की तो बात ही नहीं, गंध-आम्ल (Sulphur,c acid) और सोडा एश जैसी बडी जरूरी चीजों का उत्पादन भी हमारे देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। पहले महायुद्ध के बाद गन्ध अम्ल बनाने वाले उद्योग का विकास अवश्य हुआ है, किन्तु चूँकि इसके लिए हमें अधिकांश मात्रा में गंधक विदेशों से मंगाना पड़ता है, इसलिए इस स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। सोडा एस—जिसके बिना काँच-उद्योग का अस्तित्व ही कठिन है—बनाने के लिए देश भर में केवल दो मिलें हैं। अन्य विविध रसायनों के बारे मे भी यही बात कही जा सकती है।

(४) रासायनिक पदार्थों की पूर्ति के लिये हम विदेशी आयातों पर निर्भर है। इन आयातों के लिए हमें पहले महायुद्ध के बाद ही से अधिकाधिक द्रव्य विदेशियों को दना पड़ता है। १९१३-१४ में रासायनिक पदार्थों के कुल आयात का मूल्य १९५ लाख रुपया था। संरक्षण मिलने से उद्योगों की कुछ प्रगति होने के परिणाम-स्वरूप १९२८-२९ में इन वस्तुओं के लिये १,४८७ लाख रुपया देना पड़ा। १९३९ में आयातों का यह मूल्य १,०७२ लाख रुपया था और १९६२ में ९,२०० लाख रुपये।

(५) रसायन उद्योगों के निर्माण के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी है। इस हेतु सोनामाखी (Pyrites) और जिप्सम से गन्धक आदि बनाने के लिये गवेषणा की जा रही है।

(६) इस समय सोडा एश, कास्टिक सोडा और कैलशियम कार्बाइड तैयार करने वाले उद्योग तट-कर संरक्षण पाकर अपना विकास कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि उनकी उत्पादन लागत आयातित माल के मूल्य की अपेक्षा अधिक पड़ती है। उत्पादन मूल्यों को घटाने से ही दूसरे उद्योगों में इन पदार्थों की खपत बढ़ाई जा सकती है। इनके घटाने का मुख्य उपाय यही है कि इन्हें तैयार करने वाले कारखानों के आकार बढ़ाये जायें और इन्हें ऐसे स्थानों पर रखा जाय जहाँ कच्चे माल, बिजली और ईंधन आदि की सुविधाएँ हों। उपोत्पादनों और रद्दी माल का उपयोग करने के उद्देश्य से कई प्रकार के रासायनिक पदार्थों को ही कारखानों में तैयार करने का प्रयत्न होना चाहिए।

रसायन उद्योगों के विस्तार को औद्योगिक विकास और समृद्धि का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण कहा जा सकता है। मशीनी उत्पादन की व्यवस्था में उपभोग्य वस्तुओं के तैयार होते-होते कच्चे माल और अन्य सामानों को कई बार बड़ा रूप-परिवर्तन करना पडता है। इस काम को सुविधा और उत्कृष्टता से करने के लिए तरह तरह के रसायनों (अम्लों, क्षारों और अन्य वस्तुओं) की आवश्यकता पड़ती है। कागज, काँच, साबुन, कपड़ा, चीनी, चमड़ा, दवाइयाँ और लोहे और इस्पात के उद्योगों में हर जगह और पग-पग पर रसायनों की आवश्यकता पड़ती है और इसमें

कोई सन्देह नहीं कि यदि रसायनों की उपलब्धि पर्याप्त मात्रा में न हो तो कोई भी देश आजकल अपनी औद्योगिक संभावनाओं से पूरा लाभ नहीं उठा सकता। रसायन उद्योगों का विकास औद्योगिक समृद्धि की एक बड़ी आवश्यक शत है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व हमारे भारी रासायनिक उद्योगों की स्थापना हुए अधिक दिन नहीं हुए थे। गधक के तेजाब और उससे बनने वाली वस्तुएँ—फिटकरी, नीलाथोथा, फैरस-सल्फेट इत्यादि इनी-गिनी वस्तुएँ ही—तैयार की जाती थीं। किन्तु युद्धकाल में विदेशों से रासायनिक पदार्थों के न मिलने के कारण यहाँ सोडा एश विद्युत प्रणाली से तैयार किया गया। कॉस्टिक सोडा, क्लोरीन, बाइक्रोमेट, कैलशियम क्लोराइड, सोडियम साइनाइड और ग्लिसरीन आदि पहली बार बनाये जाने आरम्भ हुए। इसके पश्चात् तो रासायनिक पदार्थों के उत्पादन की वृद्धि होती गई। सुनियोजित प्रयत्नों और संरक्षण के लिये किए गए उपायों के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों से देश में ब्रोमीन, कैलशियम कारबाइड, कारबन डाइसलफाइड, डी० डी० टी० बेनजीन हैक्साक्लोराइड, टाइटेनियम डाइआक्साइड, अमोनियम क्लोराइड, विशेष लवण, रङ्ग प्लास्टिक आदि बनाये जा रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में जो वृद्धि हुई वह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगी :—

भारी रासायनिक पदार्थों का उत्पादन (टन में)

रसायन	१९५१	१९५६	१९६१
गंधक का तेजाब	१०६,९३२	१६५,२१६	४१३,५२०
कास्टिक सोडा	१४,७२४	३०,४२०	११९,८४४
सोडा एश	४७,५३२	८२,२४०	१७६,६४०
तरल क्लोरीन	५,२६८	१५,०७३	३३,९१२
ब्लीचिंग पाउडर	३,५८८	४,६५६	७,१२८
बाइक्रोमेट	३,२७६	३,२६४	५,२३२
सुपर फास्फेट	६१,०२०	८१,६१८	३६०,८३६
अमोनियम सल्फेट	५२,७०४	३९८,६९८	३९५,४३६
तूतीया	५०४	१,९८०	४,३४४

(१) गंधक का तेजाब (Sulphuric Acid)

गंधक के तेजाब का स्थान तेजाबों में सबसे महत्वपूर्ण है। अन्य तेजाबों—शोरे का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड—के उत्पादन के लिये भी गधक के तेजाब की आवश्यकता होती है। गधक का तेजाब बनाने का पहला प्रयत्न १९ वीं शताब्दी के अन्त में किया गया। इस उद्योग की उत्पादन क्षमता ५·२५ लाख टन और १९६२ का उत्पादन ३·५३ लाख टन था। तृतीय योजना में गंधक तेजाब की उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन लक्ष्य ५·२ लाख और ३·६ लाख टन से बढ़कर १७·५ लाख टन और १५ लाख टन के रखे गए हैं।

गंधक का तेजाब बनाने वाली ३९ इकाइयाँ कार्यशील हैं।

आसाम, आंध्र, मद्रास, मैसूर और केरल में प्रत्येक में एक १-१, मध्य प्रदेश में २; पंजाब दिल्ली, और उत्तर प्रदेश में प्रत्येक में ३-३; बंगाल में ५; बिहार में ६ और गुजरात महाराष्ट्र में १२। इस उद्योग की कुछ प्रमुख इकाइयाँ इस प्रकार हैं :—

शाह वैलेस एंड कं०, कलकत्ता	क्षमता	८,२५० टन
दिल्ली क्लाथ मिल्स, दिल्ली	,,	१४,८५० ,,
सेंचुरी रेयन्स, बम्बई	,,	७,१४० ,,
फर्टीलाईजर्स एड कैमीकल्स ट्रावनकोर	,,	६०,००० ,,
बिहार सरकार सुपर फोस्फेट फैक्ट्री	,,	८,२५० ,,
धर्मसी मुरारजी कैमीकल कं०	,,	१६,५०० ,,
हिन्दुस्तान स्टील लि० दुर्गापुर	,,	१९,८०० ,,
जे० के० कॉटन स्पिनिंग एड बीविंग मिल्स	,,	८,२५० ,,
अतुल प्रोडक्टस, बुलसर	,,	८,२५० ,,
इंडियन एक्सप्लोंडिविल, गोभिया	,,	३,३०० ,,
केसूराम रेयन्स, कलकत्ता	,,	८,२५० ,,
अनिल स्टार्च प्रोडक्स, अहमदाबाद	,,	९,००० ,,
आंध्र सुगर्स लि० तानूकू	,,	१६,५०० ,,

२. सोडा एश या सज्जी (Soda Ash)

सज्जी की सबसे अधिक आवश्यकता काँच, वस्त्र उद्योग और कपड़ा धोने में होती है। सज्जी के उत्पादन के लिये देश में पाँच कारखाने हैं—**टाटा कैमिकल वर्क्स** मिथारपुर और **धारगंध्रा कैमिकल कं०**, बम्बई जिनकी उत्पादन क्षमता १९६१ में २६८,००० टन थी और वास्तविक उत्पादन १४५,००० टन होता है। प्रतिवर्ष लगभग ७०,००० टन का आयात किया जाता है। कोयले और चूने की खानों से बहुत दूर होने के कारण सज्जी उद्योग में यातायात व्यय की समस्या बड़ी गम्भीर रही है, अतः योजना आयोग ने इन दोनों कारखानों के विकास के अतिरिक्त पश्चिमी बगाल और बिहार में नये कारखाने खोलने की सिफारिश की थी। किन्त द्वितीय योजना काल में साहू कैमीकल्स वाराणसी में, सौराष्ट्र कैमीकल्स, पोरबन्दर में और दालमियानगर में तीन नई इकाइयाँ स्थापित की गई। तृतीय योजनाकाल में इस उद्योग की उत्पादन क्षमता तथा कुल उत्पादन, क्रमशः ५३०,००० टन तथा ४·५ लाख टन का होगा।

३. कॉस्टिक सोडा (Caustic Soda)

अम्लों के अतिरिक्त उद्योग में क्षारो (Alkalies) का भी बहुत काम पड़ता है। इन क्षारो में कास्टिक (दाहक) सोडा और सोडा एश (सज्जी) प्रमुख हैं। साबुन, कागज, कपड़ा, घी और वनस्पति घी, रेलों आदि में कास्टिक सोडा की बहुत आवश्यकता पड़ती है। अनुमान है कि इन सब उद्योगों में मिला कर लगभग ५५ हजार टन कास्टिक सोडा की जरूरत है। **टाटा कैमिकल कम्पनी, कैमिकल एण्ड इंडस्ट्रियल कारपोरेशन** और **दिल्ली क्लाथ मिल्स, नेशनल रेयन्स कारपोरेशन**, ओरियन्ट पेपर मिल्स, कैलिको मिल्स तथा धारंगध्रा कैमीकल्स वर्क्स और जे० के० कैमीकल्स लि० के कारखानों को मिलाकर कुल १८ कारखाने हैं जिनमें से ६ कागज उद्योग से ही

सम्बन्धित हैं और १ रेयन्स उद्योग से। २ इकाइयाँ सोडा एश से; ११ इकाइयाँ डायाफ्राम विधि से तथा ७ पारे की विधि से कास्टिक सोडा तैयार करती हैं।

१९६१ में इस उद्योग की उत्पादन क्षमता एवं वास्तविक उत्पादन, क्रमशः १२४,००० टन और ९७,००० टन था। १९६५ तक क्षमता ४००,००० टन और उत्पादन ३४०,००० टन हो जायेगा।

४. क्लोरिन (Chlorine)

इसका उत्पादन भी कास्टिक सोडा के साथ साथ ही होता है। इसका मुख्य उपयोग ब्लीचिंग पाउडर, डी० डी० टी०, अमोनियम क्लोराइड, मैथिल क्लोराइड, हाइड्रोक्लोराइड तेजाब, कई प्रकार के रङ्ग तथा कीटाणुनाशक पदार्थों के तैयार करने में होता है। अभी देश में इसका उपभोग बहुत कम होता है। इसके उत्पादन के देश में १२ कारखाने है जिनकी उत्पादन क्षमता ३६,००० टन की है। इन रासायनिक पदार्थों के मुख्य उत्पादन केन्द्र कलकत्ता, बम्बई, धारङ्गध्रा, मैसूर, जमशेदपुर, बङ्गलौर, अहमदाबाद, बड़ौदा, कानपुर, दिल्ली, ओखा और मद्रास है।

रासायनिक खाद (Chemical fertilizers)—भारत में रासायनिक खाद के उद्योग का विकास द्वितीय महायुद्ध के बाद ही हुआ है। १९३९ में मैसूर के बेलेगुला स्थान पर **मैसूर कैमिकल फर्टीलाइजर्स** के नाम से एक खाद का कारखाना खोला गया जिसमें प्रतिदिन २० टन अमोनियम सलफेट बनाया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में रासायनिक खाद बनाने का कोई अलग कारखाना नहीं था, केवल **कोक ओवन** (Coke Oven) के प्लांट से सहकारी उत्पादन के रूप में प्रति वर्ष लगभग २५,००० टन अमोनियम सलफेट बनता था। १९४७ में भारत में रासायनिक खाद का एक और कारखाना **फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स लि०** के नाम से ट्रावनकोर में अलवाये नामक स्थान पर खोला गया जहाँ प्रतिदिन १५० टन अमोनियम सलफेट तथा १०० टन सुपरफास्फेट बनाया जाने लगा। इस क्षेत्र में कोयला नहीं मिलता। अतः अमोनियम गैस बनाने के लिए यहाँ गैस-जैनरेटर की बैटरियों में लकड़ी का ईंधन प्रयोग में आता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद रासायनिक खाद के उद्योग ने बड़ी उन्नति की है। इस उन्नति की पृष्ठ-भूमि में १९४३ का अकाल तथा भारत के कृषि उत्पादन का निरंतर ह्रास और उसकी जाँच के हेतु बनाई गई **अनाज नीति समिति** की सिफारिशें हैं। इस कमेटी ने एक और कारखाना खोलने की सिफारिश की थी जो ३,५०,००० टन अमोनियम सलफेट प्रति वर्ष बनाया करे।

सिन्दरी का कारखाना—स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने धनबाद से २४ कि० मी० की दूरी पर स्थित सिन्दरी गाँव में २३ करोड की लागत से रासायनिक खाद का एक कारखाना खोला। इस कारखाने को बनाने में ५-६ वर्ष की अवधि लगी और नवम्बर १९५१ से यहाँ अमोनियम सलफेट की खाद का उत्पादन आरम्भ हो गया। यह एशिया का सबसे बड़ा खाद बनाने वाला कारखाना है और इसे विश्व में नवीनतम प्लान्टों से युक्त एक आधुनिक कारखाना माना जाता है। १६ जनवरी १९५२ को इसे **फर्टिलाइजर्स एण्ड केमिकल्स लिमिटेड कम्पनी** के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।

यह कारखाना मुख्यतः ५ विभागों में विभक्त है—(१) पावर प्लान्ट, (२) गैस प्लान्ट, (३) अमोनिया प्लान्ट, (४) सलफेट प्लान्ट, और (५) नया बना हुआ कोक ओवन प्लान्ट।
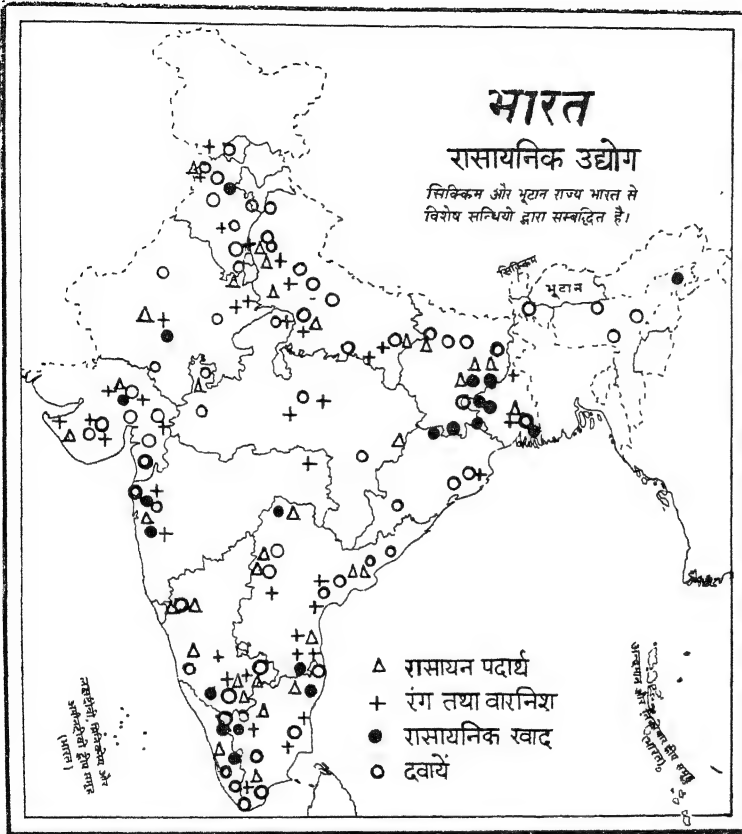
चित्र १७३. भारत में रासायनिक उद्योग

सिन्दरी में **अर्द्ध जल गैन जिप्सम पद्धति** अमोनियम सल्फेट बनाने के लिये प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रणाली मे पहले अमोनिया नाइट्रोजन की ओर हाइड्रोजन की सिन्थेसिस से बनाई जाती है। इस अमोनिया को फिर अमोनियम कारबोनेट में कारबन डाई आक्साइड के रिएक्शन से परिवर्तित किया जाता है। इसके बाद पीसे हुए जिप्सम को अमोनियम कारबोनेट से मिलाकर अमोनियम सलफेट बनाते हैं और चाक स्लज नामक अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त करते हैं जो सीमेन्ट बनाने के लिये उपयोगी होता है।

पावर प्लान्ट जो ८०,००० किलोवाट शक्ति का है, फैक्ट्री को बिजली तथा प्रोसेस स्टीम देता है।

गैस प्लान्ट गैस मिक्सचर बनाता है, जो सफाई के बाद अमोनिया सिन्थेसिस बनाने के काम आता है। प्रतिदिन यहाँ ४४० लाख क्यूबिक फुट गैस बनती है।

अमोनिया सिंथेसिस प्लाण्ट में गैस प्लांट की परिवर्तित गैस कारबन डाई आक्साइड से मुक्त की जाती है और नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के बचे हुए मिक्सचर को केटेलिस्ट के साथ सिन्थेसाइस्ट किया जाता है। यह प्लाण्ट प्रतिदिन २७० टन अमोनिया बनाता है।

सलफेट प्लाण्ट में जिप्सम और अमोनियम कारबोनेट के घोल को मिलाया जाता है और कुछ कैमिकल प्रोसेसों के बाद अमोनियम सलफेट बनता है, जिसे क्रिस्टल (दाना) का रूप दिया जाता है और केलशियम कारबोनेट स्लज को अलग कर दिया जाता है, जिसका प्रयोग सीमेण्ट बनाने के लिये किया जाता है।

कोक की आवश्यकता पूर्ति के लिये बनाया गया नया कोक ओवन प्लाण्ट प्रतिदिन ६०० टन कोक का उत्पादन करता है और इससे बहुत से अतिरिक्त उत्पादन भी प्राप्त होते हैं।

१९५५-५६ में इस कारखाने का उत्पादन ३·२६ लाख टन, अमोनियम सल्फेट का था। १९६१ में यह ३·८ लाख टन था। अब इसके उत्पादन को ६०% और बढ़ाया जा रहा है। इस कारखाने का दैनिक उत्पादन ७० टन यूरिया और ४००० टन अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट का है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन कोक ओवन प्लाट में ६०० टन कोक तैयार किया जाता है। कोक के अतिरिक्त यहाँ के अन्य उत्पादन कोलतार, मोटर बैंजोल, बेनजीन, नैप्था, टूलोन और जैलीन है। इस कारखानें में २८ करोड़ रुपया व्यय हुआ है।

नांगल प्रायोजना

फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्ट कमेटी को सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने नंगल प्रोजेक्ट बनाया है, जिसकी उत्पादन क्षमता ७०,००० टन (अमोनियम नाइट्रेट) प्रतिवर्ष है तथा साथ ही साथ यहाँ गुरुजल भी बनाया जाता है। इस प्रोजेक्ट का सारा कार्य लगभग समाप्त हो गया है और नंगल फर्टिलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स प्राइवेट लिमिटेड नामक कम्पनी का निर्माण किया गया है जो इस प्रोजेक्ट का कार्यभार ले लेगी। इसको बनाने में लगभग ३० करोड़ रु० लगा है। इससे ८०,००० टन नेत्रजन तथा १४—१५ टन गुरुजल बनाया जाता है।

रूरकेला फर्टिलाइजर प्रोजेक्ट—द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में एक प्रोजेक्ट रूरकेला में भी बनाया गया है जो ८०,००० टन नाइट्रो लाइमस्टोन प्रति वर्ष बनाता है।

नैवेली प्रायोजना—यह मद्रास मे बनाई गई है जो प्रतिवर्ष ७०,००० टन सल्फेट नाईट्रेट और यूरिया की खाद बनाता है।

इस प्रकार देश में एक मोटे अनुमान के अनुसार नेत्रजनयुक्त उर्वरक बनाने वाले कारखानों की वर्तमान कुल क्षमता इस प्रकार है :—

सिन्दरी ११७,००० टन; फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमीकल्स ट्रावनकोर, २०,००० टन; मैसूर १३,००० टन; साहू कैमीकल्स, १०,००० टन; नांगल, ८०,००० टन; तथा अन्तिम उत्पाद आमोनियम सल्फेट १३,३६० टन—कुल योग २४१,६६० टन।

तीसरी योजना के अंत तक सार्वजनिक क्षेत्र में नेत्रजन उर्वरकों की क्षमता इस प्रकार हो जाने का अनुमान है :—

सिंदरी, नांगल, ट्रावनकोर····	२१७,००० टन
रूरकेला	१२०,००० "
नैवेली	७,००० "
ट्रॉम्बे	९०,००० "
नहर कटिया	३२,५०० "
फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमीकल्स ट्रावनकोर का विस्तार	४०,००० "
गोरखपुर प्रायोजना	८०,००० "
एक अन्य उर्वरक संयंत्र	८०,००० "
योग	७२९,५०० टन

फास्फेटिक उर्वरक की क्षमता १२०,००० टन से बढ़ाकर ४ लाख टन तथा **पोटासिक उर्वरक** की क्षमता २००,००० टन की जायेगी।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में सबसे बड़ी खाद परियोजना १,२०,००० टन की उत्पादन क्षमता वाले रूरकेला संयंत्र की है जिसका निर्माण द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में हुआ था।

ट्राम्बे खाद संयत्र, जिसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ९० हजार कूती गई थी, बम्बई में बर्मा शैल तेल शोधक कारखाने द्वारा स्थापित किया जाना था। पहिले पहल ५० हजार टन खाद का उत्पादन करने का लक्ष्य था, लेकिन बाद मे यह फैसला किया गया कि इसे सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किया जाय।

एक अन्य खाद संयंत्र आसाम में कामरूप में स्थापित किया जायगा। इसमें नहरकटिया के क्षेत्रों से उपलब्ध गैसों का प्रयोग किया जायगा। इसकी कुल उत्पादन क्षमता ४५,००० टन की होगी।

उत्तर प्रदेश में गोरखपुर में ८० हजार टन की क्षमता वाला एक बड़ा खाद सयंत्र स्थापित किया जायगा। इसमें पैट्रोलियम नेपथा का प्रयोग किया जायगा। यह सामग्री बरोनी में स्थापित किये जाने वाले तेल शोधक कारखाने से उपलब्ध की जायगी। मध्य प्रदेश के ५० हजार टन की क्षमता वाले जिस एक कारखाने को पहले निजी क्षेत्र में स्थापित किया जाना था अब उसे सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किया जायगा।

इसके अतिरिक्त केरल के फर्टिलाइजर्स केमीकल्स के तीसरी अवस्था के विस्तार कार्यक्रम को १९६३ ६४ तक पूरा कर लिया जायगा। इसकी उत्पादन क्षमता बढ़ाकर ७० हजार टन कर दी जायगी।

निजी क्षेत्र में जो सबसे बड़ा खाद संयंत्र स्थापित किया जायगा, वह होगा गुजरात में, जिसकी अधिष्ठापित उत्पादन क्षमता ९९ हजार टन की होगी। निम्न

तीनों स्थानों पर भी जो तीन कारखाने स्थापित किये जायेंगे उनमें से प्रत्येक की उत्पादन क्षमता ८० हजार टन की होगी ये स्थान हैं—विशाखापत्तनम, कोक्षेगुडम, और हनुमानगढ़।

तूतीकोरन में एक खाद कारखाने की वार्षिक उत्पादन क्षमता ३२,००० टन होगी लेकिन बाद में इसे दुगुना कर दिया जायगा। दुर्गापुर के अन्य खाद कारखाने की उत्पादन क्षमता ५८,००० टन की होगी। ८,००० टन की क्षमता वाले एक अन्य कारखाने का मद्रास के निकट एन्नोरे नामक स्थान पर उद्‌घाटन किया गया था। अगले दो या तीन वर्षों में इसके उत्पादन को बढाकर १६,५०० टन कर दिया जायगा।

प्राय: ये सब कारखाने १९६५-६६ तक उत्पादन कार्य शुरू कर लेंगे अत: खाद की बढ़ती हुई मांग को तब तक आयात की गई खाद से पूरा किया जायगा।

रंगलेप वार्निश उद्योग (Paints & Varnish Industry)

रङ्गलेप उद्योग भारत का एक प्रतिष्ठित उद्योग है। इस समय देश मे कम से कम २०० कारखाने रङ्ग लेप, इनेमल और वार्निश तैयार कर रहे हैं। इन कारखानों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :—(१) विदेशी उत्पादकों के सहयोगी (कारखानों की सख्या ६), (२) व्यवस्थित भारतीय क्षेत्र (मुख्य कारखानों की संख्या ३६), और (३) अव्यवस्थित पैमाने के उत्पादक।

रङ्ग-लेप उत्पादन के लिए जिन मूल-भूत वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनमें से अनेक भारत में प्रचुर परिणाम में पाई जाती हैं। इनमें खड़िया, मिट्टी, चीनी मिट्टी, चपड़ा, राल, अलसी का तेल, अण्डी का तेल, ग्लीसरीन, सफेद स्पिरिट, तारपीन आदि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त रङ्ग भी देश में ही आसानी से मिल जाते हैं। रङ्ग-लेपों में होने वाले अनेक सुधार तो वस्तुतः अच्छे कच्चे माल के ही स्वाभाविक फल होते हैं। इस उद्योग को आधुनिक ढङ्ग पर विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक नये कच्चे माल विदेशों से मँगाये जायँ। पिछले कुछ वर्ष में ऐसे कच्चे माल का आयात बहुत बढ़ा है। इस समय प्रति वर्ष लगभग २ करोड़ रु० का माल मँगवाया जा रहा है।

प्रयोग की दृष्टि से तैयार रङ्ग-लेपों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :—(१) घरों, सार्वजनिक इमारतों, कारखानों, क्रेनों, पुलों, बाँधों आदि के लिए काम आने वाले, (२) परिवहन के साधनों (रेल के डिब्बो, ट्रामों, मोटरकारों, बसों तथा व्यावसायिक गाड़ियों आदि) के लिए काम आने वाले, और (३) सामान्य औद्योगिक कामों में प्रयुक्त होने वाले (मशीनों, पंखों, फर्नीचर आदि के लिए रोगन और वस्त्र तथा बिजली उद्योगों के लिए वार्निशें)।

इस उद्योग में होने वाला विकास मुख्य रूप से इन वस्तुओं में देखा जा सकता है :—इमारतों के लिए प्लास्टिक इमल्शन पेन्ट, हवाई जहाजों के लिए रोगन, रेफ्रीजरेटरों के लिए रंग, उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले लहरियेदार रंग-लेप, पोलीक्रोमेटिक रंग-लेप, बहुत अधिक ताप सह सकने वाले रंग-लेप, तलवार को म्यानों पर की जाने वाली सुनहरी वार्निश, चमड़े पर की जाने वाली सुनहरी वार्निश, बिजली के तारों

के लिए अति संश्लिष्ट इनेमल, खाने के बर्तनों पर की जाने वाली सुनहरी वार्निश तथा चमकने वाले रंग-लेपों की दिशा में भी तत्काल उत्पादन कार्य आरम्भ किया जा सकता है ।

बड़े कारखाने में रंग-लेप और वारनिश का उत्पादन १९६० में ५०,७१६,००० कि० ग्राम था । १९६२ में यह ६४,४२८,००० किलोग्राम हुआ ।

लघु स्तर पर भी रंग-सामग्री का उत्पादन देश में किया जाता है। १९६१ और १९६२ में छोटे कारखानों में विभिन्न प्रकार के सूखे रंगों का उत्पादन इस प्रकार हुआ :—

रंग-वर्ग	परिमाण (टन) १९६१	मूल्य (लाख रु०) १९६१	परिमाण (टन) १९६२	मूल्य (लाख रु०) १९६२
ऐजो	७९२·७	८९·४	९१९·८	१०८·०
इन्डिगोसोल्स	५८·७	६६·६	४१·०	४१·२
स्थिरीकृत ऐजोइक्स	३३३·६	७७·५	३९४·७	९७·५५
तैल-रंग	२६·७	३·६	३५·४	३·८१
पक्के रंग और नैपथोल	६३·३	२८·६	१९·०	२९·६
आधारभूत रंग	४·३५	०·७९	१०·०	२·२६
वाट रंग पेस्ट	१०६·६	३७·७	४५·६६	१०९·४
दृष्टि सम्बन्धी श्वेतक सामग्री	३६·०	९·०	८·७५	१६·८५
वाट रंग	—	—	२·५	९·९
	१४·२६	२८·९४	२·१३७	४१०·६

प्लास्टिक उद्योग (Plastic Industry)

वर्तमान समय में पश्चिमी देशों के आर्थिक जीवन में प्लास्टिक का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इससे जो वस्तुएँ बनाई जाती है वे बहुत ही सस्ती, हल्की, टिकाऊ और जंग न लगने वाली होती हैं । प्लास्टिक से बनाई जाने वाली चीजे विशेषत: ऐसी होती हैं जो घरेलू प्रयोग, बिजली के उद्योगों तथा अन्य प्रकार के उद्योगों में काम आती है । ये वस्तुएँ रेडियो की खोलियाँ, मशीनी खिलौने, ब्रुश, ग्रामोफोन के रेकार्ड, प्लास्टिक की चद्दरें, बटुए, थैले, किताबों की जिल्दें तथा सादा और खुरदरा चमड़ा जैसा दिखायी देने वाला प्लास्टिक, मोटरों, हवाई जहाजों, नकली दाँतों, सिगरेट की रकाबियाँ, वार्निश, मीनाकारी स्वच्छता के उपकरण आदि हैं ।

प्लास्टिक मुख्यत: दो प्रकार से बनाया जाता है :—(१) सांचों में दबाकर, अथवा (२) उसमें तरल पदार्थ डाल कर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने में होता

है। पहली रीति के अनुसार इस्पात के गरम साँचों में प्लास्टिक बनने वाले कच्चे माल को रक्खा जाता है। इन साँचों को ऊँचे तापक्रम पर गर्म किया जाता है, और इन पर प्रति वर्ग इंच पर १ से ८ हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है। दूसरे तरीके से साँचों में तरल प्लास्टिक डालकर उसको खूब गरम किया जाता है और प्रति वर्ग इंच पर १० से ३० हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है।
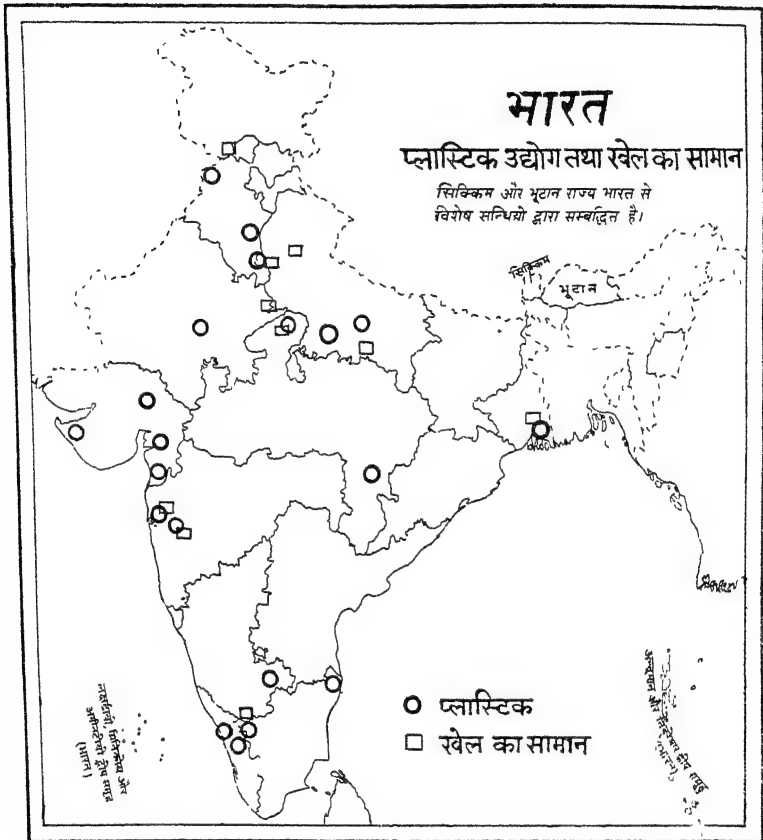
चित्र १४७. भारत में प्लास्टिक उद्योग तथा खेल का सामान

इस उद्योग के लिये सेलुलोज तीन प्रकार से प्राप्त किया जाता हैं, : (१) लकड़ी, कपास, गन्ने, अथवा मक्की के डन्ठलों से इस प्रकार प्राप्त किये गये सेलूलोज को शोरे के तेजाब से मिला कर नाइट्रो सेलूलोज प्राप्त किया जाता है, (२) सेलूलोज सोयाफली, दूध, सूखा हुआ रक्त आदि से भी प्राप्त किया जाता है, और (३) आजकल कारबौलिक एसिड, फिनौल और फोरमेल-डी-हाइड नामक वस्तुओं से भी प्लास्टिक बनाया जाता है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त प्लास्टिक बनाने में कई प्रकार के रंग और चिकने तेल आदि की भी आवश्यकता होती है।

भारत में भी इसका उत्पादन द्वितीय महायुद्ध के बाद आरम्भ हुआ है। यहाँ इस समय साँचों में दबा कर अथवा उनमें तरल प्लास्टिक डालकर उपयोग की कई वस्तुऐं बनाई जाती हैं।

भारत में १२० सुव्यवस्थित कारखाने हैं, जबकि १९३६ में केवल ५ कारखाने थे। १९६२ में इन कारखानों से ६ करोड़ रुपये से अधिक की वस्तुओं का उत्पादन हुआ। देश में अमृतसर, कानपुर, कोयम्बटूर और हैदराबाद में प्लास्टिक की वस्तुऐं बनाई जाती है किन्तु बम्बई और कलकत्ता तो इसके गढ़ ही हैं।

प्लास्टिक उद्योग के मुख्य कच्चे माल के रूप में जिन कृत्रिम रालों और ढलाई के चूरे का प्रयोग होता है—यूरिया, फारमेल्डी-हाइड, पोलिस्टाइरीन, पौली-थीन, सेलूलोस एसीटेट, एसीटेट बुटाइरेट, सैलूलाइट, एक्राइलिक नाइलन, मोनीफिल और स्टारीन बुटाडीन—वे लगभग ५,००० टन के विदेशों से मँगाये जाते हैं।

काँच का उद्योग (Glass Industry)

प्रारम्भिक इतिहास—भारत में काँच का उद्योग बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में काँच की वस्तुएँ बेलगांव, मैसूर और कानपुर के निकट बनायी जाती थीं। आनुनिक ढंग के उद्योगों को १९ वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में चलाने के असफल प्रयास किये गए किन्तु वास्तविक विकास १९१४ के बाद ही आरम्भ हुआ है। १९३९ में काँच के कारखानों की सख्या ८० थी और उनकी क्षमता ६० लाख वर्ग गज काँच की चद्दर और ४३ हजार टन अन्य सामान की थी। १९५१ में यह संख्या बढ़कर १०९ हो गई। १९५८ में १३१ काँच बनाने की फैक्टरियाँ थीं जिनकी उत्पादन क्षमता ३·२४ लाख टन की थी। इनके अतिरिक्त २३,००० टन क्षमता वाली २२ फैक्ट्रयाँ बन्द पड़ी थीं। १९६१ में इनकी संख्या १४८ थी और उत्पादन क्षमता ४·४ लाख टन। इनमें से ५१ फैक्ट्रयाँ (६१,००० टन क्षमता की) तीन वर्षों से बन्द पड़ी हैं।

नीचे की तालिका में काँच का उत्पादन बताया गया है :—

	१९५१ (टनों में)	१९५६	१९६१
बोतलें और शीशियाँ	५१,८५०	६२,४१०	१०७,७४०
टेबुल का सामान	१२,९५०	२८,२२०	३७,४३०
काँच की चादरें	५,१००	२८,८५०	४३,७४०
लैम्प आदि	१३,१५०	१९,८७०	१८,२५०
वैज्ञानिक सामान	२,१४०	३,३६०	४,८७०
थर्मस फ्लास्क	३३०	३३०	६१०
बत्तियों के खोल	६२०	१५२०	२,४४०
अन्य प्रकार का काँच का सामान	१९९०	३,०३०	९,३६०
योग	८७,१८०	१४७,५९०	२२४,७४०

द्वितीय योजना काल में अनेक नई किस्म के काँच और उसका सामान देश में बनाया जाने लगा है—काँच का ऊन, सुरक्षा काँच, रंगीन काँच की चादरें, काँच के नगीने तंग मुंह वाले थर्मस फ्लास्क, पेय पदार्थों के लिए सजावटी बोतलें, पेन्सिलीन शीशियाँ, काँच के रेशे, काँच की पिचकारियाँ, कृत्रिम पत्थर आदि। १९५५-५६ में १·३६ लाख टन काँच के सामान का उपयोग हुआ। १९६२-६३ में यह मात्रा २·५० लाख टन की थी।

१९५६ में १७१ लाख रुपये के मूल्य का आयात और २६ लाख रुपये के मूल्य का निर्यात किया गया। १९६२ में यह मूल्य क्रमश: १३० लाख रुपये और ५० लाख रुपया था। आयात के अन्तर्गत वैज्ञानिक काँच का सामान, काँच की नलियाँ और सलाखें तथा काँच की चद्दरें होती हैं। जैकोस्लोवाकिया, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैंड, ब्रिटेन, सं० राज्य अमरीका और जापान से काँच का सामान आयात किया जाता है।

निर्यात में मुख्यत: बोतलें, काँच का मेजी सामान, घर, होटल आदि के उपयोगार्थ सामान, नकली मोती, रेशेदार काँच, काँच दर्पण, वैज्ञानिक काँच का सामान। प्रमुख आयातकर्ता पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान, कुवैत, सऊदी अरब ओमान और ब्रह्मा हैं।

तृतीय योजना काल में काँच की माँग ४·४ लाख टन हो जाने का अनुमान है। इसके लिए कारखानों की क्षमता ६·१५ लाख टन हो जायेगी आयोजित उत्पादन प्राप्त करने के लिए ३·७२ लाख टन काँच का बालू, १·३४ लाख टन सोडा एश, ७ लाख टन कोयला, ५५ ह० टन चूना, ६३०० टन शोरा, ७५०० सुहागा, ११०० टन संखिया और १२,७०० टन रिफ्रैक्ट्रीज की आवश्यकता होगी। इसके लिए १७ नये कारखाने खोले जायेंगे और २६ कारखानों का विस्तार किया जायेगा।

इस उद्योग में लगभग ३०,००० श्रमिक कार्य करते हैं। कारखानों का उत्पादन १६ से १८ करोड़ रुपयों के मूल्य का होता है।

उद्योग का संगठन—भारत में काँच का सामान बनाने का उद्योग दो भागों में विभक्त है—(१) प्रथम प्रकार के कारखाने वे हैं जो कुटीर उद्योग के रूप में काम करते हैं, और (२) दूसरे प्रकार के वे कारखाने हैं जो आधुनिक फैक्टरियों के रूप में काम करते हैं।

(१) प्रथम प्रकार के कुटीर धंधे के रूप में काँच के सामान बनाने के उद्योग का मुख्य केन्द्र फिरोजाबाद और दक्षिण में बेलगाँव हैं। फिरोजाबाद में १०० से भी ऊपर छोटी छोटी फैक्टरियाँ हैं जो काँच की रेशमी तथा साधारण चूड़ियाँ बनाती हैं। उत्तर प्रदेश में काँच का कुटीर उद्योग एटा, फतहपुर, शिकोहाबाद और हाथरस आदि स्थानों में भी चलाया जाता है। इनसे भारत की चूड़ियों की माँग की ⅓ पूर्ति हो जाती है किन्तु जैकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, जापान बेल्जियम, इटली और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आयात की गई चूड़ियों से इन्हें प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। फिरोजाबाद में चूड़ियाँ बनाने के धंधे से ५०,००० लोगों को व्यवसाय मिलता है तथा यहाँ का उत्पादन ३५,००० टन है जिसका मूल्य ४ करोड़ रुपये है।

(२) भारत में काँच बनाने की आधुनिक फैक्टरियाँ विशेषकर उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार, मद्रास और उड़ीसा में केन्द्रित हैं।

उद्योग का स्थापन—काँच बनाने के लिये जिन वस्तुओं का उपयोग किया जाता है उनमें बालू मिट्टी के अतिरिक्त अनेक प्रकार के रासायनिक पदार्थ और शक्ति के लिए कोयला काम में लाया जाता है। इनमें से बालू मिट्टी काफी भारी होती है. किन्तु कांच स्थानान्तरण करने में बडा कमजोर होता है अतः स्वभावतः ही इसका उद्योग माँग के क्षेत्रों के निकट ही स्थापित किया जाता है। अन्य वस्तुयें वहीं मँगाली जाती हैं।

देश में काच बनाने योग्य बालू मिट्टी पर्याप्त मात्रा में मिलती है किन्तु सोडियम सल्फेट, बेरियम आक्साइड, पोटेशियम कार्बोनेट, शोरा, सोडा एश, लवण पिड, सुहागा, सीसा, सुरमा, संखिया आदि कम मात्रा में मिलते हैं।

नीचे की तालिका में उद्योग का वितरण बताया गया है :

राज्य	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन क्षमता (टनों में)
उत्तर प्रदेश	२८	८३,०००
बंगाल	२४	११०,०००
महाराष्ट्र	२२	५७,९००
मद्रास	६	११,१००
बिहार	४	६०,७००
गुजरात	२	२७,९००
उड़ीसा	२	१३,२००
पंजाब	२	५,८००
दिल्ली	२	१,८००
राजस्थान	१	४,८००
आंध्र प्रदेश	१	१,८००
मध्य प्रदेश	१	७००
मैसूर	१	७००
केरल	१	३,६००
योग	९७	३८३,२००

१९६१ में इन कारखानों की विभिन्न भाँति की वस्तुयें बनाने की वार्षिक क्षमता इस प्रकार थी :—

	१९६१ में	१९६५ में
बोतलें और शीशियाँ	१७४,१०० टन	२९५,००० टन
मेजी और दबाये हुए काँच का सामान	७४,५०० ,,	१२७,००० ,,

काँच की चद्दरें	६१ ८०० टन	६१,१०० टन
काँच के बल्ब	४२,२०० ,,	४५,००० ,,
काँच का वैज्ञानिक सामान	१४,००० ,,	२२,००० ,,
थरमल फ्लास्क	३,४८० ,,	५,००० ,,
बिजली के बल्व	२,८६० ,,	४,३०० ,,
अन्य सामान	१०,४०० ,,	३६,००० ,,
योग	३८३,३४० टन	४४०,००० टन

उत्पादन की नई वस्तुऐं रंगदार कांच की चादरें, मोटर गाड़ियों, वायुयान आदि के लिए लेमिनेटेड और फौंड़ किस्मों के स्फैटी ग्लास, कांच की ऊन और रेशे कांच की पिचकारियाँ, संश्लेषित वस्तुऐं और ग्लास चेटन्स हैं।

उद्योग का स्थापन—यह उद्योग अधिकतर गंगा की ऊपरी घाटी में ही केन्द्रित है। इसके निम्न कारण है :—

(१) काँच निर्माण के योग्य सबसे अच्छा बालू उत्तर प्रदेश में विंध्याचल पर्वत के **लोघरा** (Loghra) और **बोरगढ़** (Borghar) नामक स्थानों पर बालू के परिवर्तित जलज पत्थर को पीस कर प्राप्त किया जाता है। इन स्थानों के अतिरिक्त बरार, पूना, जबलपुर, इलाहाबाद इत्यादि जिलो में तथा जयपुर, बीकानेर, बूँदी, बड़ौदा आदि स्थानों में भी उत्तम श्रेणी की बालू अथवा बालू के पत्थर पाये जाते हैं जिनका प्रयोग इन कारखानों में किया जाता है।

(२) इन कारखानों के लिए कोयला बिहार की खानों से प्राप्त किया जाता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ के कारखाने बालू प्राप्ति की दृष्टि से उचित दूरी पर हैं किन्तु कोयला इन्हें कुछ दूर से मँगाना पड़ता है।

(३) उत्तर प्रदेश के कारखानों को सबसे बड़ा लाभ कुशल मजदूरों का पर्याप्त मात्रा में मिल जाना है। आगरा के निकट कुछ जातियाँ-शीशगर मिलती हैं जो पीढ़ियों से काँच का सामान तैयार करती आ रही हैं। ये कुशल मजदूर आधुनिक ढंग के काँच बनाने के काम में भी बहुत जल्दी सिद्धहस्त हो जाते है।

(४) इस भाग में रेलों का जाल-सा बिछा है जिससे सब सामान इकट्ठा करने में सुविधा रहती है और तैयार माल के लिए जनसंख्या की अधिकता के कारण बाजार भी विस्तृत है।

(५) काँच बनाने में प्रयोगित दूसरे मुख्य पदार्थ सोडा-मिट्टी, सोडा सल्फेट और शोरा हैं। भारत के अनेक तेजाब के कारखानों में सोडा सल्फेट उप-प्राप्ति के रूप में रह जाता है। राजस्थान की नमकीन झीलों से भी सोडा के कार्बोनेट और सल्फेट दोनों मिलते हैं। मध्य प्रदेश के बुल्ढाना जिले की कोलनार झील से सोडा कार्बोनेट प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त भारत के कई शुष्क भागों में कहीं-कहीं भूमि० पर रेह नामक पदार्थ एकत्रित हो जाता है। यह भी काँच बनाने के प्रयोग में लिया जाता है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बंगाल और बिहार के अनेक स्थानों की मिट्टी में शोरा भी मिलता है जिससे काँच के लिए क्षार प्राप्त होता है। यही वस्तुएँ उत्तर प्रदेश के कारखानों में प्रयुक्त की जाती हैं।

पश्चिमी बङ्गाल में हावड़ा में काँच के २४ कारखाने है। इनके लिए राजमहल पहाड़ में मङ्गलघाट और पाथरघाट नामक स्थानों पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर पीस कर काँच के लिए उपयुक्त बालू प्राप्त किया जाता है। कोयले की दृष्टि से बगाल के कॉच के कारखानो की स्थिति बहुत ही अनुकूल है, परन्तु अधिकांश बालू उन्हे उत्तर प्रदेश से मंगवानी पड़ती है। बंगाल के कॉच के कारखानों को एक लाभ यह है कि वे बगाल के उन औद्योगिक केन्द्रो के पास ही स्थित है जहाँ रासायनिक पदार्थ तैयार किये जाते है। यहाँ अधिकतर लैप. लालटेनों के हिस्से. बोतलें, शीशे के ट्यूब, फ्लास्क ट्यूब ग्लास, शीशे की प्लेटे आदि बनाई जाती है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बेलघरिया, बेलगछिया, बेलूर, सीतारामपुर, रानीगंज, आसनसोल और कलकत्ता है।
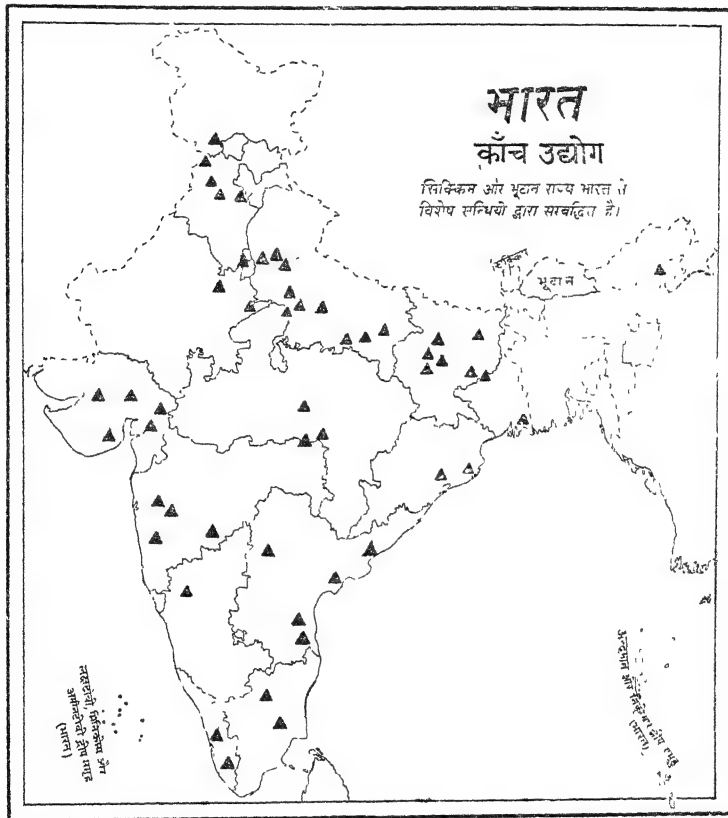
चित्र १७५. भारत में काँच उद्योग के केन्द्र

उत्तर प्रदेश में २८ काँच के कारखाने हैं। भारत का लगभग ४०% कांच का सामान इसी राज्य से प्राप्त होता है। यहाँ इस उद्योग के लिए ये सुविधायें पाई जाती हैं :—(१) उत्तर प्रदेश में लोगढ़ा, पन्हाई आदि स्थानो मे कॉच बनाने योग्य

बालू मिल जाती है; (२) चूने का पत्थर विंध्याचल पर्वत से मिल जाता है; (३) फिरोजाबाद के शीशगर इस कार्य में बड़े निपुण हैं; (४) अधिक जनसंख्या होने के कारण यातायात के साधनों का पर्याप्त उपयोग हो जाता है । अतएव यहाँ इस उद्योग के मुख्य केन्द्र नैनी, बहजोई, रामनगर, सासनी, शिकोहाबाद, इटावा, फिरोजाबाद, हिरणगऊ, गाजियाबाद, कीरतपुर तथा बालावाली हैं ।

महाराष्ट्र राज्य में २२ कारखाने हैं । इन कारखानों में प्लास्टिक टैस्ट-ट्यूब बोतलें तथा बीम आदि बनाये जाते है । यहाँ के मुख्य केन्द्र बम्बई, पूना, नागपुर, सतारा कोल्हापुर और पंढरपुर है ।

मद्रास में ६ कारखाने है । यहाँ अधिकतर काँच के बर्तन, चिमनियाँ कांच की चादरें, तथा वैज्ञानिक प्रयोगशाला की वस्तुयें बनाई जाती है । सलेम, मद्रास और कोयम्बटूर प्रमुख केन्द्र है । इन राज्यों के अतिरिक्त कांच के अन्य केन्द्र इस प्रकार है :—

राजस्थान	···धौलपुर	आंध्र प्रदेश	··हैदराबाद
पंजाब	···अम्बाला, अमृतसर	मैसूर	···बंगलौर
दिल्ली	·· शाहादरा	मध्य प्रदेश	···जबलपुर
गुजरात	····वड़ौदा, भडौंच	उडीसा	···बारंग
केरल	····अलवाये	बिहार	···कांद्रा

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में काँच बनाने के पदार्थ पर्याप्त मात्रा में वर्तमान हैं और यहाँ काँच की खपत भी काफी है, किन्तु दुर्भाग्यवश भारत के अधिकांश कारखाने ऐसे स्थानों पर बने हैं जहाँ काँच के लिए कच्चे पदार्थ, बालू और शोरा तथा कोयला बहुत दूर से मँगाने पडते है; इस कारण ये पदार्थ बहुत मँहगे पड़ते हैं । काँच का उद्योग कच्चे माल की निकटता में स्थापित होने वाला उद्योग है । काँच-उद्योग की सलाहकारिणी-परिषद् ने सुझाया है कि काँच के कारखानों की स्थापना पर कच्चे माल की निकटता से बाजारों की निकटता का अधिक प्रभाव होना चाहिए क्योंकि काँच शीघ्र ही टूट जाने वाला पदार्थ है । काँच का कारखाना स्थापित करने का सबसे उत्तम स्थान बंगाल या बिहार के कोयले के क्षेत्रों के पास है ।

सीमेंट उद्योग (Cement Industry)

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति—भारत में संगठित ढग से पहली बार सीमेंट तैयार करने का श्रेय मद्रास को है जहाँ १९०४ में समुद्री सीपियों से सीमेंन्ट बनाने का प्रयास किया गया किन्तु यह पूर्णतः सफल न हो सका । वास्तविक विकास १९१२-१३ की अवधि में ही हुआ जबकि मध्य प्रदेश में कटनी, राजस्थान मे लाखेरी, बूँदी और गुजरात मे पोरबंदर में तीन नयी फैक्ट्रियाँ स्थापित की गयीं । इनसे उत्पादन १९१४ में आरम्भ हुआ । अनेक कठिनाइयों को पार कर यह उद्योग निरंतर गति से बढ़ा है। इसकी प्रगति का मुख्य श्रेय **भारतीय सीमेंट उत्पादक संघ** (१९२६), **कंक्रीट एसोसियेशन ऑफ इंडिया** (१९२७) और **सीमेंट मार्केटिंग कं०** (१९३०) को है ।

१९५१ में सीमेंट तैयार करने वाली २१ फैक्ट्रियाँ थीं जिनकी उत्पादन क्षमता ३२·८ लाख टन की थी । यह संख्या १९५६ में क्रमशः २७ और ४,९·३ लाख टन हो गई । इस अवधि में सीमेंट का वास्तविक उत्पादन ३१·९ लाख टन से बढ़कर

४६.२ लाख टन हो गया। द्वितीय योजना काल में फैक्ट्रियों की संख्या बढ़कर ३४ हो गई तथा इनकी कुल उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः ९२ लाख टन और ७८ लाख टन थी। यह वृद्धि ७ नयी फैक्टियाँ खोलने तथा १६ वर्तमान फैक्ट्रियों का विस्तार करने से संभव हो सकी। १९६१-६२ में सीमेंट का उत्पदना ८२.८ लाख टन का हुआ। १९६२-६३ मे ८८.६ लाख टन उत्पादन होने का अनुमान था। ३६ फैक्ट्रियाँ काम कर रही थीं जिनकी क्षमता ९९.८ लाख टन की थी। तीसरी योजना में फैक्ट्रियों की सख्या बढ कर ८७ तथा उनकी उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः १५० लाख टन और १३० लाख टन का होगा। इस उत्पादन की प्राप्ति के लिए तीसरी योजना काल में कच्चे माल की आवश्यकता इस प्रकार होगी :

चूने का पत्थर २१० लाख टन; जिप्सम ५३ लाख टन; कोयला ४० लाख टन; चिकनी मिट्टी १३ लाख टन तथा शक्ति १४३ करोड़ किलोवाट घंटा।

उत्पादन लक्ष्य की पूर्ति के लिए आंध्र मे २, जम्मू-काश्मीर में १, मद्रास में १, आसाम में १, मध्य प्रदेश मे १, महाराष्ट्र में १, और १ गुजरात मे एक नया कारखाना खोला जा रहा है।

इस समय उद्योग मे लगभग ५५ हजार श्रमिक कार्य कर रहे है और लगभग ३५ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है। भारत मे अब सजावटी जल सह सीमेंट, लेप सीमेंट जलरोधी यौगिक और विभिन्न रगो का रंगीन पोर्टलैंड सीमेंट भी बनने लगा है। कोट्टायम तथा पोरबदर के कारखानों मे सफेद सीमेंट भी बनाया जाता है।

नीचे की तालिका में सीमेंट उद्योग सम्बन्धी आँकड़े दिये गये है :—

वर्ष	कारखानो की संख्या	उत्पादन (लाख टन)
१९४८	१८	१६
१९५१	२१	
१९५२	२३	३६
१९५३	२४	३८
१९५४	२५	४५
१९५५	२७	४६
१९५६	२८	५०
१९५७	२८	५७
१९५८	३१	६२
१९५९	३२	६९
१९६०	३२	७८
१९६१	३४	८४
१९६२	३५	८५

१९५९ के पूर्व सीमेंट का आयात भी होता था। १९६१-६२ में ब्रिटेन, स्वीडेन, संयुक्तराज्य प० जर्मनी, प० पाकिस्तान से ४·८ लाख रुपये की सीमेंट का आयात किया गया। अब प्रायः नहीं के बराबर है। राज्यकीय व्यापार निगम द्वारा सीमेन्ट का निर्यात ही अधिक किया जाता है। १९५५-५६ में निर्यात की मात्रा ५·७ लाख टन थी। १९६१-६२ में यह ९७,५९१ टन हुई जिसका मूल्य ९० लाख रुपया था। निर्यात मुख्यतः पाकिस्तान, लंका, कम्बोडिया, मस्कत, अफगानिस्तान, ईरान, श्री लंका, वियतनाम, फारस की खाड़ी के देशों को होता है। देश में ही निर्माण-कार्यों में वृद्धि होने से सीमेंट की आन्तरिक माँग बढ़ रही है।

उद्योग का स्थापन—सीमेंट उद्योग में भारी वस्तुओं का उपयोग अधिक[1] होता है। अनुमानतः १ टन सीमेंट तैयार करने में १·६ टन चूने का पत्थर, ·३८ टन जिप्सम और ३·८ टन कोयले की आवश्यकता होती है। इनमें से चूने का पत्थर और कोयला भारी होने के साथ साथ सस्ते भी होते है अतः उन्हें ढोने में व्यय भी अधिक होता है। इस कारण अधिकांश कारखाने इन पदार्थों के निकट ही स्थापित होते हैं।

भारतीय सीमेंट के उद्योग को प्रकृति की ओर से बड़ा लाभ प्राप्त है। उत्तम प्रकार के चूने का पत्थर भारत के कई भागों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है, किन्तु अधिकतर विंध्याचल का चूने का पत्थर ही काम आता है क्योंकि यहाँ के पत्थर में चिकनी मिट्टी की मात्रा पर्याप्त होती है। सामान्यतः चूने का पत्थर रेलवे लाइनों के निकट ही होता है और इसीलिए सीमेंट के कारखाने चूने के पत्थर की खानो के पास ही स्थापित हो गये है। शायद ही कोई फैक्ट्री चूने के पत्थरों की खानों से ३२ से ४८ किलोमीटर की दूरी से अधिक होगी। ग्वालियर की सीमेंट फैक्ट्री चूने का पत्थर रेल द्वारा केवल २१ किलोमीटर की दूरी से और पोरबन्दर की फैक्ट्री ५१ किलोमीटर की दूरी से मंगाती है। कटनी के सीमेंट के कारखाने की पूर्ति उसके पास के ही चूने के पत्थरों से होती है; वैसे बढ़िया पत्थर ३२ किलोमीटर की दूरी से मँगाया जाता है। बिहार मे जापला और दालमिया नगर की फैक्ट्रियाँ चूने का पत्थर रोहतास की पहाड़ियों से प्राप्त करती है। दूसरे अधिकांश कारखाने चूने के पत्थर अपेक्षाकृत बहुत ही कम दूरी से मँगाते है।

अब सीमेंट बनाने के लिए चूने के पत्थर के स्थान पर धमन भट्टी का कचरा (Blast furnace waste) और पोत्स्वालानिक मसाले का भी प्रयोग किया जाता है धमन भट्टी का कचरा भारतीय लोहे और इस्पात के कारखानों से मिल जाता है। दूसरी योजना तक १८,००० टन वार्षिक कचरा सीमेंट बनाने की क्षमता स्थापित हो गई थी। अब बिहार मे १, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश मे भी १-१ तथा उड़ीसा मे ३ नए कारखाने स्थापित किये जा रहे है जिससे कचरा सीमेंट की उत्पादन क्षमता बढ़ कर १२ लाख टन हो जायेगी। सीमेंट बनाने के लिए दूसरा मुख्य पदार्थ कोयला है। कोयले की दृष्टि से अधिकतर कारखाने असुविधा मे रहते हैं। मुख्यत: कोयला बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। सीमेंट की भट्टियों मे उच्च कोटि का कोयला ही काम में आता है जिनमें कम से कम राख

---

१. पोर्टलैंड सीमेंट में ये पदार्थ पाये जाते हैं—चूना ६४·५%: बारीक बालू २०·७%; एलूमीना ५·२% और आयरन आक्साइड २·८%।

का अंश हो । अतः वे कारखाने जो बिहार अथवा मध्य प्रदेश में कोयले की खानों के निकट वर्तमान है शक्ति उत्पन्न करने के लिये निम्न श्रेणी का कोयला प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु फिर भी कम से कम आधा कोयला उन्हें बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से मँगाना पड़ता है । मद्रास के कारखानों को छोड़कर सभी जगहों पर यही कोयला काम में लाया जाता है ।
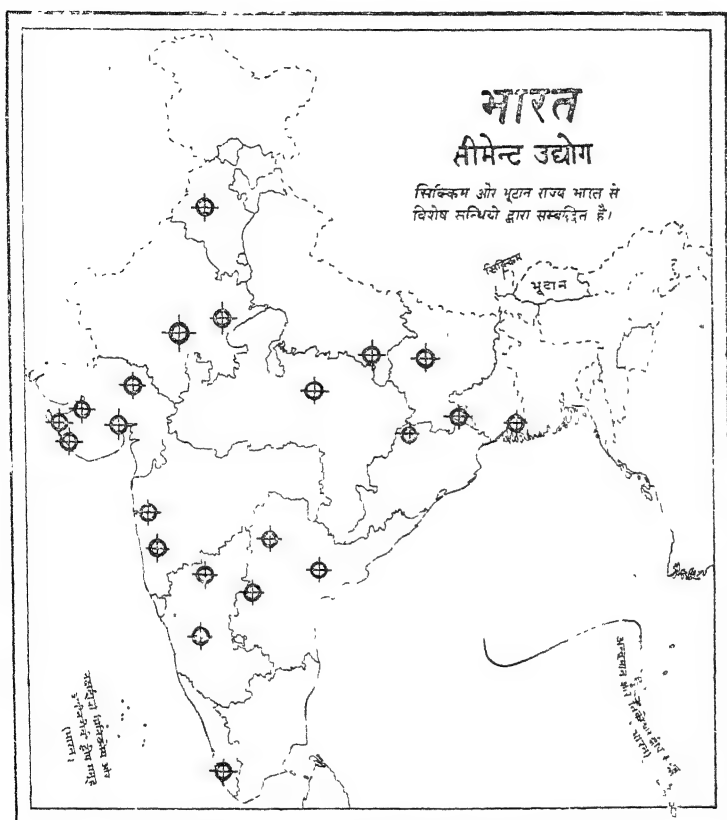
चित्र १७६. भारत में सीमेन्ट उद्योग

जिप्सम भी सीमेंट बनाने में काम आती है । यह जोधपुर और बीकानेर डिविजनों से प्राप्त की जाती है किन्तु कारखानों तक लाने में काफी व्यय हो जाता है । सौराष्ट्र के कारखाने जिप्सम की पूर्ति जामनगर में करते हैं । बूंदी के कारखाने में तो जोधपुर से ही जिप्सम मंगाकर काम में लिया जाता है ।

जहाँ तक बाजारों का प्रश्न है देश के भीतरी भागों में छोटे शहरों को यह लाभ है कि उन्हें सीमेंट के कारखानों को कम भाड़ा देकर ही सीमेंट मिल जाता है और उन्हें बाहर से आयात हुए सीमेंट पर अधिक व्यय नहीं करना पड़ता; किन्तु

सीमेंट में मुख्य बाजार बन्दरगाहों पर ही स्थित है। इस विचार से भारत की अधिकांश सीमेंट की फैक्टरियाँ असुविधा में रहती है। कटनी के कारखाने बम्बई और कलकत्ता से क्रमशः १०७९ कि० मी० और १०९५ कि० मी० दूर हैं। सोन घाटी के सीमेंट के कारखाने कलकत्ता से ५९५ कि० मी० दूर हैं। बूंदी बम्बई से ९७८ कि० मी० है। सौराष्ट्र की फैक्टरियाँ बम्बई से ४१८ कि० मी० दूर हैं।

सभी परिस्थितियों को लेते हुए मध्य प्रदेश और बिहार सीमेंट उद्योग के लिये अनुकूल क्षेत्र है। यहाँ चूने का पत्थर और कोयला उचित दूरी पर ही मिल जाते हैं और बंगाल बिहार के औद्योगिक क्षेत्रों के बाजार भी यहाँ से अधिक दूर नहीं पड़ते। कोशी, महानदी और दामोदर नदियों की घाटियों में विकसित होने वाली तीनों बहु-मुखी योजनाएँ भी निकट है।

सीमेंट उद्योग का स्थापन क्षेत्र मुख्यतः दक्षिणी राजस्थान के पूर्व से लगाकर उत्तरी मध्य प्रदेश होता हुआ दक्षिणी बिहार तक चला गया है जहाँ उत्तम श्रेणी का चूने का पत्थर तथा कोयला की खानें विद्यमान है।

नीचे उद्योग का वर्तमान वितरण बताया गया है :—

बिहार राज्य में ७ कारखाने है, जिनकी उत्पादन क्षमता १७ लाख टन की है। उद्योग के मुख्य केन्द्र डालमियानगर, सिन्दरी, बनजारी, चौबासा, खिलारी, जापला और कल्याणपुर है।

आंध्र प्रदेश के ५ कारखाने माछरेला, मांचेरियल, पनयाम, कृष्णा, और विजयवाड़ा में केन्द्रित है। इनकी उत्पादन क्षमता ९ लाख टन की है।

गुजरात में भी सीमेंट के ५ कारखाने है। ये क्रमश. सिक्का रानावाव ओखामंडल, जामनगर और द्वारका में हैं। इनकी उत्पादन क्षमता ११ लाख टन की है।

मद्रास में सीमेंट के ४ कारखाने है जिनकी उत्पादन क्षमता १२ लाख टन की है। मुख्य केन्द्र तुलुकापट्टी, तलैयूथू, डालमियापुरम और मधुकराई हैं।

मध्य प्रदेश में ३ कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता लगभग ९ लाख टन की है। कटनी, कैमोर और बनमोर में ये कारखाने है।

मैसूर में भी तीन कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता लगभग ९ लाख टन की है। बागलकोट, भद्रावती और शाहबाद केन्द्र है।

अन्य राज्यों में कारखानों का वितरण इस प्रकार है :—

राजस्थान	२	लाखेरी बूंदी, सवाई माधोपुर	१२ ला० टन की क्षमता
पंजाब	२	सूरजपुर, डालमियाद्रादी	६ ,,
केरल	१	कोट्टायम	½ ,,
उत्तर प्रदेश	१	चुर्क	२ ,,
उड़ीसा	१	राजगंगपुर	४ ,,

सीमेन्ट और एस्बस्ट की चादरें बनाने का प्रयोग

यह औद्योगिक विकास, नगर निर्माण तथा बस्तियों के निर्माण को प्रभावित करने वाला मुख्य उद्योग है। इस समय सीमेंट की चादरें बनाने वाले ६ कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता १४०,००० टन की है। १९५० में इन चादरों का उत्पादन ८३,४०० टन था जो बढ़कर १९५१ में २१२,४०० टन हो गया। ये कारखाने देश के निर्माण भागों में हैं। इन चादरों की वर्तमान आवश्यकता २ लाख टन और प्रेशर-पाइपों (Pressure Pipes) की आवश्यकता ४८ लाख गोलाकार फीट कूती जाती है। ये आवश्यकताएँ भविष्य में और भी बढ़ेंगी। इसके अतिरिक्त असबस्टस का विशेष वस्तुएँ जैसे ब्रेकलाइनिंग, पैकिंग, जोइंटिंग तथा अन्य आवरण पदार्थ भी देश में बनाये जाते हैं।

चीनी मिट्टी का बर्तन उद्योग

वर्तमान युग में इस उद्योग ने काफी उन्नति की है। उन्नति केवल निर्माण-प्रणाली में ही नहीं वरन् नई डिजायनों का माल तैयार करने में भी हुई है। चीनी मिट्टी के उद्योग में यंत्रों का प्रयोग अन्य उद्योगों की अपेक्षा कम होता है क्योंकि :—

(१) चीनी मिट्टी के बर्तनों आदि के उद्योग में प्रयोग होने वाले पदार्थों में सरलता से मशीनों का प्रयोग नहीं हो पाता।

(२) चीनी मिट्टी के कारखानों में प्रायः विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ (ईंटे, टाइल, तीव्र गर्मी सह सकने वाली ईंटे, इन्सूलेटर आदि) बनाई जाती हैं जो अन्य उद्योगों में नहीं होता।

(३) चीनी मिट्टी के उद्योग में इन्जीनीयर बहुत थोड़े होते हैं।

उत्पादित वस्तुएं

इस उद्योग में ऐसी मिट्टियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें लोहा नहीं होता। इस उद्योग की बनी चीजों का बहुत व्यापक प्रयोग होता है। एक ओर वे मकानों का निर्माण तथा भवन सज्जा में काम आती हैं, दूसरी ओर धातुओं के निर्माण अथवा विद्युत उद्योग के इन्सूलेटरों के लिये, रासायनिक पदार्थ, स्वच्छता उपकरण (Sanitary wares) पानी और गन्दगी निकालने की नालियों के निर्माण में काम आती हैं। चीनी मिट्टी से ही खपरैलें (Tiles) कप-तश्तरियाँ (Crockery), तीव्र गर्मी सहने वाली ईंट और चमकदार टाइलें भी बनाई जाती हैं।

कच्चा माल

चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए चिकनी मिट्टी (China clay) या केओलीन मिट्टी की ही अधिक आवश्यकता होती है। इस मिट्टी को सरलता से ३,०००° फा० तक गर्म किया जा सकता है। यह उद्योग अधिकतर मिट्टी के क्षेत्र के पास ही केन्द्रित होता है।

भट्टियों में जलाने के लिये काफी मात्रा में कोयले की भी आवश्यकता पड़ती है। रासायनिक पदार्थ—फैलसपार, क्वार्टज आदि की भी आवश्यकता बर्तनों पर चमक और मजबूती लाने के लिये होती है।

इस उद्योग के बने माल काफी भारी होते हैं अतः उन्हें परिवहन के लिए सस्ते और सुरक्षित साधनों की आवश्यकता होती है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार काफी बढ़ा-चढ़ा होता है क्योंकि काँच के बर्तनों से यह अधिक सस्ते और मजबूत होते हैं।

भारत में उद्योग का विकास

भारत में चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए उपयुक्त मिट्टी राजमहल की पहाडियों में तथा जबलपुर, रानीगंज और कुमारधूबी मे मिलती है। बर्तनों पर चमक लाने के लिए हड्डी की राख, चकमक पत्थर और फैल्सपार निकटवर्ती क्षेत्रों में ही मिल जाते है।

भारत में आधुनिक ढंग का पहला कारखाना १८६० में रानीगंज में बर्न एन्ड कम्पनी ने स्थापित किया तथा दूसरा कारखाना भी इसी वर्ष बिहार में भागलपुर जिले मे पत्थरघट्टा नामक स्थान पर खोला गया किन्तु यह शीघ्र ही बंद हो गया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में **बंगाल पॉटरीज लि०** की स्थापना कलकत्ते में हुई। चीनी के बर्तनों की माँग बढ जाने से शीघ्र ही अन्य कारखाने भी स्थापित किये गए। पत्थर का सामान बनाने का पहला कारखाना तेलगाँव के पैसा फंड संस्था ने सौराष्ट्र में थान नामक स्थान पर **थान पॉटरीज** के नाम से स्थापित किया। यहाँ बने चीनी मिट्टी के अमृतबान बड़े लोकप्रिय हुए। अतः बाजार की बढती हुई माँग पूरी करने के लिए ग्वालियर पॉटरीज, ग्वालियर तथा दिल्ली और बंगाल पॉटरीज कलकत्ता ने चीनी के अमृतबान बनाने आरंभ कर दिये। द्वितीय महायुद्ध मे आयात कम हो जाने से इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला और कई छोटे-छोटे कारखाने स्थापित हो गये। बड़े कारखानों ने भी अपना उत्पादन बढा दिया और कइयो ने क्रॉकरी तथा बिजली के इन्स्युलेटर बनाने आरम्भ किये।

इस समय भारत मे बर्तन बनाने वाले कुल ७० कारखाने हैं इनमे से मुख्य ये है :—

कारखाने	केन्द्र	उत्पादन
१. बंगाल पॉटरीज लि०	कलकत्ता	क्रॉकरी और इन्स्युलेटर।
२. बर्न एन्ड कम्पनी	रानीगंज; जबलपुर	नालियों के पाइप, स्वच्छता उपकरण।
३. मैसूर स्टोनवेअर पाइप्स एण्ड पॉटरीज लि०	बंगलौर	नालियों के पाइप
४. परशुराम पॉटरीज वर्क्स	बीकानेर, थानागढ़ नजरबाद	क्रॉकरी, टाइलें, स्वच्छता उपकरण, पत्थर का सामान
५. ईस्ट इण्डिया डिस्टीलरी एन्ड सुगर फैक्ट्री लि०	रानीपेट	तेजाब के अमृतबान।
६. कुंडारा फैक्ट्री	तिरवांकुर	क्रॉकरी
७. हिंदुस्तान पॉटरीज लि०	रूपनारायनपुर	चीनी के मोटे पाइप

८. रिलायन्स-फायर ब्रिक्स एंड पौटरीज लि०	बम्बई	मिट्टी के बर्तन, स्वच्छता उपकरण, तेजाब के बर्तन।
६. स्टोनवेअर पाइप्स लि०	त्रिवेल्लोर (मद्रास)	चीनी के मोटे पाइप

कलात्मक बर्तन

भारत में कुटीर उद्योग कलात्मक बर्तन भी तैयार करते हैं। ये बर्तन चाक पर गीली मिट्टी दबा कर या मोड़कर बनाये जाते हैं। दीनापुर के लाल पालिश वाले बर्तन, कोटा व अमरोहा के काली तथा सुनहरी पालिश वाले बर्तन मद्रास के बिना पालिश वाले तथा पंजाब के पालिश वाले बर्तन मुख्य है। चुनार के बर्तन तथा खिलौने; खुरजा के गुलदस्ते, फूल पत्ती, कड़े बर्तन, पानी के जग, पाऊडर के बर्तन, तश्तरियाँ क्रॉकरी आदि तथा निजामाबाद के और लखनऊ के बर्तन सुन्दर डिजायनों, हल्केपन और चमकीले होने के कारण बड़ी माँग में रहते हैं।

टाइलें अधिकतर समस्त मलाबार तट और हुगली तट पर नदियों द्वारा लाई गई पुरानी रेत से बनाये जाते है। पहले मिट्टी को पीसा जाता है और फिर हैंडप्रैसों या साँचों मे ईंटो के रूप में बना लिया जाता है।

इन ईंटों को निरन्तर जलने वाले भूमिगत भट्टों में पकाया जाता है। इन स्थानों के कारखानों के अतिरिक्त टाइलें मध्य प्रदेश के बोगरा; उड़ीसा के जैपुर; और मद्रास के राजमहेन्द्री नामक स्थानों मे भी बनाई जाती हैं।

अगली तालिका में भारत में तैयार होने वाले विभिन्न प्रकार के चीनी मिट्टी के बर्तनों का उत्पादन बताया गया है:—

वर्ष	चीनी के बर्तन (टन)	स्वच्छता के उपकरण (टन)	पत्थर का सामान (टन)	चीनी की पालिश वाली टाइलें (दर्जन)	तापसह ईंट (टन)
१९५०	६,०६०	१,७८८	२६,४००	६२,४००	२,३६,४००
१९५६	१५,०२४	२,७१२	४४,४००	४५८,०००	३,१८,०००
१९६०	२१,५७६	६,०८४	५५,२००	७६०,८००	५७०,८००
१९६१	१८,१८०	६,४२०	५७,६००	१,०३०,८००	५६७,५००
१९६२	२१,०३६	७,५६६	६७,२००	—	६२४,८००

तापसह ईंटे (Refractories)

इस समय देश में तापसह ईंटें बनाने के ४२ कारखाने है जिनकी उत्पादन क्षमता ८ लाख टन वार्षिक है तथा उत्पादन ५.६ लाख टन। इन कारखानों में निम्न प्रकार की ईंटें बनाई जाती है :

१. **अग्नि-ईंटे** (Fire-Bricks)—सामान्य तथा उच्च ताप सहने वाली।

२. सिलका ईंटें।

३. बेसिक ईंटें (मैगनेसाइट, क्रोमाइट, मैगनेसाइट-क्रोमाइट, क्रोमाइट-मैगनेसिया ईंटें)।

४. सीमेंट तापसह ईंटें (सीमेंट की बनी)।

अध्याय ३१

उपभोक्ता उद्योग

(CONSUMER'S INDUSTRIES)

इस उद्योग के अंतर्गत वे सभी उद्योग आते है जिनका उत्पादन जनसंख्या की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए किया जाता है। ऐसे उद्योग को हम तीन श्रेणियों में अध्ययन करेंगे

(क) कागज, दियासलाई, रबड़, चमड़ा और जूता उद्योग।
(ख) **खाद्य उद्योग**—शक्कर, वनस्पति तथा वनस्पति तेल।
(ग) **वस्त्र उद्योग**—सूती वस्त्र, जूट वस्त्र, रेशमी वस्त्र, रेयन, ऊनी वस्त्र।

इस अध्याय मे प्रथम श्रेणी के उद्योगों का विवेचन किया गया है।

1. कागज उद्योग (Paper Industry)

कागज उद्योग को तीन श्रेणियो म बाटा जा सकता है :

(१) कागज तथा गत्ता,
(२) अखबारी कागज,
(३) कागज और गत्ते का उद्योग।

उद्योग का विकास— भारत मे कागज बनाने का कार्य अत्यन्त प्राचीन काल से कुटीर व्यवसाय के रूप में किया जाता है। इसके मुख्य केन्द्र कालपी, मथुरा, आगरा, साँगानेर आदि थे। आधुनिक ढग का प्रयास १७१६ ई० मे डा० विलियम कोर द्वारा मद्रास में ट्रंकुबार नामक स्थान पर किया गया किन्तु इसमे सफलता नहीं मिली। सन् १८६२ ई० मे हुगली के किनारे बाली म भी एक मिल स्थापित किया गया किन्तु इसमे भी सफलता नही हुई। वास्तविक विकास १८८४ ई० के बाद से ही आरम्भ होता है। १९०० ई० में देश मे ७ कारखाने थे जिनका उत्पादन केवल १९,००० टन का था। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध कालों मे इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला। सन् १९·४ ई० मे ९ मिल थे जिनका उत्पादन ३३,००० टन था। १९३७ मे यह संख्या क्रमशः १० और ४८,५०० टन हो गई।

१९५१ ई० में कागज की १८ मिले थीं जिनकी उत्पादन क्षमता १·५८ लाख टन की और उत्पादन १०९ लाख टन का था। १९५६ मे 20 कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता २·१ लाख टन और वास्तविक उत्पादन १ ८ लाख टन का था। **द्वितीय योजना काल** मे ९ नये कारखाने और स्थापित किये गये, जिसके फल-स्वरूप कारखानों की सख्या २९ हो गई (इसमें से १ बन्द है) तथा उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः ४·१ लाख टन और ३·४ लाख टन का हुआ। स्ट्राबोर्ड की क्षमता ७७,४०० टन और उत्पादन ५४,५०० टन का

था । स्ट्राबोर्ड बनाने वाले २६ कारखाने है। शिक्षा में प्रगति होने के साथ-साथ कागज के लिए मांग भी बढ़ती जा रही है। अतः तृतीय योजना के अन्तर्गत कागज आदि की उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन बढ़ाने के लिए १८ नये कारखाने स्थापित किये जायेंगे तथा १८ वर्तमान कारखानों का विस्तार किया जायेगा। इसके अतिरिक्त ३ छोटी इकाइयो का विस्तार करने तथा ८३ नई छोटी इकाइयो को स्थापित करने के लाइसेंस दिए जा चुके है। ये इकाइयाँ असम मे जयपुर, गौहाटी, लाभासखांग और पश्चिम बगाल मे कलकत्ता, कल्याणी, बांसबरिया, २४ परगना, अलीपुर और सिंधी में स्थापित की जायेंगी। तृतीय योजना काल में निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए लगभग ५० लाख टन छोई (bagasse), ६४,००० टन कास्टिक सोडा, और ६००० टन गंधक की आवश्यकता होगी।

१९७०-७१ और १९७५-७६ मे कागज की मांग का अनुमान क्रमशः १२ लाख टन और १८ लाख टन का है। १९७५ तक देश को लगभग ४० लाख टन कच्चे माल की आवश्यकता होगी। १९६० मे सयुक्त राष्ट्र सघ के खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार इस कच्चे माल की पूर्ति इस प्रकार से की जानी चाहिए: बांस से १६ लाख टन; विभिन्न लकड़ियों से ११ लाख टन गन्ने की छोई से ८ लाख टन और रद्दी कागज तथा घासो से ५ लाख टन।

भारत मे अनेक प्रकार का कागज तैयार किया जाता है। उत्पादन की दृष्टि से भारत मे छापने तथा लिखने का कागज, वस्तुये लपेटने का कागज, विशेष किस्म का कागज और पेपर-बोर्ड कागज बनाया जाता है।

	१९५५-५६	१९६०-६१	आवश्यकता की पूर्ति का प्रतिशत
छपाई तथा लिखने का कागज	११९,६८९	२१९,९४४	८०
लपेटने का कागज	२९,५१९	६१,३१८	३०
विशेष प्रकार का कागज	५,६७३	८,९७१	५०
पेपर-बोर्ड	३१,९३५	५७,९७२	९५
योग	१८६,८४९	३४३,२०५	—

द्वितीय योजना काल में अनेक नई प्रकार का कागज भी बनाया जाने लगा है, जैसे आर्ट-पेपर, टिश्यू-पेपर, क्रोमो-पेपर, बैंक तथा बौंड पेपर, कार्टरिज-पेपर, चमकीला कागज, टैलीप्रिंटर कागज तथा लिथो और आफसेट-कागज, अधिक चमक वाले पोस्टर कागज, कारतूस कागज, हिसाब लगाने की मशीन मे काम में आने वाला कागज आदि।

भारत में कागज का उपभोग निरन्तर गति से बढ़ रहा है। इसके लिए आन्तरिक उत्पादन के अतिरिक्त कागज का आयात भी किया जाता है। यह आयात नार्वे, स्वीडेन, जापान, हॉलैंड और जर्मनी से होता है।

कागज तथा अखबारी कागज का आयात, उत्पादन एवं उपभोग

वर्ष	साधारण कागज उत्पादन	आयात	उपभोग	अखबारी कागज उत्पादन	आयात	उपभोग	स्ट्रावोर्ड (टनों में)
	(००० टनों मे)			(००० टनों में)			
१९५१-५२	१३५	३३	१६८	—	५०	५०	—
१९५५-५६	१८७	५०	२३७	३·६	७४·७	७८ ३	३४,५४४
१९५९-६०	३१२	१८	३३०	२२·४	७४·५	९६·९	५१,०३२
१९६०-६१	३४३	२३	३६६	२२·९	७५·५	९८·४	५४,५००
१९६५-६६ (लक्ष्य)	७००	—	७००	—	—	—	—

भारत में अभी विदेशों की तुलना में प्रति व्यक्ति पीछे कागज का उपयोग बहुत ही कम है केवल १·४ पौड, जबकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह मात्रा ३०० पौंड; कनाडा में २७५ पौड; इंग्लैण्ड में १५० पौंड; न्यूजीलैंड में १२४ पौड; जमनी में ७० पौड; जापान में ५० पौंड; रूस में १४ पौंड है। इस निम्न उपभोग का मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना है। "देश में साक्षरता की वृद्धि से कागज की खपत भी काफी बढेगी।"

अखबारी कागज उद्योग—अखबारी कागज बनाने का पहला कारखाना १९४७ में आरंभ में निजी क्षेत्र में **राष्ट्रीय अखबारी कागज मिल** के नाम से मध्य प्रदेश में नेपानगर में स्थापित किया गया। १९४८ में यह मध्य प्रदेश सरकार के नियंत्रण में आ गया। १९५८ में इसका पुनर्गठन किया गया जिसके फलस्वरूप इसके २½ करोड़ रुपये के अंश भारत सरकार तथा १ ७ करोड़ रु० के अंश राज्य सरकार के हैं। इसकी अधिकृत पूंजी ५ करोड़ रुपये की है। पहली बार उत्पादन १९५५ में आरंभ किया गया। इसकी दैनिक उत्पादन क्षमता ६० टन अखबारी कागज की है तथा इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ३०,००० टन की है। १९५५-५६ में यहाँ ३,४५५ टन, १९६०-६१ में २३,३९८ टन १९६१-६२ में २५,२७९ टन अखबारी कागज तैयार किया गया। इस कारखाने में ६½ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है तथा लगभग १००० श्रमिक कार्य कर रहे हैं।

अब १½ लाख टन की अतिरिक्त क्षमता के लिए ३ नई इकाइयाँ और स्थापित की जा रही हैं, जिनमें से एक शक्करनगर में होगी।

अखबारी कागज की उत्पादन क्षमता का विस्तार करने में प्रमुख कठिनाई पर्याप्त मात्रा में सस्ता कच्चा माल का न मिलना है। औद्योगिक विकास द्वारा गन्ने की छोई और हिमालय की कोमल लकड़ियों के प्रयोग से यह कमी दूर की जा सकती है।

उद्योग का स्थापन—कागज उद्योग का स्थापन प्रायः सभी राज्यों में हुआ है किन्तु पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र इसके मुख्य क्षेत्र है। नीचे की तालिका में उद्योग का वितरण बताया गया है (१९६०-६१)।

राज्य	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन क्षमता (टनों में)
पश्चिम बंगाल	५	६५,४५०
उत्तर प्रदेश	२	२६,४००
बिहार	१	६०,०००
उड़ीसा	२	७२,०००
पंजाब	३	३०,०००
गुजरात	१	६,०००
महाराष्ट्र	७	२६,६१०
आंध्र प्रदेश	२	३६,०००
मैसूर	३	३६,०००
केरल	१	८,६४०
मध्य प्रदेश	१	५,४००
भारत का योग	२८	४१०,०००

कागज का उद्योग कच्चे माल की प्राप्ति के स्थानों के निकट स्थापित होने वाला धंधा है क्योंकि कागज बनाने के लिए भारी पदार्थों—बाँस, लकड़ी घास, चिथडे कोयला आदि की आवश्यकता होती है। अतः जिन भागों में ये पदार्थ निकट ही प्राप्त हो जाते है वहीं कागज के उद्योग का केन्द्रीयकरण हो गया है। जिन कारखानों में चिथडे, रद्दी कागज इत्यादि से कागज बनाया जाता है वे कारखाने बाजारों के निकट ही स्थापित होते है।

भारत में नर्म लकडियों के वन अधिकाशतः हिमालय पर्वतों पर पाये जाते हैं जिनमें लकडी काटने और यातायात की कठिनाइयों के कारण इस लकड़ी से रासायनिक लुब्दी बनाने के काम में कठिनाई पड़ती है।

कई मिलों में सबाई, भावर, मूँज, हाथी घास आदि का प्रयोग कागज बनाने मे किया जाता है। उत्तम प्रकार का कागज बनाने के लिए सबाई घास का भी उपयोग किया जाता है। बाँस से भी लुब्दी बनाई जाती है। बाँस का उत्पादन आसाम, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और बिहार में होता है। बाँस से लुब्दी बनाने में सबसे बड़ा लाभ यह है कि बाँस के एक पेड़ को दुबारा काटना चार वर्ष के बाद ही सभव हो जाता है जब कि कई लकडियाँ तो ऐसी हैं जो कि ६० वर्ष बाद ही दुबारा काटी जा सकती है। औसत रूप में एक टन कागज बनाने के लिए लगभग २·३८ टन बाँस की आवश्यकता होती है। सबाई घास की अपेक्षा बाँस से तैयार हुई लुब्दी मात्रा में अधिक और दाम मे सस्ती पड़ती है किन्तु बाँस का कागज सबाई घास के कागज की अपेक्षा मामूली और खुरदरा होता है। आसाम में एक कारखाने के अतिरिक्त प्रतिदिन १०० टन बाँस की लुब्दी बनाने की एक और मिल निर्माणाधीन है। १५००० टन वार्षिक क्षमता वाला लुब्दी का कारखाना सूरत में भी स्थापित किया जा रहा है। १०० टन लुब्दी प्रतिदिन बनाने वाला एक कारखाना केरल में मैसूर में

अखबारी कागज के उत्पादन में सलाई की लकड़ी का प्रयोग किया जा रहा है। यूक्लिप्टस, वैटल और शहतूत आदि की लकड़ी की जाँच-पड़ताल की गई है और उसे कागज बनाने के उपयुक्त पाया गया है। यूक्लिप्टस की एक किस्म ब्लूगम (Blue Gum) के पेड़ ?,००० एकड़ में और वैटल के पेड़ मद्रास में २,४०० एकड़ में हैं। ब्लूगम का पेड़ १५ वर्षों में तैयार हो जाता है, उससे प्रति एकड़ ५० टन लकड़ी प्राप्त होती है और वैटल का पेड़ १० वर्ष में ही पूरा हो जाता है किन्तु इससे २० टन प्रति एकड़ ही लकड़ी प्राप्त होती है। शहतूत का पेड़ ७ से १० वर्षों में ही तैयार हो जाता है।
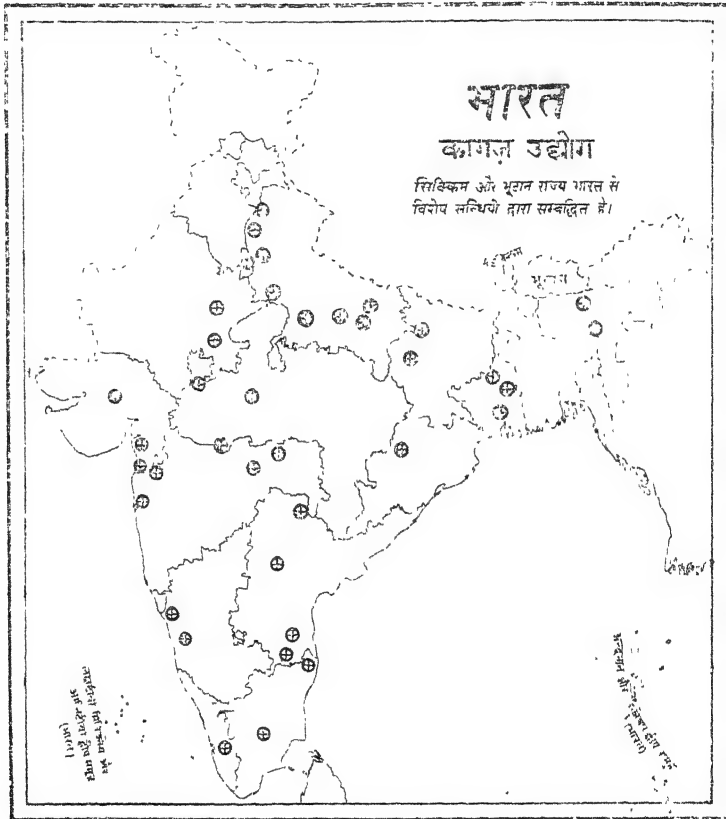
चित्र १७७. भारत में कागज उद्योग

कागज और लुब्दी बनाने के लिए गन्ने की छोई (Bagasse) का प्रयोग किया जा सकता है। मामूली कागज तैयार करने के लिए कपड़े के गूदड़, सन व पटुआ, पटशन का शेषांश, रद्दी कागज, चिथड़े आदि का भी प्रयोग किया जाता है। इन सभी वस्तुओं को पीस कर और उबाल कर रासायनिक पदार्थों द्वारा कागज की लुब्दी के योग्य मुलायम बना लिया जाता है। इस लुब्दी को पानी में मिलाकर बहुत

पतले बने हुए तारों के परदों के बीच मे बहाया जाता है। जब पानी बह जाता है तो कागज की एक पतली तह रह जाती है। यह गीला कागज एक मशीन में डालकर सुखाया जाता है। तब वह तैयार हो जाता है और आवश्यकतानुसार इसे काट लिया जाता है।

कच्चे माल के अतिरिक्त इस उद्योग के लिए कई रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है जिनमें मुख्य ये है :—कॉस्टिक सोडा, राल, चूना, क्लोरीन, लाहौरी नमक, गंधक, फिटकरी, विशेष प्रकार की मिट्टी, ब्लीचिंग पाउडर, अमोनियम सल्फेट, सोडा एश। इनमे से केवल गंधक और कॉस्टिक सोडा विदेशों से आयात किए जाते है, शेष यही से प्राप्त होते है।

बंगाल मे कागज उद्योग अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक केन्द्रित है क्योंकि (१) यहाँ के मिलों को आसाम से बाँस मिलने की सुविधा है इसी से लुब्दी बनाई जाती है। सबाई घास मुख्यत: मध्य प्रदेश और बिहार से प्राप्त करली जाती है। (२) कोयला बिहार क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। (३) रासायनिक पदार्थ कलकत्ता के औद्योगिक क्षेत्र से तथा घनी जनसख्या और छापेखाने तथा दफ्तरों की अधिकता से इस क्षेत्र मे कागज की माँग भी अधिक है। (४) घनी जनसंख्या के कारण मजदूर भी आसानी से मिल जाते है। इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों के कारण कागज के उद्योग के मुख्य केन्द्र पश्चिमी बंगाल मे ही है : टीटागढ, रानीगंज, नैहाटी, कलकत्ता और चन्द्रहाटी।

उत्तर प्रदेश—कागज के उद्योग में दूसरा स्थान उत्तर प्रदेश के मिलो को प्राप्त है। लखनऊ के कागज के मिल सबाई घास पूर्वी क्षेत्रों से तथा सहारनपुर का मिल पश्चिमी क्षेत्रों से प्राप्त करते है। कोयला बिहार उडीसा की खानो से प्राप्त किया जाता है तथा घनी जनसंख्या के कारण मजदूर भी खूब मिल जाते है।

उड़ीसा के संबलपुर जिले में ब्रजराजनगर बाँस उत्पन्न करने वाले क्षेत्र में स्थित है और यह रायपुर की कोयले की खानों के भी पास है। बिहार के दालमिया नगर (चौद्वार) के मिल की स्थिति भी कच्चे माल और कोयले की दृष्टि से बड़ी अच्छी है।

मैसूर और **केरल** राज्यो के कागज के मिल बाँस के जंगलों के निकट हैं। जल-विद्युत शक्ति और बाजार के दृष्टिकोण से भी इनकी स्थिति अच्छी है। **मैसूर** में कागज के कारखाने भद्रावती, दादेली और ननजॉनगॉड (बेलागुला) में तथा **केरल** में पुन्नालूर मे है।

महाराष्ट्र व गुजरात के मिलों की स्थिति कोयला और कच्चे माल दोनों ही दृष्टि से विशेष लाभदायक नही है। यहाँ लकड़ी की लुब्दी विदेशों से मँगवाई जाती है। बाँस कनारा व सूरत जिलों से प्राप्त किया जाता है। यहाँ के मुख्य केन्द्र पूना, खपोली, बम्बई, बलारपुर और अहमदाबाद हैं।

पंजाब में कागज के कारखाने फरीदाबाद, जगाधारी तथा यमुनानगर में; **आंध्र प्रदेश** में राजमहेंद्री, सिरपूर और कागज नगर में तथा **मध्य प्रदेश** में भोपाल और नीपानगर में है। नीपानगर में अखबारी कागज बनाने का कारखाना है।

हाथ कागज उद्योग (Hand made Paper Industry)

भारत के अनेक भागों में अभी भी फटे-पुराने चिथड़े, रद्दी कागज, जंगली

छालें, जूट, रस्सियाँ, मूंज, जूट की डंडियाँ आदि से कागजियों द्वारा लघु उद्योग के रूप में कागज बनाया जाता है। स्टेंसिल, उच्च स्तर के कागज, टिस्यू, कलात्मक दिवाल का कागज, सजावटी कागज, ड्राइंग कागज, अलबम तथा दस्तावेजों के कागज, हवाई डाक का कागज, फिल्टर पेपर आदि का उत्पादन कुटीर इकाइयों में किया जा रहा है। १९५३ में केवल २० इकाइयाँ थी, यह १९६३ में ११० हो गई तथा कागज का उत्पादन और मूल्य इस अवधि में २०० टन तथा ४ लाख रुपये से बढ़कर १,४०० टन तथा २७.५ लाख रुपये हो गया। इस कागज के निर्यात से लगभग ५ लाख रुपये मिलते हैं और कुटीर उद्योग मे ५,००० व्यक्तियों को रोजगार मिलता है।

उद्योग की समस्याएँ

(१) कागज के कारखानों मे अधिकांशतः पुराने यंत्रों का ही उपयोग हो रहा है। आजकल कुछ कारखानों म आधुनिकीकरण के लिए पर्याप्त पूँजी लगाई गई है, क्योंकि उत्पादकों ने यह अनुभव किया कि आधुनिक यत्रों से पूरा लाभ उठाने के लिये कारखानों की उत्पादन क्षमता में अधिकतम सीमा तक वृद्धि करनी होगी।

(२) अभी भी कारखानों के अधिकांश यंत्र तथा कागज निर्माण मे प्रयोगित वस्तुओं का आयात करना पड़ता है, इसलिए हमारे इंजीनियरिंग उद्योग को जल्दी से जल्दी इन कारखानो के उपयोग में आने वाले यंत्रों का निर्माण करना चाहिए।

(३) कच्चे माल की भी कमी है।

दियासलाई उद्योग (Match Industry)

भारत में दियासलाई का धन्धा कुटीर उद्योग और कारखाना उद्योग दोनो ही प्रकार का है। इस उद्योग का विकास भारत मे १९२२ के बाद से ही हुआ है जब कि दियासलाई पर लगने वाले आयात कर को दुगना कर दिया गया था। इसके पूर्व अपनी आवश्यकतानुसार दियासलाइयाँ विदेशों से मुख्यतः स्वीडेन व जापान से आयात की जाती थी। १९२२ में आयात कर लग जाने से देश मे ही विदेशी पूंजी से (मुख्यत स्वीडिश) इस उद्योग की प्रगति होने लगी। स्वीडेन निवासियों ने **वेस्टर्न इंडिया मैच कम्पनी** के नाम से भारत में कई कारखाने खोले। ये कारखाने क्रमशः बरेली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, धुबरी आदि स्थानों मे स्थापित किये गये। स्वीडेन के इन कारखानो से देश की ८०% मांग की पूर्ति होती है। सन् १९२८ में इस उद्योग को सरकार की ओर से संरक्षण दिया गया। तभी से उद्योग की नीव मजबूत हो गई है।

१९५६ मे दियासलाई बनाने वाली फैक्ट्रियों की संख्या २३४ थी और इनकी उत्पादन क्षमता ३५३ लाख ग्रॉस बक्सों की (जिसमे ६० तीलियों वाले ५० ग्रॉस बक्सों के प्रत्येक की ७ लाख पेटियाँ हैं) थी। यह संख्या बढ़कर १९६१ में क्रमशः ४३९ और ४५.३ लाख ग्रॉस बक्स हो गई। वास्तविक उत्पादन १९५६ में ३४१ लाख बक्स (६० तीलियों वाले से) बढ़कर १९६१ में ३७५ लाख बक्स का हो गया। तृतीय योजना काल म इनकी उत्पादन क्षमता तथा वास्तविक उत्पादन क्रमशः ४५३ लाख और ४२० ला० ग्रॉस बक्सों का होगा। इसके लिए १६८,००० टन लकड़ी, ३,८०० टन पोटेशियम क्लोरेट, ४३० टन गधक, २९० टन फास्फोरस, ४,६०० टन माचिस

का कागज तथा ७७० टन ग्लू की आवश्यकता होगी। इनमें से केवल गंधक और फास्फोरस का ही आयात करना पड़ेगा अन्य पदार्थ देश में ही उपलब्ध होंगे।

इस उद्योग में २५,००० श्रमिक लगे हैं तथा ५ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित है।

उद्योग का स्थापन—दियासलाई बनाने का उद्योग मुख्यतः पश्चिमी बंगाल और मद्रास में केन्द्रित है। इन राज्यों में अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं। दियासलाई बनाने के लिए निम्न बातों की आवश्यकता पड़ती हैं :—
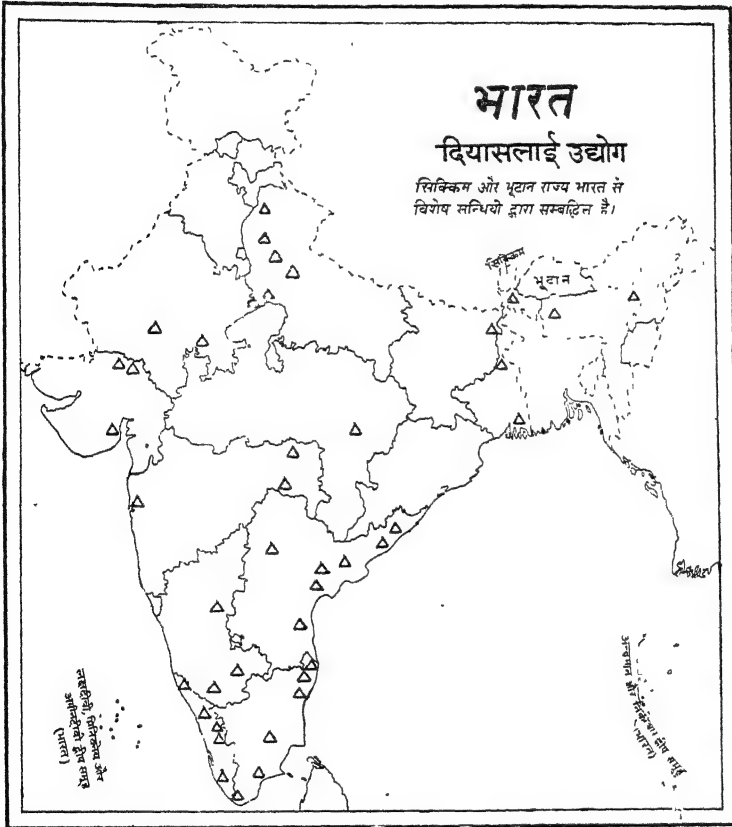
चित्र १७८. भारत में दियासलाई उद्योग

(१) कच्चे माल के अन्तर्गत मुलायम लकड़ी की आवश्यकता होती है जो शीघ्र आग पकड़ सके तथा जिसके पतले-पतले पर्त बनाये जा सकें। इस कार्य के लिए धूप, मरकट, सेमल, सुन्दरी, सलाई आदि लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। सुन्दरी बंगाल में, सेमल भाबर और तराई में, आम के वृक्ष महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में तथा पपीता अंडमान में और धूप, दीदू व बकोता आदि लकड़ियाँ भी अंडमान से प्राप्त की जाती हैं।

(२) दियासलाई बनाने में पोटेशियम क्लोरेट, पोटास और पराफीन रसायनों की भी आवश्यकता लकड़ी पर बिंदु बनाने और फासफोरस मिश्रण, घर्षण पृष्ठ आदि के लिए पड़ती है। ये सब प्रायः बाहर से मँगवाये जाते हैं।

(३) देश की घनी जनसंख्या होने से न केवल उद्योग के लिए सस्ते और पर्याप्त मजदूर मिल जाते है बल्कि दियासलाई की माँग भी अधिक रहती है। दियासलाई के कारखाने मुख्यतः बम्बई, मद्रास व प० बङ्गाल में स्थित हैं। प० बंगाल इनमें सबसे मुख्य है क्योंकि : (i) यहाँ सुन्दरवन से जैनवा नामक ताजी लकड़ियाँ वर्ष के अधिकांश समय में मिलती रहती है अतः अधिक समय तक लकड़ी इकट्ठा करके रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उत्तम जल-मार्गों के कारण लकड़ी के यातायात में कम व्यय पड़ता है। स्वीडेन से ऐस्पेन तथा नीकोबार और अंडमान से धूप, पपीता आदि की लकड़ियाँ भी कलकत्ता बन्दरगाह द्वारा सुविधापूर्वक मँगवाई जा सकती है। (ii) पोटेशियम क्लोरेट, फास्फोरस आदि रासायनिक पदार्थ कलकत्ता मे प्राप्त हो जाते है।

(iii) कोयला भेरिया की खानों से मिल जाता है।

(iv) बिहार-उड़ीसा राज्यों से सस्ते मजदूर मिल जाते हैं।

यहाँ के मुख्य केन्द्र २४ परगना मे हैं। कलकत्ता में अधिक दियासलाइयाँ बनाई जाती हैं।

गुजरात महाराष्ट्र में कारखानों के लिए लकड़ियाँ पंचमहल के निकटवर्ती जंगली क्षेत्रों से मिल जाती है। यहाँ सेमल, सलाई व आम की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। स्वीडेन से 'एस्पेन' लकड़ी भी आयात की जाती है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बम्बई, अहमदाबाद, थाना, पूना, अम्बरनाथ, पेटलाद (बड़ोदा), नांदा आदि हैं।

मद्रास में अधिकांश कारखाने रामनाथापुरम जिले में हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र चिंगलपुट, रामनाथापुरम, तिरुनलवैली और मद्रास आदि हैं।

दियासलाई के अन्य कारखाने **उत्तर प्रदेश** में मेरठ और बरेली; **मैसूर** में शिमोगा; **केरल** राज्य में त्रिवेन्द्रम; **आंध्र प्रदेश** मे हैदराबाद और वारंगल; आसाम में धुबरी; **राजस्थान** में कोटा और **मध्य प्रदेश** में बिलासपुर में हैं।

भारत में दियासलाई बनाने वाले कारखानों को चार श्रेणियों में बांटा गया है :—

ए श्रेणी की फैक्ट्रियाँ इनकी सख्या १९६१ मे ६ थी और उत्पादन २३८ लाख ग्रॉस पेटियाँ (६० सलाई वाली)।

ब श्रेणी की फैक्ट्रियाँ इनकी संख्या	,,	८५	,,	११·२	,,
ग श्रेणी की फैक्ट्रियाँ / **घ** श्रेणी की फैक्ट्रियाँ	,,	३४८	,,	२३·५	,,
योग		४३९		३७५·७	,,

देश में दियासलाई का उत्पादन कम होने से इन्हें विदेशों से आयात किया जाता है। यह आयात स्वीडेन, नार्वे, जापान, कनाडा, प्रभृति देशों से होता है। १९५६-५७ में ४७५ ग्रॉस पेटियाँ तथा १९६१ में ७७ ग्रॉस पेटियाँ आयात की गई। इस अवधि में निर्यात की मात्रा क्रमशः २ ग्रॉस पेटियाँ और ५,७०४ ग्रॉस पेटियाँ हैं।

भारत में रबड़ उद्योग (Rubber Industry)

भारत में रबड़ की बनी वस्तुएँ तैयार करने का उद्योग अपेक्षाकृत नया है। कदाचित भारत ही एक मात्र देश है जहाँ कच्चे रबड़ का उत्पादन और आधुनिक ढंग पर रबड की वस्तुएँ तैयार करने के उद्योग एक साथ ही प्रतिष्ठित हैं। भारत में रबड़ चढ़ा कपड़ा तैयार करने वाले सर्व प्रथम कारखाने ने १९२० में काम करना आरम्भ किया। इसके उपरान्त केबिल बनाने का एक कारखाना स्थापित किया गया। १९२८ में तिरवांकुर की सरकार ने त्रिवेन्द्रम में विभिन्न प्रकार की रबड़ की वस्तुओं का एक कारखाना खोला। इस पथ पर प्रथम महत्वपूर्ण कदम १९३३ में उठाया गया। इस वर्ष मैसर्स **बाटा शू कम्पनी** की स्थापना हुई। अगले ही वर्ष १९३४ में **जार्ज स्पेन्सर मोल्टन एण्ड कम्पनी** की स्थापना हुई। अगले ही वर्ष १९३४ में जार्ज स्पेन्सर मोल्टन एण्ड कम्पनी की इण्डियन सब्सीडियरी कं० का जन्म हुआ। जार्ज स्पेन्सर मोल्टन एण्ड कम्पनी ब्रिटेन मे मशीन द्वारा रबड़ की वस्तुएँ तैयार करने वाली प्रमुख कम्पनी थी। भारत में टायर उद्योग १९३५-३६ में आरम्भ हुआ। उस वर्ष पश्चिमी बंगाल में **मैसर्स डनलप** का एक कारखाना खुला। यहाँ प्रसंगवश यह उल्लेख करना उचित न होगा कि टायर उद्योग एक बहुत ही विशिष्ठ ढंग का उद्योग है और वह अनवरत तथा स्थायी प्रगति तभी कर सकता है जब इस दिशा में निरन्तर अनुसंधान कार्य होता रहे। टायर उद्योग के इतिहास में १९३५-३६ के बाद १९३८-४० का विशेष महत्व है जब **मैसर्स फायरस्टोन** ने बम्बई में टायर बनाने का एक कारखाना स्थापित किया। द्वितीय महायुद्ध के इस उद्योग को विशेष बल दिया है।

भारत में ५७ कारखाने रबड़ की वस्तुएँ तैयार कर रहे हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की रबड़ की वस्तुएँ उदाहरणार्थ मोटर गाडियों, टैक्सियों, हवाई जहाजों तथा ट्रेक्टरों के टायर-ट्यूब, रबर के जूते, कचकडा, औद्योगिक पट्टे, पंखों के पट्टे, रबड़ नलियों, मुलायम-स्पंज और रबड़ चढ़े कपड़े आदि तैयार होती हैं।

अनुमान है कि रबड़ उद्योग में लगभग १३ करोड़ रु० की पूंजी लगी हुई है और यह उद्योग लगभग २७३७० व्यक्तियों को जीविका प्रदान कर रहा है।

भारत में रबड़ उद्योग द्वारा निम्न वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है :—

(१) **मोटर गाड़ियों के टायर और ट्यूब**—इनको बनाने के ४ कारखाने है। इनकी उत्पादन क्षमता १९·०८ लाख टायर और १९·६ लाख ट्यूब बनाने की है। इसमें से प्रमुख उत्पादक—फायर स्टोन टायर्स एण्ड रबड़ कम्पनी बम्बई; डनलप कम्पनी, शाहागंज; गुडइयर टायर्स, वल्लभगढ़ (पंजाब) और सीट टायर्स लि० बम्बई है।

(२) **बाइसिकलों के टायर और ट्यूब**—इनको बनाने वाले ९ कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता क्रमशः १५१·१ और १६६·८ लाख टायर और ट्यूबों की है। प्रमुख उत्पादक ये हैं : डनलप कं० शाहागंज; नेशनल रबड़ कं० कलकत्ता;

एसोशियेटेड रबड़ एण्ड प्लास्टिक कं०, कलकत्ता; प्रीमियर रबड़ एण्ड केबल्स वर्क्स, बम्बई; रूबी रबड़ वर्क्स, चंगाना चेरी (केरल); डनलप रबर कं० अम्बाटूर (मद्रास)।

(३) **अन्य प्रकार की रबड़ की वस्तुयें**—इनके अन्तर्गत, औद्योगिक पट्टे (Conveyor belts), कृत्रिम रबड़ के पलंग, वस्त्र, मुलायम स्पज, नलियों, पखों के पट्टे, रबड़-चढ़े कपड़े आदि का उत्पादन होता है। इन्हें तैयार करने वाले ८ कारखाने हैं। ये कारखाने इस प्रकार है :—पयूनर कम्पनी मदुराई; स्वास्तिक रबड़ प्रोडक्टस, किर्की (पूना); इम्पीरियल टायर्स एण्ड रबर कं० विकरोली (बम्बई); मद्रास रबड़ फैक्ट्री (मद्रास); इंडियन रबड़ मैन्यूफैक्चर, हावड़ा; रूबी रबड़ वर्क्स बंगलौर; प्रीमियिर बैल्टिंग कंपनी, कोट्टायम; और ईस्ट इंडिया रबड़ कपनी।

नीचे की तालिका में रबड़ उद्योग द्वारा उत्पन्न की जाने वाली विभिन्न वस्तुओं सम्बन्धी आंकड़े दिये गये हैं :—

रबड़ उद्योग

वस्तुयें	इकाई	१९५६	१९६१	१९६२
रबड़ के जूते	लाख जोड़े	३६१	४५१	४९७
रबड़ चढ़ा सामान, खिलौने, गुब्बारे आदि	लाख दर्जन	२६०	२५६	३,०७८ (हू० कि० ग्राम)
मोटर गाड़ियों के टायर	(०००)	९३८	१,५६२	१,७०९
साइकलों के टायर	(०००)	६,३२०	११,३४६	११,८३९
ट्रैक्टरों के टायर	(संख्या)	३०,७६८	४८,४५६	५६,५५६
वायुयान के टायर	,,	३,६६०	२,६५२	३,०६४
गाड़ी-ठेले के टायर	(००० फुट)	२९०	४०	४८ हू०मी०
मोटरों के ट्यूब	(०००)	९१८	१,४८४	१,५२२
साइकलों के ट्यूब	(०००)	६,३७३	१२,६७४	११,५७४
ट्रैक्टरों के ट्यूब	(संख्या)	३०,७२०	५३,७२४	५३,७४८
वायुयान के ट्यूब	(,,)	२,२९२	२,१४८	२,९४०
रबड़ के नल	(०००)	२४८	२५०	२८४
रेलों का रबड़ का सामान	(०००)	१,७५६	१,०७८	१,०७८
एबोनाइट	(००० पौंड)	२१०	१६७	१,३५६ हू०कि०
वाटर-प्रूफ कपड़े	(००० गज)	२,५७४	४,७३२	४,२५९
रबड़ के स्पज	(००० पौंड)	४,७३२	१,५१७	१,६८४

उद्योग व्यापार पत्रिका, सितम्बर १९६४, पृ० २०३

इस उद्योग में काम आने वाले कच्चे माल में गंधक और काले कार्बन का प्रमुख स्थान है। इनके अतिरिक्त जिंक आक्साईड, विशेष प्रकार की मिट्टियों तथा बेराइट्स, टायरकार्ड (Tyre cord), वीडवायर (Beadwire) एक्सलेरैटर (Accelerators), एन्टी-ऑक्सीडेन्ट्स (Anti-Oxidents) तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से कुछ विदेशों से मँगाये जा रहे हैं।

भारतीय रबड़ उद्योग प्रतिवर्ष ६०,००० टन कच्चा रबड काम में ला रहा है, इसके विपरीत देश में १६६१ में केवल २६,६६२ टन कच्चे रबड़ का उत्पादन होता है। अतः ३०,६८५ टन विदेशों से आयात किया गया। बागान आयोग के अनुसार १६६५ तक प्राकृतिक रबड़ की मांग ११०,००० टन तक पहुँच जायेगी जबकि रबड़ का उत्पादन ४५,००० टन तक ही पहुँचेगा। अतः रबड़ का उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिकाधिक संख्या में वृक्ष लगाये जायेंगे तथा संश्लेषित रबड़ तैयार करने के लिए बरेली के निकट एक कारखाना स्थापित किया जा रहा है। सन् १६६१ के अंत तक रबड़ के वृक्ष ३,४८,१२१ एकड़ भूमि पर लगे हुए थे जिनसे २६,६६२ टन प्राकृतिक प्राप्त हुआ। १६७५ तक प्राकृतिक रबड़ की मांग पूरी करने के लिए अतिरिक्त वृक्ष लगाना अनिवार्य होगा जिससे २०,००० ठन रबड़ प्राप्त हो सके। यह तभी संभव है जब कि प्रति एकड़ १०० पौंड उत्पादन के हिसाब से ३ लाख एकड़ भूमि पर अधिक उपज देने वाला रबड़ लगाया जाय।

चमड़ा उद्योग (Leather Industry)

हमारी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में चमड़ा और चमड़े की वस्तुओं के उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में जितने पशु हैं उतने पशु संसार के किसी देश में नहीं है। हमारे यहाँ प्रतिवर्ष ५०० लाख चाम और खालें होती है।

चमड़ा उद्योग का वर्गीकरण निम्न चार मुख्य विभागों में किया जा सकता है :—

(१) चाम और खालों का कमाना।
(२) जूते बनाना।
(३) यात्रा का सामान आदि बनाना।
(४) मशीनों के पट्टे और उद्योगों में काम आने वाली अन्य चीजों तथा पिकर, पिकिंग, बैण्ड और रोलरों के खोल आदि का निर्माण।

चमड़ा कमाने के उद्योग में निम्न चार वर्ग हैं :—

(i) **गाँवों से पुराने ढङ्ग से चमड़ा कमाने का उद्योग** (Village tanners)—इस धंधे मे व्यवस्थित रूप से लगे हुए लोगों की संख्या का निश्चित अनुमान नहीं है पर भारत के प्रत्येक गाँव में चर्मकारों के घर होते है जो इस धंधे को कुटीर उद्योग के आधार पर करते है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ५०० ग्रामीण कारखानों में लगभग १६० से १७० लाख टुकड़े गाय-भैंस के चमड़े के और २० से ४० लाख टुकड़े भेड़-बकरी के गाँवों में फैले हुए चर्मकारों द्वारा प्रति वर्ष कमाये जाते हैं।

(ii) **चीनी क्रोम चमड़ा पैदा करने वाले** (Chinese Chrome tanners)—भारत में लगभग २५० क्रोम चमड़ा तैयार करने वाले कारखाने (tanneries) हैं जो

सभी चीनी लोगों के नियंत्रण और व्यवस्था में है। ये अधिकतर कलकत्ता के टांगरा क्षेत्र में स्थित है। जूतों के ऊपरी भाग में लगने वाला क्रोम-चमड़ा इन टेनरीज में तैयार किया जाता है। इनमें लगभग १२५० लाख चमड़े के टुकड़े (४ करोड़ रुपये के मूल्य के) कमाये जाते है। इनमें लगभग ३,००० व्यक्ति काम करते हैं।

(iii) **ईस्ट इण्डिया कमाया चमड़ा तैयार करने वाली टैनरीज**—यह चमडा मद्रास और बम्बई स्थित अर्द्ध-कुटीर उद्योग के आधार पर चलने वाली टैनरीज में तैयार किया जाता है। **ईस्ट इण्डिया टेन्ड लेदर** के नाम से यह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रसिद्ध है। इन कुटीर उद्योगों की संख्या ५०० के लगभग है जिनमें १ करोड़ ६० लाख **स्किन** और १ करोड़ **हाइड** तैयार होते हैं। इसमें लगभग ३४,५०० व्यक्ति लगे हैं।
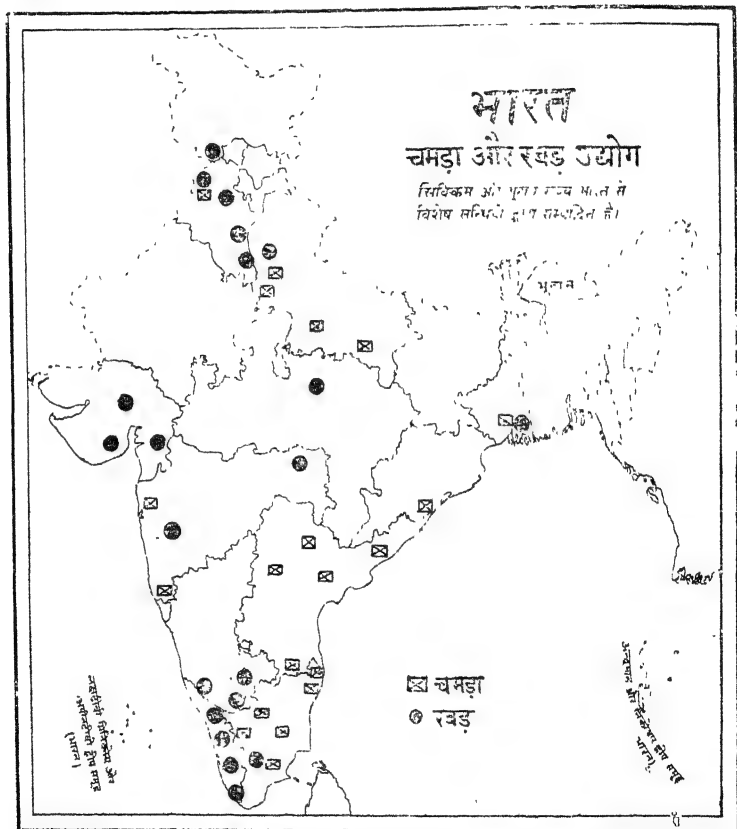
चित्र १७९. भारत में चमड़ा और रबड़ उद्योग

(iv) **यंत्रचालित टैनरीज**—इनकी संख्या लगभग ३४ के हैं जिनमें २६ बड़ी-बड़ी टैनरीज हैं। इनमें वनस्पतियों द्वारा चमड़ा कमाया जाता हैं। इनकी उत्पादन शक्ति लगभग ३२ लाख **वेजीटेबल टैंड चमड़े** और २० लाख टेंड **क्रोम** की है।

खराब हो जाती हैं और वे जगह-जगह कट जाती हैं। अनुमान है कि दोषपूर्ण ढंग से खाल उतारने के कारण प्रतिवर्ष १६ लाख रुपये की हानि होती है। जो जानवर अपने आप मरते हैं उनकी खाल उतारने में खाल में बीच-बीच में निशान तो नहीं आते लेकिन उनके साथ माँस अधिक कट आता है जिससे उनको कुछ समय तक रखने में बड़ी कठिनाई आती है। इस प्रकार जो हानि होती है वह ६० लाख रुपये तक होने का अनुमान है। यह हानि कभी-कभी ७०-८० लाख रुपये तक पहुँच जाती है।

भारत में कमाये चमड़े का क्रोम और वनस्पति से कमाये चमड़े का उत्पादन इस प्रकार है :—

	१९५०	१९५६	१९६१	१९६२
क्रोम से कमाया चमड़ा	४९,५३,०००	७४,१६,०००	७९,४०,०००	८१,११,०००
वनस्पति से कमाया चमड़ा	७४,१६,०००	१७,१३,६००	२६,९१,०००	३०,१४,४००

इस समय भारत से भेड़-बकरी की ७ करोड़ रु० की बिना कमाई खालें; ११ करोड़ रु० की कमाई खालें और ८ करोड़ रु० का कमाया चमड़ा निर्यात करते हैं।

द्वितीय योजना के आरम्भ में देश में सुव्यवस्थित टैनरीज थी जिनमें गायों और बैलों का चमड़ा कमाया जाता था। इन टैनरीज की क्षमता ३३·० लाख चमड़ा वनस्पति से कमाने और १६·७ लाख चमड़ा क्रोमपद्धति से कमाने की क्षमता थी। द्वितीय योजना काल में टैनरीज की सख्या बढ़कर ३२ हो गई और उत्पादन क्षमता क्रमशः ४४·२ लाख और १५·५ लाख हो गई।

भारत से १९६० में तैयार किया चमड़ा और खालें तथा कच्ची खालें जो निर्यात की गई उनका मूल्य क्रमशः २५·६ करोड़ और १०·१ करोड़ रुपया था। १९५७ में निर्यात का मूल्य २१·५ करोड़ और ५·९ करोड़ रुपया था। निर्यात के अतिरिक्त चमड़ा और खालें आयात भी की जाती है। १९५७ और १९६० में आयात का मूल्य क्रमशः १·१७ करोड़ और २·५ करोड़ रुपया था।

तृतीय योजना में कमाये हुए चमड़े और खालों की अतिरिक्त आवश्यकता २५ लाख और १९ लाख टुकड़े रखा गया है। यदि इसमें निर्यात भी सम्मिलित किये जायें तो कुल आवश्यकता २२० लाख और ३०० लाख टुकड़ों की होगी। इस उत्पादन को प्राप्त करने के लिए हमें २२० लाख टुकड़े कच्चे चमड़े, ३०० लाख टुकड़े कच्ची खालों; ३० से ३५ हजार टन चूना; ३५,००० हजार वाटल वृक्ष की छाल और सत्व; ३·५ लाख टन अन्य वृक्षों की छालें और ३० से ३५ हजार टन हर्ड-बहेड़ा आंवले की आवश्यकता होगी।

देश में टैनरीज का वितरण इस प्रकार है :—

राज्य	संख्या	वनस्पति से कमाने वाली वार्षिक क्षमता (००० में)	संख्या	क्रोम कमाने वाली वार्षिक क्षमता (०००)
उत्तर प्रदेश	१४	२,७९२	४	८५७
मद्रास	५	३९०	३	१६५

महाराष्ट्र	३	२४६	१	१२०
बंगाल	२	३०६	२	३३६
गुजरात	२	५३	—	—
मैसूर	१	४२	१	६०
उड़ीसा	१	२७	१	८
बिहार	१	३१७	—	—
पंजाब	१	६६	—	—
आंध्र प्रदेश	१	१२६	—	—
मध्य प्रदेश	१	१२०	—	—
संपूर्ण योग	३२	४,४२२	१२	१,५४६

जूता उद्योग (Shoe Industry)

भारत में जितना चमड़ा बनता है उसका दो-तिहाई भाग जूता बनाने के उद्योग में खपता है। यहाँ पश्चिमी ढंग के जूते बनाने के १२ कारखाने हैं जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ७० लाख जोड़ी जूते तैयार करने की है। इस उद्योग में ६ लाख व्यक्ति लगे हैं। १२ कारखानों में से ५ कारखाने उत्तर प्रदेश में, और १-१ कारखाना, पश्चिम बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मद्रास, पंजाब और मैसूर में है। पिछले कुछ वर्षों से जूतों का उत्पादन इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	पश्चिमी ढंग के	देशी जूते
	(लाख जोड़ों में)	
१९५१	२८·३६	१९·६६
१९५६	३६·२०	२९·११
१९६१	६२·२०	४४·०७
१९६२	६५·१४	५२·८४

भारत में दो प्रकार के जूते बनाये जाते हैं :—

पश्चिमी ढंग के—आक्सफोर्ड, डर्बी, अलबर्ट, न्यूकट, स्लीपर, पेशावरी, सेलिम, स्त्रियों के जूते, सैंडिल, पुलिस के जूते।

देशी ढंग के—मुंडा, नागरा, जयपुरी, जोधपुरी, उदयपुरी, मखमल-जरी की जूतियाँ, चप्पल, चट्टियाँ आदि।

भारत में चमड़े के जितने जूते बनते हैं उनका ६% बड़े कारखानों में तैयार किया जाता है। ये प्रमुख कारखाने ये हैं :—

कपूर एलन एंड कम्पनी, कानपुर।
बाटा शू कम्पनी, फरीदाबाद

मॉडल इंडस्ट्रीज, दयालबाग।
कोरोना शाहू कंपनी, बम्बई।
कर्जन शू फैक्ट्री, आगरा।
नार्दर्न इण्डिया टैनरीज, कपूरथला।

भारत से जूतों का निर्यात १९५२-५३ में १० लाख जोड़ी का था; १९५६-५७ में २५ लाख जोड़ों का तथा १९६०-६१ में २५ लाख जोडों का जिसका मूल्य क्रमश: ११७ लाख; २२६ लाख और २६७ लाख रुपये था। यह निर्यात मुख्यत: लंका, पाकिस्तान, थाईलैंड, ब्रह्मा, द० पू० एशिया, मध्य एशिया तथा ब्रिटिश पश्चिमी द्वीपों को होता है।

ततीय योजना में देश में १४०० लाख जोड़ी जूतों की आवश्यकता अनुमानित की गई है, जिसमें में ४० से ५० लाख जोड़ी निर्यात के लिए होंगी।

अध्याय ३२

उपभोक्ता उद्योग (२)

वस्त्र उद्योग (Textile Industry)

१. सूती वस्त्र उद्योग

(Cotton Textile Industry

उद्योग का एतिहासिक विकास और वर्तमान स्थिति

सूती कपड़े का उद्योग भारत में एक प्राचीन उद्योग रहा है। आज से ५,००० वर्ष पूर्व भी भारत में उत्तम कपड़ा बुना जाता था। सिंध की घाटी में ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व के हड़प्पा और मोहनजोदड़ो स्थानों की खोज ने इस बात को प्रमाणित किया है। मिस्र में ईसा से २,००० वर्ष पूर्व पिरामिडों में मृत-शरीर भारतीय मलमल में लिपटे हुए पाये जाते हैं। प्राचीन रोम में भारतीय मलमल और छींट के वस्त्र पहनने में रोमन महिलायें गौरव समझती थीं। ढाका की मलमल से यूनानी भी परिचित थे जिसे वे गंगा के देशवाली (Gangetica) कहते थे। वास्तव में ढाका की मलमल को इतना पंसद किया जाता था कि इसे विदेशियों ने अनेक नाम दे रखे थे। उदाहरणार्थ-'प्रवाहित-जल' (Running water), 'वायुवितान' (Woven Air) तथा 'सांध्य सीकर' (Evening Dew)।[1] भारतीय सूती वस्त्र के उद्योग के सम्बन्ध में मुगल यात्री ट्रैवर्नियर लिखता है कि "भारतीय वस्तुऐं इतनी सुन्दर थीं कि वे तुम्हारे हाथ में हैं यह ज्ञान भी नहीं होता था। यह अति कोमलता से काते हुए तागों से बुना जाता था तथा एक पौंड रुई में २५० मील लम्बा धागा बुना जाता था।" यह मलमल ४०० नम्बर से भी ऊपर के सूत की बनाई जाती थी। इससे एक युवा स्त्री का शरीर ढक जाता था और यह मलमल का टुकड़ा अंगूठी में से निकाला जा सकता था।[2] आश्चर्य तो यह है कि यह सारा उद्योग उस समय हाथ करघों द्वारा ही होता था। यह उद्योग १८ वीं शताब्दी तक चलता रहा, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति से इसको बड़ा धक्का पहुँचा। मशीन युग के बड़े उत्पादन ने इस उद्योग को और भी जर्जर बना दिया। भारत में रेलों का विकास तथा पूर्व-पश्चिम के बीच-स्वेज मार्ग का खुलना भारत के इस उद्योग के लिए अंतिम आघात था। इन कारणों से भारत का गौरवशाली उद्योग अतीत के गर्भ में विलीन हो गया। इस सम्बन्ध में श्री बुकानन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त

---

1. Birdwood : Industrial Art of India, p.259.
2. D. H. Buchanan : Development of Capitalistic Enterprise in India, 1934, p. 195.

किये हैं : "भारत के लिए सूती उद्योग अतीत का गौरव, भूत और वर्तमान का संकट और सदैव की आशा रहा है।"[3]

आधुनिक ढंग का कारखाना पहले १८१८ में कलकत्ता में खोला गया किंतु यह प्रयास असफल रहा। १८५१ में बम्बई में भी एक मिल खोला गया। १८५४ में पहला भारतीय मिल कवासजी डावर द्वारा स्थापित किया गया। इसके पश्चात १८६१ तक १२ और मिल खुल चुके थे। १८६१-१८६५ में अमरीकन गृह युद्ध के कारण भारत से जब रुई का निर्यात इंगलैंड को होने लगा तो इस व्यापार में काफी लाभ हुआ। इसी लाभ से अनेक नई मिलें खोली गई। १९०० में १९३ मिल खुल चुके थे जिनमें १½ लाख श्रमिक काम करते थे। १९०५ में स्वदेशी आन्दोलन और १९१४ में महायुद्ध आरंभ हो जाने से इस उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला। इस समय देश में २७२ मिलें थी जिसमें १½ लाख श्रमिक कार्य करते थे। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ३७९ मिलें थी जिनमें १ करोड़ तकुए और २ लाख कर्घे लगे थे तथा जिनके उत्पादन से देश की मांग का लगभग ६४% पूरा होता था। शेष २७% हाथ कर्घों से और ९% आयात द्वारा। द्वितीय महायुद्ध काल में विदेशों से कपड़े का आयात कम हो जाने से उद्योग को फिर बड़ा प्रोत्साहन मिला। १९४५ में ४१७ मिल हो गए जिनमें १·०२ करोड़ तकुए तथा २ लाख करघे थे। इनमें लगभग ३ लाख श्रमिक कार्य कर रहे थे। इनका उत्पादन १६८ करोड़ पौंड सूत और ४८७ करोड़ गज कपड़े का था। १९४७ में विभाजन के फलस्वरूप देश के १५ कारखाने और रुई उत्पादक ७३% क्षेत्र पाकिस्तान को चले जाने के फलस्वरूप ४०२ मिलें भारत में रह गई तथा कपास की कमी होने से कपड़े का उत्पादन भी केवल ४३९ करोड़ गज ही रह गया। इस कमी को पूरा करने के लिए योजना में निश्चित लक्ष्य निर्धारित किये गये। १९५१ में भारत में ४५३ मिलें थीं जिनमें ११ लाख तकुए और २ लाख कर्घे लगे थे तथा ७½ लाख के लगभग श्रमिक कार्य कर रहे थे। १९५६ में १२१ कताई करने वाले तथा २९१ कताई और बुनाई दोनों ही करने वाले कुल मिला कर ४१२ मिल थे जिनमें १२०·५ लाख तकुए और २·०३ लाख कर्घे लगे थे। १९६३ में मिलों की संख्या २११ और २८७ तथा तकुओं की संख्या १४०·३६ लाख और कर्घों की संख्या १·९९ लाख थी।

नीचे की तालिकाओं में इस उद्योग का क्रमिक विकास बताया गया है[4] :—

वर्ष	मिलों की संख्या	तकुये (००० में)	करघे (००० में)	उत्पादन सूत (लाख पौंड)	कपड़ा (लाख गज)
१८७९–८०	५६	१,४०८	१३·८	—	—
१८८९–९०	१९३	२,९३५	२२·१	—	—
१९०१	—	४,८४१	४०·५	५,७३०	१,२००
१९११	२७२	६,०९५	८५·८	६,२५०	२,६७०
१९२१	—	७,२७८	१३३·५	६,९४०	४,०३०

3. D. H. Buchanan, Ibid, p. 195.
4. India 1963, p. 264.

१९३१	३४८	९,०७८	१७५·२	९,६६०	६,७२०
१९४१		१०,०२६	२००·२	१५,७७०	१०, ९३०
१९४७	४०८	१०,३५४	२०३·०	१२,९६०	३७,६२०

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इस उद्योग का विकास इस प्रकार रहा है :—[५]

वर्ष	कताई मिलें संख्या	कताई मिलें तकुए (००० में)	मिश्रित मिलें संख्या	मिश्रित मिलें तकुए (००० में)	साधारण कर्घे (००० में)	स्वचलित कर्घे (००० में)	कुल मिल	कुल तकुए (००० में)
१९४८	८८	१५६६·३	२६८	८५०२·२	१९२·७	—	२५६	१०,०६८·६
१९५१	१०३	१८४३·०	२७५	९१५६·१	१९४·५	—	३७८	१०,९९९·२
१९५६	१२१	१८५७·४	२९१	१०,१९३ ७	२०२·९	१२·०	४१२	१२,०५१·२
१९५७	१४४	२१९४·७	२९२	१०,२९७·०	२००·९	१३·१	४३६	१२,४९१·१
१९५८	१७५	२५५६·६	२९५	१०,४९७·४	२०१·२	१३·४	४७०	१३,०५४·०
१९५९	१८८	२८०७·६	२९४	१०,५९८·८	२०१·०	१४ ८	४८२	१३,४०६·४
१९६०	१८६	२९३०·७	२९३	१०,६१८·७	२००·२	१५·६	४७९	१३,५४९ ५
१९६१	१९२	३०५६·४	२८७	१०,६६८·०	१९८·७	१६·३	४७९	१३,६६३·३
१९६२	२११	३११८·१	२८५	१०,६४५·३	१९९·४	१८·२	४८१	१३,८३३ ४
१९६३	२११	३३४२·२	२८७	१०,६९३·७	१९९·८	२०·२	४९८	१४,०३६·०

सूत और वस्त्र का उत्पादन

पिछले कुछ वर्षों में सूत और कपड़े का उत्पादन इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	सूत पौंड (करोड़ में)	सूत कि० ग्राम	कपड़ा पौंड	कपड़ा कि० ग्राम	कपड़ा गज (करोड़ में)	कपड़ा मी०
१९४६	१३६·७	६२·०	९४·१	४२·६	३९०·८	३६६·०
१९४८	१४४·७	६५·६	१०२·९	४६·७	४३१·९	३९४·९
१९५१	१३०·३	५९·१	९६·१	४३·६	४०७·६	३७२·७
१९५६	१६७·१	७५·८	१२०·०	५४·४	५३०·६	४८५ ५
१९५८	१६८·५	७६·४	११५·३	५२·३	४९२·६	४५०·५
१९५९	१७२·२	७८·१	११६·३	५२·७	४९२···	४५०·३
१९६०	१७३·७	७८·७	११६·१	५२·६	५०४·८	४६१·६
१९६१	१९०·१	८६·२	१२४·६	५६·५	५१४·१	४७०·१
१९६२	१८९·४	८५·९	१२०·९	५४·८	४९८·७	४५६·०

मिलों में सूती कपड़े का उत्पादन कुछ सीमा तक तो उपलब्ध मशीनों के अनुसार और कुछ सीमा तक देश में उपलब्ध रुई के अनुरूप होता है। देश की रूई का अधिकांश भाग मोटे और मध्यम श्रेणी के कपड़े के उत्पादन के लिये बहुत ही

५. उद्योग व्यापार पत्रिका, जनवरी, १९६४, पृ० ६४६-६४७।

उपयुक्त है। भारत में सूती कपड़े की मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा है। अधिकांश सूत ३० नम्बर से कम का होता है। ३० नम्बर से ऊपर का सूत तो बहुत ही कम उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में अच्छी और लम्बे रेशे वाली कपास का उपयोग कम किया जाता है। केवल बम्बई और अहमदाबाद की मिलों में जो ४० नम्बर से भी अधिक का बारीक सूत काता जाता है वह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मिस्र तथा पाकिस्तान से आयात की गई कपास से तैयार किया जाता है। अब ऊँचे नम्बर का सूत भी भारतीय मिलों में तैयार किया जाने लगा है। इससे महीन कपड़े का निर्माण किया जाता है। अधिकांशतः हमारी कपास मोटे रेशे वाली होने के कारण केवल मोटा और मध्यम श्रेणी का कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है।

मोटे तौर पर देश के कुल सूत के उत्पादन का ४५% ३० नम्बर से ऊपर का तथा कुल वस्त्रों का २५% उत्तम किस्म का होता है। बम्बई और अहमदाबाद दोनों मिलकर देश के कुल उत्पादन का ९०% उत्तम कपड़ा और ९७% अति उत्तम (Superfine) तथा ८०% ३० नम्बर से ऊपर का सूत बनाते हैं। शेष उत्पादन दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास और मैसूर से प्राप्त होता है। दिल्ली, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में मुख्यतः मोटा कपड़ा बनाया जाता है। मध्य प्रदेश में ३० नम्बर से कम के सूत का उत्पादन १००%; उत्तर प्रदेश मे ९५% और दिल्ली मे ९८% होता है।

अब कुछ वर्षों में भारतीय मिलों के उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। मोटे और मध्यम श्रेणी के कपड़े का उत्पादन क्रमशः घटने लगा है और उत्तम श्रेणी के कपड़े में वृद्धि हुई है क्योंकि छोटे रेशे वाली कपास का उत्पादन घटने लगा है, अधिकतर मिलों में अमरीकी कपास काम में लाई जाने लगी है और उपभोक्ताओं की रुचि मोटे कपड़ों की अपेक्षा महीन, ब्लीच और मरसराइज्ड तथा छपे कपड़े की ओर उन्मुख होने लगी है।

भारतीय मिलों में लट्ठा, छींटें, साड़ियाँ, पोपलीन, क्रेप, ट्विल, धोतियाँ, चादरें, मलमल, वायल, डोरिया, कमीज-पेंट और कोट के उपयुक्त कपड़े, ड्रिल, खाकी, सैटीन, गैबरडीन, कार्ड्रराय, दोसूती कपड़ा बनाया जाता है।

१९६१ और १९६२ में विभिन्न प्रकार के कपड़ों का उत्पादन इस प्रकार था—

	१९६१	१९६२
मोटा कपड़ा	७,६१० ला० मीटर	७,९१० ला० मीटर
मध्यम श्रेणी का कपड़ा	३३,५०० ,,	३५,१४० ,,
उम्दा कपड़ा	१,९७० ,,	१,८०० ,,
अत्यन्त उम्दा कपड़ा	२,५२० ,,	२,१९० ,,
योग	४५,६०० ला० मी०	४७,०४० ला० मी०

द्वितीय योजना काल में नयी इकाइयों की स्थापना तथा वर्तमान इकाइयों के विस्तार करने तथा सूती वस्त्र उद्योग के पुनर्स्थापन तथा आधुनीकरण के कार्यक्रमों पर कुल मिलाकर १२० करोड़ रुपये व्यय किये गए। तीसरी योजना में लगभग ३८ लाख तकुए (५ लाख तकुए आधुनीकरण द्वारा तथा ३३ लाख नये तकुए) तथा

२५,००० स्वचालित करघे लगाये जायेंगे। इनकी स्थापना के लिए लगभग १३० करोड़ रु० से लेकर १४० करोड़ रु० तक व्यय किये जायेंगे।

तीसरी योजना के अन्तर्गत सूती वस्त्र उद्योग का विकास निम्न प्रकार से होगा :—

मिल उद्योग की निर्धारित क्षमता	इकाई	१९६०	१९६५
सक्रिय तकुए	लाख	१२७	१६५
करघे	०००	१९९	२२५
उत्पादन :			
सूत	लाख पौंड	१७,३७०	२२,५००
कपड़ा मिल में बना	लाख गज	७३,१७०	९३,०००
हाथ करघा शक्ति चालित	,,	५०,४८०	५८,०००
करघा, अम्बर व खादी	,,	२२,६९०	३५,०००
कपड़े का निर्यात	,,	६,९७०	८,५००
प्रति व्यक्ति उपभोग	गज	१५·६	१७·१
अपेक्षित कच्ची रुई	लाख गांठें	५१	६६

व्यापार और उपभोग

भारत मे सूती कपड़ों का निर्यात पिछले वर्षो से कम होता जा रहा है। १९६२ में भारत से लगभग ५० करोड़ गज कपड़े का निर्यात किया गया (जबकि तृतीय योजना का लक्ष्य ८० करोड़ गज निर्यात करने का था)। १९५९ में ८१·५ करोड़ गज कपड़ा निर्यात किया था। इसका मूल्य ५५ करोड़ रु० था, १९६२ में केवल ४० करोड़ रुपये के मूल्य का ही कपड़ा निर्यात किया गया। भारत के कपड़े की खरीद अरब गणराज्य, सूडान, ब्रिटिश, पूर्वी अफ्रीका, ईथोपिया, अदन, इंगलैंड, बर्मा तथा मलाया में कम हो रही है। इन देशों में जापान का कपड़ा अधिक खपने लगा है। भारत से निर्यात में कमी होने के मुख्य कारण यहाँ उत्पादन व्यय का अधिक होना ; आयात सम्बन्धी कठोर नियन्त्रण तथा कई देशो में आर्थिक विकास के फलस्वरूप उनकी मुद्रा के निर्यात पर नियन्त्रण होना है। अब एक ऐच्छिक निर्यात योजना बनाई गई है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक मिल को विदेशी मुद्रा कमाने हेतु अपने कपड़े के उत्पादन का १२½% तथा सूत के उत्पादन का ३% निर्यात करना होता है।

भारत से कपड़े का निर्यात अब भी कई देशों को होता है। पिछले कुछ वर्षों के निर्यात सम्बन्धी आंकड़े नीचे दिए गए हैं :—

वर्ष	कपड़ा (००० मीटर)	मूल्य (००० रु०)
१९५१	६७१,५१४	७२६,२५६
१९५६	६२५,४२६	४८३,१५३

१९५७	७६७,७८५	५८६,४७६
१९५८	५३१,७८८	४०२,५३४
१९५९	७४४,८६९	५४७,२३३
१९६०	६३५,३४२	५४६,९९९
१९६१	५२४,३२३	४६०,५८०
१९६२	४६४,८४७	३९९,५५७

कपड़े का यह निर्यात मुख्यतः अदन, ब्रह्मा, नाइजीरिया, सूडान, केनिया, टैंगेनिका, आस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, लंका और सिंगापुर आदि देशों को होता है। जो कपड़ा इन देशों को निर्यात होता है उनमें लठ्ठा, चादरें, कमीज का कपड़ा, मलमल, वायल, छीटें, कोट का कपड़ा, खादी तथा धुला और बिना धुला मोटा कपड़ा होता है।

सूती कपड़े के निर्यात की कुछ महत्वपूर्ण बातें ये हैं :—

(१) भारत का अधिकांश निर्यात द० पू० अफ्रीका, ईराक, ईरान, लंका, अदन, बर्मा, सीरिया, थाइलैंड और अरब देशों को होता है।

(२) हमारे कुल निर्यात का ९०--९२% भाग मोटा और मध्यम श्रेणी का कपड़ा होता है।

(३) कपड़े के कुल निर्यात में बहुत बडा भाग बिना धुले कोरे कपड़े का होता है जिसे आयातक देश पुनर्निर्यात के लिए मंगवाते हैं।

(४) निर्यात का बहुत कम भाग रंगा या छपा और अन्य प्रकार से भेजा जाता है।

पहली, दूसरी और तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के आरम्भ में देश में उपभोग के लिए क्रमशः ३३३·१ करोड़ गज, ६१३·५ करोड़ गज और ६७२·३ करोड़ गज कपड़ा मिला अर्थात् इन योजनाओं में कपड़े का प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग ९·३ पौंड; १५·७ पौंड और १५·६ पौंड का हुआ। तृतीय योजना के अन्त में यह मात्रा १७·४ पौंड की होगी।

उद्योग का स्थापन

सूती वस्त्र उद्योग का स्थानीयकरण विशेषतः कच्चे माल, ईंधन, रसायन, यंत्र, मजदूर और कपड़े की मांग पर निर्भर है। इन कारणों में से किसी एक की प्रचुरता इस उद्योग के स्थापन के लिए पर्याप्त है। स्थापन की दृष्टि से रुई को शुद्ध रेशा माना जाता है क्योंकि निर्माण क्रिया में रुई वजन में अधिक नहीं घटती और इसीलिए रुई और सूती माल के यातायात के व्ययों में अधिक अन्तर नहीं पड़ता। अतः यह आवश्यक नहीं कि सूती कपड़े के मिल रुई पैदा करने वाले क्षेत्रों के पास ही स्थापित किये जावें। यह उद्योग बाजार की समीपता से प्रभावित होता है न कि कच्चे माल की निकटता से। (It is market localised rather than raw-material localised)।

अधिकतर यह उद्योग वहीं स्थापित किया गया है जहाँ मजदूरों अथवा विस्तृत बाजार की सुविधा है। अतः इस उद्योग का महत्वपूर्ण क्षेत्र गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्य है जहाँ देश के लगभग ५३% कर्घे और तकुए पाए जाते हैं। गुजरात राज्य, बम्बई और अहमदाबाद की मिलों से समस्त देश के उत्पादन का प्रायः आधा सूत और दो-तिहाई वस्त्र मिलते हैं। इस उद्योग के प्रमुख क्षेत्र ये हैं :—

(i) महाराष्ट्र और गुजरात
(ii) मालवा का पठार (म० प्रदेश)
(iii) खानदेश और बरार (ताप्ती तथा पूर्णा नदियों की घाटी में)
(iv) बम्बई-दक्कन (भीमा और हगारी नदियों के मध्यवर्ती भाग में)
(v) दक्षिणी मद्रास
(vi) पंजाब में (सतलज नदी के निकटवर्ती भागों में)
(vii) गंगा की ऊपरी घाटी (दिल्ली से कानपुर तक का क्षेत्र)
(viii) पश्चिमी बंगाल (हुगली के निकटवर्ती क्षेत्र में)

नीचे की तालिका में उद्योग का वितरण बताया गया है:—

(१ जनवरी १९६१ को)

राज्य	कताई की मिलें	कताई बुनाई की मिलें	तकुए (लाख)	कर्घे (हजार)
महाराष्ट्र—				
बम्बई नगर	६	५६	३२·४५	६३·०
शेष महाराष्ट्र	६	२४	९·११	१८·१
गुजरात—				
अहमदाबाद नगर	५	६१	२०·९२	४१·६
शेष गुजरात	९	२८	८·०७	१३·९
मद्रास	१०९	२५	३१·४१	७·३
पांडीचेरी	—	३	०·७९	२·१
उत्तर प्रदेश	८	१७	८·३६	१३·५
प० बंगाल	१४	१८	६·४४	९·१
मध्य प्रदेश	१	१७	४·९७	१२·३
मैसूर	७	१०	४·५०	४·६
केरल	८	५	२·०८	१·४
आंध्र प्रदेश	११	२	२·०४	१·२
राजस्थान	२	८	१·५२	३·०
दिल्ली	—	४	१·६८	३·७
पंजाब	४	४	१·३०	१·९
उड़ीसा	२	१	०·५९	०·८
बिहार	—	३	०·३३	०·७
योग	१९२	२८६	१३६·९३	१९८·७

महाराष्ट्र-गुजरात—यह राज्य भारत के सूती कपड़े के उद्योग में अग्रणी है। इसके निम्नांकित कारण हैं :--

(१) सारा रुई पैदा करने वाला प्रदेश बम्बई बन्दरगाह का पृष्ठ देश है। इसलिए सारी रुई विदेशी निर्यात के लिए बम्बई को आती है और बम्बई की मिलों के लिए रुई की विशेष मांग करने की आवश्यकता नहीं होती। लम्बे रेशे वाली रुई मिश्र और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से मंगवाने की भी सुविधा है। (२) बम्बई यूरोप का सबसे निकट का बन्दरगाह है इसलिये मिलो के लिए आवश्यक मशीनें और अन्य सामान इङ्गलैण्ड, जर्मनी और अमेरिका आदि देशों से मंगवाने की सुविधा प्राप्त है। (३) बम्बई समुद्र के किनारे स्थित है और नम मानसूनी हवाओं के प्रवाह क्षेत्र में
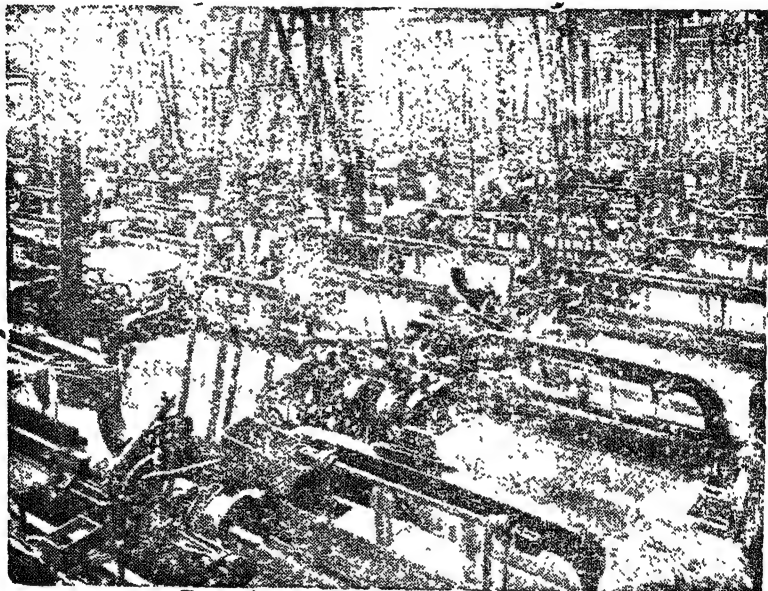
चित्र १८०. बम्बई की मिल का कताई विभाग

है इसलिए यहाँ की मिलों में सूत का धागा पतला और लम्बा आता है और बार-बार नहीं टूटता है। (४) बम्बई की मिलों को पहले पश्चिमी बंगाल के कोयले की खानों पर निर्भर रहना पड़ता था—किन्तु अब पश्चिमी घाट पर स्थित टाटा जल-विद्युत योजना से सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त सामुद्रिक मार्ग द्वारा दक्षिणी अफ्रीका और इङ्गलैंड से भी कोयला मंगवाया जा सकता है। (५) बम्बई देश का प्रधान व्यापारिक केन्द्र है। इसलिए अपने पृष्ठदेश द्वारा रेलों से जुड़ा है। अतः तैयार माल भीतरी भागों को सुविधापूर्वक भेजा जा सकता है। (६) बम्बई में पूँजीपतियों का जमाव अधिक है। अतः नई मिलों के लिए पूँजी काफी मात्रा में मिल जाती है। (७) बम्बई की मिलों में काम करने के लिए मजदूर कोंकन, सतारा, शोलापुर और रत्नगिरि जिलों तथा दक्कन, राजस्थान और उत्तर प्रदेश से भी आते हैं। (८) बम्बई के प्रमुख पारसी और भाटिया व्यापारियों ने विदेशी व्यापार

में बहुत धन अर्जित किया था---विशेषतः चीन के साथ होने वाले कपास और अफीम के व्यापार में। अमेरिकन गृह युद्ध के कारण विदेशों को निर्यात किये जाने वाली कपास की मात्रा बढ़ गई इसमें उन्हें काफी लाभ हुआ। इसी धन का उपयोग बम्बई में सूती कपड़े की मिलें खोलने में किया गया। (६) बम्बई के अधिकांश व्यापारियों को कपास के व्यापार का पूरा अनुभव था तथा उनका सम्बन्ध विदेशी कम्पनियों से होने के कारण उन्हें इस उद्योग का भी अनुभव होगया। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में तान्त्रिक सहायता अँग्रेजी मशीन बनाने वाली फर्मों से मिल गई।

चित्र १८१. भारत में सूती वस्त्र उद्योग

इस प्रकार आरम्भ से ही बम्बई सूती वस्त्रों का प्रमुख केन्द्र हो गया है। मिलों की अधिकता तथा उत्पादन की विभिन्नता के कारण इसे सूती वस्त्रों की राजधानी (Cottonopolis) कहा जाने लगा है।

बम्बई के बाहर गुजरात में भी अनेक नये मिल स्थापित किए गए हैं इसमें निम्न कारण सहायक हुए हैं :—

(१) देश के भीतरी भागों में यातायात के साधनों का विकास हुआ जिससे इस उद्योग को भीतरी भागों में निकटवर्ती क्षेत्रों से कच्चा माल आदि प्राप्त होने लगा। फलतः नागपुर, इंदौर, कोयम्बटूर, बंगलौर, शोलापुर आदि स्थानों में इस उद्योग का विकास हुआ। यह सभी केन्द्र कच्चे माल और तैयार माल की पूर्ति की दृष्टि से बड़ी लाभदायक स्थिति में हैं। (२) भीतरी भागों में पूँजी तथा व्यवस्था सम्बन्धी सुविधायें भी उपलब्ध हो गई। (३) भीतरी भागों में कई स्थानों पर विशेष कर रामनाथापुरम, तिरूनलवैली, सलेम, तिरूचिरापल्ली, पुद्दूकोटा, मदुराई, उज्जैन, हाथरस, ब्यावर, आगरा, भड़ौच आदि स्थानों पर मजदूरों के वेतन मँहगे नहीं हैं।
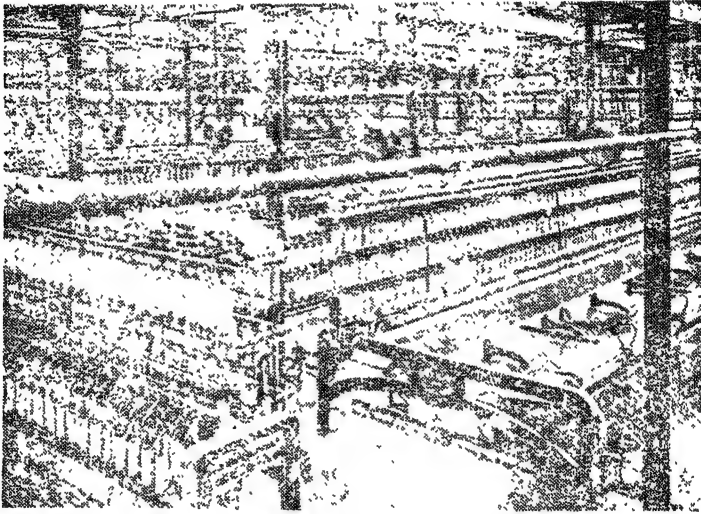
चित्र १८२. बम्बई की मिल का बुनाई विभाग

सबसे पहले अहमदाबाद में १८५९ ई० में कपड़े की मिलें स्थापित की गई। यहाँ इस उद्योग के लिए ये सुविधायें प्राप्त हैं :—

(१) यहाँ साहसी व्यापारियों और सेठों की कमी नहीं है जिनसे उद्योग के लिए पर्याप्त पूँजी मिल जाती है। (२) यह सौराष्ट्र और गुजरात के कपास उत्पादन केन्द्रों के मध्य में स्थित है अतः धौलेरा और भड़ौच नामक उत्तम कपास बहुत मिल जाती है। (३) सौराष्ट्र तथा गुजरात के बन्दरगाहों द्वारा विदेशों से मशीनें आदि सुगमतापूर्वक मँगवाई जा सकती हैं। (४) यहाँ बहुत प्राचीन काल से ही घरेलू धन्धे के रूप में कताई और बुनाई का उद्योग होता रहा है। अतः मिलों के लिए चतुर मजदूर मिलने की सुविधा है। (५) तैयार माल पंजाब, उत्तर प्रदेश राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में आसानी से भेजा जा सकता है। यहाँ के कपड़े की माँग दिल्ली, कानपुर और अमृतसर तक है।

इन कारणों से अहमदाबाद भारत में सूती कपड़े बनाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे 'पूर्व का बोस्टन' कहते हैं। यहाँ ७१ मिलें हैं।

धीरे-धीरे अहमदाबाद के अतिरिक्त नये मिल गुजरात में राजकोट, मोरवी, वीरमगांव, कलोल, नवसारी भावनगर, अंजार, सिद्धपुर, नाड़ियाद, सूरत, भड़ौंच, और बड़ौदा में स्थापित किये गए। महाराष्ट्र में बम्बई के अतिरिक्त मिलें बरसी, आकोला, अमरावती, वर्धा, शोलापुर, पूना, हुबली, बेलगाँव, सतारा, कोल्हापुर, जलगांव, सांगली, बिलीमोरिया, नागपुर, आमलनेर, आदि नगरों में हैं।

महाराष्ट्र की मिलों में भीतरी क्षेत्रों की मिलों से स्पर्धा होने के कारण अब बढ़िया कपड़ा ही अधिक बनने लगा है। इन मिलों में लठ्ठा, मलमल, वायल विभिन्न प्रकार की छींटें, चद्दर, 'टी क्लाथ', क़मीजों के टुकड़े, धोतियाँ आदि तथा कई प्रकार के रंगीन कपड़े बनाये जाते है। अहमदाबाद में भी उत्तम और महीन कपड़ा अधिक बनाया जाता है—विशेषतः छोटे रूमाल, धोतियाँ, शर्टिङ्ग, कोटिंग, मलमल, वायल आदि। कपडे की क़िस्म के अनुसार अहमदाबाद में लंकाशायर की मिलों की तरह 'मिस्री कपड़े' और बम्बई में 'अमरीकी कपड़े' अधिक बनाये जाते है।[6]

(ii) **पश्चिमी बंगाल**—पश्चिमी बंगाल में कलकत्ता के आसपास ४८ किलोमीटर की परिधि में २४ परगना, हावड़ा और हुगली जिलों में हुगली नदी के किनारे पर सूती कपड़े की ४० मिलें है। इस स्थापन के कारण ये हैं :—

(१) कलकत्ता बन्दरगाह के समीप होने के कारण विदेशों से मशीनें और रुई आसानी से इन मिलों के लिए आ जाती हैं (२) रानीगंज और झरिया की खानों से कोयला प्राप्त हो जाता है। रेल मार्गों और जल मार्गो का जाल सा बिछा होने के कारण तैयार माल आस-पास के स्थानों को भेजा जा सकता है—विशेषतः आसाम, मनीपुर, त्रिपुरा, विहार और उड़ीसा को। (३) कलकत्ता में पूंजी और अन्य व्यापारिक सुविधायें भी प्राप्त हो जाती हैं। (४) मजदूर विशेषकर बिहार, उत्तर प्रदेश व आसाम से आ जाते है। (५) घनी जनसंख्या वाले प्रदेश के केन्द्र में होने से यहाँ कपड़े की माँग अधिक है। (६) यहाँ का जलवायु उद्योग के अनुकूल है तथा सालभर ही सूती कपड़ा पहनने का मौसम रहता है।

इन्हीं सब कारणों से यहाँ सूती वस्त्रों के व्यवसाय की उन्नति हो पायी है। इसके मुख्य केन्द्र सोदपुर, पनिहाट्टी, सीरामपुर मोरीग्राम, शामपुर, पाल्टा, फुलेश्वर, लिलुआ, रिश्रा, बेलगरीया, सल्कीया और घूसेरी आदि हैं। इन मिलों में भूरा और ब्लीच किया हुआ कई प्रकार का कपड़ा बनता है। पश्चिमी बंगाल में इस व्यवसाय की और भी उन्नति होने की आशा है क्योंकि निकटवर्ती प्रदेशों में सूती कपड़े की मिलों का अभाव है तथा कलकत्ता विश्व का सबसे बड़ा सूती कपड़े का बाजार है।[7]

बंगाल के उद्योग को ये असुविधायें हैं—(१) यहाँ कच्चे माल की बहुत कमी है अतः कपास काफी दूर से मंगवानी पड़ती है। (२) यहाँ के आरम्भिक पूँजीपतियों

---

6. "From the point of view of progress in quality Ahmedabad resembles what they call in Lancashire the 'Egyptian Section of the Cotton Industry', while Bombay the 'American Section of the British Cotton Industry'—Vide *T. R. Sharma* ; Op. Cit., p. 52.

7. P. S. Loknathan , Industrial Organisation in India, p. 63.

और व्यवसायियों ने जूट उद्योग के विकास की ओर ही अधिक ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त चाय, कोयला और यातायात के उद्योग में ही अधिक धन लगाया।

(iii) **उत्तर-प्रदेश**—सूती वस्त्र उद्योग में उत्तर-प्रदेश का स्थान चौथा है। यहाँ १९ वीं शताब्दी के अन्त में उद्योग का विकास हुआ। उत्तर प्रदेश में यद्यपि मुरादाबाद, बनारस, आगरा, बरेली, अलीगढ़, मोदीनगर, हाथरस, सहारनपुर, रामपुर, इटावा आदि स्थानों में सूती कपड़े की मिलें पाई जाती हैं किन्तु कानपूर इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। इसे **उत्तरी भारत का मानचेस्टर** कहते हैं। इसके कारण ये हैं :—

(१) यह गंगा की घाटी के कपास के क्षेत्र की सीमा पर है जहाँ से यहाँ कपास आती है। यह कपास छोटे रेशे वाली होती है अतः यहाँ मोटा कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है। (२) यह नगर न केवल उत्तर प्रदेश के नगरों से ही मिला है वरन् अमृतसर, दिल्ली और कलकत्ता से भी उत्तम रेलों और सड़कों द्वारा जुड़ा है। अतः मिलों की मशीनें व रासायनिक पदार्थ सरलता से प्राप्त हो सकते हैं। (३) यह रानीगंज, झेरिया और डाल्टनगंज की कोयले की खानों के निकट है। (४) उत्तर प्रदेश की अधिक जनसंख्या और कृषकों की अधिकता के कारण कपड़े की माँग अधिक रहती है। (५) घनी आबादी के कारण मजदूर सस्ते और अधिक परिमाण में मिल जाते हैं।

(iv) **मद्रास**—दक्षिणी भारत में भी सूती कपड़े की मिलों का आधिक्य है। इसका मुख्य कारण पायकरा योजना से सस्ती जल-विद्युत शक्ति और कपास का अधिक परिमाण में मिलना है। मजदूर भी बहुत मिल जाते हैं। दक्षिणी भारत के मिल समस्त देश का १६% सूत बनाते हैं। यहाँ कपड़े की मिलें मद्रास में १३६ हैं। मुख्य केन्द्र मदुराई, कोयम्बटूर सलेम, मद्रास, पेराम्बूर, तिरूनलवैली, तिरूचिरापल्ली, गुडियाटम, त्रुचेगोडे, रामनाथापुरम, तूतीकोरिन, तंजौर, कोकोनाडा और एलोरा हैं। पांड़ीचेरी में ३ मिलें हैं।

(vi) **आँध्र** में सूती कपड़े की मिलें पूर्वी गोदावरी, गंतूर, हैदराबाद, वारंगल, तादेपल्ली, सिकन्दराबाद में हैं।

(vii) **केरल** में १४ मिलें हैं। इस उद्योग के मुख्य केन्द्र त्रिवेन्द्रम, क्विलोन, अलगप्पानगर, अलवाये, चलापुरम, कनानोर, अलल्पी और पापिनीसेरी हैं।

(viii) **मैसूर** राज्य में १९ मिलें हैं। मुख्य केन्द्र बंगलौर, मैसूर, गुलबर्गा, बलारी, देवनगरी, और चीतलदुर्ग हैं।

(ix) **मध्यप्रदेश** की वर्धा और पूर्णा नदियों की घाटी में कपास खूब उत्पन्न होता है तथा पिछड़ी जातियों की अधिकता से मजदूर भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। बरोरा की खानों से कोयला मिल जाता है। सूती कपड़े की मिलें रतलाम, इन्दौर, ग्वालियर, देवास, निमाड, राजनन्दगाँव, सतना, भोपाल, उज्जैन, बुढ़नेरा, बुरहानपुर, एलीचपुर औद पूलागांम में हैं। यहाँ २० मिलें हैं।

(x) **राजस्थान** में यह उद्योग पाली, ब्यावर, विजयनगर, किशनगढ़, भीलवाड़ा, उदयपुर, जयपुर, और कोटा केन्द्रित हैं। यहाँ कोयला बिहार की खानों से

मंगवाया जाता है किन्तु कपास की प्राप्ति स्थानीय ही होती है। कपड़े की माँग भी यहाँ बड़े क्षेत्र की है। राजस्थान में ११ मिलें हैं।

(xi) अन्य मुख्य केन्द्र **पंजाब** में भिवानी, लुधियाना, अमृतसर तथा फागवाड़ा और **बिहार** में पटना, गया, भागलपुर और मदानी में है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि सूती वस्त्र उद्योग देश के विभिन्न भागों में केन्द्रित है किन्तु अभी भी कुल मिलों में से १२८ मिलें बम्बई और अहमदाबाद में तथा महाराष्ट्र और गुजरात दोनों में मिला कर १९५ मिलें हैं। बम्बई और अहमदाबाद की मिलों में कुल देश के ३८% तकुए तथा ५२% करघे और ६०% श्रमिक लगे हैं।

यह उद्योग सबसे अधिक उस त्रिकोणाकार क्षेत्र में केन्द्रित है जो बम्बई, नागपुर, शोलापुर, इन्दौर और अहमदाबाद के कपास-उत्पादक क्षेत्रों को मिलाता है। इसी क्षेत्र से देश के कपड़े के उत्पादन का ७५% प्राप्त होता है।

इसके विपरीत सादिया, गोरखपुर और जगदालपुर को मिलाने वाले क्षेत्र में केन्द्रीयकरण सबसे कम है।

भारत के सूती वस्त्र उद्योग की विशेषतायें इस प्रकार है[8] :—

(१) यह संगठित उद्योगों में सबसे बड़ा उद्योग है। इसके उत्पादन का वार्षिक मूल्य ५०० करोड़ रुपये से भी अधिक का होता है।

(२) राष्ट्रीय आय में इस उद्योग का योगदान १०० करोड़ रुपये से अधिक का है।

(३) इस उद्योग में ८ लाख श्रमिक रोजगार पाते हैं जिन्हें पारिश्रमिक के रूप में १२५—१३० करोड़ रु० मिलते हैं तथा २५ लाख श्रमिक हाथ करघा उद्योग और शक्ति चालित करघों में लगे हैं।

(४) कपास का वार्षिक औसत उपभोग ५० लाख गांठों का होता है।

(५) इस उद्योग में मशीनी उद्योग, मिल-स्टोर, रासायनिक पदार्थ आदि उद्योगों का निर्मित माल औसतन ८० से १०० करोड़ के मूल्य का खपता है।

(६) इसके निर्यात से लगभग ६० से ७० करोड़ रु० की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती हैं।

(७) इस उद्योग की सबसे बड़ी आवश्यकता उद्योग के आधुनीकरण तथा मशीनों और संयन्त्रों के नवीनीकरण तथा उत्पादन के विभिन्नीकरण करने की है जिससे भारतीय कपड़ा विदेशी बाजारों में अन्य देशों से प्रतिस्पर्धा कर सके।

उद्योग की समस्यायें

(१) **कपास का अभाव**—भारतीय मिलों को विभाजन के उपरांत और उसके पहले भी उत्तम किस्म की रुई का अभाव रहा है। यह अभाव विभाजन के उपरांत और भी अधिक उग्र हो गया। १९४८ में कुल ४,३८९ हजार रुई की गाँठों

---

8. Estern Economist Annual, 1964.

की खपत हुई थी इसमें से ३,३४४ हृ० गाँठें देशी रुई और १०,४५ हृ० गाँठें विदेशी रुई की थी। १९६२ में यह मात्रा क्रमशः ५,६२५ हृ० ; ४,६३८ हृ० और ९८७ हृ० थी। अब भी रुई की उसलब्धि की मात्रा अनिश्चित ही रहती है। १९४७-४८ में रुई का क्षेत्र १०६·६ लाख एकड़ का था, यह १९६२-६३ में २०० लाख एकड़ हो गया तथा गाँठों का उत्पादन भी इस अवधि में बढ़कर २९ लाख से ५४ लाख हो गया। किन्तु फिर भी कपास का ९⁄१० क्षेत्र वर्षा पर ही निर्भर करता है अतः इसकी उपलब्ध मात्रा में घटा-बढ़ी होती ही रहती है। अब सिंचित क्षेत्र में अधिक कपास उत्पादन के प्रयास किये जा रहे हैं।

कपास के बारे में दूसरी मुख्य बात उसका प्रति एकड़ उत्पादन कम होना है। यद्यपि पिछली दशाब्दी में यह प्रति एकड़ उत्पादन ७८ पौंड से बढ़कर ११२ पौंड हुआ है किन्तु अन्य प्रमुख उत्पादकों की तुलना में यह आज भी बहुत ही कम है—संयुक्त अरब गणराज्य, रूस और संयुक्त राज्य अमरीका में यह प्रति एकड़ उत्पादन ५०० से ६०० पौंड का होता है। अतः खाद, उत्तम बीज और सिंचाई की सुविधाओं के विकास द्वारा उत्पादन बढ़ाया जाना चाहिए।

पिछले कुछ समय से देश के विभिन्न भागों में ही लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन बढ़ाया जा रहा है। इस समय पंजाब में L. L. ५४ ; दक्षिणी पूर्वी पंजाब में H. १४ ; बम्बई में १७०-C २ ; खानदेश में Vinar १९७-३ ; अमरेली (बम्बई) में C. J. ७३ ; भडौंच में दिग्विजय' ; धारवाड़ में 'लक्ष्मी' और 'जयधर' ; मद्रास में M. C. V. I. तथा M. C. V. २ ; मध्य प्रदेश में H. ४२० , १३A ; ५९A और मैसूर M. A. ५ ; तथा आंध्र में गारोनी किस्म की लम्बे रेशे वाली रुई सफलता प्राप्त कर सकी है।

छोटे रेशे वाली कपास के अन्तर्गत क्षेत्रफल ३०% से घट कर अब २०% हो गया है, जबकि लम्बे रेशे वाली कपास का क्षेत्रफल २०% से बढ़कर ४१% हो गया है। रुई की मांग भी २५ लाख गांठों से बढ़कर ४७ लाख गाँठें हो गई। फलस्वरूप अब भी लम्बी रेशे वाली कपास संयुक्त अरब गणराज्य, पाकिस्तान, सूडान, संयुक्तराज्य आदि देशों से मंगाई जाती है जिसका वार्षिक मूल्य ५४ से ८० करोड़ रुपये तक का होता है। तृतीय योजना में इस अभाव की पूर्ति के लिए कपास का उत्पादन लक्ष्य ७० लाख गाँठों का रखा गया है।

(२) भारतीय मिलों की **उत्पादन शक्ति कम** है तथा प्रति श्रमिक पीछे भी उत्पादन कम होने के कारण पारिश्रमिक मंहगा पड़ता है और कपड़े का उत्पादन व्यय बढ़ जाता है। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में भारतीय कपड़े की प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। नीचे की तालिका में कुछ प्रमुख देशों में श्रमिक की उत्पादन-क्षमता बताई गई है :—

देश	एक श्रमिक द्वारा संचालित तकुए	एक श्रमिक द्वारा संचालित करघे
सं० राज्य अमरीका	१५००—२१००	६० स्वचालित करघे
जापान	१६००—२०००	३०—४० १४—१५ साधारण करघे
ब्रिटेन	८००	६ साधारण करघे
	३८० (औसत)	२ ,, (औसत)

भारत में कपड़ा उत्पादन व्यय में श्रम का भाग २६·६% पड़ता है, जबकि इंग्लैंड और बेल्जियम में यह २४% तथा जापान में केवल १६% है। अतः कपड़े का उत्पादन मूल्य कम करने के लिए उद्योग का नवीनीकरण तथा आधुनीकरण करना आवश्यक है। इस कार्य के लिए ८०० करोड़ रुपये की आवश्यकता मानी गई है, अतएव राष्ट्रीय उद्योग विकास निगम (NIDC) ने अबतक १३$\frac{1}{2}$ करोड़ रु० का ऋण उद्योग को दिया है। पुराने करघों के स्थान पर स्वचालित और आधुनिक ढंग के करघे लगाये जा रहे हैं। तृतीय योजना के अन्तर्गत ४० लाख अतिरिक्त तकुए और २५,००० स्वचालित करघे लगाने के लाइसेंस दिये जा चुके हैं। अभी भारत में केवल ८% करघे ही स्वचालित है, जबकि संयुक्त राज्य में यह प्रतिशत १०० ; कनाडा में ९९·६ ; स्वीडेन में ९२, नार्वे में ८३, डेनमार्क में ७५·८, आस्ट्रेलिया में ६९·७, फ्रांस में ५३·८, जापान में १८·६ और ब्रिटेन में १८·३ है।[९]

(३) **अनार्थिक इकाइयाँ**—भारत में अनेक मिलें अनार्थिक हैं। १९६० मे ३९ मिल इसी कारण बन्द पड़े थे। **कार्यशील संगठन** (Working Group on Cotton Textile Industry) के अनुसार वर्तमान स्थिति में वही मिल एक आर्थिक इकाई माना जा सकता है जिस मे १२,००० तकुए और ३०० करघे हो। अनुकूलतम आकार की इकाई में २५,००० तकुए तथा ६०० करघे होने चाहिए। इस दृष्टि से भारत के १५० मिल अनार्थिक है। पूँजी के अभाव, कुप्रबन्ध और कच्चे माल के अभाव में ये मिल अनार्थिक हैं। अतः इन मिलों का पुनर्गठन करके इनकी व्यवस्था में पुर्ननिर्माण करना चाहिए।

(४) **घिसी-पिटी मशीनें**—१९५२ की कार्यशील पार्टी (Working Party on Cotton Textile Industry) के अनुसार कताई विभाग की ६५% मशीनें १९२५ के पहले की तथा ३०%, १९१० के पूर्व की संस्थापित हैं। बुनाई विभाग में यह प्रतिशत ७५ तथा ४९ था। **जोशी समिति** (१९५८) के अनुसार उद्योग की अधिकांश मशीनें ४० वर्ष से भी पुरानी हैं। बम्बई की मिलों की ९०% मशीनें २५ वर्ष पुरानी हैं। ऐसी मशीनो से न केवल उत्पादन व्यय बढ़ता है वरन् कपड़े की किस्म भी बिगड़ जाती है और श्रमिकों पर कार्य-भार अधिक पड़ता है। अतः यह आवश्यक है मिलों मे नई मशीनें लगाई जायें। युद्धोत्तर काल और उसके उपरांत विदेशी से मशीनें, पुर्जे आदि न मिलने तथा विदेशी मुद्रा की कठिनाई के कारण इस उद्योग का संयरण ठीक नही रह पाया। योजना आयोग के अनुसार सूती, ऊनी और जूट वस्त्र उद्योगों में सब मिलाकर १६९ रु० के मूल्य की प्रतिस्थापना होगी।

मशीनों की विदेशी निर्भरता से निस्तार पाने के लिए अब देश में ही वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित मशीनों का उत्पादन बढ़ाया जा रहा है। अभी २५ करोड़ रुपये के मूल्य की कपड़ा मशीनें बनाई जा रही है। १९६५ तक यह ३२ करोड़ रुपये के मूल्य की हो सकेंगी। सूती कपड़े की विभिन्न-प्रकार की मशीनों के लाइसेंस और उत्पादन इस प्रकार हैं :—[१०]

---

9. I. L. O. International Labour Review, June 1960, p. 535.
१०. उद्दयोग व्यापार पत्रिका, जुलाई, ११६३. प० १४-१५.

बड़ी कपड़ा मशीनों की उत्पादन प्रवृत्तियाँ

मशीन की किस्में	वार्षिक लाइसेंस क्षमता (संख्या)	उत्पादन (सख्या) १९५४	१९५६	१९६०	१९६१
ब्लोरूम	३६	—	—	—	४
धुनाई एंजिन	२,४००	४७२	७२६	१,०७३	१,२७९
ड्रा फ्रेम	३२४	८	२४	४७	७४
स्पीड फ्रेम	५६२	६	२९	४५	७०
रिंग फ्रेम	२,६७६	३५८	१,१८०	१,१२७	१,३६१
वाइडिंग फ्रेम	१८०	—	—	२५	३५
रैपिंग फ्रेम	६८	—	—	३	५
करघे :					
साधारण	७,२००	१,८८०	२,८७३	५,१७७	७,४३५
स्वचालित	५,१००	२७६	१६१	३७४	७९

देश में १५ कारखाने पूरे रिंग फ्रेम, तकुए, तकुए के रिंग, स्वचालित कर्घे, ब्लोरूम लाइन्स, ड्राफ्रेम, तेज स्पीड फ्रेम, गतिवाली वाइडिंग तथा रैपिंग फ्रेम, आर्द्रता-प्रक्रियक मशीनें (विश, कपड़ा छपाई मशीनें, स्वचालित, जिगर्स, उष्ण वायु स्टेण्ड, मर्सेराइज करने की मशीनें, साइजिंग मशीनें, लगातार रंगने वाले संयंत्र, ब्लीचिंग संयंत्र आदि, तैयार करते है। इनके अतिरिक्त अब नये यंत्रों और उपकरणों के उत्पादन के लिए विदेशी फर्मों से भी प्राविधिक सहयोग प्राप्त किया गया है। इस प्रकार के सहयोग से प्राप्त चालू उद्योग ९५ हैं। इसमें से २५-२५ ब्रिटेन और जर्मनी के सहयोग से, १५ जापान, १४ स्विटजरलैड, ५ अमरीका, ४ पू० जर्मनी, २ इटली, २ चैकोस्लोवाकिया और १-१ स्वीडेन, कनाडा और बेल्जियम के प्राविधिक सहयोग से चालू हैं। इस्त्री करने की मशीनें, तोलने की मशीनें, तेजगति वाले यंत्र, दाब डालने वाले यंत्र, बुनाई की सुइयाँ, चित्र-वस्त्र बनाने के करघे, ताना बनाने के तार तथा चपेट स्पात के यंत्र, लपेटने और ताना बनाने की मशीनें, रोलर रिंग आदि का निर्माण इस सहयोग से किया जा रहा है।

(५) **विदेशी प्रतिस्पर्धा**—विदेशों में भारतीय कपड़े को आधुनीकरण किए देशों की मिलों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है जिसके फलस्वरूप भारत से कपड़े का निर्यात कम होने लगा है। १९५४ में ८९·७ करोड़ गज कपड़ा निर्यात किया गया जबकि १९६१ में केवल ६०·२ करोड़ गज। विदेशी बाजारों में भारतीय कपड़ों की प्रतियोगिता बढ़ाने के लिए निम्न सुझाव प्रेषित हैं :—

१. वस्त्र मशीनों का आधुनीकरण तथा घिसी-पिटी मशीनों का बदलाव किया जाय।

२. बढ़िया किस्म के तथा छपे हुए और परिष्कृत कपड़ों के लिए निरन्तर अभियान चलाया जाय।

३. कच्ची रुई, सूखे रंगे तथा विभिन्न प्रकार की कपड़ा मशीनों के लिए आयात सबंधी निर्भरता समाप्त की जाय।

४. देश में ही लंबे रेशे वाली रुई का उत्पादन उत्तरोत्तर बढ़ाया जाय।

५. संगठित और विकेन्द्रित क्षेत्रों में समीकरण भंडारों की स्थापना की जाय।

६. उत्पादन के लागत-ढाँचे का युक्तियुक्तकरण तथा सुधार किया जाये।

७. मिल उद्योग और हाथ करघा उद्योग में अभी जो प्रतिस्पर्धा चल रही है उसे बंद कर दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जाये।

हाथ करघा उद्योग (Handloom Industry)

यह उद्योग आज भी देश के प्रायः सभी भागों में कुटीर इकाइयों के रूप में विकेन्द्रित पाया जाता है। इस उद्योग में लगभग २८·५ लाख हाथ कर्घे लगे हैं। हाथ कर्घा उद्योग मुख्यतः आसाम, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, बंगाल, मध्य प्रदेश, मैसूर, मद्रास, राजस्थान तथा आंध्र प्रदेश में पाया जाता है। १९६२-६३ में इस उद्योग ने २२५ करोड़ गज कपड़ा बनाया। १९६३-६४ में २४५ करोड़ तथा १९६४-६५ में २८० करोड गज कपड़ा बनने का अनुमान है। देश के कपड़े की आवश्यकता का ३०% हाथ करघों द्वारा पूरा किया जाता है। १९६२-६३ में ६·७ करोड़ रुपये के मूल्य का सूती कपड़ा निर्यात किया गया।

इस उद्योग के विकास के लिए ये प्रयत्न किये गये हैं :—

(१) विदेशों में हाथ करघा कपड़े को लोकप्रिय बनाने के लिए मेलों तथा प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता है।

(२) सहकारी समितियाँ ऋण तथा बिक्री की सुविधायें देती हैं।

(३) बुनकर सेवा केन्द्र इस उद्योग को प्राविधिक सेवायें देते हैं। वाराणसी तथा सलेम में कारीगरों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

(४) हाथ कर्घा मंडल द्वारा बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, वाराणसी, कांचीपुरम में अनुसंधान केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

(५) हाथ करघा उद्योग विकास के लिए तीसरी योजना में ३८ करोड़ रुपये का व्यय करने की व्यवस्था की गई है।

खादी उद्योग

यह उद्योग भी देश के प्रायः सभी भागों में किया जाता है। १९६१-६२ में ७·६ करोड़ गज खादी तैयार की गई। तीसरी योजना के अन्त तक १६ करोड़ गज खादी तैयार की जा सकेगी।

उद्योग को विकसित करने के लिए ग्राम इकाइयों का चयन, प्रशिक्षण, कार्य

क्रम में सुधार तथा उपकरणों की उपलब्धी कराई जा रही है। तृतीय योजना काल में खादी तथा ग्रामोद्योगों पर ९२ करोड़ रुपयों की व्यवस्था की गई है।

(२) जूट वस्त्र उद्योग (Jute Industry)

जूट को **सोने का रेशा** कह कर पुकारा जाता है। कपास की भाँति जूट से भी खुदरा और मोटे किस्म का कपड़ा तैयार करने में भारत प्राचीन काल से ही मुख्य देश रहा है। इससे टाट, बोरों और पर्दों का कपड़ा तैयार किया जाता था। अब इसके उत्पादन में आश्चर्यजनक विविधता आगई है। रंग-बिरगे पर्दे, दरियाँ फर्शी बिछावन, सोफों के कपड़े, वाटरप्रूफ कपड़ों के अतिरिक्त प्लास्टिक, फर्नीचर कम्बल, बिजली निरोधक सामान और ऊन या कपास के साथ मिला कर कपड़े तैयार करने में भी इसका व्यापक उपयोग होने लगा है। कपड़े की गाँठें पैक करने अनाज को गोदाम में रखने या जहाजों पर लाद कर विदेशों में भेजने के लिए भी बोरों और टाटों का अधिक उपयोग होता है।

उद्योग का विकास और वर्तमान स्थिति

१९ वीं शताब्दी के आरंभिक काल में यह उद्योग कुटीर प्रणाली पर ही किया जाता था। उस समय भी जूट की वस्तुओं का निर्यात् भारत से किया जाता था। भारत के जूट का उपयोग १८३२ में डंडी के कारखाने में किया जाने लगा था, किंतु १८५५ तक भी भारत में यह उद्योग कुटीर रूप में ही किया जाता था। १८५५ में भारत में स्कॉटलैंड निवासी जार्ज ऑकलैंड द्वारा डंडी से कुछ मशीनें और तांत्रिक श्रम आदि की सहायता से कलकत्ता के निकट हुगली के किनारे रिश्ररा नामक स्थान पर स्थापित किया गया। इसकी उत्पादन क्षमता केवल ८ टन प्रति दिन की थी। १८५९ में बुनाई के लिए शक्ति चालित कर्घो का उपयोग किया जाने लगा। इससे थैले, जूट के बोरे, टाट, बैडमिंटन जाल आदि बनाये जाने लगे। १८८२ तक २२ कारखाने स्थापित किये जा चुके थे जिनमे ४,७४६ कर्घे थे तथा २७ हजार श्रमिक कार्य कर रहे थे। ये सभी मिल सिराजगंज जिले से कच्चा जूट प्राप्त करते थे। सन् १९१४ में युद्ध के फलस्वरूप कारखानों की संख्या और उनका उत्पादन बड़ी तीव्र गति से बढ़ा। १९१४ में ६४ कारखाने थे जिनमें २ लाख श्रमिक कार्य कर रहे थे। १९२९ में कारखानों की संख्या ९५ और श्रमिकों की संख्या ३ लाख से अधिक हो गई तथा कर्घों की संख्या ३६,०५० से बढ़ कर ४०,४७७ हो गई।

द्वितीय महायुद्ध काल में एक बार फिर उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला। और मिलों की संख्या १०६ तथा कर्घो की ६६,००० होगई। विभाजन के फलस्वरूप गांठों का उत्पादन हुआ था जबकि द्वितीय योजना काल में जूट का उत्पादन लक्ष्य ५५ लाख गांठों का रखा गया। इसमें वास्तविक उत्पादन ४० लाख गांठों का ही हुआ। तृतीय योजना में यह लक्ष्य ६५ लाख गांठों का रखा गया है।

१९५८ की गणना के अनुसार भारत में १०६ मिल थे जिनमें ७८ करोड़ रुपये की कुल पूँजी लगी थी तथा २५३,८६० श्रमिक कार्य कर रहे थे। १९६१ में

देश में कुल ११२ मिल थे जिनमें कुल ६८,५५७ कर्घे लगे थे। इसमें से ६६,०४४ कर्घे टाट और बोरियाँ बनाने वाले थे शेष जूट का अन्य प्रकार का सामान। इस उद्योग से लगभग ३ लाख श्रमिक रोजगार पाते हैं। उद्योग द्वारा उत्पादित माल का मूल्य १३० करोड़ रुपये से भी अधिक होता है। इसका अधिकांश माल निर्यात किया जाता है जिससे औसतन १२० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। इन कारखानों की उत्पादन क्षमता १२ लाख टन की थी, किन्तु १९६०,६१ में वास्तविक उत्पादन १०·२२ लाख टन का हुआ। १९५६-५७ में यह उत्पादन १०·४१ लाख टन का था। **तृतीय योजना** में जूट उद्योग का उत्पादन १३ लाख टन हो जाने का लक्ष्य है जिसमें से ९ लाख टन निर्यात के लिए होगा। इस उत्पादन की वृद्धि के लिए मिलों के जो कर्घे बंद पड़े हैं उन्हें फिर से काम में लाया जायेगा तथा कुछ मिलों को दो पालियों में काम करना पड़ेगा।

नीचे की तालिका में जूट उद्योग के विकास सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

वर्ष	मिलों की संख्या	अधिकृत पूंजी (करोड़ रु०)	कर्घों की संख्या (००० में)	तकुओं की संख्या (००० में)
१८७९-८० से १८८३ ८४ (औसत)	२१	२·७१	५·५	८·८
१८९९-१९०० से १९०३-०४ (औसत)	३६	६·८०	१६·२	३·३५
१९०९-१० से १९१३-१४ (औसत)	६०	१२·०९	३३·५	६·९२
१९२५-२६	९०	२१·३५	५०·५	१०·६४
१९३०-३१	१००	२३·६१	६१·८	१२·२५
१९३७-३८	१०५	२४·८९	५२·४	११·०८
१९४६-४८	१०६	—	६६ ०	१२·९५
१९६१	११२	७८·३३	६८·५	—

भारत की जूट मिलों में अनेक प्रकार का सामान गलीचे, आदि तैयार किया जाता है।

जूट की वस्तुओं का उत्पादन (मैट्रिक टनों में)

	१९५६	१९५८	१९६१	१९६२
टाट	४२३,५०४	४१५,२४२	३५५,७००	४८२,७००
बोरे	६१७ ६१०	५९४,०४८	४८३,७००	५५१,८००

अन्य प्रकार का सामान (गलीचे, रस्से, सूतली, कैनवास आदि	७३,५४२	७३,७४६	१३०,६००	१५२,३००
योग Total	१,११४,६५६	१,०८३,०३६	९७०,३००	१,१८६,८००

इस समय ये मिल ४५ घंटे प्रति सप्ताह काम कर रहे हैं। जूट की कमी तथा वृद्धि के साथ-साथ मिलों के काम के घंटे भी घटते बढ़ते रहते हैं।

भारत से जूट का तैयार माल संयुक्त राज्य, शुदूरपूर्व, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, इंगलैंड, अर्जेनटाइना, कनाडा, न्यूजीलैंड, मध्य पूर्व के देशों को भेजा जाता है। १९५६-५७ में ९·०७ लाख मैट्रिक टन जूट का निर्यात माल निर्यात किया गया जिसका मूल्य ११९ करोड़ रुपया था। १९६०-६१ में यह मात्रा ८·०२ लाख टन थी जिसका मूल्य १३५ करोड़ रुपया था।

द्वितीय योजना काल में उद्योग की आधुनीकरण योजना के अनुसार नये किस्म के कर्घे लगाने के लिए अब तक ७ करोड़ रुपया का ऋण दिया जा चुका है। २·९ लाख तकुए अब उत्तम किस्म का (Silver-Spun yarn) तैयार कर रहे हैं जो चालू करघों की एक पाली के आधार पर चलाने से प्राप्त होने वाले उत्पादन के लिए अपेक्षित कताई क्षमता के ८४% के बराबर था।

जूट उद्योग का स्थापन

देश में ११२ मिल हैं, जिनका प्रादेशिक वितरण इस प्रकार है :—

राज्य	मिल	टाट बोरे तथा अन्य वस्तुएँ बनाने के कर्घे
पश्चिमी बंगाल	१०१	६५,५४८
बिहार	३	१,९२६
आँध्र प्रदेश	४	१०४२
उत्तर प्रदेश	३	८२१
मध्य प्रदेश	१	२२०
योग	११२	६८,५५७

पश्चिमी बंल में इस उद्योग के स्थापन के मुख्य कारण ये हैं :—

(१) जूट की खेती गंगा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में होती है जहाँ प्रति वर्ष नदियों द्वारा उपजाऊ मिट्टी लाकर जमा करदी जाती है। अतः कच्चा माल सुगमता से मिल जाता है। बंगाल के डेल्टा से भारत का ९० प्रतिशत जूट प्राप्त होता है। हुगली, बर्दमान, दिनाजपुर, वीरभूमि, मालदा जिले जलवायु की जूट उत्पादन के अनुकूल है।

(२) गंगा-ब्रह्मपुत्र और मेघना नदियों और उनकी सहायकों द्वारा सस्ते जल यातायात की सुविधा प्राप्त है। ये कच्चे जूट को मिलों तक पहुँचा देती हैं। जट पहुँ-

चाने के लिए श्रीरामपुर तक जहाज चलाये जाते हैं। (३) कारखानों के लिए कोयला रानीगंज और आसनसोल के क्षेत्रों से उपलब्ध हो जाता है जो यहाँ से केवल १९२ कि० मी० दूर पड़ते हैं।

चित्र १८३. भारत में जूट उद्योग

(४) इस क्षेत्र में मिल-उद्योग से पहले ही जूट का कुटीर-उद्योग चालू था क्योंकि इसमें स्कॉटिश और अंगरेजों द्वारा पूँजी लगाई गई थी। इससे उत्साहित होकर यहाँ जूट उद्योग का विकास किया गया। (५) जूट अधिकतर विदेशी व्यापार के लिए ही था। हुगली नदी और कलकत्ता का बन्दरगाह निर्यात के लिए सुविधा-जनक थे। मशीनों और अन्य आवश्यक रसायन विदेशों से आयात किए जा सकते हैं। (६) कलकत्ता एक औद्योगिक केन्द्र है जहाँ विविध प्रकार के कारखाने पाये जाते हैं। अतः इनके लिए श्रमिक बिहार, उड़ीसा, आसाम, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास से भी आते हैं। अतः इस समय भी ९०% मजदूर इन्हीं राज्यों से यहाँ आते है। (७) यहाँ का नम और गरम जलवायु उद्योग के लिए उपयुक्त है। (८) कलकत्ता नगर में अनेक बैंक, बीमा कम्पनियाँ आदि होने से क्रय-विक्रय की सुविधा रहती है।

इन्हीं कारणों से भारत में जूट का उद्योग हुगली नदी के उत्तरी किनारे कलकत्ता से ५६ किलोमीटर ऊपर और त्रिवेनी से ४० किलोमीटर नीचे उलूबेरिया तक ९७ किलोमीटर लम्बी और ३¾ किलोमीटर चौड़ी पट्टी में स्थापित हो गया
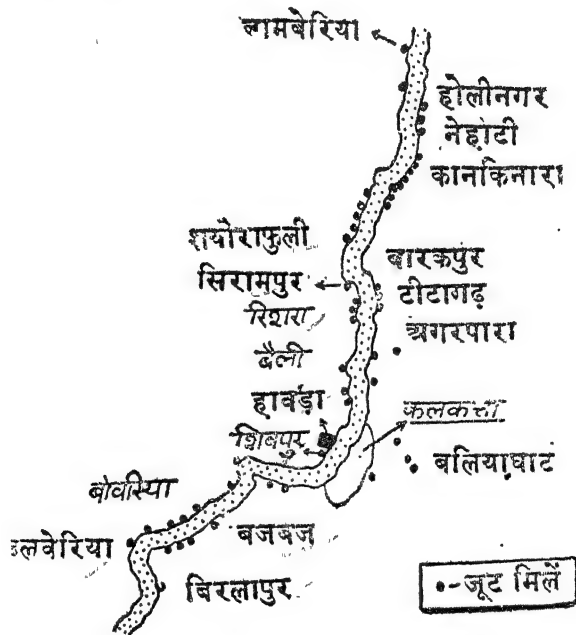
चित्र १८४. पश्चिमी बंगाल का जूट-मिल क्षेत्र

है। इस क्षेत्र में भारत की ९०% जूट की उत्पादन क्षमता पाई जाती है। इसमें भी सबसे अधिक केन्द्रीयकरण १५ मील लम्बी पट्टी में ही पाया जाता है जो उत्तर में रिश्रा से दक्षिण में नैहाटी तक फैली है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बाली अगरपारा, रिश्रा टीटागढ़, श्रीरामपुर, बजबज, शिबपुर, सल्किया, हावड़ा, श्याम नगर, बंसबरिय, उलूबरिया, कांकिनारा, बिरलापुर, नैहाटी, होलीनगर और बारकपुर है।

<u>अन्य क्षेत्र</u>—गंगा-सिंधु के मैदान के ऊपरी भागों में जूट का उद्योग इसलिए उन्नति नहीं कर सका कि जलवायु की अनुकूलता और बन्दरगाहों के सामीप्य की दृष्टि से वे भाग अत्यन्त अनुपयुक्त है। किन्तु अब बिहार व उत्तर प्रदेश में कुछ मिलें स्थापित हो चुकी हैं क्योंकि खेती की उपज विशेषकर शक्कर भरने के लिए बोरों की यहाँ माँग अधिक है तथा यहाँ अन्य रेशे वाले पदार्थ भी पैदा किये जाते हैं। फिर भी जूट के उत्पादन के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इन मिलों का कोई महत्व नहीं है। उत्तर प्रदेश में शहजहनवाँ और कानपुर में तथा बिहार में कटिहार, दरभंगा और पूर्णिया में जूट की मिलें हैं। मद्रास और आंध्र में भी नॉलीमारला, चितबलशाह, गैतूर और पूर्वी गोदावरी जिले में और मध्यप्रदेश में रायगढ़ में भी जूट की मिलें हैं किन्तु पृष्ठभूमि के अभाव में ये उतनी उन्नत नहीं हो सकीं जितनी कि बंगाल की मिलें।

जूट उद्योग की कुछ मुख्य विशेषतायें ये हैं :—

(१) यह भारत का सबसे प्रमुख विदेशी-विनिमय प्राप्त करने वाला उद्योग है। १९६१ में १३५ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त की गई।

(२) जूट की वस्तुयें बड़ी मजबूत और टिकाऊ होती हैं। इनका उपयोग बार-बार किया जा सकता है तथा ये अन्य वस्त्रों की अपेक्षा सस्ती होती हैं। और इनमें कृषि पदार्थ भर कर अन्यत्र सरलता से भेजा जा सकता है।

(३) चतुर नियंत्रण तथा कुशल संचालन और संगठन की दृष्टि से यह सबसे अद्वितीय उद्योग है।

(४) विश्व में सबसे अधिक केन्द्रिकरण इसका भारत में पश्चिमी बंगाल में ही हुआ है। यहाँ विश्व के कुल जूट के कर्घों का ५६%पाया जाता है।

(५) इस उद्योग में ३ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलता है तथा ६७ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है।

विश्व में जूट के कर्घों का वितरण

देश	कर्घे		विश्व का प्रतिशत	
	१९५१	१९६०	१९५१	१९६०
भारत	६८,५५७	७२,१२५	५६·१	५३·०
ग्रेट ब्रिटेन	११,१५१	७.०१०	५·४	८·०
फ्रांस	७,६९८	८,७००	६·३	६·४
जर्मनी	६,३४९	५,०००	५·२	३·७
ब्राजील	४,९८७	४,९८७	४·१	३·७
बेल्जियम	४·८०७	३,७१०	३·९	२·७
इटली	४·६३१	५,०००	३·८	३·७
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२,७५०	४,०००	२·२	३·०
जैकोस्लोवाकिया	२,०००	२,०००	१·६	१·४
पोलैन्ड	१,६००	१,६००	१·३	१·२
रूस	१,३१५	२,९०९	१·१	१·०
पाकिस्तान	१,०००	८,५००	६·६	४·९
द० अमेरिका	१,०००	१,०००	७·८	०·७
स्पेन	८००	४,०००	०·७	३·०
चीन	७५६	१,३१७	०·६	१·०
आस्ट्रिया	७३५	५००	०·६	१·७
जापान	६१५	१,०००	०·७	
अन्य देश	१,७५९	१,७५९	१·४	
योग	१,२२,५१०	१२८,५४१	१००·०	१००·०

उद्योग की समस्यायें

कई देशों में बोरे आदि बनाने के लिए कई नई किस्म के रेशों का प्रयोग और प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है तथा कई देशों में आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है; इससे जूट उद्योग को काफी धक्का पहुँचा है। क्यूबा, इक्वेडोर और हॉलैंड में पाट की वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी गई। जर्मनी, रूमानिया और लिथूनिया में पाट के सामान का आयात सरकारी आज्ञानुसार ही किया जा सकता था। जर्मनी ने ऊन व कोयला भरने के लिए पाट के थैलों का प्रयोग बन्द कर दिया। इटली में पाट के साथ अन्य देशी रेशे काम में लेने का प्रयत्न होने लगा। इन सब कारणों से बहुत से विदेशी राष्ट्रों में पाट की माँग कम होने लगी। माँग की यह कमी तीन रूपो में प्रकट हुई। (१) आस्ट्रेलिया, कनाडा और अर्जेनटाइना में अनाज को भंडारों से वैसे ही जहाजों में लादने की प्रणाली से बोरों की माँग कम कर दी गई। (२) बहुत से देशों में—युद्ध के कारण जब भारतीय माल मंगवाने की असुविधा होगई तो पाट के बोरों के स्थान पर कागज, कपड़े, सन व पटुए के थैले काम में लाये जाने लगे; विशेष कर आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्वीडन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका व दक्षिणी अफ्रीका संघ में। (३) न्यूजीलैंड में टिनैक्स (Tenax) नामक रेशों से बने थैले में ऊन भरा जाने लगा। रूस और अर्जेन्टाइना में अलसी के रेशों का प्रयोग बढ़ा। पूर्वी अफ्रीका में सिसल (Sisal), मैक्सिको में हैनेक्वीन (Henequin), कोलंबिया में फिक़ (Fique), ब्राजील में करोआ (Caroa), स्पेन में एस्पार्टो घास (Esparto Grass), इटली में जूलीटल (Julital), और जावा में रॉसेला (Rosella); न्यूजीलैंड में टैनैक्स (Tenax) नामक पौधों के रेशे से बोरे बनाये गये हैं। जूट के अन्य प्रतिस्पर्धी मनीला हैम्प (Manila hemp), बो-स्ट्रिंग हैम्प (Bow string hemp), नौफ (Knof), बिम्ली जूट (Bimli jute) और बम्बई हैम्प (Bombay hemp) हैं। किन्तु अभी तक भारत के जूट के बने बोरों से किसी भी अन्य प्रकार के बोरे लाभदायक सिद्ध नहीं हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जूट सस्ता होता है और इसके बने बोरों को बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है अथवा पुराने बोरों को बेचकर धन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी भी मौसम तथा किसी भी प्रकार इन्हें उठाया-रक्खा जा सकता है। अतएव इन्हीं गुणों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जूट के स्थान पर अन्य पदार्थों का स्थानापन्न किया जाना लाभदायक नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त पाट के रेशे के उपभोग की अनेक संभावनायें हैं। खोज से इसके नये उपयोग मालूम किये जा सकते हैं। भारतीय केन्द्रीय जूट समिति ने पाट के निम्न नये उपयोग ढूँढ़ निकाले हैं :—

(i) **घर निर्माण में**—ताप निरोधक, प्लास्टिक की मेज कुर्सियाँ, कालीन, पर्दे, सोफा आदि पर बिछाने के कपड़े, कम्बल, दीवालों पर टाँगने की वस्तुएँ आदि।

(ii) **यातायात**—मोटर-गाड़ियों की गद्दी का कपड़ा, पानी निरोधक ढक्कन, जीन, रस्सी, डोरी, डांडियों का कपड़ा।

(iii) **उद्योग**—बिजली प्रवाह निरोधक, प्लास्टिक को मजबूत बनाने के लिए।

(iv) **वस्त्र**—चिकने व मुलायम धुले हुए रेशों को ऊन व सू के मिला कर।

विभाजन के फलस्वरूप जूट की यद्यपि सभी मिलें भारत में ही रहीं किन्तु प्रमुख जूट उत्पादक क्षेत्र (जैसोर, पाबना, बोगरा, रंगपुर, माइमैनसिंह, ढाका, फरीदपुर, तिपैरा आदि) पाकिस्तान को चले गए। कुल जूट उत्पादक क्षेत्र के ७५% पाकिस्तान को गए। भारत को १९५१ में ७० लाख गाँठों की आवश्यकता थी इसमें से देश का उत्पादन केवल ३१ लाख टन का ही था। अतः शेष कम पाकिस्तान से आयात के द्वारा पूरी करने तथा देश में ही जूट का उत्पादन बढ़ा कर करने का प्रयास किया गया।

देश में जूट की मांग अधिक होने तथा उत्पादन कम होने से जूट की खेती बढ़ाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। ये प्रयत्न उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और केरल राज्य में सफल हुए हैं। द्वितीय योजना के अन्तर्गत १९५५-५६ में ४० लाख गाँठों से बढ़कर १९६०-६१ में ५५ लाख गाँठों का उत्पादन होने का अनुमान था। तृतीय योजना में यह उत्पादन ७५ लाख गांठों का अनुमानित किया गया है। अतः कुछ समय के लिए फिर भी जूट को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ेगा। जूट उत्पादक विभिन्न राज्यों की हलचलों का एकीकरण हेतु भारत-सरकार ने एक केन्द्रीय देख-रेख सगठन स्थापित किया है। यह संगठन प्रति एकड़ अधिक उपज करने फसल की किस्म को सुधारने का ध्यान रखता है। इसके लिए यह अच्छे बीज उर्वरक, खेती की अच्छी प्रणालियों, पौधों की रक्षा, डंठल सड़ाने के लिए अधिक तालाबों की व्यवस्था करने पर भी ध्यान देता है।

भारत सरकार ने इस उद्योग की उन्नति के लिए जूट जाँच आयोग की स्थापना की थी। इस आयोग ने निम्न मुख्य सुझाव दिये हैं :—

(१) भविष्य में पाट की खेती बढ़ाने के बजाय उसकी किस्म को सुधारने पर अधिक ध्यान दिया जाय। (२) नई मिलों के खोलने की आज्ञा प्रदान न की जाय, क्योंकि इस समय जो मिलें हैं उनके पास ही पूरा काम नहीं है, अतः लक्ष्य यह होना चाहिए कि वर्तमान मिलें पूरा काम करें। (३) पटसन की बिक्री के बारे में बम्बई की East Indian Cotton Association की तरह ही पटसन के लिए भी एक व्यापारिक संस्था स्थापित की जाय। (४) कलकत्ते में जूट के गोदामों का उचित उपयोग, काम के घंटे घटाकर सप्ताह में ४५ घंटे करने, विविध प्रकार का माल बनाने, तथा उद्योग के विकास और उन्नति के लिए अपने ही साधनों पर निर्भर रहना तथा लाभांश कम रखना आदि अन्य सुझाव दिए गये हैं। (५) मशीनों को समय-समय पर बदला जाय तथा व्यय को घटाया जाय।

तृतीय योजना काल में इस उद्योग के आधुनीकरण की जो योजना कार्यान्वित की जा रही है उसके फलस्वरूप पुराने ढंग के लपेटने वाले उपकरणों के स्थान पर अधिकांशतया अधिक शक्ति वाली नयी मशीनें लग जायेंगी और उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए और अधिक प्रीबीमिंग उपकरण लगाये जायेगे। बनाई की विधियों का आधुनीकरण करने के लिए या तो विद्यमान चौड़े करघों की कॉप चेन्जर्स और वार्प-स्टाप मोशन से अर्द्ध-स्वचालित चक्राकार करघों द्वारा उनका स्थान लिया जायेगा अथवा स्वचालित शटल-रहित करघों द्वारा उनका स्थान लिया जायेगा। जूट के नये बाजारों और उसके उपयोग के नये क्षेत्रों का पता लगाया जायेगा।

(३) रेशमी वस्त्र उद्योग (Silk Industry)

रेशम उद्योग की प्राथमिक अवस्था रेशम के कीड़े को पालने की तथा दूसरी अवस्था रेशमी वस्त्रों के उत्पादन की है।

रेशम के कीड़े पालने के उद्योग की दो शाखायें हैं : (१) कुटीर उद्योग पर कोयों का उत्पादन करना, और (२) कच्चे रेशम का उत्पादन कारखानों में करना।

शहतूत के वृक्ष लगाने और रेशम के कीड़े पालने का कार्य दोनों साथ साथ किये जाते है। भारत में रेशम के कीड़ों की चार जातियाँ पाई जाती हैं—शहतूत रसर, एरी और मूगा। देश का तीन चौथाई **शहतूती रेशम** मैसूर से प्राप्त होता है, और शेष बंगाल, जम्मू-काश्मीर, **पंजाब**, उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम और हिमाचल प्रदेश से। **गैर-शहतूती** रेशम आसाम, बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा से प्राप्त किया जाता है। लगभग १.७२ लाख एकड़ भूमि पर मद्रास, मैसूर, जम्मू-काश्मीर, बंगाल आदि राज्यों में शहतूत के वृक्ष लगाये गए हैं। शहतूती रेशम का उत्पादन लगभग २.५ लाख पौंड का है जबकि गैर-शहतूती रेशम का ७ लाख पौंड और रद्दी रेशम का १.५ लाख पौड। रेशम के कीड़े पालने में लगभग २८ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलता है तथा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लगभग ५० लाख व्यक्ति इस उद्योग पर आश्रित हैं। कुटीर श्रमिकों को लगभग ७ से ८ लाख करोड़ रुपये की शुद्ध आय प्राप्त होती है।

कच्चे रेशम को प्राप्त करने के लिए पाले गए कीड़ों से लिए गए कोयों में से धागे प्राप्त करने हैं और उन्हें चरखी पर काता या लपेटा जाता है। अटेरने की क्रिया में कोयों से लिपटे हुए रेशों को खोल कर उन्हें कच्चे अथवा शुद्ध रेशम के लिए तागे में पिरोया जाता है। कोयों को एक पात्र में उबालने से उनके मसूड़े जो, रेशों को सख्ती से पकड़े होते हैं, नरम पड़ जाते हैं और रेशे ढीले पड़ जाते हैं। इस प्रकार उन्हें तागे में पिरो कर लड़ी बनाई जाती है।

रेशम तैयार करने तथा उससे कपड़े आदि बनाने का कार्य करने वाले १९३ कारखाने हैं जिनमें १४०,९६६ तकुए लगे हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त कुटीर इकाइयों के अन्तर्गत भी यह उद्योग अधिक किया जाता है। रेशमी कपड़े का उद्योग कलात्मक और सुरुचिपूर्ण कपड़े तैयार करता है। सादा ड्रिल, साटिन, क्रेप, जार्जेट, सिलाइयों पर बुना हुआ कपड़ा, पैरेशूट के हिस्से, टेलीफोनों और बेतार-रिसीवरों के बिजली विरोधक कायल, दौड़ लगाने की कारों के टायर तो यह उद्योग तैयार करता ही है किन्तु इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के रेशमी अंगोछे, साड़ियाँ, दुपट्टे, वस्त्र, पर्दे और बिछाने की चादरें, मेजपोश आदि मुख्य रूप से तैयार किये जाते हैं।

भारत में रेशम उद्योग १७ वीं एवं १८ वीं शताब्दी से किया जा रहा है किन्तु आधुनिक मिल उद्योग का विकास २० वीं शताब्दी से ही आरम्भ होता है। कई कारणों से इस उद्योग की प्रगति धीमी रही है :—

(१) इसके उत्पादन में कलात्मक दृष्टि का अधिक महत्व है जो आधुनिक ढंग के कारखानों में संभव नहीं हो सकती। (२) कुशल मजदूर और उपयुक्त मशीनरी का भारत में अभाव रहा है। (३) अलग-अलग राज्यों में रेशमी वस्त्रों की मांग

भी एक सी नहीं है क्योंकि जगह-जगह की पोशाक और रुचि में भी बहुत अन्तर है। रेशमी वस्त्र विशेषकर दक्षिणी भारत और उत्तर के धार्मिक केन्द्रों में ही अधिक व्यवहृत किये जाते हैं। पिछले वर्षो से इस उद्योग के मार्ग में कई कठिनाइयाँ आई हैं। संसारव्यापी आर्थिक मंदी; स्वर्णमान के परित्याग के बाद मुद्रा के मूल्यों में ह्रास; चीन, जापान, इटली तथा फ्रांस आदि देशों के माल की प्रतिस्पर्द्धा तथा विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा अपने-अपने देश के रेशम उद्योग को मिलने वाली सहायता के कारण भारत के रेशम के उद्योग को पर्याप्त हानि हुई है।

आधुनिक ढंग के कारखाने मुख्यत: जम्मू-काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, मद्रास, मैसूर, और गुजरात में केन्द्रित है, जहाँ कच्चा रेशम का उत्पादन और आबादी की मांग अधिक है।

जम्मू काश्मीर में श्रीनगर में रेशम का सबसे बड़ा कारखाना है जो बिजली की शक्ति द्वारा कार्य करता है। रेशम के कीड़े पालने और रेशम की कुकड़ी बनाने के काम में चतुर कुशल मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है और यहाँ इन कामों को करने वाले कुशल मजदूर मिल जाते हैं। यहाँ की सरकार भी इस उद्योग के विकास में बड़ी रुचि रखती है। यहाँ उत्तम प्रकार की रेशमी साड़ियाँ तथा सूट के कपड़े बनाये जाते हैं।

रेशम बुनने के अन्य मुख्य केन्द्र **पंजाब** में अमृतसर, जालंधर तथा लुधियाना; **उत्तर प्रदेश** में मिरजापुर, वाराणसी, प्रतापगढ़, शाहजहाँपुर; **पश्चिमी बंगाल** में बांकुडा, मुर्शिदाबाद, विश्नूपुर, हावड़ा, पनीहाट्टी, सोनामुखी, चौबीस परगना और बरहामपुर, **मद्रास** में सलेम, तंजौर, तिरूचिरापली, कोयम्बटूर और पांडीचेरी; **महाराष्ट्र** में नागपुर, पूना, सांगली, अम्बरनाथ, हुबली, शोलापुर: **गुजरात** में अहमदाबाद, सूरत, भावनगर, पोरबन्दर, **बिहार** में भागलपुर और **मैसूर** में बंगलोर, बेलगांव, कोलार, मैसूर तथा चन्नापटना है।

रेशम के उद्योग की कुछ समस्याएँ बड़ी विषम हैं। रेशम के उद्योग का विकास पूर्ण रूप से हो सके इसके लिए रेशम-कमेटी (Silk Panel) ने कई बातों में सुधार करने के आदेश दिए हैं—यथा (१) शहतूत की खेती की उन्नति (क्योंकि रेशम का कीड़ा उसी पर पलता है)। (२) बढ़िया बीज की जो रोग-मुक्त हो, पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता। (३) रेशम के कीड़ों की बीमारियों का नियंत्रण। (४) रेशम के कीड़े पालने, बीज तैयार करने, संगठन और बिक्री का प्रबन्ध। (५) रेशम कातने के उद्योग का विकास और उप-प्राप्ति (by-products) का पूरा-पूरा उपयोग और उपर्युक्त सब मामलों में विभिन्न राज्यों में सहयोग।

इन सब दिशाओं में आवश्यक सुधार करने के लिए १९४९ में एक **केन्द्रीय रेशम बोर्ड** (Central Silk Board) की स्थापना की गई। यह बोर्ड शहतूत, रेशम के कीड़े पालने तथा कच्चे रेशम के अटेरन में सुधार करने वाली योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु देश के रेशम के कीड़े पालने वाले विभिन्न राज्यों को वित्तीय और तकनीकी सहायता जुटाता है तथा रेशम के कीड़े पालन सम्बन्धी क्रिया-विधियों के अनुसंधान के काम को विशिष्ट क्षेत्रों में बढ़ावा देता है। **केन्द्रीय रेशम के कीड़े पालने के गवेषणा केन्द्र** बरहामपुर, चन्नापटना, और कन्नानों (मद्रास) में तथा रेशम के कीड़ों

की पुरानी फसलों को सुरक्षित रखने और नई फसलें तैयार करने के लिए श्रीनगर में **केन्द्रीय रेशम अंडा केन्द्र** की स्थापना की गई है। निर्यात के पूर्व रेशम को प्रमापीकरण करने के केन्द्र वाराणसी, बंगलौर, नई दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में चालू किये गए हैं।
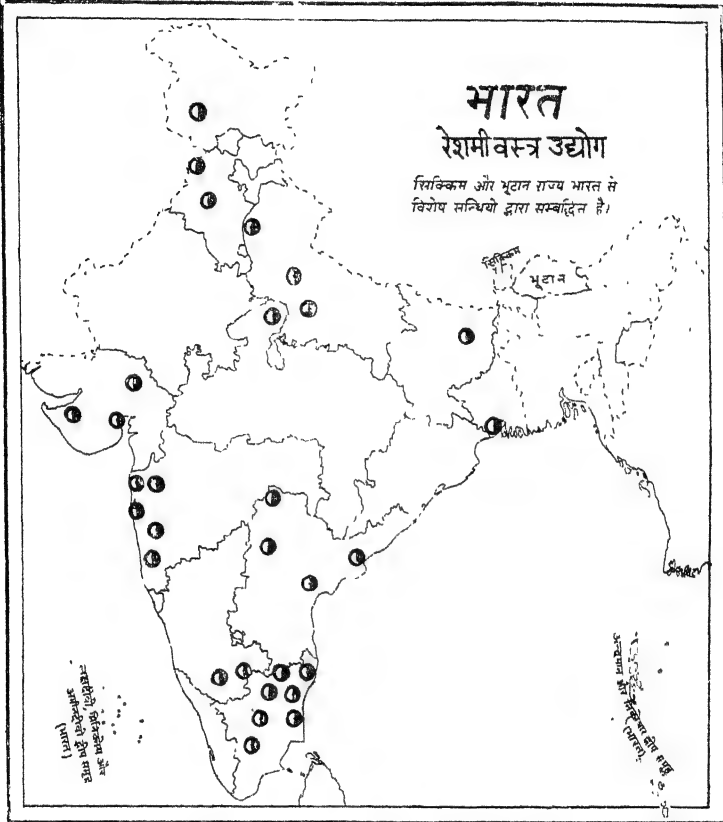
चित्र १८५. भारत में रेशमी वस्त्र उद्योग

प्रथम योजना काल में इस उद्योग के लिए ५६.८९ लाख रुपया का अनुदान राज्य सरकारों को दिया गया। द्वितीय योजना में ४.०८ करोड़ रुपये तथा तृतीय योजना में ७ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इस राशि के फलस्वरूप कच्चे रेशम का उत्पादन १९५१ में २५.३४ लाख पौंड से बढ़ कर १९५५ में ३१.५७ लाख पौंड और १९६० में ३५.८० लाख पौंड हो गया। द्वितीय योजना में उत्पादन लक्ष्य ४० लाख पौंड का तथा तीसरी योजना में ५२.५० लाख पौंड का रखा गया है। देश में ३० से ४० लाख पौंड कच्चे रेशम की मांग होती है।

भारत से रेशमी कपड़े-मुख्यतः ब्लाऊज के कपड़े, पोशाक की सामग्री, बड़े माल, कलात्मक डिजाइनों वाले जरीदार वस्त्र, रोमन महिलाओं द्वारा ओढ़ा जाने

वाला चोगा आदि-निर्यात किए जाते है। १९५५ में २३·९० लाख रुपये के वस्त्र निर्यात किए गए तथा १९६२ में ६·०७ लाख रुपये के।

रेशमी वस्त्रों का सबसे बड़ा ग्राहक श्रीलंका है। उसके बाद सिंगापुर, हांग-कांग, मलाया, पू० अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमरीका और पश्चिमी यूरोपीय देश हैं।

टैरिफ-बोर्ड के अनुसार रेशम के उद्योग की उन्नति के लिए निम्न कार्य करने चाहिए :—

(१) रेशम सम्बन्धी खोज के लिए पर्याप्त सुविधा और साधन की व्यवस्था; (२) विदेशी रेशम के कीड़ों के लिए एक केन्द्रीय बीज के स्टेशन की स्थापना; (३) रेशम के कीड़ों के रोगों का कानून द्वारा नियंत्रण; (४) रोग मुक्त बीजों का धीरे-धीरे अनिवार्य उपयोग; (५) चर्खा द्वारा रेशम की रील तैयार करने के काम में सुधार; (६) विदेशों में विशेषज्ञों द्वारा शिक्षा की व्यवस्था; (७) रेशम के उद्योग के लिए आवश्यक मशीनरी तथा दूसरा सामान प्राप्त करने में सरकार द्वारा सहायता आदि।

(४) रेयन उद्योग (Rayon Industry)

१९३९ के पूर्व इस उद्योग से भारतीय प्रायः अपरिचित थे किन्तु जब सूती वस्त्र उद्योग को संरक्षण देने के निमित्त सरकार ने रेयन के वस्त्र पर आयात-कर बढ़ा दिया तभी से इस उद्योग का वास्तविक विकास बढ़ा है।

छलनी प्रणाली से रेयन तैयार करने का पहला कारखाना **ट्रावनकोर रेयन लि०** रेयनपुरम (केरल) १९५० में और दूसरा कारखाना **नेशनल रेयन कारपोरेशन लि०** कल्याण (महाराष्ट्र) में चालू हुआ। नकली रुई तैयार करने का कारखाना १९५३ में और कताई प्रणाली से रेयन बनाने का कारखाना १९५४ में चालू हुआ। यह कारखाना सिर सिल्क लि०, सिरपुर (आंध्र) में है। चौथा कारखाना १९५४ में **ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी** के नाम से नागदा में खोला गया। इसके बाद द्वितीय योजना काल में बम्बई में **सैनचुरी रेयन्स** मिल, कानपुर में **जे० के० कारपोरेशन**; तथा कलकत्ता में **केशोराम** कोटन मिल्स की स्थापना की गई।

प्रथम योजना काल में रेयन के केवल तीन मिल थे जिनकी उत्पादन क्षमता २·२ करोड़ पौंड रेयन के सूत की थी। १९६१ के अंत में सब मिला कर ६ इकाइयाँ थी जिनकी कुल उत्पादन क्षमता ५·२ करोड़ पौंड की होगई।

इस उद्योग में ५० करोड़ रुपये की पूँजी लगी है और लगभग ३ लाख मजदूर काम करते हैं। इसमें ४५,००० शक्ति चालित करघे और ७५,००० हस्त चालित कर्घे कार्य कर रहे हैं।

रेयन तैयार करने की प्रणाली

रेयन तैयार करने की कई प्रक्रियाएँ हैं—यथा नाइट्रो-सिल्क (Nitro-Silk) कुपर-अमोनियम (Cuper-ammonium), विस्कोज (Viscose) या छलनी द्वारा तार निकाल कर सूत तैयार करने की प्रणाली और एसीटेट प्रणाली (Acetete)। किन्तु इनमें सबसे मुख्य और अधिक प्रचलित विस्कोज प्रणाली है। भारत में एक

कारखाने को छोड़कर शेष सभी कारखाने इसी प्रणाली का प्रयोग करते हैं। केवल एक कारखाना नकली रुई से कातने की प्रणाली प्रयोग कर रहा है।

छलनी प्रणाली से रेयन तैयार करने में सबसे पहले लुब्दी की तहों को एक यन्त्र के अन्दर कास्टिक सोडा के घोल में डाल कर तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य होता है लुब्दी की तहों पर जो भी गन्दगी है, वह कास्टिक सोडा में घुल कर उतर जाए और साथ ही लुब्दी में कास्टिक सोडा का कुछ अंश भी मिल जाए। इसके बाद एक यन्त्र में रख कर उसमें अलकली सैलूलोज मिलाया जाता है जिससे उसके बहुत से टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों को नरम करने के लिये उन्हें विशेष बाल्टियों में रखा जाता है और उस समय तापमान तथा वातावरण की आर्द्रता को नियन्त्रित रखा जाता है। इसे नरम करने का उद्देश्य सैलूलोज और कस्टिक सोडा की मंद रसायनिक क्रिया का नियन्त्रण करना तथा उसे एक स्थिति विशेष तक ले जाना है। इसके बाद टुकड़ों को मथने के लिये ले जाया जाता है। और उसमें कुछ मात्रा में कारबन-डाई-सल्फाइड मिलाया जाता है। इस मिश्रण क्रिया के बाद अलकली, सैलूलोज तथा कारबन-डाइ-सल्फाइड मिश्रित पदार्थ को नियंत्रित स्थितियों के अन्दर घुले हुए कास्टिक सोडे में मिलाया जाता है। इस प्रकार बने विस्कोज घोल को पकाने के कमरे में ले जाते हैं, जहाँ इसे उपयुक्त यन्त्र के द्वारा छाना जाता है और छने हुए पदार्थ को उसी कमरे में तब तक रखा जाता है जब तक कि वह कातने योग्य नहीं हो जाता। रेयन की छलनी प्रणाली में कताई की क्रिया वस्त्र मिलों की कताई से सर्वथा भिन्न है। दोनों क्रियाओं में 'कताई' शब्द को छोड़ कर और किसी बात में साम्य नहीं। विस्कोज घोल को छलनी जैसे कताई यन्त्र में डाला जाता है जिसमें पतले-पतले अनेक छेद होते हैं। रेयन का जितना पतला धागा बनाना हो उतने पतले छेद उस छलनी यंत्र में रखे जाते हैं। छलनी यंत्र को गंधक के तेजाब, सोडियम सल्फेट, जिन्क ऑक्साइड आदि के प्रवाहित घोल में डूबा हुआ रखा जाता है। जब कास्टिक सोडा युक्त विस्कोज घोल उस घोल से मिलता है जिसमें गंधक का तेजाब भी है और जिसमें छलनी यंत्र डूबा हुआ होता है, तब गंधक के तेजाब के प्रभाव से कास्टिक सोडा का अंश समाप्त हो जाता है और सैलूलोज धागे का रूप धारण कर लेता है। इस धागे को एक घूमते हुए बर्तन में एकत्र किया जाता है और एक बर्तन हटाकर दूसरा बर्तन लगाते जाते हैं। इन बर्तनों में आये धागे की गुच्छियों को ठंडे और गरम पानी से धोया जाता है, गंधक के तेजाब के अंश निकाले जाते है, उसमें ब्लीच लगाई जाती है और तब उचित उपकरण से उसे सुखाया जाता है। इन गुच्छियों को बाद में ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ उनमें हल्की आर्द्रता आ जाए और इसके बाद ये बेची जाती हैं। कभी-कभी इनकी घुण्डियाँ आदि बनाकर बेचा जाता है।

छलनी प्रणाली से रेयन का तार बनाने में कताई क्रिया से पहले जो प्रक्रिया प्रयुक्त होती है वही प्रक्रिया नकली रुई प्रणाली से रेयन तार बनाने में प्रयुक्त होती है। दोनों प्रणालियों से तार बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाली कताई क्रियाओं में बहुत अन्तर है। नकली रुई प्रणाली में छलनी यंत्र छलनी प्रणाली के छलनी यंत्र से बहुत बड़ा होता है—उसमें कई हजार छेद होते हैं। (छलनी-प्रणाली के अनुसार बनने वाले सूत के छलनी यन्त्र में २० से लेकर १०० तक छेद होते हैं) रेयन के तारों के रूप में जो सैलूलोज निकलता है, उसको बिना लपेटे एक जगह ही एकत्र

किया जाता है । (छलनी प्रणाली के अनुसार छलनी यन्त्र से निकलने वाले तार को घूमते बर्तन में लिया जाता है जिससे वह लिपट जाता है) एकत्रित सैलूलोज को आवश्यक लम्बाई वाले रेशों के रूप में काट लिया जाता है, उसे धोकर और सुखाकर गाँठें बाँध दी जाती हैं। रेशे वाले इन रेयन तन्तुओं को 'नकली रुई' भी कहा जा सकता है। इस नकली रुई को उपयुक्त बुनाई मिल में काता जाता है और रेयन का सूत बनाया जाता है। कुछ सीमा तक यह नकली रुई लम्बे रेशे वाली रुई का स्थान ले सकती है।

छलनी प्रणाली के रेयन-कारखानों में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख कच्चे माल है—लुब्दी, कास्टिक सोडा और गंधक। एक पौंड रेयन बनाने के लिये १·१५ पौंड लुब्दी, १ पौंड कास्टिक सोडा और ०·६ पौंड गंधक की आवश्यकता होती है। इस समय भारत रेयन बनाने के लिये इन सभी कच्चे मालों का आयात कर रहा है।

इस समय **विस्कोम-धागा** तैयार करने वाली इकाइयाँ ये हैं :—

इंडियन रेयन्स,	वैरावल (गुजरात)	८० लाख पौंड (उत्पादन क्षमता)
साऊथ इंडिया विस्कोज लि०	मेतूपलायम (मद्रास)	८० ,,
नेशनल रेयन्स कार्पोरेशन	बम्बई	४० ,,
बड़ौदा रेयन्स	बडौदा	६० ,,
सैनचुरी रेयन्स	बम्बई	५० ,,
जे० के० रेयन्स	कानपुर	८० ,,
ट्रावनकोर रेयन्स	रेयनपुरम	११२ ,,
दिल्ली क्लाथ मिल्स	दिल्ली	८० ,,

रेयन के लिए लुब्दी बनाने वाले कारखानों का वितरण इस प्रकार है :—

ग्वालियर रेयन्स	मव्रर (केरल)	४५,००० टन क्षमता,
मैसूर रेयन ग्रेड पल्प मिल्स	सिदालगुडी (मैसूर)	३०,००० ,,
वैस्ट कॉस्ट पेपर मिल्स	दादेली (मैसूर)	२७,०००
संडुटा फूड एण्ड फाइबर्स	हरीहर (मैसूर)	३,००० ,,
रोहतास इंडस्ट्रीज	बदारपुर (आसाम)	६०,००० ,,
ट्रावनकोर रेयन्स	रयनपुरम	३,६०० ,,
सैलूलोज प्रोडक्ट आफ इंडिया	काथवाड़ा (गुजरात)	७,२०० ,,
ओरियन्ट ट्रेडिंग कंपनी	भडौंच	३,६०० ,,
जे० के० मिल्स	कानपुर	३,००० ,,
हिन्दुस्तान रेयन पल्प कं०	कल्याण	३,६०० ,,
नेशनल रेयन्स	ननजनगॉड (मैसूर)	३०,००० ,,
मंजू श्री इन्डस्ट्रीज	कछार	५४,००० ,,

रेयन के धागे (विस्कोस और एसीटेट) का उत्पादन १९६२ में लगभग २०० लाख कि० ग्रा० था। इस वर्ष रेयन के कुल धागे का उत्पादन २७० लाख कि० ग्रा० हुआ जबकि १९६१ में यह उत्पादन २३५ कि० ग्रा० था। इसी प्रकार

विस्कोस स्टैपल रेशे का उत्पादन ३२१ ५ लाख कि० ग्रा० था, जबकि १९६१ में यह उत्पादन २६०·६ लाख कि० ग्रा० था।

रेयन के मोजे, साड़ियाँ, शर्टिंग, चद्दरें, बनियान, टाइयाँ, पैरेशूट का कपड़ा बनाया जाता है। सौंदर्य, मजबूती तथा सस्तेपन के कारण यह अब बहुत लोकप्रिय हो गया है।

१९५२ में रेयन, कते हुए रेयन और उसके वस्त्रों का निर्यात ४४ लाख मीटर का हुआ जिसका मूल्य ६६ लाख रुपया था। १९६२ में निर्यात की यह मात्रा ८३७ लाख मीटर और मूल्य ९११ लाख रुपया था।

तृतीय योजना में इस उद्योग के लक्ष्य इस प्रकार रखे गये हैं :—

	१९६०-६१	१९६५-६६
उत्पादन-क्षमता		
रेयन सूत	५·२ करोड़ पौंड	१४·० करोड़ पौंड
स्टैप्ल धागा	४·८ ,,	७·५ करोड़ पौंड
सैलूलोज फिल्म	३,६०० टन :	५,४०० टन
रेयन की लुब्दी	—	१ लाख टन
उत्पादन		
रेयन सूत	४·७ करोड़ पौंड	१४·० करोड़ पौंड
स्टैप्ल धागा	४·८ ,,	७·५ ,,
सैलूलोज फिल्म	२,०८४ टन	५४०० टन
रेयन की लुब्दी	—	९०,००० टन

रेयन का सूत और धागा निश्चित मात्रा में बनाने के लिए तीसरी योजना काल में ८२,००० टन रेयन की लुब्दी, ८०,००० टन कास्टिक सोडा, ६०,००० टन गंधक, ६४ लाख गैलन एल्कोहल तथा १३,००० टन लिंटर (सूती) की आवश्यकता होगी। इनके अतिरिक्त नीला-थोथा, अमोनिया, सोडियम हाड्रोक्साइड, आदि की भी आवश्यकता होगी। ये सभी वस्तुयें विदेशों से आयात की जायेंगी।

(५) ऊनी वस्त्र उद्योग (Woollen Textile Industry)

ऊनी वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत चार क्षेत्र शामिल किये जाते हैं : (१) संगठित मिल क्षेत्र; (२) कुटीर क्षेत्र, (३) मोजे और बनियान आदि बनाने वाली इकाइयाँ, (Hosiery units), तथा (४) कुटीर उद्योग पर चलने वाले कारखाने।

संगठित मिल क्षेत्र

भारत में सबसे पहली ऊन की मिल १८७६ ई० में कानपुर में स्थापित की गई जहाँ कच्चे माल और विस्तृत बाजार दोनों ही की सुविधा थी। दूसरी मिल १८८२ ई० में धारीवाल में खोली गई और फिर बम्बई में १८८२ ई० में तथा बंगलौर में १८८६ में अन्य ऊनी मिलें स्थापित हुईं। प्रथम महायुद्ध के बाद से ही ऊनी मिलों की संख्या में वृद्धि हुई है। १९३९ में ऊनी कपड़े की केवल १५ मिलें

भारत में थीं। किन्तु द्वितीय महायुद्ध काल में यह संख्या बढ़ कर २४ हो गई। इनके अतिरिक्त ५० छोटे-छोटे कारखाने भी थे। १९५६ में ऊन कातने के १५ और शक्ति-चालित कर्घों के ७९ कारखाने और कताई तथा बुनाई दोनों काम करने वाले २५ संयुक्त मिलें थीं। इसमें से १२ मिल गुजरात-महाराष्ट्र में, ९४ पंजाब में, ४ यू० पी० में, ५ पश्चिमी बंगाल, १ काश्मीर और ३ मैसूर में थीं। इन मिलों में लगभग ९·५ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है और १७,००० व्यक्ति काम करते हैं।

नीचे की तालिका में मिलों की संख्या और उनकी उत्पादन क्षमता बताई गई है :—

राज्य		मिलों की संख्या	सामान्य ऊन के तकुए (wollen Spindles)	श्रेष्ठ ऊन के तकुए (woorsted Spindles	शक्ति तकुए (power looms)
मैसूर		३	१०,४७८	—	२२१
उत्तर प्रदेश		४	१२,३५८	९,६७२	३६८
काश्मीर		१	१,५४२	१,५००	१८
प० बंगाल		५	१,३८०	५,०९४	७६
मध्य भारत		१	५१६	—	२०
पंजाब		९४	२०,४०२	२५,१८२	२,५५८
दिल्ली		१	—	—	—
गुजरात-महाराष्ट्र		१३	१३,३५६	५४,९६९	६८९
योग	१९५६ में	१२२	६१,०३२	५३,५४४	३९५०
	१९६१ में	१२२	५३,५४४	१२४,६६४	४,०००

ऊनी वस्त्र उद्योग की प्रमुख क्रियायें ये है :—

(i) कच्ची ऊन की छटाई; (ii) धुलाई तथा सफाई; (iii) कताई और बुनाई ऊन के लच्छे बनाने के लिए कच्ची ऊन की सफाई अपेक्षित होती है जिससे उन लच्छों का उपयोग ऊनी वस्त्र उद्योग के वर्स्टेड कताई अनुभाग द्वारा किया जा सके। कताई के दो तरीके होते है। ऊनी कताई तथा घटिया कताई।

कताई के मिलों में काम आने वाले ऊन को निम्न प्रकार से बाँटा जाता है:—

(१) **साधारण भारतीय ऊन—मोटी ऊन**—जो कालीन और गलीचे बनाने के काम आती है। **उम्दा ऊन**—ट्वीड, रग, सर्ज, सूत और ओवरकोट का कपड़ा आदि में।

(२) **पहाड़ी ऊन**—निम्न प्रकार के होजियरी के सामान तथा फौज के लिए कम्बल, ओवर कोटिंग तथा हल्के शाल आदि बनाने में।

(३) **दोगली ऊन**—वारस्टेड, ट्वीड और मध्य प्रकार के होजियरी सूत आदि बनाने में।

(४) **मैरीनो** ऊन--फ्लैनेल, गैबरडीन, बैडफोर्ड, उत्तम ऊनी कपड़े आदि बनाने में।

भारत में ऊन से तीन प्रकार का सूत बनाया जाता है। **वास्टड सूत** जिसका उपयोग उत्तम किस्म के कपड़े, होजयरी की वस्तुयें तथा शाल बुनने में किया जाता है। **ऊनी सूत**, जिसका उपयोग मध्यम श्रेणी की वस्तुयें, गलीचे कम्बल, ट्वीड तथा कोट-पेंट के कपड़े बुनने में होता है। **शॉडी सूत** जो मुख्यत: कम्बल बनाने में काम में लाया जाता है।

नीचे की तालिका में इनसे सम्बन्धित आंकड़े दिए गए हैं :—

	१९५६	१९६१	१९६५
		स्थापित क्षमता	
ऊनी कपड़े के तकुए	६१,०३२	५३,५५४	७२,६००
वर्स्टेड कपड़े ,,	९६,४१६	१२४,६६४	१२९,४००
कम्बल के ,,	—	११,४१९	१९,०८७
योग तकुए	१५७,४४८	१८९,६३७	२०२,००५
शक्ति चालित कर्घे	४,५०१	४,०००	४,०००

१९५६ में ऊनी कपड़े बनाने की कुल क्षमता १५० लाख गज की थी यह १९६१ में २०० लाख गज की होगई तथा सूत उत्पादन की क्षमता ४६० लाख पौंड की थी।

ऊनी कपड़े और ऊन के सूत का उत्पादन इस प्रकार है :—

	१९५५	१९६०
ऊनी कपड़ा	१३९·६ लाख टन	१५२·७ लाख टन
ऊनी सूत	१०२·८ ,,	१५०·६ ,,
वर्स्टेड सूत	१०४·१ ,,	२७८·० ,,

भारत में ऊनी कपड़े की मांग अधिक होने से कपड़ा आदि विदेशों से आयात किया जाता है। १९५६ मे आयात का मूल्य २६७ लाख रुपया था, १९६० में यह केवल २५ लाख रुपये का था जबकि निर्यात व्यापार इसी अवधि में ३९९ लाख रुपये से बढ़ कर ५२६ लाख रुपये का होगया। भारत से गलीचे, कालीन तथा ऊनी कपड़े का निर्यात मुख्यत: आस्ट्रेलिया कनाडा, इंगलैंड, सं० रा० अमरीका को होता है। विदेशों से होजियरी ऊनी और वर्स्टेड कपड़े, शाल तथा लोइयाँ आयात भी की जाती हैं।

तृतीय योजना काल में कुल मिला कर ३५० लाख गज कपड़े तथा ५२० लाख पौंड सूत की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए श्रीनगर में १, बम्बई में ३, लुधियाना में ४, कलकत्ता में ३, अमृतसर में १ और जयपुर में १ नई इकाई और स्थापित की जायगी।

कच्चे माल की पूर्ति और तैयार माल के बाजारों के दृष्टिकोण से पंजाब, काश्मीर तथा दक्षिणी भारत की स्थिति बहुत अनुकूल है। इन्हीं क्षेत्रों में ऊनी

को पूर्णत: बिजली पर ही निर्भर रहना पड़ता है। भारतीय ऊन की मिलों को एक कठिनाई का और मामना करना पड़ता है और वह यह है कि गर्म कपड़ों की मांग देश में केवल शीत-ऋतु में ही होती है। अत: वर्ष के क्षेत्र भाग में मजदूरों को मिलों में काम नहीं मिल सकता कुछ मिल तो सरकारी ठेकों पर निर्भर रहते हैं जिससे वे पूरी वर्ष कुछ कर्य करते ही रहते हैं।

ऊनी होजयरी उद्योग

इस उद्योग से सम्बन्धित लगभग ९०० छोटी इकाइयाँ हैं जिनमें से ८०० के लगभग लुधियाना में केन्द्रित हैं और शेष उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, दिल्ली और महाराष्ट्र में। इनमें स्वेटर, मफलर, ऊनी बनियान, मोजे, सर्ज, शाल-दुशाले आदि बनाये जाते हैं।

ऊनी काल और नमदा उद्योग (Woollen Carpets & Felt Industry)

नी कालीनों और नमदों का उद्योग देश का एक महत्वपूर्ण हस्त-शिल्प उद्योग है जिसके अन्तर्गत सादे, नमूनेदार, नक्कासीदार तथा बेलबूटेदार ऊनी कालीन और फर्शी बिछा तैयार दिये जाते है। इनके कुल उत्पादनों का ९०% निर्यात किया जाता है। इस समय इनको तैयार करने वाले २३३ कारखाने है जिनमें ९,२६१ श्रमिक कार्य करते हैं। इनकी कुल उत्पादन क्षमता ३३·४१ लाख वर्ग गज की है जिसका मूल्य ८३४·१८ लाख रुपया है। १९५७ में इनके निर्यात से ४·१८ करोड़ रुपया मिला था। १९६२-६३ में यह मूल्य ४·६३ करोड़ रुपये का था।

ऊनी कालीन बनाने वाले प्रमुख केन्द्र ये हैं :—

उत्तर प्रदेश : मिर्जापुर, मेडोही, गोपीगंज, खमरिया, शाहजहाँपुर, आगरा।
राजस्थान : जयपुर, देवगढ़।
जम्मू-काश्मीर : श्रीनगर।
आंध्र प्रदेश : एलुरू, वारंगल।
पंजाब : अमृतसर, पानीपत।
बिहार : ओवरा, दाऊनगर।
मध्य प्रदेश : ग्वालियर।
मैसूर : बंगलौर, मैसूर, बलारी।

विभिन्न राज्यों में कारखानों का वितरण, उत्पादन क्षमता, और वास्तविक उत्पादन १९६२-६३ में इस प्रकार था[११] :—

राज्य	कारखानों की संख्या	श्रमिक	उत्पादन क्षमता (लाख वर्गगज)	वास्तविक उत्पादन मात्रा (वर्ग गज)	मूल्य (लाख में)
उत्तर प्रदेश	११९	४,४६९	३०,०००	१६,२२,८०९	३८८·३८
जम्मू-काश्मीर	१६	१,८५५	०·२२	—	—

११. उद्योग व्यापार पत्रिका जनवरी १९६४, पृ० ६८३; वही फरवरी, १९६४, पृ० ७७८-७८१.

आंध्र	१६	१,२१६	१·२०	४२,५४५	६·५६
मद्रास	६	८५६	०·६२	—	—
राजस्थान	७	४७८	०·७१	२२,१६८	६·६८
मैसूर	७	१५३	०·३१	—	—
पंजाब	५	१०६	०·१३	३,०४०	२·६६
बिहार	५४	१२८	०·२२	—	—
योग	२३३	६,२६१	३३·४१	—	—

इस उद्योग में देशी और विदेशी कच्ची ऊन तथा हाथ-कते और मिलकते दोनों ही प्रकार के ऊनी सूत का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय कालीनों का सबसे बड़ा ग्राहक ब्रिटेन है। अन्य देशों की स्थिति-क्रम से इस प्रकार है: संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, प० जर्मनी, डेनमार्क, न्यूजीलैंड, नार्वे स्विटरजरलैंड और रूस हैं।

देश में इस उद्योग के लिए उत्तम किस्म की कच्ची ऊन प्राप्त करने के लिए वर्ण-शंकर भेड़ों का विकास किया जा रहा है। उदाहरणार्थ:

(i) हिमालय क्षेत्र के **बनिहाल** अनुसंधान केन्द्र में मैरीनो भेड़ की वर्ण-शंकर नस्ल तैयार की गई है जिससे १·६ से १·८ कि० ग्राम ऊन प्राप्त होता है जबकि देशी भेड़ से केवल ० ७ कि० ग्राम ही।

(ii) **हिसार** में बीकानेर भेड़ों की नस्ल तैयार की गई है।

(iii) दक्षिण के प्रायद्वीप पर एम २ वर्ग की **मैरीनों** भेड़ों और देशी भेड़ों को मेल करा कर नई नस्ल प्राप्त की गई है, जिससे प्रति भेड़ १·५ कि० ग्राम ऊन प्राप्त होता है जबकि देशी भेड़ से केवल ०·३ किलो ग्राम।

(iv) नीलगिरी में **रोमनी मार्श** भेड़ों से देशी भेड़ों का मेल कराकर वण शंकर जाति से १·३६ किलोग्राम ऊन प्राप्त किया गया है, जबकि देशी भेड़ का उत्पादन केवल ०·४५ कि० ग्राम ही है।

(v) इसी प्रकार बढ़िया किस्म को बकरियों की नस्ल भी तैयार की जा रही है जिससे बढ़िया ऊन प्राप्त हो सके।

अध्याय ३३

उपभोक्ता उद्योग (३): खाद्य उद्योग

(FOOD INDUSTRIES)

शक्कर उद्योग (Sugar Industry)

उद्योग का विकास एवं वर्तमान स्थिति—आधुनिक ढंग से शक्कर बनाने का उद्योग बीसवीं शताब्दी से ही उन्नत हो पाया है। इसके पूर्व १८४१-४२ में उत्तरी बिहार में डच लोगों द्वारा तथा १८९९ ई० में अंग्रेजों द्वारा शक्कर फैक्टरियाँ स्थापित करने के प्रयास किये गए थे किन्तु वे असफल रहे। १९०३ से इस उद्योग का वास्तविक विकास आरम्भ होता है। यद्यपि भारत गन्ने का आदि स्थान रहा है किन्तु फिर भी १९३१ के पूर्व तक शक्कर का आयात बड़ी मात्रा में विदेशों से किया जाता रहा। १९३२ में जब इस उद्योग को संरक्षण दिया गया तभी से शक्कर के उत्पादन में प्रगति होने लगी। १९३१ में केवल ३१ फैक्ट्रियाँ कार्य कर रही थीं जिनका उत्पादन १·५८ लाख टन का था। संरक्षण के चार वर्षों के बाद ही यह संख्या बढ़ कर १३५ हो गई और शक्कर का उत्पादन ९·१९ लाख टन। इसके बाद से उद्योग का विकास भली भाँति हुआ है। संरक्षण १९५० में पूर्ण रूप से उठा लिया गया था। १९५१ में भारत में शक्कर के १३८ कारखाने थे जिनकी उत्पादन क्षमता १५ लाख टन की थी। इस वर्ष ११ लाख टन शक्कर तैयार की गई। १९५६ में कारखानों की संख्या १४७ हो गई तथा उनकी उत्पादन क्षमता २१·४ लाख टन और वास्तविक उत्पादन २०·२९ लाख टन का था। १९६१ में कारखानों की संख्या १८२ थी। इसमें से १४ कारखाने बन्द पड़े थे। उत्पादन की क्षमता २२½ लाख टन की थी जबकि वास्तविक उत्पादन २९·७ लाख टन का किया गया। द्वितीय योजनाकाल में ५२ नई फैक्टरियों की स्थापना की गई थी तथा ७१ वर्तमान कारखानों का विस्तार किया गया।

नीचे की तालिकाओं में शक्कर उद्योग सम्बन्धी आवश्यक आंकड़े दिये गए हैं :—[1]

विभिन्न राज्यों में शक्कर का उत्पादन (००० टनों में)

राज्य	१९६०-६१	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६३-६४ का लक्ष्य
उत्तर प्रदेश	१,४२७	१,२०४	८४८	१,५००
बिहार	३८५	३५९	१७०	३५०
महाराष्ट्र	५२३	५०७	५१५	६५०

1. Commerce Annual, 1963, p. A 196.

ंध्र प्रदेश	१८३	१८८	१७२	२५०
गरात	२७	३४	—	—
द्रास	१३२	१०६	९०	१४०
सूर	१२१	१३८	११३	१५०
जाब	१२३	८३	६२	१४०
ध्य प्रदेश	३६	३०	३४	४०
न्य सभी राज्य	७३	९६	१५६	८०
ारत का कुल योग	३,०३०	२,७३०	२,१६०	३,३००

शक्कर उद्योग की उत्पादन क्षमता, कार्यशील दिवस, वास्तविक उत्पादन, निर्यात एवं आंतरिक उपभोग (लाख टनों में)[2]

वर्ष	उत्पादन क्षमता	कार्यशील दिवस (२२ घन्टे का दिवस)	उत्पादन	निर्यात	आंतरिक उपभोग	प्रतिव्यक्ति उपभोग (पौंड में)
१९५५-५६	१६·०	१४५	१८·६२	—	१९·७	१०·९
१९५६-५७	१७·३	१५०	२०·२९	१·४६		
१९५७-५८	१८·७	१२९	१९·७८	०·३७		
१९५८-५९	२०·१	११८	१९·१९	०·२९	२०·८	११·१
१९५९-६०	२१·१	१३८	२४·२२	—	२०·२	१०·५
१९६०-६१	२४·१	१६६	२७·३३	२·०५	२१·२	१०·५
१९६१-६२	२४·७	१४६	२१·६०	३·३३	२५·८	१०·८
१९६२-६३	—	—	३३·००	३·५०	२६·०	१०·८

१९६६ में शक्कर की उत्पादन क्षमता ३५ लाख टन तथा उत्पादन भी ३५ लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए ३७ नई फैक्ट्रियाँ और स्थापित की जायेंगी। इससे कुल फैक्ट्रियों की संख्या बढ़कर २३५ होंगी—इसमें से ६५ सहकारी क्षेत्र में होंगी। इस उत्पादन की प्राप्ति के लिए अनुमानतः ३५० लाख टन गन्ना; ३½ लाख टन चूना; ३·५ लाख टन कोयला; २६,००० टन कोक और २६,००० टन गंधक की आवश्यकता होगी।

भारत शक्कर के उत्पादन में आत्म निर्भर हो गया है अतः अब विदेशों से शक्कर का आयात सर्वथा बन्द है। यहाँ से १९६१-६२ में ३½ लाख टन तथा १९६०-६१ में ३ लाख शक्कर का निर्यात किया गया है जबकि १९५७-५८ में केवल ५०,००० टन शक्कर का ही निर्यात किया गया। १९६३-६४ में ४½ लाख टन निर्यात का लक्ष्य रखा गया था। शक्कर का निर्यात भारत के निकटवर्ती देशों को ही (विशेषतः ब्रह्मा, पाकिस्तान, मलाया, द० पूर्वी एशिया) होता है।

2. Agricultural Situation in India, August, 1963, pp. 329-330

शक्कर उद्योग की विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

(१) संगठित उद्योगों में सूती वस्त्र उद्योग के बाद सबसे महत्वपूर्ण उद्योग यही है। १९५८ की गणना के अनुसार आधुनिक ढंग की फैक्ट्रियों द्वारा तैयार की गई शक्कर का मूल्य १३६ करोड़ रुपये का था।

(२) इस उद्योग में ११८ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा १·३ लाख श्रमिक कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त २ करोड़ किसान लगभग ५९ लाख एकड़ भूमि पर ९७ लाख टन गन्ना पैदा करने में लगे हैं।

(३) सरकार को आबकारी शुल्क द्वारा ५४ करोड़ रुपये दानेदार शक्कर से तथा ४७ लाख रुपये खांडसारी शक्कर से प्राप्त होते हैं।

(४) शक्कर के निर्यात से विदेशी मुद्रा की भी प्राप्ति होती है।

पिछले ३ वर्षों से शक्कर की माँग की पूर्ति नहीं हो पा रही है। शक्कर की माँग में जो वृद्धि हुई है उसके पीछे अनेक कारण हैं विशेषकर जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होना, प्रति व्यक्ति पीछे आय में वृद्धि तथा भोजन सम्बन्धी आदतों में परिवर्तन होना है।

१९५९-६० में शक्कर का उत्पादन २४·२ लाख टन का था, अगले वर्ष यह बढ़कर २७·३ लाख टन हो गया किन्तु १९६१-६२ में इसमें बड़ी कमी हो गई—केवल २१·६ लाख टन। इस अभाव के कारण इस प्रकार थे :—

(१) गन्ना का उत्पादन कम होने से मिलों को पेरने के लिए कम गन्ना मिला। १९६०-६१ में गन्ने का उत्पादन १०४·४७ लाख टन था। यह १९६१-६२ में केवल ९७·३२ लाख टन हुआ। उत्पादन में इसी कमी का कारण उत्पादन काल प्रतिकूल में मौसम का होना तथा उत्तर प्रदेश में सूखा अधिक वर्षा और कीड़े लग जाने के कारण अधिकांश फसल नष्ट हो गई।

(२) गुड़ बनाने के लिए गन्ने का अधिकाधिक उपयोग किया जाने लगा, इससे शक्कर बनाने के लिए कम गन्ना मिला फलस्वरूप गन्ने की पेराई का मौसम भी कम होगया।

(३) सरकार की निर्यात नीति के कारण विदेशी मुद्रा की प्राप्ति के लिए शक्कर का निर्यात किया गया। इससे आंतरिक उपभोग के लिए उपलब्ध मात्रा कम हो गई।

उद्योग का स्थापन

समस्त देश के लगभग ६५% कारखाने उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों में स्थित हैं, जिनसे कुल उत्पादन का लगभग दो-तिहाई प्राप्त होता है। गंगा की मध्यवर्ती घाटी में ही इस उद्योग का विशेष रूप से केन्द्रीयकरण होने के निम्नांकित कारण हैं :—

(१) गंगा नदी की घाटी की उर्वरा शक्ति अधिक है जिसमें लाई हुई मिट्टी में गन्ने के उत्पादन में बहुत कम व्यय होता है। भूमि अधिक उपजाऊ होने के कारण मुख्य गन्ने की पट्टी में गन्ना बिना ही सिंचाई के पैदा किया जाता है। पश्चिमी भागों में नल-कूपों द्वारा सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं।

(२) चूँकि गन्ना तोल में घट जाने वाला पदार्थ है (गन्ने में ९ से १२% शक्कर मिलती है। खेत काटने के २४ घन्टे के अन्दर ही यदि गन्ने को पेरा जाय तो अधिक शक्कर निकलती है) अतः इस प्रदेश के अधिकांश कारखाने ऐसे ही स्थानों में स्थित हैं जहाँ गन्ना शीघ्र ही प्राप्त हो सकता है।

(३) शक्कर बनाने के लिए गन्ना पेरने के बाद जो पाते (Bagasse) बच रहते हैं उन्हीं को भट्टों में जलाकर शक्ति उत्पादन करते हैं। उत्तर भारत में इस पाते के अतिरिक्त बहुत से कारखानों में (जो तराई प्रदेश के निकट हैं) लकड़ी भी जलाने के लिए आसानी से मिल जाती है अतः कोयले के क्षेत्रों से दूर पर भी इनकी शक्ति सम्बन्ध समस्यायें अधिक कठिनाई नहीं देतीं।

(४) शक्कर के कारखानों में जल की आवश्यकता को नहरों अथवा नल-कूपों द्वारा पूरा किया जा सकता है।

(५) शक्कर के धन्धे में कुशल मजदूरों की आवश्यकता बहुत कम होती है। अकुशल मजदूर गाँवों में सस्ती मजदूरी पर सब कहीं यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं।

(६) उपभोग के लिए विस्तृत बाजार भी पास ही है अतः कारखानों से उपभोग के केन्द्रों तक शक्कर पहुँचाने में अधिक व्यय नहीं होता।

(७) उत्तर भारत में बड़े-बड़े चौरस मैदान हैं जिनमें गन्ने की फसलों के चक के चक बना दिये जाते हैं। यह बात आधुनिक बड़े-बड़े शक्कर के मिलों की माँग पूरी करने के लिये बहुत आवश्यक है। जबकि दक्षिणी भारत में जहाँ कि टूटे हुए पठार हैं (बम्बई-दकन के कुछ मिलों की जागीरों को छोड़ कर) गन्ने की फसलों के घने चक कहीं नहीं पाये जाते। महाराष्ट्र और मद्रास में लगभग ९५ और ९७% तथा मैसूर और आंध्र में १००% गन्ना सिंचाई द्वारा पैदा किया जाता है। इन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन भी अत्यन्त सीमित हैं इसलिए यहाँ गन्ने के बड़े-बड़े चक नहीं बनाये जा सकते।

नीचे की तालिका में उद्योग का वितरण बताया गया है (१९६०-६१):—

राज्य	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन क्षमता (लाख टनों में)
उत्तर प्रदेश	७१	९·२५
बिहार	२९	३·२७
महाराष्ट्र	२७	४·०६
आंध्र प्रदेश	१३	१·५८
मैसूर	९	०·९७
मद्रास	९	१·०६
पंजाब	६	०·९४
मध्य प्रदेश	६	०·३६

गुजरात	३	०·३२
राजस्थान	३	०·२२
प० बंगाल	२	०·१६
आसाम	१	०·०६
केरल	१	०·०६
उड़ीसा	१	०·०३
पांडेचेरी	१	०·१५
कुल योग	१८२	२२·५२

शक्कर के उत्पादन में उत्तर प्रदेश का स्थान प्रथम है। यहाँ ७१ शक्कर की मिलें हैं।
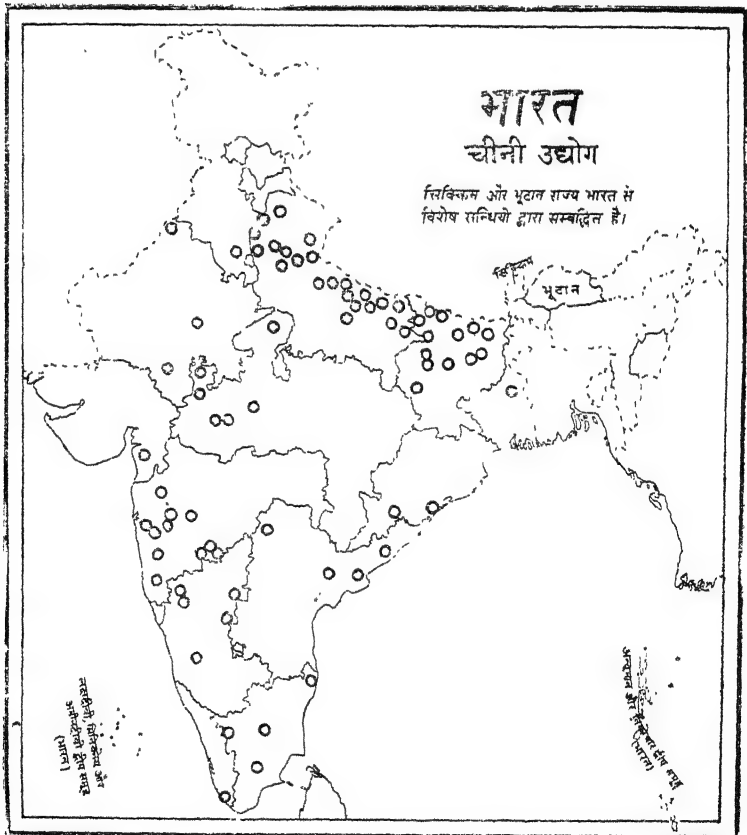
चित्र १८७. भारत में चीनी उद्योग

(i) **उत्तर प्रदेश** में उपयुक्त भौगोलिक दशाओं के कारण (जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है) ही शक्कर की मिलों का केन्द्रीकरण अधिक हुआ है। यहाँ शक्कर की मिलों के दो विशिष्ट क्षेत्र हैं :

(१) तराई क्षेत्र के अन्तर्गत गोरखपुर तथा रुहेलखण्ड कमिश्नरी के ऊपरी जिले आते हैं। इस क्षेत्र में मुख्य केन्द्र इस प्रकार है :—

जिला	केन्द्र
देवरिया	भटनी, बेतालपुर, गौरीबाजार, देवरिया, कैप्टेनगंज, लक्ष्मीगंज, कोला, मेरवा, छितौनी आदि
गोरखपुर	सरदारनगर, पिपराइच, घुघली, आनन्दनगर, रामचन्द्री, सिसवा बाजार
बस्ती	बस्ती, वाल्टरगंज, वरहनी, खलीलाबाद, मुन्दरवा
गोंडा	नवाबगंज, तुलसीपुर, बलरामपुर
बाराबंकी	बाराबंकी, बरहावल
जौनपुर	शाहगंज
सीतापुर	हरगाँव, महौली, बिसवाँ
हरदोई	हरदोई
बिजनौर	बिजनौर, धामपुर, स्योहारा

(२) गंगा और यमुना का दोआब क्षेत्र के अन्तर्गत मेरठ कमिश्नरी के दक्षिणी पश्चिमी जिले आते हैं। इस क्षेत्र के मुख्य शक्कर के केन्द्र ये हैं :—

जिला	केन्द्र
सहारनपुर	सहारनपुर, लकसर, देवबन्द
मुजफ्फरनगर	मनसूरपुर, खतौली, शामली
मेरठ	मेरठ, दौराला, मुहीउद्दीनपुर, मोदीनगर, सिंभावली
नैनीताल	किच्छा, काशीपुर
मुरादाबाद	अमरोहा, मुरादाबाद
बुलन्दशहर	बुलन्दशहर
फैजाबाद	मोतीनगर
एटा	नेवली
कानपुर	कानपुर
पीलीभीत	पीलीभीत
बरेली	बरेली, बहेड़ी
इलाहाबाद	भूँसी, नैनी

(ii) **बिहार राज्य** का स्थान शक्कर के उत्पादन में दूसरा है। यहाँ शक्कर की २६ मिलें हैं। यह उद्योग विशेषतः उत्तरी बिहार में केन्द्रित है। जहाँ सारन चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा आदि जिलों में शक्कर को अनेक मिलें हैं। अब कुछ मिलें दक्षिणी बिहार में भी खोली गई हैं। विशेषतः बिहटा, बक्सर, जामी और डालमियानगर में। इस प्रकार यहाँ निम्न जिलों में शक्कर की मिलें पायी जाती हैं :—

जिला	केन्द्र
सारन	सीतलपुर, मरहौरा, महाराजगंज, पंचरुखी, सिवान, सिधौलिया, सासामुखा, गोपालगंज, हथवा
चम्पारन	बड़ा चकिया, मोतीहारी, सुगौली, मझौलिया, चम्पतिया, लौरिया, नरकटियागंज, हरिनगर, नरायणपुर
मुजफ्फरपुर	मोतीपुर, दीघा
दरभंगा	सकरी, लोहाट, तारसराय, हसनपुर रोड
गया	गुरारू, बारसलीगंज
शाहाबाद	विक्रमगंज, डालमियानगर, बक्सर
पटना	बिहटा

(iii) **महाराष्ट्र** में शक्कर की मिलें मुख्यतः मनमाड़, पूना, नासिक, अहमदनगर, मिराज, शोलापुर और कोल्हापुर आदि जिलों में है। मुख्य केन्द्र मालीनगर श्रीपुर, हरगाँव; तिलकनगर, बेलवाड़ी, सक्करवाड़ी, लक्ष्मीवाड़ी, चंगदेवनगर; रावलगाँव, कोल्हापुर, कित्तूर, उगर-खुर्द और ढोला है।

(iv) **पश्चिमी बंगाल** में चीनी की मिलें मुर्शिदाबाद जिले में बेलडांगा, नादिया जिले में प्लासी और चौबीस परगना में हावड़ा व बशीरघाट हैं।

(v) **मद्रास** में शक्कर की मिलें उत्तरी अरकाट, दक्षिणी अरकाट, मदुराई और कोयम्बटूर, तिरूचिरापल्ली जिलों में हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र क्रमशः मेलपट्टी, नेलीकूपम, पोरादूर और पुगालूर हैं।

(vi) **आंध्र प्रदेश** में अधिकांश शक्कर की मिलें उत्तरी सरकार प्रदेश में स्थित हैं। यहाँ के मुख्य क्षेत्र वैजवाड़ा, हानपेट, कोदे, सामलकोट, पीथापुरम, हैदराबाद, सीतानगरम्, बोबीली तथा अनाकापाले हैं।

(vii) **मध्य प्रदेश** में चीनी की मिलें सिहोर, डाबरा, जावरा, पालंदा, सारंगपुर, महीदपुर, कोटरकोरा आदि स्थानों में है।

(viii) **पंजाब** में हमीरा, फागवाडा अमृतसर, धुरी, भोगपुर, जगाधरी, पानीपत व रोहतक में शक्कर की मिलें हैं।

(ix) कुछ मिलें उड़ीसा, राजस्थान, केरल तथा मैसूर राज्यों में भी हैं।

पिछले कुछ समय से शक्कर के उद्योग का स्थापन दक्षिणी भारत में मद्रास और आंध्र में भी होने लगा है। शेष विश्व के प्रतिकूल भारत ८० से ९० प्रतिशत गन्ना अर्द्ध-उष्ण कटिबन्ध (Sub-Tropical Regions) से प्राप्त करता है जहाँ सर्दी

की ऋतु में नीचा तापक्रम रहने के कारण पतले किस्म का गन्ना पैदा होता है किन्तु दक्षिणी भारत पूर्णतः अयनवृत्तीय क्षेत्र में स्थित होने के कारण इसे उत्तरी भारत की अपेक्षा कुछ विशेष लाभ प्राप्त है। जैसे :—

(१) अयन वृत्तीय क्षेत्र के गन्ने से अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र के गन्ने की अपेक्षा अधिक मिठास और रस की मात्रा प्राप्त होती है। साधारणतः यहाँ १० मन गन्ने से १ मन शक्कर बन जाती है। दक्षिणी भारत के कई क्षेत्रों में तो ९ मन गन्ने से १ मन शक्कर बनाई जाती है जबकि उत्तरी भारत में ११ से १३ मन गन्ने की आवश्यकता पड़ती है।

(२) गन्ने से शक्कर बनाने का मौसम भी जलवायु सम्बन्धी कारणों से उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत में कुछ लम्बा होता है। उत्तरी भारत में औसत कार्यशील समय ११५ दिन का होता है, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में १३० दिन का। अतः दक्षिणी भारत में ऊपरी खर्चों का औसत भी घट जाता है तथा सहायक उद्योग स्थापित होने में भी सहायक होते है।

(३) दक्षिणी भारत में चीनी के कारखाने गन्ना स्वयं पैदा करते हैं अतः आवश्यकतानुसार गन्ना प्राप्त किया जा सकता है। बहुत से कारखाने चीनी के मौसम के बाद मूँगफली का तेल निकालने लगते हैं।

किन्तु दक्षिणी भारत के चीनी उद्योग ने अधिक विकास नहीं किया है क्योंकि (१) यहाँ गन्ने के छोटे-छोटे खेत होने से सिचाई की बड़ी असुविधा रहती है। (२) इसके अतिरिक्त जिन क्षेत्रों में सिचाई के साधन उपलब्ध हैं वहाँ किसान के सम्मुख गन्ने के अतिरिक्त अन्य व्यापारिक फसलें मूँगफली, तम्बाकू, कपास, मिर्ची और केले हैं—जो आपस में प्रतिस्पर्धा करती है। (३) अयन-वृत्तीय क्षेत्र में गन्ना पैदा करने के खर्चे और स्थानों की अपेक्षा अधिक है। महाराष्ट्र में सिचाई की मंहगाई और खाद की कीमती होने से यह खर्चा उत्तरी भारत से भी अधिक पड़ता है।

पश्चिमी बंगाल में शक्कर उद्योग के विकास के लिए उपयुक्त सँभावनायें हैं। यह उत्तर प्रदेश और बिहार की अपेक्षा अच्छी स्थिति में है क्योकि :—

(१) बंगाल की जलवायु उत्तर प्रदेश व बिहार की अपेक्षा गन्ने के लिए अधिक अनुकूल है। (२) यहां गन्न की प्रति एकड़ उपज अधिक है जब उत्तर प्रदेश व बिहार में गन्ने की प्रति एकड़ उपज १५ या १६ टन है तो पश्चिमी बंगाल में यह ३० से ४० टन है। (३) शक्ति के लिए कोयला मिल जाता है। रेलों द्वारा यह कोयला मिलों तक आसानी से लाया जा सकता है। (४) स्थानीय बाजार चीनी के उद्योगपतियों और उपभोक्ताओं दोनो के लिए लाभदायक है।

किन्तु पश्चिमी बंगाल के कई जिलों में गन्ने की प्रतिस्पर्धा में चावल, जूट, नील आदि की पैदावार ने गन्ने के क्षेत्र को काफी हानि पहुँचाई है। इसके अतिरिक्त बंगाल की मिलों को बाहरी स्पर्धा का भी सामना करना पड़ता है क्योंकि कलकत्ता के बन्दरगाह द्वारा विदेशों से चीनी आयात की जा सकती है।

भारत की शक्कर के उत्पादन को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) आधुनिक शक्कर बनाने वाली मिलें जो मशीनों से गन्ने पेर कर दाने-

दार शक्कर बनाती है; (२) आधुनिक फैक्टरियाँ जो गुड़ से शक्कर बनाती हैं और (३) शक्कर बनाने का पुराना तरीका जिसको खांडसारी (Khandsari) शक्कर कहा जाता है। इन सबमें प्रथम प्रकार का शक्कर बनाने का तरीका उत्तम और सस्ता है। हमारे देश में अधिकांश शक्कर इसी तरीके द्वारा बनाई जाती है। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय शक्कर के कारखानों और खाँडसारी से इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होने लगी है कि वह भारत की माँग से अधिक होती है अतः भारत अब शक्कर के मामले में आत्म-निर्भर हो गया है। मिलों में पेले गये गन्नों के ५५ प्रतिशत से गुड़ और खांडसारी शक्कर बनाई जाती है तथा २५ प्रतिशत से दानेदार शक्कर।

शक्कर उद्योग की समस्यायें

इस उद्योग के मार्ग में कई प्रकार की कठिनाइयाँ हैं जिनमें से मुख्य यह हैं :—

(१) भारतीय मिलों को पर्याप्त मात्रा में गन्ना नहीं मिलता और जो गन्ना मिलता है वह बढ़िया प्रकार का नहीं होता तथा उसमें रस की मात्रा भी कम होती है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत के मोटे गन्ने में मिठास का अंश अधिक होता है। यहाँ १० मन से भी कम गन्नों में १ मन शक्कर निकल आती है। किन्तु उत्तरी भारत में ११ से १३ मन गन्नों में १ मन शक्कर बैठती है। शक्कर की मिलों को पर्याप्त मात्रा में गन्ना नहीं मिलने का मुख्य कारण यह है कि बहुत-सा गन्ना गुड़ पैदा करने में उपयोग में आ जाता है।

(२) गन्ने की प्रति एकड़ उपज बहुत ही कम है। भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज क्यूबा की $\frac{1}{3}$, जावा की $\frac{1}{4}$, और हवाई की $\frac{1}{5}$ है। गन्ने की खेती के तरीकों में उन्नति करने के साथ-साथ यह आवश्यक है कि गन्ने की खेती का दक्षिण में अधिक प्रचार हो जहाँ प्रति एकड़ पीछे अधिक पैदावार होती है। सिंचाई की सुविधा देने, उत्तम बीज काम में लाने, अच्छी तथा पूरी मात्रा में खाद का प्रयोग करने, कीड़ों और बीमारियों पर नियंत्रण करने और कृषि के वर्तमान वैज्ञानिक साधनों द्वारा करने से गन्ने की प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

(३) गन्ना पैदा करने वाले प्रदेश अधिकतर मिलों के पास नहीं हैं जिससे गन्ना खेतों से मिलों तक पहुँचता है जब तक बहुत सा रस सूख जाया करता है। इसके अतिरिक्त खेतों से मिलों तक गन्ना ले जाने के लिए यातायात के साधनों की भी कठिनाई रहती है। पश्चिमी देशों की तरह हमारे यहाँ बहुत थोड़ी मिलें स्वयं गन्ना पैदा करती हैं। यहाँ गन्ने की खेती किसानों के हाथ में है जिन पर शक्कर के मिल मालिकों का कोई प्रभाव नहीं होता। इन किसानों के पास छोटे-छोटे खेत होते हैं और बहुधा फसल के तैयार होने पर गन्ना नहीं कट पाते। गन्ने के ये खेत शक्कर की मिलों से बहुत दूर होते हैं। अतः शक्कर की मिलों तक गन्ने को लाने में बड़ा खर्च पड़ता है। इससे शक्कर का उत्पादन व्यय भी बढ़ जाता है।

(४) गन्ने सम्बन्धी कठिनाई के अलावा दूसरी कठिनाई मिलों की कार्यक्षमता से सम्बन्ध रखती है। हमारे मिलों की कार्य-क्षमता काफी नीची है क्योंकि मिलों की मशीनरी आदि पुरानी है तथा मिलों की बनावट व साइज आदि में भी कई दोष हैं। भारतीय मिलों की औसत उत्पादन क्षमता ७००-८०० टन प्रतिदिन की है जब कि

जावा की मिलों की उत्पादन क्षमता १ २०० से १,५०० टन और आस्ट्रेलिया में २,४०० टन प्रतिदिन की है।

(५) कई मिलों की स्थिति ही कच्चे माल और बाजार की दृष्टि से ठीक नहीं मालूम पड़ती। महाराष्ट्र में शक्कर की खपत सबसे अधिक है जबकि उत्पादन सबसे कम है। इसके विपरीत बिहार में उत्पादन बहुत अधिक है किन्तु खपत बहुत कम है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि शक्कर के मिल उद्योग का दूसरे राज्यों में प्रसार हो। शक्कर उद्योग की विकास परिषद के सिफारिश के अनुसार जिन क्षेत्रों में गन्ने की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं होती वहाँ से मिलों का स्थानान्तरण अन्यत्र किया जाये। अब तक पंजाब की हमीरा और उत्तर प्रदेश के किचना स्थानों की मिलें क्रमशः उत्तर प्रदेश में अधिक गन्ना उत्पादक क्षेत्रों मे ले जाई गई है— ये स्थान इकबालपुर और बुलन्दशहर हैं। इसी प्रकार महाराष्ट्र के श्रीपुर और काश्मीर जम्मू के रणवीरसिंहपुरा की मिलें हटा कर क्रमशः पंजाब में हमीरा और धूरी में लगाई गई है।

(६) शक्कर के उत्पादन के परिणामस्वरूप जो शीरा (Molasses) उत्पन्न होता है उसके समुचित उपयोग की भी कोई व्यवस्था हमारे देश में नहीं है। इसको अधिकतर जलाने के काम में लाया जाता है। इससे सामान बाँधने का मोटा कागज, गत्ते व दफ्ती तैयार किये जा सकते हैं। इसी प्रकार शीरा मिला हुआ जल, जो गंदा और बदबूदार होता है, फेंक दिया जाता है किन्तु इसका उपयोग खाद के लिए किया जा सकता है। शीरे से अलकोहल और मैथिलेटिड स्प्रिट तैयार की जा सकती है।

(७) भारतीय चीनी उद्योग की प्रमुख कठिनाई उसके ऊँचे उत्पादन मूल्य का होना है। साधारणतः चीनी का उत्पादन व्यय लगभग २२ रुपया प्रति मन बैठता है, जबकि जावा, मारीशस आदि में यह व्यय १२ से १८ रुपये प्रति मन है। अस्तु भारतीय तट कर आयोग ने इस बात पर जोर दिया है कि शक्कर का मूल्य घटाने के लिए गन्ने की कीमत घटानी चाहिए।

वनस्पति घी उद्योग (Vanaspati Ghee Industry)

वनस्पति घी तैयार करने का पहला कारखाना १९३० में खोला गया। इसका उत्पादन २९८ टन का था। इससे पूर्व इसका आयात यूरोपीय देशों से किया जाता था। १९२८ में २३,८०० टन वनस्पति आयात किया गया। देश में यह उद्योग स्थापित हो जाने से आयात पर शुल्क-कर लगा दिया गया जिससे इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला। द्वितीय महायुद्ध काल में सैनिक और असैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस उद्योग का प्रयत्न सराहनीय रहा और वनस्पति घी का उत्पादन १९३९ में ५२,००० टन से बढ़कर १९४६ में १३५,००० टन हो गया। १९४४ में सरकार ने उद्योग पर नियंत्रण रखने हेतु वैधानिक कार्यवाही की जिसके अन्तर्गत वनस्पति घी उत्पादन नियंत्रक की नियुक्ति की गई और वनस्पति घी नियंत्रण आदेश लागू किया गया। इसके द्वारा उत्पादन की किस्म को प्रतिमानित किया गया और नये कारखानों को स्थापित होने के पूर्व आज्ञापत्र लेना आवश्यक कर दिया गया। युद्ध के उपरांत ५९ कारखानों को नये लाइसेंस दिये गये जिनकी उत्पादन क्षमता ४ लाख टन की थी। १९५१ में ४८ कारखाने स्थापित हो चुके थे जिनकी उत्पादन क्षमता ३·३३ लाख टन तथा वास्तविक उत्पादन १·७२ लाख टन का था। १९५५-५६ में

कारखानों की संख्या ५८ होगई और उनकी उत्पादन क्षमता ४,४५,१०० टन। द्वितीय योजना काल में वनस्पति घी की कुल उत्पादन ४ लाख टन का अनुमानित किया गया था जिसमें से २०,००० टन निर्यात का लक्ष्य था। अतः ४·४५ लाख टन क्षमता पर्याप्त समझी गई। १९६१ में कारखानों की संख्या घट कर ५५ हो
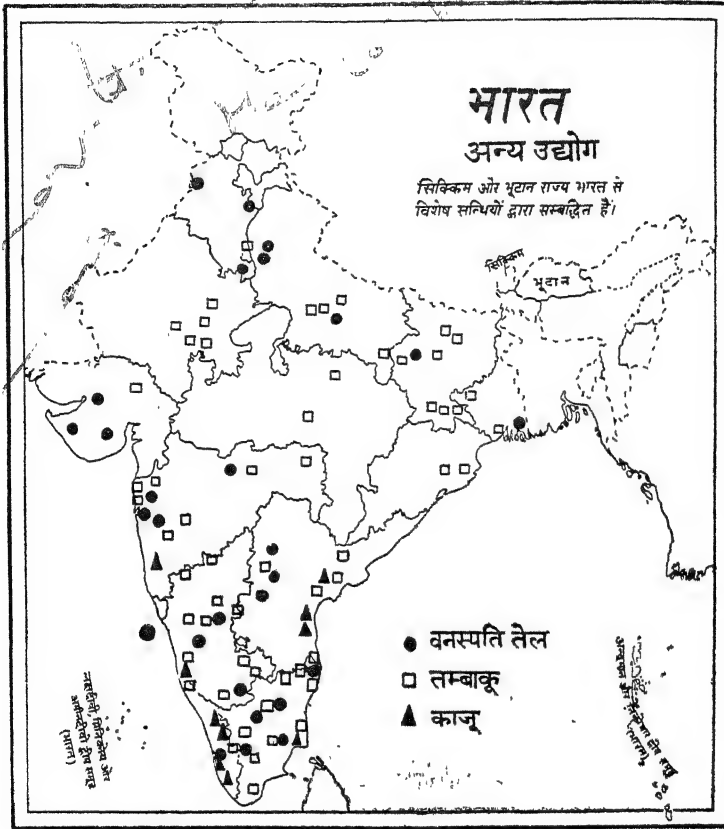
चित्र १८८. भारत में अन्य उद्योग

गई किन्तु उनकी उत्पादन क्षमता ५·४७ लाख टन थी। इस काल में ८ नये कारखानों को लाइसेंस दिये गए, जिससे अतिरिक्त क्षमता ४८,३०० टन की और बढ़ गई। इसी बीच ५ नये कारखानों ने कार्य भी आरम्भ कर दिया। इस प्रकार ५५ कारखानों में से ४२ कार्य शील थे तथा १३ बंद पड़े थे।

नीचे की तालिका में उद्योग का राज्यवार वितरण बताया गया है :—

राज्य	संख्या	उत्पादन क्षमता (००० टनों में)
आंध्र प्रदेश	२	१९·८०
बिहार	१	१३·५०

दिल्ली	२	४२·००
गुजरात	५	३३·१५
केरल	२	५·४०
मध्य प्रदेश	१	११·२५
मद्रास	४	१६·६५
महाराष्ट्र	९	१३२·००
मैसूर	४	१४·४०
पंजाब	२	१२·६०
उत्तर प्रदेश	४	८७·००
प० बंगाल	६	८१·६०
	४२	४७०·२५

वनस्पति घी बनाने में विशेषत: मूँगफली, बिनौले और तिल के तेल का उपयोग किया जाता है। १९५६-५७ में सभी प्रकार के तेलों का उपभोग २.९ लाख टन का था, १९६०-६१ में यह ३·४ लाख टन का हुआ। इसके अतिरिक्त ब्लीचिंग मिट्टी, कास्टिक सोडा, निकल कैटेलिस्ट, कृत्रिम विटामीन ए की भी आवश्यक होती है। ये सब भारत में ही मिल जाते हैं।

वनस्पति घी के कारखाने मद्रास, हॉसपेट, हैदराबाद, पालनपुर, आमलनेर, कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई, बेलघरिया, कानपुर, गाजियाबाद, सिकन्द्राबाद, कालीकट, राखेल, देवनगर आदि स्थानों में हैं। मद्रास की Government Hydrogenation Factory सरकार के नियंत्रण में है। इसकी क्षमता ३,००० टन की है।

नीचे की तालिका में वनस्पति के उत्पादन, उपभोग और निर्यात सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किये गये है :—

वर्ष	कारखाने	उत्पादन (००० टनों में)	उपभोग	निर्यात
१९५६-५७	४१	२६३·८	२५२·९	११·१
१९६०-६१	४३	३३४·९	३२९·७	६·७

१९६५-६६ तक देश में ४·७५ लाख टन वनस्पति घी की आवश्यकता होने का अनुमान है। इसमें से ४·६५ लाख टन उपभोग के लिए और शेष निर्यात के लिए होगा। अतः उत्पादन क्षमता ४·७० लाख टन से बढ़ा कर ५·५० लाख टन की दी जायेगी। इसके लिए ४·३ लाख टन मूँगफली का तेल, २५,००० टन तिल का तेल तथा ८०,००० टन बिनौले का तेल आवश्यक होगा।

भारत से वनस्पति घी का निर्यात मुख्यतः हिन्द महासागर के तटीय देशों को होता है। इन देशों में इसका उपयोग खाना पकाने में किया जाता है। कुछ

मुख्य देशों में प्रति व्यक्ति पीछे वनस्पति घी का उपभोग इस प्रकार है : नार्वे ५२ पौंड; नीदरलैंड्स ४१ पौंड; डेनमार्क ४१ पौंड; प० जर्मनी २८ पौंड; स्वीडेन २७ पौंड; ब्रिटेन २७ पौंड; अमरीका १८ पौंड; कनाडा १७ पौंड, आस्ट्रेलिया ७ पौंड और भारत में २ पौंड।

वनस्पति तेल उद्योग (Vegetable Oils)

भारत विभिन्न प्रकार के तिलहनों का मुख्य उत्पादक है अतः यहाँ कई प्रकार का तेल भी बनाया जाता है। १९६१ में भारत में ३,००० तेल बनाने वाली मिलें थीं। इनके अतिरिक्त शक्तिचालित मिलों की संख्या भी ३,५०० थी। साधारण मिलों की संख्या इस प्रकार है :—

आसाम	७३	पंजाब	५१
बिहार	९२	उत्तर प्रदेश	१२५
गुजरात+महाराष्ट्र	४९५	पश्चिमी बंगाल	३९
मध्य प्रदेश	१०१	मैसूर	२३
मद्रास+आंध्र	८३८	राजस्थान	२९
उड़ीसा	७	केरल	५६
		अन्य राज्य	४०
		कुल योग	३,०००

इन मिलों की तेल-बीज दबाने की क्षमता ६० लाख टन प्रति वर्ष की है। भारत में लगभग ४ लाख देशी घानियाँ भी हैं जिनकी तेल निकालने की क्षमता ७ लाख टन की है। इस प्रकार सम्पूर्ण क्षमता ६७ लाख टन की है। किन्तु देश में तेल-बीजों का उत्पादन ६० से ६५ लाख टन के बीच ही रहता है अतः अधिकांश क्षमता बन्द पड़ी रहती है। नीचे की तालिका में प्रमुख तेलों का उत्पादन बताया गया है।

तेल	१९५०-५१ (००० टन)	१९५६-५७ (००० टन)	१९६०-६१ (००० टन)
मूंगफली	७४८	९८०	९९३
रेंडी	७	४६	३७
तिल	१३६	१३३	८९
राई और सरसों	२२१	२७५	३७०
अलसी	८३	११४	१२२
योग	१,१९५	१,५४८	१,६११

भारत में वनस्पति तेलों का उत्पादन (करडी, जीरा, बिनौले और नारियल सभी को मिलाकर) १,६११,००० टन का होता है। इसका उपयोग खाने में; वनस्पति घी बनाने में, वार्निश, रंग-रोगन, साबुन तथा चिकना आदि करने में और निर्यात करने में होता है।

भारत में लंका, सिंगापुर और मलाया से नारियल का तेल मंगाया जाता है। थोड़ी मात्रा में विदेशों से अलसी का तेल भी आयात किया जाता है। भारत से **रेंडी का तेल** सं० रा० अमरीका, इंगलैंड और आस्ट्रेलिया को; **मूंगफली का तेल** नीदरलैंड्स, इंगलैंड आस्ट्रेलिया, बर्मा, बेल्जियम तथा इटली को तथा **अलसी का तेल** नीदरलैंडस आस्ट्रेलिया और इंगलैंड को निर्यात किया जाता है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत तेल-बीजों और तेल का उत्पादन इस प्रकार होगा :—

	तेल बीज (००० टन)	तेल (००० टन)
मूंगफली	६,७००	१५२८
तिल	८२०	२५३
अलसी	४६०	१३७
राई और सरसों	१४८०	३९७
रेंडी	३४०	१२८
योग	९,८००	२,४४३

सब मिलाकर इस योजना काल में २,९२८ हजार टन तेलों का उत्पादन किया जायेगा।

१९६५ में देश में २८·२६ लाख टन वनस्पति तेल का उपभोग होगा।

मद्यसार उद्योग (Alcohol Industry)

मद्यसार एक परिवर्तनशील औद्योगिक कच्चा माल है जिसे बहुत से उद्योगों में विशेषत: रासायनिक पदार्थ और घुलनशील पदार्थ बनाने के उद्योगों में लाभपूर्वक प्रयोग किया जाता है। मद्यसार शीरे (Molasses) से बनाया जाता है जो कि चीनी उद्योग का एक उपोत्पादन है। मद्यसार का उपयोग न केवल मोटरों में ईंधन के रूप में ही किया जाता है वरन् इसे शराब की भाँति पीया भी जाता है तथा अब इसका उपयोग प्लास्टिक की वस्तुएँ—जैसे पौलीएथीलीन, सैलूलोज एसीटेट और पौलीविनील, क्लोराइड, घुलनशील पदार्थ जैसे बूटानोल, ईथर, एसीटोन, कृत्रिम रबड़ और अनेक महत्वपूर्ण प्रांगारिक रासायनिक पदार्थ भी बनाये जाते हैं।

मोटे तौर पर मद्यसार का उपयोग तीन प्रकार से किया जाता है :—

(क) **मानव द्वारा उपयोग के लिए** कम तेजी वाले द्रव्य से आसवन (it lDas tion) विधि द्वारा निकाले गए पेय के रूप में;

(ख) **औद्योगिक प्रयोजन के लिए**, स्प्रिटयुक्त औषधियों तथा प्रसाधनों के

बनाने के लिए आधारभूत पदार्थ के रूप में तथा घरेलू उपयोग के लिए विकृत स्प्रिट के रूप में; और

(ग) **मोटर इंजन** के मिश्रणों में उपयोग के लिए शक्ति मद्यसार के रूप में।

भारत में पेय मद्यसार बनाने के लिए आसवनियाँ (Distillaries) पिछली शताब्दी में स्थापित की गईं। १८३५ में उत्तर प्रदेश में **कैरू एण्ड कम्पनी** की आसवनि स्थापित की गई जिसमें भबकों के संयंत्रों द्वारा पहली बार १८७५ में परिशोधित स्पिरिट बनाई गई। १९०४ में मद्रास में भी **पैरी एण्ड कम्पनी** द्वारा एक
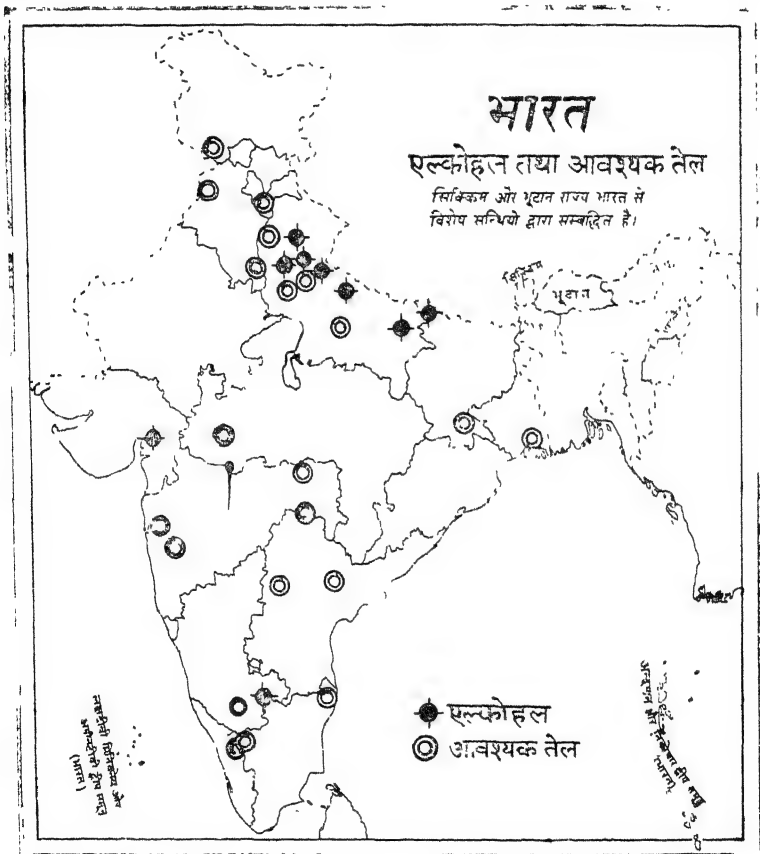
चित्र १८९. भारत में एल्कोहल तथा आवश्यक तेल

आस्वनि स्थापित की गई। १९३९ में आस्वनियों की कुल संख्या २५ और उत्पादन क्षमता ९० लाख गैलन मद्यसार प्रति वर्ष की हो गई। इसके लिए महुआ के फूल, गन्ने का गुड़ व शीरा काम में लाया जाता था। सारा मद्यसार पीने के काम ही आता था। स्पिरिट और औषधियाँ बनाने के लिए परिशोधित स्पिरिट आयात किया जाता था। १९३२ में जब शक्कर उद्योग को संरक्षण दिया गया तो औद्योगिक

तथा शक्ति अल्कोहल का उत्पादन भी आरम्भ किया गया। १९३९ में मैसूर में मंडया तथा १९४० में हैदराबाद में एक-एक इकाई इसके लिए स्थापित की गई। युद्ध काल में इस उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

१९५१ में शक्ति मद्यसार तथा व्यापारिक स्पिरिट से आसवन में १९ एवं पेय तथा औद्योगिक अल्कोहल बनाने में अन्य २५ आस्वनियाँ लगी हुई थी, जिनकी निर्धारित क्षमता प्रति वर्ष १२९ लाख गैलन शक्ति मद्यसार, १२७ लाख गैलन व्यापरिक स्पिरिट तथा ८७ लाख गैलन औद्योगिक मद्यसार की थी। वास्तविक उत्पादन क्षमता से कम ही रहा क्योंकि कुछ क्षेत्रों में शीरे की कमी तथा परिवहन की कठिनाइयाँ उपस्थित हो गई थीं। १९५५-५६ में वार्षिक क्षमता और वास्तविक उत्पादन के लक्ष्य क्रमशः २११ लाख तथा १८० लाख गैलन निर्धारित किये गये। १९५६ में औद्योगिक मद्यसार की १९ इकाइयाँ थी और पेय मद्यसार बनाने वाली २४ इकाइयाँ जिनकी उत्पादन क्षमता १४९ लाख टन शक्ति अल्कोहल तथा ९४ लाख टन औद्योगिक मद्यसार की थी।

दूसरी योजना में ६७ लाख गैलन क्षमता वाली ११ नई इकाइयाँ और स्था- की गई तथा १० का विस्तार किया गया। इस प्रकार १९६१ में औद्योगिक मद्यसार तैयार करने की क्षमता ४०० लाख टन (अथवा ५९९ लाख लिटर) प्रति वर्ष की हो गई।

तीसरी योजना में मद्यसार का उत्पादन क्षमता ३२४० लाख लिटर और वास्तविक उत्पादन १७०० लाख लिटर का रखा गया है। इस अतिरिक्त क्षमता के लिए १२ नई इकाइयों की (३-३ महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में; १-१ आंध्र प्रदेश, बिहार, मैसूर, मध्य प्रदेश, मद्रास और पंजाब में) स्थापना की जायेगी तथा वर्तमान १२ इकाइयों का विस्तार किया जायेगा।

नीचे की तालिका में अल्कोहल का उत्पादन बताया गया है:—

वर्ष	ईंधन में जलने वाला	शुद्ध स्पिरिट (००० गैलन में)	मिश्रित स्पिरिट
१९५५	१०,४३३	५,१५६	२,९८०
१९५६	१०,२७०	२,२१०	३,३८३
१९५७	१०,१३८	५,०९५	३,४७०
१९५८	८,८२६	६,१५२	३,९३३
१९५९	८०,७३६	७,७७०	५,४१८
१९६०[३]	४९,३२७	४१,१७७	२९,३९२
१९६१	५३,६६८	५०,४९१	४०,३५७
१९६२	५२,२१०	६१,६१४	४९,२०६

३. १९६० से उत्पादन हजार लीटर में है।

नीचे की तालिका में मद्यसार उद्योग की इकाइयाँ एवं स्थापन बताया गया है। (१९६१ में) :—

राज्य	संख्या	उत्पादन क्षमता (लाख लीटर में)	प्रमुख केन्द्र
बिहार	४	९९	नरकटियागंज, मरहोवरहा,.
उत्तर प्रदेश	२०	९८५	राजा का शहासपुर, बहेरी, शामली, बरेली, देवरिया, मोदीनगर, कैप्टन-गंज, दरौला, शाहगंज, सिहरा, रामँ-पुर, सरदारनगर, मेरठ, नवाबगंज, हरगाँव, गोला, मनसूरपुर, पिलखानी।
महाराष्ट्र	६	१९१	शक्करवाड़ी, तिलकनगर, वालचंद-नगर, कोल्हापुर, चिलाली, सांगली, नीरा।
मद्रास	१	३२	तिरुचिरापल्ली।
आंध्र प्रदेश	६	१९१	शक्करनगर, बोबिली, तनूकू।
पंजाब	३	८१	जमुना नगर।
मैसूर	२	७७	मंडया, डगर-खुर्द।
राजस्थान	२	२३	उदयपुर, जयपुर।
केरल	३	२७	चलाकुड़ी, शेरतलाई।
मध्य प्रदेश	२	१८	रतलाम।
प० बंगाल	३	७२	कलकत्ता।
संपूर्ण योग	५५	१८०५	

परिशिष्ट

सार्वजनिक औद्योगिक क्षेत्र में भारत-सरकार की बड़ी उद्योग इकाइयाँ

उद्योग	केन्द्र	स्थापना वर्ष
इंजीनियरी उद्योग		
हिन्दुस्तान स्टील, लि०	रांची	१९५३
भारत इलैक्ट्रोनिक्स, लिमिटेड	जलाहाली	१९५४
हिन्दुस्तान एयर क्राफ्टस, लि०	बंगलौर	१९४०
हिन्दुस्तान केबुल्स, लि०	बर्दवान	१९५२
हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, लि०	जलाहली	१९५३
इंडियन् टैलीफोन इंडस्ट्रीज, लि०	बंगलौर	१९४८
नाहन फाऊंड्री, लि०	नाहन	१९५२
नेशनल इंस्ट्रूमैंट्स, लि०	कलकत्ता	१९५७
प्राग टूल्स कारपोरेशन, लि०	हैदराबाद	१९४३
हैवी इलैक्ट्रिक्लस (इंडिया), लि०	भोपाल	१९५६

हैवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन लि०	रांची	१९५८
हिन्दुस्तान शिपयार्ड, लि०	विशाखापट्टनम	१९५२
हिन्दुस्तान टैलीप्रिंटर्स, लि०	मद्रास	१९६०
प्रोटो-टाइप मशीन टूल्स फैक्ट्री	—	१९५३
चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स	चितरंजन	१९४८
इन्टीग्रल कोचल फैक्ट्री	पैरम्बूर	१९५२

रासायनिक उद्योग

फर्टीलाइजर कारपोरेशन आफ इंडिया, लि०	नई दिल्ली	१९५६
हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स, लि०	पिम्परी	१९५४
हिन्दुस्तान इंस्कैटीसाइड्स, लि०	नई दिल्ली	१९५४
हिन्दुस्तान साल्ट्स, लि०	जयपुर	१९५८
हिन्दुस्तान आर्गेनिक कैमीकल्स, लि०	बम्बई	१९६०
हिन्दुस्तान फोटो-फिल्म्स मैन्यूफैक्चरिंग, कं. लि०	मद्रास	१९६०
इंडियन ड्रग्स एण्ड फार्मेस्यूटिकल्स, लि०	—	१९६१
सिद्री फर्टिलाइजर्स एण्ड कैमीकल्स लि०	सिदरी	१९५१
नेशनल न्यूजप्रिंट एण्ड पेपर मिल्स, लि०	नेपानगर	१९५८

खनिज पदार्थ और खनिज उद्योग

इंडियन केअर अर्थ्स लि०	बम्बई	१९५०
नेशनल कोल डैवलेपमेंट कारपोरेशन, लि०	राची	१९५६
ट्रावनकोर मिनरल्स, लि०	क्विलोन	—
इंडियन रिफाइनरीज, लि०	नई दिल्ली	१९५८
कोचीन रिफाइनरीज, लि०	—	—
नेशनल मिनरल डिवलेपमेंट कारपोरेशन, लि०	नई दिल्ली	१९५८
मिनरल्स एण्ड मैल्टस कारपोरेशन आफ इण्डिया, लि०	नई दिल्ली	—
सिल्वर रिफाइनरी, लि०	कलकत्ता	१९५२
नैवेली लिग्नाइट कारपोरेशन, लि०	नैवेली	१९५६
सिंगरेणी कोलीयरीज कं० लि०	सिंगरेणी	१९२०
उड़ीसा माइनिंग कारपोरेशन	भुवनेश्वर	—

यातायात, बन्दरगाह सम्बन्धी

गार्डेन रीश वर्कशॉप, लि०	कलकत्ता	
मैजेगाँव डाक्स, लि०	बम्बई	
मुगल लाइन, लि०	बम्बई	
शिपिंग कारपोरेशन आफ इंडिया	बम्बई	
कलकत्ता पोर्ट ट्रस्ट	कलकत्ता	
बम्बई पोर्ट ट्रस्ट	बम्बई	
मद्रास पोर्ट ट्रस्ट	मद्रास	

एयर इंडिया कारपोरेशन	बम्बई	
इंडियन एयर लाइन्स कारपोरेशन	नई दिल्ली	
निर्माण, आवास-प्रवास सम्बन्धी		
हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्ट्री, लि०	नई दिल्ली	१९५३
नेशनल बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन कारपोरेशन, लि०	नई दिल्ली	
नेशनल प्रोजेक्ट्स कंस्ट्रक्शन कारपोरेशन लि०	नई दिल्ली	
रिहैबीलीटेशन हाउसिंग कारपोरेशन, लि०	नई दिल्ली	
अशोक होटल	नई दिल्ली	
जनपथ होटल	नई दिल्ली	
व्यापार सम्बन्धी		
स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया, लि०	नई दिल्ली	१९५६
एक्सपोर्ट रिस्क इंस्योरेंस कारपोरेशन, लि०	बम्बई	
सैंट्रल वेयर हाउसिंग कारपोरेशन लि०	नई दिल्ली	१९५६
वित्त, बीमा सम्बन्धी		
इंडस्ट्रियल फायनेंस कारपोरेशन ऑफ इण्डिया, लि०	नई दिल्ली	१९४८
फिल्म फाइनेंस कारपोरेशन, लि०	बम्बई	
रिफायनेंस कारपोरेशन ऑफ इण्डिया	नई दिल्ली	
एम्प्लाइज स्टेट इन्स्योरेंस कारपोरेशन,	नई दिल्ली	
अन्य प्रकार की इकाइयाँ		
दामोदर वैली कारपोरेशन, लि०	कलकत्ता	
खादी और ग्रामोद्योग आयोग	बम्बई	
आयल एण्ड नेचुरल गैस कमीशन	नई दिल्ली	
इण्डियन आयल कं० लि०	नई दिल्ली	
नेशनल स्माल इंडस्ट्रीज कारपोरेशन, लि०	नई दिल्ली	
रिहैबीलीटेशन ऑफ इंडस्ट्रीज कारपोरेशन	कलकत्ता	
भारतीय हस्तकला विकास निगम	नई दिल्ली	

औद्योगिक उत्पादन

वस्तुयें	इकाई	१९५१	१९५६	
कोयला	००० मीट्रिक टन	२९,०५	३३,३९	५१,२९
लोहा	,,	३,१०	३,६०	१०,९९
शक्कर	,,	९४	१,५७	१,९०
चाय	००० कि० ग्राम	२,३८	२,५२	२,८६
नमक	००० क्विटल	२३,१३	२७,६५	३२,१७
वनस्पति तेल और घी	मीट्रिक टन	१४,५९०	२१६,४३	३०७,९०
सिगरेट	संख्या लाख में	१,७८,७४	२,१९,१९	३,४१,२३

सूत	लाख कि० ग्राम	४,६३	६,३२	७,१६
सूती वस्त्र	ला० मीटर	३१,०६	४०,४४	३७,३४
टाट	००० मीट्रिक टन	२७	३५	४०
बोरे	,,	४४	५१	४६
चमड़े के जूते	हजार जोड़े	४,७६	५,४४	६,८३
कागज और गत्ता	मीट्रिक टन	११,१६६	१६३,७६	३२,३०३
रबड़ के जूते	लाख जोड़े	१६	३०	४२
गाडियों के टायर	हजार	७३	७८	१४३
गंधक का तेजाब	मीट्रिक टन	६,०५४	१३,६८६	३६,०२५
कास्टिक सोड़ा	,,	१,२४७	३३,३८	१०५,३५
ब्लीचिंग पाउडर	,,	३०४	३,६४	५६६
अमोनियम सल्फेट	,,	४,४६२	३२,६३६	३४८,४१
रंग-रोगन	,,	२,८३६	३५,२३	५३,४२
दियासलाई	१० लाख पेटियाँ (५० तीलियों वाली)	३,४७	३,६६	३,४१
साबुन	मीट्रिक टन	७,०६५	६,३३५	१२,५२३
रेयन	,,	१६६	१,४६६	५,१७६
काँच की वस्तुएँ	००० वर्ग मीटर	८६	३,६६	७,२६
सीमेंट	००० मी० टन	२,७०	४,१७	७,१६
चीनी मिट्टी के बरतन	,,	२०	२७	५४
ढला लोहा	,,	१,५५	१,६६	४,८८
तैयार इस्पात	,,	६१	१,१३	३,१७
अल्यूमीनियम की चादरें	मीट्रिक टन	—	८८८	१,३३६
तांबे की चादरें	,,	३८०	१४८	२६४
सोना	कि० ग्राम	५८७	५४२	४२३
लालटेनें	हजार	३,३१	४,३२	५,१८
तामचीनी के बरतन	हजार	६,७८	१२,६८	२४,०२
डीजल एंजन	संख्या	६०४	१२८३	४१६१
सिलाई की मशीनें	,,	३,७०५	१०,८६६	२८,६५२
विद्युत बत्तियाँ	हजार	१२,६३	२५,६१	४८,७६
विद्युत पंखे	हजार	१८	२८	६५
रिफ्रीजरेटर	संख्या	—	६३	१०८५
मोटरें	संख्या	१८५६	२,६७८	४,८१८
बाइसिकलें	हजार	१०	५५	६३

(*Source* : Monthly Statistics of the Production of Selected Industries of India.)

अध्याय ३४

स्थल परिवहन

(LAND TRANSPORT)

किसी देश के आर्थिक जीवन में यातायात अथवा परिवहन के साधनों का बड़ा महत्व है। यदि कृषि और उद्योग धन्धे किसी देश के आर्थिक जीवन का शरीर और हड्डियाँ मानी जायें तो यातायात को इस आर्थिक ढाँचे की स्नायु-प्रणाली मानना चाहिये। देश की औद्योगिक उन्नति, व्यापार और कृषि सभी को यातायात के साधनों की आवश्यकता होती है।

भारत में उन सभी परिवहन के साधनों का प्रयोग होता है जिनका किसी भी अन्य देश में कभी भी हुआ है। देश के आंतरिक परिवहन-पथ इस प्रकार हैं :— कुल का ८५% सड़कें, ८% रेलें, ५% वायु-पथ और २% जलमार्ग।

१. सड़कें (Roads)

आदि काल से ही भारत में परिवहन-पथों में सड़कों का महत्व अधिक रहा है। यह परिवहन के अन्य सभी साधनों का आधार-स्तम्भ है। यह रेल, जहाज एवं विमान का पूरक है।। सड़क परिवहन के सर्वोपरि गुण उसकी लचक, सेवा का व्यापक-क्षेत्र, माल की सुरक्षा समय की बचत और बहुमुखी एवं सस्ती सेवा है।

सड़कों के प्रकार (Types of Roads)

१९४२ की नागपुर सड़क योजना के अनुसार भारतीय सड़कों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है :—

(१) **राष्ट्रीय राजमार्ग** (National Highways)—इस प्रकार की सड़कें समस्त देश को न केवल आर्थिक दृष्टि से ही बल्कि सैनिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बाँध देती हैं। इन सड़कों द्वारा राज्य की राजधानियाँ, बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक नगर तथा मुख्य-मुख्य बन्दरगाह आपस में एक दूसरे से मिला दिये गये हैं भारत को ब्रह्मा, नैपाल और तिब्बत से भी ये सड़कें मिलाती हैं। इन सड़कों की कुल लम्बाई २२,६५४ कि० मी० है जिसमें से लगभग १८,९९० कि० मी० लम्बी तो सड़कें बनी हुई हैं और लगभग ३,५७५ कि० मी० लम्ब बीच-बीच के टुकड़े छूटे हुए हैं। ये अधिकतर पक्की (Surfaced) हैं। १९८०-८१ के अन्त तक इन सड़कों की लम्बाई ५१,२०० कि० मी० होगी।

(२) **राजकीय राजमार्ग** (State Highways)—ये राज्यों की प्रमुख सड़कें हैं जिनका महत्त्व व्यापार और उद्योग की दृष्टि से बहुत अधिक है। ये सड़कें राष्ट्रीय सड़कों द्वारा अथवा निकटवर्ती राज्यों को सड़कों से मिली हुई हैं। प्रान्तीय सरकारों पर इन सड़कों के निर्माण और उनको ठीक दशा में रखने की जिम्मेदारी है। इस समय इन सड़कों की लम्बाई लगभग ५६,००० कि० मी० है जिसे बढ़ा कर १९८०-८१ तक ११२,००० कि० मी० किया जायेगा।

(३) **जिले की सड़कें** (District Roads)—ये जिले के विभिन्न भागों को आपस मे जोड़ती है अर्थात् इनका कार्य उत्पात्ति क्षेत्रों को बाजारों या मन्डियों से जोड़ना है। बड़ी सड़कों तथा रेलों से भी उनका सम्बन्ध है। इनको बनाने का जिम्मा जिला बोर्डों के अधीन है। इनमें से अधिकांश सड़कें कच्ची है जो वर्षा के दिनों में सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती है। इन सड़कों की लम्बाई लगभग १५२,३२० कि० मीटर है जो १९८०-८१ तक २४०,००० कि० मी० कर दी जायेगी।

(४) **गाँव की सड़के** (Village Roads)—ये सड़कें गाँव को आपस में एक दूसरे से मिलाती है। इनका सम्बन्ध निकटवर्ती जिले और प्रान्तों की सड़कों से भी होता है। प्रायः ये पगडंडियाँ मात्र है। ये अधिकतर गाँव वालों के सहयोग से ही निर्माण की जाती है। इनकी लम्बाई २९८,४०० कि०मी० है। १९८०-८१ में यह ३६०,००० कि० मी० होने की सम्भावना है।

नागपुर सडक योजना के अनुसार देश में ६ ४ लाख कि० मी० लम्बी सड़कें बनाने का निश्चय किया गया था किन्तु विभाजन के उपरान्त इस योजना में कुछ संशोधन करना पड़ा। संशोधित योजना के अनुसार भारत में ५.२ लाख किलोमीटर लम्बी सड़कें बनाने का निश्चय किया गया। इसी को आधार मान कर प्रथम और द्वितीय योजना में काम होता रहा। अब तक जो प्रगति हुई है वह नीचे की तालिका में बताई गई है :—

वर्ष	पक्की सड़कें	कच्ची सड़कें (किलोमीटर में)	कुल सड़कें
नागपुर योजना के लक्ष्य	१९६,८००	३३१,२००	५२८,०००
१ अप्रेल १९५१	१५६,८००	२४१,६००	३९८,४००
३१ मार्च १९५६	१९५,२००	३१६,८००	५१२,०००
३१ मार्च १९६१	२३०,४००	४००,०००	६३०,४००

यद्यपि पिछले १० वर्षों में सड़कों में पर्याप्त सुधार किया गया है किन्तु अभी भी इनकी दशा संतोषजनक नहीं कही जा सकती क्योंकि कई सड़कों पर नदियों पर पुलों का अभाव है, इनकी चौड़ाई इतनी कम है कि भारी यातायात उन पर चलाना कठिन है और अधिकांश कच्ची हैं।

इस समय संपूर्ण देश में २४१,४० कि० मी० लम्बे राष्ट्रीय मार्ग हैं किन्तु इसमें से केवल ३,७०१ कि० मी० पर ही दुतरफा आना जाना होता है शेष पर एक तरफा ही। इन राष्ट्रीय मार्गों पर लगभग ३,५७५ कि० मी० मील लम्बे बीच में टुकड़े छूटे हुए हैं। इनमें से द्वितीय योजना के अन्त तक १,१२६ कि० मी० लम्बे टुकड़े तैयार किये जा चुके हैं। सड़कों की सतह में भी सुधार किया गया है। इस प्रकार की सुधरी सड़कों की लम्बाई ५,६३३ कि० मी० है। नदियों पर ४० बड़े पुल भी बनाये गये हैं और लगभग १,२८८ कि० मी० लम्बी सड़कों को चौड़ा किया गया है।

नीचे की तालिका में विभिन्न राज्यों में राष्ट्रीय सड़कों का विस्तार बताया गया है :—

आंध्र प्रदेश	१,४१२	मील	मध्य प्रदेश	१,७१८	मील
आसाम	७२७	,,	मद्रास	१,०५०	,,
बिहार	१,१८९	,,	महाराष्ट्र	१,५१४	,,
गुजरात	६७६	,,	मैसूर	८१६	,,
मनीपुर	१३९	,,			
जम्मू-काश्मीर	३३६	,,	उड़ीसा	८५१	,,
केरल	२६०	,,	पंजाब	७९५	,,
राजस्थान	७६८	,,	बंगाल	८७२	,,
उत्तर प्रदेश	१४४७	,,	हिमाचल प्रदेश	२४०	,,
नागालैंड	६९	,,	दिल्ली	४४	,,

भारत के राष्ट्रीय मार्ग ये हैं:—

क्रम संख्या	राष्ट्रीय मार्ग	
१	नं० १	दिल्ली, से अम्बाला, जलंधर और अमृतसर होते हुए भारत और पाकिस्तान की सीमा को छूता है। यह २८२ मील लम्बा है।
२	नं० १ ए	जलंधर, माधोपुर, जम्मू, बनीहाल, श्रीनगर, बारामूला और ऊरी को जोड़ने वाली ४१४ मील लम्बा मार्ग।
३	नं० २	दिल्ली को मथुरा, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, मोहनिया, बढ़ी और कलकत्ता से जोड़ने वाला ९३४ मील लम्बा मार्ग।
४	नं० ३	आगरा को ग्वालियर, शिवपुरी, इन्दौर, धूलिया, नासिक थाना और बम्बई से जोड़ने वाला ७२५ मील लम्बा मार्ग।
५	नं० ४	थाना के निकट से आरम्भ होने वाला मार्ग (जो नं० ३ में बताया गया है) पूना, बेलगाँव, हुब्ली, बंगलौर, रानीपेट और मद्रास को जोड़ता है। यह ७७२ मील लम्बा है।
६	नं० ५	राष्ट्रीय मार्ग जो बहरागोड़ा से आरम्भ होकर कटक, भुवनेश्वर, विशाखापट्टनम, विजयवाड़ा और मद्रास को जोड़ता है। यह ९३३ मील लम्बा है।

७	नं० ६	यह आगरा-बम्बई मार्ग पर धुलिया से आरम्भ होकर नागपुर, रायपुर, संबलपुर, बहरागोड़ा और कलकत्ता को जोड़ता है, जो १०२८ मील लम्बा है।
८	नं० ७	दिल्ली, कलकत्ता, मार्ग पर वाराणसी से आरम्भ होकर मगावान, रीवाँ, जबलपुर, लाखनाडोंन, नागपुर, हैदराबाद, कर्नूल, बंगलौर, कृष्णागिरी, सलेम, डिंडींगल, मदुराई और कुमारी अंतरीप को जोड़ता है। यह १४७४ मील लम्बा है।
९	नं० ८	दिल्ली से आरम्भ होकर जयपुर, अजमेर, उदयपुर, अहमदाबाद, बड़ौदा होता हुआ बम्बई जाता है। इसकी लम्बाई ८९२ मील है।
१०	नं० ८ ए	अहमदाबाद, लिम्बड़ी, मोरवी और कांधला को जोड़ने वाला २३६ मील लम्बा मार्ग।
११.	नं० ८ बी	अहमदाबाद-कांधला मार्ग पर बामनभोर से आरम्भ होकर राजकोट और पोरबन्दर को जोड़ने वाला १२९ मील लम्बा मार्ग।
१२	नं० ९	पूना से शोलापुर, हैदराबाद और विजयवाड़ा जाने वाला ४९८ मील लम्बा मार्ग।
१३	नं० १०	दिल्ली को फाजिलका से जोड़ने वाला तथा वहाँ से पाकिस्तान की सीमा को जाने वाला २५२ मील लम्बा मार्ग।
१३ अ	नं० ११	आगरा, जैपुर, बीकानेर का ३६४ मील लम्बा मार्ग।
१३	नं० १२	जबलपुर, भोपाल और बावरा का २६५ मील लम्बा मार्ग।
१३ स	नं० १३	शोलापुर-चित्रदुर्ग मार्ग—३०७ मील।
१४	नं० २२	अम्बाला से कालका, शिमला, नरकडा, रामपुर और चीनी होता हुआ भारत तिब्बत की सीमा पर **शिपकाला** तक २८७ मील।
१५	नं० २४	दिल्ली, बरेली, लखनऊ मार्ग—२७४ मील।
१६	नं० २५	लखनऊ, कानपुर, झांसी, शिवपुरी—१९९ मील।
१७	नं० २६	झांसी, लखनाडोन, २४८ मील।
१८	नं० २७	इलाहाबाद से बनारस, कुमारी अंतरीप मार्ग पर मगावन से मिलता है—५९ मील।
१९	नं० २८	बरौनी से मुजफ्फरपुर, पीपरा, गोरखपुर, लखनऊ, ३५६ मील।
२०	नं० २८ ए	उपरोक्त मार्ग पर पीपरा ले सगौली, रक्सौल होता हुआ भारत, नैपाल सीमा तक—४२ मील।

२१	नं० २९	गोरखपुर, गाजीपुर और वाराणसी—१२३ मील।
२२	नं० ३०	दिल्ली, कलकत्ता मार्ग पर मोहानिया से आरम्भ होकर पटना, भखतियारपुर मार्ग—१४४ मील।
२३	नं० ३१	दिल्ली,कलकत्ता मार्ग पर बढ़ी से आरम्भ होकर बखतियारपुर, मोकामह, पूर्णिया,डालाखोला, सिलगुड़ी, सिवोक और कूच बिहार होता हुआ पांडू तक—५९५ मील।
२४	नं० ३१ ए	सिवोक से गगरोट—५८ मील।
२४ अ	नं० ३१ बी	उत्तरी सलमारा से गोपालपुर मार्ग—११० मील।
२४ ब	नं० ३२	जलंधर, ऊरी मार्ग पर गोविंदपुर तक ११२ मील।
२५	नं० ३३	दिल्ली, कलकत्ता मार्ग पर बढी से रांची, टाटानगर होता हुआ बारगोड़ा तक—२२० मील।
२६	नं० ३४	काल कोला से बरहामपुर, बरसात होता हुआ कलकत्ता तक २७७ मील।
२७	नं० ३५	बरसात से वनगाँव होता हुआ पाकिस्तान की सीमा तक ३८ मील।
२८	नं० ३७	गोलपाड़ा से गोहाटी, जोरहाट, कामरगाँव, माकूम, होता हुआ सैखोआ घाट—४३७ मील।
२९	नं० ३८	माकूम, लीडो, लेखापानी मार्ग—३४ मील।
३०	नं० ३९	कामरगाँव, इम्फाल, पलेल होता हुआ ब्रह्मा की सीमा तक—२७४ मील।
३१	नं० ४०	जोरहाट से शिलांग होता हुआ भारत पाकिस्तान की सीमा पर डाकी तक—१०० मील।
३२	नं० ४२	सम्बलपुर से अंगुल होता हुआ कटक तक—१६३ मील।
३३	नं० ४३	रायपुर से विजयनगरम—३४८ मील।
३४	नं० ४५	मद्रास, तिरुचिरापल्ली, डिंडीगल—२४२ मील।
३५	नं० ४६	कृष्णागिरी—रानीपेट—८२ मील।
३६	नं० ४७	सलेम—कोयम्बटूर, त्रिचूर—इर्नाकुलम—त्रिवेंद्रम—कुमारी अंतरीप—३८२ मील।
३७	नं० ४७ ए	त्रिचूर से पश्चिमी तट पर चलीसेरी तक—१८ मील।
३८	नं० ४९	मदुराई से धनुषकोटि—९० मील।
३९	नं० ५०	नासिक से पूना तक—१२० मील।

भारत की अन्य सड़कें ये हैं :

(१) **ग्रांड ट्रक रोड**—यह भारत की सबसे मुख्य सड़क है। यह कलकत्ता से आसनसोल, बनारस, इलाहाबाद, अलीगढ, दिल्ली, करनाल, अम्बाला, लुधियाना होती हुई अमृतसर तक जाती है। आगे यह लाहौर, वजीराबाद इत्यादि नगरों में होती हुई पेशावर तक पाकिस्तान देश में जाती है।

(२) **कलकत्ता मद्रास रोड**—यह सड़क कलकत्ता से सम्बलपुर, रायपुर, विजयानगरम, विजयवाड़ा, गन्तूर होती हुई मद्रास तक गई है।

(३) **बम्बई आगरा रोड**—यह सड़क बम्बई से नासिक, इन्दौर, ग्वालियर होती हुई आगरा तक जाती है। इसको ग्राड ट्रक रोड में मिलाने के लिये आगरा से अलीगढ़ तक सड़क बनी है।

(४) **ग्रेट डेकन रोड**—यह सड़क मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) से जबलपुर, नागपुर होती हुई हैदराबाद (दकन) तक और उससे आगे बगलौर तक गई है। नागपुर से छोटी-छोटी सड़कों द्वारा इसको दक्षिणी भारत की अन्य सड़कों से, जो बम्बई कलकत्ता को जाती हैं, मिला दिया गया है। इसी प्रकार मिर्जापुर से एक छोटी सड़क द्वारा इसे माधोसिंह के समीप ग्रांड ट्रक रोड से मिलाया गया है।

(५) **बम्बई कलकत्ता रोड**—यह सड़क कलकत्ता से सम्बलपुर, रायपुर, नागपुर, बलिया होती हुई आमलनेर स्थान पर वम्वई आगरा रोड से मिल जाती है। नागपुर पर यह सड़क ग्रेट डकन रोड से मिलती है।

(६) **मद्रास बम्बई रोड**—यह सड़क मद्रास से बंगलौर, बेलगाँव, पूना होती हुई बम्वई गई है।

(७) **पठानकोट जम्मू रोड**—यह सड़क पठानकोट से जम्मू तक जाती है। वहाँ से इसका सम्बन्ध श्रीनगर जाने वाली सड़क से है। यह सडक देश-विभाजन के बाद काश्मीर से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बनाई गई है।

(८) **गोहाटी चेरापूँजी रोड**—यह सड़क भी विभाजन के बाद ही गोहाटी से शिलांग होती हुई चेरापूँजी तक के लिये गई है।

उपर्युक्त सड़कों के अतिरिक्त अन्य सड़कें निम्न हैं :—

(१) पूर्णिया-दार्जिलिंग रोड। (२) बरेली, नैनीताल, अलमोड़ा रोड। (३) अम्बाला, कालका, शिमला रोड जोकि अम्बाला से तिब्बत को जाती है। (४) पठानकोट-कुल्लू रोड। (५) मनीपुर-कोहिमा-इम्फाल-सिल्चर रोड। (६) देहरादून-मसूरी रोड। (७) पठानकोट डलहौजी रोड। (८) मद्रास-कोजीखोड़ रोड। (९) मद्रास-ट्रावनकोर रोड। (१०) बनारस-नागपुर-हैदराबाद, कर्नूल-बगलौर-कुमारी अन्तरीप (११) दिल्ली-अहमदाबाद-बम्वई। (१२) दिल्ली-जयपुर-अजमेर ब्यावर-उदयपुर-डूंगरपुर-अहमदाबाद।

इन सड़कों के अतिरिक्त मैसूर, केरल, महाराष्ट्र राज्यों की सरकारों ने भी तटीय भागों म सड़कों का निर्माण किया है।

भारत मे कुल सड़कों की लम्बाई ६३०,४०० कि० मी० है। इसमें से २३०,४०० कि० मी० पक्की और शेष कच्ची सड़कें है। दूसरे शब्दों में कहा जा

सकता है कि देश में प्रति १०० वर्ग कि० मी० पीछे केवल १·३ कि० मी० लम्बी सड़कें है जबकि इतने ही क्षेत्रफल पीछे अमरीका में ४·१६ कि० मी० और ब्रिटेन में ८·३२ कि० मी०; फ्रांस में ५·७ कि० मी० तथा जापान में ६·५ कि० मीटर है ।
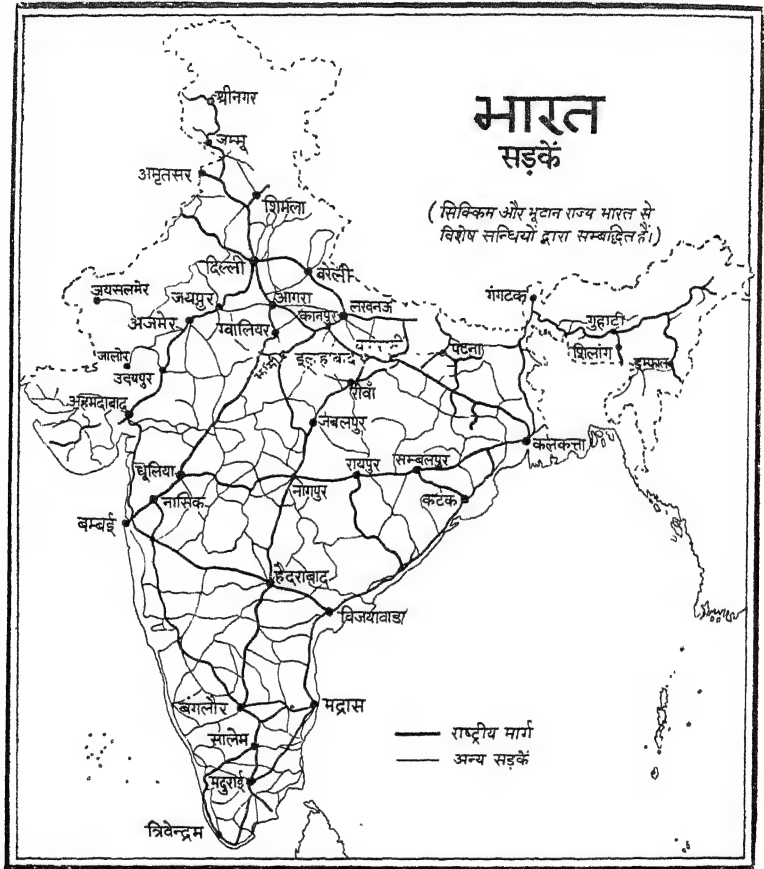
चित्र १६०. भारत की प्रमुख सड़कें

यह आश्चर्यजनक बात है कि देश की कुल सड़कों का आधे से अधिक भाग दक्षिण के पठार पर है क्योंकि वहाँ सड़कें बनाने के लिये कड़ी चट्टानें पाई जाती हैं तथा धरातल पहाड़ी होने के कारण सड़कें उत्तरी भारत की अपेक्षा मजबूत होती हैं। अतः दक्षिणी भारत में पक्की सड़कें ही अधिक पाई जाती हैं जब कि उत्तरी भारत में पत्थरों की कमी होने से अधिकांशतः सड़कें कच्ची हैं । राजस्थान, मालवा का पठार और आसाम राज्य में रेतीले मैदानों अथवा वर्षा अधिक होने के कारण सड़कें बनाना बड़ा व्ययसाध्य हो जाता है । इसलिए सड़कों का अभाव है । गंगा के

मैदानों में अच्छी सड़कों की कमी है क्योंकि लगभग प्रतिवर्ष नदियों की बाढ़ आ जाने के कारण सड़के टूटती रहती हैं। यहाँ अधिकतर कच्ची सड़कें पाई जाती हैं।

बहुत सी सड़कें बाढ़ के समय नष्ट हो जाती है अतएव इन सड़कों पर वर्षा ऋतु में यात्रा करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। कभी-कभी तो नदियों आदि पर पुल न होने के कारण गंतव्य स्थान तक पहुँचने के लिये काफी लम्बा चक्कर लगाकर जाना पड़ता है। वर्षा ऋतु में सड़कों पर भारी बोझ ले जाना दुष्कर हो जाता है अस्तु, अधिकांशतः कुली आदि के सिर पर रख कर ही सामान इधर से उधर ले जाया जाता है। सड़कों में कई जगह गड्ढे पड़े हैं जिनसे भी आने जाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। गाँव की अधिकांश सड़कों द्वारा वर्षा ऋतु में आना जाना नहीं हो सकता अतः वर्ष के इन दिनों में ग्रामों का सम्बन्ध नगरों से टूट-सा जाता है और इन पग-डण्डियों पर केवल मनुष्य ही आ जा सकते हैं।

सड़क यातायात

भारतीय आर्थिक जीवन में सड़कों का महत्व बहुत अधिक है।

भारतीय सड़कों पर अगणित पैदल यात्री, एक करोड़ पशु-वाहन, १·३ लाख मोटर ठेले, ५४५६३ मोटर बसें, ३ लाख व्यक्तिगत मोटर कार तथा १$\frac{३}{३}$ लाख के लगभग अन्य मोटर गाड़ियाँ चलती हैं। अकेली बैलगाड़ियाँ वर्ष भर में उतना ही माल ढोती हैं जितना कि रेलें। मोटर बसों के वार्षिक यातायात का परिमाण ३७७० करोड यात्री-मील और मोटर-ठेलों का १,१४४ करोड़ टन मील आंका गया है। भारतीय सड़कों एवं सड़क-परिवहन में लगभग १४०० करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई है, जो भारतीय रेलों में लगी हुई पूँजी के समान ही है।[1] सड़कों पर मोटर और बसों का आवागमन पिछले १० वर्षों में बड़ी तेजी से बढ़ा है, जैसा कि इन आंकड़ों से स्पष्ट होगा :—

भारत में विभिन्न सड़क वाहनों का उपयोग

वाहन	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
मोटर साइकिल			
ओटोरिक्सा	२६,८६०	४०,९६१	९३,८८९
कारें और जीपें	१४७,७१२	१८७,८६६	२९७,१७९
टैक्सी गाड़ियाँ	११,५५१	१५,३१८	१६,३२८
बसें	३४,४११	४६,४६१	५४,५९३
ट्रकें	८१,८८८	११९,०९७	१६५,७४२
अन्य वाहन	३,८९१	१५,८५७	३६,८०४
योग	३०६,३१३	४२५,५६०	६६४,५३५

1. Report of the Road Transport Reorganisation Committee, 1959, p. 4.

भारत में प्रति वर्ग मील पीछे केवल १·५ मोटर गाड़ियाँ ह जब कि स्पेन में ५·६; इंग्लैंड मे ३३·८; और संयुक्त राज्य मे २१·४ मोटर गाड़ियाँ है। प्रति १ लाख जनसंख्या पीछे भारत में केवल १५४ गाड़ियाँ है जब कि स्पेन में १,४६३; इंगलैंड मे १३,८४७; और संयुक्त राज्य मे ४२,०८३ गाड़ियाँ।[2]

बीस वर्षीय सड़क विकास योजना

द्वितीय योजना के अंत तक भारत में लगभग २३,८०८ कि० मी० लम्बे राष्ट्रीय मार्ग, ५६,००० कि० मी० लम्बी प्रान्तीय सड़कें, १५२,३२० कि० मी० लम्बी जिले की सड़कें और २९८,४०० कि० मी० ग्रामीण सड़कें आंकी गई थीं जो यह प्रदर्शित करती हैं कि जहाँ राष्ट्रीय और प्रान्तीय सड़कों के क्षेत्र मे हम नागपुर योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने में असमर्थ रहे है वहाँ जिले और गाँवों की सड़कों के लक्ष्य आगे बढ़े हैं। अतः विभिन्न राज्य सरकारों के इंजीनियरों की एक समिति ने १९६० में एक २० वर्षीय(१९६०-१९८०)योजना निर्धारित की है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय सड़कों में १३२%; प्रान्तीय सड़कों में १००%; जिले की सड़कों में ८०% और गाँवों की सड़कों में ४३% की वृद्धि के लक्ष्य अपनाये गये है। सड़कों के विकास में उनके प्रतिरक्षात्मक महत्व के अतिरिक्त देश के विकसित और अविकसित कृषि और अन्य क्षेत्रों, प्रशासन कार्यालयों, तीर्थ स्थानों, पर्यटन क्षेत्रों, स्वास्थ्य-प्रद प्रदेशों, विश्वविद्यालयों, सास्कृतिक संस्थाओं, महत्वपूर्ण औद्योगिक एवं वाणिज्य केन्द्रों, बड़े रेल-जंकशनों तथा बन्दरगाहों इत्यादि का विशेष ध्यान रखा गया है।

२० वर्षीय योजना में इस प्रकार से प्राथमिकता रखी गई है :—

(i) समस्त मुख्य सकडों पर जहाँ-जहाँ पुल छूटे हैं उन्हें तैयार किया जाय और सड़कों को डामर से बनाया जाय।

(ii) नगरों की निकटवर्ती सड़कों को न केवल चौड़ा बनाया जाय वरन उन पर एक तरफा यातायात की सुविधा प्रदान की जाये।

इस योजना में ५२०० करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। इसकी समाप्ति पर कुल सड़कों की लम्बाई १०,५१,२०० कि० मी० हो जायेगी तथा प्रति १०० वर्ग कि० मी० पीछे सड़कों की लम्बाई २·१ कि० मी० होगी जो अभी केवल १·३ कि० मीटर ही है। इस योजना के अन्तर्गत लक्ष्य यह रखा गया है कि :—

(१) उन्नत और विकसित कृषि क्षेत्र का कोई गाँव पक्की सड़क से ६·४ कि० मी० और अन्य सड़क से २·४ कि० से अधिक दूर न हों।

(२) अर्द्ध-विकसित क्षेत्र का प्रत्येक गाँव पक्की सड़क से १२·८ कि० तथा अन्य सड़क से ४·८ कि० मी० से अधिक दूर न हो।

(३) अविकसित एवं कृषि-विहीन क्षेत्र का प्रत्येक गाँव पक्की सड़क से २०८ कि० मी० और अन्य सड़क से ८ कि० मी० से अधिक दूर न रहे।

सड़क परिवहन के विकास में बाधायें

भारत सड़क परिवहन में अन्य देशों में बड़ा पिछड़ा हुआ है। इस पिछड़ेपन के मुख्य कारण निम्न माने जाते हैं :—

---

2. Basic Road Statistics of India, 1961.

(१) भारतीय सड़कों में से ६२% कच्ची सड़कें है जो वर्ष भर काम नहीं देतीं। इनमें से बहुत-सी ऐसी हैं जिन पर या तो पुलों का अत्यन्त अभाव है या उनके पुल-पुलिया बड़े कमजोर हैं। इनके कारण देश की अधिकांश सड़कें केवल सीमित उपयोग की हैं। केवल राष्ट्रीय पथों पर द्वितीय योजना के आरम्भ में ११६ बड़े पुलों का अभाव था, जिनमें से ६० द्वितीय योजना और ५६ तृतीय योजना में बनाये जायेंगे। भारत में सड़कों की चौड़ाई भी कम है। नई सड़कें कम से कम २ [illegible] और अधिक से अधिक २४ फीट चौड़ी होनी चाहिए जिन पर नवीनतम गाड़ियाँ [illegible] चल सकें।

(२) जो कुछ पक्की सड़कें हमारे यहां है उनका पूर्ण उपयोग नहीं होता क्योंकि पर्याप्त मोटर गाड़ियां उपलब्ध नहीं है। इसी भांति प्रतिवर्ग मील सड़क पीछे भारत में एक मोटरगाड़ी है; जबकि संयुक्त राज्य में २१, कनाडा में ७, ब्रिटेन में २५ और फ्रांस में ६ हैं। इस पिछड़ेपन का परिणाम यह हुआ कि मोटर चलाने योग्य सड़कों की ३० से ४० प्रतिशत तक क्षमता प्रयोग में नहीं आती अर्थात् अपनी सड़कों का पूर्ण उपयोग करने के लिए ४-५ गुनी मोटरों की आवश्यकता है।[3] अतः इनका उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है।

(३) भारत में मोटर गाड़ियों पर विश्व में उच्चतम कर भार है। केन्द्रीय सरकार मोटरों पर टायर, ट्यूब, उपकरण तथा मोटर-स्प्रिट पर सीमा शुल्क और उत्पादन कर लगाती है तथा राज्य सरकारें वाहन कर, माल और यात्री कर, प्रमाण पत्र-शुल्क, मोटर-स्प्रिट एवं मोटर गाड़ियों और उनके कल-पुर्जों पर बिक्री तथा धुरी शुल्क, चुंगी आदि अनेक प्रकार के स्थानीय कर लगाती हैं। ये सब मिलकर मोटरों के संचालन व्यय का २०% के लगभग हो जाते है—कभी-कभी तो ३५% तक। इन करों की मात्रा अधिक और असह्य ही नहीं वरन इनकी अधिकता विविधता और वसूल करने वालों का व्यवहार भी मोटर संचालकों के लिए कष्टदायक होता है। अतः मोटरों के कर-भार में कम से कम २०% की कमी आनी चाहिए और उसमें एकरूपता होनी चाहिये।[4]

(४) मोटर-ठेलों की भार-सम्बन्धी सीमायें भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न हैं। पंजाब, दिल्ली, प० बंगाल और महाराष्ट्र को छोड़कर अन्यत्र भार-सीमा इतनी कम है कि मोटरों का संचालन-व्यय एवं भाड़ा-दरें आवश्यकता से अधिक ऊँची है। राष्ट्रीय राजपथों पर चलने वाली गाड़ियों के लिए दो धुरियों पर १२ टन की भार-सीमा उचित बताई गई है। अन्य सड़कों पर पुलों और सड़कों की शक्ति का ध्यान रखकर वैज्ञानिक ढंग से सर्व-मान्य समान भार-सीमा अपनानी चाहिए। इससे सड़कों एवं मोटर गाड़ियों का पूर्ण उपयोग सभव हो सके।

(५) देश में मोटर मालिकों की एक बड़ी संख्या ऐसी है जिनके पास १ या २ ही मोटरें होती हैं। ऐसे छोटे चालक न तो सेवा का उचित स्तर स्थापित कर सकते हैं और न कुशल प्रबन्ध के नमूने ही। उनके साधन तथा शिल्प-शालाओं और

---

3. Indian Transport Development Association, Roads and Road Transport in India, p. 21.

4. Report of the Road Transport Reorganisation Committee, 1959, p. 25.

अनुरक्षण सुविधाओं का भी अभाव रहता है। प्रान्तीय सेवा के लिए ५ मोटरों की और अन्तर्प्रान्तीय सेवा के लिए १० मोटरों की प्रतिस्पर्द्धी इकाई का सुझाव दिया गया है क्योंकि इससे छोटी इकाइयाँ सामान्यतः अच्छी सेवा-सुविधायें नहीं दे सकतीं।

(६) अनेक राज्यों में सन् १९४७ से मोटर सेवा के राष्ट्रीयकरण की नीति अपनाई है किन्तु इसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली है फिर भी वे सड़कों पर अधिकाधिक सरकारी मोटरें चलाने के लिए लालायित हो रहे हैं। अनेक मार्गों पर अपर्याप्त-सूचना देकर ही मार्गों का राष्ट्रीयकरण किया गया है। इससे मोटर मालिकों के लिए अनिश्चित स्थिति उत्पन्न हो गई है और व्यवसाय का विकास रुक गया है। इसके लिए राज्य सरकारों को मोटर-व्यवसाय राष्ट्रीयकरण के क्रमबद्ध-कार्यक्रम को अपनाना चाहिए तथा तृतीय योजना के अन्त तक माल यातायात सम्बन्धी मोटर सेवाओं का राष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहिए।

सड़कों पर यात्री यातायात के लिए सरकारी मोटरें चलने का कार्य सबसे पहले उत्तर प्रदेश की सरकार ने मई सन् १९४७ से आरम्भ किया। तदनन्तर १९४८ में आसाम, बिहार, बम्बई, उड़ीसा, पंजाब, बंगाल, मैसूर, दिल्ली और सौराष्ट्र ने; १९४९ में हिमाचल प्रदेश ने और १९६० में राजस्थान ने किया। इस समय १८ राज्यों में से १७ में सवारी यातायात सम्बन्धी सड़क-सेवायें आंशिक रूप से चालू हैं। केवल त्रिपुरा में ही राष्ट्रीयकरण नहीं हुआ है। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में यात्री-यातायात का एक बड़ा भाग सरकार के हाथ में है; अन्य राज्यों में एक छोटा भाग ही।

२. रेलमार्ग (Railways)

भारत में रेल मार्गों को बनाने के मुख्य उद्देश्य ये रहे हैं:—

(१) अधिकांश रेलें उन क्षेत्रों में बनाई गई हैं जो बहुत उपजाऊ और घने बसे हैं, क्योंकि ऐसे ही क्षेत्रों से रेलों को मुसाफिर और माल ढोने को मिलता है। फलतः रेलमार्गों का विस्तार गंगा की घाटी में अधिक हुआ है।

(२) रेलें प्रसिद्ध बन्दरगाहों को औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्रों से जोड़ती हैं और विदेशों से आयातित माल को भीतरी भागों में वितरण करने में सहयोग देती है तथा कृषि क्षेत्रों के उत्पादन को कारखानों तक पहुँचाती हैं।

(३) अकाल अथवा दैवी आपत्ति के समय अकाल पीड़ित और बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों को अन्न और अन्य आवश्यकीय सामग्री पहुँचाने में योग देती हैं।

भारत में रेलमार्गों का विकास १९ वीं शताब्दी से ही हुआ है। सर्वप्रथम १८४५ ई० में लार्ड डैलहौजी के राज्यकाल में तीन रेल मार्गों की स्वीकृत दी गई। पहला रेल मार्ग ईस्ट इण्डियन रेलवे थी जो कलकत्ता से रानीगंज तक १८३ कि० मीटर लम्बा था। यह १८४५ में बनाया गया। दूसरा रेलमार्ग १८५३ में ग्रेट इण्डियन पेनिन-सुला रेलवे पर बम्बई से थाना के बीच ३४ कि० मी० लम्बा बनाया गया। १८५४ ई० में कलकत्ता और पंडुआ के बीच ६३ कि० मी० लम्बा रेल मार्ग बनाया गया। १८७० में भारत में रेल मार्गों की लम्बाई ६,८४० कि० मी० थी। १८८० में यह १३,६८० कि० मी०, १९०० में ३९,८४३ कि० मी०, १९४० में ६९,२००

कि० मी०; १९५८ में ५६,१७२ कि० मी० और १९६० में ५६,६९३ कि० मी० और १९६१ में ५७,०८९ कि० मी० हो गई।

रेल मार्गों का वितरण

देश में रेलों की लम्बाई का लगभग आधा भाग भारत के सतलज और गंगा के मैदान में स्थित है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि इस मैदान में भारत की अधिकांश जनसंख्या बसी है, यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है और यहीं भारत के बड़े-बड़े नगर बसे हैं। भूमि का धरातल समान होने के कारण रेल मार्ग बनाने की सुविधाएँ भी यहाँ अधिक पाई जाती हैं। देश के विभाजन के पूर्व यहाँ की सबसे लम्बी रेलवे लाइन (N. H. Ry) ११,१०४ कि० मी० थी। देश की सबसे अधिक सामान ढोने वाली रेलवे (E. I. Ry), जिसकी आय प्रति वर्ष २७ करोड़ रुपये थी, इसी मैदान में है। भारत की सबसे अधिक लाभ देने वाली रेलवे (शहादरा-लाइट रेलवे), जिससे १०% लाभ प्रति वर्ष होता था, इसी मैदान में है।

इस मैदान की रेलों की विशेषता यह है कि मीलों तक उनका मार्ग सीधा है, धरातल सपाट होने के कारण उन्हें अधिक इधर-उधर मुड़ने की आवश्यकता नहीं। यद्यपि धरातल समतल होने से रेलमार्ग बनाने में बड़ी सुविधा होती है किन्तु यहाँ की घनी वर्षा और हिमालय से आने वाली अनेक नदियों द्वारा रेल मार्गों को बहुधा हानि पहुँचती है। बाढ़ के समय कहीं-कही रेलवे-लाइनें कट जाती हैं अथवा उनके पुल टूट जाते हैं। इसके अतिरिक्त रेल मार्गों के किनारे डालने के लिए पत्थर की गिट्टी बहुत दूर से इस मैदान में मँगवानी पड़ती है।

इस मैदान की रेलों की दूसरी विशेषता यह है कि इनकी शाखायें बहुत अधिक हैं। सम्भवत. रेलों की इतनी संख्या अन्यत्र नही मिलती। ये शाखायें विशेषत: कोयला-क्षेत्रों में अधिक पाई जाती हैं। जहाँ कोयला ढोने के लिये रेलों की आवश्यकता पड़ती है।

तीसरी विशेषता यह है कि इस मैदान की रेलों का अन्त कलकत्ता में होता है। वहाँ समुद्री व्यापार का सम्बन्ध इन रेलों द्वारा ढोये गये स्थलीय व्यापार से होता है। इस मैदान के उत्तर की ओर अथवा पश्चिम में कोई ऐसा एक केन्द्र नहीं है जहाँ सभी रेलों का अन्त होता हो जैसा कि कलकत्ते में देखा जाता है। मैदान के उत्तर में हिमालय पर्वत है जिसमें रेलों का प्रवेश नहीं हुआ है। यद्यपि दार्जिलिंग, शिमला, काँगड़ा आदि स्थानों में पहाड़ों को पारकर रेल की छोटी छोटी लाइनें पहुँचती हैं।

दक्षिण के पठार पर जो रेल मार्ग पाये जाते हैं वे प्राय: टेढ़े-मेढ़े हैं इसका मुख्य कारण पठार के धरातल का ऊँचा-नीचा होना और टूटी-फूटी पहाड़ियों का अधिक होना है। इनसे बचने के लिए तथा भूमि के अधिक ढाल से दूर रहने के उद्देश्य से रेल-मार्ग बहुधा टेढ़े-मेढ़े बनाना ही आवश्यक हो जाता है। पठार में कहीं-कहीं रेल मार्ग को इतने अधिक खड़े ढाल पर चलाना पड़ता है कि वहाँ रेलगाड़ी में एक इंजन पीछे ठेलने के लिए लगाना आवश्यक होता है। इस प्रकार के ढाल मध्य-प्रदेश में होशंगाबाद और महाराष्ट्र में इगतपुरी में देखने को मिलते हैं। पठार में कहीं-कहीं रेल मार्गों को निकालने के लिये पहाड़ों में सुरंगें भी बनानी पड़ी हैं, विशेषत: ऐसे भागों में जहाँ घूम कर पहाड़ के दूसरी ओर रेलें नहीं जा सकती।

पठार में चलने वाले सभी रेलमार्गों में कहीं न कहीं सुरंगें बनी हैं। अतः रेल मार्गों का बनाना न केवल दुसाध्य ही होता है वरन् खर्च भी अधिक होता है। पश्चिमी घाटों में थालघाट, भोरघाट, पाल घाट आदि सुरंगें और उदयपुर तथा जोधपुर डिवीजनों के बीच अरावली श्रेणियों में गोरमघाट में सुरंगें बनानी पड़ी हैं।

भारत के रेल मार्ग के मानचित्र को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ कई क्षेत्रों में रेल मार्गों का प्रायः अभाव है—पश्चिमी राजस्थान के थार की मरुभूमि और बिहार के छोटा नागपुर और उड़ीसा के पहाडी भाग तथा आसाम राज्य में। यहाँ प्रथम तो भूमि बडी ऊँची नीची अथवा बालू मिट्टी वाली है तथा जनसंख्या थोड़ी होने से रेलों की आवश्यकता भी कम ही है।

भारत में रेल प्रणाली का संचालन केन्द्रीय सरकार के आधीन है। इनके द्वारा भारत में होने वाले व्यापार मे बड़ी सहायता मिलती है। ये देश के ८०% माल और ७०% यात्रियों को ढोती है। १९६१ में प्रतिदिन औसतन ४० लाख व्यक्तियों ने ६,४०० स्टेशनों से ५,००० रेलों में यात्रा की। रेलों द्वारा वर्ष भर में १५३ करोड़ व्यक्तियों ने यात्रा की तथा इसके द्वारा १४५ करोड टन माल भी ढोया जिससे रेलों को २३७ करोड़ रुपये की आय हुई। भारतीय रेलों में १,४३९ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा ११½ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। अतएव भारत के यातायात में रेलों का बड़ा योगदान है।

रेलों का पुनर्वर्गीकरण (Regrouping of Railways)

१९४९ तक भारतीय रेलवे ९ सरकारी रेलवे प्रणालियों और ३८ देशी राज्यों की रेलवे प्रणालियों में विभक्त थीं। सरकारी रेलें ये थीं :—

(१) ईस्ट इन्डिया रेलवे (East India Railway) (२) बंगाल नागपुर रेलवे (Bengal Nagpur Railway) (३) अवध तिरहुत रेलवे (Oudh Tirhoot Railway) (४) आसाम रेलवे (Assam Railway) (५) साउथ इन्डियन रेलवे (South Indian Railway) (६) मद्रास, साउथ मराठा रेलवे (M. S. M. Railway) (७) बम्बई बड़ौदा सैंट्रल इन्डिया रेलवे (B. B. & C. I. Railway) (८) ग्रेट इन्डियन पेनिनसुलर रेलवे (G. I. P. Railway) (९) पूर्वी पंजाब रेलवे (East Punjab Railway)

प्रमुख भारतीय रेले निम्नांकित थीं :—

(१) बीकानेर रेलवे (२) कच्छ स्टेट रेलवे (३) धौलपुर स्टेट रेलवे (४) जयपुर स्टेट रेलवे (५) जोधपुर स्टेठ रेलवे (६) मैसूर स्टेट रेलवे (७) निजाम स्टेशन रेलवे (८) सौराष्ट्र रेलवे (९) सिंधिया स्टेट रेलवे (१०) राजस्थान रेलवे (११) बैजवाड़ा रेलवे (१२) दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे।

१९५० के नये वर्गीकरण के अनुसार अब भारतीय रेल-व्यवस्था निम्न ८ भागों में बंटी है :—

(१) उत्तरी रेल-मार्ग
(२) उत्तरी पूर्वी रेल-मार्ग
(३) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त रेल मार्ग
(४) पूर्वी रेल-मार्ग

(५) दक्षिणी पूर्वी रेल-मार्ग
(६) पश्चिमी रेल मार्ग
(७) मध्यवर्ती रेल मार्ग
(८) दक्षिणी रेल मार्ग
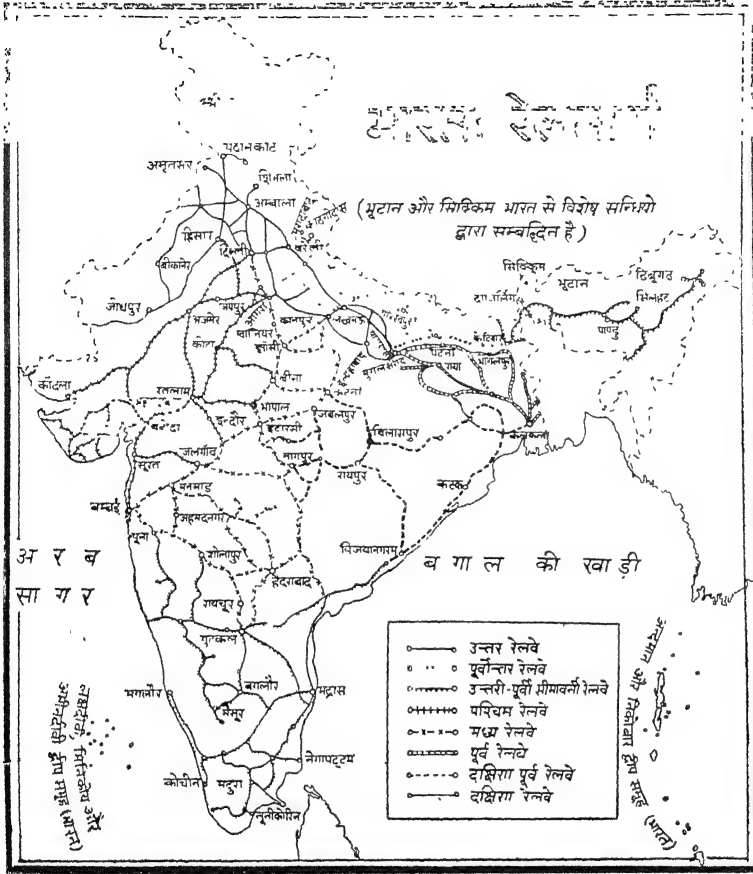
चित्र १६१. भारत के रेल मार्ग

१. **उत्तरी रेलमार्ग** (Northern Railway) १०,३६३ कि० मीटर लम्बा है और पंजाब, दिल्ली, उत्तरी व पूर्वी राजस्थान तथा बनारस तक उत्तर-प्रदेश से होकर फैला हुआ है। इस प्रकार इस रेल मार्ग के अन्तर्गत पूर्वी पंजाब रेलवे, जोधपुर रेलवे, बीकानेर रेलवे और ईस्ट इंडियन रेलवे का पश्चिमी भाग मिला दिया गया है। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में है। इस रेल मार्ग की निम्नलिखित शाखायें बड़ी लाइनें हैं :—

(१) दिल्ली से अटारी तक की शाखा जो मेरठ, सहारनपुर, अम्बाला,

सम्पूर्ण रेलवे प्रणाली का विस्तार निम्न प्रकार है।[5]

क्षेत्र	कौन कौन सी रेलें मिलाई गई	केन्द्रीय कार्यालय	उद्घाटन तिथि	बड़ी लाइन (कि० मीटर)	छोटी लाइन	लम्बाई तंग लाइन	कुल लंबाई ३१ मार्च १९६२
१. दक्षिणी रेलवे (Southern)	(१) मद्रास और दक्षिणी मरहठा (२) दक्षिणी भारत रेलवे और (३) मैसूर रेलवे	मद्रास	१४ अप्रैल १९५१	३०३६	६७४९	१५४	९,९३९
२. केन्द्रीय रेलवे (Central)	(१) ग्रेट इंडियन पेनिनशुला; (२) निजाम स्टेट (३) धौलपुर और (४) सिंधिया रेलवे	बम्बई	५ नवम्बर १९५१	६१४९	१५४६	११६६	८,८६१
३. पश्चिमी रेलवे (Western)	(१) बम्बई, बड़ौदा और मध्य भारत रेलवे (२) सौराष्ट-कच्छ (३) राजस्थान और (४) जयपुर रेलवे	बम्बई (चर्च गेट)	५ नवम्बर १९५१	२८५५	५९९२	१२२२	१०,०६९
४. उत्तरी रेलवे (Northern)	(१) पूर्वी पंजाब रेलवे; (२) जोधपुर बीकानेर रेलवे (३) ईस्ट इंडिया के ३ भाग; (४) बी. बी. एंड सी. आई. के कुछ भाग	दिल्ली	१४ अप्रैल १९५२	६८०७	३२९६	२६०	१०,३६३
५. पूर्वी रेलवे (Eastern)	(१) ईस्ट इंडिया रेलवे का अधिकाँश भाग	कलकत्ता	१ अगस्त १९५५	३८८१		२८	३,८४९
६. द. पूर्वी रेलवे (S. E. Rly)	(१) बंगाल नागपुर रेलवे	कलकत्ता	१ अगस्त १९५५	४५१४		१३८३	५,८९७
७. उ० पूर्वी रेलवे (NorthEastern)	(१) अवध-तिरहुत रेलवे, आसाम रेलवे बम्बई-बड़ौदा रेलवे का फतहगढ़ जिला :	गोरखपुर	१४ अप्रैल १९५२	९	४९१४		४,९२३
८. उत्तरी पूर्वी सीमांत रेलवे (N. E. Frontier)		पांडु	१५ जनवरी १९५८	१०६	२५६७	८४	२,७५७

5. India 1963, p. 308.

पाकिस्तान के बन जाने से आसाम और पश्चिमी बंगाल के बीच का सीधा रेल मार्ग हाथ से निकल गया। सन १९५० में कटिहार और सिलीगुड़ी को रेल द्वारा मिला दिया गया है। यह मार्ग दलदली व रोगग्रस्त भूमि से होकर जाता है। सिलीगुड़ी
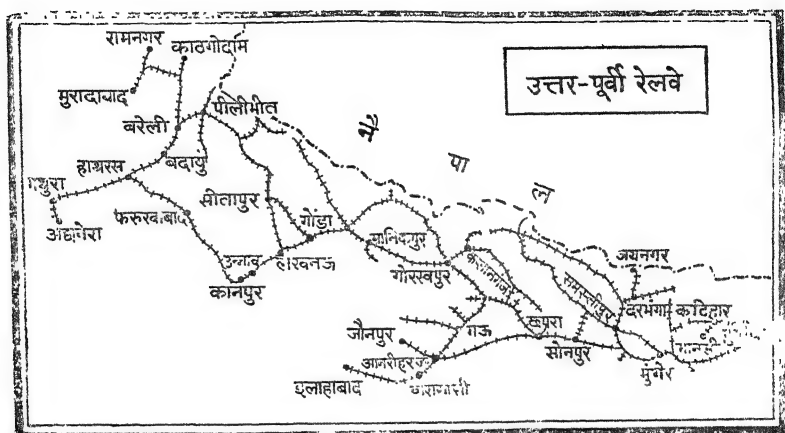
चित्र १९३. उत्तर पूर्वी रेलवे

से मदारी हाट तक रेल मार्ग पहले से ही था, मदारी हाट से फकीरा ग्राम तक नई रेल बना दी गई है। (२) गोरखपुर लखनऊ होती हुई कानपुर तक। लखनऊ से एक शाखा बरेली तक जाती है। (३) गोरखपुर से सारन होती हुई बनारस तक। (४) मनीपुर रोड होती हुई पांडू से गुवाहाटी व तिनसुखिया तक है। यह मार्ग ब्रह्मपुत्र की घाटी के साथ-साथ आगे बढ़ता है और इसलिए सम्पूर्ण मार्ग में कहीं भी पुल द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी को पार नहीं करना पड़ता। (५) इलाहाबाद—वाराणसी—मऊ—गोरखपुर। (६) बरेली—सीतापुर, गोंडा, गोरखपुर-छपरा-हाजीपुर, झाँसी-कटिहार। (७) वृन्दावन-हाथरस-कासगंज-बरेली-काठगोदाम।

यह सम्पूर्ण रेलमार्ग कानपुर, लखनऊ और वाराणसी में उत्तरी रेल मार्ग से मिल जाता है। इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश से आसाम तक यात्रा की जा सकती है। बिहार की सीमा पर स्थित नैपाल इसी रेलवे के साथ जोड़ा गया है। इस क्षेत्र में वाराणसी प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थ स्थान हैं। इसी क्षेत्र में आसाम के तेलकूप बहुत काम के हैं। कानपुर में चमड़े का काम होता है। यह चमड़ा इसी रेल द्वारा बाहर से कानपुर पहुँचाया जाता है।

(३) **पूर्वी सीमान्तर रेलवे** (North East Frontier Railway)—यह रेलमार्ग उत्तरी-पूर्वी रेल मार्ग का ही पूर्वी भाग है। इसकी लम्बाई २,७५७ कि० मी० है और इसका प्रधान कार्यालय पाँडु में है। यह रेलमार्ग समस्त आसाम तथा पश्चिमी बंगाल और बिहार के कुछ भागों से होकर निकलता है। इसके द्वारा पैट्रोलियम, चाय, कोयला, लकड़ी, जूट आदि ढोया जाता है।

यह रेल मार्ग उत्तरी-पूर्वी रेलमार्ग से कटिहार और मुरलीगंज में तथा पूर्वी रेलवे से मनिहार घाट में और पाकिस्तान की पूर्वी बंगाल रेलवे से राधिकापुर,

सिदबाद, हल्दीबारी, चन्द्रबन्धा और करीमगंज स्टेशनों पर मिलता है। इसकी सभी लाइनें छोटी लाइनें हैं। केवल ३·५ कि० मी० लम्बा टुकड़ा (हल्दीबारी से छिहाटी (पाकिस्तान) तक) बड़ी लाइन का है। तंग लाइन का एक ८० कि० मी० लम्बा मार्ग सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग तक चला गया है।

(४) **पूर्वी रेल मार्ग** (Eastern Railway)—इसकी लम्बाई ३,८४६ कि० मी० है और मुगलसराय और हुगली के बीच गंगा के पूर्वी मैदान में चलता है। पश्चिमी बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग इसी की शाखाओं द्वारा संबंधित हैं। ईस्ट इंडियन रेलवे के पूर्वी भाग (इनमें पाँच डिवीजन है—दीनापुर, धनबाद, हावड़ा, आसनसोल और सियालदाह) तथा बंगाल-नागपुर रेलवे को मिला कर यह रेलमार्ग बनाया गया है। इस पर सबसे अधिक यात्री (लगभग ५½ लाख) सफर करते हैं और सबसे अधिक माल (१५ लाख टन) ढोया जाता है। इस मार्ग से ले जाये जाने वाले माल में कोयला, लोहा, मैंगनीज,पटसन, अभ्रक और इसी प्रकार की अन्य खनिज वस्तुओं का महत्व बहुत अधिक है। पूर्वी रेलवे, प० बंगाल और बिहार के जूट उत्पादन क्षेत्रों में, पश्चिमी बगाल और बिहार की कोयले की खानों तथा कच्चा लोहा और भोडल की खानों, सिंद्री की खाद रसायनशाला तथा चितरंजन स्थित एन्जिन के कारखानों में सहायता प्रदान करती है। इस रेल मार्ग में कई तीर्थस्थान तथा यात्रियों के लिये दर्शनीय स्थान पड़ते है। वास्तव में पूर्वी गगा के मैदान में इस रेल मार्ग के द्वारा विविध आर्थिक लाभ होते है। इस आर्थिक क्रियाशीलता का कारण यह है कि कलकत्ता बन्दरगाह है और इस प्रदेश में उद्योग धन्धों का केन्द्रीयकरण भी विशेष है। इसका कार्यालय कलकत्ते में है। इसकी मुख्य शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(१) हावड़ा से वर्दवान, आसनसोल, गया व डेहरी-ओन-सोन होती हुई मुगलसराय तक यह शाखा जाती है। (२) हावड़ा से आसनसोल-पटना होती हुई यह शाखा मुगलसराय तक जाती है। ये दोनों लाइनें मुगलसराय में उत्तरी रेलों की शाखाओं से मिल जाती है और फिर उनके द्वारा दिल्ली, सहारनपुर व उसके आगे तक भी चली जाती है। (३) हावड़ा से बरहरवा, साहिबगज, भागलपुर व जमालपुर होकर किऊल तक जाती है। (४) कलकत्ता-मुर्शिदाबाद-लालगोलाघाट। (५) गोमो-डालटनगंज-डेहरी-ऑन-सोन।

इन सभी शाखाओं को कई उपशाखाओं द्वारा एक दूसरे से मिला दिया गया है।

(५) **दक्षिणी पूर्वी रेल मार्ग** (South Eastern Railway)—यह रेल मार्ग बंगाल-नागपुर रेलमार्ग को अलग करके बनाथा गया है। इसकी लम्बाई ५,८९७ कि० मी० है और इसका कार्यालय कलकत्ता में है। यह पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, तथा मध्य प्रदेश की सेवा करता है। इसके द्वारा आंध्र, बिहार, विशाखापट्टनम और कलकत्ता जुड़े हैं। इसके पृष्ठ-देश में अभ्रक, कोयला, ताँबा, मैंगनीज, चूना, बाक्साइट आदि मिलती है। इसी रेलमार्ग पर हीराकुण्ड योजना, विशाखापट्टनम में जहाज-निर्माण शाला तथा तेल शोधनशाला और बर्नपुर तथा टाटानगर के इस्पात के कारखाने स्थित हैं। इसकी प्रमुख शाखायें ये हैं :—

(१) हावड़ा से नागपुर तक। टाटानगर, बिलासपुर, रूरकेला, भिलाई,

गोंडिया और रायपुर इस मार्ग पर केन्द्रित हैं। इस शाखा के मार्ग में पड़ने वाले क्षेत्र खनिज पदार्थों में धनी हैं तथा औद्योगिक विकास में आगे बढ़े हुए हैं। इसके द्वारा कोयला, मैंगनीज, लोहा आदि का आवागमन होता है। टाटानगर जैसा प्रमुख
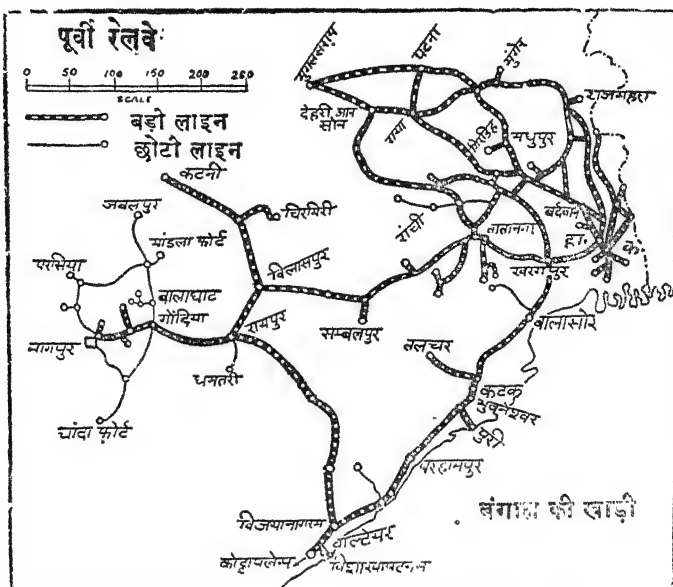
चित्र १९४. पूर्वी रेल मार्ग

केन्द्र भी इसी मार्ग पर स्थित है। टाटानगर को बोनाई, क्योनझर और सिंघभूमि की लोहे व मैंगनीज की खानों से संबंधित करने के लिये कई छोटी-छोटी उप
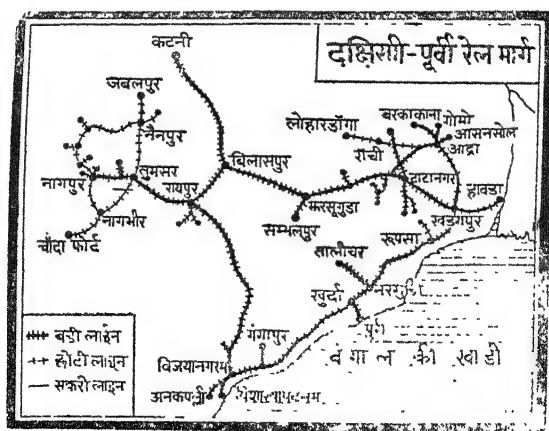
चित्र १९५. दक्षिण-पूर्वी रेल मार्ग

शाखाओं का निर्माण हो गया है। (२) हावड़ा से बालासोर, कटक, बरहामपुर और विजयानगरम होकर वाल्टेयर तक जाती है। यह शाखा मद्रास तक भी चली जाती है। (३) इसकी एक उपशाखा जो रायपुर और वाल्टेयर को मिलती है बड़ी ही महत्वपूर्ण है। इस लाइन के बन जाने से पूर्वी रेलवे का महत्व बहुत बढ़ गया है। निर्यात की जो वस्तुऐं पहले कलकत्ता तक ले जाई जाती थीं अब वे वाल्टेयर से ही बाहर भेज दी जाती हैं। इस शाखा पर लगभग २०० लाख यात्री और १८० लाख टन माल को लाया ले जाया जाता है

(६) **पश्चिमी रेल मार्ग** (Western Railway)—यह मार्ग १०,०६६ कि० मीटर लंबा है और बंबई, राजस्थान और मध्यप्रदेश के लगभग १½ लाख वर्ग मील भूमि में से निकलता है। इस मार्ग को बम्बई, बड़ौड़ा, सैंट्रल इंडिया रेलवे, सौराष्ट्र व राजस्थान रेलवे और जयपुर रेलवे को मिलाकर बनाया गया है। इस मार्ग के द्वारा कपास व सूती कपड़े, अनाज, नमक, तिलहन और अभ्रक का व्यापार बहुत अधिक होता है। बम्बई, अहमदाबाद और बड़ौदा के

चित्र १९६. पश्चिमी रेल मार्ग

औद्योगिक केन्द्र इसी मार्ग पर पड़ते हैं। देश विभाजन के बाद करांची के हाथ से निकल जाने से इस मार्ग पर यात्रियों की भीड़ व माल का भार बहुत अधिक हो गया है। इस मार्ग के द्वारा लगभग १ करोड टन माल और ८० लाख मनुष्य आते जाते हैं। इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है।

पश्चिमी रेलवे अहमदाबाद, इन्दौर, राजकोट, भावनगर आदि की सूती कपड़े की मिलों, लाखेरी, सेवालिया, द्वारका और पोरबन्दर के सीमेंट के कारखानों तथा मीठापुर की रसायनिक कारखानों आदि की सेवा करती है। इस रेलवे को भारत के साँभर, सरगोधा, कुडा आदि नमक के प्राचीनतम क्षेत्रों के यातायात एजेन्सी के रूप में काम करने का सौभाग्य तो विरासत में मिला ही है, पश्चिमी तट के दूसरे बड़े बन्दरगाह काँडला की उन्नति में और उदयपुर की उदीयमान जस्त की फैक्टरी को (जो स्वेज के पूर्व में अपनी किस्म की अकेली फैक्टरी है) माल वगैरह पहुँचाने में भी यह रेल सहायक है।

इस रेलवे पर दर्शकों के लिये आंबेर, मांडू, फतहपुर सीकरी, आगरा और उदयपुर मुख्य स्थान हैं। पवित्र तीर्थ स्थानों के यात्रियों की आवश्यकताओं का अपना महत्व है। पश्चिमी रेलवे पर स्थित बम्बई के उपनगर बाँदरा में सितंबर में होने वाले **लेडी आफ दी माउन्ट** के फीक्ट फेयर, मार्च अप्रैल में होने वाले **ख्वाजा साहब के उर्स** तथा अक्टूबर महीने में अजमेर के निकट पुष्कर में होने वाले मेले को लीजिये। दूर दूर से हजारों यात्री इनमें आते हैं। द्वारका, सोमनाथ, पालीताना, अंबाजी, नाथद्वारा, मथुरा, क्षिप्रा, ओंकारेश्वर आदि भी वे पवित्र स्थान हैं जो देश भर के हजारों यात्रियों को आकर्षित करते हैं।

इसकी मुख्य शाखायें ये हैं :—

(१) एक शाखा बम्बई से सूरत, बडौदा, रतलाम, नागदा, कोटा, सवाई-माधोपुर, बयाना होकर दिल्ली तक जाती है। बयाना से एक लाइन आगरा को जाती है और आगरा व कानपुर के बीच छोटी लाइन द्वारा सम्बन्ध है। (२) बम्बई से सूरत व बडौदा होकर अहमदाबाद तक जाती है और भुसावल से एक उपशाखा द्वारा मिली हुई है और भुसावल नागपुर से सम्बन्धित है।

इसकी प्रमुख छोटी लाइनें इस प्रकार हैं :—(१) अहमदाबाद से आबूरोड, अजमेर-फुलेरा, रेवाड़ी होती हुई दिल्ली तक है और आबूरोड, ब्यावर, अजमेर, जयपुर और अलवर रास्ते में पड़ते है। अजमेर से एक उपशाखा चित्तौड़, इन्दौर होती हुई खंडवा तक जाती है। (२) पोरबन्दर से डाहाला, राजकोट से वैरावल, कांडला से भुज और सुरेन्द्रनगर से ओखा तक अन्य शाखायें हैं।

(७) मध्यवर्ती रेल मार्ग (Central Railway)—इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ८,८६१ कि० मी० है और यह मध्य प्रदेश तथा मद्रास के उत्तरी पश्चिमी भाग से होकर जाती है। जी० आई० पी० रेलवे और सिन्धिया रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बना है। यह रेल मार्ग २,१०,००० वर्गमील क्षेत्र में फैला है। इसकी प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(१) बम्बई से भुसावल, खंडवा, इटारसी, भोपाल, झाँसी, ग्वालियर, आगरा, मथुरा होकर दिल्ली तक जाती है। इटारसी एक उपशाखा द्वारा इलाहाबाद व नागपुर से भी सम्बन्धित है। (२) बम्बई से रायचूर तक। रास्ते में पूना, धोंद, शोलापुर व वादी पड़ते हैं। यह शाखा आगे बढ़ कर बंगलौर तक भी चली जाती है। (३) दिल्ली से विजयवाड़ा तक इटारसी, नागपुर, वर्धा और काजीपेट होती हुई यह शाखा मद्रास तक चली जाती है। एक उपशाखा द्वारा काजीपेट हैदराबाद से सम्बन्धित है।

इस मार्ग से महाराष्ट्र, पश्चिमी आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश को विशेष लाभ पहुँचता है। मध्य प्रदेश की कपास व मैंगनीज, तांबा, अल्यूमीनियम और पीतल तथा भोपाल की लकडी इसी मार्ग द्वारा व्यापार में आती है। साधारणतया
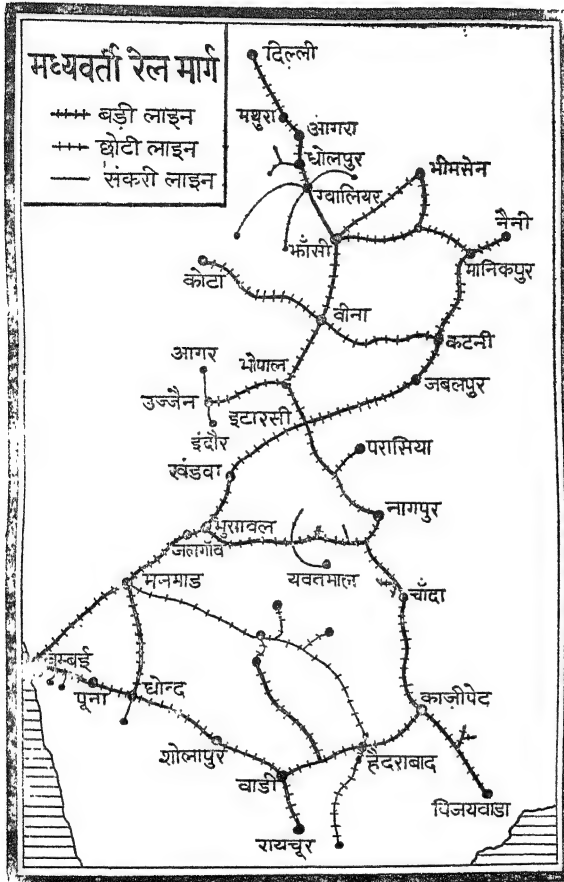
चित्र १६७. मध्यवर्ती रेल मार्ग

इस पर ५०० लाख यात्री यात्रा करते हैं और ११० लाख टन माल ले जाया जाता है। इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है।

(८) **दक्षिणी रेल मार्ग** (The Southern Railway)—मैसूर रेलवे, मद्रास और साउथ मरहट्ठा रेलवे तथा साउथ इंडिया रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बनाया गया है। इसकी कुल लम्बाई ६,६३६ कि०मी० है। इसमें छोटी व बड़ी दोनों ही प्रकार की लाइनें मिली हुई हैं। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में है। मद्रास, मैसूर, केरल तथा दक्षिणी महाराष्ट्र और आंध्र के कुछ भाग इसके मार्ग में पड़ते हैं। इसकी बड़ी लाइन वाली शाखाएँ निम्नलिखित हैं :—

(अ) मद्रास से वाल्टेयर तक—नेलोर और विजयवाड़ा होती हुई। इसके द्वारा मद्रास और कलकत्ते के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है। (आ) कडुप्पा द्वारा मद्रास से रायपुर तक। यह शाखा मद्रास व बम्बई को मिलती है। (इ) मद्रास से
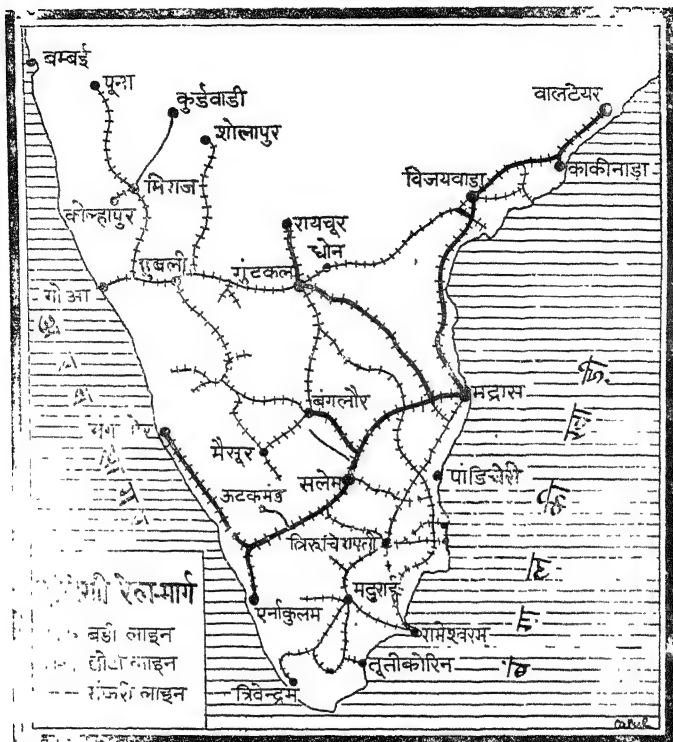
चित्र १६८. दक्षिणी रेल मार्ग

बंगलौर तक—(ई) जलारपत से मङ्गलौर तक। यह सलेम, ईरोड, कोयम्बटूर व तैलीचेरी से होकर जाती है। जलारपत, बंगलौर और उटकमंड से मिला हुआ है।

छोटी लाइन की प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(अ) पूना से हरिहर तक—मद्रास बम्बई तक आने का यह वैकल्पिक मार्ग है। हरिहर से एक लाइन बंगलौर तक जाती है। (आ) गुन्तकल से मसलीपट्टम तक विजयवाडा होकर जाती है। (इ) मद्रास से धनुषकोटि तक तन्जौर और तिरूचिरापल्ली होता हुआ यह मार्ग ४२२ मील लम्बा है। (ई) मद्रास से त्रिवेन्द्रम तक यह शाखा तिरूचिरापल्ली, विरुधनगर, मदुराई और क्विलन होती हुई जाती है। विरुधनगर से एक उपशाखा तूतीकोरन तक जाती है।

कई शाखायें व उपशाखायें मद्रास, कोचीन, तूतीकोरन, अलप्पी, क्विलन और कोजीखोड को मिलाती हैं। खाद्यान्न, कपास, तिलहन, नमक, चीनी, तम्बाकू,

लकड़ी और खाल व चमड़े इस मार्ग से ढोई जाने वाली विभिन्न वस्तुयें हैं। इस रेल द्वारा २७० लाख यात्री यात्रा करते हैं और १० करोड़ टन माल ढोया जाता है।

विद्युत चालित रेलों का विकास (Electric Trains)

भारत में बम्बई और मद्रास में उपनगरीय रेलों के विद्युतीकरण पर सबसे पहले १९२० में विचार किया गया किन्तु पहले विश्वयुद्ध के कारण विचार को कार्यरूप में परणित करने में देरी हुई। काम १९२५ में आरम्भ हुआ। बिजली की रेल का सबसे पहला सेक्शन विटोरिया टर्मिनस (कुरला) था। १९२८ तक जी० आई० पी० रेलवे ने इस सेवा का विस्तार बम्बई से लगभग ६४ कि० मी० दूर कल्याण तक कर दिया। १९२८ में बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे ने भी चर्चगेट बोरीविली सेक्शन में और बाद में विरार तक की लगभग ६८ कि० मी० की दूरी में बिजली की रेल चला दी। १९३१ से मद्रास और तम्बरम के बीच की लगभग २९ कि० मी० की दूरी भी बिजली की रेल द्वारा तय की जाने लगी। १९३६ के बाद भारत में बिजली की कोई वृद्धि नहीं हुई।

बम्बई में विद्युत-चालित सबबर्न गाड़ियाँ बहुत लोकप्रिय हुई हैं और उससे बम्बई की बस्तियों का बहुत विस्तार हुआ है। वहाँ की जनसंख्या १९३० में लगभग १५ लाख थी जो १९५०-५१ में ३५ लाख हो चुकी थी। १९२६-२७ में बम्बई की इन गाड़ियों में ४८० लाख लोगों ने यात्रा की थी और १९५१-५२ में यह संख्या बढ़कर ३,००० लाख हो गई थी। बम्बई में आजकल मध्य और पश्चिमी रेलों की प्रतिदिन लगभग ७०० सबबर्न गाड़ियां चलती हैं, किन्तु यात्रियों की संख्या और भीड़ को देखते हुए वे भी अपर्याप्त हैं। १९५१-५२ में दक्षिणी रेलवे की बिजली से चलाने वाली उपनगरीय गाड़ियों में २८० लाख व्यक्तियों ने यात्रा की। बम्बई के पूर्व में पश्चिमी घाट की चढ़ाई-उतराई में भाप के एन्जिनों से गाड़ियाँ ले जाने में बहुत कठिनाई और खर्च बैठता था, इसलिए बम्बई से पूना और बम्बई से इगतपुरी के सेक्शनों में भी १९२७ से बिजली की रेल चलाई जाने लगी। दिसम्बर १९५७ में २२ कि० मी० लम्बे टुकड़े पर हावड़ा और शिवराफूली के बीच प्रथम बार बिजली की गाड़ी चलाई गई।

३१ मार्च १९६० को केवल १,२८६ कि० मी० लम्बे रेल मार्ग का संचालन बिजली के एन्जिनों द्वारा हुआ—मध्यवर्ती रेल २९७ कि० मी० बम्बई-कुरला, कल्याण; पूना-इगतपुरी और कुरला-मनकुर्द; पश्चिमी रेलवे ६० कि० मीटर (मद्रास-तम्बरन) और पूर्वी रेल १४३ कि० मी० और दक्षिणी रेलवे २९ कि० मी० (बम्बई-बौरीविली-विरार)। भारत में रेलें काम में योजनाकाल में दूसरी योजना की अवधि में २,३२० कि० मी० लम्बी लाइन पर विद्युत द्वारा गाड़ी चलाने का कार्यक्रम था किन्तु केवल १,२८७ कि० मी० लंबा रेल मार्ग विद्युत शक्ति द्वारा संचालित हुआ। २,९०१ कि० मी० लंबी लाइन को दुहरा किया गया। अनेकों यार्डों की कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिए उनका पुनरुद्धार किया गया। १,७३० कि० मी० लंबी नई लाइन लगाई गई तथा युद्धकाल में उखाड़ी गई लाइनों में से ६,२२३ कि० मीटर लाइन फिर से लगाई गई। रॉलिंग स्टाक की वृद्धि इस प्रकार हुई :—

	१९५१	१९५६	१९६१
एन्जिन	८,४६१	९,१७२	१०,५५४
सवारी गाड़ी के डिब्बे	२०,५०२	२३,१५५	२८,१७१
मालगाड़ी के डिब्बे	२२२,४४१	२६८,४९३	३४१,०४१

तीसरी योजना काल में रेल-यातायात में इस प्रकार के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं :—

(१) सामान ढोने की क्षमता में ५९% की वृद्धि (अर्थात् २४.५ करोड़ टन से बढ़ा कर ३३.१ करोड़ टन करना)

(२) यात्री ढोने की क्षमता में ९५% प्रति वर्ष की वृद्धि।

(३) २०९० एन्जिनों; ७६०८ सवारी गाड़ी के डिब्बों तथा १२७,४६४ मालगाड़ी के डिब्बों की अतिरिक्त व्यवस्था करना।

(४) ३९२८ कि० मी० लम्बे मार्ग को दुहरा करना।

(५) १७७० कि० मी० लम्बे मार्ग पर विद्युत शक्ति द्वारा गाड़ियाँ चलाना विशेषकर कानपुर और मुगलसराय के बीच में।

(६) ८०४७ कि० मी० का पुनरुद्धार करना, स्लीपरों को ३६२० कि० मी० की दूरी तक नया लगाना।

(७) लगभग २४०० कि० मी० लम्बी नई लाइनें बिछाना—इनमें मुख्य ये हैं :—

[i] गढ़वा रोड़-रोबर्टस्; [ii] संबलपुर-तितलागढ़ और [iii] बिमलगढ़-किरीबुरू शाखाओं को न केवल पूरा किया गया है वरन् निम्न नई शाखाओं पर भी काम आरभ किया गया है :—

[१] झुंड-कांडला,
[२] माधोपुर-कठुवा,
[३] उदयपुर-हिम्मतनगर,
[४] पथारकंडी-धर्मनगर,
[५] गूना-माक्षी,
[६] रांची-बोंदामुंदा,
[७] हिंदुमलकोट-श्रीगंगानगर
[८] गाजियाबाद-तुगलकाबाद,
[९] बैलादिला-कोटवलसा

(८) कोयला ढोने के लिये ३२२ कि० मी० नई लाइनों को बनाना।

अध्याय ३५

जल और वायु परिवहन

(WATER & AIR TRANSPORT)

जल-परिवहन (Water Transport)

अति प्राचीन काल से ही भारत में नदियाँ भीतरी भागों में यात्रियों को ले जाने और माल ढोने के काम में आती रही हैं। श्री रैनेल ने इस बात का उल्लेख किया है कि "सिंध और उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंध की राजधानी टाटा और मुल्तान तथा लाहौर के बीच २०० टन वाले जहाज आसानी से आते-जाते थे और इन स्थानों के बीच औरंगजेब के राज्य काल में भी बहुत व्यापार होता था। किन्तु अब सिन्ध की सरकार के ढीलेपन और सिक्खों की लड़ाकू प्रकृति के कारण इस व्यापार में कमी हो गई है।" गंगा और ब्रह्मपुत्र के बारे में उनका लिखना है कि "इन दोनों नदियों ने अपनी शाखाओं सहित सम्पूर्ण बंगाल में इस प्रकार का जाल फैला रखा है कि जिसके द्वारा सभी भागों को जल मार्गों द्वारा पहुँचाया जा सकता है। इन नदियों द्वारा निकाली गई नहरें भी इसी प्रकार पूर्णता को पहुँच गई है कि बर्दवान तथा वीर भूमि की ऊँची भूमि को छोड़ कर हम यह कह सकते हैं कि राज्य के सभी भागों में—ग्रीष्म काल में भी—कुछ भाग २५ मील की दूरी तक भी नाव्य हैं।"

भारत में जल यातायात को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (१) भीतरी जल मार्ग (क) नहरें, (ख) नदियां, (२) सामुद्रिक जलमार्ग।

(१) भीतरी जलमार्ग (Inland Water-ways)

आंतरिक जल यातायात का सबसे अधिक महत्व उत्तरी-पूर्वी भारत के आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार राज्यों में है। आसाम और कलकत्ता के बीच २५ लाख टन से भी अधिक का व्यापार होता है। इसमें से लगभग आधा नदियों द्वारा ढोया जाता है। दक्षिण में केरल राज्य में भी जलमार्गों का महत्व है। यहाँ के जल-मार्ग राज्य के भीतरी भागों को छोटे बन्दरगाहों और कोचीन के बन्दरगाहों से जोड़ते हैं। उड़ीसा के तटीय भागों और डेल्टा प्रदेश में भी नदियों और नहरों द्वारा ही अधिक आवागमन होता है। कुछ सीमा तक आंध्र प्रदेश और मद्रास राज्य में भी इनका महत्व है।

(क) नहरें (Canals)—भारत की कुछ नहरें भी जलमार्गों का काम देती हैं। भारत में नावें चलाने योग्य नहरों की लम्बाई इस प्रकार है :—

(१) पंजाब की **सरहिन्द नहर** में हिमालय पर्वत की लकड़ियाँ बहाकर लाई जाती हैं।

(२) गंगा की नहरें ५४१ कि० मीटर।

(३) बिहार उड़ीसा की नहरें, ८०५ कि० मी० ।

(४) बंगाल का पश्चिमी भाग तो नहरों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। भारत के विभिन्न भागों से निर्यात के लिये जो माल कलकत्ता को आता है उसका लगभग २५% जल मार्गों द्वारा ही लाया जाता है। इसका भी ६३% तो अकेले

चित्र १६६. जल यातायात

आसाम से ही नदियों और नहरों द्वारा आता है। कलकत्ता के जल-मार्गों द्वारा किये जाने वाला व्यापार प्रति वर्ष लगभग ४५ लाख टन होता है जिसमें ३४% स्टीमरों द्वारा और ६६% देशी नावों द्वारा ढोया जाता है। आसाम की ६३% चाय और ६०% जूट की उपज जल मार्गों द्वारा ही कलकत्ता पहुँचती है। यात्री भी नावों द्वारा अधिक आते-जाते हैं। **हिजली, सरकूलर, पूर्वी नहर** और **मिदनापुर नहरों** द्वारा पश्चिमी जिलों की पैदावारें कलकत्ता तथा अन्य व्यापारिक मण्डियों को पहुँचाई जाती हैं।

(५) दक्षिण भारत मे **बकिंघम नहर** कोरोमण्डल तट पर दक्षिण की ओर ४४४ कि० मीटर तक चली जाती है और मद्रास को कृष्णा के डेल्टा से जोड़ती है।

(६) गोदावरी में दोलेश्वरम तक (५०० मील तक) तथा **कृष्णा नहर** में ६४४ कि० मीटर तक नावें चलती हैं।

(७) **कर्नूल कडप्पा नहर** भी ३०६ कि० मी० तक नावें चलाने योग्य है। दक्षिणी भारत में नदियों के डेल्टा की कपास, चावल आदि इन्हीं नहरों द्वारा ढोया जाता है। केरल के तटीय भागों में आवागमन के लिये नहरों का अधिक उपयोग किया जाता है।

(ख) नदी परिवहन (River Transport)—सम्पूर्ण भारत में जल-मार्गों की लम्बाई ६५,६८३ कि० मी० है जिसमें से ४१,४८३ कि० मी० लम्बी नाव्य नदियाँ और २४,१४० कि० मी० लम्बी नहरें हैं। भारत में साल भर जारी रह सकने वाले जल-मार्गों पर स्टीमर्स और बड़ी-बड़ी देशी नावें चलती हैं। उत्तरी भारत में नदियों में ३,२२० कि०मी० तक जहाज चलते हैं। जल-मार्गों की दृष्टि से बंगाल, आसाम, मद्रास तथा बिहार महत्वपूर्ण है। भारत में जल-मार्गों की लम्बाई उत्तर प्रदेश में १,२०० कि०मी०, बिहार में १,१५१ कि०मी०, पश्चिमी बङ्गाल में १,२४० कि० मी०, आसाम में १,५१० कि० मी०, उड़ीसा में ४६२ कि०मी० और मद्रास में २,७३६ कि० मी० है। भारत के परिवहन मन्त्रालय के अनुसार शक्ति चलित नावें चलाने योग्य जल-मार्गों की लम्बाई ६,७०६ कि० मीटर है। इसमें से २,३७५ कि० मीटर देशी नावों के योग्य है। गंगा और ब्रह्मपुत्र में धुआंकशों का यातायात ६२·५० करोड़ टन प्रतिवर्ष का बताया गया है। गंगा यातायात सर्वेक्षण (१६६०) के अनुसार बिहार में गंगा से प्रति वर्ष ५५·७१ लाख मन माल और ८०,००० यात्री आते-जाते है।

इन आँकडों में बड़े-बड़े जहाजों और बडी-बड़ी नावों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले मुख्य-मुख्य जल-मार्ग ही शामिल हैं। इसमें से २,८३४ कि० मी० में बड़े-बड़े जहाज चल सकने हैं, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

ब्रह्मपुत्र नदी :

डिब्रूगढ़ से सदिया तक (केवल वर्षा ऋतु में)	९७ कि० मी०

भागीरथी नदी :

कलकत्ता से गंगा नदी तक (केवल वर्षा ऋतु में)	२८९ ,, ,,

ब्रह्मपुत्र नदी :

डिब्रूगढ़ से धूबरी	६४० ,, ,,
सहायक नदियों से सेवाएँ	६०० ,, ,,
सुरमा नदी	१४० ,, ,,

हुगली नदी :

कलकत्ता से सुन्दरवन	२४० ,, ,,

1. Times of India's Year Book and Who's Who, 1959-60.

घाघरा नदी :			
गङ्गा के संगम से बरहज	१५५	,,	,,
गंगा नदी :			
पटना से बक्सर	१०६	,,	,,
पटना से लालगोला	५०७	,,	,,
जोड़	२,८[illegible]	कि०	मी०
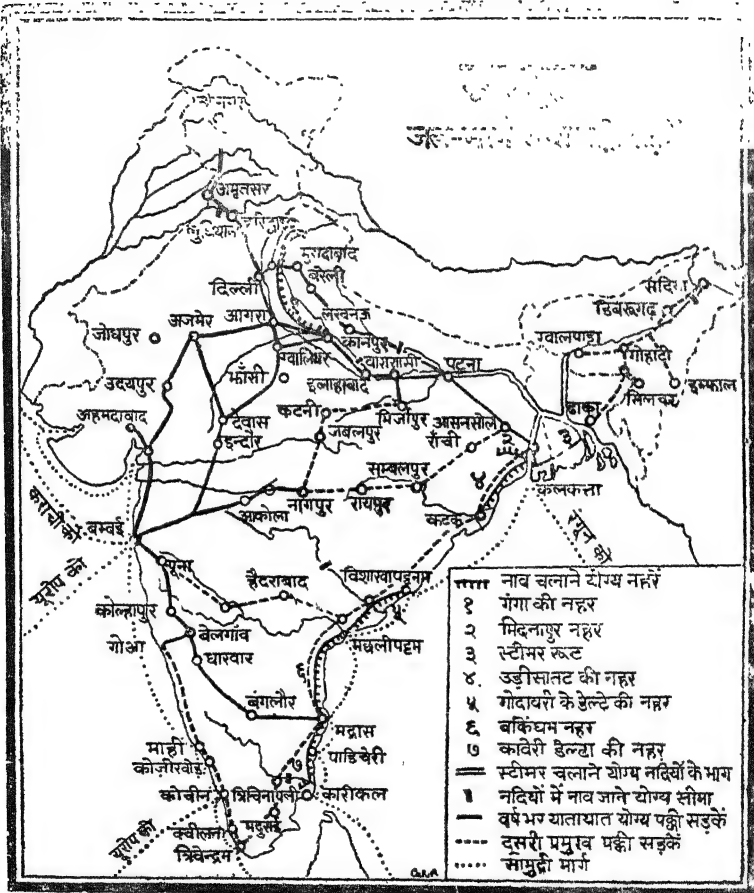
चित्र २००. भारत के मुख्य नहर मार्ग

दक्षिणी भारत में गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के निचले भागों में ही नावें चल सकती हैं। इनका शेष भाग पठारी है। गंगा नदी में मुहाने से ८०५ कि० मीटर ऊपर (जहाँ लगातार रूप से नदी ६ मीटर गहरी है) कानपुर तक स्टीमर चला करते हैं। छोटी-छोटी नावें तो हरिद्वार तक जा सकती हैं किन्तु

रेलों के बन जाने से गंगा का महत्व कम हो गया है। सन् १८५४ तक इलाहाबाद से ६४४ कि० मी० और ऊपर गढ़मुक्तेश्वर तक स्टीमर चले जाते थे किन्तु अब केवल बक्सर तक ही नदी पर नावें चलाई जा सकती है।

यमुना नदी में प्रयाग के राजापुर तक साल भर नावें चलती हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी में मुहाने से डिब्रूगढ़ तक १३८४ कि० मी० तक नावें चलती हैं किन्तु इस नदी में नावें चलाने में कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। नदी के मार्ग में प्रायः नये-नये द्वीप बनते रहते हैं जिनमें नावों को खेने में बड़ी अड़चन पड़ती है तथा वर्षा-ऋतु मे जल की तेजी के कारण नावो के उलट जाने का डर रहता है। हुगली नदी में भी नादिया तक जहाज पहुँच सकते है। छोटी-छोटी नहरें बड़ी-बड़ी नदियों को जोड़ती है, इसलिए कलकत्ते से आसाम तक स्टीमर चलते हैं। अधिकाश जूट, चाय, लकड़ी और चावल नावों से ही बड़े-बड़े शहरों में पहुँचाया जाता है।

यद्यपि भारत मे नदियाँ बहुत है किन्तु फिर भी आन्तरिक आवागमन के लिए उनका पूर्ण उपयोग नहीं होता। इसका मुख्य कारण भूमि की रचना तथा अब तक बिदेशी सरकार का ध्यान केवल-रेल-मार्गो की उन्नति करना ही रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित मुख्य कारण हैं :—

(१) भारत की अधिकांश नदियों में वर्षा के दिनों में बाढ़ आ जाती है। इस समय नदी की धारा तेज होती है अतः उनमें नाव खेना बड़ा ही कठिन होता है।

(२) गर्मी के दिनों में अधिकांश नदियाँ सूखी रहती है। जो कुछ थोड़ा बहुत जल नदियों में मिलता है वह जाड़ों और गर्मियों के आरम्भ में यहाँ की विशाल नहर व्यवस्था को जल देने के लिए उपयोग में आ जाता है। सिंचाई के लिए जल को इस तरह अलग कर देने से नदियों में सूखी ऋतु में जल नहीं रहता।

(३) दक्षिण की नदियाँ तो पठारी भूमि पर बहने के कारण नावें चलाने के योग्य हैं ही नहीं क्योंकि इनके मार्गो में प्रपात पड़ते हैं।

(४) कभी-कभी नदियाँ अपने मार्ग भी बदला करती हैं इस कारण भी उनका उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे एक किनारे की ओर पतली धारा के रूप में बहने लगती हैं। अधिकतर नदियों के किनारे बहुत दूर तक रेती रहती है। इस कारण नदी के किनारे तक लदी हुई गाड़ियों का आना कठिन हो जाता है।

(५) प्रायः सभी नदियाँ छिछले तथा बालूमय डेल्टाओं में गिरती हैं अतः समुद्री किनारे से देश के भीतरी भागों में जहाज नहीं जा सकते।

आन्तरिक जल-परिवहन विकास की आवश्यकता और उसके साधन

देश की विकासोन्मुख अर्थ व्यवस्था के लिए आंतरिक जलमार्गों के लाभ इस प्रकार हैं :—

(१) उत्तरी-पूर्वी भारत में प्रति वर्ष बाढ़ें आती हैं जिससे अनेक बार कई महीनों के लिए रेल एवं सड़क यातायात बंद हो जाता है, ऐसे समय जल यातायात लाभदायक हो सकते हैं।

(२) लम्बी यात्रा के लिए तथा अधिक परिमाण में जाने वाले माल के लिए जल परिवहन रेल और सड़क दोनो से सस्ता पड़ता है।[2] कलकत्ता से असम को मशीनें, भारी नल एवं अन्य भारी उपकरण जलमार्गों से ही भेजे जा सकते हैं। इसी प्रकार असम से कलकत्ता को चाय और जूट तथा चावल लाया जा सकता है।

(३) यद्यपि नावों और धुआंकशों की चाल प्रति मील मोटर और रेल दोनों से कम होती है किन्तु एक साथ अधिक परिमाण में जाने वाले माल को नदी से भेजने मे समय की बचत होती है। क्योंकि बहुत सा माल एक साथ बिना मार्ग में रुके निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाता है।[3]

(४) रेलें और सड़कें वर्तमान यातायात वृद्धि के अनुरूप नहीं बढ़ाई जा सकतीं क्योंकि उनके लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध नहीं है जबकि जलमार्ग प्राकृतिक हैं जिनके परिवहन योग्य बनाने के लिए अपेक्षाकृत बहुत कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। १·६ कि० मीटर रेलमार्ग भारत में ६ से १० लाख रुपये की पूँजी से बनता है, १·६ कि० मी० साधारण सड़क १५,००० रुपये की पूँजी से (राष्ट्रीय राजपथ ३ से ४ लाख रुपये से बनता है) किन्तु नदीमार्ग के लिए कोई पूँजी आवश्यक नहीं। यह प्रकृति की देन है।

(५) युद्ध के समय अथवा अन्य राष्ट्रीय संकट के दिनों में जल-परिवहन के लिए उतना भय नहीं जितना रेल अथवा सड़क के लिए। अतः आंतरिक जल-परिवहन का विकास राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से करना वांछनीय है।

भारत को प्रकृति-दत्त इतने अमूल्य जल परिवहन के आंतरिक साधन मिले हैं, जिनका अनुमान साधारणतः लगाना सरल नहीं हैं। अधिकांश भारतीय नदियाँ सदावाहिनी जो सदा बर्फ से मुक्त रहती है। ये अधिकतर समतल भूमि पर होकर बहती है अतएव हमें उतने जलावरोधों (Locks) की भी आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी अन्य देशों में। यह सौभाग्य ही है कि उत्तरी भारत में गंगा और उसकी सहायक नदियाँ मिलकर एक विस्तृत जलमार्ग बनाती है। इसी प्रकार मेघना, ब्रह्मपुत्र एवं बंगाल, बिहार, असम और उड़ीसा की अनेक छोटी-छोटी नदियाँ भी उपयोगी हैं। दक्षिणी भारत में महानदी, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा, ताप्ती आदि नदियों की अब तक उपेक्षा की जाती रही है। अतः इनका पूर्ण विकास आवश्यक है।

भारतीय विधान में अन्तर्राज्यीय नदियों और जल मार्गों का परिवहन भारत सरकार का विषय कर दिया गया है और केन्द्रीय जल शक्ति, सिंचाई और नौका संचालन आयोग (Central Waterways, Irrigation and Navigation Commission) के जिम्मे देश के नदी यातायात को एक योजना के आधार पर

---

२. जल परिवहन कम्पनियाँ कलकत्ता से डिब्रूगढ़ (११५० मील) और कलकत्ता से पटना (६२० मील) तक बेड़ों (flotila) द्वारा माल ले जाती हैं और प्रत्येक बेड़े में १½ बड़ी गाड़ी और ४ मंझली गाड़ी के बराबर माल लादा जा सकता है। माल की ढुलाई १½ से आना प्रति टन मील पड़ती है, जबकि मोटर ठेले की ढुवाई ३ से ६ आना प्रति टन मील और रेल की १¾ से ३⅓ आना प्रति टन मील हैं।—Report of the Inland Water Transport Committee, 1959.

३. आसाम से कलकत्ता तक चाय की पेटिया जलमार्ग से ७ दिन में पहुंचती है जबकि रेल मार्ग से वे १५ से २० दिन में।

विकसित करने का काम सौंपा गया है। पूना में एक नदी यातायात अनुसंधान-शाला (River Research Institute) स्थापना भी की गई है।

जल परिवहन के विकास का यह आयोग दो दृष्टियों से विचार कर रहा है। एक तो वर्तमान जलमार्गों का सुधार और नये जलमार्गोंकी स्थापना करना और उनको नावें चल सकने के योग्य बनाना। दूसरे, संगठन और व्यवस्था में सुधार करना जिससे व्यापारियों का अधिक से अधिक सहयोग मिल सके। नदी यातायात के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई है कि सिंचाई की नहरों के कारण जल की कमी आ जाती है। इसका उपाय यह है कि जल संचय (Water Conservation) की उचित व्यवस्था की जावे। यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली होती है और केवल जल-यातायात के लिये इतना खर्च करना संभव नहीं हो सकता। नदियों से बहुमुखी योजनाओं (सिंचाई, बिजली, बाढ़-नियंत्रण, यातायात आदि) के बनने पर ही यह व्यवस्था संभव है। इसलिए भारत सरकार ने नदियों की बहुमुखी योजना की नीति को स्वीकार किया है। इससे जल यातायात की कठिनाई दूर हो जायगी।

१९४९ की **यातायात सर्वेक्षण समिति** ने आंतरिक जलमार्गों की उन्नति के लिए निम्न सुझाव दिये हैं :—

(१) कलकत्ता बन्दरगाह पर आयात किए हुए खाद्यान्न का जो भाग उत्तर प्रदेश और बिहार के लिए नियत किया जाए उसका २५% जलमार्गों से ले जाया जाये।

(२) कोयले और खनिज तेल के यातायात का एक अंश रेलों से हटा कर जलमार्गों के लिए सुरक्षित कर दिया जाये।

(३) जल मार्गों के क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए जिससे उन्हें पर्याप्त यातायात उपलब्ध हो सके।

केन्द्रीय जलशक्ति, सिंचाई तथा नौका संचालन आयोग ने भारत के विभिन्न भागों में जल मार्गों की उन्नति करने की जो योजना बनाई है वह यह है :—

(१) बंगाल में दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project) के फलस्वरूप रानीगंज की निचली कोयले की खानों को हुगली नदी से एक नहर द्वारा मिलाया गया है तथा गंगा बैरेज प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भी एक नहर बनाने की योजना है जो भागीरथी से भाँसीपुर के पास मिलेगी। गंगा नदी और भागीरथी के बीच के जल मार्ग, तिस्ता नदी योजना के अन्तर्गत उत्तरी तथा पूर्वी बंगाल और कलकत्ते के बीच के जलमार्गों का पुनर्निर्माण किया जायगा। इस योजना के अनुसार गंगा नदी पर बिहार में स्थित साहिबगंज से ३८ कि०मी० नीचे राजमहल स्थान पर एक बाँध बनाया जायेगा। इसकी सहायता से गंगा नदी के जल को एक बार नहर द्वारा भागीरथी नदी की तलहटी में डाल दिया जावेगा। यह योजना कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाई जा रही है : (i) बंगाल-बिहार की सीमा पर गंगा नदी के आर-पार बाँध बनाया जावेगा। इससे भागीरथी तथा पश्चिमी बंगाल की अन्य नदियों में अधिक जल की व्यवस्था हो जायगी। (ii) कलकत्ता और गंगा के बीच का जल-मार्ग नाव्य हो जायगा। (iii) हुगली नदी में अधिक जल आ जायगा और उसके फलस्वरूप यह नदी नाव चलाने के योग्य बनी रह सकेगी। इस योजना के पूरे होने पर भागीरथी में साल भर जल भरा रहेगा, हुगली नदी के जल का खारापन

जाता रहेगा और कलकत्ता से बिहार और उत्तर प्रदेश तक सीधा जलमार्ग बन जायेगा तथा वर्तमान मार्ग ८०० कि० मी० से छोटा हो जायेगा।

(२) आसाम की दीहींग, डिब्रू, धनसीरी, कलाग नदियों का पुनरुत्थान करना।

(३) बिहार में गंडक और कोसी नदियों तथा उनकी सहायक नदियों का पुनर्निमाण करना तथा सोना घाटी योजना के अन्तर्गत सोन नदी को २४० कि०मी० तक यातायात के योग्य बनाना।

(४) बेतवा और चम्बल नदियों की बाढ़ के जल को रोककर ऐसी व्यवस्था करना जिसके फलस्वरूप शीत ऋतु में भी यातायात के लिए पर्याप्त जल की मात्रा उपलब्ध हो सके।

(५) महानदी योजना के अन्तर्गत हीराकुड बाँध के पूरा हो जाने पर महानदी का ४८३ कि० मी० का टुकड़ा जल यातायात के योग्य हो सकेगा।

(६) उड़ीसा की तटीय नहरों को बढ़ाकर मद्रास की नहरों से जोड़ दिया जाय जिससे आसाम से मद्रास तक जल यातायात का सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

(७) मध्य प्रदेश में नर्मदा और ताप्ती नदियों को भी यातायात के योग्य बनाने का प्रश्न विचाराधीन है।

(८) ककरापार योजना के अन्तर्गत सूरत के निकट समुद्र से ककरापार बांध तक और ८० कि० मीटर ऊपर तक नावें चलाने की सुविधा मिल सकेगी।

(९) घाघरा नदी को गंगा के उद्गम से बहराम घाट तक नव्य बनाने की भी योजना है। मे है। केन्द्रीय जल और विद्युत आयोग ने (१९५६) एक बृहद् योजना बनाई है जो ३० वर्षो के उपरांत कार्यान्वित दी जायेगी। इस योजना के अनुसार :

(१) पश्चिमी तट से पूर्वी तट के बीच में एक सीधा जलमार्ग स्थापित करने के लिये गगा को नर्मदा ताप्ती नदियों से मिलाया जायेगा। इसके लिए चार योजनायें बनाई गई है :—

(i) नर्मदा को सोन की सहायक जोहिला द्वारा सोन नदी से मिलाना।

(ii) नर्मदा और सोन की सहायक नदियोंहीरन और करनी द्वारा जोड़ना।

(iii) नर्मदा की सहायक करम नदी द्वारा चम्बल को जोड़ना।

(iv) केन और हीरन नदियों द्वारा नर्मदा को जमुना से जोड़ना।

(२) पश्चिमी तट से पूर्वी तट तक जल मार्ग बनाने के लिए नर्मदा को गोदावरी से जोड़ना जिससे गुजरात, मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश का पृष्ठ-देश जल मार्गों द्वारा मिल जाय।

(३) पूर्वी और पश्चिमी तटों के बीच एक दूसरा और जल मार्ग बनाना जो वरधा नदी को गोदावरी से मिलायेगा।

(४) उत्तरी भारत को दक्षिणी भारत से मिलाने के लिए कलकत्ता से कटक और मद्रास होकर कोचीन तक एक जल मार्ग बनाना। इसके लिए सोन और रिहांद नदियों को महानदी की सहायक हसदो नदी से मिलाया जायेगा और इनके द्वारा गंगा को महानदी से जोड़ा जायेगा।

प्रथम योजना काल में पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और आसाम की राज्य सरकारों के सहयोग से गंगा-ब्रह्मपुत्र बोर्ड की स्थापना की गई है जिसका मुख्य कार्य जलमार्गों का विकास करना है। इस बोर्ड के तत्वावधान में १५१ कि० मी० की दूरी तक छपरा और बुरहज के बीच में देशी नावें चलाई जाती है, (२) पटना और बक्सर के बीच में १५० कि० मी० तक साप्ताहिक सेवा और पटना तथा राज महल के बीच ३२६ कि० मी० की दूरी तक स्टील बार्जेस चलाये जाते हैं।

तृतीय योजना में बंकिमघम नहर, पश्चिमी तटीय नहर, उड़ीसा की ताल-दंड्रा और केन्द्रपारा की नहरों का विकास किया जायेगा तथा प्रदीप और पांडु बन्दरों को बनाया जायेगा।

(२) सामुद्रिक जलमार्ग (Overseas Waterways)

भारत के प्रधान सामुद्रिक मार्ग इन पाच प्रधान बन्दरगाहों से आरम्भ होते हैं—बम्बई, कोचीन, मद्रास, विशाखापट्टनम तथा कलकत्ता। भारत हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित है जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम को व्यापारिक मार्ग निकलते हैं। यहाँ से पूर्व और दक्षिण पूर्व को सामुद्रिक मार्ग चीन, जापान, पूर्वी द्वीप समूह और आस्ट्रेलिया को; दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रीका और दक्षिण में लंका को जाते हैं। इस प्रकार भारत पश्चिमी कला कौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिये एक कड़ी का काम करता है।

भारत के बन्दरगाहों पर मिलने वाले प्रधान जलमार्ग ये हैं :—

(क) **स्वेज जलमार्ग** (Suez Route)—इस मार्ग के खुल जाने से भारत और यूरोप के बीच का व्यापार बहुत बढ़ गया है। यह जल मार्ग पी० एण्ड ओ० (P & O) तथा बी० आई० एस० एन० (B. I. S. N.) कम्पनियों के नियन्त्रण में है। इस मार्ग द्वारा भारत यूरोप कच्चा माल और खाद्य पदार्थ भेजता है तथा बदले में तैयार माल और मशीनें मँगवाता है।

(ख) **आशा अन्तरीप जलमार्ग** (Cape Route) भारत को दक्षिणी अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका से जोड़ता है। कभी-कभी दक्षिणी अमेरिका जाने वाले जहाज भी इसी मार्ग से जाते हैं। भारत इस मार्ग से अपने यहाँ रुई, कोयला, शक्कर आदि मँगवाता है।

(ग) **सिंगापुर जलमार्ग** (Singapore Route) का आवागमन की दृष्टि से स्वेज जलमार्ग के बाद दूसरा स्थान है। यह मार्ग भारत को चीन और जापान से जोड़ता है। इस मार्ग द्वारा भारत, कनाडा और न्यूजीलैंड के बीच का व्यापारिक सन्तुलन भी होता है। भारत में इस मार्ग से सूती-रेशमी कपड़ा, लोहे व इस्पात का सामान, मशीनें, चीनी के बर्तन, खिलौने, रासायनिक पदार्थ, कागज आदि आते हैं और बदले में रुई, लोहा, मैंगनीज, जूट, लाख अभ्रक आदि निर्यात होते हैं।

(घ) सुदूर पूर्व का जल मार्ग (Australian Route) भी क्रमशः महत्व-पूर्ण बनता जा रहा है। यह मार्ग भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ता है। इस मार्ग से भारत में गेहूँ, कच्ची ऊन, घोड़े और फल आदि वस्तुओं का आयात होता है और बदले में जूट, चाय, अलसी आदि निर्यात होते है।

भारतीय जलमार्ग

भारत के सामुद्रिक मार्ग विशेषतः कलकत्ता, विशाखापट्टनम, मद्रास, कोचीन, कांधला एवं बम्बई के बन्दरगाहों से ही आरम्भ होते है। नीचे की तालिका में इन बन्दरगाहों से आरम्भ होने वाले प्रमुख समुद्री-मार्गो को बताया गया है :—
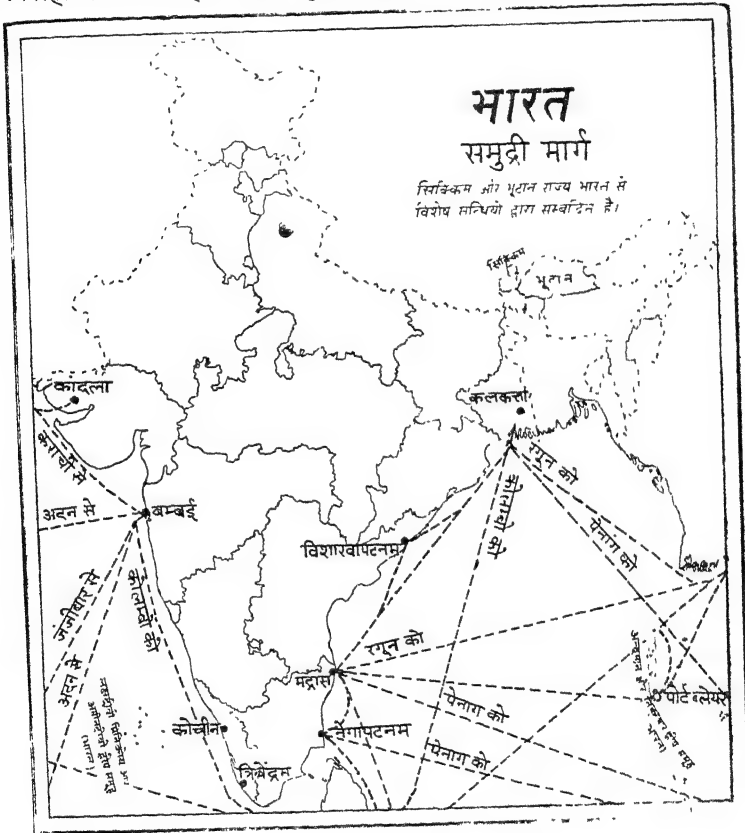
चित्र २०१. भारत में जलमार्ग

कलकत्ता :

कलकत्ता - सिंगापुर - न्यूजीलैंड।

कलकत्ता - कोलम्बो - पर्थ - एडीलेड।

कलकत्ता - कोलम्बो - अदन - पोर्ट सईद।

कलकत्ता - सिंगापुर - हाँगकांग - टोकियो ।
कलकत्ता - विशाखापट्टनम - मद्रास ।
कलकत्ता - रंगून ।
कलकत्ता - सिंगापुर - बटाविया ।

विशाखापट्टनम :

विशाखापट्टनम - रंगून ।
विशाखापट्टनम - मद्रास - कोलम्बो ।
विशाखापट्टनम - कोलम्बो - अदन - पोर्ट सईद ।

मद्रास :

मद्रास - कोलम्बो - मॉरीशस ।
मद्रास - कोलम्बो - अदन - पोर्ट सईद ।
मद्रास - रंगून - सिंगापुर ।
मद्रास - कलकत्ता ।
मद्रास - बम्बई ।

कोचीन :

कोचीन - बम्बई - कराँची ।
कोचीन - बम्बई - अदन - पोर्ट सईद ।
कोचीन - कोलम्बो - कलकत्ता - पर्थ ।

बम्बई :

बम्बई - कोलम्बो - पर्थ - एडीलेड ।
बम्बई - मोम्बासा - डरबन - केपटाऊन ।
बम्बई - कोलम्बो - सिंगापुर ।
बम्बई - कराँची - अदन ।
बम्बई - पोर्ट सईद ।
बम्बई - कोलम्बो - मद्रास ।

भारतीय पोत चालन (Indian Shipping)

यद्यपि भारत का सामुद्रिक किनारा स्वाभाविक बन्दरगाहों में पूर्ण नहीं है, फिर भी इसकी स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय जल-मार्ग के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। अपनी स्थिति, विशालता तथा आर्थिक उन्नति के विचार से इस देश का समुद्री व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान होना आवश्यक है। बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय अच्छे नाविक

रहे हैं। **श्री हाजी** के अनुसार, "पुरानी दुनिया के महाद्वीपों के बीच में एक नगीने की तरह स्थित, ६,०४६ कि० मी० से भी अधिक समुद्र-तटीय रेखा तथा अपनी भूमि की उर्वरा शक्ति के लिए प्रख्यात देश भारत प्रकृति की कृपा से ही समुद्री व्यापार करने के उपयुक्त हैं।"[1] **डा० राधाकमल मुखर्जी** का तो यहां तक कहना है कि भारतीय जहाजी शक्ति के विकास के फलस्वरूप ही भारतीय सभ्यता अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी जिसका प्रभाव विदेशी सभ्यताओं पर बहुत अधिक पड़ा।[2] पूरी तीस शताब्दियों तक भारत की स्थिति पुरानी दुनिया के मध्य में उसी प्रकार महत्वपूर्ण रही जैसे मानव शरीर में हृदय की और भारत विश्व के सामुद्रिक राष्ट्रों में एक अग्रणी राष्ट्र और महान सामुद्रिक शक्ति बना रहा। पीगू, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो व जापान तक के सुदूर पूर्वी देशों में उस समय भारतीय उपनिवेश थे। दक्षिणी चीन, मलाया प्रायद्वीप, अरब, ईरान के सभी मुख्य नगरों व अफ्रीका के सारे पूर्वी तट पर भारत की व्यापारिक बस्तियाँ थीं। भारत का व्यापारिक सम्पर्क एशिया के ही नहीं यूरोप के साथ भी था। उस समय भारत का प्रभाव इतना अधिक था कि देश की इतिहासकारों ने **पूर्वी सागरों की रानी** (Mistress of the Eastern Seas) की उपाधि दी है।[3]

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात्

सितम्बर १९३९ में जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो भारत सरकार को यह अनुभव हुआ कि भारतीय जहाजी बेड़े की कितनी आवश्यकता है। इस काल में बहुत से भारतीय जहाज सरकार ने युद्ध कार्य के लिये अपने अधिकार में ले लिये जिससे देश की रक्षा की जा सके। कई जहाज शत्रुओं द्वारा नष्ट भी कर दिये गये। युद्ध के पश्चात् भारतीय जहाजों की संख्या केवल ६३ थी जिसका टनभार १,३१,७४८ टन था। इनमें ६ जहाज तो अकेले सिंधिया कम्पनी के ही थे। सम्पूर्ण जहाजों के भार का यह ९१% था।

१९४५ में एक युद्धान्तर पुनर्विकास नीति उपसमिति (Postwar Reconstruction Policy Sub-Committee) नियुक्त की गई। इस कमेटी ने भारतीय जहाजी बेड़े के विकास के इतिहास का पूर्ण अध्ययन किया और अंग्रेज सरकार की अब तक इस सम्बन्ध में बरती गई उपेक्षापूर्ण नीति का कड़ा विरोध किया और कहा कि "भारतीय जहाजी बेड़े के विकास का इतिहास वचन भंग की दर्दनाक कहानी है।" इस रिपोर्ट के अनुसार १९३८-३९ में ३,२५० विदेशी जहाज—जिनकी कुल जहाजरानी १,१०,१०,७६९ टन थी भारतीय बन्दरगाहों में आये और यहाँ से १,६०,६१,००० टन सामान ले गये। भारत के तटीय व्यापार में जहाँ विदेशियों का भाग ५१,१८,६५२ टन रहा वहाँ भारत के हिस्से में केवल १७,६०,६४७ टन ही रहा अर्थात् तटीय व्यापार पर विदेशियों का ७४·४० प्रतिशत और भारतीय २५·६० का प्रतिशत भाग रहा।

---

1. *S. N. Haji* : Economics of Shipping, p. 365.
2. *R. K. Mukerjee* : History of Indian Shipping, p. 4
3. *R. K. Mukerjee* : Ibid p. 5.

इस समिति की मुख्य सिफारिशें ये थीं—

(१) भारतीय जहाजी बेडे से अभिप्राय उस जहाजी बेड़े से होगा जिस पर विशुद्ध भारतीयों का स्वामित्व अधिकार और व्यवस्था होगी। किसी भी जहाज को भारतीय जहाज मानने के पूर्व इन शर्तों का पूरा होना आवश्यक होगा :—

(क) भारत के किसी भी बन्दरगाह या बन्दरगाहों पर ऐसे जहाजों की रजिस्ट्री होनी चाहिये।

(ख) जहाजी कम्पनियों के हिस्सों और ऋणपत्रों में कम से कम ७०% भाग भारतवासियों का होना चाहिये।

(ग) सभी संचालक भारतीय ही हों।

(घ) मैनेजिंग एजेन्ट भी, यदि कोई हों, भारतीय ही हों।

(२) भारतीय तट का शत प्रतिशत व्यापार, बर्मा तथा लंका के साथ भारतीय व्यापार का ७५%, समीपवर्ती देशों—अफ्रीका, मध्यपूर्व के देश, थाईलैंड, हिन्दचीन, मलाया तथा पूर्वी द्वीप समूह—के व्यापार का ७५% और दूरवर्ती देशों के साथ के व्यापार का ५०% तथा उस पूर्वी व्यापार (Oriental Trade) का ३० प्रतिशत जिसे जर्मनी, इटली आदि धुरी-शक्तियों (Axis Powers) ने द्वितीय महायुद्ध में खो दिया है, आगामी ५-७ वर्षों में भारत के हाथ में आ जानी चाहिये।

(३) यद्यपि हमारी वर्तमान शक्ति को देखते हुए इतना व्यापार हमारी शक्ति के बाहर दिखाई पड़ता है तो भी कोई कारण नहीं कि अपनी टन शक्ति बढ़ा लेने पर हम अपने व्यापार को—१०० लाख टन माल और ३० लाख यात्रियों को—संचालित न कर सकें। अस्तु, इस व्यापार को ले जाने के लिये हमें २० लाख टन जहाजी बेड़े की आवश्यकता है (देशी नावों को छोड़ कर)।

(४) चूँकि भारतीय जहाजी उद्योग अभी अपनी बाल्यावस्था में ही है अतः इस समिति ने उसकी टन शक्ति का निर्धारण करना उचित नहीं समझा और न ही उनके द्वारा होने वाले पूँजीगत खर्चों पर ही कोई रोक लगाई, किन्तु इस बात की ओर अधिक जोर दिया कि एकाधिकार की व्यवस्था को यथाशक्ति रोका जाय।

(५) भारतीय जहाजों को मिलने वाले विभिन्न नये देशों के व्यापार को सभी कम्पनियों में समान रूप से वितरित किया जाय।

(६) जहाजी बेड़े की टन शक्ति और व्यापार आदि के आँकड़ों के संचयन तथा प्रकाशन में आमूल परिवर्तन किया जाय।

(७) भारत सरकार का वाणिज्य विभाग पोर्ट ट्रस्ट आदि की शासन व्यवस्था यातायात विभाग से अपने हाथों में ले ले।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत पोत-चालन के विकास के लिए निम्न कार्यक्रम अपनाये गए हैं :—

भारत में जहाजों का निर्माण करना—भारत में जहाज बनाने का सर्व प्रथम कारखाना १९४७ में विशाखापट्टनम में बनकर तैयार हुआ। १९४८ में इस कारखाने में प्रतिवर्ष दो जहाज बनने लगे। किन्तु १९४९ से जब सिंधिया कम्पनी ने इस कारखाने को चलाने में असमर्थता प्रकट की तो १ मार्च १९५२ में भारत सर-

कार के अधीन ही 'हिन्दुस्तान शिपयॉर्ड लिमिटेड' नामक कम्पनी की स्थापना की गई। इस कारखाने में १९६० के अन्त तक ३३ समुद्री जहाज तथा २ छोटे-छोटे जहाज बन चुके थे।

तटीय व्यापार में लगे बड़े-बड़े जहाजों को सामुद्रिक व्यापार में संलग्न करना—१९६३ में भारत के तटीय व्यापार में लगे १०९ जहाज थे जो ३·९६ लाख टन शक्ति के थे। इन जहाजों को विदेशी व्यापार के लिए उपयोग में लाने और उनके स्थान पर छोटे छोटे जहाज बनाने की नीति का अनुसरण किया गया है।

पाल से चलने वाले जलयानों का उपयोग—भारत के समुद्र तटीय व्यापार में अनेक पाल से चलने वाले जलयान भी भाग लेते हैं। १९४८ में बिठाई गई **पालपोत समिति** (Sailing Vessals Committee) की जांच के अनुसार भारत में लगभग ८०,००० पाल से चलने वाले जलयान हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग १५ लाख टन माल समुद्र तट पर लाया और ले जाया जाता है। इनकी माल ले जाने की क्षमता लगभग २,५०,००० टन है। इसके द्वारा समुद्रतटीय व्यापार का १/४ व्यापार होता है किन्तु इन जलयानों की दशा बड़ी दयनीय है। अतः इस समिति ने सुझाव दिया कि उनकी सेवा का उचित उपयोग करने के लिये उन्हें सुसगठित किया जाय। इसी हेतु १९५५ में जहाजों के सामान्य विभाग के अन्तर्गत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई है।

व्यापारिक नीति समिति की विस्तृत रिपोर्ट में दी गई विभिन्न सिफारिशों पर विचार कर भारत सरकार ने एक बड़ी व्यापारिक योजना बनाई जिसमें राष्ट्रीय **जहाजी निगमों** (Shipping Corporations) की स्थापना की व्यवस्था की गई। प्रत्येक निगम के जिम्मे विभिन्न क्षेत्रों के जहाज संचालन कार्य था। प्रथम निगम **पश्चिमी जहाजी निगम** (Western Shipping Corporation) भारत और फारस की खाड़ी, भारत और लाल सागर के बीच; मिश्र के बन्दरगाहों और भारत-पोलेंड और भारत रूस मार्ग के बीच व्यापार संचालन करता था। द्वितीय निगम भारत-पूर्वी अफ्रीका आदि, भारत-आस्ट्रेलिया, भारत-मलाया और पूर्वी द्वीप समूह आदि के बीच व्यापार करता था। इसका नाम **पूर्वी जहाजी निगम** (Eastern Shipping Corporation) था।

नीचे की तालिका में भारतीय समुद्री यातायात (तटीय एवं विदेशी) में प्रगति बताई गई है :—

वर्ष	जहाज	टन भार-शक्ति
१९३९	५३	१२६,७०९
१९४८	७२	२४९,२६१
१९५१	९२	३६६,६४६
१९५५	११८	४८०,५५५
१९५८	१४१	६३९,७०८
१९५९	१५७	७४४,१८९
१९६०	१७२	८४४,०१६
१९६१	१७४	९०१,०२०
१९६२	१८७	१,०२४,२४२
१९६३	२०८	१,२३३,८५३

भारतीय तटीय व्यापार में इस समय केवल १०९ जहाज लगे हैं जिनकी टन भार शक्ति ३·९६ लाख की है। १९५१ में ७१ जहाज थे जिनकी शक्ति २·०५ लाख टन भार थी।

अक्टूबर १९६१ में भारत सरकार द्वारा संचालित इन दोनों निगमों को (Western Shipping Corporation और Eastern Shipping Corporation) मिलाकर एक नए निगम की स्थापना की गई है जिसका नाम Shipping Corporation of India रखा गया है। इसकी निर्धारित पूँजी ३५ करोड़ रुपये की है। इन दोनों निगमों ने १९६१ में ६,०७,१५,२१८ रुपये का लाभ कमाया। इनके पास २३ माल ढोने वाले २ माल और यात्री ले जाने वाले तथा २ तेल ले जाने वाले बड़े जहाज हैं जिनका टन भार २ लाख टन है।

इस निगम के जहाज माल ढोने के लिए निम्न मार्गों पर चल रहे हैं :—

(१) भारत - आस्ट्रेलिया
(२) भारत - जापान
(३) भारत - काला सागर
(४) भारत - पोलैंड
(५) भारत - फारस की खाड़ी
(६) भारत - सुदूरपूर्व - जापान
(७) प० हट - पाकिस्तान-जापान
(८) भारत - पाकिस्तान - इंगलैंड-यूरोप

यात्री मार्ग इस प्रकार हैं :—

(१) बम्बई - पूर्वी अफ्रीका
(२) मद्रास - सिंगापुर
(३) भारत-अन्डमान
(४) पश्चिमी तट-पश्चिमी पाकिस्तान

इस निगम की एक सहायक **कं० मुगल लाइन** है, जिसके पास ४ यात्री तथा माल ढोने के जहाज हैं, जिनका टन भार २६,००० है। ये हज यात्रियों को ले जाते हैं।

योजनाओं के अन्तर्गत

१९५०-५१ में भारत की कुल जहाजी शक्ति ३·९१ लाख टन की थी। यह बढ़ कर १९५५-५६ में ४·८० लाख टन और १९६०-६१ में ९·०५ लाख टन हो गई। अभी भारतीय जहाजों का विदेशी व्यापार में भाग केवल ८ से ९ प्रतिशत ही है।

भारतीय जहाजों का टन-भार
(लाख टनों में)

	१९४८	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
तटीय व्यापार में लगे जहाज	१·५०	२·१७	२·४०	२·९२
विदेशी व्यापार में लगे जहाज	१·६८	१·७४	२·४०	६·१३
योग	३·१९	३·९१	४·८०	९·०५

१९६३ में भारत की कुल जहाजी शक्ति १२·३३ लाख टन की थी। तृतीय योजना के अंत में यह १३ लाख टन की हो जायेगी।

यद्यपि भारत का विश्व के व्यापारिक राष्ट्रों में ११ वाँ स्थान है, किन्तु भारतीय पोत चालन विश्व के सामुद्रिक राष्ट्रों में १९ वें स्थान पर है। संयुक्त राज्य का व्यापार विश्व के व्यापार का १६·४% है, किन्तु उसका जहाजी बेड़ा विश्व के १९·१% के बराबर है। इसी प्रकार ब्रिटेन, लाइबेरिया, नार्वे, जापान, इटली, यूनान आदि देशों के ये प्रतिशत क्रमशः १० व १६·३; ०·०३ व ८·७; १·० व ७·६; ३·४ व ५·३; ३·० व ४; ०·४ व ३·५ हैं। भारत का व्यापार विश्व व्यापार का १·५२% है किन्तु जहाजी बेड़ा केवल ०·६६% ही है। अतएव, इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि भारतीय पोतचालन को उन्नत बनाया जाये।

(४) वायु परिवहन (Air Transport)

भारत में सर्व प्रथम हवाई उड़ान १९११ में आरम्भ हुई। इस समय कुछ स्थानों में केवल प्रदर्शन की दृष्टि से हवाई उड़ान की व्यवस्था की गई थी। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से हवाई यातायात का हमारे देश में वास्तविक विकास आरम्भ हुआ। इस समय भारत सरकार ने कुछ जहाज उतरने के स्थानों (Landing Ground) की व्यवस्था की। तब से लगातार वायु परिवहन में विकास होता रहा है भारतीय वायु परिवहन का इतिहास लगभग ५१ वर्ष पुराना है। नीचे की तालिका में इसके विकास सम्बन्धी कुछ आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—[४]

नागरिक वायु परिवहन

वर्ष	घन्टों में उड़ान	उड़ान किलोमीटर्स में (लाख में)	यात्री ले जाये गए	सामान ढोया गया (ला० कि०)	डाक ले जाई गई (लाख में किलोग्राम)
१९४६	२९,५३९	७२·७४	१०५,२५१	८·५५	४·६५
१९५१	११८,६८४	३१३·७७	४४९,४६२	३९७·५७	३२·५६
१९५६	१३६,८१३	३७७·८८	५५८,६२५	४३६·४२	५७·५३
१९६१	१३९,२७९	४४१·७८	९४८,३८७	४००·७९	७३·६०
१९६२		५४१·१८	११७७,०००	८२७·७०	७९·२६

भारत के वायुयान सम्बन्धी समझौते इन २१ देशों से हैं :—

अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, लंका, मिश्र, फ्रांस, इटली, जापान, लैबनान,

4. Eastern Economist, December 31, 1962; p. 1398., and India 1963, p. 320.

नीदरलैंड्स, पाकिस्तान, फिलीपाइन, स्विटजरलैंड, स्वीडेन, थाईलैंड, ईराक, संयुक्त राज्य अमेरीका, इगलैंड, रूस, ईरान, फैडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी और जैकोस्लोवाकिया।

१९५३ से भारत में हवाई यातायात का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा सभी कम्पनियों को दो नवनिर्मित निगमों के अन्तर्गत कर दिया गया।

(क) वायु-निगम (Air-Lines Corporation)

इंडियन एयर लाइन्स निगम (Indian Air Lines Corporation) के अन्तर्गत आठ कम्पनियों के हवाई जहाज है। ये कम्पनियाँ क्रमशः एयरवेज (इण्डिया): हिमालय एविएशन लि०; कलिंग एयर लाइन्स; भारत एयरवेज; एअर-इण्डिया, लि०; एयर सरविसेज ऑफ इण्डिया; डैकन एयरवेज लि०; तथा इण्डियन नेशनल एयरवेज हैं। यह निगम देश के भीतरी भागों तथा समीपवर्ती देशों के साथ—पाकिस्तान, ब्रह्मा, नैपाल, अफगानिस्तान, वायुयान-यातायात की व्यवस्था करता है। इस निगम के पास ४३ डकोटा, ३ स्काई मास्टर, ७ फोकर फ्रैंडशिप और १३ विस्कांउट है जो देश के प्रमुख केन्द्रों को २२,७०० मील मार्गो पर सम्बन्धित करते हैं। इण्डियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन के विमानों ने १९६१-६२ में ३२८ लाख कि० मी० की उड़ानें कीं। इस अवधि में उन्होंने ९ लाख यात्री, ४८ लाख पौंड माल और ५७ लाख पौंड डाक ढोयी।

एयर इंडिया इन्टरनेशनल (Air India Internationl) निगम के अन्तर्गत भूतपूर्व की एयर इंडिया नेशनल कं० के वायुयान हैं। यह निगम विदेशों के लिये वायुयान-यातायात की व्यवस्था करता है। इस निगम के पास ६ बोइंग, ७०७ जैट विमान हैं। यह निगम २३,४८३ मील लम्बे वायुमार्गों द्वारा विश्व के २१ देशों से भारत का सम्बन्ध स्थापित करता है। १९६१-६२ में इस निगम के विमानों ने लगभग १४१ ला० कि० मी० की उड़ान की। उन्होंने ११$\frac{3}{4}$ लाख यात्री, १६ लाख पौंड माल और ८ लाख पौंड डाक ढोयी।

(ख) हवाई अड्डे (Aerodromes)

भारतीय नागरिक उड्डयन विभाग इस विभाग के अन्तर्गत ८२ हवाई अड्डे हैं। विभागों द्वारा उड़ान लेने अथवा उतरने की सुविधाओं को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय हवाई अड्डों को निम्न चार श्रेणियों में बाँटा गया है :—

(१) **अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के हवाई अड्डे**—ये तीन अड्डे क्रमशः शान्ताक्रुज (बम्बई), डमडम (कलकत्ता) और पालम (दिल्ली) में है। यहाँ विदेश जाने वाले विदेशी वायुयान भी ठहर सकते हैं।

(२) **द्वितीय श्रेणी के हवाई अड्डे ८ हैं**—यहाँ छोटे-बड़े सभी वायुयान उतर चढ़ सकते हैं। अगरतला, अहमदाबाद, बेगमपेत (हैदराबाद), दिल्ली (सफदरगंज), गोहाटी, मद्रास (सेंट थामस माऊंट), नागपुर और तिरूचिरापल्ली ऐसे ही अड्डे हैं।

(३) **मध्यम श्रणी वाले हवाई अड्डे ३८ हैं**—ये अड्डे क्रमशः इलाहाबाद, अमृतसर, औरंगाबाद (हैदराबाद), बाघडोगरा (पं० बंगाल), बनारस, बलूरघाट, जूहू (बम्बई), गुटेर (कुलू), बड़ौदा, बेलगांव, बैरकपुर (प० बंगाल), भावनगर, भोपाल, भुज, कोयम्बटूर, भुवनेश्वर, (कटक), गया, इन्दौर, जयपुर, जूनागढ़, चन्डीगढ़, कूचबिहार, गोरखपुर, अमावसी, (लखनऊ), मदुराई, बाजपी (मंगलौर), मोहनबारी

लीलाबारी, (आसाम), पटना, पोरबन्दर, राजकोट, तेजपुर (आसाम), पासीघाट, कमालपुर, खोवाई, त्रिवेन्द्रम, राँची, रूपसी, तुलीहल, उदयपुर, विशाखापट्टनम, कुंभीरग्राम और कैलाशशहर में है।

(४) **निम्न श्रेणी के हवाई अड्डे**—ये ३० अड्डे क्रमशः आकोला, बेहाला, आसनसोल, बरेली, बिलासपुर, चकुलिया (बिहार), कड्डपा (आंध्र), डानाकोंदा (मद्रास), झांसी, झरसगुदा (उड़ीसा), जबलपुर, कानपुर, खंडवा, कोल्हापुर, कोटा, ललितपुर, मनीपुर रोड (आसाम), मैसूर, मुजफ्फरपुर, सतना, पान्नपूर (दीमा), पन्नागढ़, रायपुर, राजमहेन्द्री, रामनाथपुरम, सहारनपुर, शैला (आसाम), शोलापुर, पन्ना, तंजौर, वैलोर, वारंगल, कांडला, माल्दा और हल्दवानी में है।

अहमदाबाद, पटना, बम्बई (शान्ताक्रूज), कलकत्ता (डमडम), दिल्ली (पालम), दिल्ली (सफदर जंग), मद्रास (सैंट थॉमस), तिरूचिरापल्ली, वाराणसी, भुज, जोधपुर और अमृतसर को सीमा शुल्कीय हवाई अड्डे बनाये गये हैं।

बिहार में रक्सूल और जोगबानी में नये हवाई अड्डे बन रहे हैं।

(ग) प्रशिक्षण केन्द्र (Training Eentres)

नागरिकों को हवाई उड़ान में शिक्षा देने के लिये कुल मिला कर १७ उड्डयन क्लब हैं जिनको भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। यह क्रमशः ये हैं—दिल्ली, बम्बई, मद्रास, बैरकपुर, पटना, भुवनेश्वर, लखनऊ, जयपुर, इन्दौर, कोयम्बटूर, जलन्धर, नागपुर, गोहाटी, त्रिवेन्द्रम और बंगलौर। इनके अतिरिक्त तीन क्लब ऐसे भी हैं—जैसे हैदराबाद (Hyderabad State Aero Club) जोधपुर (State Aviation Club) और बंगलौर (Mysore Government Flying Club)—जिनको सरकार द्वारा कोई आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होती है।

भारत के प्रमुख वायुमार्ग

भारत के तटीय भागों में दोनों ही ओर वायुयानों के मार्ग हैं जैसे – कोलम्बो से मद्रास, विशाखापट्टनम और भुवनेश्वर होती हुई पूर्व तटीय भागों के सहारे कलकत्ता तक। पश्चिमी तटीय भागों के सहारे त्रिवेन्द्रम से कोचीन, मंगलौर, बम्बई, जामनगर होता हुआ भुज को।

दूसरा क्षेत्र भीतरी भागों में है। वायु मार्ग इस क्षेत्र में मद्रास को बम्बई तथा बंगलौर, हैदराबाद और पूना से बम्बई और कलकत्ता को वाराणसी, प्रयाग, लखनऊ और नागपुर से जोड़ते हैं।

तीसरा प्रमुख वायु मार्ग दिल्ली को काश्मीर और देश के अन्य भागों से जोड़ते हैं।

चौथा मार्ग कलकत्ता से इम्फाल और आसाम को जोड़ते हैं।

भारत के आंतरिक भागों में वायु मार्गों का संचालन इंडियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन के हाथ में है। इसके वायुयान कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, मद्रास आदि नगरों से भारत के प्रमुख नगरों, व्यवसायिक केन्द्रों, राज्यों की राजधानियों और सीमावर्ती देशों को जाते हैं।

सुभीते की दृष्टि से भारत के आंतरिक वायु मार्गों को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :—

बम्बई से वायु मार्ग बेलगाँव, कोचीन, हैदराबाद-बंगलौर; बंगलौर, अहमदाबाद; राजकोट-जामनगर-कांधला; जामनगर-राजकोट-भुज; कांधला; पोरबन्दर-राजकोट; केशोद-राजकोट को जाते हैं।

कलकत्ता से वायुमार्ग रंगून-पोर्ट ब्लेयर; चिटगाँव; ढाका; बागडोगरा-पोर्ट ब्लेयर; गौहाटी-तेजपुर-जोरहाट-मोहनबाडी; गौहाटी-मोहनबाड़ी; अगरतला-गौहाटी; इम्फाल; अगरतला-सिलचर-इम्फाल; रांची; जमशेदपुर; अगरतला-कमालपुर-कैलाशहर को जाते हैं।
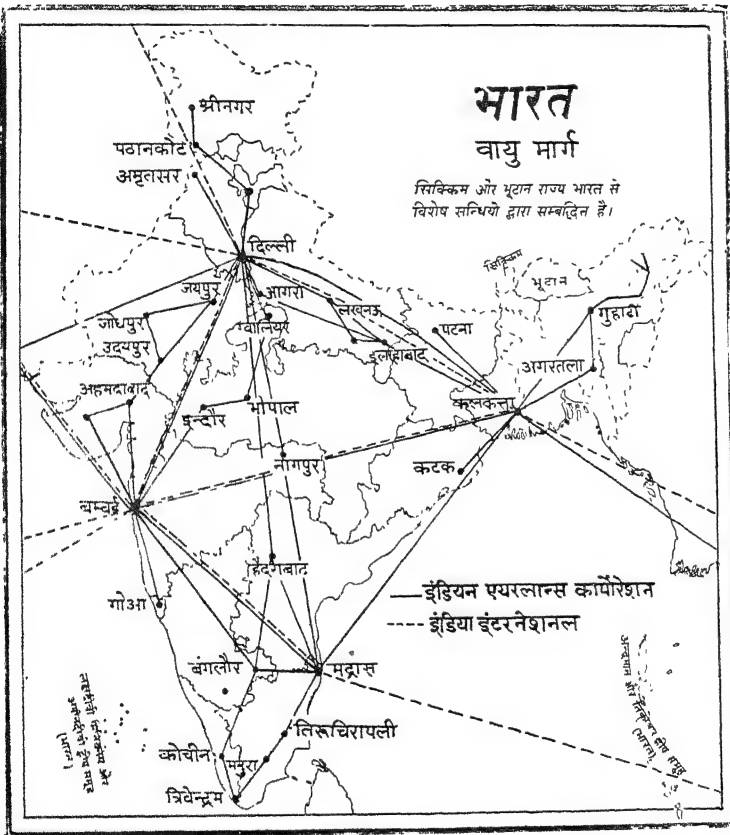
चित्र २०२. भारत के वायु मार्ग

मद्रास से वायुमार्ग बंगलौर-कोयम्बटूर-कोचीन-त्रिवेन्द्रम-मदुराई-तिरुचिरापल्ली को जाते हैं।

दिल्ली से वायुमार्ग लाहौर, अमृतसर-काबुल; चंडीगढ़, पठानकोट-जम्मू-काश्मीर; काठमांडू-पटना; पटना; काठमांडू; लखनऊ-वाराणसी-पटना-कलकत्ता;

इलाहाबाद वाराणसी-कलकत्ता-आगरा-वाराणसी-कलकत्ता; ग्वालियर-भोपाल-इन्दौर-बम्बई, जयपुर-उदयपुर-अहमदाबाद-राजकोट-बम्बई को जाते हैं।

एयर इण्डिया इन्टरनेशनल कार्पोरेशन के वायुमार्ग

कलकत्ता से दिल्ली बम्बई-काहिरा-रोम - डसलडर्फ - जिनेवा-पेरिस - लन्दन जाते हैं।

बम्बई से करांची, अदन और नैरोबी को।

विदेशी कम्पनियों के वायुमार्ग

भारत में होकर जाने वाली मुख्य विदेशी कम्पनियों के वायु मार्ग इस प्रकार हैं :—

(१) **इंगलैंड की ब्रिटिश ओवरसीज** कारपोरेशन के वायुमार्ग लन्दन से आरम्भ होकर विभिन्न देशों मे होते हुए भारत में आते हैं। ये मार्ग इस प्रकार हैः—

लन्दन से बम्बई होकर (i) फ्रैंकफर्ट-काहिरा-बगदाद-बम्बई; (ii) ज्यूरिच-काहिरा बहरीन-बम्बई-कोलम्बो सिंगापुर-हांगकांग; (iii) रोम-इस्तम्बूल-तेहरान-बम्बई - कोलम्बो- कुलालम्पुर - सिंगापुर-डार्विन-सिडनी।

लन्दन से कलकत्ता होकर (i) ज्यूरिच-बेरूत-करांची-कलकत्तासिंगापुर-जकार्ता-डार्विन-सिडनी मेलबोर्न; (ii) फ्रैंकफर्ट - रोम-करांची - कलकत्ता-डार्विन-सिडनी; (iii) ज्यूरिच-इस्तम्बूल-तेहरान-करांची-कलकत्ता-सिंगापुर जकार्ता-डार्विन - सिडनी; (vi) डसलडर्फ काहिरा-करांची, कलकत्ता-रंगून-हांगकांग; (vii) रोम-बेरूत-करांची-कलकत्ता-हांगकांग टोकियो; (viii) ज्यूरिच-काहिरा करांची-कलकत्ता-बैंकाक-सिंगापुर-डार्विन-सडिनी।

लन्दन से दिल्ली होकर (i) फ्रैंकफर्ट-बेरूत-तेहरान-दिल्ली-रंगून-सिंगापुर - जकार्ता-डार्विन-सिडनी; (ii) ज्यूरिच-इस्तम्बूल-तेहरान दिल्ली बैंकाक कुलाम्बपुर-सिंगापुर; (iii) रोम - तेहरान-दिल्ली - बैंकाक-हांगकांग-टोकियो; (iv) फ्रैंकफर्ट - बेरुत-करांची - दिल्ली-बैंकाक-हांगकांग-टोकियो।

(२) **ऐयर सिलोन लि०** (Air Ceylon Ltd.) के वायुयान **कोलम्बो** से जापान-मद्रास; जाफना-तिरुचिरापल्ली और कोचीन-बम्बई होते हुए करांची जाते हैं जहाँ से वे लन्दन जाते हैं।

(३) **ऐयर फ्रांस** (Air France) के वायुयान **पेरिस** से आरम्भ होकर फ्रैंकफर्ट-रोम-एथेंस-इस्तम्बूल-काहिरा-तेलअवीव-तेहरान-करांची-दिल्ली-कलकत्ता और रंगून होते हुए मनीला जाते हैं।

(४) **रॉयल डच ऐयर लाइन्स** (K. L. M. Royal Dutch Air Lines) के वायुमार्ग **एमस्टरडम** से आरम्भ होकर (i) काहिरा-बसरा-करांची-कलकत्ता; (ii) ज्यूरिच-रोम-बेरूत-करांची-दिल्ली; (iii) कलकत्ता-बैंकाक मनीला-टोकियो जाते हैं।

(५) **पैन अमेरिकन वर्ल्ड ऐवरवेज** (Pan American World Ariways) के वायुमार्ग न्यूयार्क से ब्रुसेल्स—इस्तम्बुल—दमिश्क—करांची—दिल्ली—कलकत्ता होता हुआ बैकांक—शंघाई—मनील—टोकियो, होनोलूलू और सैनफ्रान्सिस्को को जाते हैं।

(६) **ट्रान्स वर्ल्ड ऐयर लाइन्स** (TWA) के वायुमार्ग न्यूयार्क से शैनन—पेरिस—जिनोवा—रोम—एथेंस—बम्बई तक—काहिरा—बसरा—बम्बई को जाते हैं।

(७) **पाक ऐयरवेज** (Pak Airways Ltd.) के वायुमार्ग (i) करांची—दिल्ली; (ii) ढाका—कलकत्ता (iii) करांची—बम्बई (iv) कलकत्ता—चिटगाँव (v) ढाका—दिल्ली और (iv) दिल्ली—लाहौर को जाते हैं।

(८) **क्वेन्टास ऐम्पायर ऐयरवेज** (Quantas Empire Airways) के वायुमार्ग (i) सिडनी—डार्विन—सुराबिया—सिंगापुर—रंगून—कलकत्ता—करांची होता हुआ बेहरीन—बसरा काहिरा—मारसलीज और साउथ हैम्पटन को (ii) सिडनी—डार्विन—सिंगापुर — रंगून—कलकत्ता — काहिरा—रोम—लन्दन को जाते हैं।

(९) **स्कैन्डेनेवियन ऐयरवेज** (Scandanavian Airways) के वायुमार्ग **स्टाकहोम** से आरम्भ होकर कोपनहेगन—डुसलडर्फ—ज्यूरिच—वियना—रोम—एथेंस—काहिरा—तेहरान—करांची होते हुए कलकत्ता जाते हैं और वहाँ से टोकियो और मनीला को।

अन्य विदेशी वायु सेवायें ये हैं:—

मिडिल ईस्ट एयर लाइन्स—बेरूत—कुवेत—बहरीन—करांची—बम्बई।

ईस्ट अफ्रीकन ऐयरवेज—नैरोबी—अदन—करांची—बम्बई।

ऐलीटैलिया—रोम—तेहरान—करांची—बम्बई।

जैकोस्लोवाक ऐयरलाइन्स—प्रेग—काहिरा—बम्बई—रंगून—जकार्ता।

१९४७ की तुलना में यात्रियों के आवागमन में १६५ प्रतिशत तथा उड़ान में १५० प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि वस्तुओं की ढुलाई में १७ गुनी वृद्धि तथा डाक की ढुलाई में ८ गुनी वृद्धि हुई है।

अध्याय ३६

बन्दरगाह

(PORTS)

बन्दरगाह के विकास के तत्व

समुद्र तट पर स्थित जिन नगरों द्वारा किसी देश का व्यापार विदेशों से होता है वे बन्दरगाह कहलाते हैं। कोई भी बन्दरगाह समुद्र से भूमि में जाने का प्रवेश द्वार होता है। वास्तव में जल मार्ग पर बन्दरगाह एक ऐसा स्थान होता है जहाँ व्यापारिक माल उतारने और लादने के लिये जहाज ठहर सकते हैं। समुद्री बन्दरगाह भूमि पर और समुद्र दोनों के व्यापार के नाभिबिंदु (Nodal Points) कहे जा सकते हैं।

किसी देश में बन्दरगाह की उत्पत्ति के लिए कई बातें आवश्यक हैं, जैसे : (१) जिस स्थान पर बन्दरगाह बनाये जावें वहाँ की जमीन कड़ी होनी चाहिये क्योंकि बालू भूमि में बन्दरगाह बनाने और बाद में मरम्मत करने में बहुत खर्च हो जाता है। (२) समुद्र तट के निकट जल काफी गहरा होना चाहिये जिससे ज्वार भाटा के कारण बड़े बड़े जहाज तट के निकट आकर ठहर सकें। (३) बन्दरगाहों पर ठहरने वाले जहाजों का तूफान अथवा आँधी से भी बचाव होना चाहिये अन्यथा वर्षा में जब समुद्र में आँधी आती है तो जहाजों के टूट जाने का डर रहता है। (४) बन्दरगाह के आसपास के समुद्र में नदियों द्वारा बहा कर लाई गई रेत और मिट्टी जमा न होनी चाहिये अगर ऐसा हुआ तो समुद्र का तल ऊँचा होता रहेगा और तब या तो जहाजों को समुद्र में दूर ठहरना पड़ेगा अथवा लगातार उस मिट्टी को यंत्रों द्वारा निकालने का प्रयत्न करना पड़ेगा इसमे अधिक व्यय होगा। (५) बन्दरगाह का सम्बन्ध देश के भीतरी भागों (पृष्ठ देश) से रेल मार्गों, सड़कों अथवा नव्य योग्य नदियों से होना आवश्यक है तथा विदेशों का आयात माल देश के कोने-कोने में भेजा जा सकेगा और देश की तैयार वस्तु अथवा कच्चा माल विदेशों को भेजा जा सकेगा। यह तभी सम्भव हो सकता है जब किसी बन्दरगाह का पृष्ठ देश उपजाऊ, घना आबाद और आवागमन के मार्गों से पूर्ण हो।

भारत की तट रेखा लगभग ५,७०० कि० मी० लम्बी है, किन्तु यह कम कटी फटी है तथा सपाट है। इसके अतिरिक्त किनारे के निकट पानी बहुत छिछला है और किनारे अधिकतर चपटे और बालूमय होते हैं। नदियों के मुहाने पर अधिकतर बालू इकट्ठी होती रहती है इसलिये बन्दरगाह तक जहाज नहीं पहुँच सकते। पश्चिमी समुद्र तट पर तो बम्बई और गोआ बन्दरगाहों को छोड़कर कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं है। प्रायः सभी बन्दरगाह (इन दोनों को छोड़कर) मानसून के दिनों में व्यापार के लिये बन्द रहते हैं इसके कई कारण हैं :—(१) नदियों द्वारा लाई गई बालू और मिट्टी के कारण ताप्ती और नर्मदा का मुहाना बहुत ही कम गहरा है। (२) इसके अतिरिक्त मई से अगस्त तक पश्चिमी तट पर मानसून हवाओं का प्रकोप अधिक

रहता है, जहाजों की सुरक्षा के लिये कोई सुरक्षित स्थान नही है । (३) समस्त पश्चिमी भाग थोड़ी बहुत कटानों के अतिरिक्त प्रायः सपाट और पथरीला है ।

भारत के पूर्वी तट पर यद्यपि नदियों के डेल्टा अधिक हैं किंतु इन नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी से समुद्री तट अधिक पटता रहता है । कलकत्ता के बन्दरगाह पर भी यही कठिनाई रहती है । कभी कभी घन्टों तक जहाजों को ज्वार भाटे की बाट जोहनी पड़ती है । इस भाग में कलकत्ता का बन्दरगाह ही प्राकृतिक है । मद्रास और विशाखापट्टनम तो कृत्रिम हैं । कलकत्ता के बन्दरगाह की मिट्टी झामों द्वारा निकाली जाती है ।

भारत का लगभग ९८% व्यापार इन बन्दरगाहों द्वारा ही होता है क्योंकि उत्तर की ओर के सीमान्त प्रदेश पहाड़ी और अनुपजाऊ है या बहुत ही कम बसे हुये भाग है । भारत में दो प्रकार के बन्दरगाह पाये जाते है । बड़े (Major) और छोटे बन्दरगाह (Minor) । प्रधान या बड़े बन्दरगाह केन्द्रीय सरकार तथा गौण या छोटे बन्दरगाह राजकीय सरकार द्वारा प्रशासित किये जाते है । बम्बई, कलकत्ता और मद्रास का प्रबन्ध बन्दरगाह अधिकारियों द्वारा किया जाता है यद्यपि ये अधिकारी केन्द्रीय सरकार की देख-रेख में कार्य करते हैं । कोचीन विशाखापट्टनम और काँधला का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के हाथ में है । इन दोनों प्रकार के बन्दरगाहों में मुख्य अन्तर निम्न बातों में होता है :—

(१) पोताश्रय सुरक्षित होता है ।

(२) आवागमन के साधन सुविस्तृत होते हैं ।

(३) जहाजों के ठहरने के लिये जेटी, डॉक और लंगर-स्थानों का सुप्रबन्ध होता है ।

(४) स्थानान्तरण के लिये पर्याप्त सुविधायें होती हैं ।

(५) रेलों व सड़कों द्वारा पृष्ठ देश के दूरस्थ स्थानों से भी यातायात का सम्बन्ध होता है ।

(६) सुरक्षा व सैनिक दृष्टिकोण से बन्दरगाह उपयुक्त रहता है ।

(७) व्यापार व गमनागमन की अधिकता के कारण साल भर लगातार जहाजों की मांग रहती है ।

यातायात की दृष्टि से भारत में १ लाख टन वार्षिक से अधिक यातायात संभालने वाले बन्दरगाह को बड़ा, १ लाख टन वाले को मझला और १,५०० से १ लाख टन वाले को छोटा तथा १,५०० टन से कम वाले को उप-बन्दरगाह कहा जाता है । सामान्यतः बड़े बन्दरगाह के लिये १० लाख टन वार्षिक यातायात स्वीकार किया जाता है ।

भारत के प्रमुख बन्दरगाह छः हैं :—कांधला, बम्बई, कोचीन, मद्रास, विशाखापट्टनम और कलकत्ता । इन्हीं बन्दरगाहों द्वारा भारत मे विदेशी व्यापार का लगभग ९०% से भी अधिक होता है । इनकी व्यापार क्षमता ३४० लाख टन (tonnes) की है । इन बड़े बड़े बन्दरगाहों के अतिरिक्त भारत में लगभग २२५ छोटे या गौण बन्दर-

गाह भी हैं। किन्तु इनमें से केवल १५० ही कार्यशील हैं। इनमें से २० मझले बन्दरगाह है जिनकी व्यापार क्षमता ६० लाख टन है। ये बन्दरगाह इस प्रकार हैं :—

पश्चिमी तट पर :—मांडवी, नवलखी, ओखा, पोरबंदर, वैरावल, भावनगर, सूरत, रत्नागिरि, करवाड़, होनावर, भटकल, माल्पे, मंगलौर, तेलीचेरी, कोजीखोड़, बेपुर, इर्नाकुलम, एलेप्पी, क्विलोन और त्रिवेन्द्रम।

पूर्वी तट पर :— तूतीकोरिन, नागापट्टिनम, कड्डालोर, पांडेचेरी, मसुलीपट्टम काकीनाड़ा, गोपालपुर, प्रदीप, चाँदबाली।

बन्दरगाहों का व्यापार

बन्दरगाह	जहाज आये		ग्रॉस टन (लाख मे)	
	१९६०--६१	१९६२-६३	१९६०-६१	१९६२-६३
कलकत्ता	१,७८६	१,७९६	३४३·४६	२३३·००
बम्बई	३,२३९	३,१९७	२००·७१	२०१·८५
मद्रास	१,२०४	१,२१७	८४·८६	८५·०८
विशाखापट्टनम	६२२	६१७	४४·१०	४३·७२
कोचीन	१,३३७	१,३३८	७०·८९	७१·७९
कांधला	२९४	२६२	१९·३०	१८·३०
योग	८,४८२	८,५२७	७६३·३२	६५३·७४
कुल निर्यात	२२२·९४ ला. टन			२२९·८२ ला. टन
कुल आयात	१०८·६० ला. टन			१२७·९३ ला. टन

इन बड़े बन्दरगाहों द्वारा १९५९-६० में ३१० लाख टन का व्यापार किया गया। १९६०-६२ में ३३९ लाख टन का और १९६२-६३ में ३५७ लाख टन का।

इन बन्दरगाहों में सामुद्रिक व्यापार के केन्द्रित होने के कई कारण हैं :—भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्राचीनता ने भी इनके व्यापारिक विकास में सहायता दी है। बम्बई, मद्रास और कलकत्ता काफी समय से शासन के केन्द्र रहे हैं। फलत: वहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ा और साथ-साथ व्यापारिक और औद्योगिक काम-धन्धों का भी विकास हो चला। इसके अतिरिक्त १९वीं शताब्दी के अन्त में रेलों का निर्माण इन्हीं बन्दरगाहों से आरम्भ किया गया। इस प्रकार राजनीतिक व यातायात के केन्द्रों से बढ़कर ये प्रमुख बन्दरगाह बन गये।

पूर्वी तट के बन्दरगाह

कलकत्ता—यह बन्दरगाह हुगली नदी के बाँये किनारे पर स्थित है। नदी के किनारे से यह १२९ किलोमीटर दूर उत्तर की ओर है। यह भारत का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण एशिया का प्रमुख बन्दरगाह है। यह सिन्धु-सतलज गंगा की घाटी का मुख्य सामुद्रिक द्वार है। इसका पृष्ठ देश धनी है। इसके पृष्ठ देश में आसाम, बिहार,

पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और मध्य प्रदेश सम्मिलित हैं। यह बन्दरगाह अपने घने आबाद और उपजाऊ पृष्ठ-देश से पूर्वी, उत्तर-पूर्वी तथा मध्य रेलमार्ग नदियों और नहरों द्वारा जुड़ा है। अतः गंगा की घाटी की पैदावार—गेहूँ, चावल, गन्ना, कोयला, चाय आदि-सहज में ही कलकत्ता लाई जा सकती है और विदेशों से प्राप्त माल को भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाया जा सकता है।

हुगली नदी में कलकत्ते से समुद्र तट तक अनेक मोड़ हैं तथा कई स्थानों पर बालू भर दी गई है जहाँ जल की गहराई बहुत ही कम हो गई है। इसमें से जहाज नही निकल सकते। हुगली नदी मे इन स्थानों में बालू पड़ गई है: पचपरिया, संकराल, मनीखोली, पीर सिरांग, पुजाली, मोयापुर, रोयापुर, फुल्टा जेम्स, पूर्वी-घाट, कुकराहाटी, बलारी, ऑकलैंड बार, गंगासागर और मिडिलटन। इनमें से सबसे अधिक महत्व गंगासागर का है। इस स्थान पर केवल ७ से ९ मीटर तक जल गहरा रहता है। अतः बन्दरगाह में जहाज आने के पूर्व इस बात की परीक्षा करली जाती है कि यहाँ पानी इतना ही गहरा है। यदि कारणवश जहाज छोड़ने के बाद गंगासागर में जल कम हो जाता है तो जहाजों को हुगली नदी के गहरे पानी में खड़ा रहना पड़ता है।

हुगली नदी की भौगोलिक बाधाओं के कारण खाड़ी में निकट ही **डायमन्ड** पोताश्रय का निर्माण किया गया है जहाँ जल की गहराई के कारण बड़े बड़े जहाज पहुँच जाते है और वहाँ पहुँचकर विश्राम करते है। यहाँ से एक एक करके प्रायः ज्वार के समय ये जहाज **खिदिरपुर** तक जाते है जो कलकत्ता का मुख्य पोताश्रय है। इस प्रकार जहाजों का आवागमन भीतर तक प्रायः ज्वार भाटों की ऊँचाई पर आश्रित करता है। हुगली के मुहाने से कलकत्ता तक जहाजों के आने में लगभग ८ घन्टे का समय लगता है। हुगली तट पर उत्तर में **सिरामपुर** से लेकर दक्षिण में **बजबज** तक यह बन्दरगाह स्थित है जहाँ अनेक जेटियाँ, गोदाम एवं व्यावसायिक केन्द्र स्थित हैं। पोताश्रय की सुविधाएँ बढ़ाना सबसे बड़ी समस्या है क्योंकि ९००० टन से अधिक भार वाले जहाज खिदिरपुर से ६४ कि० मीटर दूर स्थित डायमन्ड पोताश्रय पर ही रुक जाते है। सन् १९५४ ई० में एक नयी योजना बनाई गई जिसके अनुसार डायमंड पोताश्रय एवं खिदिरपुर के बीच एक ४८ कि० मी० लम्बी सीधी जहाजी नहर बनाने पर विचार हुआ था। परन्तु इस योजना में व्यय अधिक होने और निकटवर्ती गाँवों आदि को विशेष हानि होने से यह योजना समाप्त कर दी गई और अब हुगली को ही अधिक गहरी बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं।

खिदिरपुर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पोताश्रय है जहाँ दो डॉक हैं। पहला डॉक ७९२ मीटर लम्बा और १८३ मीटर चौड़ा है। इसके निकट ९ मीटर गहरा पानी रहता है। दूसरा डॉक १३७१ मीटर लम्बा तथा १२२ मीटर चौड़ा है। यहाँ पानी की गहराई ९ मीटर है। यहाँ मशीनों से सामान उतारने की सुविधा है और लगभग २९ बर्थ हैं जिनमे ६ बर्थ कोयला आदि चढ़ाने के लिए बने है। **किंग जार्ज डॉक** दूसरा महत्त्वपूर्ण डॉक है जो २१३ मीटर लम्बा तथा २७ मीटर चौड़ा है। यहाँ ४ सामान उतारने चढाने के बर्थ हैं, एक पेट्रोल बर्थ व एक २०० मैट्रिक टन का क्रेन है। पूरे बन्दरगाह में ५ शुष्क डॉक हैं जिनमें से तीन खिदिरपुर और २ किंगजार्ज में स्थित हैं। बजबज में पेट्रोल के गोदाम की व्यवस्था है। अन्य स्थानों पर भी अनेक गोदाम बने हुए हैं।

चित्र २०३. कलकत्ता की स्थिति
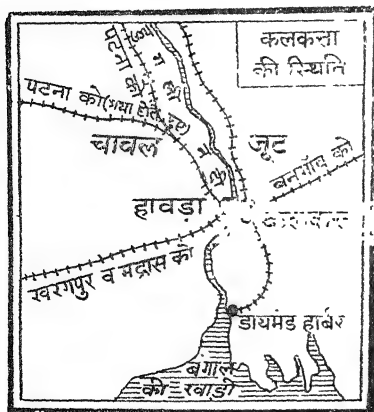
कलकत्ता भारत का व्यावसायिक केन्द्र भी है। इसके पृष्ठ-देश में जूट, कागज, चमड़े, चावल, सूती कपड़े, दियासलाई, रेशम, चीनी और लोहे के कारखाने हैं। यहाँ कारखानों की अधिकता होने का मुख्य कारण पृष्ठ-देश में घनी आबादी, सस्ते मजदूर, पर्याप्त जल और कच्चा माल तथा रानीगंज और झरिये के कोयले की खानों का निकट होना है। कलकत्ते से विदेशों को जाने वाली मुख्य वस्तुएँ जूट और जूट का तैयार माल, रस्से, चाय, शक्कर, लोहे का सामान, तिलहन, चमड़ा, अभ्रक, सनई, मैंगनीज और कोयला है। बाहर से आने वाले मुख्य आयात रुई का तैयार माल, ऊनी-सूती-रेशमी वस्त्र, मशीनें, शक्कर, मोटरें, काँच का सामान, शराब, कागज, पैट्रोल, रबड़, रासायनिक पदार्थ है।

कलकत्ता के बन्दरगाह से अधिकतर भारी वस्तुओं का व्यापार होता है जो अधिक मूल्यवान नहीं होते। यहाँ मुसाफिरी जहाज बम्बई की अपेक्षा कम आते हैं।

१९६२-६३ में इस बन्दरगाह में २३३ लाख टन भार के जहाज आये और १०२ लाख टन का व्यापार किया गया (आयात ४७ लाख टन; निर्यात ५५ लाख टन।

नीचे के आँकड़ों से कलकत्ता का व्यापार स्पष्ट होगा :—

वर्ष	आयात (ह० टन)	निर्यात (ह० टन)	योग (ह० टन)
१९५१-५२	४०९३	५४८९	९५८२
१९५५-५६	३४०९	४६२१	८०३०
१९६०-६१	५४०५	३९४५	९३५०
१९६१-६२	४८८०	४४२०	९४००
१९६२-६३	५४८०	४७२३	१०२०३

मद्रास—पूर्वी तट पर भारत का प्रमुख बन्दरगाह है। यह प्राकृतिक दृष्टि से बन्दरगाह के उपयुक्त नहीं है किन्तु कृत्रिम रूप से इसे बनाया गया है। विस्तृत खुले समुद्रों में जहाजों को लहरों से बड़ी हानि होती थी तथा तट के निकट बालू मिट्टी भी जमती रहती थी। इन असुविधाओं को दूर करने के लिए ९० मीटर की गहराई की नींव पर तट से ३ किलोमीटर दूर दो कंक्रीट की दीवालें बनाकर लगभग २०० एकड़ समुद्र के जल को रोका गया है। बन्दरगाह का मुख्य द्वार १२० मीटर लंबा है जहाँ साधारणतः जल की गहराई १० मीटर तक रहती है, किन्तु ज्वार आने पर यह १२ मीटर तक हो जाती है। इस सुरक्षित पोताश्रय में वर्षा और तूफानों के

समय जहाज सरलता से खड़े रहते हैं। बड़े जहाज भी साधारणतः ८ मीटर गहरे भागों तक आते है। इस पोताश्रय म एक साथ १६ जहाज ठहर सकते हैं। किन्तु अक्टूबर नवम्बर में जब बंगाल की खाड़ी में तूफान आते है तो इनके द्वारा समुद्र का जल लहर के रूप मे ऊंचा उठ जाता है और हानि की संभावना रहती है अतः जहाजों को ऐसे समय पोताश्रय छोड़ना अनिवार्य हो जाता है।

मद्रास का पृष्ठ-देश दक्षिण के प्रायद्वीप के पूर्वी और दक्षिणी राज्यों तक विस्तृत है। इसमे दक्षिणी आंध्र प्रदेश, सम्पूर्ण मद्रास और मैसूर का पूर्वी भाग सम्मिलित होता है। किन्तु बम्बई या कलकत्ता की भाँति न तो यह इतना उपजाऊ और समृद्ध ही है और न ही इतना घना बसा है। इसके अतिरिक्त इस भाग में विदेशी व्यापार की वे वस्तुयें, जिनकी माँग यूरोपीय देशों में होती है, अधिक मात्रा मे पैदा नहीं होती। फिर, कोरोमंडल व मलाबार तट पर स्थित अनेक छोटे बन्दर इससे व्यापार मे प्रतिस्पर्धा भी करते है। मद्रास का पृष्ठदेश सड़को और रेलमार्गो से अन्य राज्यों से जुड़ा है और मद्रास नगर स्वयं एक औद्योगिक नगर है जहाँ सूती वस्त्र उद्योग, सीमेंट, सिगरेट, रेशमी वस्त्र, चमड़ा आदि के उद्योग स्थापित है अतः मद्रास के बन्दरगाह से विदेशों को सूती और रेशमी कपड़े, चमड़ा, कहवा, हड्डी का खाद, तम्बाकू, तिलहन, हल्दी, अभ्रक, कहवा, मूगफली का तेल, मैंगनीज और प्याज आदि वस्तुयें निर्यात की जाती हैं। आयात व्यापार में कोयला, कोक अनाज, पेट्रोलियम, कागज, चीनी, दवाइयां, धातुयें, मशीन और रासायनिक पदार्थ मुख्य है।

१९६२-६३ में यहाँ १२१७ जहाज आए जिनका टन भार ८५ लाख टन का था। कुल व्यापार ३३ लाख टन का हुआ (आयात २२ लाख टन निर्यात ११ लाख टन)।

मद्रास बन्दरगाह का व्यापार इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	आयात (ह० टन)	निर्यात (ह० टन)	योग (ह० टन)
१९४५-४६	१,८३३	३३६	२,१९९
१९५०-५१	१,९२९	२४८	२,२७८
१९५५-५६	१,७१६	४८५	२,२०१
१९६०-६१	२,०९४	८९६	२,९९०
१९६१-६२	२,२७०	१२००	३,४७०
१९६२-६३	२,१७२	१०८०	३,२५३

विशाखापट्टनम—यह बन्दरगाह कोरोमंडल तट पर कलकत्ता से ८०० कि० मीटर दक्षिण में तथा मद्रास से ४२५ कि० मी० उत्तर में स्थित है। कलकत्ता की तुलना में मध्य प्रदेश, उड़ीसा, मद्रास, और आंध्र पूर्वी मध्य प्रदेश और उड़ीसा तक फैला है। इन राज्यों की उपज के निर्यात के लिए यही बन्दरगाह उत्तम है। इसमें कलकत्ता की अपेक्षा पहुँचने में कम समय लगता है और खर्चा भी कम पड़ता है। अतएव यह व्यापार में कलकत्ता से स्पर्धा करने लगा है। इसका संबंध पूर्वी रेल मार्ग द्वारा मध्य प्रदेश से है। यहाँ जहाज बनाने तथा तेल साफ करने की शोधन-शाला भी है।

सन् १९३३ में यह बन्दरगाह सबसे पहले बड़े पैमाने पर व्यापार के लिए खोला गया था। यहाँ जल की गहराई प्राय: ९ मीटर से कम नहीं है। यहां ४ मुख्य बर्थ हैं जिनमें से प्रत्येक १५२ मीटर लम्बे है और हर प्रकार की सुविधाओं से परिपूर्ण है। दो बर्थ विशेष रूप से लोहा एवं मैंगनीज के व्यापार के लिए सुरक्षित हैं और इनसे प्रतिदिन लगभग ३००० मीट्रिक टन माल का व्यापार होता है। एक लगभग ६१ मीटर लम्बी बर्थ तेल के व्यापार के लिए बनाई गई है, क्योंकि यहां कालटेक्स की तेल कम्पनी का तेल साफ करने का कारखाना भी है। एक शुष्क डाक ११० मीटर लम्बा और १८ मीटर चौड़ा है जिसके समीप तक प्राय: छोटे जहाज आते है क्योंकि यहाँ जल की गहराई केवल ४ मीटर है।

यहाँ के मुख्य निर्यात लकड़ियाँ, कोयला, चमड़ा और खालें, हर्ड-बहेड़ा, मूँगफली और मैंगनीज हैं। आयात में सूती कपड़ा, लोहा और इस्पात का सामान, मशीनें आदि हैं।

१९६२-६३ में यहाँ ६१७ जहाज आये जिनका टन भार ७२ लाख टन था। कुल व्यापार २८ लाख टन का हुआ (आयात १४ लाख टन; निर्यात १४ लाख टन)।

विशाखापट्टनम के व्यापार संबंधी आँकड़े ये हैं :—

वर्ष	आयात	निर्यात (ह० मी० टनों में)	योग
१९५०-५१	६८	८९२	९६०
१९५५-५६	२३२	१,११२	१,३४४
१९६०-६१	१३८६	१,४६३	२,७४९
१९६१-६२	१४००	१,४६०	२,८६०
१९६२-६३	१,३७५	१,४५०	२,८२५

पश्चिमी तट के बन्दरगाह

बम्बई—यह भारत का ही नहीं विश्व के प्रमुख बन्दरगाहों में से है। इसका बन्दरगाह बड़ा सुरक्षित है अतः यहाँ मानसून के तूफानी दिनों में भी जहाज बड़ी आसानी से ठहर सकते है। समुद्र के निकट जहाजों के ठहरने के लिये एक २२ कि० मी० लम्बी और १० कि० मी० चौड़ी तथा ७ मीटर गहरी एक खाड़ी भी बन गई है इसी में जहाज आकर ठहरते हैं। जिस स्थान पर बम्बई का बन्दरगाह बना है वहां जल की गहराई ११ मीटर है। इस गहराई में वे सभी जहाज निकल सकते हैं जो स्वेज नहर से होकर निकलते हैं क्योंकि स्वेज नहर की गहराई भी इतनी ही है। यह बन्दरगाह यूरोप तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अधिक निकट पड़ता है। अतः कलकत्ता या मद्रास की अपेक्षा यहाँ व्यापार अधिक होता है।

बड़े समुद्री डाँकों के अतिरिक्त यहाँ कुछ बन्दरगाह भी बनाये गये है जिनमें नावों से आने वाला सामान एव यात्री लोग आकर उतरते चढ़ते हैं। तटीय व्यापार की दृष्टि से इनका महत्वपूर्ण स्थान है। एलेक्जेन्ड्रिया डॉक के पश्चिम में ४५.७ मीटर लम्बा लाड प्लेटफार्म दर्शनीय है। बन्दरगाह के निकट ही पेट्रोल के गोदाम भी स्थित है। एक नया गोदाम भी बूचर द्वीप के पास बनाया गया है। विशाल गोदाम बम्बई बन्दरगाह की विशेषता है। अनाज रखने का एक विशाल गोदाम बनाया गया है। यहाँ का कपास का गोदाम जो ४,३२,५०० वर्ग गज क्षेत्र में विस्तृत है और जिसमें १७८ अग्नि-सुरक्षित कमरे है, संसार के प्रसिद्ध एवं विशाल गोदामों में है। इसी प्रकार मैंगनीज, कोयला, तारकोल, लकड़ी आदि के भी गोदाम हैं। इन सभी गोदामों में अग्नसुरक्षा, आवागमन, अस्पताल, जलपानगृह आदि की सुविधाएँ भी है।

इस बन्दरगाह से अलसी, मूंगफली, चमड़ा, तिलहन, लकड़ी, ऊन, ऊनी कपडा, सूती कपड़े, खालें, मेंगनीज, अभ्रक आदि वस्तुयें बाहर भेजी जाती हैं और बाहर से सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र, मशीनें, नमक, कोयला, कागज, रंग, फल, रसायनिक पदार्थ, मिट्टी का तेल और लोहे का सामान मँगवाया जाता है।

१९६२-६३ में यहाँ २०२ लाख टन भार के ३१९७ जहाज आए। इनके द्वारा १५९ ला. टन का व्यापार हुआ। (आयात १११ ला. टन; निर्यात ४८ ला. टन)।

नीचे की तालिका में बम्बई के व्यापार-सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किये गये है :—

वर्ष	आयात (ह० टन)	(निर्यात ह० टन)	योग (ह० टन)
१९४९-५०	४,९२७	१,३५८	६,२८५
१९५१-५२	५,८०६	१,६७३	७,४७९
१९५५-५६	६,६४७	३,५२८	१०,१७५
१९६०-६१	१०,८५८	३,९६२	१४,८२०
१९६१-६२	१०,४१०	४,१३०	१४,५४०
१९६२-६३	११,०८०	४,८६०	१५,९४०

कोचीन—यह केरल राज्य और मलाबार तट का प्रमुख बन्दरगाह है जो बम्बई से लगभग ९३० कि० मी० दक्षिण में है। यह एक प्राकृतिक बन्दरगाह है जो समुद्र के सामानान्तर एक विशाल अनूप के मुहाने पर स्थित है। पोताश्रय से सम्बन्धित जलधारा १४० मीटर लम्बी और ७ कि० मी० चौड़ी है। अत: बड़े जहाज सरलता से सुरक्षित आकर खड़े हो सकते हैं। सुदूरपूर्व आस्ट्रेलिया और यूरोप को जलमार्ग यहाँ से जाते हैं।

कोचीन के पृष्ठ देश में पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग, नीलगिरी व इलायची की पहाड़ियाँ और केरल, मैसूर और दक्षिणी मद्रास के अन्य भाग हैं। दक्षिणी भारत के शेष भागों से यह रेल मार्गों और सड़कों द्वारा जुड़ा है। इसके पृष्ठ देश में सुपारी, चाय, कहवा, नारियल, गर्म मसाले, रबड़ अधिक पैदा होता है।

यहाँ से निर्यात होने वाली वस्तुओं में नारियल की जटा, रस्से, सूत, चटाइयाँ, खोपरा, गिरी, नारियल का तेल, चाय, कहवा, रबड़, काजू, गर्म मसाले, इलायची आदि है। आयात के 'अन्तर्गत' चावल, गेहूँ, कोयला, कपड़ा व लोहे का सामान मुख्य है।

इस बन्दरगाह के निकट एक जहाज निर्माण शाला भी स्थापित की जा रही है।

१९६२-६३ में यहाँ १३३८ जहाज आए जिनका टन भार ७२ लाख टन था। कुल व्यापार २१ लाख टन का हुआ (१८ लाख टन आयात; ३ लाख टन निर्यात)।

कोचीन बन्दरगाह के व्यापार सम्बन्धी आंकड़े ये है।

वर्ष	आयात (हृ० टन)	निर्यात (हृ० टन)	योग (हृ० टन)
१९५०-५१	१,११५	२४८	१,३६२
१९५५-५६	१,२४१	३९४	१,६३५
१९६०-६१	१,६४७	३९३	२,०४०
१९६१-६२	१,८८०	४९०	२,३७०
१९६२-६३	१,७८५	३८५	२,१७०

कांधला—इस बन्दरगाह का निर्माण १९३० में कच्छ राज्य के लिए किया गया था जब यहाँ एक जेटी थी जिसमें साधारण आकार का केवल एक जहाज ठहर सकता था किन्तु विभाजन के फलस्वरूप जब करांची का बन्दरगाह पाकिस्तान के अधिकार में चला गया तो इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि पश्चिमी तट पर एक ऐसे बन्दरगाह का विकास किया जाये जो गुजरात के उत्तरी भाग, राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और जम्मू-काश्मीर राज्यों के लिए मुख्य व्यापार द्वार का काम दे सके तथा बम्बई से व्यापार के भार को घटाया जा सके। इसी हेतु १९४९ में कांधला बन्दरगाह को विकास योजना कार्यान्वित की गई।

यह बन्दरगाह एक समुद्री कटान पर स्थित है और भुज से ४८ कि० मी० दूर तथा कच्छ की खाड़ी के पूर्वी सिरे पर स्थित है। इसमें जल की औसत गहराई ९ मीटर है अतः जहाज सुविधा से ठहर सकते है। इसका पोताश्रय प्राकृतिक और सुरक्षित हैं। यहाँ ४ घाट इतने गहरे और बड़े हैं कि जिनमें किसी भी आकार के और ९ मीटर गहरी तली वाले जहाज भी खड़े हो सकते हैं। बन्दरगाहों में २१ बिजली की क्रेनें लगी हैं। इसके अतिरिक्त ७ साधारण क्रेनें भी हैं जो माल-लादने उतारने में सहायक है। चलती-फिरती क्रेनें, फार्क-लिफ्ट, स्वचालित ट्रक और कोयला-लोहा भरने के यंत्र आदि लगे होने से इस बन्दरगाह को सभी आवश्यक सुविधायें प्राप्त हैं। यहाँ गोदामों की भी अच्छी व्यवस्था है। यहाँ चार बड़े-बड़े शैड हैं जिनमें माल सुरक्षित रखा जाता है। ४ दुमंजिले भंडार भी हैं। जहाजों की सहायता और मार्ग दर्शन के लिए आधुनिक यंत्रादि लगे हैं। बन्दरगाह में तैरती बत्तियाँ भी हैं। यहाँ १६०९३ कि० मी० तक के समाचार प्राप्त करने और भेजने वाला यंत्र लगा है

और ४८ कि० मी० तक की सूचना देने वाला **रडार यंत्र** भी लगा है। एक तेल का **गोदाम** भी है जिसमें १६००० मीट्रिक टन तेल रखा जा सकता है। एक तैरते हुए डॉक और ज्वार-भाटा के समय प्रयुक्त होने के लिए भी डॉक बनाये गये हैं।

कांधला का पृष्ठदेश काफी विस्तृत है। इसमें सम्पूर्ण गुजरात, राजस्थान, पंजाब, काश्मीर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली व प० मध्य प्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित किए जाते है। इसके पृष्ठदेश का क्षेत्रफल १० लाख वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या ६३ करोड के लगभग है। यह पृष्ठ देश मछली, सीमेंट के कच्चे पदार्थ, जिप्सम, लिगनाइट, नमक, बाक्साइट आदि स्त्रोतों में धनी है। सूती वस्त्र, चमड़ा, सीमेंट, दवाइयाँ आदि बनाने के अनेक कारखानें भी हैं।

बन्दरगाह के पूर्ण विकास के लिए एक रेलमार्ग १९५२ में बनाया गया जो छोटी लाइन द्वारा **दीसा** से और बड़ी लाइन द्वारा **झुंड** से जुडा है। इस प्रदेश का जल लोहा गलाने वाला है अतः इस मार्ग पर डीजल-इंजिनें ही चलाये जाते है। अब इसे अहमदाबाद और जोधपुर से भी मिला दिया गया है।

इस बन्दरगाह से लकडियाँ, अभ्रक, लोहा, अनाज, कपड़ा, कपास, नमक, सीमेंट, हड्डी का चूरा आदि का निर्यात किया जाता है। आयात में लोहे का सामान, मशीनें, गंधक, अनाज आदि वस्तुयें अधिक होती हैं।

१९६२-६३ में यहाँ १८ लाख टन भार के २६२ जहाज आए। इनके द्वारा कुल व्यापार १४ लाख टन (आयात १२ लाख टन; निर्यात २ लाख टन) का हुआ।

इसका व्यापार इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	आयात (ह० टन)	निर्यात (ह० टन)	योग (ह० टन)
१९५१-५२	६८	६६	१३४
१९५५-५६	२०८	१०५	३१८
१९६०-६१	१,२५१	३४७	१,५९८
१९६१-६२	१,११०	२७०	१,३८०
१९६२-६३	१,१५०	२९५	१,४४५

कांधला की समृद्धि के लिए यहाँ **मुक्त व्यापार क्षेत्र** बनाया गया है। यह क्षेत्र चारों ओर तारों से घिरा है। अन्य बन्दरगाहों की भांति यहाँ लाकर भरे, छांटे और तैयार किये जाने वाले माल पर चुंगी नहीं लगती। आयात किये जाने वाले माल पर भी आयात-शुल्क नहीं लगता।

पश्चिमी तट के अन्य छोटे बन्दरगाह इस प्रकार हैं :—

भावनगर—यह खंभात की खाड़ी के ऊपर पश्चिम की ओर स्थित है। बन्दरगाह में माल को सुरक्षित रखने के लिये सभी सुविधायें हैं और बन्दगाह रेलवे लाइन द्वारा भिन्न-भिन्न बन्दरगाहों से सम्बन्धित है। जहाज बन्दरगाह से लगभग आठ मील दूरी पर ठहरते हैं और माल नावों द्वारा बन्दरगाह पर लाया जाता है। बन्दरगाह में रेत जमने के कारण १९३७ में नया गहरा बन्दरगाह बनवाया है जिसमें दो जहाज एक साथ रह सकते हैं। भावनगर का व्यापार तेजी से बढ़ रहा है।

बेदी बन्दर—सौराष्ट्र में सबसे पहले इसी बन्दरगाह ने उन्नति की। यह कच्छ की खाड़ी में स्थित है। इस बन्दरगाह का समुद्रतट जहाजों के लिये बहुत उपयुक्त है और वर्ष के सब मौसमों में यह खुला रहता है। चूकि किनारे के निकट जल कम गहरा है अतः बड़े जहाज किनारे से ३ से ५ कि० मी० मील दूर खड़े रहते हैं।

ओखा—गुजरात का यह मुख्य बन्दरगाह है। यह सौराष्ट्र प्रायःद्वीप की उत्तर-पश्चिम की सीमा पर स्थित है। इस कारण जितने भी जहाज समुद्र तट पर चलते हैं उनकी पहुँच के अन्दर है। इस बन्दरगाह में केवल एक दोष है। इसका मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा और चक्करदार है और उसमें खतरा है। साथ ही जनसंख्या बाहुल्य प्रदेशों से बहुत दूर है। यहाँ से तिलहन, नमक, सीमेंट बाहर भेजी जाती है तथा बाहर से कोयला, पेट्रोलियम, रासायनिक पदार्थ व मशीनें आती है।

नवलखी—यह भी कच्छ का यह प्रसिद्ध बन्दरगाह है और कच्छ की छोटी खाड़ी में स्थित है। जहाज बन्दरगाह से एक मील पर ठहरते है फिर भी यह बन्दरगाह वर्ष भर खुला रहता है।

पोरबन्दर—यह भी गुजरात का महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है और पूर्वी अफ्रीका से इसका अधिक व्यापार होता है किन्तु वर्षा के दिनों में बन्दरगाह बन्द रहता है क्योंकि यह बिलकुल खुला है। यहाँ से नमक व सीमेंट का निर्यात और कोयला खजूर तथा मशीनों का आयात होता है।

मारमुगाओ—यह कोनकन तट पर स्थित है। इसका व्यापार क्षेत्र महाराष्ट्र, आंध्र और मैसूर तक फैला हुआ है। यहाँ से मैंगनीज, मूंगफली, कपास और नारियल विदेशों को भेजी जाती हैं।

कोजीखोड़ (कालीकट)—यह कोचीन से १४५ कि० मी० उत्तर में है। मानसून के आरंभ में यह बन्द रहता है। यहां समुद्र छिछला है इस कारण जहाजों को बन्दरगाह से ५ कि०मी० दूर समुद्र में खड़ा होना पड़ना है। यहाँ से नारियल की रस्सी, खोपरा, कहवा, चाय, सोंठ, मूँगफली तथा मछली की खाद बाहर भेजी जाती है। यहाँ के मुख्य आयात अनाज, मिट्टी का तेल, मशीने और सूती वस्त्र हैं।

तृतीय योजनाकाल में बन्दरगाहों के विकास के लिए ७५ करोड़ रुपये की पूँजी निर्धारित की गई है। कलकत्ता के निकट हल्दिया स्थान पर एक दूसरा सहायक बन्दरगाह बनाया जायेगा। बम्बई के बन्दरगाह का आधुनीकरण किया जा रहा है। मंगलौर और तूतीकोरिन के बन्दरगाहों को मुख्य बन्दरगाह में परिवर्तित किया जायेगा। विशाखापट्टनम, कोचीन और मद्रास के बन्दरगाहो का विकास कार्यक्रम समाप्ति पर ।

हल्दिया (Haldia)—इस बन्दरगाह हुगली नदी की इस्चुरी पर एक बड़े बन्दरगाह के रूप में विकसित किया जा रहा है। बन्दरगाह १९६७ के अंत तक कार्य करने लगेगा। यहाँ १ करोड़ टन का व्यापार हो सकेगा। इसमें से ४० लाख टन कोयला २० से ३० लाख टन लोह-अयस का व्यापार होगा। तेल का जेटी में ३० लाख टन मिट्टी का तेल एकत्रित किया जा सकेगा। इस बन्दरगाह में ५ बर्थ—२ कोयले के, १ लोह अयस, एक तेल भंडार और २ अन्य—होंगे। इस बन्दरगाह का सबसे बड़ा

लाभ यह होगा कि यहाँ बहुत बड़े जहाज (30 ft. draught) आकर रुक सकेंगे। इतने बड़े जहाज कलकत्ता में हुगली के मुहाने पर जमते रहने से नहीं आ पाते हैं। आरंभ में बन्दरगाह के विकास पर ३० करोड़ रुपये व्यय किया जायेगा, इसमें से १६ करोड़ रुपया विश्व बैंक से प्राप्त किया जायेगा।

हल्दिया बन्दरगाह के निकट तेल शोधन शाला, लोहे और इस्पात की मिलें, रेल के डिब्बे बनाने की फैक्ट्री, खाद के कारखानों आदि के विकास की पर्याप्त सभावनाएँ है। यहाँ १५० करोड़ की लागत की पैट्रो-कैमीकल उद्योग तथा ३० करोड़ रुपये के लागत की एक तेल शोधनशाला एवं अनेक तकनीकी सस्थाऐं भी स्थापित की जायेंगी। हल्दिया को देश के अन्य भागो से जोडने के लिए रेल मार्ग बिछाये जा रहे हैं। इस बन्दरगाह का विकास वास्तव में कलकत्ता के सहायक बन्दरगाह के रूप मे किया जा रहा है। यहाँ भारी मात्रा में कोयला और लोहा कलकत्ता के निकटवर्ती भागों में रोशनी करने तथा बडे गहरे जहाजो के बनाने के लिए लाया जा सकेगा। बन्दरगाह के निकटवर्ती क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाया जायेगा। व्यापार को और अधिक बढाने के लिए निर्यात से संबधित उद्योगों की स्थापना की जायेगी।

प्रदीप (Paradeep)—इस बन्दरगाह का विकास उड़ीसा के तट पर बंगाल की खाड़ी में सभी मौसमो में व्यापार करने के लिए किया जा रहा है। ६०,००० टन वाले जहाज ठहर सकेंगे। इस बन्दरगाह के ४ वर्गमील क्षेत्र में भवन आदि का निर्माण किया जा रहा है। संपूर्ण क्षेत्र पहले दलदली था किन्तु अब इन दलदलों को सुखाकर लैगून हारबर, जहाजो के मुड़ने के लिए स्थान खनिज और समान के लिए दो बर्थ, लैगून तक पहुँचने के लिए एक जलधारा तथा खनिज चढ़ाने के लिए जैटी का निर्माण किया गया है। जलतोड़ दीवाल सागर की ओर से लैगून हारबर में आने वाले जहाजों को तूफानो से सरक्षण देगी। इस द्वार मे होकर ही जहाज मानव निर्मित प्रवेश-जलधारा में जा पायेगा। हारबर ४८ फीट गहरा होगा। समुद्र की लहरों से बचाव के लिए जहाज मुडने के स्थान के दोनों किनारों पर ग्रैनाइट के पत्थर जड़े जायेंगे।

प्रदीप बन्दरगाह को एक ओर तोमका तथा दूसरी ओर दाईतारी की लोहे की खानों से जोड़ने के लिए ६० मील लंबा राज्यमार्ग बनाया गया है। इसे क्योंझार जिले में होता हुआ बिहार की सीमा पर स्थित भारत की सबसे बड़ी लोहे की खानों (जादा और बारबिल) तक बढाया जायेगा। इस बन्दरगाह का विकास मुख्यत: जापान को उड़ीसा से कच्चा लोहे निर्यात करने के लिए किया गया है। १९६२ के अंत तक इस बन्दरगाह से लगभग १०४,००० टन लोहा निर्यात किया जा चुका है। आरंभ में यहाँ प्रथम चरण मे, जो १९६५ तक समाप्त होगा, एक समय में दो जहाज ठहर सकेंगे, किन्तु बाद में अधिक जहाजों की सुविधा के लिए बर्थ क्षेत्र को विस्तृत किया जायेगा।

अध्याय ३७

देशी और विदेशी व्यापार

(HOME AND FOREIGN TRADE)

भारत के व्यापार को चार भागों मे विभाजित किया जाता है :—

(१) आंतरिक व्यापार (२) तटीय व्यपार

(३) पुनः निर्यात करना (४) विदेशी व्यापार

(१) आंतरिक व्यापार (Internal Trade)

भारत जैसे विशाल देश के लिये आन्तरिक व्यापार का महत्व बहुत अधिक है। यह व्यापार विदेशी व्यापार का १५ गुना से भी अधिक होता है। अनुमानित प्रतिवर्ष भारत का आन्तरिक व्यापार ७ से ८ हजार करोड़ रुपयों तक का होता है।

समस्त भारत को आन्तरिक व्यापार की सुविधा से ३६ भागों में बाँटा गया है तथा आन्तरिक व्यापार की वस्तुयें भी इन श्रेणियों में विभाजित की गई हैं— कोयला और कोक, कच्ची रुई, सूती वस्त्र, दाल, अनाज और आटा, कच्चा चमड़ा, जूट, जूट के बोरे और टाट, लोहे और इस्पात का सामान, तिलहन और शक्कर।

नीचे की तालिका में रेल और नदियों द्वारा आने जाने वाली वस्तुओं की मात्रा बताई गई है :—[1]

आंतरिक व्यापार (लाख क्विंटल्स में)

	१९५१-५२	१९६१-६२
कोयला और कोक	२०२०·३२	२९३२·००
रूई	२५·६३	३९·८२
सूती कपड़े	२४·८१	२३·०४
चावल	८३·३१	२११·९७
गेहूँ	१९४·६४	२७४·३७
जूट	४७·१३	४४·६४
लोहे और इस्पात का सामान	१७३·६९	४०० ७५
तिलहन	८०·३७	८२·८६
नमक	१२६·३९	१५१·०१
शक्कर	६२·४०	६६·२८

1. India, 1963.

आन्तरिक व्यापार में रेलों द्वारा ले जाये गये माल की मात्रा का अनुमान नीचे के आँकड़ों से मिलता है :—[२]

डिब्बे लादे गए (हजार में)

	१९५२-५३	१९५५-५६	१९६२-६३	१९६३-६४
कोयला और कोक	२,६३५	२,७७२	१,९२४	२,०८०
अनाज और दालें	९४९	९७२	७९८	९१३
तिलहन	१७१	२१३	१०६	१३६
रूई	१०८	१११	३७	४१
सूती वस्त्र	७०	६७	१८	१३
जूट	१८८	१५०	१२४	१४३
जूट का माल	२१	२९	२१	१२
शक्कर	१६९	१७०	१११	१२४
गन्ना	—	३४८	२५१	१७३
सीमेंट	२९७	४१२	३७८	४१३
ढला लोहा	२५	४१	८४	५७
लोहा और इस्पात	२६०	३३७	६६९	४९३
चाय	४६	४८	२४	३०
मैंगनीज	१५६	१४८	९६	६५
लोह-धातुयें	३२५	३८७	१,१२१	७५०
अन्य वस्तुयें	१३	२७	५४	३९
कुल योग	११४,१३	१२७,६१	१०,६०७	११,३५४

आन्तरिक व्यापार देश के विभिन्न भागों से रेलों और नदियों द्वारा देश के प्रमुख बन्दरगाहों को तथा विभिन्न राज्यों के बीच भी होता है। प्रथम प्रकार के व्यापार के अन्तर्गत देश की कृषि-जन्य एवं उद्योगों की निर्मित वस्तुयें निर्यात के लिये बन्दरगाहों को लाई जाती है और विदेशों से आयात माल बन्दरगाहों द्वारा देश के भीतरी भागों को वितरित किया जाता है। यह व्यापार कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, विशाखापट्टनम, कोजीखोड़, कांधला और कोचीन बन्दरगाहों से होता है।

दूसरे प्रकार का व्यापार देश के विभिन्न राज्यों के बीच में होता है। इस व्यापार में बंगाल, बिहार, आँध्र और मध्य प्रदेश अपने यहाँ से वस्तुओं का निर्यात अधिक करते हैं और उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब,

2. Reserve Bank of India Bulletin, September 1964, p. 1,236.

दिल्ली तथा मैसूर राज्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अन्य राज्यों से आयात करते हैं। रेलों और नदियों द्वारा होने वाले इस व्यापार की मात्रा लगभग १३० करोड़ मन की है।

रेल और नदियों से आने-जाने वाली वस्तुओं में मुख्य वस्तुयें कोयला (५८%) लोहा-इस्पात (५.३%), सीमेंट (६%), गेहूँ (४%), चावल (४%), चीनी व गुड़, (३.६%), नमक (२.५%), मिट्टी का तेल (२.३%), खनिज लोहा (३.६%), तिलहन (२%), चना व दालें (४.१%) और लकड़ी (२.६%) इत्यादि हैं जो कि सब मिला कर इस व्यापार के लगभग ९२% के लिये उत्तरदायी है।

बंगाल से कोयला, जूट व लोहे का सामान, मशीनें, दवाइयाँ, सूती कपड़े, कागज आदि; **बिहार** से कोयला, लोहा और इस्पात का सामान, शक्कर, तिलहन; **उड़ीसा** से जूट, चावल, तिलहन, कोयला; **उत्तर प्रदेश** से चीनी, गुड़, सूती कपड़े कागज, काँच का सामान; **पंजाब** से रुई, चावल; **आसाम** से मिट्टी का तेल, जूट, चाय, **मद्रास** से तिलहन, सूती कपड़े, चीनी, मैंगनीज, अभ्रक, **राजस्थान** से नमक, चमड़ा, खालें, अभ्रक, घीया पत्थर, पशु, घी, अनाज, तिलहन, इमारती पत्थर; **मध्य प्रदेश** से रुई, सूती कपड़े, गेहूँ, संतरे, तिलहन; **महाराष्ट्र** और **गुजरात** से ऊनी, सूती और रेशमी कपड़े, रसायन, सीमेंट, काँच, कागज, और विविध प्रकार की वस्तुयें, **मैसूर** से ऊनी और रेशमी कपड़े और चांदी आदि अन्य राज्यों को निर्यात की जाती हैं।

सीमा प्रान्तीय व्यापार (Over-Land Trade)

भारत की स्थलीय सीमा १५,२६० कि०मी० है जो उत्तर, उत्तर-पश्चिम और पूर्वी भाग में फैली है। केवल उत्तर-पश्चिम को ही व्यापारिक मार्ग उपलब्ध है, शेष ओर ऊँची गगनचुम्बी चोटियाँ, घने जंगल और गहरी घाटियाँ है। भारत का सीमा प्रान्तीय व्यापार मुख्यतः उसके पड़ौसी देशों से—अफगानिस्तान, पाकिस्तान, तिब्बत, ईरान, ईराक, शान की रियासतें, चीन, नैपाल, भूटान और मध्य एशिया के देशों से होता है। इन सभी देशों में प्राकृतिक साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं किन्तु उत्पादन कम होने और देश गरीब होने से न तो अधिक वस्तुयें खरीदी ही जाती हैं और न अधिक बेची ही जाती है। अतएव, समुद्री व्यापार की तुलना में सीमा प्रान्तीय व्यापार प्रायः नगण्य सा है।

सीमा प्रान्तीय व्यापार की मुख्य निर्यात की वस्तुयें भारत से विदेशी और देशी सूती कपड़े, रंग, मशीनें, कटलरी, मिट्टी का तेल, शक्कर, तम्बाकू, चमड़े का सामान, चावल, गेहूँ, दालें और रेशमी वस्त्र हैं। मुख्य आयात अनाज, कच्चा ऊन, जूट, तम्बाकू, तिलहन, पशु, सुहागा और फल आदि हैं।

अफगानिस्तान से भारत को फल और तरकारियाँ, खालें, दवाइयाँ, हींग, तिलहन, अनाज, ऊन आदि वस्तुयें आती हैं तथा भारत से चाय, चमड़ा व चमड़े का सामान, सूती-रेशमी वस्त्र, शक्कर, मसाले, जूते, दवाइयाँ, साबुन आदि वस्तुयें निर्यात की जाती हैं। १९६३-६४ में अफगानिस्तान से ४९८ लाख रुपये का आयात और भारत से ७५७ लाख रुपये का निर्यात हुआ।

भारत से पाकिस्तान को सूती कपड़ा, जूट का सामान, गुड़, लोहा और इस्पात, कोयला, चाय, सीमेंट, कागज, सूत, मशीनें, दवाइयाँ, वनस्पति तेल, नमक

मसाले आदि निर्यात किए जाते हैं और पाकिस्तान भारत को जूट, कपास, अनाज, फल, चमड़ा और खालें, पशु, गलीचे, तिलहन, लकड़ियाँ आदि वस्तुऐं निर्यात करता है। १९६३-६४ में पाकिस्तान से ९३६ लाख रुपये का आयात हुआ तथा भारत से ७१७ लाख रुपये का निर्यात।

भारत और तिब्बत के बीच भी स्थल मार्गों द्वारा व्यापार होता था। भारत तिब्बत को अनाज, सूती वस्त्र, लेखन-सामग्री, रंग, धातुयें, शक्कर, तम्बाकू और चमड़ा निर्यात करता है तथा तिब्बत से भारत में ऊन, सुहागा, नमदे आदि आते थे किन्तु अब यह व्यापार बंद है।

समुद्र तटीय व्यापार (Coastal Trade)

देश की तट रेखा के अनुपात में भारत के तट पर बन्दरगाहों का अभाव है तथा हमारा तटीय व्यापार भी उतना अधिक उन्नत नहीं है। यह तटीय व्यापार दो तरह का होता है। **देशी तटीय व्यापार** (Internal Trade) जो एक ही राज्य के दो या दो से अधिक बन्दरगाहों के बीच होता है। **विदेशी तटीय व्यापार** (External Trade) एक राज्य के बन्दरगाहों और दूसरे राज्य के बन्दरगाहों के बीच होता है।

तटीय व्यापार की दृष्टि से भारतीय तट को इन भागों में बांटा गया है: (१) पश्चिमी बंगाल; (२) उड़ीसा; (३) मद्रास; (४) आंध्र प्रदेश; (५) केरल; (६) मैसूर; (७) महाराष्ट्र; (८) अंडमान और नीकोबार द्वीप तथा (९) लका-द्वीप, मीनीकॉय, और अमीनीदीवी द्वीप। एक ही तटवर्ती क्षेत्र में उपस्थित बन्दरगाहों के बीच के व्यापार को **भीतरी व्यापार** कहा जाता है, जब कि एक तटवर्ती क्षेत्र से दूसरे तटवर्ती क्षेत्र के बीच के व्यापार को **बाहरी व्यापार** कहते है। इन्हीं परि-स्थितियों के अनुसार तटवर्ती व्यापार में आयात और निर्यात होता है। १९६१-६२ में तटवर्तीय व्यापार का कुल मूल्य ५१७·२२ करोड़ रुपया था, इसमें से २४७·१९ करोड़ रुपये का आयात तथा २७०·०३ करोड़ रुपये का निर्यात था। कुल व्यापार में से ४९७ करोड़ रुपये का व्यापार बाहरी व्यापार था।

नीचे की तालिका में तटवर्ती व्यापार के अंक प्रस्तुत किये गए हैं:—

तटवर्ती व्यापार (लाख रुपयों में)

	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६१-६२
आयात			
भारतीय माल	१६४,५४	२०९,८	९२४३,७३
विदेशी माल	१३,७०	६,६१	३,४६
कुल आयात	१७८,२४	२१६,५०	२४७,१९
निर्यात			
भारतीय माल	१४३,७७	२१५,०३	२६२,७४
विदेशी माल	१५,९६	७,८५	७,२९
कुल निर्यात	१५९,७३	२२२,८८	२७०,०३
संपूर्ण तटीय व्यापार	३३७,९७	४३९,३८	५१७,२२

समुद्र तटीय व्यापार में भाग लेने वाली मुख्य वस्तुयें खनिज तेल, सूत और सूती वस्त्र, जूट का माल, मसाले, वनस्पति तेल, रबड़, सीमेंट, रुई, कोयला, चाय, चीनी, रासायनिक पदार्थ, लोहा, इस्पात, खोपरा, तम्बाकू ,नमक, जटा और सूतली, साबुन, चावल, खनिज धातुयें, कागज आदि है। ये वस्तुयें समुद्रतटीय व्यापार के ७२% प्रतिशत के लिये उत्तरदायी हैं।

पुनःनिर्यात व्यापार (Entrepot Trade)

भारत के विदेशी व्यापार का एक भाग ऐसा है कि यहाँ दूसरे देशों से माल आता है और फिर वही माल पड़ौसी देशों को निर्यात कर दिया जाता है। इसी व्यापार को पुनः निर्यात व्यापार कहते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि विदेशी जहाज जो माल भर कर लाते है वह भारतीय बन्दरगाहों पर उतार देते है। यही माल यहाँ से उन निकटवर्ती देशों को, जिनका अपना समुद्र तट नहीं है, पुनः निर्यात कर दिया जाता है।

पुनः निर्यात व्यापार करने के लिये निम्न बातों का होना आवश्यक है :—

(१) देश की स्थिति मध्यवर्ती होनी चाहिये जिससे समीपवर्ती पड़ौसी देशों व विदेशों से आयात किया गया माल सुगमतापूर्वक भेजा जा सके। इस दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। हिंद महासागर के सिरे पर स्थित होने से यह दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के देशो-से पुनःनिर्यात व्यापार करने की स्थिति में है।

(२) विदेशों में आयात माल को पुनः वितरण करने के लिये देश का जहाजी बेड़ा मजबूत और अच्छा होना चाहिए। दुर्भाग्यवश भारतीय जहाजी बेड़ा हालैंड और इंगलैंड जैसे छोटे देशों की तुलना में भी बहुत पिछड़ा हुआ है।

(३) पुनःनिर्यात करने वाले देश की पृष्ठ-भूमि भी धनी होनी चाहिए तथा जनसंख्या भी अधिक जिससे वस्तुओं के आयात और निर्यात में सुविधा हो।

भारत का पुनः निर्यात व्यापार मुख्यतः नैपाल, थाइलैंड, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत, पश्चिमी चीन, फारस, मध्य एशिया आदि देशो से ही अधिक किया जाता है। इसके अतिरिक्त पूर्वी देशों से आये माल को भारत के बन्दरगाहों द्वारा ही निर्यात किया जाता है। जर्मनी, इंगलैंड, अमेरिका, जापान, लंका, सूडान आदि देशों को भारत से पुनः निर्यात होता है।

कच्चा, रेशम, चाय, मसाले, फल, खालें, समूर आदि वस्तुयें चीन, अफगानिस्तान, पूर्वी द्वीप समूह, इंडोनेशिया आदि देशों से मंगवाकर पश्चिमी देशों को भारतीय बन्दरगाहों द्वारा पुनः निर्यात की जाती हैं।

इसी प्रकार पश्चिमी देशों व अमरीका से सूती व ऊनी वस्त्र, दवाइयाँ, यत्र-मशीनें आदि मंगवाकर हिंद महासागर के तटवर्तीय देशों को पुनः निर्यात की जाती हैं।

भारत के पुनर्नियात व्यापार के आँकड़े इस प्रकार हैं :—

पहली योजना का औसत	५	करोड़ रुपया
दूसरी योजना का औसत	८	,,
तीसरी योजना का अनुमान	५	,,
१९६१-६२	५	,,
१९६२-६३	७	,,
१९६३-६४ (अनुमानित)	५	,,
१९६४-६५ (,,)	५	,,
१९६५-६६ (,,)	५	,,

विदेशी व्यापार (Foreign Trade)

भारत का भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक सम्पत्ति के कारण [illegible] व्यापार में भारत का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। शान्ति-काल में व्यापारिक राष्ट्रों में भारत का स्थान ५वाँ हैं। विश्व व्यापार में १९४८ में भारत का भाग [illegible] था किंतु १९६३ में यह केवल १·३% था। प्रथम चार देश क्रमशः सं० रा० अमरीका ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस है। इसमें कोई संशय नहीं कि देश की भौगोलिक परि-स्थितियों में अंतर के कारण यहाँ विभिन्न श्रेणी के प्राकृतिक श्रोत उपस्थित है। विश्व में इलैमैनाइट, अभ्रक, मोनेजाइट, जिरकन आदि खनिजों के उत्पादन में हमारा स्थान विशिष्ट है। इसी प्रकार कृषि-उत्पादन में भी विश्व के देशों में भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। विश्व में सबसे अधिक गन्ना भारत में ही पैदा किया जाता है। चावल, मोटे अनाज, चाय, मूंगफली, तिलहन और अन्यों के उत्पादन में भारत की स्थिति महत्वपूर्ण है। लाख के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है। कपास में भारत का स्थान अमरीका और अलसी में अर्जेंटाइना तथा मोटे अनाजों में चीन और अफ्रीका के बाद मुख्य है। चीन के बाद चावल और चाय पैदा करने वाला सबसे बड़ा देश भारत ही है। लोहा, मैंगनीज आदि धातुओं के निर्यात में हमारा स्थान मुख्य है। जूट का तैयार माल भी यहाँ सबसे अधिक उत्पन्न किया जाता है। वस्तुतः भारत में कृषि, खदानों और कारखानो से विभिन्न प्रकार की वस्तुयें प्राप्त की जाती हैं जिनका उपयोग देश के लिये दुर्लभ मुद्रा प्राप्त करने में किया जाता है किंतु दुर्भाग्य-वश पूँजीगत वस्तुओं (मशीनों आदि) रासायनिक खाद, मिट्टी का तेल, लम्बे रेशे वाली कपास, मोटर गाड़ियाँ, जूट और रुई, अनाज तथा कई प्रकार के खनिज पदार्थों में देश निर्धन है अतः इन वस्तुओं को आवश्यकतानुसार आयात किया जाता है।)

यद्यपि भारत में विश्व की लगभग ⅙ जनसंख्या निवास करती है किन्तु जन-साधारण की दरिद्रता देश के व्यापार में वृद्धि होने में रुकावटें डालती हैं। भारत का विदेशी व्यापार ग्रेट ब्रिटेन जैसे छोटे देश की तुलना में बहुत थोड़ा है। देश का आंतरिक व्यापार भी कम ही है क्योंकि यहाँ की उत्पादन शक्ति कम है। हम न केवल कृषि में ही वरन उद्योग-धन्धों में भी पिछड़े हुये हैं। दूसरे, देश के आंतरिक नें अब तक भी सड़कों का समुचित विकास नहीं हो पाया है फलतः खेतों से औद्यो-

गिक केन्द्रों अथवा रेलों के केन्द्रों तक कृषि पैदावार ले जाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। १९वीं शताब्दी में स्वेज नहर के खुल जाने से यूरोप के पश्चिमी देशों और भारत के बीच दूरी कम हो जाने से समुद्री व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला है।

विदेशी व्यापार की विशेषतायें (Features of India's Foreign Trade)

भारत के विदेशी व्यापार की कई विशेषतायें हैं, जिनमें निम्नाँकित मुख्य हैं—

(१) अधिकांश भारतीय व्यापार (लगभग ९५% तक) समुद्री मार्गों द्वारा ही होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के पड़ौसी देश—अफगानिस्तान, तिब्बत, मध्य एशिया आदि पिछड़े हुए निर्धन है। इन देशो का व्यापार अधिक नहीं होता। ये भारत से न तो अधिक खरीदते हैं और न अधिक बेचते ही है। इन देशों का धरातल ऊबड़-खाबड़ है। हिमालय पर्वतों के कारण भारत और इन देशों के बीच के मार्गों की सुविधा नही है अस्तु, हमारा व्यापार समुद्री बन्दरगाहों द्वारा ही अधिक होता है।

बन्दरगाहों द्वारा होने वाला व्यापार
(००० मैट्रिक टनों में)

	१९५०-५१		१९५५-५६		१९६१-६२	
	आयात	निर्यात	आयात	निर्यात	आयात	निर्यात
कलकत्ता	३,०९०	४,५३३	३,४६४	४,६९६	४,८८०	४,४२०
बम्बई	५,२६८	१,७२९	६,८१४	३,६५७	१०,४१०	४,१३०
मद्रास	१,९५६	२५३	१,८६२	६३८	२,२७०	१,२००
विशाखापट्टनम	६८	८९२	२३२	१,११२	१,४००	१,४६०
कोचीन	१,११८	२४२	१,२४१	३९४	१,८८०	४९०
कांधला			२०८	१०५	१,११०	२७०
योग	११,४९७	७,६५५	१३,८२१	१०,६०२	२१,९५०	११,९७०

(२) भारत के निर्यात व्यापार मे इंगलैंड और सं० रा० अमरीका का भाग प्रमुख है। इनके भाग क्रमशः २४·४ और १७·७% थे (१९६१-६२) जापान का भाग ६·१% और रूस का ५·९% था।

इसी प्रकार आयात व्यापार में भी संयुक्त राज्य अमरीका और इंगलैंड का भाग क्रमशः २२·५ और १८·७% था। पश्चिमी जर्मनी का ११·४% और जापान का ५·७%।

वस्तुतः सत्य यह है कि भारत का निर्यात-आयात की अपेक्षा अधिक विविध होता जा रहा है। ब्रिटेन तथा इकाफे प्रदेशों के देशों जैसे परम्परागत बाजारों की तुलना में अमरीका, जापान, रूस और पूर्वी एशियाई देशों को होने वाले हमारे निर्यात व्यापार में वृद्धि हो रही है। बिटेन, अमरीका, पश्चिमी जर्मनी और जापान

के अतिरिक्त भारत का निर्यात व्यापार आस्ट्रेलिया, रूस, लंका, कनाडा, सिंगापुर, ब्रह्मा, अर्जेंटाइना, मिश्र, अदन, सूडान, टैंगेनिका आदि देशों से होता है।

आयात का एक बड़ा भाग ब्रिटेन और अमरीका के अतिरिक्त प० जर्मनी, ईरान, जापान, इटली, रूस, कनाडा, दक्षिणी पूर्वी एशिया, आस्ट्रेलिया, सऊदी अरब, ब्रह्मा, लंका, रूमानिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अमरीका, मिश्र और केनिया आदि देशों से होता है।

निम्न तालिका मे व्यापार की दिशा बताई गई है :—

प्रमुख देशों को भारत से निर्यात (लाख रुपयों में)

देश	१६६०-६१	१६६१-६२	१६६३-६४
इंग्लैड	१७०,६६	१५६,६५	१६०,७१
संयुक्त राज्य	६६,८३	११६,०६	१२८,३२
जापान	३४,८८	४०,२४	५८,५५
आस्ट्रेलिया	२२,२२	१५,६३	१७,५६
रूस	२८,७८	३१,८६	५२,१०
लंका	१८,३५	१७,०६	१६,१६
प० जर्मनी	१८,६४	१७,८५	१८,६०
कनाडा	१७,५६	१७,३८	२१,१७
बर्मा	६,५२	५,२८	६,३१
अरब गणराज्य	१३,३७	१२,८६	११,४०
फ्रांस	७,६२	७,६७	८,८५
अर्जेनटाइना	४,५२	५,००	१०,०८
सूडान	६,४८	१०,३४	७,८४
सिंगापुर	७,०८	८,२६	१७,३०
नीदरलैंड्स	८,४१	८,०१	१०,४०
जैकोस्लोवाकिया	७,२६	८,०५	१६,१६
केनिया	४,८४	५,३५	५,०२
इटली	६,२३	६,२६	११,१६
नाईजीरिया	५,७४	७,०३	३,७८
क्यूबा	७,२६	५,१८	—
न्यूजीलैंड	७,४०	७,४०	७२६
पाकिस्तान	६,५३	६,४५	७,१७
इडोनेशिया	३,०६	६,८४	२,४१
अन्य देशों को मिलाकर योग	६३२,४२	६५६,८२	७७१,१०

प्रमुख देशों से आयात (मूल्य लाख रुपयों में)

देश	१९६०-६१	१९६१-६२	१९६३-६४
संयुक्त राज्य अमरीका	३२७,५६	२३३,५१	३९०,२४
इंग्लैंड	२१७,१५	१९४,५२	१६८,८९
प० जर्मनी	१२२,५२	११८,२१	८८,६७
ईरान	२९,५५	४७,३५	४७,९०
जापान	६०,७८	५८,६१	६२,६३
इटली	२५,५७	२३,६८	१६,१८
फ्रांस	२१,१३	१५,९८	१३,८६
रूस	१५,८७	३५,३२	६३,९९
बेल्जियम	१५,२२	११,४७	८,६२
स्विटजरलैंड	१०,३८	१०,६४	१२,०५
आस्ट्रेलिया	१७,७९	२२,७३	१७,२२
[illegible]	१३,५०	१३,०३	१२,०९
सऊदी अरब	१४,१८	१८,९०	१७,६०
कनाडा	१९,८६	१६,६१	२४,१६
जैकोस्लोवाकिया	८,७६	१४,२०	१७,३४
पाकिस्तान	१४,०१	१३,८६	९;३६
बर्मा	१३,६५	१०,६४	८,९९
नीदरलैंड्स	१०,५४	१२,५१	१०,४४
सिंगापुर	१०,४४	९,००	५,३१
स्वीडेन	११,८८	१३,९३	११,४७
केनिया	१२,३६	११,६३	३,४५
उत्तरी रोडेशिया	९,९२	९,३२	—
सूडान	९,४१	१०,५७	८,५२
अन्य देशों का कुल योग	१,१२१,६२	१,०३८,६२	१०१७,४९

१९४८-४९ में खाद्यान्नों, कच्ची जूट और कच्ची रुई के आयात का भाग ४०% था। १९५१-५२ में योजनाबद्ध विकास की नीति अपनाये जाने से उक्त तीनों वस्तुओं का आयात ४३७ करोड़ रुपया का था जो १९५५-५६ में यह घटकर ९८ करोड़ रुपया हो गया। १९५६ के बाद की अवधि में व्यापार क्षेत्र में जो विकास हुआ उसका कारण देश की अर्थ-व्यवस्था में गति लाना था। दूसरी योजना में भारी और

आधार भूत उद्योगों के विकास पर जोर दिया गया था जिन्होंने पूँजीगत माल, मशीनों, परिवहन उपकरणों, धातुओं और धातु निर्मित वस्तुओं, विभिन्न प्रकार के रसायनों और औद्योगिक कच्चे माल के आयात को प्रोत्साहन दिया। उर्वरकों, नकली रेशमी सूत, ऊन के लच्छों, रबड़, नारियल के गोलो आदि के आयात में वृद्धि हुई है।

देश में अधिक उत्पादन होने से कच्ची रुई, अनाज, रंगने और कमाने के पदार्थों, कागज और गत्तों, कच्ची जूट, नकली रेशमी धागों का आयात कम हो गया है जबकि आवश्यकता बढ़ने से रसायनों, मशीनो, नारियल के गोलों और ऊन के लच्छों का सापेक्ष महत्व बढ़ा है।

(३) भारतीय आयात व्यापार की अन्य महत्वपूर्ण प्रवृति उपभोग्य पदार्थों के आयात मे कुल आयातों की तुलना में क्रमिक कमी का होना है। विदेशी मुद्रा की कठिनाई के कारण अनावश्यक वस्तुओं के आयात पर बड़ा प्रतिबंध है। औद्योगिक मशीनों तथा आवश्यक कच्चे माल के अधिक आयात के कारण व्यापार संतुलन प्रतिकूल हो गया है। पहली योजना में कुल प्रतिकूल व्यापार संतुलन ५२२ करोड़ रुपये था और दूसरी योजना में यह बढ़ कर १८३८ करोड़ रुपया था। १९६१-६२ में यह ४३२ करोड़ रुपया और १९६२-६३ मे ४४८ करोड़ रुपया और १९६३-६४ २४६ करोड़ रुपया था। नीचे की तालिका मे इसी संबंध में आँकड़े दिये गये हैं :—

१९४७-४८ से लेकर अब तक की व्यापार सतुलन स्थिति निम्न प्रकार रही है :—

वर्ष	आयात	पुर्ननिर्यात सहित निर्यात	व्यापार संतुलन
	(करोड़ रुपयों में)		
१९४७-४८	४५६	४०५	—४८
१९४८-४९	६४४	४५९	—१८५
१९५०-५१	६५०	६०१	—४९
१९५१-५२	९७०	७३३	—२३७
१९५५-५६	७०५	६०९	—९६
१९५६-५७	८५०	६२०	—२३०
१९५७-५८	१,०३५	५६१	—४७४
१९५८-५९	९०६	५७२	—३३३
१९५९-६०	९६१	६४०	—३२१
१९६०-६१	१,११२	६४३	—४८०
१९६१-६२	१,०९३	६६१	—४३२
१९६२-६३	१,१३३	६८५	—४४८
१९६३-६४	१०१७	७७१	—२४६

व्यापार का यह सतुलन विभिन्न देशो के साथ घटता-बढ़ता रहता है। रूस, आस्ट्रेलिया, लंका, कनाडा, बर्मा, अर्जेनटाइना और इंडोनेशिया देशों से यह संतुलन हमारे पक्ष में है किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका, इंगलैंड, प० जर्मनी, इटली, बेल्जियम और पाकिस्तान से यह विपक्ष में है।

(४) प्रमुख निर्यात वस्तुओं के अंतर्गत अब भी महत्वपूर्ण कृषि जन्य वस्तुएँ और सादे परिष्कृत पदार्थ जाते है। निर्यात उपार्जन में चाय, सूती कपड़े और जूट के माल का प्रतिशत लगभग आधा है। मसालों, तम्बाकू, खनिज अयस्कों तथा टूट फूट, चमड़े, खालों और चामों, वनस्पति तेलों, तेल की खलियों, फलियों और सब्जियों, काफी, ऊन, नारियल के रेशे और उसकी वस्तुएँ निर्मित माल को मिला कर इन तीनों वस्तुओं से ७५% से अधिक निर्यात का उपार्जन होता है।

कुछ प्रमुख वस्तुओं का निर्यात प्रतिशत इस प्रकार हैं :—

वस्तुये	१९५०-५१	१९६३-६४
चाय	१३·५	१८ ६
जूट का सामान	१९·२	२१·९
सूती वस्त्र	२३·२	७·४
कच्ची तथा रद्दी रुई	२·९	३·१
मैंगनीज अयस्क	१·३	१·६
लोह खनिज	नगण्य	२·७
चमडा और चमड़े का सामान	४·३	३·९
वनस्पनि और अनुड़शील तेल	४ ३	०·७
काजू	१ ४	२·८
अनिर्मित तम्बाकू	३·१	२·१
गोंद, राल, लाख	१·६	१·०
मिर्च	३·४	१·०
कहवा	नगण्य	१·४
शक्कर	,,	२·३
तेल की खलियाँ	,,	२·६
कोयला	०·५	नगण्य
मशीनें	नगण्य	०·५
योग	१००·०	१००·०
भारतीय माल का कुल मूल्य	५९६	६५७

(५) निर्यात व्यापार की एक प्रमुख विशेपता नई-नई वस्तुओं का निर्यात है। ८ करोड रुपये से अधिक का इजीनियरिंग का सामान निर्यात किया जाता है। इस सामान के अन्तर्गत प्लास्टिक की ढलाई करने, जूता सीने, चाय बनाने की मशीनें, मशीनों के उपकरण, पानी ठंडा करने, कागज बनाने की मशीनें, खेती के औजार, डीजल एंजिन, सिलाई की मशीनें, लोहे से ढाल कर बनाई गई वस्तुयें, ताँबे, पीतल अल्यूमीनियम और लोहे के चादरों के वर्तन, बिजली के पंखे, बल्ब, लोहे व तांबे के तार, ताले, कुन्दे, सांकले, चिटकनियाँ, इस्पात की कुर्सियाँ, मेजें, अल्मारियां, पेटियां,

छाते और छाता बनाने की वस्तुयें, रेजर, ब्लेड, मोटर गाड़ियाँ, साइकलें तथा परिवहन के अन्य उपकरण, गैस की बत्तियां, तामचीनी के बर्तन आदि मुख्य हैं।

(६) भारत के आयात व्यापार का काफी भाग सरकारी खातों में आये हुए आयातों से बनता है। युद्ध-पूर्व काल में ऐसे आयात या तो थे ही नहीं अथवा नगण्य थे, किंतु युद्धकालीन और युद्धोत्तर काल में इनकी वृद्धि का मुख्य कारण अन्न का अधिक आयात, सरकारी प्रायोजनाओं के लिए पूँजीगत साज-सामान का अधिक आयात और रेलों सम्बन्धी सामान का आयात होना है। नीचे की तालिका में सरकारी खाते मे होने वाले आयात के आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

	१९५५-५६	१९५८-५९	१९६१-६२	१९६२-६३
		(करोड़ रुपयों मे)		
खाद्यान्न	२८·९	१६२·६	११७.०	१६६·४
पूँजीगत सामान	३०·३	८८·०	१०२·३	१३३·०
लोहा और इस्पात	१२·१	५१·६	२७·६	२४·७
रेलवे-सामग्री	२२·७	४९·७	१२·५	२७·९
परिवहन संबंधी सामग्री	१३·४	२३·४	१६·४	१४·०
अन्य वस्तुयें (अलौह धातुयें उर्वरक तथा खनिज तेल आदि)	३१·५	१२७·६	८७·५	९७·५
योग	१३८·९	४९२·९	३६३·३	४६३·५

(७) भारत का विदेशी व्यापार प्रति मनुष्य पीछे अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है क्योंकि देश की निर्धनता के कारण सम्पत्ति कम है। भारत में प्रति व्यक्ति पीछे होने वाले विदेशी व्यापार का मूल्य केवल ८ डालर माना गया है, जबकि जापान जैसे छोटे देश में यह मूल्य १७ डॉलर का है। कनाडा में प्रति व्यक्ति पीछे ४४४ डा०; आस्ट्रेलिया में ४१५ डा०; डेनमार्क में ३४९ डा०; इगलैंड में ३०५ डा०; स० रा० अमरीका में १३१ डा०; फ्रास मे १४६ डा० और पश्चिमी जर्मनी में ७१ डा० तथा पाकिस्तान में ११ डालर है।

आयात और निर्यात व्यापार

भारत का आयात और निर्यात व्यापार तीन श्रेणियों में बाँटा गया है :—

(१) प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत खाद्य,-पेय और तम्बाकू आदि (Food, Drink and Tobacco) सम्मिलित किये जाते हैं। इस श्रेणी में मुख्य वस्तुयें अनाज, दालें, आटा, मछली, फल, तरकारी, चाय, तम्बाकू, कहवा और मसाले हैं।

(२) दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत मुख्यत: कच्चा माल और (Raw materials and Unmanufactured goods) होता है। जैसे, खनिज पदार्थ, चमड़ा, खालें, तिलहन, गोंद, चपड़ा, राल, नारियल, रबड़, कपास, जूट, कच्चा ऊन, इमारती लकड़ी आदि।

(७) **लाख**—भारतीय लाख के मुख्य खरीददार इङ्गलैंड, सं० रा० अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि हैं। १९६३-६४ में ४·६ करोड़ रुपये के लागत की लाख भारत से निर्यात की गई।

(८) **मसाले**—भारत से काली मिर्च और लाल मिर्च, लौंग, इलाइची, सुपारी हल्दी, अदरक आदि मसालों का निर्यात काफी समय से हो रहा है किन्तु इनमें काली मिर्च और हल्दी का निर्यात ही अधिक होता है। मसालों का निर्यात सं० रा० अमरीका, स्वीडेन, सऊदी अरब, ब्रिटेन, पाकिस्तान, लंका, रूस, इटली, चीन, डेनमार्क, इंगलैड और कनाडा को होता है। १९६२-६३ में १४ करोड़ रुपये के मसाले निर्यात किये गए। १९६३-६४ में निर्यात का मूल्य १६ करोड़ रु० का निर्यात किया गया।

(९) **धातु निर्मित वस्तुओं का निर्यात**—आजकल हम विविध आकार प्रकार और मूल्य की कम से कम १०२ धातु निर्मित वस्तुओं का निर्यात कर रहे हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

बिजली के पंखे, बल्ब, लोहे व ताँबे के तार, बैटरियाँ, चादरों से बने बर्तन जैसे—बाल्टियाँ, ताँबे, पीतल, अमोनिया और तामचीनी के बर्तन, सिलाई की मशीनें, रेजर, ब्लेड, पानी ठण्डा करने, कागज बनाने, प्लास्टिक की ढलाई करने, छपाई करने, जूता सीने, चीनी और चाय बनाने की मशीनें, मोटर गाड़ियाँ और उनके पुर्जे, ताले, कुन्डे, सांकले और चटकनियाँ लोहे और इस्पात की मेज-कुरसी और अलमारियाँ और पेटियाँ, खेती के औजार, डीजल इंजन, ढले हुए पाइप पम्प, छाता तथा छाता बनाने के काम में आने वाली वस्तुएँ, लोहे से ढालकर बनाई गई चीजें, क्राउन-कार्ब, गैस बत्तियाँ और रेगमाल आदि।

भारत के अन्य निर्यात ये हैं

वस्तुएँ	कहाँ जाती है
सूखे फल (काजू, अखरोट)	कनाडा, ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, आस्ट्रेलिया
फल और तरकारियाँ	पाकिस्तान, बर्मा, लंका, मलाया, सिंगापुर।
अभ्रक	ब्रिटेन, स० रा० अमरीका, बेल्जियम, फ्रांस, जापान।
मैंगनीज	इटली, फ्रांस, नार्वे, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, स्वीडेन, इटली और सं० रा० अमरीका।
ऊन	ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, सं० राज्य।
कोयला	पाकिस्तान, लंका, बर्मा चीन, सिंगापुर, जापान।
कहवा	जर्मनी, नीदरलैंड्स, इटली, बेल्जियम, ब्रिटेन।
नारियल और उसकी जटाओं की वस्तुएँ	ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, नीदरलैंड्स, आस्ट्रेलिया।

रासायनिक पदार्थ	ब्रिटेन, जापान, सं० रा० अमरीका ।
ऊनी कम्बल आदि	ब्रिटेन, कनाडा, सं० रा० अमरीका, जर्मनी, नीदरलैंड्स, आस्ट्रेलिया ।

भारत के प्रमुख निर्यात (लाख रु० में)

वस्तुयें	१९५८-५९	१९६२-६३	१९६३-६४
काजू	१५,८५	१९,३६	२१,४१
कहवा	७,८९	७,६१	८,३०
चाय	११९,०५	१२८,२२	१२२,२२
काली मिर्च	२,४६	६,५७	५,८९
खली	१०,६६	३१,७९	३५,३७
अनिर्मित तम्बाकू	१४,६८	१८,००	२१,०१
कच्ची खालें और चमड़ा	८,१४	१०,८४	९,६०
ऊन तथा बाल	९,६६	६,६८	७,६१
कपास	२२,६४	१७,०७	१६,८४
अभ्रक	९,५८	१०,३६	९,२०
लोहा	९,६५	१९,८२	३६,३८
मैंगनीज	१३,६४	७,८८	८,२६
लाख	५,७०	४,८०	४,६२
चिकना करने का तेल आदि	८,७१	६,९४	७,७१
वनस्पति तेल	६,३७	१३,१७	१९,७५
रसायन	४,४०	७,८९	६,५७
चमड़े की वस्तुयें	१८,८६	२२,५८	२६,२०
सूती वस्त्र	४५,४८	४६,५४	४९,६६
जूट की वस्तुयें	९९,३८	१५२,१२	५३,५५
ऊनी कालीन	४,५२	४,३३	५,२६
कृत्रिम रेशमी कपड़ा	१०,२९	८,३३	१०,४३
सीमेंट	६१	२८	६७
लोहा इस्पात	१,२४	२,३१	३,५१
मशीनें तथा यातायात उपकरण	२,५१	६,५६	६,६०
सभी वस्तुओं का योग	५६८,९७	६९३,६९	७६६,८५

प्रमुख आयात (Chief Imports)

(१) **मशीनें**—भारत में युद्धोपरांत आर्थिक विकास योजनाओं के फलस्वरूप मशीनों का आयात बढ रहा है जो इस बात का द्योतक है कि देश में औद्योगिक योजनायें तीव्र गति से कार्यान्वित की जा रही है। इन मशीनों में बिजली की मशीनों का आयात सबसे अधिक होता है। कपड़ा बुनने की मशीनें, कृषि की मशीनें (अर्क निकालने, तेल पेरने, कागज बनाने, धान कूटने, भूसा साफ करने, आटा पीसने, लकडी चीरने, चारा दबाने), कपड़ा सीने, भूमि को समान करने वाले ट्रैक्टर, बुलडोजर, शीत भंडार, चमड़ा कमाने की मशीनें, चाय व शक्कर तैयार करने की मशीनें, हल, वायु-स्पीडक, स्क्रू और कब्जे, खनिज उद्योग की मशीनें तथा अन्य प्रकार की मशीनें विदेशों से—मुख्यतः ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, पं० जर्मनी, बेल्जियम, जापान, जैकोस्लोवाकिया और कनाडा से मँगवाई जाती हैं। १९६३-६४ में २७७·३ करोड़ रुपये की मशीनें विदेशों से आयात की गई जिनमें ४६% ब्रिटेन, २१% प० जर्मनी, १४% सं० रा० अमरीका और शेष अन्य देशों से आईं।

(२) **कपास और रद्दी रूई** (Raw & Waste Cotton)—भारत में अधिकांशत छोटे रेशे वाली कपास उत्पन्न होती है अतः उत्तम श्रेणी का कपड़ा बनाने के लिये लंबे रेशे वाली कपास और विभिन्न प्रकार के कपड़ों के लिये रद्दी रूई विदेशों से मँगवानी पड़ती है। इसके दो कारण हैं :—देश का बँटवारा और देश में खाद्यानों के अभाव में अत्याधिक मात्रा में कपास के अन्तर्गत क्षेत्रों पर खाद्यान्नों का उत्पादन किया जाना। फलतः देश में रूई का आयात मिश्र, सं० रा० अमरीका, केनिया, सूडान, पीरू, टैंगेनिका और पाकिस्तान आदि देशों से होता है। १९६३-६४ में ४८·९ करोड़ रुपये की रूई का आयात किया गया।

(३) **धातुये और लोहे तथा इस्पात का सामान**—विदेशों से आने वाले माल में लोहे और इस्पात के बने माल तथा धातुओं का स्थान दूसरा है। अल्यूमीनियम, पीतल, ताँबा, कांसा, सीसा, जस्ता, टीन आदि धातुएें विदेशों से अधिक मात्रा में आयात की जाती है क्योंकि इनके उत्पादन में देश प्रायः दरिद्र ही है। **अल्यूमीनियम** ब्रिटेन, कनाडा व स्विटजरलैंड से; **ताँबा** ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, स्वीडेन, बेल्जियम, कांगो और मोजम्बीक से; **सीसा** आस्ट्रेलिया और बर्मा से; **टीन** सिंगापुर, बर्मा, मलाया और ब्रिटेन से; **जस्ता** उत्तरी रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, जापान से मँगाया जाता है। १९६३-६४ में ५५·५ करोड़ रुपये की धातुओं का आयात किया गया।

लोहे (मुख्यतः कच्चा लोहा, लोहे के एंगल, टी छड़ें, चटखनियाँ आदि) इस्पात और इस्पात का सामान (स्प्रिंग, टी छड़ें आदि) और लोहे व इस्पात का सामान; (लगर, कांटेदार तार, नल, चादरें, पेच, कीलें चटखनियाँ, संवाद के तार आदि) विशेषतः ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, बेल्जियम, रूस, सं० रा० अमरीका, स्वीडेन नार्वे, इटली और जैकोस्लोवाकिया से मँगवाया जाता है। १९६३-६४ में ८९·६ करोड़ रुपये के लोहे का सामान आयात किया गया।

(४) **खनिज तेल** (Mineral Oil)—भारत में खनिज तेल के श्रोतों का बड़ा अभाव है। इस तेल के अन्तर्गत मिट्टी का तेल (Kerosene), जलाने का तेल

(Fuel oil), उपस्नेहल तेल, (Lubricating oil) और पैट्रोल आदि आते हैं। द्वितीय युद्ध काल से ही खनिज तेलों की माँग में वृद्धि हो जाने से आयात में वृद्धि हुई है। फलतः १९६३-६४ में ४६·१७ करोड़ रु० का मिट्टी का तेल तथा ५८ करोड़ रुपये की मिट्टी के तेल से सम्बन्धित वस्तुओं का आयात किया गया।

मिट्टी का तेल मुख्यतः ईराक, बहरीन द्वीप, सऊदी अरब, बर्मा, ईरान, बोर्नियो, सं० रा० अमरीका व सिंगापुर आदि से आयात किया जाता है।

पैट्रोल बहरीन द्वीप, फ्रांस, इटली, अरब, सिंगापुर, सं० रा० अमरीका, ईरान और सुमात्रा से मँगवाया जाता है।

जलाने का तेल ब्रिटेन, बहरीन द्वीप, सिंगापुर, अरब और सं० राज्य से मँगवाया जाता है।

(५) **खाद्यान्न**—विभाजन के परिणाम-स्वरूप तथा निरंतर अनुपयुक्त मौसम के कारण देश में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होता रहा है जबकि देश में जन-संख्या में वृद्धि होती रही है। अतः खाद्यान्नों का प्रभाव पूरा करने के लिए विदेशों से अनाज आदि आयात किए जाते है। १९६३-६४ मे हमने ४५ लाख टोन अनाज १६३ करोड़ रुपए मूल्य का विदेशों मे आयात किया। इसमें से १०२·८ करोड़ का गेहूँ, २०४ करोड का चावल तथा ६·५ करोड़ रुपये के अन्य अनाज थे। खाद्यान्नों का आयात इस प्रकार होता है :—

गेहूँ—कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस, अर्जेनटाइना, स० राज्य।
चावल—बर्मा, चीन, थाइलेंड, जावा, मिश्र, पाकिस्तान, लंका, इंडोचीन।
जौ—ईराक, आस्ट्रेलिया और अर्जेनटाइना।
दालें—बर्मा, ईराक, सूडान, पाकिस्तान, केनिया उपनिवेश।
ज्वार-बाजरा—पूर्वी अफ्रीका, स० रा० अमरीका।

(६) **रासायनिक पदार्थ** (Chemicals)—रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में भारत अभी भी स्वावलंबी नहीं है। युद्धोपरांत काल में इनके आयात में निरंतर वृद्धि होती रही है। रासायनिक पदार्थों के अंतर्गत अमोनियम सल्फेट, नाइट्रेट ऑफ सोडा, सुपर-फास्फेट, एसेटिक एसिड, साइट्रिक एसिड, बोरिक और टारटरिक एसिड, सोडा एश, ब्लीचिंग पाउडर, गंधक, अमोनियम क्लोराइड आदि वस्तुयें सम्मिलित की जाती है। इनके आयात का मुख्य कारण देश में उद्योग की उन्नति होना है। रासायनिक पदार्थ सं० रा० अमरीका, ब्रिटेन, इटली, फ्रांस, जर्मनी, जापान, बेल्जियम आदि से मंगवाये जाते है। १९६३-६४ मे ८८·४० करोड़ रुपये के रासायनिक पदार्थ और २७ करोड रुपये के रासायनिक खाद का आयात किया गया।

दवाइयों का आयात मुख्यतः ब्रिटेन, स्विटजरलैंड, कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका से होता है। १९६३-६४ में ८३४ लाख रुपये की मूल्य की दवाइयाँ आयात की गई।

(७) **कागज दफ्ती तथा स्टेशनरी आदि** (Paper Paste-Board and Stationery)—देश में शिक्षा में प्रगति होने के साथ साथ कागज तथा लेखन सामग्री का आयात बढ़ रहा है। लिखने का कागज, अखबारी कागज, दफ्ती कागज, किताबें छापने का सफेद कागज, स्याही सोख, कार्ड बोर्ड तथा पेस्ट-ब्रोर्ड आदि बड़ी मात्रा में

नार्वे, स्वीडेन, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, सं० रा० अमरीका, आस्ट्रिया, फिनलैंड और स० राज्यों से आयात किया जाता है। अन्य लेखन सामिग्री ब्रिटेन, जापान, जर्मनी संयुक्त राज्य अमरीका देशों से मगवाई जाती है। १९६३-६४ में ११·८ करोड़ रुपये का कागज विदेशों से आयात किया गया।

आयात की अन्य वस्तुयें इस प्रकार है :—

वस्तुयें	कहां से आती है
बिजली का सामान—	
(पंखे, टेलीफोन, तार, लैम्प, चिमनियां)	ब्रिटेन, चीन, जापान, नीदरलैंडस, सं०रा० अमरीका, स्विटजरलैंड, प० जर्मनी।
कांच का सामन	बेल्जियम, जर्मनी, फ्रांस, हालैंड, ब्रिटेन।
सूत और सूती वस्त्र	ब्रिटेन, जापान, इटली, स्विटजरलैड।
ऊनी वस्त्र	ब्रिटेन, जापान, इटली, बेल्जियम।
मोटर गाड़ियां, बाइसिकलें	ब्रिटेन, फ्रांस, सं० रा० अमरीका, इटली, कनाडा, जर्मनी।
रबड़ का सामान	जर्मनी, इंगलेंड, जापान, सं०रा० अमरीका।
जूट	पाकिस्तान।
रेशमी वस्त्र	चीन, जापान, इटली, ब्रिटेन।

भारत के प्रमुख आयात (लाख रु० मे)

वस्तुयें	१९५८-५९	१९६२-६३	१९६३-६४
खाद्यान्न	१८६,०७	१५२,३३	१६३,०१
काजू	७,६५	६,१२	१०,६३
मसाले	३,२२	१,७७	७०
तम्बाकू (कच्ची)	१,६६	१,३७	७६
चमड़ा और खालें	१,४३	२,७३	३,३२
खोपरा	१०,६४	६,६७	८,७६
कच्चा रबड़	४,६७	१०,२३	६,७५
रुई	२८,२६	५६,६१	४८,६८
कच्ची ऊन	१०,३६	१२,१५	१५,७२
जूट	२,६४	३,३५	१,८५
पैट्रोलियम	११,६७	३०,१५	४६,१७
कैरोसीन	२०,४४	३२,३३	२५,३८
पैट्रोलियम के उत्पादन	३६,३६	२५,१८	३२,८७
वनस्पति तेल आदि	३,६१	५,६३	४,८७
रासायनिक तत्व	३०,८६	३८,०८	३२,०१

रंग पदार्थ	६,१०	१२,१५	८,०४
दवाइयाँ	६,२८	६,२४	८,३४
रासायनिक खाद	६,१६	२७,२६	२७,४६
कागज और गत्ता	८,००	१३,३४	११,४६
नकली रेशम-धागा	१३,६३	१२,८८	१०,४५
लोहा और इस्पात	६२,३७	८६,६५	८६,६४
अलौह धातुयें	३२,०५	५५,०१	५५,५७
मशीनें	१३०,३२	२४७,१४	२७७,३३
विद्युत् मशीनें एवं उपकरण	४६,५६	६२,१६	८३,४८
यातायात उपकरण	६१,१४	७२,०५	६०,७६
सभी वस्तुओं का योग	८५६,१७	१०७७,०६	११,४३,६०

स्रोत : Monthly Statistics of the Foreign Trade of India.

भारत की व्यापार नीति भारत सरकार की व्यापारिक नीति के उद्देश्य ये हैं :—

(१) घरेलू बाजार में वस्तुओं का वितरण उचित मूल्य पर करना;

(२) निर्यात क्षेत्र में वृद्धि कर वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाना और इसके लिए निर्यातक वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना करना;

(३) आयात किये गये माल तथा कच्चे सामान की पूर्ति के लिये देश में ही उत्पादन बढ़ाना।

१९६३-६४ की **आयात नीति** के अंतर्गत तीन उद्देश्यों की पूर्ति का ध्येय रखा गया था (क) औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देना, (ख) विदेशी मुद्रा की बचत करना, तथा (ग) निर्यात को संवर्द्धन करना। इस नीति के अनुसार केवल इन्हीं वस्तुओं के आयात की अनुमति दी जाती है : दवाइयाँ, एक्सरे-फिल्म्स, रसायन, किताबों, मोटर गाड़ियों के पुर्जे, मशीनों के पुर्जे, बाटल की छाल और सत तथा चमड़ा और खालें।

निर्यातों का नियंत्रण **निर्यात नियंत्रण आदेश** के अंतर्गत किया जाता है। इस आदेश के अनुसार निर्यात वस्तुओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है : (क) वे वस्तुयें जो सामान्यत: निर्यात नहीं की जा सकती जैसे आटा, गेहूँ, जगली-जीव, धातुयें, खनिजें, तिलहन तथा कुछ किस्म की मोटर गाड़ियां; (ख) वे वस्तुयें जो किन्हीं शर्तों के पूरा करने पर ही अथवा एकनिश्चित मात्रा तक ही निर्यात करने की अनुमति दी जा सकती है, जैसे कोक और कोयला, कपास, सूती वस्त्र, चमड़ा और खालें, कुछ धातुयें, खनिजें, खली, ऊन, प्याज, आलू आदि; (ग) अन्य प्रकार की वस्तुयें जिनका उल्लेख आदेश में नहीं है।

पिछले दशक में आयात व्यापार में मूल्य तथा परिमाण दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। आयात मूल्य १९५०-५१ में ६५० करोड़ रु०, १९६१-६२ में

१०६० करोड़ रु०; १६६२-६३ में १०७७ करोड़ और १६६३-६४ में ११४४ करोड़ रु० था। आयात का अधिकतम मूल्य १६६०-६१ में ११२२ करोड़ रुपया था। पहली योजना में आयात का औसत वार्षिक मूल्य ७३३ करोड़ रु० और दूसरी योजना में ६५६ करोड़ रु० था।

आयात की भांति निर्यात व्यापार में भी कुछ वृद्धि हुई है। १६६१-६२ में ६६१ करोड़, १६६२-६३ में ६६४ करोड़ तथा १६६३-६४ में ७६७ करोड़ रु० का निर्यात हुआ। पहली योजना में निर्यात का वार्षिक औसत ६०८ करोड़ रु० तथा दूसरी योजना में ६२० करोड़ रुपया था।

तृतीय योजना काल में आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास के निकास के फलस्वरूप आयात-व्यापार में और भी अधिक वृद्धि होने का अनुमान है। कुल मिलाकर तीसरी योजना में ५७५० करोड़ रुपये का आयात किया जायेगा और ६०० करोड़ रुपये का अतिरिक्त आयात पी० एल० ४८० प्रोग्राम के अंतर्गत। इस प्रकार आयात का वार्षिक औसत १२७० करोड रुपया होगा। इस योजनाकाल में निर्यात व्यापार का लक्ष्य ३७०० करोड़ रुपये का रखा गया है अर्थात् निर्यात का वार्षिक औसत ७४० करोड़ रुपये का होगा। इस निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए इन बातों पर बल दिया जा रहा है :—

(१) देशवासियों के उपभोग में कुछ सीमा तक कटौती की जाय इससे निर्यात के लिए अधिक से अधिक वस्तुयें प्राप्त हो सकें।

(२) निर्यात सम्बन्धी वस्तुओं से सम्बन्धित कारखानों को शीघ्रातिशीघ्र प्रतिस्पर्द्धात्मक बनाया जाये जिससे वे विदेशों में अन्य देशों की वस्तुओं से मूल्य और श्रेणी की दृष्टि से प्रतिस्पर्धा कर सके।

(३) निर्यात सम्बन्धी लाइसैंस देने की नीति में भी इस प्रकार परिवर्तन किये जायें कि निर्यात व्यापार को अधिक से अधिक प्रोत्साहन मिल सके।

निर्यात संम्वर्धन के उपाय—निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए निम्न उपाय किये गए हैं :—

१. किस्म नियंत्रण योजना—विदेशी मुद्रा की आवश्यक प्राप्ति करने तथा विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुओं की साख बनाये रखने के लिए कृषि उत्पादनों में कच्ची ऊन, तम्बाकू, काजू, खालें तथा चमड़ा, बकरी के बाल, काली मिर्च, इलायची, लाल मिर्च, गरम मसाले, चंदन का तेल, खजूर का तेल, नीबू घास का तेल, हरड-बहेड़ा, जूट का सामान, मछली और मछली उत्पादन, वनस्पति तेल, तेल सहित खली अरंडी, मूंगफली और अलसी का तेल, दालें, प्याज, इन्जीनियरी और रासायनिक सनाय की पत्तियाँ, आलू, अदरक, हल्दी, अखरोट, तन्दु की पत्तियाँ, केला का चूर्ण और सुखाये हुए केले, सूअर, भेड़ और बकरी का डिब्बा बंद मांस, सूअर का ठंडा किया हुआ मांस, समुद्री केकड़ों का बंद किया हुआ मांस उत्पादन आदि वस्तुओं की लदान से पूर्व निरीक्षण योजना चालू की गई है।

खाद्य पदार्थों के अन्तर्गत—इन वस्तुओं का किस्म नियत्रण अनिवार्य माना गया है—

रंग पदार्थ	६,१०	१२,१५	८,०४
दवाइयाँ	६,२८	६,२४	८,३४
रासायनिक खाद	६,१६	२७,२६	२७,४६
कागज और गत्ता	८,००	१३,३४	११,४६
नकली रेशम-धागा	१३,६३	१२,८८	१०,४५
लोहा और इस्पात	६२,३७	८६,६५	८६,६४
अलौह धातुयें	३२,०५	५५,०१	५५,५७
मशीनें	१३०,३२	२४७,१४	२७७,३३
विद्युत् मशीनें एवं उपकरण	४६,५६	६२,१६	८३,४८
यातायात उपकरण	६१,१४	७२,०५	६०,७६
सभी वस्तुओं का योग	८५६,१७	१०७७,०६	११,४३,६०

स्रोत : Monthly Statistics of the Foreign Trade of India.

भारत की व्यापार नीति भारत सरकार की व्यापारिक नीति के उद्देश्य ये हैं :—

(१) घरेलू बाजार में वस्तुओं का वितरण उचित मूल्य पर करना;

(२) निर्यात क्षेत्र में वृद्धि कर वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाना और इसके लिए निर्यातक वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना करना;

(३) आयात किये गये माल तथा कच्चे सामान की पूर्ति के लिये देश में ही उत्पादन बढ़ाना।

१९६३-६४ की **आयात नीति** के अंतर्गत तीन उद्देश्यों की पूर्ति का ध्येय रखा गया था (क) औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देना, (ख) विदेशी मुद्रा की बचत करना, तथा (ग) निर्यात को संवर्द्धन करना। इस नीति के अनुसार केवल इन्हीं वस्तुओं के आयात की अनुमति दी जाती है : दवाइयाँ, एक्सरे-फिल्म्स, रसायन, किताबें, मोटर गाड़ियों के पुर्जे, मशीनों के पुर्जे, वाटल की छाल और सत तथा चमड़ा और खालें।

निर्यातों का नियंत्रण **निर्यात नियंत्रण आदेश** के अंतर्गत किया जाता है। इस आदेश के अनुसार निर्यात वस्तुओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है : (क) वे वस्तुयें जो सामान्यतः निर्यात नहीं की जा सकती जैसे आटा, गेहूँ, जगली-जीव, धातुयें, खनिजें, तिलहन तथा कुछ किस्म की मोटर गाड़ियां; (ख) वे वस्तुयें जो किन्हीं शर्तों के पूरा करने पर ही अथवा एकनिश्चित मात्रा तक ही निर्यात करने की अनुमति दी जा सकती है, जैसे कोक और कोयला, कपास, सूती वस्त्र, चमड़ा और खालें, कुछ धातुयें, खनिजें, खली, ऊन, प्याज, आलू आदि; (ग) अन्य प्रकार की वस्तुयें जिनका उल्लेख आदेश में नहीं है।

पिछले दशक में आयात व्यापार में मूल्य तथा परिमाण दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। आयात मूल्य १९५०-५१ में ६५० करोड़ रु०, १९६१-६२ में

१०६० करोड़ रु०; १९६२-६३ में १०७७ करोड़ और १९६३-६४ में ११४४ करोड़ रु० था। आयात का अधिकतम मूल्य १९६०-६१ में ११२२ करोड़ रुपया था। पहली योजना में आयात का औसत वार्षिक मूल्य ७३३ करोड़ रु० और दूसरी योजना में ९५९ करोड़ रु० था।

आयात की भांति निर्यात व्यापार में भी कुछ वृद्धि हुई है। १९६१-६२ में ६६१ करोड़, १९६२-६३ में ६९४ करोड़ तथा १९६३-६४ में ७६७ करोड़ रु० का निर्यात हुआ। पहली योजना में निर्यात का वार्षिक औसत ६०८ करोड़ रु० तथा दूसरी योजना में ६२० करोड़ रुपया था।

तृतीय योजना काल में आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास के निकास के फलस्वरूप आयात-व्यापार में और भी अधिक वृद्धि होने का अनुमान है। कुल मिलाकर तीसरी योजना मे ५७५० करोड़ रुपये का आयात किया जायेगा और ६०० करोड़ रुपये का अतिरिक्त आयात **पी० एल० ४८०** प्रोग्राम के अंतर्गत। इस प्रकार आयात का वार्षिक औसत १२७० करोड रुपया होगा। इस योजनाकाल में निर्यात व्यापार का लक्ष्य ३७०० करोड़ रुपये का रखा गया है अर्थात् निर्यात का वार्षिक औसत ७४० करोड़ रुपये का होगा। इस निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए इन बातो पर बल दिया जा रहा है :—

(१) देशवासियों के उपभोग में कुछ सीमा तक कटौती की जाय इससे निर्यात के लिए अधिक से अधिक वस्तुयें प्राप्त हो सकें।

(२) निर्यात सम्बन्धी वस्तुओं से सम्बन्धित कारखानों को शीघ्रातिशीघ्र प्रतिस्पर्द्धात्मक बनाया जाये जिससे वे विदेशों में अन्य देशों की वस्तुओं से मूल्य और श्रेणी की दृष्टि से प्रतिस्पर्धा कर सके।

(३) निर्यात सम्बन्धी लाइसैंस देने की नीति में भी इस प्रकार परिवर्तन किये जायें कि निर्यात व्यापार को अधिक से अधिक प्रोत्साहन मिल सके।

निर्यात संम्वर्धन के उपाय—निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए निम्न उपाय किये गए हैं :—

१. किस्म नियंत्रण योजना—विदेशी मुद्रा की आवश्यक प्राप्ति करने तथा विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुओं की साख बनाये रखने के लिए कृषि उत्पादनों में कच्ची ऊन, तम्बाकू, काजू, खालें तथा चमड़ा, बकरी के बाल, काली मिर्च, इलायची, लाल मिर्च, गरम मसाले, चंदन का तेल, खजूर का तेल, नीबू घास का तेल, हरड-बहेड़ा, जूट का सामान, मछली और मछली उत्पादन, वनस्पति तेल, तेल सहित खली अरंडी, मूंगफली और अलसी का तेल, दालें, प्याज, इन्जीनियरी और रासायनिक सनाय की पत्तियाँ, आलू, अदरक, हल्दी, अखरोट, तन्दु की पत्तियाँ, केला का चूर्ण और सुखाये हुए केले, सूअर, भेड़ और बकरी का डिब्बा बद माम, सूअर का ठंडा किया हुआ मांस, समुद्री केकड़ों का बद किया हुआ मांस उत्पादन आदि वस्तुओं की लदान से पूर्व निरीक्षण योजना चालू की गई है।

खाद्य पदार्थों के अन्तर्गत—इन वस्तुओं का किस्म नियत्रण अनिवार्य माना गया है—

आटा, खमीर बनाने का चूर्ण, तरल ग्लूकोज, अंगूरों की चीनी, आटे से बनी विशिष्ट मिठाई, नाश्ते के खाद्य पदार्थ (Wheat flex, Pearl Barley, Barley powder), बिस्कुट और मिष्ठान, सूखे दूध का चूर्ण।

हस्त शिल्पों के अन्तर्गत इन वस्तुओं का किस्म नियंत्रण किया जाता है : गलीचे, नमदे, मोटा ऊनी वस्त्र, तांबे-पीतल आदि का सजावटी सामान, लकड़ी पर नक्काशी किया माल, हाथी दांत, जरी, ब्रोकेड तथा रेशमी वस्तुयें, छपा हुआ सूती और रेशमी कपड़ा।

नियात संवर्द्धन परिषद—निर्यात व्यापार बढ़ाने के लिए **निर्यात संवर्द्धन परिषदों की** स्थापना की गई है। इस समय १७ परिषदें कार्य कर रही हैं : काजू, मसाले, चमड़ा, तम्बाकू, मछली, सूती वस्त्र, रेशम तथा रेयन, खेल के सामान, चमड़ा प्लास्टिक, अभ्रक, रासायनिक पदार्थ तथा सह-उत्पादनों, भारी रासायनिक पदार्थ, भेषजीय पदार्थ, साबुन, इंजीनियरी का सामान और फलों के उत्पादनों सम्बन्धी निर्यात परिषदें।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ अधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं के निर्यात के लिए भी योजनायें चालू की गई है जिनके अन्तर्गत आयातक कच्चे माल एवं निर्यात वस्तुयें निर्माण करने और पैक करने की मशीनें आयात करने के लिए उनके माल के पोत-पर्यन्त मूल्य के निश्चित प्रतिशत अंक तक आयात लाइसेंस प्राप्त कर सकते है। इस प्रकार की योजनायें इन वस्तुओं के लिए लागू की गई हैं : रासायनिक पदार्थ, पुस्तकें, कागज और कागज के उत्पादन, प्लास्टिक की वस्तुयें, दस्तकारियाँ, सूती तथा तथा कृत्रिम रेशमी वस्त्र और गलीचे, डिब्बा बन्द समुद्री खाद्य तथा फल उत्पादन, काजू की गिरी, कच्चा तम्बाकू, इंजीनियरी और खेल का सामान।

३. अन्य उपाय—(क) विशेष मार्ग निर्देशन तथा प्रभावशाली संवर्द्धनात्मक सेवायें प्राप्त करने के लिए विशिष्ट संस्थान स्थापित करने के द्वारा संगठनात्मक उपाय करना;

(ख) आयात और निर्यात वस्तुओं पर उत्पादन की चुंगी की वापसी करना कुछ वस्तुओं पर निर्यात का हटाना अथवा कम करना, निर्यात की वस्तुयें बनाने के लिए कच्चे माल की व्यवस्था करना तथा उन्नत देशों के उत्पादनों के साथ विदेशों बाजारों में होने वाली प्रतियोगिता मे आने वाली कठिनाइयों में तथा अभाव को दूर करने में निर्यातकों को सरकार द्वारा सहायता देना।

(ग) ऋण-सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था करना, रेलों द्वारा माल के वहन में प्राथमिकता देना तथा रेल और जहाजी भाडों में कमी करना।

(घ) विदेशी बाजारों में भारतीय उत्पादनों के लिए सद्भावना बनाने हेतु व्यापार शिष्ट मंडल भेजना तथा व्यापार शिष्ट मंडलों को भारत आने का निमंत्रण देना विदेशी, प्रदर्शनियों में भाग लेना तथा विदेशी बाजारों मे एक मात्र भारतीय उत्पादनों की प्रदर्शनियाँ करना,

(ङ) साम्यवादी तथा गैर-साम्यवादी देशों के साथ कुछ व्यापार करार तथा व्यवस्थाओं पर बात-चीत करना।

(च) उन वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं जिनकी निर्यात संभावनायें अधिक हैं : (१) सूती वस्त्रों का उत्पादन बढ़ाने के लिए स्वचालित कर्घों की स्थापना की गई है जिससे उत्पादित वस्त्र के १२½% भाग को निर्यात के लिए निश्चित किया गया है। (२) जूट मिल उद्योग के काम को पूर्ण क्षमता फिर से स्थापित कर दी गई है तथा जूट की कीमतें स्थिर रखने के लिए एक समीकरण भंडार योजना चालू की गई है। (३) मैंगनीज के निर्यात पर छूट तथा रेल भाड़े में कमी; और लोहे का निर्यात राज्यकीय व्यापार निगम द्वारा किए जाने की छूट (४) जूतों के निर्यात के लिए गोदाम तथा रेल सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था; (५) मछली पकडने के लिए यान्त्रिक नावों की उपलब्धी कराना, तथा (६) निर्यात वस्तुओं पर किस्म नियन्त्रण लगाने, परीक्षण अनुसधानशालाएँ खालने का कार्यक्रम चालू किया गया है।

४. [illegible]—भारत की व्यापारनीति बहु-पक्षीय करारों से सम्बद्ध है किन्तु राज्य-व्यापार वाले कुछ देशों के साथ द्वि-पक्षीय करार भी किए गए हैं। इन करारों के मुख्य उद्देश्य : (१) उन साधारण वस्तुओं की पूर्ति का निश्चित रूप से प्रबन्ध करना जो सामान्य व्यापार-एजेंसियों द्वारा प्राप्त नहीं है; (२) विदेशी व्यापार में भुगतान का सन्तुलन बनाये रखना; (३) भारतीय माल के निर्यात को प्रोत्साहन देना; तथा (४) अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने एव निर्यात व्यापार को और अधिक दृढ़ बनाना है।

अब तक २८ देशों से ऐसे व्यापारिक करार किये जा चुके है। ये देश क्रमशः ये है :

अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, बलगेरिया, बर्मा, लंका, यूनान, चिली, फ्रांस, चैकोस्लोवाकिया, अरब गणराज्य, फिनलैण्ड, पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी, हंगरी, ईराक, इरान, इन्डोनेशिया, इटली, नार्वे, जार्डन, मैक्सिको, मोरक्को, पाकिस्तान, पोलैण्ड, रूमानिया, स्वीडेन, स्विटजरलैण्ड, जापान, बेल्जियम, रूस, इथोपिया, उत्तरी वियतनाम, यूगोस्लाविया, ट्यूनीसिया।

५. निर्यात जोखिम बीमा निगम (Export Risk Insurance Corporation) इसकी स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा इसलिए की गई है कि वह देश से निर्यात किये जाने वाले माल की उन सम्भावित हानियों का बीमा करे जो कुछ व्यापारिक एवं राजनीतिक कारणों से होती हैं और जिन पर निर्यातकों का कोई वश नहीं होती है तथा जिनका बीमा अन्य कम्पनियां नहीं करतीं। यह निगम 'न हानि न लाभ' नीति के अनुसार केवल देश का निर्यात व्यापार बढ़ाने में निर्यातकों की सहायता करता है।

६. राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation)—इस निगम की स्थापना १९५६ में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गई :—

१. निगम को सौंपी गई वस्तुओं में 'राज्य व्यापार' वाले तथा अन्य देशों से व्यापार करना;

२. निर्यात की परम्परागत वस्तुओं के लिए नई मन्डियों की खोज करना और व्यापार बढाने तथा उसमें विभिन्नता लाने के लिए उनका क्षेत्र विस्तृत करना;

३. जिन वस्तुओं की पूर्ति कम मात्रा में है, सरकार के आदेश पर उनका आयात करना तथा आन्तरिक सन्तुलित वितरण द्वारा मूल्यों में स्थिरता लाना; और

४. सरकार द्वारा अपनाई गई आयात, निर्यात तथा आन्तरिक वितरण की विशेष व्यवस्था को कार्यान्वित करना ।

निर्यात के क्षेत्र में निगम के कार्य निम्नलिखित हैं :—

१. जहाँ खुले रूप से माल भेजने की व्यवस्था है तथा दीर्घकालीन करार लाभप्रद है वहाँ निर्यात बढ़ाना;

२. परम्परागत तथा अपराम्परागत वस्तुओं के निर्यात के लिए नई मन्डियों में प्रविष्ट होकर व्यापार विकसित करना;

३. 'राज्य व्यापार' वाले देशों से हुए व्यापारिक करारों को कार्यान्वित करना;

४. उन वस्तुओं के निर्यात का प्रबन्ध करना जिनकी बिक्री करना कठिन है और जिनके लिए विशेष परिकल्पना अपेक्षित है;

५. स्थानीय उत्पादकों की आवश्यकता पूर्ति और निर्यात क्रम बनाये रखने के लिए कम मूल्यों पर आवश्यक कच्चा माल प्राप्त करना;

६. कुछ विशेष वस्तुओं जैसे जूते, तम्बाकू, दालों, ऊनी-सूती कपड़ों आदि के निर्यात में निजी व्यापार का अनुसरण करना । जहाँ विदेशी व्यापारी निगम से सीधा व्यापार करना चाहते हैं अथवा नई मन्डियाँ खोजनी पड़ती है अथवा साधारण मार्गों द्वारा पर्याप्त व्यापार नहीं होता, वहाँ यह निगम सीधे व्यापार सम्बन्ध स्थापित करता है ।

७. खनिज पदार्थों के निर्यात के लिए निगम को दी गई वस्तुओं में से खनिज लोहा, मैंगनीज, समुद्री नमक मुख्य हैं ।

८. कुछ वस्तुओं का स्थानीय मूल्य अधिक है—जैसे फैरो-मैंगनीज, चीनी, बाईक्रोमेट्स, और मेनीओक-भोजन आदि—अतः इनका निर्यात अधिक मात्रा में नहीं होता और निगम को इनके निर्यात में हानि उठानी पड़ती है । अतः इस हानि को पूरा करने के लिए सुपारी, नारियल आदि के निर्यात का काम भी निगम को सौंपा गया है ।

९. नई वस्तुओं, जिनका निर्यात पहले नहीं होता था, अब उनका निर्यात भी निगम द्वारा किया जाने लगा है । सूती और ऊनी कपड़े, जूते, हस्तकला की वस्तुयें सीमेंट, रासायनिक पदार्थ आदि अब रूस, हंगरी, बल्गेरिया, पोलैण्ड और जर्मनी को भेजी जाने लगी हैं ।

निम्न आंकड़े निगम के निर्यात व्यापार को प्रदर्शित करते है :—

वर्ष	निर्यात (करोड़ रुपयों में)
१९५६-५७	५·७९
१९५७-५८	२०·८०
१९५८-५९	२२·२२
१९५९-६०	२३·२३

१९६०-६१	३६·५९
१९६१-६२	३४·९५

आयात के क्षेत्र में निगम के मुख्य कार्य यह हैं :—

१. देश के आन्तरिक बाजार को स्थिरता प्रदान करना, मूल्यों में अधिक परिवर्तनों को रोकना और उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुयें देना। सोडियम सल्फेट, रेयन, कागज और लुग्दी आदि का वितरण निगम ही करता है।

२. देश के औद्योगिक विकास के लिए आरम्भ से ही इन्जीनियरी माल का आयात कर रहा है। इनके अन्तर्गत मशीनों के कल पुर्जे, छपाई और खानों में प्रयुक्त होने वाली मशीनें, डीजल के सयंत्र और लोह और अलोह धातुएँ मुख्य है। अधिकतर आयात का प्रबन्ध पूर्वी यूरोपीय देशों से रुपये में भुगतान के आधार पर किया जाता है।

३. विभिन्न प्रकार के रसायनों, उर्वरकों, भेषज, सोडियम सल्फेट, पारा, कपूर, रंग, कपड़ा उद्योग के रसायन, नील और पोलिसटरीन आदि—जिनकी उद्योग धन्धों में कच्चे माल के रूप में आवश्यकता पड़ती है—का आयात निगम द्वारा ही किया जाता है।

निम्न तालिका में आयात का मूल्य बताया गया है :—

वर्ष	आयात (करोड़ रुपयो मे)
१९५६-५७	०·३०
१९५७-५८	९·२५
१९५८-५९	१०·२७
१९५९-६०	२८·८७
१९६०-६१	४४·८१

७. व्यापार बोर्ड (Trade Board)—भारतीय व्यापार को नया रूप देने तथा व्यापार सम्बन्धी कार्यों में सरकार को सलाह देना, निर्यात व्यापार तथा उद्योग की सम्भावनाओं की समीक्षा करने के लिए सन् १९६२ में इस बोर्ड की स्थापना की गई है। इसके कार्य निम्नांकित हैं :—

१. वस्तु-वार तथा देश-वार आधार पर निर्यात का विस्तृत सर्वेक्षण करना;

२. व्यापार की उचित, नैतिक और सुचारु प्रथाओं का विकास करना;

३. विभिन्न वस्तुओं के निर्यात सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करना;

४. बाजार-अनुसन्धान, बाजार-सर्वेक्षण, वस्तु-अनुसन्धान क्षेत्र-सर्वेक्षण और उत्पादन-सर्वेक्षण करना;

५. निर्यात आधार का सम्वर्द्धन तथा विकास करना;

६. निर्यात के वाणिज्यिक प्रचार की समीक्षा करना;

७. प्रदर्शनियों, व्यापार मेलों, व्यापार-केन्द्रों तथा प्रदर्शन कक्षों के कार्यक्रम की समीक्षा करना; और

८. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में कर्मचारियों को प्रशिक्षण करना;

अध्याय ३८

जनसंख्या का वितरण

(DISTRIBUTION OF POPULATION)

भारत का क्षेत्रफल समस्त विश्व का २·२% है और आबादी कुल जनसंख्या की १४% है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व के चार बड़े देशों में से एक है। किन्तु भारत की दो तिहाई जनसख्या उसके एक तिहाई भाग— मुख्यतः उत्तरी मैदान और तटीय मैदानों में जहाँ अपेक्षतया मिट्टी, जल, समतल भूमि व आवागमन की सुगमता आदि सुविधायें वर्तमान है—में केन्द्रित है। उत्तरी मैदान का क्षेत्रफल समूचे भारत का १७·३% है पर जनसख्या ३६·७% है। इसी प्रकार तटीय मैदानों का क्षेत्रफल १४% है और जनसंख्या २४·६%, दक्षिण के पठारी भाग पर तटीय प्रदेशों की अपेक्षा जनसख्या अधिक है किन्तु यहाँ का घनत्व तटीय भागों की तुलना में २/३ ही है। पठारी प्रदेश की कतिपय कछारी घाटियों और मैदानों में जनसख्या का घनत्व मैदानी भाग के समान ही मिलता है। पठारी प्रदेश की उच्च भूमियों में कुल आबादी का २०वाँ भाग रहता है। यह कुछ घाटियों में ही केन्द्रित है।

नीचे की तालिका में कुल क्षेत्रफल और जनसंख्या में विभिन्न राज्यों का भाग बताया गया है :—

जनसख्या में स्थान	राज्य का नाम	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	क्षेत्रफल में स्थान
१	उत्तर प्रदेश	१६·८१	९·६५	४
२	बिहार	१०·५९	५·७१	८
३	महाराष्ट्र	९·०२	१०·०८	३
४	आन्ध्र प्रदेश	८·२०	९·०३	५
५	पश्चिम बंगाल	७·९६	२·८७	१३
६	मद्रास	७·६८	४·२७	१०
७	मध्य प्रदेश	७·३८	१५·५४	१
८	मैसूर	५·३८	६·३०	६
९	गुजरात	४·७०	६·१४	७
१०	पंजाब	४·६३	४·०१	११
११	राजस्थान	४·६०	११·२२	२
१२	उड़ीसा	४·००	५·११	९

१३	केरल	३·८५	१·२७	१५
१४	आसाम	२·७१	४·००	१२
१५	जम्मू व काश्मीर	०·८१	अप्राप्य	अप्राप्य
१६	दिल्ली	२·६१	०·०५	२२
१७	हिमाचल प्रदेश	०·३१	०·६२	१६
१८	त्रिपुरा	०·२६	०·३४	१९
१९	मनीपुर	०·१८	०·९३	१७
२०	नागालैंड	०·०८	०·५४	१८
२१	पान्डीचेरी	०·०८	०·०९	२४
२२	उ० पू० सी० प्रा० (नेफा)	२.०२	२·६७	१४
२३	सिक्किम	०·०४	०·२४	२१
२४	अंडमान व निकोबार द्वीप समूह	०·०२	०.२७	२०
२५	दादरा व नगर हवेली	०·०१	०·०२	२३
२६	गोआ, दामन, ड्यू			
२७	लकाद्वीप, मिनिकोय, अमीनीदीवी द्वीप समूह	·०१	०·००१	२५

जनसंख्या का महत्व

जनसंख्या और भूमि के क्षेत्रफल का सम्बन्ध मनुष्य और भूमि का अनुपात (Manland Ratio) या गणित घनत्व कहलाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रति वर्गमील या किलोमीटर भूमि पर कितने मनुष्य रहते हैं।

जनसंख्या के घनत्व में विषमताओं का स्पष्टीकरण निम्न तालिका से होता है :—

राज्य	क्षेत्रफल (ला० वर्गमील)	(वर्ग कि०)	जनसंख्या (करोड़)	जनसख्या का घनत्व प्र. व. मी.	प्रति वर्ग किलो मीटर
आंध्र प्रदेश	१·०६	२८५,५४६	३·५९	३३९	१३२
आसाम	०·४७	२२०,१८०	१·१८	२५२	९८
बिहार	०·६७	२२१,४७८	४·६४	६९१	२६९
गुजरात	०·७२	१८४,७१४	२·०६	२८६	११२
जम्मू-काश्मीर	—	२४०,२९९	०·३५	—	१५
केरल	०·१५	३८,६९०	१·६८	१·१२७	४४०
मध्य प्रदेश	१·७१	४४३,४०६	३·२३	१८९	७४

मद्रास	०·५०	१२६,९३९	३·३६	६६६	१३०
महाराष्ट्र	१·१८	३०७,५००	२·६५	३३३	२५७
मैसूर	०·७४	१८६,७१८	२·३५	३१८	१२४
उड़ीसा	०·६०	१५५,७५१	१·७५	२९२	१०८
पंजाब	०·४७	१२०,७३३	२·०२	४३०	१६२
राजस्थान	१·३२	३४२,६५५	२·०१	१५३	६०
उत्तर प्रदेश	१·१३	२९३,२२८	७·३७	६४९	२५४
पश्चिमी बंगाल	०·३४	८६,१९२	३·४९	१,०३२	४०३
अंडमान-नीकोबार	३,२१५	८,३००	६३४,३८	२०	११
दिल्ली	५७३	१,४८०	२६४४०५८	४,६४०	१७८६
हिमाचल प्रदेश	१०,८७६	२७,६१४	१३४८९८२	१२४	४८
लकादिव, अमीनीद्वीप समूह	११	३०	२४,१०८	२,१९२	१,०१२
मनीपुर	४,०३८	२२,२०८	७८०,०३७	९०	११०
त्रिपुरा	८,६२९	१०,३३६	११४२००५	२८३	२६
सम्पूर्ण भारत	११·७८	—	४३·९२	३७३	१४५

अन्य देशों की भाँति जनसंख्या का प्रतिवर्ग मील घनत्व देश के विभिन्न भागों में अलग अलग है। सपूर्ण देश का घनत्व ३७३ व्यक्ति प्रति वर्ग मील अथवा १४५ प्रति वर्ग किलोमीटर है। यह जापान, जावा और इगलैंड जैसे देशों की तुलना मे अवश्य ही कम है। इन देशों का घनत्व क्रमशः ४९६, ९६४ और ७०३ मनुष्य प्रति वर्गमील है। अस्तु, भारत का घनत्व अधिक नहीं कहा जा सकता। भारत की जनसंख्या का औसत घनत्व प्रति वर्गमील ३७३ है। भारत की घनी आबादी वाले क्षेत्रो में पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार और बंगाल के मैदानी भागों का औसत घनत्व ५०० व्यक्ति प्रति वर्गमील से कहीं भी कम नहीं है। कहीं-कहीं नदियों के समीप यह औसत १००० से भी अधिक होता है। उत्तर में पंजाब के महेन्द्रगढ़ जिले से लेकर दक्षिण में मद्रास राज्य के नीलगिरि और पूर्व में सन्थाल परगना (बिहार) से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक मध्यवर्ती पठार भाग का औसत घनत्व ५०० व्यक्ति तक सीमित है। इस कटिबन्ध में अहमदाबाद, खेड़ा, बड़ौदा और सूरत (गुजरात मे), बम्बई और शोलापुर (महाराष्ट्र में), हैदराबाद, गुन्तूर, कृष्णा, प० गोदावरी और श्री काकुलम (आंध्र प्रदेश में) और बंगलौर (मैसूर) के भाग उपर्युक्त क्षेत्र में सम्मिलित नहीं किये जाने चाहिये क्योंकि इनका घनत्व ५०० व्यक्ति प्रतिवर्ग मील से अधिक है।

इस भाग में कुछ स्थान ऐसे भी हैं जिनका घनत्व २०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील से भी कम है। इनमें पश्चिमी रेगिस्तानी भाग और कच्छ प्रायद्वीप का दलदली भाग, मध्य प्रदेश का पहाड़ी और जगली प्रदेश तथा दक्षिणी पूर्वी पठारी और पहाड़ी वन प्रमुख हैं। पहले वाले भाग में राजस्थान का वह भाग शामिल है जो उत्तर में गंगानगर, दक्षिण में सिरोही, पूर्व में नागौर और पश्चिम में जैसलमेर के जिलों द्वारा घिरा हुआ है। गुजरात का कच्छ और सुरेन्द्रनगर जिला भी इसी के

अन्तर्गत है। दूसरे भाग में राजस्थान का टोंक जिला उत्तर पश्चिमी दिशा से प्रारम्भ होकर चित्तौड़गढ़, बूँदी, कोटा होते हुए मध्य प्रदेश के मोरेना, शिवपुरी, गुना, विदिशा, रायसेन, देवास, पश्चिमी और पूर्वी नीमाड़, होशंगाबाद, बेतूल, छिंदवाडा, सिवनी, मांडला, शहडोल, दमोह, छतरपुर पन्ना जिलों को पार कर सीधी और सरगुजा जिलों की ओर समाप्त हो जाते है। तीसरा भाग ४ राज्यों से होता हुआ आदिलाबाद (आंध्र-प्रदेश), चांदा (महाराष्ट्र), बस्तर (मध्य प्रदेश), कोरापुट, कालाहांडी तथा बौद्ध खोंड़माल (उड़ीसा) तक अपनी सीमा बताता है।

(क) भूमि उपयोग के अनुसार घनत्व (Land-use Concentration)

जनसंख्या के वितरण मानचित्र को देखने से एक बात स्पष्ट होती है कि जहाँ एक ओर राजस्थान की शुष्क पेटी, आसाम की पहाड़ियों और दक्षिण के पठार पर अधिकाँश भागों में जनसंख्या का समूहीकरण कम है, वहाँ दूसरी ओर नदियों की घाटियों में, समुद्र तटीय क्षेत्रों में अथवा खनिज सम्पत्ति वाले भागों में और औद्योगिक केन्द्रों में आवश्यकता से अधिक जमाव पाया जाता है। ऐसे क्षेत्र जिनका औसत घनत्व ३७३ के समान या उससे ऊपर है वे गुजरात के तट से संपूर्ण पूर्वीतट होते हुए पश्चिम बंगाल तक फैले हैं। जहाँ कहीं बीच में पहाड़ी भाग आ गये हैं वहीं यह औसत क्रम टूट सा गया है। तटीय प्रदेशों में छोटे उपजाऊ व कछारी मैदानों का घनत्व अधिक है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उत्तम खेतीहर भूमि और घनी जनसख्या में घनिष्ट सम्बन्ध है। भारत की ७०% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है अतः कृषि प्रदान क्षेत्र औसत से भी अधिक घने बसे हैं। न केवल दक्षिण भारत के तटीय भागों और नदी-घाटियों में ही वरन् उत्तरी भारत में संपूर्ण गंगा का मैदान घने बसे भागों में से है। केवल पीलीभीत और खेरी जिलों को छोड़कर सर्वोच्च औसत ४५० से ऊपर है। कई भागों में तो यह १००० तक तथा उससे भी अधिक पहुँच गया है। बलिया में ११२०; मेरठ में ११७०; सारन मे १३४३; पटना मे ६९१ और कलकत्ता में ७५,०३८। आसाम का औसत घनत्व केवल २५२ है किन्तु ब्रह्मपुत्र की घाटी में लखीमपुर का घनत्व ३१७ तक है। पश्चिम की ओर सतलज-यमुना दोआबों में यह घनत्व ३५० से ऊपर है। सिंचित क्षेत्रफलों में घनत्व और भी बढ़ जाता है—अमृतसर में ७९८; मथुरा में ७३०; इटावा में ७०९।

जनसंख्या के वितरण पर स्पष्ट ही भौगोलिक प्रभाव देखा जाता है। घनी आबादी भारत के उन्हीं भागों में पाई जाती है जहाँ उपजाऊ कछारी मैदान है; जहाँ सिंचाई की सुविधा है अथवा जहां अच्छी वर्षा होती है। इसके विपरीत न्यूनतम आबादी शुष्क अथवा पहाड़ी भागों में पाई जाती है जैसे बीकानेर में ४२; जैसलमेर में ९ और मिकर व उत्तरी कछार पहाड़ियों में ४८ व्यक्ति ही प्रति वर्ग मील में रहते हैं। कुछ जिलों में जनसंख्या ९०० के ऊपर पाई जाती है। इनका अध्ययन बड़ा ही रुचिकर है। दिल्ली, लखनऊ और अमृतसर जिले अपने समीपीय जिलों मे अपेक्षा बहुत ही घने बसे हैं। यही बात हुगली, हावड़ा, २४ परगना जिलों के लिये भी सही है। मेरठ और जालन्धर सामान्य घने बसे हुए भाग में स्थानीय केन्द्र हैं। वस्तुतः उल्लेखनीय क्षेत्र उत्तर प्रदेश, बिहार की सीमा के पास और पश्चिमी बंगाल में हैं। प्रथम क्षेत्र में केन्द्रीयकरण ९ जिलों में हुआ है जिनका औसत १००° व्यक्तियों से ऊपर है और क्षेत्रफल २१,७७९ वर्ग मील है। इनमें से चार जिलों (बनारस,

सारन, दरभंगा, पटना) का औसत १००० से ऊपर है। यहाँ वर्षा का औसत ४० इंच से ऊपर है। वर्षा विश्वसनीय और निश्चित है। खादर की उपजाऊ भूमि में चावल पैदा होता है। सिंचाई द्वारा रबी की फसल (गेहूँ और जौ) भी अच्छी होती है।

दक्षिण में केरल बहुत ही घना बसा राज्य है। जनसंख्या का औसत समस्त राज्य के लिए ११२७ है किन्तु कई भागों का औसत १,२०० से १,५०० तक है। जनसंख्या के घनी होने का मुख्य कारण ऊंचे तापक्रम और अच्छी वर्षा का होना है। शुष्क मौसम बहुत ही छोटी होती है। इस कारण यहाँ चावल की दो फसलें पैदा की जाती हैं। जहाँ चावल पैदा नहीं होता वहाँ नारियल के कुंज पाये जाते हैं। तापक्रम और वर्षा की ऐसी दशाएँ ऊँचे घनत्व के लिये आदर्श है। बंगाल के तटीय भागों में भी ऐसी दशाएँ मिलती है। हुगली से दूर पश्चिम की ओर बालू मिट्टी व लैटेराइट मिट्टी का मलेरिया ग्रस्त क्षेत्र आजाता है। इस क्षेत्र का घनत्व अपेक्षता कम है।

जिन भागों में खनिज और उद्योग धन्धे के कारण जनसंख्या का जमाव हुआ है उनमे दामोदर घाटी, कोलार की खानें और जमशेदपुर उल्लेखनीय हैं। पश्चिम की ओर थार के निकट सिंचाई योजनाओं के कारण आबादी बढ़ गई है। सबसे अधिक और बड़ा जमाव कलकत्ता में हुगली के किनारे हुआ है जहाँ प्रति वर्ग मील पीछे ७५,०३८ व्यक्ति रहते हैं। बम्बई मे २२,२९३ व्यक्ति; दिल्ली में सदर पहाड़गंज क्षेत्र में १४३,१८५; हैदराबाद मे १०,५४०; मद्रास में ३५,२०८। करोलबाग-पटेल नगर में ७४,१९५ है।

१९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या का घनत्व इस प्रकार है—

प्रति वर्ग मील पीछे मनुष्य	सपूर्ण जनसंख्या का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का अनुपात
०-२००	८·६३	३०·८२
२०१-३५०	२२·९२	३२·४५
३५१-५००	१४·१६	१२·८५
५०१-७५०	२२·२५	१३·२०
७५१-१०००	१३·९६	६·१३
१००० से ऊपर	१८·०८	४·५५

(ख) जनसंख्या का आर्थिक घनत्व (Economic Density)

यह देखा गया है कि कई प्रदेशों में आबादी का वितरण बड़ा विस्तृत और समान होता है किन्तु साधारण भूमि, मनुष्य-अनुपात (Man-land ratio) से उस प्रदेश का सही घनत्व ज्ञात नहीं होता। कारण यह है कि समान क्षेत्र होते हुए भी उनके साधनों में भिन्नता होती है। फलतः उनकी आबादी के भरण पोषण की क्षमता में भी अन्तर आ जाता है। आबादी के घनत्व का सही अन्दाज तभी हो सकता है जब कि यह बताया जा सके कि प्रति वर्ग मील पीछे उपजाऊ भूमि का

क्षेत्र कितना है। भूमि की उत्पादकता, जलवायु, स्थलरूप मिट्टी, वनस्पति, और खनिज साधनों आदि पर निर्भर करती है अतः यदि पूर्वी और पश्चिमी हिमालय के पहाड़ी क्षेत्रों का घनत्व १०० हो तो वह घना-आबाद ही कहा जायगा क्योंकि उक्त आबादी के पोषण के लिये वहाँ पर्याप्त साधन नहीं है। इसके विपरीत गंगा का मैदान और तटीय मैदानों में प्रति वर्गमील २०० से भी कई गुने लोगों का पालन हो सकता है फिर भी वह घना आबाद नहीं कहा जायेगा। अतः यदि भूमि मनुष्य अनुपात के साथ साथ प्रति वर्ग मील भूमि की उत्पादकता भी प्रकट की जा सके तो उसमें भी आबादी के घनत्व का अधिक सही अनुपात प्राप्त हो सकता है। साधारणतः इसी को जनसंख्या का आर्थिक घनत्व कहा जाता है किन्तु यह एक बड़ी ही जटिल समस्या है और आज तक विश्व के किसी भी देश मे इस प्रकार का घनत्व निकालने का प्रयास नहीं किया गया है।

(ग) कृषि भूमि का घनत्व (Physiological Density)

यह घनत्व गणित घनत्व से (Arithmetic density) अधिक सही और महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे जनसंख्या तथा कृषि के योग्य भूमि का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणतः भारत मे कृषि योग्य भूमि का कुल क्षेत्र फल ५·७ लाख वर्ग मील है और जनसंख्या ४४ करोड़ है। अतः इसकी कृषि भूमि का घनत्व ६५० मनुष्य प्रति वर्ग मील है।

कृषि भूमि पर जनसख्या के घनत्व सम्बन्धी उपयुक्त आंकड़े प्रस्तुत करते हुए श्री कालिन क्लार्क कहते हैं कि, 'यदि किसी देश में डेनमार्क की आधुनिक कृषि पद्धति का सहारा लिया जाय तो उस देश में प्रति वर्ग मील कृषि भूमि पीछे ५०० व्यक्तियों का निर्वाह हो सकता है।' इस स्तर के अनुसार विश्व के अधिकांश देशों में कृषि योग्य भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक नहीं कहा जा सकता किन्तु जापान, बेल्जियम, हालैंड में निःसन्देह खेतीहर भूमि पर अधिक भार है। जर्मनी का स्तर मर्यादित है किन्तु भारत की अवस्था निश्चय ही डेनमार्क की सीमा के ऊपर है। बेल्जियम, जर्मनी, इंगलैंड व वेल्स आदि देशों में घनत्व बहुत अधिक दिखाई देता है। किन्तु इन देशों में लोग केवल कृषि भूमि पर ही निर्भर नहीं है, बहुत बड़ी संख्या निर्यात उद्योगों में भी लगी हुई है। इस प्रकार ये लोग अतिरिक्त पैदावार वाले देशों से खाद्यान्न प्राप्त कर लेते हैं। वस्तुतः इनकी स्थिति जैसी दिखाई पड़ती है वैसी शोचनीय नहीं है।

हम देखते हैं कि भारत में जनसंख्या का घनत्व ऊँचा है किन्तु यदि बेकार भूमि को सुधारा जाय, प्राप्त आर्थिक साधनों का अधिक उचित उपयोग किया जाय, उद्योग धन्धों व विदेशी व्यापार का विकास और विस्तार किया जाय तथा भूमि में गहरी खेती के तरीकों को अपनाने की चेष्टा की जाय तो यहाँ और भी अधिक जन-संख्या का निर्वाह हो सकता है।

नीचे दी गई तालिका में भारत में विभिन्न राज्यों में कृषि भूमि का घनत्व बताया गया है—

भारत में कृषि भूमि का घनत्व (१९५१)

राज्य	कुल जनसंख्या (हजारो में)	कृषि भूमि वर्ग मीलों में	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि पीछे जनसंख्या का घनत्व
आन्ध्र प्रदेश	३१·२६०	५३·५६७	५८४
आसाम	९·०४४	९·७१४	९३१
बिहार	३८·७८४	४१·२०३	९४१
गुजरात-महाराष्ट्र	४८·२६५	१०९·३५९	४४१
केरल	१३·५४९	७·५०२	१८०६
मध्य प्रदेश	२७·७७२	६९·०५६	३८८
मद्रास	२९·९७५	२७·९५२	१०७२
मैसूर	१९·४०१	४३·९८०	४४१
उड़ीसा	१४·६३६	२५·७२९	५६९
पंजाब	१८·१३५	२९·४७३	५४७
राजस्थान	१५·९६१	५८·४१४	२७३
उत्तर प्रदेश	६३·११६	६८·७०२	९१०
पश्चिमी बंगाल	२६·३०२	२२·४७५	१,१७०
जम्मू काश्मीर	४४·१०५	३·१००	१,४२३
हिमाचल प्रदेश	१·१०१	१·१२३	९९
मनीपुर	५७८	३३३	१,७३६
त्रिपुरा	६३९	७३८	८६६
अन्डमान निकोबार	३१	२०	१,५५०
लंकादीव मिनिकोय	२१	—	—

अधिक और कम घने बसे भाग

विभिन्न राज्यों में जनसंख्या घनत्व के अंक १९६१ की जनगणना के अनुसार इस प्रकार है :—

अत्यधिक घनत्व वाले राज्य (प्रति वर्ग मील पीछे १,००० से ऊपर)

दिल्ली	४,६४०	पांडीचेरी	१,९५५
केरल	१,१२७		
प० बंगाल	१,०३२		

अधिक घनत्व वाले राज्य (प्रति वर्ग मील ३०० से १,००० तक)

गोआ, दामन, ड्यू	४४०	मद्रास	६६९	आंध्र	३३९
दादरा-नगरहवेली	३०७	उत्तर प्रदेश	६४९	महाराष्ट्र	३३३
		पंजाब	४३०	मैसूर	३१८

अथवा नदी घाटियों में कृषि की जाती है। (३) नम और आर्द्र जलवायु के कारण जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। (४) सीमा प्रान्तीय क्षेत्र होने के कारण जन के लिए सुरक्षित नहीं है, और (५) द्वितीय महायुद्ध काल में कोहिमा तथा इम्फाल के युद्धों के कारण भी यहाँ की जनसंख्या को हानि पहुँची।
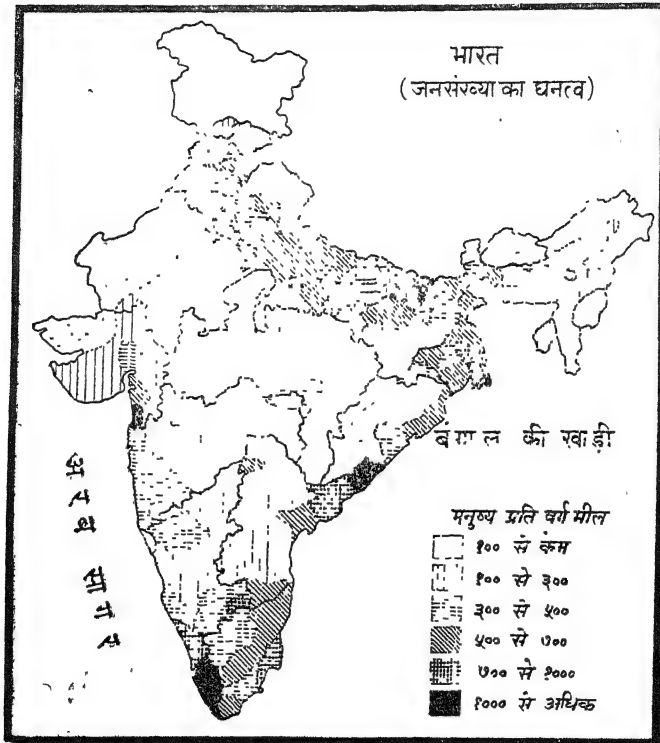
चित्र २०६. भारत की जनसंख्या का घनत्व

दक्षिण के पठार पर घनत्व कम है—दक्षिण के पठारी क्षेत्रों पर जनसंख्या का घनत्व बहुत ही कम है क्योंकि (१) इसका धरातल बड़ा ऊँचा नीचा है जिसके कारण कृषि करना असुविधाजनक होता है; (२) यातायात के मार्गों का अभाव पाया जाता है। (३) वर्षा अधिकांश भागों में औसत से भी कम होती है। (४) असमान धरातल के कारण डेल्टा प्रदेशों को छोडकर सिंचाई की सुविधाओं का अभाव है।

भारत के पूर्वी और पश्चिमी तट घने बसे हैं—तटीय भाग पठारों से निकलने वाली नदियों द्वारा लाई गई बारीक कांप मिट्टी से बने है। इन भागों में ग्रीष्म और शीत कालीन मानसूनों से पर्याप्त से अधिक वर्षा हो जाती है। समुद्र के निकट होने के कारण जलवायु बडा मौतदिल रहता है—तापक्रमान्तर अधिक ऊँचे नहीं बढ़ पाते। उपजाऊ भूमि और जल की प्राप्ति के अनुसार चावल का उत्पादन सबसे अधिक किया

जाता है। चावल उत्पादक क्षेत्र सदैव गेहूँ उत्पादक देशों की तुलना में सघन घनत्व वाले होते है क्योंकि (१) अन्य उपजों की अपेक्षा चावल की उतनी ही मात्रा से अधिक मनुष्यों की उदरपूर्ति हो जाती है। (२) चावल में भोजन के अधिक पोषक तत्व होते हैं। (३) चावल की प्रति एकड़ पैदावार भी बहुत अधिक होती है। चावल की फसल तैयार भी शीघ्र होती है। (४) अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रो में चावल का उत्पादन अधिक सुगम होता है क्योकि श्रमिक अधिक संख्या में मिल जाते है। इन सबके अतिरिक्त यातायात के लिए नहरों या अनूपों को एक दूसरे से जोड़कर नावें चलाई जाती हैं। इन्हीं सब कारणों से तटीय भागों में चावल और नारियल के कुंजों के बीच अधिक जनसंख्या रहती है।
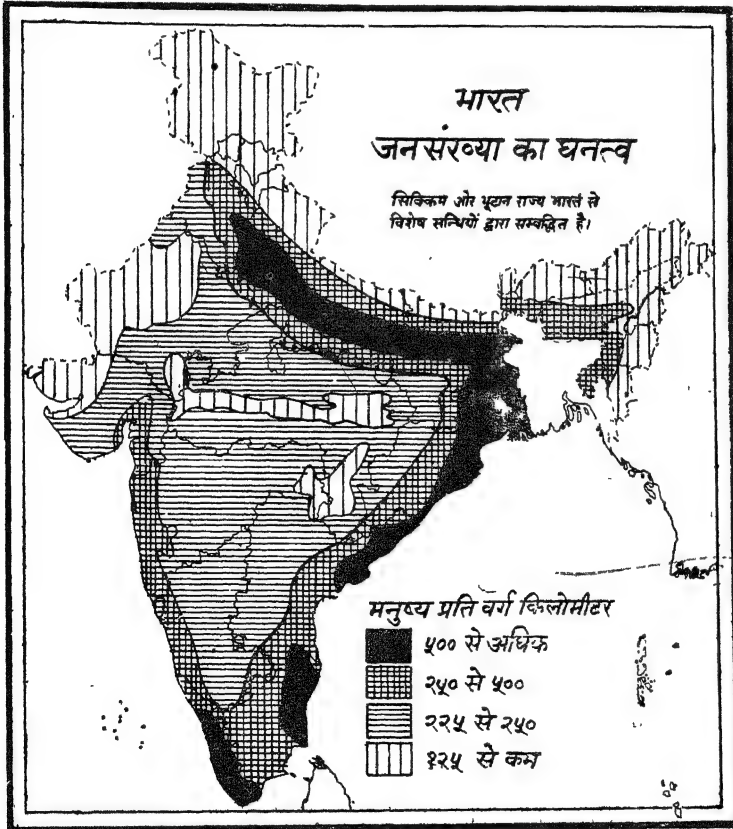
चित्र २०७. भारत की जनसंख्या का घनत्व

भारत के कम घनत्व वाले प्रदेश—इनके अन्तर्गत पहाड़ी क्षेत्र, कम वर्षा वाले भाग अथवा पठारी क्षेत्र सम्मिलित हैं। हिमालय प्रदेश, आसाम, काश्मीर आदि के पर्वतीय क्षेत्रों में समतल और उपजाऊ भूमियों का अभाव पाया जाता है।

अधिकांश भाग वनों से ढके हैं। पहाड़ी भागों में यातायात के मार्गों का बनाना भी कठिन होता है तथा कृषि भूमि के अभाव में लोग बिखरे हुए रहते हैं। जीविकोपार्जन के साधनों के अभाव में भेड़ बकरियाँ पाल कर या लकड़ियाँ काट कर ये अपना निर्वाह करते हैं। ये व्यवसाय स्वयं में अधिक जनसंख्या को आकर्षित नहीं करते।

राजस्थान के पश्चिमी भाग में थार का मरुस्थल है, जहाँ भी गंगा नहर अथवा राजस्थान नहर के निकटवर्ती भागों को छोड़ कर जनसंख्या का घनत्व अत्यन्त न्यून पाया जाता है। अधिकांश भाग में रेतीले टीले और कंटीली झाड़ियाँ मिलती हैं। वर्षा का सर्वथा अभाव रहता है अतएव कृषि उत्पादन कठिनता से किया जाता है। रेतीले टीलों के कारण आवागमन के मार्गों का भी अभाव पाया जाता है अस्तु, मुख्यतः लोग जहाँ जल मिल जाता है, वहीं छोटी-छोटी ढ़ाणियों में रहते हैं। ऊँट, भेड़ें और पशु पालन में लगे रहने के कारण इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमना पड़ता है फलतः जनसंख्या का जमाव नहीं हो पाता।

भारत के अत्यधिक घनत्व वाले भाग—सबसे अधिक घनत्व की दृष्टि में भारत के तीन प्रमुख राज्य ये हैं : दिल्ली, केरल और पश्चिमी बंगाल।

दिल्ली में सबसे अधिक घनत्व मिलने के कारण ये हैं :—

(१) इस राज्य का अधिकाँश भाग शहरी जनसंख्या का है जो अनेक नागरिक एवं सामाजिक सुविधाओं के कारण घना बसा है। (२) दिल्ली नगर भारत की राजधानी है जहाँ अनेक विभागों के कार्यालय एवं विभिन्न उद्योगों के स्थानीयकरण के कारण जनसंख्या का केन्द्रित होना स्वाभाविक ही है। (३) यातायात और व्यापार की पूर्ण सुविधायें उपलब्ध हैं। भारत के प्रत्येक भाग से यह राज्य रेलमार्गों, सड़कों अथवा वायुमार्गों द्वारा जुड़ा है। (४) देश के विभाजन के स्वरूप लाखों शरणार्थी अन्यत्र न जाकर यहीं बस गये हैं।

केरल राज्य में भी घनत्व अधिक पाया जाता है। इसके कारण ये हैं :—
(१) यहाँ चावल का उत्पादन अधिक किया जाता है। (२) तटीय भागों में मिट्टी बड़ी उपजाऊ है तथा वर्षा भी खूब होती है अतः रबड़, कहवा, नारियल, सुपारी, केले आदि का व्यापारिक उत्पादन किया जाता है। (३) शिक्षा का प्रचार अधिक है तथा रहन-सहन का माप-दंड भी ऊँचा है। (४) स्वच्छता अधिक होने से रोग कम होते है अतः मृत्यु दर भी कम है। मोनेजाइट, बाक्साइट, थोरियम आदि मूल्यवान पदार्थों के मिलने के कारण अनेक प्रकार के उद्योग स्थपित हो गये हैं। अस्तु, इस राज्य में जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है।

पश्चिमी बंगाल का यद्यपि उत्तरी और पूर्वी भाग तराई से संबंधित होने के कारण अधिक घना नहीं बसा हैं किंतु मध्य और दक्षिण बंगाल घनत्व के क्षेत्र हैं। (१) इस भाग में कलकत्ता और उसके समीपवर्ती औद्योगिक क्षेत्र अधिक घने बसे हैं। हुगली नदी के किनारे-किनारे अनेक प्रकार के उद्योगों का स्थानीयकरण हुआ है। (२) नदियों एवं नहरों तथा रेलमार्गों की अधिकता के कारण आने जाने की बड़ी सुविधा पायी जाती है। (३) इन भागों की मिट्टी अधिक उपजाऊ है जिसमें चावल गन्ना, जूट आदि अधिक पैदा किये जाते हैं। (४) इस क्षेत्र में व्यापार भी अधिक बढ़ा हुआ है।

जनसंख्या के विषम वितरण के दुष्प्रभाव—(१) जनसंख्या के वितरण के उपरोक्त विवरण से यह विदित होता है कि भूमि पर जनसंख्या का भार अत्यधिक है। जनसंख्या के इस असमान वितरण के कारण देश के साधनों का उचित उपयोग रुक गया है। जहाँ जनसंख्या कम है वहाँ जनबल के अभाव में साधनों का उपयोग नही हो पा रहा है। इसके विपरीत कुछ भाग आबादी से घनीभूत हो उठे हैं।

(२) भूमि पर जनसंख्या का भार किस प्रकार है इसका सही आभास निम्न आँकड़ों से हो जाता है : देश के समस्त लोगों को पर्याप्त भोजन देने के लिए प्रति व्यक्ति पीछे २·५ एकड़ भूमि न्यूनतम मानी गई है किंतु प्रति व्यक्ति पीछे २·२३ एकड़ भूमि ही प्राप्त है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि बोई गई भूमि का प्रति व्यक्ति पीछे औसत ०·८२ एकड़ ही है। भूमि पर अत्यधिक भार केरल, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मद्रास, पंजाब और उत्तर प्रदेश में है। जहाँ प्रति व्यक्ति पीछे प्राप्त भूमि क्रमशः ०·७१, ० ८२, १·११, १·७, १·८६ और १·१५ एकड़ है। इसके विपरीत भूमि का यह औसत भार राजस्थान में ५·२६ एकड़, मध्य प्रदेश में ४ २६ एकड़, आसाम में ६·०२ एकड़, उड़ीसा में २·६३ एकड़ और बम्बई में २·५३ एकड़ है। इस असमान कृषि क्षेत्रफल के कारण प्रति एकड़ पीछे उत्पादन इतना कम होता है कि किसान का पालन-पोषण उचित रूप से नहीं हो सकता क्योंकि खेत छोटे होने के कारण अच्छे बीज, उत्तम खाद एवं वैज्ञानिक उपकरणों का यथाचित उपयोगी नहीं हो पाता।

(३) कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में उद्योग धन्धों का प्रायः अभाव ही पाया जाता है। अधिकांश उद्योग पहले से ही केन्द्रित अधिक जनसंख्या वाले भागों में ही स्थापित किये जाते हैं, जहाँ उद्योगों के घनीभूत होने से जहाँ एक ओर अनेक सामाजिक बुराई, अस्वस्थ्य कर जीवन स्तर और अनेक कठिनाइयाँ अनुभव होती हैं वहाँ दूसरी ओर देश के विभिन्न भागों का संतुलित औद्योगिक विकास नहीं हो पाता। फलस्वरूप आर्थिक विकास में जनसंख्या का विषम वितरण बाधा स्वरूप उपस्थित रहता है।

भारत में जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने वाले तथ्य—जनसंख्या के वितरण मानचित्र पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होगा कि कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या का जमाव अधिक और कुछ में कम होता है। यह वितरण यहाँ पायी जाने वाली भरण-पोषण की शक्ति, जलवायु सम्बन्धी दशायें, प्राकृतिक साधन एवं यातायात के मार्गों की उपलब्धि पर निर्भर है। अधिकाँश जनसंख्या वहीं निवास करती है जहाँ कृषि योग्य भूमि, पर्याप्त जल प्राप्ति और उपयुक्त तापक्रम तथा समतल भूमि के कारण आवागमन के मार्गों की सुविधायें मिलती हैं। खनिज क्षेत्रों तथा औद्योगिक केन्द्रों में अनेक सुविधाओं के कारण जनसंख्या का अधिक जमाव पाया जाता है।

जनसंख्या से घनत्व को प्रभावित करने वाले तत्वों का प्रभाव निम्न रूप से पड़ता है :—

१. **भरण-पोषण के साधन**—भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी २/३ जनता खेती-बाड़ी करके अपना भरण पोषण करती है। अतः लगभग अधिकांश जनसंख्या मैदानों में ही मिलती है जहाँ खेती करने की सभी सुविधायें प्राप्त हैं। पहाड़ी भागों, वन क्षेत्रों और रेगिस्तान में बहुत ही कम जनसंख्या पाई जाती है क्योंकि ऐसी जगह

में खेती करना प्रायः असम्भव ही है। हमारे देश में चूँकि खेती ही मनुष्य जीवन का सहारा है इसलिये जनसंख्या का घनत्व उन्हीं भागों में अधिक है जहाँ खेती के लिए उपयुक्त आवश्यकतायें वर्तमान हैं। चूँकि खेती की सुविधा वर्षा के पानी पर ही निर्भर है इसलिए भारत में जनसंख्या के घनत्व और वर्षा के वितरण में भी अधिक सम्बन्ध है।
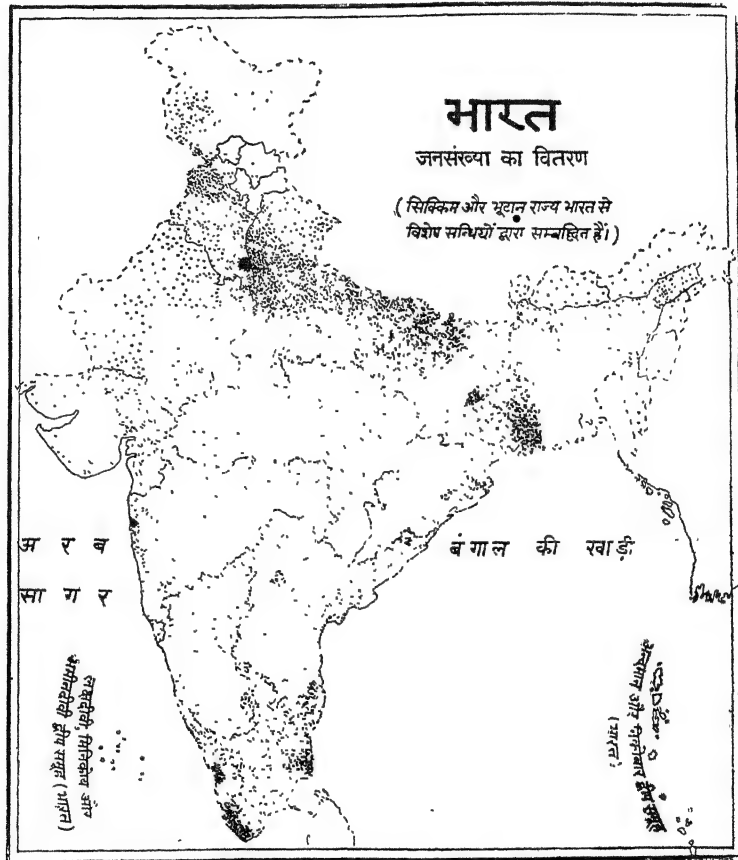
चित्र २०८. भारत की जनसंख्या का वितरण

भारत का सबसे घना बसा भाग गंगा का मैदान, पूर्वी तट तथा मलाबार तट है। इन भागों में भी जनसंख्या वहीं अधिक पाई जाती है जहाँ नदियों की निचली घाटियों में मिट्टी बारीक व अधिक उपजाऊ है और जहाँ वर्षा खूब होती है। पश्चिम और मध्यवर्ती बंगाल के दक्षिणी भागों में पानी भरा रहने के कारण वहाँ दलदल रहता है जिससे मलेरिया फैला रहता है। अतः निकटवर्ती भागों की अपेक्षा जनसंख्या बहुत ही कम पाई जाती है। यही हाल हिमालय की तराई का भी है। बिहार और उत्तर प्रदेश भी अधिक घने बसे हैं किन्तु उत्तर प्रदेश के दक्षिणी और पश्चिमी भागों में बन्जर भूमि और बार-बार अकाल पड़ने के कारण जनसंख्या कम पाई जाती है।

दक्षिण के पठार की समस्त भूमि पथरीली होने अथवा जंगलों से ढकी होने और कम वर्षा होने के कारण कम घनी बसी है। उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भागों, राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी भाग और दक्षिण पंजाब में तथा नदियों के डेल्टों में जहाँ नहरों द्वारा सिंचाई करने का प्रबन्ध किया गया वहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ गया है। पश्चिमी समुद्र तट, उत्तरी गुजरात और केरल में भी जहाँ काफी वर्षा व उपजाऊ भूमि की सुविधा है, जनसंख्या बहुत घनी है।

खेती के अतिरिक्त मनुष्य अपने भरण पोषण के लिए अन्य उद्योग धन्धों में भी लगे है अतः लकड़ी चीरने या पशु चराने में जो लोग लगे रहते है उनकी जनसंख्या का घनत्व कम होता है क्योंकि एक स्थान के जंगल अथवा घास समाप्त हो जाने पर उन्हें दूसरी जगह जाना ही पड़ता है। इसी प्रकार खनिज केन्द्रों में जब तक खनिज निकलते रहते हैं जनसंख्या काफी घनी रहती है (जैसा कि बिहार और उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में है) किन्तु जब खनिज पदार्थ की कमी हो जाती है तो जनसंख्या भी क्रमशः घटने लगती है।

औद्योगिक अथवा कला कौशल वाले प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है क्योकि वहाँ कल-कारखानों में कार्य करने के लिये निकटवर्ती क्षेत्रों से मनुष्य आकर रहने लग जाते हैं। बम्बई, कलकत्ता तथा जमशेदपुर और कानपुर आदि औद्योगिक केन्द्रों की जनसंख्या इसी कारण बढ़ती जा रही है।

२. आवागमन के मार्गों की सुविधा—भरण पोषण की सुविधा के अतिरिक्त किसी स्थान में आने जाने के मार्गों की भी सुविधा होनी चाहिए। उदाहरण के लिए; गंगा के मैदान अथवा तटीय मैदानों और डेल्टा प्रदेशों में या तो नहरों, नदियों अथवा रेल मार्गो का जाल सा बिछा है और सड़कों की अधिकता है। अतः वहाँ जनसंख्या का घनत्व भी अधिक है। किन्तु पश्चिमी राजस्थान अथवा दक्षिण की उच्चतम भूमि में प्रति वर्ग मील जनसंख्या का घनत्व बहुत ही कम है क्योंकि पहले भागों में उपजाऊ भूमि की उपलब्धता की कठिनाई के अतिरिक्त बालू मिट्टी की इतनी अधिक भरमार है कि वहाँ न तो पक्की सड़कें ही बनाई जा सकती हैं और न रेलें ही, क्योंकि ग्रीष्म में जब आँधियाँ आती हैं तो मार्ग बालू से पट जाते हैं अतः आने जाने में बडी असुविधा होती है। दूसरे के भाग पथरीले होने के कारण यातायात के मार्गो का बनाना बहुत ही व्यय साध्य हो जाता है। नदियाँ भी पथरीली भूमि पर बहने के कारण नावें चलाने के योग्य नहीं रहतीं अतः जनसंख्या भी कम पाई जाती है। हिमालय पर्वतीय प्रदेशों में गहरी घाटियां, सघन जंगलों और तेज बहने वाली नदियों की अधिकता के कारण जनसंख्या की नितान्त कमी है।

३. स्वास्थ्यकर जलवायु—जनसंख्या की वृद्धि के लिये उस स्थान पर पाई जाने वाली जलवायु भी स्वास्थ्यकर होनी चाहिए। यही कारण है कि जिन भागों में अधिक वर्षा के कारण जलवायु में मलेरिया है अथवा जहाँ बुखार फैला रहता है वहाँ जनसंख्या बहुत ही कम है।

जनसंख्या का घनत्व जीवन और धन-सम्पत्ति की रखवाली और खतरे पर भी निर्भर है। जहाँ घने जंगल है और जंगली जानवर रहते हैं तथा चोर-डाकुओं का नित्य प्रति डर बना रहता है वहाँ बहुत ही कम लोग रहते हैं किन्तु जहाँ जान मान

की पूरी सुरक्षा रहती है, वहाँ अधिक मनुष्य रहना पसन्द करते हैं। भारत व पाकिस्तान की सीमा, काश्मीर व आजाद काश्मीर की सीमा और गोआ के निकटवर्ती भागों में सुरक्षा न होने से जनसंख्या भी कम पाई जाती है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में औद्योगिक नगरों में बन्दरगाहों के आसपास, नदियों की घाटियों में, समतल मैदानों में और खनिज पदार्थों में पाये जाने वाले स्थानों में जहाँ जीवन-यापन और आवागमन के साधनों के मार्गों की समुचित सुविधायें प्राप्त हैं अधिक घनत्व पाया जाता है। इसके विपरीत पहाड़ी, पठारी, रेगिस्तानी क्षेत्रों मे जहाँ जलवायु प्रतिकूल और जल का अभाव होता है घनत्व कम है। इसके अतिरिक्त भारत की कृषि-पट्टी में जनसंख्या का घनत्व बहुत ही अधिक है। यह कृषि पट्टी पंजाब के सिंचाई वाले क्षेत्र से आरम्भ होकर उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल होती हुई पूर्वी घाट के मद्रास, आंध्र, मैसूर होती हुई पश्चिमी घाट के केरल, महाराष्ट्र और गुजरात तक जाती है।

अध्याय ३६

जनसंख्या का ग्रामीण और नागरिक वितरण

(RURAL AND URBAN DISTRIBUTION OF POPULATION)

भारत सही अर्थ में ग्रामीणों का देश है जहाँ ८२·१६% (अथवा ३५·६८ करोड़) जनसंख्या गांवों में रहती है। केवल १७·८४% (अथवा ७·८८ करोड़) जनसंख्या नगरों में रहती है। सन् १६२१ में ग्रामीण जनसंख्या ८६·८% और नागरिक जनसंख्या १०·२% थी। किन्तु उसके बाद की अवधि में देश की औद्योगिक उन्नति होने से नागरिक जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सन्१६५१में यह११·३०%, १६४१ में १२·८% और १६५१ में १७·३% थी। १६६१ में ५६४,२५८ गांव तथा २,६८६ नगर और कस्बे थे।

ग्रामीण जीवन भारत में बड़ी विकसित अवस्था में मिलता है। यहाँ के गांव भारतीय संस्कृति के आधार रहे हैं। ग्रामवासियों का जीवन बड़ा ही संगठित होता है। प्राचीनकाल के गांव तो प्रायः स्वावलम्बी ही होते थे जिसमें आपसी सहयोग होता था। भारतीय गांवों का जन्म सहकारिता के आधार पर ही हुआ माना जाता है किन्तु पिछली शताब्दी से व्यक्तिवाद की भावना में वृद्धि, संयुक्त परिवार प्रणाली में विघटन, आधुनिक शिक्षा का प्रभाव, परिवहन के साधनों का विकास, नगरों में उद्योग धंधों के विकसित हो जाने के फलस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर उन्मुख होना तथा ग्रामीण कुटीर उद्योगों का विनाश आदि ऐसे आर्थिक और सामाजिक कारण रहे हैं जिनके फलस्वरूप भारतीय गांवों का प्राचीन वैभव नष्ट हो गया, यद्यपि आज भी देश की ८२% जनसंख्या इन्हीं गांवों में रहती है। प्रो० ब्लांश के अनुसार **"भारत ग्रामीण अधिवास का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है"** (India is for excellance a country of villages)।

गांवों का वितरण

गांवों में पारस्परिक संगठन और भ्रातृ प्रेम का उत्तम उदाहरण पश्चिमी भारत में देखने को मिलता है। इन भागों में घने बसाव के साथ विशाल ग्रामों की स्थापना इसलिये हुई कि पश्चिम की ओर से आने वाले आक्रमणों का सदा भय रहता था, इसलिये सुरक्षा की आवश्यकता होती थी। इसी कारण आसाम में भी ग्राम सुसंगठित मिलते हैं। यहाँ ग्राम अधिकतर पहाड़ों पर बने होते हैं क्योंकि यहाँ की निचली भूमि पर मलेरिया का प्रकोप रहता है तथा विषैले कीटाणु भी पाये जाते हैं। भारत के उत्तरी मैदान में भी सुसंगठित गांव मिलते हैं। गांव के मध्य में बहुधा एक गढ़ होता है जिसके आस-पास मकान बने होते हैं।

इनके विपरीत गंगा जमुना के दोआब में गांव बिखरे हुए तथा पृथक पाये जाते हैं। ब्लांश के अनुसार "गंगा के ऊपरी और मध्य मैदान में इस प्रकार की बात

प्राकृतिक कारणों के फलस्वरूप न होकर आपस में मिलकर रहने की भावना के फल-स्वरूप है।" यहाँ के निवासी प्राचीन काल से विभिन्न संस्कृति के लोगों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में जागरूक रहे। इसी कारण बाहर से आने वाली अनेक जातियाँ आकर बसीं और आपस में मिल कर एक हो गईं। गांवों से जितना प्रेम भारतीयों का है सम्भवत: वह अन्यत्र दुर्लभ है।

दक्षिणी भारत में गांवों का संगठन उत्तरी मैदान से भिन्न है। यहां ग्राम दूर-दूर हैं तथा वे बहुधा तालाबों के निकट पाये जाते हैं।

निम्न तालिका से स्पष्ट होगा कि ग्रामीण जनसंख्या का २६·५% भाग ५०० से कम आबादी वाले गांवों में, ४८·८% ५०० से २,००० आबादी वाले गाँवों में; १९·४% से २००० से ५००० आबादी वाले गावों में और केवल ५·३% ५००० से अधिक आबादी वाले गांवों में रहता है। ये गांव अधिकतर उत्तरी भारत में गंगा के मैदान और दक्षिण में नदियों की घाटियों तथा डेल्टा प्रदेशों में मिलते हैं। बड़े गांवों का आधिक्य उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बंगाल और मद्रास में हैं जहाँ कृषि का विकास अन्य राज्यों की अपेक्षा अच्छा हुआ है। छोटे गांव मुख्यतः राजस्थान, आसाम, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में पाये जाते हैं जहाँ जलप्रवाह प्रतिकूल अथवा शुष्कता का साम्राज्य है या भूमि ऊँची नीची अधिक है।

जनसंख्या के अनुसार गांवों का वितरण इस प्रकार है :—

	गांव	कुल जनसंख्या
१०,००० मनुष्यों से अधिक जनसंख्या	७७३	१२·२ लाख
५००० से १०,०००	३,३९६	२३·१ "
२००० से ५,०००	२६,४७५	७४·४ "
१००० से २,०००	६५,३०९	८९·४ "
५०० से १०००	११९,१९७	८३·८ "
५०० से कम जनसंख्या	३४९,५६८	२३४·१ "
योग	५६४,७१८	३५·९४ करोड़

ग्रामीण अधिवास (Rural Settlements)

ग्रामीण अधिवासों का स्वरूप विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न पाया जाता है। उदाहरण के लिए, निचले गंगा के मैदान में बड़ी और घनी ग्रामीण बस्तियाँ मुख्यतः नदियों के किनारे पाई जाती हैं, अन्यत्र ये छोटी और बिखरी हुई मिलती है, जहाँ चावल या अन्य फसलें पैदा करने की सुविधा होती है। वर्षा ऋतु में बाढ़ों तथा जल की अधिकता के कारण भूमि दलदली हो जाती है फलतः बस्तियाँ बाढ़ के मैदानों के ऊपरी भागों में बिखरी हुई मिलती हैं। प्रो० ब्लांश के शब्दों में "अधिक वर्षा और जल का अभाव बिखरी हुई बस्तियों को जन्म देता है।" इन भागों में सतह के नीचे जल की गहराई बहुत कम होती है और इसीलिए सिंचाई के लिए जल प्राप्त करने में दूसरों के सहयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। कृषकों के खेत उसकी झौंपड़ियों

के निकट ही पाये जाते हैं। इसी प्रकार की प्रविकीर्ण बस्तियाँ भारत में कोंकन तथा आसाम के वन क्षेत्रों में अथवा तराई के मैदानों में खादिर भूमि में पाई जाती हैं बंगाल डेल्टा तथा कोंकन प्रदेश में झोंपडियाँ बहुत ही कम होती हैं—६ से १२ तक तथा वे भी साधारणत: अस्थायी होती है जिनमे शुष्क मौसम में ही रहा जा सकता है। हिमालय के पहाड़ी भागों में भी प्रविकीर्ण प्रवृत्ति देखने को मिलती है। पश्चिमी राजस्थान में शुष्क जलवायु तथा जल के अभाव में गांव छोटे तथा कुछ झौंपड़ियों के समूह मात्र होते हैं क्योंकि खेत बड़े विस्तृत और बिखरे होते हैं। धरातल के नीचे जल अधिक गहराई पर मिलने के कारण सिंचाई के लिए अधिक मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है। दक्षिण के पठार पर भी प्रविकीर्ण बस्तियाँ मिलती है।

घनी ग्रामीण बस्तियाँ भारत में मुख्यत: उपजाऊ भूमि, सम धरातल तथा अधिक जनसंख्या वाले भागों में, जहाँ घनी और स्थानीय रूप से कृषि की जाती है, मिलती हैं। इस प्रकार की सघन बस्तियाँ सतलज-जमुना और जमुना-गगा के दोआबों, रोहिलखंड, मध्यवर्ती भारत के किनारों पर (खानदेश तथा रायचूर दोआब) जहाँ डाकुओं के आक्रमण का भय रहता है, पाई जाती हैं। यहाँ गाँव प्राय: एक दुर्ग के चारों ओर केन्द्रित पाये जाते हैं।

नगरीकरण (Urbanization)

विभिन्न राज्यों में ग्रामीण तथा नागरिक जनसंख्या का अनुपात १९६१ में इस प्रकार था :—

राज्य	ग्रामीण जनसंख्या (%)	नागरिक जनसंख्या (%)
आंध्र प्रदेश	८२·६०	१७·४०
आसाम	९२·५०	७·५०
बिहार	९१·५७	८·४३
गुजरात	७४·३९	२५·६१
जम्मू-काश्मीर	८३·२०	१६·८०
केरल	८४·९७	१५·०३
मध्य प्रदेश	८५·७१	१४·२९
मद्रास	७३·२८	२६·७२
महाराष्ट्र	७२·०८	२७·९२
मैसूर	७७·९७	२२·०३
उड़ीसा	९३·६७	६·३३
पंजाब	७९·९०	२०·१०
राजस्थान	८३·९५	१६·०५
उत्तर प्रदेश	८७·१५	१२·८५

प० बंगाल	७६ ८५	२३·१५
दिल्ली	११·३५	८८·६५
हिमाचल प्रदेश	९५·२७	४·७३
भारत	८२·१६	१७·८४

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत में नागरीकरण का प्रतिशत उड़ीसा में ६·३३% से लेकर महाराष्ट्र में २७·९२% है। यह असमान वितरण इस बात का द्योतक है कि नगरों का विकास बहुत अनियोजित ढंग से हो रहा है तथा नगरों में बहुत ही अधिक जनसंख्या का भार है।

भारत में १०७ बड़े नगर हैं जिनकी जनसंख्या १ लाख से अधिक है। ऐसे नगर नीचे की तालिका में बताये गये हैं (१९५१ में ऐसे नगरों की संख्या केवल ७४ थी।)

	नगर		कुल जनसंख्या	
	१९६१	१९५१	१९६१	१९५१
१ लाख से अधिक जनसंख्या	१०७	७४	३५१ ला०	२३७ ला०
५०,००० से १००,०००	१४१	१११	९६ ,,	७५ ,,
२०,००० से ५०,०००	५१५	३७५	१५६ ,,	१११ ,,
१०,००० से २०,०००	८१७	६७०	७२ ,,	१०५ ,,
१०,००० से कम	१,११०	१,८२७	९ ,,	२१ ,,
योग	२,६९०	३,०५७	७८८ ,,	६२३ ,,

भारत के नगरों के विकास सम्बन्धी मुख्य तथ्य ये हैं :—

(१) भारत के नगरों की जनसंख्या बढ़ रही है। कई नए नगरों का जन्म पिछली २–३ शताब्दियों में हो चुका है। इसका एक मात्र कारण देश में उद्योग धन्धों और व्यापार का विकास होना है। १९११ में प्रथम श्रेणी के नगरों की संख्या ५ से बढ़कर १९६१ में १०७ हो गई। इसी प्रकार इस अवधि में द्वितीय श्रेणी के नगरों की संख्या ४५ से बढ़कर १४१; तृतीय, चतुर्थ और पंचम श्रेणी के नगरों की सख्या १८१,४४२ और ४४८ से बढ़कर क्रमशः ५१५,८१७ और १,११० हो हो गई।

(२) भारत के विभिन्न राज्यों में नगरों की उत्पत्ति समान नहीं रही है। कुछ राज्यों में नगर शीघ्रता से बढ़े हैं और कुछ बहुत ही धीमी गति से। उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार और मद्रास में प्रथम श्रेणी के नगरों का विकास तीव्र गति से और बंगाल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र व बिहार में द्वितीय श्रेणी के नगरों का विकास हुआ है। छोटे नगरों के विकास में मद्रास सबसे अधिक आगे रहा है। बंगाल, बिहार और उड़ीसा और महाराष्ट्र व पंजाब का स्थान इसके पीछे है।

(३) भारत में जनसंख्या बढ़ रही है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा।

भारत के बड़े नगरों की जनसंख्या (लाखों में)

नगर	१८९१	१९०१	१९११	१९२१	१९३१	१९१४	१९५१	१९६१
कलकत्ता + हावड़ा	८·६	११·७	१२ ६	१२·८	१३·८	१४ ८	४५·७	३४·३
बम्बई	८·२	७ ७	९·७	११·७	११·६	१६·९	२८·३	४१·५
मद्रास	४·५	५·०	५·१	५ २	६·४	७·७	१४ १	१७ २
हैदराबाद	४ १	४·४	५·०	४·०	४ ६	७·३	१०·८	१२·५
दिल्ली	१·९	२·०	२ २	२·४	४·४	५·२	१३ ८	२३·५
अहमदाबाद	१·४	१·८	२·१	२·६	३·१	५·९	७·९	११·४
लखनऊ	२·६	२·५	२·५	२·४	२·७	३ ८	४·९	५·९
अमृतसर	१·३	१·६	१·५	१·६	२·६	३·९	३·२	३·७
कानपुर	१·९	२·०	१·७	२·१	२·४	४·८	७·१	८·९
नागपुर	१·१	१·२	१·०	१·४	२·१	३·०	४·४	६·४
वाराणसी	२·२	२·१	२·०	१·९	२·०	२·६	३·६	४·७

बृहत् कलकत्ता, बृहत् बम्बई, मद्रास, हैदराबाद, अहमदाबाद, बंगलौर, नई दिल्ली आदि नगरों में मिलाकर संपूर्ण भारत की नागरिक जनसंख्या का $\frac{१}{२}$ से अधिक निवास करता है।

भारत में नागरीकरण की विशेषतायें और प्रभाव

यद्यपि भारत को औद्योगीकरण के पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हुए किन्तु उसमें होने वाली बुराइयाँ अवश्य देखने में आई हैं। सभी बड़े-बड़े नगरों मे गन्दी बस्तियाँ, रहने के स्थानों का नितान्त अभाव, बेरोजगारी का भीषण भूत, कारखानों में कार्य सम्बन्धी बुरी दशायें. आमोद-प्रमोद के साधनों की कमी तथा स्वच्छता का अभाव पाया जाता है। भोजन अस्वास्थ्यकर और पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त नागरीकरण सम्बन्धी निम्न बातें अवश्य दृष्टिगोचर होती हैं :—

(१) भारत के कुछ नगरों में विश्व के बड़े औद्योगिक नगरों की अपेक्षा भी जनसंख्या का घनत्व अधिक पाया जाता है। उदाहरण के लिये जहाँ फिलाडेल्फिया में प्रति वर्ग मील पर १५,१००, न्यूयार्क में २४,९०० और शिकागो में १६,४०० व्यक्ति रहते हैं वहाँ कलकत्ता में २४,४००; बम्बई में ४८,४००; मद्रास में २२.३०० और अमृतसर में २४,८०० व्यक्ति रहते हैं।

(२) यद्यपि नगरों में रहने के लिये मकानों की कमी है किन्तु अधिकांश जनसंख्या एक कमरे वाले घरों में ही रहती है जिनकी लम्बाई-चौड़ाई १२ × १५ और १० × १० फुट तक की होती है। यदि एक कमरे में निवासियों का औसत २·५ व्यक्ति भी लिया जाय तो इस दृष्टि से बम्बई में लगभग ९६% मकानों में. अधिक

जनसंख्या रहती है। बम्बई नगर में मकानों की दशा बड़ी ही खराब है। बायकला में ९९%; सिवड़ी में ८९%, मेजैगाँव और परेल में ८८% और नागदबा में ८७ निवासी एक ही कमरे वाले घरों में निवास करते हैं। लखनऊ में ऐसे लोगों की संख्या ५% और कानपुर में ६३% परिवार एक ही कमरे वाले घरों में रहते हैं। कलकत्ता की औद्योगिक जनसंख्या की आधी प्रति कमरे पीछे ६ से १२ की सख्या रहती है। १९६१ में प्रति घर पीछे ५·८ व्यक्ति रहते थे। अनुमान लगाया गया है समस्त भारत में लगभग ६० लाख घरों की कमी है।

"नगरों की छोटी और गन्दी बस्तियों में भारत की अधिकांश मानवता निवास करती है। इन्हीं घरों में वे जन्म लेते रहते हैं, खाते पीते हैं और मर जाते हैं"। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि भारत में नगरों में भवन निर्माण का कार्य सुनिश्चित योजनाओं के अनुसार ही हो। ग्रामीण क्षेत्रों का नगरीकरण और नागरिक क्षेत्रों का ग्रामीणीकरण किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

नगरों की स्थापना के कारण

किसी स्थान पर नगर यों ही नहीं बन जाते। कई कारण नगरों को जन्म देने में सहायक होते हैं। यहाँ यही बात बताई गई है कि किसी स्थान विशेष में नगरों की उत्पत्ति क्यों हो जाती है ?

(१) **व्यापार की मण्डियाँ** स्वाभाविक रूप से ही बड़े नगर बन जाते हैं क्योंकि वहाँ व्यापार अधिक होने के कारण बाहर से लोगों की आमदरफ्त अधिक होती हैं अतः जनसंख्या क्रमशः बढ़ती जाती है। नागपुर, हापुड, ब्यावर, कानपुर आदि इसके उदाहरण हैं।

(२) **जो स्थान किसी व्यापारिक मार्ग** पर सड़कों अथवा रेलों के जंकशन या नदियों के संगम अथवा घाटियों की तलैहटी में स्थित होते हैं वे बहुत ही शीघ्र नगरों में बढ़ जाते हैं। जैसे श्रीनगर, इलाहाबाद, अजमेर, पटना, दिल्ली, जबलपुर आदि।

(३) **औद्योगिक केन्द्र**—जिन स्थानों पर कोई बड़ा कारखाना अथवा बहुत से धन्धे चलते हैं वहाँ लाखों मजदूर तथा अन्य व्यापारी आकर रहने लगते हैं और धीरे-धीरे वह स्थान नगर में परिवर्तित हो जाता है।

भारत में सूती, ऊनी कपड़े, खेल का सामान, काँच, रासायनिक पदार्थ, सीमेंट, लोहे और इस्पात आदि के उद्योग के विकास के कारण ही उत्तर प्रदेश में फिरोजाबाद, कानपुर, अलीगढ़, मुरादाबाद, आगरा, गुजरात में राजकोट, ओखा, अहमदाबाद, बड़ौदा, बंगाल में टीटागढ़, बर्नपुर, रानीगंज, कानकिनारा, बजबज, कमरहाटी, नैहाटी, हावड़ा; पंजाब में अमृतसर, मध्यप्रदेश में जबलपुर, कटनी, बिसरा, ग्वालियर और बिहार में जमशेदपुर आदि नगरों का विकास हुआ है।

इन औद्योगिक नगरों के स्थापन में खाद्य सामग्री की उपलब्धता का कोई विचार नहीं रखा जाता क्योंकि यह सामग्री दूर के स्थानों से मँगवाई जाती है। औद्योगिक केन्द्र या तो कच्चे माल की निकटता के स्थान पर (डिंडीगल, बिसरा, शोलापुर) या कोयले की खानों के निकट (बर्नपुर, जमशेदपुर) या बन्दरगाहों के

निकट निर्यात सुविधाएँ मिलने के कारण (कलकत्ता, ओखा) या रेल मार्गों के निकट स्थापित हो जाते है।

(४) **तीर्थ और धार्मिक स्थान**—जिन स्थानों में तीर्थ होने के कारण प्रति-वर्ष हजारों यात्री आते-जाते है तो उनकी सेवा-सुश्रुषा और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अन्य लोग भी आकर वहाँ रहने लगते है। इस प्रकार स्थायी रूप से वहाँ की जनसंख्या बढ़ जाती है। गया, पुष्कर, हरिद्वार, वृन्दावन, मथुरा, प्रयाग, नाथ-द्वारा, पुरी, मदुराई, वाराणसी, नासिक, तंजौर, तिरुचिरापल्ली आदि इसके मुख्य उदाहरण है।

(५) **खनिज पदार्थ**—जिन क्षेत्रों में खानें अधिक होती हैं वहाँ खनिज निका-लने के लिए अन्य प्रान्तों से मजदूर आदि आकर बस जाया करते हैं। ऐसे स्थान शीघ्र ही नगर बन जाते हैं। रानीगंज, धनबाद, कोलार, आसनसोल, सांभर आदि मुख्य खनिज केन्द्र है।

(६) **स्वास्थ्यवर्धक स्थान**—पहाड़ों पर अथवा समुद्र के किनारे प्राकृतिक सुन्दर स्थानो की जहाँ प्रतिवर्ष ग्रीष्मकाल मे हजारों व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ करने अथवा घूमने जाते है वहाँ भी धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ जाया करती है। उत्तरी भारत में डलहौजी, उटकमण्ड, पंचमढ़ी, राची, नैनीताल, आबू, शिमला, दार्जिलिंग, मंसूरी आदि प्रमुख सैर करने के स्थान हैं। इसी प्रकार दक्षिणी भारत में महाबलेश्वर, नीलगिरी पहाड़ियों पर कुनूर, कोदाईकैनाल और उटकमंड स्वास्थ्यवर्धक स्थान है।

(७) **शिक्षा केन्द्र**—जिन स्थानों में शिक्षा के लिए बड़े विश्वविद्यालय अथवा कालेज होते हैं वहाँ भी नगर उत्पन्न हो जाया करते हैं। आगरा, अलीगढ़, वाराणसी, पटना, लखनऊ आदि इसके उदाहरण हैं।

(८) **राजधानी**—जो स्थान किसी प्रान्त अथवा राज्य का शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्था करने का केन्द्र स्थल होता है वहाँ दफ्तरों आदि में कार्य करने के लिये बड़ी संख्या में लोग एकत्रित हो जाते हैं। जयपुर, लखनऊ, नागपुर, चन्डी-गढ़, ग्वालियर, देहली इत्यादि नगरों के बड़ा होने का यही कारण है।

(९) **सैनिक केन्द्र**—जो स्थान सामयिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं अथवा जहाँ फ़ौजी छावनियाँ रहती हैं अथवा जहाँ प्राचीनकाल में किले आदि बनाये गये थे वे स्थान सुरक्षित होने के कारण नगरों में बदल जाते हैं। महू, अम्बाला, चित्तौड़, नसीराबाद, मेरठ, जैसलमेर, गवालियर, पूना, देहरादून आदि इसीलिये प्रसिद्ध हैं।

(१०) **बन्दरगाह**—समुद्र तट पर स्थित होने के कारण कई स्थान देश के आयात और निर्यात व्यापार में अधिक भाग लेते हैं। अतः ऐसे स्थान शीघ्र ही व्यापारिक केन्द और बन्दरगाह बन जाते हैं जहाँ विदेशों से जहाज आकर ठहरते हैं। मद्रास, बम्बई, कोचीन, गोआ, कोजीखोड, विशाखापट्टनम आदि ऐसे बन्दरगाह हैं।

भारत के प्रसिद्ध व्यवसायिक केन्द्र (Trade Centres of India)—

(क) बिहार के नगर

(१) पटना (३६२,८१७)—यह बिहार की राजधानी है और गंगा के दाहिने किनारे पर लगभग नौ मील तक फैला हुआ है। इसमें पटना शहर, बाँकीपुर और नया पटना शामिल है। पटना का महत्व इसकी स्थिति के कारण है। यह ठीक उस जगह पर है जिसके विपरीत गण्डक गंगा से मिलती है। दोनों नदियाँ सोन और घाघरा इसके पश्चिम में गंगा से मिलती हैं। इसलिये यह शहर जलपथ का एक प्रमुख केन्द्र है और रेल बनने के पहले यह एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। रेल के बन जाने से इस शहर का महत्व कम हो गया है। लेकिन सन् १९१२ ई० में राज्य की राजधानी बनने के कारण इसके राजनीतिक महत्व की वृद्धि हुई तभी से यह फिर अपनी नष्ट समृद्धि को पुनः प्राप्त कर रहा है। पटना में एक यूनिवर्सिटी है। यहाँ सरकारी अफीम के कारखाने तथा चीनी और बिजली के बल्ब बनाने के कारखाने भी हैं। यह प्रसिद्ध व्यापारिक मन्डी भी है।
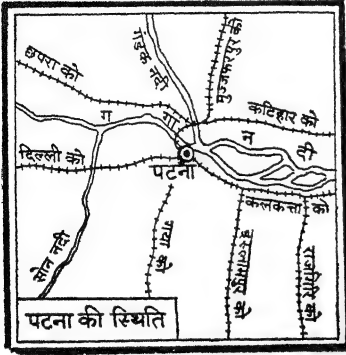
पटना की स्थिति

चित्र २०९. पटना

(२) गया (१,५०,८८४)—यह फल्गू नदी पर स्थित है और पटना से ५७ मील दक्षिण में है। यहाँ विष्णुपद का मन्दिर है जो हिन्दुओं का तीर्थस्थान है। बहुत से हिन्दू यहाँ श्राद्ध करने के लिये आते हैं। पितृपक्ष में यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। रेल से भले प्रकार सम्बन्धित होने के कारण खेती से उत्पन्न होने वाली चीजों का यह व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ पर रुई और जूट की एक मिल भी है। यह पत्थर तथा पीतल के बर्तन, दरियाँ और कम्बल के लिये प्रसिद्ध है।

(३) भागलपुर (१,४३ ९९४) - यह गंगा के दाहिने किनारे पर स्थित है और भागलपुर जिले तथा डिवीजन का प्रमुख नगर है। यह प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र भी है। यहाँ अनेक तेल और आटे की मिलें हैं। इसके पास ही चम्पा नगर है जो टसर और वफ्ता कपड़ों के लिये मशहूर है। यहाँ रेशम का एक सरकारी कारखाना भी है। यहाँ भी एक विश्वविद्यालय है।

(४) मुँघेर—जहाँ पर खड़ग नगर के पहाड़ समाप्त होते हैं वहीं गंगा के दाहिने किनारे पर यह स्थित है। इन पहाड़ियों के कारण गङ्गा का बहाव दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पूर्व को हो जाता है। यहाँ गङ्गा नदी पहाड़ी के उत्तर होकर मुड़ती है। यवन शासन-काल में यह अपनी स्थिति के कारण ही एक महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ पर टोबैको मेन्युफेक्चरर्स कम्पनी है जो कि संसार की सबसे बड़ी तम्बाकू की कम्पनियों में गिनी जाती है। शहर में पिस्तौल, बन्दूक और तलवारें बनती हैं। सन् १९३४ में एक भयानक भूकम्प हुआ था जिसके कारण शहर को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी।

(५) मुजफ्फरपुर (१,०८,७५९)—यह बुड्ढी गण्डक के किनारे पर स्थित है और मुजफ्फरपुर जिले के और तिरहुत का प्रमुख नगर है। इसके आस-पास की

भूमि बहुत उपजाऊ है। रेलों का यह प्रमुख केन्द्र है। आम और लीची के लिए यह नगर प्रसिद्ध है।

(६) **जमशेदपुर** (३,३२,१३४)—भारत का सबसे प्रमुख औद्योगिक नगर है। यहाँ टाटा लोहे व स्पात का विश्वविख्यात कारखाना है।

(७) **रांची**—बिहार के दक्षिणी भाग में पहाड़ी पर बसा है। जलवायु स्वास्थ्यवर्धक होने के कारण यह भ्रमणस्थल भी है। बिहार की ग्रीष्मकालीन राजधानी भी यहीं है। यहाँ अब एक विश्वविद्यालय भी स्थापित किया गया है। यहीं आदिवासियों पर अनुसंधान करने वाली संस्था भी है।

(ख) पश्चिमी बंगाल के नगर

(१) **कलकत्ता** (२९,२६,४९८)—यह हुगली नदी पर बंगाल की खाड़ी से ८३ मील पर स्थित है और बङ्गाल की राजधानी है। भारतवर्ष का यह सबसे बड़ा प्रसिद्ध बन्दरगाह है। कभी-कभी यह महलों का शहर (City of Palaces) कहलाता है क्योंकि इसकी इमारतें बहुत सुन्दर बनी हुई हैं। कलकत्ता यूनिवर्सिटी भारत के शिक्षा संस्थाओं में सर्वश्रेष्ठ है। हावड़ा कलकत्ता से एक सुन्दर पुल द्वारा मिला है इसलिये उसका एक भाग समझा जाता है।

इसकी उन्नति का प्रमुख कारण इसका व्यापार है जो कि इसकी प्राकृतिक स्थिति के कारण दिन प्रतिदिन बढ़ता रहा है। पूर्वी किनारे पर यह एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक बन्दरगाह है जिसके आस-पास का पृष्ठ-देश बहुत ही धनी तथा घना बसा हुआ है। पहले यातायात का साधन जल था किन्तु अब सड़कों और रेलों द्वारा अच्छी तरह सम्बन्धित हो गया है। फलतः यह एक प्रमुख व्यवसायिक केन्द्र बन गया है।
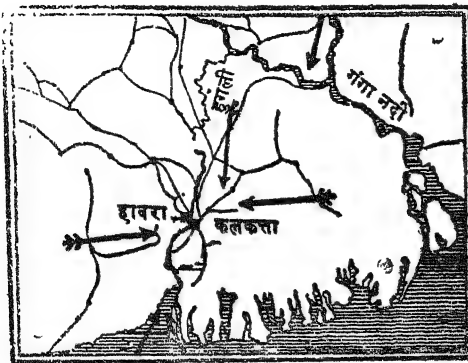
चित्र २१०. कलकत्ता की स्थिति

कलकत्ते की समृद्धि का प्रमुख कारण जूट का व्यवसाय है। रानीगंज के कोयले की खानों की निकटता, नदियों द्वारा यातायात के सस्ते साधन और निकट पाये जाने वाले कच्चे मालों ने इसे जूट के कारखानों का प्रमुख नगर बनाने में बड़ी सहायता दी है। नगर और इसके आस-पास जूट के तैयार माल के प्रस्तुत बाजार हैं। इस शहर में तथा इसके आस-पास बहुत-सी कपड़े की मिलें, दवाइयों के कारखा, कागज की मिलें, साबुन के कारखाने, काँच और इन्जीनियरिङ्ग के

कारखाने, बर्तन बनाने के कारखाने, चमड़े, कपड़े, ग्रामोफोन, दियासलाई और बिस्कुट आदि चीजों के कारखाने खुल गये हैं।

कलकत्ता भौगोलिक स्थिति का एक अच्छा उदाहरण है। इसकी उन्नति की प्रमुख सुविधायें अब नहीं हैं। आजकल के सामुद्रिक जहाज कलकत्ते तक नहीं पहुँच सकते। मामूली आकार के जहाज के पहुँचने के लिए भी इसके बन्दरगाह को गहरी और मिट्टी जमने से साफ रखना पड़ता है। लेकिन धन और इञ्जीनियरिंग कुशलता से मनुष्य कलकत्ते की उन्नति की रक्षा इन प्राकृतिक रुकावटों के विरुद्ध भी सफलतापूर्वक कर रहा है।

(२) **रानीगंज**—यद्यपि यह बहुत छोटा नगर है लेकिन कोयले की खानों के कारण बहुत प्रसिद्ध है। सस्ता कोयला होने के कारण यहाँ बहुत से कारखाने खुल गये हैं। जैसे मिट्टी के बर्तन, ईंट, कागज आदि के कारखाने। इनके लिये कच्चा माल आस-पास के जिलों से मिलता है।

(३) **आसनसोल** (१०३,६५६)—यह प्रमुख रेलवे जंक्शन है और कोयले की खानों का केन्द्र है। यह रानीगंज के कोयले के क्षेत्र के बीच स्थित है। इससे तीन मील की दूरी पर **इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी** का बहुत बड़ा कारखाना बर्नपुर में है।

(४) **श्रीरामपुर**—हुगली नदी पर कलकत्ते से १२ मील उत्तर की ओर स्थित है। यह एक औद्योगिक केन्द्र है। यहाँ रूई, जूट और धान कूटने की मिलें हैं। यहाँ कागज का भी एक मिल है।

(५) **दार्जिलिंग**—यह बंगाल की ग्रीष्मकालीन राजधानी और पहाड़ी रेल का अन्तिम स्टेशन है। यहाँ चाय और नारंगी के बगीचे बहुत अधिक हैं। यहाँ से हिमालय की ऊँची चोटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(६) **बाटा नगर**—हुगली पर स्थित है। यहाँ भारत भर में प्रसिद्ध 'बाटा शू' कम्पनी का कारखाना है जहाँ चमड़े तथा कपड़े के जूते, चप्पल आदि बनाये जाते हैं।

(ग) उड़ीसा के नगर

(१) **कटक** (१४६,५६०)—यह पहले उड़ीसा की राजधानी था। यह महानदी के डेल्टे के सिरे में है और कलकत्ते से २५ मील दूर है। प्राचीनकाल में गढ़ बनाने के लिए यह एक अच्छा स्थान था। यह नगर कलकत्ता और मद्रास के बीच जाने वाली रेल की मुख्य लाइन पर है और चाँदबाली से एक नहर-द्वारा इसका सम्बन्ध है। यह नहर कलकत्ता से भी कटक का सम्बन्ध स्थापित करती है। सोने और चाँदी के काम के लिए यह नगर प्रसिद्ध है। सींग की चीजें और काँसे की चीजें यहाँ बहुत अच्छी बनती हैं। यहाँ पर लकड़ी का व्यापार बहुत होता है जो पास-पड़ोस के राज्यों के जंगलों में पायी जाती हैं। यहाँ खिलौने, लाख की चूड़ियाँ, जूते आदि भी अच्छे बनते हैं।

(२) **पुरी**—यह नगर समुद्र के किनारे बसा हुआ है। यहाँ का जगन्नाथजी का मन्दिर सर्वप्रसिद्ध है और रथ-यात्रा के उत्सव में हजारों यात्री यहाँ आते हैं। यह हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ पीतल, चाँदी और सोने के गहने बनते हैं।

(३) **सम्बलपुर**—यह महानदी पर स्थित है। इसके निकट ही हीराकुंड योजना का निर्माण कार्य चल रहा है। यहाँ लकड़ी का व्यापार अधिक होता है। यह नगर सूती और रेशमी वस्त्र बनाने के लिए प्रसिद्ध है।

(४) **भुवनेश्वर**—यह उड़ीसा की राजधानी, उसका प्रसिद्ध हवाई अड्डा और धार्मिक स्थान है। इसके निकट ही जैन साधुओं की गुफाएं हैं। यहीं लिंगराज का प्रसिद्ध मन्दिर है।

(५) **बालासोर**—हुगली नदी के किनारे पहले एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह था किन्तु अब नदी की गहराई घटने और किनारे की रेलवे लाइन बन जाने के कारण इसका महत्व घट गया है।

(घ) उत्तर प्रदेश के नगर

(१) **इलाहाबाद** (४,३१.००७)—यह नगर संसार के सबसे पुराने नगरों में से है। यह गङ्गा और यमुना नदी के संगम पर स्थित है। इसके आस-पास का क्षेत्र उपजाऊ है और जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। प्राचीनकाल के विद्वान हिन्दुओं का यह प्रिय स्थान था और अब इसकी गणना धार्मिक नगरों में की जाती है। इसका प्राचीन नाम प्रयाग है। अकबर बादशाह ने इसका नाम इलाहाबाद रखा जिसका अर्थ है—'ईश्वर का निवास स्थान'। राज्य की प्राकृतिक स्थिति ऐसी है कि यह हमेशा महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र रहा है और राजनैतिक विषयों में यह केन्द्र रहा है। यह रेलवे मार्गों का भी एक बड़ा केन्द्र है। यहाँ पर हर वर्ष माघ महीने में माघ-मेला लगता और बारहवें वर्ष कुम्भ मेला लगता है जिसमें लाखों हिन्दू गङ्गा में स्नान करने के लिए आते हैं। यह एक व्यापारिक केन्द्र भी है जहाँ निकटवर्ती भागों से तम्बाकू, अलसी, ज्वार, बाजरा इकट्ठे किये जाते है। यहाँ तेल निकालने, आटा पीसने और काँच बनाने के कारखाने भी हैं। यहाँ भारत का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय भी है।
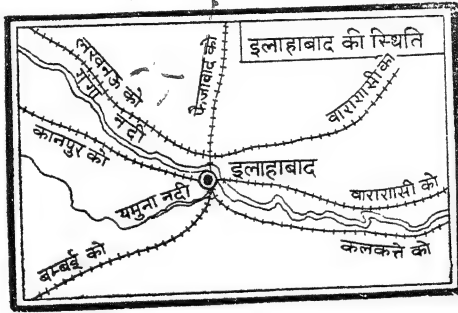
चित्र २११ इलाहाबाद की स्थिति

(२) **लखनऊ** (६,६२,१९६)—बगीचों का यह नगर (City of Gardens) गोमती नदी के दाहिने किनारे पर है। यह नगर राज्य की राजधानी तथा सबसे बड़े नगरों में है। इस नगर का निर्माण वास्तव में अवध के नवाबों ने किया था और इसीलिये यहाँ पर मसजिद, मकबरे तथा महल आदि बहुत है। चौथे नवाब के शासन-काल में यह नगर बड़ा सम्पन्न बना और यहाँ की अधिकतर शानदार इमारतें इसी नवाब के शासन-काल में बनाई गई। यहाँ पर एक यूनीवर्सिटी और एक अच्छा अजायबघर भी है। धारा-सभायें भी यहीं पर होती है। यहीं पर हाईकोर्ट भी है। यह एक बड़ा रेलवे जङ्कशन है। यहाँ पर एक बड़ी कागज की मिल भी है। यहाँ हाथी
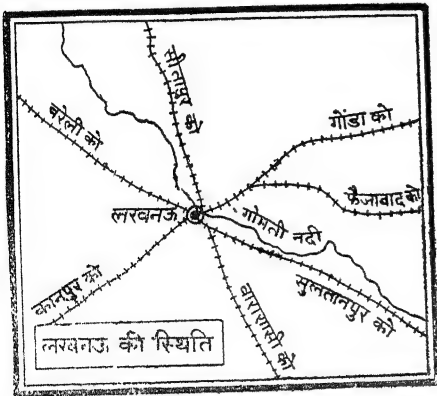
चित्र २१२. लखनऊ की स्थिति

दांत, लकड़ी पर नक्काशी, गोट-किनारी, सोने-चाँदी का काम, मिट्टी के बर्तन, जरी व चिकन का काम और इत्र आदि बनाने का काम अधिक होता है।

(३) कानपुर (९,४७,७९३)—यह नगर गङ्गा नदी के दाहिने किनारे पर बसा है। यह उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा नगर है। इसका महत्व इसके विभिन्न बड़े-बड़े कारखानों के कारण से है। कानपुर में जो रेल का पुल है, वहाँ पर सभी दिशाओं से छः रेलवे लाइन आकर मिलती हैं। यह नगर गङ्गा और जमुना के दोआब के मध्यवर्ती भाग में है। यह भारत का एक मुख्य संग्रहण और वितरण (Collecting and distributing) केन्द्र है जहाँ निकटवर्ती क्षेत्रों से गुड़, गेहूँ, कपास आदि इकठ्ठा किया जाता है। यहाँ पर १६ सूत की मिलें, तीन ऊन की मिलें और एक जूट की
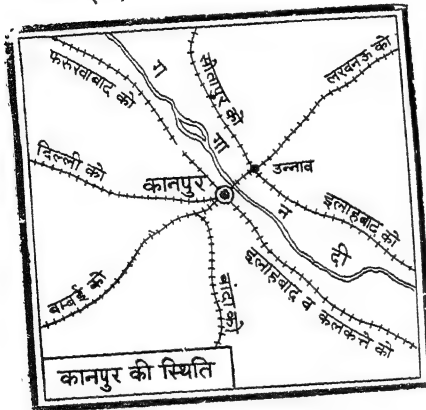
चित्र २१३. कानपुर

मिल है। इनके अलावा यहाँ पर कई चीनी की मिलें हैं। चमड़े के सामान बनाने की फैक्टरियाँ और रासायनिक पदार्थों के उत्पादन के भी कारखाने हैं। वनस्पति घी बनाने का भी कारखाना है। यहाँ साबुन, प्लास्टिक की वस्तुएँ, मोजे-बनियान आदि बनाने के भी कई कारखाने हैं।

(४) आगरा (५,०९,१०८)—यह यमुना नदी के दाहिने किनारे पर बसा है। इस नगर का निर्माण सन् १५६६ में अकबर ने किया और एक किला भी बनवाया। मुगल सम्राटों द्वारा बनाई गई इमारतों—ताजमहल, मोती मसजिद, जामा मसजिद सिकन्द्रा, एतमादुदौला आदि के लिए यह नगर प्रसिद्ध है। वास्तव में एक एतिहासिक और व्यापारिक नगर है। रेल-मार्गों से सम्बन्धित होने के कारण इसका महत्व बढ़ गया है। यहाँ तेल की मिलें, सूती मिलें, हड्डियों से सामान बनाने वाली मिलें तथा चमड़े के सामान बनाने की फैक्टरियाँ हैं। घरेलू उद्योग-धन्धों में उल्लेखनीय कम्बल बनाना, कालीन व दरियाँ बुनना तथा कासे के बर्तन बनाना है। यहाँ संगमरमर पर खुदाई का काम तथा सोने-चाँदी की तारकशी का काम बहुत किया जाता है। यहाँ भारत का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय और राधास्वामी संस्था भी है।

(५) काशी या वाराणसी (बनारस) (५,७३,५५८)—यह नगर गङ्गा नदी के बायें किनारे बसा हुआ है और इलाहाबाद की भाँति यह भी बहुत प्राचीन नगर है और आर्यो की सभ्यता का केन्द्र है। यहाँ की गंगा को हिन्दू अधिक महत्व देते हैं क्योंकि यहाँ इसका प्रवाह उत्तर की ओर है जिधर भगवान शिव का पवित्र आवास कैलाश है। हिन्दू यात्रियों के लिए यह धार्मिक केन्द्र है। यहाँ पर हिन्दू विश्वविद्यालय। यह रेल मार्गों का यह एक बड़ा केन्द्र है और रेशमी कपड़ों और जरी के काम तथा काँसे के बर्तनों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ लकड़ी के खिलौने, हाथी दाँत का

सामान, रेशम पर जरी का काम, लाख की चूड़ियाँ, जर्दा-तम्बाकू, इत्र अधिक बनाया जाता है।

चित्र २१४. वाराणसी

वाराणसी से लगभग ५ मील की दूरी पर सारनाथ का ध्वंसावेष है। यहाँ पर ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में गौतम बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। उस स्थान पर एक स्तूप भी है।
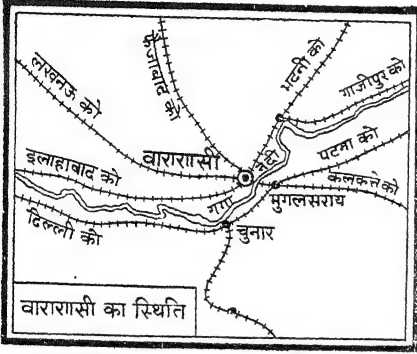
(६) **बरेली** (२,६२,२०४)—यह नगर रामगङ्गा के किनारे पर बसा है और मुगल सम्राटों के समय में फौजी नगर था। अब यहाँ पर एक फौजी छावनी है। लकड़ी के सामानों के लिये यह प्रसिद्ध है। इसके निकट एक बड़ा दियासलाई का कारखाना (W. I. M. Co.) है। जिसमें लगभग १,००० श्रमिक काम करते हैं। लकड़ी से तारपीन का तेल निकालने का एक कारखाना है। यहाँ सूती कपड़े की मिले तथा गंधा बिरोजा तैयार करने के कारखाने भी हैं।

(७) **मेरठ** (२८३,८७८)—यह प्रधान कृषि केन्द्र है और गङ्गा तथा जमुना दोआब के मध्यवर्ती भाग में बसा है। यहाँ राज्य की मुख्य फौजी छावनी है। यह एक रेल का बड़ा केन्द्र है और कृषि-गत वस्तुओं के व्यापार का केन्द्र भी है। यहाँ गेहूँ, कपास, दाल, तिलहन और गुड़ का व्यापार होता है। यहाँ लोहे की वस्तुएँ—कैंची, चाकू, छुरियाँ, सरौते आदि अधिक बनाये जाते हैं। यह उत्तर-प्रदेश की गुड़ की सबसे बड़ी मण्डी है। यहाँ शक्कर की मिलें हैं।

(८) **मुरादाबाद** (१,६८,०८१)—यह नगर रामगङ्गा नदी के किनारे पर बसा है और कृषि वस्तुओ के व्यापार का केन्द्र है। कलई किये गये काँसे के बर्तनों के लिए यह प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक सूत की मिल भी है।

(९) **मिर्जापुर** (१००,१२७)—गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर उपजाऊ भूमि की एक पट्टी में बसा हुआ है। यह व्यापार का एक बड़ा केन्द्र है विशेषकर कपास और लाख का अच्छे कालीनों, कम्बलों तथा रेशमी कपड़ों के लिए भी यह प्रसिद्ध है। ताँबे, कांसे तथा अन्य धातु के सामान भी यहाँ बनाये जाते है।

(१०) **अलीगढ़** (१,८३,७५३)—यह नगर विशेषकर मुस्लिम यूनीवर्सिटी के लिए प्रसिद्ध है। अच्छे ताले बनाने के लिए यहाँ कई फैक्टरियाँ है। यहाँ एक बड़ा डेयरी फार्म भी है जहाँ अच्छा मक्खन और पनीर बनाया जाता है। घोड़े पालने के लिये भी यह नगर प्रसिद्ध है।

(११) **गोरखपुर** (१,७६,७७४)—ताप्ती नदी के बायें किनारे पर स्थित मुख्य रेलवे स्टेशन है। यह लकड़ी और शक्कर की प्रमुख मण्डी है। यहाँ क्रेप और रुयेंदार तौलिये, सूत और ऊन मिले हुए धुस्से तथा शक्कर बहुत बनाई जाती है।

(१२) **सहारनपुर** (१,८५,०१९)—यह नगर मेरठ से लगभग ७० मील उत्तर की ओर स्थित प्रसिद्ध रेलवे स्टेशन है। यहाँ से निकटवर्ती स्थानों को सड़कें गई हैं। यहाँ दफ्ती और मोटा कागज, कपड़ा बुनने, चमड़े का सामान बनाने और लकड़ी पर नक्कासी करने का काम अधिक किया जाता है।

(१३) **फर्रुखाबाद**—गङ्गा के बायें किनारे पर स्थित प्राचीन प्रसिद्ध नगर है। यहाँ रेलों का जङ्क्शन है। यहाँ पीतल के बर्तनों के कारखाने, शीत भण्डार और तेल की मिलें है। यहाँ तांबे-पीतल के बर्तन, पर्दे, साडी-छींटों आदि की छपाई अच्छी होती है। यह आलू, तम्बाकू और खरबूजों के लिए प्रसिद्ध है।

(१४) **फिरोजाबाद**—आगरा और इटावा के बीच प्रमुख रेल का स्टेशन है। यहाँ भारत में सबसे अधिक कांच की चूड़ियाँ बनाई जाती हैं।

(१५) **हरिद्वार**—गङ्गा के किनारे भारत का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यह 'दून घाटी' का प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र भी है क्योंकि यहाँ रेल-मार्ग और स्थल-मार्ग मिलते हैं। यहाँ चाय, आलू, और पत्थर का व्यापार अधिक होता है। यहाँ गङ्गा के किनारे 'हर की पैड़ी' नामक स्थान प्रसिद्ध है जहाँ कुम्भ के समय लाखों नर-नारी स्नानार्थ आते है।

(१६)**मथुरा** (१२५,८०८)—जमुना नदी के बायें किनारे पर स्थित मुख्य रेलवे जङ्क्शन है। यह भी हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ स्थान है। यहाँ पीतल की मूर्तियाँ, शृङ्गार की वस्तुएँ, हाथ का कागज, पत्थर की वस्तुएँ और पेड़े बहुत बनाये जाते हैं।
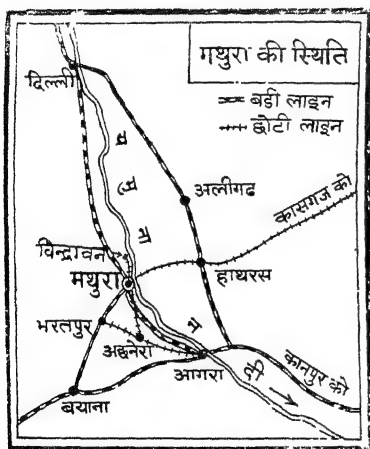
(१७) **गाजीपुर**—गङ्गा नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित है। यह भी रेलवे का जङ्क्शन है। यहाँ गुलाबजल, शक्कर, तथा अफीम बहुत बनाई जाती है।

(१८) **हापुड़**—मेरठ से लगभग २० मील दूर रेलवे जङ्क्शन है। यह मेरठ जिले की प्रसिद्ध व्यापारिक मण्डी है। जहाँ तिलहन, गुड़, गल्ले और कपास का व्यापार अधिक होता है।

चित्र २१५. मथुरा

(ङ) पंजाब के नगर

(१) **लुधियाना**—यह सतलज नदी के बायें किनारे पर बसा है। यहाँ दरियाँ, कालीन, शाल, दुशाले, साइकिलों के पुर्जे, बिजली के पंखे, मोजे, बनियान, काँच और नकली रेशम तथा ऊनी, सूती कपडों के कारखाने हैं। यह रेलों का प्रधान केन्द्र हैं। यहाँ गल्ले का अच्छा व्यापार होता है। इसी नगर द्वारा काश्मीर से व्यापार होता है।

(२) **अमृतसर** (३,७५,५४२)—यह बारी दोआब के उपजाऊ मैदान के मध्यवर्ती भाग में बसा है। इसका व्यापार तिब्बत और काश्मीर से बहुत होता है। यह नगर पंजाब का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है जो दरियों और कालीनों के लिये संसार भर में प्रसिद्ध है। यहाँ कपड़े, साबुन, मोजे, बनियान चमड़े, काँच तथा रासायनिक पदार्थों के कारखाने हैं। यहीं सिक्खों का प्रसिद्ध गुरुद्वारा और स्वर्ण-मन्दिर है।
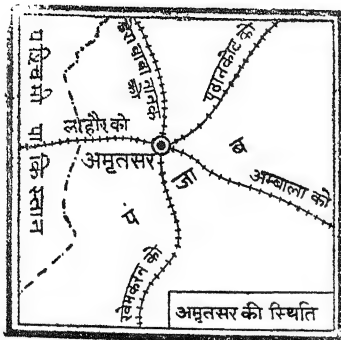
चित्र २१६. अमृतसर

(३) **जगाधरी**—पंजाब की पूर्वी सीमा पर यमुना नदी के निकट है। यहाँ कागज, पीतल के बर्तन, चीनी, वनस्पति घी, स्टार्च आदि बनाने के कई कारखाने हैं।

(४) **फिरोजपुर**—सतलज नदी के किनारे भारत का सीमावर्ती नगर है। यह एक व्यापारिक नगर और फौजी स्थान है। यह रेल मार्गों द्वारा पंजाब के अन्य नगरों से मिला है। यहाँ चाकू, छुरियाँ आदि अधिक बनाए जाते है।

(५) **जालंधर** (२,२१,६५२)—यह सतलज और व्यास के दोआब में स्थित है। यह भी रेलमार्गों का केन्द्र है। यहाँ खेल का सामान, सूटकेस, ट्रंक, बाल्टियाँ आदि बनाई जाती है। यह फौजी केन्द्र भी है।

(६) **पानीपत**—एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। यहाँ कम्बल, तांबे, और पीतल के बर्तन अच्छे बनते हैं।

(७) **चण्डीगढ़**—यह पंजाब की राजधानी है जो कालका-अम्बाला रेलमार्ग पर है। इस नगर का निर्माण बिल्कुल आधुनिक ढंग से किया गया है।

(८) **अम्बाला** (१०५,५०७)—यह नगर एक व्यापारिक मण्डी है। यहाँ कपास ओटने, काँच का सामान बनाने और वैज्ञानिक यंत्र तैयार करने के कारखाने हैं। दरियाँ और मदिरा बनाने का भी यहाँ एक कारखाना है।

(च) आसाम के नगर, गौहाटी (१००,७०२)—ब्रह्मपुत्र नदी पर बसा है और राज्य का सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र है। इधर से होकर रेल और नदी के मार्गों पर भारी आमदरफ्त होती है। इसके निकट कामाख्यादेवी का मन्दिर है जहाँ पर बहु-संख्यक यात्री जाते हैं। यहाँ चाय, रेशम और लकड़ी का व्यापार अधिक होता है।

(छ) दक्षिणी भारत के नगर

मद्रास (१७,२५,२१७)—मद्रास की राजधानी तथा मुख्य बन्दरगाह है। जनसंख्या की दृष्टि से भारतवर्ष के नगरों में इसका तीसरा स्थान है। इसकी नींव सन् १६३९ में डाली गई जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने एक फैक्टरी खोली थी और यहाँ पर एक किला बनाया था। यह नगर कलकत्ता या बम्बई से अधिक पुराना है लेकिन इसका विस्तार दोनों नगरों की अपेक्षा धीमी रफ्तार से हुआ है। इसमें कोई सन्देह नही कि कर्नाटक के उपजाऊ मैदान में इसकी केन्द्रीय स्थिति है और अन्य सभी भागों से यातायात की सुविधा है परन्तु इसके सम्बन्ध में बहुत सी असुविधाएँ भी हैं। यहाँ का बन्दरगाह अच्छा नहीं है। दोनों तटों पर कई छोटे-छोटे अन्य बन्दर-

गाहों से होड़ करनी पड़ती है। इसके निकट के स्थानों में कोई ऐसी चीज पैदा नहीं होती जिसकी विदेशी मण्डियों में बड़ी माँग हो। कलकत्ता की तरह यहाँ पर कोयला सस्ता नहीं है और न ही बम्बई की तरह यहाँ पर जलविद्युत शक्ति ही सस्ती है जिससे बड़े-बड़े उद्योगों को सहायता मिले। इसलिये इस नगर के विकास का मुख्य कारण इसका व्यवसायिक महत्व नहीं बल्कि इसका राजनीतिक महत्व है क्योंकि यह एक बड़े राज्य की राजधानी है।

सन् १९०९ में जो कृत्रिम बन्दरगाह बनाया गया था वह कंकरीट की दो दीवारों की सहायता बना हुआ है। इन दीवारों के बीच जो जगह है उसका क्षेत्रफल लगभग २०० एकड़ है और इसका प्रवेशद्वार उत्तर-पूर्व में है। भीतरी भागों में तथा तटवर्ती स्थानों में अच्छा रेलों का यातायात है। बकिंघम नेविगेशन कैनाल (Buckingham Navigation Canal) इसके उत्तर से दक्षिण की ओर २५० मील तक गई हुई है और इससे भी यातायात को सहायता मिलती है। समुद्र में तट के समीप तक बड़े-बड़े तूफान आया करते है। नगर १०मील तक समुद्र के किनारे और चार मील अन्दर की ओर फैला है। कलकत्ता और बम्बई की तरह यहाँ आबादी बहुत घनी नहीं है, इसीलिए कभी-कभी यह **सुदूर प्रसारित नगर** (A City of Respectable Distances) कहा जाता है। शिक्षा और संस्कृति का यह एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। यहाँ एक यूनीवर्सिटी भी है। यहाँ मुख्यतः सूती कपड़े और चमड़े के सामान तैयार किये जाते है। यहाँ से बाहर भेजी जाने वाली मुख्य चीजें चमड़ा, तिलहन और मूंगफली है।

मदुराई (४,२४,९७५)—वैगाई नदी पर बसा है और व्यापार का एक बड़ा केन्द्र है। सूत और रेशम के कपड़ों के लिए प्रसिद्ध है। यह एक बहुत पुराना नगर है और एक महान धार्मिक केन्द्र भी है। यहाँ पर शिवजी का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। कुछ वर्षों से पेरिहार योजना की सिंचाई के प्रबन्ध से यहाँ की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। यहाँ तांबे और पीतल के बर्तन तथा हाथ कर्घों से साड़ियाँ भी अधिक बनाई जाती है।

तिरूचिरापल्ली (२४९,९३३)—यह कावेरी नदी के डेल्टा में बसा है और एक बड़ा नगर है। यह एक पहाड़ी के चारों ओर बसा हुआ है जो २७३ फीट ऊँची है और जिसके शिखर पर एक मन्दिर बना हुआ है। यहाँ कई रेलें हैं। यह एक पुराना नगर और शिक्षा केन्द्र तथा दक्षिणी भारत का बड़ा तीर्थ स्थान है। इसे दक्षिणी भारत की 'काशी' कहते हैं। इसके उत्तर में लगभग दो मील की दूरी पर श्रीरंगम् का एक विशाल मन्दिर है जो एक हजार स्तम्भों वाले विशाल बरामदे के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक किला और फौजी छावनी भी है। यह नगर सिगार बनाने के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ कपड़ा बुनने की कई मिलें हैं।

चित्र २१७. मदुराई

कोयम्बटूर (२८५,२६३)—पालघाट के लगभग है और कृषि का प्रमुख केन्द्र है।

यहाँ कृषि का एक कालेज भी है। सूती कपड़ों का भी यह प्रमुख केन्द्र है। यहाँ कई सूती कपड़ों की मिलें हैं। इसके निकट एक बड़ी सिमेंट फैक्ट्री भी है। यहाँ रुई और सुपारी का बड़ा व्यापार होता है।

तंजौर (११०,६६८)—कावेरी डेल्टा के उपजाऊ मैदानों के मध्यवर्ती भाग में बसा है जो **दक्षिणी भारत का उद्यान** (The Garden of South India) कहलाता है। चोलवंश की यह राजधानी थी। यहाँ पर दो पुराने किले हैं। यहाँ का विशाल मन्दिर दक्षिण भारत का सबसे बड़ा मन्दिर समझा जाता है। यहाँ एक पुराना पुस्तकालय भी है जिसमें १८,००० संस्कृत की पाण्डुलिपियाँ हैं।

हैदराबाद (१२,५२,३३७)—भारत के घने बसे नगरों में प्रथम श्रेणी का यह नगर कृष्णा नदी की सहायक नदी मूसी के तट पर बसा है। हैदराबाद का मैदान पथरीला है और उसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से १,७०० फीट है। प्राचीन काल में राजधानी की रक्षा के लिए उससे कुछ दूर पर पहाड़ी किले थे। शहर के चारों ओर पत्थर की एक दीवार है। हैदराबाद के निकट की बस्ती सिकन्दराबाद दक्षिणी भारत की सबसे बड़ी फौजी छावनी है। शहर में ४ सूत के कारखाने हैं तथा बहुत से छोटे-मोटे उद्योग-धन्धे हैं। उसमानिया यूनीवर्सिटी में उर्दू-भाषा के माध्यम द्वारा उच्च शिक्षा दी जाती है। यह रुई के व्यापार का बड़ा केन्द्र है।
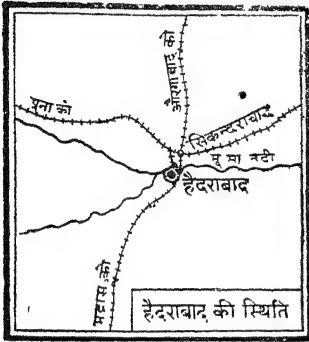
चित्र २१८. हदराबाद

बेलगांव (१२६,७२७)—दक्षिण रेलवे का प्रसिद्ध स्टेशन है। यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र और सैनिक छावनी भी है। नगर के समीप की पहाड़ी पर मुगल कालीन दुर्ग है। यहाँ ऊनी कपड़े का कारखाना है। यह नगर स्वास्थ्यप्रद जलवायु के कारण निर्धनों का महाबलेश्वर कहलाता है।

बीजापुर—यह नगर भी सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ का विश्वविख्यात गोल गुम्बज और गैलरी तथा चट्टानों को काट कर बनाये गये हिन्दु मन्दिर दर्शनीय हैं। यहाँ तेल की मिलें, बिस्कुट साबुन और हाथ करघे का उद्योग बड़ा विकसित है।

मंगलौर—यह दक्षिण की ओर एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ टाइलें बनाने, काजू के छिल्के उतारने तथा कहवा तैयार करने का उद्योग अधिक किया जाता है। इस बन्दरगाह द्वारा काजू, कहवा, गरम मसाले, और इमारती लकड़ी का निर्यात किया जाता है तथा अनाज, चीनी, मिट्टी का तेल एवं नमक आदि आयात जाते हैं।

करवाड़—यह भी मैसूर का प्रसिद्ध बन्दरगाह है जहाँ जहाज ठहरने के लिए प्राकृतिक सुविधायें हैं। इस बन्दरगाह से लकड़ी, ईंधन, बांस, प्याज, सुपारी, शकरकंद, ताजी मछलियाँ और कोयला निर्यात किया जाता है तथा चीनी, दालें, गोले का तेल और अनाज आदि आयात किये जाते हैं।

मैसूर—यह मैसूर राज्य का प्रमुख नगर है। यह चामुण्डा पहाड़ियों के तले पर दो समानान्तर पहाड़ियों के बीच में १४ वर्गमील क्षेत्र में बसा है। यहाँ रेशम के

वस्त्र, चन्दन का तेल और साबुन बनाने के बड़े बड़े सरकारी कारखाने है। यहाँ संदल की लकड़ी पर नक्काशी और खुदाई का काम तथा दरियाँ, कालीनें तथा अगरबत्ती बनाने का काम अधिक किया जाता है। यहाँ नारियल, कहवा और इलायची का बड़ा व्यापार होता है। यहाँ का विश्वविद्यालय, कृष्णा राजा सागर बांध, वृन्दावन बाग, चामुंडा पहाडी, सोमनाथ का मन्दिर, महाराजा के भव्य भवन तथा चिड़िया घर और अनेक उद्यान देखने योग्य हैं। इतने अधिक आकर्षक दृश्यों के कारण ही इस नगर को 'सैलानियों का स्वर्ग' कहते है। यहाँ दशहरा पर बड़ा उत्सव होता है।

बंगलौर (९,०७,६२७)—समुद्रतल से ३,००० फुट ऊंचाई पर २९ वर्ग मील क्षेत्र में बसा है। यह मैसूर राज्य का प्रथम बड़ा नगर और राजधानी है। यहाँ भारत की सबसे बड़ी विज्ञान की संस्था है जिसमें नये वैज्ञानिक अनुसंधान किये जाते हैं। यहाँ सूती, रेशमी तथा ऊनी कपड़े के कई कारखाने हैं। वास्तव में यह दक्षिणी भारत का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ साबुन बनाने, काच का सामान, औषधियाँ, क्रोम चमड़ा, चन्दन का तेल निकालने, बिजली का सामान बनाने तथा चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के भी कई छोटे-मोटे कारखाने हैं। यह दक्षिणी भारत का प्रसिद्ध रेलवे जंकशन है। यहाँ एक फौजी छावनी है तथा हवाई जहाज बनाने का कारखाना भी है। नगर के निकट लालबाग, टीपू सुल्तान का महल और अनेक सुन्दर इमारतें देखने योग्य हैं।
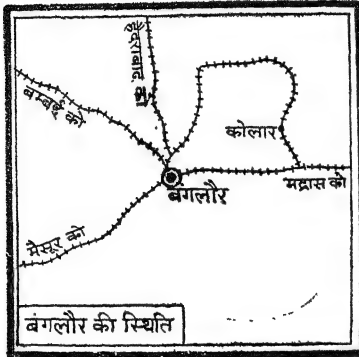
चित्र २१९. बगलोर

त्रिवेन्द्रम—सुदूर दक्षिण पश्चिम में केरल राज्य की राजधानी और प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ दक्षिण का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय ट्रावनकोर विश्वविद्यालय है। यहाँ नारियल की जटा के रेशों से तैयार की गई वस्तुयें बडी प्रसिद्ध है। यहाँ पेंसिल, हाथी-दात की वस्तुयें, सीमेंट और सुपारी बनाने के कारखाने भी हैं।
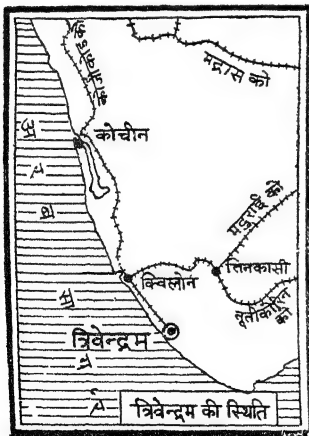
चित्र २२०. त्रिवेंद्रम

बड़ौदा (२९५,३०४)—गुजरात राज्य का प्रमुख नगर और औद्योगिक केन्द्र है। यह पश्चिमी रेलवे का मुख्य नगर है जो बम्बई और अहमदाबाद से रेल द्वारा जुड़ा है। यहाँ सूती, रेशमी कपड़ों तथा रासायनिक पदार्थों के कारखाने हैं। यह कपास की बड़ी मण्डी भी है। यहाँ सियाजीराव विश्वविद्यालय है।

शोलापुर (३,३७,५४४)—पूना के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यहाँ सूती कपड़ा और कागज बनाने की मिलें हैं। यहाँ सेना की छावनी भी हैं।

बम्बई (४१,४६,४६१)—इस नगर का महत्व मुख्यत: यहाँ के उत्तम बन्दरगाह तथा उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण है। दक्षिण के पश्चिमी तट पर और कोई अत्युत्तम बन्दरगाह नहीं है। इस बन्दरगाह के सामने थालघाट और भोरघाट हैं जिससे इस बन्दरगाह का महत्व और बढ़ जाता है। यह बन्दरगाह भारत के मध्य स्थान से जितना निकट है उतना निकट और कोई बन्दरगाह नहीं है। स्वेज नहर के खुल जाने के फलस्वरूप यह बन्दरगाह यूरोप के जितना निकट आ गया है उतना निकट करांची को छोडकर भारतवर्ष का कोई अच्छा बन्दरगाह नही है। बम्बई का भारत के मुख्य केन्द्रों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। तटीय जहाजों के लिए यह एक सुन्दर स्थान बन गया है और कपास की एक बड़ी मण्डी भी है। किन्तु
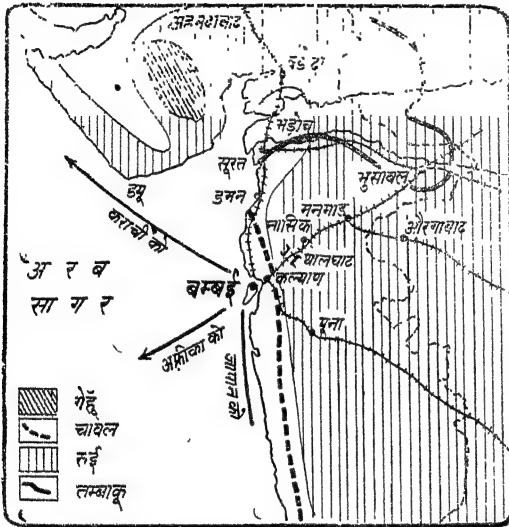
नगर का बहुत कुछ महत्व सूती कपड़ों के उद्योग के ऊपर निर्भर करता है। टाटा हाइड्रो इलैक्ट्रिक वर्क्स के कारण बिजली सस्ती है, जलवायु तर है, नगर कपास पैदा होने वाले क्षेत्रों के निकट है और कपास के बने हुए कपड़ों के लिए मण्डी तैयार मिलती है। इन सब कारणों से सूती कपडों के उद्योग का यह एक मुख्य केन्द्र बन गया है। यहाँ पर अन्य उद्योगों का भी विकास किया गया है। उद्योग-धन्धों में नगर के ३२ प्रतिशत मजदूर काम करते हैं और व्यापार में केवल १६ प्रतिशत मजदूर काम करते हैं। यहाँ के अन्य उद्योग सिनेमा व्यवसाय, कागज, ऊनी वस्त्र, वदाइयाँ, चमड़े की दस्तुयें बनाना रासायनिक पदार्थ आदि हैं। भारत का प्राचीनतम विश्वविद्यालय भी यहीं है।

पोताश्रय स्थित एलीफेन्टा द्वीप पर ब्राह्मणों के समय के गुहा मन्दिर हैं जिनकी खुदाई १८ वीं शताब्दी में की गई थी।

अहमदाबाद (११,४९,८५२) यह नगर साबरमती नदी पर बसा हुआ है और खंभात की खाड़ी से ५० मील की दूरी पर है। यह नगर गुजरात के उपजाऊ मैदान के मध्यवर्ती भाग में बसा हुआ है। कपास की खेती जिन क्षेत्रों में होती है उनके बीच में बसने के कारण यह दीर्घकाल से सूती कपड़ों के लिए प्रसिद्ध है और इस समय इसका बम्बई के बाद दूसरा स्थान है। यहाँ पर ८४ सूती कपड़े की मिलें हैं। रेशम, रेशमी कपड़े, मिट्टी के बर्तन और धातु के सामान, कागज, चमड़ा आदि के लिए भी प्रसिद्ध है। यहाँ वल्लम भाई महाविद्यालय है।

चित्र २२२ अहमदाबाद

सूरत (२८८,१६७) यह नगर ताप्ती नदी पर बसा है। यहाँ पर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सबसे पहले फैक्ट्री स्थापित की थी। कृषि-उत्पादन और सूती कपड़ों का व्यापार बहुत महत्वपूर्ण था। ताप्ती नदी के मुहाने पर अब बड़े-बड़े स्टीमर नहीं चल सकते इसलिये बन्दरगाह बड़ी अवनति पर है। इसके अलावा इसका बहुत कुछ महत्व बम्बई ने ले लिया है। नगर में ८ सूती कपड़े की मिलें है और ७ रेशमी कपड़े बनाने की फैक्टरियाँ हैं। सोने और चांदी की जरी के लिये भी यह नगर प्रसिद्ध है।

पूना (७,२१,१३४)—यह नगर पश्चिमी घाट की आड़ में बसा है और समुद्र की सतह से १,८४६ फीट ऊंचाई पर है। भोरघाट से होते हुए जो मार्ग बम्बई गया है उसके सम्बन्ध में इसकी महत्वपूर्ण स्थिति है। यह एक बड़ा फौजी छावनी है। भारत के ऋतुविज्ञान सम्बन्धी विभाग का यह मुख्य स्थान है। बम्बई और पूना के बीच १२० मील लम्बी रेल की पटरी पर गाड़ियाँ बिजली द्वारा चलाई जाती हैं। यहाँ सूती व रेशमी कपड़े और कागज की मिलें हैं तथा तांबा-पीतल के बर्तन बनाने और सलमे-सितारे, सोने-चांदी तथा हाथी दांत का काम भी बढ़िया होता है।

नागपुर (६४३,१८६)—मराठों की पुरानी राजधानी थी। यह भारत के मध्यवर्ती भाग के एक उपजाऊ मैदान में बसा है। महाराष्ट्र में यह व्यापार का मुख्य केन्द्र समझा जाता है इसका कारण यह है कि भारत के आर-पार जाने वाले दो मार्ग (एक उत्तर से दक्षिण की ओर दूसरा पूर्व से पश्चिम की ओर) यहाँ आकर मिलते हैं। इसके व्यावसायिक महत्व का कारण यह है कि यहाँ पर बहुत सी सूती कपड़े की मिल, कपास ओटने और दबाने की फैक्टरियाँ तथा मिट्टी के बरतन और काँच तैयार करने के कारखाने भी हैं। पास ही में मैंगनीज की खानें हैं। नागपुर के संतरे बड़े प्रसिद्ध हैं।

इन्दौर (३९५,०३५)—मध्य प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी है। यह कपास का मुख्य केन्द्र है। यहाँ सूती कपड़े की कई मिलें और पेच है। शिक्षा के लिये यहाँ कई हाई स्कूल तथा २ बड़े-बड़े कॉलेज हैं। यहाँ कई सुन्दर इमारतें हैं जिनमें जैनियों की नसियाँ मुख्य हैं। बनावट में शहर बम्बई से मिलता जुलता है। यहाँ चाँदी, सोना और रुई का सट्टा भी खूब होता है। यह रेलों का प्रसिद्ध केन्द्र है।

ग्वालियर (३००,५१३)—मध्य प्रदेश की शीतकालीन राजधानी है। यहाँ सूती कपड़े की मिलें, दाल, तेल, मिट्टी के बर्तन तथा चमड़े और तम्बाकू के कारखाने हैं। भारत प्रसिद्ध मंघाराम का बिस्कुट का कारखाना भी यहीं है। यहाँ किला तथा इसके भीतर गूजरी महल, सासबहू का मन्दिर, सूरज ताल आदि देखने योग्य स्थान हैं। किला लगभग १३/४ मील लम्बा और ७० फुट ऊंचा है। लश्कर ग्वालियर से २ मील दूर दक्षिण की ओर मुख्य व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र है।

अवन्ति या उज्जैन (१४४,९९६)—प्राचीन भारत का एक धार्मिक स्थान तथा विक्रमादित्य की राजधानी रहा है। यह क्षिप्रा नदी के किनारे बसा है। यहाँ कपास का व्यापार अधिक होता है। यहीं विक्रम विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है। यहाँ महाकालेश्वर का मन्दिर दर्शनीय है।

जबलपुर (३६७,२१५)—नर्मदा की ऊपरी घाटी में सतपुड़ा से उत्तर की ओर समुद्र तल से १,३४० फुट की ऊँचाई पर बसा है। इस नगर का सम्बन्ध महत्वपूर्ण मार्ग से है। ये मार्ग नागपुर के मैदान, नर्मदा की घाटी और गंगा के मैदान तक गये हैं। यहाँ से ९ मील पश्चिम की ओर नर्मदा के भारत प्रसिद्ध जलप्रपात हैं। जबलपुर में बन्दूक का कारखाना, सूती वस्त्र की मिलें, रूई के पेंच, काँच और सीमेण्ट बनाने के कारखाने हैं। यहाँ चीनी मिट्टी के बर्तन भी अच्छे बनते हैं। यह शिक्षा का केन्द्र तथा मध्य प्रदेश का प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है।

रायपुर (१३९,८८३)—नागपुर से १८० मील पूर्व में छत्तीसगढ़ के मैदान का बड़ा नगर है। यहाँ कृषि सम्बन्धी उपजों का खूब व्यापार होता है। विशाखापट्टनम बन्दरगाह से रेल द्वारा जुड़ जाने के कारण इसका महत्व काफी बढ़ गया है।

अमरावती—बरार का प्रसिद्ध नगर और कपास के व्यापार का मुख्य केन्द्र है।

पंचमढ़ी—महादेव पर्वत पर बसा है। यह राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी है।

भोपाल (२२५,४६०)—यह मध्य प्रदेश की राजधानी है जो समुद्र तल से १६५० की ऊँचाई पर बसा है। यहाँ शक्कर, दफ्ती कागज, दियासलाई और बिजली तथा भारी यांत्रिक सामान बनाने के कारखाने हैं। यह एक व्यापारिक एवं शिक्षा केन्द्र भी है।

एक लाख व इससे अधिक जनसंख्या वाले नगर
(जनगणना १९६१)

प्रदेश	जनसंख्या
आंध्र प्रदेश	
१. हैदराबाद	१२,५२,३३७
२. विजयवाड़ा	२,३३,६३४
३. गन्तूर	१,८७,०६८
४. विशाखापट्टनम्	१,८१,३८३
५. वारांगल	१,५६,१६३
६. राजमहेन्द्री	१,३०,०३०
७. कांकीनाडा*	१,२२,६५५

८.	ऐलुरू*	१,०८,३६७
९.	नैलौर*	१,०६,७९७
१०.	बान्दर (मसलीपटनम्)*	१,०१,३९६
११.	करनूल*	१,००,८४९
आसाम		
१.	गोहाटी*	१,००,७०२
बिहार		
१.	पटना	३,६२,८१७
२.	जमशेदपुर	३,३२,१३४
३.	गया	१,५०,८८४
४.	भागलपुर	१,४३,९९४
५.	रांची	१,३९,४३७
६.	मुजफ्फरपुर*	१,०८,७५९
७.	दरभंगा*	१,०३,१०७
गुजरात		
१.	अहमदाबाद	११,४९,८५२
२.	बड़ौदा	२,९५,३०४
३.	सूरत	२,८८,१६७
४.	राजकोट	१,९३,५१०
५.	भावनगर	१,७७,४८८
६.	जामनगर	१,४७,४२०
जम्मू काश्मीर		
१.	श्रीनगर*	२,८४,७५३
२.	जम्मू*	१,०८,५६२
मध्य प्रदेश		
१.	इन्दौर	३,९५,०३५
२.	जबलपुर	३,६७,२१५
३.	ग्वालियर	३,००,५१३
४.	भोपाल	२,२५,४६०
५.	उज्जैन*	१,४४,९९६
६.	रायपुर*	१,३९,९८३
७.	दुर्ग (भिलाई सहित)*	१,३३,३७१
८.	सागर	१,०४,६८०
मद्रास		
१.	मद्रास	१७,२५,२१७
२.	मदुराई	४,२४,९७५
३.	कोयम्बटूर	२,८५,२६२

४.	तिरूचिरापल्ली	२,४६,६३३
५.	सलेम	२,४६,०८३
६.	तूतीकोरिन	१,२४,२७३
७.	वैलोर	१,१३,५८०
८.	तन्जौर	१,१०,६६८
९.	नागरकोइल*	१,०६,४९७

महाराष्ट्र

१.	बृहत् बम्बई	४१,४६,४९१
२.	पूना	७,२१,१३४
३.	नागपुर	६,४३,१८६
४.	शोलापुर	३,३७,५४४
५.	कोल्हापुर	१,८७,३०६
६.	अमरावती	१,३७,८४७
७.	नासिक	१,३०,८३४
८.	मालेगाँव*	१,२१,४२७
९.	अहमदनगर*	१,१८,२६६
१०.	आकोला*	१,१५,८२०
११.	उल्लासनगर*	१,०७,७५८
१२.	थाना*	१,०१,१०३

मैसूर

१.	बंगलौर	९,०७,६२७
२.	मैसूर	२,५३,५२४
३.	हुबली	१,७०,१६३
४.	कोलार (स्वर्ण क्षेत्र)	१,४६,२००
५.	मंगलौर	१,४२,२३१
६.	बेलगाँव*	१,२५,७२७

उड़ीसा

१.	कटक	१,४६,५९०

पंजाब

१,	अमृतसर	३,७५,५४२
२.	लुधियाना	२,४४,२३८
३.	जालंधर	२,२१,९५२
४.	पटियाला*	१,२४,९४८
५.	अम्बाला*	१,०५,५०७

राजस्थान

१.	जयपुर	४,०२,७६०
२.	अजमेर	२,३०,९९९
३.	जोधपुर	२,२४,७२३

४.	बीकानेर	१,५०,४६४
५.	कोटा*	१,१६,८४५
६.	उदयपुर*	१,११,१८२

उत्तर प्रदेश

१.	कानपुर	६,४७,७६३
२.	लखनऊ	६,६२,१६६
३.	वाराणसी	५,७३,५५८
४.	आगरा	५,०६,१०८
५.	इलाहाबाद	४,३१,००७
६.	मेरठ	२,८३,८७८
७.	बरेली	२,७३,२०४
८.	मुरादाबाद	१,६८,०८१
९.	सहारनपुर	१,८५,०१६
१०.	अलीगढ़	१,८३,७५३
११.	गोरखपुर	१,७६,७७४
१२.	झाँसी	१,७०,२०६
१३.	देहरादून	१,५८,५६६
१४.	रामपुर	२,२४,३६५
१५.	मथुरा	१,२५,८०८
१६.	सहारनपुर	१,१७,२२५
१७.	मिर्जापुर*	१,००,१२७

पश्चिमी बंगाल

१.	कलकत्ता	२६,२६,४६८
२.	हावड़ा	५,१४,०६०
३.	दक्षिणी-उपनगर	१,८५,६००
४.	भटपाड़ा	१.४७,७२५
५.	खड़गपुर	१,४७,५६१
६.	गार्डेन रीच*	१,३०,६७५
७.	कमरहाटी*	१,२५,३१२
८.	दक्षिणी-दमदम	१,११,५०७
९.	बर्दवान*	१,०७,८८१
१०.	बड़ नगर*	१,०७,५४२
११.	आसनसोल*	१,०३,६५६
१२.	बाली*	१,०२,२८५

दिल्ली

१.	दिल्ली	२३,४४,०५१

*ये नगर पहली बार १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगर १९६१ में घोषित किये गये।

देश	भारतीयों की संख्या	देश	भारतीयों की संख्या
	कॉमन वैल्थ के देश		
अदन	१५,८१७	न्यूजीलैण्ड	१,८००
आस्ट्रेलिया	२,५००	न्यासालैण्ड	६,०००
ब्रिटिशगायना	२,१०,०००	रोडेशिया (उत्तरी)	३,५००
ब्रिटिश होंडूरास	२,०००	,, (दक्षिणी)	४,७००
ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो	२,०००	सारावाक	२,२००
कनाडा	३,७५०	सिंगापुर	८८,२७६
लंका	८,२८,६१६	द० अफ्रीका	३,६५,५२४
फीजी द्वीप	१,६६,४०३	सैन्ट लूसिया	३,०००
ग्रेनैडा	६,३००	सैन्ट विंसेन्ट	२,०००
हाँगकाँग	२,५००	टैंगेनिका	६६,०००
जमेका	२६,०००	ट्रिनीडाड टैबैगो	२,६७,०००
केनिया	१,२७,०००	यूगंडा	५०,०००
मलाया	७,४०,७३६	इंगलैण्ड	अप्राप्य
मॉरीशस	३,७५,६१६	जन्जीबार और पेम्बा	१५,६१२
	अन्य देश		
बहरीन	३,०००	मस्कत	१,१४५
बेलजियन कांगो	१,२२७	नैपाल	१०,४४१
बर्मा	७,००,०००	फिलीपाइन्स	१,६७५
डच गायना	७०,०००	पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका	१२,६००
इथोपिया	१,६४५	रियूनियन	२,५००
हिन्द चीन	२,३००	रूआंडा ऊरून्डी	१,६
हिन्द एशिया	३०,०००	सौदी अरब	५,०००
इटाली सुमालीलैण्ड	१,०००	थाईलैण्ड	१०,०००
कुवेत	२,५०६	सं रा० अमेरिका	५,०६३
मैडेगास्कर	१४,०००	सूडान	२,०००

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विदेशों में रहने वाले भारतीयों का ७५% से अधिक राष्ट्रमंडल के देशों में है।

इस समय अशिक्षित श्रमिकों का स्थानान्तरण विदेशों को सरकार द्वारा निषेध है। शिक्षित श्रमिकों को भी यदि वे निश्चित शर्तों को पूरा करते हैं तभी

जाने दिया जाता है। कुछ देशों में—कनाडा, सं० रा० अमेरिका, फिलीपाइन्स, थाइलैण्ड, इंडोनेशिया आदि भारतियों को निश्चित संख्या (Quota system) में ही लिया जाता है। द० अफ्रीका, द० और उत्तरी रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, लंका, न्यासालैण्ड, बर्मा, उत्तरी अमेरिका तथा यूरोप के अनेक देशों को भारतीयों का स्थानान्तरण या तो निषेध है अथवा इन देशों की राष्ट्रीय नीति इसमें बाधक हैं कुछ अन्य देशों में भारतीयों को स्थाई रूप से निवास नहीं करने दिया जाता किन्तु यदि वे उन देशों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों की शर्तों को पूरा करें तो कुछ समय के लिये उन्हें वहाँ ठहरने दिया जा सकता है। इस प्रकार के देश यूगंडा, केनिया, टैंगैनिका, नाईजीरिया, इथोपिया, रूआंडा ऊरन्डी, बेल्जियन कांगो, अदन, मारीशस, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका, जंजीबार, बहरीन, मस्कत, कुवेत, सौदी अरब, मलाया, जापान, इगलैण्ड ब्रिटिश, पश्चिमी द्वीप समूह, ब्रिटिश गायना और ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो हैं।

अधिकतर भारतवासी हिन्दमहासागर अथवा अटलांटिक महासागर के तटवर्ती देशों में ही जाकर बसे हैं जहाँ समुद्रिक मार्गों द्वारा पहुँचा जा सकता है। भारत के उत्तर में दुर्गम हिमालय तथा पूर्व की ओर शीघ्रगामी नदियों और घने वन प्रदेशों के कारण सीमावर्ती देशों को स्थानान्तरण प्रायः बिल्कुल ही नहीं हुआ है।

जो भारतीय यहाँ है वे मुख्यतः लंका के चाय, रबड़ आदि के बागों में फीजी के गन्ना तथा नारियल क उद्यानों में, मारीशस में गन्ना व चाय; ब्रह्मा में चावल के खेतों में तथा ब्रिटिश गायना में खेत मजदूर और मलाया में चाय, सोना लोहा, अल्यूमीनियम की खानों, नारियल तथा कोको के उद्यानों में श्रमिकों के रूप में काम करते हैं।

अन्तरदेशीय प्रवास (Internal Migration)

अन्तरदेशीय स्थानान्तरण अथवा प्रवास साधारणतः अधिक आर्थिक घनत्व तथा कम आर्थिक घनत्व वाले क्षेत्रों के बीच होता है। उदाहरणार्थ पश्चिमी बंगाल से बहुत से लोग ब्रह्मपुत्र की घाटी में अथवा उत्तर प्रदेश के लोग पंजाब के कृषि-प्रधान क्षेत्रों में जाकर बस गये है। इससे इन राज्यों की जनसंख्या का घनत्व पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है।

अन्तरदेशीय प्रवास के स्वरूप

अन्तरदेशीय प्रवास निम्न प्रकार का हो सकता है:—

(१) **अल्प प्रवास** (Casual or minor movements)—पड़ौस के गाँवों के मध्य की गतिशीलता का मुख्य कारण रीति-रिवाज होता है। लगभग सभी हिन्दुओं में माता-पिता, पुत्र-वधू किसी दूसरे गाँव में खोजते हैं तथा सामान्यतः गर्भावस्था में वधू मायके चली जाती है, विशेषकर पहली बार।

(२) **अस्थायी प्रवास** (Temporary)—यह नई नहरों, रेल-मार्गों, तीर्थ यात्रा, विवाह संस्कारादि अवसरों पर श्रम की माँग की पूर्ति के लिये कुलियों के प्रवास के कारण होता है।

(३) **सामयिक प्रवास** (Periodical)—यह क्षम की मौसमी मांग कारण होता है। फसल काटने के समय अर्जेनटाइना में स्पेन अथवा इटली से मजदूर जाते थे। इसी प्रकार अमेरिकी खेतों में मशीनों के उपयोग के पूर्व फसल काटने के लिये दक्षिणी रियासतों से मजदूर बड़ी संख्या में पहुँचते थे। भारत में भी फसल काटने के समय सुन्दर वन उत्तरी भारत के गेहूँ के जिलों के लिये वार्षिक प्रवास तथा बिहार और उत्तर प्रदेश में जाड़े के मौसम में सड़कों पर काम करने का उदाहरण भी मुख्य है।

(४) **अर्द्ध अस्थायी प्रवास** (Semi-Permanent)—जब एक स्थान के के निवासी दूसरे स्थान पर जीविकोपार्जन के लिये जाते हैं परन्तु अपना सम्बन्ध अपने जन्म स्थान से बनाये रखते है जहाँ वे समय-समय पर लौट आते हैं। बड़े नगरों में मिल और कारखानों में काम करने वाले श्रमिक, सरकारी दफ्तरों के क्लर्क, घरेलू नौकर तथा हर जगह पाये जाने वाले मारवाड़ी व्यापारी और साहूकार इसके उदाहरण हैं।

(५) **स्थायी प्रवास** (Permanent)---इस प्रकार का प्रवास उपनिवेश की तरहका होता है। यह उस समय होता है जब सिंचाई या सन्देश वाहन में सुधार होने के कारण या राजनीतिक परिस्थितियों के बदल जाने के कारण नयी भूमि बसने के लिये प्राप्त हो जाती है। इसका उदाहरण प० राजस्थान तथा पजाब के नहरी क्षेत्र का उपनिवेशीकरण है।

(६) **दैनिक प्रवास** (Daily)—इस प्रकार का प्रवास तब होता है जब औद्योगिक केन्द्रों में निवास करने के लिये घरों का अभाव होता है तब जनसंख्या का अधिकांश भाग ५-१० मील की दूरी से रेलों या बसों द्वारा प्रतिदिन आता है और कार्य समाप्ति पर पुनः लौट जाता है।

(७) **ग्रामीण-नागरिक प्रवास** (Rural-Urban Migration)—नगरों के विकास और विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण-जनसंख्या रोजगार के लिए नगरों की ओर आर्कषित होने लगती है और कालान्तर में जाकर वहीं स्थायी रूप से निवास करने लगती है।

अन्तरदेशीय प्रवास की दिशा

श्री एडम स्मिथ नामक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री के अनुसार "सभी प्रकार के सामानों में मनुष्य का परिवहन अत्यन्त कठिन है।" यह कथन चाहे और किसी देश के लिये सत्य न हो किन्तु यह भारत के लिये विशेष रूप से लागू होता है। भारत की अनेक जनगणना रिपोर्टों से प्रतीत होता है कि बहुत ही कम व्यक्ति अपने जन्म स्थान से अन्यत्र रहते हैं। मोटे तौर पर ९०% व्यक्ति अपने जन्म स्थान में ही निवास करते हैं। १९०१ में ९·२७% व्यक्तियों की गणना उनके जन्म स्थान से दूर हुई थी। १९११ में यह प्रतिशत गिरकर ८·७%हो गया और १९२१ में पुनः बढ़कर ९·८%हो गया। १९५१ में भी सम्पूर्ण जनसंख्या का केवल ५·५% ही अपने जन्म स्थान से दूर रहता था। ३·८ करोड़ व्यक्ति अपने जन्म स्थान से अन्यत्र रहते थे। भारतीयों का

गृह-प्रेम सामाजिक एवं आर्थिक कारणों का परिणाम है। भूमि से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित कृषक जनसंख्या की गति हीनता भी इसका कारण है जिसे जाति, भाषा, सामाजिक रीति-रिवाज तथा किसी भी प्रकार के परिवर्तन से भयभीत होने की प्रकृति ने और भी दृढ़ कर दिया है। हिन्दुओं को प्रभावित करने वाला प्रमुख सामाजिक कारण जाति व्यवस्था है जिसके कारण सामाजिक परिधि के बाहर एक मनुष्य का जीवन कठिन हो जाता है।

प्रवास की सबसे बड़ी आर्थिक बाधा तो यह है कि भारतीय मुख्यतः कृषि पर निर्भर है। भूमि के छोटे टुकड़े का स्वामित्व या उसमें रुचि होने पर अन्यत्र जीविकोपार्जन की जोखिम के भय से लोग इस साधन को छोड़ना नहीं चाहते। मलेरिया, हुकवार्म आदि बीमारियों का प्रभाव भी हानिप्रद होता है। इसके अतिरिक्त अधिकांश ग्रामीण साहूकार के पंजों में फंसे रहते हैं जो उनके गाँव छोड़ने में हर समय रोड़े अटकाते हैं।

जनसंख्या की सामान्य गति हीनता होने के उपरान्त में देश में गतिशीलता के कुछ निश्चित प्रवाह हैं। यहाँ कृषि प्रधान क्षेत्रों से औद्योगिक, खनिज और बागती खेती के क्षेत्रों को जनसंख्या का अधिक प्रवास हुआ है। आसाम, पश्चिमी बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में अथवा पंजाब में भारत के अन्य स्थानों से मनुष्य आकर बस गये हैं।

देश के विभिन्न राज्यों में यह प्रवास बहुत ही असमान है। उदाहरण के लिए आसाम, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, मैसूर, गुजरात और महाराष्ट्र में प्रवास अधिक हुआ है, जब कि मद्रास, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में कम। मद्रास में ९९·१% उड़ीसा में ९८·७%; उत्तर प्रदेश में ९७·८% और बिहार में ९८·६% जनसंख्या वहीं की रहने वाली है। जबकि आसाम में १४·८%, बंगाल में १८·५%, पंजाब में २२·४% और दिल्ली में ५८·८% जन-संख्या राज्य के बाहर की है। मोटे तौर पर भारत के अधिकांश जिलों में ९५% से अधिक ग्रामीण जनसंख्या अपने जन्म के स्थान पर ही रहती है।

(१) **आसाम**—आसाम राज्य की आबादी दूर-दूर बसी है तथा खेती के लिये प्राप्त भूमि प्रचुर मात्रा में है। वहाँ के निवासी मजदूरी पर काम करना अनावश्यक समझते हैं। अतः चाय के बागानों के लिये मजदूर अन्यत्र स्थानों से प्राप्त किये जाते हैं। ब्रह्मपुत्र की घाटी में खेती योग्य बेकार पड़ी हुई भूमि अन्य राज्यों के भूमिहीन अवासियों को आकर्षित करती है। ६०% जनसंख्या बंगाल से और शेष १५% बिहार, उड़ीसा, मैथाल, मध्य प्रदेश, राजस्थान और मद्रास से आती है। ये प्रवासी यहाँ बागों में काम करने के लिए आते हैं। अधिकतर प्रवासी या तो भूमिहीन कृषक होते हैं अथवा ऐसे व्यक्ति जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर होती है। आसाम में खेती योग्य भूमि बहुत है किन्तु कालाअन्जर एवं अन्य बीमारियों के प्रसार के कारण आवासी लोगों में वृद्धि नहीं होने पाती।

(२) **बंगाल**—बंगाल के आवासियों में लगभग ६०% बिहार, उड़ीसा के और शेष उत्तर प्रदेश, आसाम और मध्य प्रदेश के हैं। आवास के मुख्य प्रवाह ये :—(१) कलकत्ता और उसके पड़ौसी औद्योगिक क्षेत्र में बिहार, उड़ीसा तथा

उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों से; (२) वीरभूम, मालदा, दिनाजपुर और उत्तरी बंगाल के जिलों में संथाल परगना से। (३) दार्जिलिंग और जलपाईगुडी के चाय के बागानों में छोटा नागपुर तथा नैपाल से, और (४) त्रिपुरा में आसाम से।

बंगाल की भूमि की अपेक्षाकृत अधिक उर्वरता, उद्योगों का विकास और बंगालियों की शारीरिक श्रम से विमुखता आदि कारण इस आवास के लिये उत्तरदायी है। राज्य के आन्तरिक प्रवास की विशेषता यह है कि बीच के कटिबन्ध से एक ओर जनसंख्या कलकत्ता के आसपास के औद्योगिक क्षेत्रों में जाती है तथा दूसरी ओर उत्तरी बंगाल और आसाम की घाटी में।

(३) **गुजरात महाराष्ट्र**—यहाँ आवास की विशेषता यह है कि बड़े-बड़े औद्योगिक एवं व्यापारिक नगरों में—बम्बई, शोलापुर, पूना, थाना, नागपुर, बड़ौदा सूरत, अहमदाबाद आदि में पंजाब, मध्य प्रदेश और मद्रास से आने वाले लोग बस गये हैं। यहाँ आवासियों के तीन प्रवाह पहुँचते हैं : (१) यह उत्तरी पश्चिमी भारत से आता है जिसका प्रतिनिधित्व पंजाब, राजस्थान, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र करते हैं। (२) यह दक्षिण पूर्व अर्थात् मद्रास व आन्ध्र से आता है। उत्तर का प्रवाह बम्बई के निर्धनों की संख्या में वृद्धि करता है तथा दक्षिण का प्रवाह शोलापुर के मिलों में जाता है। बंगाल की अपेक्षा महाराष्ट्र औद्योगिक दृष्टिकोण से आगे बढ़ा हुआ है। उसकी भूमि की उर्वरा शक्ति कहीं कम होने से जनसंख्या का घनत्व कम है और स्थानीय श्रम कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध है अत. श्रम की माँग का अपेक्षाकृत बहुत थोडा अंश राज्य के बाहर से पूरा करना पड़ता है। (३) राज्य के अन्य भागों से—सतारा, रत्नागिरि, कोलाबा, कोनकन आदि जिलों में औद्योगिक क्षेत्रों की जनसंख्या का प्रवाह आन्तरिक प्रवास की विशेषता है।

(४) इन राज्यों के अतिरिक्त राजस्थान, पंजाब, तथा उत्तर प्रदेश के सीमा-वर्ती भागों में सिंचाई की सुविधायें तथा उपजाऊ भूमि की उपलब्धता के कारण अधिकतर कृषक-वर्ग सिंचित क्षेत्रों में जाकर बस गए हैं। ऊपरी गंगा की घाटी और जमुना-गंगा के दोआबों में भी प्रवास हुआ है। अनेक राज्यों में बिखरे हुए औद्यो-गिक केन्द्रों की ओर भी जनसंख्या आकर्षित हुई है विशेषकर मद्रास, हैदराबाद, नागपुर, जबलपुर, इंदौर, उज्जैन, ग्वालियर, कानपुर, लखनऊ, देहरादून आदि केन्द्रों में जहाँ व्यापार, कलाकौशल और प्रशासकीय सेवाओं का अधिक विकास हुआ है।

संक्षेप में आवास-प्रवास के क्षेत्रों को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है :

(१) **कम आवासी प्रदेश** (Region of Lowest Immigration)—ये ऐसे भाग हैं जहाँ (क) कृषि जनसंख्या का भार कृषि भूमि पर पहले से ही अधिक है और कृषि अपने उच्चतम बिन्दु तक पहुँच चुकी है और जहाँ भविष्य में कृषि-विकास की संभावनायें बहुत ही सीमित हैं, (ब) इन क्षेत्रों में नगरीकरण की प्रगति धीमी रही है तथा नगरों का आकार छोटा है; (ग) जनसंख्या यद्यपि कम है किन्तु कृषि के लिए अधिक भूमि अनुपलब्ध है; (घ) उद्योग-व्यापार का विकास बहुत ही कम हुआ है; और (ङ) अर्थ व्यवस्था मुख्यतः निकृष्ट प्रकार की है। इन कारणों से अन्य क्षेत्रों की जनसंख्या इन प्रदेशों की ओर आकर्षित नहीं होती।

(२) **अधिक आवासी प्रदेश** (Regions Highest Immigration)—ये वे प्रदेश हैं जहाँ (क) कृषि का विकास नयी भूमि पर होना आरंभ हुआ है, अथवा जहाँ चाय या अन्य उत्पादनों के लिए श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है; (ख) जहाँ व्यापार यातायात तथा उद्योगों के विकास के फलस्वरूप नये नगरों और औद्योगिक केन्द्रों का जन्म हुआ है।

देश के कुछ राज्यों में जनसंख्या का भार इतना अधिक है कि उसे कम करने के लिये जनसंख्या का आयोजित स्थान्तरण उन राज्यों को करना आवश्यक है जहाँ अभी भूमि पर जनसंख्या का भार कम है। उत्तर प्रदेश, बिहार, उडीसा, पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में जनसंख्या की तुलना में भूमि का अनुपात कम है। निचली गंगा की घाटी, ऊपरी गगा का मैदान, दक्षिणी किनारा, मलाबार-कोंकन तट, दक्षिणी मद्रास और मद्रास, उड़ीसा तथा आन्ध्र के तटीय भाग मान संख्या से पूर्णतः भरे हैं। इनमें १८·४ करोड़ व्यक्ति १७·६ एकड़ भूमि पर निवास करते हैं। इसके विपरीत, सुन्दरवन, तराई, पश्चिमी राजस्थान, आसाम, मध्यप्रदेश और उडीसों के विशाल क्षेत्र जन-हीन हैं। इनमें से कुछ क्षेत्रों में जल का अभाव है तो दूसरे में वनों की अधिकता अथवा अस्वास्थ्यकर जलवायु का प्रकोप। किन्तु यदि इन भागों में भूमि को सुधारने और सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध करने, वनों को साफ कर कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाने, मिट्टी की उर्वरा शक्ति को संरक्षित रखने और सस्ती जलविद्युत शक्ति का प्रबन्ध आदि करने का प्रयास किया जाय तो इन क्षेत्रों में अधिक भार वाले क्षेत्रों से मनुष्यों का स्थानान्तरण सुगमता से किया जा सकेगा।

भारत-पाकिस्तान के बीच आवास-प्रवास

१५ अगस्त, १९४७ में जो देश का विभाजन क्रमशः भारत और पाकिस्तान के रूप में हुआ उसके फलस्वरूप पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान में अन्त तक सब मिला कर ८८·५७ लाख विस्थापित व्यक्ति भारत में आये। इनमें से ४७·४० लाख पश्चिमी पाकिस्तान और शेष पूर्वी पाकिस्तान से आये। पश्चिम की ओर से आने वाले शरणार्थी मुख्यतः पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में तथा सिन्ध से आने वाले गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और राजस्थान में बसाये गये जब कि पूर्व की ओर से आने वाले मुख्यतः पश्चिमी बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, अंडमान-नीकोबार में बसाये गये।

पुनर्वास योजनायें

विस्थापितों की पुनर्वास योजना में प्रधानतः निम्नलिखित बातें सम्मिलित की गई है :—

(१) विस्थापित व्यक्तियों को मकान बनाने और खेती करने के लिये भूमि तथा कृषि-प्रसाधन खरीदने और अन्य व्यवसाओं के लिये ऋण।

(२) भूमि विकास और नई भूमि को कृषि के योग्य बनाना और विकसित भूमि का विस्थापितों में वितरण।

(३) विस्थापितों के लिये सरकार द्वारा मकानों का बनाना।

(४) विस्थापितों के लिये नगर और बस्तियाँ बनाना।

(५) रोजगार दफ्तर द्वारा रोजगार देना।

(६) विस्थापितों को व्यवसायिक और औद्योगिक प्रशिक्षण देना।

(७) मध्यम और लघु उद्योगों तथा दस्तकारियों का विकास करना।

(८) प्रारम्भिक स्कूल, माध्यमिक स्कूल और कालेजों का निर्माण करना तथा विस्थापित विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति और निःशुल्क पढ़ाई की व्यवस्था करना।

(९) चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें देना।

पश्चिम क्षेत्र में पुनर्वास कार्य—अनुमान लगाया गया है कि पश्चिमी पाकिस्तान से लगभग ५० लाख व्यक्ति भारत आये हैं। तात्कलिक समस्या उनके भोजन, कपड़े और मकान की अनुभव की गई जिससे वे कठिनाइयों तथा बीमारियों से बच सकें। काफी मात्रा में उन्हें शरणार्थी केम्पों में बसाया गया। सबसे बड़ा कैम्प कुरुक्षेत्र में था जो लगभग ९ वर्गमील में फैला हुआ था। किसी समय उसकी आबादी तीन लाख से ऊपर थी। कुल मिलाकर २०० सहायता केन्द्र थे जिनके द्वारा लगभग १२.५ लाख विस्थापितों को निशुल्क भोजन, कपडा, शिक्षा और चिकित्सा सम्बन्धी सहायता दी गई।

भारत से जाने वाले मुस्लिम किसान पंजाब में लगभग १९ लाख हैक्टेअर भूमि छोड गये जिसमें केवल एक तिहाई सिंचाई क्षेत्र के अन्तर्गत है। किन्तु पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले सिक्खों और हिन्दुओं को वहाँ २७ लाख हैक्टेअर भूमि छोडनी पडी जिसका कम से कम दो तिहाई भाग सिंचाई से सम्पन्न था। इसी तरह शहरी क्षेत्रों से आने वाले हिन्दू शरणार्थी भारत के शहरी क्षेत्रों से जाने वाले मुस्लिमों की तुलना में अधिक सम्पन्न थे। इन हिन्दू शरणार्थियों को वहाँ लगभग ५०० करोड़ रुपये की सम्पत्ति छोड़नी पड़ी जब कि यहाँ से जाने वाले मुस्लिम केवल १०० करोड़ रुपये की सम्पत्ति ही छोड़कर गये हैं।

पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले विस्थापितों में ५० प्रतिशत ग्राम के निवासी हैं और ५० प्रतिशत शहरों के। अतः इन विस्थापितों के पुनर्वास के लिए विभिन्न तरह के व्यापक कार्यक्रम हाथ में लिये गये जैसे उन्हें खेतीबाड़ी में लगाना, भवन निर्माण, शहरी और ग्राम क्षेत्रों के लिए कर्ज, शिक्षा, व्यावसायिक और ओद्यौगिक प्रशिक्षण, निराश्रितों को आश्रय और रोजगार देने के लिए लघु उद्योगों की स्थापना।

ग्रामीण पुनर्वास पश्चिमी पाकिस्तान से आये हुए विस्थापितों के लिए निष्क्रांत और कुछ सरकारी भूमि प्राप्त की गई। बैल, चारा, बीज और पशुपालन के साधन खरीदने और मकान व कुऐं बनाने तथा मरम्मत कराने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण दिया गया। सन् १९६१-६२ तक १० लाख विस्थापित परिवारों के रूप में।

शहरी पुनर्वास जो विस्थापित कृषि कार्य नहीं जानते थे उनके लिए भी ऋण की योजनायें चालू की गईं ताकि वे शहरी क्षेत्रों में किसी भी उद्योग, व्यवसाय या पेशे में लग सकें। मध्यम श्रेणी की ४३ योजनायें तथा ४६ छोटी दस्तकारियाँ शुरू की गईं जिनमें सन् १९६१-६२ तक क्रमशः—करोड़ रुपया बाँटा गया।

पश्चिमी पाकिस्तान के शरणार्थियों के लिये १६ पूर्ण विकसित नगर तथा १३६ बस्तियाँ स्थापित की गईं। इनमें केन्द्रीय सरकार के विशेष प्रयत्नों द्वारा फरीदाबाद, राजपुरा, नीलोखेड़ी तथा हस्तिनापुर नामक नगर बसाये गये। इन नगरों तथा बस्तियों को आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने का प्रयत्न था। इस प्रकार पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों को किसी हद तक बसाया जा चुका है।

पूर्वी क्षेत्र में पुनर्वास कार्य—विभाजन के काफी पूर्व अक्टूबर १६४७ से ही पूर्वी पाकिस्तान से लोग भारत आने लगे थे जबकि नौआखाली और त्रिपुरा में साम्प्रदायिक दगे प्रारम्भ हुए थे। विभाजन के बाद स्थिति और गम्भीर हुई। कभी थोड़ी और कभी अधिक मात्रा में विस्थापित व्यक्ति कभी न समाप्त होने वाले प्रवाह की भाँति आते ही रहे। इसका एक मात्र कारण पाकिस्तान की आर्थिक और समाजिक स्थितियाँ थी। पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले विस्थापितों की संख्या ४१ लाख से कुछ ऊपर है जिनमें लगभग ७५ प्रतिशत पश्चिमी बंगाल में हैं। अब तक ६५६, ००० विस्थापित परिवारों को बसाया जा चुका है। इस पर २०० करोड़ रुपया व्यय हुआ है।

विस्थापितों की कुछ विशेष समस्या ये है :—पहली तो यह कि पश्चिमी क्षेत्र के ठीक विपरीत जहाँ विस्थापितों का आना केवल कुछ महीनों में ही समाप्त हो गया था पूर्वी पाकिस्तान के शरणार्थियों का आना विभाजन के बाद १२ वर्ष बाद अब तक समाप्त नहीं हुआ है। दूसरे, शरणार्थी केवल पूर्वी पाकिस्तान से ही आ रहे हैं। इधर से जा नहीं रहे हैं। कुछ मुसलमान जो गये भी थे, वे शीघ्र ही नेहरू-लियाकत समझौते के बाद पुनः लौट आये। तीसरी बात यह है कि जहाँ पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थी सारे भारतवर्ष में स्वयं बिखर गये, पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थी केवल बंगाल, त्रिपुरा और असम तक ही केन्द्रित रहे। अन्तिम बात यह है कि शरणार्थियों का प्रभाव कभी न समाप्त होने वाले और आकस्मिक प्रभाव के रूप में आता रहा है जिससे पुनर्वास का एक सुनिश्चित और सुदृढ़ कार्यक्रम चलना कठिन है। पूर्वी पाकिस्तान के शरणार्थियों के लिये पश्चिमी बंगाल में ६ नई बस्तियाँ—बेहाला, बोन-हुगली, फूलिया, हबरा बगायची, ग्यासपुर, हमीदपुर और खोसबाग आदि तथा ६०० कोलोनी बनाई हैं।

शरणार्थियों का आना नियमित करने के लिये सन् १६५७ के अन्त में भारत सरकार द्वारा एक प्राथमिकता की प्रणाली प्रारम्भ की गई थी जिसके अन्तर्गत शरणार्थियों को "देशान्तर-गमन प्रमाण पत्र" दिया जाने लगा। १६६३-१६६४ में एक बार फिर पूर्वी बंगाल में साम्प्रदायिक देशों की आग भड़क उठी जिसके फलस्वरूप कई लाख हिंदु, कबायली और ईसाई भारतीय क्षेत्रों में आये।

पूर्वी पाकिस्तान के विस्थापितों को बसाने के लिये गोदावरी नदी के उत्तर में (कोरापुट और कालांहाडी जिले में) उड़ीसा और मध्य प्रदेश (बस्तर जिले में) की लगभग ७७,८३० वर्ग किलोमीटर भूमि पर दंडकारण्य योजना कार्यान्वित की गई हैं। यहाँ अब तक वन प्रदेश फैले थे जिनमें आदिवासी ही रहते थे। इस भाग में न केवल वर्षा अच्छी होती है वरन् खनिज पदार्थ भी मिलते हैं किंतु जलवायु अस्वथ्यकर होने तथा यातायात की कठिनाई के कारण इस प्रदेश का विकास नहीं किया जा

सका था । किंतु अब स्वास्थ्य, कृषि, खान और यातायात विशेषज्ञों द्वारा इस योजना के विभिन्न अंगों का विकास किया जा रहा है । १९५८ में **दंडकारण्य विकास समिति** की स्थापना की गई । अब तक ६२,००० एकड़ भूमि को साफ किया जाकर उस पर ६४८७ परिवारों को बसाया जा चुका है । उमर कोट और परलाकोट में मिश्रित फार्म तथा डुमरीपत में एक फलों का फार्म स्थापित किया गया है । माना में एक मुर्गीपालन फार्म की भी स्थापना की गई है ।

अध्याय ४२

भाषायें और धर्म

(LANGUAGE & RELIGION)

भाषायें (Languages)

जिस प्रकार भारत में भिन्न भिन्न प्रकार की जातियाँ रहती हैं उसी तरह यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषायें भी बोली जाती है। उत्तरी भारत में जहाँ आर्य लोगों का आधिपत्य था वहाँ आर्य भाषाये और दक्षिण में जो आर्य सभ्यता से बिल्कुल अप्रभावित था वहाँ द्राविड़ भाषा बोली जाती थी। आज भी प्रधानतः यही क्रम है।

भारत में ८४५ भाषायें बोली जाती हैं। इनमें से ७२० ऐसी हैं जो प्रत्येक १ लाख व्यक्तियों से भी कम द्वारा व्यवहृत की जाती है तथा ६३ अभारतीय भषायें हैं। भारतीय संविधान में मान्य १५ भाषायें लगभग ३४·४ करोड़ व्यक्तियो द्वारा (कुल जनसंख्या ६१·%) बोली जाती है। १·३ करोड़ व्यक्ति (३·२%) २३ आदिवासियों की भाषाये बोलते है और लगभग १·८ करोड़ (५%) अन्य भाषायें बोलते हैं।

मोटे तौर पर भारत की भाषाओं को चार खंडों में बाँटा जा सकता है[1] :—

(१) आर्य भाषायें (Indo-Aryan)—अधिकतर सम्पूर्ण उत्तरी भारत में बोली जाती हैं ये सबकी सब प्राकृत से निकली हैं। प्रमुख आधुनिक भाषायें ये हैं :—

(१) हिन्दी विशेषकर उत्तर प्रदेश पूर्वी राजस्थान और मध्य प्रदेश में प्रचलित है, (२) पंजाबी भाषा पजाब में, (३) बंगाली भाषा बंगाल, आसाम, त्रिपुरा और मनीपुर राज्य में, (४) उड़ीसा भाषा उड़ीसा में, (५) मराठी भाषा दक्षिण के उत्तरी पश्चिमी भाग, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में, (६) गुजराती भाषा उत्तरी गुजरात, द० पूर्वी राजस्थान में, (७) बिहारी भाषा बिहार मे, (८) राजस्थानी भाषा राजस्थान में, (९) नैपाली भाषा नैपाल और तिब्बत की सीमा में, (१०) पहाड़ी भाषा उत्तर प्रदेश के नैनीताल, टेहरी-गढ़वाल, शिमला की पहाडियों, अल्मोड़ा आदि पहाड़ी जिलों, हिमाचल प्रदेश और पंजाब में, (११) उत्तरी-पश्चिमी भारत तथा पाकिस्तान में सिन्धी और पश्तो तथा बलूची भाषायें भी बोली जाती हैं। (१२) काश्मीरी भाषा काश्मीर में बोली जाती है।

(२) द्राविड़ भाषायें (Dravidian)—ये भारत की प्राचीन भाषाओं में गिनी जाती हैं। मुख्य द्राविड़ भाषा मद्रास, मैसूर, आंध्र प्रदेश और मध्य भारतीय प्रदेश

---

१. प्राचीन भारत में इन भाषाओं को बोलने वाले क्रमशः आर्य, द्रविण, निषाद और कीरात कहलाते थे।

तथा दक्षिणी महाराष्ट्र में बोली जाती हैं। इसकी मुख्य शाखायें ये हैं :—(१) **तामिल या द्राविड़** भाषा सबसे पुरानी, घनी और सुसंगठित भाषा है जो विशेषकर मद्रास राज्य में बोली जाती है। (२) **मलयालम** या **केरल** भाषा तामिल भाषा की की एक शाखा है यह मलाबार तट पर बोली जाती है। (३) **तैलगू** या **आंध्र** भाषा समुद्र के तट पर मद्रास से लेकर उड़ीसा के दक्षिणी तट तक बोली जाती है। (४) **कनाडी** या **कर्नाटक** भाषा मैसूर, आंध्र तथा महाराष्ट्र में बोली जाती है।

चित्र २२३. भारत की भाषायें

पूर्वी भारत में भी तीन द्राविड़ भाषाओं का प्रचलन है। दक्षिणी बिहार में **ओरन**, राजमहल की पहाड़ियों के दक्षिण में **माल्टो** और उड़ीसा में **कांध** या **कुई** भाषा। मध्यवर्ती भारत में **गोंड़** भाषा मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश में बोली जाती है।

(३) **आस्ट्रिक** (Austric) **या आदि निवासियों की भाषा**—इस प्रकार की भाषाओं का अधिक विकास नहीं हुआ है। ये मुख्यतः भारत के मध्यवर्ती और पूर्वी भागों में आदिवासियों द्वारा ही प्रयुक्त की जाती हैं। इस प्रकार की भाषाओं के अन्तर्गत (i) **नीकोबारी** नीकोबार द्वीप में; (ii) **संथाली** बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और आसाम के पश्चिमी भागों में; (iii) **मुंडारी**, हो, खड़िया, **भूमिज**, **गारो** आदि भाषायें बिहार और आसाम में; (iv) **कोरकू** मध्य प्रदेश और बरार में; (v) **सवारा** और **गडाबा** उड़ीसा में बोली जाती हैं। ये सब भाषायें **कोल भाषायें** कहलाती हैं।

(४) **तिब्बती-चीनी भाषायें** (Tibeto-Chinese)—**इस प्रकार की भाषायें उत्तर पूर्वी पहाड़ी भागों में मंगोलियन लोगों के वंशजों द्वारा बोली जाती हैं। ये भाषायें दक्षिणी हिमालय के ढालों से लगाकर भूटान उत्तरी बंगाल और आसाम तक बोली जाती हैं। इनके बोलने वालों की संख्या बहुत ही कम है। नेपाल और दार्जिलिंग में तिब्बत-ब्रह्मा भाषा की ही एक शाखा बोली जाती है। इसके अन्तर्गत नीवारी, आका, मीरी, मिश्मी, डफला, लेप्चा, मगारी कनावरी, किरान्ती, मनीपुरी आदि भाषायें मुख्य हैं। काश्मीर में बुरूशस्की भाषा** बोली जाती है।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार अखिल भारत में ७१% व्यक्ति आर्य भाषा बोलते हैं; २०% द्राविड़ भाषा; १·३% कोल भाषा और केवल ०·८५% व्यक्ति तिब्बत-चीनी भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

नीचे की तालिका के विभिन्न भाषाओं के बोलने वालों की संख्या दी गई है :—

भाषा	संख्या	कुल का प्रतिशत
हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी	१४,९९,४४,३११	४६·३
पंजाबी	६,३५,४४७	—
तेलगू	३,२९,९९,९१६	१०·२
मराठी	२,७०,४९,५२२	८·३
तामिल	२,६५,४६,७६४	८·२
बंगाली	२,५१,२१,६७४	७·८
गुजराती	१,६३,१०,७७१	५·१
कन्नडी	१,४४,७१,७६४	४·५
मलयालम	१,३३,८०,१०९	४·१
उड़ीसा	१,३१,५३,९०९	४·१
आसामी	४९,८८,१२६	१·५
काश्मीरी	५१,०८६	—
संस्कृत	५५५	—
योग	३२,३९,७२,६०७	१००·०

इन भाषाओं के अतिरिक्त अन्य भाषायें इस प्रकार हैं :—

मारवाड़ी	४५·१५ लाख	कुमाऊंनी	५·७१ लाख
मेवाड़ी	२०·१५ ,,	गढ़वाली	४·८४ ,,
जैपुरी	१५·८८ ,,	अजमेरी	४·६३ ,,
बागड़ी	९·२६ ,,	बृजभाषा	१·७८ ,,
छत्तीसगढ़ी	९·०३ ,,	सौराष्ट्री	१·२४ ,,
मालवी	८·६७ ,,	मेवाती	१·११ ,,
हाडौती	८·१६ ,,	निमाड़ी	१·१० ,,
सिंधी	७·४५ ,,		

ये भारत के विभिन्न राज्यों में बोली जाती है।

धर्म (Religion)

भारत में जातियों और भाषाओं की विभिन्नता के साथ साथ विभिन्न धर्म भी मिलते हैं। प्रायः लोगों का जीवन बहुत कुछ धर्म द्वारा ही प्रभावित है। वही उनका लालन-पालन, शिक्षा, रीति-रिवाज, भोजन, व्यवसाय, निवास-स्थान तथा सामाजिक वातावरण निर्धारित करता है।

१९५१ और १९६१ की जनगणना के अनुसार विभिन्न धर्मावलम्बियों की संख्या इन प्रकार है :—

धर्म	मानने वालों की संख्या (लाख में)		कुल जनसंख्या का प्रतिशत	
	१९५१	१९६१	१९५१	१९६१
हिन्दू	३,०३२	३,६६१	८४·९९	८४·००
मुस्लिम	३५४	४६९	९·९३	१०·२४
ईसाई	८२	१०४	२·३०	२·४०
सिक्ख	६२	७८	१·७४	१·८०
जैन	१६	२०	०·४५	०·४५
बौद्ध	२	३	०·०६	०·८०
पारसी	१	१	०·०३	—
आदिवासी धर्म	१७	२५	०·४७	—
अन्य धर्म	१		०·०३	—
योग	३,५६७	४,३६२	१००·००	१००·००

(१) **हिन्दू धर्म**—भारत का सबसे प्रमुख धर्म है। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अनुसार हिन्दू वह है जो भारत में उत्पन्न किसी धर्म को मानता है तथा

जो भारत में भारतीय माता पिता की सन्तान है। इस महासभा के अनुसार सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, सिक्ख, बौद्ध, ब्रह्म आदि सभी हिन्दू कहे जा सकते हैं। यह सत्य ही कहा गया है कि भाषा भारतीय लोगों को भौगोलिक समुदायों में बांटती है, धर्म उन्हें समानान्तर पर्तों में बांटता है। हिन्दू धर्म की तीन विशेषतायें हैं :—

(१) एक सर्वोच्च सत्ता तथा अनेक छोटे देवताओं मे प्रत्येक हिन्दू धर्मावलम्बी पूर्ण आस्था रखता है।

(२) इसकी प्रवृत्ति सहन शीलता की है तथा कोई भी हिन्दू किसी भी देवी या देवता विशेष की आराधना कर सकता है, उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं।

(३) यह कर्म, पुनर्जन्म और मृत्यु के बाद मोक्ष मिलने में विश्वास रखता है। गीता की यह सूक्ति "कर्मण्ये वाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन:" (Action is thy duty, Reward is not the concern) में सभी भारतीयों में मान्यता पाती है।

हिन्दू धर्म की अपनी एक विशेष सामाजिक व्यवस्था होती है जिसके मुख्य तत्व जाति समुदाय, संयुक्त परिवार प्रणाली, बाल विवाह की प्रथा तथा सार्वभौमिक विवाह प्रथा आदि हैं।

(२) **मुस्लिम** (Muslims)—इस्लाम धर्म का जन्म अरब देश में हुआ किन्तु यह भारत में १२वीं शताब्दी के लगभग उत्तर पश्चिम की ओर से आने वाले आक्रमण-कारियों द्वारा लाया गया। अतः इसका विस्तार उत्तरी पश्चिमी भारत तक ही सीमित रहा किन्तु शनैः शनैः यह गंगा की घाटी में फैल गया तथा बंगाल में भी इसने अपनी जड़ें जमालीं। प्रायद्वीपीय भारत में यह अधिक नहीं फैल सका और इसी लिए आज भी यहाँ १०-१५% से अधिक मुस्लिम नहीं हैं। इस समय मुस्लिम अधिकतर पश्चिमी भागों में ही पाये जाते हैं। विभाजन के पश्चात् इनकी संख्या भारत में केवल ३।। करोड़ ही रह गयी है।

(३) **ईसाई** (Christians)—सीरिया के ईसाई जो ईसा शताब्दी के प्रारंभिक काल में ट्रावनकोर-कोचीन में आ बसे थे, अन्य मिशनरी ईसाईयों से भिन्न हैं। रोमन कैथोलिक, ऐंग्लिकन तथा बैपटिस्ट ईसाइयों की संख्या ही भारत में अधिक है। ईसाई धर्म का विस्तार भारत में पहाड़ी जातियों तथा हिन्दुओं की निम्न जातियों में अधिक हो पाया है। इस समय ईसाइयों का केन्द्रीयकरण विशेषतः केरल मद्रास, आसाम और महाराष्ट्र में ही है।

(४) **सिक्ख** (Sikhs)—सिक्ख धर्म का जन्म १६वीं शताब्दी में वैष्णव धर्म से पृथक होकर ही हुआ। यह धर्म प्राचीन हिन्दू धर्म को एक शुद्ध धर्म के रूप में अपनाने का ही एक प्रयास था जिसने बहु-देवों, मूर्तिपूजा, जाति प्रथा, तीर्थयात्रा और पुनर्जन्म का खंडन किया। मुसलमानों की राजनीतिक क्रूरता तथा हिन्दुओं की सामाजिक क्रूरता के फलस्वरूप ही सिक्खों ने एक शान्तिमय पथ के स्थान पर एक सैनिक धर्म का अवलम्बन किया। इस धर्म के दो मुख्य सिद्धान्त हैं : लम्बे बाल रखना तथा धूम्र पान न करना। इनके पास सदैव कच्छ, कृपाण, कंघी, कड़ा और केश रहते हैं जिनसे इन्हें अन्य धर्मावलम्बियों से सरलतापूर्वक पहचाना जा सकता है। ये मुख्यतः लाहौर, काँगड़ा और पटियाला आदि बिन्दुओं को मिलाने वाले १०,०००

वर्ग मील त्रिभुजाकार प्रदेश में ही केन्द्रित थे किन्तु अब ये अधिकांशतः पंजाब में अमृत-मर के चारों ओर ही है । ये बड़े हट्टे कट्टे होते हैं और इसीलिए ये भारतीय सेना में बड़ी संख्या में मिलते है ।

(५) **जैन** (Jains)—जैन धर्म हिन्दू धर्म की ही एक शाखा मानी जाती है । इसका विकास ६वी शताब्दी में श्री महावीर द्वारा किया गया । यद्यपि यह हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को मानते हैं किन्तु ये जीवों के प्रति अहिंसा पर अधिक जोर देते है । ये अधिकांश व्यापारी और धनवान होते हैं तथा भारत में दूर-दूर तक फैले है ।

(६) **बौद्ध** (Buddhists)—यह धर्म भी हिन्दू धर्म की ही शाखा है । इसे गौतमबुद्ध ने ६ठी शताब्दी में चलाया था । इसका सबसे अधिक प्रचार गंगा की घाटी में ही हुआ । यह धर्म नीति पर अवलम्बित है । यद्यपि भारत से यह धर्म १०वीं शताब्दी के बाद से ही लोप हो गया किन्तु आज भी पश्चिमी बंगाल, आसाम, सिक्किम के पहाड़ी भागों में इसके अनुयायी मिलते हैं ।

(७) **पारसी** (Zoroastrians)—पारसी लोग भारत में ७वीं शताब्दी में फारस से मुस्लिम धर्म की क्रूरता से बचने के लिए आये और भारत के पश्चिमी तटीय भागों में बस गये । ये लोग सूर्य और अग्नि की पूजा करते हैं । ये अधिकांश व्यापारी और उद्योगी हैं । इनका सबसे अधिक केन्द्रीयकरण बम्बई नगर में है ।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के निवासियों का सम्बन्ध किसी न किसी धर्म से है । अधिकांश धर्मों का सम्बन्ध प्रमुख तीर्थ स्थानों से बताया जाता है । उदाहरणार्थ काशी हिन्दू धर्म और संस्कृति से सम्बन्धित है जहाँ अनेकों हिन्दू मन्दिर है । हिन्दुओं के लिए गंगा सबसे पवित्र नदी है जिसके तट पर मृत्यु अथवा अत्येष्टि क्रिया से आत्मा को शान्ति प्राप्त होना माना जाता है । अलीगढ़, हैदराबाद और देवबन्ध के विद्यालय मुस्लिम संस्कृति के केन्द्र है । सिक्ख, जैन और पंजाब (ननकाना साहब अमृतसर), जैनियों के राजस्थान (कोलायत, देलवाडा, ऋषभदेव पालीताना, गिरनार) तथा पारसियों के बम्बई में सांस्कृतिक केन्द्र है । बुद्ध गया और बिहार में तथा सारनाथ में बौद्धों के बिहार हैं ।

अध्याय ४३

भारत की प्रजातियाँ

(RACES OF INDIA)

भारतीय जनसंख्या में उन कई मानव प्रजातियों का सम्मिश्रण पाया जाता है जो प्रायः ऐतिहासिक काल के पूर्व से एतिहासिक काल के बीच यदा-कदा भारत में प्रवेश करती रही है। एशिया भूखंड के सुदूर दक्षिण में हिन्द महासागर पर स्थित उत्तर, पूर्व और उत्तर पश्चिम में पर्वत मालाओ द्वारा आवेष्ठित और दक्षिण में समुद्रो द्वारा विलग भारत भौगोलिक दृष्टि से एक ऐसा सुरक्षित प्रदेश है जिसमें यदि कोई प्रवेश करना चाहे तो वह केवल पर्वतीय दर्रो द्वारा अथवा तटीय भागों से ही कर सकता है। उपरोक्त भू-अवस्थाओं के फलस्वरूप हमारे देश में काफी समय पूर्व से आकर रहने वाली प्रजातियाँ नष्ट न होकर दक्षिण और पूर्व की ओर हटतो गई और इस तरह आज भी भारतीय जनता के योग में वे बहुत कुछ प्रमुखता रखती हैं। इसी प्रकार पहाड़ियों और जंगलों ने बड़े परिमाण में आदिवासियों को अपने अंक मे स्थान देकर उन्हे सर्वनाश से बचाये रखा है। भारत की जनसंख्या में समस्त प्रमुख प्रजातियो के वे तत्व मौजूद हैं जो साधारणतया इस सीमा तक अन्य स्थानों पर नहीं देखे जाते।

भारतीय लोगों का मानव-जाति शास्त्र के दृष्टिकोण से सर्व प्रथम वर्गीकरण सर हरवर्ट रिजले (H. Risely) ने सन् १९०१ की भारतीय जन-गणना में किया। उनके अनुसार भारतीय जनसंख्या में सात विभिन्न मानव प्रजातियाँ हैं :—

(१) **द्रविड़** (Dravids)—ऐतिहासिक युग के पूर्व भारत में द्रविड़ नामक प्रजाति रहती थी जिन्हे भारत का आदिवासी कहा जा सकता है। पीछे से आने वाली आर्य तथा सिथियन मंगोल आदि प्रजातियों के सम्पर्क से इनकी नस्ल में बड़ा अन्तर आ गया है। ये विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक प्रायः सम्पूर्ण दक्षिणी भारत मे रहते है। मलाबार के **पनियान,** उड़ीसा के **जुआंग**, पूर्वी घाट के **कोड़,** मध्य प्रदेश के **गोंड़,** नीलगिरि के **टोड़ा**, और छोटा नागपुर के **संथाल** लोग इसी प्रजाति के प्रतिनिधि हैं। इनका कद छोटा और रंग बहुत ही काला होता है—इनकी आँखें काली, सिर लम्बा तथा घने बालों वाला (जो कभी-कभी घुंघराले होते है) और नाक बहुत चौड़ा होता है (जो कभी कभी जड़ों में दबा हुआ होता है) यह प्रजाति भारत की जनसंख्या का २० प्रतिशत है।

(२) **भारतीय आर्य** (Indo-Aryans)—ऐसा अनुमान किया जाता है कि ईसा से २,००० वर्ष पूर्व आर्य लाग मध्य एशिया से भारत में आये और इन्होंने यहाँ बसने वाली द्रविड़ जाति को दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। इस समय साधारणतः यह प्रजाति पूर्वी पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और काश्मीर में पाई जातो है। इस

प्रजाति के वर्तमान समय में राजपूत, खत्री व जाट मुख्य प्रतिनिधि है। इनका कद लम्बा, रंग गोरा, सिर ऊँचा, नाक ऊँची, नुकीली और लम्बी तथा आँखें बड़ी बड़ी और होंठ पतले होते हैं। इनके चेहरे पर भरपूर बाल होते हैं। भारत की ७५ प्रतिशत जनसंख्या इस प्रजाति का ही रूप है। हिन्दुओं के तीन उच्च वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्यआर्य प्रजाति के ही वंशज हैं।
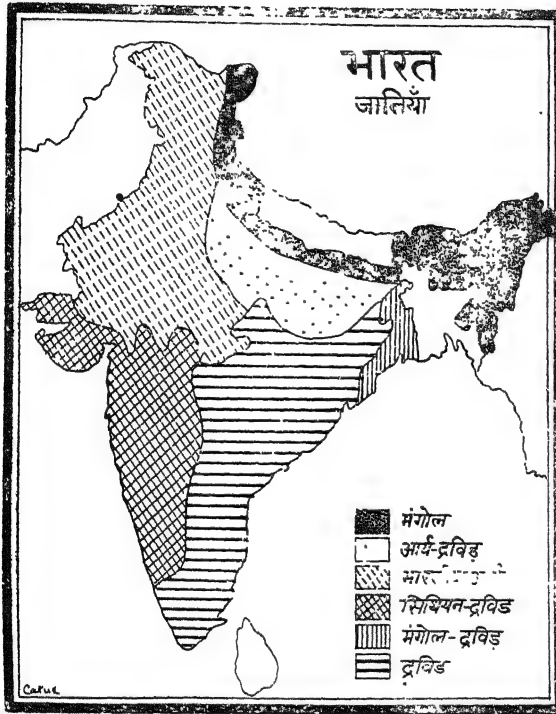
चित्र २२४. भारत की प्रजातियाँ

(३) **मंगोल** (Mongoloids)—यह प्रजाति हिमालय प्रदेश, नैपाल और आसाम में फैली हुई हैं। लाहुल और कुल्लू के **कनेत** और सिक्किम व दार्जिलिंग के **लेपचा**, नैपाल के **लिम्ब**, **मर्मो और गुरूंग** तथा आसाम के **बोडू** लोग इस प्रजाति में मुख्य हैं। इनका कद छोटा, सिर चौड़ा, नाक चौड़ी, चेहरा चपटा, भोहें टेढ़ी, रंग पीला तथा शरीर पर बाल कम होते हैं।

(४) **आर्य द्रविड़** (Arya-Dravidians)—यह प्रजाति आर्य और द्रविड़ लोगों के सम्मिश्रण से बनी है। यह उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान के कुछ भागों में फैली हुई हैं। उच्च कुलों में हिन्दुस्तानी, ब्राह्मण और निम्न कुलों में हरिजन इसका प्रतिनिधित्व करते हैं। इन लोगों का सिर प्रायः लम्बा या मध्यम प्रकार का होता है। कद विशुद्ध आर्यों से कुछ छोटा, नाक मध्यम से चौड़ी और रंग हल्का भूरा या गेहुँआ होता है।

(५) **मंगोल द्रविड़** (Mongolo-Dravidians) या बंगाली—यह बंगाल और उड़ीसा में पाई जाती हैं। बंगाली ब्राह्मण और बंगाली कायस्थ इसके मुख्य प्रतिनिधि है। यह प्रजाति द्रविड़ और मंगोल तत्वों से बनी है। उच्च वर्गो में भारतीय आर्य लोगों के रक्त का अंश भी देखा जाता है। इन लोगों का कद मध्यम और कभी कभी छोटा होता है। सिर चौड़ा और गोल, रंग काला, बाल घने और नाक चौड़ी होती है।

(६) **सिथो-द्रविड़** (Sytho-Dravidian)—यह प्रजाति सिथियन और द्रविड़ लोगों के सम्मिश्रण से बनी है। ये लोग केरल, सौराष्ट्र, गुजरात, कच्छ और मध्य प्रदेश के पहाड़ी भागों में फैले हुए हैं। समाज के उच्च वर्गों में सिथियन तत्व और निम्न वर्गो में द्रविड़ तत्व प्रमुख है। ये लोग अपने कद में छोटे और काले रंग के होते हैं। इनका सिर अपक्षतया लम्बा और नाक मध्यम होती है। इनके शरीर पर बाल कम होते हैं।

(७) **तुर्क ईरानी** (Turko-Iranian)—वर्तमान समय में यह प्रजाति अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान मे पाई जाती हैं।

श्री रिजले ने भारतीय जनसंख्या मे निग्रीटों तत्व का कोई जिक्र नहीं किया है किन्तु भारत द्रविड़ों से पूर्व की प्रजातियो निग्रीटो तत्व की उपस्थिति को मना नहीं किया जा सकता। अय्यर महोदय ने कडार (Kadars) कोचीन के पुलाया और यूराली व कानिकर लोगों के घुंघराले बालों के उदाहरण से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि भारत में निग्रीटो तत्व का प्रवेश निश्चय ही आठवी और दशवीं शताब्दी के बीच हुआ होगा। डा० हैडन ने सुसियाना में बहुत पूर्व की काली नीग्रो प्रजाति का जिक्र किया है। इसका भारत में प्रवेश कर जाना असम्भव नहीं दिखाई देता। लैपिक ने भी दक्षिण भारत के वन प्रदेशो के समीप कुछ विशेष नीग्रो चेहरे पाये हैं। डा० हटन के अनुसार भारत के पूर्वी सीमान्त की जनसंख्या में भी निग्रीटों तत्व विद्यमान हैं।

रिजले के पश्चात् मानव-शास्त्र के कई विशेषज्ञों ने भारतीय लोगों का वर्गीकरण करने की चेष्टा की है किन्तु १९३१ की जनगणना तक कोई भी उचित और वैज्ञानिक वर्गीकरण नही दे सका। इनमे से प्रमुख वर्गीकरण इस प्रकार है :—

(क) ग्यूफ्रिडड़ा का वर्गीकरण (Giuffrida's Classification)—श्री ग्यूफ्रीडड़ाके अनुसार भारत के लोगों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है :—

(१) निग्रीटो (Negritos) के अन्तर्गत लंका के वेद्द (Vaiddahs) और दक्षिणी भारतीय जंगलों की कुछ जन-जातियाँ (Tribes) हैं।

(२) पूर्व-द्राविड़ या अस्ट्रोलाइड (Pre-Dravidians or Australoid)—इसके मुख्य उदाहरण वैदिक (Veddic), संथाल (Santhals), ओरन (Orans) मुन्डा (Mundas) व होस (Hos) आदि।

(३) द्रविड़ (Dravidians) तेलुगू और तामिल भाषा-भाषी लोग।

(४) ऊँचे कद के लम्बे सिरवाले (Tall Dolicho-Cephalic Elements) जैसे टोड़ा (Todas)।

(ख) श्री हैडन का वर्गीकरण (Haddon's Class fication)—**श्री हैडन** के अनुसार भारत मुख्यत. तीन भौगोलिक प्रदेशों में बँटा है—हिमालय प्रदेश, उत्तरी मैदान और दक्षिण का पठार। उनकी राय मे भारत का मानव प्रजाति इतिहास अभी भी पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है। उनके अनुसार भारत में निम्न प्रजातियों के तत्व पाये जाते हैं —
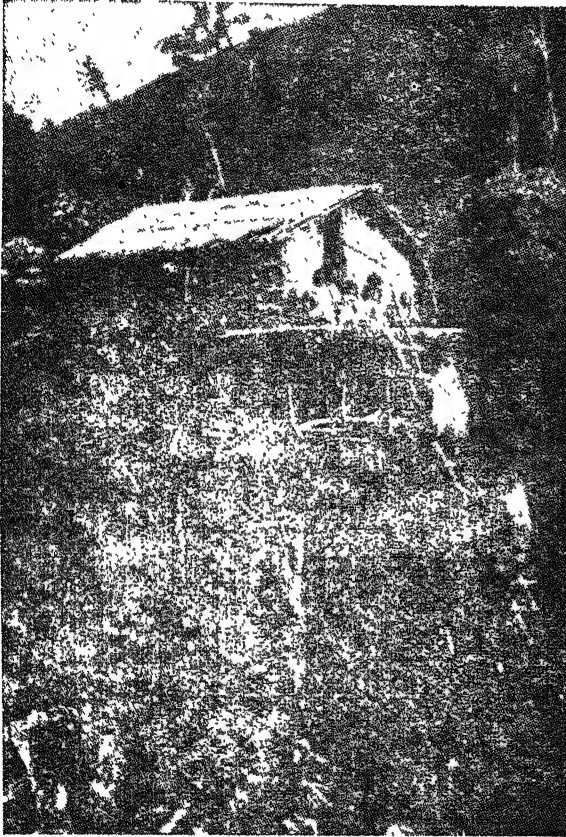
चित्र २२५. केरल में वृक्षों पर बनाया गया यूरालियों का घर

(क) हिमालय प्रदेश में—(१) **भारतीय आर्य**—कनेर लोग जो पंजाब के पूर्व में पाये जाते हैं और उनमें तिब्बती रक्त का अंश मिलता है।

(२) **मंगोल**-- नैपाल और उच्च पर्वतीय भागों में पाये जाते है।

(ब) मैदानी भाग में भारतीय अफगान (Indo-Afghan) तत्व प्रमुख हैं। जाट और राजपूत इसके प्रतिनिधि हैं।

(स) दक्षिण के पठार के लोगों के लिए हैडन द्राविड़ शब्द का प्रयोग करते हैं। दक्षिण में उनके अनुसार निम्न मुख्य तत्त्व है :—

(१) **निग्रोटो** और **कडार** लोग इसके प्रतिनिधि हैं।

(२) पूर्व द्राविड़ **संथाल** और **मुन्डा** लोग इसके उदाहरण है।

(३) द्राविड़ मलाबार, कोचीन, और ट्रावनकोर के लोग व तामिल ब्राह्मण इसमें सम्मिलित हैं।

(४) दक्षिणी चौड़े सिरवाले तामिल जिले के **परियन** और तिरूनलवैली तट के **पारावा** मच्छुए आदि है।

(५) पश्चिमी चौड़े सिर वाले नागर ब्राह्मण व कुर्ग आदि—
टोड़ाओं की स्थिति विपरीत है।

(ग) श्री इक्सटैड (Eicktedts) **का वर्गीकरण—श्री इक्सटैड** ने भारतीयों का भौतिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से वर्गीकरण किया है। उसने चार मुख्य प्रजातियाँ स्वीकार की हैं :—

(१) **वैडीड** (Weddid) या **प्राचीन भारतीय**—ये वन देशों के अति प्राचीन निवासी हैं जो निम्न श्रेणियों में बँटे है—

(क) गोंडिड (Gondid)—ये लोग गहरे भूरे रंग और घुँघराले बाल वाले होते हैं। ये जादू टोना में विश्वास करते हैं। इनमें **ओरन** और **गोंड** आदि मुख्य हैं।

(ख) मालिड (Malid)—ये घुंघराले बाल वाले और काले भूरे रंग के होते हैं। **कुरूमबास** और **वेद्द** इनके मुख्य उदाहरण हैं।

(२) **मलेनिड** अथवा **काले भारतीय** (Malanid or Black Indians)—यह एक मिश्रित जाति है, जो निम्न भागों में बाँटी गई है :—

(क) दक्षिण मलेनिड (South Melanid)—भारत के सुदूर दक्षिणी मैदानों के काले भूरे रंग के लोग। **यनादि** इनका उदाहरण हैं।

(ख) कोलिड (Kolid)—दक्षिण के उत्तरी वन प्रदेशों के अति प्राचीन निवासी जो काले-भूरे रंग के होते हैं। **संथाल** और **मुन्डा** इनके उदाहरण हैं।

(३) **इन्डीड या नवीन भारतीय** (Indid or New Indians)—खुले प्रदेश के कुछ उन्नत लोग। ये निम्न भागों में विभाजित हैं :—

(क) ग्रेसाइल (Gracile Indid) पीत वर्ण के लोग पैत्रृक परिवार को मानने वाले जैसे बंगाली आदि।

(ख) उत्तरी इन्डीड (North Indid)—हल्के भूरे रंग वाले और प्रारंभ से ही पैतृक परिवार के मानने वाले जैसे **टोडा** व **राजपूत** लोग।

(४) **पूर्व मंगोल** (Pale-Mongoloid)—वाईनाड के **पलायन** (Palayan) लोग।

(घ) **डा० गुहा का वर्गीकरण**—इस वर्गीकरणों में सबसे मुख्य और सर्वमान्य वर्गीकरण डा० गुहा द्वारा १६३१ की जनगणना रिपोर्ट में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र २२६. बिहार की संथाली कन्याये

डा० गुहा का वर्गीकरण इस प्रकार है:—

१. निग्रीटो (The Negrito)

२. प्रोटो-आस्ट्रोलोइड या पूर्व-द्रविड़ (The Proto-Austroloid)

३. मंगोल (The Mongoloid)

(क) पूर्व-मंगोल (Palae-Mongoloid)

(ख) लम्बे-सिरवाले (Long headed type)

(ग) चौड़े-सिर वाले (Broad headed type)

(घ) तिब्बती-मंगोल (Tibbeto Mongoloid)

४. भूमध्य सागरीय (The Mediterranean)

(क) पूर्व भूमध्य सागरीय (Palae Mediterranean)

(ख) भूमध्यसागरीय (Mediterranean)

(ग) पूर्वी लोग (Oriental type)

५. पश्चिमी चौड़े सिर वाले अथवा एल्पो-डिनारिक (The Western Brachy-cephals or the Alpo-Dinaric)

(क) एल्पीनोइड (Alpinoid)

(ख) डिनारिक (Dinaric)

(ग) आरमीनोइड (Armenoid)

६. नोर्डिक (The Nordic)

(१) **निग्रीटो** (The Negrito)—भारतीय जनसंख्या में निग्रीटो तत्व का समावेश एक संदिग्ध और विवादास्पद विषय है। वस्तुतः निग्रीटो तत्व फिलीपाइन, न्यूगिनी, अन्डमान द्वीप और मलाया प्रायद्वीप के सेमाँग और सकाई में मिलते हैं। भारत में इन लोगों की उपस्थिति के बारे में निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। **श्री लैपीक** के अनुसार भारत में निग्रीटो जाति का अंश दक्षिण भारत की जंगली जातियों में पाया जाता है। ट्रावनकोर कोचीन के **कड़ार** और **पुलियान** व वैनाड की प्राचीन जन-जातियाँ और **इरूला** लोगों के सिर पर प्रायः ऊन जैसे बाल देखे जाते हैं जो मानव प्रजाति शास्त्र के दृष्टिकोण से नीग्रो रक्त को इंगित करते हैं। किन्तु **श्री थर्स्टन** महोदय ने उपरोक्त मत का खंडन किया है। इसके विपरीत श्री

ग्यूफ्रीदा रूजीरी का विचार है कि दक्षिण भारत की जंगली जातियों में पाये जाने वाले निग्रीटो जो वहाँ पूर्व द्रविड़ों के पहले से माने जाते हैं—आज भी विद्यमान हैं। **श्री हैडन** ने भी स्वीकार किया है कि यद्यपि दक्षिण में निग्रीटो जाति होने की शंका की जाती है किन्तु इसकी वास्तविक सत्यता अभी ज्ञात नहीं है। डा० हैडन ने निग्रीटो समस्या पर विशेष ध्यान दिया है। उनके अनुसार भारत के पूर्वी सीमान्त की जनसंख्या में निग्रीटो तत्त्व पाया जाता है। उन्होंने मनीपुर व कछार की पहाड़ियों के कुछ **अंगामी** नागाओं में विशेष ऊन जैसे बाल देखे हैं। डा० गुहा ने भी कडार और कुछ अन्य पहाडी जातियों में निग्रीटो तत्व को स्वीकार किया है। **डा० सरकार** ने राजमहल पहाडियों की आदिम जातियों में घुंघराले बाल पाये हैं। डा० हैडन ने इन सब तथ्यों पर विचार करने के उपरान्त लिखा है कि भारतीय प्रायद्वीप के सबसे पूर्व के निवासी सम्भवत: नीग्रो जाति के ही थे किन्तु बाद में उनका शीघ्रता से ह्रास होता चला गया। यद्यपि वे अण्डमान द्वीप में आज भी वर्तमान है परन्तु भारतीय भूमि पर उनके बहुत कम अंश शेष हैं। सुदूर दक्षिण के जगलों के कडार व उरूला लोगों में यदा-कदा छोटे कद, घुँघराले बाल और नीग्रो आकृति के लोग देखे जाते हैं जो वास्तव में भारत में निग्रीटो प्रजाति के अवशेष को स्पष्ट करते है। ग्यूफ्रीदा भारत और फारस की खाड़ी के बीच निग्रीटो लोगों की उपस्थिति ऐतिहासिक काल के पूर्व मानते हैं।

बंगाल की खाडी, मलाया प्रायद्वीप, फीजी द्वीप समूह, न्यूगिनी, दक्षिण भारत और दक्षिणी अरब में निग्रीटो अथवा आंशिक नीग्रो लोगों की उपस्थिति यह मान लेने को प्रेरित करती है कि किसी पूर्व ऐतिहासिक काल में निग्रीटो लोग एशिया महाद्वीप के बहुत बड़े भाग—विशेषकर दक्षिणी भाग—को घेरे हुए थे। बाद में पूर्व-द्राविड़ और द्राविडों के आने पर जो उनसे अधिक शक्तिशाली थे—इन लोगों की समाप्ति होगई अथवा उनमें विलीन हो गये—वर्तमान समय में ये लोग कहीं कहीं पर अवशेष रूप में हो जाते हैं।

इन लोगों की मुख्य विशेषता यह है कि ये कद में बहुत छोटे हैं। इनकी औसत ऊँचाई ५ फीट से कम होती है। इनका सिर छोटा किन्तु ललाट उभरा हुआ होता है। इनके बाल सुन्दर और ऊन जैसे होते हैं। ये रंग में काले होते हैं। सिर की बनावट गोल, लम्बी अथवा मध्यम जैसी भी हो सकती है। हाथ-पैर कोमल होते हैं। चेहरा छोटा और नाक चपटी व चौड़ी होती है तथा होठ मोटे और मुड़े हुए होते है।

भारतीय संस्कृति को नीग्रीटो लोगो की क्या देन है? इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह अनुमान लगाना सही होगा कि पीपल पेड़ का धर्म उन्हीं की देन हैं।

(२) **पूर्व-द्रविड़** (The Proto-Austroloids)—सम्भवत: भारत में आने वाली दूसरी प्रजाति पूर्व द्राविड थी। यद्यपि इनके आदि पूर्वज फिलिस्तीन में देखे जा सकते हैं परन्तु भारत में ये कब और कैसे आये यह अभी ज्ञात नहीं है। किन्तु भारत की वर्तमान आदिम जातियों में इस प्रजाति का अंश ही सर्वाधिक है। इन लोगों में लंका के वेद्द, आस्ट्रेलेशियन और मलेनेशियन लोगों के रंग चेहरे, बाल आदि में इतनी समानता पाई जाती है उससे यह स्पष्ट आभास होता है कि ये

चारों एक ही प्रजाति के वंशज हैं। भारत में ये लोग बाहर से आये हैं अथवा भारत से ही ये बाहर के देशों में पहुँचे हैं यह तथ्य अभी भी विवादास्पद है। चूंकि ये आस्ट्रेलियन लोगों से बहुत मिलते जुलते हैं अतः इन्हें पूर्व द्रविड नाम दिया गया है। वास्तविक आस्ट्रेलियन लोगों की नाक चेहरे से पिचकी हुई, छाती मजबूत और शरीर पर घने बाल होते है जो आदिम भारतीय जातियों में प्रायः नही देखे जाते।

चित्र २२७. अंगामी नागा लोगों का परिवार

किन्तु दक्षिण भारत के **चेन्चू, मलायन, कुरुम्बा, यरूवा, मुन्डा, कोल, संथाल** और **भील** समूहों में ऐसे बहुत लोग पाये जाते हैं जिनमें उपरोक्त विशेषताएँ देखी जाती हैं। भारत में अछूत गिनी जाने वाली जातियाँ प्रधानतः इसी प्रजाति से बनी हुई मानी जाती हैं।

ये लोग कद में नाटे और गहरे भूरे रंग के होते हैं। इनका सिर लम्बा और नाक चौड़ी, चपटी या पिचकी हुई होती है। इनके बाल घुँघराले और होठ मुड़े हुए होते हैं।

इस प्रजाति ने भारतीय संस्कृति को बहुत योग दिया है। भोजन सम्बन्धी कई विचार, जादू टोने में विश्वास और भूत प्रेतों से बचाव आदि कई बातें, जो आज भी हमारे यहाँ पाई जाती हैं, इन्हीं की देन है। अन्तर्जातीय विवाह की रोक (जो आज जाति व्यवस्था का आधार है) इन्हीं के द्वारा प्रचलित की गई हैं।

(३) **मंगोल** (The Mongoloid)—मंगोल लोग भारत में अपने घर थेउ त्तरी-पश्चिमी चीन) से ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य में आये। बाद में (रेधीरे-ध लोग उत्तरी पूर्वी बंगाल के मैदान आसाम की पहाड़ियों तथा मैदान में

घुसते चले गये—यद्यपि उत्तर और पूर्व के कठिन स्थल मार्गों ने उनके यहाँ बड़ी मात्रा में प्रवेश में रोड़े अटकाये हैं। परन्तु फिर भी वे बराबर यहाँ प्रवेश करते रहे हैं यही कारण है कि आज भी भारत के उत्तरी पूर्वी भागों में नैपाल, आसाम और पूर्वी काश्मीर में तीन प्रकार के मंगोल लोग पाये जाते हैं। मंगोल जाति अन्य जातियों से निम्न बातों में भिन्न है: (१) इनका मुँह चपटा और गाल की हड्डियाँ उभरी हुई होती हैं; (२) आँखें बादाम की आकृति की होती हैं तथा (३) चेहरे और शरीर पर बाल कम होते है।

चित्र २२८. द० पू० राजस्थान का भील परिवार

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है मंगोल समूह में तीन जातियाँ होती हैं, जैसे: (क) **पूर्व मंगोल** (Palae-Mongoloid) ये बहुत ही प्राचीन प्रकृति के लोग हैं। ये शीघ्रता से पहचाने नहीं जा सकते। इन्हें सिर की बनावट नाक व रंग से पहचाना जा सकता है। ये दो श्रेणियों में बँटे हैं: (१) लम्बे सिर, मध्यम आँखें, छोटा और चपटा मुँह तथा हल्के भूरे रंग वाले मगोल **लम्बे सिर वाले** (Long headed type) होते है। ये उप-हिमालय प्रदेश, आसाम और ब्रह्मा की सीमा पर रहने वाली आदि जानियों (जैसे नागा लोगों में बहुत ही अधिक पाये जाते हैं)।(२) इस समूह की दूसरी जाति **चौड़े सिर वाली** (Broad-headed type) है। चिटगाँव का पर्वतीय आदि जातियाँ जैसे **चकमास** इसी किस्म के हैं। कलिम्पोंग की **लेपचा** जाति भी इसी में सम्मिलित की जाती है। इनका सिर चौड़ा, रंग काला और नाक मध्यम होती हैं। चेहरा छोटा और चपटा होता है। सिर के बाल सीधे परन्तु कुछ घुँघराली प्रवृत्ति लिये होते हैं।

(ख) **तिब्बती मंगोल** (Tibbeto Mongoloid)—ये लोग लम्बे कद, चौड़े सिर और हल्के रंग के होते हैं। चौड़ी चपटी नाक, लम्बा चपटा मुँह और शरीर पर बालों का अभाव इनकी अन्य विशेषतायें हैं। ये लोग सिक्किम और भूटान में पाये जाते हैं।

मंगोल जाति ने भारत की संस्कृति पर बड़ा भारी प्रभाव डाला है। हमारे यहाँ दूध, चाय, चावल, कागज, सुपारी, सीढ़ीनुमा खेती, शेर का शिकार आदि का प्रयोग उन्हीं की देन है।

(४) **भूमध्यसागरीय जाति** (Mediterraneans)--भारत की आदिम जातियों में तीन प्रमुख प्रजातियों, नीग्रीटो, पूर्व द्राविड़ और मंगोल तत्व ही अधिक हैं। इनके अतिरिक्त साधारण जनसंख्या मुख्यतः भूमध्यसागरीय एल्पो-डिनारिक और नार्डिक जातियों से बनी है। इसमें भूमध्य सागरीय समूह सबसे बड़ा है। इस प्रजाति की कोई एक किस्म नहीं है बल्कि कई किस्में हैं जो लम्बे सिर, काले रंग और अपनी ऊँचाई द्वारा पहचानी जाती हैं। भारत में इस जाति की तीन किस्में देखी जा सकती हैं:—

(क) **पूर्व-भूमध्य-सागरीय** (Palae Mediterranean)—ये लोग काले रंग और लम्बे सिर वाले होते हैं। संकीर्ण चेहरा, चौड़ी नाक, मध्यम कद और चेहरे पर कम बाल इनकी विशेषतायें है। दक्षिण भारत के तेलुगू और तामिल ब्राह्मणों में इस जाति का अत्यधिक प्रभाव देखा जाता है।

मिट्टी के बर्तन बनाने का काम, मनुष्य बलि और जन्म संस्कार जैसी कई प्रथायें इनके द्वारा ही चलाई गई हैं। मातृत्व परिवार का प्रारम्भ और दक्षिण भारत के समाज में स्त्री के ऊंचा स्थान होने का श्रेय इन्हीं लोगों को है।

(ख) **भूमध्य सागरीय जाति** (Mediterraneans)—भारत की सिन्धु घाटी सभ्यता को जन्म देने का श्रेय इन्हीं लोगों का है। २,५०० ईसा पूर्व के लगभग जब आर्य भाषा बोलने वाले वैदिक आक्रमणकारी उत्तरी मैसपोटेमिया से ईरान द्वारा गगा के मैदान में आये तो ये लोग इधर उधर फैलते गये। आज उत्तरी भारत की जनसंख्या में यही तत्व सबसे अधिक विद्यमान है। इस जाति के लोग आजकल पूर्वी पंजाब, काश्मीर, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में फैले हुए हैं। मध्य प्रदेश के मराठा और उत्तर प्रदेश, कोचीन, बम्बई व मलाबार के ब्राह्मण इस जाति के प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

ये लोग मध्यम से लेकर लम्बे कद के होते हैं। उनकी नाक सकड़ी परन्तु दाढ़ी उन्नत होती हैं। चेहरा और सिर प्रायः लम्बा और रंग काला अथवा भूरा होता है। शरीर पर घने बाल, बड़ी खुली आँखें और पतला शरीर इनकी अन्य विशेषताएँ हैं।

इस जाति ने सिन्धु घाटी सभ्यता को अपनाया और उन्नत किया है। वर्तमान भारतीय धर्म और संस्कृति का अधिकतर भाग भी इन्हीं द्वारा निर्मित है। अधिकतर सामान्य पालतू पशु, नदी यातायात, वस्त्र तथा आभूषण, भवन निर्माण कला, ईंटो का प्रयोग और शहरों की रचना आदि सब इन्ही के द्वारा प्रचलित हुये हैं। भारतीय लिपि और खगोल शास्त्र में भी उनका महत्वपूर्ण योग है।

(ग) **पूर्वी जाति** (Oriental Race or Semitic type)—सदा से यह जाति टर्की और अरब में रही है—अस्तु यही से यह जाति भारत की ओर आई। यह जाति भूमध्यसागरीय जाति से बहुत कुछ मिलती जुलती है। किन्तु इनकी नाक

की बनावट में थोड़ा अन्तर है। इन लोगों की नाक लम्बी और नतोदर (Convex) होती है। भारत में ये लोग पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तरप्रदेश में पाये जाते हैं।

(५) **पश्चिमी चौड़े सिर वाले** (Western Brachy-Cephals)—भारत में ये लोग पश्चिम से आये हैं। इन लोगों को एल्पोनोइड, डिनारिक और आरमिनोइड तीन भागों में बाँटा जाता है। इनके ये नाम यूरोप में जिस प्रदेश से सम्बन्धित हैं उस आधार पर रखे हैं:—

(क) **एलपोनोईड** (Alponoids)—यह लोग मध्यम या कभी कभी छोटे कद के होते हैं। इनका सिर और चेहरा गोल और नाक पतली व नुकीली होती है। रंग भूमध्यसागरीय लोगों से हल्का और शरीर मोटा व मजबूत बना होता है। शरीर और चेहरे पर बाल बहुतायात से होते हैं। संभवतः यह लोग दक्षिणी बिलोचिस्तान से सिन्ध, सौराष्ट्र, गुजरात और महाराष्ट्र के द्वारा, कानड़, तामिलनाड, लंका और गंगा के सहारे बंगाल में पहुँचे हैं। इस जाति के लोग सौराष्ट्र (काठी), गुजरात (बनिया) और बंगाल (कायस्थ) में पाये जाते है। बंगाल और महाराष्ट्र की जनसंख्या में अधिकतर इसी जाति का अंश है।

(ख) **डिनारिक** (Dinaric)—ये लोग लम्बे कद और कुछ काले रंग के होते हैं। सिर बहुत छोटा परन्तु अधिक चौड़ा नहीं होता। नाक लम्बी और प्रायः नतोदर होती है। ये लोग बंगाल, उड़ीसा और केरल में [illegible] लोगों के साथ मिले हुए पाये जाते हैं।

(ग) **आरमिनोइड** (The Armenoid)—ये लोग गोरी चमड़ी और छोटे अथवा मध्यम कद के होते है। इनका सिर चौड़ा और नाक पतली होती है। बम्बई के पारसी लोग इसके मुख्य प्रतिनिधि हैं। बंगाली कायस्थ और वैद्य लोगों में भी इस जाति के लोग पाये जाते हैं।

(६) **नार्डिक** (Nordics)—नार्डिक जाति के लोग भारत में सबसे अन्त में आये। ये अपने निवास स्थान उत्तरी स्टेप प्रदेश को छोड़कर धीरे धीरे दक्षिण पश्चिम की ओर खिसकने लगे और ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी में भारत के उत्तरी पश्चिमी भाग में घुस आये। शारीरिक बनावट में ये लोग गोरे, चट्टे और लम्बे होते हैं। इनका सिर लम्बा और प्रायः मध्यम प्रकार का होता है। ललाट जरा गोलाई लिए हुए होता है तथा नाक पतली और नुकीली होती है। भारत में ये लोग उत्तरी भागों में पाये जाते हैं पर बहुत अधिक भूमध्य सागरीय लोगों से मिल गये हैं। इस जाति के कुछ लोग भारत के पश्चिमी और पूर्वी भागों में भी पहुँच गये हैं।

भारतीय संस्कृति को इन लोगों का बहुत बड़ा योग मिला। ये लोग घोड़ा, लोहा और अच्छे किस्म के गेहूँ अपने साथ लाये। दूध और मद्य पदार्थों का प्रयोग, सिले हुए कपड़ों और रथों का दौड़ के लिये उपयोग इन्हीं लोगों से प्रारम्भ हुआ। भारतीय सामाजिक जीवन में पैत्रिक कुटुम्ब की स्थापना का श्रेय भी इन्ही लोगों को है। इन सबके अतिरिक्त इनकी सबसे बड़ी देन 'आर्य भाषा' की है। यही नहीं, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय साहित्य, भारतीय दर्शन और भारतीय कला की उज्जवलता के कारण भी ये ही लोग हैं।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होगा कि भारत की वर्तमान जनसंख्या आधुनिक संसार की लगभग समस्त मानव जातियों का सम्मिलित रूप है और इनमें जो कुछ थोड़ी बहुत विपरीततायें दिखाई पड़ती है वे यहाँ के जलवायु और वातावरण के प्रभाव का ही प्रतिफल है। यद्यपि नृतत्व विज्ञान की दृष्टि से भारत की प्रजातियों विशेष उनकी प्रमुखता के आधार पर कई क्षेत्रो मे बांटा जा सकता है किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि प्रजातियों का आपस में मेल जोल इतना अधिक हुआ है कि सही रूप से उनको अलग करना सम्भव नहीं है। निग्रीटो लोग अब लगभग समाप्त हो चुके हैं। पूर्व द्राविड दक्षिणी पश्चिमी और मध्य भारत के एकान्त और बहुत दूर के पहाड़ी और जंगली भागों में रहते हैं। मंगोल लोगों का मेल जोल सब लोगों के साथ नहीं हो सका। भूमध्य सागरीय लोग धीरे धीरे सिंधु की घाटी और वर्तमान मरुस्थलीय प्रदेशों में आबाद हो गये तथा गंगा की घाटी के सहारे आगे बढ़ गये। इनका निरंतर आगे की ओर अभियान और आबाद होना अनेक युद्ध और जय पराजय के फलस्वरूप हुआ। कालान्तर में एल्पाईन, नार्डिक और ये लोग तीनों ही विशाल उत्तरी मैदान में बस गये और आपस में मिल जुल गये। गंगा की घाटी में ऊपर की ओर भूमध्य सागरीय और नीचे की ओर (बगाल में) एल्पो-डिनारिक लोगों की प्रधानता पाई जाती है। भूमध्यसागरीय और एल्पो डिनारिक समूह कुछ पूर्व द्रविड़ों के साथ विन्ध्याचल के दक्षिणी क्षेत्र में आबाद हो गये और मिल जुल गये। दक्षिण मे नार्डिक और पूर्व-नार्डिक लोग तो कठिनाई से ही पाये जाते है यद्यपि मध्य प्रदेश में कुछ लोग यदा-कदा अवश्य दिखाई दे जाते हैं।

अध्याय ४४

भारत की जनजातियाँ

(TRIBES OF INDIA)

भारत की जनसंख्या में आदिवासी जनजातियों की एक बहुत बड़ी संख्या पायी जाती है। ये लोग शिकार करके, मछली मारकर या बहुत ही साधारण किस्म की खेती द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं। विभिन्न विद्वानों ने इन्हें विभिन्न नामों से पुकारा है। सर हरबर्ट रिजले, श्री लेसी, श्री अलविन और श्री ए० वी० ठक्कर ने इन्हें **आदिवासी** नाम दिया है। सर बेंस ने उन्हें **पहाड़ी जनजाति** की श्रेणी में शामिल किया है। श्री ग्रिगसन ने उन्हें **पहाड़ी जनजातियाँ** और **जंगली आदिवासी** कहा है और शूबर्ट ने उन्हें आदिवासी कहा है। टेलेन्ट्स, सेजविक और मार्टिन ने उन्हें **प्रेतवादी** माना है और डा० हट्टन ने उन्हें **प्राचीन जनजाति** कहा है। वेन्स ने उन्हें **जंगली लोग, जंगली जनजाति** अथवा **जंगल निवासी** कहा है। अल्विन ने बैगा लोगों को **देश का आदि स्वामी** बतलाया है। प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री और मानव रचना शास्त्री डा० घुरये ने उन्हें **पिछड़ा हिन्दु** कहा है। डाक्टर दास और दास ने उन्हें **बिलीन मानवता** कहा है। भारतीय विधान की धारा ३४२ का सम्बन्ध अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित एक विशेष व्यवस्था से है। उसमें अनुसूचित जनजातियों की परिभाषा करते हुये कहा गया है कि इनमें वे "जनजातियां, जनजातीय सम्प्रदाय या जनजातियों और जनजातीय समुदायों के हिस्से या वर्ग" शामिल होंगे, "जिन्हें राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा घोषित करेंगे।" ऐसा माना जाता है कि जन-जातियों के लोग राष्ट्रीय जनसंख्या के प्राचीनतम मानव समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। इधर कुछ समय से इन वर्गों को **आदिवासी** (आदि=प्रारम्भिक, वासी=निवासी) नाम से पुकारा जाने लगा है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि प्रशासकों, वकीलों, समाज शास्त्रियों और मानव रचना शास्त्रियों ने अपनी-अपनी परिभाषा का भिन्न भिन्न और प्राय: परस्पर विरोधी आधार रखा है। ये आधार है : रंग, धर्म, भाषा, रीति-रिवाज, जनजातीय परिस्थितियाँ और रहन-सहन का स्तर। जहाँ कहीं भी ऐसे लोगों की संख्या अधिक है वहाँ अपने विशेष ढंग पर अपनी-अपनी परम्पराओं, इतिहास, सामाजिक संगठन और नीतियों के अनुसार, इन जातियों की परिभाषा की समस्या सुलझा ली गयी है।

इनका मूल स्रोत और विशेषतायें

भारत की अनुसूचित-जातियों के मूल स्रोत की खोज करने पर पता चलता है कि वे प्रोटो-आस्ट्रोलाई जैसी जातियों से निकली है जो कभी सारे भारत मे छाई हुई थी। इनका दूसरा स्रोत मंगोल जाति के लोगों को माना गया है जो अब भी आसाम में पाये जाते हैं। इनका तीसरा स्रोत निग्रीटो या हब्शी जाति को माना जाता

है। इस स्रोत की जनजातियों में अण्डमान द्वीप के आदि-वासी और दक्षिण पश्चिम के कडार शामिल हैं जैसा कि उनके घुंघराले बालों से स्पष्ट है।

भारत की अनुसूचित जनजातियों के लोग इस देश के आदिवासी या देशी लोग हैं। ये प्राचीन लोग क्रमश: पश्चिम, उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व से आने वाले द्रविडों, भारतीय आर्यों और मंगोलों के आक्रमण से अपनी रक्षा न करने के कारण धीरे-धीरे पीछे हटने के लिए बाध्य हो गये क्योंकि आक्रमणकारी न केवल संख्या में बल्कि हथियारों की शक्ति में भी उनमे अच्छी स्थिति में थे। अतः इन आदिवासियों को पहाड़ी भागों और घने जंगलों में शरण लेने के लिये बाध्य होना पड़ा जहाँ आज भी वे एक बड़ी संख्या में निवास करते हैं। अनुमान लगाया गया हैं कि इनकी संख्या लगभग ५० लाख है। इनमें से जो मैदानी क्षेत्रों में छूट गये थे वे धीरे-धीरे बाहर से आने वाली जातियों में घुल-मिल गये अथवा सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण लुप्त हो गये।

भारत की आदिवासी जनजातियाँ बहुत सी उप जनजातियों में विभाजित हैं जो स्वयं अपने आप में परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक के मूल फिरके हैं और या ऐसी उपजातियां है, जो इनसे निकली हैं, जिनमें उनके अपने-अपने रीति-रिवाज प्रचलित हैं। किन्तु इन सभी जनजातियों में कुछ सामान्य विशेषतायें पाई जाती हैं जो इस प्रकार हैं :—

(१) वे सभ्य संसार से दूर जंगलों और पहाड़ों के ऐसे भागों में रहती हैं जहाँ पहुँचना कठिन होता है।

(२) इनके मूल स्रोत तीन हैं : निग्रीटो, आस्ट्रोलाई और मंगोल। उनका उद्भव इन्हीं में के किसी न किसी एक से हुआ है।

(३) वे एक ही जनजातीय भाषा बोलती है।

(४) वे एक प्राचीन धर्म को मानती हैं जिसे **प्रेतवाद** कहा जाता है और भूत-प्रेतों की पूजा ही सबसे महत्वपूर्ण बात मानी जाती है।

(५) वे प्राचीन धंधों द्वारा अपना निर्वाह करती हैं। ये धंधे हैं : जंगली फल-मूल कंदों का इकट्ठा करना, शिकार करना अथवा मछली मारना।

(६) वे अधिकांशत: मांसाहारी हैं।

(७) वे नग्न या अर्द्धनग्न रहती हैं और कपड़ों के स्थान पर पेड़ की छाल और पत्तियों का उपयोग करती हैं।

(८) उनकी आदतें खानाबदोशों जैसी होती हैं और उन्हें मदिरापान और नृत्य से बहुत प्रेम होता है।

भारतीय समाज-कल्याण कार्य सम्मेलन के आयोजन में कलकत्ता में जनजातीय कल्याण समिति की जो बैठक हुई थी, उसमें बहुत से समाज-सेवी कार्यकर्त्ता और मानव-रचना शास्त्री सम्भिलित हुये थे। उस समिति ने वर्तमान जनजातियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित करने का सुझाव दिया था :—

(१) **जनजातीय समुदाय** अथवा वे जो अभी पुराने जंगली निवास-स्थानों पर रहते हैं और जिनके रहन सहन का ढंग भी वही पुराना है।

(२) अर्द्ध-जनजातीय समुदाय, अथवा वे जो प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में बस गये हैं और खेती या उससे सम्बन्धित पेशों को अपना चुके हैं।

(३) सभ्य जनजातीय समुदाय अथवा वे जो शहरी या अर्द्ध शहरी इलाकों में चले गये हैं और आधुनिक उद्योगों में लग गये हैं। इन्होंने बहुत कुछ आधुनिक सांस्कृतिक विशेषताएँ भी अपना ली हैं।

(४) **पूर्ण रूप से घुल मिल गये जनजातीय समुदाय,** अर्थात वे जो भारतीय जनसंख्या में एक दम हिल मिल गये हैं।

जनजातियों का वितरण

जनजातीय लोग मुख्य रूप से जंगलों और पहाड़ों के ऐसे प्रदेशों में रहते है जो बंजर हैं या बहुत ही कम आबाद हैं। ये स्थान समूचे पूर्वी सतपुड़ा में फैले है और गुजरात की पूर्वी सीमा पर स्थित मध्य भारत पठार के दक्षिण से होते हुये विन्ध्याचल पहाड़ियों में पूर्व और पश्चिम की ओर चले गये हैं। एकमात्र दूसरा क्षेत्र जहाँ ये लोग बड़ी संख्या में पाये जाते हैं, आसाम की बाहर की ओर फैली पहाड़ियाँ और वह पहाड़ी प्रदेश है जो आसाम को ब्रह्मा से पृथक करता है।

भारत की आदिवासी जनजातियों का भौगोलिक वितरण तीन मुख्य प्रदेशों में हुआ है।

१. **उत्तरी और उत्तरी पूर्वी प्रदेश**—जनजातियों के लोग हिमालय के उप-प्रदेश और भारत की उत्तरी तथा उत्तर-पूर्वी सीमान्त की पहाडी घाटियों में फैले हुये हैं, जो ब्रह्मा की दक्षिणी-पूर्वी सीमा से मिली हुई है। यह क्षेत्र पश्चिम में लगभग ३१°७′ उत्तर और ३५° उत्तर अक्षांश तथा पूर्व में २३°३०′ उ० और २८° उ० अक्षांस और ७७°३३′ पूर्वी तथा ९७° पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है। इन पहाड़ी प्रदेशों में आसाम, केन्द्रीय खासी और गारो पहाड़ियाँ शामिल हैं।

आसाम और तिब्बत के बीच रहने वाली मुख्य जनजातियों में सुवर्णश्री नदी के पश्चिम में रहने वाली **आका, दफला, मीरी** और **अपातमी** जातियों का और डिहांग घाटी में रहने वाली **गैलांग, मिन्यांग, पासी, पदम** और **पांगी** का उल्लेख किया जा सकता है। **मिस्मी** जनजाति के लोग डिबांग और लोहित नदियों के बीच वाले इलाके में रहते हैं। **चुलिकाटा** और **बेलेजिया** लोग पश्चिमी क्षेत्रों में तथा **डिगारू मेजू** लोग पूर्वी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। उससे भी पूर्व की ओर **खामटी** और **सिंघपो** नामक जनजाति के लोग रहते हैं। उनके आगे वाले क्षेत्र विभिन्न **नागा** कबीलों का अस्तित्व मिलता है जो पटकोई के दोनों ओर पहाड़ी घाटियों में रहते हैं। सिक्किम के उप-हिमालय क्षेत्र में और दार्जिलिंग के उत्तरी क्षेत्र में कुछ बहुत ही प्राचीन जन-जातियाँ मिलती हैं जिनमें **लेपचा** सबसे अधिक उल्लेखनीय है। उत्तर प्रदेश में भी कुछ जनजातियाँ मिलती हैं, जैसे **थारू, भाकसा, खासा, बेंजर, बुइया, माझी, चेरो राजी** और **खरवार**।

२. **मध्यवर्ती प्रदेश**—आदिवासी जनजातियों के दूसरे बड़े समूह नर्मदा और गोदावरी के बीच की पहाड़ी पट्टी में पाये जाते हैं। यही बीच का प्रदेश उत्तरी भारत को दक्षिण के पठार से पृथक करता है। यह प्रदेश २०° से २५° उत्तरी अक्षांश और ७३° से ६०° पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है। यहाँ मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, दक्षिणी राजस्थान, उत्तरी महाराष्ट, बिहार, उडीसा आदि राज्यों में अत्यन्त प्राचीन काल से ये जनजातियाँ रहती चली आ रही हैं।

इस वर्ग की सबसे महत्वपूर्ण जनजातियाँ पूर्वी घाट से लेकर उड़ीसा की पहाड़ियों तक पायी जाती हैं। इनमें गंजाम जिले की **झुआंग**, **खरिया**, **सावरा**, **गाडवा** और **बोंडो** तथा उडीसा की पहाडियों की **खोण्ड**, **भूमिज** और **भुइया** जनजातियाँ शामिल हैं। छोटा नागपुर के पठार में **मुण्डा**, **संथाल**, **ओरांव**, **हास** और **बीरहोर** पाये जाते हैं। उसके पश्चिम में विन्ध्याचल की पहाडियों में **कटकारी**, **कोल** तथा **भील** पाये जाते हैं। भील तो उत्तर-पश्चिम में अरावली की पहाड़ियों तक फैले हुए हैं। **गोंडों** का समुदाय सबसे बडा है और वे गोंडवाना क्षेत्र में पाये जाते हैं। ये लोग दक्षिण में हैदराबाद और उससे मिली कांकर और बस्तर रियासतों में फैले हुए हैं। सतपुड़ा पहाडी श्रेणियों के दोनों ओर और मैकाल पहाड़ियों के चारों तरफ ऐसी ही जनजातियाँ पायी जाती है जिनमें मुख्य हैं: **कोरकू**, **अगारिया**, **प्रधान** और **बैगा**। बस्तर रियासत के पहाडी इलाकों में इन जनजातियों की कुछ बडी ही अनोखी किस्में पायी जाती हैं, जैसे **मुरिया अबुझमार**, पहाडियों की **पहाड़ी मुरिया** और इन्द्रावती घाटी की **बिसनहार्न मुरिया** जनजातियाँ।

३. **दक्षिणी प्रदेश**—जनजातियों का तीसरा प्रमुख वर्ग पश्चिमी घाट के सबसे दक्षिणी भाग में पाया जाता है। यह क्षेत्र वाईनाड से कन्याकुमारी तक ८° से २०° उत्तरी अक्षांश और ७५° से ८५° पूर्वी देशान्तरों के बीच में फैला है। आंध्र प्रदेश, मैसूर, केरल और मद्रास राज्यों में ये लोग रहते हैं। इनका सीमान्त प्रदेशों पर रहना ही इस बात का प्रमाण है कि ये भारत के प्राचीनतम निवासी हैं जिन्हें अधिक सभ्य और उन्नत जातियों के लोगों ने पीछे हटा कर वर्तमान स्थान पर रहने के लिये बाध्य कर दिया। इन स्थानों पर उन्हें बढ़ते हुए दबावों के विरुद्ध सुरक्षा और शरण प्राप्त हुई।

चेंचू लोग उत्तर पूर्व से लेकर कृष्णा नदी के पार नल्लाई मल्लाई पहाडियों के अर्द्धगोलाकार भाग और हैदराबाद में फैले हुए हैं। पश्चिमी घाट पर दक्षिण कन्नड़ कोरागा से लेकर कुर्ग पहाडियों के निचले ढालू इलाके में **युरुवा** और **टोडा** लोग रहते हैं। वाईनाड में **इरुला**, **पनैयान** और **कुरुम्बा** जनजातियाँ पायी जाती हैं। कोचीन और त्रिवांकुर की पहाडी श्रेणियों से होते हुए कन्याकुमारी तक पहाडी इलाकों में भारत की कुछ प्राचीनतम जनजातियाँ पायी जाती हैं जिनमें **कडार**, **कनिक्कर**, **मालबदान**, **मालकुरवान** और **मालपन्तराम** मुख्य हैं। इनमें इनके प्राचीन रीति-रिवाज और मौलिक विशेषताएँ आज भी पायी जाती हैं।

इन तीन प्रमुख भौगोलिक क्षेत्र के अतिरिक्त देश के कुछ अन्य भागों में अथवा भारत की राजनीतिक सीमाओं के भीतर कुछ छोटे जनजातीय वर्ग पाये जाते हैं। इनमें **अण्डमानी** और नीकोबारी भी, जो अण्डमान और नीकोबार के द्वीपों में पाये जाते हैं, भौगोलिक दृष्टि से भारत की प्रमुख आदिवासी जातियों के पृथक

हैं। किन्तु जातीय विशेषताओं के दृष्टिकोण से वे भी भारत की प्रमुख जनजातियों से सम्बद्ध हैं।

जनजातियों की संख्या एवं उनका विकास

भारतीय जनजातियों की जनसंख्या अधिक है। उनकी संख्या की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में दो कारणों से संदेह प्रकट किया जाता है। पहला, वर्गीकरण
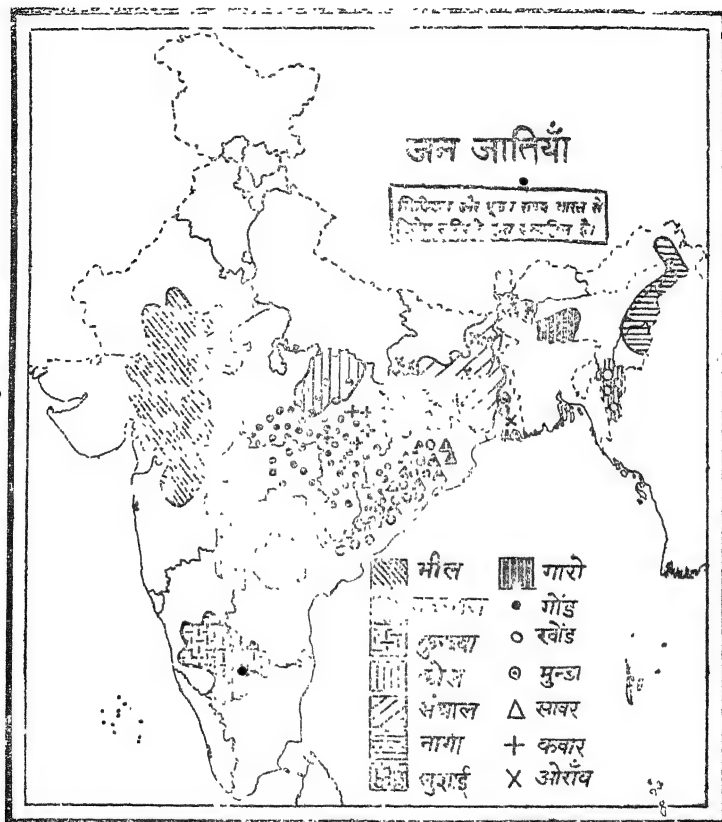
चित्र २२६. जनजातियाँ

की कठिनाई के कारण और दूसरा जान-बूझकर झूठा विवरण प्रस्तुत करने के कारण। अनुमानतः भारत के विभिन्न राज्यों में जनजातियों का वितरण इस प्रकार है :—

राज्य	जनजाति	राज्य की जनसंख्या का प्रतिशत	देश की कुल जनसंख्या का प्रतिशत
आंध्र प्रदेश	१,३२४,३६८	३·६८	०·३०
आसाम	२,०६८,३६४	१७·४२	०·४७

बिहार	४,२०४,७७०	९·०५	०·९६
गुजरात	२,७५४,४४६	१३·३५	०·६३
केरल	२०७,९९६	१·२	०·०५
मध्य प्रदेश	६,६७८,४१०	२०·६३	१·५२
मद्रास	२५२,६४६	०·७५	०·०६
महाराष्ट्र	२,३९७,१५९	६·०६	०·५५
मैसूर	१९२,०९६	०·८१	०·०४
उड़ीसा	४,२२३,७५७	२४·०७	०·९६
पंजाब	१४,१३२	०·०७	—
राजस्थान	२,३०९,४४७	११·४६	०·५३
प० बंगाल	२,०६३,८८३	५·९१	०·४७
नागालैंड	३४३,६९७	९३·०९	०·०८
नेफा	५,०४२	१·५०	—
त्रिपुरा	३६०,०७०	३१ ५३	०·०८
लकाद्वीप, मालद्वीप और अमीनीदीवी द्वीप	२३,३९१	९७·०३	०·०१
मनीपुर	२४९,०४९	३१ ९३	००·६
अंडमान नीकोबार द्वीप	१४,१२२	२२·२२	—
हिमाचल प्रदेश	१०८,१९४	८·०१	०·०२
सिक्किम		२२·९२	०·०१
भारत का योग	२९,८८३,४७०	६·८१	६·८१

(Census of India, Paper No. 1 of 1962, 1962, pp lxvi—lxvii.)

१९११ के बाद जनजातियों की जनसंख्या ह्रासोन्मुखी रही है। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि यद्यपि आदिवासी जनजातियों की जनसंख्या सामान्य तौर पर अधिक बढ़ने वाली है फिर भी अधिकांशतः वे ऐसे क्षेत्रों में रहती हैं जहाँ मलेरिया का गहरा प्रकोप पाया जाता है।

दूसरे, आसाम में मैदानी क्षेत्रों में और उत्तरी कच्छार पहाड़ियों में जनजातियाँ सचमुच हिन्दू धर्म में घुल-मिल गयी हैं।

तीसरे, लुशाई, खासी और जैंतिया के पहाड़ी क्षेत्रों, मध्य प्रदेश और केरल में ईसाई धर्म के प्रचार ने भी इनकी जनसंख्या घटाने में पर्याप्त योग दिया है।

चौथे, दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने से और उनके रहन-सहन के तरीके अपनाने से बहुत-सी जनजातियों के लोग काफी बदल गये हैं। जब कोई जनजाति

सभ्यता के निकट-सम्पर्क में आती है तब वह अपने पड़ौसी की कुछ विशेषताओं को ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार उसकी कुछ मौलिक विशेषताएँ लुप्त हो जाती हैं और जनजातीय भाषा का स्थान आर्य भाषाएँ ले लेती है। मैदानी क्षेत्रों के प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण इन लोगों के जनजातीय अन्धविश्वास मिटते जा रहे हैं।

यहाँ पर उन तत्वों पर विचार कर लेना अनुचित न होगा जिनके कारण जनजातियों का अपने पड़ोसियों से सम्पर्क स्थापित कर लेना आसान हो गया है। इस प्रकार का सम्पर्क निम्नलिखित कारणों से हो सकता है :—

१. बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल के विभिन्न भागों में स्थित जनजातीय क्षेत्रों में खानों और खनिजों के मिलने के कारण दूर-दूर के लोग वहाँ काम करने जाते हैं जिनमें से कुछ वहीं बस जाते हैं। इन क्षेत्रों में कोयले और लोहे की खानें पाई जाती हैं।

२. जनजातियों के मजदूर दूर-दूर स्थित खानों और कारखानों में काम करने के लिए अपना निवास-स्थान छोड़ कर वहाँ चले जाते हैं। आसाम और पश्चिमी बंगाल के बागानों में इस तरह के श्रमिक काफी संख्या में काम करते हैं। इन लोगों के घरबार छोड़कर इन स्थानों पर जाने का मुख्य कारण जनजातीय कृषक स्वामित्व का समाप्त होना रहा है।

३. यातायात और संचार के साधनों के प्रसार के कारण जनजातीय इलाकों से सम्पर्क स्थापित होना भी एक प्रधान कारण है। रेलों और सड़क यातायात ने जनजातीय लोगों की लज्जा को बड़ी तेजी से कम कर दिया है और बहुत से भूमिहीन परिवार सड़कों के अगल-बगल बस गये है। दूसरे, बहुत से लोग बाहर आकर अपने बीच बस गये लोगों की सेवा-टहल करते है। इस तरह उनका सम्पर्क बढ़ रहा है।

४. सुदूर स्थित स्थानों और उन इलाकों में जहाँ पहुँचना कठिन है ईसाई मिशनरियाँ स्थापित हो गयी हैं। इससे सांस्कृतिक सम्पर्क काफी बढ़ा है। इन मिशनरियों ने जनजातीय लोगों को दुःख और बीमारी में तथा जमींदारों और बनियों से लड़ाई होने पर उनकी हर तरह से सहायता की है। इन लोगों ने इन सहायताओं के बदले ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है।

५. प्रशासन के अधिकारियों, सार्वजनिक चिकित्सा-सेवा के कर्मचारियों, जंगल, विभाग के अधिकारियों और उनके गुर्गों, ठेकेदारों, व्यापारियों, बनियों, मुकदमेबाजों, वकीलों, पटवारियों, माल महकमे के गुर्गों तथा दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने से भी जनजातियों की पुरानी मौलिक विशेषताएँ मिटी हैं और उनके निजी संस्कार परिष्कृत हुए हैं।

खण्ड २

राजनीतिक भारत

अध्याय ४५

भारत का बदलता मानचित्र

(CHANGING MAP OF INDIA)

१५ अगस्त १९४७ के पूर्व तक भारत के अन्तर्गत वर्तमान पाकिस्तान का भाग भी सम्मिलित था। संयुक्त भारत का क्षेत्रफल १५७५,१०७ वर्ग मील और जनसंख्या ३,९०० लाख थी। किन्तु इसके बाद ही भारत के दो राजनीतिक विभाग हो गये। देश का यह विभाजन मुस्लिम लीग के इस प्रस्ताव पर आधारित किया गया कि जिन प्रान्तों में मुस्लिम जनसंख्या का बाहुल्य है वहाँ पूर्ण रूप से मुस्लिम राज्य ही हो। ऐसे प्रान्त जिनमें हिन्दुओं की संख्या कम और मुसलमानों का आधिक्य था क्रमशः उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान, पश्चिमी पंजाब, सिंध और पूर्वी बंगाल थे। अस्तु, इन प्रान्तों को मिलाकर ही मुस्लिम पाकिस्तान राज्य की स्थापना की गई। अभिवाजित पंजाब और बंगाल को उत्तरी जनसंख्या के आधार पर ही विभाजित किया गया। इस प्रकार पश्चिमी पंजाब में (जो अब पाकिस्तान के अन्तर्गत है) गुजरान वाला, लाहौर, शेखूपुरा, सियालकोट, कटक, गुजरात, झेलम, मियांवली, रावलपिंडी, शाहपुर, डेरा, गाजीखाँ, झांग, लायलपुर, मांटगोमरी, मुल्तान और गुरुदासपुर के भाग सम्मिलित किये गये। शेष भाग पूर्वी पंजाब के नाम से भारत को मिला अर्थात पंजाब का अविभाजित ६२% पाकिस्तान को और ३८% भारत को मिला।

इस तरह बंगाल के दो टुकड़े किये गये : पूर्वी बंगाल के चिटगांव, नोवाखाली, तिपैरा, बाकरगज, ढाका, मैमनसिंह, जैसोर, पाबना, बोगरा, रँगपुर, फरीदपुर, खुलना, राजशाही आदि जिले, असम के सिलहट जिले का कुछ भाग और मालदा, नादिया, दिनाजपुर के कुछ भाग पूर्वी पाकिस्तान के नाम से पाकिस्तान को और शेष पश्चिमी बंगाल भारत को मिला। इस प्रकार अब पश्चिमी पाकिस्तान में उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान, सिंध, पश्चिमी पंजाब सम्मिलित हैं तथा पूर्वी पाकिस्तान के अन्तर्गत पूर्वी बंगाल तथा असम का सिलहट जिला है।

भारत संघ २६ जनवरी सन् १९५० ई० से एक सर्वाधिकार पूर्ण प्रजा सत्तात्मक जनतन्त्र (Democratic Republic) घोषित हुआ, और तभी से नवीन भारतीय विधान की सृष्टि भी की गई। इस संविधान में भारत को राज्यों का संघ माना जाता है। कोई भी इकाई इससे पृथक नहीं हो सकती। इस नये विधान के अनुसार भारत को निम्नलिखित इकाइयों अथवा राज्यों में बांटा गया :—

(१) क श्रेणी के राज्य (Part A States)—ये वे राज्य थे जिनकी शासन व्यवस्था केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त गवर्नरों द्वारा की जाती थी। इस वर्ग में (१) आन्ध्र (२) असम (३) बिहार (४) बम्बई (५) मध्य प्रदेश (६) मद्रास

(७) उडीसा (८) पूर्वी पंजाब (९) उत्तर प्रदेश (१०) पश्चिमी बंगाल आदि सम्मिलित किये गये। इन राज्यों में २१६ देशी राज्यों का विलीनीकरण किया गया जिनकी जनसंख्या लगभग १७० लाख थी।

चित्र २२०. बंगाल (पूर्वी और पश्चिमी)

इन सम्पूर्ण क श्रेणी के राज्यों का क्षेत्रफल ७,९६,५३६ वर्ग मील और जन-संख्या २७८,८०३,००० थी।

(२) **ख श्रेणी के राज्य** (Part B States)—पहले जो बहुत से छोटे छोटे देशी राज्य थे वे या तो पृथक इकाई के रूप में रखे गये या उन्हें मिला कर संघों का रूप दे दिया गया। ऐसे राज्यों अथवा संघों का शासन राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये राजप्रमुख द्वारा होता था। ऐसे राज्य निम्नलिखित थे—(१) हैदराबाद (२) जम्मू व काश्मीर (३) मध्य भारत (४) मैसूर (५) पटियाला व पूर्वी पंजाब संघ (६) राजस्थान (७) सौराष्ट्र (८) ट्रावनकोर कोचीन संघ। इन राज्यों में २७५ राज्यों को मिलाया गया जिनकी जनसख्या लगभग ३५० लाख थी।

सम्पूर्ण ख श्रेणी के राज्यों का क्षेत्रफल ४,२१,७९५ वर्गमील और जनसंख्या ६,७८,८७,००० थी।

(३) **ग श्रेणी के राज्य** (Part C States)—तीसरी श्रेणी में वे छोटे छोटे राज्य थे जिनका शासन प्रबन्ध केन्द्र से नियुक्त चीफ कमिश्नरों द्वारा होता था। ऐसे छोटे छोटे राज्य निम्नलिखित थे—(१) अजमेर (२) भोपाल (३) बिलासपुर (४) कुर्ग (५) दिल्ली (६) हिमाचल प्रदेश (७) विन्ध्य प्रदेश (८) कच्छ (९) मनी-

पुर (१०) त्रिपुरा। इन राज्यों में ६१ देशी रियासतों का विलीनीकरण किया गया जिनकी जनसंख्या ७० लाख थी।

सम्पूर्ण ग श्रेणी के राज्यों का क्षेत्रफल ७५,३५० वर्गमोल और जनसंख्या ६९,७१,००० थी।

(४) **द श्रेणी के राज्य** (Part D States)—वे राज्य जो भारत सरकार से अपना सम्बन्ध रखते थे उनका प्रबन्ध भी सीधा केन्द्र द्वारा चीफ कमिश्नर की सहायता से होता था। ऐसे राज्य (१) अण्डमान और नीकोबार द्वीप तथा (२) सिक्किम थे। इनका क्षेत्रफल ५,९५९ वर्गमील और जनसंख्या १,६८,००० थी।

चित्र २८१. भारत १९४७–१९५६

भारत सरकार ने १९५३ में एक आयोग (State Reorganisation Commission) राज्यों के पुनर्संठन करने हेतु सुझाव देने को नियुक्त किया। इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन ३० सितम्बर १९५५ को प्रस्तुत किया। इस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार १ नवम्बर १९५६ से देश के सभी राज्यों को जो पहले "क" "ख" "ग" व "द" प्रकार के राज्यों में विभाजित थे, समाप्त कर केवल दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया : (i) राज्य और (ii) केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश। प्रथम प्रकार के राज्यों की संख्या १४ और द्वितीय प्रकार के राज्यों की संख्या ६ थी। यह स्थिति १ मई १९६० तक रही। १ मई को बम्बई राज्य को गुजरात और महाराष्ट्र दो विभिन्न राज्यों में बाँट दिया गया है। इसके पश्चात १ दिसम्बर १९६३ को एक राज्य नागालैंड की स्थापना की गयी। गोआ, दमन, दीव की स्वतंत्रता से केन्द्र प्रसासित की संख्या भी बढ़ी। इस प्रकार अब १६ राज्य और ९ केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्य है।

नये राज्यों के निर्माण में निम्न तथ्यों का विचार रखा गया :—

(क) भारत की एकता व सुरक्षा की अवहेलना न की जाय।

(ख) देश की भाषा और सांस्कृतिक एकरूपता को यथा शक्ति माना जाय (एक भाषा एक राज्य का सिद्धान्त मुख्यतः ध्यान में रखा जाये, किन्तु यह अनिवार्य नहीं।)

(ग) पिछड़े हुए इलाकों को पूर्ण संरक्षण दिया जाय।

(घ) आर्थिक, वित्तीय और प्रशासनिक कार्यों की दृष्टि से ये राज्य सफल हो सकें।

(च) देश में पंचवर्षीय योजना की पूर्ति की जा सके।

(छ) सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण राज्य सबल और सम्पन्न होने चाहिये।

१ मई १९६० तक १४ **राज्य** इस प्रकार थे :—

आन्ध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, बम्बई, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, जम्मू और काश्मीर। **केन्द्र द्वारा शासित** ६ प्रदेश इस प्रकार थे :—

दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणीपुर, त्रिपुरा, अंडमान एवं नीकोबार द्वीप और लकद्वीप, अमीनी द्वीपी द्वीप आदि।

१ मई १९६० के उपरात गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों के निर्माण स्वरूप तथा अन्य परिवर्तनों से भारत के मानचित्र की रूप-रेखा में एक बार फिर परिवर्तन हो गये। हैदराबाद, भोपाल और मध्य प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश और पेप्सू राज्य विलीन हो गया। हैदराबाद का मराठा भाषी भाग बम्बई में, तैलंगाना आन्ध्र प्रदेश में और दक्षिणी भाग मैसूर राज्य में मिला दिया गया तथा भोपाल, मध्य प्रदेश और विन्ध्य प्रदेश, मध्य प्रदेश में मिला दिये गये और पेप्सू को पंजाब में। उत्तर प्रदेश, असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

पुनर्गठित भारत के राज्यों की रचना निम्नांकित प्रकार से हुई :—

आन्ध्र:—पुनर्गठन के पूर्व के आन्ध्र राज्य में हैदराबाद राज्य के तेलंगाना क्षेत्र को मिला दिया गया है जिसमें हैदराबाद, मेडक, निजामाबाद, करीमनगर, वारंगल, खम्माम, नालगोंड़ा, और महबूबनगर जिले तथा अलीदाबाद जिले का कुछ भाग रायचूर, गुलबर्गा और बीदर जिलों के कुछ ताल्लुक तथा नान्देड जिले के कुछ क्षेत्र सम्मिलित हैं।

केरल—केरल राज्य में त्रिवेन्द्रम जिले के चार ताल्लुकों और क्विलोन जिले के शेनकोट्टा ताल्लुक को छोड़कर त्रावणकोर कोचीन का भाग सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इसमें मद्रास राज्य का मलाबार जिला (लक्काद्वीप और मिनिकोय द्वीपों को छोड़कर) तथा दक्षिणी कनारा के कसारागौंद ताल्लुक को भी मिला दिया है।

मध्य प्रदेश—नये मध्य प्रदेश में पुराना मध्य प्रदेश (बुलढ़ाना, अकोला, अरावली, यवतमाल, वर्धा, नागपुर, भण्डारा और चन्दा जिलों को छोड़कर) पुराना मध्य भारत (मंदसोर जिलों के थोड़े से भाग को छोड़कर), भोपाल, विंध्य प्रदेश और सिरोंज (जो पहले राजस्थान का भाग था) सम्मिलित है।

मद्रास—पुराने मद्रास का कुछ भाग केरल में और कुछ भाग मैसूर में चला गया है परन्तु मद्रास में दक्षिण की औरकुछ ताल्लुक बढ़ा दिये गये हैं जिनका नाम नये मद्रास राज्य में कन्याकुमारी जिला रखा गया है।

मैसूर—नये मैसूर में पुराना मैसूर और कुर्ग, बम्बई के बीजापुर, कनारा, और धारवाड़ जिले तथा बेलगाँव जिले का एक बड़ा भाग, हैदराबाद में गुलबर्गा, रायपुर और बिहार जिलों का अधिक भाग और मद्रास के दक्षिणी कनारा और कोयम्बटूर जिलों के कुछ भाग मिला दिये गये हैं।

पंजाब—नए पंजाब में पूर्वी बंगाल और पेप्सू को मिला दिया गया है।
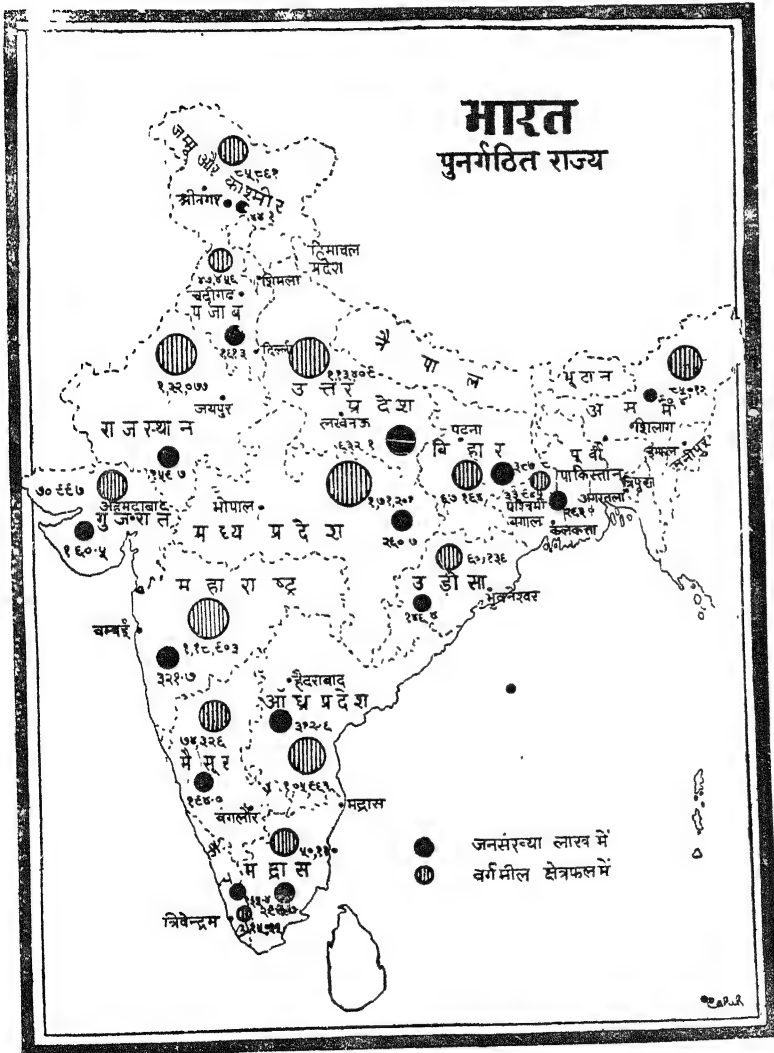
चित्र २३२. भारत का राजनीतिक स्वरूप (१९६० के उपरान्त)

बिहार और **पश्चिमी बंगाल**—बिहार व पश्चिमी बंगाल में केवल ही इतना परिवर्तन हुआ है कि बिहार के पूर्णिया मानभूम जिलों के कुछ क्षेत्र पश्चिमी बंगाल में मिला दिये गये हैं।

राजस्थान—नए राजस्थान में पुनर्गठन के पूर्व का अजमेर राज्य मिला दिया गया है। कोटा जिले का सिरोंज सब-डिवीजन मध्य प्रदेश में मिला दिया गया है और इसके बदले में पुराने मध्य भारत के मदमोर जिले के सुनेल टप्पा (Sunel Tappa) क्षेत्र को राजस्थान में मिला दिया गया है। इसके अतिरिक्त पुराने बम्बई राज्य के बनास कांटा जिले के आबूरोड ताल्लुके को भी राजस्थान में मिला दिया है।

बम्बई—इस राज्य में कच्छ, सौराष्ट्र, हैदराबाद के मराठी भाषा, भाषी क्षेत्र (मराठवाड़ा), मध्यप्रदेश का मराठी भाषी क्षेत्र (विदर्भ, और भूतपूर्व बम्बई राज्य (जिसमें से कन्नड भाषा-भाषी बेलगाँव, बीजापुर, कनारा, धारवाड़ जिले मैसूर मे मिला दिये गये और बनास कांटा जिले का आबूरोड ताल्लुक राजस्थान में मिला दिया गया है) सम्मिलित थे। किन्तु भाषा के अनुसार इस राज्य के पृथकीकरण की मांग गुजरातियों और महाराष्ट्रियों दोनों द्वारा बराबर की जा रही थी अतः १ मई १९६० से इस राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया गया (१) प्रथम को गुजरात, जिसमें गुजराती भाषा भाषी जिले सम्मिलित किये गये हैं तथा (२) दूसरा महाराष्ट्र जिसमे मराठी भाषा भाषी जिले सम्मिलित किये गये हैं।

गुजरात में बनास कांटा (आबू तालुका को छोड़कर), अमरेली, साबर कांटा, महसाना, अहमदाबाद, खेड़ा, पंचमहल, बड़ोदा, भड़ौंच, सूरत, हलार, मध्य सौराष्ट्र, झालावाड़ गोहिलवाड, सोरठ और कच्छ के जिले सम्मिलित किये गये है। इसकी राजधानी अहमदाबाद के निकट साबरमती नदी के किनारे गांधीधाम बनाई जा रही है।

महाराष्ट्र के अन्तर्गत थाना, पश्चिमी खानदेश, पूर्वी खानदेश, नासिक, अहमदनगर, शोलापुर, दक्षिण सतारा, उत्तरी सतारा, कोल्हापुर (चांदगढ़ तालुका सहित) रत्नागिरी, कुलाबा, पूना, उस्मानाबाद, (अहमदपुर, नीलंगा, और उदयगिरि तालुकों सहित) बीड, औरंगाबाद, परभाणी, नांदेड, (विशिष्ठ क्षेत्रों को छोड़कर) बुलढ़ाणा, अकोला, अमरावती, यवतमाल, वर्धा, नागपुर, भंडारा, चांदा एवं बृहत्तर बम्बई जिले हैं।

अन्य राज्य—उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और जम्मू काश्मीर की सीमा रेखा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

इस प्रकार राज्य पुनर्गठन अधिनियम १९५६ के अनुसार १४ राज्य तथा ६ केन्द्रित प्रशासित प्रदेश निर्धारित किये गये। १९५७ में केन्द्र द्वारा शासित नया प्रदेश **ऊपूसी** या **नेफा** (NEFA) के नाम से और बना दिया गया जिसमें आसाम के कामेंग, सुबनसीरी, सियांग, लोहित ओर निख और तुरानसांग डिवीजन रखे गये। इनका शासन प्रबन्ध राष्ट्रपति की ओर से आसाम के राज्यपाल द्वारा किया जाता था। बाद में तुएंनसांग डिवीजन को नागा-हिल्स डिस्ट्रिक्ट से मिला कर नागाहिल्स और **तुएंनसांग क्षेत्र** (NEHTA) बनाया गया।

जुलाई १९६० के बाद से नागा-नेताओं से विचार विनिमय के फलस्वरूप एक और नये राज्य की स्थापना फरवरी १९६४ को की गई। इसे नागा प्रदेश (Naga land) कहते हैं। इसमें कोहिमा, मुकोचुंग और तुएनसाग जिले हैं। इसका प्रशासकीय केन्द्र कोहिमा में है।

१९ दिसम्बर १९६१ से गोआ, दामन, दयू आदि भी स्वतन्त्र हो गये हैं। इनका प्रशासन सीधे केन्द्र द्वारा नियुक्त कमिश्नर द्वारा किया जाता है। इनका क्षेत्रफल १४२६ वर्ग मील तथा जनसंख्या ६·३ लाख है। दादरा और नगरहवेली का क्षेत्रफल १८९ वर्गमील और जनसंख्या ५७,९६३ है।
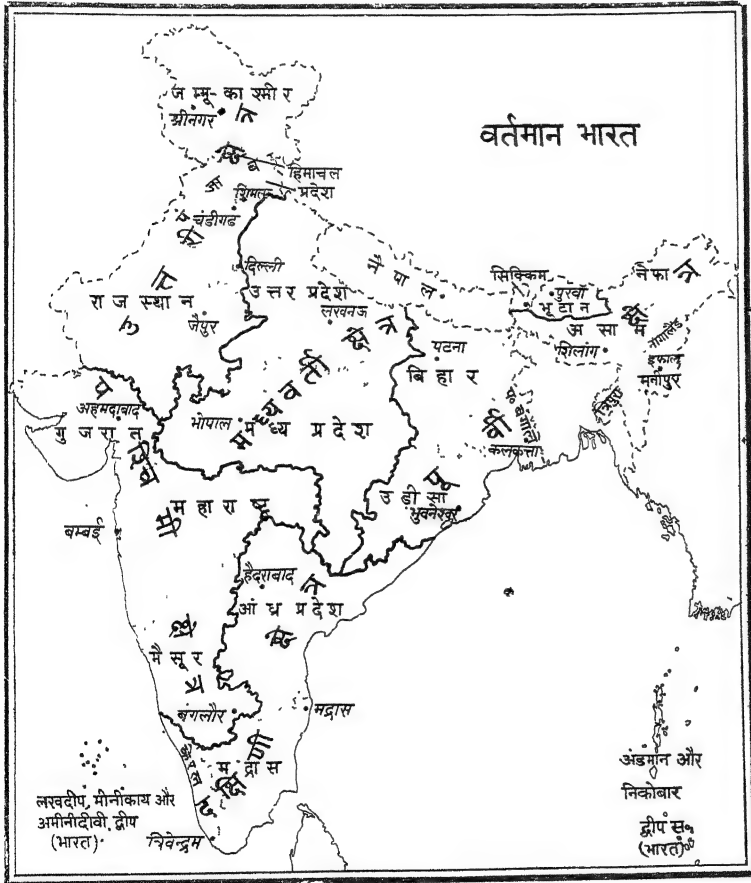
चित्र २३३. वर्तमान भारत

इस प्रकार इस समय भारत में १६ राज्य एवं ९ केन्द्र द्वारा प्रशासित प्रदेश है। इनका क्षेत्रफल ३२,८२,०१६ किलोमीटर और जनसंख्या ४४·०२ करोड़ है।

भारत के राज्य, उनका क्षेत्रफल और जनसंख्या (१९६१)

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमीलों में)	कुल का %	जनसंख्या	कुल का प्रतिशत	घनत्व प्रति वर्गमील	राजधानी
उत्तर प्रदेश	११३,६५४	९ ६५	७३,७४६,४०१	१६·८१	६४९	लखनऊ
बिहार	६७,१९६	५ ७१	४६,४५५,६१०	१०·५९	६९१	पटना
महाराष्ट्र	११८,७१७	१०·०८	३९,५५३,७१८	९ ०२	३३३	बम्बई
आंध्र प्रदेश	१०६,२८६	९·०३	३५,९८३,४४७	८·२०	३३९	हैदराबाद
प० बंगाल	३३,८२९	२·८७	३४,९३६,२७९	७ ९६	१,०३२	कलकत्ता
मद्रास	५०,३३१	४ २७	३३,६८६,९५३	७·६८	६६९	मद्रास
मध्य प्रदेश	१७१,२१७	१४ ५४	३२,३७२,४०८	७ ३८	१८९	भोपाल
मैसूर	७४,२१०	६·३०	२३,५८६,७७२	५·३८	३१८	बंगलौर
गुजरात	२०२,२४५	६·१४	२०,६३३,३५०	४·७०	२७६	अहमदाबाद
पंजाब	४७,२०५	४·०१	२०,३०६,८१२	४·६३	४३०	चंडीगढ़
राजस्थान	१३२,१५२	११·२२	२०,१५५ ६०२	४·६०	१५३	जयपुर
उड़ीसा	६०,१६४	५·११	१७,५४८,८४६	४ ००	२९२	भुवनेश्वर
केरल	१५,००२	१·२७	१६,९०३,७१५	३·८५	१,१२७	त्रिवेन्द्रम
आसाम	४७,०९१	४·००	११,८७२,७७२	२ ७१	२५२	शिलांग
जम्मू काश्मीर	—	—	३,५६०,९०६	०·८१	—	श्रीनगर
नागालैंड	६,३३६	०·५४	३६९,२००	०·०८	५८	कोहिमा

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	कुल का %	जनसंख्या	कुल का प्रतिशअ	घनत्व प्रति वर्गमील	राजधानी
केन्द्र द्वारा प्रशासित एवं अन्य क्षेत्र						
दिल्ली	५७३	०·०५	२,६५८,६१२	०·६१	४·६४०	दिल्ली
हिमाचल प्रदेश	१०,८८५	०·९२	१,३५१,१४४	०·३१	१२४	शिमला
त्रिपुरा	४,०३६	०·३४	१,१४२,००५	०·२६	२८३	अगरतला
मनीपुर	८,६२८	०·७३	७८०,०३७	०·१८	९०	इम्फाल
पांडीचेरी	१८५	०·०२	३६९,०७९	०·०८	१,९५५	पांडीचेरी
उत्तरी पूर्वी सीमा राज्य	३१,४३८	२·६७	३३६,५५८	०·०८	११	शिलांग
सिक्किम	२,७४४	०·२४	१६२,१८९	—	५९	गंगटोक
अंडमान-निकोबार द्वीप	३,२१५	०·२७	६३,५४८	०·०२	२०	पोर्ट ब्लेयर
दादर, नगराहवेली	१८९	०·०२	५७,९६३	०·०१	३०७	—
गोआ, दामन, ड्यू	१,४२६	—	६२६,९७८	०·०४	४४०	पंजिम
लकदीव, मीनीकॉय अमीनीदीवी द्वीप	११	०·००१	२४,१०८	०·०१	२,१९२	कोजीखोड
भारत का योग	१,१७८,९९५	—	४३९,२३५,०८२	—	३७३	नई दिल्ली

अध्याय ४६

आन्ध्र प्रदेश

(ANDHRA PRADESH)

(१) **सीमा, विस्तार आदि**—आन्ध्र प्रदेश भारत का एक नवीन राज्य है। मद्रास के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित ११ जिलो तथा हैदराबाद के कुछ जिलों को मिलाकर १ अक्टूबर १९५३ को इस राज्य की स्थापना की गई थी। यह तेलगू भाषा-भाषियो का राज्य है। यह ७६° ५′ से ८४°५०′ पूर्वी देशान्तर के बीच और १२°३′से १९°१५′अक्षाशों के बीच फैला है। इसका क्षेत्रफल २८५,५४६ वर्ग किलोमीटर
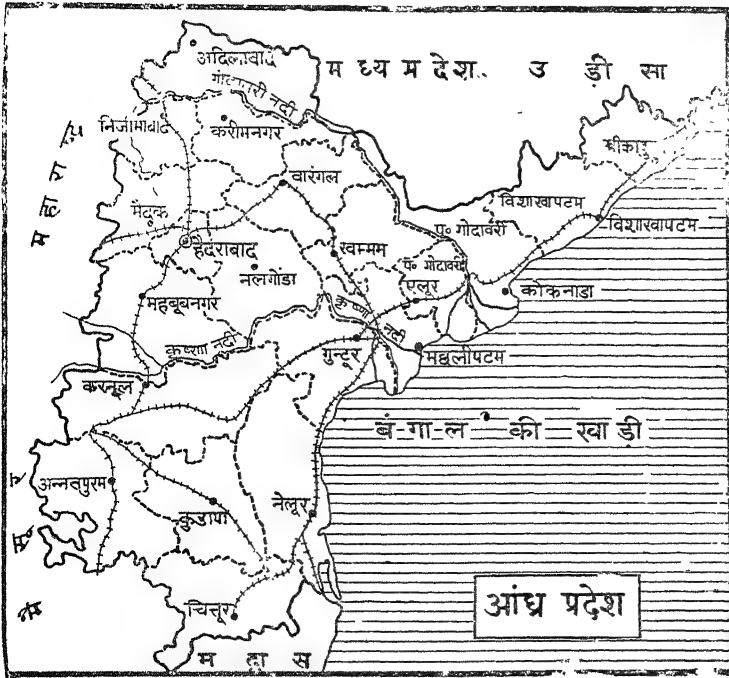
चित्र २३४. आंध्र प्रदेश

है और जनसंख्या ३५,९८३,४४७ है। इसके पूर्व में उडीसा, उत्तर में उड़ीसा और मध्य प्रदेश, पश्चिम में महाराष्ट्र और मैसूर है। इसके दक्षिण में मद्रास और पूर्व में बंगाल की खाड़ी है।

आन्ध्र राज्य के २० जिले ये हैं :—

श्री काकाकुलम, विशाखापट्टनम, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, कृष्णा, गंतूर, नैलोर, चित्तूर, कड्डप्पा, अनन्तपुर, कर्नूल, हैदराबाद, महबूबनगर, आदिलाबाद, निजामाबाद, मेढ़क, करीमनगर, वारंगल और नालगोंदा ।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—इस राज्य का अधिकाँश भाग मैदानी है । इस मैदानी भाग का विस्तार पूर्व की ओर जहाँ कृष्णा और गोदावरी के डेल्टे स्थित हैं । इस मैदान की रचना नदियों की काँप मिट्टी द्वारा हुई है अतः यह बहुत उपजाऊ है । पश्चिमी भाग पहाड़ी है और पठारी है । यह बहुत कठोर चट्टानों का बना हुआ है । पठारी भाग १५२ से ६१० मीटर तक ऊँचा है । राज्य की मुख्य नदियाँ गादावरी, कृष्णा, मंजिरा, प्राणहिता, इन्द्रावती, पेनगंगा, घाघरा, साबरी, तुँगभद्रा, नागावली, वसुधरा, दूधगगा, येरला और पेन्नार है । अधिक नदियाँ होने के कारण इस राज्य को नदी राज्य (Rive. State) कहा जाता है । भूरचना की दृष्टि से आंध्र प्रदेश तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—
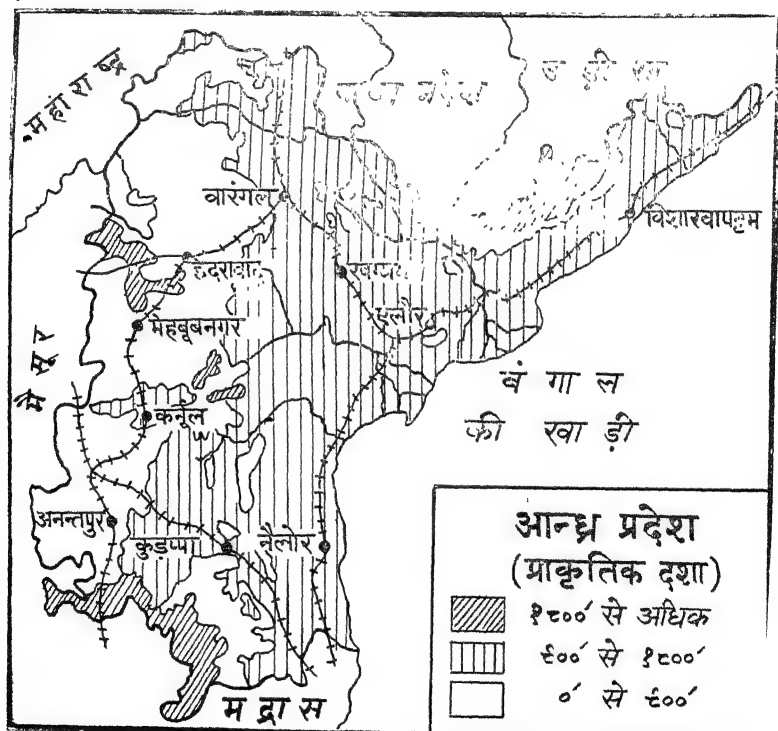
चित्र २३५. आंध्र प्रदेश (प्राकृतिक दशा)

(१) **तैलंगाना प्रदेश**—इस भाग की भूमि पथरीली है जो कठिन चट्टा का ब.ा है । यहाँ लाल मिट्टी पाई जाती है जो अधिक उपजाऊ नहीं है ।

(२) **दक्षिणी पश्चिमी पहाड़ी भाग**—यह तेलंगाना का ही एक भाग है। यह भी पहाड़ी है। पश्चिम का भाग पूर्व की ओर ढालू है। इस राज्य का सबसे ऊँचा धरातल बिल्कुल उत्तरी भाग में महेन्द्रगिरी है जो समुद्र तल से १४६४ मी० ऊँचा है। महेन्द्रगिरि के अतिरिक्त अन्य पहाड़ियाँ-पाला ओनडूलू, गालिक ओनडूलू, वेला-गादा, सिहाचलय, नरसिंहमा-कुडा, गोलकुँडा, डोल्फिन्सनाज, अनन्तगिरि, नाला मलाई, सह्यादरी, उत्तरी बालाघाट, देवेरकुँडा और भुगीर है।

(३) **पूर्वी तटीय भाग** —यह मैदान लगभग ८०५ किलो मीटर लम्बा है। और पूर्व मे समुद्र के किनारे तक फैला है। गोदावरी, कृष्णा और पेनार के डेल्टा इसी भाग मे शामिल हैं। इस भाग में इन नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी जमी है।

मिट्टियाँ :—इस राज्य की नदियों की घाटियों तथा डेल्टाई प्रदेश की मिट्टी पुरानी कांप की मिट्टी है। अन्य भागों की मिट्टियां लाल, काली और भूरे रंग की है। तेलंगाना की मिट्टी ग्रेनाइट चट्टानों के चूरे से बनी हुई है और उसमें चूने का अंश भी मिश्रित है, अतः वह मिट्टी धान और ज्वार की फसलों के उत्पादन के लिये बड़ी अनुकूल है। पठारी भाग की मिट्टी पथरीली और अनुपजाऊ है। इसलिए यहाँ की अधिकाँश पहाड़ियाँ वनस्पति विहीन हैं। तथा पथरीला, धरातल भद्दे प्रस्तर खण्डों तथा गोलाकार पत्थरों के टुकड़ों से ढका हुआ है।

(३) **जलवायु व वर्षा** :—इस राज्य की जलवायु गर्म और कुछ नम है। यहाँ जुलाई के औसत तापक्रम २९° से ३५° सें० ग्रेड तक रहते हैं। जाडों में औसत तापक्रम १८° से २४° सें० ग्रेड रहने है। वर्षा का वार्षिक औसत ७९ सेंटी-मीटर है। पूर्वी भाग की जलवायु पश्चिमी भाग की अपेक्षा सम है क्योंकि पूर्वी भाग में समुद्र का समकारी प्रभाव रहता है और वर्षा भी १२७ सेंटीमीटर के लगभग हो जाती है। वर्षा की मात्रा अलग अलग भागों में अलग अलग होती है। पूर्वी गोदा-वरी जिले में सबसे अधिक (१४० सेंटीमीटर) और सबसे कम अनन्तपुर में (४० सें० मीटर) होती है। उत्तरी भाग मे वर्षा का औसत ११४ सें० मीटर से १२७ सें० मी० तथा दक्षिणी और दक्षिणी-पश्चिमी भागों में ५१ सें० मीटर तक रहता है। पूर्वी भाग में वन और झीलों के कारण सापेक्ष आर्द्रता काफी ऊँची रहती है। नदियों की घाटियों में होकर बंगाल की खाड़ी के चक्रवात राज्य में घुम आते हैं किंतु पठारी बनावट के कारण पश्चिमी भाग तक नहीं पहुँच पाते। यहाँ की वर्षा समय और मात्रा दोनों की दृष्टि से अनिश्चित है अतः श्री काकाकुलम और विशाखापट्टनम जिले तथा गोदावरी और नैलोर मिलों के कुछ भाग समय समय पर अनावृष्टि या अति-वृष्टि के कारण अकाल से पीड़ित रहते हैं।

सिंचाई :—इस राज्य में ७४ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जाती है। यहाँ रोमपेरू, ड्रेनेज, रालायाद, तुँगभद्रा, कृष्णा, ऊपरी पेनार और भैरवानी-टिप्पा नामक ६ बड़ी बड़ी योजनाऐं कृष्णा, गंतूर, नैलोर और अनन्तपुर जिलों में लग-भग ३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करती हैं। अभी १७ नई योजनायें और कार्या-न्वित की जा रही हैं—४ योजनायें श्री काकाकुलम जिले में; ३ नैलोर जिले में, ३ चित्तूर जिले में, २-२ कडुप्पा और अनन्तपुर जिले में तथा १-१ योजना विशाखा-पट्टनम, पश्चिमी गोदावरी और कर्नूल जिलों में। इनसे लगभग ४ लाख एकड़ भूमि

पर सिंचाई होगी। तेलगाना जिले में राजोली बांध से महबूबनगर जिले मे लगभग १ लाख एकड भूमि और कदम योजना से आदिलाबाद जिले की ६७ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी।

(४) **उपज**—(क) **वनस्पति** :—राज्य के एक पाँचवे भाग पर वन फैले हुए हैं। अधिकतर जगल पूर्वी घाट की पहाड़ियों पर मिलते हैं। भीतरी भाग में वर्षा की कमी से प्राकृतिक वनस्पति का अभाव है। पठारी भाग पर घास पाई जाती है। यहाँ के जंगलों मे चौड़ी पत्ती वाले पेड़ पाये जाते है जिनमे सागौन, तुन, बास इब्ल रोजवुड़ व कुसुम आदि पेड़ मुख्य है। ऊँचे भागों में कोमल लकड़ी के पेड़ मिलते हैं जिनसे कागज तथा नकली रेशम बनाया जाता है। अब कृष्णा, गोदावरी नदियों के प्रवाह क्षेत्रों में भी सागवान के वन लगाये गये हैं। मेंहदी के वृक्ष हैदराबाद और सिकन्दराबाद नगरों के चारों ओर लगाये गये है। बाँस और उष्ण कटिबन्धीय देवदार के वृक्ष कागज की लुब्दी बनाने को तथा काजू के वृक्ष लगाये गये हैं।

(ख) **कृषि**—आन्ध्र एक कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ के ७० प्रतिशत लोग इसी धन्धे में लगे हैं। कुल भूमि के ४०% भाग पर खेती की जाती है। यहा विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा मिट्टी होने के कारण अनेक प्रकार की फसले पैदा की जाती हैं। चावल यहाँ की फसलों में मुख्य है। यहाँ भारत की कुल पैदावार का १३% चावल उत्पन्न किया जाता है। चावल के बाद ज्वार, बाजरा, तिलहन, तम्बाकू, कपास व गन्ना यहाँ की मुख्य फसलें है। ज्वार, बाजरा पश्चिम के पठारी और शुष्क भाग में बोया जाता है। तिलहन की खेती सर्वत्र ही होती है। गन्ना और तम्बाकू उपजाऊ भागों की फसलें हैं। डेल्टाई भाग में जूट की खेती का भी प्रयत्न किया जा रहा है। मैसूर के बाद आन्ध्र प्रदेश मे ही जंगली पशुओं और चिड़ियों की विभिन्नता अधिक पाई जाती है। वारंगल जिलों में पारवल भील के चारों ओर के वनों में बिसन बैल पाया जाता है। उच्च प्रदेशो में चार सींगों वाला बारहसिंघा और जंगली सूअर भालू, लक्कड़ बग्घा, भेड़िया, चीता तथा गीदड़ आदि जंगली जानवर मिलते हैं।

यह राज्य विशाल पशु सम्पति एवं पशु-पालन के क्षेत्रों में अति उन्नत होने के कारण भारत के प्रमुख राज्यों में है। यहाँ के **ओंगोल** और **पुगानोर** नस्ल के बैल प्रसिद्ध है। तटीय भागों में **मुर्रा भैंसें** पाली जाती हैं और घी का उत्पादन यहाँ सबसे अधिक किया जाता है। सम्पूर्ण तटीय प्रदेश में नैलोर से लेकर श्रीकाकाकुलम तक दुग्धशाला उद्योग विकसित किया गया है। यहाँ देश भर में सबसे अधिक मुर्गियाँ भी पाली जाती है जो महाराष्ट्र, मद्रास और कलकत्ता को जीवित अवस्था में भेजी जाती हैं। मुर्गियों के अंडे बम्बई और मद्रास तथा बतख और बतखों के अंडे कलकत्ता भेजे जाते है। अधिकतर बतखें कोलेरून भील के आस पास पाई जाती हैं। क्योंकि इस भील में बतखों के लिए घोघे और मछलियाँ अधिक मिलती है। आंध्र राज्य की तट रेखा ८६४ कि०मी० लंबी है तथा इसके निकट विस्तृत महाद्वीपीय तट पाये जाते हैं जिनमें विविध प्रकार की मछलियों का भंडार भरा है। विशाखापत्तनम और मछलीपट्टम बन्दरगाह मछलियां पकडने के मुख्य केन्द्र है। यहाँ सारडाइन, रिबन, प्रान, पोमफ्रेट और फैटफिश अधिक पकड़ी जाती हैं।

(ग) **खनिज पदार्थ** :—खनिज पदार्थ में यह राज्य बहुत धनी है। मैंगनीज, बैराइटस, गंधक, स्लैट, ताँबा, सोडा, कैनाइट, अभ्रक, कोयला, लोहा, चूने का

पत्थर, ग्रेफाइट, एसबेसटस, मैंगनीज व क्रोमाइट आदि यहाँ के मुख्य खनिज हैं। यहाँ प्रतिवर्ष भारत का १५% अभ्रक, १० प्रतिशत मैगनीज और ५% कोयला उत्पन्न होता है। अभी यहाँ भूगर्भ सर्वेक्षण का कार्य चल रहा है। यह आशा की जाती है कि यहाँ और भी कई खनिज पदार्थों का पता लगेगा। भारत का ६५% **बैराइट** यहीं से मिलता है। **कोयला** गोदावरी नदी की घाटी में तदूर, कोटागुड़म और गोदावरी डेल्टा में; **लिग्नाइट** गोदावरी और कृष्णा डेल्टा में; **यूरेनियम** नैलोर जिले में; **सोना** और **हीरा** तेलगाना में पाया जाता है। **लोहा** अनन्तपुर, चित्तूर, कडुप्पा, कर्नूल, खम्माम, कृष्णा, विशाखापत्तनम नैलोर और गतूर जिलों में मिलता है। पिछले दो जिलों में लोहे के सुरक्षित भडार ३६ करोड़ टन के कूते गये हैं। **मैगनीज** श्री काकाकुलम, कडुप्पा और विशाखापत्तनम जिले से प्राप्त किया जाता है। **बैराइट्स** कडुप्पा, कर्नूल और अनन्तपुर जिलो से; **एस्बस्टस** अनन्तपुर और कडुप्पा जिलों से; **चीनी मिट्टी** आदिलाबाद, अनन्तपुर, कडुप्पा और कर्नूल जिलों से; **अग्नि-मिट्टी** आदिलाबाद से; **कायनाइट**, नैलोर से; **चूने का पत्थर** आदिलाबाद, अनन्तपुर, गन्तूर और कर्नूल जिलों से तथा अभ्रक नैलोर और विशाखापत्तनम से और **कैलसाइट** अनन्तपुर जिले से प्राप्त किया जाता है।

आंध्र प्रदेश की जल शक्ति भी अपार है। यहाँ लगभग १० करोड़ एकड़ फीट जल सिंचाई और विद्युत शक्ति के लिए उपलब्ध है। यहां रामाप्पा तथा पाखल झीलें, कमवम, कनीगिरी, अनन्तपुर, बुकराया-समुद्रम और नन्देपल तालाव तथा उस्मान सागर, हिमायत सागर और निजाम सागर आदि बांध सिंचाई के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। अब तुंगभद्रा बाध, नागार्जुन सागर, योजना और कृष्णा बांध योजना से भी सिचाई की जा रही है।

(५) **उद्योग धन्धे**—यह राज्य औद्योगिक दृष्टि से अभी विशेष उन्नत नहीं है किन्तु इसका भविष्य बहुत ही उज्जवल है क्योंकि यहाँ प्राकृतिक सम्पत्ति बहुत है। वतमान उद्योगों में सूती कपड़ा उद्योग राज्य का प्रमुख उद्योग है। **सूती कपड़े** बनाने के यहाँ १२ बड़े कारखाने हैं जो अधिकतर हैदराबाद, औरंगाबाद, सिकन्दराबाद, गुलबर्गा और गुन्तकल में केन्द्रित है। इसके अतिरिक्त यहाँ राजमहेन्द्री में और सीरपुर में दो बड़े कागज़ बनाने के मिल; दस चीनी बनाने, दो सीमेन्ट बनाने, चार सिगरेट बनाने के कारखाने है। विशाखापट्टन में जहाज बनाने का भारत का एक मात्र कारखाना है। यहाँ तेल साफ करने तथा रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना भी है। सिरपुर में नकली रेशम और चीनी मिट्टी के बर्तन भी खूब बनाये जाते है। हैदराबाद में एस्बसटस से सीमेट की चद्दरें तथा गडूर में चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के कारखाने हैं।

आंध्र प्रदेश में अनेक कुटीर उद्योग किये जाते हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण हाथ से कपड़ा बुनने का है। करीमनगर मे **चांदी के महीन तारों** से विभिन्न प्रकार के सुन्दर और कलात्मक डिजाइनदार पदार्थ तैयार किये जाते है। यहाँ सिगरेट रखने की डिब्बियाँ, तश्तरियाँ, गले की मालायें, बटन, पानदान, इत्रदान, तोते-मोर, मछली आदि की आकृति में तैयार किये जाते है और चांदी के तारों से उन पर सुन्दर डिजाइनें बनाई जाती हैं। **खिलौने और फर्नीचर** भी खूब बनाया जाता है विशेषकर कोंडापल्ली, निर्मल, ऐत्तीकोप्पाका, और तिरूपत्ती में। यहां विभिन्न देवी-

देवताओं, फलों, पशु पक्षियों की मूर्तियाँ और खिलौने बनाये जाते हैं। **कालीन व दरियाँ** वारंगल और इलुरू में बनाये जाते हैं। **लाख की वस्तुयें** नरसापुर में; **हाथीदांत और सींग** की वस्तुऐं पच्चीकारी और मीनाकारी सहित मट्टीकोपाका तथा तिरूपत्ती में बनती है। चन्दन, आबनूस और हाथीदांत के बेलबूटे बनाकर अनेक प्रकार की वस्तुयें तैयार की जाती है। **जाली की बुनाई और लेस का सामान** पश्चिमी गोदावरी जिले के नरसापुर और पल्लाकोल क्षेत्र में बनाया जाता है। हैदराबाद व विजयवाड़ा में दियासलाइयाँ बनाई जाती हैं।

(६) **जनसंख्या**—यहाँ की जनसंख्या लगभग ३$\frac{१}{२}$ करोड़ है। जनसंख्या का घनत्व ३३९ व्यक्ति प्रति वर्गमील का है। किन्तु हैदराबाद जिले का घनत्व १०५४ व्यक्ति का है। आदिलाबाद जिले का घनत्व सबसे कम अर्थात् १६२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। यहाँ चेंचू, भील, कोलम, कोया, गौंड आदि आदिम जातियाँ भी पाई जाती है। शहरों व गांवों में आंध्र के लोगों की मुख्य भाषा तेलुगू है तथा ये द्राविड़ जाति के है। एक लाख आबादी वाले नगर ११ हैं। ये क्रमशः हैदराबाद, विजयवाड़ा वारंगल, गंतूर, विशाखापत्तनम, राज-महेन्द्री, काकीनाड़ा, इलुरू, नैल्लोर, बन्दर (मछलीपट्टनम) और कर्नूल हैं।

(७) **यातायात**—यातायात की दृष्टि से यह राज्य अधिक विकसित नहीं है। आंध्र में राष्ट्रीय मार्गों की लम्बाई १४०९ मील है। राज्यकीय मार्गों की २०७२ मील और जिला बोर्डो की ५९८५ मील है। कुल सड़कों की लम्बाई १४,५०० मील है। सरकारी बसें तेलंगाना जिले में अधिक चलती हैं। राज्य में केवल २,९०२ मील लम्बी रेलवे लाइनें फैली हैं जो विशाखापट्टनम को कलकत्ता, रायपुर तथा मद्रास से मिलाती हैं। हैदराबाद वायु मार्ग के द्वारा कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, नागपुर तथा मद्रास से मिला हुआ है। बेगमपेट में हवाई अड्डा तथा विशाखापत्तनम और विजयवाड़ा में हवाई पट्टियाँ बनी हुई हैं। कृष्णा और गोदावरी डेल्टा की नहरों और बकिंघम् नहर में साल भर नावें चलाई जाती हैं।

नगर—हैदराबाद, विशाखापट्टनम, राजमहेन्द्री, गंतूर, कर्नूल, सिरपुर, गोलकुन्डा यहाँ के मुख्य नगर हैं।

काकीनाड़ा, मछलीपट्टम, कलिंगपट्टम, बरूआ, भिमूनीपट्टम, वदारेवू, नरसापुर और कंडालेरू इस राज्य के बन्दरगाह हैं।

असम
(ASSAM)

(१) **सीमा,विस्तार आदि**—आसाम भारत के उत्तरी पूर्वी कोने पर स्थिति है। यह २३° और २८° उत्तरी अक्षांश और ९०° ५०′ तथा ९७° पूर्वी देशान्तर के बीच फैला हुआ है। इसकी आकृति कुछ त्रिकोण की भाँति है। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत, तिब्बत व भूटान, पूर्व में ब्रह्मा और दक्षिण में जगलों से ढकी पहाड़ियाँ हैं जो हिमालय से लेकर ब्रह्मा तक फैली हुई हैं। इसके पश्चिम में पश्चिमी बगाल कूच
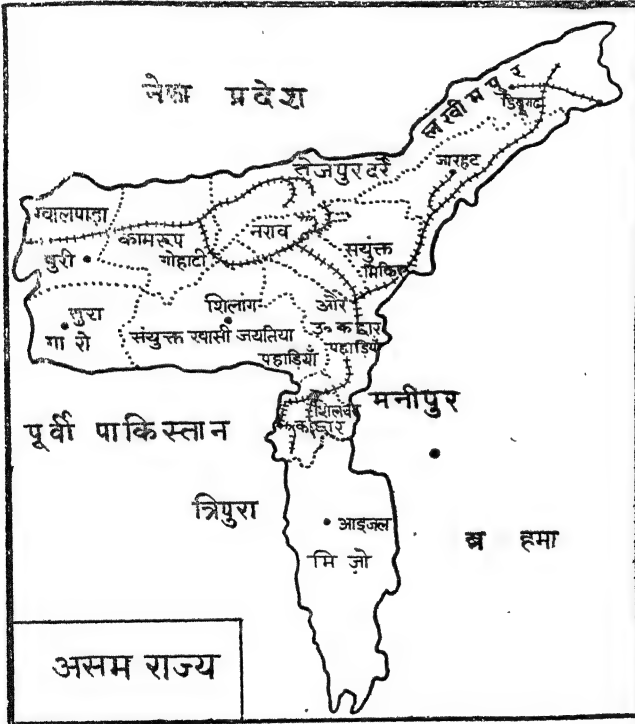
चित्र २३६. असम प्रदेश

बिहार और पूर्वी पाकिस्तान हैं। उत्तर पश्चिम में दार्जिलिंग जिला है जहाँ यह भारत से मिलता है। इस राज्य का क्षेत्रफल २२०,१८० वर्ग किलोमीटर और जन-संख्या ११,८७२,७७२ है।

असम में ११ जिले है ये क्रमश: गोलपाड़ा, कामरूप, धरांग, नवगांव, शिवसागर, लखीमपुर, कछार, गारो पहाड़ियाँ, खासी जयन्ती पहाड़िया, मिकिर और उत्तरी कछार पहाड़ियाँ और मिजो पहाड़ी जिला।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—प्राकृतिक बनावट के अनुसार असम राज्य तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (१) ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी (२) मध्य पहाड़ी प्रदेश और (३) दक्षिण में सुरमा की घाटी।

(१) **ब्रह्मपुत्र या असम की घाटी**—आसाम के उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणी है जो इसके उत्तर पूर्वी कोण पर दक्षिण की ओर मुड़कर ब्रह्मा में योमा के नाम से प्रसिद्ध है। इस श्रेणी का जो भाग आसाम की ओर पड़ता है वह भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जैसे **पटकोई, भुवन, लुसाई, मनीपुर** आदि की पहाड़ियाँ फैली हैं। मध्य में गारो, खांसी, जयन्तिया और कछार पहाड़ियाँ फैली है। उत्तर और मध्य के इन पहाड़ों के बीच में ब्रह्मपुत्र की घाटी है जो प्राय: ८०५ किलोमीटर लम्बी और ८० किलोमीटर चौड़ी है। यह घाटी समुद्रतल से ४५ मीटर से अधिक ऊँची तथा बहुत ही तंग है। इस घाटी में ब्रह्मपुत्र अपनी

चित्र २३७. असम प्राकृतिक

सहायक नदियों के साथ बहती है। इसका ढाल उत्तर-दक्षिण दोनों की ओर हैं। अत: उत्तर की ओर हिमालय से तथा दक्षिण की ओर आसाम की पहाड़ियों से कई नदियाँ निकलकर इसमें मिलती हैं। बाँये किनारे से डिहिंग, धनसिरी तथा कालंग नदियाँ और दाहिने किनारे से डिबोग, मानस और सुबंसीरी नदियाँ इसमें आकर मिलती है।

ब्रह्मपुत्र के दोनों किनारों पर जंगलों से ढके हुए दलदल हैं । प्रायः नदी में बाढ़ आ जाने से पानी बहुत दूर तक इसके दोनों ओर फैल जाता है इससे यहाँ दल-दल बन गये हैं । ब्रह्मपुत्र की गहराई अधिक है अतः डेल्टा से डिब्रूगढ़ तक इसमें स्टीमर चल सकते हैं । किनारे की भूमि कछारी मिट्टी की बनी होने के कारण बहुत उपजाऊ है । इसमें धान अधिक पैदा किया जाता है । घाटी के मध्य में बाँस, ताड़ तथा अन्य फलदार वृक्ष पाये जाते हैं । इस घाटी में नदी द्वारा लाई गई उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है । यह राज्य का सबसे उन्नत प्रदेश है । खेती के अतिरिक्त यहाँ कोयला और पेट्रोलियम निकाला जाता है । यातायात की व्यवस्था अच्छी होने से घनी जनसंख्या पाई जाती है । इस घाटी में शिवसागर, लखीमपुर, धरांग और नवगाँव जिले हैं ।

(२) **मध्य का पहाड़ी प्रदेश**—कहा जाता है कि असम का यह मध्य पहाड़ी प्रदेश किसी समय राजमहल की पहाड़ियों से मिला हुआ था । इसी से यह कोयला और चूने का पत्थर मिलता है । इन पहाडियों का ढाल उत्तर और दक्षिण दोनों ही ओर है । इसके उत्तर की ओर का मैदान हिमालय के ढाल तक फैला है और दक्षिण की ओर सुरमा नदी है । इन्ही के बीच में शिलांग का पठार है जो ८० किलोमीटर की लम्बाई और ६४ किलोमीटर की चौड़ाई में स्थिति है । यह पहाड़ी प्रदेश पूर्व से पश्चिम तक ६१० से १८२९ मीटर तक की ऊँचाई में फैला है । इस प्रदेश की मुख्य पहाड़ियाँ, गारो, जयन्तिया, खासी और कछार हैं । यह पहाडियाँ प्राचीन कठोर दक्कन की चट्टानों से बनी हैं । रचनात्मक दृष्टि से हिमालय पर्वत से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है । यह प्रदेश पूर्व की ओर से असम को ब्रह्मा से अलग करता है । इस ओर की मुख्य पहाड़ियाँ पटकोई, नागा भुवन और लुशाई हैं । यह पहाड़ियाँ हिमालय की तरह से मोड़दार पर्वत हैं । इनका ढाल उत्तर की ओर से बहुत ही क्रमशः है । बंगाल की खाड़ी से आने वाले मानसून द्वारा घनी वर्षा हो जाती है । पहाड़ियों के निचले ढालों पर साल और ओक के सदाबहार वृक्ष तथा ९१४ मीटर से अधिक ऊँचाई पर नुकीली पत्ती वाले सदाबहार वृक्ष मिलते हैं ।

(३) **सुरमा की घाटी**—इसे बारक घाटी (Barak valley) भी कहते हैं । यह गारो, खासी, जैयन्तिया और नागा पहाड़ियों के दक्षिण में है । इस मैदान की अधिक से अधिक लम्बाई २०० किलो मीटर और चौड़ाई ९७ किलोमीटर है । उसका पश्चिमी भाग (सिलहट) पाकिस्तान में चला गया है । इस घाटी का पूर्वी भाग पूर्वी आसाम का सबसे उपजाऊ भाग है । इसके दक्षिण पूर्व में भूमि क्रमशः ऊँची होती जाती है और अन्त में मनीपुर और लुशाई की पहाड़ियाँ आ जाती हैं । उत्तरी भाग में बाँस के जंगल और अन्य भागों में घास और सरपत पैदा होती है ।

मिट्टियाँ—आसाम की मिट्टियों की सबसे अधिक विशेषता उनका तेजाबी होना है । नदियों की घाटी की कांप मिट्टी कम तेजाबी होती है किन्तु घनी वर्षा वाले भागों में मिट्टी अधिक तेजाबी पाई जाती है । **लाल मिट्टियाँ** लुशाई, नागा, खाशी और जयन्तियाँ पहाड़ियों तथा कछार और शिवसागर जिलों में मिलती हैं । **लैटेराइट** मिट्टी मुख्यतः कछार जिले के कुछ भाग में एक छोटे टुकड़े के रूप में तथा जयन्तिया और नवगाँव जिलों में विस्तृत क्षेत्रों में मिलती है । नवीन कांप मिट्टियाँ अधिकतक शिवसागर, धरांग, नवगाँव और गोलपाड़ा जिलों में मिलती हैं । यहाँ की सभी मिट्टियों में नेत्रजन और जीवांशों की कमी है ।

(३) जलवायु और वर्षा—यहाँ की जलवायु बहुत नम है। वर्षा अधिक होने के कारण यहाँ पर सर्दी में अधिक सर्दी और गर्मी में अधिक गर्मी नहीं पड़ती है। वर्षा नदी और पहाड़ों की अधिकता के कारण यहाँ का जलवायु आदर्श है। यहाँ मलेरिया और काले ज्वर का अधिक प्रकोप रहता है। यहाँ का अधिक से अधिक तापक्रम २६° सें० ग्रेड और कम से कम तापक्रम १८° से० ग्रेड रहता है। शीत ऋतु में यहाँ नदियों के कारण कुहरा अधिक पड़ता है यहाँ तक कि कभी कभी तो घोर अन्धकार छा जाता है।

दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के कारण यहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है। सम्पूर्ण राज्य की औसत वार्षिक वर्षा २५४ से० मीटर के लगभग होती है। चेरापूँजी पर १३३३ से० मी० से भी अधिक वार्षिक वर्षा प्रतिवर्ष होती है। सन् १८६१ में तो यहाँ ६०५ इंच वर्षा हुई थी किन्तु मध्य घाटी के जो भाग वृष्टि छाया में है वहाँ भी २०४ से० मीटर वर्षा हो जाती है। वर्षा लगभग ८ महीनों तक होती रहती है। असम में शीत ऋतु छोटी तथा वर्षा की ऋतु लम्बी होती है। खुश्क गर्मी की ऋतु का अभाव ही रहता है। यहाँ सर्दी गर्मी सभी ऋतुओं में तूफान आते हैं। कभी तो इन तूफानों के साथ भयानक भूचाल भी आ जाते हैं। वर्षा की बहुतायात के कारण नदियाँ अधिक हैं और भूमि दलदली बन गई है। अधिकतर बाढ़ों का प्रकोप रहता है।

• **(४) उपज (क) वनस्पति**—पहाड़ी प्रदेश होने के कारण जंगलों की अधिकता है। यहाँ भूमि के लगभग ४०% भाग पर जंगल पाये जाते हैं जिनमें से १२% भाग सुरक्षित वन प्रदेश हैं। वनों की सघनता पहाड़ी ढालों पर अधिक है। शेष भाग में झूम खेती की जाती है।

मध्य असम में बाँस तथा ग्वालपाड़ा, गारो, कामरूप और धरांग जिलों में साल के जंगल और ब्रह्मपुत्र के किनारे सरपत के जंगल पाए जाते हैं। बसूम, सैमूल, बेंत, सागौन, सीसम, सनोवर आदि वृक्ष भी बहुतायत से होते हैं। इनकी लकड़ियों से घर और नावें बनाई जाती हैं। यहाँ बेंत, लाख, हाथीघास तथा सबाई घास भी पैदा होती है। वनों के बीच में घास के मैदान भी मिलते हैं।

(ख) कृषि—आसाम के पहाड़ी ढालों पर ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदियों की घाटी में भारत की ६०% चाय पैदा होती है। पहाड़ी ढालों पर कपास भी उगाई जाती है। ब्रह्मपुत्र और सुरमा की घाटी में धान, जूट, ईख, सरसों, तम्बाखू, तिलहन, गन्ना, आलू, दालें, और रेंडी पैदा की जाती है। रेंडी के बीजों से तेल निकाला जाता है और उसकी पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। यहाँ नीबू, नारंगी, अनन्नास, पपीता, सुपारी, आम, सब्जियाँ आदि भी पैदा की जाती हैं।

आसाम के जंगलों में संभवतः अफ्रीका को छोड़कर कई प्रकार के जानवर सबसे अधिक पाए जाते है—गेंडें, हाथी, बिसन, हिरन, कोबरा, चीते, तेंदुए।

पहाड़ी भागों में यहाँ के आदिम निवासी झूम-प्रणाली से खेती करते हैं। पहले किसी पहाड़ी ढालों के वनों को काटकर साफ कर लिया फिर पेड़ों की बची हुई राख वाली धरती में चावल तम्बाखू, कपास, आलू, टैपिओका, गन्ना आदि पैदा

किये जाते हैं। कुछ वर्षों के बाद जब फसलें कमजोर होने लगती है तो पहाड़ी लोग दूसरी जगह जाकर इसी प्रकार की खेती करते है।

(ग) **खनिज**—आसाम राज्य खनिज पदार्थों में धनी है। यहाँ लखीमपुर जिले में माकूम के पास तथा नागा पहाड़ियों में कोयला मिलता है। कोयले के सुरक्षित भंडार १२२·६ करोड़ के कूंते गये है। यहाँ कोयला यहीं स्टीमरों में काम में आ जाता है। मिट्टी का तेल लखीमपुर जिले में डिग्बोई और कछार जिले से तथा लखीमपुर, हुगरीजन और मोरन में निकाला जाकर लखीमपुर में साफ किया जाता है। नहोरकटिया में ११,७१५ फीट की गहराई पर तेल पाया गया है। इस क्षेत्र से प्रतिदिन २०,००० गेलन मिट्टी का तेल मिल सकता है। चूने का पत्थर खासी गारो, मिकिर व जयन्तिया पहाडियों में मिलता है। सिलीमैनाइट तथा अग्नि प्रतिरोधक मिट्टीयां भी यहाँ मिलती हैं।

(५) **उद्योग धन्धे**—आसाम में गांवों की अधिकता होने के कारण लगभग ७२% लोग खेती-बारी करते है। बाकी घर पर ही रेशमी और सूती कपड़े करघों पर बनाते है। यहाँ बडे बड़े कारखाने बहुत कम है। पहाड़ी गांवों में बुनने के साथ साथ कातने का काम भी घर पर ही किया जाता हैं। आसाम में चाय के बगीचों में भी लगभग ५ लाख व्यक्ति काम करते हैं। ये चाय के बाग १४ लाख एकड़ भूमि पर हैं। इनके ८१८ बागान हैं। यहाँ के प्रमुख शिल्प उद्योग लकड़ी चीरना, नावें बनाना, बांस व बेत की वस्तुएँ बनाना, दियासलाई बनाना, व मूँगा और अंडी के कीड़ों से रेशम बनाना है। शिवसागर, गोलाघाट और जोरहाट में रेशम का कपड़ा बुनने तथा डिब्रूगढ़ में तेल साफ करने और प्रत्येक चाय के बगीचे में चाय तैयार करने की फैक्ट्रियां है। सरपत की चटाइयाँ, नक्कासी किये बर्तन आदि अन्य प्रमुख शिल्प है। तिनसुखिया में प्लाईवुड तैयार करते हैं। धान कूटने और शहद की मक्खी पालने, तेल पेरने के छोटे छोटे कारखाने तो राज्य भर में फैले हैं। सीमेन्ट के दो नये कारखाने खासिया और गारो पहाड़ी क्षेत्र में खोले गए हैं।

(६) **आवागमन के साधन**—असम में जल और स्थल मार्गों की सुगमता है अतः अधिकांश आना जाना तथा व्यापार नावों द्वारा ही होता है। असम में लगभग ७,७७५ मील लम्बी सड़कें हैं जिसमें से २,००० मील पक्की सडकें है। मनीपुर रोड से एक सड़क कोहिमा होती हुई इम्फाल तक जाती है। गोहाटी से एक सड़क शिलोङ्ग जाती है। चेरापूंजी की पहाड़ियां में होकर सिलहट जाने का भी मार्ग है।

यहाँ की मुख्य रेलवे लाइन पूर्वी सीमान्त रेलवे का ही एक भाग है। यह सदिया नामक नगर से सम्पूर्ण असम को पार कर पाकिस्तान के चिटगाँव बन्दरगाह तक चली जाती है। इसकी एक शाखा ब्रह्मपुत्र की घाटी में होती हुई उत्तरी बंगाल तक चली जाती है। रेलमार्ग की लम्बाई केवल १,४५५ मील ही है जो पांडू, तिनसुखिया, डिब्रूगढ़, नवगांव, जोरहाट, शिवसागर और तेजपुर को मिलाती है। यहाँ ब्रह्मपुत्र तथा उसकी सहायक नदियों में जल यातायात की बड़ी सुविधा है। अनेक छोटे स्टीमर गोलपाड़ा, गोहाटी, धुबरी, करीमगञ्ज और सिलचर आदि स्थानों तक माल और व्यापारियों को ले जाते हैं। असम में कैलकत्ता और गौहाटी के बीच तथा राज्य के अन्य कस्बों के बीच भी दैनिक वायु-सेवा आरंभ हो चुकी है।

(७) **जनसंख्या**—असम केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये गये गवर्नर द्वारा शासित हैं। इसकी सम्पूर्ण जनसंख्या ११,८६०,०६५ है। यहाँ जनसंख्या का घनत्व २५२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। सुरमा नदी की घाटी सबसे अधिक घना बसा भाग है। यहाँ नवगांव जिले में प्रतिवर्ग मील में ५५६ मनुष्य रहने है। यहाँ खेती मुख्य उद्योग होने से गांवों की अधिकता है। ये पहाड़ी ढालों पर बसे हैं। यहाँ के अधिकांश निवासी हिन्दू हैं। पहाड़ी भागों में कई जंगली जातियाँ रहती हैं यहाँ आजकल बंगाली शरणार्थी और आसामी ही अधिक रहते हैं। आसामी लोग आलसी होते हैं। यहाँ की मुख्य भाषा आसामी और बंगाली है। ४४% बंगाली और २२% आसामी भाषा बोलते हैं। पहाड़ी भागों में गारो-खासी आदि कई पहाड़ी भाषाएं बोली जाती हैं। बड़े नगरों में हिन्दी भाषा बोली जाती है।

असम में भारत की आदिम जातियाँ अधिक रहती हैं। यहाँ के प्रमुख नगर शिलांग, गौहाटी और डिब्रूगढ़ हैं। शिवसागर, सदिया, सिलचर, घुबरी आदि नगर ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर अन्य व्यापारिक नगर हैं। इन स्थानों में चाय, चावल, और लकड़ी का व्यापार होता है।

व्यापार—असम से अन्य राज्यों को चाय, जूट, संतरे, कपास, चावल, मछलियाँ, लकड़ी, मिट्टी का तेल और रेशम भेजा जाता है और उसके बदले में अन्य राज्यो से सूती कपड़े, शक्कर, तम्बाकू, लोहे का सामान, मशीनें, दवाइयाँ, दालें, सीमेन्ट आदि मँगाया जाता है।

अध्याय ४८

बिहार

(BIHAR)

(१) **सीमा, विस्तार आदि**—बिहार गंगा नदी की घाटी का मध्यवर्ती भाग है। यह २२°१०' और २८°३०' उत्तरी अक्षांश और ८३°,५०' और ८८°·२६' पूर्वी देशान्तरों के बीच में फैला है। इसका क्षेत्रफल २२७,४७८ वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या ४६,४५७,०४२ थी। किन्तु १ नवम्बर १९५६ से बिहार की ३,१६५
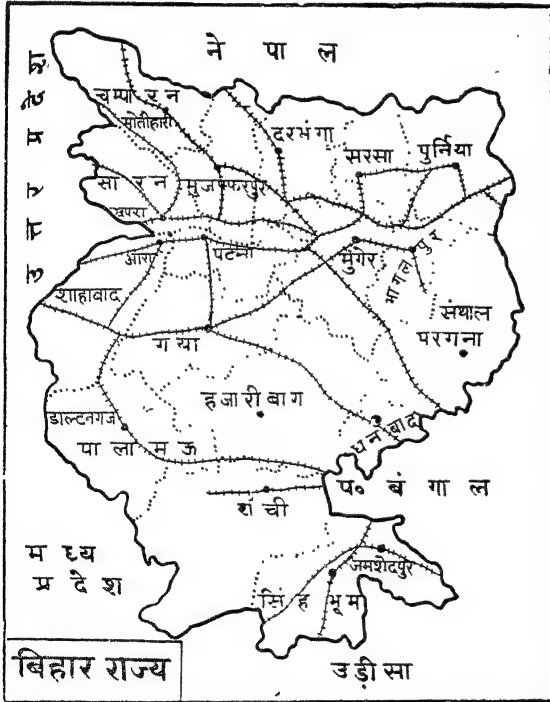
चित्र २३८. बिहार राज्य

वर्गमील भूमि पश्चिमी बंगाल में मिलादी जाने से इसका वर्तमान क्षेत्रफल ६७,१९२ वर्गमील और जनसंख्या ४६,४५५,६१० है। इसके उत्तर में नैपाल व बंगाल का दार्जिलिंग का जिला, पूर्व में पश्चिमी बंगाल पश्चिम में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश

तथा दक्षिण में उड़ीसा राज्य है। यह पूर्व से पश्चिम तक लगभग ४२५ किलोमीटर चौड़ा और उत्तर से दक्षिण ५४० किलोमीटर लम्बा है।

प्रशासनिक दृष्टि से बिहार को चार डिवीजनों में बाँटा गया है: (१) **पटना डिवीजन** में पटना, गया, शाहबाद जिले, (२) **भागलपुर डिवीजन** में भागलपुर, सहरसा, मंघेर, पूर्णिया जिले और संथाल परगने, (३) **मुजफ्फरपुर डिवीजन** में मुजफ्फरपुर, दरभगा, सारन, चम्पारन जिले और (४) **छोटा नागपुर डिवीजन** में रांची, हजारीबाग, पालामाऊ, सिंहभूम, मानभूमि, और धनबाद जिला सम्मिलित किये गये हैं। इस प्रकार बिहार में १८ जिले और ६५ उप-डिवीजन हैं।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—इस राज्य के बीच में गंगा नदी बहती है। अतः प्राकृतिक दशा के अनुसार इसके दो भाग किये जा सकते हैं: (१) बिहार का मैदान और (२) छोटा नागपुर का पठार।

(१) **बिहार का मैदान**—यह मैदान भारत के बड़े मैदान का पूर्वी भाग है। यह नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी का बना है अतः बहुत ही उपजाऊ है। गंगा इस मैदान में पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है क्योंकि भूमि का ढाल पूर्व की ओर है। इस नदी के कारण बिहार के इस मैदान के दो भाग हो जाते है: (क) **उत्तरी बिहार** नैपाल की तराई से लगाकर दक्षिण में गंगा नदी तक फैला हुआ है। सभी जगह यह मैदान बहुत ही समतल और उत्तर पश्चिम की ओर से दक्षिण पूर्व की ओर ढालू होता गया है। उत्तरी पश्चिमी कोना पहाड़ी है। सोमेश्वर की पहाड़ी ७४ किलोमीटर सीमा पर फैली हुई है। उत्तर में दून की पहाड़िया है। २२ किलो-मीटर चौड़ी दून की घाटी हैं। इस मैदान में बहुत सी नदियां बहती हैं जिनमें अक्सर बाढ़े आ जाती हैं। पुराने समय मे यहाँ नदियाँ अपना मार्ग बदलती रही है अतः सभी जगह छोटे छोटे खड्डे झीलों के रूप में बहुत पाये जाते हैं। यह भाग बहुत ही दलदली है। इनमें **कहरताल** मुख्य झील है। यहाँ की मुख्य नदियाँ घाघरा गंडक, कोशी, बाघमती है।

(ख) **दक्षिणी बिहार** गंगा नदी के दक्षिण में फैला हुआ है। यह धीरे धीरे ऊँचा होकर दक्षिण में छोटा नागपुर के पठार में परिणित हो गया है। यह मैदान संकीर्ण और अनेक स्थानों पर छोटी-छोटी पहाड़ियों से टूट गये है। मुख्य पहाड़ियाँ कैमूर, राजगिरी, राजमहल और खड़गपुर की पहाड़ियाँ है। सोन नदी इस भाग के बाये किनारे पर फैली है।

(२) **छोटा नागपुर का पठार**—बिहार का दक्षिणी भाग है। इस पठार का उत्तरी पूर्वी भाग दक्षिण के पठार में सम्मिलित हैं। दक्षिण बिहार का मैदान ही धीरे धीरे ऊँचा होता हुआ नागपुर के पठार के रूप में बन गया है। यह पठार ४५७ मीटर से ६१० मीटर ऊँचा है किन्तु इसमें पहाड़ियाँ कम हैं। यहां नदियों की घाटी बहुत गहरी है। बहुत सी चपटी चोटी वाली पहाड़ियाँ इधर उधर फैली है। इस भाग की सबसे ऊँची चोटी **पारसनाथ** १३६५ मीटर है। यह हजारी बाग जिले के पूर्व में है।

इस पठार का अधिकांश भाग जंगलों से भरा पड़ा है जिनमें असंख्य जंगली जानवर घूमा करते हैं। इस भाग में बहुत सी छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं जिनमें वर्षा में अधिक बाढ़ आ जाती है। मुख्य नदियाँ अजय दामोदर, बराबर, **स्वर्ण रेखा और कोयल है।**
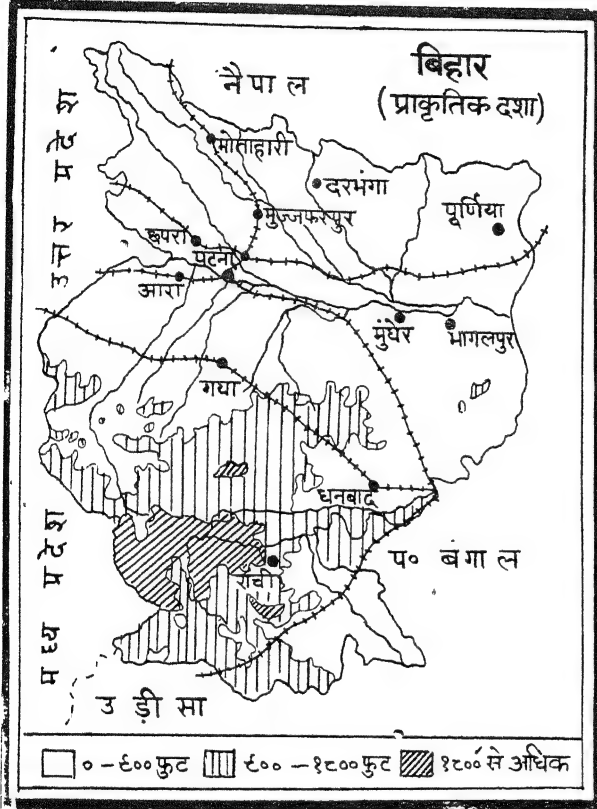
चित्र २३९. बिहार (प्राकृतिक दशा)

मिट्टियां—बिहार राज्य में मुख्यतया चार प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं।

(१) कछारी मिट्टी पटना जिले में सर्वत्र पायी जाती है। भागलपुर, धनबाद, गया और मुंघेर जिलों के कुछ भागों में भी कछारी मिट्टी के क्षेत्र पाये जाते हैं। चूने के अंशवाली कछारी मिट्टी भागलपुर जिले के उत्तरी भाग में तथा बिहार राज्य के सारन, चम्पारन, मुजफ्फर नगर, दरभंगा और पुनिया नामक उत्तरी ज़िलों में सर्वत्र पाई जाती हैं।

(२) जंगली तथा पहाड़ी मिट्टियों के क्षेत्र धनबाद, गया, मुन्घेर, हज़ारी बाग और भागलपुर जिले के मध्य में एक चौड़ी पट्टी के रूप में अक्षांश के समानान्तर फैले हुए हैं।

(३) लाल रंग की चिकनी उपजाऊ मिट्टी पालमऊ, संथाल, परगना, हजारी बाग और मानभूम जिलों में पाई जाती है। पालामऊ जिले में इस मिट्टी के क्षेत्र सर्वत्र पाये जाते हैं परन्तु हजारी बाग, मानभूम और संथाल परगनों के जिलों में कहीं कहीं यह मिट्टी फैली हुई पायी जाती है।

(४) मिश्रित लाल और काली मिट्टियाँ सिंहभूम जिले और राँची के कुछ भागों में पायी जाती है।
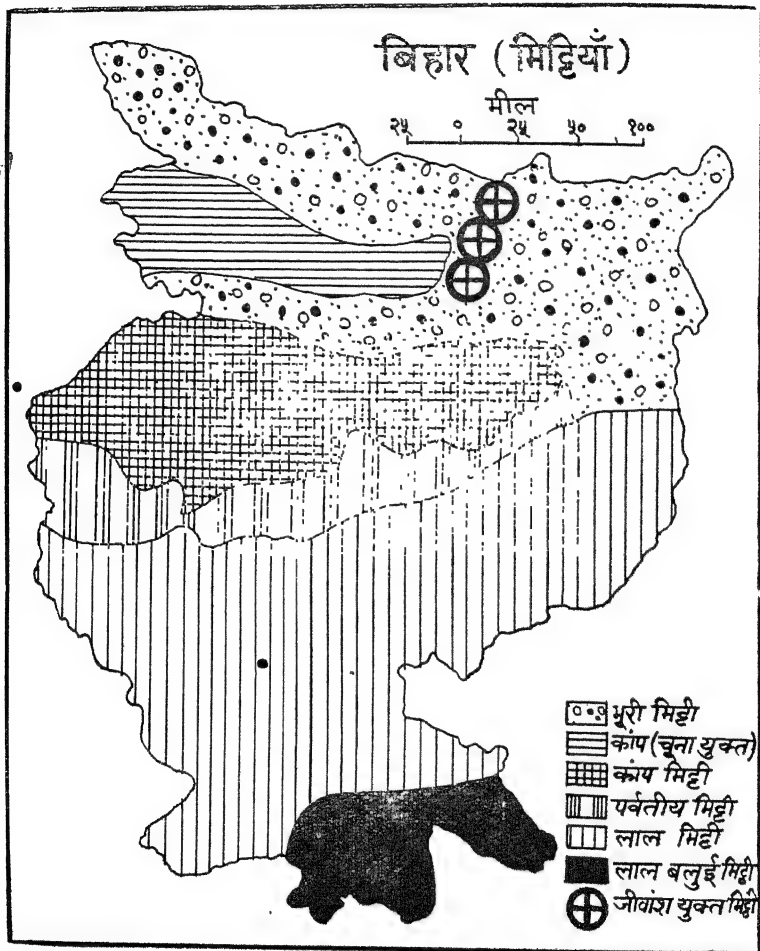
चित्र २४०. बिहार (मिट्टियाँ)

(३) **जलवायु व वर्षा**—इसकी स्थिति समुद्र से दूर होने के कारण यहाँ का जलवायु बंगाल से अधिक सूखा किन्तु उत्तर प्रदेश से अधिकतर है। इसके उत्तरी भाग की जलवायु जाड़ों में ठण्डी और गर्मियों में गरम रहती है। अतः यहाँ का तापक्रम भेद

भी अधिक रहता है। ग्रीष्म का तापक्रम १६° और ३३° सें० ग्रेड तक पहुँच जाता है। गर्मी में यहाँ गर्म और शुष्क हवायें चलती हैं। इन दिनों धूल के अन्धड़ भी बहुत चलते हैं। बिहार का सबसे गर्म स्थान गया है जहाँ तापक्रम ४२° से० ग्रेड तक पहुँच जाता है। सर्दी में ऋतु बड़ा ही सुन्दर और शुष्क रहता है। सर्दी का तापक्रम १६° सें० ग्रेड तक रहता है। पठारी भाग होने के कारण छोटा नागपुर का जलवायु बिहार से भिन्न होता है। इसका तापक्रम २६° सें० ग्रेड से कभी आगे नहीं बढ़ता किन्तु यहाँ दैनिक तापक्रम भेद अधिक रहता है। बिहार की वार्षिक वर्षा का औसत १५२ सें० मीटर से १३८ सें० मीटर तक है। उत्तरी और पूर्वी बिहार में दक्षिणी तथा पश्चिमी बिहार की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। छोटा नागपुर की औसत वर्षा १३२ सें० मीटर है।

सिंचाई—उत्तरी बिहार में वर्षा अनिश्चित है अतः यहाँ कभी कभी बड़े अकाल पड़ते हैं किन्तु दक्षिण बिहार में नहरों द्वारा सिंचाई करके वर्षा की कमी को पूरा कर लिया जाता है। सिंचित क्षेत्रफल लगभग ४५ एकड़ है। यहाँ कुओं और नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है। दक्षिणी बिहार में गंडक और सोन नदियों से त्रिवेणी नहर, पूर्वी सोन नहर और पश्चिमी सोन नहर आदि निकाल कर भूमि पर सिंचाई की जाती है। इनके अतिरिक्त सिंचाई के लिए **सोन क्रम नहर** (शाहाबाद, पटना व गया जिलों के लिए); त्रिवेणी, ढाका तथा नूर नहरें चम्पारन जिले के लिए **साकड़ी नहर** गया, पटना व मुंघेर जिलों में; **सारन नहर** सारन जिले में; **कमला नहर** दरभंगा जिले में; **मयूराक्षी वाम तट नहर** संथाल परगना, पंचाने, सिरनावा लोकेन, भरतुआ और नन्दन क्षेत्रों में; **घाघरा सिंचाई योजना** हजारी बाग जिले में और **कंदा, ब्राह्मणी तथा सोनुआ नहरें** सिंहभूमि जिलों में सिंचाई करती हैं।

कोहिरा जलाशय, मोहर सिंचाई योजना, कांची बाँध योजना; लोतिया तथा कुती--पिसी योजना, जिजोई, करार आदि सिंचाई योजना और तोरलो, रीटो तथा राजबंध सिंचाई योजनाओं पर कार्य हो रहा है। इनके निर्माण से शाहाबाद, पटना, गया, रांची, पालामाऊ, हजारीबाग और सिंहभूम जिले की सिंचाई की जाने लगेगी।

(४) **उपज** (क) **वनस्पति**—बिहार की लगभग १६% भूमि पर वन पाये जाते हैं। यह छोटा नागपुर के पाँच जिलों तथा संथाल परगना में हैं जिनमें मानसूनी चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष मिलते हैं। संथाल परगना के वनों में लाख प्राप्त की जाती है। पहाड़ी ढालों पर घास भी उगती है। इसके अतिरिक्त गोंद, बिरोजा, बीड़ी बाँधने के पत्ते, चमड़ा रंगने का पदार्थ भी इन वनों से प्राप्त किये जाते हैं।

(ख) **कृषि**—उत्तरी बिहार बहुत ही उपजाऊ है। इसी कारण इसे **भारत का बाग** कहते हैं। केवल दक्षिणी भाग में छोटा नागपुर का पठार ही भूमि के असमान धरातल के कारण खेती के अयोग्य है। यहाँ केवल २/५ भाग में खेती होती है। **चावल** तो बिहार में प्रायः सर्वत्र ही पैदा होता है। यह सम्पूर्ण बोई जमीन के २/५ में होता है। इस राज्य की मुख्य उपज गन्ना, गेहूँ, जौ, मक्का, चना, तिलहन व दालें हैं। गन्ना अधिकांशतः चम्पारन, सारन, दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिलों में पैदा किया जाता है। उत्तरी बिहार में मुंघेर, पूर्णिया, मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों में तम्बाकू और जूट, पूर्णिया जिले तथा संथाल परगना और तिरहुत कमिश्नरी के भागों में भी जूट पैदा होता हैं। संथाल परगने के पहाड़ी भाग में सवाई

घास तथा चम्पारन के उत्तर पश्चिमी भाग में चाय भी पैदा होती है। बिहार के मैदान में अनेक प्रकार के शाक सब्जी तथा आम बहुत होते है। हाजीपुर का आम तथा केला और मुजफ्फरपुर की लीची बहुत प्रसिद्ध है। पहाड़ी ढालों पर बड़े मूल्यवान जंगल पाये जाते है जिनमें साल, महुआ, कटहल आदि खूब पैदा होते है। पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाकर उनमें ज्वार, बाजरा तथा मक्का पैदा की जाती हैं। जंगलो मे ढाक, पलास, खैर आदि वृक्षों पर से लाख प्राप्त की जाती है।

(ग) **खनिज पदार्थ**—छोटा नागपुर का पठार विभिन्न धातुओं के युगों के विभिन्न प्रकार की चट्टानों से बना होने के कारण खनिज पदार्थों से भरा पड़ा है। इस भाग को **खनिजों का भंडार** कहते है। संसार का कोई भी भाग खनिज पदार्थों में इतना धनी नहीं है जितना यह भाग। किन्तु अभी तक इस भाग के खनिज पदार्थों को निकालने का पूर्ण प्रयत्न नहीं किया गया है। भारत के उत्पादित खनिजों का बड़ा भाग यहाँ से प्राप्त होता है। यह भारत का लगभग आधा कोयला देता है जो छोटा नागपुर के बीच के पूर्व-पश्चिम भाग के क्षेत्रों से निकाला जाता है। इसमें रानीगंज (पश्चिमी भाग), झरिया, बुकारो, रामगढ़, गिरीडीह, कर्णपुरा और दक्षिणी कर्णपुरा की खानें मुख्य हैं। यहाँ २ हजार फीट की गहराई तक लगभग २०.२२ करोड़ के सुरक्षित भंडार कूते गये हैं। बिहार में लोहे का प्रसिद्ध क्षेत्र सिंघभूमि जिले के दक्षिणी भाग से मयूरभंज, क्योंझार और बोनाई राज्यों में है। इसमें गेरू का पत्थर भी साथ ही मिलता है। यह पहाड़ों के ऊपरी भागों में ही मिलता है अतः इसकी खुदाई आसानी से हो सकती है। यह पनसिराबुरू तथा बडाबुरू भी पहाड़ियों पर तथा गुआ और नोआमन्डी की पहाड़ियों पर होती हैं।

बिहार में भारत का ६०% **अभ्रक** मिलता है। यह अभ्रक बहुत ही अच्छी जाति का होता है। बिहार में हजारीबाग, मुंघेर, गया जिलों में फैली ९६ कि० मी० लम्बी और १९ कि०मी० चौड़ी पेटी में अधिक मिलता है। **तांबा** सिंहभूमि जिले में घाटशिला के निकट मोसाबानी, पाथर घोड़ा, कन्डाडीह और धोबोनी में, **शोरा** उत्तरी बिहार में; **चूने का पत्थर** पालामऊ, शहाबाद. हजारी बाग, धनबाद और सिंहभूमि जिले में; **स्लेट** मुंघेर जिले में और खड़कपुर की पहाड़ियों में अधिक मिलता है। इन के अतिरिक्त बिहार में **अग्नि मिट्टी, साबुन का पत्थर**, बैंटोनाइट अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ, कायनाइट, **बाक्साइट, क्रोमाइट, टीन, एसबस्टस** और **वूलफ्राम** आदि खनिज भी खूब मिलते हैं। **चीनी मिट्टी** भागलपुर सिंघभूम, संथाल परगना और धनबाद में मिलती है।

(५) **उद्योग धन्धे**—उत्तरी बिहार का मुख्य व्यवसाय खेती है। इसमें ८२ प्रतिशत व्यक्ति लगे हैं। किन्तु खेती के साथ ही साथ खनिज पदार्थों और खेती से प्राप्त पैदावार को साफ करने, आटा पीसने, धान कूटने, तेल निकालने तथा तम्बाकू तैयार करने और लाख इकट्ठा करने के भी धन्धे खूब किये जाते हैं। दक्षिणी बिहार का मुख्य व्यवसाय खेती करना और खनिज निकालना दोनों ही हैं। यहाँ बड़े बड़े कल कारखाने पाये जाते हैं जिनमें मुख्य मुंघेर में **सिगरेट बनाने**, जमशेदपुर में **लोहे और इस्पात** तथा **एंजिन बनाने** का कारखाना, डालमिया नगर में **चीनी, बिस्कुट, वनस्पति घी** तथा **कागज** के कारखाने हैं। बिहार में ही भारत का रासायनिक खाद बनाने का कारखाना, सिंद्री में है। **सीमेंट के कारखाने** डालमियानगर, खलारी चौबासा, जापला और कल्याणपुर में हैं

छोटा नागपुर पठार खनिज पदार्थों में धनी है। अतः यहाँ जमशेदपुर में विश्व विख्यात लोहे के कारखाने जिसमें लोहे की चद्दरें, टीन, स्लेट, रेल की पटरियाँ, तार के सामान, खेती के यंत्र, रासायनिक पदार्थ आदि बनाये जाते है। कुमारधूबी से इंजीनियरिंग का कारखाना तथा मुंघेर, जालदा, राँची और भागलपुर में कई लाख के कारखाने हैं। मुरी में **अल्यूमीनियम** साफ किया जाता है। **शक्कर के कारखाने** दरभंगा, चम्पारन, सारन, मुजफ्फरपुर, बक्सर, बिहटा और डेरी-आन-सोन में हैं। **तम्बाकू** की फैक्टरियाँ मुजफ्फरपुर, दरभगा और मुघेर में है। करगाली, मुगदा और पाथरडीह में कोयला धोया जाता है। झुमरी तलैया में माइकैनाइट फैक्टरी है।

घरेलू उद्योगों में कपड़ा बनाना बिहार का मुख्य व्यवसाय है। यहाँ दरी, कम्बल तथा भागलपुर में टस्सर, रेशम के वस्त्र; गया में पत्थरों की खुदाई और पटना में शीशे के बर्तन बनाये जाते हैं। बीड़ी बनाने का कुटीर उद्योग ३६० फैक्टरियों में किया जाता है। इनके अतिरिक्त चमड़ा कमाने, जूते बनाने, शहद इकट्ठा करने, मधु-मक्खी पालने आदि का काम भी किया जाता है।

यातायात—बिहार राज्य में लगभग ८ हजार मील लम्बी सड़कें हैं जिनमें से ५% हजार मील पक्की और शेष कच्ची सड़कें हैं। पक्की सड़कों पर राज्य सरकार की बसें पटना, गया, भागलपुर और जमशेदपुर क्षेत्रों में चलती हैं। ६०० मील लम्बी नदियों में नावें और स्टीमर भी चलते हैं।

(६) **जनसंख्या**—बिहार राज्य की जनसंख्या का औसत घनत्व ६६१ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। मैदानी भाग में दक्षिणी भाग की अपेक्षा अधिक जनसंख्या निवास करती है यहाँ मुजफ्फरपुर में १३६४ व्यक्ति प्रति वर्गमील में रहते है जबकि पालामाऊ जिले में यह घनत्व केवल २४१ व्यक्ति ही। बिहारी लोग बड़े सीधे सादे और परिश्रमी होते हैं। इनकी भाषा हिन्दी और बिहारी है। उत्तरी बिहार मे आर्य द्रविड़ और दक्षिण में मंगोल द्रविड़ जातियाँ निवास करती हैं। पठार पर भारत की मुख्य आदि वासी जातियाँ—संथाल, बिहार, हॉस, खरिया, मुन्डा, ओरन, परिहा, असुर, बिझीया कोरवा और बिरजिया रहती हैं। ये लोग मुँडारी, संथाली, बिहारी, खरिया और हो भाषएँ बोलते हैं। बिहार में राँची, सिंघभूम और संथाल परगना में ये जातियाँ रहती हैं। अधिकतर बिहारी गाँवों में रहते हैं। पटना, जमशेदपुर, गया भागलपुर, राँची, मुजफ्फरपुर और दरभंगा शहरों की आबादी १ लाख से अधिक है।

प्रमुख नगर—पटना, गया, बुद्धगया, मुंघेर, जमशेदपुर, भागलपुर, राँची और छपरा बिहार के प्रमुख नगर हैं।

व्यापार—उद्योग धन्धों तथा कृषि खनिज उत्पादनों में बडा होने के कारण इस राज्य से व्यापार भी अधिक होता है। यहाँ से पशु और उनकी खालें, हड्डियाँ, सीमेंट, रासायनिक खाद, लोहे और शक्कर, इस्पात की विभिन्न वस्तुयें, काँच,जूट, कोयला, इमारती लकड़ी तथा रेशमी कपड़ा निर्यात किया जाता है। आयात में मुख्यतः रासायनिक पदार्थ, सूती कपड़े, पैट्रोलियम आदि होते हैं।

अध्याय ४६

गुजरात

(GUJRAT)

१ मई १९६० के पूर्व तत्कालीन बम्बई राज्य में कच्छ, सौराष्ट्र, हैदराबाद के मराठी भाषा-भाषी क्षेत्र (मराठवाड़ा), मध्य प्रदेश का मराठा भाषी क्षेत्र (विदर्भ) और बम्बई राज्य सम्मिलित थे। किन्तु १ मई को इस राज्य का विभाजन कर दो विभिन्न राज्य बना दिये गये। प्रथम राज्य गुजरात—जिसमें गुजराती भाषा-भाषी क्षेत्र सम्मिलित किये गये—कहलाया दूसरा राज्य महाराष्ट्र है।

वर्तमान गुजरात राज्य में उन सभी जिलों को सम्मिलित किया गया है जिनकी भाषा गुजराती है। इसमें ये १६ जिले सम्मिलित किये गये :—
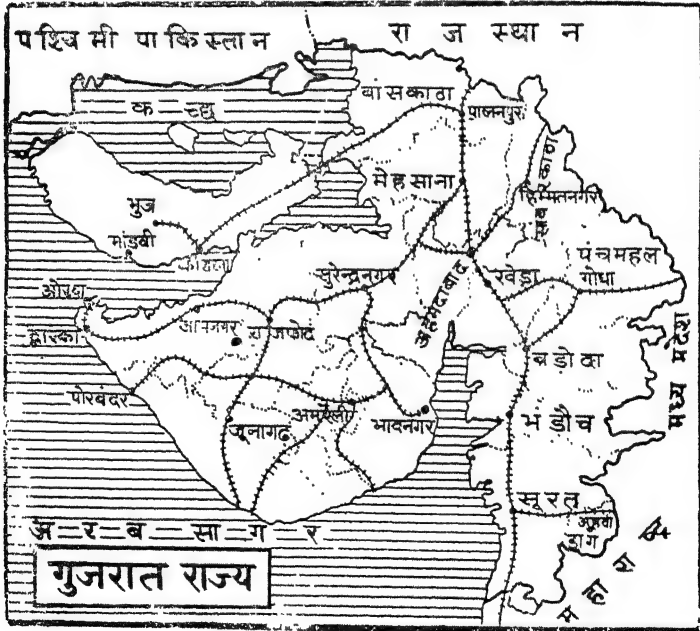
चित्र १४१. गुजरात राज्य

(१) अहमदाबाद डिवीजन में अहमदाबाद, बनासकांटा (पालनपुर), बड़ौदा, भडौंच, खेड़ा, नाडियाद, महसाना, पंचमहल (गोधरा), साबरकांटा (हिम्मत-नगर) तथा सूरत जिले हैं।

(२) **राजकोट** डिवीजन में अमरेली, गोहिलवाड़ा, (पालीताना), हालार, (जामनगर), कच्छ (भुज), मध्य सौराष्ट्र (राजकोट), सौराठ (जूनागढ़), और झालावाड़ (सुरेन्द्रनगर) जिले हैं।

(१) **स्थिति और विस्तार आदि**—यह राज्य २०° ४८′ उत्तरी अक्षांश से लगा कर २४°-५०′ उत्तरी अक्षांश तथा ६८°-२०′ पूर्व देशान्तर से ७४°-३०′ पूर्वी देशान्तर के बीच फैला है। कर्क रेखा इसके उत्तरी भाग से निकलती है। इसके उत्तर में राजस्थान के मारवाड़, मेवाड़, सिरोही जिले तथा आबू, अरासूर, तारंग और साबरकांटा की पहाड़ियाँ और कच्छ का रन; दक्षिण में महाराष्ट्र का थाना जिला, पश्चिम में अरब सागर, खंभात की खाड़ी और कच्छ की खाड़ी तथा पूर्व में सतपुड़ा और पश्चिमी घाट है। इसका क्षेत्रफल १,८५,८०० कि० मीटर और जनसंख्या २०,६३३,३५० है।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—प्राकृतिक दशा की दृष्टि से गुजरात को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) **सौराष्ट्र का पठार**—गुजरात के उत्तरी-पश्चिमी भाग में सौराष्ट्र का प्रायद्वीप है। यह सारा एक नीचा पठारी प्रदेश है जिसमें इधर उधर छोटे छोटे टीले मिलते है। संतरंजों, चोटिली, बरदो, गीर और गिरनार यहाँ के मुख्य पहाड़ हैं। गिरिनार यहाँ की सबसे ऊँची चोटी है। इस खुश्क प्रायद्वीप के कुछ भाग उपजाऊ हैं जिनमें गाँव बसे हैं। इन शुष्क भागों में ज्वार, बाजरा, कपास, और मूँगफली पैदा की जाती है। जहाँ सिंचाई की सुविधा है वहाँ गेहूँ पैदा किया जाता है। अधिकांश भूमि ऊसर है। दक्षिण-पश्चिम में कुछ नग्न और कुछ वृक्षों से ढकी पहाड़ियाँ हैं। गिरिनार के वनों में असली केसरी सिंह मिलते है। यहाँ जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ पालिताना है। समुद्र के निकटवर्ती भागों में नमक बनाने के तीन कारखाने हैं और मछलियाँ भी पकड़ी जाती हैं।

(२) **कच्छ का भाग**—कच्छ का भाग समुद्र के पेटे से बना है जो पहले नीचा और दलदली प्रदेश था। यह भाग तीन ओर रन के नमकीन मरुस्थल से घिरा है। उत्तर की ओर बड़ा रन तथा पूर्व की ओर छोटा रन। यह रन अप्रेल से अक्टूबर तक वर्षा ऋतु में एक दो फीट गहरे पानी से घिर जाता है और शुष्क महीनों में नमकीन उजाड़ हो जाता है। वर्षा की कमी से प्रायः सारा भाग वृक्ष रहित रहता है। अधिकांश प्रदेश नीचा है तथा कहीं कहीं ऊँचे टीले हैं। भीतरी भाग में तालाबों से सिंचाई होने से जौ, बाजरा, कपास और गेहूँ पैदा किया जाता है। यहाँ थोड़ा लोहा और चिकनी मिट्टी भी मिलती है।

(३) **गुजरात का मैदान**—यह मैदान उत्तर में पालनपुर तथा दक्षिण में लावा वाले प्रदेश से घिरा है। यह मैदान समतल उपजाऊ प्रदेश है जिसमें माही साबरमती, ताप्ती, पूर्णा, औरंगा और नर्मदा नदियाँ बहती हैं। उत्तरी भाग की भूमि रेतीली है तथा वर्षा भी कम होती है किन्तु दक्षिणी भाग की भूमि उपजाऊ है और वर्षा भी अधिक होती है। अतः उत्तरी भाग में ज्वार, गेहूँ, दालें आदि तथा दक्षिणी भाग में कपास, गन्ना और चावल पैदा किया जाता है। दक्षिणी भाग में खानदेश का उपजाऊ मैदान है जिसमें ताप्ती नदी बहती है। यह कपास की उपज के लिये बड़ा प्रसिद्ध है।

(३) **जलवायु व वर्षा**—यह राज्य उत्तर पश्चिम के शुष्क विषय जलवायु वाले प्रदेश और दक्षिण के मैदानी भागों के अंतरिम में है। यहाँ का औसत तापक्रम ३२° से० ग्रेड रहता है। कच्छ भारत के शुष्क भाग में गिना जाता है। यहाँ वर्षा की मात्रा ३८ से ७६ सें० मीटर तक ही होती है किन्तु दक्षिण में सौराष्ट्र और गुजरात वाले भाग में वर्षा का औसत ५१ से १२७ सें० मीटर तक रहता है। अधिकांश वर्षा इन भागों में जुलाई अगस्त में ही होती है। खंभात की खाड़ी के उत्तर में वर्षा काल बहुत ही छोटा होता है तथा वर्षा का अन्त सितम्बर तक हो जाता है। साधारण तया सारे राज्य का जलवायु शुष्क ही कहा जा सकता है। गर्मियों में अधिक गर्मी और सर्दियों में तेज सरदी पड़ती है किन्तु तटीय भागों में जलवायु सामान्य रहता है।

(४) **उपज (क) वनस्पति**—वर्षा की मात्रा के अनुसार प्राकृतिक वनस्पति में भी अंतर पाया जाता है। शुष्क भागों में कांटेदार झाड़ियाँ तथा अधिक वर्षा वाले भागों में जंगल मिलते हैं जिनमें जंगली पशु, शेर, चीते, आदि पाये जाते हैं। अन्य स्थानों में घास के मैदान मिलते हैं जिनमें यत्र-तत्र पीपल, बबूल, नीम आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

(ख) **कृषि**—यह राज्य प्रधानतः कृषिहर है। इसके दक्षिणी भाग में काली मिट्टी पाई जाती है तथा नदियों की घाटियों में कांप मिट्टी। दक्षिणी और मध्य गुजरात मुख्य रूप से खेतीहर प्रदेश हैं किन्तु उत्तरी गुजरात, कच्छ और सौराष्ट्र शुष्क और बजर है। दक्षिणी भाग में चावल, गेहूँ, कपास, दालें, गन्ना, ज्वार, बाजरा और मक्का की खेती की जाती है। गन्ना केवल सिंचित भागों में ही पैदा किया जाता है। मूंगफली और तम्बाकू भी काफी पैदा किया जाता है। गुजरात की कंकरेज गायें और बाढ़मेर भैंसे बहुत प्रसिद्ध है। गुजरात व सौराष्ट्र में घी बहुत बनाया जाता है।

(ग) **खनिज पदार्थ**—खनिज पदार्थों की दृष्टि से यह राज्य अधिक धनवान नहीं कहा जा सकता किन्तु यहाँ चूना, बाक्साइट, लिगनाइट, कैलसाइट, मैंगनीज, खड़िया और चीनी मिट्टी मिलती है। सौराष्ट्र जिले में जिप्सम और इमारती पत्थर मिलता है। अभी हाल ही की जाँच पड़ताल के फलस्वरूप गुजरात राज्य में इन नये खनिज क्षेत्रों का पता लगा है :—

(१) लखपत ताल्लुका के उमरसार के क्षेत्र में कम से कम १·५ करोड़ टन लिगनाइट कोयला होने का अनुमान लगाया गया है। कच्छ के अन्य क्षेत्रों में लगभग १ करोड़ टन के और जमाव कूँते गये हैं। सौराष्ट्र के मोरवी, थानागढ़ और तलाजा नामक क्षेत्रों में भी कोयले के क्षेत्रों का अस्तित्व मिला है। थानागढ़ से भावना तक १२५ मील लंबे क्षेत्र में तथा बोटाड़ से बढ़वाण तक की ४५ मील की पट्टी में कोयले की प्रचुर मात्रा होने के अनुमान लगाये गये है। इन दोनों क्षेत्रों से अत्यन्त सस्ती बिजली पैदा की जा सकती है।

(२) जूनागढ़ जिले में रनाव नामक स्थान और पोरबन्दर के ९ मील के घेरे में बढ़िया चूने का पत्थर काफी मात्रा में मिला है। यह इतना उत्तम समझा जाता है कि धारंगध्रा, मीठापुर और पोरबन्दर के सज्जी के कारखाने के लिए इसे रक्षित रख दिया गया है।

(३) बाक्साइट के जमाव मांड़वी, नखतराणा, लखपत, अंजर, भुज, मूदड़ा और मचाऊ क्षेत्रों में पाये गये हैं। जिनमें संचित राशि लगभग २० लाख टन की अनुमानित की गई है। कच्छ में निम्न श्रेणी का बाक्साइट मिला है किन्तु इसकी मात्रा पूर्व के क्षेत्रों की अपेक्षा तीन गुनी अधिक है।

(४) कैलसाइट के भंडार अमरेली जिले के पनहाल की पहाड़ियों में और इन्गोरला गाँव के समीप मिले हैं। यह ९८% शुद्ध कैलसाइट है।

(५) गुजरात में मिट्टी के तेल के लिए १७ स्थानों पर बरमा चलाया है किन्तु इनमें से ११ में तेल और ३ में गैस मिली है और शेष सूखे हैं। अंकलेश्वर में १५ कुऐं खोदे गये हैं जिनमें १३ में तेल मिला है। कलोल में भी कुँआ खोदे गये है जिनमें तेल पाया गया है। तेल और प्राकृतिक गैस आयोग के अनुमानानुसार खंभात के ५० टन और अंकलेश्वर के क्षेत्र से प्रायः १,००० टन तेल प्रतिदिन मिल सकता है। कुछ दिनों में यह बढ कर १५०० टन प्रतिदिन हो सकेगा। अंकलेश्वर क्षेत्र को विकसित करके वहाँ प्रतिवर्ष २० लाख टन प्राप्त करने की योजना बनाई गई है। कलोल और रूद्रसागर में अभी एक-एक कुँआ ही खोदा गया है किन्तु इनमें तेल की मात्रा का पूरी तरह पता नहीं लग पाया है।

नमक का उत्पादन कच्छ तथा समुद्री तटीय भागों में किया जाता है। नमक के कारखाने मुख्यतः धरसाना, भोयंदर, भंदप, ऊड़न, मीठापुर और चरवादा तथा बलसर और ओखा में सरकारी नियन्त्रण में है।

जल सम्पत्ति में यह राज्य दरिद्र ही है क्योंकि अधिकांश नदियां ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती है। नर्मदा घाटी योजना के विकसित हो जाने पर शक्ति उपलब्ध हो सकेगी। इस राज्य में अनेक नई योजनायें कार्यान्वित की गई हैं। सूरत से लगभग ७२ मील दूर बाढ़ नियंत्रण के लिए एक बांध बनाया गया है। इससे भडौंच और सूरत जिलों की लगभग ४ लाख एकड़ भूमि सींची जा रही है। बांध पर शक्तिगृह तैयार कर १ लाख ६० ह० किलोवाट बिजली तैयार की जायेगी। इसे ऊकाई योजना कहते हैं। दूसरी योजना अमरेली जिले में खोदियार माता स्थान पर शतरंजी नदी के आरपार बांध बनाकर १३ मील नीचे की ओर मेधी में दूसरा जल संचय बांध तैयार कर लगभग १९ हजार भूमि की सिंचाई निहरें निकाल कर की जायेगी। भारत का प्रथम अणुशक्ति केन्द्र अहमदाबाद से १७० मील दूर सूरत तथा नवसारी के बीच में किया गया है।

(५) **उद्योग धन्धे**—इस राज्य में अनेकों उद्योग धन्धे पाये जाते हैं जिसमें सबसे अधिक महत्व सूती कपड़े का है। इसका मुख्य केन्द्र अहमदाबाद है जहाँ ६२ कपड़े की मिलें हैं। अहमदाबाद के अतिरिक्त राजकोट, धारंगध्रा, कलोल, नवसारी, बडौदा, भडौंच, पेटलाद, पोरबंदर, नाडियाद, सूरत, सिद्धपुर, मोरवी, राजकोट और जामनगर में भी सूती उद्योग केन्द्रित है। इसके अतिरिक्त रसायन, इंजीनियरिंग, सीमेन्ट, चमड़ा, खाद, कागज आदि के कारखाने भी विकसित हैं। सूरत में चांदी के तार तथा रेशम के फीते बनाने और टोपियाँ बनाने का काम अधिक किया जाता है। समुद्री नमक तथा चूने के पत्थर मिल जाने से गुजरात में बड़ौदा में विशेषकर दवाइयों तथा रसायनिक पदार्थों का कारखाना है। पोरबंदर, द्वारका और सेवालिया

में सीमेन्ट के कारखानें हैं। कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत हाथ करघा उद्योग व बर्तन उद्योग उल्लेखनीय हैं।

(६) **जनसंख्या**—इस राज्य की जनसंख्या २ करोड़ ६ लाख है। यहाँ पिछड़ी जातियाँ भी अधिक संख्या में रहती हैं: डांग में ८४%; पंचमहल में ४१%; भडौंच में ३७% तथा बड़ौदा में १८% है। जनसंख्या का घनत्व २८६ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। अधिकतम घनत्व कैरा जिले में ७५३ व्यक्तियों का और न्यूनतम घनत्व कच्छ जिले में ४१ व्यक्तियों का प्रति वर्गमील पीछे है।

(७) **यातायात**—इस राज्य में यातायात की सुविधाओं का अभाव है। यहाँ रेलमार्ग केवल ३,२८४ मील लम्बा है। पश्चिमी रेल मार्ग इसको राजस्थान और महाराष्ट्र से मिलाता है।

राज्य में सड़कों की लम्बाई १४,६८५ मील है जिनमें ९,०३७ मील कच्ची सड़कें है। बम्बई—अहमदाबाद और अहमदाबाद-कांदला के बीच किसी भी प्रकार की सीधी सड़क का संबंध नहीं है।

नगर—गुजरात में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ६ नगर हैं—ये क्रमशः अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा, राजकोट, भावनगर और जामनगर हैं। कांदला, पोरबन्दर, वैरावल, ओखा, भावनगर यहाँ के मुख्य बन्दरगाह हैं।

अध्याय ५०

जम्मू और काश्मीर

(JAMMU & KASHMIR)

(१) **स्थिति, क्षेत्रफल आदि**—काश्मीर तथा जम्मू दोनों ही राज्यों का अध्ययन काश्मीर राज्य के अन्तर्गत ही किया जाता है। यह राज्य आयताकार शक्ल का है और भारत के उत्तरी कोने में स्थित है। इसका क्षेत्रफल लगभग २४०, २९९ वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या ५६०, ९७६ है। यह राज्य ७३°२६′ और ८०° ३०′ पूर्वी देशान्तर तथा ३२°·१७′ और ३९°५८′ उत्तरी अक्षांसों के बीच में पूर्व से पश्चिम तक ८०० कि०मी० की लम्बाई में फैला है। इसकी चौड़ाई ४८० कि०मी० है। इस राज्य की स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके उत्तर में चीनी तुर्किस्तान, पूर्व में तिब्बत तथा पश्चिम व दक्षिण में पाकिस्तान के अन्तर्गत उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त व पश्चिमी पंजाब है।

जम्मू और काश्मीर के मुख्य जिले ये है :—

चित्र २४२. जम्मू और काश्मीर राज्य

अनन्तनाग, आसटोर, बारामूला, चिनाई, जम्मू, कथुआ, रेघी, गिलगित, लद्दाख, मीरपुर, मुजफ्फराबाद, बेंच, रीयासी और ऊधमपुर।

(२) **प्राकृतिक विभाग**- काश्मीर राज्य भारत में ही नहीं संसार भर में अपनी सुन्दरता के लिए प्रख्यात है। प्राकृतिक सौन्दर्य- गगनचुम्बी पर्वत मालाओं (जिनके ऊपर सदैव हिमाच्छादित रहते हैं) तथा सुन्दर नदियों और जल-प्रपातों और वनों-के कारण ही इसे "भारत का स्वीट्जरलैण्ड" कहते हैं। काश्मीर की उत्तरी सीमा पर हिन्दुकुश और क्वीनलीन पर्वत श्रेणियां विपरीत दिशाओं में फैली हैं। भीतरी भाग में कराकोरम, कैलास, लद्दाख और जांस्कर की पर्वत मालाएँ उत्तर पश्चिम से दक्षिणी पूर्व की ओर फैली है। सम्पूर्ण देश पहाड़ी है। इस राज्य के निम्नलिखित प्राकृतिक भाग किये जा सकते है :—

(१) झेलम नदी और उसकी सहायक नदियों की घाटी—यह काराकोरम से हिमालय श्रेणी तक फैली है।

(२) झेलम और किशन गंगा की घाटी—यह हिमालय और पीर पंजाल श्रेणियों के बीच में है।

(३) वह निचले भाग जो दक्षिणी सीमा के पास है। इन तीनों भागों के बीच में हिमालय पर्वत की बर्फ से ढकी हुई बाहरी और भीतरी श्रेणियाँ हैं। ये मुख्य श्रेणियाँ (१) मुस्ताग और कराकोरम, (२) जांस्कर श्रेणी (भीतरी हिमालय) (२) पगी श्रेणी (मध्य हिमालय) और (४) पीरपंजाल श्रेणी (बाहरी हिमालय) है।

मुश्ताग–कराकोरम श्रेणी—यह सबसे ऊँची श्रेणी है। इसमें कई ऊँची चोटियाँ हैं जो ७,६२० मीटर से भी ऊँची है। यह पर्वतमाला तिब्बत और काश्मीर को एक दूसरे से अलग करती है। इसकी सबसे ऊँची चोटी माउण्ट गोडविन ऑस्टिन (८,६०३ मीटर) है। इस श्रेणी को काटकर एक रास्ता लेह से तिब्बत को गया है। इस दर्रे को कराकोरम दर्रा कहते है। यहाँ पर कई विशाल हिमागार हैं। यह प्रदेश बहुत ऊँचा ठण्डा और उजाड़ है। सिन्धु नदी इस प्रदेश के दक्षिण पूर्व से उत्तर पश्चिम की ओर बहती है। यह नदी लद्दाख श्रेणी को दो बार काटती है। श्याक और गिलगट नदियाँ इस प्रदेश का बर्फीला पानी सिन्धु नदी में ले आती हैं।

जांस्कर पर्वत श्रेणी—यह श्रेणी पूर्व से पश्चिम की ओर ऊपरी श्रेणी के समान चली गई है। इसकी ऊँचाई ७,६२५ मीटर है। यही श्रेणी सिन्धु नदी की ऊपरी घाटी को झेलम की घाटी से अलग करती है। इस श्रेणी में जोजिला नाम का एक बड़ा दर्रा है जिसमें होकर श्रीनगर से लेह तक जाते हैं।

पंगी श्रेणी—यह श्रेणी उपरोक्त दोनों श्रेणियों से नीची है। इसकी कई चोटियाँ ३२,००० मीटर से भी ऊँची हैं।

पीर पंजाल श्रेणी—यह श्रेणी पश्चिम से पूर्व को चिनाब नदी से झेलम तक फैली हुई है यह जम्मू को काश्मीर से अलग करती है इसकी औसत ऊँचाई १०,००० फुट से अधिक नहीं है।

काश्मीर की घाटी—पंगी और पंजाल श्रेणियों के मध्य में विश्व विख्यात उपत्यका हैं। यह घाटी प्रायः १४० किलोमीटर लम्बी, ४० किलोमीटर चौड़ी है तथा समुद्रतल से २,१३४ मीटर ऊँची है। इसमें वूलर और डल झीलें स्थित हैं।

काश्मीर की यह घाटी सभी ओर से पर्वत श्रेणियों से घिरी है किन्तु इसकी भूमि कच्छारी मिट्टी से बनी होने के कारण बहुत उपजाऊ है। इसमें भेलम नदी बहती है। कहा जाता है कि यहाँ पहले एक विशाल भील थी जिसके सूखने से एक सुन्दर मैदान बन गया है। यहाँ भेलम के ९७ किलोमीटर तक नावें (जिसे यहाँ बजरे अथवा डोंगी कहते है) चल सकती है। काश्मीर में अनेक भीलें है जिनमे से मुख्य बूलर और डल भीलें हैं। ये अपनी प्राकृतिक छटा के लिए प्रसिद्ध है। इसकी सुन्दरता के कारण काश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाता है।

✓ (३) **जलवायु व वर्षा**—ऊँचाई के कारण प्रायः सभी पर्वत श्रेणियाँ बर्फ से ढकी रहती है अतः यहाँ गर्मी का अभाव है। अक्तूबर से अप्रैल तक यहाँ बड़ी ठण्ड पड़ती है। अक्टूबर के मध्य से ही तापक्रम घटने लगता है। जनवरी में तो ४° सें० ग्रेड से ८° सें ग्रेड के बीच में तापक्रम रहता है। इन दिनों बर्फ भी गिरने लगती है। सर्वत्र ही बर्फ जम जाती है किन्तु धीरे-धीरे गर्मी बढ़ने लगती है। गर्मियों में तापक्रम २१° से २६° सें ग्रेड के बीच मे रहता है। यहाँ वर्षा दोनों ही मौसमों में होती है किन्तु सर्दी में गर्मी की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। साल भर में ३२ सें मीटर से अधिक वर्षा नहीं होती। मानसूनी हवायें बाहरी हिमालय के कारण लेह ओर सिन्धु नदी की उत्तरी तलहटी तक नहीं पहुँच पाती इसीलिए लेह के आसपास वर्ष भर मे ८ सें० मीटर से अधिक वर्षा नहीं होती। इसकी खुश्की के कारण दक्षिणी ढालों की अपेक्षा उत्तरी ढालों पर हिम-रेखा अधिक ऊँचाई पर मिलती है।

(४) **उपज (क) वनस्पति**—यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति वन है जो अधिकतर पहाड़ियों के उत्तर की ओर मिलते हैं जहाँ उनको छाया मिलती है जिससे बर्फ अधिक समय तक जमी रहती है और सूर्य उसकी आर्द्रता को सुखा नहीं पाता। दक्षिणी भाग सूखा, पथरीला और छोटी-छोटी घास और भाडियो से ढका है। वनस्पति में ऊँचाई के साथ साथ परिवर्तन होते जाते है। १५२४ से ३६६० मीटर तक पहाड़ी ढालों पर देवदार, चिनार, चीड़, बलूत, सिदूर, सनोवर, स्प्रूस, फर और विलो के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। निचले पहाड़ी ढालों पर शहतूत और अखरोट के मानसूनी वन पाये जाते हैं। भीलों में विलो वनस्पति पैदा होती है जिससे टोकरियाँ बुनी जाती हैं।

(ख) **कृषि**—राज्य की ८५% जनसंख्या खेती पर निर्भर है। खेती अधिकतर घाटी में की जाती है। सम्पूर्ण क्षेत्रफल के लगभग ४% भाग पर ही खेती की जाती है।

काश्मीर की मुख्य उपज फल और मेवा है। यहाँ सेब, अंगूर, आड़ू, खूबानी, अखरोट, अनार, नाशपाती, शहतूत, बेर तथा बादाम आदि फल खूब पैदा होते हैं। पहाड़ी ढालों पर धरती को चौरस बनाकर सीढ़ी के आकार के खेतों में धान, मक्‍का कपास, तम्बाकू, दालें, गेहूँ, जौ, अलसी तथा चना पैदा किये जाते है। निम्न समतल भूमि में नारंगी, केले भी खूब पैदा किये जाते है। नावो मे अधिकतर केसर और साग-सब्जी की खेती भी की जाती है।

शहतूत के वृक्षों की अधिकता के कारण यहाँ रेशम के कीड़े अधिक पाले जाते हैं। यहाँ भेड़ें और बकरियाँ भी बहुत पाली जाती है।

(ग) **खनिज सम्पत्ति**—यहाँ सोना, जस्ता, ताँबा, सीसा, गंधक, सुहागा, संखिया, लोहा, जिप्सम, बैन्टोनाइट, बाक्साइट और कोयला आदि खनिजों के भण्डार भी होने का अनुमान है किंतु उनकी निश्चित मात्रा पूर्णतः ज्ञात नहीं है। सर्वेक्षण के अभाव और यातायात की कठिनाइयों के कारण ये पदार्थ भी थोड़ी बहुत मात्रा में निकाले जाते हैं। अभी केवल खड़िया, मिट्टी, कोयला और जिप्सम ही निकाले जाते हैं। यह क्रमशः उद्यमपुर और रामबन क्षेत्र से ही प्राप्त किया जाता है।

(५) **उद्योग-धन्धे**—काश्मीरी बड़े मेहनती होते हैं। ये लोग पहाड़ी ढालों पर भेड़ें और बकरियाँ अधिक पालते हैं। भेड़ों की सुन्दर मुलायम ऊन से शाल दुशाले, पश्मीने, गलीचे व कालीन, समूर की खाल की वस्तुएँ तथा पट्टू खूब बनाये जाते हैं। सुन्दर ऊन की कसीदे की टोपियाँ भी यहाँ बहुत बनाई जाती हैं। इन सभी वस्तुओं की माँग भी बहुत अधिक होती है।

श्रीनगर में जोगिन्द्रनगर से बिजली लाकर रेशम और ऊनी कपड़ों के कारखाने तथा सोपोर में दरवाजे बनाने के कारखाने चलाए जाते हैं। काश्मीरी रेशम की साड़ियाँ तथा कपड़े बहुत ही सुन्दर तथा टिकाऊ और महीन होते हैं। बारामूला में दियासलाई बनाने, रणवीरसिंहपुरा में चीनी, चमड़ा तथा कालीन बनाने का कारखाना भी है। काश्मीर में कीमती लकड़ी के घने जंगल पाए जाते हैं। अतः यहाँ लकडी पर खुदाई का काम बहुत अधिक और सुन्दरता से किया जाता है। यहाँ चाँदी के बर्तन, लकड़ी की विभिन्न वस्तुएँ, कागज की लुब्दी से सुन्दर राजावट की वस्तुएँ (Papier-Machie work) भी बनाई जाती हैं।

काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द उठाने के लिए प्रतिवर्ष संसार के विभिन्न भागों से यात्री आते हैं। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए यहाँ बहुत से छोटे मोटे धन्धे भी होते हैं जैसे यात्रियों के लिए मार्गदर्शक का काम करना, नावें चलाना, फल बेचना, होटल आदि चलाना।

(६) **मार्ग व व्यापार**—काश्मीर और भारत के बीच बड़ा निकट संपर्क है। भारत से काश्मीर तीन मार्गों द्वारा जाया जा सकता है। पहिला मार्ग सबसे दक्षिण में जम्मू होकर है। दूसरा मार्ग रावलपिण्डी होकर तथा तीसरा मार्ग एबटाबाद होकर है। इन्हीं मार्गों द्वारा भारत और काश्मीर के बीच आना जाना तथा व्यापार होता है। काश्मीर में यातायात के प्रमुख साधन सड़कें हैं। पठानकोट से एक सड़क जम्मू होती हुई बनिहाल और जवाहर सुरंग के द्वारा श्रीनगर को मिलती है। यह सड़क लगभग २०० मील लम्बी है। काश्मीर घाटी का सम्बन्ध भारत से करने के लिए ७,२५० फुट की ऊँचाई पर १½ मील लम्बी जवाहरसुरंग बनाई गई है जो १०½ फुट चौड़ी है। इसमें औसतन २५० गाडियाँ प्रति घंटा आ जा सकती हैं। यह सुरंग बनिहाल दर्रे में बनाई गई है। दिल्ली से श्रीनगर को नियमित रूप से वायु सेवाएँ भी चलती हैं। नदियों और झीलों में नौका चालन भी किया जाता है। पहाड़ी और ऊँची नीची भूमि के कारण रेलमार्गों का अभाव है।

व्यापार—काश्मीर के मुख्य निर्यात ऊन, पश्मीने, शाल-दुशाले, रेशम और रेशमी वस्त्र, जड़ी बूटियाँ, समूर, ताजे और सूखे फल तथा केसर आदि हैं। इनके बदले में सूती वस्त्र, मशीनें, शक्कर, नमक, खाद्यान्न, मसाले, बर्तन, चाय आदि वस्तुएँ आयात की जाती हैं।

(७) **जनसंख्या**—१९६१ की जनगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहाँ जनसंख्या का घनत्व प्रतिवर्ग मील के पीछे केवल ५१ व्यक्ति है। यहाँ के निवासी आर्य जाति के है तथा ये काश्मीरी और डोगरी भाषाएँ बोलते है। ये बड़े सुन्दर होते है। राज्य मे लगभग ७७% मुसलमान और २३% हिन्दू है। कुल जनसंख्या का १०% नगरों में और ९०% गाँवों में रहता है। राज्य मे २ नगर तथा २७ कस्बे और ८७४० गाँव हैं।

श्रीनगर—यह नगर ११ वर्गमील क्षेत्रफल में फैला है। इसकी जनसंख्या २,८४७५३ है। यह काश्मीर का सबसे बड़ा नगर जम्मू, लेह, गिलगिट, गुलमार्ग, बारामूला, मुजफ्फराबाद, ऊधमपुर और पहलगाँव यहाँ के प्रमुख नगर और सैलानी केन्द्र हैं।

अध्याय ५१

केरल

(KERALA)

(१) **सीमा तथा विस्तार आदि**—यह भारत का सबसे छोटा राज्य है जो सबसे दक्षिण में स्थित है। यह पश्चिमी तट के आधे दक्षिणी भाग में लगभग ६७४ किलोमीटर लम्बे और १२६ किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में फैला है। इसके पश्चिम में अरब सागर, उत्तर में मैसूर, पूर्व में मद्रास तथा दक्षिण में हिन्द महासागर है। यह राज्य ८° १८′ उत्तरी अक्षांस से लेकर १२° ४८′ उत्तरी अक्षांस और ७५° पूर्वी देशान्तर से लगाकर ७७½° पूर्वी देशान्तर के बीच फैला है। केरल का का निर्माण भूतपूर्व ट्रावनकोर कोचीन राज्य के त्रिवेन्द्रम जिले के ४ तालुक्के, क्विलोन जिले के शैनकोटा तालुका को छोड़कर बनाया गया है। इनमें मद्रास राज्य का मलाबार जिला और दक्षिणी कनारा का कसारागढ़ तालुका भी मिलाया गया है।

केरल राज्य के ९ जिले ये हैं:

अलप्पी, कन्नानौर, कोट्टायम, कोजीखोड़, अनोकुलम, पालघाट, क्विीलोन, त्रिचूर और त्रिवेन्द्रम। इसका क्षेत्रफल ३८,७९७ किलोमीटर तथा जनसंख्या १६,९०३,७१५ है।
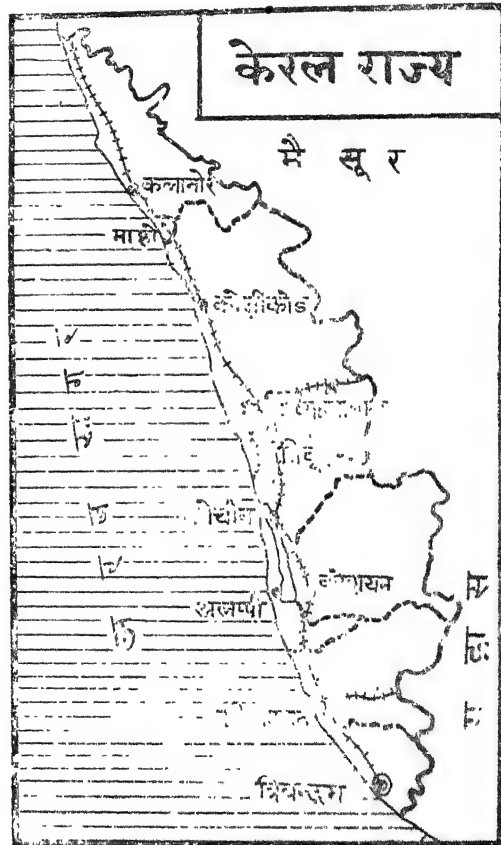
चित्र २४३. केरल राज्य

(२) **प्राकृतिक विभाग**--प्राकृतिक दृष्टि से केरल के दो भाग हैं :—

(क) **समुद्र तटीय मैदान**—पश्चिम की ओर एक पतला समुद्रतटीय मैदान है, यह बहुत ही तंग है और कहीं भी १५२ मीटर से अधिक ऊँचा नहीं। इसकी अधिकतम चौड़ाई ६४ कि०मी० है। लगभग ५८० किलोमीटर लम्बी तट रेखा के साथ साथ बहुत सी झीलें भी पाई जाती हैं जिनमें ज्वार भाटे का जल भर आता है। इन्हे आपस में जोड़कर एक २४० किलोमीटर लम्बा जलमार्ग समुद्रतट के समानान्तर बनाया गया है। अनूपों के किनारे नारियल के कुंज हैं। यहाँ वर्षा अच्छी होती है तथा भूमि भी उपजाऊ है। इस कारण राज्य की अधिकांश आबादी इसी भाग में रहती है।

(ख) **पहाड़ी भाग**—पूर्वी भाग पहाड़ी है जो पश्चिमी घाट का अंग है। इसमें अनामलाई, इलायची और नीलगिरी की पहाडियाँ स्थित हैं। पालघाट का दर्रा भी इसी भाग में है। इन पहाड़ियों से अनेक छोटी-छोटी नदियाँ निकलकर अरब सागर में गिरती हैं। इस भाग में वर्षा खूब होने से पश्चिमी ढालों पर घने वन पाये जाते हैं।

(ग) **मिट्टियाँ**—केरल राज्य में निम्न प्रकार की मिट्टीयाँ पाई जाती हैं :—

(१) समुद्र तटीय प्रदेश में लहरों द्वारा बिछाई गई बालू मिट्टी की अधिकता है। इसी के पश्चिम में पठारी भाग तक नदियों की कांप मिट्टी लाकर बिछाई गई है। (२) पठारी भाग में लैटेराइट मिट्टियाँ फैली है तथा (३) अनामलाई आदि पहाड़ियो के पूर्वी ढालों पर लाल दुमट और काली मिट्टी के क्षेत्र पाये जाते हैं। कहीं कहीं दकन ट्रैप की काली मिट्टी भी मिलती है।

(३) **जलवायु व वर्षा**—समुद्र के समीप होने के कारण यहाँ का जलवायु गर्म और तर है यहाँ साल भर ऊँचा तापक्रम रहता है वार्षिक तापक्रमान्तर कम रहता है। ग्रीष्म ऋतु का तापक्रम ३२° सें० ग्रे० के लगभग और शीतऋतु का २१ से० ग्रे० के समीप रहता है। वर्षा यहाँ साल भर ही होती है (केवल दिसम्बर से फरवरी को छोड़कर)। वार्षिक औसत तापक्रम २७° से० ग्रेड और वर्षा २५४ से० मीटर है। पहाड़ी भागों में वर्षा का औसत ७६२ से० मीटर तथा मैदानी भागों में १५२ से० मीटर तक रहता है। यहाँ अधिकतर वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसूनों द्वारा होती है। उत्तरी भाग मे वर्षा कोचीन में ३०४ से० मी० तक होती है किन्तु दक्षिणी भाग में त्रिवेन्द्रम में केवल १६२ से० मी०।

(४) **उपज (क) वनस्पति**—गर्म और तर जलवायु होने के कारण इस राज्य में वनों का विस्तार काफी है। लगभग ३२% भाग पर वन मिलते हैं जहाँ चौड़ी पत्ती वाले सदाबाहार जंगल पाये जाते हैं जिनमे आबनूस, चन्दन, सागौन, महोगनी बेंत व रोजवुड आदि के पेड़ मिलते हैं। तटीय भागों में नारियल के कुंज पाये जाते है। ऊँचे भागों में कोणधारी वृक्ष भी मिलते है जिनकी लकड़ी से लुग्दी बनाकर कागज तथा नकली रेशम बनाया जाता है। यहाँ रबड़, काजू, सुपारी और काली मिर्च भी खूब पैदा किये जाते हैं। पठारी भाग पर लेमन-घास और झाड़ियाँ पैदा होती हैं। वहाँ के वनों से चन्दन, बेंत, कोयला, बाँस आदि प्राप्त किये जाते है।

(ख) **कृषि**—राज्य के तटीय मैदान में [illegible] तथा [illegible] की खेती होती है। कुछ समय से यहाँ जूट भी पैदा किया जाने लगा है। यहाँ की खेती में बागाती खेती का विशेष महत्व है। बागाती कृषि में चाय, कहवा, [illegible], सुपारी, कालीमिर्च, काजू, मशाले, टैपीओका, अदरक, [illegible], [illegible], नारियल तथा रबड़ इत्यादि फसलें मुख्य हैं। इनके अलावा राज्य में तिल और दालों की खेती भी होती है। कटहल, आम और अनन्नास सब पैदा किये जाते हैं। [illegible] झीलों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं विशेष कर गियर, पामफ्रेट मैकरेल, झींगी, शार्क, [illegible]-टिंग और बटरफिश। मछलियों से शार्क लिवर आयल और [illegible] का तेल तथा मोती और सीप भी प्राप्त किये जाते हैं।

(ग) **खनिज**—खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से यह राज्य विशेष महत्वपूर्ण है। मोनेजोइट, जिरकोन, टिटेनियम, इलमैनाइट, गारनेट आदि कुछ बहुत ही मूल्यवान खनिज यहाँ मिलते हैं जिनका अणुशक्ति विकास में प्रयोग होता है। ये सब समुद्र तटीय बालू से प्राप्त किये जाते हैं। ऐसी बालू की राशि ३५ करोड़ टन कूती गई है। यहाँ कुछ मात्रा में अभ्रक, लिगनाईट, ग्रेफाइट तथा उत्तम श्रेणी की चीनी मिट्टी और चूने का पत्थर भी प्राप्त होता है।

(५) **उद्योग धन्धे**—कला कौशल में यह राज्य बहुत उन्नत है। यद्यपि कोयले का यहाँ अभाव है किन्तु जल-विद्युत-शक्ति के अच्छे साधन हैं। जल-विद्युत-शक्ति से ही यहाँ उद्योगों की उन्नति हुई है। वर्तमान उद्योगों मे नकली-रेशम चाय, लकड़ी चीरना, तेल पेरना, कागज, सीमेन्ट, चीनी, सूती कपड़ा, एल्यूमिनियम, प्लाईवुड, रबड़ की वस्तुएँ, चीनी मिट्टी के बर्तन, खाद, रसायन तथा कांच आदि के उद्योग उल्लेखनीय हैं। त्रिवेन्द्रम, कुंदारा, अल्वाय व पुनालूर यहाँ के प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं। कोट्टायम में सीमेन्ट ईंटे तथा टाइल्स; कुंदारा में चीनी मिट्टी के बर्तन और कागज; पुन्नालूर में कागज और प्लाईवुड; क्विलोन में काजू साफ करने, नारियल की जटाओं का सामान, खपरैल, दियासलाई, पैंसिल और बिजली का सामान बनाया जाता है। त्रिवेन्द्रम में रबड़ की वस्तुयें बनाने का व छापाखाने त्रिवेन्द्रम और अर्नाकुलम में; बाइसिकल का कारखाना त्रिवेन्द्रम में; काँच का अलवाये में; नकली रेशम का पैरम्बूर में; त्रिवेन्द्रम में टिटैनियम की वस्तुयें तैयार करने का; चीनी की मिलें कुँदारा और त्रिवेन्द्रम में; सूती कपड़े की मिलें कनान्नोर और बलरामपुरम में हैं।

कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत हाथ करघे का कपड़ा नारियल की जटाओं से रस्से, टोकरियाँ, चटाइयाँ, पखे बनाना, हाथी दाँत का काम, पीतल और तांबे के बरतन तथा मेज कुर्सी बनाना अधिक किया जाता है।

(६) **यातायात**—इस राज्य में लगभग १७० मील लंबा रेल मार्ग है। यहाँ १०,००० मील लम्बी सड़कें हैं। इसमें से ३ हजार मील पक्की है। तटीय भागों में आना जाना मुख्यतः नावों द्वारा ही होता है। जलमार्गों की लम्बाई १ हजार मील है।

(७) **जनसंख्या**—राज्य की कुल जनसंख्या लगभग १ करोड़ ६९ लाख है। जन संख्या का औसत घनत्व ११२५ व्यक्ति प्रतिवर्ग मील है। सबसे अधिक घनत्व अलप्पी में २५४५ और सबसे कम कन्नानोर जिले में ६४६ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। क्विलोन, कोचीन, त्रिवेन्द्रम, कुंदारा, कोजीखोड़, अलवाये व त्रिचूर यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। **कोचीन** यहाँ का सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

मध्य प्रदेश

(MADHYA PRADESH)

(१) **सीमा और विस्तार आदि**—यह प्रदेश भारत का हृदय (Heartland of India) है। यह हमारे देश के ठीक मध्य में स्थित है। यह राज्य १८° तथा २६° ५०′ उत्तरी अक्षांश और ७४° तथा ८४½° पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है। इसके उत्तर में उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान; उत्तर पूर्व में बिहार; पूर्व में उड़ीसा; दक्षिण में आंध्र और महाराष्ट्र तथा पश्चिम राजस्थान है। यह भारत के किसी भी भाग से अधिक

चित्र २४४. मध्य प्रदेश

दूर नहीं है। भूतपूर्व मध्य भारत (मंदसौर जिले के सुनेल क्षेत्र के अतिरिक्त), विंध्य प्रदेश, भोपाल, राजस्थान के सिरोंज डिवीजन और भूतपूर्व मध्य प्रदेश के १४ जिलों को मिलाकर इसका निर्माण किया गया है। इस पुनर्गठित राज्य का जन्म १ नवम्बर

१९५६ को हुआ। उत्तर से दक्षिण तक इसकी अधिक से अधिक चौड़ाई ६७२ कि० मीटर और पूर्व से पश्चिम तक ९२७ कि० मीटर की लम्बाई है।

मध्य प्रदेश में ७ कमिश्नरियाँ है जिनमें ४३ जिले और १९१ तहसीलें हैं। जिले और कमिश्नरियाँ इस प्रकार हैं—

(१) **भोपाल** के अन्तर्गत सीहोर, रायसेन, भीलसा, होशंगाबाद, बेतूल, रायगढ़ और शाहजहाँपुर जिले हैं।

(२) **बिलासपुर** के अन्तर्गत बिलासपुर, रायगढ़, सरगूजा जिले हैं।

(३) **ग्वालियर** में गिर्द, भिंड, मोरेना, शिवपुरी, गूना और दांतिया जिले हैं।

(४) **इन्दौर** में इन्दौर, रतलाम, उज्जैन, मन्दसौर, देवास, धार, झाबुआ, खरगोन (निमाड़) और खडवा (निमाड) जिले है।
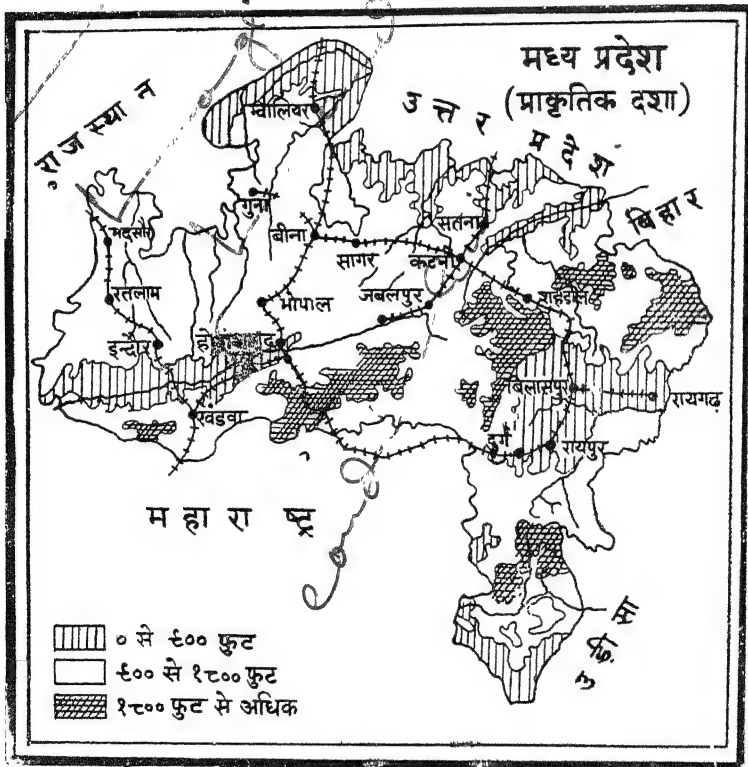
चित्र २४५. मध्य प्रदेश (प्राकृतिक दशा)

(५) **जबलपुर** में जबलपुर, बालाघाट, छिंदवाड़ा, सिऊनी, सागर, मांडला दमोह और नृसिंहपुर जिलें है।

(६) रायपुर में रायपुर, बस्तर और दुर्ग जिले हैं।

(७) रीवाँ में रीवाँ, सीढ्ढी, सतना, पन्ना, छत्तरपुर, टीकमगढ़ और शाहडोल जिले है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से मध्य प्रदेश भारत का सबसे बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल ४४३,४०६ वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या ३२,३७२,४०८ है। यह उत्तर में चम्बल और दक्षिण मे गोदावरी नदी तक फैला है।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—इस देश का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। प्रायः प्रत्येक ओर वनाच्छादित पहाड़ियाँ दीख पड़ती हैं। ऊँची भूमि और अधिक वर्षा के कारण यहां से कई नदियाँ निकलती हैं। नर्मदा और ताप्ती नदियाँ पश्चिम की ओर तथा वर्धा नदी दक्षिण-पूर्व और वैनगंगा तथा इन्द्रावती दक्षिण की ओर बहती हैं।

इस राज्य को निम्न प्राकृतिक विभागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) **उत्तर का प्रदेश**—इस प्रदेश में ग्वालियर कमिश्नरी के ६, रींवा के ७ जिले, सागर और दमोह जिले तथा जबलपुर जिले के उत्तरी भाग सम्मिलित हैं।

चित्र २४६. मध्यप्रदेश (प्राकृतिक दशा)

यह मैदानी विभाग है जो ग्वालियर के उत्तर और उत्तर पूर्व की ओर फैला है। विन्ध्याचल पर्वत इस प्रदेश को एक सिरे से दूसरे सिरे को पार करता हुआ गंगा के तट (चुनार) तक चला गया है। यह पर्वत कई छोटे छोटे भागों में बँटा है। मध्य

प्रदेश में इन्हें भांडेर और आगे चलकर बुन्देलखंड में कैमूर की पहाड़ियाँ कहते हैं। इस प्रदेश की ऊँचाई १८३ से ३०५ मीटर तक है। इन पर्वतों से चम्बल, केन, बेतवा, टौंस, धसान सोन, कटनी और सुनार नदियाँ निकलती हैं। दक्षिण की ओर के पठारी भू-भाग की भूमि ऊँची नीची है।

(२) **नर्मदा घाटी**—उपरोक्त प्रदेश के नीचे नर्मदा की तंग घाटी है जो दोनों ओर पहाड़ों से घिरी है। उत्तर की ओर विन्ध्याचल तथा दक्षिण की ओर सतपुड़ा। इस घाटी में जबलपुर जिलों का दक्षिणी भाग खारगोन और खंडवा जिलों का उत्तरी भाग तथा नृसिहपुर और होशंगाबाद के जिले सम्मिलित हैं। यह घाटी समुद्रतल से ३०५ मीटर ऊँची है और प्रायः ४८ कि० मीटर और ३२२ कि० मीटर लंबी है। यह नदी घाटी बड़ी उपजाऊ है। नर्मदा, हिरन, अजनार, शेर, शकर, दुखी, जंगजाल आदि उसकी सहायक नदियों की घाटी में कपास, चना, गेहूँ, तिलहन, दालें और पान पैदा किए जाते हैं।
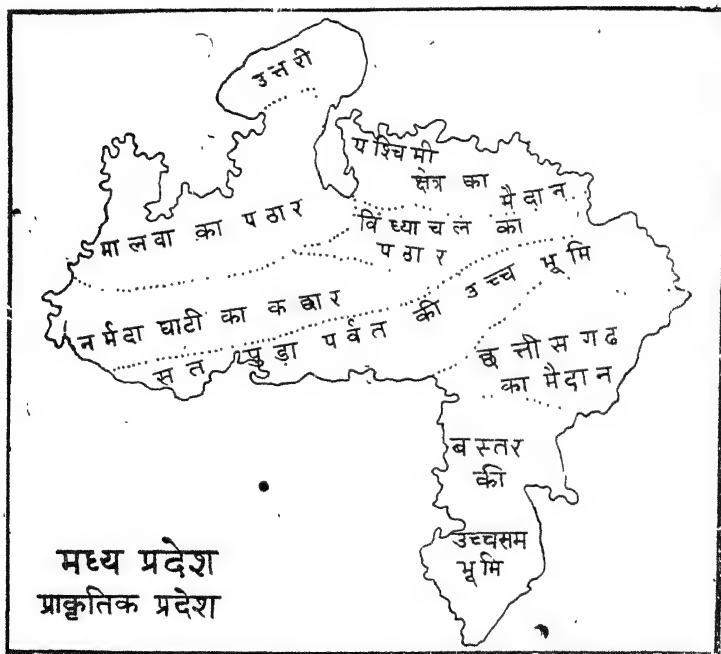
चित्र २४७. मध्य प्रदेश (प्राकृतिक प्रदेश)

(३) **सतपुड़ा पर्वत का पठार**—इस भाग में खंडवा तथा खारगोन का दक्षिणी भाग, रायगढ़ और बिलासपुर का उत्तरी भाग, मांडला, सिऊंनी, छिंदवाड़ा, बैतूल, बालाघाट और सरगुजा जिले शामिल हैं। यह आसपास की भूमि से ६१० मीटर ऊँचा है। इसकी चौड़ाई ३२ कि० मी० तक है। यह पहाड़ मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग को पार करता हुआ छोटा नागपुर के पठार से मिल गया है। इसका मध्यवर्ती भाग महादेव और पूर्वी भाग मैकाल श्रेणी कहलाता है। ये पहाड़ियाँ

दक्षिण की ओर एक दम ढालू है। उत्तर की ओर इनका ढाल क्रमशः धीमा है। पचमढ़ी महादेव श्रेणी पर ही स्थित है। सतपुड़ा की अन्य चोटियाँ **अमरकंटक, सोलेटकरी, धूपगढ़, मेलघाट** और **असीरघाट** है। नर्मदा, सोन तथा बानगंगा यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। इनके किनारे भूमि कछारी और उपजाऊ है। शेष भूमि पथरीली और पहाड़ी है।

(४) **छत्तीसगढ़ का मैदान**—दक्षिण में सिहावा पर्वत से तथा शेष तीन ओर सतपुड़ा श्रेणियों में घिरा है। यह भाग विस्तृत और उपजाऊ है। इसमें महानदी और उसकी सहायक नदियाँ शिवनाथ, जोंक, हसदो आदि बहती है। मैदान की भूमि पीली और रेतीली है। इसमें चावल, गेहूँ और कपास अधिक पैदा होता है। इसमें रायगढ़ तथा बिलासपुर जिलों के दक्षिणी भाग, रायपुर जिले का उत्तरी भाग तथा दुर्ग जिला स्थित है।

(५) **मालवा का पठार**—यह प्रदेश पठारी है जिसके उत्तर पश्चिम में अरावली तथा दक्षिण में विंध्याचल की पर्वत श्रेणियाँ हैं तथा पूर्वी सीमा पर बेतवा और दक्षिणी सीमा पर नर्मदा बहती है। चम्बल तथा क्षिप्रा, काली सिंध, पार्वती आदि उत्तर-पूर्व की ओर बहती हैं। भूमि काली तथा चूना मिश्रित होने के कारण कपास की खेती अधिक की जाती है। गेहूँ, तम्बाकू, चना, गन्ना, ज्वार, बाजरा, तिलहन, मक्का, अफीम आदि अधिक मात्रा में पैदा किया जाता है। नीमच के निकट अभ्रक, तांबा और चूने का पत्थर तथा मन्दसौर और नारायनगढ़ में स्लेट के पत्थर की खानें हैं। इस भाग में इन्दौर, उज्जैन, धार, देवास, शाजापुर, रतलाम, मन्दसौर, झाबुआ, भेलसा, रायसेन, राजगढ़ तथा सिहोरे जिले सम्मिलित है।

(६) **बस्तर का पठार**—यह पठार समुद्र के धरातल से ४५७ से ६१० मीटर तक ऊंचा है। इसके मुख्य पर्वत बस्तर और सिंहावा तथा मुख्य नदियाँ इन्द्रावती और उसकी सहायक नदियाँ हैं। भूमि पथरीली होने कारण मोटे अनाज कोदों, कुटरी मक्का आदि पैदा किये जाते हैं। इस क्षेत्र में रायपुर ज़िले के दक्षिणी भाग तथा बस्तर जिला सम्मिलित है।

मिट्टियाँ—मध्य प्रदेश में निम्न प्रकार की मिट्टियां मिलती हैं :—

(१) **काली मिट्टी** अधिकाँशतः मालवा के पठार पर पाई जाती है विशेष कर निमाड़, होशंगाबाद और सागर जिलों के सम्पूर्ण भाग में तथा जबलपुर जिले में बिखरे हुए रूप में।

(२) **लाल रेतीली मिट्टी** मुख्यतः दुर्ग, रायपुर और बिलासपुर जिलों में सर्वत्र तथा मांडला और जबलपुर जिलों में बिखरी हुई पायी जाती है।

(३) **हल्के रंग की दोमट मिट्टी** छिन्दवाड़ा और बेतूल जिलों में मिलती है।

(४) **हल्के रंग की की बलुही मिट्टी क्षेत्र** गिर्द के निचले मैदानी भागों में तथा बुन्देलखंड और बघेलखंड में पाये जाते हैं।

(५) **पीली रेतीली मिट्टी** छत्तीसगढ़ के मैदानी भागों मिलती है।

(६) **कांप मिट्टी** नर्बदा की घाटी में पाई जाती है।

(३) **जलवायु व वर्षा**—कर्क रेखा इस राज्य के मध्य में होकर निकलती है तथा सारा राज्य समुद्र तट से दूर है अतः यहाँ की जलवायु सामान्यतः उष्ण है तथा अधिक विस्तृत होने के कारण इसके भिन्न भिन्न भागों के जलवायु में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। उत्तर पश्चिम में मैदानी भाग शुष्क है तथा यहाँ गरमी और सरदी दोनों अधिक पड़ती है। यहाँ जून का औसत तापक्रम २६° सें० ग्रे० के लगभग रहता है तथा शीत ऋतु में १८° से २४° सें० ग्रे० तक। मालवा के पठार, सतपुड़ा विभाग तथा नर्मदा के कछार का जलवायु अपेक्षाकृत शीतल है। यहाँ गर्मी कम पड़ती है और वर्षा अधिक होती है। सतपुड़ा के पंचमढ़ी स्थान में वर्षा का औसत १५२ सें० मीटर तक रहता है किन्तु जलवायु शीतल और स्वास्थ्यप्रद है। उत्तरी पूर्वी भाग, छत्तीसगढ़ के मैदान और बस्तर के पठार की जलवायु उष्ण और आर्द्र है क्योंकि वहाँ वर्षा अधिक होने और भूमि ऊँची नीची होने के कारण पानी भरा रहता है। पहाड़ी भागों को छोड़ कर सभी भागों में वर्षा का औसत •७६ से १५२ सें० मीटर तक रहता है।
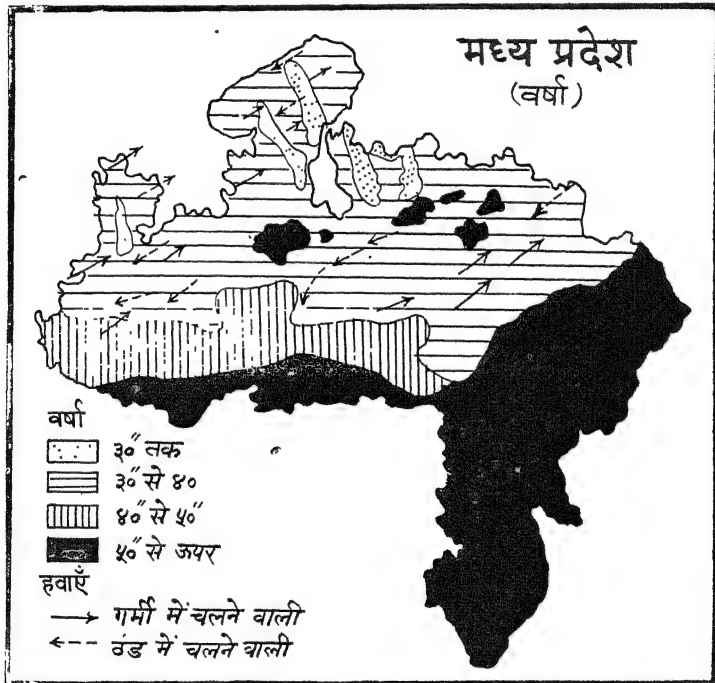
चित्र २४८. मध्य प्रदेश (वर्षा)

(४) उपज (क) **वनस्पति**—वन सम्पत्ति में यह राज्य सम्पन्न है। यहाँ के ४० प्रतिशत भाग पर वन फैले हुये हैं। यहाँ मुख्यतः मानसूनी जंगल पाये जाते हैं जिनमें साल, सागौन, बाँस, महुआ, तेंदू, धावड़ा, पलास, बबूल, शीशम, सलाई, अंजन और टिंडू आदि के वृक्ष उगते हैं। किन्तु इन सब में सागौन यहाँ की मुख्य

पैदावार है। जंगलों में कुछ विशिष्ट प्रकार की घासें भी उत्पन्न होती हैं जो कागज बनाने के काम में लाई जा सकती है। यहाँ के जंगलों में ईंधन की लकड़ी और इमारती लकड़ी की बहुलता है। यहाँ लकड़ी का व्यापार खूब होता है। घने जंगल होने के कारण वनों में शेर, चीते, बारहसिंघे, जंगली रीछ, सांभर व हिरन की प्रचुरता है। इंदौर, दीपालपुर और धार जिलों में शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। शिऊनी, रायपुर, बिलासपुर, उमरिया, रीवाँ आदि के जंगलों से भारी मात्रा में लाख इकट्ठी की जाती है।

(ख) **कृषि**—मध्य प्रदेश भारत का कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ की ५६% भूमि पर खेती की जाती है और लगभग ३५ लाख एकड भूमि मे सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं। यहाँ की आबादी का ७८% भाग इसी उद्योग में लगा हुआ है। राज्य के विभिन्न भागों मे विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा मिट्टी पाई जाती है। फलतः यहाँ अनेक प्रकार की फसलें उत्पन्न की जाती है। यह राज्य ज्वार के उत्पादन में प्रथम, गेहूँ में द्वितीय, चने में तृतीय, तिलहन में चतुर्थ और चावल में पांचवाँ है। गेहूँ, चावल, कपास, मक्का, ज्वार, गन्ना, दालें व तिलहन यहाँ की मुख्य फसलें हैं। **गेहूँ** मुख्यतः नर्मदा की घाटी, सतना, छतरपुर, भोपाल और मालवा के पठार पर बोया जाता है। यहाँ भारत का १५% गेहूँ पैदा होता है। मालवा का पठार कपास

चित्र २४६. मध्य प्रदेश (कृषि)

का भी मुख्य क्षेत्र है। कपास के उत्पादन में इस राज्य का भारत में दूसरा स्थान है। **ज्वार** भोपाल, सागर, निमाड़, होशंगाबाद, शाहपुर, उज्जैन, गुना और मंदसौर

में पैदा की जाती है। छतीसगढ का मैदान **चावल** की पैदावार के लिये प्रसिद्ध है। रीवां, धार, शाहपुर, उज्जैन व इन्दौर के जिलों में भी चावल बोया जाता है। गन्ना, तिलहन और ज्वार व दालें यत्र तत्र अनेक स्थानों पर पैदा किये जाते हैं।

शुष्क जलवायु के कारण यहाँ उत्तम नस्लों के पशु पाये जाते हैं :—(१) मालवा पठार की **मालवा** नस्ल; (२) खंडवा, खारगोन और धार जिलों की **निमाड** नस्ल; (३) छतरपुर और पन्ना जिलो की **केनकथा** नस्ल और छिंदवाडा, सिओनी और बालाघाट जिले की **गावलो** नस्ल।

मध्य प्रदेश में अनेक नदियाँ और लगभग १० हजार छोटे बड़े तालाब और १७५ विशाल जलाशय है जिनमे ८४ प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं विशेष कर रोहू, कटला, मृगल, कालबा, सूतथा, महसीर।

(ग) **खनिज पदार्थ**—खनिज सम्पत्ति में यह राज्य बहुत ही धनी है। यहा की लगभग ५९० खानो से २५ प्रकार के खनिज निकलते हैं। इनमे लगभग ७१ हजार श्रमिक लगे है। यहाँ अनेक प्रकार से खनिज पाये जाते है जिनमे मैंगनीज, बाक्साइट, कोयला, अभ्रक, चूने का पत्थर, चीनी मिट्टी व हीरा इत्यादि प्रमुख हैं। **मैंगनीज** के उत्पादन में यह राज्य भारत में अग्रणीय है। यहाँ से कुल उत्पादन का लगभग आधा प्राप्त होता है। मैंगनीज की खाने बालाघाट, सिओनी, छिंदवाडा, मांडला, बस्तर, झाबुआ, बिलासपुर और जबलपुर जिलो मे पाई जाती है। **लोहा** दुर्ग, गिर्द, बस्तर, होशंगाबाद, मंदसौर, खारगौन, सिद्धी, छत्तरपुर और जबलपुर जिला मे पाया जाता है। यहाँ लोहे के १५ लाख टन के जमाव अनुमानित किये गये है। मंदसौर, झाबुआ, जबलपुर और बिलासपुर मे **अभ्रक** मंदसौर, सिद्धी बालाघाट, देवास, शिवपुरी और नृसिंहपुर मे **ताँबा**; दुर्ग, सरगुजा, गिर्द, शिवपुरी और रायपुर में सीसा महानदी और बानगंगा की रेत में (रायपुर, सबगुजा, रायगढ़, बालाघाट और बस्तर जिलों में) भी सीसा मिलता है। **कोयला** सरगुजा, बिलासपुर, रायगढ़, छिंदवाड़ा, सिद्धी, बेतूल, होशंगाबाद और कोरबा की खानो और शाहडोल जिलों से प्राप्त होता है। यहा का वार्षिक उत्पादन ५० लाख टन से अधिक का है। पन्ना व रीवा की खानों से **हीरा** खोदा जाता है। भारत का ९०% हीरा यही मिलता है। **बाक्साइट** बालाघाट, बिलासपुर, सरगुजा, रायगढ़, शहडोल, मांडला, जबलपुर तथा सिद्धी जिलों की खानों से खोदा जाता है। जबलपुर के निकट संगमरमर प्राप्त होता है। उत्तम प्रकार का चूना जबलपुर, सतना, रीवाँ, रायपुर दुर्ग, बिलासपुर, रायगढ, मंदसौर और मुरैना जिलों मे मिलता है। **कोरंडम** सिद्धी जिले से; **काँच बनाने की बालू** सतना, जबलपुर और मुरेना से; **बेराइट्स** सिद्धी, जबलपुर, देवास और टीकमगढ से; **फलसफार** छिंदवाड़ा और शहडोल से; **अग्नि मिट्टियाँ** सरगुजा, बिलासपुर, शहडोल, मंदसौर नृसिंहपुर रायगढ़, सिद्धी, छिंदवाड़ा जिलों से; और **घीया पत्थर**, सिद्धी, झाबुआ और छतरपुर जिलों से प्राप्त किया जाता है।

(५) **उद्योग-धन्धे**— औद्योगिक दृष्टि से भी यह राज्य काफी [illegible] है। यहाँ सूती कपड़ा, रेशमी कपड़ा, सीमेंट, कागज, [illegible], दियासलाई, चीनी के बर्तन, कागज, जूट, कांच, [illegible] इत्यादि बनाने के कई कारखाने हैं। **सूती वस्त्र उद्योग** यहां का प्रमुख [illegible] है। इस की १९ मिलें इन्दौर, उज्जैन, देवास, ग्वालियर, जबलपुर, [illegible],

भोपाल और राजनंदगाँव में केन्द्रित हैं। **रेशमी कपड़ा** व बिस्कुट, दियासलाई और सूती मिलों की मशीनें ग्वालियर में बनायी जाती हैं। नकली रेशम का उद्योग ग्वालियर, नागदा, उज्जैन में किया जाता है। **सीमेंट** के यहाँ ४ बड़े कारखाने हैं। ये क्रमशः
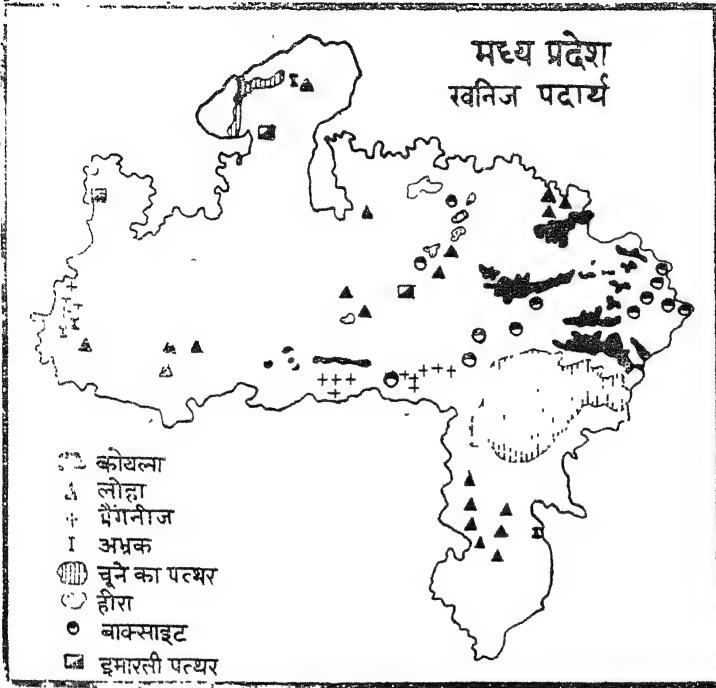
चित्र २५०. खनिज पदार्थ

केमूर, सतना, दुर्ग और **बनमोर** स्थानों पर हैं। दुर्ग के समीप भिलाई इस्पात कारखाना है जहाँ १६ लाख टन इस्पात प्रतिवर्ष तैयार होता है। नेपानगर में **अखबारी कागज** बनाने का कारखाना है। जहाँ ३० हजार टन कागज हर साल बनाया जाता है। **चीनी** के यहाँ ८ कारखाने हैं। डाबरा, दालोदा, सारंगपुर, महीदपुर, झाबुआ तथा सिहोर इसके मुख्य केन्द्र हैं। **चीनी मिट्टी के बर्तन** ग्वालियर, कटनी, चाँदिया, रतलाम और जबलपुर में बनाये जाते हैं। इन्दौर में डीजल एन्जिन, उज्जैन में रेजर ब्लेड, बिलासपुर में दियासलाइयाँ; और ग्वालियर में काँच का सामान बनाने के कारखाने भी हैं। इनके अतिरिक्त भोपाल में बिजली का भारी सामान बनाने का कारखाना; कोरबा में सिन्थेटिक पैट्रोल, डबरा में अलकोहल, उज्जैन में तेल मिल, सुखेड़ा में सीमेंट फेक्ट्री और शिवपुरी में कागज का कारखाना खोला गया है। इंजीनियरिंग उद्योग ग्वालियर, उज्जैन और इन्दौर में, वनस्पति घी इन्दौर; कार्ड बोर्ड बनाने का कार्य रतलाम और भोपाल; दुर्बीन के काँच जबलपुर और कटनी में बनाये जाते हैं।

कुटीर उद्योगों का विकास भी मध्य प्रदेश में अधिक हुआ है। सबसे बड़ा उद्योग वस्त्र बुनना और कपड़े की रंगाई छपाई करना है। इसके लिये भोपाल, उमरेठ, बुढ़हानपुर, महेश्वर रायपुर, सिहोर, पन्ना और कोसा मुख्य है। मंदसौर में ऊनी कम्बल तथा चंदेरी और महेश्वरी में सोने के तार से सुसज्जित साड़ियाँ बहुत बनाई जाती हैं। शिवपुर में लाख और लकड़ी की वस्तुयें; लकड़ी की वस्तुयें, सबलपुर, रीवाँ और ग्वालियर में तथा मंदसौर में स्लेट की पेंसिलें बनाई जाती हैं। 'कोशा' रेशम तैयार करने के मुख्य केन्द्र रायगढ़, रायपुर, चापा और सरगुजा हैं। इनके अतिरिक्त ताड़-गुड़, बीडी, मिट्टी के बर्तन, टोकरियाँ, जूते आदि बहुत बनाये जाते हैं। लकड़ी काटने और चीरने के कारखाने रतलाम, बेतूल, भोपाल, बालाघाट, छिंदवाड़ा, बिलासपुर और मांडला में लगी है। पीतल के बर्तन बालाघाट, छिंदवाड़ा, रायपुर और छतरपुर में बनाये जाते हैं। बीड़ी के कारखानें, काम्पटी, गोंदिया, जबलपुर, सिहोर और सागर में हैं। खड़िया मिट्टी की वस्तुयें छतरपुर और जबलपुर में तैयार की जाती हैं।

चित्र २५१. मध्य प्रदेश (उद्योग)

(६) **जनसंख्या व नगर**—मध्य प्रदेश में जनसंख्या लगभग ३ करोड़ और २३ लाख है। जनसंख्या का औसत घनत्व १८९ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। सबसे अधिक घनत्व इन्दौर जिले में ५१० और सबसे कम बस्तर जिले में ७७ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। आबादी की दृष्टि से यह भारत का सातवाँ बड़ा राज्य है। यहाँ के आंतरिक भागों में आदिवासी रहते हैं जो कुल जनसंख्या का १२% हैं। मुन्डा, गौंड़, बैगा

मॉरिया, बाथरा, भील, मांडिया इसमें मुख्य हैं। यद्यपि राज्य की भाषा हिन्दी है किन्तु विभिन्न भागों में मालवी, निमाड़ी, बुन्देलखंडी, बाघेलखंडी और छत्तीसगढ़ी तथा आदिवासी भाषायें भी बोली जाती हैं। यहाँ १ लाख की जनसंख्या वाले ८ नगर हैं। ये क्रमशः जबलपुर, इन्दौर, उज्जैन, भोपाल, ग्वालियर, जबलपुर, सागर, रायपुर और दुर्ग हैं।
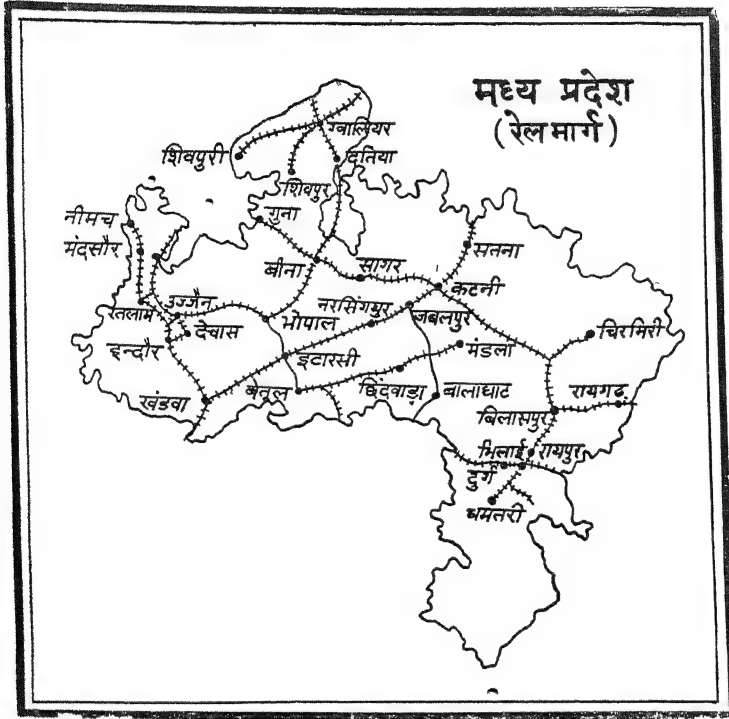
चित्र २५२. मध्य प्रदेश (रेल मार्ग)

इन नगरों के अतिरिक्त अन्य मुख्य नगर अमरावती, हिंगनघाट, रतलाम, नागदा, रीवाँ, छत्तरपुर, देवास, नीमच, धार, सीतामऊ और बिलासपुर अन्य मुख्य नगर हैं।

मध्य प्रदेश विभिन्न दर्शनीय स्थलों के कारण यात्रियों के लिए बड़ा आकर्षक रहा है। उदाहरणार्थ, साँची के स्तूप; जगदलपुर के निकट इन्द्रावती नदी का ९४ फुट ऊँचा चित्रकूट प्रपात; जबलपुर के निकट विश्व विख्यात संगमरमर की चट्टानें उज्जैन में महाकालेश्वर का मन्दिर; ग्वालियर में किला और शीशमहल; इन्दौर में नसियाँ; मांडू का किला; बाघ की गुफायें और खजुराहो का प्राचीन कलात्मक मंदिर दर्शनीय है।

मद्रास
(MADRAS)

१. सीमा विस्तार आदि—राज्य पुनर्गठन योजना के अनुसार मद्रास राज्य पहले से छोटा हो गया है। पुनर्गठन के फलस्वरूप १ नवम्बर १९५६ से इसका दक्षिणी कनारा जिला मैसूर में और मलाबार जिला केरल में मिला दिया गया है और ट्रावनकोर कोचीन के पाँच ताल्लुके नवीन मद्रास में शामिल कर दिये गये हैं। इसका क्षेत्रफल केवल १२९,९३९ वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या
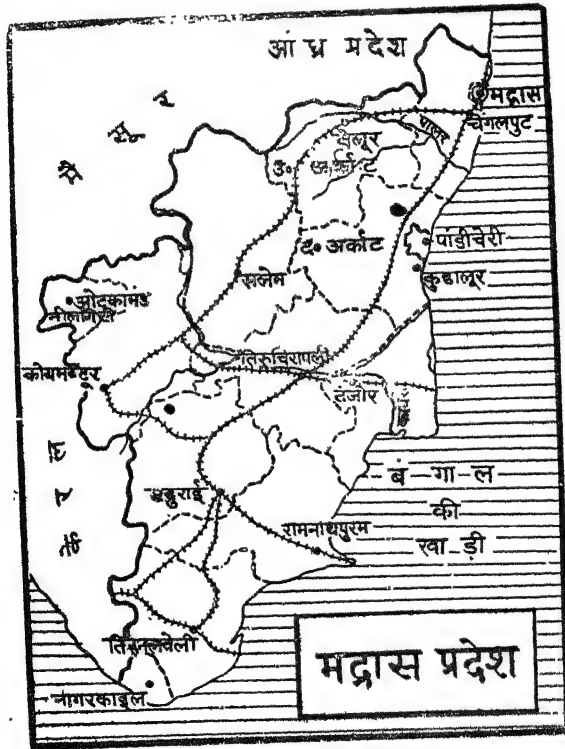
चित्र २५३. मद्रास प्रदेश

३३,६८६,९५३ है। यह राज्य ८° ४' और १४° अक्षांस तथा ७६° १५' और ८०° २१' पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है। मद्रास का समुद्र तट बंगाल की खाड़ी

स्थित है। इसके उत्तर की ओर आंध्र प्रदेश और मैसूर राज्य, पश्चिम केरल राज्य तथा दक्षिण और पूर्व की ओर क्रमशः हिन्द महासागर और गी खाड़ी है। मद्रास के १३ जिले ये हैं—

चिंगलपुट, कोयम्बटूर, कन्याकुमारी, मद्रास, मदुराई, नीलगिरी, उत्तरी सलेम, रामनाथापुरम, तंजोर, तिरूनलैवली, तिरूचिलापल्ली और दक्षिणी है।

२. **प्राकृतिक विभाग**—मद्रास को दो प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है : र्वी तटीय मैदान और (२) पठारी भाग।
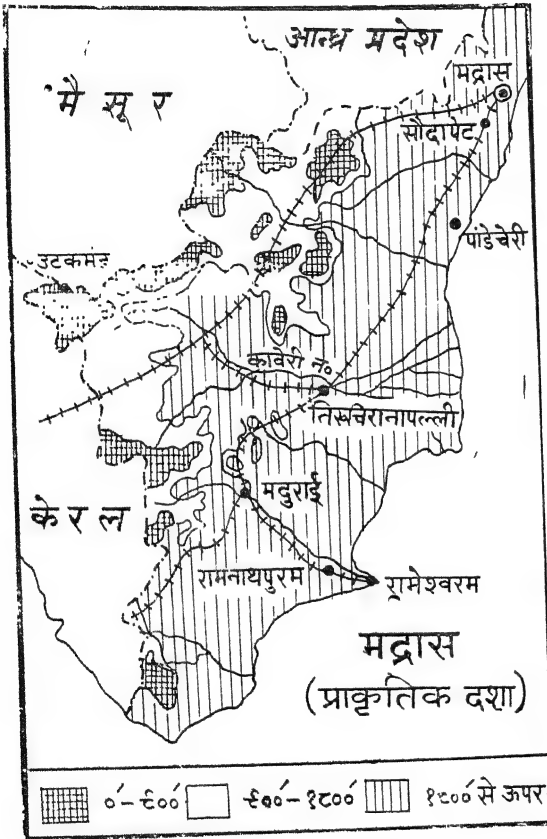
चित्र २५४. मद्रास—प्राकृतिक दशा

(१) **पूर्वी तटीय मैदान**—यह मैदान पूर्वी घाट पहाड़ और बंगाल की के बीच स्थित है। यह कुमारी अंतरीप से मद्रास नगर के उत्तर में प्रायः उत्तरी अक्षांस तक चला गया है। समुद्रतट से भीतर की ओर इलाइची हाड़ियां, नीलगिरि और पूर्वी घाट इसकी सीमा बनाते हैं। उत्तर में यह संकरा है पर दक्षिण में चौड़ा हो गया है। इसमें कावेरी का उपजाऊ

डेल्टा स्थित है। समस्त मैदान उपजाऊ है तथा सिंचाई के अच्छे साधन हैं। अतः यहाँ खेती खूब होती है। इसे **कर्नाटक का मैदान** भी कहते हैं। भीतर की ओर पर्वतीय प्रदेश है।

(२) **पठारी भाग**—पठारी भाग राज्य के मध्य में स्थित है। इसके पश्चिम में पश्चिमी घाट पहाड़ और पूर्व में पूर्वी घाट पहाड़ आगये हैं। यहाँ की भूमि कठोर चट्टानों की बनी हुई हैं। इस राज्य में बहने वाली नदियों ने इसे काट दिया है और गहरी घाटियाँ बना दी है। अतः यह भाग उपजाऊ नहीं है। वर्षा भी यहाँ बहुत कम होती है।

(३) **जलवायु व वर्षा**—मद्रास राज्य सुदूर दक्षिण में विषुवत् रेखा के निकट स्थित होने के कारण एक गरम प्रदेश है। गर्मी का तापक्रम ३७° सें० ग्रेड और जाड़े का २९° सें० ग्रेड तक रहता है। इसका भीतरी पठारी भाग वृष्टि छाया प्रदेश होने के कारण शुष्क है किन्तु कर्नाटक क्षेत्र में लौटते हुए मानसूनों तथा चक्रवातों से १०१ सें० मी० तक वर्षा हो जाती है। यहाँ अधिकतर वर्षा जाड़ों में लौटती हुई मानसूनों से होती है। भीतरी भागों की ओर बढ़ने पर वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। भूमि उपजाऊ होने के कारण कर्नाटक प्रदेश में सिंचाई का प्रबन्ध किया गया है। पैरियर प्रोजेक्ट सिंचाई की मुख्य योजना है। निचली भवानी, अमरावती, सथनूर मैटूर नहर योजना, मनीमुथार योजना, अरेनियर बाँध योजना, कृष्णागिरि जलाशय योजना, बिदुर जलाशय योजना, पुलाम्दी नहर योजना और परम्बिकूलम सिंचाई योजनाओं द्वारा सब मिला कर ५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

मिट्टियाँ—मद्रास में तीन प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती है :—(१) वेगाई और ताम्रपर्णी नदी के बेसीन, मदुराई, रामनाथापुरम और तिरूनलवैली जिलों में **काली मिट्टी** पाई जाती है। (२) **लाल मिट्टी** पश्चिमी भाग में नीस चट्टानों वाले क्षेत्र में मिलती है। (३) पहाड़ियों के ढालों पर पथरीली लाल मिट्टी पाई जाती है। शेष भागों में मिश्रित मिट्टियाँ मिलती हैं। नदियों के डेल्टों में उपजाऊ कांप मिट्टी की अधिकता है।

(४) **उपज (क) वनस्पति**—वर्षा की कमी के कारण यद्यपि यहाँ प्राकृतिक वनस्पति का अभाव है। केवल १५% भाग पर वन प्रदेश हैं। पश्चिमी पहाड़ी भाग और पठारी भाग पर कोयम्बटूर में तिरूनलवैली और नीलगिरि के ढालों पर वन पाये जाते है। सागौन तथा चन्दन यहाँ के वनो के मुख्य पेड़ हैं। तटीय भाग में नारियल के कुंज पाये जाते हैं और मैंगाव के वन।

(ख) **कृषि**—कृषि इस राज्य का मुख्य धन्धा है। लगभग ६२% व्यक्ति खेती में लगे हैं। पूर्वी तटीय मैदान में उपजाऊ मिट्टी तथा सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध होने के कारण कई फसलें पैदा की जाती हैं। **चावल** यहाँ की मुख्य उपज है। यह तटवर्ती मैदानों और नदियों के डेल्टाओं में बोया जाता है। **कपास** कोयम्बटूर, मदुराई, रामनाथपुरम में पैदा किया जाता है। **गन्ना** उत्तरी और दक्षिणी अर्काट, सलेम और कोयम्बटूर में बोया जाता है। शुष्क भागों में ज्वार, बाजरा, दालें, शक्करकंद और टोपिओं का भी पैदा किये जाते हैं। **मूंगफली** की पैदावार के लिये भी यह राज्य भारत में अग्रणीय है। नदी-घाटियों तथा उपजाऊ भागों में कपास, तम्बाकू, तिल, रेंडी और गन्ना पैदा किया जाता है। पहाड़ी ढालों पर चाय उत्पन्न

होती है। इनके अलावा यहाँ आम और केला खूब पैदा होता है। तटीय भागों में नारियल का आधिक्य है।

(ग) **खनिज पदार्थ**—खनिज पदार्थों में यहाँ अभ्रक, लोहा, बाक्साइट, अग्नि मिट्टी, कोरडम, लिगनाइट, जिप्सम, इल्मैनाइट, सिलिका, फैलसपर, मैंगनेसाइट व चूने का पत्थर मुख्य है। सेलम जिला खनिजों का भण्डार है। यह अभ्रक तथा बाक्साइट उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। दक्षिणी अरकाट के निवैली में लिगनाइट का भंडार पाया गया है। इसके अनुमानित जमाव लगभग २०० करोड़ टन के है। **खड़िया मिट्टी** का उत्पादन तिरूचिरापल्ली जिले से प्राप्त होता है। यहाँ लगभग १½ करोड़ टन के सुरक्षित भंडार होने का अनुमान है। **मैगनेसाइट** सलेम जिले में पाया जाता है। इसके अनुमानित भंडार ८ करोड़ टन के कूते गये हैं। **चीनी मिट्टी** दक्षिण अर्काट जिले से प्राप्त की जाती है। इसके अनुमानित भंडार २½ करोड़ टन के हैं। **चूने का पत्थर** सलेम, कोयम्बटूर, तिरूचिरापल्ली, तिरूनलवैली और रामनाथपुरम जिलों से प्राप्त होता है। पिछले दो जिलों में समुद्र तट के सहारे-सहारे शुद्ध पत्थर ६० मील लम्बे क्षेत्र में पाया जाता है।

समुद्र तट पर नमक प्राप्त किया जाता है। जल विद्युत शक्ति का विकास भी मद्रास राज्य में अच्छा हुआ है। मच्छकुण्ड योजना, पायकारा योजना, मेयर योजना, मैटूर जलविद्युत योजना और पापानासम जलविद्युत योजना इनमें मुख्य हैं।

(५) **उद्योग धन्धे**—इस राज्य में औद्योगिक विकास अच्छा हुआ है। **सूती कपड़ा उद्योग** यहाँ का प्रमुख उद्योग है। यहाँ सूती कपड़े बनाने के ११४ कारखाने हैं। इस उद्योग के मुख्य केन्द्र मदुराई, तिरूनलवैली, तिरुचिरापल्ली, रामनाथपुरम और कोयम्बटूर हैं। चीनी, सीमेन्ट तथा इन्जीनियरिंग उद्योगों का भी पर्याप्त विकास हो गया है। रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना अम्बथुर में है। **चीनी के कारखाने** मदुराई, चिंगलपुट, कोयम्बटूर, उत्तरी अर्काट, दक्षिणी अर्काट तथा तिरूचिरापल्ली में और **सीमेंट के कारखाने** मदुराई, रामानाथापुरम, दालमियापुरम तथा तालामूथू में है। **कांच के कारखाने** कोयम्बटूर, सलेम और मद्रास में तथा दियासलाई के तिरूनलवैली, रामनाथापुरम और चिंगलपुट में हैं। इसके अलावा राज्य में मोटरें बनाने के दो, रासायनिक पदार्थों के २२, वनस्पति तैल के १०२, साइकिल के दो तथा साबुन बनाने के ८ बड़े कारखाने हैं। सिगार और चुरुट बनाने का उद्योग भी महत्वपूर्ण है। राज्य में ४०० से अधिक चुरुट तैयार करने के और ५० बीड़ी बनाने की फैक्ट्रियाँ है। **अल्यूमीनियम का उद्योग** मैटूर में, **टायर बनाने का उद्योग** अम्बापुर में; स्विच और स्विच-गियर तैयार करने का कारखाना पल्लावरम में; छापाखाना कोयम्बटूर में; कास्टिक सोडे का कारखाना तिरूनलवैली में; स्टील टयूब का कारखाना अवाड़ी में है। नकली हीरे बनाने का कारखाना नीलगिरी जिले में स्थापित किया गया है। चमड़ा कमाने की ३०० फैक्टरियां यहां हैं। इनके अतिरिक्त ईंटें और टाइल्स बनाने, तेल निकालने, कपास ओटने, मोजे बनियान, पीतल, ताँबे के बर्तन, घोंघे, शंख और कौड़ियों की माला बनाने, ऊनी और रेशमी कपड़े बनाने, चावल साफ करने, कागज, वार्निश, कांच और लकड़ी चीरने के कारखाने भी यहाँ बहुत होते हैं।

समुद्र से मछली और मोती निकालने का काम भी कई स्थानों पर किया जाता है। ग्रामोद्योग में यहाँ कपड़ा बुनने, लकड़ी पर खुदाई करने, मिट्टी के बर्तन

बनाने, ताड़ गुड़, लाख, पत्थर के बर्तन, नारियल की जटा के रस्से बनाने, हाथी दांत की वस्तुऐं और चमड़े की वस्तुयें बनाने, कांच की चूड़ियां बनाने, पीतल के बर्तन बनाने, चमड़े का सामान बनाने, तेल पेरने तथा चटाइयां बनाने का काम खूब होता है तथा नकली जवाहरात और फिल्म बनाने का कार्य भी प्रसिद्ध है।

(६) **जनसंख्या व नगर**—जनसंख्या की दृष्टि से इसका भारत में पांचवाँ स्थान है। यहाँ जनसंख्या का प्रति वर्ग घनत्व ६७१ व्यक्ति है। मैदानी भाग में जनसंख्या संघन है। मद्रास जिले का घनत्व ३५,२०८ और नीलगिरी का ४१६ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। मद्रास में १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ९ नगर ये हैं मद्रास, मदुराई, कोयम्बटूर, तिरूचिरापल्ली, सलेम, तूतीकोरिन, वैलोर, तंजौर और नगरकॉइल।

यहाँ की मुख्य भाषा तामिल है इसीलिये मद्रास को कभी कभी **तामिलनाड** भी कहा जाता है।

(७) **यातायात के मार्ग**—मद्रास राज्य में यातायात के मार्गों का अच्छा विकास हुआ है। यहाँ ३१·८ हजार मील लम्बी सड़कें हैं जिसमें से १,१४२ मील लम्बी राष्ट्रीय सड़कें, १,७४४ मील राज्यकीय सड़कें तथा शेष अन्य प्रकार की सड़कें हैं। राज्य के आठ जिलों में राज्यकीय बस-सेवायें चालू हैं। दक्षिणी रेलमार्ग मद्रास राज्य को अपने निकटवर्ती राज्यों से मिलता है। वायु सेवा भी मद्रास को प्रमुख नगरों से जोड़ती है।

यहां की तट रेखा भी काफी लम्बी है। मद्रास मुख्य बन्दरगाह तथा तूतीकोरिन, नागापट्टम और कड्डालोड अन्य बन्दरगाह हैं।

नगर—मद्रास, कोयम्बटूर, मदुराई, उटकमड, त्रिचनापल्ली और सेलम यहां के प्रसिद्ध नगर हैं।

दक्षिणी भारत में मद्रास राज्य का सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व अधिक है। मद्रास से ३५ मील दक्षिण में **महाबलीपुरम** (या सात पैगोडा) में लगभग २ हजार वर्ष पुराना मन्दिर है। इसी प्रकार मद्रास से लगभग ४५ मील दूर एक अन्य मन्दिर **तिरूकालूकुंद्रम** और मद्रास में **रामेश्वरम** का प्राचीन मन्दिर बड़े महत्वपूर्ण है। मदुराई में **मिनाक्षी देवी**, श्री रंगम में **रंगनाथा** और कन्या कुमारी में **कन्याकुमारी** का मन्दिर प्रसिद्ध दर्शनीय स्थलों में है।

अध्याय ५४

महाराष्ट्र

(MAHARASHTRA)

१. **सीमा विस्तार आदि**—यह राज्य प्राय:द्वीपीय भारत के पश्चिमी भाग में स्थित है तथा प्राय:द्वीप के एक बड़े भाग को घेरे हुए है। यह १६°४′ से २२°५′ उत्तरी अक्षांस और ७२°६′ तथा ८०°५५′ पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है। इसके पश्चिम में अरब सागर, उत्तर में मध्य-प्रदेश, उत्तर पश्चिम में गुजरात, पूर्व में आंध्र और दक्षिण में मैसूर तथा गोआ है। इस राज्य का क्षेत्रफल ३०१,७४० वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या ३९,५५३,७१८ है।

१ मई सन् १९६० को भूतपूर्व बम्बई राज्य के मराठी भाषा-भाषी जिले मिलाकर इस नये राज्य की स्थापना की गई। इसमें भूतपूर्व के पश्चिमी महाराष्ट्र, विदर्भ और मराठवाडा के प्रदेश सम्मिलित हैं। सम्पूर्ण राज्य को निम्न ४ डिवीजनों और २६ जिलों में विभक्त किया गया है।

(१) **बम्बई**—इसके अन्तर्गत कोलाबा, नासिक, रत्नागिरि, थाना, पश्चिमी खानदेश, बम्बई तथा विशाल बम्बई (Greater Bombay) और डांग जिले सम्मिलित हैं।

(२) **पूना**—इसमें अहमदनगर, कोल्हापुर, पूना, उत्तरी सतारा, दक्षिणी सतारा और शोलापुर जिले हैं।

(३) **नागपुर**—इसमें अकोला, अमरावती, भंडारा, नागपुर, चान्दा, बुलढाना, वर्धा, यवतमाल जिले हैं।

(४) औरंगाबाद—इसमें औरंगाबाद, पूर्वी खानदेश, नादेड़, परभाणी, उस्मानाबाद (अहमदपुर, नीलंगा और उदयगिरी ताल्लुकों सहित) जिले सम्मिलित हैं।

२. **प्राकृतिक विभाग**—प्राकृतिक दशा के अनुसार इस राज्य के दो भाग किये जाते हैं:—

(१) **समुद्र तटीय या कोंकन का मैदान**—यह मैदान पश्चिमी घाट और अरब सागर के बीच स्थित है। यह एक संकड़ी पट्टी के रूप में उत्तर में डामन से लेकर वैनबुली तक दक्षिण में कोई ५६१ कि० मीटर की लम्बाई में फैला है। इसे कोंकन तट कहते हैं। उत्तर में नर्मदा और ताप्ती नदियों के मुहाने तथा दक्षिण में केरल राज्य के निकट यह मैदान अधिक चौड़ा हो गया है। साधारणत: इस मैदान की चौड़ाई ४८ से ८० किलोमीटर है। यह बारीक कांप मिट्टी से बना होने के कारण बड़ा उपजाऊ है। दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के मार्ग में होने से वर्षा भी अधिक होती है। यह मात्रा उत्तर से दक्षिण की ओर तथा समतल मैदान से पश्चिमी ढालों की ओर अधिक बढ़ती जाती है।

भूमि की बनावट और जलवायु की दृष्टि से यह प्रदेश तीन भागों में विभाजित है :—

(क) समुद्रतट के निकट बालू के टीले पाये जाते हैं जिनके कारण मैदान में बहने वाली अनेक छोटी नदियां समुद्र तक नहीं पहुंच पातीं। इनका जल चारों ओर फैलकर छिछली लैगून झीलों के रूप में फैल जाता है। इनमें कहीं कहीं गोरन के दलदल मिलते हैं। इन भागों में अधिकांशत. नारियल के कुंज पाये जाते हैं जिनके बीच बीच में छोटे छोटे गाँव बसे हैं।

(ख) तट से कुछ दूर भीतर की ओर समतल भूमि है जहाँ चावल की खेती की जाती है। खेतों के बीच बीच में नारियल, सुपारी, केले आदि के कुंज मिलते हैं। पश्चिमी घाट से निकलने वाली छोटी तेज नदियों ने समुद्र तट के रेतीले टीलों की रुकावट के कारण अनूप (Lagoon) बना दिये हैं। इनमें छोटी छोटी देशी नावें चलाई जाती हैं। इस प्रदेश में काली मिर्च और गर्म मसाले भी खूब पैदा होते हैं।
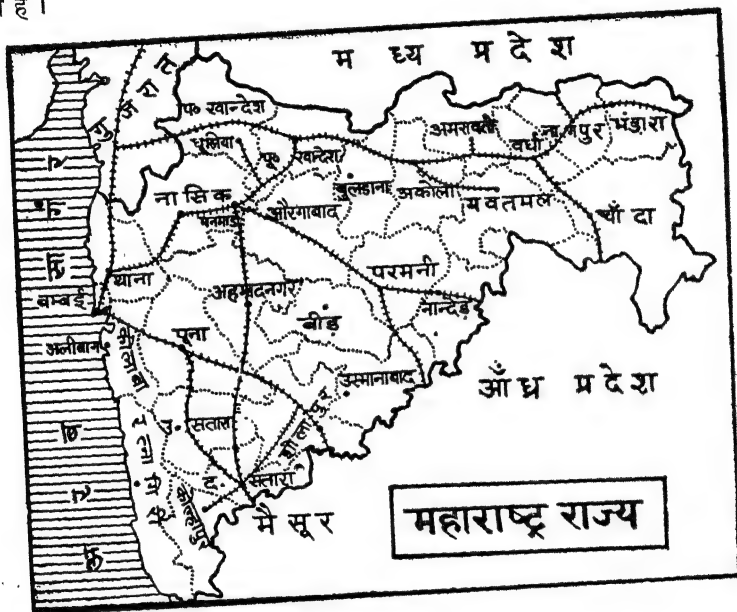
चित्र २५५. महाराष्ट्र राज्य

(ग) पहाड़ी ढालों पर अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं, मुख्यतः सागवान के। तेज बहने वाली नदियों का जल जलविद्युत बनाने में प्रयुक्त होता है।

अधिक उपजाऊ होने के कारण तटीय मैदान अत्यन्त घना बसा है यहाँ अधिकांश गाँव छोटे छोटे और बिखरे हुए हैं।

(२) **लावा का पठार**— सतकुंडा का दक्षिण और पश्चिमी घाट के पूर्व का भाग पठारी हैं जो सबसे अधिक पुराना भाग है। यह भाग लावा मिट्टी से बना है जिसका क्षेत्रफल लगभग २ लाख वर्गमील है। महाराष्ट्र प्रदेश के पठार की

अधिकांश भूमि इसी लावा की काली मिट्टी से बनी है। इस पठार की औसत ऊँचाई ४५७ मीटर है पर पश्चिमी भाग पठार के धरातल से लगभग ३०५ मीटर अधिक ऊँचा है अतः जब भाप भरी हवायें यहाँ आती हैं तो उनसे वर्षा कम होती है। समुद्र से दूर होने के कारण इस भाग में अधिक गरमी और अधिक सर्दी पड़ती है। काली भूमि में नमी अधिक देर तक ठहर सकती है अतः उत्तर की अपेक्षा दक्षिणी भाग की लाल भूमि में तालाबों द्वारा सिंचाई अधिक होती है। इस भाग की भूमि उपजाऊ होने के कारण कपास, गेहूँ, ज्वार बाजरा, गन्ना और मूंगफली अधिक पैदा की जाती है।
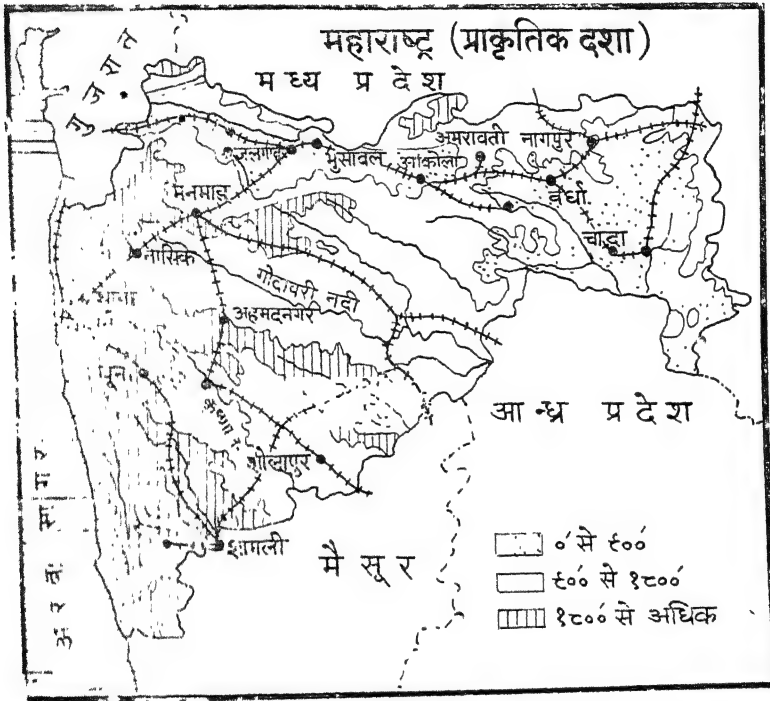
चित्र २५६. महाराष्ट्र प्राकृतिक दशा

इसका पूर्वी भाग अजन्ता की पहाड़ियों द्वारा दकन लावा प्रदेश से अलग हो गया है। इसमें वैनगंगा और वर्धा नदियों की उपजाऊ घाटियाँ हैं। इस भाग में अनेक जलाशय मिलते हैं। यह भाग गेहूँ और कपास की उपज के लिए प्रसिद्ध है।

अहमदनगर का पठार, जो नासिक और पूना जिलों के बीच से होकर जता है, इसको दो भागों में बांट देता है (१) **गोदावरी की घाटी और** (२) **कृष्णा की घाटी।**

२. **जलवायु व वर्षा** --राज्य का पश्चिमी तटवर्ती भाग गरम और नम है। यहाँ दैनिक तापक्रमान्तर अधिक रहता है। जनवरी का औसत तापक्रम १८° से० ग्रेड और मई का ३२° से० ग्रेड तक रहता है। यहाँ उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की

ओर वर्षा अधिक होती है। पहाड़ी ढालों पर तो वर्षा का औसत २५४ से० मीटर होता है। समुद्र की निकटता के कारण इस भाग में तापक्रमान्तर अधिक नहीं रहता। किन्तु पश्चिमी घाट के पूर्व की ओर के भागों में जलवायु गरम और शुष्क है क्योंकि यह प्रदेश वृष्टि छाया में पड़ जाता है। वर्षा का औसत ५१ से ६३ से० मीटर से अधिक नहीं रहता तथा तापक्रमान्तर भी अधिक रहता है। उत्तरी-पूर्वी भाग में बंगाल के मानसून से १०० सें० मीटर तक वर्षा हो जाती है।

सिंचाई—महाराष्ट्र राज्य में कृषि योग्य भूमि के केवल ५% भाग पर ही सिंचाई की जाती है। दक्षिणी पठारी भाग में तालाबों द्वारा सिंचाई के लिये छोटी छोटी नहरें निकाली गई हैं। गोदावरी और नीरा नदियों की नहरें तथा भंडारदरा बाँध और गंगापुर योजना इनमें मुख्य हैं। अभी जो अन्य मुख्य योजनायें कार्याधीन हैं वे इस प्रकार हैं :—

माही नहर योजना—कैरा जिले में बांध कर समाप्त की जा चुकी है। इस बांध से नहरें निकाल कर ४·६० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होने का अनुमान है।

गंगापुर योजना—गोदावरी नदी पर १२,५०० फुट लम्बा मिट्टी का बाँध बनाकर सिंचाई के लिए काम में लाया जायेगा प्रथम भाग समाप्त हो चुका है। इसके अंतर्गत बांये किनारे की २४ मील लम्बी नहर तथा बांध बनाना था—दूसरे भाग में जल की संचय शक्ति बढ़ाई जाकर दायें किनारे भी नहरें निकाली जायेंगी। अभी इससे नासिक जिले की ४५ हजार एकड़ भूमि सींची जा रही है।

पूर्णा योजना—यह योजना गोदावरी की सहायक पूर्णा नदी पर पालदरी स्थान पर बनाया जा रहा है जिससे ४० मील नीचे सिद्धेश्वर के समीप एक सहायक बांध बनाकर लगभग ३४ मील लम्बी नहर निकाल कर अंततः २·७५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी। पालदरी में शक्तिगृह बनकर १० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न की जायगी।

कोयना बांध योजना—यह योजना दो चरणों में समाप्त होगी। प्रथम चरण के अंतर्गत एक २२०० फुट लम्बा और २०८ फीट ऊंचा बांध कोयना नदी पर बनाया गया है और इसके जल को एक सुरंग से निकाल कर १५७० फुट की ऊंचाई से गिरा कर शक्तिगृह बनाया गया है। यह शक्तिगृह भूमितल के नीचे है। इसमें ६०,००० किलोवाट के चार शक्ति उत्पादक यंत्र होंगे। इससे बम्बई और पूना को २ लाख किलोवाट तथा महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों को १०,००० किलोवाट बिजली दी जायेगी।

(४) उपज (क) वनस्पति—तटीय भागों में समुद्र के किनारे किनारे नारियल के वृक्षों के झुण्डो के साथ-साथ सुन्दरी जाति के वृक्षों का दलदली भागों में बाहुल्य है। पहाड़ी भागों में उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन मिलते हैं जिनमें सागवान प्रमुख है। भीतरी भागों में वर्षा की कमी के कारण प्राकृतिक वनस्पति केवल घास या झाड़ियों के रूप में पाई जाती है। केवल २१% भाग पर वन मिलते हैं। वनों का विस्तार मुख्यतः चाँदा, यवतमाल, भंडारा, नागपुर, पश्चिमी खानदेश, नासिक और थाना जिलों में है।

(ख) कृषि—महाराष्ट्र मुख्यतः खेतिहर राज्य है जहाँ की ६४% जनसंख्या तथा ५७% भूमि कृषि में लगी हुई है। अनाज और दालें, गन्ना, मसाले, तिलहन, कपास आदि मुख्य उपजें है। चावल मुख्यतः थाना, कोलाबा, और रत्नगिरि जिलों के तटीय भागों में पैदा किया जाता है। तिलहन पूर्वी खानदेश, विदर्भ और पश्चिमी महाराष्ट्र में तथा कपास, विदर्भ, मराठवाड़ा, शोलापुर और पश्चिमी खानदेश में पैदा होता है। रत्नागिरि और थाना जिलों में आम, काजू और केला आदि फल तथा अमरावती, वर्धा और नागपुर जिलों में सन्तरा और गन्ना पैदा किया जाता है। पूर्वी भागों में ज्वार बाजरा पैदा होता है। मूंगफली और तम्बाकू भी काफी पैदा किया जाता है।

तटीय भागों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

(ग) खनिज पदार्थ—महाराष्ट्र खनिज पदार्थों में धनी राज्य है। विदर्भ और कोंकन क्षेत्र तथा चाँदा और भंडारा में लगभग २० करोड़ टन लोहे के भंडार हैं। नागपुर, रत्नागिरि और भण्डारा जिलों में मैंगनीज, कोल्हापुर, थाना, रत्नागिरि और कोलाबा जिलों में बाक्साइट के ५ करोड़ टन के तथा विदर्भ में नागपुर, चांदा, यवतमाल जिलों में ६५ करोड़ टन के कोयला भण्डार होने का अनुमान लगाया गया है। इनके अतिरिक्त इल्मैनाइट, टाइटेनियम आदि धातुऐं और चीनी मिट्टी, चूने का पत्थर तथा क्रोमाइट, टायटेनियम और कैल्साइट मिलने का भी अनुमान है।

भारत के सभी राज्यों में जलशक्ति उत्पादन में इस राज्य का स्थान प्रथम है। यहाँ जल एवं तापशक्ति द्वारा लगभग ६ लाख किलोवाट बिजली पैदा की जाती है। टाटा जल विद्युत और कोयना योजना जल विकास की प्रमुख योजनायें हैं।

(५) उद्योग धन्धे—यहाँ उद्योग धन्धे बड़े विकसित हैं। इनमें सबसे प्रमुख सूती कपड़ा उद्योग है। ९०मिलों में से अकेली ६५ मिलें बम्बई नगर में हैं और शेष औरंगाबाद, नागपुर, शोलापुर, पूना, आदि नगरों में। कल्याण में नकली रेशम बनाने की मिल तथा थाना-ईश्वाना में ऊनी कपड़े की मिलें हैं। सतारा, पूना, खिड़की, अम्बरनाथ, और किर्लोस्करवाड़ी में अनेक प्रकार की मशीनें बनाई जाती हैं। अहमदनगर, शोलापुर, औरंगाबाद, कोल्हापुर, पूना, उत्तरी सतारा आदि जिलों में चीनी की मिलें हैं। पूना में शीरे से अल्कोहल तैयार किया जाता है। अन्य मुख्य उद्योग रसायन, औषधि, प्लास्टिक, रंग, वार्निश, साइकिल, मोटरगाड़ी और फिल्म बनाना है। बल्लारपुर, ओगेलवाड़ी और पूना में कागज की मिलें तथा नागपुर और औरंगाबाद में वनस्पति तेल की कई मिलें हैं। रूई साफ करने और दबाने की ५९० से भी अधिक मिलें पश्चिमी खानदेश और नागपुर जिलों में हैं। बम्बई के समीप ट्राम्बे में तेल साफ करने का कारखाना और अणु शक्ति अनुष्ठान भी है। पूना में पेनिसिलीन, बिस्कुट, तथा मालेगांव, भिवंडी में हाथ करघे और चावल साफ करने के कारखाने हैं। अम्बरनाथ में दियासलाई और मशीनी औजार बनाये जाते हैं। बम्बई में साइकलें, रासायनिक पदार्थ, रेडियो, डीजल एंजिन, बिजली की मोटरें और पंखे तथा मोटरें, वनस्पति तेल आदि बड़े पैमाने पर बनाये जाते हैं।

(६) जनसंख्या और नगर आदि—यहाँ की कुल जनसंख्या ३ करोड़ ९५ लाख है। इसमें से २९% नगरों में और शेष गाँवों में निवास करती है। १ लाख

अध्याय ५५

मैसूर

(MYSORE)

(१) **स्थिति और विस्तार आदि**—राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार १ नवम्बर १९५६ को मैसूर राज्य का आविर्भाव हुआ। पुराने मैसूर राज्य, कुर्ग तथा हैदराबाद, बम्बई और मद्रास के कन्नड़ क्षेत्रों को मिला कर नवीन मैसूर राज्य का संगठन किया गया है। इसका क्षेत्रफल १८८,३७० वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या २,३५,८६,७७२ है। इसके उत्तर में महाराष्ट्र, पूर्व में आंध्र प्रदेश, दक्षिण में केरल और मद्रास राज्य तथा पश्चिम में गोआ और अरब सागर है। यह राज्य ३१°१५' उ० अक्षांस से १८°२५' उ० अक्षांस और ७४°१०' पूर्वी से ७८°३५' पूर्वी देशान्तर के बीच फैला है।

मैसूर राज्य ४ कमिश्नरियों में बंटा है। इनमें १९ जिले हैं :—

(१) **बंगलौर** कमिश्नरी में बंगलौर, कोलार, तुमकुर, चित्रदुर्ग और बलारी जिले हैं।

(२) **मैसूर** में मैसूर, मांड्या, हसन, चिकमंगलौर, शिमोगा, उत्तरी कनारा और कुर्ग जिले हैं।

(३) **बेलगांव** के अन्तर्गत बेलगांव, धारवाड़, बीजापुर, दक्षिणी कनारा (कारवार) जिले हैं।

(४) **गुलबर्गा** के अन्तर्गत गुलबर्गा, बीदर और रायचूर जिले हैं।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—मैसूर का अधिकांश भाग पठारी है जो मुख्य दक्कन के पठार का ही एक अंग है। यह पथरीला और ऊँचा नीचा है। समुद्रतल से यह १० मीटर ऊँचा है। कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों की घाटियाँ इसी भाग में हैं।

भौतिक रचना की दृष्टि से इस राज्य के चार भाग किये जा सकते हैं। ये इस प्रकार हैं—

(१) **लावा का पठार**—इसमें मैसूर का उत्तरी भाग है। यहाँ कपास की काली मिट्टी पाई जाती है। यह भाग आँध्र नदी तक फैला है। कृष्णा यहाँ की मुख्य नदी है।

(२) **पश्चिम तटीय मैदान**—यह पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच में एक पतली मैदानी पट्टी है जो ६४ कि० मी० से ८० कि० मी० चौड़ी है। यहाँ उम्दा कांप मिट्टी तथा समुद्री रेत मिलती है। इस भाग में कई लैगून बन गए हैं जिनमें नावें चलाई जाती हैं।

में अधिक आबादी के १२ नगर हैं। ये क्रमशः बम्बई, नागपुर, पूना, शोलापुर, कोल्हापुर, अमरावती, नासिक, मालेगाँव, अहमदनगर, अकोला, उलहासनगर और थाना हैं। महाराष्ट्र में कई आदिम जातियाँ भी पाई जाती है, विशेषकर भील, गोंड, कोपू और अगारी आदि जो सतपुड़ा और सह्याद्री पर्वतों में रहती है।

(७) **यातायात के साधन**—महाराष्ट्र की यातायात व्यवस्था बहुत अच्छी है। बम्बई यहां का प्रमुख बन्दरगाह, हवाई अड्डा और रेलवे का बड़ा केन्द्र है। राज्य में लगभग १,६६६ मील लम्बी बड़ी लाइन और १,३०० मील लम्बी छोटी लाइन है। यहाँ १४,०२३ मील लम्बी पक्की सड़कें तथा ६,६६६ मील लम्बी कच्ची सड़कें फैली हैं।

(३) **पश्चिमी पहाड़ी भाग**—यह पश्चिमी घाट से आरम्भ होता है और काफी ऊँचा है। पूर्व की ओर इसका ढाल धीमा है। यहाँ वर्षा काफी होती है।

(४) **पूर्वी मैदान**—इसमें मैसूर का शेष मैदानी भाग सम्मिलित है। इस भाग में थोड़े-थोड़े अन्तर से अनेक टीले और पहाड़ियाँ तथा उनके बीच में दुर्गम

चित्र २५७ मैसूर राज्य की स्थिति

और तंग मार्ग मिलते है। इन चोटियों पर मुगलों और मराठों द्वारा बनाये गये कई दुर्ग है। कावेरी तथा अनेक सहायक नदियों ने इस भाग में गहरी घाटियाँ बना डाली हैं। तुंगभद्रा, हजारी और उत्तरी पेनार यहाँ की मुख्य नदियाँ है।

मिट्टियाँ—(१) मद्रास के पश्चिमी तटीय मैदान में नवीन कांप मिट्टी पाई जाती है। (२) पठारी भाग के उत्तरी क्षेत्रों में काली मिट्टी पाई जाती है जो ऊँचे भागों में बलुही होने से कम उपजाऊ तथा नदियो की घाटी मे अधिक उपजाऊ होती है। (३) पठारी भाग के दक्षिणी क्षेत्र में लाल मिट्टी की अधिकता है। यह ऊँचे भागों में हल्के रंग की कम गहरी और पथरीली होने से उपजाऊ नहीं है किन्तु निचले भागों में उपजाऊ है। (४) पश्चिमी घाट के पहाडी ढालों पर कुर्ग जिले में लैटेराइट मिट्टी पाई जाती है।
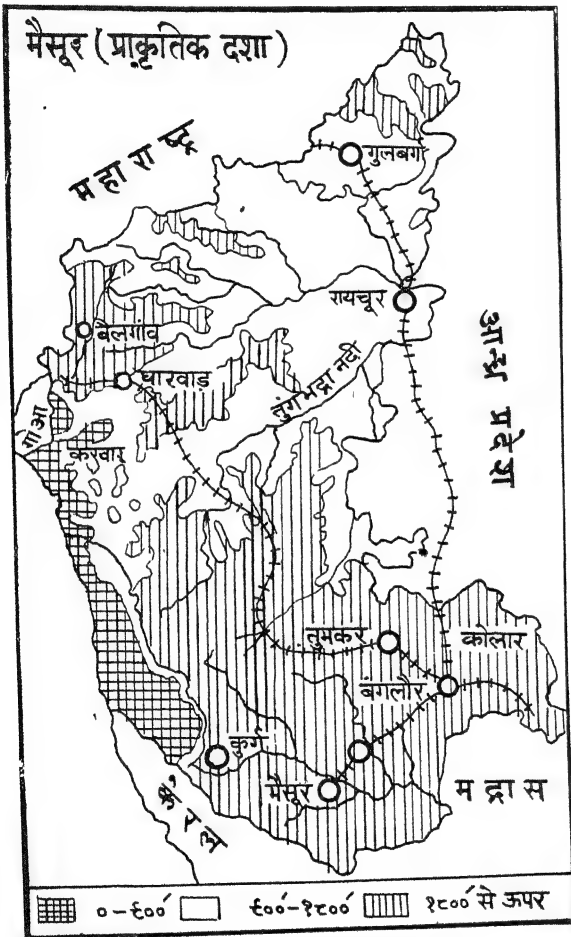
चित्र २५८. मैसूर प्राकृतिक दशा

(३) **जलवायु व वर्षा**—जलवायु की दृष्टि से राज्य का पूर्वी भाग शुष्क और पश्चिमी भाग सम जलवायु वाला है। समस्त राज्य ऊँचा पठार होने से तापक्रम कम रहते है। ग्रीष्म का तापक्रम ३३° सें० ग्रेड और जाड़ों का २१ सें० ग्रेड रहता है। पश्चिमी भाग में समुद्री प्रभाव होने से जलवायु सम रहता है और वर्षा खूब होती है। यहाँ वर्षा की औसत ३८० सें० मीटर है। पूर्वी भागों में गर्मियों में खूब गर्मी और जाड़ों में काफी सर्दी पड़ती है। वर्षा का औसत [illegible] से [illegible] सें० मीटर रहता है। क्योंकि यह पश्चिमी घाट की वृष्टि छाया में पड़ता है। मध्यवर्ती भाग में ५१ सें० मीटर से भी कम वर्षा होती है। पूर्वी भाग में [illegible] में कुछ चक्रवातों से भी वर्षा हो जाती है।

(४) **उपज (क) वनस्पति**—यहाँ प्राकृतिक वनस्पति की बहुलता पाई जाती है। पश्चिमी पहाड़ी ढालों पर घोर वर्षा होने के कारण सघन सदाबहार जंगल पाये जाते है। पूर्वी पठारी भाग पर पतझड़ के वन मिलते हैं। इन जंगलों में अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं जिनमें सागौन, सुपारी, चन्दन मुख्य हैं। चन्दन की पैदावार के लिये तो यह राज्य भारत भर में प्रसिद्ध है। बांस मैसूर और उत्तरी कनारा जिले में अधिक पैदा होता है। उत्तरी पहाड़ी भाग में भाड़ीदार वन पाये जाते हैं। यहाँ के वनों से जड़ी बूटियाँ, लकड़ी, दियासलाई तथा कागज के लिए मुलायम लकड़ियाँ और प्लाइवुड उद्योग के लिए लकड़ियाँ प्राप्त की जाती हैं।

सिंचाई—मैसूर राज्य में सिंचाई का अच्छा प्रवन्ध है। मुख्य सिंचाई योजनायें ये हैं :—

(१) वेदवती नदी में (चित्रदुर्ग) में १४२ फुट ऊँचा और १३०० फुट लम्बा बांध बना कर ३४ वर्ग-मील क्षेत्र में **वाणी विलास जलाशय** बनाया गया है।

(२) मैसूर जिले में कावेरी नदी के आर पार **कृष्ण राजा सागर बांध** बनाया गया है जो १३० फुट ऊँचा और ८६०० फुट लम्बा है। इससे १½ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई कीं जाती है।

(३) शिमोगा जिले में कुमुदवती नदी के आर पार **अंजनपुर जलाशय** बनाया गया है जो ७० फुट ऊँचा और ४२०० फुट लम्बा है। इससे लगभग १२ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

(४) तुमकुर जिले में शिम्सा नदी के आर पार **मारकोना बल्ली जलाशय** बनाया गया है जो ६५ फुट ऊँचा है। इसके द्वारा १० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

(५) बंगलौर जिले में **कण्व जलाशय** है। यह ६० फुट ऊंचा और ४७०० फुट लम्बा है। इससे ५००० एकड़ भूमि सींची जाती है।

(६) शिमोगा जिले में शरवती नदी के आर पार **हिरभ सागर** बनाया गया है जो प्राय: १०० फुट ऊँचा और ११५७ फुट लंबा है।

इनके अतिरिक्त भद्रा, तुंग, नुग्गू, अम्बाली, घाटपुरा, नारनपुर, [illegible], करियाला जलाशय योजना, कोलम्बी जलाशय योजना आदि भी कार्यान्वित की जा चुकी हैं। इनके द्वारा सब मिलाकर लगभग ३१ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जा रही है।

(ख) **कृषि**—राज्य में समतल भूमि का अभाव होने से कृषि की पैदावार कम होती है। किन्तु आर्द्र पहाड़ी ढालों पर बागाती खेती खूब होती है। बागाती खेती में चाय कहवा, रबड़, इलायची व सुपारी का अधिक महत्व है। भारत का ३/४ कहवा यहीं पैदा किया जाता है। पश्चिमी तटीय मैदान राज्य का मुख्य कृषि क्षेत्र है जहाँ चावल, गन्ना, मूंगफली, अण्डी तथा मिर्च इत्यादि की खेती होती है। लगभग ५० हजार एकड़ भूमि पर शहतूत पैदा किया जाता है। उत्तरी भाग की काली मिट्टी में कपास और ज्वार, बाजरा तथा दक्षिण पश्चिम में सिंचाई की सुविधा के कारण चावल और गन्ना पैदा किया जाता है।

मैसूर राज्य के पश्चिमी तटीय भागों में तथा उत्तरी और दक्षिणी कनारा जिलों में मछली पकड़ने का उद्योग बड़ा विकसित है। २०० मील लंबे तट पर मछुओं के लगभग २०० गांव हैं। ये लोग नावें और जालों से प्रति वर्ष लगभग २ करोड़ रुपये के मूल्य की ८० हजार टन मछलियाँ ३०० तटीय भागों से पकड़ते हैं। लगभग ४० प्रकार की मछलियाँ यहाँ पकड़ी जाती हैं जिनमें अधिकांशतः शार्क, मैकरेल, कनागुता आदि होती है। मछली सुखाने और सुरक्षित रखने के भी यहाँ ५० क्षेत्र हैं। दो शीत भंडार मछलियाँ सुरक्षित रखने के लिए तथा मछलियों का तेल निकालने के लिये २० कारखाने हैं। मंगलौर, मेजेश्वर, गंगोली, करवाड़ आदि प्रमुख मछली पकड़ने के केन्द्र हैं।

मैसूर के भीतरी भागों में लगभग २० हजार तालाब, ५००० जलाशयों और ३८०० मील लम्बी नदियों में भी मछलियाँ पकडी जाती है। ताजे पानी की मछलियों का वार्षिक उत्पादन लगभग ४००० टन का होता है जिसका मूल्य १० लाख रुपये के लगभग होता है।

(ग) **खनिज पदार्थ**—खनिज सम्पत्ति में यह राज्य धनी है। यहाँ सोना, चाँदी, लोहा, मैंगनीज, मैगनेसाइट, क्रोमाइट, अभ्रक, गेरू, स्टैटाइट, अग्नि मिटटी डोलोमाइट, कायनाइट, बाक्साइट, चूने का पत्थर और चीनी मिट्टी आदि कई खनिज मिलते हैं। **सोने** के उत्पादन में तो इसका एकाधिकार ही है। कोलार की सोने की खानें भारत भर में प्रसिद्ध है। **लोहा** बाबाबूदन की पहाड़ियों और चिकमगलूर, चित्रदुर्ग, बलारी, संदूर जिलों की खानों से खोदा जाता है। यहाँ लोहे के लगभग ३५ करोड़ टन के जमाव सुरक्षित हैं।

मैंगनीज—चित्रदुर्ग, शिमोगा बलारी, तुमकुर, चिकमगलोर तथा कादूर जिलों में मिलता है।

क्रोमाइट—मैसूर, हसन, शिमोगा, बीदर और चित्रदुर्ग जिलों से; **पाइराइट्स** चितलदुर्ग जिले की इंगलधल की खान से; कोरंडम, मैसूर जिले से; **मैगनेसाइट** हसन और मैसूर जिलों से प्राप्त किया जाता है।

मैसूर में शिवासमुद्रम द्वीप के निकट कावेरी नदी के ३२० फुट ऊँचे प्रपात से जल शक्ति उत्पन्न की गई है। इसका उपयोग मैसूर और बंगलोर के सरकारी कारखानों, कोलार की सोने की खानों और नगर में रोशनी के लिए किया जाता है।

(५) **उद्योग धन्धे**—औद्योगिक दृष्टि से यह भारत के विकसित राज्यों में है। राज्य में जल विद्युत के विकास से उद्योग धन्धों की खूब उन्नति हुई है। यहाँ

लोहा वं इस्पात, ऊनी सूती व रेशमी कपड़ा, सीमेन्ट, कागज वं दियासलाई, वायु-यान, रेडियो, टेलीफोन, बिजली का सामान, मशीनी औजार तथा कांच, रासायनिक पदार्थ, शक्कर, साबुन, बिस्कुट सिगरट-सिगार, क्रोम चमड़ा तैयार करने तथा चीनी के बर्तन बनाने के कई उद्योग प्रचलित हैं। शाहबाद में सीमेंट बनाने का कारखाना है। मैसूर, बंगलोर, बेलगाव, धारवाड, हुबली, देवनगर, गोकक और गदग में सूती कपडा बनाया जाता है। ऊनी कपड़ा बंगलौर में ; रेशमी कपड़े का उद्योग गुलबर्गा, मैसूर और बंगलौर में किया जाता है।

मैसूर में सरकार द्वारा संचालित अनेक कारखाने हैं। ये कारखाने बंगलौर, भद्रावती, मैसूर और हसन में हैं। बंगलौर में साबुन बनाने, चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने तथा बिजली का सामान बनाने का कारखाना है। मैसूर में रेशम की कपड़े की मिलें है जिसमें रेशमी साड़ियाँ, कोट के कपड़े तथा छींटें तैयार की जाती हैं। भद्रावती में लोहे और इस्पात का कारखाना तथा हसन में विभिन्न प्रकार के यंत्र बनाने का कारखाना है।

बंगलौर में भारत सरकार द्वारा संचालित अन्य कारखाने भी हैं—मशीनी उपकरण बनाने का कारखाना (Hindustan Machine Tools Ltd.) बिजली के सामान बनाने का (Bharat Electronic Ltd.), टेलीफोन (Indian Telephone Industries Ltd.) बनाने तथा वायुयान बनाने (Hindustan Air Crafts Ltd.) के कारखाने हैं।

दियासलाई बनाने का कारखाना शिमोगा में; **काजू** तैयार करने का कारखाना कनारा जिले में; **कागज** का कारखाना दन्देली, भद्रावती और ननजनगाँड़ में; **चमड़े का उद्योग** बंगलौर में; **कपास ओटने के** कारखाने देवनगर और निकटवर्ती भागों में; इंजीनियरिंग उद्योग बंगलौर व हरीहर में; रासायनिक पदार्थो व रंग के कारखाने मैसूर और बंगलौर में हैं।

राज्य में बड़े कारखानों के अतिरिक्त कुटीर उद्योगों का भी बड़ा विकास हुआ है। इनमें बर्तन, मिट्टी के खिलौने और बर्तन, नीरा से ताड़ गुड़ तैयार करना, नारियल के रस्से, चटाइयाँ, टोकरियाँ बनाना, हाथी दांत और चन्दन की लकड़ी पर खुदाई का काम करना, हाथ का कागज, सुगंधित अगरबत्तियां आदि बनाना मुख्य है।

६. **जन-संख्या**—इस राज्य की कुल जनसंख्या २ करोड़ ३५ लाख है। जनसंख्या का घनत्व ३१८ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है किन्तु अधिकतम घनत्व बंगलौर जिले में ८१३ है जब कि उत्तरी कनारा जिले में यह केवल १७४ व्यक्ति प्रति वर्ग मील का है। यहाँ की मुख्य भाषा कन्नाड़ है। यह विशेषकर दक्षिणी पश्चिमी भागों में बोली जाती है। शेष भागों में तेलगू भाषा का प्रयोग किया जाता है। यहां १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले ६ नगर है। ये क्रमशः बंगलौर, मैसूर, हुबली, कोलार, मंगलौर और बेलगांव हैं।

७. **यातायात के साधन**—मैसूर में आने जाने के साधन बहुत ही उन्नत हैं। मैदानी क्षेत्रों में रेलों और मोटर चलाने योग्य सड़कों का जाल सा बिछा है किन्तु कर्नाटक और मालनद प्रदेश की यातायात सुविधायें असन्तोषजनक हैं। यहां लगभग १० हजार मील लम्बी पक्की सड़कें और ५५६ मील लम्बे राष्ट्रीय मार्ग हैं। इन

सड़कों पर राज्य सरकार की बसें चलती हैं। दक्षिण रेलमार्ग राज्य के प्रमुख नगरों को जोड़ता है। यहाँ ८ हवाई अड्डे भी है जिनका सम्बन्ध देश के अन्य भागों से है।

कई कारणों से मैसूर को 'पर्यटकों के लिए स्वर्ग' माना गया है। इस राज्य में सुन्दर नगरो, उपत्यकाओं, भीलों और कलात्मक भवनों तथा मंदिरों का प्राचुर्य है। बगलौर में लालबाग, विज्ञान संस्था, रमन अनुसंधान सस्था, ऊनी और रेशमी कपड़ों की मिलें तथा हवाई जहाज का कारखाना दर्शनीय है। शिवासमुद्रम का जलप्रपात, श्री रंगपट्टम का रामनाथ स्वामी का मन्दिर, मैसूर का राज-भवन, चामुंडा पहाडी, कृष्ण राजा सागर बाँध और उससे सम्बन्धित वृन्दावन बाग और गोमतेश्वर की विशाल मूर्ती, बेलूर का चैन्नाकेशव का मन्दिर, हालबदे का होयलेश्वर मंदिर, बीजापुर का एतिहासिक गोल गुंबज तथा मोहम्मद आदिलशाह का मकबरा और बादाम की गुफाऐं अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय स्थल हैं।

अध्याय ५६

उड़ीसा

(ORISSA)

सीमा, विस्तार आदि—उड़ीसा राज्य १ अप्रैल १९३६ से बिहार राज्य से बिल्कुल अलग कर दिया गया है। इस राज्य में उड़ीसा राज्य के गंजाम और विशाखापट्टम जिलों के कुछ भाग, मध्यप्रदेश के रायपुर और बिलासपुर जिलों के कुछ भाग सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त १ जनवरी सन् १९४९ ई० में उड़ीसा की २३ छोटी-छोटी रियासतें (अथगढ़, अथमलिक, बमरा, बरम्बा, बौद्ध, बोनाई, दासपाला, धेनकनाल, गंगपुर, हिंडौल, कालाहांडी, क्योंझर, खाड़पारा, नृसिंहपुर, नयागढ़, नीलगिरी, पलारा, पटना, रैराखोल रामपुर, सोनपुर, तलचर और निजीरिया) भी इसमें विलीन कर दी गईं। इस सम्पूर्ण राज्य का वर्तमान क्षेत्रफल १,५५,७५१ किलोमीटर और जनसंख्या १,७५,४८,८४६ है। राज्य पुनर्गठन योजना का इस राज्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। यह राज्य पूर्वी तट पर
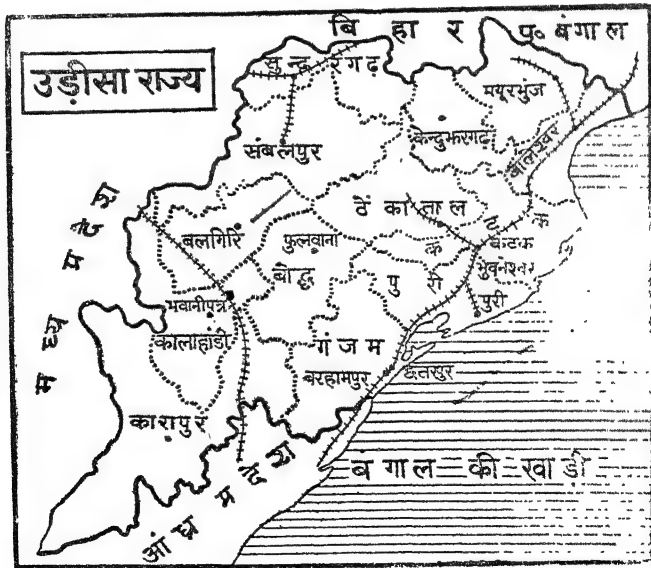
चित्र २५९. उड़ीसा राज्य

१७°·४५′ और २२°·५०′ उत्तरी अक्षाँस और ८°.१५′ तथा ८७°·४५′ पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित है। इसकी तटरेखा ४८३ कि० मीटर लम्बी है। उड़ीसा

राज्य के उत्तर में बिहार और पश्चिम बंगाल, पश्चिम में मध्यप्रदेश, दक्षिण में मद्रास राज्य तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। इस राज्य के १३ जिले ये है :—

बालासोर, बोलनगिर, कटक, (इसके साथ नृसिहपुर जिला मिलाया गया है) धनकनाल, गंजाम, (इसके साथ अंगुल जिला मिलाया गया है) कालाहाडी, क्योझार, कोरापुट, मयूरभंज, फूलवानी, पुरी, (नयागढ़ जिला इसमें मिलाया गया है) सम्बलपुर और सुन्दरगढ।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—उडीसा के बडे भाग में महानदी की निचली घाटी और डेल्टा प्रदेश है। इसमें कई छोटी-छोटी तेज बहन वाली नदियाँ बहती है जैसे वैतरणी, ब्राह्मणी और स्वर्ण रेखा आदि। ये सभी नदियाँ एक दूसरे के समानान्तर उत्तर पश्चिम से दक्षिण पश्चिम को बहती है। राज्य की भूमि के बीच-बीच में १,५२४ मीटर ऊंची पहाड़ियाँ भी है। प्राकृतिक बनावट के अनुसार उड़ीसा को दो भागों में बाटा जा सकता है :—

(१) **महानदी की उपजाऊ घाटी**--इस भाग में तटवर्ती भूमि की पतली पट्टी और महानदी का डेल्टा और घाटी शामिल है। मैदानो की चौडाई २४ से लगाकर १२० किलोमीटर है। डेल्टा पर प्रति वर्ष नई मिट्टी आकर जमती है अत: यह डेल्टा बड़ा उपजाऊ है। इस भाग में उपरोक्त छोटी-छोटी नदियों के मैदान भी सम्मिलित हैं। इन नदियों का पाट बहुत कम चौड़ा है अत वर्षा ऋतु मे बहुत
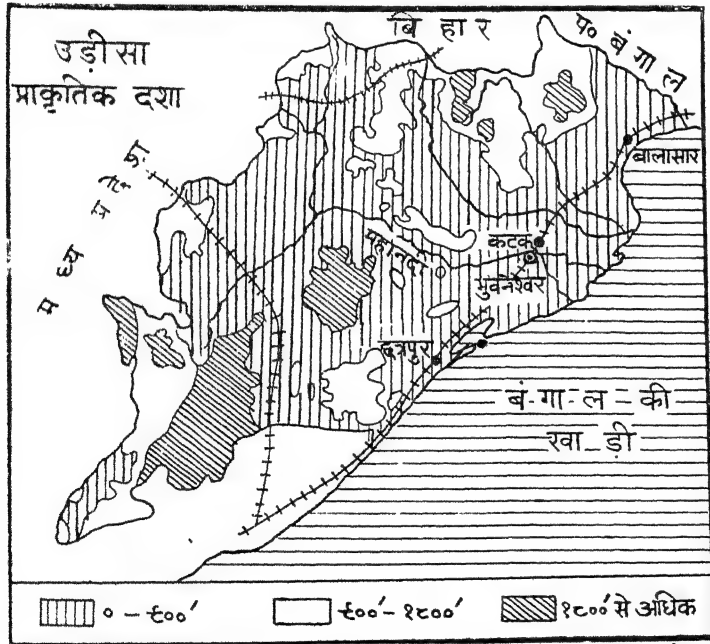
चित्र २६०. उड़ीसा—प्राकृतिक दशा

बाढ़ें आया करती हैं जिसके कारण आस-पास की भूमि, जन-धन और पशुओं की बड़ी हानि होती है और सम्पूर्ण भूमि भी दलदल बन जाती है। समुद्रतट पर रेतीले

टीले और गोरन के वृक्ष भी बहुत मिलते है। इसी भाग म चिल्का और पार्लाकट उथली झीलें हैं जो एक प्रकार से समुद्र से मिलती है।

(२) **पठारी भाग**—उपरोक्त तटीय मैदान के पीछे की ओर का भाग पठारी है। कोरोपुत और गजाम जिलों मे पूर्वी घाटों के पूर्वी छोर पर पठार है। अगुल, सभलपुर जिलों की पहाड़ियाँ मध्य प्रदेश के पठार का ही अश है। यह पठारी भाग अधिक उपजाऊ नहीं है। पठारी भाग पर हाथी, बाघ, चीते आदि जगली पशु पाये जाते हैं।

मिट्टियाँ—इस राज्य के विभिन्न भागों में कई प्रकार की मिट्टिया पाई जाती हैं। (१) नदियों की सकरी घाटियों तथा छोटे-छोटे मैदानी भागों म नदियों द्वारा लाकर बिछाई हई पुरातन काँप मिट्टी पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टी इस राज्य के बालासोर, कटक और कोरापुट जिलों मे सर्वत्र, पुरी के अधिकाश भाग में तथा गंजाम जिले के कुछ भाग में पाई जाती है।
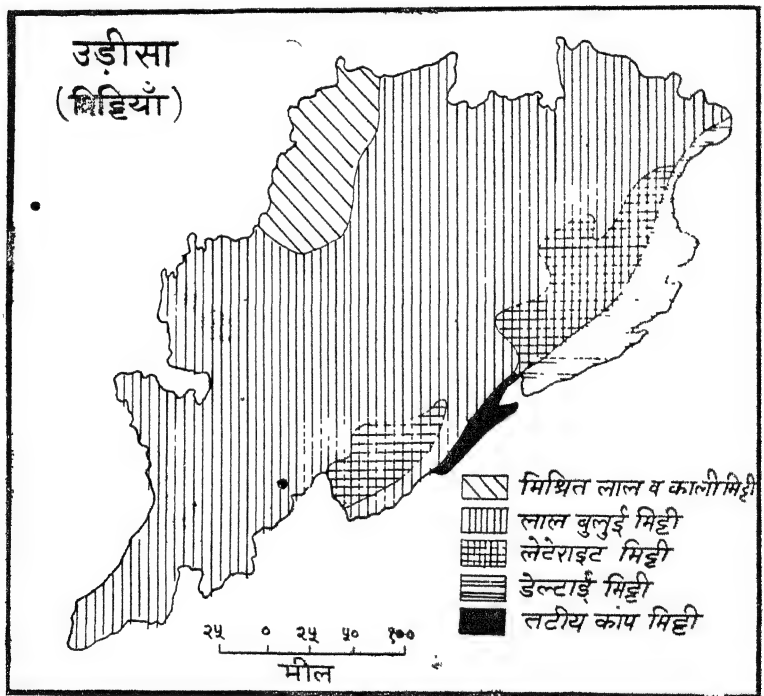
चित्र २६१. उड़ीसा की मिट्टियाँ

(२) लेटेराइट मिट्टी पुरी के कुछ भाग में तथा गंजाम जिले के बड़े भाग पर पाई जाती है। मिश्रित लाल तथा काली मिट्टियाँ इस राज्य के पश्चिमी पठारी भाग मे पाई जाती हैं। सम्भलपुर जिले के लगभग आधे क्षेत्रफल में इसी प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं।

(३) **जलवायु व वर्षा**—समुद्रतट की निकटता के कारण उड़ीसा का जलवायु मौतदिल है। यहाँ जाड़ों में कम सर्दी और गरमी में कम गरमी पड़ती है। यहाँ का मौसम तापक्रम २७° सें० ग्रेड है। यहाँ अधिक से अधिक तापक्रम १६° सें० ग्रेड रहता है। मानसून के दिनों में बंगाल की खाडी से जो चक्रवात उठते हैं उड़ीसा उनके मार्ग में पड़ता है अत. यहाँ इन्हीं चक्रवातों द्वारा वर्षा होती है। वर्षा का औसत १४५ सें० मीटर है। वर्षा उत्तर पूर्व से दक्षिणी-पश्चिम की ओर कम होती है। यही कारण है कि बालासोर में जहाँ ७६ से० मीटर पानी बरसता है वहाँ कोरापुट और गजाम जिलों के भीतरी भागों में ३८ सें० मीटर से भी कम वर्षा होती है। उड़ीसा में वर्षा अनियमित रूप से होती है। अतः यहाँ अकाल बहुत पड़ा करते हैं।

सचाई—वर्षा की अनियमितता को दूर करने के लिये महानदी से सिंचाई का प्रबन्ध किया गया है। महानदी के डेल्टा में उसकी भिन्न-भिन्न धाराओं से कई नहरें निकाली गई हैं जो उन धाराओं से मिलकर समुद्रतट के समीप तक पहुँचती हैं। यह सभी नहरें डेल्टा की भूमि को सींचती हैं। डेल्टा की मुख्य नहर मछगाँव, केन्द्रपारा नहर, गोदावरी नहर और पाताल मंडल हैं। डेल्टा की इन ४ नहरों के अतिरिक्त दो नहरें और भी है—एक हाई लेवल नहर जो ब्राह्मणी नदी को सैलन्दी से मिलाती है और दूसरी बंगाल की हुगली नदी से निकल कर उड़ीसा मे महानदी के डेल्टा तक आती है। उड़ीसा में इस प्रकार रूसी कुल्या और उड़ीसा नहरों से लगभग ४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

इन सबके अतिरिक्त अब महानदी पर तीन बड़े-बड़े बाँध टिकडपाडा, नराज और हीराकुण्ड आदि स्थानों पर बनाये जा रहे हैं। इन बाँधों के सम्पूर्ण बन जाने पर न केवल सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण, नौका संचालन, बिजली आदि की ही सुविधायें प्राप्त होंगी वरन् मलेरिया बुखार के प्रकोप रोकने, मछली की पैदावार को बढ़ाने, भूमि के कटाव को रोकने और मनोरंजन की बहुमूल्य सुविधायें भी प्रदान की जावेंगी। हीराकुड बाँध की इस नवीन योजना से लगभग ११ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और लगभग ३$\frac{१}{२}$ लाख किलोवाट शक्ति भी उत्पन्न की जावेगी। इस योजना से उड़ीसा की उन्नति होगी और यहाँ पर लोहे, सीमेंट, शक्कर, कागज तथा रसायनिक पदार्थ के कारखाने खोले जा सकेंगे।

(४) **उपज (क) वनस्पति**—उड़ीसा के पठारी भाग में जंगल अधिक पाये जाते हैं जिनमें कीमती लकड़ियाँ प्राप्त होती है। गंजाम जिले में तो सुरक्षित जंगल हैं। इन जंगलों से साल, महुआ, कुचला, शहतूत, हल्दू, बाँस, लाख और हर्र प्राप्त की जाती हैं। यहाँ के जंगलों में हाथी आदि जगली पशु पाये जाते हैं। लगभग २३,००० वर्गमील भूमि में वन हैं। गोरन के वन कटक, बालासोर और पुरी जिलों में समुद्री किनारे की दलदली भूमि में पाये जाते है। इनमें अब खैर, और कैसोरीना वृक्ष तथा सबाई घास भी पैदा की जा रही है।

(ख) **कृषि**—यद्यपि उड़ीसा के मैदान बड़े उपजाऊ हैं किन्तु सदैव ही बाढ़ का डर होने से फसलों की बड़ी हानि होती है। यहाँ की मुख्य उपज चावल है जो कुल बोई गई जमीन के तीन-चौथाई भागों में पैदा किये जाते है। चावल के खेत नदियों की घाटियों में पठारी ढालों पर बनाये गये हैं। यहाँ जूट भी पैदा होता है। उड़ीसा

की अन्य फसलें मक्का, चना, आलू, तम्बाकू, कपास, दालें, तिलहन, गन्ना आदि है। समुद्रतट पर नारियल भी खूब पैदा किये जाते हैं।

खेती के अतिरिक्त उड़ीसा के समुद्रतट पर विशेषकर कटक, बालासोर, पुरी सौर गंजाम में मछलियाँ भी बहुत पकड़ी जाती हैं। सबसे ज्यादा मछलियां चिल्का झील से प्राप्त की जाती हैं। यहाँ का समुद्रतट लगभग ४८० मि० मी० लम्बा है।

(ग) **खनिज पदार्थ**—यह राज्य पदार्थों में धनी है किन्तु अभी तक उनका पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया गया है। यहाँ लोहा कोयला, मैंगनीज, तांबा और अभ्रक आदि खनिज मिलते हैं। भारत का ६०% **लोहा** बोनाई, क्योंझर और मयूरभंज रियासतों से प्राप्त होता है। अभी कटक और सुन्दरगढ़ जिलों से भी लोहे के जमाव मिले हैं। **कोयला** सम्बलपुर, गंगापुर, तलछड़ और अथमैलिक में मिलता है। प्रायः सारा लोहा जमशेदपुर भेज दिया जाता है। भारत का २०% **मैंगनीज** उड़ीसा के क्योंझर, सुन्दरगढ़, सम्बलपुर कालाहांडी और बालंगिर जिलों में प्राप्त होता है। **क्रोमाइट**, क्योंझर, धनेकनाल और कटक जिलो में तथा **डोलोमाइट**, गंगापुर और सुन्दरगढ में मिलता है। अन्य खनिज पदार्थों का विवरण इस प्रकार है:—

चीनी मिट्टी	मयूरभंज जिले की झुलान—संआसी, चाक्किरा, जमकेसर, कुरमा, दुमारया तथा जोशीपुर की खानों से।
अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी	सम्बलपुर जिले में बेल पहाड़, दरली पाली, तथा तलाबाड़ी की खानों से।
चूने का पत्थर	सुन्दरगढ़ जिले की हाथीवाड़ी, लांगी बरना, झरबेदा तथा जगदा खानों से।
श्वेत खड़िया मिट्टी	कटक जिले में जगन्नाथप्रसाद की खान से, मयूरभंज जिले में।
ग्रैफाइट	कोरापुट जिले में, कारीकुड़ा और भभीग्रोलम, सम्बलपुर में सरगीथाली और बोलांगिर जिले में फायसी, मतुल्ली, और धरकामर, और जुंजुरी की खानों से।
घीया पत्थर	मयूरभंज जिले में झुलान-संआसी खान से।
बाक्साइट	कालाहांडी व सम्बलपुर जिलों की पहाड़ियों के शिखरो से।
एस्बस्टस	मयूरभंज जिले में जोशीपुर की खान से।

(५) **उद्योग-धन्धे**—उड़ीसा राज्य उद्योग धन्धों में पिछड़ा हुआ है किन्तु महानदी घाटी योजना के फलस्वरूप इस राज्य को औद्योगिक उन्नति शीघ्र होगी। रूरकेला में जर्मन कम्पनी की सहायता से प्रतिवर्ष २५ लाख टन कोयला तैयार करने के लिए नया कारखाना बनाया गया है। राजगंगपुर में सीमेंट और बृजराजनगर और चोद्वारनगर में कागज के कारखाने हैं।

सूती कपड़े की मिलें चौद्वार नगर, कटक और बड़ीपादा में; सूत की कताई की मिलें कटक, सम्बलपुर और मयूरभंज जिलों में; काँच का उद्योग बाडंग और बहल्पादा रोड में; दूरबीन के शीशे बनाने का उद्योग राजगंगपुर में; चीनी मिट्टी के बर्तन का उद्योग बड़ीपादा और बाडंग में; क्लोरीन और कास्टिक सोडा बनाने की फैक्ट्री बृजराजनगर में; नल तथा ट्यूब तैयार करने का उद्योग बाडंग, रूरकेला, बेलपहाड़, राजगंगपुर तथा चौद्वारनगर में; फैरो-मैंगनीज का कारखाना जोदा तथा रामगढ़ में और अल्यूमीनियम उद्योग हीराकुड के समीप है।

यहाँ घरेलू उद्योग धन्धे बहुत किये जाते हैं जिनसे निवासियों की कार्य-कुशलता का परिचय मिलता है। करघे का काम यहाँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग धन्धों में गिना जाता है। यहाँ के कासे के बर्तन, सींग की बनी हुई चीजें, अरंडो और टसर रेशम के वस्त्र तथा चाँदी और सोने का तारकशी का काम बड़ा प्रसिद्ध है। कटक, पुरी तथा गंजाम जिले के हुम्मा और समौढी स्थानों में नमक तैयार किया जाता है। खाल तथा चमड़े का काम, मिट्टी के बर्तन और खिलौने, साबुन, ट्रंक बनाने, धान कूटना, रस्सी बँटने, बास की चटाइयाँ और टोकरी बनाने का काम भी बहुत किया जाता है। बिस्कुट, कटक, सम्बलपुर और भुवनेश्वर में; **लोहे की छोटी बड़ी वस्तुयें** परलाकी मेडी में; ढलाई का उद्योग तारग, पुरी और रामपुर में; फलों को सुरक्षित रखने तथा फलों के मुरब्बे आदि बनाने का धन्धा परलाकीमेड़ी और रूरकेला में किया जाता है।

(६) **यातायात के मार्ग**—उड़ीसा राज्य में लगभग १३½ हजार मील लम्बी सड़कें हैं जिनमें से लगभग ३½ हजार तो पक्की सड़कें हैं और शेष कच्ची। सरकारी बसें सम्बलपुर, सुन्दरगढ़, कोरापुर, बोलंगिर, कालाहांडी, क्योंझार जिलों के सभी भागों में तथा धेनकनाल, बालासोर, और कटक जिले के कुछ भागों में चलती हैं। इस राज्य में रेल की लम्बाई केवल ७८३ मील ही है। ७६७ मील लम्बी नहरों और नदियों में नावें चलाने की सुविधा उपलब्ध है। विशाखापट्टम का बन्दरगाह बन जाने से इस राज्य के विदेशी व्यापार में बड़ी उन्नति हुई है। अब प्रदीप बन्दरगाह का भी विकास किया जा रहा है।

(७) **जनसंख्या व नगर**—राज्य की जनसंख्या १,७५,६५,६४५ है और प्रति वर्ग मील घनत्व २९२ है। ९५% जनसंख्या गाँवों में रहती है और ८०% खेती पर निर्भर है। यहाँ लगभग ५५ लाख आदिवासी पश्चिमी पठार पर रहती है। कटक जिले में जनसंख्या का घनत्व ७२३ मनुष्य प्रतिवर्ग मील है किन्तु कोंध-माल में केवल १२० व्यक्तियों का। १ लाख से अधिक जनसंख्या वाला एक ही नगर हैं। मुख्यनगर कटक, पुरी, बालासोर, सम्बलपुर, भुवनेश्वर, गोपालपुर, राज-गंगपुर, बहरामपुर, सोनापुर और अंगल है।

पंजाब

(PUNJAB)

(१) सीमा, विस्तार आदि—यह पंजाब का पूर्वी भाग है जो अब भारत का सीमान्त प्रदेश कहा जाता है। यह राज्य २७°३०′ और ३४° उत्तरी अक्षांसों

चित्र २६२. पंजाब (राजनीतिक)

में बीच तथा ७३°५०' और ७८°५०' पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित है। इसके पश्चिम में पाकिस्तान; उत्तर में काश्मीर तथा हिमालय प्रदेश का एक भाग और पूर्व में यमुना नदी और उत्तर प्रदेश तथा दक्षिण में राजस्थान है। सन् १९४७ ई० में देश विभाजन के स्वरूप पंजाब के दो टुकड़े किये गये—पश्चिमी-पंजाब (जो अब पाकिस्तान में है) और पूर्वी पंजाब (जो अब भारत में है) लगभग ३२० कि०मी० तक पूर्वी पंजाब की कृत्रिम सीमा पाकिस्तान को छूती है। यहाँ कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है। फिरोजपुर जिले में कुछ दूर तक सतलज नदी सीमा बनाती है। फिर यह सीमा उत्तर की ओर रावी नदी द्वारा बनाई गई है। १ नवम्बर सन् १९५६ को इसमें पंजाब और पटियाला की रियासतों को भी शामिल कर दिया गया है। इस नये राज्य का क्षेत्रफल १,२०,७३३ वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या २,०३,०६८,१२ है। इसमें जालंधर और अम्बाला कमिश्नरियाँ और लाहौर कमिश्नरी का अमृतसर, गुरदासपुर और लाहौर जिले के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इस प्रकार इस राज्य में १८ जिले और ३ डिवीजन हैं :—

(१) **अम्बाला डिवीजन**—हिसार, रोहतक, गुड़गाँव, करनाल, अम्बाला शिमला; (२) **पटियाला डिवीजन**—पटियाला, भटिण्डा, संगरूर, कपूरथला और महेन्द्रगढ़ जिले, (३) **जालंधर डिवीजन**—जालंधर, लुधियाना, फिरोजपुर, कांगड़ा, गुरुदासपुर, होशियारपुर और अमृतसर जिले। इनमें ७३ तहसीलें और २७ सब-डिवीजन हैं। चन्डीगढ़ यहाँ की राजधानी है।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—पंजाब का ऊँचा भाग उत्तर में हिमालय की ओर है। दक्षिण की ओर भूमि क्रमशः नीची होती गई है। इस प्रदेश के बीच में सिंध और गंगा का जल-विभाजक है। पंजाब निम्न तीन प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है : —

(१) **उत्तरी पर्वतीय प्रदेश**—इसमें हिमालय की तीनों श्रेणियों के भाग सम्मिलित हैं। शिमला, कांगड़ा जिला, अम्बाला, होशियारपुर व गुरदासपुर जिलों के उत्तरी भाग इसी क्षेत्र में है। यह समस्त भाग ऊँचा नीचा है। उत्तरी भाग में तो ६,०९६ मीटर से भी अधिक फुट ऊँची पर्वत श्रेणियाँ मिलती हैं। शिवालिक की औसत ऊँचाई दक्षिण की ओर केवल १,२२० मीटर ही है। इसमें अनेक गहरी घाटियाँ और नाले आदि मिलते हैं। सतलज नदी की घाटी सबसे गहरी है। यह नदी शिमला से शिपाक तक १६१ कि० मी० की लम्बाई में १,५२४ से २,१३४ मीटर तक गहरी घाटी में बहती है।

इस भाग की जलवायु शीतोष्ण और नम है। ग्रीष्म ऋतु में स्वास्थ्य लाभ करने हेतु असंख्य व्यक्ति इन भागों में आते हैं। शीतऋतु में प्रायः अधिक ठण्ढ और बर्फ गिरा करती है यहां लगभग १२७ से० मीटर वर्षा हो जाती है। इस भाग के ऊँचे भागों में चीड़ आदि नुकीली पत्तियों वाले वृक्ष और निचले ढालों पर अखरोट, बलूत और देवदार आदि चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष मिलते हैं। घाटियों और ढालों पर सीढ़ीदार खेतों में मक्का, चावल, आलू, चाय तथा फल पैदा किये जाते हैं। इस भाग में चूने का पत्थर और स्लेट मिलता है। शिमला, कसौली, धर्मशाला, डलहौजी, कुल्लू तथा मनाली आदि सैर करने के स्थान यहीं हैं।

(२) **तलहटी प्रदेश**—यह प्रदेश ठीक हिमालय के नीचे पूर्व से पश्चिम तक

यमुना से रावी नदी तक फैला है। इसमे अम्बाला, होशियारपुर, गुरुदासपुर के दक्षिणी भाग तथा अमृतसर, जालधर और लुधियाना के कुछ भाग सम्मिलित हैं। यह प्रदेश साधारणतः मैदानी है जो ३६५ से १,८२८ मीटर तक ऊंचा है। इसमें होकर असंख्य छोटी-छोटी नदियाँ बहती हैं जो तेजी से बहती हुई अनेक गहरी कटानें बनाती है इन्हे 'चो' (Chos) कहते हैं। ये चो होशियारपुर जिले में अधिक मिलते है। यहाँ गर्मियो में काफी गर्मी और सर्दियो मे तेज सर्दी पड़ती है। वर्षा का औसत ७६ से ८८ से० मीटर सिंचाई के सहारे, गेहूँ, चावल, मक्का व गन्ना आदि पैदा किया जाता है।
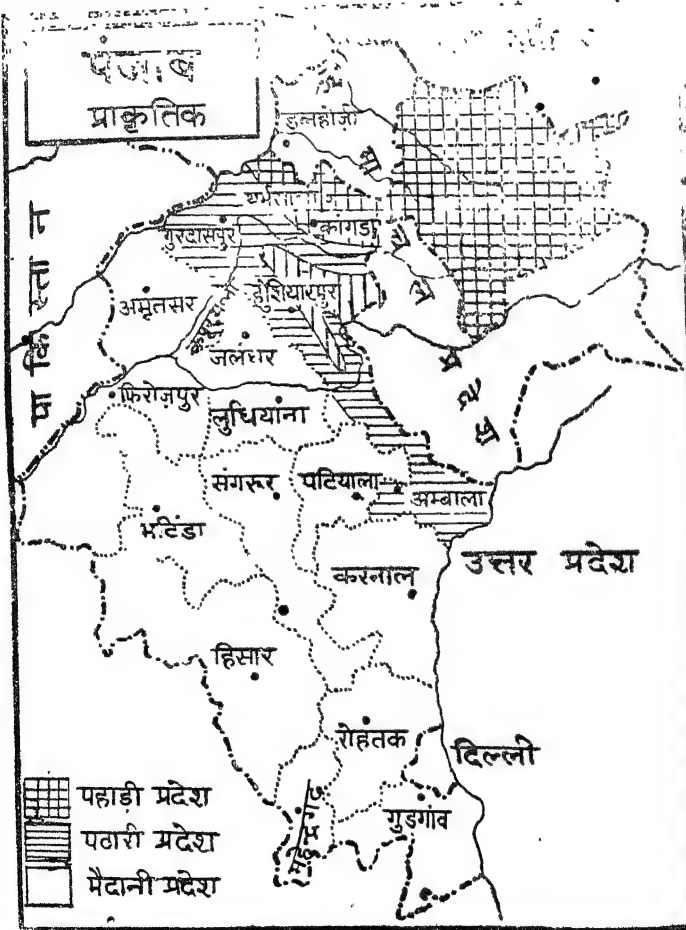
चित्र २६३. पंजाब (प्राकृतिक)

(३) **दक्षिणी मैदानी प्रदेश**—इस भाग में पंजाब का आधे से अधिक भाग सम्मिलित है। इसके २ भाग हैं :—

(क) **सरहिन्द का मैदान**—जो सतलज और यमुना नदियों के बीच में स्थित है।

(ख) **जालन्धर का मैदान**—जो सतलज और व्यास नदियों के बीच का भाग है।

(ग) **बारी दोआब**—जो व्यास और रावी नदियों के बीच स्थित है। इसमें फिरोजपुर, करनाल, हिसार, रोहतक, गुडगाव जिले तथा अमृतसर, जालन्धर और लुधियाना के दक्षिणी भाग आते हैं। यहाँ मैदानी भूमि ही अधिक है। यहाँ की जलवायु कड़ी और सूखी है। वर्षा का औसत १०″ के लगभग है। अतः बहुधा अकाल पड़ा करते हैं। वर्षा की कमी कुओं और नहरों द्वारा सिंचाई करके पूरी की जा सकती है। यहा कपास, गन्ना, चना, तिलहन और गेहूँ पैदा किये जाते हैं।

मिट्टियाँ—पंजाब के पहाड़ी भागों में—विशेषकर शिमला जिले में कांगडा के अधिकांश भाग और गुरदासपुर के कुछ भागों में—पहाड़ी मिट्टी पाई जाती है। कांप मिट्टी के क्षेत्र मुख्यतः अमृतसर, फिरोजपुर, जलन्धर, करनाल, हिस्सार, रोहतक गुड़गांव लुधियाना के जिलों के सम्पूर्ण क्षेत्रों में तथा होशियारपुर, गुरदासपुर और कांगड़ा के कुछ भागों में मिलती है। इसमें उपजाऊ तत्व खूब पाये जाते है।

(३) **जलवायु और वर्षा**—यहाँ का जलवायु बड़ा विषम और स्थलीय है। गर्मियों में यहां तापक्रम ४३° से० ग्रेड तक पहुँच जाता है। अधिक गर्मी पड़ने के कारण समस्त मैदान शुष्क और गर्म रहता है। तापक्रम भेद भी २° से ४° से० ग्रेड तक रहता है। उत्तरी पूर्वी भाग गर्मी में भी खूब ठण्डे रहते हैं। सर्दियों में कड़ाके की सर्दी पड़ती है। उत्तरी पूर्वी भागों में बर्फ भी गिरती है। वर्षा अधिकतर दक्षिणी पश्चिमी मानसूनों से ही होती है। किन्तु पश्चिमी भागों में पहुँचते-पहुँचते यह शुष्क हो जाती हैं। अतः पहाड़ी ढालों तर २०४ से० मीटर और पश्चिमी भागों में २५ से० मीटर से भी कम वर्षा होती है। औसत वर्षा ७६ से० मी० से १२७ से० मीटर तक होती है। जाड़ों में कुछ वर्षा पश्चिम से उठने वाले चक्रवातों से भी हो जाती है। पश्चिमी भाग में वर्षा की अपर्याप्तता और अनिश्चितता के कारण सिंचाई करनी आवश्यक हो जाती है।

सिंचाई—यद्यपि देश का विभाजन होने से पंजाब का मुख्य सिंचित क्षेत्रफल पाकिस्तान को चला गया किन्तु अब भी पजाब में ९१ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जाती है। सिंचित क्षेत्रफल विशेषतः सतलज और जमुना नदियों के बीच के भाग में है। पश्चिमी यमुना नहर, सरहिन्द नहर ऊपरी बारी दोआब, बिस्त दोआब नहर यहाँ की मुख्य नहरें हैं। सन् १९५४ में व्यास और रावी नदी को भी नहरों द्वारा मिला दिया गया है। नांगल की नहरें सतलज नदी के भाकरा स्थान से निकाली गई हैं। इन नहरों में अम्बाला, पटियाला, हिसार के कुछ भाग करनाल और उत्तरी राजस्थान में सिंचाई हो रही है। बिस्त दोआब नहर भी १९५४ में सतलज नदी से नोवा शहर से निकाली गई है। इससे जालंधर और होशियारपुर जिलों की सिंचाई की जाती है। पेप्सू में दाद्री सिंचाई योजना, नारनोल बध और बन नदी सिंचाई योजनाएँ भी मुख्य हैं। पंजाब में भाकड़ा-नांगल की बहुमुखी योजना भी कार्यान्वित की गई है। योजना के पूर्ण हो जाने पर यहाँ लाखों टन अनाज, हजारों टन गन्ना तथा लाखों गांठों का अतिरिक्त उत्पादन होने लगेगा।

(४) **उपज : (क) वनस्पति**—इस राज्य का उत्तर पूर्वी भाग वनों से ढका हुआ है। ऊँचे भागों में चीड़ व अन्य नुकीली पत्ती वाले वृक्ष उगते हैं और निचले
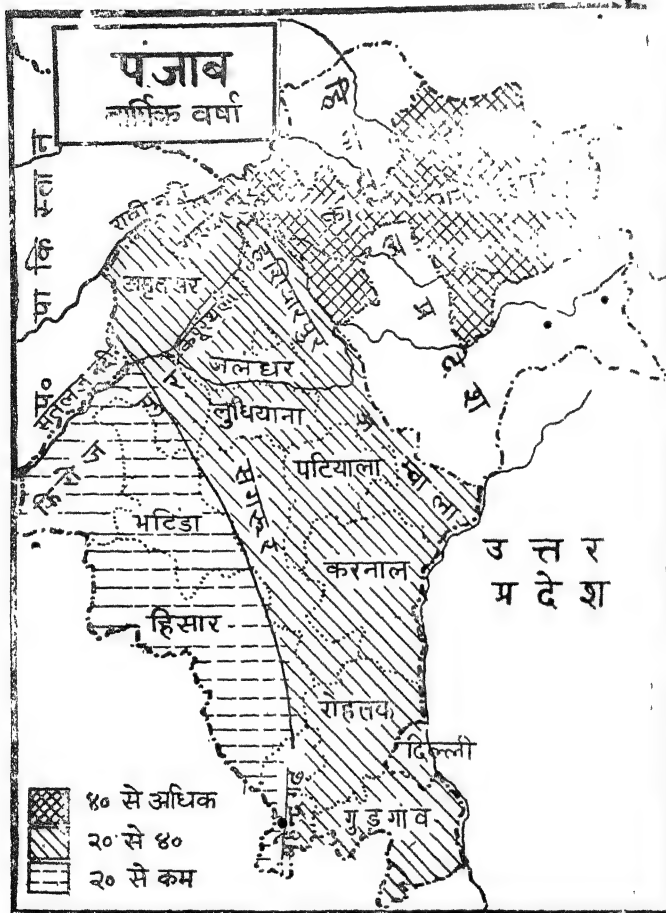
चित्र २६४. पंजाब (वार्षिक वर्षा)

ढालों पर देवदार, अखरोट, शाहबलूत, नाशपाती, खूबानी, आलूचा जैसे चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष पाये जाते है। दक्षिणी शुष्क प्रदेश में कंटीली झाड़ियाँ और बांस के झुरमुट मुख्य हैं। तलहटी के प्रदेश और दक्षिणी मैदानी भाग में प्राकृतिक वनस्पति को साफ कर खेती की जाती है। कहीं कहीं आम के पेड़ पाए जाते हैं।

(ख) **कृषि**—पंजाब एक कृषि प्रधान राज्य है जहाँ की ६७ प्रतिशत जनसंख्या भरण पोषण के लिये कृषि पर निर्भर है। उत्तम भूमि सिंचाई की सुविधा और समतल धरातल के कारण यह राज्य खेतीहर है। यहाँ पर १६८ लाख एकड़ भूमि पर खेती की जाती है। खाद्यान्न उत्पादन में पंजाब का स्थान गेहूँ और चने की पैदावार में दूसरा, मकई और जौ में तीसरा तथा बाजरा और

धान कूटने और नकली रेशम बनाने के कारखाने भी हैं। सिलाई की मशीनें बनाने के ४० तथा उनके पुर्जे तैयार करने के लगभग ३०८ कारखाने यहाँ फैले हैं। इनमें प्रति वर्ष १६ हजार मशीनें तथा १ लाख के लगभग कल-पुर्जे तैयार किये जाते हैं। ये कारखाने बसीपठान, लुधियाना और मलेर कोटला में है। फागवाड़ा, अमृतसर, हमीरा, धुरी, नवाशहर, रोहतक, मोरीदा और भोगपुर में चीनी की मिलें, जगाधरी, खन्ना और जमुना नगर में वनस्पति घी; अम्बाला में कांच का सामान, सोनीपत में साइकिल और अमृतसर, गुड़गांव तथा होशियारपुर में रसायन उद्योग केन्द्रित हैं। फागवाड़ा, फरीदकोट, राजपुरा और जमुनानगर में मक्का से कलफ बनाने के ४ कारखाने हैं जिनका वार्षिक उत्पादन ४० लाख टन का है।

पंजाब में छोटे इंजीनियरिंग उद्योग भी बड़े विकसित है जालंधर, लुधियाना, अम्बाला, अमृतसर, गुरूदासपुर, फरीदाबाद और बटाला में खेती के औजार, कुएं के पम्फ, साइकिल के पुर्जे, पेच, सिलाई की मशीनें, इस्पात के पुल, लालटेनें आदि बनाई जाती हैं। बटाला, जालधर और पटियाला में खेलकूद का सामान बनाया जाता है। राजपुरा में बिस्कुट; फरीदाबाद मे जूते तथा कपूरथला में चमड़ा रंगने का काम किया जाता है। होशियारपुर में राल और वार्निश तैयार करने की २२ छोटी-बड़ी फैक्ट्रियाँ हैं जिनका वार्षिक उत्पादन क्रमशः ६००० टन राल और ३ लाख टन वार्निश का है।

(६) **जनसंख्या**—पंजाब की जनसंख्या लगभग २०२ लाख और औसत घनत्व प्रति वर्गमील के पीछे ४३१ व्यक्तियों का है किन्तु पहाड़ी क्षेत्रों में यह घनत्व ५० से भी कम है तथा दक्षिणी मैदान में ४५० से भी अधिक है। शिमला का घनत्व १४,५४३ है किन्तु लाहुल का केवल ३ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। पहाड़ी भागों के निवासी मंगोल जाति के हैं तथा मैदानी भागों के निवासी आर्य जाति के हैं। राज्य की ६२% जनसंख्या हिन्दू है, ३५% सिक्ख और लगभग २% मुसलमान हैं। यह द्विभाषी राज्य है तथा हिन्दी और पंजाबी यहाँ की प्रमुख भाषाएं हैं। राज्य में लगभग १९ नगर और २०,८५५ गांव हैं।

(७) **यातायात**—इस राज्य में उत्तरी और मध्य रेलों की लाइनों का जाल बिछा हुआ है। लगभग ५०० मील लम्बी सड़कें और ६७०० मील कच्ची सड़कें हैं। नहरों में १५० मील तक नावें चलाई जाती हैं। करनाल, अम्बाला, जालन्धर, अमृतसर फिरोजपुर और फजिल्का मार्ग पर राजकीय बसें चलती हैं।

राजस्थान के प्रमुख उद्योग निम्न प्रकार हैं :—

सूती वस्त्र उद्योग की इस समय ११ निर्माणियां राजस्थान में हैं। इनमें से विजयनगर और किशनगढ़ के मिल घिसी-पिटी मशीनों तथा कुप्रबंध के कारण बंद हैं। मुख्य मिलें क्रमशः भीलवाडा, जयपुर, कोटा, ब्यावर पाली और गंगानगर में हैं। इन मिलों में सूत और सूती कपड़ा बनता है। इन मिलों में सब मिलाकर १'७५,१४८ तकुए और ३,४५७ कर्घे हैं तथा इनमें ७ हजार मजदूर काम करते हैं। उद्योग के स्थानीकरण का मुख्य कारण उदयपुर के विभिन्न भागों में रूई का अधिक होना है। चार नये मिल और खोले गए हैं—क्रमशः किशनगढ़, भीलवाड़ा भवानी मंडी और उदयपुर में।

शक्कर का उद्योग राजस्थान में २ केन्द्रों में स्थापित है—क्रमशः गंगानगर और भूपालसागर में। इन स्थानों में—बीकानेर और उदयपुर जिले का गन्ना ही काम में लाया जाता है। इन मिलों का उत्पादन लगभग १४ लाख टन शक्कर का है। गुड़ का उत्पादन पुष्कर, मांडल और गंगानगर में किया जाता है। राज्य सरकार की शक्कर उद्योग प्रोजेक्ट कमेटी ने बताया है कि ५०० से ७०० मन गन्ना पेरने वाली छोटी इकाइयों के खोले जाने की उपयुक्त अवस्थायें बारां, बूंदी, झालावाड़, माडल और ग्यावा स्थानों में है।

सीमेन्ट के कारखाने राजस्थान में दो हैं—जिनमें से लाखेरी (बूंदी के निकट) का कारखाना ए० सी० सी० समूह और सवाई माधोपुर का कारखाना डालमिया का है। लाखेरी और सवाई माधोपुर के कारखानों की मासिक उत्पादन क्षमता क्रमशः २५,००० टन और १०,००० टन है। सीमेंट बनाने के लिए चूने का पत्थर चित्तौड़गढ़, नीम्बाहेड़ा, कोटपुटली, दारारामगंज, आबू, सोजत और गोटन में मिलता है तथा चिकनी मिट्टी सीकर, सवाई माधोपुर, अजमेर और जयपुर जिलों में मिलती है। जिप्सम बीकानेर से प्राप्त किया जाता है।

दियासलाई का एक कारखाना कोटा में है किन्तु आवश्यक कच्चे माल के अभाव में प्रायः बन्द सा पड़ा है।

हड्डी पीसने के कारखाने राजस्थान में ५ स्थानों पर हैं—जोधपुर, जयपुर उदयपुर (चामुन्डा), बीकानेर (पलाना) और कोटा में इन पाँचों कारखानों क उत्पादन क्षमता प्रतिदिन की १६५ टन है।

काँच का सामान तैयार करने वाला १ कारखाना धौलपुर में है। इसमें विज्ञान सम्बन्धी कांच का सामान और पेन्सिलीन की शीशियां अधिक बनाई जाती हैं। इसकी उत्पादन क्षमता २४०० टन प्रतिवर्ष की है। काँच के नये कारखाने खोलने के उपयुक्त स्थान जयपुर, सवाई माधोपुर और बीकानेर में सुझाये गये हैं जहाँ उत्तम श्रेणी की काच की बालू मिलती है।

इंजीनियरिंग उद्योग में लाई हुई तीन इकाइयाँ ये हैं :—

बालबियरिंग का कारखाना— यह जयपुर में बिरला-बन्धुओं द्वारा १९५० में स्थापित किया गया है। इसमें छरे व उनको रखने की चूड़ियां और धुरी रखने के बक्स बनाए जाते हैं। यह एशिया का सबसे बड़ा कारखाना है।

मान इंडस्ट्रियल कारपोरेशन भी जयपुर में है। यह गृह-निर्माण संबंधी सामानों का निर्माण करता है। भारत मे केवल यही कारखाना है जिसमें लोहे की खिड़कियाँ, दरवाजे और चौखटें मशीनों से ढाली जाती हैं। इनके अतिरिक्त छड़ें, डंडे स्टील हैंडिल के दरवाजे आदि भी यहाँ बनाये जाते है।

जयपुर मैटल एंड इंडस्ट्रियल लि० का कारखाना भी जयपुर में हैं। यहाँ बिजली के मीटर तथा अलौह पदार्थ पीतल के तार बनाये जाते है।

वैगन बनाने का कारखाना भरतपुर में है जहाँ प्रतिवर्ष २००० वैगन बनाये जाते हैं। एक नया कारखाना सवाई माधोपुर में भी स्थापित हो रहा है जहाँ बड़ी लाइन के डिब्बे बनाये जायेंगे।

डीजल के रेल इंजिन का नया कारखाना सवाई माधोपुर में स्थापित किया जा रहा है।

ट्रैक्टर, ट्रोलर और कोलतार बायलर का कारखाना कोटा में हैं। इसमें कोलतार बायलर, चार पहियों के ५-६ टन के ट्रैक्टर, चार-पहियों की पानी की टंकिया और ट्रेलर की चेसिस आदि बनाये जाते हैं।

भोडल की ईंटे बनाने का कारखाना भीलवाडा में है। यहाँ भोडल की कटन-फटन और कचरे से इनसुलेटिंग ईंटे बनाई जाती हैं जिनका उपयोग फौलाद के कारखानों में किया जाता है।

लघु और कुटीर उद्योग उपरोक्त उद्योगों के अतिरिक्त राजस्थान में लघु और कुटीर उद्योगों का भी अच्छा विकास हुआ है। इनकी संख्या २८०० है :—

कुछ मुख्य छोटे उद्योग इस प्रकार हैं:—

सीमेंट से चीजें बनाने वाले	५१
रासायनिक वस्तुएँ एवं दवाइयाँ बनाने वाले	७४
रंग और वार्निश	१८
हाथ करघा उद्योग	५२
छापेखाने	२२८
साबुन बनाने के कारखाने	१६६
खेती के औजार बनाने के	२६७
वर्तन बनाने के कारखाने	११
तेल घानियाँ और तेल मिलें	३११
बनियान और मोजे बनाने के	२५
कपास ओटने—गाँठ बाँधने के कारखाने	१४१
छत्तरी बनाने के कारखाने	६
दाल की मिलें	११५
रोलिंग मिलें	११
बर्फ के कारखाने	३६
इंजीनियरिंग कारखाने	२२६
बीड़ी बनाने के कारखाने	१४६

कंबल, नमदा बनाने के कारखाने	१०४
लकड़ी की चिराई के कारखाने	१०८
चमड़ा रंगाई, जूते आदि	५७
साइकल और साइकल के पुर्जे	१६
सिलाई की मशीनें व पुर्जे	८
संगमरमर की वस्तुयें बनाने	११
ईटें बनाने के भट्टे	१५
प्लास्टिक की वस्तुयें	२२
ऊन साफ करने और दाबने के कारखाने	२०

राजस्थान में १६-१७ तरह के कुटीर उद्योग विशेष महत्वपूर्ण हैं।

हाथ करघे से **सूती कपड़ा** राजस्थान में सर्वत्र ही बनाया जाता है। इसमें लगभग २ लाख मजदूर और ६६००० कर्घे लगे है। कोटा का **मसूरिया कपड़ा** और जरी के पल्ले, उदयपुर और जयपुर (झुँझुनू, नीम का थाना, शेखावाटी के गाँवों में) की अत्यन्त बारीक की मलमल की पगडियाँ तथा कोटा मे मलमल और शेखावटी के गाँवों में कई प्रकार की खादी बहुत बनाई जाती है। **दरियाँ** अधिकतर राजस्थान के बड़े नगरों की जेलों में बनाई जाती है। जयपुर (साँगानेर, वस्सी, सीकर, झुंझुनू) उदयपुर (नाथद्वारा, उदयपुर, बेगूं) और, बाढमेर, जोधपुर में बँधाई और छपाई का काम अच्छा किया जाता है। चुनरी की छपाई और बँधाई जयपुर, झूंझूनू, सीकर और जोधपुर में की जाती है।

कढ़ी हुई कामदानी और कसीदे की नरम मुलायम जूतियाँ जोधपुर, जयपुर और उदयपुर में बनाई जाती है।

राजस्थान में भेडों और ऊँटों के **ऊन से नम्दे**, आसन, गलीचे घोडों व ऊँटों की जीन व काठी और कम्बल आदि, अधिकतर बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, देवगढ़ और जयपुर में बनाये जाते हैं। खंडेला, जयपुर, अजमेर नगरों में **गोटा** बहुत बनाया जाता है। चमड़े के बैग, चरस, बटुए आदि प्रायः सभी बड़े नगरों में बनते हैं। **हाथ से कागज बनाने का काम** सागानेर, सवाई माधोपुर, कोटा (कोटरी) और घोसुन्डा में किया जाता है। कागज की कुट्टी से **सुन्दर खिलौने** आदि अजमेर, उदयपुर और जयपुर में बनाये जाते हैं। **हाथी दाँत की चूड़ियाँ, खिलौने व** अन्य प्रकार की वस्तुयें मुख्यतः मेड़ता, जोधपुर, जयपुर और नाथद्वारा और जयपुर में लाख की चूड़ियाँ, **लकड़ी के खिलौने** जहाजपुर, उदयपुर, सवाई माधोपूर, जयपुर आदि स्थानों मे खूब बनाये जाते हैं। **बर्तनों पर नक्कासी और मीनाकारी का काम** जयपुर तथा नाथद्वारा में, संगमरमर की **मूर्त्तियाँ** जयपुर रिषभदेव, मकराना, **संगमूसा क बर्तन**, डूंगरपुर, **तस्वीरें** नाथद्वारा आदि में बनाई जाती हैं।

राजस्थान में औद्योगिक विकास की संभावनाऐं बहुत है। निजी उद्योगों के लिए राज्य सरकार द्वारा सभी प्रकार की उचित कर और अन्य प्रकार की रियायतें सामग्री, बिजली, सहज ऋण आदि प्राप्त करने की सुविधायें दी जा रही हैं।

बड़े उद्योगों के क्षेत्र में निम्न नये उद्योगों की स्थापना तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत की जा रही है :—

उद्योग	संख्या	स्थान
१. जिंक स्मैल्टर	१	उदयसागर, उदयपुर
२. तांबा स्मैल्टर	१	खेतड़ी, जयपुर
३. चीनी मिलें	३	चंबल क्षेत्र मे, भाखरा क्षेत्र में और उदयपुर डिवीजन में
४. सूती कपड़ा मिल	४	उदयपुर, भीलवाड़ा, विजयनगर, किशनगढ
५. ऊन के संवारने, सफाई-सुधराई का कारखाना	२	बीकानेर, ब्यावर
६. एमोनियम सल्फेट	१	हनुमानगढ, गंगानगर
७. चमड़े का बड़ा कारखाना	१	भदवासिया-रानी या नसीराबाद
८. वनस्पति घी के कारखाने	२	चित्तौड़गढ़, गंगानगर
९. कांच के कारखाने	३	बूँदी, सवाई माधोपुर, बीकानेर
१०. कांच की बोतल तथा विविध वस्तुयें	१	जयपुर, सवाई माधोपुर, बीकानेर या उदयपुर
११. जिप्सम से गंधक और गंधक की तेजाब बनाने का कारखाना	१	
१२. जिप्सम से लैस्टर बोर्ड बनाने का कारखाना	१	

ये सब उद्योग या तो सार्वजनिक क्षेत्र में चलाये जायेंगे या राज्य की साझेदारी से निजी या सहकारी क्षेत्र में।

इनके अतिरिक्त छोटे उद्योगों द्वारा ११६ करोड रुपये के मूल्य की वस्तुयें भी बनाई जायेंगी जिनमें मुख्य फर्नीचर, छोटे औजार, खेल का सामान, लोहे की चूलें, चटकनी, ताले, पेंच, कटलरी का सामान, लकड़ी के खिलौने, रबड़ की वस्तुयें चीर-फाड़ के शल्य चिकित्सा के यंत्र, स्टेशनरी, मौजा, बनियान, नल-वाल्व आदि हैं।

(६) **यातायात के साधन**—यातायात की दृष्टि से राजस्थान की स्थिति बिगड़ी हुई है। एकीकरण के समय राजस्थान में केवल ८½ हजार मील लम्बी सड़कें थीं जिनमें से ४ हजार मील कच्ची मौसमी सड़कें, १३०० मील ग्रेवल-सड़कें और केवल २७०० मील पक्की सड़कें तथा ५०० डामर व सीमेंट की सड़कें थीं। ये सड़कें जनसंख्या व क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत के अन्य राज्यों की तुलना में बहुत ही कम थीं। प्रति १०० वर्गमील पीछे सड़कों की लम्बाई राजस्थान में ८ मील और प्रति १०० व्यक्ति पीछे ०·७ मील लम्बी सड़कें थीं। कई सड़कें तो बहुत ही खराब हालत मे थीं तथा कई जगह चक्करदार मोड़ और ढालू मार्ग थे। इसका मुख्य कारण राज्यों का छोटे छोटे भागों में बँटा होना था। पश्चिमी भाग में मरुस्थल की अधिकता से सडकों का अभाव अब भी है। सड़कों की लम्बाई बीकानेर में ५०१ मील,

जोधपुर में ९७० मील, जैसलमेर में ३८० मील है जबकि उत्तर-पूर्वी और पूर्वी भागों में यह लम्बाई अधिक है—उदयपुर मे १८९८ मील, कोटा में १०८१ मील, जयपुर में १०२९ मील, अजमेर में ८५० मील। राजस्थान में सड़कों की कुल लम्बाई ३१ मार्च १९६१ को इस प्रकार थी :—

राष्ट्रीय मार्ग	४४२ मील	जिले की सड़कें	२८०० मील
राज्यकीय मार्ग	२५८२ ,,	अन्य छोटी सड़कें	५५०० ,,

राजस्थान की कुछ सड़कें इस प्रकार है :—

(१) जैसलमेर से जोधपुर सड़क (२) जोधपुर-नागौर-बीकानेर सड़क (३) सिरोही-पाली, जोधपुर-अजमेर सडक (४) उदयपुर-देसूरी-जोधपुर सड़क; (५) उदयपुर-ब्यावर पाली-जोधपुर सड़क; (६) उदयपुर-डूंगरपुर-बांसवाड़ा-सैलाना-रतलाम, (७) उदयपुर-निम्बाहेड़ा-नीमच सड़क (८) उदयपुर-चित्तौड़-भीलवाड़ा-अजमेर सड़क; (९) चित्तौड़-बूंदी सडक; (१०) अजमेर-नसीराबाद-देवली सड़क; (११)जयपुर-टोंक-देवली-कोटा-झालावाड सड़क; (१२)जयपुर-शाहपुरा-खेतड़ी-पिलानी-लोहारु-दिल्ली सड़क; (१३) भादरा-झांसोल-लोहारू सड़क; (१४) जयपुर-सीकर नवलगढ़-झुंझनू सडक; (१५) झुंझनू-बिसाऊ सडक; (१६) पिलानी-राजगढ़ सड़क (१७) जयपुर-चौमू-सीकर-सालेसर-सुजानगढ़-नौखा-बीकानेर सडक; (१८) जयपुर-टोंक-सवाई माधोपुर—शिवपुरी सड़क; (१९) भरतपुर-धौलपुर-राजाखेड़ा सड़क।

इन मुख्य सड़कों के अतिरिक्त राजस्थान में राष्ट्रीय मार्ग नं० ८ दिल्ली से अलवर, जयपुर, अजमेर, उदयपुर, खेरखाडा, रतनगढ़ होता हुआ अहमदाबाद को जाता है। राजस्थान में इसकी लम्बाई ४३२ मील है।

बीस वर्षीय सड़क योजना के अनुसार राजस्थान में सड़कों का विकास इस प्रकार होगा :—

	३१ मार्च १९६१	३१ मार्च १९६६	१९६०-१९८१
राष्ट्रीय मार्ग	४४२ मील	५७० मील	३,००० मील और
राज्यकीय मार्ग	२५८२ ,,	७५० ,,	६,६४६ ,,
जिले की सड़कें	२८०० ,,	७८१ ,,	६,९२० ,,
जिले की छोटी सड़कें	५५०० ,,	७३१ ,,	६,४७० ,,
योग	११,३२४ ,,	२,८४२ ,,	२३,०३६ ,,

इस समय राजस्थान की सड़कों पर ६,५५४ बसें व माल ले जाने वाले मोटर ठेले और २८,७०३ पैट्रौल व डीजल से चलने वाली गाड़ियाँ हैं।

रेल मार्ग—राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी भाग में सर्वत्र पश्चिमी रेल मार्ग फैला है जिसकी बड़ी लाइन २६३ मील लम्बी और छोटी लाइन ११०३ मील लंबी

है। बीकानेर तथा जोधपुर डिवीजनों में पश्चिमी रेलवे की कई शाखायें हैं। राजस्थान में अधिकतर छोटी लाइन ही है। पश्चिमी रेलवे की प्रमुख शाखा दिल्ली से आरम्भ होकर रेवाड़ी, अलवर, जयपुर, किशनगढ़, अजमेर, मारवाड़ जंकशन, आबू होती हुई बम्बई राज्य को चली जाती है। इसी की एक शाखा बांदीकुई से भरतपुर अछनेरा होती आगरा को और दूसरी सवाई माधोपुर से जयपुर होती हुई लोहारू जाती है। तीसरी शाखा अजमेर से नसीराबाद, भीलवाडा, चित्तौड़ होती हुई मध्य प्रदेश को चली जाती है। चौथी शाखा चित्तौड़ से मावली होती हुई उदयपुर और एक अन्य शाखा मावली से नाथद्वारा, फुलाद, मारवाड़ जंकशन, लूनी होती हुई जोधपुर चली जाती है। एक दूसरी शाखा फुलेरा से आरम्भ होकर रीगस होती हुई रेवाड़ी तक चली जाती है। फुलेरा जंकशन से एक शाखा आरम्भ होकर जोधपुर डिवीजन को पार करती हुई पाकिस्तान की सीमा तक जाती है। मावली जंकशन से एक शाखा वल्लभनगर, कानोड़ होती हुई बड़ी सादड़ी तक जाती है।

उत्तरी रेलवे राजस्थान में १४४१ मील लंबी है जो सारी ही छोटी लाइन की है। इसकी एक शाखा मेडता से आरम्भ होकर पंजाब की सीमा में स्थित भटिंडा तक जाती है। इसकी दूसरी शाखा डीगाणा से हिसार और तीसरी शाखा बीकानेर तक जाती है।

पश्चिमी रेलमार्ग की बड़ी रेल लाइन दिल्ली से आरम्भ होकर मथुरा के निकट राजस्थान में प्रवेश करती है और भरतपुर कोटा होती हुई मध्यप्रदेश को चली जाती है। राजस्थान में इस प्रकार सब मिलाकर लगभग ३००० मील लम्बा रेल-मार्ग है अब फतहपुर-चूरू रेल मार्ग भी बन चुका है। पिलानी-लोहारू, मार्ग पर कार्य चल रहा है। कोटा-चित्तौड़गढ़ लाइन का सर्वेक्षण हो चुका है। उदयपुर-हिम्मतनगर लाइन का कार्य आरम्भ हो चुका है। यह जावर खानों से होकर जयसमंद, डूंगरपुर और श्यामलाजी होती हुई हिम्मतनगर तक जावेगी। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई १३७ मील होगी। इस रेल मार्ग के बन जाने से उदयपुर और अहमदाबाद के बीच १३१ मील की कमी हो जावेगी। एक रेलमार्ग रतलाम को बांसवाड़ा से और उदयपुर को डूंगरपुर से भी मिलायेगा।

राजस्थान में वायुमार्ग भी निकलते हैं। एक वायु मार्ग दिल्ली से आरम्भ होकर जयपुर (सांगानेर) और जोधपुर को मिलता है। एक मार्ग जयपुर से उदयपुर होता हुआ अहमदाबाद तक जाता है। इस समय राजस्थान में तीन प्रमुख अड्डे हैं। साँगानेर, जोधपुर और उदयपुर।

(७) **जनसंख्या व बड़े नगर**—सम्पूर्ण राजस्थान की जनसंख्या २,०१,४६,१७३ है और इसका क्षेत्रफल १३२,१५० वर्गमील है अतः जनसंख्या का प्रति वर्गमील घनत्व १५२ व्यक्ति ही आता है। यह घनत्व पश्चिमी राजस्थान में ६१ है, पूर्वी राजस्थान में २१७ और दक्षिणी राजस्थान में १३९ है। जैसलमेर जिले में प्रति वर्गमील पीछे ६ से कम व्यक्ति निवास करते हैं—जबकि भरतपुर में यह घनत्व ३६८ व्यक्ति प्रति वर्गमील पड़ता है और अजमेर में २९७, टौंक में १८१, अलवर में ३३६, जयपुर में ३५२, सीकर में २७१, भीलवाड़ा में २१५, बीकानेर में ४२, जोधपुर में १०१, बाड़मेर मे ६४, नागौर मे १३६, चुरू में १६३ और जैसलमेर में केवल ९ व्यक्ति प्रतिवर्ग मील पीछे रहते है। उदयपुर डिवीजन में उदयपुर जिले में २१५,

डूंगरपुर में २७९, बांसवाडा में ३४४, चित्तोड़ में १७६, कोटा डिवीजन में कोटा में १७७, बूँदी में १५७ और झालावाड़ मे २०४ व्यक्ति प्रति वर्गमील में रहते है ।
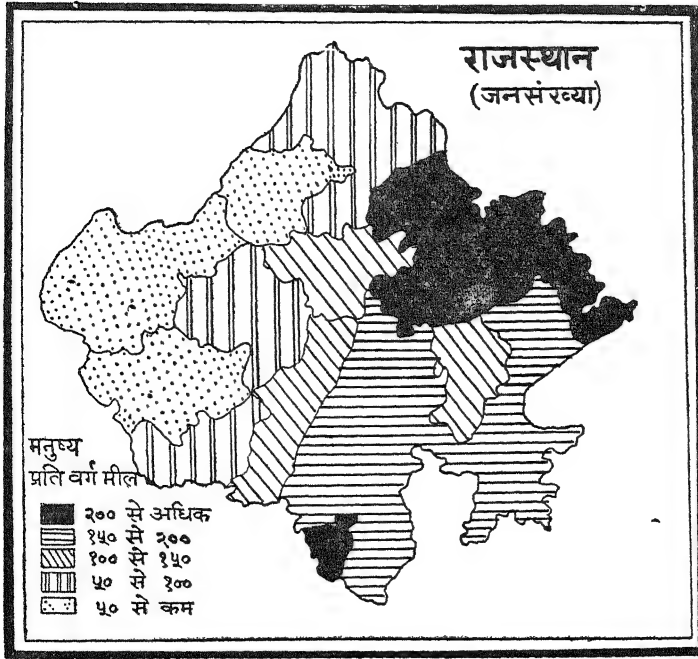
चित्र २७१. राजस्थान (जनसख्या)

यहाँ १०५ लाख पुरुष और ९५ लाख स्त्रियाँ है । सम्पूर्ण जनसंख्या का ८३·९५% गाँवों में और १६·०५% नगरों या कस्बों में निवास करते हैं । सम्पूर्ण कस्बों और नगरों की संख्या २२७ और गाँवों की संख्या ३४,६४८ है जिनमें प्रत्येक में ५०० या उससे भी कम जनसंख्या निवास करती है । केवल ६ नगर ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या १ लाख या उससे अधिक है । ऐसे नगर क्रमशः जयपुर (४०२,७६०); अजमेर (२३०,९९९) जोधपुर (२२४,७२३), बीकानेर (१५०,७६०), कोटा (११९,८४९) और उदयपुर (१११,१८२) है ।

सामाजिक दृष्टि से यहाँ के निवासी ६ वर्गो में विभक्त है । कुल जनसंख्या का ६७% सवर्ण हिन्दू, १० प्रतिशत हरिजन, १० प्रतिशत आदिवासी; ९·५% मुसलमान; २·५% जैन और १% अन्य धर्मावलम्बी हैं ।

राजस्थान की मुख्य भाषा राजस्थानी है । कुल जनसंख्या का लगभग ७०% राजस्थानी भाषा का प्रयोग करता है । शेष में से २२% पश्चिमी हिन्दी, ५% भीली, २% पंजाबी, १% सिंधी तथा शेष गुजराती, मराठी आदि भाषा में बोलते हैं ।

राजस्थान के बड़े-बड़े नगर निम्नलिखित हैं :

जयपुर—जयपुर नगर राजस्थान की राजधानी तथा भारत में गुलाबी लाल नगर (Rose Pink City) के उपनाम से प्रसिद्ध है। इसमें चौड़ी पक्की सड़कों के दोनों ओर लाल रंग की विशाल इमारतें विभिन्न शोभा देती हैं। जयपुर में ही भारत का सर्वश्रेष्ठ प्राचीन ज्योतिष यन्त्रालय है। राजस्थान विश्वविद्यालय भी इसी नगर में है। रामनिवास बाग में एक कला संग्रहालय है। जयपुर अपने कला-कौशल के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। यहाँ मूर्ति-कला, चित्र-कला, शिल्प, पीतल का काम और सोने चाँदी का काम बड़ी कुशलता से होता है। जयपुर नगर अपनी भौगोलिक स्थिति, गौरवपूर्ण इतिहास, आधुनिकता और वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थान की अन्य रियासतों का अग्रगामी होने के कारण ही इस ऐतिहासिक और महान राज्य की राजधानी बनने का अधिकारी हुआ है।

जोधपुर—यह राजस्थान का एक बड़ा नगर है। यहाँ हवाई स्टेशन है। राजस्थान का हवाई दफ्तर यहीं पर है। उच्च न्यायालय व रेलवे का बड़ा कारखाना है। आजकल यह नगर शिक्षा का केन्द्र बन गया है। उम्मेद भवन, महल और किला दर्शनीय स्थान हैं।

उदयपुर—पहाड़ियों के बीच में स्थित होने के कारण इस नगर की शोभा बहुत बढ़ गई है। यह झीलों की सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। अपनी सुन्दरता के कारण इसे भारत का स्विटजरलैंड कहते है। इसके उत्तर और पश्चिम की ओर पिछोला झील के किनारे-किनारे मकान अजीब शोभा देते है। झीलों के अन्दर दो द्वीपों पर सुन्दर राजमहल बने हैं। इन्हें जगमदिर और जगनिवास कहते है। उदयपुर जिले में **नाथद्वारा** हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ स्थान है। यहाँ पर कपड़ों की रंगाई और छपाई के अतिरिक्त हाथी दाँत के चूड़े और तस्वीरें बहुत अच्छे बनते हैं।

बीकानेर—यह नगर एक मरुद्यान में है। इस नगर में कई विशाल मंदिर व इमारतें हैं। यहाँ का किला सुन्दर व प्रसिद्ध है। बीकानेर में ऊँटों के बाल से लोइयाँ कम्बल और अच्छे अच्छे फर्श बनाये जाते हैं।

कोटा—यह चम्बल नदी के किनारे बसा है। इस नगर के पास ही चम्बल नदी पर बांध बनाया गया है। उसके बन जाने से आस पास में खेती की पैदावार बढ़ने और जल विद्युत के उत्पादन से कई छोटे बड़े कारखाने खुलेंगे।

अजमेर—यह नगर अपनी स्थिति के कारण बड़ा प्रसिद्ध है। दिल्ली, खण्डवा, बम्बई से इसका सम्बन्ध रेल द्वारा है। यहाँ कई कालेज, बड़ा अस्पताल, ख्वाजासाहब की दर्गा, अजायबघर, अनासागर झील, सोनियों का जैन मंदिर, तारागढ़ किला, ढाई दिन का झोंपड़ा आदि दर्शनीय स्थल हैं। नगर में साबुन, तेल, गोटा किनारी, टोपियाँ आदि बनाने की कई छोटी छोटी संस्थायें हैं। पश्चिमी रेलवे का एंजिनों का बड़ा कारखाना भी यहीं है।

अजमेर से ६ मील दूर हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थान **पुष्कर** है जहाँ कई बड़े-बड़े मंदिर है जिनमें रंगजी और ब्रह्माजी मंदिर सबसे मुख्य है। पुष्कर झील में कार्तिक पूर्णिमा को स्नान करने के लिए अनेकों यात्री आते हैं। यहाँ तभी पशुओं का भी एक मेला लगता है।

अलवर, भरतपुर, बूंदी, झालावाड़ा, बांसवाड़ा, भीलवाड़ा, पाली, सिरोही, डूंगरपुर, किशनगढ़, ब्यावर और नसीराबाद अन्य मुख्य नगर है।

अध्याय ५६

उत्तर प्रदेश

(UTTAR PRADESH)

(१) **सीमा विस्तार आदि**—गंगा की घाटी के पश्चिमी भाग में स्थित है। यह २३°५२′ उत्तरी और ३१°१८′ उत्तरी अक्षांस तथा ७७°३′ पूर्वी और ८४°३८′ पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला हुआ है। पूर्व से पश्चिम तक यह ८०५ कि० मीटर

चित्र २७२. उत्तर प्रदेश (राजनीतिक)

और उत्तर से दक्षिण तक ४८३ कि० मीटर चौड़ा है। इसके उत्तर में तिब्बत, उत्तर-पूर्व में नैपाल, पूर्व और दक्षिण में बिहार, दक्षिण में मध्य-प्रदेश तथा पश्चिम में राजस्थान और पंजाब हैं। उत्तर प्रदेश की ३ छोटी रियासतों—रामपुर, बैनारस और टेहरी गढ़वाल—सहित इसका क्षेत्रफल २९३,७२८ वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या ७,३७,५६,४०१ है। इसकी आकृति एक देशी नाव की तरह है। उत्तर प्रदेश में १० डिवीजन और ५१ जिले हैं।

उत्तर प्रदेश १० प्रशासनिक इकाइयों तथा ५१ जिलों में बंटा है, जो इस प्रकार है :—

(१) **मेरठ डिवीजन**—देहरादून, सहारनपुर, मुज्जफरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर।

(२) **आगरा डिवीजन**—अलीगढ़, आगरा, मैनपुरी, एटा, मथुरा।

(३) **इलाहाबाद डिवीजन**—फतहगढ़, इटावा, कानपुर, फतहपुर, इलाहाबाद।

(४) **रुहेलखंड डिवीजन**—बरेली, बिजनौर, बदायूँ, मुरादाबाद, रामपुर, पीलीभीत, शहाजहाँपुर।

(५) **झांसी डिवीजन**—झासी, जालौन, हमीरपुर, बांदा।

(६) **वाराणसी डिवीजन**—वाराणसी, मिरजापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया।

(७) **गोरखपुर डिवीजन**—गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, आजमगढ़।

(८) **कुमायूँ डिवीजन**—नैनीताल, अल्मोडा, गढ़वाल, टेहरीगढ़वाल।

(९) **लखनऊ डिवीजन**—लखनऊ, उन्नाव, हरदोई, खेरी, सीतापुर, रायबरेली।

(१०) **फैजाबाद डिवीजन**—फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—उत्तर प्रदेश को प्राकृतिक दशा के अनुसार निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) हिमालय प्रदेश

(२) हिमालय का भाबर और तराई प्रदेश

(३) गंगा का मैदान

(४) दक्षिण का पहाड़ी भाग

(१) **हिमालय प्रदेश**—यह प्रदेश उत्तर मे सम्पूर्ण कुमायूँ कमिश्नरी, जिसमें अल्मोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल और टेहरी जिले सम्मिलित हैं, में फैला हुआ है। यह प्रदेश समस्त राज्य का १९% भाग घेरे हुए है। इस प्रदेश की चौड़ाई २९० कि०मी० और क्षेत्रफल ७,५०० वर्ग मील है। इसका ढाल उत्तर-पूर्व से दक्षिण पूर्व को है। इसमें हिमालय की तीन समानान्तर श्रेणियाँ हैं। बाहरी हिमालय की श्रेणी—**शिवालक**—नीची है। यह समुद्रतट से ६१० मीटर ही ऊँची है। इसके और लघु हिमालय के बीच में पूर्व-पश्चिम को कई विस्तृत घाटियाँ गई है जिन्हें 'दून' कहते हैं—जैसे कोठरीदून, केरियादून, देहरादून आदि उत्तरी श्रेणी **जांस्कर श्रेणी** कहलाती है जिसकी सबसे ऊँची चोटी **कामेत** है (यह ७,६१० मीटर है)। दक्षिण श्रेणी हिमालय की मुख्य श्रेणी है। इसी में हिमालय की मुख्य चोटियां-नन्दादेवी, केदारनाथ, बद्रीनाथ

आदि हैं। इनमें से अधिकांश चोटियाँ बर्फ से ढकी रहती हैं। शिवालिक की पहाड़ी श्रेणियों में उत्तर प्रदेश के मुख्य पहाड़ी नगर—चकराना, लैंसडोन्ट, रानी खेत, नैनीताल, खजपुर, भुवाली, अल्मोडा, रामनगर और मंसूरी हैं। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में स्वास्थ्य लाभ करने तथा प्राकृतिक रमणीयता का आनन्द उठाने हजारों व्यक्ति आते हैं। मानसून के दिनों में यहाँ प्रबल वर्षा होती है और सर्दी में बर्फ गिरती है। हिमालय की बाहरी श्रेणियों पर, देवदार, चीड़, बलूत, साल, बांस आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। दक्षिणी हिमालय श्रेणी से ही लगभग २०,००० फुट की ऊँचाई से भारत की प्रसिद्ध नदियाँ गंगोत्री से, भागीरथी, अलकनन्दा और जमनोत्री से यमुना आदि निकलती हैं। पर्वतीय प्रदेश में अधिकतर लोग लकड़ियाँ काटकर तथा पशु पालकर और शिकार करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पहाड़ी घाटियों और सीढ़ीदार

चित्र २७३. उत्तर प्रदेश (प्राकृतिक)

खेतों में चाय, आलू, मिर्च, चावल तथा अदरख आदि पैदा की जाती है। गढ़वाल और कुमायूं जिले मे बढ़िया ऊन प्राप्त किया जाता है। लोहा, तांबा, चूने का पत्थर भी यहाँ पाये जाने का अनुमान है। इन भागों में विषम और ठण्डी जलवायु, ऊँचे-नीचे और पथरीले धरातल, कृषि की कठिनाइयों और यातायात के साधनों के अभाव में जनसंख्या का घनत्व कम पाया जाता है।

(२) **हिमालय का भावर और तराई प्रदेश**—यह प्रदेश हिमालय पर्वत और गंगा के मैदान का मध्यवर्ती भाग है। यह पतली पट्टी के रूप में पश्चिम से पूर्व तक गंगा के मैदान और हिमालय पर्वत के प्रदेश के बीच में फैली है। इस प्रदेश में सहारनपुर, बिजनौर, बरेली, पीलीभीत, खेरी, गोडा, बस्ती, बहराइच और गोरखपुर जिलों के उत्तरी भाग सम्मिलित है।

हिमालय पर्वत की तलहटी में ४० कि०मी० की चौडाई में भावर प्रदेश फैला हुआ है। इसमे ककड पत्थरो की अधिकता पाई जाती है। पहाडों से आनेवाली अनेक छोटी नदियां, नालो तथा सोतो का जल इस प्रदेश मे भूमि के नीचे अदृश्य हो जाता है। यह जल आगे-जाकर तराई प्रदेश मे पुनः प्रकट हो जाता है। यह भूमि बड़ी नम और दलदल है। यहाँ पट्टी साधारणतः १६ से १७ कि० मी० चौडी है। इसमें अधिक गर्मी और खूब वर्षा होने से घने जगल और गहरी घास पाई जाती है। भावर और तराई दोनों ही अस्वास्थ्यकर जलवायु वाली पट्टियाँ हैं जिनमें मलेरिया फैला रहता है। इस भाग में विषैले कीडे-मकोड़े और मच्छर बहुत होते है। वनों में जंगली हाथी, चीते और दूसरे मांसाहारी जानवर पाये जाते है। इन जंगलो में शिकार भी अधिक किया जाता है। यहाँ निचले भागों में चावल, गन्ना और मक्का तथा ऊपरी भागों में मोटे अनाज, चावल, आलू आदि पैदा किये जाते है। आम और लीची भी बहुत पैदा होते है। अस्वास्थ्यकर जलवायु और कृषि योग्य भूमि के अभाव में जनसंख्या का घनत्व बहुत ही कम पाया जाता है।

(३) **गंगा का पश्चिमी मैदान**—यह मैदान भावर और तराई के दक्षिण में फैला है और समस्त मैदान का लगभग $\frac{1}{3}$, क्षेत्रफल घेरे है। यह मैदान बड़ा चौरस उपजाऊ और गहरा है। नदियो के निकटवर्ती भाग '**खादर**' की निम्न भूमि और दूर वाले भाग **बाँगर** की उच्च भूमि कहलाती है। पूर्व में गंडक और पश्चिम में यमुना नदी इसकी सीमा बनाती है। यह मैदान गगा, यमुना, गोमती, घाघरा, गंधक, सोन, ताप्ती, शारदा, बेतवा, केन आदि नदियों द्वारा लाई गई बारीक कांप मिट्टी से बना है। इसका ढाल दक्षिण पूर्व की ओर है। इस मैदान के दो भाग है—(क) **पश्चिमी भाग** दिल्ली की सीमा से इलाहाबाद तक फैला है। इसमें अधिकतर गङ्गा यमुना का दोआब सम्मिलित है। इस भाग की मिट्टी अपेक्षतया पुरानी है और ऊसर भूमि का विस्तार भी अधिक है। यहाँ वर्षा कम और तापक्रम अधिक रहता है। पश्चिमी भाग में नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है।

(ख) **पूर्वी मैदान**—यह इलाहाबाद से बिहार की सीमा तक फैला है। इसमें गोरखपुर, बस्ती, गोडा, बहराइच के दक्षिण भाग तथा बाराबकी, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, जौनपुर, आजमगढ, बलिया, गाजीपुर, वाराणसी और इलाहाबाद के जिले सम्मिलित है। इस भाग मे नई भूमि की अधिकता व ऊसर भूमि की कमी है। यहाँ मिट्टी की गहराई ४५७ मीटर से भी अधिक है। इस भाग में कुओं में जलतल बड़ा ऊँचा है। यहाँ साधारण गर्मी और १०१ से १२७ से० मीटर तक वर्षा हो जाती है किसी ऊँचे स्थान से देखने पर समस्त मैदान खेतों, बागों और छोटे छोटे गांवों से ढका दिखाई पड़ता है।

सम्पूर्ण मैदान में चावल, गन्ना, कपास, तिलहन, जौ, दालें, गेहूँ आदि पैदा किये जाते हैं। यातायात के साधनों का जाल सा बिछा होने तथा उपजाऊ भूमि

जल की अधिकता और स्वास्थ्यकर जलवायु के कारण यह मैदान अधिक घना बसा है। इसका औसत घनत्व ५४० से ५६० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। पूर्व में तो यह घनत्व ७५० तक पहुँच जाता है।

(४) **दक्षिण का पठारी प्रदेश अथवा बुन्देलखण्ड प्रदेश**—यह भारत के पठार का ही उत्तरी भाग है जो गंगा की घाटी के दक्षिण मे फैला है। इसका क्षेत्रफल लगभग हिमालय पर्वत प्रदेश के क्षेत्रफल के बराबर है। इसमें झाँसी कमिश्नरी के झाँसी, जालोन, बाँदा और हमीरपुर जिले तथा मिर्जापुर, इलाहाबाद और जौनपुर
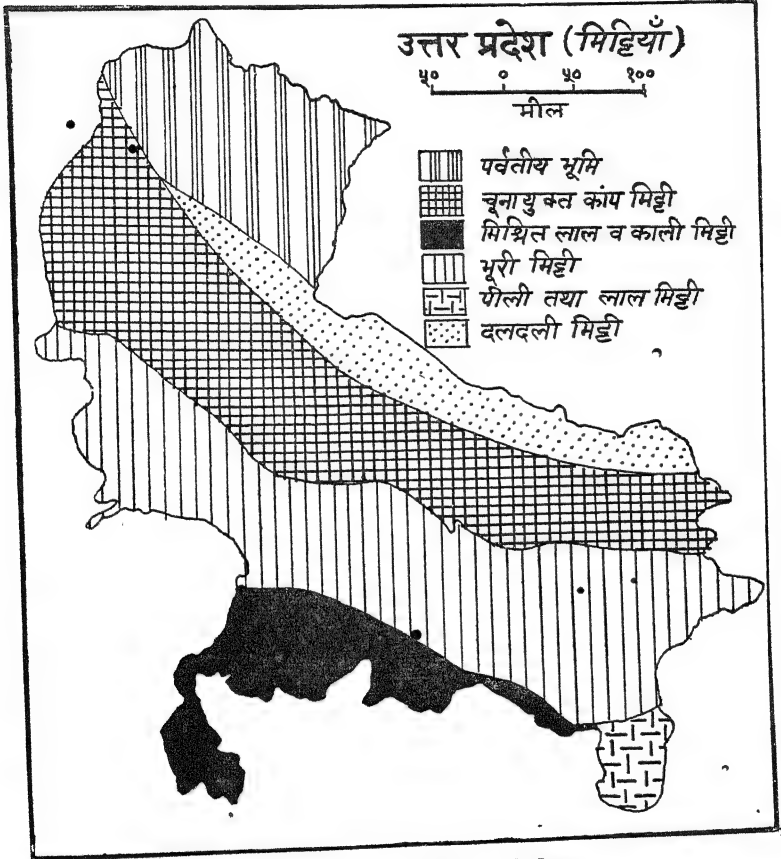
चित्र २७४. उत्तर प्रदेश की मिट्टियाँ

जिलों के कुछ भाग भी सम्मिलित हैं। इसका ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर सीढ़ी-नुमा है। चम्बल, बेतवा व केन इसकी मुख्य नदियाँ हैं। इस भाग की भूमि प्रायः ककरीली पथरीली और उजाड़ है। यह विन्ध्याचल पर्वत की ही टूटी-फूटी श्रेणियाँ हैं। नदियों की घाटियाँ बहुत गहरी और ऊबड़ खाबड़ हैं अतः खेती करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यहाँ छोटे छोटे वृक्ष और झाड़ियाँ अधिक पाई जाती हैं।

यहाँ वर्षा कम और अनिश्चित होती है तथा गर्मी भी अधिक पड़ती है। अनुकूल भागों में ज्वार, बाजरा, मक्का, चना और गेहूँ पैदा किये जाते है। चरागाहों में ढोर पाले जाते हैं। यहाँ सिंचाई के साधनों का भी अभाव है अतः जनसख्या का घनत्व भी कम है।

मिट्टियाँ—उत्तर प्रदेश में अनेक प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं। (१) **पहाड़ी** मिट्टियाँ, अल्मोड़ा, और गढवाली जिलों के सपूर्ण क्षेत्रफल में तथा नैनीताल और देहरादून जिलों के कुछ भागों में पाई जाती हैं। (२) **तराई** की मिट्टी प्रायः नम और दलदली है। इस प्रकार की मिट्टी नैनीताल, पीलीभीत, बहराइच, गोंडा, बस्ती, खेरी और गोरखपुर जिलों के कुछ भागो में पाई जाती है। (३) **चूना मिली मिट्टी** सहारनपुर, मेरठ, बरेली और सहारनपुर जिलों में प्रायः सभी जगह तथा
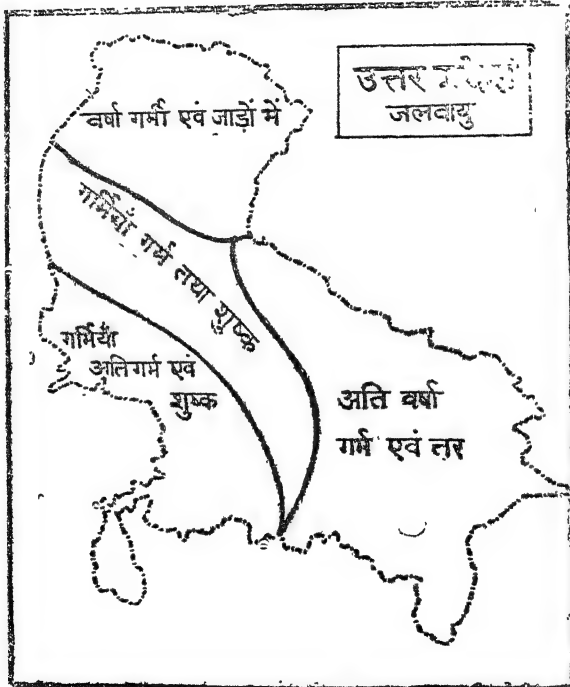
चित्र २७५. उत्तर प्रदेश की जलवायु

गोरखपुर, बस्ती, गोंडा, बहराइच, खेरी, बदायूं, पीलीभीत और बिजनौर जिलों के कुछ भागों में पाई जाती है। (४) **कांप मिट्टी** के क्षेत्र गंगा और जमुना तथा उनकी सहायक नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्रों में पाई जाती है। बलिया, वाराणसी, गाजीपुर, जौनपुर, आजमगढ़, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, फैजाबाद, रायबरेली, फतहपुर, एटा, कानपुर, उन्नाव, लखनऊ, मैनपुरी, फर्रूखाबाद, अलीगढ़ और बुलन्दशहर के जिलों के सभी भागों में तथा बदायूं, आगरा, इलाहाबाद, गोड़ा, बहराइच और बस्ती जिलों के कुछ भागों में इस प्रकार की मिट्टी मिलती है। (५) **रेतीली लाल मिट्टी** मिर्जापुर जिले

में मिलती है। (६) **लाल और काली मिश्रित मिट्टियाँ** इटावा, जालौन, हमीरपुर, बाँदा, झाँसी, इलाहाबाद और आगरा जिले के कुछ भागों में पाई जाती हैं। (७) **काली मिट्टी** झाँसी जिले के दक्षिणी भाग में मिलती है।

(३) **जलवायु और वर्षा**—ऊँचाई अक्षांस और समुद्र से दूर होने के कारण उत्तर प्रदेश के भिन्न भिन्न भागों की जलवायु में अन्तर पाया जाता है। कर्क रेखा के निकट होने के कारण सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश की जलवायु उत्तरी पर्वतीय भागों को छोड़कर गर्म है। उत्तरी पहाड़ी भाग गर्मी में साधारणत: ठण्ड और सर्दी में अधिक ठण्डे हो जाते है। ग्रीष्म ऋतु में साधारणतया जलवायु स्वास्थ्यप्रद रहती है किन्तु जाड़ों में इनमें बर्फ जम जाती है। हिमालय प्रदेश के दक्षिण में शिवालिक की जलवायु समशीतोष्ण रहती है। भावर का जलवायु कुछ सूखा और तराई का उष्णार्द्र रहता है। साधारणतया इस राज्य का गर्मी मे तापक्रम ४३° से० ग्रेड से भी अधिक और सर्दी में १०° सें० ग्रे० तक पहुँच जाता है।

उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग गर्म और सूखा तथा पूर्वी भाग गर्म और तर है। ग्रीष्म में राजस्थान की ओर से आने वाली गर्म 'लू' हवाएँ यहाँ की गर्मी को और भी बढ़ा देती है किन्तु पूर्वी भाग कुछ कम गर्म रहता है। यहाँ वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसून की बंगाल की खाडी की शाखा से होती है। वर्षा का आरंभ जून से होकर अक्टूबर तक रहता है। ज्यों-ज्यों पश्चिमी भागों की ओर बढते हैं वर्षा की मात्रा में भी कमी होती जाती है। इलाहाबाद में वर्षा का औसत ९५ सें०मी० तथा आगरा में केवल ६२ सें०मी० है किन्तु हिमालय के निकटवर्ती भागों मे अधिक वर्षा होती है। शीत ऋतु में थोड़ी वर्षा पश्चिमी हवाओं से होती है जो पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ती हुई शुष्क होती जाती है। पूर्वी मैदान का वार्षिक औसत १०७ सें० मीटर जिसमें से ९४ सें० मीटर वर्षा जून से सितम्बर तक के महीनों मे हो जाती है। पश्चिमी मैदान का औसत १०७ से० मीटर है जिसमें से ९२ से० मीटर वर्षा उपरोक्त चार महीनों में हो जाती है।

सिंचाई—उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में वर्षा की कमी के कारण बहुधा अकाल की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। इस भाग में वर्षा कमी और अनिशिचतता के कारण सिंचाई करना आवश्यक हो गया है। यहाँ सिंचाई का क्षेत्रफल लगभग ११४ लाख एकड़ है। यहाँ कुओं, नलकूपो और नहरों द्वारा सिचाई की जाती है। कुओं द्वारा अधिकतर सिंचाई उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग, अवध, रुहेल खण्ड और मेरठ जिलो में की जाती है जहाँ जलतल भूमि के निकट ही पाया जाता है। पश्चिमी भागों में कुऐं गहराई पर मिलते है। नलकूपों से सिंचाई अधिकतर पश्चिमी भाग में की जाती है। इस भाग में लगभग ५०७५ नलकूप मेरठ, बुलन्दशहर सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, अलीगढ़, एटा, बिजनोर, बरेली, मुरादाबाद और बदायूँ जिलों में लगभग ७५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई कर रहे है। अब शाहजहाँपुर, सीतापुर, लखीमपुर, खेरी, फैजाबाद, गोंडा आदि जिलों में भी नलकूप बनाये गये हैं। नहरों द्वारा सिंचाई पश्चिमी भागों में ही अधिक होती है। यहाँ मुख्य नहरें (१) गंगा की ऊपरी नहर (२) गंगा की निचली नहर (२) पूर्वी यमुना नहर (४) आगरा नहर (५) शारदा नहर (६) बेतवा नहर (७) केन, धसान तथा घाघर नहरें हैं। समस्त नहरों की लम्बाई लगभग ३४,६०० मील है।

दक्षिणी पहाड़ी भाग में बलिया में सुहारा तालाब; बारावंकी में रामनगर तालाब; गोरखपुर में रामगढ़ तालाब; बस्ती में मोती झील, हमीरपुर में मदन सागर में तथा झाँसी में पचवारा तालाब सिंचाई के लिये बनाए गये तालाबों में मुख्य हैं।

इनके अतिरिक्त माता टीला बांध, नगवां बाँध, सपरार बांध, अर्जुन बाँध, अहरौरा बाँध और नौगढ़ बांध भी बनकर तैयार हो चुके हैं। ये सब बांध सिंचाई के बाँध है।
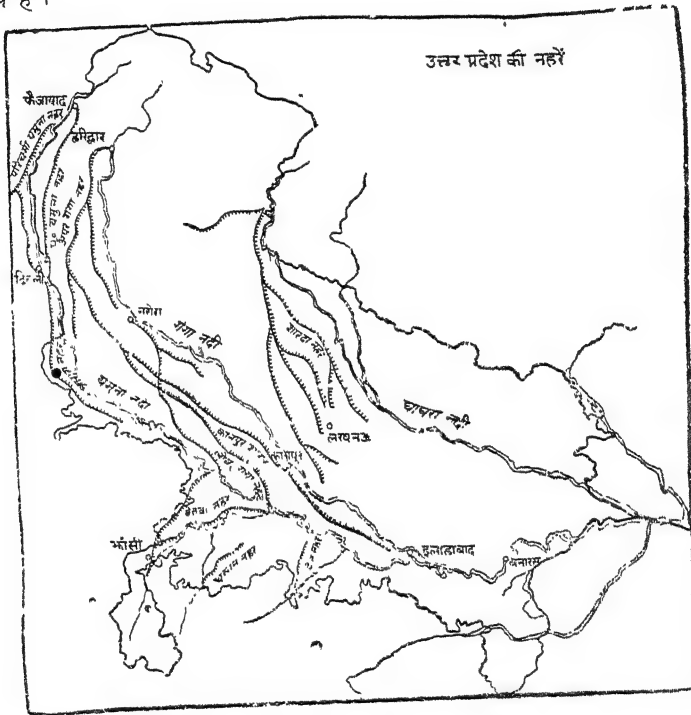
चित्र २७६. उत्तर प्रदेश की नहरें

(१) माता टीला बाँध की नहरें—लगभग ८ करोड़ रु० की लागत से झाँसी के ३० मील की दक्षिण की ओर बेतवा नदी पर लगभग २३४० फीट लम्बा और १२० फीट ऊँचा बाँध बनाया जा रहा है। इस बाँध के निर्माण का प्रथम सोपान पूरा हो चुका है और बाँध के जलाशय से मन्दिर तथा गुरसराय नामक दो नहरें निकाली गई हैं। ये नहरें उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की लगभग २·६ लाख एकड़ भूमि सींचती हैं। इस निर्माण का दूसरा सोपान अभी जारी है।

(२) सपरार बाँध—यह बाँध जिला झाँसी में मऊरानीपुर से लगभग ४½ मील दक्षिण की ओर करोंदा गाँव के समीप बनाया गया है। इससे छोटी छोटी नहरें निकालकर लगभग ४० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

(३) **नागवा बाँध**—यह बाँध जिला झाँसी में नागवा स्थान में कर्मनाशा नदी पर बनाया जा रहा है। इससे मिर्जापुर के आस पास की लगभग ६० हजार एकड़ भूमि सींची जायेगी।

(४) **चन्द्रप्रभा बाँध**—यह बाँध चन्द्रप्रभा नदी पर वाराणसी जिले के चकिया नामक स्थान में बनाया गया है। इस बाँध की लम्बाई ५०० फुट तथा ऊँचाई ६५ है। इससे नहरें निकालकर वाराणसी जिले की चकिया और चन्दोली तहसीलों में ये लगभग २३ हजार एकड़ भूमि सींची जाती है।

(५) **नौगढ़ बाँध**—यह बाँध गाजीपुर जिले नौगढ़ के पास कर्मनाशा नदी पर बाँधा गया है। इससे नहरें निकाल कर वाराणसी की चन्दोली तहसील और मिर्जापुर के जमानिया परगने की ८० हजार एकड़ भूमि सींची जाती है।
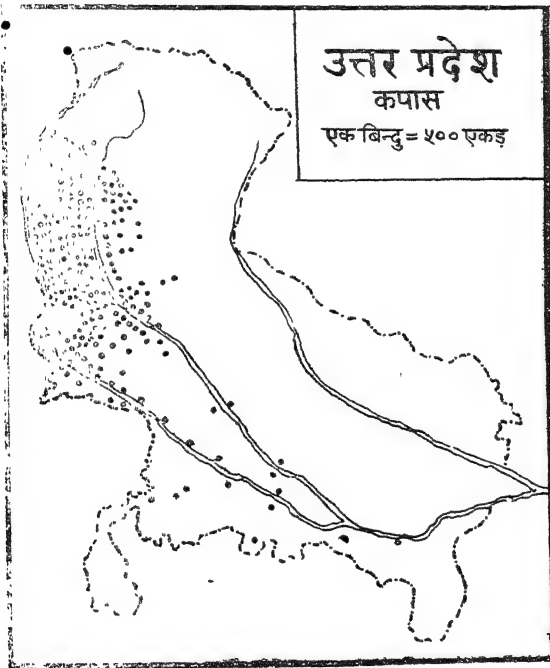
चित्र २७७. उत्तर प्रदेश में कपास का उत्पादन

(६) **ललितपुर बाँध**—यह बाँध झाँसी जिले के ललितपुर नामक स्थान में शहजादा नदी पर बनाया गया है। इस बाँध से बेतवा नहर की शाखाओं को लम्बा करके उन्हें पानी दिया जायेगा जिससे लगभग ६०० एकड़ अतिरिक्त भूमि सींचा जा सकेगी।

(७) **बेलन बाँध**—बेलन नदी पर बाँध बनाकर उससे नहरें निकाली गई हैं, जो उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले और मध्य प्रदेश के रीवां जिले की लगभग

१ लाख एकड़ भूमि सींचती है। बेलन नदी की सहायक भाकर नदी पर भी एक विशाल जलाशय बनाया गया है तथा उससे नहरें निकालकर विस्तृत भू-भाग की सिंचाई सुविधाऐं प्रदान की गई हैं।

(८) **अर्जुन बाँध**—यह बाँध हमीरपुर जिले में चरावारी नामक स्थान के समीप बनाया गया है। यह बाँध १६०० फुट लम्बा और ७५ फुट ऊँचा है इससे नहर निकालकर हमीरपुर जिले की २६·७ हजार एकड़ भूमि सींची जाती है।

(९) **सिरसी बाँध**—यह बाँध सिरसी प्रपात से लगभग ४ फर्लांग ऊपर की ओर १½ मील लम्बा और ७२ फुट ऊँचा बनाया गया है। यह बाँध मिट्टी का बना हुआ है और इसके निर्माण में ७ करोड़ घन फुट मिट्टी लगी है। इस बाँध के बन जाने से १६ वर्गमील के क्षेत्र में एक सुन्दर झील बन गई है। इस झील में ७·७०
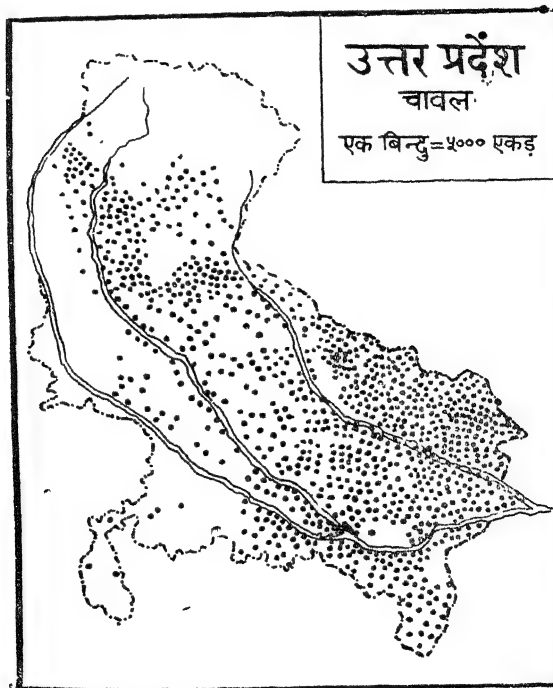
चित्र २७८. उत्तर प्रदेश में चावल का उत्पादन

करोड़ घन फुट पानी आता है तथा १०२ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। इस प्रकार नवीन सिंचाई की योजनाओं द्वारा द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में १३·१ लाख एकड़ और नई भूमि पर सिंचाई की जाने लगी है।

(४) **उपज (क) वनस्पति**—उत्तर प्रदेश की बहुत थोड़ी भूमि पर वन प्रदेश पाए जाते हैं। अधिकतर वन प्रदेश नैनीताल, गढ़वाल, टेहरी और बरेली जिलों में

हैं। वन प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग १३,००० वर्गमील है जो राज्य की भूमि का १३ प्रतिशत है। तराई के वन प्रदेश ४,००० फीट की ऊँचाई तक पाए जाते हैं। इनमें निचले भागों में लम्बी-लम्बी घास, बाँस, तून, झाड़, शीशम, आम और ऊँचे भागों में साल हल्दू, आदि के वृक्ष मिलते है। ४ से ८ हजार फीट की ऊँचाई तक ओक, लारेल, मैपल, बर्च आदि सदाबहार वन और ८ से १३ हजार फीट तक चीड़, फर, देवदार आदि कोणधारी वृक्ष पाये जाते हैं। इन वनों से लाख, गंधा बिरोजा, बाँस, धूप, गूगल, तारपीन, सबाई और भावर घास तथा बहुमूल्य व्यापारिक लकड़ियाँ प्राप्त होती है। उत्तर प्रदेश की पश्चिमी सीमा पर इटावा, मथुरा आगरा जिलों में बबूल, कीकर आदि के वृक्ष लगाए जा रहे है।

चित्र २७९. उत्तर प्रदेश में गन्ना उत्पादन

(ख) **कृषि**—इस राज्य की मुख्य उद्योग कृषि है। लगभग ७५% जनसंख्या खेती पर निर्भर है। वर्षा की असमानता के कारण पश्चिमी सूखे भागों में सिंचाई के द्वारा गेहूँ, जौ, मटर, सरसों, ज्वार, बाजरा, कपास, तम्बाकू आदि खूब पैदा किये जाते हैं। अधिक वर्षा वाले पूर्वी भागों में गन्ना तथा चावल अधिक उगाए जाते हैं। यह राज्य भारत का सबसे अधिक उपजाऊ राज्य है जिसमें समस्त देश का तीन चौथाई जौ और चना (मध्यवर्ती और दक्षिणी भागों में इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर, बस्ती, सुल्तानपुर, रायबरेली, मुजफ्फरनगर जिलों में) आधा गन्ना गंगा और यमुना के दोआब के पूर्वी भागों में बदायूं गोरखपुर, गोंडा, शहाजहाँपुर, पीली-

भीत, मुज़फ़्फ़रनगर, सहारनपुर, बुलन्दशहर और मेरठ जिलों में), एक चौथाई **गेहूँ** (गंगा और गोमती के दोआब में मेरठ, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर, अलीगढ़ और पश्चिमी जिलों में); एक चौथाई **मक्का** (मध्यवर्ती और दक्षिणी भागों में) तथा **कुछ चावल** (उत्तर और पूर्व के भागों में गाजीपुर, बलिया, देवरिया, बस्ती, गोरखपुर, फैजाबाद, खेरी, बहराइच, शहाजहाँपुर और पीलीभीत जिलों में पैदा होता है। गाजीपुर और वाराणसी जिलों में **पोस्त** की खेती भी होती है। उत्तरी पहाड़ी भागों में देहरादून और अल्मोड़ा जिलों में आलू तथा चाय भी पैदा की जाती है। **कपास** का उत्पादन मेरठ मुजफ्फरनगर, बुन्देलशहर, मथुरा, अलीगढ़, आगरा, मैनपुरी, इटावा, झाँसी, बाँदा और हमीरपुर जिलों में किया जाता है। **जूट** नैनीताल जिले में तथा **तम्बाकू** सहारनपुर, मेरठ, मैनपुरी, बुलन्दशहर, वाराणसी और फर्रुखाबाद जिलों में की जाती है।

(ग) **खनिज पदार्थ**—उत्तर प्रदेश की भूमि काप की बनी होने के कारण सारे ही राज्य में खनिज पदार्थों का अभाव पाया जाता है। **चूने** का पत्थर अधिकतर नैनीताल, चकराता और गढ़वाल जिलों में तथा दक्षिणी भाग में बुन्देलखन्ड से प्राप्त होते है।

ताँबा—बाहरी हिमालय में कुल्लू कांगड़ा, नैपाल आदि भागों में फैली पट्टी में पाया जाता है।

सोना—अलमोड़ा और नैनीताल की नदियों की मिट्टी में पाया जाता है।

लोहा—झांसी, नैनीताल, गढ़वाल, मिर्जापुर और गोंडा जिला से मिलता है।

इमारती पत्थर—मिर्जापुर, आगरा, इलाहाबाद, बांदा जिले से प्राप्त होता है।

बालू का पत्थर—काँच बनाने के लिये इलाहाबाद और बांदा से मिलता है।

शोरा—इलाहाबाद, कानपुर, वाराणसी, गाजीपुर, जिले से प्राप्त होता है।

सेलखड़ी—देहरादून जिले में; **फिटकरी** अलमोड़ा जिले में; **गंधक** देहरादून और गढ़वाल जिलो मे तथा **सीसा** अलमोड़ा जिले में पाया जाता है किन्तु यातायात के अभाव म खनिज सम्पति का पूर्ण उपयोग नहीं किया जा सका है।

थोड़ा सा निम्न श्रेणी का कोयला नैनीताल, देहरादून, मिर्जापुर और मुरादाबाद जिले मे प्राप्त किया जाता है। मिर्जापुर क्षेत्र में १० करोड़ टन का जमाव अनुमानित है।

उत्तर प्रदेश में जल विद्युत शक्ति का विकास अच्छा हुआ है। यहाँ की प्रमुख विद्युत योजनायें—(१) **गंगा नहर की योजना** (जिससे उत्तर प्रदेश के २४ जिलों को तथा ६४ शहरों को रोशनी, पंखा चलाने, आटा की चक्की चलाने, तेल के कोल्हू, गन्ना पेरने व छापाखाने चलाने के लिए बिजली दी जाती है); (२) **शारदा नहर जल-विद्युत योजना**; (३) पीपरी जल-विद्युत शक्तिगृह; (४) रिहान्द और नायर बांध योजना है। जमुना और रामगंगा योजनाओं पर भी विचार किया जा रहा है।

(५) **उद्योग धन्धे :**—यद्यपि उत्तर प्रदेश कृषि प्रधान राज्य है जहाँ की ७५ प्रतिशत जनसंख्या खेती बारी में लगी है फिर भी यहाँ अन्य उद्योगों का बड़ा विकास हुआ है।
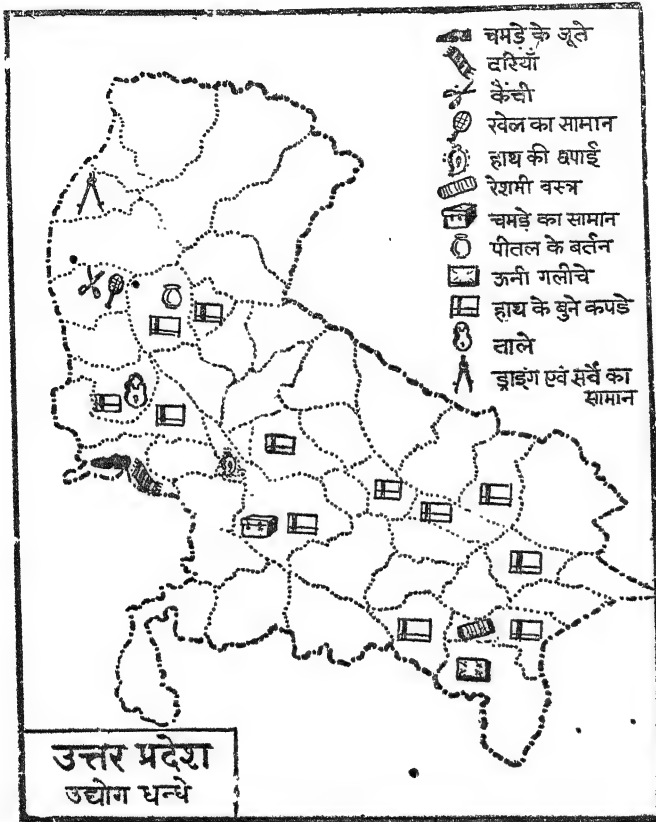
चित्र २८०. उत्तर प्रदेश के उद्योग धन्धे

सूती कपड़े की राज्य में लगभग ३० मिलें हैं। सूती वस्त्र उद्योग की दृष्टि से यह राज्य भारत में तीसरा है। यहाँ की मिलें मुख्यतया कानपुर (जिसे उत्तरी भारत का मानचेस्टर कहते हैं) आगरा, बरेली, मेरठ, हरदोई, हाथरस, अलीगढ़, रामपुर, मुरादाबाद, मिर्जापुर, मोदीनगर, उझानी आदि में है। कानपुर में मोटे और मध्यम प्रकार का कपड़ा तम्बू, डेरे व दोसूती कपड़ा अधिक बनाया जाता है।

दरियाँ बुनने के लिए मुख्य केन्द्र बरेली, अलीगढ़, इटावा, कानपुर, आगरा, सीतापुर, मिर्जापुर, शहाजहाँपुर तथा मुरादाबाद हैं।

कपास ओटने के कारखाने तो बड़े बड़े नगरों में सभी जगह हैं।

जूट और ऊनी कपड़े की मिलें कानपुर और शाहजहांनवाँ में जूट तथा कानपुर में ऊनी कपड़े की मिलें हैं। यहाँ लाल इमली का मिल भारत भर में प्रसिद्ध है।

काँच का उद्योग उत्तर प्रदेश में बहजोई, नैनी, फिरोजाबाद केंद्रित गाजियाबाद मक्खनपुर, हिरनगऊ, वाराणसी, सासनी, हाथरस और बालावली में है। इनमें आधुनिक ढंग से काँच के बर्तन, बोतलें, शीशियाँ, गोले, चिमनियाँ, लोटे-गिलास, गुलदस्ते, काँच की चादरें और मणियें बनाये जाते हैं। कुटीर उद्योग के अन्तर्गत फिरोजाबाद में काँच की देशी और रेशमी चूड़ियाँ अधिक बनाई जाती हैं।

चीनी का उद्योग उत्तर प्रदेश में बहुत विकसित और प्रमुख है। यहाँ से भारत के कुल उत्पादन की आधी शक्कर प्राप्त होती है। यहाँ ७०, कारखाने हैं। शक्कर के कारखाने गोरखपुर, मेरठ, कानपुर, शहाजहाँपुर, लखनऊ, वाराणसी, फैजाबाद, इलाहाबाद, बस्ती और बरेली में हैं। दानेदार शक्कर के अतिक्ति यहाँ खांड़शारी शक्कर भी बनाई जाती है। गुड़ के उत्पादन में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। सीतापुर, बरेली, मुजफ्फरनगर और मेरठ गुड़ बनाने के मुख्य केन्द्र हैं।

कागज की मिलें मुख्यतया सहारनपुर और लखनऊ में तथा दफ्ती कागज की मिलें सहारनपुर और मेरठ में हैं।

वनस्पति घी की मिलें कानपुर, मोदीनगर, गाजियाबाद में हैं।

चमड़े का उद्योग मुख्यतः कानपुर में ही केन्द्रित हैं। आगरा, लखनऊ, मेरठ, बरेली और दयालबाग में चमड़े के जूते सूटकेस, जीन, पेटियाँ आदि बनाई जाती हैं। चमड़ा कमाने और रंगने के ८६ केन्द्र राज्य के विभिन्न भागों में हैं।

हड्डी के कारखाने, हड्डी पीसने के कारखाने हापुड़ और उन्नाव में हैं।

स्प्रिट और शराब के कारखाने :—अधिकतर उन्नाव, लखनऊ, कानपुर, रामपुर, मेरठ, सहारनपुर, दौराला, मंसूरपुर, नवाबगंज और रामपुर में हैं।

तेल की आधुनिक मिलें कानपुर, गाजियाबाद, मोदीनगर में हैं।

साबुन बनाने के उद्योग में संलग्न कारखाने कानपुर, आगरा, मोदीनगर, गाजियाबाद तथा मेरठ एवं अन्य नगरों में हैं।

दियासलाइयाँ मुख्यतः मेरठ छावनी, बरेली और रायपुर में बनाई जाती हैं।

सीमेंट का प्रसिद्ध राजकीय कारखाना मिर्जापुर के निकट चुर्क में है जिसका दैनिक उत्पादन लगभग ७०० टन का है।

सूक्ष्मयंत्र बनाने का उद्योग लखनऊ में है। यहाँ औद्योगिक हीरे, पानी के मीटर, अणुवीक्षण यंत्र, स्टैथेस्कोप आदि बनाये जाते हैं।

रासायनिक उद्योग के अन्तर्गत कानपुर में गंधक का तेजाब तथा बायो-सल्फाइड तैयार किया जाता है। वाराणसी में सोडा एश और अमोनियम क्लोराइड

तथा बरेली में नकली रबड़; इलाहाबाद के निकट शंकरगढ़ में लोह कणों से मुक्त सिलिका बालू और गाजियाबाद में गंधक का तेजाब तथा अन्य रासायनिक पदार्थ बनाये जाते हैं।

टार्च बनाने का कारखाना लखनऊ में है।

रंग रोगन-वार्निश आदि बनाने का उद्योग कानपुर, मेरठ, बरेली और लखनऊ में है।

टीन के कनस्तर आदि हाथरस, आगरा, इटावा, मैनपुरी और गाजियाबाद में बनाये जाते हैं।

कुटीर उद्योग—उत्तर प्रदेश में ऐसे उद्योगों का विकास बहुत हुआ है। इनके अन्तर्गत खादी, गजी गाढा, पगड़ा, धोतियाँ, तौलिये, चादरे, गमछे आदि बहुत बनाए जाते हैं।(i) **हाथ करघे के सूती कपड़े** मगहर, बाराबंकी, इटावा, अमरोहा, मेरठ, देवबन्द, सिकन्दराबाद, टाँडा, वाराणसी, मऊ, मुबारिकपुर और धामपुर में बनाया जाता है। (ii) **कम्बल** मेरठ, मुज्जफरनगर और नजीबाबाद में बनाये जाते हैं। (iii) **हाथ का बना रेशमी कपड़ा** वाराणसी, सडीला, मऊ और विलासपुर में बनता है। (iv) **धोतियां और तौलिये** टाँडा में। (v) **पीतल और कलई के बर्तन** वाराणसी, मिर्जापुर, फरूखाबाद, हाथरस, अतरौली, मुरादाबाद, शामली और हापुड़ में। बड़ौत में लोहे की कढ़ाइयाँ बनाई जाती हैं। (vi) **बर्त्तनों पर कलई का काम** मुरादाबाद में किया जाता है। (vii) **इत्र व तेल**—कन्नौज, गाजीपुर, जौनपुर, लखनऊ, नैनी व इलाहाबाद में बनाया जाता है। (viii) **मिट्टी के बर्तन** चुनार और खुर्जा मे और काली मिट्टी के चिकने बर्त्तन निजामाबाद, लखनऊ और अमरोहा में बनाये जाते है। (ix) **लकड़ी का फर्नीचर और खिलौने** हाथरस, वाराणसी, सहारनपुर, देहरादून और बरेली में बनाये जाते हैं। (x) लकड़ी पर **नक्काशी का काम** नगीना और सहारनपुर में किया जाता है। (xi) **धान कूटने के कारखाने** बहराइच और फैजाबाद में हैं। (xii) **बीड़ी व सिगरेट** आगरा, कानपुर, हाथरस व सहारनपुर में बनाई जाती हैं। (xiii) **बिस्कुट के कारखाने** मोदी नगर में हैं। (xiv) **ताले तथा पीतल** के सरौते, चाकू, कैंचियाँ, छुरे, हाथरस, मथुरा, अलीगढ़ और मेरठ में बनाई जाती हैं। (xv) **जरी और चिकन तथा गोटे का काम** लखनऊ और वाराणसी में जाता है। (xvi) **खेल का सामान** आगरा व मेरठ में और ब्रुश बनाने का धंधा कानपुर, मेरठ, आगरा और इलाहाबाद में किया जाता है। (xvii) **हाथ से कागज बनाने** का काम मथुरा, काल्पी और कागजीसराय में होता है। (xviii) कपड़े पर छपाई का काम फर्रूखाबाद, जहांगीराबाद, पिलखुआ और मथुरा में किया जाता है। (xix) बेंतें और छड़ियाँ देहरादून व बरेली में, सींग के कंघे मुरादाबाद में; **जूते** कानपुर और आगरा में बनाये जाते हैं। (xx) पीतल की मूर्तियाँ, तांबे के बर्तन आदि मथुरा में और लोहे के बाँट आदि सहारनपुर में बनाए जाते हैं। (xxi) पश्चिमी भागों में लोनिया मिट्टी से शोरा बनाया जाता है। (xxii) **बैंड बाजे** मेरठ; हार्मोनियम, तबला, बाँसुरी आदि बाजे मेरठ, कानपुर और लखनऊ में बनाये जाते हैं।

(६) **यातायात के साधन**—यातायात की दृष्टि से भारत में उत्तरप्रदेश ने सबसे अधिक उन्नति की है। यहाँ धरातल के समतल होने से यातायात के मार्गों का जाल

सा बिछा है। रेलों की कुल लम्बाई ५,३०० मील है। उत्तर प्रदेश में (i) **उत्तरी रेलवे** मुगलसराय से मिर्जापुर, इलाहाबाद, कानपुर, इटावा, शिकोहाबाद, टूँडला, हाथरस, अलीगढ़, खुर्जा होती हुई, गाजियाबाद तक जाती है। इसकी दूसरी शाखा वाराणसी, परतापगढ़, रायबरेली, लखनऊ, हरदोई, शहाजहाँपुर, मुरादाबाद आदि तक जाती है।

(ii) **उत्तरी पूर्वी रेलवे** की राज्य में एक शाखा अछनेरा से मथुरा, कासगंज, बरेली होती हुई काठगोदाम जाती है और दूसरी शाखा कासगंज, बरेली, लखनऊ होती हुई गोरखपुर तक जाती है।

(iii) **मध्य रेलवे की शाखा**—झाँसी से आरंभ होकर ग्वालियर, आगरा, मथुरा होती हुई दिल्ली तक चली जाती है। दूसरी शाखा झांसी से कानपुर जाती है।

(iv) **पश्चिमी रेलवे**—आगरा से अछनेरा होती हुई सीधी अहमदाबाद जाती है। अन्य शाखायें कानपुर से फर्रूखाबाद, हाथरस होती हुई मथुरा को तथा आगरा से मथुरा वृन्दावन को जाती है।

उत्तर प्रदेश में सड़कों का भी जाल बिछा है। पक्की सड़कें १३,००० मील लम्बी हैं। राज्य में **ग्रांड ट्रंक रोड** ५०० मील की लम्बाई तक फैली है। इस पर वाराणसी, इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, फर्रूखाबाद, मैनपुरी, एटा, अलीगढ आदि प्रसिद्ध नगर हैं। छोटी सड़कें नैनीताल, रानीखेत और लैंसडाउन को गई है। **ग्रेट डैकन रोड** मिर्जापुर से जबलपुर होती हुई हैदराबाद जाती है। बम्बई से आरंभ होने वाली सड़क आगरा तक आती है। उत्तर प्रदेश की सड़कों पर राजकीय बसें इन मार्गों पर चलती हैं: आगरा, इलाहाबाद, बरेली, गोरखपुर, कानपुर, लखनऊ और मेरठ तथा गढ़वाल क्षेत्र। गंगा, यमुना, गोमती, घाघरा आदि नदियाँ नावें चलाने योग्य हैं। उत्तर प्रदेश में होकर भारत के प्रसिद्ध वायुमार्ग भी निकलते हैं। पहला-मार्ग कलकत्ता से पटना होता हुआ वाराणसी, लखनऊ से दिल्ली को और दूसरा कलकत्ता से इलाहाबाद, कानपुर होता हुआ दिल्ली को जाता है। आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ प्रसिद्ध हवाई अड्डे हैं।

(७) **व्यापार**—उत्तर प्रदेश का व्यापार भी बड़ा बढ़ा-चढ़ा है। कृषि-उत्पादन एवं औद्योगिक उत्पादन में महत्वपूर्ण होने से यहाँ कपास, गल्ला, तिलहन, गुड़, शक्कर, तथा पशुओं में अधिक व्यापार होता है। यहाँ से गुड़ और शक्कर राजस्थान, मध्य-प्रदेश, पंजाब और बंगाल को, घी और चावल मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व राजस्थान को, ऊनी कपड़ा, चमड़े का सामान, रेशमी व जरी के कपड़े, खेल का सामान, कलई के बर्तन खादी और छपी हुई चादरें, लिहाफ, कम्बल, दरियाँ, काँच व मिट्टी के बर्त्तन ताले, केंचिया और चाकू तथा चूड़ियाँ भारत के विभिन्न भागों को भेजे जाते हैं।

यहाँ गेहूँ राजस्थान व पंजाब से, चावल बिहार व बंगाल से चमड़ा, और खालें, नमक राजस्थान से, कोयला बिहार उड़ीसा और मिट्टी का तेल आसाम से सूती कपड़े बम्बई व मद्रास से तथा फल काश्मीर से आते है। लोहे और इस्पात का सामान बिहार से प्राप्त किया जाता हैं।

(८) **जनसंख्या**—उत्तर प्रदेश भारत का सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य है। यहाँ की १३% जनसंख्या शहरों में और ८७% गावों में रहती है। यहाँ जनसंख्या का घनत्व ६५० मनुष्य प्रतिवर्ग मील है। सबसे अधिक घनत्व लखनऊ तहसील में १३७७ और सबसे कम चमोली में ७२ मनुष्य प्रतिवर्ग मील का है। यहाँ हिन्द-मुस्लिम व अन्य धर्मावलम्बी पाये जाते है। ८५% हिन्दू और १५% मुस्लिम तथा अन्य धर्मो क लोग हैं।

उत्तर प्रदेश मे १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले १७ नगर है। ये क्रमशः कानपुर, लखनऊ, वाराणसी, आगरा, इलाहाबाद, मेरठ, बरेली, मुरादाबाद, सहारनपुर, अलीगढ़, गोरखपुर, झांसी, देहरादून, रामपुर, मथुरा, शहाजहाँपुर और मिर्जापुर है।

उत्तर प्रदेश के लगभग ८०% निवासी हिन्दी भाषा बोलते है किन्तु हिन्दी के अतिरिक्त हिन्दी की अनेक विभाषाओ और बोलियो का भी प्रचलन है। उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से हिन्दी के ये ५ रूप बोले जाते है: खड़ी बोली, अवधी, बृजभाषा, भोजपुरी और बुन्देलखण्डी।

(१) **खड़ी बोली**—पश्चिमी रुहेलखण्ड और गंगा के उत्तरी दोआब मे (रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और देहरादून के मैदानी भागों मे) बोली जाती है।

(२) **बृजभाषा**—अलीगढ़, मथुरा, आगरा और इटावा के आसपास के भागों में बोली जाती है।

(३) **कन्नौजी भाषा**—बृजभाषा अवधी भाषा के क्षेत्रों के बीच मे बोली जाती है। यह हरदोई, शहाजहाँपुर, दक्षिणी इटावा, कानपुर के पश्चिमी भाग और फर्रुखाबाद में बोली जाती है।

(४) **अवधी भाषा**—हरदोई जिले को छोड़कर सम्पूर्ण अवध में (लखनऊ बाराबंकी, गोण्डा, बहराइच, प्रतापगढ, उन्नाव, सुलतानपुर, रायबरेली, कानपुर, फतेहपुर, मिर्जापुर, इलाहाबाद और जौनपुर के कुछ भागों मे) बोली जाती है।

(५) **भोजपुरी भाषा**—वाराणसी, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, आजमगढ़, बस्ती और गोरखपुर में बोली जाती है।

(६) **बुन्देलखण्डी भाषा**—बान्दा, झांसी, हमीरपुर, जालोन जिले में बोली जाती है।

अध्याय ६०

पश्चिमी बंगाल

(WEST BENGAL)

(१) **स्थिति और विस्तार**—सन् १९४७ ई० में भारत के विभाजन के फलस्वरूप सम्पूर्ण बंगाल के दो टुकड़े किये गये हैं पश्चिमी भाग पश्चिमी बंगाल के नाम से भारत को मिला और पूर्वी बंगाल पाकिस्तान को। पश्चिम बंगाल में बर्दवान, वीर भूमि. बाँकुडा, हुगली, हावड़ा, मिदनापुर, चौबीस परगना, मुर्शिदाबाद दार्जिलिंग, नदिया, मालदा जलपाईगुरी और पश्चिम दिनाजपुर के जिले तथा कूच बिहार और त्रिपुरा भी सम्मिलित हैं। १ नवम्बर १९५६ से बंगाल बिहार के पूर्णिया जिले के ७६० वर्ग मील, मानभूम जिले का पूलिया थाना के २,१४० वर्ग मील भी मिला दिये गये हैं। इस प्रकार वर्तमान पश्चिमी बंगाल का क्षेत्रफल ८६,१९२ वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या ३,४९,२६,२७९ है।

चित्र २८१. पश्चिमी बंगाल

यह राज्य २१°३०′ उत्तरी अक्षांस से २७°५३′ उत्तरी अक्षांस और ८५°५७′ पूर्वी देशान्तर से ९०° पूर्वी देशान्तर तक फैला हुआ है।

इसके उत्तर में हिमालय पर्वत का पहाड़ी भाग, पूर्व में पूर्वी पाकिस्तान, पश्चिम में बिहार और उड़ीसा तथा दक्षिण में बगाल की खाड़ी है। कर्क रेखा इस राज्य को दो असमान भागों में बांटती है। छोटा भाग उत्तर में तथा बड़ा भाग दक्षिण में रह जाता है। बंगाल राज्य दो डिवीजनों में बंटा है :—

(१) **बर्दवान डिवीजन** के अन्तर्गत बाकुंडा, वीरभूम, बर्दवान, हुगली, हावड़ा, मिदनापुर और पुरूलिया जिले हैं।

(२) **प्रैसीडेन्सी डिवीजन** के अन्तर्गत कलकत्ता, कूच-बिहार, दार्जिलिंग, पश्चिम दिनाजपुर, जलपाईगुरी, मालदा, मुर्शिदाबाद, नादिया और २४ परगना हैं।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—पश्चिमी बंगाल का अधिकांश भाग गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों की निचली घाटियों और डेल्टा से बना है। इस प्रदेश की प्रायः सभी भूमि नदियों की लाई हुई बारीक काँप मिट्टी की बनी है। इसका समस्त भाग समतल है। यहाँ हजारों वर्ग किलोमीटर के अन्दर न तो पहाड़ ही हैं और न चट्टान ही दिखाई पड़ती हैं। केवल उत्तर की ओर दार्जिलिंग का जिला हिमालय के दक्षिणी ढाल पर स्थित है। पश्चिमी बंगाल को निम्नलिखित प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है—

(१) **उत्तरी पहाड़ी भाग**—इसमें दार्जिलिंग, कूच बिहार और जलपाईगुरी के जिले सम्मिलित हैं। ये निम्न हिमालय में हैं। इसमें बहुत सी पहाड़ियाँ हैं। संगलीला पहाड़ी सबसे ऊँची है। हिमालय के निम्न प्रदेश में दलदल भूमि है। इस भाग को 'द्वार' कहते हैं। यहाँ साल, बाँस तथा बेंत के घने जगल पाये जाते हैं। उत्तरी भाग के १८२८ मीटर की ऊँचाई तक के ढाल चाय के बगीचों के लिये साफ किये गये हैं। इसके अतिरिक्त द. प. कोने में भी छोटा नागपुर पठार के कुछ बाहरी भाग इसमें शामिल हैं। यह पठारी भाग ऊँचा नीचा है और गंगा के दक्षिण से लगाकर समुद्री किनारे तक एक संकरी पट्टी के रूप में फैला है। इसमें मुर्शिदाबाद, बाकुडा, मिदनापुर और बर्दवान के जिले सम्मिलित हैं। दामोदर नदी इसी क्षेत्र में होकर बहती है।
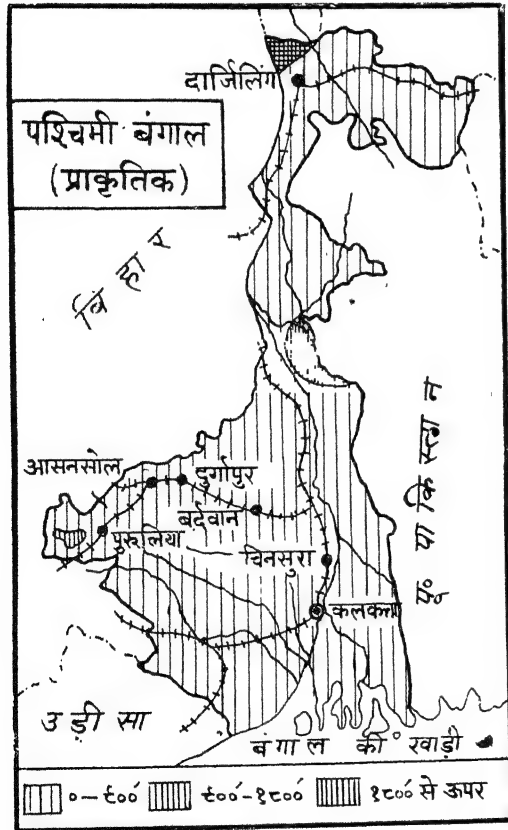
चित्र २८२. पश्चिमी बङ्गाल (प्राकृतिक)

(२) **नदियों का समतल मैदान**—पश्चिमी बंगाल का शेष भाग समतल

मैदान है। इस भाग में मिदनापुर, पुरुलिया, बाकुडा वीरभूम और वर्दवान जिले सम्मिलित है। इसमें कई छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं। हुगली यहाँ की प्रमुख नदी है। गंगा की धारा के मार्ग बदल देने के कारण दक्षिणी भाग में दल-दल सा बन गया है। इन नीचे भागों को यहाँ 'बिल' कहते हैं अतः समस्त गङ्गा के डेल्टा में सुन्दरवन नामक जंगल पाये जाते हैं। इनमें सुन्दरी नामक वृक्ष पैदा होता है। इसकी जड़ें सदैव पानी में डूबी रहती हैं। सुन्दर वन में मगर, जंगली सूअर, हिरण और चीत आदि भी पाये जाते हैं।

इस मैदान में उत्तर की ओर पठार धीरे-धीरे ऊँचे होते गये है और इस प्रकार ६५ मीटर से लेकर उत्तर पश्चिम मे ३०५ मीटर समुद्र तल से ऊंची भूमि में छोटा नागपुर के पठार तक पहुँचते हैं। इसी पठार के पास बङ्गाल की कोयले की प्रसिद्ध खानें है। यहाँ की जमीन कड़ी और वीरान है। इसमें कांटेदार झाड़ियाँ अधिक पैदा होती है।

(३) जलवायु व वर्षा—समुद्र के निकट होने के कारण बङ्गाल का जलवायु अधिक विषम नही है। यह भाग गर्मियो में गङ्गा की ऊपरी और बीच की घाटी की अपेक्षा अधिक गर्म रहता है। इन दिनों यहाँ का तापक्रम १६° से २१° से० ग्रेड तक रहता है। मैदान मे हवा का तापक्रम सभी जगह एक सा रहता है और वर्ष के अधिकांश भाग में हवा बहुत नम रहती है। वर्ष का औसत तापक्रम १६° से २७° से० ग्रेड तक रहता है। ग्रीष्म काल में ऊपरी भाग काफी ठन्डे रहते है। सर्दी में तो बर्फ भी गिर जाती है। यह राज्य मौसमी हवाओं के मार्ग में पड़ता है अत. यहाँ गर्मियों में दक्षिणी पश्चिमी मानसून द्वारा खूब वर्षा होती है। सभी जगह १५२ से० मीटर के लगभग वर्षा हो जाती है किन्तु वर्षा की मात्रा पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ती जाता है। कलकत्ते में १२७ सें० मीटर और उत्तरी भाग में दार्जिलिङ्ग में ३०० से० मीटर से भी अधिक वर्षा होती है। यहाँ वर्षा ऋतु का आरम्भ जून के मध्य से अक्टूबर के अन्त तक होता है। मानसून का बढ़ना और पिछड़ना बङ्गाल की खाड़ी पर चक्रवात सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण होता है। बङ्गाल की खाड़ी से चक्रवात यहाँ आ जाते हैं। इससे दक्षिण और दक्षिणी पूर्वी भाग मे कभी कभी बड़े तूफान आते हैं और इनके फलस्वरूप निचले भागों में अपार धन और जन की हानि होती है। सर्दी के दिनों में उत्तर-पूर्वी मानसून हवायें भूमि पर चलने के कारण वर्षा नहीं करतीं। केवल जब वे बङ्गाल की खाड़ी पर चलने लगती है तो कुछ भाप उनमें आ जाती है अत थोड़ी-बहुत वर्षा किनारों पर हो जाती है। इस प्रकार बङ्गाल की जलवायु उष्ण और तर कही जा सकती है।

मिट्टियाँ—पश्चिमी बङ्गाल में मुख्यतया कांप की मिट्टी, पुरानी कछार मिट्टी, लेटेराइट मिट्टी, जङ्गली और पहाड़ी क्षेत्रों की मिट्टी तथा नमकीन डेलटाई प्रदेश की मिट्टियाँ पाई जाती हैं।

(१) कांप तथा पुरानी कछारी मिट्टी हुगली, नदिया, मुर्शिदाबाद, माल्दा और जैसोर जिलों में सर्वत्र तथा २४ परगने, वीरभूम और जलपाईगुरी जिलों में पर्याप्त क्षेत्रों में और मिदनापुर, बांकुडा तथा बर्दवान जिलों के कुछ सीमित भागों में पाई जाती है। यह मिट्टी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है।

(२) लैटेराइट मिट्टी मिदनापुर, बांकुडा, वर्दवान और वीरभूम के दक्षिणी-पश्चिमी जिलों में एक लम्बी पट्टी के रूप में पाई जाती है।

(३) नमकीन और डेल्टाई प्रदेश की मिट्टी प्राय: समुद्रतटीय भागों में और नदियों के मुहानों पर बनाये गये डेल्टाओं में पाई जाती है। ये मिट्टियाँ २४ परगनों और मिदनापुर के जिले में समुद्री किनारे के समीप के भागों में पाई जाती हैं।
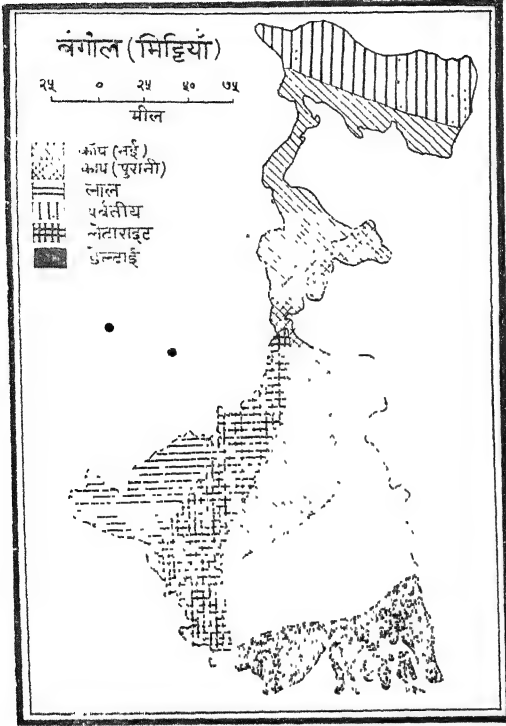
(४) जङ्गली और पहाड़ी मिट्टियाँ जलपाईगुरी और दार्जिलिङ्ग के पहाड़ी जिलों में बहुतायत के साथ पाई जाती हैं। ये मिट्टियाँ कांप मिट्टी के समान उपजाऊ नहीं होतीं।

चित्र २८३ बङ्गाल (मिट्टियाँ)

(४) उपज (क) वनस्पति—उत्तरी पहाड़ी भाग की प्राकृतिक वनस्पति, शीतोष्ण कटिवन्धीय सदाबहार वन है जिनमें बांस, महोगनी, साल आदि के वृक्ष मिलते हैं। समुद्र के निकटवर्ती दलदली भागों में सुन्दरी जाति के वृक्ष ज्वारीय वन मिलते है। पहाड़ों की तलहटी में तराई के जङ्गल फैले हैं जिनमें बांस, बेंत और सबाई घास पैदा होती है। अन्य भागों में जनसंख्या के अधिक भार के कारण वनों को साफ कर खेती की जाती है। अंत: केवल ३० लाख एकड़ या ५% भाग पर ही वन मिलते हैं। ज्वारीय वनों में मगरमच्छ तथा सूखे भागों में चीते, सूअर, और बाघ आदि जङ्गली पशु मिलते हैं।

(ख) कृषि—समस्त बङ्गाल, उत्तरी भाग को छोड़कर नदियों द्वारा लाई बारीक कांप मिट्टी से बना होने के कारण बहुत ही उपजाऊ है। बर्दवान जिले में मिदनापुर की नहरों से सिंचाई भी की जाती है। मयूराक्षी बांध, कांगसबत्ती जलाशय योजना और दामोदर घाटी योजनाएं भी सिंचाई के लिए व्यवहृत हो रही हैं। भूमि इतनी उपजाऊ है कि यहाँ कभी खाद देने की जरूरत नहीं पड़ती। उष्ण और तर जलवायु होने के कारण यह राज्य सदा हरा-भरा रहता है। वर्षा के बाद तो मैदान हरियाली का समुद्र बन जाता है।

चावल—यहाँ की सबसे मुख्य उपज है। समस्त बोई जाने वाली भूमि के ३/४ भाग में चावल पैदा किया जाता है। दूसरी प्रमुख उपज जूट है। गन्ना, कपास, जौ, चना, तम्बाकू, तिलहन और दालें भी काफी पैदा की जाती हैं। दार्जिलिंग और जलपाईगुरी की पहाड़ियों पर चाय के बाग भी बहुत पाये जाते हैं।

डेल्टा में सुन्दरी नामक वृक्ष बहुत होता है जिसकी लकड़ी से नावें और मकान आदि बनाये जाते हैं। दक्षिणी पूर्वी भाग में केला, कटहल, आम और सुपारी के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। इनके बीच बीच में छोटे छोटे गाँव बसे हैं। यहाँ शहतूत के वृक्षों पर रेशम के कीड़े भी पाले जाते है।

पश्चिमी बंगाल में मछली पकड़ने का कार्य भी बड़ा महत्वपूर्ण है। प्रतिदिन इनका उत्पादन लगभग २००० मन का होता है। यहाँ मुख्यतः ताजे पानी की मछलियाँ ही अधिक पकड़ी जाती हैं। सुन्दर वन के २४ परगना में रोहू, हिल्सा, श्रिप, कटला और प्रान विशेष रूप से पकड़ी जाती हैं।

(ग) **खनिज पदार्थ**—पश्चिम बंगाल का पश्चिमी भाग खानों में भी अधिक धनी है। यहाँ कोयला मुख्यतया रानीगंज दार्जिलिंग जिले की हिमालय की श्रेणियों की चट्टानें, बांकुडा और आसनसोल से मिलता है। समस्त भारत का १/४ कोयला इन्हीं खानों से प्राप्त होता है। इस राज्य में मयूराक्षी, दामोदर घाटी योजना और कागसबत्ती बहुमुखी योजनाओं का विकास किया गया है जिनसे जल विद्युत शक्ति प्राप्त होने लगी है। पुरुलिया जिले में उत्तम श्रेणी का चूने का पत्थर, बांकुडा जिले में वर्मीक्यूलाइट और बूल-फॉम तथा तांबा, चीनी मिट्टी और गेरू भी मिलती है। यहाँ पर बाराकर और बर्दवान में लोहा भी मिलता है। राजमहल पहाड़ियों में चीनी मिट्टी के भंडार पाये जाते हैं। अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ वीरभूम और बर्दवान जिले में और फैल्स्कर पुरुलिया जिले में मिलता है।

(५) **उद्योग धन्धे**—बंगाल का मुख्य व्यवसाय खेती करना है किन्तु यहाँ कल कारखाने भी बहुत हैं। यह भारत का बड़ा व्यवसायिक राज्य है। यहाँ छोटे से क्षेत्र में ही १०१ जूट की मिलें हैं। कलकत्ता **जूट के कारखानों** का मुख्य केन्द्र है क्योंकि यहाँ जूट अधिक पैदा होता है। हुगली में जूट को साफ करने के लिए स्वच्छ और मीठा पानी भी खूब मिलता है। रानीगंज से कोयला प्राप्त किया जाता है। जनसंख्या घनी होने के कारण मजदूर भी सस्ते मिल जाते हैं किन्तु अधिकांश मजदूर बिहार और उड़ीसा से आते हैं। समुद्री बन्दरगाह होने से जूट का तैयार माल आसानी से विदेशों को भेजा जा सकता है। अधिक जनसंख्या के कारण देश में भी जूट के माल की माँग अधिक होती है। जूट उद्योग के प्रमुख केन्द्र, अगरपारा, बजबज, श्यामपुर, श्रीरामपुर, सिलक्रिया, बेलघरिया, उल्लूबरिया, बांसबरीया, रिश्ररा, नैहाटी, टीटागढ़, कांकिनारा, बिरलापुर आदि हैं।

जूट के कारखानों के अतिरिक्त यहाँ **सूती कपड़े के कारखाने** सोनपुर, कलकत्ता, सल्किया, घूसेरी, फुलेश्वर, श्यामनगर, हावड़ा और श्रीरामपुर में हैं। **लोहे और स्टील के कारखाने** कुलटी, हीरापुर, दुर्गापुर और बेलूर में हैं। **कागज की मिलें** टीटागढ़, कांकिनारा, नैहाटी और रानीगंज में हैं। बाटानगर में **जूते** और चितरंजन में इंजिन बनाये जाते हैं। डमडम में **ग्रामोफोन के रिकार्ड** बनाने का बड़ा कारखाना है। इसके अतिरिक्त रबड़ का सामान, दियासलाई, मोजे, बनियान, चीनी मिट्टी के बर्तन, सिगरेट, बिजली का सामान तथा दवाइयाँ आदि के भी कारखाने हैं। रसायन कलकत्ता और चौबीस परगना क्षेत्र में तथा बेलूर और जे० के० नगर में एल्यूमिनियम का कारखाना और जालदा और बलरामपुर में लाख के कारखाने हैं। उत्तरपाड़ा में मोटरें बनाई जाती हैं।

मिट्टी के खिलौने और बर्तन बनाने की ३ तथा बैटरियों के सूखे सेल बनाने को १, और कांच के सामान के कारखाने हैं ।

पश्चिमी बंगाल में कुटीर उद्योग भी बहुत विकसित हैं । सूती और रेशमी कपड़े बुनना, चमड़े की वस्तुयें, तांबे और पीतल के बर्तन, चाकू, छुरी बनाने, तेल, साबुन, मिट्टी के खिलौने, मूर्तियाँ, लकड़ी पर खुदाई का काम करने आदि का व्यवसाय बहुत होता है । तम्बाकू, दियासलाई, रंगलेप, कांच बिजली का सामान और मोटर गाड़ियों का निर्माण भी यहाँ महत्वपूर्ण है । हाथ करघा उद्योग के मुख्य केन्द्र शांतिपुर, शांति निकेतन, राजवलहाट और धनियाखाली है । रेशमी कपड़ा, साड़ियाँ और चादरें मालदा, मुर्शिदाबाद और वीरभूम जिलों में बनाई जाती हैं ।

(६) **यातायात**—पश्चिमी बंगाल में २,४६२ मील पक्की सड़कें और २,६५२ मील कच्ची सड़कें है । बंगाल में ६ राष्ट्रीय मार्ग है जो इस प्रकार हैं :— (१) कलकत्ता से दिल्ली जाने वाला १५२ मील लम्बा मार्ग; (२) कलकत्ता से मद्रास जाने वाला मार्ग ६० मील; (३) बिहार आसाम मार्ग, १८१ मील; (४) सिलगुरी से गगटोक मार्ग ३५ मील; (५) कलकत्ता से सिलगुरी मार्ग २०४ मील; और (६) कलकत्ता से बोनगांव मार्ग, ४३ मील ।

(७) **जनसंख्या और नगर**—यह राज्य भारत का सबसे घना बसा राज्य है । इसकी जनसंख्या का घनत्व १,०३१ व्यक्ति प्रति वर्गमील है । औद्योगिक केन्द्रों में तो यह घनत्व और भी अधिक है । कलकत्ता में प्रति वर्गमील पीछे ७५,०३८ से भी अधिक व्यक्ति निवास करते हैं किन्तु दार्जिलिग के जिले में तथा सुन्दर वन में अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण जनसख्या बहुत ही कम है (५३९ व्यक्ति प्रतिवर्ग) १ लाख से अधिक जनसंख्या वाले स्थान १२ है—कलकत्ता, हावड़ा, दक्षिणी बस्ती, भटपारा, खड़गपुर, गार्डनरीच, कमारहाटी, द० डमडम, बर्दवान, बारानगर, आसनसोल और बैली । यहाँ ७८ प्रतिशत हिन्दू और २० प्रतिशत मुस्लिम रहते हैं । यहाँ ८४ प्रतिशत निवासी बंगाली भाषा बोलते हैं । बंगाल में संथाल, ओरन, मूंडा, कोरा, होस, भूटिया, भूमिज, चकमास, असुर, ढैगा और पहारिया आदि लगभग १५ लाख आदिवासी भी रहते हैं । ये अधिकतर पुरलिया मिदनापुर और जलपाइगुरी जिलों में पाये जाते हैं ।

अध्याय ६१

नागालैंड

(NAGALAND)

(१) **सीमा एवं विस्तार आदि**—नागा पर्वतीय प्रदेश भूगोल और सीमाओं की दृष्टि से उत्तरी-पूर्वी सीमांत प्रदेश का ही एक भाग है किन्तु १ दिसम्बर १९५७ से भारत सरकार ने नागा लोगों की एक प्रथक राज्य की मांग के अनुसार इसको एक अलग राज्य फरवरी १९६४ से बना दिया है जिसका शासन भारत सरकार के विदेशी विभाग के अन्तर्गत शिलांग स्थित गवर्नर द्वारा किया जा रहा है। इस राज्य को तीन जिलों में बांटा गया है जिसका प्रशासनिक केन्द्र कोहिमा में है। ये जिले
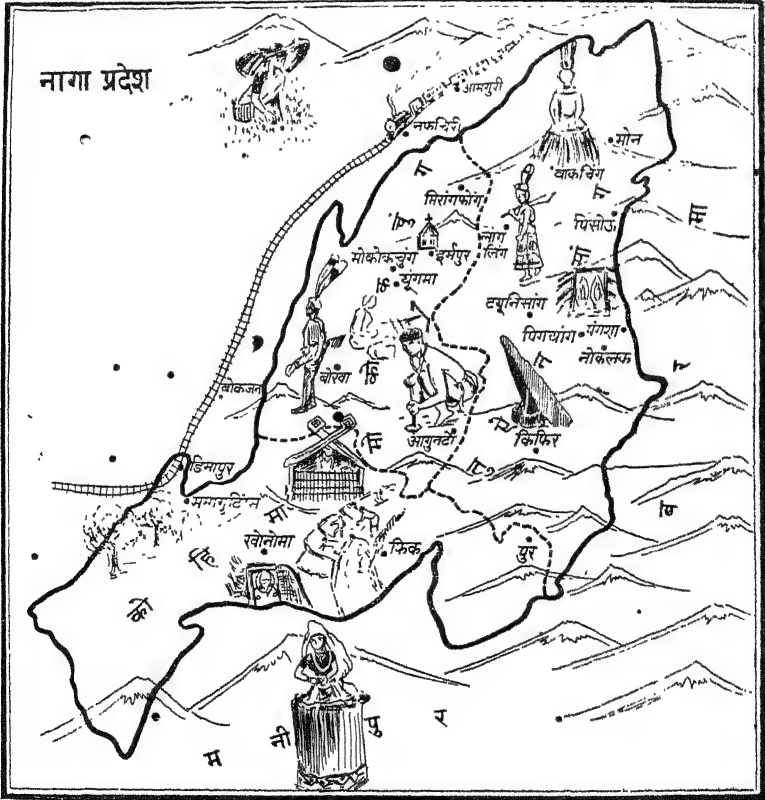
चित्र २८४. नागा प्रदेश

क्रमशः कोहिमा, मुकोचुंग और तुएनसांग है। यदि मनीपुर राज्य को दक्षिण की ओर का आधार माना जाय तो इस राज्य का विस्तार उत्तर-पूर्वी दिशा में फैला हुआ प्रतीत होगा जिसके पूर्व में ब्रह्मा, उत्तर में उत्तर-पूर्वी सीमांत प्रदेश का तिरप डिवीजन तथा पश्चिम की ओर आसाम के मैदानी भागों की चौड़ी घाटी है। इस सारे राज्य का क्षेत्रफल लगभग १५,८२८ वर्ग कि० मी० और जनसंख्या ३,५७,००० से और कुछ ही अधिक है।

(२) **प्राकृतिक दशा**—सम्पूर्ण राज्य अनेक पहाड़ियों से घिरा है, जिनके बीच-बीच में अनेक ऊँची और दुर्गम चोटियाँ हैं किन्तु कोहिमा के चारों ओर इनका ढाल धीमा हो गया है। अधिकाश गाँव धरातल से ३-४ हजार फीट की ऊँचाई पर ढालों पर बसे हैं किन्तु कोहिमा जिले में जापवो के निकट ये पहाड़ियाँ ९,८९० फीट ऊँची हो गई हैं।

(३) **जलवायु-वनस्पति आदि**—इस क्षेत्र में अधिकांश भागों में वर्षा की अधिकता से सघन वन मिलते हैं। वर्षा का औसत १७८ से २५४ सें. मी. तक का है। यहाँ अनेक नदियाँ और नाले तो पाये जाते हैं किन्तु तालाबों या झीलों का प्राय अभाव ही है। वन प्रदेश पहाड़ी भागों में अधिक हैं निचले भागों में झूमिंग के लिए उनका विनाश हो चुका है। इन वनों में जंगली हाथी, भैंसे, चीते, तेंदुए, भालू, भैंस की आकृति के मिथुन तथा अनेक प्रकार के हिरन मिलते हैं। होर्नबिल नामक पक्षी अधिक मिलता है जिसका उपयोग जादू-टोने करने तथा सजावट के लिए किया जाता है।

(४) **कृषि**—नागालैंड में अनेक भागों में वृक्षों को काट-जलाकर खेती के लिए भूमि प्राप्त कर सीढ़ीदार खेतों में अनेक प्रकार के अनाज आदि बोये जाते हैं। केले अधिक पैदा किये जाते हैं। चाय, चावल तथा अनेक प्रकार की सब्जियाँ भी पैदा की जाती हैं। झूमिंग प्रणाली से भूमि की उर्वरा शक्ति को हानि पहुँचाने से रोकने के लिए अब स्थायी रूप से कृषि भी की जाने लगी है। पिछले दो वर्षों में लगभग ५,००० एकड़ नई भूमि को कृषि के योग्य बना कर ४,००० एकड़ पर चावल पैदा किया जाता है। इसके सिंचाई के लिए लगभग ३०० नालियाँ आदि बनाई गई हैं। नये औजारों, हलों, उत्तम बीज तथा खादों का भी प्रयोग बढ़ाया जा रहा है।

(५) **जनसंख्या**—इस क्षेत्र के लोगों को **नागा** कहते हैं जिसके अर्थ तिब्बत-बर्मी भाषा में लोग (Nak or people) होते हैं। नागा कोई एक जाति या समूह नहीं है वरन् यह अनेक जनजातियों का सम्मिलित रूप है। नागालैंड की जन-जातियाँ अनेक समूह बनाती हैं जैसे—

(१) **चैरवेसांग समूह**—जिसमें चाकरू, खेजा तथा संगतम समूह जो दो रेंगमा गाँवों में रहते हैं—विशेषतः कोहिमा के पूर्व और मनीपुर के उत्तरी भाग में।

(२) **जैलियांग समूह**—जिसमें जैमी, लियांगमाई आदि आते हैं।

डा० एलविन के अनुसार इन जातियों की अनुमानित संख्या ३,५७,००० है, जिनका वितरण विशेष जनजातियों के अनुसार इस प्रकार है :—

अंगामी	३०,०००	मिश्रित जन-जातियां	५,०००
आओ	५०,०००	फोम	१३,०००
चैरवेसांग	३१,०००	रेंगमा	५,०००
चांग	१७,०००	संगताम	२०,७००
खीनमुंगन्स	१७,०००	सेमा	४८,०००
कोनयाक	६३,०००	थिमयुंग	१७,५००
लोठा	२३,५००	जैलियांग	५,२५०
कुकी	२,४००		

नागा लोगों के गाँव अधिकतर ऊँचे ढालों पर बने हैं जिनके चारों ओर पत्थर की दीवारें या काँटों की बाड़ें होती हैं दरवाजों पर अनेक प्रकार की खुदाई की जाती है। प्रत्येक गांव अलग-अलग खेलों या विभागों में बँटा होता है। घरों के बाहर मनुष्यों की खोपड़ियाँ भी लटकाई जाती हैं। इनका मुख्य भोजन चावल, चावल की बनी शराब, मिथुन पशु का मांस होता है।

(६) **उद्योग**—ये लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुये स्वयं ही तैयार करते हैं। मिट्टी के अनेक प्रकार के बर्तन, बाँस की चटाइयाँ, नालियाँ, हुक्के, पंखे आदि, लकड़ी पर खुदाई करना, शिकार के लिए अनेक प्रकार के हथियार आदि बनाना और कपड़ा बुनना यहाँ के मुख्य उद्योग है।

इनके कपड़ों पर भी कलात्मक कारीगरी की जाती है। कौड़िया, पक्षियों के पंख, बकरे के बाल, हड्डियाँ अथवा हाथीदाँत को अनेक आकृतियों में बना कर कपड़ों पर लगाया जाता है अथवा आभूषणों के रूप में पहिना जाता है। पहले ये लोग मानव की खोपड़ियों का शिकार भी करते थे किन्तु अब यह मनोरंजन प्रायः समाप्त कर दिया गया है। तुएंगसांग जिले में लुहारी, बढ़ईगीरी, तथा लकड़ी पर खुदाई करने, सिलाई और कागज आदि बनाने के लिए प्रशिक्षण किया जाता है।

नागा राज्य में सड़कें ही आने जाने का प्रमुख साधन है। यहा अब तक तीनों जिलों में ३५० मील लम्बी नई सड़कें बनाई जा चुकी हैं। १००० मील लम्बी सड़कों का पुनुरुद्धार किया गया है तथा ४५ पुलों का निर्माण किया गया है। एक राष्ट्रीय मार्ग दीनापुर से कोहिमा होता हुआ इम्फाल तक लगभग १० लाख रुपये की लागत से बनाया गया है।

अध्याय ६२

केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्य

(CENTRALLY ALMINISTERED STATES)

(१) अंडमान और नीकोबार द्वीप (Andman & Nicobar Islands)

स्थिति एवं विस्तार—बंगाल की खाड़ी के निचले आधे भाग में जो द्वीप समूह फैले हैं उन्हें अंडमान और नीकोबार कहते हैं। अंडमान द्वीप १०°३०′ उत्तरी अक्षांस से लगाकर १३°४५′ उत्तरी अक्षांस और ९२°१५′ पूर्वी देशान्तर से ९३°१५′ पूर्वी देशान्तर के बीच फैले हैं। नीकोबार द्वीप ६°४०′ से ९°२०′ उ० अक्षांस और ९३° से ९४′ पू० देशांतर के बीच फैले है पहले ये दोनों द्वीप ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत थे किन्तु भारत के स्वतन्त्र होने के समय ये भी स्वतन्त्र कर दिये गये। अब इनका प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त चीफ कमिश्नर द्वारा होता है। इन दोनों द्वीपों का क्षेत्रफल ८२३० वर्ग कि० मी० और जनसंख्या केवल ६३,५४८है। ये दोनों द्वीप समूह कलकत्ता से १२४५ कि० मी०, मद्रास से ११९० कि० मीटर, और रंगून से केवल ५८० कि० मीटर दूर हैं। ये द्वीप समूह उस निमग्न पर्वत श्रेणी की बनी हुई चोटियाँ हैं जो किसी समय अराकान योमा को सुमात्रा द्वीप की मध्यवर्ती पर्वत श्रेणी से मिलाती थी। इन द्वीप समूहों में पहाड़ी श्रेणी उत्तर से दक्षिण तक चली गई है किन्तु यह अधिक ऊँची नहीं है। सबसे ऊँची चोटी केवल ७३१ मीटर है।
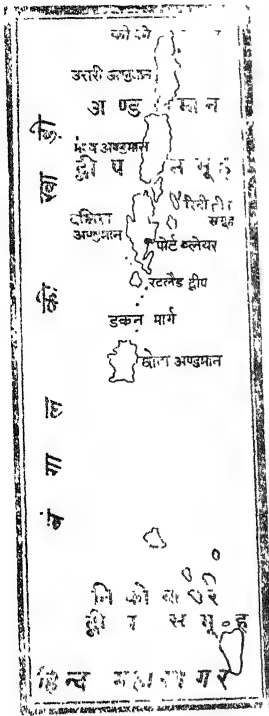
चित्र २८५. अंडमान और नीकोबार द्वीप

अंडमान द्वीप समूह में छोटे बड़े सब मिलाकर लगभग २०५ द्वीप हैं जिनमें उत्तरी अंडमान, मध्य अंडमान, दक्षिणी अंडमान, बारातंग तथा रूथलैंड द्वीप बड़े हैं। ये पांचों द्वीप मिलकर **विशाल अंडमान द्वीप** कहलाते हैं। शेष २०० द्वीप बिलकुल ही छोटे हैं। इस द्वीप समूह की लम्बाई ४६६ कि० मीटर और चौड़ाई ४६ कि० मीटर है। ये एक दूसरे से जल संयोजकों द्वारा अलग है। इनका क्षेत्रफल २५०८ वर्ग मील है। इनका किनारा काफी कटा-फटा है अत: पोर्ट ब्लेअर, पोर्ट कार्नवालिस, माया बंदर और पोर्ट एलफिस्टन मुख्य बन्दरगाह हैं। इसके आस पास मूंगे के कीड़ों की अधिकता है। समुद्र तट के निकट सुन्दरी वृक्ष पाये जाते हैं।

नीकोबार द्वीप—अंडमान द्वीप समूह से १२६ कि० मी० दक्षिण की तरफ है। ये द्वीप २७२ कि० मीटर की लम्बाई और ६० कि० मीटर की चौड़ाई में फैले हैं। इनमें ७ बड़े और १२ छोटे द्वीप सम्मिलित हैं। यहाँ के कुछ भाग पहाड़ी, कुछ चपटे और समतल मैदान है। इन द्वीपों में नारियल बहुत होता है।

(२) **जलवायु व वर्षा**—भूमध्य रेखा के पास स्थित होने के कारण इन द्वीपों की जलवायु उष्ण और तर है। गरमी तो अधिक पड़ती ही है किन्तु वर्षा भी ३८० सें० मीटर के लगभग हो जाती है। शुष्क ऋतु का दोनों द्वीपों में अभाव पाया जाता है।

(३) **उपज (क) वनस्पति**—पहाड़ी भाग सघन वनों से आच्छादित हैं। इन वनों से पैडूक, गुरजन, पपैये, सागौन आदि लकड़ियाँ प्राप्त की जाती हैं। दिया-सलाई बनाने के लिए मुलायम लकड़ियाँ भी यहाँ बहुत मिलती है। यहाँ रबड़ के बाग भी लगाये गये हैं।

(४) **(ख) कृषि**—यहाँ उष्ण कटिबन्ध की पैदावार आमें, केला, चावल जूट आदि पैदा किया जाता है। समुद्र तट के निकट कई प्रकार की खाने योग्य मछलियाँ भी बहुत मिलती है। यहाँ बहुत ही कम निवासी रहते हैं। कुछ समय पूर्व ही यहाँ पूर्वी बंगाल से आये हुए शरणार्थी बसाये गये हैं। इसके पूर्व यहाँ ब्रिटिश सरकार आजन्म कारावास की सजा पाये कैदियों को भेजती थी।

यद्यपि ये द्वीप प्राकृतिक साधनों में धनी है—यहा के घने जंगलों से टिम्बर सिमूल, धूप, नारियल, ताड़, पपीता आदि लकड़ियाँ प्राप्त की जाती हैं और निम्न भूमि के वनों को साफ कर चावल, गन्ना, तम्बाकू, कहवा और गरम मसाले आदि पैदा किये जा सकते हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि यहाँ रहने वालों की वृद्धि की जाय तथा जंगलों आदि को साफ कर आवागमन के मार्गों की उन्नति की जाय।

(५) **उद्योग धन्धे**—यहाँ के लोगों का मुख्य उद्योग लकड़ी काटना, खेती करना, मछली पकड़ना, तेल निकालना और रस्सी बुनना है। पोर्ट ब्लेअर में लकड़ी चीरने, दियासलाई बनाने तथा लकड़ी के तख्ते बनाने का एक-एक कारखाना है। दक्षिणी अंडमान में गोले का तेल निकालने की मिल तथा कार-निकोबार में नारियल की जटाओं के रस्से, टोकरियाँ बनाने के कारखाने हैं।

इन द्वीपों का कटा फटा तट भी बन्दरगाहों के लिए बहुत अच्छा है। बंगाल की खाड़ी के तूफानों से बचने के लिये जहाज अक्सर यहाँ ठहरा करते हैं।

(६) **जनसंख्या**—अंडमान नीकोबार द्वीपों में भारत के प्राचीनतम आदिवासी रहते हैं। मध्य अंडमान और उत्तरी अंडमान में **अंडमानी** लोग; छोटे अंडमान में **ओंगा** लोग; दक्षिणी अंडमान में **जरावास** लोग रहते हैं। नीकोबार द्वीप में **नीकोबारी** और **'शॉमपेन'** लोग रहते हैं। अंडमानी और नीकोबारी अभी भी बिल्कुल आदिम अवस्था में रहते हैं तथा जहरीले तीरों से अपना शिकार प्राप्त करते है।

अंडमान का सर्वोत्तम बन्दरगाह **पोर्ट ब्लेयर** है जो दक्षिणी द्वीप में पूर्व की ओर स्थित है। यही यहाँ की राजधानी भी है। यह कलकत्ता से १०८८ कि० मी०, मद्रास से ११८४ कि० मी० और रंगून से ५७६ कि० मी० है। यहाँ कैदियों के रहने के लिए एक बड़ा जेलखाना बना हुआ है।

६) कालका जी	(१४) भारत नगर	(२२) निकलसन रोड-बस्ती
७) जंगपुरा	(१५) पुराना किला	(२३) अलीगंज
८) किंग्सवे	(१६) रेगरपुरा	(२४) अंधा मुगल

दिल्ली इसकी राजधानी है। यह १ अक्टूबर सन् १८५१ ई० से ब्रिटिश ारत की राजधानी बनाई गई थी। इसके पूर्व भी शताब्दियों तक यह हिन्दू ाजाओं की राजधानी रही है। इस नगर ने तीन तीन संस्कृतियाँ देखी है। हन्दू, मुस्लिम और ब्रिटिश। सन् १९४७ ई० में सम्पूर्ण भारत के विभाजन के परान्त भी प्रजातन्त्र भारत की प्रथम राजधानी होने का स्थान भी इसी नगर को ाप्त है। इसके आस पास आज भी पुराने खण्डहर मिलते हैं। यहीं यमुना नदी के िनारे राजघाट पर भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की और शांतिघाट में ्री नेहरू की समाधि है।

आधुनिक दिल्ली दो भागों से मिलकर बनी है पुरानी और नई दिल्ली। ई दिल्ली पुरानी दिल्ली के दक्षिण में बसी है। यहाँ गवर्नमेन्ट भवन, कौंसिल ावन आदि अनेक सुन्दरतम इमारतें देखने योग्य हैं। पुरानी दिल्ली में जामा मस्जिद, ाल किला, हूमायूं का मकबरा और कुतुबमीनार देखने योग्य स्थान है।

दिल्ली व्यापारिक केन्द्र और व्यापारी मार्गों का केन्द्र है। यहाँ से रेलमार्ग ाहौर, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद और कलकत्ता जाते हैं। यहाँ हवाई मार्गों के ो अड्डे सफदरजंग और पालम हैं जहाँ से देश के विभिन्न भागों और देशों को ायुयान जाते हैं। ग्रांड ट्रंक रोड भी यहीं होकर निकली है।

दिल्ली नगर में आटा पीसने की चक्कियाँ, चीनी और सूती कपड़े के ारखाने तथा रासायनिक वस्तुओं, रंग और रोगन कांच, वनस्पति घी और चीनी ं बरतन के कारखाने भी हैं। यहाँ जरी, सोने, चांदी, हाथीदांत और गोटे और च्चीकारी का काम भी खूब होता है। दिल्ली के जरी के जूते और चट्टियाँ प्रसिद्ध । नकली पत्थरों के जड़ाऊ जेवर बनाने, तांबे पीतल के बरतन तैयार करने, ोला हैट बनाने और चमड़े की वस्तुएँ बनाने के उद्योग बहुत प्रचलित हैं।

३) हिमाचल प्रदेश (Himachal Pradesh)

इस प्रदेश का जन्म १५ अप्रेल सन् १९४८ ई० में हुआ। पंजाब की बड़ी बड़ी रियासतें—चम्बा, मण्डी, सुकेत, सिरमूर, और कलसान तथा शिमला ी १८ रियासतें—बाघल, कुंथल, बाघाट, बुशहर, भाजी, बीजा, दरकोटी, धम्मी, ब्बल, कुमारसांई, कुनीहर, कुठार, महोलोग, सांगरी, रामपुर, मांगल, थारोच और ालागढ़ आदि—मिला कर ही इस प्रदेश की उत्पत्ति की गई। यह सभी रियासतें ाश्मीर और उत्तर प्रदेश के बीच में थीं। जुलाई १९५४ में बिलासपुर भी इसमें मला दिया गया। इस प्रदेश का क्षेत्रफल २८,१७६ वर्गमील तथा जनसंख्या ,३५१,१४४ है। शासन व्यवस्था की दृष्टि से इसका सीधा सम्बन्ध केन्द्रीय सरकार है और चीफ कमिश्नर की देखरेख में कार्य होता है।

हिमाचल प्रदेश में ५ जिले हैं। चम्बा, मण्डी, सिरमूर, मनासू और बलासपुर।
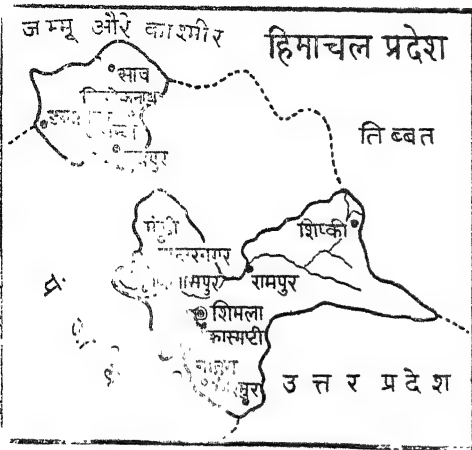
(१) सीमा विस्तार आदि—यह राज्य ३०° ३०' उत्तरी अक्षांस से लेकर [illegible]°·१०' उत्तरी अक्षांस और ७[illegible]° ५५' तथा ७६°·५०' पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है। यह प्रदेश हिमालय के आंचल में स्थित है। इसमें अधिकतर हिमालय पर्वत की निचली तराई के वन तथा पर्वतीय प्रदेश सम्मिलित हैं जो शिवालिक श्रेणियों से पूर्वी पंजाब तक फैले हैं। इसके उत्तर में जम्मू और काश्मीर राज्य के दूगर और लद्दाख प्रदेश, पश्चिम में पंजाब के कांगड़ा और होशियारपुर जिले, पूर्व में टेहरी-गढ़वाल राज्य तथा दक्षिण में उत्तर प्रदेश का देहरादून और पंजाब का अंबाला जिला है।

चित्र २८७. हिमाचल प्रदेश

(२) प्राकृतिक विभाग—यह राज्य पूर्णतः पहाडी प्रदेश हैं जिसमें होकर शिवालिक, लघु हिमालय और महान पर्वत श्रेणियाँ फैली हुई हैं। शिवालिक पर्वतों के वनों के काटे जाने के कारण गहरी कटाने भूमि में बन गई है। लघु हिमालय चम्बा तहसील में २,१३४ मीटर ऊँची श्रेणी है। यहाँ मुख्य नदियाँ रावी, व्यास और सतलज हैं। इनमें से सतलज नदी की घाटी गहरी है जबकि अन्य नदियों की घाटियाँ उतनी गहरी नहीं हैं।

(३) जलवायु और वर्षा—शिवालिक श्रेणी के क्षेत्र में जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। इसी भाग में राज्य के प्रमुख नगर बसे हैं। महान हिमालय क्षेत्र की जलवायु अधिक कठोर और शीतल है। अधिकांशतः वर्षा ग्रीष्म ऋतु में दक्षिणी मानसूनों से होती है। वर्षा का औसत दक्षिणी भाग में १५२ सें० मीटर तक रहता है। शीतऋतु में भी कुछ वर्षा होती है किन्तु बर्फ के रूप में। शीतकाल बड़ा ठंढा और ठिठराने वाला होता है। अधिकांश शीतऋतु में बर्फ गिरती है।

(४) उपज (क) वनस्पति—पहाड़ी क्षेत्र और वर्षा की अधिकता से यहाँ पहाड़ों के ढालों पर सघन वन पाये जाते हैं जिनमें बाँस, चीड़, देवदार स्प्रूस आदि के वृक्ष मिलते हैं। पठारी भाग में घास के क्षेत्र पाये जाते हैं। वनों से प्रतिवर्ष १३५ लाख रुपये की इमारती लकड़ियाँ प्राप्त की जाती हैं। इनके अतिरिक्त कागज बनाने की लुग्दी, लकड़ी का कोयला, शहद, तारपीन का तेल और बिरोजा आदि भी प्राप्त किये जाते हैं।

(ख) कृषि—यहाँ कृषि प्रमुख व्यवसाय है। अधिकांश कृषक हट्टे-कट्टे और कठोर परिश्रमी होते हैं। असमान धरातल के कारण खेत छोटे होते हैं जिनमें बड़े परिश्रम से चाय, गेहूँ, मकई, चना, जौ, कोदों, राई और आलू पैदा किया जाता है। आलू यहाँ सबसे अधिक पैदा होता है। प्रतिवर्ष १० से १५ लाख मन आलू का निर्यात किया जाता है।

में है। उत्तर में पूर्वी पाकिस्तान का सिलहट जिला तथा आसाम का कछार जिला, पश्चिम में पाकिस्तान के सिलहट, तिप्परा और नोआखाली जिले तथा पूर्व में लुशाई की पहाड़ियाँ और दक्षिण में चिटगाँव की पहाड़ियाँ हैं। इसका क्षेत्रफल ८,६२६ वर्ग-कि० मी० तथा जनसंख्या १,१४२,००५ है। इसका प्रबन्ध भी चीफ कमिश्नर द्वारा ही होता है। प्रशासन के लिये इस राज्य को दस भागों में बाँट रखा है सदर खोवाई, कैलाश शहर, धरमनगर, सोनामुरा, उदय, बैलोनिया, सबरूम, कमालपुर और अमरपुर।

(२) **प्राकृतिक विभाग व जलवायु**—यहाँ की भूमि अधिकांश पहाड़ी है (६०० मीटर से ऊँची) जलवायु शीतोष्ण है तथा वर्षा गर्मी में होती है। औसत तापक्रम २५° सें० ग्रेड और औसत वर्षा २५० सें० मीटर होती है।

चित्र २८९. त्रिपुरा

(३) **उपज**—भूमि वनों से आच्छादित है। समतल भूमि में चावल, जूट, गन्ना, दालें, चाय तथा तिलहन पैदा किये जाते हैं। पहाड़ी ढालों पर चाय भी पैदा होती है। यहाँ कटहल, अनन्नास और केला आदि फल अधिक पैदा किये जाते हैं।

(४) **जनसंख्या व भाषा**—यहाँ की जनसंख्या का घनत्व २८३ मनुष्य प्रति वर्ग मील पीछे है। यहाँ की मुख्य भाषा बंगाली और मणीपुरी है।

(५) **यातायात**—यहाँ ७२४ मील लम्बी सड़कें हैं जिनमें से ५७६ मील लम्बी सड़कें पक्की हैं। रेलमार्ग या जलमार्गों का सर्वथा अभाव है। राज्य में ५ हवाई अड्डे हैं। आसाम-अगरतला सड़क बना कर इस राज्य को भारत से जोड़ा जा रहा है।

(६) **नगर**—यहाँ की राजधानी **अगरतला** है। अगरतला में बुनाई, रंगाई, और चमड़ा कमाने का काम किया जाता है। यहाँ हाथ से कागज भी बनाया जाता है।

(७) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त प्रदेश (North East Frontier Agency)

(१) **सीमा-विस्तार आदि**—यह प्रदेश भारत के पूर्वोत्तर भाग में स्थित है। इसके पश्चिम में भूटान, उत्तर और पूर्व में तिब्बत तथा चीन के सिक्यांग प्रदेश और दक्षिण-पूर्व में ब्रह्मा के देश हैं। इसका क्षेत्रफल ८१,४२६ वर्ग कि०मी० और जनसंख्या ३३६,५५८ है। इस प्रदेश की प्रशासनिक व्यवस्था सबसे पहले १८८२ में आरम्भ की गई जबकि सादिया में एक ब्रिटिश अफसर की नियुक्ति की गई। इसके पूर्व यह क्षेत्र आसाम के ही अन्तर्गत था। किन्तु धीरे-धीरे प्रशासन इकाइयाँ इस सारे प्रदेश में स्थापित कर दी गईं। संपूर्ण आदिवासी क्षेत्र को १९१९ में बालीपाडा सीमान्त प्रदेश में बाँटा गया। १९४२ में सादिया क्षेत्र में से ही तिरप सीमान्त क्षेत्र की रचना की गई। १९४६ में बालीपारा सीमान्त क्षेत्र को सीला उपएजेंसी और सुबनसीरी क्षेत्रों में विभाजित किया गया। १९४८ में सादिया सीमान्त क्षेत्र के बचे हुए क्षेत्रों

से अभोर पहाड़ियाँ और मिशमी पहाड़ी क्षेत्रों का निर्माण किया गया और इस प्रकार पहली बार नागा आदिवासी क्षेत्र पर प्रशासन किया गया किन्तु १९५१ में तुएनसांग एक नया डिवीजन भी बनाया गया। १९५४ में सम्पूर्ण सीमान्त डिवीजनों
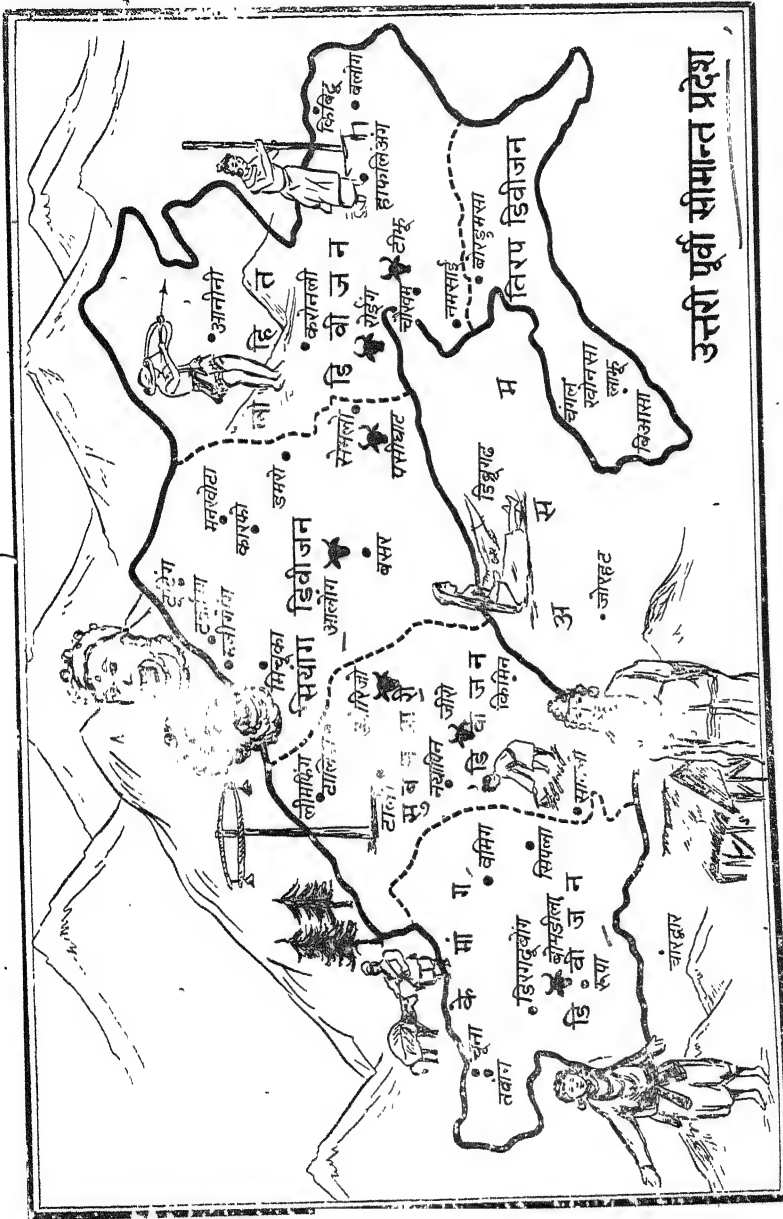
चित्र २९०. उत्तरी पूर्वी सीमान्त प्रदेश (नेफा)

(North East Frontier Agency) के नाम क्रमशः कामेंग (Kameng), सुबनसीरी (Subansiri), सियांग (Siang), लोहित (Lohit), तिरप (Tirap) और तुएनसांग (Tuensang) रखे गये किन्तु एक बार फिर १९५७ में तुएनसांग डिवीजन को नागा हिल्स डिस्ट्रिक्ट से मिलाकर नागा हिल्स और तुएनसांग क्षेत्र (Naga Hills and Tuensang Area) बनाया गया।

इस प्रकार अब इस प्रदेश के अन्तर्गत ये डिवीजन हैं :

डिवीजन		केन्द्र	डिवीजन	केन्द्र
१ कामेग	...	बोमडीला	४. लोहित	तेजू
२. सुबनसीरी	...	दापोरीजो	५. तिरप	
३. सियांग	...	अलोंग		

इनका शासन प्रबन्ध केन्द्र से होता है। राष्ट्रपति की ओर से आसाम के राज्यपाल यहाँ के प्रमुख प्रशासनिक अध्यक्ष नियुक्त हैं।

(२) **प्राकृतिक विभाग**—सम्पूर्ण प्रदेश बड़ा पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ है। इसके पूर्वी भाग पर स्थित पहाडी श्रेणियाँ भीषण रूप से ढालू, दुर्गम और अभेद्य हैं। असंख्य नदियों और नालों ने इस प्रदेश को इस बुरी तरह काटा है कि यदि कोई व्यक्ति एक महीने इसका भ्रमण करें तो वह एवरेस्ट से भी ऊंची ऊंचाई तक चढ़ जायेगा। नदियों के निकटस्थ भागों को छोडकर अन्यत्र भागों में समतल भूमि का बड़ा अभाव है अतः अधिकांश गाँव ढालू ढालों पर स्थित हैं, प्रत्येक मकान दूसरे मकान से ऊंचाई पर बसा है जिनके बीच में इतनी भी जगह नहीं कि एक तम्बू गाड़ा जा सके। यह इतना अधिक कठोर प्रदेश है कि इसके बारे में लगभग ३००वर्ष पूर्व हीरात के दारवेश ने कहा था, "It is another world, another people, and other customs ...Its roads are frightful like the path leading to the nook of the death; fatal to life is its expanse like the unpeopled city of Destruction....the great forests that clothe its hills are like full of violence like the hearts of the ignorant"[1]

(३) **जलवायु**—यहाँ अप्रेल से अक्टूबर तक मानसूनी हवाओं से घोर वर्षा होती है। जब अन्यत्र मौसम समाप्त हो जाते है तब वे यहाँ आरम्भ होते हैं। कभी कभी तो बिना बादल उठे ही यकायक भारी वर्षा हो जाती है। इसकी मात्रा २५० सें.मी. से भी अधिक होती। अक्टूबर तक कभी भी वर्षा हो सकती है जिससे छोटी छोटी पगडंडियाँ बहुत ही चिकनी और फिसलवाँ हो जाती हैं जिससे उन पर चलना बड़ा दुष्कर हो जाता है। इसी कारण बहुत ही कम विदेशी और मैदान निवासी यहाँ पहुँच पाये हैं।

(४) **वनस्पति**—वर्षा की अधिकता से यहाँ पहाड़ी ढालों पर सघन वन पाये जाते हैं। इन वनों में अनेक प्रकार के जंगली जीव-जन्तु पाये जाते हैं जिनमें जंगली हाथी, मिथुन, भैंसें, बाघ और हिरन मुख्य हैं। मिथुन-पशु यहाँ के मनुष्यों द्वारा न केवल पूजा जाता है वरन मांगलिक अवसरों पर उसका बलिदान भी किया जाता है। विवाह आदि अवसरों पर उसकी भेंट भी दी जाती है।

1. V. Elwin, A philosopley For NEFA, 1960,p. 6.

उपज—वनों को काट कर निचले ढालों पर आदिवासियों द्वारा झूमिंग प्रणाली द्वारा खेती की जाती है। वृक्षों को जलाने के बाद बची हुई राख में वर्षाकाल में धान, मिर्च, मोटे अनाज, केला, कपास आदि बो दिये जाते हैं। अब लगभग २४ हजार एकड़ भूमि पर झूमिंग के स्थान पर स्थायी रूप से कृषि की जाने लगी है। इसके लिए बहुमुखी विकास खंड योजना के अन्तर्गत इन निवासियों को सस्ता कर्ज, अच्छे बीज, उत्तम नस्ल के सांड़ हल आदि दिये जाते है।

(५) **जनसंख्या एवं उद्योग**—इस प्रदेश में मुख्यतः अनेक जनजातियाँ रहती हैं जिनकी अनुमानित संख्या है। डिवीजनों में इनका विभाजन इस प्रकार है :—

डिवीजन	जनजातियाँ
कामेग	मोनपा, शरडुकपेन्स, बुगुन, आका, मिजीस, दफला, बांगनीस
सुबनसीरी	आपा तानी, तागिन, गलौंग, मीरी अभोर आदि
सयांग	मिनियोंग, पदम, पासी, पांगी, शिमोंग, बोरी, आशिंग, तंगमा; गलौंग,—रामो, बोकर, पैलीबो
लोहित	मिशमी—डिगारु या तारेम; मीजू या कमान और चूलीकांटा या इदू; सिंगपो, खामाटी;
'तीरप	रेंगपेंग, वांचो, नोहर, तंगसास,

ये सब आदिवासी अपने अपने क्षेत्रों में ८-८, १०-१० परिवारों के रूप में रहते हैं। ये लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अनेक कुटीर उद्योगों से करते हैं। बांस तथा बेंत से और मिथुन पशु की खाल चमड़े और सींगों से अनेक प्रकार की कलात्मक वस्तुयें बनाते हैं। अब कुटीर उद्योग केन्द्रों पर सरकार की ओर से इन्हें दरी बनाना, कताई, बुनाई, लुहारगीरी, लकड़ी की वस्तुयें तथा बर्तन आदि बनाने के कार्यों का प्रशिक्षण दिया जारहा है।

इस प्रदेश में पहाड़ी भागों और अभेद्य वनों से अच्छादित क्षेत्रों में यातायात के साधनों की कमी सबसे अधिक खटकती है। यहाँ कच्चे और पक्के मार्गों की लम्बाई ३७६८ मील है जिनमें से पक्की सड़कें केवल ५३३ मील लम्बी हैं। हवाई जहाज ठहरने की तीन पट्टियाँ भी यहाँ हैं। हल्के वायुयान आवश्यकता के समय डाक, भोज्य पदार्थ, वस्त्र आदि वस्तुयें यहाँ पहुँचाते हैं।

अध्याय ६३

भारत चीन सीमा विवाद

किसी देश की सीमा का निर्धारण उसके इतिहास, लोकाचार रिवाज, परम्परा, निसर्ग और प्रकृति द्वारा निर्धारित होती हैं। कृत्रिम सीमायें परिस्थितियों, सन्धियों, युद्धों आदि द्वारा बनती और बिगड़ती है किन्तु प्रकृति-दत्त सीमायें एक प्रकार से अधिक स्थायी होती है। समुद्र, पर्वत शृंखलायें, मरुभूमियाँ, दलदल, नदियाँ एवं भूमिति-रेखायें दो देशों के बीच में प्राकृतिक और सुनिश्चिय सीमायें बनाती हैं। इनसे शत्रु के आक्रमण के प्रति निश्चिन्तता एवं स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न होती है। प्राकृतिक सीमा में सबसे अधिक महत्व पर्वत-प्रणालियों और [illegible] विभाजकों का होता है। जिल विभाजक उन क्षेत्रों को कहा जाता है जो विभिन्न [illegible]ओं के बहाव क्षेत्रों के मध्य में [illegible] ये स्पष्टतः दो देशों की [illegible]ाह-प्रणा[illegible] को स्पष्ट करते हैं।[1] अन्तर्राष्ट्रीय [illegible] के अनुसार यदि किसी देश की सीमा सुनिश्चित और अपरिवर्तनशील प्राकृतिक स्वरूप के सहारे फैली होती है और परम्परा तथा लोकाचार रिवाज पर आधारित होती है तो उसको पारिभाषित अथवा और अधिक निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं होती। इस दृष्टि से विचार किया जाये तो स्पष्टतः भारत की उत्तरी सीमा रेखा—जो लगभग २४०० मील लबी है—अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में अफगानिस्तान, चीन और भारत के त्रि-संगम स्थल से आरम्भ होकर पूर्व की ओर ब्रह्मा-चीन तथा भारत के मिलन-स्थल तक फैली है। विश्व में भारत की इस सीमा रेखा की बड़ी सीमाओं में गिनती की जाती है। चीन-रूस की सीमा रेखा की भाँति, जो मंगोलिया के बीच में आने के कारण कट जाती है, भारत चीन के बीच की सीमा में ही मध्य में नेपाल स्थित है।

---

१. दक्षिण अमरीका में अर्जेनटाइना और चिली के बीच; फ्रांस और स्पेन के बीच पिरेनीज पर्वत त[illegible]; सूडान और कांगो के बीच पूर्वी अफ्रीका उच्च प्रदेश का जल-विभाजक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय सीमायें बनाता है।

• यूरोप के अनेक देशों में जर्मनी और फ्रांस के बीच राइन नदी; हंगरी और जैकोस्लोवाकिया के बीच मध्य डेन्यूब नदी; हंगरी और यूगोस्लाविया के बीच ड्रेन नदियाँ इस प्रकार की सीमायें बनाती हैं।

उत्तरी अमरीका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका में निश्चित अक्षांश ही सीमायें बनाते हैं। ४० उत्तरी अक्षांस कनाडा और संयुक्त राज्य के बीच की; १४०° पश्चिमी देशान्तर कनाडा और अलास्का के बीच की तथा २२° उत्तरी अक्षांश मिश्र और एंग्लो-मिश्री सूडान की सीमायें निर्धारित करती हैं।

संयुक्त राज्य और कनाडा के बीच सीमा रेखा ३१,०० मील लम्बी है; रूस और चीन के बीच में ३,००० मील; भारत और पाकिस्तान के बीच २,७०० मील; तथा चीन और मंगोलिया गणतन्त्र के बीच २,६०० मील लम्बी है।

भारत-चीन सीमा की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हिमालय पर्वत के ऊँचे शृंग इन देशों की नदियों के बीच में सुनिश्चित जल-विभाजक का काम करते हैं। ये शृंग १४०००′ से लगाकर २५,०००′ तक ऊँचे है, जिन पर अधिकांश समय के लिए हिमाच्छादित वातावरण रहता है। भारत की उत्तरी सीमा सिंधु, सतलज और ब्रह्मपुत्र के बहाव क्षेत्रों के आधार पर ही निश्चित है। उत्तर की ओर यह सीमा रेखा सिन्धु-प्रणाली तथा चीन की यारकन्द और यूरांगकैश नदी प्रणालियों के जल विभाजक के सहारे फैली है। सिन्धु और सतलज के बहाव क्षेत्र में संपूर्ण मानसखंड (कैलाश-मानसरोवर क्षेत्र) सम्मिलित है। दक्षिण की ओर यह सीमा रेखा तिब्बत में सतलज और भारत में गंगा नदी के जल विभाजक के सहारे फैली है। नैपाल के पूर्व की ओर ब्रह्मपुत्र नदी की उत्तरी सहायकों—तिस्ता, संकोश, रैडक मानस, कामेंग ख्रू, कमला, डिहांग और डिवांग नदियाँ जो भारत में है और तिब्बत में बहने वाली सांपू नदी की दक्षिणी सहायकों के बीच मे स्थित मुख्य हिमालय श्रेणी का उच्च शृंग जल-विभाजक का काम करता है। यह जल विभाजक में कहीं टूटा हुआ नहीं है। अस्तु, कहा जा सकता है कि **सिक्किम, भूटान और उत्तरी पूर्वी सीमा एजेंसी में मुख्य हिमालय श्रेणी और उत्तर में निम्न हिमालय श्रेणी** (Less Himalaya Range), जो मुख्य श्रेणी के पूर्व और उत्तर मे फैली है, **चीन और भारत के बीच में प्रमुख जल-विभाजक है जो एक सुनिश्चित सीमा बनाता है।** सीमा रेखा के सहारे जो पर्वत श्रेणियाँ फैली हैं उन्हें स्थानीय रूप से **मुस्ताघ, आघिल, क्विनलैन, जास्कर** और मुख्य हिमालय की श्रेणियाँ कहा जाता है।

जिस सीमा के बारे में चीन ने विवाद आरम्भ किया उसके बारे में और अधिक स्पष्ट रूप से जानना रुचिकर होगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है।
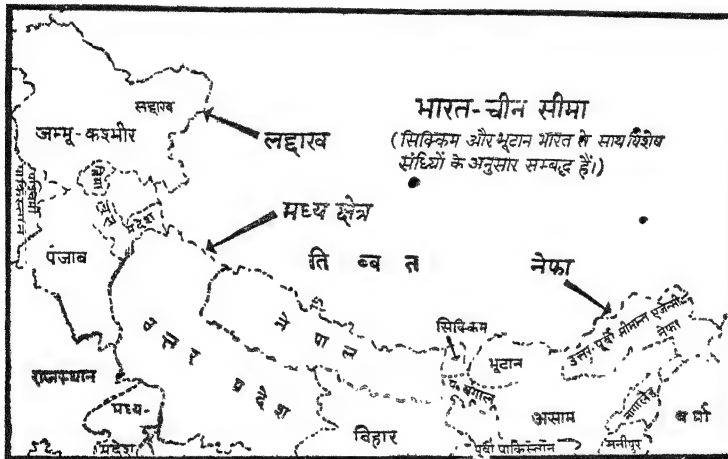
चित्र २६१. भारत-चीन सीमा

भारत-चीन की सीमा २४०० मील लंबी है। इसके अतिरिक्त नैपाल-तिब्बत की सीमा ५०० मील लंबी है। चीन के तिब्बती क्षेत्र और सिक्किम की सीमा रेखा

१४० मील से अधिक तथा भूटान की ३०० मील है। यह संपूर्ण सीमा रेखा तीन भागों में बंटी हैं :—
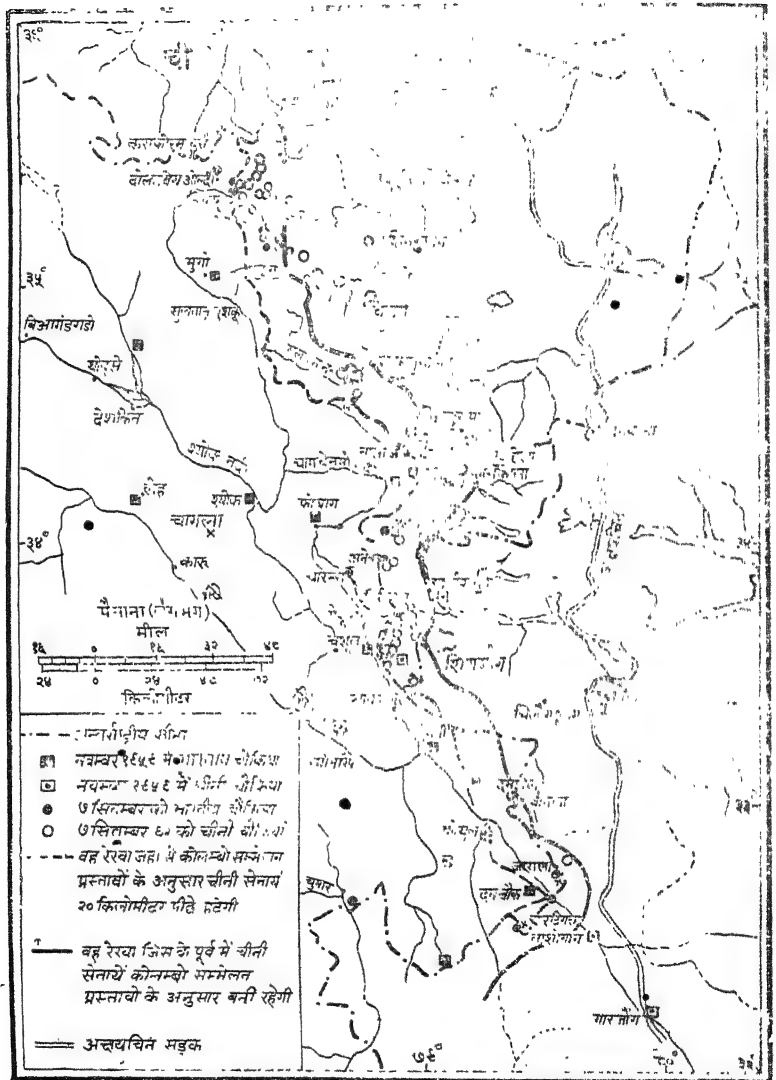
चित्र २६२. भारत चीन के बीच पश्चिमी सीमा

पश्चिमी सीमा (Western Boundary)—यह कराकोरम दर्रे से लगाकर सिंधु की श्याक नदी तथा चीन की यारकंद, नदी के जल विभाजक के सहारे करातघ दर्रे (३५°४३′ उत्तरी अक्षांस और ७८°२०′ पूर्वी देशान्तर) होती हुई कराकाश

नदी के पूर्वी छोर को काटती हुई आगे बढ़ती है और मुख्य क्विनलैन पर्वत तक पहुँचती है। इसके पश्चात यह सीमा रेखा यांजी दर्रे (३५°५५' उत्तरी अक्षांस और ७९°२५' देशान्तर) होती हुई यूरांगकाश नदी और अकसाईचिन की झीलों को विभक्त करने वाले जल विभाजक तक फैली है। यह क्विनलैन पर्वत के मुख्य शृंग को ८०°२१' देशान्तर के लगभग छोड़कर दक्षिण-पश्चिम दिशा में नीचे उतरती है इससे भारत की आमतोगोर और सारीघ जिलगंनाग झीलें तिब्बत की लैघटन और सोगर झीलों से अलग हो जाती है। यहाँ से यह लनाक दर्रे तक (३४°२४' अक्षांस और ७९°३४' पूर्वी देशान्तर) जाती है। यह सीमा रेखा भारत के जम्मू-काश्मीर को सिक्याग और तिब्बत से अलग करती है। इस सीमा का लगभग दो-तिहाई भाग काश्मीर के लद्दाख क्षेत्र और तिब्बत के बीच में है।

तिब्बत और लद्दाख के बीच की सीमा सुनिश्चित है। इस समय लद्दाख जम्मू-काश्मीर राज्य का एक प्रान्त है। इसकी सीमा को गिलगिट का पूर्वी भाग छूता है और इसके पूर्व में तिब्बत रूड़ीक तथा नागरी प्रान्तों की सीमा है। कैलाश पर्वत के उत्तर से निकलने वाली सिन्धु नदी लद्दाख में से निकलती है। इसके पश्चिम में काश्मीर और दक्षिण में कांगड़ा जिला है। लद्दाख के पश्चिमोत्तर में बाल्टिस्तान है, (जो एक जनवरी १९४२ की युद्ध-विराम संधि के फलस्वरूप तथा कथित आजाद काश्मीर में है, यद्यपि यह लद्दाख का ही भाग है) बालिस्तान सहित लद्दाख का क्षेत्रफल ४३,७६० वर्गमील और उसको छोड़कर ३०,००० वर्गमील है। इसमें से १४,००० से १६,००० वर्ग मील क्षेत्र इस समय चीन के अनधिकृत अधिकार में है।

चीनी यात्री ह्यनसांग जब लद्दाख आया था तो उस समय यह एक भारतीय राज्य था। आठवीं शताब्दी में काश्मीर के राजा ललितादित्य का अधिकार लद्दाख पर था। इसके बाद १०वीं शताब्दी तक यह तिब्बत के अधिकार में रहा। जब कि लामा सम्प्रदाय के प्रचार बढ़ने के साथ साथ लद्दाख में भी लामाओं का प्रभाव पड़ा। मार्गों की कठिनाइयों के कारण अकबर इस क्षेत्र पर चढ़ाई करने में असफल रहा किन्तु जहाँगीर के शासन-काल में बाल्टिस्तान के मुस्लिम सूबेदार ने इस पर हमला किया और उत्तरी लद्दाख पर अपना अधिकार जमा लिया। १७ वीं शताब्दी में एक बार फिर मुस्लिम शासक का हमला हुआ जिसके फलस्वरूप अनेक हिन्दू मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट किये गए। अतः लद्दाख के ग्यालपो ने काश्मीर स्थित मुगल सम्राट के प्रतिनिधि से सहायता मांगी और आक्रमणकारियों को लद्दाख से खदेड़ दिया गया।

लद्दाख के राजवंश का इतिहास, जो १७वीं शताब्दी में लिखा गया था, यह स्पष्ट करता है कि १०वीं शताब्दी में लद्दाख-तिब्बत की सीमा पर ईमिस दर्रा (Imis Pass) है और डेमचाक गांव लद्दाख का है। सन् १७१५ ई० में इप्पोलिटो डेसीडेरी (Ippolito Desideri), जो लेह से ल्हासा आया था, का कथन है कि तिब्बत और लद्दाख के बीच की सीमा डेमचाक और ताशीगांग के बीच में से निकलती है। सन् १८७३ में भारत यात्री नैनसिंह ने भी इस भाग की यात्रा की थी उसका भी कहना है कि भारत की सीमा नियागजू (Niagzu) धारा के और अधिक उत्तर में लनाक दर्रे (Lanak) के सहारे है। यही बात कैरे (१८८५) और बोअर (१८९१) सदृश यात्रियों ने भी कही है।

सन् १८३४ से १८४१ के मध्य काश्मीर के राजा गुलाबसिंह के प्रधान मंत्री एवं सेनापति जोरावरसिंह ने सम्पूर्ण लद्दाख और बाल्टिस्तान को जीत कर काश्मीर राज्य में मिला लिया और १८४१ में कैलाश मानसरोवर क्षेत्र पर भी आक्रमण कर उसे जीत लिया और नैपाल की सीमा पर स्थिति तकलाकोट को इस क्षेत्र की राजधानी बनाया किन्तु इसी युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई। १८४२ में तिब्बत के दलाई-लामा, चीन के सम्राट और काश्मीर नरेश के बीच एक संधि हुई जिसके अनुसार वर्तमान सीमायें निश्चित की गई। १८८९ में ब्रिटिश अधिकारी द्वारा काश्मीर की उत्तरी सीमा का जो वर्णन लिखकर चीन के सम्राट को भेजा गया उसमें पूर्व सीमा ८०° पूर्वी देशान्तर को ही बताया गया था। यह तथ्य इस सत्य को प्रकट करता है कि अकसाई चिन भारतीय सीमा में ही है। यह सीमा परम्परागत तथा ऐतिहासिक है और इसे सुनिश्चित सीमा स्वीकार किया गया था जैसा कि चीनी सम्राट के एक अधिकारी के कैंटन से भेजे गए १८४७ के संवाद से स्पष्ट होता है। उसने लिखा: "सीमा का सम्मान करते हुए मैं यह निवेदन करने की अनुमति चाहता हूँ कि इन प्रदेशों की सीमा विशिष्ट और पर्याप्त रूप से निर्धारित है अतः प्राचीन व्यवस्था पर टिके रहना ही अधिक उचित होगा।" इसके अतिरिक्त चीन के जो मानचित्र ६ठी शताब्दी से अब तक प्रकाशित किये गए हैं उनमें सिक्यांग की सीमा क्विनलेन तक भी नहीं दर्शायी गयी है जो काश्मीर की वर्तमान सीमा है। १८८० में लिपजिग से प्रकाशित मध्य एशिया के मानचित्र में तिब्बत लद्दाख के बीच वही सीमा निर्दिष्ट की गई है जो प्राचीन ऐतिहासिक और परम्परागत है।

इतना ही नहीं लद्दाख के इस भाग पर काश्मीर का प्रशासकीय नियंत्रण और अधिकार था। इसका प्रमाण चरागाहों में चराई के तथा नमक एकत्रित करने और चोगचैमों घाटी और पंगोंग भील क्षेत्र में शिकार करने के अनुमति पत्र काश्मीर सरकार द्वारा ही दिये जाने से मिलता है। लद्दाख का ऐतिहासिक विकास अविच्छिन्न रूप से भारत के अन्य पड़ौसी क्षेत्रों से था, जबकि मध्य तिब्बत के साथ राजनीतिक संबंध बहुत ही नग्रण्य तथा यदा-कदा हो रहा है। १८६० से १८६५ तक लगान वसूल करने का कार्य काश्मीर के कारिन्दों द्वारा ही किया जाता था। अक्साई चिन और चोंगचैंमों घाटी लद्दाख बजारत के तांक्से इलाके के भाग थे। काश्मीर के माल विभाग के कागजातों, और अन्य अभिलेखों तथा जनगणना की रिपोर्टों से सिद्ध होता है कि १८६२ से १९०८ तक तांक्से, डेमयाक ओर खुटनाक लद्दाख के ही भाग थे। काश्मीर सरकार चांग चैंमों घाटी और अक्साई चिन के व्यापार-मार्गों की भी रक्षा करती थी। सन् १८७० में काश्मीर सरकार तथा अंग्रेजों के बीच एक संधि हुई थी जिसके अंतर्गत काश्मीर सरकार ने पोंगोंग भील से अक्साई चिन की राह में शाही-दुल्ला तक व्यापार मार्ग बनाने के लिए आवश्यक सुविधायें देना स्वीकार किया था। सन् १८६९ में लद्दाख के गवर्नर ने चांगचैंमों घाटी, लिंगजिटांग और अक्साईचिन क्षेत्रों की विस्तृत यात्रा की। इसी प्रकार ब्रिटिश सरकार के सहकारी आयुक्त श्री केले (Cayley) ने १८७१ में तथा ने इलियास (Ney Elias) ने १८७४-१८८४ में इस क्षेत्र की यात्रा की थी। १८६२ में जोनसन ने सीमावर्ती क्षेत्रों का विस्तृत सर्वेक्षण किया और सीमा का निर्धारण वैज्ञानिक पद्धति से किया गया। इस क्षेत्र के अनेक भूगर्भ-संबंधी सर्वेक्षण भी किये गए जिनमें से प्रमुख सर्वेक्षण १८७५-१८८२ में डा० लिडेकर (Lydekkar) द्वारा किया गया। इस सर्वेक्षण में श्याक नदी के

ऊपरी भाग, स्पांगुर क्षेत्र, पश्चिमी चांगचैंमो और लिंगजिटांग सम्मिलित किये गए थे। १६०८ की माल-रिपोर्ट ने दमचोक, चुसूल, मिसार और अक्साई चिन को भारत की सीमा में ही माना है। १६२१ की जनगणना और १६०१ से १६१३ तक के अन्य रैवेन्यू-रेकार्ड तथा लद्दाख के १६०१-१६४० की चकबदी माल-रिपोर्ट इसी तथ्य को स्पष्ट करती हैं कि लद्दाख भारत का ही शासित क्षेत्र था। काश्मीर राज्य से प्रसारित १६४१ की एक विज्ञप्ति में कहा गया है कि दमचाक, स्पागुर, पोगांग तथा चांगचैंमों क्षेत्रों पर भारतीय शासन है।

स्पिती क्षेत्र में, जो अभी कांगड़े जिले की कूलू तहसील का भाग है, अत्यन्त प्राचीन काल में हिन्दू राजाओं का आधिपत्य था और बाद में यह लद्दाख का क्षेत्र बन गया। जैसा कि मूरक्राफ्ट (१८१६), गेरार्ड (१८२१) और थोमस हटन (१८३८) प्रभृति यात्रियों के वर्णन से स्पष्ट है कि भारत की वर्तमान सीमा जो स्पिती और पारे नदी के जल विभाजक के बीच में है परम्परागत सीमा है। इस जल विभाजक तक का क्षेत्र भारतीय सरकार के माल-रिपोर्टों में १८५१ से बताया गया है और इसका भूगोलिक सर्वेक्षण १८५०, १८७६ में किया गया है और दक्षिण की ओर शिपकी दर्रे तक का क्षेत्र भारतीय ग्राम नमगिया में सम्मिलित था और इसका सर्वेक्षण १८८२, १८६७, १६१७ तथा १६२० में किया गया। काफी लंबे समय तक भारत-तिब्बत सड़क पर इस दर्रे तक भारत सरकार का ही अधिकार रहा है। शिपकी दर्रा बशहर और तिब्बत के बीच में परम्परागत सीमा पर है जैसा कि इस प्राचीन कथन से स्पष्ट होता है कि "पिमाला (शिपकी दर्रे) के ऊपर का क्षेत्र तिब्बत के राजा का और उसके नीचे का भाग बशहर के राजा का है।" गढ़वाल के सीमा प्रान्तीय क्षेत्र गंगा-सतलज के जल विभाजको तक भारत के ही माल महकमों द्वारा शासित थे।

इन प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि अक्साई चिन और लद्दाख पर सदैव से ही भारत का प्रभुत्व रहा है और इन क्षेत्रों के लगभग १४,००० वर्गमील भूमि पर बलात् अधिकार करके चीन ने अंतर्राष्ट्रीय सद्व्यवहार के नियमों की स्वेच्छापूर्वक अवहेलना की है। १६५७ के पूर्व तक चीनी आंक्रांता यहाँ नहीं आ पाये थे किन्तु उसके बाद से ही घुस-पेठ कर यह यहाँ आ गये और इन्होंने सिक्यांग-तिब्बत के बीच के कारवाँ मार्ग को अक्साई चिन होकर सुधारना आरम्भ कर दिया जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र के अधिकांश भागों तक पहुँचना इनके लिए और भी सुलभ हो गया।

मध्यवर्तीय सीमा (Midle Sector)—मध्यवर्ती क्षेत्र में पंजाब, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश को तिब्बत से अलग करने वाली प्राकृतिक बाधा स्वरूप हिमालय पर्वत का जल विभाजक है, जो परम्परा और रिवाज के अनुसार मान्यता प्राप्त कर चुकी है। इस क्षेत्र पर चीन का कभी अधिकार नहीं रहा। तिब्बत और भारत के बीच में सतलज और गंगा का जल विभाजक ऐतिहासिक स्रोतो के अनुसार गढ़वाल क्षेत्र में एक सुनिश्चित सीमा है। ऐतिहासिक काल में कैलाश 'मानसरोवर खंड कुमायूं के राजा के आधीन था। २६६ ई० पू० में कुमायू के कात्यूरी राजा (नन्दीदेव) के द्वारा इस क्षेत्र को जीतकर सम्राट अशाक द्वारा यह अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया गया। स्कंद पुराण के अनुसार गंगा और उसकी सभी सहायक नदियाँ केदार क्षेत्र से ही निकलती हैं। ७वीं शताब्दी में यहाँ आए ह्वेनस्यांग के

वर्णन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि गढ़वाल में हिन्दू राजाओं का ही राज्य था। गढ़वाल और कुमायूं जिले में मिले ताम्रपत्रों में यह स्पष्टतः अंकित है कि गढ़वाल और कुमायूं के कात्यूरी राजाओं (श्री सूरादेव तथा देशातादेव) ने २३ ई० पूर्व में इस क्षेत्र को जीत लिया था और इनका राज्य सतलज-गंगा के जल विभाजक तक फैला था। १६ वीं शताब्दी में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ फरिश्ता ने गढ़वाल राज्य के बारे में लिखते हुए कहा है, कि "गंगा और जमुना के आदि श्रोत इसी प्रदेश में है।" १८ वीं
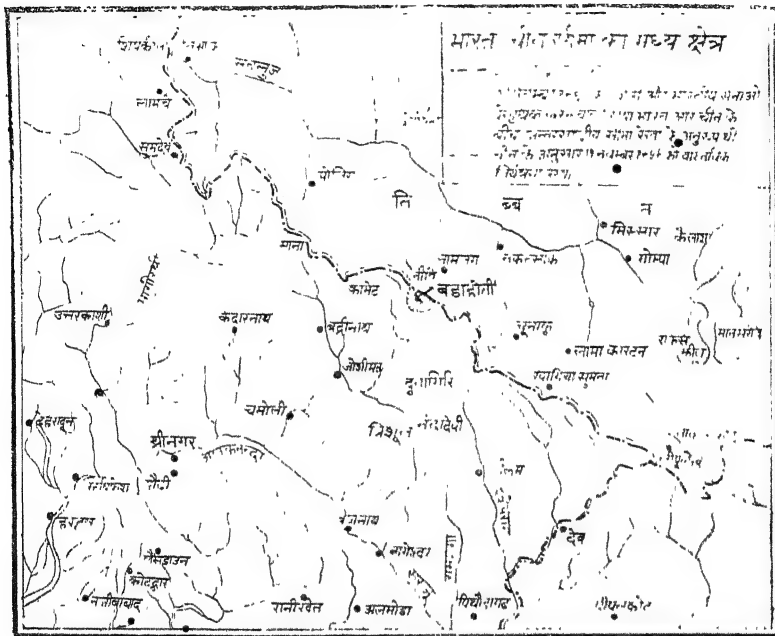
चित्र २९३. भारत चीन सीमा का मध्य क्षेत्र

शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में चीनी सम्राट कांग-ही ने पश्चिमी तिब्बत का सर्वेक्षण करने के लिए जिन दो लामाओं को भेजा था उनका कथन है कि गंगा का उद्गम स्थान उन पर्वतों के विपरीत दिशा में है। १८१५ में जब गढ़वाल पर अंग्रेज शासकों का अधिकार हुआ तो बैले फ्रेजर (Baille Froser) नामक अनवेषक ने गंगा की घाटी की खोज की थी और वह इस नतीजे पर पहुँचा था कि "ऊपरी भारत की अनेक बड़ी नदियों का, जो वास्तव में गंगा का निर्माण करती है, उद्गम स्थान इन पर्वतों में है तथा ये नदियाँ इनमें होकर बहती हैं।" पेरिस में प्रकाशित १८३६ का मध्य एशिया का मानचित्र (Central Asian) भी भारत की इस सीमा को जल विभाजक के सहारे ही बताता है।

इस क्षेत्र पर चीन ने अनाधिकार रूप से १९५४ में पहली बार अपना भाग बनाकर उत्तर प्रदेश के बड़ाहोती नामक स्थान पर आक्रमण किया। इसी समय भारत और चीन के बीच एक संधि भी हुई थी जिसमें हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के ६ दर्रों को एक ओर तथा तिब्बत क्षेत्र को दूसरी ओर माना गया था।

चित्र २९४. नेफा प्रदेश

सिक्किम और तिब्बत के बीच की सीमा रेखा, जो प्रायः १४० मील लंबी है, जल विभाजक के सहारे फैली है। इसकी मान्यता १८९० में की गई एक संधि में दी गई है जो ब्रिटेन और चीन के बीच कलकत्ता में हुई। इस सीमा रेखा को १८९५ में स्पष्ट रूप से भूमि पर अंकित किया गया। वर्तमान में सिक्कम भारत का एक संरक्षित राज्य (Protected Kingdom) है। इस देश पर १६४१ में कुछ तिब्बतियों ने आक्रमण कर इसे जीत लिया था और यहाँ तिब्बती राज्य-वंश का राज्य स्थापित किया गया। १८३९ ई० में अंग्रेजों से सिक्किम की एक संधि हुई जिसके अनुसार यह भारत का एक संरक्षित राज्य माना जाने लगा। इसी संधि के अनुसार दार्जिलिंग का जिला भी भारत-सरकार को मिल गया। १९५० में स्वतन्त्र भारत के साथ सिक्किम की जो दूसरी संधि हुई उसमें भी पुरानी ही संधि को मान्यता दी गई। इस संधि के अनुसार भारत जहाँ भी चाहे सिक्किम में अपनी सीमा की सुरक्षा के लिए सीमा रख सकता है और सिक्किम की सुरक्षा का दायित्व भी भारत के ही हाथ में है।

उत्तरी पूर्वी सीमा (North-Eastern Alignment)—पूर्वी क्षेत्र की सीमा भी हमारी परम्परागत सीमा है जो भूटान के पूर्व से आरंभ होकर चीन, ब्रह्मा और भारत के त्रि-संयुक्त स्थल तक फैली है। इसे ही वर्तमान उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश की सीमा कहा जाता है। इसका निर्धारण १९१३-१४ में एक त्रि-सदस्य गोष्ठी के संधि स्वरूप हुआ जिसमें तिब्बत, चीन और भारत सरकार के प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। भारत को ओर से श्री मैकमोहन भेजे गए थे। इस संधि के अनुसार तिब्बत की ओर बहने वाली सांपो (Tsangpo) और भारत में बहने वाली ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों के बीच १४,०००-२५००० फुट ऊँचे पर्वत शिखरों पर अन्तर्राष्ट्रीय सीमा निर्धारित की गई। इस संबंध में एक बात और महत्वपूर्ण है। सुवनश्री नदी तिब्बत से निकलती है किंतु उसका संपूर्ण जल-प्रवाह क्षेत्र भारत के प्रशासित क्षेत्र में ही था और यदि जलविभाजक रेखा के सिद्धान्त को पूरी तरह से माना जाता तो मिग्यीटून- चापूल और यूमे आदि सभी गाँव भी भारत की सीमा में ही होते। किन्तु अंग्रेजी शासकों ने तिब्बतियों की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाना ठीक नहीं समझा और इस जल विभाजक रेखा का उल्लंघन करते हुए ये भाग तिब्बतियों को ही दे दिये। उत्तरी-पूर्वी सीमा के बारे में कुछ आवश्यक महत्वपूर्ण तथ्य ये हैं :

कालिदास के रघुवंश ग्रंथ के अनुसार नेफा प्रदेश का प्राचीन नाम प्राग-ज्योतिष था। इस पर राजा रघु ने अपना अधिकार किया था। कल्कि पुराण महाभारत और विष्णु पुराण में दिये गये वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि आज जो क्षेत्र आदिवासी क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है उस पर प्राचीन काल में हिन्दू राजाओं का राज्य था। ह्वेनसांग जो ६४० वर्ष पूर्व भारत में आया था और ८ वीं शताब्दी के लगभग रचित योगिनी पुराण से ज्ञात होता है कि कामरूप के हिन्दू राजा का राज्य कामाख्या मन्दिर से १०० योजन (अर्थात् लगभग ४५० मील) सभी दिशाओं में फैला था अर्थात् इसका विस्तार हिमालय पर्वत श्रेणी तक था जो आज तिब्बत और भारत के बीच की सीमा बनाती है। उस समय यहाँ कामरूप में सालस्थम्बा और पला आदि वंशों का राज्य था। १७ वीं शताब्दी में लिखी गई 'Political Geography of Assam Valley' पुस्तक में यह बताया गया है कि इस क्षेत्र के आदिवासी अहोम-राजा को भेंट आदि दिया करते थे। इस राजा ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर

ालया था। अहामों से आसाम को अँग्रेजों ने १८२६ में जीत लिया और धीरे-धीरे इस ओर के आदि क्षेत्रों पर भी अपना नियन्त्रण कर लिया।

सम्पूर्ण अँग्रेजी शासन काल में नेफा अँग्रेजी सरकार के ही आधीन रहा है इसके प्रमाण १९०१-२, १९०२-३, १९१४-१५ और १९१८-१९ की सीमा प्रान्तीय आदिवासियों के वृत्लेखों तथा आसाम की १८८१, १९०१ और १९२१ की जनगणना रिपोर्टों से मिलते हैं। यह बात अवश्य है इस क्षेत्र पर अँग्रेजी सरकार का प्रशासन बडा ही ढीला रहा। अँग्रेज अधिकारी कभी कभी इन क्षेत्रों का दौरा कर दोषी आदिवासियों की दण्ड-व्यवस्था कर तथा उनके आपसी झगडों को निपटा कर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते थे। इस सीमा प्रान्त का आधुनिक जन्म १९१२ में ही हुआ जबकि सादिया और बालीपारा सीमांत क्षेत्रों को इस प्रदेश में मिलाया गया। भारत के भूगर्भिक सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रकाशित १८८५ में भारत के मानचित्र में, जिसका परिमार्जन १९०३ में किया गया था, सम्पूर्ण अदिवासी क्षेत्र को एक विशेष प्रकार के रंग से ही बताया गया है।

तिब्बत और भारत के इस आदिवासी क्षेत्र के बीच की सीमा हिमालय पर्वत ही रहे हैं। इसका एक औंर प्रमाण कूपर (T. T. Cooper), १८७३ और माइकेल (Michell), १८८३ के यात्रा वर्णनों से भी मिलता है। इसके अतिरिक्त इसी तथ्य को १९वीं शताब्दी के चीनी मानचित्रों में भी मान्यता दी गई है, विशेषकर कैंटन की **चियाओ चुंग अकादमी** द्वारा प्रकाशित Ta Tsing Map (१८६३) में जिसका मुद्रण १९१० में किया गया था।

१९१३-१४ में तिब्बत-चीन और भारत के प्रतिनिधियों में जो संधि हुई थी उसमें सीमा को प्रदर्शित करने वाले मानचित्र की एक-एक प्रति चीनी अधिकारी को भी दी गई थी जिसमें भारत-तिब्बत तथा तिब्बत और चीन की सीमा रेखा को स्पष्टतः बताया गया था। उस अधिकारी ने केवल तिब्बत-चीन की सीमा के बारे में ही अपना विरोध प्रकट किया था और भारत-तिब्बत की सीमा को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार। तिब्बत और चीन ने अनेक अवसरों पर मैकमोहन सीमा रेखा को मान्यता दी है—उदाहरणार्थ, ३१ अक्टूबर, १९४४, अगस्त-सितम्बर १९५३ और २० मई १९५५ को।

भारत पर चीनी आक्रमण के कारण—भारत चीन सीमान्त के ऐतिहासिक पर्यवेक्षण के उपरान्त यहाँ भारत पर चीनी आक्रमण के कारणों का उल्लेख कर देना समीचीन होगा। चीन विश्व का कदाचित सबसे बड़ा राष्ट्र है। यहाँ का क्षेत्रफल ९७,३६,००० वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या लगभग ७० करोड़ है किन्तु इससे भी चीन के साम्यवादी शासकों की लिप्सा शांत नहीं हुई है। फलस्वरूप उसने अपने पड़ौसी देशों के साथ सीमा विवाद खड़े कर लिये हैं। चीन की इन चालों के पीछे स्पष्ट राजनीतिक उद्देश्य हैं। अमेरिका के विदेश मंत्री **श्री डीन रस्क** ने २९ नवम्बर १९६२ को चीनी आक्रमण पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि सीमान्त प्रश्न जो आपसी बातचीत द्वारा हल किया जाना चाहिये था उसके लिये चीन द्वारा बड़े पैमाने पर शक्ति प्रयोग यह सिद्ध करता है कि उसके इरादे सीमा प्रश्न तक ही सीमित नहीं हैं। श्री रस्क का यह मत शत प्रतिशत सही है। चीन वस्तुतः समस्त एशिया पर हावी होना चाहता है। साम्यवादी संसार में भी वह रूस को पछाड़ कर नेतृत्व

ग्रहण करना चाहता है। किन्तु उसकी इन आकांक्षाओं की पूर्ति में भारत एक बाधा स्वरूप है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने न केवल एशिया अपितु विश्व में भी एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। वह पूर्व का सबसे बड़ा प्रजातन्त्रात्मक देश है। उसने प्रजातन्त्रात्मक पद्धति से विगत १६ वर्षों में देश का जिस ढंग से आर्थिक विकास किया है वह चीन के लिये एक चुनौती बन गई। अस्तु, एशिया में भारत के बढ़ते हुए उत्कर्ष को रोकने और उसकी आर्थिक प्रगति को ठेस पहुँचाने के हेतु चीन ने आक्रमण किया।

भारत पर चीनी आक्रमण के स्पष्ट राजनीतिक उद्देश्य तो हैं ही, उसकी पृष्ठभूमि में भौगोलिक कारण भी हैं। चीन, जैसा कि ऊपर बताया गया है, एक बहुत बड़ा देश है किन्तु इसका अधिकांश भाग पहाड़ी, पठारी, शुष्क तथा वीरान है। देश की केवल १२%भूमि ही खेती के योग्य है जबकि भारत में यह औसत ४८% है। कृषि भूमि के सन्दर्भ में यहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक है। अनेक कृषि क्षेत्रों में आबादी का औसत १५०० से ३००० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। आबादी के इस भार के कारण चीन में प्रति व्यक्ति केवल ०·५ एकड़ भूमि प्राप्त है। कृषि भूमि के अभाव के साथ साथ यहाँ की विशिष्ट जलवायु अवस्थाओं के कारण प्रायः देश बाढ और सूखे से ग्रस्त रहता है। इस प्रकार चीनी लोग शताब्दियों से बाढ़, अकाल, भुखमरी, तथा रोगों से लड़ते रहे हैं। साम्यवादी शासन अपने १३ वर्षों के शासन में भी नागरिकों को रोग, वेकारी और भूखमरी से मुक्त नहीं कर सका है। यद्यपि विगत वर्षों में साम्यवादी शासकों ने देश का औद्योगिक और कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये अथक चेष्टायें कीं परन्तु कोई परिणाम न निकला। अन्य क्षेत्रों में भी कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हुई। चीन के केवल १/३ भाग में रेलों की सुविधा प्राप्त है। शेष भाग यातायात के आधुनिक साधनों से अछूते हैं। साधारण जनता आज भी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र और आश्रय की पूर्ति नहीं कर पा रही है। फलस्वरूप भूख प्रदर्शन चीन में साधारण बात हो गई है। सरकार रोजगार माँगने वालों और भूख प्रदर्शन करने वालों का बड़ी निर्दयता के साथ दमन कर रही है। चीन सरकार के इन जघन्य कुकृत्यों से तंग आकर लाखों चीनी नागरिक हाँगकाँग और मकाओ (Macao) के रास्तों से चीन छोड़कर चले गये। अभी हाल ही में जब असंख्य चीनी सैनिक भारत की सीमा पर पड़े थे तो मंचूरिया में लोग भूख का प्रदर्शन कर रहे थे जिन्हें कारागृहों में बन्द कर दिया गया। इससे स्पष्ट है कि साम्यवादी चीन की आर्थिक नीति की असफलताओं के कारण वहाँ की जनता में असन्तोष तथा आक्रोष बढ़ता जा रहा है और यह एक प्राचीन कहावत है कि जब किसी देश में घरेलू असन्तोष होगा तो वह अवश्य बाहर आक्रमण करेगा।

भारत की भूरचना चीनी आक्रमण के लिये प्रेरक है। चीन का दक्षिणी-पश्चिमी भाग पहाड़ी है तथा इसी से लगा हुआ तिब्बत का पठारी क्षेत्र है। चीनी सैनिक पहाड़ी जीवन के अभ्यस्त हैं। उन्हें पहाड़ी लड़ाई लड़ने में असुविधा नहीं होती। पठारी भाग साज-सामान तथा सेना के यातायात के लिये सुविधापूर्ण मार्ग प्रदान करता है। भारत की स्थिति इस दृष्टि से अच्छी नहीं है। चीन ने इस सुविधा का पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की है।

चीन में जनसख्या की वृद्धि मक्खी तथा मच्छरों की भाँति होती है। अतः वहाँ मानव का मूल्य भी कीट-पतंगों से अधिक नहीं समझा जाता। चीनी साम्य-

वादियों की यह धारणा है कि भारत चीन युद्ध चीन में आबादी का सन्तुलन स्थापित करने में योग देना। उनकी दृष्टि में अपने ही द्वारा रचित युद्ध में अपने देशवासियों का विनाश बढ़ती हुई आबादी के लिये एक रामबाण दवा है। इसी कारण वर्तमान युद्ध में प्रति ५० भारतीय जवानों की टुकड़ी के पीछे चीन ने अपने ५०० सैनिक झोंक दिये थे।

उपरोक्त बातों के साथ साथ वर्तमान आक्रमण की सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति भारत की प्राकृतिक सम्पदा है। चीन के **'न्यू चाइना न्यूज एजन्सी'** पत्र ने अपने २ नवम्बर १६६२ के अंक में भारत चीन सीमान्त के विवादग्रस्त पश्चिमी क्षेत्र को प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न प्रदेश कहा है। उसने वर्णन करते हुए लिखा है कि यद्यपि यहाँ मानव आबादी बहुत कम है परन्तु प्राकृतिक वस्तुओं का बाहुल्य है। यहाँ उत्तम चारागाह, वनैले पशु तथा अभ्रक, जेड़, स्फटिक एवं अणु खनिजों की प्रचुरता है। हिम भी एक प्राकृतिक साधन है। प्रतिवर्ष बसन्त और ग्रीष्म के बीच हिम के पिघलने से नदियों में पानी आता है जिससे सिक्यांग में सिचाई की जाती है।

चीन की आँखें ब्रह्मपुत्र की घाटी पर भी लगी हुई हैं। यहाँ अनेक खनिजों के साथ तेल के भण्डार पाये जाते हैं। तेल के साथ तेल शोधक कारखानें भी हैं। चीन कोयला, ताँबा, टंगस्टन, सुरमा आदि कई खनिजों में सम्पन्न है परन्तु आधुनिक युद्ध के लिये आवश्यक पैट्रोलियम की वहाँ बड़ी कमी है। वर्तमान युद्ध के लिये वे सुदूर-पश्चिमी भागों से, जो युद्ध क्षेत्र से १५०० से २००० मील दूर हैं, तेल पहुँचा रहे हैं। इसलिये असम के तेल के कुँए शत्रु के लिये लालच की बात है।

भारत के संरक्षित प्रदेश भूटान तथा सिक्किम पर भी चीन की ललचाई हुई दृष्टि है। वह इन राज्यों को भारत की छत्र-छाया से विछिन्न कर उन्हें हड़प लेना चाहता है। चीन का अन्तिम उद्देश्य गंगा की घाटी को प्राप्त करना है। बंगाल तथा बिहार जो इस घाटी में स्थित है लोहा, कोयला, अभ्रक, अग्निरोधक पदार्थ, ताँबा, अणु पदार्थ आदि अनेक महत्वपूर्ण खनिजों के भण्डार हैं। इन्हीं क्षेत्रों पर आज चीन के दांत लगे हुए हैं। सन् १६५० में चीन ने एक मानचित्र प्रकाशित किया था जिसमें बंगाल की खाड़ी तक का तथा ब्रह्मा का कुछ भाग अपनी सीमा में दिखाये गये थे। शायद उसी को चीन अब बलपूर्वक प्राप्त करना चाहता है।

निष्कर्ष—भारत एक शान्तिप्रिय देश है। वह अपने पड़ौसी देशों के साथ मित्रता और शान्ति के साथ रहना चाहता है इसलिये उसने पंचशील की नीति को जन्म दिया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वह उसी नीति का पालन कर रहा है। भारत का सदैव यह विश्वास रहा है कि अपने आपसी झगड़ों को बातचीत के द्वारा हल किया जाना चाहिए। वह चीन के साथ सीमा विवाद को भी आपसी बातचीत द्वारा हल करना चाहता है। सन् १६५४ से ही भारत चीन से कहता रहा है कि यदि सीमा सम्बन्धी हमारे बीच कोई झगड़ा हो तो हम बैठ कर तय करलें। किन्तु चीन बराबर भारत के अनुरोध को टालता रहा है क्योंकि चीन का दिल साफ नहीं था और अन्त में २० अक्टूबर १६६२ को उसने भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी सीमान्त पर भारी आक्रमण कर ही दिया। ११ नवम्बर सन् १६५० के **"मदर इण्डिया"** के सम्पादकीय लेख में श्री अरविन्द ने लिखा था कि माओ के तिब्बत अभियान का मूल लक्ष्य चीन की सीमा को भारत की सीमा से मिला देना है जिससे कि वह भारत

के सन्मुख खड़ा होकर उपयुक्त समय और उचित सुरक्षा के साथ उस पर आक्रमण कर सके। श्री अरविन्द के १२ वर्ष पूर्व की गई भविष्यवाणी अक्षरक्षः सत्य सिद्ध हुई। चीन के इस नग्न आक्रमण के लिये विश्व के लगभग सभी देशों ने उसे धिक्कारा है। साम्यवादी रूस ने भी उसकी आलोचना की है। कोलम्बो राष्ट्र भारत चीन विवाद को सुलझाने के लिये प्रयत्नशील हैं। कोलम्बो प्रस्तावों के आधार पर वे भारत चीन को आपसी बातचीत करने का आग्रह कर रहे हैं। भारत ने उन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया है किन्तु चीन अपनी हठ धर्मी पर अड़ा हुआ है। वस्तुतः चीन का सहअस्तित्व और आपसी बातचीत में कोई विश्वास नहीं है। वह अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद में विश्वास करता है। अस्तु, एशिया में सर्वत्र साम्यवादी शासन देखना चाहता है। उसका विश्वास है कि विश्व में शान्ति केवल सतत वर्ग-संघर्ष और खूनी क्रान्ति के द्वारा ही स्थापित की जा सकती है। अस्तु, उनके मतानुसार युद्ध से मुँह मोड़ना विश्व की प्रगतिशील शक्तियों के साथ गद्दारी करना है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चीन भारत से आक्रमण को हटाना नहीं चाहता। ऐसी स्थिति में बातचीत के द्वारा सीमा विवाद हल किया जा सके संदिग्ध लगता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जहाँ कहीं दो शक्तिशाली बराबर के राष्ट्र आपस में मिलेंगे वहाँ झगड़ा अवश्य होगा। उनमें स्थाई शान्ति तभी बनी रह सकती है जबकि दोनों देशों की सीमायें आपस में न मिलें। इसलिये भारत के लिए यह अभीष्ट होगा कि वह उत्तरी सीमा पर स्थाई शान्ति बनाये रखने के लिये तिब्बत को पुनः एक मध्यस्थ राज्य (Buffer State) बनाने की चेष्टा करे। इसके लिए भारत को तिब्बती लोगों की सहायता करनी चाहिये और साथ ही उसकी सफल परिणिति के लिये विश्व जनमत तैयार करना चाहिये।

कोलम्बो सम्मेलन प्रस्ताव—१० दिसम्बर, १९६२ को श्रीलंका की प्रधान मंत्री (श्रीमावो भंडारनायक) ने, गुटों से अलग रहने वाले, अफ्रीका व एशिया के ६ राष्ट्रों—श्रीलंका, संयुक्त अरब गणराज्य, घाना, बर्मा, इण्डोनेशिया और कम्बोडिया का कोलम्बो में एक सम्मेलन बुलाया था। इसका उद्देश्य भारत-चीन संघर्ष पर विचार-विमर्श करना था। शान्ति-पूर्ण निपटारे का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से इस सम्मेलन ने सर्व सम्मति से कुछ प्रस्ताव पास किये जो उनके विचारानुसार बातचीत शुरू करने का अच्छा आधार हो सकते हैं। प्रस्ताव (जैसे कि भारत और चीन को भेजे गये थे), इस प्रकार हैं :—

पश्चिमी क्षेत्र में चीन सरकार अपनी सैनिक चौकियां २० किलोमीटर पीछे हटा ले जैसा कि २१ नवम्बर १९६२ के चीनी युद्ध विराम प्रस्ताव में सुझाया गया है। साथ ही भारत सरकार अपनी वर्तमान सैनिक स्थिति कायम रखे।

सीमा विवाद का कोई अंतिम फैसला होने तक चीनी सैनिकों द्वारा खाली किया गया क्षेत्र, विसैन्यीकृत होगा और उसका प्रशासन दोनों सरकारों की सहमति से, दोनों पक्षों की असैनिक चौकियों द्वारा चलाया जायेगा, और इससे इस क्षेत्र में भारत तथा चीन दोनों की पूर्व-उपस्थिति के अधिकारों पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

पूर्वी क्षेत्र में दोनों सरकारों द्वारा मान्य क्षेत्रों में वास्तविक नियंत्रण रेखा एक दूसरे को सैनिक स्थिति के लिए युद्ध-विराम रेखा के रूप में सिद्ध हो सकती है। इस क्षेत्र के शेष इलाकों के बारे में निपटारा भविष्य में वार्ता द्वारा किया जा सकता है।

मध्य क्षेत्र की समस्याएँ शांतिपूर्ण उपायों से सुलझाई जानी चाहिए और बल प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

भारत सरकार ने कोलम्बो सम्मेलन प्रस्तावों को, समस्या के समाधान में सहायता देने के लिए गुटों से अलग रहने वाले राष्ट्रों की उत्कट इच्छा का सबूत मानकर स्वागत किया। साथ ही भारत सरकार ने उनसे कुछ स्पष्टीकरण भी चाहे। स्पष्टीकरण जो भारत को कोलम्बो सम्मेलन प्रतिनिधियों द्वारा संयुक्त रूप से दिये गये वे इस प्रकार थे :

पश्चिमी क्षेत्र—चीनी सेना को ७ नवम्बर, १६५६ की वास्तविक नियंत्रण रेखा से, जिसकी परिभाषा चीन ने दी है, २० किलोमीटर पीछे है हटना है। भारतीय सैनिक चौकियाँ इस रेखा पर और इस रेखा तक बनी रहेंगी। चीन के सैनिकों के पीछे हटने से २० किलोमीटर के बने विसैन्यीकृत क्षेत्र में बराबरी के आधार पर दोनों पक्षों की सैनिक चौकियों का रख-रखाव कोलम्बो सम्मेलन प्रस्तावों का महत्वपूर्ण भाग है। चौकियों की स्थिति. उनकी संख्या, उनमें कितने व्यक्ति हों, इन बातों के बारे में भारतीय और चीनी अधिकारियों के बीच सीधी वार्ता होनी है।

पूर्वी क्षेत्र—इस क्षेत्र में भारतीय सेनाएँ वास्तविक नियंत्रण रेखा के दक्षिण तक) यानी मैकमहोन रेखा तक केवल २ इलाकों (थागला रिज और लौंगजू) को छोड़कर, जिनके बारे में भारत और चीन में मतभेद है, जा सकेंगी। चीनी सेनाएँ भी इसी प्रकार मैकमहोन रेखा के उत्तर तक केवल इन दो इलाकों छोड़ कर, जा सकेंगी। इन दो इलाकों के बारे में क्या व्यवस्था हो, यह भारत और चीन की सरकारों को तय करना है।

मध्य क्षेत्र—इस क्षेत्र में सितम्बर पूर्व जैसी स्थिति थी वैसी स्थिति बनाये रखनी चाहिए और दोनों में से किसी भी पक्ष को, इसे भंग करने का कोई काम नहीं करना चाहिए।

कोलम्बो प्रस्तावों पर संसद में विस्तार से विचार हुआ था। चूंकि ये प्रस्ताव सम्बद्ध समस्या पर अपनाये गये भारतीय रुख के पूर्णतया अनुरूप थे और कोलम्बो सम्मेलन के साथ सहयोग करने की उत्कट इच्छा के सबूत के रूप में और उसके पहल को सफल बनाने के लिए भारत ने इन प्रस्तावों को पूरी तरह स्वीकार कर लिया है जिसकी सूचना श्रीलंका की प्रधान मंत्री को भेज दी गई थी किन्तु चीन ने इन प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया।*

---

* इस अध्याय के लिए मार्च ऑफ इण्डिया में प्रकाशित अक्टूबर १६६२ से सितम्बर १६६३ तक के लेखों की सहायता ली गई है।

BIBLIOGRAPHY

1. General Reference Books.

Bergsmark, D. R.	...	Economic Geography of Asia.
Cressy, G. B.	...	Asia's Lands and People, 1944.
Dobby, H. A. G.	...	South East Asia, 1950
Ginsberg, N. (Ed.)	...	The Pattern of Asia, 1958.
Lyde, L. W.	...	The Continent of Asia, 1938.
Mamoria, C. B.	...	*Arthik Aur Vanijia Bhugol*, 1964.
Stamp, L. D.	...	Asia, 1957.
East and Spate, O. H. K.	...	Changing Map of Asia.
Spencer, J. E.	..	Asia—East by South.

2. India (General).

Anstey, V.	...	Economic Development of India, 1956.
Council of Scientific and Industrial Research	...	The Wealth of India : A Dictionary of Indian Raw Materials and Industrial Products, Vols.1-7, 1948-60.
Cotton, C. W. E.	...	Hand-book of Commercial Information for India, 1937.
Cunningham, A.	...	Ancient Geography of India, 1871.
Dubey, R. N.	...	Economic Geography of the Indian Republic, 1961.
Das Gupta, A.	...	Economic and Commercial Geography, 1963.
Frew, D.	...	A Regional Geography of the Indian Empire.
Government of India.	...	(i) India In World Economy, 1958.
		(ii) India : A Reference Annual, 1963 and 1964.
		(iii) Imperial Gazetteer of India, 26 Volumes, 1908-31.
Holdisch.	...	India, 1904.
Lorenzo, A. M.	...	Atlas of India, 1948.
Morison.	...	A New Geography of India, 1933.

Owen, R. — Economic and Commercial Conditions in India, 1953.

Puri, G. S. — Forest Ecology of India, Vol. I & II, 1960.

Sharma, T. R. — Economic Geography of India.

Spate, O. H. K. — India and Pakistan, 1959.

Stamp, L. D. — India, Pakistan Ceylon and Burma, 1957.

Survey of India. — National Atlas of India, 1957.

Vakil, C. N. — Economic Consequences of Divided India, 1948.

Venktachar, C. S — Geographical Realities in India, 1958.

National Council of Applied Economic Reseach. ... — Techno-Economic Survey of Andhra Pradesh, 1962.

,, Assam.
,, Bihar, 1951.
,, Gujarat, 1963.
,, Kerala, 1962.
,, Maharashtra, 1963.
,, Madras, 1960.
,, Mysore.
,, M. P., 1960.
,, Orissa, 1962.
,, Punjab, 1962.
,, Rajasthan, 1963.
,, West Bengal, 1962.
,, Tripura, 1961.
,, Maniur, 1961.
,, Himachal Pradesh, 1961.

Economic Atlas of Madras State, 1961.

Elwin, Verier. ... — The Nagaland, 1961.

Sen, Probhat Kumar. ... — Land and People of the Andamans, 1962.

Chatterjee, S. P. .. — Bengal in Maps.

Dayal, P. ... — Bihar in Maps.

Govt. of Madras, ... — Madras in Maps & Pictures, 1959.

Indian Council of Agriculrural Resea ch ... — Agriculture in Hill Regions of Northern India.

Agriculture in Hill Regions of Southern India.